Hindi / English / Gujarati

ब्रह्मवैवर्त पुराण

महर्षि वेद व्यास

महाकाव्य

श्रीगणेशाय नमः
श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः

संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण

ब्रह्मखण्ड

मङ्गलाचरण, नैमिषारण्यमें आये हुए सौतिसे शौनकके प्रश्न तथा सौतिद्वारा ब्रह्मवैवर्तपुराणका परिचय देते हुए इसके महत्त्वका निरूपण

गणेशब्रह्मेशसुरेशशेषाः
सुराश्च सर्वे मनवो मुनीन्द्राः।
सरस्वतीश्रीगिरिजादिकाश्च
नमन्ति देव्यः प्रणमामि तं विभुम्॥ १॥

गणेश, ब्रह्मा, महादेवजी, देवराज इन्द्र, शेषनाग आदि सब देवता, मनु, मुनीन्द्र, सरस्वती, लक्ष्मी तथा पार्वती आदि देवियाँ भी जिन्हें मस्तक झुकाती हैं, उन सर्वव्यापी परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ।

स्थूलास्तनूर्विदधतं त्रिगुणं विराजं
विश्वानि लोमविवरेषु महान्तमाद्यम्।
सृष्ट्युन्मुखः स्वकलयापि ससर्ज सूक्ष्मं
नित्यं समेत्य हृदि यस्तमजं भजामि॥ २॥

जो सृष्टिके लिये उन्मुख हो तीन गुणोंको स्वीकार करके ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामवाले तीन दिव्य स्थूल शरीरोंको ग्रहण करते तथा विराट् पुरुषरूप हो अपने रोमकूपोंमें सम्पूर्ण विश्वको धारण करते हैं, जिन्होंने अपनी कलाद्वारा भी सृष्टि-रचना की है तथा जो सूक्ष्म (अन्तर्यामी आत्मा)-रूपसे सदा सबके हृदयमें विराजमान हैं, उन महान् आदिपुरुष अजन्मा परमेश्वरका मैं भजन करता हूँ।

ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाः सुरनरमनवो योगिनो योगरूढाः
सन्तः स्वप्नेऽपि सन्तं कतिकतिजनिभिर्यं न पश्यन्ति तप्त्वा।
ध्याये स्वेच्छामयं तं त्रिगुणपरमहो निर्विकारं निरीहं
भक्तध्यानैकहेतोर्निरुपमरुचिरश्यामरूपं दधानम्॥ ३॥

ध्यानपरायण देवता, मनुष्य और स्वायम्भुव आदि मनु जिनका ध्यान करते हैं, योगारूढ योगिजन जिनका चिन्तन करते हैं, जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति सभी अवस्थाओंमें विद्यमान होनेपर भी जिन्हें बहुत-से साधक संत कितने ही जन्मोंतक तपस्या करके भी देख नहीं पाते हैं तथा जो केवल भक्त पुरुषोंके ध्यान करनेके लिये स्वेच्छामय अनुपम एवं परम मनोहर श्यामरूप धारण करते हैं, उन त्रिगुणातीत निरीह एवं निर्विकार परमात्मा श्रीकृष्णका मैं ध्यान करता हूँ।

वन्दे कृष्णं गुणातीतं परं ब्रह्माच्युतं यतः।
आविर्बभूवुः प्रकृतिब्रह्मविष्णुशिवादयः॥ ४॥

जिनसे प्रकृति, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदिका आविर्भाव हुआ है, उन त्रिगुणातीत परब्रह्म परमात्मा अच्युत श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।

हे भोले-भाले मनुष्यो! व्यासदेवने श्रुतिगणोंको बछड़ा बनाकर भारतीरूपिणी कामधेनुसे जो अपूर्व, अमृतसे भी उत्तम, अक्षय, प्रिय एवं मधुर दूध दुहा था, वही यह अत्यन्त सुन्दर ब्रह्मवैवर्तपुराण है। तुम अपने श्रवणपुटोंद्वारा इसका पान करो, पान करो।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

परम पुरुष नारायण, नरश्रेष्ठ नर, इनकी

लीलाओंको प्रकट करनेवाली देवी सरस्वती तथा उन लीलाओंका गान करनेवाले वेदव्यासको नमस्कार करके फिर जयका उच्चारण (इतिहास-पुराणका पाठ) करना चाहिये।

भारतवर्षके नैमिषारण्य तीर्थमें शौनक आदि ऋषि प्रातःकाल नित्य और नैमित्तिक क्रियाओंका अनुष्ठान करके कुशासनपर बैठे हुए थे। इसी समय सूतपुत्र उग्रश्रवा अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। आकर उन्होंने विनीत भावसे मुनियोंके चरणोंमें प्रणाम किया। उन्हें आया देख ऋषियोंने बैठनेके लिये आसन दिया। मुनिवर शौनकने भक्तिभावसे उन नवागत अतिथिका भलीभाँति पूजन करके प्रसन्नतापूर्वक उनका कुशल-समाचार पूछा। शौनकजी शम आदि गुणोंसे सम्पन्न थे, पौराणिक सूतजी भी शान्त चित्तवाले महात्मा थे। अब वे रास्तेकी थकावटसे छूटकर सुस्थिर आसनपर आरामसे बैठे थे। उनके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। उन्हें पुराणोंके सम्पूर्ण तत्त्वका ज्ञान था। शौनकजी भी पुराण-विद्याके ज्ञाता थे। वे मुनियोंकी उस सभामें विनीत भावसे बैठे थे और आकाशमें ताराओंके बीच चन्द्रमाकी भाँति शोभा पा रहे थे। उन्होंने परम विनीत सूतजीसे एक ऐसे पुराणके विषयमें प्रश्न किया, जो परम उत्तम, श्रीकृष्णकी कथासे युक्त, सुननेमें सुन्दर एवं सुखद, मङ्गलमय, मङ्गलयोग्य तथा सर्वदा मङ्गलधाम हो, जिसमें सम्पूर्ण मङ्गलोंका बीज निहित हो; जो सदा मङ्गलदायक, सम्पूर्ण अमङ्गलोंका विनाशक, समस्त सम्पत्तियोंकी प्राप्ति करानेवाला और श्रेष्ठ हो; जो हरिभक्ति प्रदान करनेवाला, नित्य परमानन्ददायक, मोक्षदाता, तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति करानेवाला तथा स्त्री-पुत्र एवं पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाला हो।

शौनकजीने पूछा—सूतजी! आपने कहाँके लिये प्रस्थान किया है और कहाँसे आप आ रहे हैं? आपका कल्याण हो। आज आपके दर्शनसे हमारा दिन कैसा पुण्यमय हो गया। हम सभी लोग कलियुगमें श्रेष्ठ ज्ञानसे वञ्चित होनेके कारण भयभीत हैं। संसार-सागरमें डूबे हुए हैं और इस कष्टसे मुक्त होना चाहते हैं। हमारा उद्धार करनेके लिये ही आप यहाँ पधारे हैं। आप बड़े भाग्यशाली साधु पुरुष हैं। पुराणोंके ज्ञाता हैं। सम्पूर्ण पुराणोंमें निष्णात हैं और अत्यन्त कृपानिधान हैं। महाभाग! जिसके श्रवण और पठनसे भगवान् श्रीकृष्णमें अविचल भक्ति प्राप्त हो तथा जो तत्त्वज्ञानको बढ़ानेवाला हो, उस पुराणकी कथा कहिये। सूतनन्दन! जो मोक्षसे भी बढ़कर है, कर्मका मूलोच्छेद करनेवाली तथा संसाररूपी कारागारमें बँधे हुए जीवोंकी बेड़ी काटनेवाली है, वह कृष्ण-भक्ति ही जगत्-रूपी दावानलसे दग्ध हुए जीवोंपर अमृत-रसकी वर्षा करनेवाली है। वही जीवधारियोंके हृदयमें नित्य-निरन्तर परम सुख एवं परमानन्द प्रदान करती है।*

आप वह पुराण सुनाइये, जिसमें पहले सबके बीज (कारणतत्त्व)-का प्रतिपादन तथा परब्रह्मके स्वरूपका निरूपण हो। सृष्टिके लिये उन्मुख हुए उस परमात्माकी सृष्टिका भी उत्कृष्ट वर्णन हो। मैं यह जानना चाहता हूँ कि परमात्माका स्वरूप साकार है या निराकार? ब्रह्मका स्वरूप कैसा है? उसका ध्यान अथवा चिन्तन कैसे करना चाहिये? वैष्णव महात्मा किसका ध्यान करते हैं? तथा शान्तचित्त योगीजन किसका चिन्तन किया करते हैं? वेदमें किनके गूढ़ एवं प्रधान

* श्रीकृष्णे निश्चला भक्तिर्यतो भवति शाश्वती। तद् कथ्यतां महाभाग पुराणं ज्ञानवर्द्धनम्॥
गरीयसी या मोक्षाच्च कर्ममूलनिकृन्तनी। संसारसंनिबद्धानां निगडच्छेदकर्तरी॥
भवदावाग्निदग्धानां पीयूषवृष्टिवर्षिणी। सुखदाऽऽनन्ददा सौते शश्वच्चेतसि जीविनाम्॥
(ब्रह्मखण्ड १। १२—१४)

मतका निरूपण किया गया है?

वत्स! जिस पुराणमें प्रकृतिके स्वरूपका निरूपण हुआ हो, गुणोंका लक्षण वर्णित हो तथा 'महत्' आदि तत्त्वोंका निर्णय किया गया हो; जिसमें गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक तथा अन्यान्य स्वर्गादि लोकोंका वर्णन हो तथा अंशों और कलाओंका निरूपण हो, उस पुराणको श्रवण कराइये। सूतनन्दन! प्राकृत पदार्थ क्या हैं? प्रकृति क्या है तथा प्रकृतिसे परे जो आत्मा या परमात्मा हैं, उसका स्वरूप क्या है? जिन देवताओं और देवाङ्गनाओंका भूतलपर गूढ़रूपसे जन्म या अवतरण हुआ है, उनका भी परिचय दीजिये। समुद्रों, पर्वतों और सरिताओंके प्रादुर्भावकी भी कथा कहिये। प्रकृतिके अंश कौन हैं? उसकी कलाएँ और उन कलाओंकी भी कलाएँ क्या हैं? उन सबके शुभ चरित्र, ध्यान, पूजन और स्तोत्र आदिका वर्णन कीजिये। जिस पुराणमें दुर्गा, सरस्वती, लक्ष्मी और सावित्रीका वर्णन हो, श्रीराधिकाका अत्यन्त अपूर्व और अमृतोपम आख्यान हो, जीवोंके कर्मविपाकका प्रतिपादन तथा नरकोंका भी वर्णन हो, जहाँ कर्मबन्धनका खण्डन तथा उन कर्मोंसे छूटनेके उपायका निरूपण हो, उसे सुनाइये। जिन जीवधारियोंको जहाँ जो-जो शुभ या अशुभ स्थान प्राप्त होता हो, उन्हें जिस कर्मसे जिन-जिन योनियोंमें जन्म लेना पड़ता हो, इस लोकमें देहधारियोंको जिस कर्मसे जो-जो रोग होता हो तथा जिस कर्मके अनुष्ठानसे उन रोगोंसे छुटकारा मिलता हो, उन सबका प्रतिपादन कीजिये।

सूतनन्दन! जिस पुराणमें मनसा, तुलसी, काली, गङ्गा और वसुन्धरा पृथ्वी—इन सबका तथा अन्य देवियोंका भी मङ्गलमय आख्यान हो, शालग्राम-शिलाओं तथा दानके महत्त्वका निरूपण हो अथवा जहाँ धर्माधर्मके स्वरूपका अपूर्व विवेचन उपलब्ध होता हो, उसका वर्णन कीजिये। जहाँ गणेशजीके चरित्र, जन्म और कर्मका तथा उनके गूढ़ कवच, स्तोत्र और मन्त्रोंका वर्णन हो, जो उपाख्यान अत्यन्त अद्भुत और अपूर्व हो तथा कभी सुननेमें न आया हो, वह सब मन-ही-मन याद करके इस समय आप उसका वर्णन करें। परमात्मा श्रीकृष्ण सर्वत्र परिपूर्ण हैं तथापि इस जगत्में पुण्य-क्षेत्र भारतवर्षमें जन्म (अवतार) लेकर उन्होंने नाना प्रकारके लीला-विहार किये। मुने! जिस पुराणमें उनके इस अवतार तथा लीला-विहारका वर्णन हो, उसकी कथा कहिये। उन्होंने किस पुण्यात्माके पुण्यमय गृहमें अवतार ग्रहण किया था? किस धन्या, मान्या, पुण्यवती सती नारीने उनको पुत्ररूपसे उत्पन्न किया था? उसके घरमें प्रकट होकर वे भगवान् फिर कहाँ और किस कारणसे चले गये? वहाँ जाकर उन्होंने क्या किया और वहाँसे फिर अपने स्थानपर कैसे आये? किसकी प्रार्थनासे उन्होंने पृथ्वीका भार उतारा? तथा किस सेतुका निर्माण (मर्यादाकी स्थापना) करके वे भगवान् पुनः गोलोकको पधारे? इन सबसे तथा अन्य उपाख्यानोंसे परिपूर्ण जो श्रुतिदुर्लभ पुराण है, उसका सम्यक् ज्ञान मुनियोंके लिये भी दुर्लभ है। वह मनको निर्मल बनानेका उत्तम साधन है। अपने ज्ञानके अनुसार मैंने जो भी शुभाशुभ बात पूछी है या नहीं पूछी है, उसके समाधानसे युक्त जो पुराण तत्काल वैराग्य उत्पन्न करनेवाला हो, मेरे समक्ष उसीकी कथा कहिये। जो शिष्यके पूछे अथवा बिना पूछे हुए विषयकी भी व्याख्या करता है तथा योग्य और अयोग्यके प्रति भी समभाव रखता है, वही सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ सद्गुरु है।

सौति बोले—मुने! आपके चरणारविन्दोंका दर्शन मिल जानेसे मेरे लिये सब कुशल-ही-कुशल है। इस समय मैं सिद्धक्षेत्रसे आ रहा हूँ और नारायणाश्रमको जाता हूँ। यहाँ ब्राह्मणसमूहको

उपस्थित देख नमस्कार करनेके लिये चला आया हूँ। साथ ही भारतवर्षके पुण्यदायक क्षेत्र नैमिषारण्यका दर्शन भी मेरे यहाँ आगमनका उद्देश्य है। जो देवता, ब्राह्मण और गुरुको देखकर वेगपूर्वक उनके सामने मस्तक नहीं झुकाता है, वह 'कालसूत्र' नामक नरकमें जाता है तथा जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता रहती है, तबतक वह वहीं पड़ा रहता है। साक्षात् श्रीहरि ही भारतवर्षमें ब्राह्मणरूपसे सदा भ्रमण करते रहते हैं। श्रीहरि-स्वरूप उस ब्राह्मणको कोई पुण्यात्मा ही अपने पुण्यके प्रभावसे प्रणाम करता है। भगवन्! आपने जो कुछ पूछा है तथा आपको जो कुछ जानना अभीष्ट है, वह सब आपको पहलेसे ही ज्ञात है, तथापि आपकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैं इस विषयमें कुछ निवेदन करता हूँ। पुराणोंमें सारभूत जो ब्रह्मवैवर्त नामक पुराण है, वही सबसे उत्तम है। यह हरिभक्ति देनेवाला तथा सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञानकी वृद्धि करनेवाला है। यह भोग चाहनेवालोंको भोग, मुक्तिकी इच्छा रखनेवालोंको मोक्ष तथा वैष्णवोंको हरिभक्ति प्रदान करनेवाला है। सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिये यह साक्षात् कल्पवृक्ष-स्वरूप है। इसके ब्रह्मखण्डमें सर्वबीजस्वरूप उस परब्रह्म परमात्माका निरूपण है जिसका योगी, संत और वैष्णव ध्यान करते हैं तथा जो परात्पर-रूप है। शौनकजी! वैष्णव, योगी और अन्य संत महात्मा एक-दूसरेसे भिन्न नहीं हैं। जीवधारी मनुष्य अपने ज्ञानके परिणामस्वरूप क्रमशः संत, योगी और वैष्णव होते हैं। सत्संगसे मनुष्य संत होते हैं। योगियोंके संगसे योगी होते हैं तथा भक्तोंके संगसे वैष्णव होते हैं। ये क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठ योगी हैं।

ब्रह्मखण्डके अनन्तर प्रकृतिखण्ड है, जिसमें देवताओं, देवियों और सम्पूर्ण जीवोंकी उत्पत्तिका कथन है। साथ ही देवियोंके शुभ चरित्रका वर्णन है। जीवोंके कर्मविपाक और शालग्राम-शिलाके महत्त्वका निरूपण है। उन देवियोंके कवच, स्तोत्र, मन्त्र और पूजा-पद्धतिका भी प्रतिपादन किया गया है। उस प्रकृतिखण्डमें प्रकृतिके लक्षणका वर्णन है। उसके अंशों और कलाओंका निरूपण है। उनकी कीर्तिका कीर्तन तथा प्रभावका प्रतिपादन है। पुण्यात्माओं और पापियोंको जो-जो शुभाशुभ स्थान प्राप्त होते हैं, उनका वर्णन है। पापकर्मसे प्राप्त होनेवाले नरकों तथा रोगोंका कथन है। उनसे छूटनेके उपायका भी विचार किया गया है।

प्रकृतिखण्डके पश्चात् गणेशखण्डमें गणेशजीके जन्मका वर्णन है। उनके उस अत्यन्त अपूर्व चरित्रका निरूपण है, जो श्रुतियों और वेदोंके लिये भी परम दुर्लभ है। गणेश और भृगुजीके संवादमें सम्पूर्ण तत्त्वोंका निरूपण है। गणेशजीके गूढ़ कवच और स्तोत्र, मन्त्र तथा तन्त्रोंका वर्णन है। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण-जन्मखण्डका कीर्तन हुआ है। भारतवर्षके पुण्यक्षेत्रमें श्रीकृष्णके दिव्य

जन्म-कर्मका वर्णन है। उनके द्वारा पृथ्वीके भार उतारे जानेका प्रसंग है। उनके मङ्गलमय क्रीडा-कौतुकोंका वर्णन है। सत्पुरुषोंके लिये जो धर्मसेतुका विधान है, उसका निरूपण भी श्रीकृष्ण-जन्मखण्डमें ही हुआ है।

विप्रवर शौनक! इस प्रकार मैंने उत्तम पुराणशिरोमणि ब्रह्मवैवर्तका परिचय दिया। यह ब्रह्म आदि चार खण्डोंमें बँटा हुआ है। इसमें सम्पूर्ण धर्मोंका निरूपण है। यह पुराण सब लोगोंको अत्यन्त प्रिय है तथा सबकी समस्त आशाओंको पूर्ण करनेवाला है। इसका नाम ब्रह्मवैवर्त है। यह सम्पूर्ण अभीष्ट पदोंको देनेवाला है। पुराणोंमें सारभूत है। इसकी तुलना वेदसे की गयी है। भगवान् श्रीकृष्णने इस पुराणमें अपने सम्पूर्ण ब्रह्मभावको विवृत (प्रकट) किया है, इसीलिये पुराणवेत्ता महर्षि इसे ब्रह्मवैवर्त कहते हैं। पूर्वकालमें निरामय गोलोकके भीतर परमात्मा श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको इस पुराण-सूत्रका दान दिया था। फिर ब्रह्माजीने महान् तीर्थ पुष्करमें धर्मको इसका उपदेश दिया। धर्मने अपने पुत्र नारायणको प्रसन्नतापूर्वक यह पुराण प्रदान किया। भगवान् नारायण ऋषिने नारदको और नारदजीने गङ्गाजीके तटपर व्यासदेवको इसका उपदेश दिया। व्यासजीने उस पुराणसूत्रको विस्तार करके उसे अत्यन्त विशाल रूप देकर पुण्यदायक सिद्धक्षेत्रमें मुझे सुनाया। यह पुराण बड़ा ही मनोहर है। ब्रह्मन्! अब मैं आपके सामने इसकी कथा आरम्भ करता हूँ। आप इस सम्पूर्ण पुराणको सुनें। व्यासजीने इस पुराणको अठारह हजार श्लोकोंमें विस्तृत किया है। सम्पूर्ण पुराणोंके श्रवणसे मनुष्यको जो फल प्राप्त होता है, वह निश्चय ही इसके एक अध्यायको सुननेसे मिल जाता है।

(अध्याय १)

परमात्माके महान् उज्ज्वल तेजःपुञ्ज, गोलोक, वैकुण्ठलोक और शिवलोककी स्थितिका वर्णन तथा गोलोकमें श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णके परात्पर स्वरूपका निरूपण

शौनकजीने पूछा—सूतनन्दन! आपने कौन-सा परम अद्भुत, अपूर्व और अभीष्ट पुराण सुना है, वह सब विस्तारपूर्वक कहिये। पहले परम उत्तम ब्रह्मखण्डकी कथा सुनाइये।

सौतिने कहा—मैं सर्वप्रथम अमित तेजस्वी गुरुदेव व्यासजीके चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ। तत्पश्चात् श्रीहरिको, सम्पूर्ण देवताओंको और ब्राह्मणोंको प्रणाम करके सनातन धर्मोंका वर्णन आरम्भ करता हूँ। मैंने व्यासजीके मुखसे जिस सर्वोत्तम ब्रह्मखण्डको सुना है, वह अज्ञानान्धकारका विनाशक और ज्ञानमार्गका प्रकाशक है। ब्रह्मन्! पूर्ववर्ती प्रलयकालमें केवल ज्योतिःपुञ्ज प्रकाशित होता था, जिसकी प्रभा करोड़ों सूर्योंके समान थी। वह ज्योतिर्मण्डल नित्य है और वही असंख्य विश्वका कारण है। वह स्वेच्छामय रूपधारी सर्वव्यापी परमात्माका परम उज्ज्वल तेज है। उस तेजके भीतर मनोहर रूपमें तीनों ही लोक विद्यमान हैं। विप्रवर! तीनों लोकोंके ऊपर गोलोक-धाम है, जो परमेश्वरके समान ही नित्य है। उसकी लम्बाई-चौड़ाई तीन करोड़ योजन है। वह सब ओर मण्डलाकार फैला हुआ है। परम महान् तेज ही उसका स्वरूप है। उस चिन्मय लोककी भूमि दिव्य रत्नमयी है। योगियोंको स्वप्नमें भी उसका दर्शन नहीं होता। परंतु वैष्णव भक्तजन भगवान्‌की कृपासे उसको प्रत्यक्ष देखते और वहाँ जाते हैं। अप्राकृत

आकाश अथवा परम व्योममें स्थित हुए उस श्रेष्ठ धामको परमात्माने अपनी योगशक्तिसे धारण कर रखा है। वहाँ आधि, व्याधि, जरा, मृत्यु तथा शोक और भयका प्रवेश नहीं है। उच्चकोटिके दिव्य रत्नोंद्वारा रचित असंख्य भवन सब ओरसे उस लोककी शोभा बढ़ाते हैं। प्रलयकालमें वहाँ केवल श्रीकृष्ण रहते हैं और सृष्टिकालमें वह गोप-गोपियोंसे भरा रहता है। गोलोकसे नीचे पचास करोड़ योजन दूर दक्षिणभागमें वैकुण्ठ और वामभागमें शिवलोक है। ये दोनों लोक भी गोलोकके समान ही परम मनोहर हैं। मण्डलाकार वैकुण्ठलोकका विस्तार एक करोड़ योजन है। वहाँ भगवती लक्ष्मी और भगवान् नारायण सदा विराजमान रहते हैं। उनके साथ उनके चार भुजावाले पार्षद भी रहते हैं। वैकुण्ठलोक भी जरा-मृत्यु आदिसे रहित है। उसके वामभागमें शिवलोक है, जिसका विस्तार एक करोड़ योजन है। वहाँ पार्षदोंसहित भगवान् शिव विराजमान हैं। गोलोकके भीतर अत्यन्त मनोहर ज्योति है, जो परम आह्लादजनक तथा नित्य परमानन्दकी प्राप्तिका कारण है। योगीजन योग एवं ज्ञानदृष्टिसे सदा उसीका चिन्तन करते हैं। वह ज्योति ही परमानन्ददायक, निराकार एवं परात्पर ब्रह्म है। उस ब्रह्म-ज्योतिके भीतर अत्यन्त मनोहर रूप सुशोभित होता है, जो नूतन जलधरके समान श्याम है। उसके नेत्र लाल कमलके समान प्रफुल्ल दिखायी देते हैं। उसका निर्मल मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाला है। उसके रूप-लावण्यपर करोड़ों कामदेव निछावर किये जा सकते हैं। वह मनोहर रूप विविध लीलाओंका धाम है। उसके दो भुजाएँ हैं। एक हाथमें मुरली सुशोभित है। अधरोंपर मन्द मुसकान खेलती रहती है। उसके श्रीअङ्ग दिव्य रेशमी पीताम्बरसे आवृत हैं। सुन्दर रत्नमय आभूषणोंके समुदाय उसके अलङ्कार हैं। वह भक्तवत्सल है। उसके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित तथा कस्तूरी और कुङ्कुमसे अलङ्कृत हैं। उसका श्रीवत्सभूषित वक्षःस्थल कान्तिमान्

कौस्तुभसे प्रकाशित है। मस्तकपर उत्तम रत्नोंके सार-तत्त्वसे रचित किरीट-मुकुट जगमगाते रहते हैं। वह श्याम-सुन्दर पुरुष रत्नमय सिंहासनपर आसीन है और आजानुलम्बिनी वनमाला उसकी शोभा बढ़ाती है। उसीको परब्रह्म परमात्मा एवं सनातन भगवान् कहते हैं। वे भगवान् स्वेच्छामय रूपधारी, सबके आदिकारण, सर्वाधार तथा परात्पर परमात्मा हैं। उनकी नित्य किशोरावस्था रहती है। वे सदा गोप-वेष धारण करते हैं। करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न हैं तथा अपने भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आकुल रहते हैं। वे ही निरीह, निर्विकार, परिपूर्णतम तथा सर्वव्यापी परमेश्वर हैं तथा वे ही रासमण्डलमें विराजमान, शान्तचित्त, परम मनोहर रासेश्वर हैं; मङ्गलकारी, मङ्गल-योग्य, मङ्गलमय तथा मङ्गलदाता हैं; परमानन्दके बीज, सत्य, अक्षर और अविनाशी

हैं; सम्पूर्ण सिद्धियोंके स्वामी, सर्वसिद्धिस्वरूप तथा सिद्धिदाता हैं; प्रकृतिसे परे विराजमान, ईश्वर, निर्गुण, नित्य-विग्रह, आदिपुरुष और अव्यक्त हैं। बहुत-से नामोंद्वारा उन्हींको पुकारा जाता है। बहुसंख्यक पुरुषोंने विविध स्तोत्रोंद्वारा उन्हींका स्तवन किया है। वे सत्य, स्वतन्त्र, एक, परमात्मस्वरूप, शान्त तथा सबके परम आश्रय हैं। शान्तचित्त वैष्णवजन उन्हींका ध्यान करते हैं। ऐसा उत्कृष्ट रूप धारण करनेवाले उन एकमात्र भगवान्‌ने प्रलयकालमें दिशाओं और आकाशके साथ सम्पूर्ण विश्वको शून्यरूप देखा। (अध्याय २)

श्रीकृष्णसे सृष्टिका आरम्भ, नारायण, महादेव, ब्रह्मा, धर्म, सरस्वती, महालक्ष्मी और प्रकृति (दुर्गा)-का प्रादुर्भाव तथा इन सबके द्वारा पृथक्-पृथक् श्रीकृष्णका स्तवन

सौति कहते हैं—भगवान्‌ने देखा कि सम्पूर्ण विश्व शून्यमय है। कहीं कोई जीव-जन्तु नहीं है। जलका भी कहीं पता नहीं है। सारा आकाश वायुसे रहित और अन्धकारसे आवृत हो घोर प्रतीत होता है। वृक्ष, पर्वत और समुद्र आदिसे शून्य होनेके कारण विकृताकार जान पड़ता है। मूर्ति, धातु, शस्य और तृणका सर्वथा अभाव हो गया है। ब्रह्मन्! जगत्‌को इस शून्यावस्थामें देख मन-ही-मन सब बातोंकी आलोचना करके दूसरे किसी सहायकसे रहित एकमात्र स्वेच्छामय प्रभुने स्वेच्छासे ही सृष्टि-रचना आरम्भ की। सबसे पहले उन परम पुरुष श्रीकृष्णके दक्षिणपार्श्वसे जगत्‌के कारणरूप तीन मूर्तिमान् गुण प्रकट हुए। उन गुणोंसे महत्तत्त्व, अहङ्कार, पाँच तन्मात्राएँ तथा रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द—ये पाँच विषय क्रमशः प्रकट हुए। तदनन्तर श्रीकृष्णसे साक्षात् भगवान् नारायणका प्रादुर्भाव हुआ, जिनकी अङ्गकान्ति श्याम थी, वे नित्य-तरुण, पीताम्बरधारी तथा वनमालासे विभूषित थे। उनके चार भुजाएँ थीं। उन्होंने अपने चार हाथोंमें क्रमशः—शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण कर रखे थे। उनके मुखारविन्दपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे, शार्ङ्गधनुष धारण किये हुए थे। कौस्तुभमणि उनके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ाती थी। श्रीवत्सभूषित वक्षमें साक्षात् लक्ष्मीका निवास था। वे श्रीनिधि अपूर्व शोभाको प्रकट कर रहे थे; शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी प्रभासे सेवित मुख-चन्द्रके कारण वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। कामदेवकी कान्तिसे युक्त रूप-लावण्य उनका सौन्दर्य बढ़ा रहा था। वे श्रीकृष्णके सामने खड़े हो दोनों हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

नारायण बोले—जो वर (श्रेष्ठ), वरेण्य (सत्पुरुषोंद्वारा पूज्य), वरदायक (वर देनेवाले) और वरकी प्राप्तिके कारण हैं; जो कारणोंके भी कारण, कर्मस्वरूप और उस कर्मके भी कारण हैं; तप जिनका स्वरूप है, जो नित्य-निरन्तर तपस्याका फल प्रदान करते हैं, तपस्वीजनोंमें सर्वोत्तम तपस्वी हैं, नूतन जलधरके समान श्याम, स्वात्माराम और मनोहर हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। जो निष्काम और कामरूप हैं, कामनाके नाशक तथा कामदेवकी उत्पत्तिके कारण हैं, जो सर्वरूप, सर्वबीजस्वरूप, सर्वोत्तम

एवं सर्वेश्वर हैं, वेद जिनका स्वरूप है, जो वेदोंके बीज, वेदोक्त फलके दाता और फलरूप हैं, वेदोंके ज्ञाता, उसके विधानको जाननेवाले तथा सम्पूर्ण वेदवेत्ताओंके शिरोमणि हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।*

ऐसा कहकर वे नारायणदेव भक्तिभावसे युक्त हो उनकी आज्ञासे उन परमात्माके सामने रमणीय रत्नमय सिंहासनपर विराज गये। जो पुरुष प्रतिदिन एकाग्रचित्त हो तीनों संध्याओंके समय नारायणद्वारा किये गये इस स्तोत्रको सुनता और पढ़ता है, वह निष्पाप हो जाता है। उसे यदि पुत्रकी इच्छा हो तो पुत्र मिलता है और भार्याकी इच्छा हो तो प्यारी भार्या प्राप्त होती है। जो अपने राज्यसे भ्रष्ट हो गया है, वह इस स्तोत्रके पाठसे पुनः राज्य प्राप्त कर लेता है तथा धनसे वञ्चित हुए पुरुषको धनकी प्राप्ति हो जाती है। कारागारके भीतर विपत्तिमें पड़ा हुआ मनुष्य यदि इस स्तोत्रका पाठ करे तो निश्चय ही संकटसे मुक्त हो जाता है। एक वर्षतक इसका संयमपूर्वक श्रवण करनेसे रोगी अपने रोगसे छुटकारा पा जाता है।

सौति कहते हैं—शौनकजी! तत्पश्चात् परमात्मा श्रीकृष्णके वामपार्श्वसे भगवान् शिव प्रकट हुए। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान निर्मल एवं उज्ज्वल थी। उनके पाँच मुख थे और दिशाएँ ही उनके लिये वस्त्र थीं। उन्होंने मस्तकपर तपाये हुए सुवर्णके समान पीले रंगकी जटाओंका भार धारण कर रखा था। उनका मुख मन्द-मन्द मुसकानसे प्रसन्न दिखायी देता था। उनके प्रत्येक मस्तकमें तीन-तीन नेत्र थे। उनके सिरपर चन्द्राकार मुकुट शोभा पाता था। परमेश्वर शिवने हाथोंमें त्रिशूल, पट्टिश और जपमाला ले रखी थी। वे सिद्ध तो हैं ही, सम्पूर्ण सिद्धोंके ईश्वर भी हैं। योगियोंके गुरुके भी गुरु हैं। मृत्युकी भी मृत्यु हैं, मृत्युके ईश्वर हैं, मृत्युस्वरूप हैं और मृत्युपर विजय पानेवाले मृत्युञ्जय हैं। वे ज्ञानानन्दरूप, महाज्ञानी, महान् ज्ञानदाता तथा सबसे श्रेष्ठ हैं। पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभासे धुले हुए-से गौरवर्ण शिवका दर्शन सुखपूर्वक होता है। उनकी आकृति मनको मोह लेती है। ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान भगवान् शिव वैष्णवोंके शिरोमणि हैं। प्रकट होनेके पश्चात् श्रीकृष्णके सामने खड़े हो भगवान् शिवने भी हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। उस समय उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था। नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे और उनकी वाणी अत्यन्त गद्गद हो रही थी।

महादेवजी बोले—जो जयके मूर्तिमान् रूप, जय देनेवाले, जय देनेमें समर्थ, जयकी प्राप्तिके कारण तथा विजयदाताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं, उन अपराजित देवता भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। सम्पूर्ण विश्व जिनका रूप है, जो विश्वके ईश्वरोंके भी ईश्वर हैं, विश्वेश्वर, विश्वकारण, विश्वाधार, विश्वके विश्वासभाजन तथा विश्वके कारणोंके भी कारण हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। जो जगत्‌की रक्षाके कारण, जगत्‌के संहारक तथा जगत्‌की सृष्टि करनेवाले परमेश्वर हैं; फलके बीज, फलके आधार, फलरूप और फलदाता

* वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्। कारणं कारणानां च कर्म तत्कर्मकारकम्॥
तपस्तत्फलदं शश्वत् तपस्विनां च तापसम्। वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम्॥
निष्कामं कामरूपं च कामघ्नं कामकारणम्। सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम्॥
वेदरूपं वेदबीजं वेदोक्तफलदं फलम्। वेदज्ञं तद्विधानं च सर्ववेदविदां वरम्॥
(ब्रह्मखण्ड ३। १०—१३)

हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेजःस्वरूप, तेजके दाता और सम्पूर्ण तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ हैं, उन भगवान् गोविन्दकी मैं वन्दना करता हूँ।*

ऐसा कहकर महादेवजीने भगवान् श्रीकृष्णको मस्तक झुकाया और उनकी आज्ञासे श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर नारायणके साथ वार्तालाप करते हुए बैठ गये। जो मनुष्य भगवान् शिवद्वारा किये गये इस स्तोत्रका संयतचित्त होकर पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण सिद्धियाँ मिल जाती हैं और पग-पगपर विजय प्राप्त होती है। उसके मित्र, धन और ऐश्वर्यकी सदा वृद्धि होती है तथा शत्रुसमूह, दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

सौति कहते हैं—तत्पश्चात् श्रीकृष्णके नाभि-कमलसे बड़े-बूढ़े महातपस्वी ब्रह्माजी प्रकट हुए। उन्होंने अपने हाथमें कमण्डलु ले रखा था। उनके वस्त्र, दाँत और केश सभी सफेद थे। चार मुख थे। वे ब्रह्माजी योगियोंके ईश्वर, शिल्पियोंके स्वामी तथा सबके जन्मदाता गुरु हैं। तपस्याके फल देनेवाले और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके जन्मदाता हैं। वे ही स्रष्टा और विधाता हैं तथा समस्त कर्मोंके कर्ता, धर्ता एवं संहर्ता हैं। चारों वेदोंको वे ही धारण करते हैं। वे वेदोंके ज्ञाता, वेदोंको प्रकट करनेवाले और उनके पति (पालक) हैं। उनका शील-स्वभाव सुन्दर है। वे सरस्वतीके कान्त, शान्तचित्त और कृपाकी निधि हैं। उन्होंने श्रीकृष्णके सामने खड़े हो दोनों हाथ जोड़कर उनका स्तवन किया। उस समय उनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था तथा उनकी ग्रीवा भगवान्‌के सामने भक्तिभावसे झुकी हुई थी।

ब्रह्माजी बोले—जो तीनों गुणोंसे अतीत और एकमात्र अविनाशी परमेश्वर हैं, जिनमें कभी कोई विकार नहीं होता, जो अव्यक्त और व्यक्तरूप हैं तथा गोप-वेष धारण करते हैं, उन गोविन्द श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ। जिनकी नित्य किशोरावस्था है, जो सदा शान्त रहते हैं, जिनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेवोंसे भी अधिक है तथा जो नूतन जलधरके समान श्यामवर्ण हैं, उन परम मनोहर गोपीवल्लभको मैं प्रणाम करता हूँ। जो वृन्दावनके भीतर रासमण्डलमें विराजमान होते हैं, रासलीलामें जिनका निवास है तथा जो रासजनित उल्लासके लिये सदा उत्सुक रहते हैं, उन रासेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ।†

ऐसा कहकर ब्रह्माजीने भगवान् श्रीकृष्णके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी आज्ञासे नारायण तथा महादेवजीके साथ सम्भाषण करते हुए श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बैठे। जो प्रातःकाल उठकर ब्रह्माजीके द्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं और बुरे सपने अच्छे सपनोंमें बदल जाते हैं। भगवान् गोविन्दमें भक्ति होती है, जो पुत्रों और पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाली है। इस स्तोत्रका पाठ करनेसे अपयश नष्ट होता है और चिरकालतक सुयश बढ़ता रहता है।

* जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानां च वन्दे तमपराजितम्॥
विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्। विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां परम्। (ब्रह्मखण्ड ३। २३—२६)

† कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम्। अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेषविधायिनम्॥
किशोरवयसं शान्तं गोपीकान्तं मनोहरम्। नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम्। रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम्॥
(ब्रह्मखण्ड ३। ३५—३७)

सौति कहते हैं—तत्पश्चात् परमात्मा श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे कोई एक पुरुष प्रकट हुआ, जिसके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। उसकी अङ्गकान्ति श्वेत वर्णकी थी और उसने अपने मस्तकपर जटा धारण कर रखी थी। वह सबका साक्षी, सर्वज्ञ तथा सबके समस्त कर्मोंका द्रष्टा था। उसका सर्वत्र समभाव था। उसके हृदयमें सबके प्रति दया भरी थी। वह हिंसा और क्रोधसे सर्वथा अछूता था। उसे धर्मका ज्ञान था। वह धर्मस्वरूप, धर्मिष्ठ तथा धर्म प्रदान करनेवाला था। वही धर्मात्माओंमें 'धर्म' नामसे विख्यात है। परमात्मा श्रीकृष्णकी कलासे उसका प्रादुर्भाव हुआ है, श्रीकृष्णके सामने खड़े हुए उस पुरुषने पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर प्रणाम किया और सम्पूर्ण कामनाओंके दाता उन सर्वेश्वर परमात्माका स्तवन आरम्भ किया।

धर्म बोले—जो सबको अपनी ओर आकृष्ट करनेवाले सच्चिदानन्दस्वरूप हैं, इसलिये 'कृष्ण' कहलाते हैं, सर्वव्यापी होनेके कारण जिनकी 'विष्णु' संज्ञा है, सबके भीतर निवास करनेसे जिनका नाम 'वासुदेव' है, जो 'परमात्मा' एवं 'ईश्वर' हैं, 'गोविन्द', 'परमानन्द', 'एक', 'अक्षर', 'अच्युत', 'गोपेश्वर', 'गोपीश्वर', 'गोप', 'गोरक्षक', 'विभु', 'गौओंके स्वामी', 'गोष्ठनिवासी', 'गोवत्स-पुच्छधारी', 'गोपों और गोपियोंके मध्य विराजमान', 'प्रधान', 'पुरुषोत्तम', 'नवघनश्याम', 'रासवास' और 'मनोहर' आदि नाम धारण करते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।

ऐसा कहकर धर्म उठकर खड़े हुए। फिर वे भगवान्‌की आज्ञासे ब्रह्मा, विष्णु और महादेवजीके साथ वार्तालाप करके उस श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बैठे। जो मनुष्य प्रातःकाल उठकर धर्मके मुखसे निकले हुए इन चौबीस नामोंका पाठ करता है, वह सर्वथा सुखी और सर्वत्र विजयी होता है। मृत्युके समय उसके मुखसे निश्चय ही हरि-नामका उच्चारण होता है। अतः वह अन्तमें श्रीहरिके परम धाममें जाता है तथा उसे श्रीहरिकी अविचल दास्य-भक्ति प्राप्त होती है। उसके द्वारा सदा धर्मविषयक ही चेष्टा होती है। अधर्ममें उसका मन कभी नहीं लगता। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूपी फल सदाके लिये उसके हाथमें आ जाता है। उसे देखते ही सारे पाप, सम्पूर्ण भय तथा समस्त दुःख उसी तरह भयसे भाग जाते हैं, जैसे गरुड़पर दृष्टि पड़ते ही सर्प पलायन कर जाते हैं।

सौति कहते हैं—तत्पश्चात् धर्मके वामपार्श्वसे एक रूपवती कन्या प्रकट हुई, जो साक्षात् दूसरी लक्ष्मीके समान सुन्दरी थी। वह 'मूर्ति' नामसे विख्यात हुई। तदनन्तर परमात्मा श्रीकृष्णके मुखसे एक शुक्ल वर्णवाली देवी प्रकट हुई, जो वीणा और पुस्तक धारण करनेवाली थी। वह करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न थी। उसके नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंका सौन्दर्य धारण करते थे। उसने अग्निमें शुद्ध किये गये उज्ज्वल वस्त्र धारण कर रखे थे और वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके मुखपर मन्द-मन्द मुस्कराहट छा रही थी। दन्तपंक्ति बड़ी सुन्दर दिखायी देती थी। अवस्था सोलह वर्षकी थी। वह सुन्दरियोंमें भी श्रेष्ठ सुन्दरी थी। श्रुतियों, शास्त्रों और विद्वानोंकी परम जननी थी। वह वाणीकी अधिष्ठात्री, कवियोंकी इष्टदेवी, शुद्ध सत्त्वस्वरूपा और शान्तरूपिणी सरस्वती थी। गोविन्दके सामने खड़ी होकर पहले तो उसने वीणावादनके साथ उनके नाम और गुणोंका सुन्दर कीर्तन किया, फिर वह नृत्य करने लगी। श्रीहरिने प्रत्येक कल्पके युग-युगमें जो-जो लीलाएँ की हैं, उन सबका गान करते हुए सरस्वतीने हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की।

सरस्वती बोलीं—'जो रासमण्डलके मध्य-भागमें विराजमान हैं, रासोल्लासके लिये सदा

उत्सुक रहनेवाले हैं, रत्नसिंहासनपर आसीन हैं, रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं, रासेश्वर एवं श्रेष्ठ रासकर्ता हैं, रासेश्वरी राधाके प्राणवल्लभ हैं, रासके अधिष्ठाता देवता हैं तथा रासलीलाद्वारा मनोविनोद करनेवाले हैं, उन भगवान् गोविन्दकी मैं वन्दना करती हूँ। जो रासलीलाजनित श्रमसे थक गये हैं, प्रत्येक रासमें विहार करनेवाले हैं तथा रासके लिये उत्कण्ठित हुई गोपियोंके प्राणवल्लभ हैं, उन शान्त मनोहर श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करती हूँ।'

यों कहकर प्रसन्न मुखवाली सती सरस्वतीने भगवान्‌को प्रणाम किया और सफलमनोरथ हो उनकी आज्ञासे वे श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बैठीं। जो प्रातःकाल उठकर वाणीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सदा बुद्धिमान्, धनवान्, विद्वान् और पुत्रवान् होता है।

सौति कहते हैं—तत्पश्चात् परमात्मा श्रीकृष्णके मनसे एक गौरवर्णा देवी प्रकट हुई, जो रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बरकी साड़ी शोभा पा रही थी। मुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। वे नवयौवना देवी सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिष्ठात्री थीं। वे ही फलरूपसे सम्पूर्ण सम्पत्तियाँ प्रदान करती हैं। स्वर्गलोकमें उन्हींको स्वर्गलक्ष्मी कहते हैं तथा राजाओंके यहाँ वे ही राजलक्ष्मी कहलाती हैं। श्रीहरिके सामने खड़ी होकर उन साध्वी लक्ष्मीने उन्हें हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उनकी ग्रीवा भक्तिभावसे झुक गयी और उन्होंने उन परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन किया।

महालक्ष्मी बोलीं—'जो सत्यस्वरूप, सत्यके स्वामी और सत्यके बीज हैं, सत्यके आधार, सत्यके ज्ञाता तथा सत्यके मूल हैं, उन सनातन देव श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करती हूँ।'

यों कह श्रीहरिको मस्तक नवाकर तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली लक्ष्मीदेवी दसों दिशाओंको प्रकाशित करती हुई सुखासनपर बैठ गयीं।

तदनन्तर परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिसे सबकी अधिष्ठात्री देवी ईश्वरी मूलप्रकृतिका प्रादुर्भाव हुआ। तपाये काञ्चनकी-सी कान्तिवाली वे देवी अपनी प्रभासे करोड़ों सूर्योंका तिरस्कार कर रही थीं। उनका मुख मन्द-मन्द मुस्कराहटसे प्रसन्न दिखायी देता था। नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको मानो छीन लेते थे। उनके श्रीअङ्गोंपर लाल रंगकी साड़ी शोभा पाती थी। वे रत्नमय आभरणोंसे विभूषित थीं। निद्रा, तृष्णा, क्षुधा, पिपासा, दया, श्रद्धा और क्षमा आदि जो देवियाँ हैं, उन सबकी तथा समस्त शक्तियोंकी वे ईश्वरी और अधिष्ठात्री देवी हैं। उनके सौ भुजाएँ हैं। वे दर्शनमात्रसे भय उत्पन्न करती हैं। उन्हींको दुर्गतिनाशिनी दुर्गा कहा गया है। वे परमात्मा श्रीकृष्णकी शक्तिरूपा तथा तीनों लोकोंकी परा जननी हैं। त्रिशूल, शक्ति, शार्ङ्गधनुष, खड्ग, बाण, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, अक्षमाला, कमण्डलु, वज्र, अङ्कुश, पाश, भुशुण्डि, दण्ड, तोमर, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, पार्जन्यास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र तथा गान्धर्वास्त्र—इन सबको हाथोंमें धारण किये श्रीकृष्णके सामने खड़ी हो, प्रकृति देवीने प्रसन्नतापूर्वक उनका स्तवन किया।

प्रकृति बोलीं—प्रभो! मैं प्रकृति, ईश्वरी, सर्वेश्वरी, सर्वरूपिणी और सर्वशक्तिस्वरूपा कहलाती हूँ। मेरी शक्तिसे ही यह जगत् शक्तिमान् है तथापि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ; क्योंकि आपने मेरी सृष्टि की है, अतः आप ही तीनों लोकोंके पति, गति, पालक, स्रष्टा, संहारक तथा पुनः सृष्टि करनेवाले हैं। परमानन्द ही आपका स्वरूप है। मैं सानन्द आपकी वन्दना करती हूँ। प्रभो! आप चाहें तो पलक मारते-मारते ब्रह्माका भी पतन हो सकता है। जो भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे करोड़ों विष्णुओंकी सृष्टि कर सकता है, ऐसे आपके अनुपम प्रभावका

वर्णन करनेमें कौन समर्थ है? आप तीनों लोकोंके चराचर प्राणियों, ब्रह्मा आदि देवताओं तथा मुझ-जैसी कितनी ही देवियोंको खेल-खेलमें ही सृष्टि कर सकते हैं। आप परिपूर्णतम परमात्मा हैं। भलीभाँति स्तुतिके योग्य हैं। विभो! मैं आपकी सानन्द वन्दना करती हूँ। असंख्य विश्वका आश्रयभूत महान् विराट् पुरुष जिनकी कलाका अंशमात्र है, उन परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको मैं आनन्दपूर्वक प्रणाम करती हूँ। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, सम्पूर्ण वेद, मैं और सरस्वती—ये सब जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं तथा जो प्रकृतिसे परे हैं, उन आप परमेश्वरको मैं नमस्कार करती हूँ। वेद तथा श्रेष्ठ विद्वान् लक्षण बताते हुए आपकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं। भला जो निर्लक्ष्य हैं उनकी स्तुति कौन कर सकता है? ऐसे आप निरीह परमात्माको मैं प्रणाम करती हूँ।

ऐसा कहकर दुर्गादेवी श्रीकृष्णको प्रणाम करके उनकी आज्ञासे श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बैठ गयीं। जो पूजाकालमें दुर्गाद्वारा किये गये परमात्मा श्रीकृष्णके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह सर्वत्र विजयी और सुखी होता है। दुर्गा-देवी उसका घर छोड़कर कभी नहीं जाती हैं। वह भवसागरमें रहकर भी अपने सुयशसे प्रकाशित होता रहता है और अन्तमें श्रीहरिके परम धामको जाता है। (अध्याय ३)

सावित्री, कामदेव, रति, अग्नि, अग्निदेव, जल, वरुणदेव, स्वाहा, वरुणानी, वायुदेव, वायवीदेवी तथा मेदिनीके प्राकट्यका वर्णन

सौति कहते हैं—शौनकजी! तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी जिह्वाके अग्रभागसे शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल वर्णवाली एक मनोहारिणी देवीका प्रादुर्भाव हुआ, जो सफेद साड़ी पहने हुए सब प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थीं और हाथमें जपमाला लिये हुए थीं। उन्हें सावित्री कहा गया है। साध्वी सावित्रीने सामने खड़ी हो हाथ जोड़ भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर सनातन परब्रह्म श्रीकृष्णका स्तवन आरम्भ किया।

सावित्री बोलीं—भगवन्! आप सबके बीज (आदिकारण) हैं। सनातन ब्रह्म-ज्योति हैं। परात्पर, निर्विकार एवं निरञ्जन ब्रह्म हैं। आप श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करती हूँ।

यों कह मन्द-मन्द मुस्कराती हुई वेदमाता सावित्रीदेवी श्रीहरिको पुनः प्रणाम करके श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर आसीन हुईं। तत्पश्चात् परमात्मा श्रीकृष्णके मानससे एक पुरुष प्रकट हुआ, जो तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमान् था। वह पाँच बाणोंद्वारा समस्त कामियोंके मनको मथ डालता है, इसलिये मनीषी पुरुष उसका नाम 'मन्मथ' कहते हैं। उस कामदेवके वामपार्श्वसे एक श्रेष्ठ कामिनी उत्पन्न हुई, जो परम सुन्दरी और सबके मनको मोह लेनेवाली थी। मन्द-मन्द मुस्कराती हुई उस सतीको देखकर समस्त प्राणियोंकी उसमें रति हो गयी! इसीलिये मनीषी पुरुषोंने उसका नाम 'रति' रख दिया। पाँच बाण और पुष्पमय धनुष धारण करनेवाले कामदेव श्रीहरिके सामने खड़े हो उनकी स्तुति करके आज्ञा पाकर रतिके साथ रमणीय रत्नमय सिंहासनपर बैठे। मारण, स्तम्भन, जृम्भन, शोषण और उन्मादन—ये कामदेवके पाँच बाण हैं। उन्हींको वे धारण करते हैं। अपने बाणोंकी परीक्षा करनेके लिये कामदेवने बारी-बारीसे वे सभी बाण चलाये। फिर तो ईश्वरकी इच्छासे सब लोग कामके वशीभूत हो गये। कामपरवश स्खलित महायोगी ब्रह्माजीका वीर्य अग्निके रूपमें उद्दीप्त हो उठा। वे देवेश्वर

अग्निदेव बड़ी-बड़ी लपटें उठाते हुए करोड़ों ताड़ोंके समान विशाल रूप धारण करके प्रज्वलित होने लगे। उस अग्निको बढ़ते देख श्रीकृष्णने लीलापूर्वक 'जल' की रचना की। वे अपने मुखसे निःश्वास वायुके साथ जलकी एक-एक बूँद गिराने लगे। मुखसे निकले हुए उस बिन्दुमात्र जलने सम्पूर्ण विश्वको आप्लावित कर दिया। उसके किञ्चित् कणमात्र जलने उस प्रज्वलित अग्निको शान्त कर दिया। तभीसे जलके द्वारा आग बुझने लगी। तत्पश्चात् वहाँ एक पुरुषका प्रादुर्भाव हुआ, जो उस अग्निके अधिदेवता थे। फिर पूर्वोक्त जलसे एक पुरुषका उत्थान हुआ, जिनका नाम 'वरुण' हुआ। वे ही जलके अधिष्ठाता देवता और समस्त जल-जन्तुओंके स्वामी हुए। इसके बाद उस अग्निदेवके वामपार्श्वसे एक कन्याका आविर्भाव हुआ, जिसका नाम 'स्वाहा' था। मनीषी पुरुष उसे अग्निकी पत्नी कहते हैं। जलेश्वर वरुणके वामपार्श्वसे भी एक कन्या प्रकट हुई, जो 'वरुणानी' के नामसे विख्यात थी। वही वरुणकी सती साध्वी प्रिया हुई। भगवान् श्रीकृष्णकी निःश्वास वायुसे श्रीमान् 'पवन' का प्रादुर्भाव हुआ, जो समस्त देहधारियोंके प्राण हैं। श्वास-प्रश्वासके रूपमें उन्हींकी कला प्रकट हुई है। वायुदेवके वामपार्श्वसे एक कन्या प्रकट हुई, जो वायुपत्नी 'वायवी' देवी कही गयी है।

श्रीकृष्णका शुक्र जलमें गिरा। वह एक हजार वर्षके बाद एक अंडेके रूपमें प्रकट हुआ। उसीसे महान् विराट् पुरुषकी उत्पत्ति हुई, जो सम्पूर्ण विश्वके आधार हैं। उन विराट् पुरुषके एक-एक रोम-कूपमें एक-एक ब्रह्माण्डकी स्थिति है। वे स्थूलसे भी स्थूलतम हैं। उनसे बड़ा दूसरा कोई नहीं है। वे परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंश हैं। उन्हींको 'महाविष्णु' जानना चाहिये। वे ही सबके सनातन आधार हैं। जैसे जलमें कमलका पत्ता रहता है, उसी प्रकार वे महार्णवके जलमें शयन करते हैं। उनके शयन करते समय कानोंके मलसे दो दैत्य प्रकट हुए। वे दोनों जलसे उठकर ब्रह्माजीको मार डालनेके लिये उद्यत हो गये। तब भगवान् नारायणने उन दोनोंको अपने जघन-देशमें सुलाकर चक्रसे काट डाला। उन दोनोंके सम्पूर्ण मेदेसे यह सारी पृथ्वी निर्मित हुई, जिससे इसका नाम 'मेदिनी' हुआ। उसीपर सम्पूर्ण विश्वकी स्थिति है। उसकी अधिष्ठात्री देवीका नाम 'वसुन्धरा' है। (अध्याय ४)

ब्राह्म आदि कल्पोंका परिचय, गोलोकमें श्रीकृष्णका नारायण आदिके साथ रासमण्डलमें निवास, श्रीकृष्णके वामपार्श्वसे श्रीराधाका प्रादुर्भाव; राधाके रोमकूपोंसे गोपाङ्गनाओंका प्राकट्य तथा श्रीकृष्णसे गोपों, गौओं, बलीवर्दों, हंसों, श्वेत घोड़ों और सिंहोंकी उत्पत्ति; श्रीकृष्णद्वारा पाँच रथोंका निर्माण तथा पार्षदोंका प्राकट्य; भैरव, ईशान और डाकिनी आदिकी उत्पत्ति

महर्षि शौनकके पूछनेपर सौति कहते हैं—ब्रह्मन्! मैंने सबसे पहले ब्रह्मकल्पके चरित्रका वर्णन किया है। अब वाराहकल्प और पाद्मकल्प—इन दोनोंका वर्णन करूँगा, सुनिये। मुने! ब्राह्म, वाराह और पाद्म—ये तीन प्रकारके कल्प हैं; जो क्रमशः प्रकट होते हैं। जैसे सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—ये चारों युग क्रमसे कहे गये हैं, वैसे ही ये कल्प भी हैं। तीन सौ साठ युगोंका एक दिव्य युग माना गया है। इकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। चौदह मनुओंके व्यतीत हो जानेपर ब्रह्माजीका एक दिन होता है। ऐसे तीन सौ साठ

दिनोंके बीतनेपर ब्रह्माजीका एक वर्ष पूरा होता है। इस तरहके एक सौ आठ वर्षोंकी विधाताकी आयु बतायी गयी है। यह परमात्मा श्रीकृष्णका एक निमेषकाल है। कालवेत्ता विद्वानोंने ब्रह्माजीकी आयुके बराबर कल्पका मान निश्चित किया है। छोटे-छोटे कल्प बहुत-से हैं, जो संवर्त आदिके नामसे विख्यात हैं। महर्षि मार्कण्डेय सात कल्पोंतक जीनेवाले बताये गये हैं; परंतु वह कल्प ब्रह्माजीके एक दिनके बराबर ही बताया गया है। तात्पर्य यह कि मार्कण्डेय मुनिकी आयु ब्रह्माजीके सात दिनमें ही पूरी हो जाती है, ऐसा निश्चय किया गया है। ब्राह्म, वाराह और पाद्म—ये तीन महाकल्प कहे गये हैं। इनमें जिस प्रकार सृष्टि होती है, वह बताता हूँ, सुनिये। ब्राह्मकल्पमें मधु-कैटभके मेदसे मेदिनीकी सृष्टि करके स्रष्टाने भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा ले सृष्टि-रचना की थी। फिर वाराहकल्पमें जब पृथ्वी एकार्णवके जलमें डूब गयी थी, वाराहरूपधारी भगवान् विष्णुके द्वारा अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक रसातलसे उसका उद्धार करवाया और सृष्टि-रचना की; तत्पश्चात् पाद्मकल्पमें सृष्टिकर्ता ब्रह्माने विष्णुके नाभिकमलपर सृष्टिका निर्माण किया। ब्रह्मलोकपर्यन्त जो त्रिलोकी है, उसीकी रचना की, ऊपरके जो नित्य तीन लोक हैं, उनकी नहीं। सृष्टि-निरूपणके प्रसंगमें मैंने यह काल-गणना बतायी है और किञ्चिन्मात्र सृष्टिका निरूपण किया है। अब फिर आप क्या सुनना चाहते हैं?

शौनकजीने पूछा—सूतनन्दन! अब यह बताइये कि गोलोकमें सर्वव्यापी महान् परमात्मा गोलोकनाथने इन नारायण आदिकी सृष्टि करके फिर क्या किया? इस विषयका विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी कृपा करें।

सौतिने कहा—ब्रह्मन्! इन सबकी सृष्टि करके इन्हें साथ ले भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त कमनीय सुरम्य रासमण्डलमें गये। रमणीय कल्पवृक्षोंके मध्यभागमें मण्डलाकार रासमण्डल अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था। वह सुविस्तृत, सुन्दर, समतल और चिकना था। चन्दन, कस्तूरी, अगर और कुङ्कुमसे उसको सजाया गया था। उसपर दही, लावा, सफेद धान और दूर्वादल बिखेरे गये थे। रेशमी सूतमें गुँथे हुए नूतन चन्दन-पल्लवोंकी बन्दनवारों और केलेके खंभोंद्वारा वह चारों ओरसे घिरा हुआ था। करोड़ों मण्डप, जिनका निर्माण उत्तम रत्नोंके सारभागसे हुआ था, उस भूमिकी शोभा बढ़ाते थे। उनके भीतर रत्नमय प्रदीप जल रहे थे। वे पुष्प और सुगन्धकी धूपसे वासित थे। उनके भीतर अत्यन्त ललित प्रसाधन-सामग्री

रखी हुई थी। वहाँ जाकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण सबके साथ उन मण्डपोंमें ठहरे। मुनिश्रेष्ठ! उस रासमण्डलका दर्शन करके वे सब लोग आश्चर्यसे चकित हो उठे। वहाँ श्रीकृष्णके वामपार्श्वसे एक कन्या प्रकट हुई, जिसने दौड़कर फूल ले आकर उन भगवान्‌के चरणोंमें अर्घ्य प्रदान किया। उसके अङ्ग अत्यन्त कोमल थे। वह मनोहारिणी और सुन्दरियोंमें भी सुन्दरी थी। उसके सुन्दर एवं अरुण ओष्ठ और अधर अपनी लालिमासे बन्धुजीव पुष्प

(दुपहरियेके फूल)—की शोभाको पराजित कर रहे थे। मनोहर दन्तपंक्ति मोतियोंकी श्रेणीको तिरस्कृत करती थी। वह सुन्दरी किशोरी बड़ी मनोहर थी। उसका सुन्दर मुख शरत्पूर्णिमाके कोटि चन्द्रोंकी शोभाको छीने लेता था। सीमन्तभाग बड़ा मनोहर था। नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंके समान अत्यन्त सुन्दर दिखायी देते थे। उसकी मनोहर नासिकाके सामने पक्षिराज गरुड़की नुकीली चोंच हार मान चुकी थी। वह मनोहारिणी बाला अपने दोनों कपोलोंद्वारा सुनहरे दर्पणकी शोभाको तिरस्कृत कर रही थी। रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित दोनों कान बड़े सुन्दर लगते थे। सुन्दर कपोलोंमें चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुङ्कुम और सिन्दूरकी बूँदोंसे पत्ररचना की गयी थी, जिससे वह बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। उसके सँवारे हुए केशपाश मालतीकी मालासे अलंकृत थे। वह सती-साध्वी बाला अपने सिरपर सुन्दर एवं सुगन्धित वेणी धारण करती थी। उसके दोनों चरणस्थल कमलोंकी प्रभाको छीने लेते थे। उसकी मन्द-मन्द गति हंस और खंजनके गर्वका गञ्जन करनेवाली थी। वह उत्तम रत्नोंके सारभागसे बनी हुई मनोहर वनमाला, हीरेका बना हुआ हार, रत्ननिर्मित केयूर, कंगन, सुन्दर रत्नोंके सारभागसे निर्मित अत्यन्त मनोहर पाशक (गलेकी जंजीर या कानका पासा), बहुमूल्य रत्नोंका बना झनकारता हुआ मंजीर तथा अन्य नाना प्रकारके चित्राङ्कित सुन्दर जड़ाऊ आभूषण पहने हुए थी।

वह गोविन्दसे वार्तालाप करके उनकी आज्ञा पा मुसकराती हुई श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनपर बैठ गयी। उसकी दृष्टि अपने उन प्राणवल्लभके मुखारविन्दपर ही लगी हुई थी। उस किशोरीके रोमकूपोंसे तत्काल ही गोपाङ्गनाओंका आविर्भाव हुआ, जो रूप और वेषके द्वारा भी उसीकी समानता करती थीं। उनकी संख्या लक्षकोटि थी। ये सब-की-सब नित्य सुस्थिर-यौवना थीं। संख्याके जानकार विद्वानोंने गोलोकमें गोपाङ्गनागणोंकी उक्त संख्या ही निर्धारित की है। मुने! फिर तो श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे भी उसी क्षण गोपगणोंका आविर्भाव हुआ, जो रूप और वेषमें भी उन्हींके समान थे। संख्यावेत्ता महर्षियोंका कथन है कि श्रुतिमें गोलोकके कमनीय मनोहर रूपवाले गोपोंकी संख्या तीस करोड़ बतायी गयी है।

फिर तत्काल ही श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे नित्य सुस्थिर यौवनवाली गौएँ प्रकट हुईं, जिनके रूप-रंग अनेक प्रकारके थे। बहुतेरे बलीवर्द (साँड़), सुरभि जातिकी गौएँ, नाना प्रकारके सुन्दर-सुन्दर बछड़े और अत्यन्त मनोहर, श्यामवर्णवाली बहुत-सी कामधेनु गायें भी वहाँ तत्काल प्रकट हो गयीं। उनमेंसे एक मनोहर बलीवर्दको, जो करोड़ों सिंहोंके समान बलशाली था, श्रीकृष्णने शिवको सवारीके लिये दे दिया। तत्पश्चात् श्रीकृष्णके चरणोंके नखछिद्रोंसे सहसा मनोहर हंस-पंक्ति प्रकट हुई। उन हंसोंमें नर, मादा और बच्चे सभी मिले-जुले थे। उनमेंसे एक राजहंसको, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न था, श्रीकृष्णने तपस्वी ब्रह्माको वाहन बनानेके लिये अर्पित कर दिया।

तदनन्तर परमात्मा श्रीकृष्णके बायें कानके छिद्रसे सफेद रंगके घोड़ोंका समुदाय प्रकट हुआ, जो बड़ा मनोहर जान पड़ता था। उनमेंसे एक श्वेत अश्व गोपाङ्गनावल्लभ श्रीकृष्णने देवसभामें विराजमान धर्मको सवारीके लिये प्रसन्नतापूर्वक दे दिया। फिर उन परम पुरुषके दाहिने कानके छिद्रसे उस देवसभाके भीतर ही महान् बलवान् और पराक्रमी सिंहोंकी श्रेणी प्रकट हुई। श्रीकृष्णने उनमेंसे एक सिंह जो बहुमूल्य श्रेष्ठ हारसे अलंकृत था, बड़े आदरके साथ प्रकृति (दुर्गा)-देवीको अर्पित कर दिया। उन्हें वही सिंह दिया गया, जिसे वे लेना चाहती थीं।

इसके बाद योगीश्वर श्रीकृष्णने योगबलसे पाँच रथोंका निर्माण किया। वे सब शुद्ध एवं सर्वश्रेष्ठ रत्नोंसे बनाये गये थे। मनके समान वेगसे चलनेवाले और मनोहर थे। उनकी ऊँचाई लाख योजनकी और विस्तार सौ योजनका था। उनमें लाख-लाख पहिये लगे थे। उनका वेग वायुके समान था। उन रथोंमें एक-एक लाख क्रीड़ाभवन बने हुए थे। उनमें शृङ्गारोचित भोगवस्तुएँ और असंख्य शय्याएँ थीं। उन गृहोंमें लाखों रत्नमय दीप प्रकाश फैलाते थे और लाखों घोड़े उस रथकी शोभा बढ़ाते थे। भाँति-भाँतिके विचित्र चित्र उनमें अङ्कित थे। सुन्दर रत्नमय कलश उनकी उज्ज्वलता बढ़ा रहे थे। रत्नमय दर्पणों और आभूषणोंसे वे सभी रथ (विमान) भरे हुए थे। श्वेत चँवर उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। अग्निमें तपाकर शुद्ध किये गये सुनहरे वस्त्र, विचित्र-विचित्र माला, श्रेष्ठ मणि, मोती, माणिक्य तथा हीरोंके हारोंसे वे सभी रथ अलंकृत थे। कुछ-कुछ लाल रंगके असंख्य सुन्दर कृत्रिम कमल, जो श्रेष्ठ रत्नोंके सारभागसे निर्मित हुए थे, उन रथोंको सुशोभित कर रहे थे।

द्विजश्रेष्ठ! भगवान् श्रीकृष्णने उनमेंसे एक रथ तो नारायणको दे दिया और एक राधिकाको देकर शेष सभी रथ अपने लिये रख लिये। तत्पश्चात् श्रीकृष्णके गुह्यदेशसे पिङ्गलवर्णवाले पार्षदोंके साथ एक पिङ्गल पुरुष प्रकट हुआ। गुह्यदेशसे आविर्भूत होनेके कारण वे सब गुह्यक कहलाये और वह पुरुष उन गुह्यकोंका स्वामी कुबेर कहलाया, जो धनाध्यक्षके पदपर प्रतिष्ठित है। कुबेरके वामपार्श्वसे एक कन्या प्रकट हुई, जो कुबेरकी पत्नी हुई। वह देवी समस्त सुन्दरियोंमें मनोरमा थी, अतः उसी नामसे प्रसिद्ध हुई। फिर भगवान्के गुह्यदेशसे भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस और विकृत अङ्गवाले वेताल प्रकट हुए। मुने! तदनन्तर श्रीकृष्णके मुखसे कुछ पार्षदोंका प्राकट्य हुआ, जिनके चार भुजाएँ थीं। वे सब-के-सब श्यामवर्ण थे और हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा एवं पद्म धारण करते थे। उनके गलेमें वनमाला लटक रही थी। उन सबने पीताम्बर पहन रखे थे, उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल तथा अन्यान्य अङ्गोंमें रत्नमय आभूषण शोभा दे रहे थे। श्रीकृष्णने वे चार भुजाधारी पार्षद नारायणको दे दिये। गुह्यकोंको उनके स्वामी कुबेरके हवाले किया और भूत-प्रेतादि भगवान् शङ्करको अर्पित कर दिये।

तदनन्तर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंसे द्विभुज पार्षद प्रकट हुए, जो श्यामवर्णके थे और हाथोंमें जपमाला लिये हुए थे। वे श्रेष्ठ पार्षद निरन्तर आनन्दपूर्वक भगवान्के चरणकमलोंका ही चिन्तन करते थे। श्रीकृष्णने उन्हें दास्यकर्ममें नियुक्त किया। वे दास यत्नपूर्वक अर्घ्य लिये प्रकट हुए थे। वे सभी श्रीकृष्णपरायण वैष्णव थे। उनके सारे अङ्ग पुलकित थे, नेत्रोंसे अश्रु झर रहे थे और वाणी गद्गद थी। उनका चित्त केवल भगवच्चरणारविन्दोंके चिन्तनमें ही संलग्न रहता था।

इसके बाद श्रीकृष्णके दाहिने नेत्रसे भयंकर गण प्रकट हुए, जो हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश लिये हुए थे। उन सबके तीन नेत्र थे और मस्तकपर चन्द्राकार मुकुट धारण करते थे। वे सब-के-सब विशालकाय तथा दिगम्बर थे। प्रज्वलित अग्निशिखाके समान जान पड़ते थे। वे सभी महान् भाग्यशाली भैरव कहलाये। वे शिवके समान ही तेजस्वी थे। रुरुभैरव, संहारभैरव, कालभैरव, असितभैरव, क्रोधभैरव, भीषणभैरव, महाभैरव तथा खट्वाङ्गभैरव—ये आठ भैरव माने गये हैं।

श्रीकृष्णके बायें नेत्रसे एक भयंकर पुरुष प्रकट हुआ, जो त्रिशूल, पट्टिश, व्याघ्रचर्ममय वस्त्र और गदा धारण किये हुए था। वह

दिगम्बर, विशालकाय, त्रिनेत्रधारी और चन्द्राकार मुकुट धारण करनेवाला था। यह महाभाग पुरुष 'ईशान' कहलाया, जो दिक्पालोंका स्वामी है। इसके बाद श्रीकृष्णकी नासिकाके छिद्रसे डाकिनियाँ, योगिनियाँ तथा सहस्रों क्षेत्रपाल प्रकट हुए। इनके सिवा उन परम पुरुषके पृष्ठदेशसे सहसा तीन करोड़ श्रेष्ठ देवताओंका प्रादुर्भाव हुआ, जो दिव्य मूर्तिधारी थे। (अध्याय ५)

श्रीकृष्णका नारायण आदिको लक्ष्मी आदिका पत्नीरूपमें दान, महादेवजीका दार-संयोगमें अरुचि प्रकट करके निरन्तर भजनके लिये वर माँगना तथा भगवान्‌का उन्हें वर देते हुए उनके नाम आदिकी महिमा बताकर उन्हें भविष्यमें शिवासे विवाहकी आज्ञा देना तथा शिवा आदिको मन्त्रादिका उपदेश करना

सौति कहते हैं—तदनन्तर श्रीकृष्णने श्रेष्ठ रत्नोंकी मालाके साथ महालक्ष्मी और सरस्वती—इन दो देवियोंको भी नारायणके हाथमें सादर समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् ब्रह्माजीको सावित्री, धर्मको मूर्ति, कामदेवको रूपवती रति और कुबेरको मनोरमा सादर प्रदान की। इसी तरह अन्यान्य स्त्रियोंको भी पतियोंके हाथमें दिया। जो-जो स्त्री जिस-जिससे प्रकट हुई थी, उस-उस रूपवती सतीको उसी-उसी पतिके हाथोंमें अर्पित किया। तदनन्तर सर्वेश्वर श्रीकृष्णने योगियोंके गुरु शंकरजीको बुलाकर प्रिय वाणीमें कहा—'आप देवी सिंहवाहिनीको ग्रहण करें।' श्रीकृष्णका यह वचन सुनकर नीललोहित शिव हँसे और डरते हुए विनीत भावसे उन प्राणेश्वर प्रभु अच्युतसे बोले। महादेवजीने पहले प्रकृतिके दोष बताकर उसे ग्रहण न करनेकी इच्छा प्रकट की। फिर इस प्रकार कहा—

श्रीमहेश्वर बोले—नाथ! मुझे गृहिणी नहीं चाहिये। मुझे तो मनचाहा वर दीजिये। जिस सेवकको जो अभीष्ट हो, श्रेष्ठ स्वामी उसे वही वस्तु देते हैं। 'मैं आपकी भक्तिमें लगा रहूँ, आपके चरणोंकी दासता—सेवा करता रहूँ' यह लालसा मेरे हृदयमें निरन्तर बढ़ रही है। आपके नाम-जपसे, आपके चरणकमलोंकी सेवासे मुझे कभी

तृप्ति नहीं होती है। मैं सोते-जागते हर समय अपने पाँच मुखोंसे आपके नाम और गुणोंका, जो मङ्गलके आश्रय हैं, निरन्तर गान करता हुआ सर्वत्र विचरा करता हूँ। मेरा मन कोटि-कोटि कल्पोंतक आपके स्वरूपका ध्यान करनेमें ही तत्पर रहे। भोगेच्छामें नहीं, यह योग और तपस्यामें ही संलग्न रहे। आपकी सेवा, पूजा, वन्दना और नाम-कीर्तनमें ही इसे सदा उल्लास प्राप्त हो। इनसे विरत होनेपर यह उद्विग्न हो उठे। सम्पूर्ण मङ्गलोंके ईश्वर! आपके नाम और गुणोंका स्मरण, कीर्तन, श्रवण, जप, आपके मनोहर

रूपका ध्यान, आपके चरणकमलोंकी सेवा, आपकी वन्दना, आपके प्रति आत्मसमर्पण और नित्य आपके नैवेद्य (प्रसाद)-का भोजन—यह जो नौ प्रकारकी भक्ति है, उसीको मुझे श्रेष्ठ वरदान मानकर दीजिये। प्रभो! सार्ष्टि (आपके समान ऐश्वर्यकी प्राप्ति), सालोक्य (आपके समान लोककी प्राप्ति), सारूप्य (आपके समान रूपकी प्राप्ति), सामीप्य (आपके निकट रहनेका सौभाग्य), साम्य (आपकी समताकी प्राप्ति) और लीनता (आपमें मिलकर एक हो जाना अथवा सायुज्यकी प्राप्ति)—मुक्त पुरुष ये छ: प्रकारकी मुक्तियाँ बताते हैं। अणिमा, लघिमा, गरिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व, सर्वकामावसायिता, सर्वज्ञता, दूरश्रवण, परकायप्रवेश, वाक्सिद्धि, कल्पवृक्षत्व, सृष्टिशक्ति, संहारशक्ति, अमरत्व और सर्वाग्रगण्यता—ये अठारह सिद्धियाँ मानी गयी हैं। सर्वेश्वर! योग, तप, सब प्रकारके दान, व्रत, यश, कीर्ति, वाणी, सत्य, धर्म, उपवास, सम्पूर्ण तीर्थोंमें भ्रमण, स्नान, आपके सिवा अन्य देवताका पूजन, देवप्रतिमाओंका दर्शन, सात द्वीपोंकी सात परिक्रमा, समस्त समुद्रोंमें स्नान, सभी स्वर्गोंके दर्शन, ब्रह्मपद, रुद्रपद, विष्णुपद तथा परमपद—ये तथा और भी जो अनिर्वचनीय, वाञ्छनीय पद हैं, वे सब-के-सब आपकी भक्तिके कलांशकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं।

महादेवजीका यह वचन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण हँसे और उन योगिगुरु महादेवजीसे यह सर्वसुखदायक सत्य वचन बोले—

श्रीभगवान्‌ने कहा—सर्वज्ञोंमें श्रेष्ठ सर्वेश्वर शिव! तुम पूरे सौ करोड़ कल्पोंतक निरन्तर दिन-रात मेरी सेवा करो। सुरेश्वर! तुम तपस्वीजनों, सिद्धों, योगियों, ज्ञानियों, वैष्णवों तथा देवताओंमें सबसे श्रेष्ठ हो। शम्भो! तुम अमरत्व लाभ करो और महान् मृत्युञ्जय हो जाओ। मेरे वरसे तुम्हें सब प्रकारकी सिद्धियाँ, वेदोंका ज्ञान और सर्वज्ञता प्राप्त होगी। वत्स! तुम लीलापूर्वक असंख्य ब्रह्माओंका पतन देखोगे। शिव! आजसे तुम ज्ञान, तेज, अवस्था, पराक्रम, यश और तेजमें मेरे समान हो जाओ। तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। तुमसे बढ़कर मेरा कोई प्रिय भक्त नहीं है—

> **त्वत्परो नास्ति मे प्रेयांस्त्वं मदीयात्मनः परः।**
> **ये त्वां निन्दन्ति पापिष्ठा ज्ञानहीना विचेतनाः॥**
> **पच्यन्ते कालसूत्रेण यावच्चन्द्रदिवाकरौ।**

शिव! तुमसे बढ़कर अत्यन्त प्रिय मेरे लिये दूसरा नहीं है। तुम मेरी आत्मासे बढ़कर हो। जो पापिष्ठ, अज्ञानी और चेतनाहीन मनुष्य तुम्हारी निन्दा करते हैं, वे तबतक कालसूत्र नरकमें पकाये जाते हैं, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता रहती है।

शिव! तुम सौ कोटि कल्पोंके पश्चात् शिवाको ग्रहण करोगे। मेरा वचन कभी व्यर्थ नहीं होता। तुम्हें इसका पालन करना चाहिये। तुम मेरे और अपने वचनका भी पालन करो। शम्भो! तुम प्रकृति (दुर्गा)-को ग्रहण करके दिव्य सहस्र वर्षोंतक महान् सुख एवं शृङ्गाररसका आस्वादन करोगे, इसमें संशय नहीं है। तुम केवल तपस्वी नहीं हो। मेरे समान ही महान् ईश्वर हो। जो स्वेच्छामय ईश्वर है, वह समयानुसार गृही, तपस्वी और योगी हुआ करता है। शिव! दार-संयोग (पत्नी-परिग्रह)-में तुमने जो दुःख बताया है, उसके विषयमें मैं यह कहना चाहता हूँ कि कुलटा स्त्री ही स्वामीको दुःख देती है, पतिव्रता नहीं। जो महान् कुलमें उत्पन्न हुई है, कुलीन एवं कुल-मर्यादाका पालन करनेवाली है, वह स्नेहपूर्वक उसी तरह पतिका पालन करती है, जैसे माता उत्तम पुत्रका। पति पतित हो या अपतित, दरिद्र हो या धनवान्—कुलवती स्त्रीके

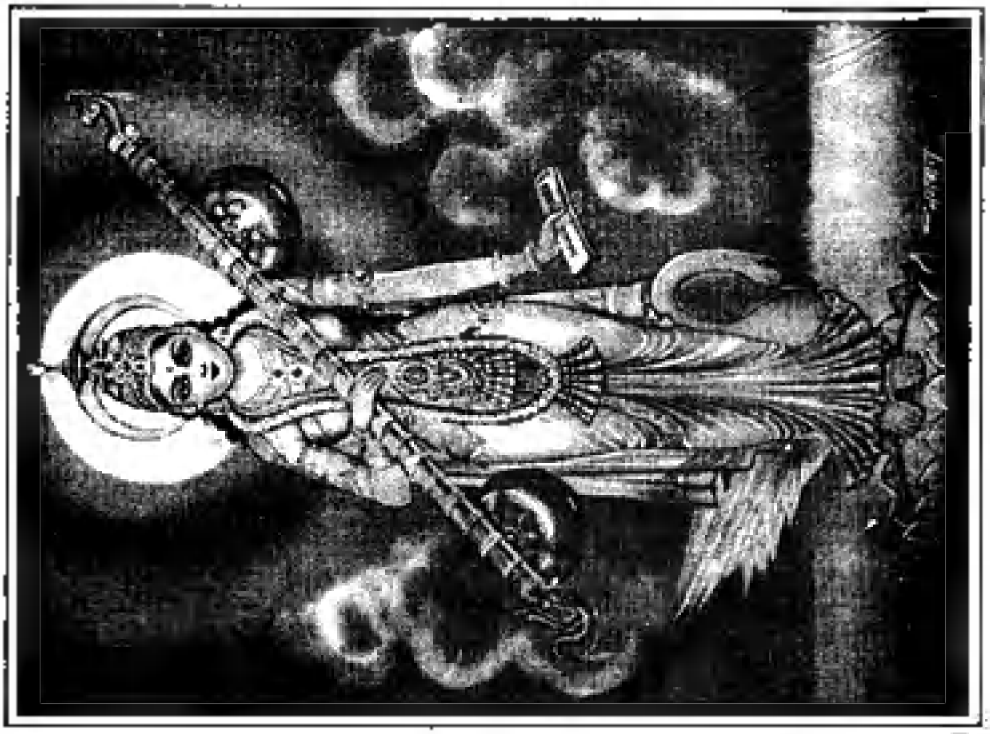

भगवती सरस्वती

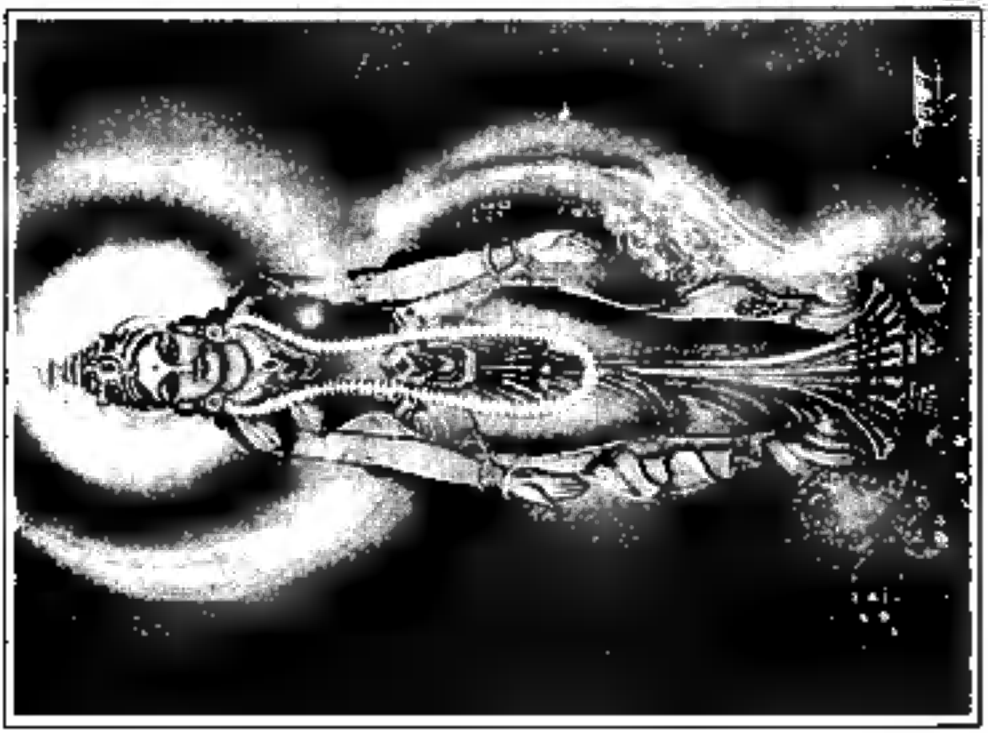

भगवती लक्ष्मी

लिये सच्चे बन्धु, आश्रय और देवता हैं। जो नीच कुलमें उत्पन्न हुई हैं; जिनमें माता-पिताके बुरे शील, स्वभाव और आचरणका सम्मिश्रण हुआ है तथा जो परपुरुषोंके उपभोगमें आनेवाली हैं, अवश्य वे ही स्त्रियाँ सदा पतिकी निन्दा करती हैं। जो पतिको हम दोनोंसे भी बढ़कर देखती और समझती है, वह सती-साध्वी स्त्री गोलोकमें अपने स्वामीके साथ कोटि कल्पोंतक आनन्द भोगती है। शिव! यह वैष्णवी प्रकृति शिवप्रिया होकर तुम्हारे लिये कल्याणमयी होगी। अतः मेरी आज्ञासे लोक-कल्याणके निमित्त इस साध्वीको भार्यारूपसे ग्रहण करो।

तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने शिवलिङ्गके स्थापन और पूजनका महान् फल बतलाते हुए कहा—जो 'महादेव', 'महादेव' और 'महादेव' का उच्चारण करता है, उसके पीछे मैं उस नाम-श्रवणके लोभसे अत्यन्त भयभीतकी भाँति जाता हूँ। जो मनुष्य 'शिव' शब्दका उच्चारण करके प्राणोंका परित्याग करता है, वह कोटि जन्मोंके उपार्जित पापसे मुक्त हो मोक्ष प्राप्त कर लेता है। 'शिव' शब्द कल्याणका वाचक है और 'कल्याण' शब्द मुक्तिका। शिवके उच्चारणसे मोक्ष या कल्याणकी प्राप्ति होती है, इसीलिये महादेवजीको शिव कहा गया है*। धन और भाई-बन्धुओंका वियोग होनेपर जो शोक-सागरमें डूब गया हो, वह मनुष्य शिव शब्दका उच्चारण करके सर्वथा कल्याणका भागी होता है। 'शि' पापनाशक अर्थमें है और 'व' मोक्षदायक अर्थमें। महादेवजी मनुष्योंके पापहन्ता और मोक्षदाता हैं। इसलिये उन्हें शिव कहा गया है। जिसकी वाणीमें शिव—यह मङ्गलमय नाम विद्यमान है, उसके करोड़ों जन्मोंका पाप निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

शूलधारी महादेवजीसे ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें कल्पवृक्ष-मन्त्र और मृत्युञ्जय-तत्त्वज्ञान दिया। तत्पश्चात् वे सिंहवाहिनी दुर्गासे बोले—

श्रीभगवान्‌ने कहा—वत्से! इस समय तुम गोलोकमें मेरे पास रहो। फिर समय आनेपर कल्याणके आश्रयभूत मङ्गलदाता शिवको पतिरूपमें प्राप्त करोगी। सुमुखि! सम्पूर्ण देवताओंके तेजःपुञ्जसे प्रकट हो समस्त दैत्योंका संहार करके तुम सबके द्वारा पूजित होओगी। तदनन्तर कल्प-विशेषमें सत्ययुग आनेपर तुम दक्षकन्या सती होओगी और शिवकी सुशीला गृहिणी बनोगी। फिर यज्ञमें अपने स्वामीकी निन्दा सुनकर शरीरका त्याग कर दोगी और हिमवान्‌की पत्नी मेनाके गर्भसे जन्म लेकर पार्वती नामसे विख्यात होओगी। उस समय सहस्र दिव्य वर्षोंतक तुम शिवके साथ विहार करोगी। तत्पश्चात् तुम सर्वदाके लिये पतिके साथ पूर्णतः अभिन्नता प्राप्त कर लोगी। सुरेश्वरि! प्रतिवर्ष प्रशस्त समयमें समस्त लोकोंमें तुम्हारी शरत्कालिक पूजा होगी। गाँवों और नगरोंमें तुम ग्रामदेवताके रूपमें पूजित होओगी तथा विभिन्न स्थानोंमें तुम्हारे पृथक्-पृथक् मनोहर नाम होंगे। मेरी आज्ञासे शिवरचित नाना प्रकारके तन्त्रोंद्वारा तुम्हारी पूजा की जायगी। मैं तुम्हारे लिये स्तोत्र और कवचका विधान करूँगा। तुम्हारे सेवक ही महान् और सिद्ध होंगे तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप फलके भागी होंगे। वत्स! पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें जो तुम्हारी

---

*महादेव महादेव महादेवेति वादिनः।
पश्चाद्यामि महात्रस्तो नामश्रवणलोभतः। शिवेति मन्त्रमुच्चार्य प्राणांस्त्यजति यो नरः॥
कोटिजन्मार्जितात् पापान्मुक्तो मुक्तिं प्रयाति सः। शिवं कल्याणवचनं कल्याणं मुक्तिवाचकम्॥
यतस्तत् प्रभवेत्तेन स शिवः परिकीर्तितः। (ब्रह्मखण्ड ६। ४८—५१)

सेवा-पूजा करेंगे, उनके यश, कीर्ति, धर्म और ऐश्वर्यकी वृद्धि होगी।

प्रकृतिसे ऐसा कहकर भगवान्‌ने उसे कामबीज (क्लीं)-सहित एकादशाक्षर-मन्त्रका उपदेश दिया, जो परम उत्तम मन्त्रराज कहा गया है। फिर विधिपूर्वक ध्यानका उपदेश दिया तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये श्री (श्रीं), माया (ह्रीं) तथा काम (क्लीं) बीजसहित दशाक्षर-मन्त्रका उपदेश दिया। साथ ही सृष्टिके लिये उपयोगी शक्ति और मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाली सम्पूर्ण सिद्धि देकर भगवान्‌ने प्रकृतिको उत्कृष्ट तत्त्वज्ञान भी प्रदान किया। इस तरह उसे त्रयोदशाक्षर-मन्त्र देकर जगदीश्वर श्रीकृष्णने शिवको भी स्तोत्र और कवच दिया। ब्रह्मन्! फिर धर्मको भी वही मन्त्र और वही सिद्धि एवं ज्ञान देकर कामदेव, अग्नि और वायुको भी मन्त्र आदिका उपदेश दिया। इसी प्रकार कुबेर आदिको मन्त्र आदिका उत्तम उपदेश देकर विधाताके भी विधाता भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टिके लिये ब्रह्माजीसे इस प्रकार बोले—

श्रीभगवान्‌ने कहा—महाभाग विधे! तुम सहस्र दिव्य वर्षोंतक मेरी प्रसन्नताके लिये तप करके नाना प्रकारकी उत्तम सृष्टि करो।

ऐसा कहकर श्रीकृष्णने ब्रह्माजीको एक मनोरम माला दी। फिर गोप-गोपियोंके साथ वे नित्य-नूतन दिव्य वृन्दावनमें चले गये। (अध्याय ६)

सृष्टिका क्रम—ब्रह्माजीके द्वारा मेदिनी, पर्वत, समुद्र, द्वीप, मर्यादापर्वत, पाताल, स्वर्ग आदिका निर्माण; कृत्रिम जगत्‌की अनित्यता तथा वैकुण्ठ, शिवलोक तथा गोलोककी नित्यताका प्रतिपादन

सौति कहते हैं—शौनकजी! तब भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार तपस्या करके अभीष्ट सिद्धि पाकर ब्रह्माजीने सर्वप्रथम मधु और कैटभके मेदेसे मेदिनीकी सृष्टि की। उन्होंने आठ प्रधान पर्वतोंकी रचना की। वे सब बड़े मनोहर थे। उनके बनाये हुए छोटे-छोटे पर्वत तो असंख्य हैं, उनके नाम क्या बताऊँ? मुख्य-मुख्य पर्वतोंकी नामावली सुनिये—सुमेरु, कैलास, मलय, हिमालय, उदयाचल, अस्ताचल, सुवेल और गन्धमादन—ये आठ प्रधान पर्वत हैं। फिर ब्रह्माजीने सात समुद्रों, अनेकानेक नदों और कितनी ही नदियोंकी सृष्टि की। वृक्षों, गाँवों और नगरोंका निर्माण किया। समुद्रोंके नाम सुनिये—लवण, इक्षुरस, सुरा, घृत, दही, दूध और सुस्वादु जलके ये समुद्र हैं। उनमेंसे पहलेकी लंबाई-चौड़ाई एक लाख योजनकी है। बादवाले उत्तरोत्तर दुगुने होते गये हैं। इन समुद्रोंसे घिरे हुए सात द्वीप हैं। उनके भूमण्डल कमलपत्रकी आकृतिवाले हैं। उनमें उपद्वीप और मर्यादापर्वत भी सात-सात ही हैं। ब्रह्मन्! अब आप उन द्वीपोंके नाम सुनिये, जिनकी पहले ब्रह्माजीने रचना की थी। वे हैं—जम्बूद्वीप, शाकद्वीप, कुशद्वीप, प्लक्षद्वीप, क्रौञ्चद्वीप, न्यग्रोध (अथवा शाल्मलि)-द्वीप तथा पुष्करद्वीप। भगवान् ब्रह्माने मेरुपर्वतके आठ शिखरोंपर आठ लोकपालोंके विहारके लिये आठ मनोहर पुरियोंका निर्माण किया। उस पर्वतके मूलभाग—पाताललोकमें उन्होंने भगवान् अनन्त (शेषनाग)-की नगरी बनायी। तदनन्तर लोकनाथ ब्रह्माने उस पर्वतके ऊपर-ऊपर सात स्वर्गोंकी सृष्टि की। शौनकजी! उन सबके नाम सुनिये—भूर्लोक, भुवर्लोक, परम मनोहर स्वर्लोक, महर्लोक, जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक।

मेरुके सबसे ऊपरी शिखरपर जरा-मृत्यु आदिसे रहित ब्रह्मलोक है। उससे भी ऊपर ध्रुवलोक है, जो सब ओरसे अत्यन्त मनोहर है। जगदीश्वर ब्रह्माजीने उस पर्वतके निम्नभागमें सात पातालोंका निर्माण किया। मुने! वे स्वर्गकी अपेक्षा भी अधिक भोग-साधनोंसे सम्पन्न हैं और क्रमशः एकसे दूसरे उत्तरोत्तर नीचे भागमें स्थित हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, पाताल तथा रसातल। सबसे नीचे रसातल ही है। सात द्वीप, सात स्वर्ग तथा सप्त पाताल—इन लोकोंसहित जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड है, वह ब्रह्माजीके ही अधिकारमें है। शौनक! ऐसे-ऐसे असंख्य ब्रह्माण्ड हैं और महाविष्णुके रोमाञ्च-विवरोंमें उनकी स्थिति है। श्रीकृष्णकी मायासे प्रत्येक ब्रह्माण्डमें दिक्पाल, ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं, देवता, मनुष्य आदि सभी प्राणी स्थित हैं। इन ब्रह्माण्डोंकी गणना करनेमें न तो लोकनाथ ब्रह्मा, न शङ्कर, न धर्म और न विष्णु ही समर्थ हैं; फिर और देवता किस गिनतीमें हैं? विप्रवर! कृत्रिम विश्व तथा उसके भीतर रहनेवाली जो वस्तुएँ हैं, वे सब अनित्य तथा स्वप्नके समान नश्वर हैं। वैकुण्ठ, शिवलोक तथा इन दोनोंसे परे गोलोक है, ये सब नित्य-धाम हैं। इन सबकी स्थिति कृत्रिम विश्वसे बाहर है। ठीक उसी तरह, जैसे आत्मा, आकाश और दिशाएँ कृत्रिम जगत्‌से बाहर तथा नित्य हैं।

(अध्याय ७)

सावित्रीसे वेद आदिकी सृष्टि, ब्रह्माजीसे सनकादिकी, सस्त्रीक स्वायम्भुव मनुकी, रुद्रोंकी, पुलस्त्यादि मुनियोंकी तथा नारदकी उत्पत्ति, नारदको ब्रह्माका और ब्रह्माजीको नारदका शाप

सौति कहते हैं—तदनन्तर सावित्रीने चार मनोहर वेदोंको प्रकट किया। साथ ही न्याय और व्याकरण आदि नाना प्रकारके शास्त्र-समूह तथा परम मनोहर एवं दिव्य छत्तीस रागिनियाँ उत्पन्न कीं। नाना प्रकारके तालोंसे युक्त छः सुन्दर राग प्रकट किये। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलहप्रिय कलियुग; वर्ष, मास, ऋतु, तिथि, दण्ड, क्षण आदि; दिन, रात्रि, वार, संध्या, उषा, पुष्टि, मेधा, विजया, जया, छः कृत्तिका, योग, करण, कार्तिकेयप्रिया सती महाषष्ठी देवसेना—जो मातृकाओंमें प्रधान और बालकोंकी इष्ट देवी हैं, इन सबको भी सावित्रीने ही उत्पन्न किया। ब्राह्म, पाद्म और वाराह—ये तीन कल्प माने गये हैं। नित्य, नैमित्तिक, द्विपरार्ध और प्राकृत—ये चार प्रकारके प्रलय हैं। इन कल्पों और प्रलयोंको तथा काल, मृत्युकन्या एवं समस्त व्याधिगणोंको उत्पन्न करके सावित्रीने उन्हें अपना स्तन पान कराया।

तदनन्तर ब्रह्माजीके पृष्ठदेशसे अधर्म उत्पन्न हुआ। अधर्मके वामपार्श्वसे अलक्ष्मी उत्पन्न हुई, जो उसकी पत्नी थी। ब्रह्माजीके नाभिदेशसे शिल्पियोंके गुरु विश्वकर्मा हुए। साथ ही आठ महावसुओंकी उत्पत्ति हुई, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। तत्पश्चात् विधाताके मनसे चार कुमार आविर्भूत हुए, जो पाँच वर्षकी अवस्थाके-से जान पड़ते थे और ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उनमेंसे प्रथम तो सनक थे, दूसरेका नाम सनन्दन था, तीसरे सनातन और चौथे ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भगवान् सनत्कुमार थे। इसके बाद ब्रह्माजीके मुखसे सुवर्णके समान कान्तिमान् कुमार उत्पन्न हुआ, जो दिव्यरूपधारी था। उसके

साथ उसकी पत्नी भी थी। वह श्रीमान् एवं सुन्दर युवक था। क्षत्रियोंका बीजस्वरूप था। उसका नाम था स्वायम्भुव मनु। जो स्त्री थी, उसका नाम शतरूपा था। वह बड़ी रूपवती थी और लक्ष्मीकी कलास्वरूपा थी। पत्नीसहित मनु विधाताकी आज्ञाका पालन करनेके लिये उद्यत रहते थे। स्वयं विधाताने हर्षभरे पुत्रोंसे, जो बड़े भगवद्भक्त थे, सृष्टि करनेके लिये कहा। परंतु वे श्रीकृष्णपरायण होनेके कारण 'नहीं' करके तपस्या करनेके लिये चले गये। इससे जगत्पति विधाताको बड़ा क्रोध हुआ। कोपासक्त ब्रह्मा ब्रह्मतेजसे जलने लगे। प्रभो! इसी समय उनके ललाटसे ग्यारह रुद्र प्रकट हुए। उन्हींमेंसे एकको संहारकारी 'कालाग्नि रुद्र' कहा गया है। समस्त लोकोंमें केवल ये ही तामस या तमोगुणी माने गये हैं। स्वयं ब्रह्मा राजस हैं और शिव तथा विष्णु सात्त्विक कहे गये हैं। गोलोकनाथ श्रीकृष्ण निर्गुण हैं; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे हैं। जो परम अज्ञानी और मूर्ख हैं, वे ही शिवको तामस (तमोगुणी) कहते हैं। वे शुद्ध, सत्त्वस्वरूप, निर्मल तथा वैष्णवोंमें अग्रगण्य हैं। अब रुद्रोंके वेदोक्त नाम सुनो—महान्, महात्मा, मतिमान्, भीषण, भयंकर, ऋतुध्वज, ऊर्ध्वकेश, पिङ्गलाक्ष, रुचि, शुचि तथा कालाग्नि रुद्र। ब्रह्माजीके दायें कानसे पुलस्त्य, बायें कानसे पुलह, दाहिने नेत्रसे अत्रि, वामनेत्रसे क्रतु, नासिकाछिद्रसे अरणि, मुखसे अङ्गिरा एवं रुचि, वामपार्श्वसे भृगु, दक्षिणपार्श्वसे दक्ष, छायासे कर्दम, नाभिसे पञ्चशिख, वक्षःस्थलसे वोढु, कण्ठदेशसे नारद, स्कन्धदेशसे मरीचि, गलेसे अपान्तरतमा, रसनासे वसिष्ठ, अधरोष्ठसे प्रचेता, वामकुक्षिसे हंस और दक्षिणकुक्षिसे यति प्रकट हुए। विधाताने अपने इन पुत्रोंको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। पिताकी बात सुनकर नारदने उनसे कहा।

नारद बोले—जगत्पते! पितामह! पहले सनक, सनन्दन आदि ज्येष्ठ पुत्रोंको बुलाइये और उनका विवाह कीजिये। तत्पश्चात् हम लोगोंसे ऐसा करनेके लिये कहिये। जब पिताजीने उन्हें तपस्यामें लगाया है, तब हमें ही क्यों संसार-बन्धनमें डाल रहे हैं? अहो! कितने खेदकी बात है कि प्रभुकी बुद्धि विपरीत भावको प्राप्त हो रही है। भगवन्! आपने किसी पुत्रको तो अमृतसे भी बढ़कर तपस्याका कार्य दिया है और किसीको आप विषसे भी अधिक विषम विषय-भोग दे रहे हैं। पिताजी! जो अत्यन्त निम्न कोटिके भयानक भवसागरमें गिरता है, उसका करोड़ों कल्प बीतनेपर भी उद्धार नहीं होता। भगवान् पुरुषोत्तम ही सबके आदिकारण तथा निस्तारके बीज हैं। वे ही सब कुछ देनेवाले, भक्ति प्रदान करनेवाले, दास्यसुख देनेवाले, सत्य तथा कृपामय हैं। वे ही भक्तोंको एकमात्र शरण देनेवाले, भक्तवत्सल और स्वच्छ हैं। भक्तोंके प्रिय, रक्षक और उनपर अनुग्रह करनेवाले भी वे ही हैं। भक्तोंके आराध्य तथा प्राप्य उन परमेश्वर श्रीकृष्णको छोड़कर कौन मूढ विनाशकारी विषयमें मन लगायेगा? अमृतसे भी अधिक प्रिय श्रीकृष्ण-सेवा छोड़कर कौन मूर्ख विषय नामक विषम विषका भक्षण (आस्वादन) करेगा? विषय तो स्वप्नके समान नश्वर, तुच्छ, मिथ्या तथा विनाशकारी है।*

तात! जैसे दीपशिखाका अग्रभाग पतङ्गोंको

---

* निस्तारबीजं सर्वेषां बीजं च पुरुषोत्तमम्। सर्वदं भक्तिदं दास्यप्रदं सत्यं कृपामयम्॥
भक्तैकशरणं भक्तवत्सलं स्वच्छमेव च। भक्तप्रियं भक्तनाथं भक्तानुग्रहकारकम्॥
भक्ताराध्यं भक्तसाध्यं विहाय परमेश्वरम्। मनो दधाति को मूढो विषये नाशकारणे॥
विहाय कृष्णसेवां च पीयूषादधिकां प्रियाम्। को मूढो विषमश्नाति विषमं विषयाभिधम्॥
स्वप्नवन्नश्वरं तुच्छमसत्यं नाशकारणम्। (ब्रह्मखण्ड ८। ३३—३७)

बड़ा मनोहर प्रतीत होता है, जैसे बंसीमें गुँथा हुआ मांस मछलियोंको आपातत: सुखद जान पड़ता है, उसी प्रकार विषयी पुरुषोंको विषयमें सुखकी प्रतीति होती है; परंतु वास्तवमें वह मृत्युका कारण है।*

ब्रह्माजीके सामने यहीं ऐसी बात कहकर नारदजी चुप हो गये। वे अग्निशिखाके समान तेजसे प्रकाशित हो रहे थे। पिताको प्रणाम करके चुपचाप खड़े रहे। उनकी बात सुनकर ब्रह्माजी रोषसे आगबबूला हो उठे। उनका मुँह लाल हो गया। ओठ फड़कने लगे और सारा अङ्ग थर-थर काँपने लगा। ब्रह्मन्! वे पुत्रको शाप देते हुए बोले।

ब्रह्माजीने कहा—नारद! मेरे शापसे तुम्हारे ज्ञानका लोप हो जायगा। तुम कामिनियोंके क्रीडामृग बन जाओगे। उनके वशीभूत होओगे, तुम पचास कामिनियोंके पति बनो। शृङ्गार-शास्त्रके ज्ञाता, शृङ्गार-रसास्वादनके लिये अत्यन्त लोलुप तथा नाना प्रकारके शृङ्गारमें निपुण लोगोंके गुरुके भी गुरु हो जाओगे। गन्धर्वोमें श्रेष्ठ पुरुष होओगे। सुमधुरस्वरसे युक्त उत्तम गायक बनोगे। वीणा-वादन-संदर्भमें पारंगत तथा सुस्थिर यौवनसे युक्त होओगे। विद्वान्, मधुरभाषी, शान्त, सुशील, सुन्दर और सुबुद्धि होओगे, इसमें संशय नहीं है। उस समय 'उपबर्हण' नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। उन कामिनियोंके साथ युगोंतक निर्जन वनमें विहार करके फिर मेरे शापसे दासीपुत्र होओगे। बेटा! तदनन्तर वैष्णवोंके संसर्गसे और उनकी जूँठन खानेसे तुम पुन: श्रीकृष्णकी कृपा प्राप्त करके मेरे पुत्ररूपमें प्रतिष्ठित हो जाओगे। उस समय मैं पुन: तुम्हें दिव्य एवं पुरातन ज्ञान प्रदान करूँगा। इस समय मेरी आँखसे ओझल हो जाओ और अवश्य ही नीचे गिरो।

ब्रह्मन्! पुत्रसे ऐसा कहकर जगत्पति ब्रह्मा चुप हो गये और नारदजी रोने लगे। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर पितासे कहा।

नारद बोले—तात! तात! जगद्गुरो! आप अपने क्रोधको रोकिये। आप स्रष्टा हैं। तपस्वियोंके स्वामी हैं। अहो! मुझपर आपका यह क्रोध अकारण ही हुआ है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह कुमार्गगामी पुत्रको शाप दे अथवा उसका त्याग कर दे। आप पण्डित होकर अपने तपस्वी पुत्रको शाप देना कैसे उचित मानते हैं? ब्रह्मन्! जिन-जिन योनियोंमें मेरा जन्म हो भगवान्‌की भक्ति मुझे कदापि न छोड़े, ऐसा वर प्रदान कीजिये। जगत्स्रष्टाका ही पुत्र क्यों न हो, यदि भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें उसकी भक्ति नहीं है तो वह भारतभूमिमें सूअरसे भी बढ़कर अधम

---

*यथा दीपशिखाग्रं च कीटानां सुमनोहरम्॥
यथा बडिशमांसं च मत्स्यापातसुखप्रदम्। तथा विषयिणां तात विषयं मृत्युकारणम्॥
(ब्रह्मखण्ड ८। ३७-३८)

है। जो अपने पूर्वजन्मका स्मरण रखते हुए श्रीहरिकी भक्तिसे युक्त होता है, वह सूअरकी योनियोंमें जन्म ले तो भी श्रेष्ठ है; क्योंकि उस भजनरूपी कर्मसे वह गोलोकमें चला जाता है। जो गोविन्दके चरणारविन्दोंकी भक्तिरूप मनोवाञ्छित मकरन्दका पान करते रहते हैं, उन वैष्णव आदिके स्पर्शसे सारी पृथ्वी पवित्र हो जाती है। पितामह! पापी लोग स्नान करके तीर्थोंको जो पाप दे देते हैं, अपने उन पापोंका भी प्रक्षालन करनेके लिये सब तीर्थ वैष्णव महात्माओंका स्पर्श प्राप्त करना चाहते हैं।*

अहो! भारतवर्षमें श्रीहरिके मन्त्रका उपदेश देने और लेनेमात्रसे कितने ही मनुष्य अपने करोड़ों पूर्वजोंके साथ मुक्त हो गये हैं। मन्त्र ग्रहण करनेमात्रसे मनुष्य करोड़ों जन्मोंके पापसे मुक्त एवं शुद्ध हो जाते हैं और पहलेके कर्मको समूल नष्ट कर देते हैं। जो गुरुपुत्रों, पत्नियों, शिष्यों, सेवकों और भाई-बन्धुओंको उपदेश दे उन्हें सन्मार्गका दर्शन कराता है, उसे निश्चय ही उत्तम गति प्राप्त होती है। परंतु जो गुरु शिष्योंका विश्वासपात्र होकर उन्हें असन्मार्गका दर्शन कराता है—कुमार्गपर चलनेके लिये प्रेरित करता है, वह तबतक कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है, जबतक सूर्य और चन्द्रमाका अस्तित्व रहता है। वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा स्वामी और कैसा पुत्र है, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी भक्ति देनेमें समर्थ न हो।† चतुरानन! आपने बिना किसी अपराधके ही मुझे शाप दे दिया है। अतः बदलेमें मैं भी शाप दूँ तो अनुचित न होगा; मेरे शापसे सम्पूर्ण लोकोंमें कवच, स्तोत्र और पूजासहित आपके मन्त्रका निश्चय ही लोप हो जाय। पिताजी! जबतक तीन कल्प न बीत जायँ, तबतक तीनों लोकोंमें आप अपूज्य बने रहें। तीन कल्प बीत जानेपर आप पूजनीयोंके भी पूजनीय होंगे। सुव्रत! इस समय आपका यज्ञभाग बंद हो जाय। व्रत आदिमें भी आपका पूजन न हो। केवल एक ही बात रहे—आप देवता आदिके वन्दनीय बने रहें।

पिताके सामने ऐसा कहकर नारदजी चुप हो गये और ब्रह्माजी संतप्त-हृदयसे सभामें सुस्थिर भावसे बैठे रहे। शौनकजी! पिताके दिये हुए उस शापके ही कारण नारदजी उपबर्हण नामक गन्धर्व तथा दासीपुत्र हुए। तदनन्तर पितासे ज्ञान प्राप्त करके वे फिर महर्षि नारद हो गये। इस प्रसंगका अभी मैं आगे चलकर वर्णन करूँगा।

(अध्याय ८)

---

* जातिस्मरो हरेर्भक्तियुक्तः शूकरयोनिषु। अनिर्लभेत् स प्रयाति गोलोकं याति कर्मणा॥
गोविन्दचरणाम्भोजभक्तिमाध्वीकमीप्सितम्। पिबतां वैष्णवादीनां स्पर्शपूता वसुन्धरा॥
तीर्थानि स्पर्शमिच्छन्ति वैष्णवानां पितामह। पापिनां पापिदत्तानां क्षालनायात्मनामपि॥
(ब्रह्मखण्ड ८। ५४—५६)

† स किं गुरुः स किं तातः स किं स्वामी स किं सुतः। यः श्रीकृष्णपदाम्भोजे भक्तिं दातुमनीश्वरः॥
(ब्रह्मखण्ड ८। ६२)

मरीचि आदि ब्रह्मकुमारों तथा दक्षकन्याओंकी संततिका वर्णन, दक्षके शापसे पीड़ित चन्द्रमाका भगवान् शिवकी शरणमें जाना, अपनी कन्याओंके अनुरोधपर दक्षका चन्द्रमाको लौटा लानेके लिये जाना, शिवकी शरणागतवत्सलता तथा विष्णुकी कृपासे दक्षको चन्द्रमाकी प्राप्ति

सौति कहते हैं—विप्रवर शौनक! तदनन्तर ब्रह्माजीने अपने पुत्रोंको सृष्टि करनेकी आज्ञा दी। नारदको छोड़कर शेष सभी पुत्र सृष्टिके कार्यमें संलग्न हो गये। मरीचिके मनसे प्रजापति कश्यपका प्रादुर्भाव हुआ। अत्रिके नेत्रमलसे क्षीरसागरमें चन्द्रमा प्रकट हुए। प्रचेताके मनसे भी गौतमका प्राकट्य हुआ। मैत्रावरुण पुलस्त्यके मानस पुत्र हैं। मनुसे शतरूपाके गर्भसे तीन कन्याओंका जन्म हुआ—आकूति, देवहूति और प्रसूति। वे तीनों ही पतिव्रता थीं। मनु-शतरूपासे दो मनोहर पुत्र भी हुए, जिनके नाम थे—प्रियव्रत और उत्तानपाद। उत्तानपादके पुत्र ध्रुव हुए, जो बड़े धर्मात्मा थे। मनुने अपनी पुत्री आकूतिका विवाह प्रजापति रुचिके साथ तथा प्रसूतिका विवाह दक्षके साथ कर दिया। इसी तरह देवहूतिका विवाह-सम्बन्ध उन्होंने कर्दममुनिके साथ किया, जिनके पुत्र साक्षात् भगवान् कपिल हैं। दक्षके वीर्य और प्रसूतिके गर्भसे साठ कन्याओंका जन्म हुआ। उनमेंसे आठ कन्याओंका विवाह दक्षने धर्मके साथ किया, ग्यारह कन्याओंको ग्यारह रुद्रोंके हाथमें दे दिया। एक कन्या सती भगवान् शिवको सौंप दी। तेरह कन्याएँ कश्यपको दे दीं तथा सत्ताईस कन्याएँ चन्द्रमाको अर्पित कर दीं।

विप्रवर! अब मुझसे धर्मकी पत्नियोंके नाम सुनिये—शान्ति, पुष्टि, धृति, तुष्टि, क्षमा, श्रद्धा, मति और स्मृति। शान्तिका पुत्र संतोष और पुष्टिका पुत्र महान् हुआ। धृतिसे धैर्यका जन्म हुआ। तुष्टिसे दो पुत्र हुए—हर्ष और दर्प। क्षमाका पुत्र सहिष्णु था और श्रद्धाका पुत्र धार्मिक। मतिसे ज्ञान नामक पुत्र हुआ और स्मृतिसे महान् जातिस्मरका जन्म हुआ। धर्मकी जो पहली पत्नी मूर्ति थी, उससे नर-नारायण नामक दो ऋषि उत्पन्न हुए। शौनकजी! धर्मके ये सभी पुत्र बड़े धर्मात्मा हुए।

अब आप सावधान होकर रुद्रपत्नियोंके नाम सुनिये। कला, कलावती, काष्ठा, कालिका, कलहप्रिया, कन्दली, भीषणा, रास्ना, प्रमोचा, भूषणा और शुकी। इन सबके बहुत-से पुत्र हुए, जो भगवान् शिवके पार्षद हैं। दक्षपुत्री सतीने यज्ञमें अपने स्वामीकी निन्दा होनेपर शरीरको त्याग दिया और पुनः हिमवान्की पुत्री पार्वतीके रूपमें अवतीर्ण हो भगवान् शंकरको ही पतिरूपमें प्राप्त किया। धर्मात्मन्! अब कश्यपकी पत्नियोंके नाम सुनिये। देवमाता अदिति, दैत्यमाता दिति, सर्पमाता कद्रू, पक्षियोंकी जननी विनता, गौओं और भैंसोंकी माता सुरभि, सारमेय (कुत्ते) आदि जन्तुओंकी माता सरमा, दानवजननी दनु तथा अन्य पत्नियाँ भी इसी तरह अन्यान्य संतानोंकी जननी हैं। मुने! इन्द्र आदि बारह आदित्य तथा उपेन्द्र (वामन) आदि देवता अदितिके पुत्र कहे गये हैं, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं। ब्रह्मन्! इन्द्रका पुत्र जयन्त हुआ, जिसका जन्म शचीके गर्भसे हुआ था। आदित्य (सूर्य)-की पत्नी तथा विश्वकर्माकी पुत्री सवर्णाके गर्भसे शनैश्चर और यम नामक दो पुत्र तथा कालिन्दी नामवाली एक कन्या हुई। उपेन्द्रके वीर्य और पृथ्वीके गर्भसे मङ्गल नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

तदनन्तर भगवान् उपेन्द्रके अंश और धरणीके गर्भसे मङ्गलके जन्मका प्रसंग सुनाकर सौति बोले—मङ्गलकी पत्नी मेधा हुई, जिसके पुत्र महान् घंटेश्वर तथा विष्णुतुल्य तेजस्वी

ऋणदाता हुए। दितिसे महाबली हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष नामक पुत्र तथा सिंहिका नामवाली कन्याका जन्म हुआ। सैंहिकेय (राहु) सिंहिकाका ही पुत्र है। सिंहिकाका दूसरा नाम निर्ऋति भी था। इसीलिये राहुको नैर्ऋत कहते हैं। हिरण्याक्षको कोई संतान नहीं थी। वह युवावस्थामें ही भगवान् वाराहके हाथों मारा गया। हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लाद हुए, जो वैष्णवोंमें अग्रगण्य माने गये हैं। उनके पुत्र विरोचन हुए और विरोचनके पुत्र साक्षात् राजा बलि। बलिका पुत्र बाणासुर हुआ, जो महान् योगी, ज्ञानी तथा भगवान् शंकरका सेवक था। यहाँतक दितिका वंश बताया गया। अब कद्रूके वंशका परिचय सुनिये। अनन्त, वासुकि, कालिय, धनञ्जय, कर्कोटक, तक्षक, पद्म, ऐरावत, महापद्म, शंकु, शंख, संवरण, धृतराष्ट्र, दुर्धर्ष, दुर्जय, दुर्मुख, बल, गोक्ष, गोकामुख तथा विरूप आदिको कद्रूने जन्म दिया था। शौनकजी! जितनी सर्प-जातियाँ हैं, उन सबमें प्रधान ये ही हैं। लक्ष्मीके अंशसे प्रकट हुई मनसादेवी कद्रूकी कन्या हैं। ये तपस्विनी स्त्रियोंमें श्रेष्ठ, कल्याणस्वरूपा और महातेजस्विनी हैं। इन्हींका दूसरा नाम जरत्कारु है। इन्हींके पति मुनिवर जरत्कारु थे, जो नारायणकी कलासे प्रकट हुए थे। विष्णुतुल्य तेजस्वी आस्तीक इन्हीं मनसादेवीके पुत्र हैं। इन सबके नाममात्रसे मनुष्योंका नागोंसे भय दूर हो जाता है। यहाँतक कद्रूके वंशका परिचय दिया गया। अब विनताके वंशका वर्णन सुनिये।

विनताके दो पुत्र हुए—अरुण और गरुड़। दोनों ही विष्णु-तुल्य पराक्रमी थे। उन्हीं दोनोंसे क्रमशः सारी पक्षी-जातियाँ प्रकट हुईं। गाय, बैल और भैंसे—ये सुरभिकी श्रेष्ठ संतानें हैं। समस्त सारमेय (कुत्ते) सरमाके वंशज हैं। दनुके वंशमें दानव हुए तथा अन्य स्त्रियोंके वंशज अन्यान्य जातियाँ। यहाँतक कश्यप-वंशका वर्णन किया गया। अब चन्द्रमाका आख्यान सुनिये।

पहले चन्द्रमाकी पत्नियोंके नामोंपर ध्यान दीजिये। फिर पुराणोंमें जो उनका अत्यन्त अपूर्व पुरातन चरित्र है, उसको श्रवण कीजिये। अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पूजनीया साध्वी पुनर्वसु, पुष्या, आश्लेषा, मघा, पूर्वफाल्गुनी, उत्तरफाल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा, श्रवणा, धनिष्ठा, शुभा शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, उत्तरभाद्रपदा तथा रेवती—ये सत्ताईस चन्द्रमाकी पत्नियाँ हैं। इनमें रोहिणीके प्रति चन्द्रमाका विशेष आकर्षण होनेके कारण चन्द्रमाने अन्य सब पत्नियोंकी बड़ी अवहेलना की। तब उन सबने जाकर पिता दक्षको अपना दुःख सुनाया। दक्षने चन्द्रमाको क्षय-रोगसे ग्रस्त होनेका शाप दे दिया। चन्द्रमाने दुःखी होकर भगवान् शंकरकी शरण ली और शंकरने उन्हें आश्रय देकर अपने मस्तकमें स्थान दिया। तबसे उनका नाम 'चन्द्रशेखर' हो गया। देवताओं तथा अन्य लोगोंमें शिवसे बढ़कर शरणागतपालक दूसरा कोई नहीं है।

अपने पतिके रोगमुक्त और शिवके मस्तकमें स्थित होनेकी बात सुनकर दक्षकन्याएँ बारंबार रोने लगीं और तेजस्वी पुरुषोंमें श्रेष्ठ पिता दक्षकी शरणमें आयीं। वहाँ जाकर अपने अङ्गोंको बारंबार पीटती हुई वे उच्चस्वरसे रोने लगीं तथा दीनानाथ ब्रह्मपुत्र दक्षसे दीनतापूर्वक कातर वाणीमें बोलीं।

दक्षकन्याओंने कहा—पिताजी! हमें स्वामीका सौभाग्य प्राप्त हो, इसी उद्देश्यको लेकर हमने आपसे अपना दुःख निवेदन किया था। परंतु सौभाग्य तो दूर रहे, हमारे सद्गुणशाली स्वामी ही हमें छोड़कर चल दिये। तात! नेत्रोंके रहते हुए भी हमें सारा जगत् अन्धकारपूर्ण दिखायी देता है। आज यह बात समझमें आयी है कि स्त्रियोंका नेत्र वास्तवमें उनका पति ही है। पति ही स्त्रियोंकी गति है, पति ही प्राण तथा सम्पत्ति

है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी प्राप्तिका हेतु तथा भवसागरका सेतु भी पति ही है। पति ही स्त्रियोंका नारायण है, पति ही उनका व्रत और सनातन धर्म है। जो पतिसे विमुख हैं, उन स्त्रियोंका सारा कर्म व्यर्थ है। समस्त तीर्थोंमें स्नान, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दक्षिणा-वितरण, सम्पूर्ण दान, पुण्यमय व्रत एवं नियम, देवार्चन, उपवास और समस्त तप—ये पतिकी चरण-सेवाजनित पुण्यकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। स्त्रियोंके लिये समस्त बन्धु-बान्धवोंमें अपना पुत्र ही प्रिय होता है; क्योंकि वही स्वामीका अंश है। पति सौ पुत्रोंसे भी बढ़कर है। जो नीच कुलमें उत्पन्न हुई है, वही स्त्री सदा अपने स्वामीसे द्वेष रखती है। जिसका चित्त चञ्चल और दुष्ट है, वही सदा परपुरुषमें आसक्त होती है। पति रोगी, दुष्ट, पतित, निर्धन, गुणहीन, नवयुवक अथवा वृद्ध ही क्यों न हो, साध्वी स्त्रीको सदा उसीकी सेवा करनी चाहिये। कभी भी उसे त्यागना नहीं चाहिये। जो नारी गुणवान् या गुणहीन पतिसे द्वेष रखती या उसे त्याग देती है, वह तबतक कालसूत्र नरकमें पकायी जाती है, जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता रहती है। वहाँ पक्षीके समान कीड़े रात-दिन उसे खाते रहते हैं। वह भूख लगनेपर मुर्देका मांस और मज्जा खाती है तथा प्यास लगनेपर मूत्रका पान करती है। तदनन्तर कोटि-सहस्र जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर, फिर सौ जन्मोंतक शिकारी जीव और उसके बाद बन्धु-हत्यारिन होती है। तत्पश्चात् पहलेके सत्कर्मके प्रभावसे यदि कभी मनुष्य-जन्म पाती है तो निश्चय ही विधवा, धनहीन और रोगिणी होती है। ब्रह्मकुमार! आप हमें पतिदान दीजिये; क्योंकि वह सम्पूर्ण कामनाओंका पूरक होता है। आप ब्रह्माजीके समान फिरसे जगत्‌की सृष्टि करनेमें समर्थ हैं।

कन्याओंका यह वचन सुनकर प्रजापति दक्ष भगवान् शंकरके समीप गये। शंकरजीने उन्हें देखते ही उठकर प्रणाम किया। शिवको प्रणाम करते देख दक्षने दुर्धर्ष क्रोधको त्याग दिया और आशीर्वाद देकर कृपानिधान शंकरसे कहा—आप चन्द्रमाको लौटा दें। शिवने शरणागत चन्द्रमाको त्याग देना स्वीकार नहीं किया, तब दक्ष उन्हें शाप देनेको तैयार हो गये। यह देख शिवने भगवान् विष्णुका स्मरण किया। विष्णु वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें आये और शिवसे बोले—'सुरेश्वर! आप चन्द्रमाको लौटा दें और दक्षके शापसे अपनी रक्षा करें।'

शिवने कहा—प्रभो! मैं अपने तप, तेज, सम्पूर्ण सिद्धि, सम्पदा तथा प्राणोंको भी दे दूँगा, परंतु शरणागतका त्याग करनेमें असमर्थ हूँ। जो भयसे ही शरणागतको त्याग देता है, उसे भी धर्म त्याग देता है और अत्यन्त कठोर शाप देकर चला जाता है। जगदीश्वर! मैं सब कुछ त्याग देनेमें समर्थ हूँ, परंतु स्वधर्मका त्याग नहीं कर सकता। जो स्वधर्मसे हीन है, वह सबसे बहिष्कृत है। जो सदा धर्मकी रक्षा करता है, धर्म भी उसकी रक्षा करता है। भगवन्! आप तो धर्मको जानते हैं; फिर क्यों अपनी मायासे मोहित करते हुए मुझसे ऐसी बात कहते हैं। आप सबके स्रष्टा, पालक और अन्ततोगत्वा संहारक हैं। जिसकी आपमें सुदृढ़ भक्ति है, उसे किससे भय हो सकता है।

शंकरजीकी यह बात सुनकर सबके भावको जाननेवाले भगवान् श्रीहरिने चन्द्रमासे चन्द्रमाको खींचकर दक्षको दे दिया। आधे चन्द्रमा भगवान् शिवके मस्तकपर चले गये और वहाँ रोगमुक्त होकर रहने लगे। दूसरे चन्द्रमाको प्रजापति दक्षने ग्रहण किया, जिसे भगवान् विष्णुने दिया था। उस चन्द्रमाको राज-यक्ष्मा रोगसे ग्रस्त देख दक्षने माधवका स्तवन किया। तब श्रीहरिने स्वयं यह

व्यवस्था की कि एक पक्षमें चन्द्रमा क्रमशः क्षीण होंगे और दूसरे पक्षमें क्रमशः पुष्ट होते हुए परिपूर्ण हो जायँगे। ब्रह्मन्! उन सबको वर देकर श्रीहरि अपने धामको चले गये और दक्षने चन्द्रमाको लेकर उन्हें अपनी कन्याओंको सौंप दिया। चन्द्रमा उन सबको पाकर दिन-रात उनके साथ विहार करने लगे और उसी दिनसे उनको समभावसे देखने लगे। मुने! इस प्रकार मैंने यहाँ सम्पूर्ण सृष्टि-क्रमका कुछ वर्णन किया है। इस प्रसङ्गको पुष्कर-तीर्थमें मुनियोंकी मण्डलीके बीच गुरुजीके मुखसे मैंने सुना था। (अध्याय ९)

जाति और सम्बन्धका निर्णय

तदनन्तर सौतिने मुनिश्रेष्ठ बालखिल्यादि, बृहस्पति, उतथ्य, पराशर, विश्रवा, कुबेर, रावण, कुम्भकर्ण, महात्मा विभीषण, वात्स्य, शाण्डिल्य, सावर्णि, कश्यप तथा भरद्वाज आदिकी; ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अनेकानेक वर्णसंकर जातियोंकी उत्पत्तिके प्रसंग सुनाकर कहा—अश्विनीकुमारके द्वारा एक ब्राह्मणीके गर्भसे पुत्रकी उत्पत्ति हुई। इससे उस ब्राह्मणीके पतिने पुत्रसहित पत्नीका त्याग कर दिया। ब्राह्मणी दुःखित हो योगके द्वारा देह त्यागकर गोदावरी नामकी नदी हो गयी। सूर्यनन्दन अश्विनीकुमारने स्वयं उस पुत्रको यत्नपूर्वक चिकित्सा-शास्त्र, नाना प्रकारके शिल्प तथा मन्त्र पढ़ाये। किंतु वह ब्राह्मण निरन्तर नक्षत्रोंकी गणना करने और वेतन लेनेसे वैदिक धर्मसे भ्रष्ट हो इस भूतलपर गणक हो गया। उस लोभी ब्राह्मणने ग्रहणके समय तथा मृतकोंके दान लेनेके समय शूद्रोंसे भी अग्रदान ग्रहण किया था; इसलिये 'अग्रदानी' हुआ। एक पुरुष किसी ब्राह्मणके यज्ञमें यज्ञकुण्डसे प्रकट हुआ। वह धर्मवक्ता 'सूत' कहलाया। वही हम लोगोंका पूर्वपुरुष माना गया है। कृपानिधान ब्रह्माजीने उसे पुराण पढ़ाया। इस प्रकार यज्ञकुण्डसे उत्पन्न सूत पुराणोंका वक्ता हुआ। सूतके वीर्य और वैश्याके गर्भसे एक पुरुषकी उत्पत्ति हुई, जो अत्यन्त वक्ता था। लोकमें उसकी भट्ट (भाट) संज्ञा हुई। वह सभीके लिये स्तुतिपाठ करता है।

यह मैंने भूतलपर जो जातियाँ हैं, उनके निर्णयके विषयमें कुछ बातें बतायी हैं। वर्णसंकर-दोषसे और भी बहुत-सी जातियाँ हो गयी हैं। सभी जातियोंमें जिनका जिनके साथ सर्वथा सम्बन्ध है, उनके विषयमें मैं वेदोक्त तत्त्वका वर्णन करता हूँ—जैसा कि पूर्वकालमें ब्रह्माजीने कहा था। पिता, तात और जनक—ये शब्द जन्मदाताके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। अम्बा, माता, जननी और प्रसू—इनका प्रयोग गर्भधारिणीके अर्थमें होता है। पिताके पिताको पितामह कहते हैं और पितामहके पिताको प्रपितामह। इनसे ऊपरके जो कुटुम्बीजन हैं, उन्हें सगोत्र कहा गया है। माताके पिताको मातामह कहते हैं, मातामहके पिताकी संज्ञा प्रमातामह है और प्रमातामहके पिताको वृद्धप्रमातामह कहा गया है। पिताकी माताको पितामही और पितामहीकी सासको प्रपितामही कहते हैं। प्रपितामहीकी सासको वृद्धप्रपितामही जानना चाहिये। माताकी माता मातामही कही गयी है। वह माताके समान ही पूजित होती है। प्रमातामहकी पत्नीको प्रमातामही समझना चाहिये। प्रमातामहके पिताकी स्त्री वृद्धप्रमातामही जानने योग्य है। पिताके भाईको पितृव्य (ताऊ, चाचा) और माताके भाईको मातुल (मामा) कहते हैं। पिताकी बहिन पितृष्वसा (फुआ) कही गयी है और माताकी बहिन मासुरी (मातृष्वसा या मौसी)। सूनु, तनय, पुत्र, दायाद

और आत्मज—ये बेटेके अर्थमें परस्पर पर्यायवाची शब्द हैं। अपनेसे उत्पन्न हुए पुरुष (पुत्र)-के अर्थमें धनभाक् और वीर्यज शब्द भी प्रयुक्त होते हैं। उत्पन्न की गयी पुत्रीके अर्थमें दुहिता, कन्या और आत्मजा शब्द प्रचलित हैं। पुत्रकी पत्नीको वधू (बहू) जानना चाहिये और पुत्रीके पतिको जामाता (दामाद)। प्रियतम पतिके अर्थमें पति, प्रिय, भर्ता और स्वामी आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। पतिके भाईको देवर कहा गया है और पतिकी बहिनको ननान्दा (ननद), पतिके पिताको श्वशुर और पतिकी माताको श्वश्रू (सास) कहते हैं। भार्या, जाया, प्रिया, कान्ता और स्त्री—ये पत्नीके अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। पत्नीके भाईको श्यालक (साला) और पत्नीकी बहिनको श्यालिका (साली) कहते हैं। पत्नीकी माताको श्वश्रू (सास) तथा पत्नीके पिताको श्वशुर कहा गया है। सगे भाईको सोदर और सगी बहिनको सोदरा या सहोदरा कहते हैं। बहिनके बेटेको भागिनेय (भगिनेय या भानजा) कहते हैं और भाईके बेटेको भ्रातृज (भतीजा)। बहनोईके अर्थमें आवुत्त (भगिनीकान्त और भगिनीपति) आदि शब्दोंका प्रयोग होता है। सालीका पति (साढ़ू) भी अपना भाई ही है; क्योंकि दोनोंके ससुर एक हैं। मुने! श्वशुरको भी पिता मानना चाहिये। वह जन्मदाता पिताके ही तुल्य है। अन्नदाता, भयसे रक्षा करनेवाला, पत्नीका पिता, विद्यादाता और जन्मदाता—ये पाँच मनुष्योंके पिता हैं। अन्नदाताकी पत्नी, बहिन, गुरु-पत्नी, माता, सौतेली माँ, बेटी, बहू, नानी, दादी, सास, माताकी बहिन, पिताकी बहिन, चाची और मामी—ये चौदह माताएँ हैं। पुत्रके पुत्रके अर्थमें पौत्र शब्दका प्रयोग होता है तथा उसके भी पुत्रके अर्थमें प्रपौत्र शब्दका। प्रपौत्रके भी जो पुत्र आदि हैं, वे वंशज तथा कुलज कहे गये हैं। कन्याके पुत्रको दौहित्र कहते हैं और उसके जो पुत्र आदि हैं, वे बान्धव कहे गये हैं। भानजेके जो पुत्र आदि पुरुष हैं, उनकी भी बान्धव संज्ञा है। भतीजेके जो पुत्र आदि हैं, वे ज्ञाति माने गये हैं। गुरुपुत्र तथा भाई—इन्हें पोष्य एवं परम बान्धव कहा गया है। मुने! गुरुपुत्री और बहिनको भी पोष्या तथा मातृतुल्या माना गया है। पुत्रके गुरुको भी भ्राता मानना चाहिये। वह पोष्य तथा सुस्निग्ध बान्धव कहा गया है। पुत्रके श्वशुरको भी भाई समझना चाहिये। वह वैवाहिक बन्धु माना गया है। बेटीके श्वशुरके साथ भी यही सम्बन्ध बताया गया है। कन्याका गुरु भी अपना भाई ही है। वह सुस्निग्ध बान्धव माना गया है। गुरु और श्वशुरके भाइयोंका भी सम्बन्ध गुरुतुल्य ही कहा गया है। जिसके साथ बन्धुत्व (भाईका-सा व्यवहार) हो, उसे मित्र कहते हैं। जो सुख देनेवाला है, उसे मित्र जानना चाहिये और जो दुःख देनेवाला है, वह शत्रु कहलाता है। दैववश कभी बान्धव भी दुःख देनेवाला हो जाता है और जिससे कोई भी सम्बन्ध नहीं है, वह सुखदायक बन जाता है। विप्रवर! इस भूतलपर मनुष्योंके विद्याजनित, योनिजनित और प्रीतिजनित—ये तीन प्रकारके सम्बन्ध कहे गये हैं। मित्रताके सम्बन्धको प्रीतिजनित सम्बन्ध जानना चाहिये। वह सम्बन्ध परम दुर्लभ है। मित्रकी माता और मित्रकी पत्नी—ये माताके तुल्य हैं, इसमें संशय नहीं है। मित्रके भाई और पिता मनुष्योंके लिये चाचा, ताऊके समान आदरणीय हैं। (अध्याय १०)

सूर्यके अनुरोधसे सुतपाका अश्विनीकुमारोंको शापमुक्त करना तथा संध्यानिरत वैष्णव ब्राह्मणकी प्रशंसा

शौनकजीने पूछा—महाभाग सूतनन्दन! उस ब्राह्मणने अपनी पत्नीका त्याग करके शेष जीवनमें कौन-सा कार्य किया? अश्विनीकुमारोंके नाम क्या हैं? वे दोनों किसके वंशज हैं?

सौति बोले—ब्रह्मन्! उन ब्राह्मणदेवताका नाम सुतपा था। वे भरद्वाजकुलमें उत्पन्न बहुत बड़े मुनि थे। उन्होंने पहले हिमालयपर रहकर भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु)-की प्रसन्नताके लिये दीर्घकालतक तपस्या की थी। उस समय वे महातपस्वी और तेजस्वी मुनि ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान दिखायी देते थे। एक दिन उन्हें सहसा आकाशमें क्षणभरके लिये श्रीकृष्ण-ज्योतिका दर्शन हुआ। उस वेलामें उन्होंने भगवान्‌से यह वर माँगा—'प्रभो! मैं आत्मनिष्ठ हो प्रकृतिसे परे सर्वथा निर्लिप्त रहूँ।' उन्होंने मोक्ष नहीं माँगा, भगवान्‌से उनकी अविचल दास्य-भक्तिके लिये याचना की। तब आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! पहले स्त्री-परिग्रह (विवाह) करो। उसके बाद भोग-सम्बन्धी प्रारब्धके क्षीण हो जानेपर मैं तुम्हें अपनी दास्य-भक्ति दूँगा।' तदनन्तर स्वयं ब्रह्माजीने उन्हें पितरोंकी मानसी कन्या प्रदान की। मुनिप्रवर शौनक! उसके गर्भसे 'कल्याणमित्र' नामक पुत्रका जन्म हुआ। उस बालकके स्मरणमात्रसे किसीको अपने ऊपर वज्र या बिजली गिरनेका भय नहीं रहता। इतना ही नहीं, कल्याणमित्रके स्मरणसे निश्चय ही उन बन्धुजनोंकी भी प्राप्ति हो जाती है, जिनका दर्शन असम्भव होता है।

तदनन्तर महामुनि सुतपाने किसी कारणवश कल्याणमित्रकी माताका परित्याग करके उसी समय सहसा पूर्वापराधका स्मरण हो आनेसे सूर्यपुत्र अश्विनीकुमारको भी शाप दिया—'देवाधम! तू अपने भाईके साथ यज्ञभागसे वञ्चित और अपूज्य हो जा। तेरा अङ्ग व्याधिग्रस्त और जड़ हो जाय। तू अकीर्तिमान् (कलंकयुक्त) हो जा।' यों कहकर सुतपा अपने पुत्र कल्याणमित्रके साथ घर चले गये। तब सूर्यदेवता दोनों अश्विनीकुमारोंके साथ उनके निकट गये। शौनक! त्रिलोकीनाथ सूर्यने अपने रोगग्रस्त पुत्रोंके साथ मुनिवर सुतपाका दर्शन करके उनकी स्तुति करते हुए कहा।

सूर्य बोले—भगवन्! युग-युगमें प्रकट होनेवाले विष्णुस्वरूप ब्राह्मणदेवता! मुनीश्वर भारद्वाज! आप मेरे पुत्रोंका अपराध क्षमा करें। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर आदि सब देवता सदा ब्राह्मणके ही दिये हुए फल, फूल और जल आदिका उपभोग करते हैं। ब्राह्मणोंद्वारा ही आवाहित हुए देवता सदा सब लोकोंमें पूजित होते हैं। ब्राह्मणसे बढ़कर दूसरा कोई देवता नहीं है। ब्राह्मणके रूपमें साक्षात् श्रीहरि ही प्रकट होते हैं। ब्राह्मणके संतुष्ट होनेपर साक्षात् नारायणदेव संतुष्ट होते हैं तथा नारायणदेवके संतुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता संतुष्ट हो जाते हैं। गङ्गाजीके समान कोई तीर्थ नहीं है। भगवान् श्रीकृष्ण (विष्णु)- से बढ़कर कोई देवता नहीं है। शंकरजीसे बड़ा वैष्णव नहीं है और पृथ्वीसे बढ़कर कोई सहनशील नहीं है। सत्यसे बड़ा कोई धर्म नहीं है। पार्वतीजीसे बढ़कर सती-साध्वी स्त्री नहीं है। दैवसे बड़ा कोई बलवान् नहीं है तथा पुत्रसे अधिक दूसरा कोई प्रिय नहीं है। रोगके समान शत्रु, गुरुसे बढ़कर पूजनीय, माताके तुल्य बन्धु तथा पितासे बढ़कर दूसरा कोई मित्र नहीं है।

सूर्यका यह वचन सुनकर भारद्वाज सुतपा मुनिने उनको प्रणाम किया और अपनी तपस्याके फलसे उनके दोनों पुत्रोंको रोगमुक्त कर दिया। फिर कहा—'देवेश्वर! आगे चलकर आपके दोनों पुत्र यज्ञभागके अधिकारी होंगे।' यों कह सुतपा-

मुनिने भगवान् सूर्यको प्रणाम किया और तपस्याके क्षीण होनेके भयसे भयभीत हो श्रीहरिकी सेवामें मन लगाकर गङ्गातटको प्रस्थान किया। तत्पश्चात् भगवान् सूर्य दोनों पुत्रोंके साथ अपने धामको चले गये।

विद्वान् हो या विद्याहीन, जो ब्राह्मण प्रतिदिन संध्यावन्दन करके पवित्र होता है, वही भगवान् विष्णुके समान वन्दनीय है। यदि वह भगवान्से विमुख हो तो आदरका पात्र नहीं है। जो एकादशीको भोजन नहीं करता और प्रतिदिन श्रीकृष्णकी आराधना करता है, उस ब्राह्मणका चरणोदक पाकर कोई भी स्थान निश्चय ही तीर्थ बन जाता है। जो नित्यप्रति भगवान्को भोग लगाकर उनका उच्छिष्ट भोजन करता है तथा उनके नैवेद्यको मुखमें ग्रहण करता है, वह इस भूतलपर परम पवित्र एवं जीवन्मुक्त है। कुलीन द्विजोंका जो अन्न-जल भगवान् विष्णुको अर्पित नहीं किया गया, वह मल-मूत्रके समान है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। ब्रह्माजी तथा उनके पुत्र सनकादि—सभी विष्णुपरायण हैं; फिर उन्हींके कुलमें उत्पन्न हुआ ब्राह्मण श्रीहरिसे विमुख कैसे हो सकता है? माता-पिता, नाना आदि अथवा गुरुके संसर्ग-दोषसे भी जो ब्राह्मण श्रीहरिसे विमुख हो जाते हैं, वे जीते-जी ही मुर्देके समान हैं। वह कैसा गुरु, कैसा पिता, कैसा पुत्र, कैसा मित्र, कैसा राजा तथा कैसा बन्धु है, जो श्रीहरिके भजनकी बुद्धि (सलाह) नहीं देता? विप्रवर! अवैष्णव ब्राह्मणसे वैष्णव चाण्डाल श्रेष्ठ है; क्योंकि वह वैष्णव चाण्डाल अपने बन्धुगणोंसहित संसार-बन्धनसे मुक्त हो जाता है और वह अवैष्णव ब्राह्मण नरकमें पड़ता है*। ब्रह्मन्! जो प्रतिदिन संध्या-वन्दन नहीं करता अथवा भगवान् विष्णुसे विमुख रहता है, वह सदा अपवित्र माना गया है। जैसे विषहीन सर्पको सर्पाभासमात्र कहा गया है, उसी तरह संध्याकर्म तथा भगवद्भक्तिसे हीन ब्राह्मण ब्राह्मणाभासमात्र है। वैष्णव पुरुष अपने कुलकी करोड़ों और नाना आदिकी सैकड़ों पीढ़ियोंके साथ भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। वैष्णवजन सदा गोविन्दके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हैं और भगवान् गोविन्द सदा उन वैष्णवोंके निकट रहकर उन्हींका ध्यान किया करते हैं।† भक्तोंकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्रको नियुक्त करके भी श्रीहरि निश्चिन्त नहीं होते हैं; इसलिये स्वयं भी उनके पास मौजूद रहते हैं। (अध्याय ११)

ब्रह्माजीकी अपूज्यताका कारण, गन्धर्वराजकी तपस्यासे संतुष्ट हुए भगवान् शंकरका उन्हें अभीष्ट वर देना तथा नारदजीका उनके पुत्ररूपसे उत्पन्न हो उपबर्हण नामसे प्रसिद्ध होना

तदनन्तर शौनकजीके पूछनेपर सौतिने कहा—ब्रह्मन्! हंस, यति, अरणि, वोढु, पञ्चशिख, अपान्तरतमा तथा सनक आदि—इन सबको छोड़कर अन्य सभी ब्रह्मकुमार, जिनकी संख्या बहुत अधिक थी, सदा सांसारिक कार्योंमें संलग्न हो प्रजाकी सृष्टि करके गुरुजनों (पिता आदि)-

* स किं गुरुः स किं तातः स किं पुत्रः स किं सखा। स किं राजा स किं बन्धुर्न दद्याद् यो हरौ मतिम्॥
अवैष्णवाद् द्विजाद् विप्र चण्डालो वैष्णवो नरः। सगणः श्वपचो मुक्तो ब्राह्मणो नरकं व्रजेत्॥
(ब्रह्मखण्ड ११। ३८-३९)

† ध्यायन्ते वैष्णवाः शश्वत् गोविन्दपदपङ्कजम्। ध्यायते तांश्च गोविन्दः शश्वत् तेषां च संनिधौ॥
(ब्रह्मखण्ड ११। ४४)

की आज्ञाका पालन करने लगे। स्वयं प्रजापति ब्रह्मा अपने पुत्र नारदके शापसे अपूज्य हो गये। इसीलिये विद्वान् पुरुष ब्रह्माजीके मन्त्रकी उपासना नहीं करते। नारदजी अपने पिताके शापसे उपबर्हण नामक गन्धर्व हो गये। उनके वृत्तान्तका विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूँ; सुनिये।

इन दिनों जो गन्धर्वराज थे, वे सब गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ और महान् थे, उच्चकोटिके ऐश्वर्यसे सम्पन्न थे, परंतु किसी कर्मवश पुत्र-सुखसे वञ्चित थे। एक समय गुरुकी आज्ञा लेकर वे पुष्करतीर्थमें गये और वहाँ उत्तम समाधि लगाकर (अथवा अत्यन्त एकाग्रतापूर्वक) भगवान् शिवकी प्रसन्नताके लिये तप करने लगे। उस समय उनके मनमें बड़ी दीनता थी, वे दयनीय हो रहे थे। कृपानिधान वसिष्ठ मुनिने गन्धर्वराजको शिवके कवच, स्तोत्र तथा द्वादशाक्षर-मन्त्रका उपदेश दिया। दीर्घकालतक निराहार रहकर उपासना एवं जप-तप करनेपर भगवान् शिवने उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये। नित्य तेजःस्वरूप सनातन भगवान् शिव ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान हो दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रहे थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले वे भगवान् तपोरूप हैं, तपस्याके बीज हैं, तपका फल देनेवाले हैं और स्वयं ही तपस्याके फल हैं। शरणमें आये हुए भक्तको वे समस्त सम्पत्तियाँ प्रदान करते हैं। उस समय वे दिगम्बर-वेषमें वृषभपर आरूढ़ थे, उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश ले रखे थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल थी। उनके तीन नेत्र थे और उन्होंने मस्तकपर चन्द्रमाका मुकुट धारण कर रखा था। उनका जटाजूट तपाये हुए सुवर्णकी प्रभाको छीने लेता था। कण्ठमें नील चिह्न और कंधेपर नागका यज्ञोपवीत शोभा दे रहा था। सर्वज्ञ शिव सबके संहारक हैं। वे ही काल और मृत्युञ्जय हैं। वे परमेश्वर ग्रीष्म-ऋतुकी दोपहरीके करोड़ों सूर्योंके समान तेजस्वी थे। शान्तस्वरूप शिव तत्त्वज्ञान, मोक्ष तथा हरिभक्ति प्रदान करनेवाले हैं।

उन्हें देखते ही गन्धर्वने सहसा दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर प्रणाम किया और वसिष्ठजीके दिये हुए स्तोत्रसे उन परमेश्वरका स्तवन किया। तब कृपानिधान शिव उससे बोले—'गन्धर्वराज! तुम कोई वर माँगो।' तब गन्धर्वने उनसे भगवान् श्रीहरिकी भक्ति तथा परम वैष्णव पुत्रकी प्राप्तिका वर माँगा। गन्धर्वकी बात सुनकर दीनोंके स्वामी दीनबन्धु सनातन भगवान् चन्द्रशेखर हँसे और उस दीन सेवकसे बोले।

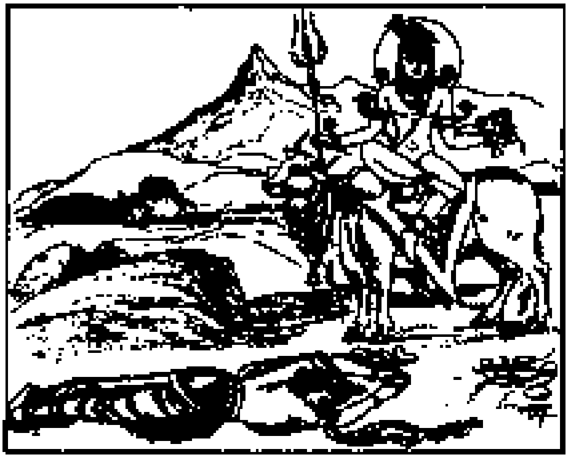

श्रीमहादेवजीने कहा—गन्धर्वराज! तुमने जो एक वर (हरिभक्ति)-को माँगा है, उसीसे तुम कृतार्थ होओगे। दूसरा वर तो चबाये हुएको चबानामात्र है। वत्स! जिसकी श्रीहरिमें सुदृढ़ एवं सर्वमङ्गलमयी भक्ति है, वह खेल-खेलमें ही सब कुछ करनेमें समर्थ है। भगवद्भक्त पुरुष अपने कुलकी और नानाके कुलकी असंख्य पीढ़ियोंका उद्धार करके निश्चय ही गोलोकमें जाता है। करोड़ों जन्मोंमें उपार्जित त्रिविध

पापोंका नाश करके वह अवश्य ही पुण्यभोग तथा श्रीहरिकी सेवाका सौभाग्य पाता है। मनुष्योंको तभीतक पत्नीकी इच्छा होती है, तभीतक पुत्र प्यारा लगता है, तभीतक ऐश्वर्यकी प्राप्ति अभीष्ट होती है और तभीतक सुख-दुःख होते हैं, जबतक कि उनका मन श्रीकृष्णमें नहीं लगता। श्रीकृष्णमें मन लगते ही भक्तिरूपी दुर्लङ्घ्य खड्ग मानवोंके कर्ममय वृक्षोंका मूलोच्छेद कर डालता है। जिन पुण्यात्माओंके पुत्र परम वैष्णव होते हैं, उनके वे पुत्र लीलापूर्वक कुलकी बहुसंख्यक पीढ़ियोंका उद्धार कर देते हैं। अहो! एक वरसे ही कृतार्थ हुआ पुरुष यदि दूसरा वर चाहता है तो मुझे आश्चर्य होता है। दूसरे वरकी क्या आवश्यकता है? लोगोंको मङ्गलकी प्राप्तिसे तृप्ति नहीं होती है। हमारे पास वैष्णवोंके लिये परम दुर्लभ धन संचित है। श्रीकृष्णकी भक्ति एवं दास्य-सुख हम लोग दूसरोंको देनेके लिये उत्सुक नहीं होते। वत्स! जो तुम्हारे मनमें अभीष्ट हो, ऐसा कोई दूसरा वर माँगो अथवा इन्द्रत्व, अमरत्व या दुर्लभ ब्रह्मपद प्राप्त करो। मैं तुम्हें सम्पूर्ण सिद्धियाँ, महान् योग और मृत्युञ्जय आदि ज्ञान यह सब कुछ सुखपूर्वक दे दूँगा, किंतु यहाँ श्रीहरिका दासत्व माँगनेका आग्रह छोड़ दो, क्षमा करो।

भगवान् शंकरकी यह बात सुनकर गन्धर्वके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये। वह अत्यन्त दीनभावसे सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता दीनेश्वर शिवसे बोला।

गन्धर्वने कहा—प्रभो! जिसका ब्रह्माजीकी दृष्टि पड़ते ही पतन हो जाता है, वह ब्रह्मपद स्वप्नके समान मिथ्या एवं क्षणभङ्गुर है। श्रीकृष्णभक्त उसे नहीं पाना चाहता। शिव! इन्द्रत्व, अमरत्व, सिद्धियोग आदि अथवा मृत्युञ्जय आदि ज्ञानकी प्राप्ति भी श्रीकृष्णभक्तको अभीष्ट नहीं है। श्रीहरिके सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य और सायुज्यको तथा निर्वाणमोक्षको भी वैष्णवजन नहीं लेना चाहते।* भगवान्‌की अविचल भक्ति तथा उनका परम दुर्लभ दास्य प्राप्त हो—यही सोते, जागते हर समय भक्तोंकी इच्छा रहती है। अतः यही हमारे लिये श्रेष्ठ वर है। प्रभो! आप याचकोंके लिये कल्पवृक्ष हैं; अतः मुझे वरके रूपमें श्रीहरिका दास्य-सुख तथा वैष्णव पुत्र प्रदान कीजिये। आपको संतुष्ट पाकर जो दूसरा कोई वर माँगता है, वह बर्बर है। शम्भो! यदि आप मुझे दुष्कर्मी मानकर यह उपर्युक्त वर नहीं देंगे तो मैं अपना मस्तक काटकर अग्निमें होम दूँगा।

गन्धर्वकी यह बात सुनकर भक्तोंके स्वामी तथा भक्तपर अनुग्रह करनेवाले कृपानिधान भगवान् शंकर उस दीन भक्तसे इस प्रकार बोले।

भगवान् शंकरने कहा—गन्धर्वराज! भगवान् विष्णुकी भक्ति, उनके दास्य-सुख तथा परम वैष्णव पुत्रकी प्राप्ति—इस श्रेष्ठ वरको उपलब्ध करो, खिन्न न होओ। तुम्हारा पुत्र वैष्णव होनेके साथ ही दीर्घायु, सद्गुणशाली, नित्य सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न, ज्ञानी, परम सुन्दर, गुरुभक्त तथा जितेन्द्रिय होगा।

मुने! ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहाँसे अपने धामको चले गये और गन्धर्वराज संतुष्ट होकर अपने घरको लौटे। अपने कर्ममें सफलता प्राप्त होनेपर सभी मानवोंके मानस-पङ्कज खिल उठते हैं। उस गन्धर्वराजकी पत्नीके गर्भसे भारतवर्षमें नारदजीने ही जन्म लिया। उस वृद्ध गन्धर्वपत्नीने गन्धमादन पर्वतपर अपने पुत्रका प्रसव किया था। उस समय गुरुदेव भगवान् वसिष्ठने यथोचित रीतिसे बालकका नामकरण-संस्कार किया। उस बालकका वह मङ्गलमय

* सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यसायुज्यं श्रीहरेरपि। तत्र निर्वाणमोक्षं च न हि वाञ्छन्ति वैष्णवाः॥
(ब्रह्मखण्ड १२। ३५)

संस्कार मङ्गलके दिन सम्पन्न हुआ। 'उप' शब्द अधिक अर्थका बोधक है और पुँल्लिङ्ग 'बर्हण' शब्द पूज्य-अर्थमें प्रयुक्त होता है। यह बालक पूज्य पुरुषोंमें सबसे अधिक है; इसलिये इसका नाम 'उपबर्हण' होगा—ऐसा वसिष्ठजीने कहा।

(अध्याय १२)

ब्रह्माजीके शापसे उपबर्हणका योगधारणाद्वारा अपने शरीरको त्याग देना, मालावतीका विलाप एवं प्रार्थना करना, देवताओंको शाप देनेके लिये उद्यत होना, आकाशवाणीद्वारा भगवान्‌का आश्वासन पाकर देवताओंका कौशिकीके तटपर मालावतीके दर्शन करना

सौति कहते हैं—शौनक! अपने यहाँ पुत्र-जन्मके उत्सवमें गन्धर्वराजने बड़ी प्रसन्नताके साथ ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न और धन दिये। समयानुसार बड़े होनेपर उपबर्हणने वसिष्ठजीके द्वारा परम दुर्लभ हरि-मन्त्रकी दीक्षा पाकर दुष्कर तपस्या प्रारम्भ की। एक समयकी बात है, वे गण्डकीके तटपर विराजमान थे। उन्हें युवावस्था प्राप्त हो चुकी थी। उस समय पचास गन्धर्वकन्याओंने उन्हें देखा। देखते ही वे सब-की-सब मोहित हो गयीं। उन सबने उपबर्हणको पतिरूपमें प्राप्त करनेका संकल्प ले योगशक्तिसे प्राणोंको त्याग दिया और चित्ररथ गन्धर्वके घर जन्म लेकर पिताकी आज्ञासे उनके साथ विवाह कर लिया। उपबर्हणने दीर्घकालतक उन सबके साथ विहार किया। चिरकालतक निरन्तर उनके साथ राज्य करके एक दिन वे ब्रह्माजीके स्थानपर गये और वहाँ श्रीहरिका यशोगान करने लगे। वहाँ रम्भाको नृत्य करते देख उपबर्हणके मनमें वासना जाग उठी और उनका वीर्य स्खलित हो गया। इससे उनकी बड़ी हँसी हुई और ब्रह्माजीने उन्हें शाप देते हुए कहा—'तुम गन्धर्व-शरीरको त्याग दो और शूद्रयोनिको प्राप्त हो जाओ। फिर समयानुसार वैष्णवोंका संसर्ग प्राप्त कर तुम पुनः मेरे पुत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हो जाओगे। बेटा! विपत्तिका सामना किये बिना पुरुषोंकी महत्ता प्रकट नहीं होती। संसारमें सभीको बारी-बारीसे सुख और दुःख प्राप्त होते हैं।'

ऐसा कहकर ब्रह्माजी पुष्करसे अपने धामको चले गये और उपबर्हण गन्धर्वने तत्काल उस शरीरको इस प्रकारसे त्याग दिया—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा नामवाले छः चक्रोंका क्रमशः भेदन करके उन्होंने इडा आदि नाड़ियोंका भेदन आरम्भ किया। इडा, सुषुम्णा, मेधा, पिङ्गला, प्राणहारिणी, सर्वज्ञानप्रदा, मनःसंयमनी, विशुद्धा, निरुद्धा, वायुसंचारिणी, तेजः-शुष्ककरी, बलपुष्टिकरी, बुद्धिसंचारिणी, ज्ञानजृम्भन-कारिणी, सर्वप्राणहरा तथा पुनर्जीवनकारिणी—इन सोलह नाड़ियोंका भेदन करके मनसहित जीवात्माको ब्रह्मरन्ध्रमें लाकर वे योगासनसे बैठ गये और दो घड़ीतक उन्होंने आत्माको आत्मामें ही लगाया। तत्पश्चात् वे जातिस्मर (पूर्वजन्मकी बातोंको याद रखनेवाले) योगिराज उपबर्हण ब्रह्मभावको प्राप्त हो गये। तीन तारवाली दुर्लभ वीणाको बायें कंधेपर रखकर दाहिने हाथमें शुद्ध स्फटिककी माला लिये वे वेदके सारतत्त्व तथा उद्धारके उत्तम बीजरूप परात्पर परब्रह्ममय (कृष्ण) इन दो अक्षरोंका जप करने लगे। उन्होंने कुशकी चटाईपर पूर्वकी ओर सिरहाना करके पश्चिम दिशाकी ओर दोनों चरण फैला दिये और इस तरह सो गये, मानो कोई पुरुष सो रहा हो।

उनके पिता गन्धर्वराजने उन्हें इस प्रकार देहत्याग करते देख स्वयं भी अपनी पत्नीके साथ

मन-ही-मन श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए योगधारणाद्वारा प्राण त्याग दिये और परब्रह्म परमात्माको प्राप्त कर लिया। उस समय उपबर्हणके सभी भाई-बन्धु और पत्नियाँ बारंबार विलाप करते हुए जोर-जोरसे रोने लगे। विष्णुकी मायासे मोहित होनेके कारण शोकसे पीड़ित हो वे उनके शरीरके पास गये। उपबर्हणकी पचास पत्नियोंमें जो उनकी परम प्रेयसी तथा प्रधान पटरानी थी, वह सती साध्वी मालावती अपने प्रियतमको छातीसे लगाकर अत्यन्त उच्च-स्वरसे रोदन करने लगी।

भाँति-भाँतिसे करुण विलाप करके मालावती बोली—कमलोद्भव ब्रह्माजीका यह कथन है कि मुझ सती-साध्वी, कुलीन नारियोंके लिये उसके पतिके सिवा दूसरा कोई विशिष्ट बान्धव नहीं दिखायी देता। अतः हे दिशाओंके स्वामी दिक्पालो! हे धर्म! हे प्रजापते! हे गिरीश शंकर! तथा हे कमलाकान्त नारायण! आप लोग मुझे पति-दान दीजिये।

ऐसा कहकर विरहसे आतुर हुई चित्ररथकी कन्या मालावती वहाँ उस दुर्गम गहन वनमें मूर्च्छित हो गयी। प्रियतमको अपने वक्षःस्थलसे लगाकर पूरे एक दिन और एक रात वह अचेत-अवस्थामें वहाँ पड़ी रही। उस समय सम्पूर्ण देवताओंने उसकी रक्षा की। प्रातःकाल फिर होशमें आनेपर वह पुनः जोर-जोरसे विलाप करने लगी। उस सतीने श्रीहरिको सम्बोधित करके पुनः वहाँ इस प्रकार कहा।

मालावती बोली—हे श्रीकृष्ण! आप सम्पूर्ण जगत्के नाथ (स्वामी तथा संरक्षक) हैं। नाथ! मैं जगत्से बाहर नहीं हूँ। प्रभो! आप ही जगत्के पालक हैं। फिर मेरा पालन क्यों नहीं कर रहे हैं! 'यह पति है और मैं इसकी स्त्री हूँ'। इस प्रकार जो 'इदम्' और 'मम' का भाव उत्पन्न होता है, वह आपकी मायाकी ही करामात है। आप ही सबके स्वामी हैं और ऐसा होना ही अधिक सम्भव है; क्योंकि आप ही सबके कारण हैं। कर्मके फलसे गन्धर्व उपबर्हण मेरे प्रियतम पति हुए और कर्मवश ही मैं उनकी प्रियतमा पत्नी हुई। अब कर्मभोगके अन्तमें वे मुझ प्रियाको किस स्थानमें रखकर कहाँ चले गये? अथवा प्रभो! कौन किसका पति या पुत्र है? तथा कौन किसकी प्रिया है? विधाता ही कर्मके अनुसार प्राणियोंको एक-दूसरेसे संयुक्त और वियुक्त करता रहता है। संयोगमें परम आनन्द मिलता है और वियोगमें प्राणोंपर संकट उपस्थित हो जाता है। संसारमें सदा मूर्ख और अज्ञानीके ही जीवनमें ऐसी बात देखी जाती है। आत्माराम महात्माके हृदयपर निश्चय ही संयोग-वियोगका वैसा प्रभाव नहीं पड़ता। विषय नाशवान् हैं, यह बात सर्वथा सत्य है, तथापि भूतलपर विषयभोग ही बान्धव बना हुआ है। यदि विषयभोगको स्वयं त्याग दिया जाय तो वह सुखका ही कारण होता है। परंतु जब दूसरे लोग बलपूर्वक उसका त्याग करवाते हैं, तब वह दुःखदायी जान पड़ता है। इसीलिये साधु पुरुष महान्-से-महान् मनोवाञ्छित ऐश्वर्यको स्वयं त्यागकर भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका, जहाँ आपत्ति या विपत्तिकी पहुँच नहीं है, सदा चिन्तन करते हैं। ज्ञानवान् संत पुरुष तो सर्वत्र हैं, परंतु भूतलपर ज्ञानवती स्त्री कौन है? अतः मुझ मूढ़ अबलाको आप मनोवाञ्छित पति प्रदान करें। मैं अमरत्व नहीं चाहती, इन्द्रपदकी इच्छा नहीं रखती और मोक्षके मार्गमें भी मेरी रुचि नहीं है; अतः आप मेरे इन श्रेष्ठ प्राणवल्लभको ही मुझे लौटा दें; क्योंकि ये मेरे लिये धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंकी प्राप्ति करानेवाले श्रेष्ठ देवता हैं।

जगदीश्वर! पृथ्वीपर जितनी भी स्त्री-जातियाँ हैं, उनमेंसे किसीको भी विधाताने इन गन्धर्वकुमारके समान गुणवान् पति नहीं दिया है।

इसके अनन्तर मालावती अपने स्वामीके गुणोंका बखान करने लगी और अन्तमें सहसा कुपित हो नारायण, ब्रह्मा, महादेव तथा धर्म आदि समस्त देवताओंको सम्बोधित करके उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गयी। तब ब्रह्मा आदि देवताओंने क्षीरसागरके तटपर जाकर भगवान् विष्णुकी शरण ली और मालावतीके भीषण शापसे बचानेकी उनसे प्रार्थना की। देवताओंके प्रार्थना कर चुकनेपर आकाशवाणी हुई—'देवताओ! अब तुम लोग जाओ। यज्ञके मूल हैं भगवान् विष्णु, वे ही ब्राह्मणका रूप धारण करके मालावतीको शान्त करने तथा तुमलोगोंको शापके संकटसे बचानेके लिये जायँगे।'

आकाशवाणीका यह कथन सुनकर सब देवताओंका हृदय प्रसन्नतासे खिल उठा। वे सब-के-सब उत्कण्ठित हो कौशिकीके तटपर मालावतीके स्थानमें गये। वहाँ पहुँचकर देवताओंने उस सती मालावती देवीको देखा। वह रत्नोंके सारभूत इन्द्रनील आदि मणियोंके आभूषणोंसे उद्दीप्त हो भगवती लक्ष्मीकी कला-सी जान पड़ती थी। उसके अङ्गोंको अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई सुनहरी साड़ी सुशोभित कर रही थी। भालदेशमें सिन्दूरकी बेंदी शोभा दे रही थी। वह शरत्कालके चन्द्रमाकी शान्त प्रभा-सी प्रकाशित होती और अपनी दीप्तिसे सम्पूर्ण दिशाओंको उद्भासित करती थी। पतिसेवारूप महान् धर्मका अनुष्ठान करके चिरकालसे संचित किये हुए तेजसे अग्निकी उत्तम एवं प्रज्वलित शिखा-सी उद्दीप्त हो रही थी। पतिके शवको छातीसे लगाकर योगासन लगाये बैठी थी और स्वामीकी सुरम्य वीणाको दाहिने हाथमें लिये हुए थी। प्राणवल्लभके प्रति भक्ति तथा स्नेहके कारण योगमुद्रापूर्वक तर्जनी और अङ्गुष्ठ अंगुलियोंके अग्रभागसे शुद्ध स्फटिक मणिकी माला धारण किये थी। मनोहर चम्पाकी-सी अङ्ग-कान्ति, बिम्बफलके सदृश

अरुण ओष्ठ और गलेमें रत्नोंकी माला शोभा पाती थी। वह सुन्दरी सोलह वर्षकी-सी अवस्थासे युक्त तथा नित्य सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न थी। वह सती अपने स्वामीके शवको बारंबार शुभदृष्टिसे देख रही थी।

इस रूपमें मालावतीको देखकर उन सब देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे सभी धर्मात्मा और धर्मभीरु थे; अतः क्षणभर वहीं अपनेको छिपाये खड़े रहे।

(अध्याय १३)

ब्राह्मण-बालकरूपधारी विष्णुका मालावतीके साथ संवाद, ब्राह्मणके पूछनेपर मालावतीका अपने दुःख और इच्छाको व्यक्त करना तथा ब्राह्मणका कर्मफलके विवेचनपूर्वक विभिन्न देवताओंकी आराधनासे प्राप्त होनेवाले फलका वर्णन करना, श्रीकृष्ण एवं उनके भजनकी महिमा बताना

सौति कहते हैं—मुने! क्षणभर वहाँ खड़े रहकर परम मङ्गलदायक ब्रह्मा और शिव आदि देवता मालावतीके निकट गये। देवताओंको आया देख पतिव्रता मालावतीने अपने प्राणवल्लभको उनके समीप रखकर उन सबको प्रणाम किया। तत्पश्चात् वह फूट-फूटकर रोने लगी। इसी बीचमें वहाँ उस देवसमाजके भीतर कोई ब्राह्मण-बालक आया। उसकी आकृति बड़ी मनोहर थी। दण्ड, छत्र, श्वेत वस्त्र और उज्ज्वल तिलक धारण किये तथा हाथमें एक बड़ी-सी पुस्तक लिये वह ब्राह्मण-कुमार अपने तेजसे प्रज्वलित-सा हो रहा था। उसके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। वह परम शान्त जान पड़ता था और मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। विष्णुकी मायासे विस्मित हुए देवताओंकी अनुमति ले वह वहीं देवसभाके मध्यभागमें बैठ गया और तारामण्डलके बीचमें प्रकाशित होनेवाले चन्द्रमाकी भाँति शोभा पाने लगा। वह ब्राह्मण-बालक समस्त देवताओं तथा मालती (मालावती)-से इस प्रकार बोला।

ब्राह्मणने कहा—यहाँ ब्रह्मा और शिव आदि सम्पूर्ण देवता किसलिये पधारे हैं? जगत्की सृष्टि करनेवाले साक्षात् विधाता यहाँ किस कार्यसे आये हैं? समस्त ब्रह्माण्डोंका संहार करनेवाले स्वयं सर्वव्यापी शम्भु भी यहाँ विराज रहे हैं। इसका क्या कारण है? तीनों लोकोंके समस्त कर्मोंके साक्षी धर्म भी यहाँ उपस्थित हैं, यह महान् आश्चर्य है। सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, काल, मृत्युकन्या तथा यम आदिका समागम ही यहाँ किसलिये सम्भव हुआ है? हे मालावति! तुम्हारी गोदमें अत्यन्त सूखा हुआ शव कौन है? जीती-जागती स्त्रीके पास मरा हुआ पुरुष क्यों है?

उस सभामें देवताओं तथा मालावतीसे ऐसा प्रश्न करके वे ब्राह्मण देवता जब चुप हो गये, तब मालावती उन विद्वान् ब्राह्मणको प्रणाम करके यों बोली।

मालावतीने कहा—मैं ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुको प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम करती हूँ, जिनके दिये हुए जल और पुष्पमात्रसे सम्पूर्ण देवता तथा श्रीहरि भी संतुष्ट होते हैं। प्रभो! मैं शोकसे आतुर हूँ। आप मेरे इस निवेदनपर ध्यान दीजिये; क्योंकि योग्य और अयोग्यपर भी कृपा करनेवाले संत-महात्माओंका अनुग्रह सदा सबपर समानरूपसे प्रकट होता है। विप्रवर! मैं उपबर्हणकी पत्नी तथा चित्ररथकी कन्या हूँ। मुझे सब लोग मालावती कहते हैं। मैंने लक्ष दिव्य वर्षोंतक अपने इन स्वामीके साथ प्रत्येक सुरम्य तथा मनोहर स्थानपर स्वच्छन्द क्रीडा की है। द्विजेन्द्र! आप विद्वान् हैं। साध्वी युवतियोंका अपने प्रियतमके प्रति जितना स्नेह होता है, वह सब आपको शास्त्रके अनुसार विदित है। मेरे पतिने अकस्मात् ब्रह्माजीका शाप प्राप्त होनेसे अपने प्राणोंको त्याग दिया है। अतः मैं देवताओंसे यह उद्देश्य रखकर विलाप करती हूँ कि मेरे पति जीवित हो जायँ। पृथ्वीपर सब लोग अपने-अपने कार्यकी सिद्धिके लिये व्यग्र रहते हैं। वे लाभ-हानिको नहीं जानते। केवल स्वार्थ-साधनमें तत्पर रहते हैं। सुख, दुःख, भय, शोक, संताप, ऐश्वर्य, परमानन्द, जन्म, मृत्यु और मोक्ष—ये सब मनुष्योंको अपने कर्म एवं प्रयत्नके अनुसार प्राप्त होते हैं। देवता सबके जनक हैं। वे ही कर्मोंका फल देते हैं। साथ ही वे लीलापूर्वक

कर्मरूपी वृक्षोंका मूलोच्छेद करनेमें भी समर्थ होते हैं। देवतासे बढ़कर कोई बन्धु नहीं है। देवतासे बढ़कर कोई बलवान् नहीं है। देवतासे बढ़कर दयालु और दाता भी दूसरा कोई नहीं है। मैं समस्त देवताओंसे याचना करती हूँ कि वे मुझे पतिदान दें। यही मुझे अभीष्ट है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षके फल देनेवाले देवता कल्पवृक्षरूप हैं। इसलिये मैं इनसे याचना करती हूँ, ये मेरा मनोरथ सफल करें। यदि देवतालोग मुझे अभीष्ट पतिदान देंगे, तब तो इनका भला है; अन्यथा मैं इन सबको निश्चय ही स्त्रीके वधका पाप दूँगी। इतना ही नहीं, मैं इन सबको दारुण एवं दुर्निवार शाप भी दे सकती हूँ। सतीके शापको टालना बहुत कठिन होता है। किस तपस्यासे उसका निवारण किया जायगा?

शौनक! ऐसा कहकर शोकातुर पतिव्रता मालावती उस देवसभामें चुप हो गयी। तब उन श्रेष्ठ ब्राह्मणने उससे कहा।

ब्राह्मण बोले—मालावती! इसमें संदेह नहीं कि देवतालोग कर्मोंका फल देनेवाले हैं; परंतु वह फल तत्काल नहीं, देरसे मिलता है। ठीक वैसे ही, जैसे किसान बोये हुए अनाजका फल तुरंत नहीं, देरसे पाता है। पतिव्रते! गृहस्थ पुरुष हलवाहेके द्वारा अपने खेतमें जो अनाज बोता है, उसका समयानुसार अङ्कुर प्रकट होता है। फिर समय आनेपर वह वृक्ष होता और फलता भी है। तत्पश्चात् अन्य समयमें वह पकता है और अन्य समयमें गृहस्थ पुरुष उसके फलको पाता है। इसी प्रकार सबके विषयमें समझ लेना चाहिये। प्रत्येक कर्मका फल देरसे ही मिलता है। संसारमें गृहस्थ पुरुष जो बीज बोता है, वही भगवान् विष्णुकी मायासे समयानुसार अङ्कुर और वृक्ष होता है और यथासमय गृहस्थ पुरुषको उसके फलकी उपलब्धि होती है। पुण्यात्मा पुरुष पुण्यभूमिमें चिरकालतक जो तप करता है, उसका फल देनेवाले सचमुच देवता ही हैं; इसमें संशय नहीं है। ब्राह्मणोंके मुखमें तथा ऊसर भूमिसे रहित उत्तम खेतमें मनुष्य भक्तिभावसे जो आहुति डालता है, उसका फल उसे निश्चय ही प्राप्त होता है। बल, सौन्दर्य, ऐश्वर्य, धन, पुत्र, स्त्री और उत्तम पति—कोई भी पदार्थ तपस्याके बिना नहीं मिलता। अतः तपके बिना क्या हो सकता है? जो भक्तिभावसे प्रकृति (दुर्गादेवी)-का सेवन करता है, वह प्रत्येक जन्ममें विनयशील सद्गुणवती तथा सुन्दरी प्राणवल्लभा पत्नीको प्राप्त करता है। प्रकृतिके ही वरसे भक्त पुरुष लीलापूर्वक अविचल लक्ष्मी, पुत्र-पौत्र, भूमि, धन और संततिको पाता है। भगवान् शिव कल्याणस्वरूप, कल्याणदाता और कल्याणप्राप्तिके कारण हैं। वे ज्ञानानन्दस्वरूप, महात्मा, परमेश्वर एवं मृत्युञ्जय हैं। जो भक्तिभावसे उन महेश्वरका सेवन करता है, वह पुरुष प्रत्येक जन्ममें सुन्दरी पत्नी पाता है और उनकी आराधना करनेवाली स्त्री प्रत्येक जन्ममें उत्तम पति पाती है। भगवान् हरके वरसे मनुष्यको विद्या, ज्ञान, उत्तम कविता, पुत्र-पौत्र, उत्कृष्ट लक्ष्मी, धन, बल और पराक्रमकी प्राप्ति होती है। जो मानव ब्रह्माजीका भजन करता है, वह भी संतान और लक्ष्मीको पाता है। ब्रह्माजीके वरदानसे मनुष्यको विद्या, ऐश्वर्य और आनन्दकी प्राप्ति होती है। जो मनुष्य भक्तिभावसे दीननाथ, दिनेश्वर सूर्यकी आराधना करता है, वह निश्चय ही यहाँ विद्या, आरोग्य, आनन्द, धन और पुत्र पाता है। जो सबसे प्रथम पूजने योग्य, सर्वेश्वर, सनातन, देवाधिदेव गणेशजीकी भक्तिभावसे पूजा करता है, उसके जन्म-जन्ममें समस्त विघ्नोंका नाश होता है। वह सोते-जागते हर समय परम आनन्दका अनुभव करता है। गणेशजीके वरदानसे उसको ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र, धन, प्रजा, ज्ञान, विद्या और उत्तम कवित्वकी प्राप्ति होती है। जो देवताओंके स्वामी लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुका भजन करता है, वह यदि वर पानेका इच्छुक

हो तो उसे यह सम्पूर्ण वर प्राप्त हो जाता है। अन्यथा अवश्य ही उसे मोक्षकी प्राप्ति होती है। शान्तस्वरूप जगत्पालक श्रीविष्णुकी सेवा करके सचमुच ही मनुष्य समस्त तप, सम्पूर्ण धर्म तथा परम उत्तम यश एवं कीर्तिको प्राप्त कर लेता है। जो मूढ़ सर्वेश्वर विष्णुका सेवन करके उसके बदलेमें कोई वर लेना चाहता है, उसे विधाताने ठग लिया और विष्णुकी मायाने मोहमें डाल दिया। नारायणकी माया सब कुछ करनेमें समर्थ, सबकी कारणभूता और परमेश्वरी है। वह जिसपर कृपा करती है, उसे विष्णु-मन्त्र देती है।

जो धर्मात्मा मनुष्य धर्मका भजन करता है, वह निश्चय ही सम्पूर्ण धर्मका फल पाता है और इहलोकमें सुख भोगकर परलोकमें विष्णुके परमपदको प्राप्त कर लेता है। जो मनुष्य जिस देवताकी भक्तिभावसे आराधना करता है, वह पहले उसीको पाता है, फिर समयानुसार उस देवताके साथ ही वह उत्तम विष्णुधाममें चला जाता है।

भगवान् श्रीकृष्ण प्रकृतिसे परे तथा तीनों गुणोंसे अतीत—निर्गुण हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके सेव्य, उनके आदिकारण, परात्पर अविनाशी परब्रह्म एवं सनातन भगवान् हैं। साकार, निराकार, ज्योतिःस्वरूप, स्वेच्छामय, सर्वव्यापी, सर्वाधार, सर्वेश्वर, परमानन्दमय, ईश्वर, निर्लिप्त तथा साक्षिरूप हैं। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य विग्रह धारण करते हैं। जो उनकी आराधना करता है, वह सचमुच ही जीवन्मुक्त है। वह बुद्धिमान् पुरुष कोई वर नहीं ग्रहण करता। सालोक्य आदि चारों प्रकारकी मुक्तियोंको भी वह तुच्छ समझने लगता है। ब्रह्मत्व, अमरत्व और मोक्ष भी उसके लिये तुच्छ-सा हो जाता है। ऐश्वर्यको वह मिट्टीके ढेलेके समान नश्वर मानता है। इन्द्रत्व, मनुत्व और चिरजीवीत्वको भी पानीके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर समझकर अत्यन्त तुच्छ गिनने लगता है। सोते-जागते हर समय श्रीकृष्णकी सेवा ही चाहता है। उनकी दासताके सिवा दूसरा कोई पद नहीं मानता। श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें निरन्तर एवं अविचल भक्ति पाकर वह पूर्णकाम हो जाता है। श्रीकृष्णका भक्त उन परिपूर्णतम ब्रह्मका सेवन करके सदा सुस्थिर रहता है। वह अपने कुलकी करोड़ों, नानाके कुलकी सैकड़ों तथा श्वशुरके कुलकी सैकड़ों पूर्व पीढ़ियोंका लीलापूर्वक उद्धार करके दास, दासी, माता और पत्नीका तथा पुत्रके बादकी भी सैकड़ों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है और स्वयं निश्चय ही गोलोकमें जाता है। मनुष्य तभीतक कामासक्त होकर गर्भमें निवास करता है, तभीतक यमयातना भोगता है और गृहस्थ पुरुष तभीतक भोगोंकी इच्छा रखता है, जबतक कि श्रीकृष्णका सेवन नहीं करता। यमराज उस भक्तके कर्मसम्बन्धी लेखको तत्काल भयके मारे दूर कर देता है। ब्रह्माजी पहलेसे ही उसके स्वागतके लिये मधुपर्क आदि तैयार करके रखते हैं और सोचते हैं कि अहो! यह मेरे लोकको लाँघकर इसी मार्गसे यात्रा करेगा। कोटिशत कल्पोंमें भी उसका वहाँसे निष्कासन नहीं होगा। जैसे सर्प गरुड़को देखते ही भाग जाते हैं, उसी तरह करोड़ों जन्मोंके किये हुए पाप भी श्रीकृष्ण-भक्तसे भयभीत हो उसे छोड़कर पलायन कर जाते हैं। श्रीकृष्ण-भक्त मानव-शरीरको छोड़नेके बाद निर्भय हो गोलोकमें जाता है। वहाँ जानेपर दिव्य शरीर धारण करके सदा श्रीकृष्णकी सेवा करता है। श्रीकृष्ण जबतक गोलोकमें निवास करते हैं, तबतक भक्त पुरुष निरन्तर वहाँ उनकी सेवामें रहता है। श्रीकृष्णका दास ब्रह्माकी नश्वर आयुको एक निमेषभरका मानता है।

(अध्याय १४)

ब्राह्मणद्वारा अपनी शक्तिका परिचय, मृतकको जीवित करनेका आश्वासन, मालावतीका पतिके महत्त्वको बताना और काल, यम, मृत्युकन्या आदिको ब्राह्मणद्वारा बुलवाकर उनसे बात करना, यम आदिका अपनेको ईश्वरकी आज्ञाका पालक बताना और उसे 'श्रीकृष्णचिन्तन' के लिये प्रेरित करना

ब्राह्मण बोले—पतिव्रते! इस समय तुम्हारे प्रियतम किस रोगसे मरे हैं? मैं चिकित्सक भी हूँ। अतः समस्त रोगोंकी चिकित्सा भी जानता हूँ। सती मालावति! कोई रोगसे मृतकतुल्य हो गया हो अथवा मर गया हो, किंतु यदि एक सप्ताहके भीतरकी ही घटना हो तो मैं उस जीवको चिकित्सा-सम्बन्धी महान् ज्ञानके द्वारा चुटकी बजाते हुए जीवित कर सकता हूँ। जैसे व्याध पशुको बाँधकर सामने ला देता है, उसी प्रकार मैं जरा, मृत्यु, यम, काल तथा व्याधियोंको बाँधकर तुम्हारे सामने लाने और तुम्हें सौंप देनेकी शक्ति रखता हूँ। सुन्दरि! जिस उपायसे रोग देहधारियोंके शरीरोंमें न फैले, वह तथा रोगोंका जो-जो कारण है, वह सब मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मैं शास्त्रके तत्त्वज्ञानके अनुसार उस उपायको भी जानता हूँ, जिससे व्याधियोंका दुष्ट एवं अमङ्गलकारी बीज अङ्कुरित ही न हो। जो योगसे अथवा रोगजनित कष्टसे देह-त्याग करता है, उसके जीवित होनेका उपाय क्या है? इसे भी मैं योगधर्मके प्रभावसे जानता हूँ।

ब्राह्मणकी यह बात सुनकर सती मालावतीके मनमें उत्साह हुआ। वह मुस्करायी। उसके चित्तमें स्नेह उमड़ आया और वह हर्षसे भरकर बोली।

मालावतीने कहा—अहो! इस बालकके मुखसे कैसी आश्चर्यजनक बात सुनी गयी है? यह अवस्थामें तो बहुत छोटा दिखायी देता है; परंतु इसका ज्ञान योगवेत्ताओंके समान उच्च कोटिका है। ब्रह्मन्! आपने मेरे प्रियतम पतिको जीवित कर देनेकी प्रतिज्ञा की है। सत्पुरुषोंका वचन कभी मिथ्या नहीं होता। अतः उसी क्षण मुझे विश्वास हो गया कि मेरे पति जीवित हो गये। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण! आप मेरे प्राणवल्लभको पीछे जिलाइयेगा। पहले मैं संदेहवश जो-जो पूछती हूँ, उसी-उसी बातको आप बतानेकी कृपा करें। इस सभामें जब मेरे प्राणनाथ जीवित हो जायँगे और जीवित होकर यहाँ मौजूद रहेंगे, तब मैं उनके निकट आपसे कोई बात पूछ नहीं सकूँगी; क्योंकि उनका स्वभाव बड़ा तीखा है। इस सभामें ये ब्रह्मा आदि देवता विद्यमान हैं। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ आप भी यहाँ उपस्थित हैं। परंतु आप सब लोगोंमेंसे कोई भी मेरा स्वामी नहीं है। यदि स्वामी अपनी पत्नीकी रक्षा करता है तो कोई भी उसका खण्डन नहीं कर सकता तथा यदि वह उसका शासन करता या उसे दण्ड देता है तो इस भूतलपर दूसरा कोई स्वामीसे उसकी रक्षा करनेवाला नहीं है। इसी प्रकार देवताओंमें, इन्द्रमें अथवा ब्रह्मा और रुद्रमें भी ऐसी शक्ति नहीं है। स्वामी और स्त्रीमें पति-पत्नीभाव-सम्बन्ध जानना चाहिये।

स्वामी ही स्त्रियोंका कर्ता, हर्ता, शासक, पोषक, रक्षक, इष्टदेव तथा पूज्य है। नारीके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई गुरु नहीं है। जो उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई कन्या है, वह सदा अपने प्राणवल्लभके वशमें रहती है। जो स्वतन्त्र होती है वह स्वभावसे ही दुष्टा है। उसे निश्चय ही 'कुलटा' कहा गया है। जो दुष्टा है, मनुष्योंमें अधम है तथा पर-पुरुषका सेवन करती है, वही सदा अपने पतिकी निन्दा करती है। अवश्य ही वह किसी नीच कुलकी कन्या होती है। ब्रह्मन्! मैं उपबर्हणकी पत्नी, चित्ररथकी पुत्री और गन्धर्वराजकी पुत्रवधू हूँ। मैंने सदा अपने प्रियतम पतिमें भक्ति-भाव रखा है। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण! आप सबको

यहाँ बुलानेमें समर्थ हैं, अतः काल, यम तथा मृत्युकन्याको मेरे पास ले आइये।

मालावतीकी यह बात सुनकर वेदवेत्ताओंमें उत्तम ब्राह्मणने उस सभामें उन सबको बुलाकर प्रत्यक्ष खड़ा कर दिया। सती मालावतीने सबसे पहले मृत्युकन्याको देखा। उसका रूप-रंग काला था, वह देखनेमें भयंकर थी। उसने लाल रंगके कपड़े पहन रखे थे। वह मन्द-मन्द मुसकरा रही थी। उसके छः भुजाएँ थीं। वह शान्त, दयालु और महासती थी तथा अपने स्वामी कालके वाम-भागमें चौंसठ पुत्रोंके साथ खड़ी थी। तत्पश्चात् सती मालावतीने नारायणके अंशभूत कालको भी सामने खड़ा देखा। उसका रूप बड़ा ही उग्र, विकट तथा ग्रीष्म-ऋतुके सूर्यकी भाँति प्रचण्ड तेजसे युक्त था। उसके छः मुख, सोलह भुजाएँ और चौबीस नेत्र थे। पैरोंकी संख्या भी छः ही थी। शरीरका रंग काला था। उसने भी लाल वस्त्र पहन रखे थे। वह देवताओंका भी देवता है। उसकी विकराल आकृति है। वह सर्वसंहाररूपी, कालका अधिदेवता, सर्वेश्वर एवं सनातन भगवान् है। उसके मुखपर मन्द मुस्कान-जनित प्रसन्नता दृष्टिगोचर होती थी, उसने हाथमें अक्षमाला धारण कर रखी थी और वह अपने स्वामी तथा आत्मा परम ब्रह्म श्रीकृष्णका नाम जप रहा था।

इसके बाद सतीने अपने सामने अत्यन्त दुर्जय व्याधिसमूहोंको देखा, जो अवस्थामें अत्यन्त बड़े-बूढ़े होनेपर भी अपनी माताके निकट दूध पीते बच्चोंके समान दिखायी देते थे। तदनन्तर उसने यमको सामने देखा, जो धर्माधर्मके विचारको जाननेवाले परम धर्मस्वरूप तथा पापियोंके भी शासक हैं। उनके पैर स्थूल थे। शरीरकी कान्ति श्याम थी। धर्मनिष्ठ सूर्यनन्दन यम परब्रह्मस्वरूप सनातन भगवान् श्रीकृष्णका मन्त्र जप रहे थे। इन सबको देख महासाध्वी मालावतीके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उसने निःशंक होकर पहले यमसे पूछा।

मालावती बोली—धर्मशास्त्रविशारद। धर्मनिष्ठ धर्मराज! प्रभो! आप समयका उल्लङ्घन करके मेरे प्राणनाथको कैसे लिये जाते हैं?

यमराजने कहा—पतिव्रते! समय पूरा हुए बिना तथा ईश्वरकी आज्ञा मिले बिना इस भूतलपर किसीकी मृत्यु नहीं होती। जो मरा नहीं है, ऐसे पुरुषको मैं नहीं ले जाता। मैं, काल, मृत्युकन्या तथा अत्यन्त दुर्जय व्याधिसमूह—ये आयु पूर्ण होनेपर, जिसके मरणका समय आ पहुँचता है, उसीको ईश्वरकी आज्ञासे ले जाते हैं। मृत्युकन्या विचारशील है। यह आयु निःशेष होनेपर जिसको प्राप्त होती है, उसीको मैं ले जाता हूँ। तुम उसीसे पूछो। वह किस कारणसे जीवको प्राप्त होती है?

मालावती बोली—मृत्युकन्ये! स्वामीके वियोगसे होनेवाली वेदनाको जानती हो। अतः प्यारी सखी! बताओ, मेरे जीते-जी तुम मेरे प्राणवल्लभको क्यों हर ले जाती हो?

मृत्युकन्या बोली—पूर्वकालमें विश्वस्रष्टा ब्रह्माजीने इस कर्मके लिये मेरी ही सृष्टि की। पतिव्रते! मैं बड़ी भारी तपस्या करके भी इस कार्यको त्यागनेमें असमर्थ हूँ। सुन्दरि! इस संसारमें यदि कोई सतियोंमें सबसे श्रेष्ठ और तेजस्विनी सती हो तथा वह मुझे ही अपने तेजसे भस्म कर डालनेमें समर्थ हो जाय, तब तो यहाँ सारी ही आपत्तियोंकी शान्ति हो जायगी। फिर मेरे पुत्रों और स्वामीकी जो दशा होनी होगी सो हो जायगी। कालसे प्रेरित होकर ही मैं और मेरे पुत्र व्याधिगण किसी प्राणीका स्पर्श करते हैं। अतः इसमें मेरा तथा मेरे पुत्रोंका कोई दोष नहीं है। अब तुम मेरा निश्चित विचार सुनो। भद्रे! धर्मसभामें बैठनेवाले जो धर्मज्ञ महात्मा काल हैं, उनसे इस विषयमें पूछो। फिर जो उचित हो वह अवश्य करना।

मालावतीने कहा—हे काल! आप कर्मोंके साक्षी हैं, कर्मस्वरूप हैं तथा नारायणके सनातन अंश हैं। भगवन्! आप परमेश्वरको नमस्कार है। प्रभो! मैं जीवित हूँ। फिर मेरे प्रियतमको आप क्यों हर ले जाते हैं? कृपानिधे! आप सर्वज्ञ हैं। अतः सबके दुःखको भी जानते हैं।

कालपुरुष बोले—पतिव्रते! मैं अथवा यमराज किस गिनतीमें हैं। मृत्युकन्या और व्याधियोंकी क्या बिसात है। हम सब लोग सदा ईश्वरकी आज्ञाका पालन करनेके लिये भ्रमण करते हैं। जिन्होंने प्रकृतिकी सृष्टि की है; ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंको प्रकट किया है; मुनीन्द्र, मनु और मानव आदि समस्त जन्तु जिनसे उत्पन्न हुए हैं, योगिजन जिनके चरणारविन्दका चिन्तन करते हैं, बुद्धिमान् मनुष्य जिन परमात्माके पवित्र नामोंका सदा जप करते हैं, जिनके भयसे हवा चलती है और सूर्य तपता है, जिनकी आज्ञासे ब्रह्मा सृष्टि और विष्णु पालन करते हैं, जिनके आदेशसे शंकर सम्पूर्ण जगत्‌का संहार करते हैं, कर्मोंके साक्षी धर्म जिनकी आज्ञाके परिपालक हैं, राशिचक्र और समस्त ग्रह जिनका शासन शिरोधार्य करके आकाशमें चक्कर लगाते हैं, दिशाओंके स्वामी दिक्पाल जिनकी आज्ञाका पालन करते हैं। सती मालावति! जिनकी आज्ञासे वृक्ष समयपर फूल और फल धारण करते और देते हैं, जिनके आदेशसे पृथ्वी जलका तथा समस्त चराचर प्राणियोंका आधार बनी हुई है, क्षमाशील वसुधा जिनके भयसे कभी-कभी सहसा कम्पित हो उठती है, जिनकी मायासे माया भी सदा मोहित रहती है, सबको जन्म देनेवाली प्रकृति जिनके भयसे भीत रहती है, वस्तुओंकी सत्ताको बतानेवाले वेद भी जिनका अन्त नहीं जानते, समस्त पुराण जिनकी ही स्तुतिका पाठ करते हैं, जिन तेजोमय सर्वव्यापी भगवान्‌की सोलहवीं कलास्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महाविराट् पुरुष उन्हींके नामका जप करते हैं, वे ही सबके ईश्वर, काल-के-काल, मृत्यु-की-मृत्यु तथा परात्पर परमात्मा हैं। उन्हीं श्रीकृष्णका तुम चिन्तन करो। वे कृपानिधान श्रीकृष्ण तुम्हें सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु तथा पति भी प्रदान करेंगे। ये सब देवता जिनकी आज्ञाके अधीन हैं, वे सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता हैं।

शौनक! ऐसा कहकर कालपुरुष चुप हो गये। तत्पश्चात् ब्राह्मणने पुनः वार्ता आरम्भ की।

(अध्याय १५)

मालावतीके पूछनेपर ब्राह्मणद्वारा वैद्यकसंहिताका वर्णन, आयुर्वेदकी आचार्यपरम्परा, उसके सोलह प्रमुख विद्वानों तथा उनके द्वारा रचित तन्त्रोंका नाम-निर्देश, ज्वर आदि चौंसठ रोग, उनके हेतुभूत वात, पित्त, कफकी उत्पत्तिके कारण और उनके निवारणके उपायोंका विवेचन

ब्राह्मण बोले—शुभे! तुमने काल, यम, मृत्युकन्या तथा व्याधिगणोंका साक्षात्कार कर लिया। अब तुम्हारे मनमें क्या संदेह है? उसे पूछो।

ब्राह्मणकी बात सुनकर सती मालावतीको बड़ा हर्ष हुआ। उसके मनमें जो प्रश्न था उसे उसने उन जगदीश्वरके समक्ष प्रस्तुत किया।

मालावतीने कहा—ब्रह्मन्! आपने जो यह कहा कि रोग प्राणियोंके प्राणोंका अपहरण करता है, रोगके जो नाना प्रकारके कारण हैं, उन सबका वेद (आयुर्वेद)-में निरूपण किया गया है, उसके

सम्बन्धमें मेरा निवेदन यों है—जिसका निवारण करना कठिन है, वह अमङ्गलकारी रोग जिस उपायसे शरीरमें न फैले, उसका आप वर्णन करनेकी कृपा करें। मैंने जो-जो बात पूछी है या नहीं पूछी है तथा जो ज्ञात है अथवा नहीं ज्ञात है, वह सब कल्याणकी बात आप मुझे बताइये; क्योंकि आप दीनोंपर दया करनेवाले गुरु हैं।

मालावतीका वचन सुनकर ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णुने वहाँ 'वैद्यकसंहिता' का वर्णन आरम्भ किया।

ब्राह्मण बोले—जो सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता, समस्त कारणोंके भी कारण तथा वेद-वेदाङ्गोंके बीजके भी बीज हैं, उन परमेश्वर श्रीकृष्णको मैं वन्दना करता हूँ। समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गलकारी बीजस्वरूप उन सनातन परमेश्वरने मङ्गलके आधारभूत चार वेदोंको प्रकट किया। उनके नाम हैं—ऋक्, यजु, साम और अथर्व। उन वेदोंको देखकर और उनके अर्थका विचार करके प्रजापतिने आयुर्वेदका संकलन किया। इस प्रकार पञ्चम वेदका निर्माण करके भगवान्ने उसे सूर्यदेवके हाथमें दे दिया। उससे सूर्यदेवने एक स्वतन्त्र संहिता बनायी। फिर उन्होंने अपने शिष्योंको वह अपनी 'आयुर्वेदसंहिता' दी और पढ़ायी। तत्पश्चात् उन शिष्योंने भी अनेक संहिताओंका निर्माण किया। पतिव्रते! उन विद्वानोंके नाम और उनके रचे हुए तन्त्रोंके नाम, जो रोगनाशके बीजरूप हैं, मुझसे सुनो। धन्वन्तरि, काशिराज, दिवोदास, दोनों अश्विनीकुमार, नकुल, सहदेव, सूर्यपुत्र यम, च्यवन, जनक, बुध, जाबाल, जाजलि, पैल, करथ और अगस्त्य—ये सोलह विद्वान् वेद-वेदाङ्गोंके ज्ञाता तथा रोगोंके नाशक (वैद्य) हैं। पतिव्रते! सबसे पहले भगवान् धन्वन्तरिने 'चिकित्सा-तत्त्वविज्ञान' नामक एक मनोहर तन्त्रका निर्माण किया। फिर दिवोदासने 'चिकित्सा-दर्पण' नामक ग्रन्थ बनाया। काशिराजने 'दिव्य चिकित्सा-कौमुदी' का प्रणयन किया। दोनों अश्विनीकुमारोंने 'चिकित्सा-सारतन्त्र' की रचना की, जो भ्रमका निवारण करनेवाला है। नकुलने 'वैद्यकसर्वस्व' नामक तन्त्र बनाया। सहदेवने 'व्याधिसिन्धुविमर्दन' नामक ग्रन्थ तैयार किया। यमराजने 'ज्ञानार्णव' नामक महातन्त्रकी रचना की। भगवान् च्यवन मुनिने 'जीवदान' नामक ग्रन्थ बनाया। योगी जनकने 'वैद्यसंदेहभंजन' नामक ग्रन्थ लिखा। चन्द्रकुमार बुधने 'सर्वसार,' जाबालने 'तन्त्रसार' और जाजलि मुनिने 'वेदाङ्ग-सार' नामक तन्त्रकी रचना की। पैलने 'निदान-तन्त्र', करथने उत्तम 'सर्वधर-तन्त्र' तथा अगस्त्यजीने 'द्वैधनिर्णय' तन्त्रका निर्माण किया। ये सोलह तन्त्र चिकित्सा-शास्त्रके बीज हैं, रोग-नाशके कारण हैं तथा शरीरमें बलका आधान करनेवाले हैं। आयुर्वेदके समुद्रको ज्ञानरूपी मथानीसे मथकर विद्वानोंने उससे नवनीत-स्वरूप ये तन्त्र-ग्रन्थ प्रकट किये हैं। सुन्दरि! इन सबको क्रमशः देखकर तुम दिव्य भास्कर-संहिताका तथा सर्वबीजस्वरूप आयुर्वेदका पूर्णतया ज्ञान प्राप्त कर लोगी। आयुर्वेदके अनुसार रोगोंका परिज्ञान करके वेदनाको रोक देना—इतना ही वैद्यका वैद्यत्व है। वैद्य आयुका स्वामी नहीं है—वह उसे घटा अथवा बढ़ा नहीं सकता। चिकित्सक आयुर्वेदका ज्ञाता, चिकित्साकी क्रियाको यथार्थरूपसे जाननेवाला धर्मनिष्ठ और दयालु होता है; इसलिये उसे 'वैद्य' कहा गया है।

दारुण ज्वर समस्त रोगोंका जनक है। उसे रोकना कठिन होता है। वह शिवका भक्त और योगी है। उसका स्वभाव निष्ठुर होता है और आकृति विकृत (विकराल)। उसके तीन पैर, तीन सिर, छः हाथ और नौ नेत्र हैं। वह भयंकर ज्वर काल, अन्तक और यमके समान विनाशकारी होता है। भस्म ही उसका अस्त्र है तथा रुद्र उसके देवता हैं। मन्दाग्नि उसका जनक है।

मन्दाग्निके जनक तीन हैं—वात, पित्त और कफ। ये ही प्राणियोंको दुःख देनेवाले हैं। वातज, पित्तज और कफज—ये ज्वरके तीन भेद हैं। एक चौथा ज्वर भी होता है, जिसे त्रिदोषज भी कहते हैं। पाण्डु, कामल, कुष्ठ, शोथ, प्लीहा, शूलक, ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, खाँसी, व्रण (फोड़ा), हलीमक, मूत्रकृच्छ्र, रक्तविकार या रक्तदोषसे उत्पन्न होनेवाला गुल्म, विषमेह, कुब्ज, गोद, गलगंड (घेघा), भ्रमरी, सन्निपात, विसूचिका (हैजा) और दारुणी आदि अनेक रोग हैं। इन्हींके भेद और प्रभेदोंको लेकर चौंसठ रोग माने गये हैं। ये चौंसठ रोग मृत्युकन्याके पुत्र हैं और जरा उसकी पुत्री है। जरा अपने भाइयोंके साथ सदा भूतलपर भ्रमण किया करती है।

ये सब रोग उस मनुष्यके पास नहीं जाते, जो इनके निवारणका उपाय जानता है और संयमसे रहता है। उसे देखकर वे रोग उसी तरह भागते हैं, जैसे गरुड़को देखकर साँप। नेत्रोंको जलसे धोना, प्रतिदिन व्यायाम करना, पैरोंके तलवोंमें तेल मलवाना, दोनों कानोंमें तेल डालना और मस्तकपर भी तेल रखना—यह प्रयोग जरा और व्याधिका नाश करनेवाला है। जो वसंत-ऋतुमें भ्रमण, स्वल्पमात्रामें अग्निसेवन तथा नयी अवस्थावाली भार्याका यथासमय उपभोग करता है, उसके पास जरा-अवस्था नहीं जाती। ग्रीष्म-ऋतुमें जो तालाब या पोखरेके शीतल जलमें स्नान करता, घिसा हुआ चन्दन लगाता और वायुसेवन करता है, उसके निकट जरा-अवस्था नहीं जाती। वर्षा-ऋतुमें जो गरम जलसे नहाता है, वर्षाके जलका सेवन नहीं करता और ठीक समयपर परिमित भोजन करता है, उसे वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होती। जो शरद्-ऋतुकी प्रचण्ड धूपका सेवन नहीं करता, उसमें घूमना-फिरना छोड़ देता है, कुएँ, बावड़ी या तालाबके जलमें नहाता है और परिमित भोजन करता है, उसके पास वृद्धावस्था नहीं फटकने पाती। जो हेमन्त-ऋतुमें प्रातःकाल अथवा पोखरे आदिके जलमें स्नान करता, यथासमय आग तापता, तुरंतकी तैयार की हुई गरम-गरम रसोई खाता है, उसके पास जरा-अवस्था नहीं जाती है। जो शिशिर-ऋतुमें गरम कपड़े, प्रज्वलित अग्नि और नये बने हुए गरम-गरम अन्नका सेवन करता है तथा गरम जलसे ही स्नान करता है, उसके समीप वृद्धावस्थाकी पहुँच नहीं होती।

जो तुरंतके बने हुए ताजे अन्नका, खीर और घृतका तथा समयानुसार तरुणी स्त्रीका उचित सेवन करता है, वृद्धावस्था उसके निकट नहीं जाती। जो भूख लगनेपर ही उत्तम अन्न खाता, प्यास लगनेपर ठंढा जल पीता और प्रतिदिन ताम्बूलका सेवन करता है, उसके पास वृद्धावस्था नहीं पहुँचती। जो प्रतिदिन दही, ताजा मक्खन और गुड़ खाता तथा संयमसे रहता है, उसके समीप जरावस्था नहीं जाती है।

जो माँस, वृद्धा स्त्री, नवोदित सूर्य तथा तरुण दधि (पाँच दिनके रखे हुए दही)-का सेवन करता है, उसपर जरावस्था अपने भाइयोंके साथ हर्षपूर्वक आक्रमण करती है। सुन्दरि! जो रातको दही खाते हैं, कुलटा एवं रजस्वला स्त्रीका सेवन करते हैं, उनके पास भाइयोंसहित जरावस्था बड़े हर्षके साथ आती है। रजस्वला, कुलटा, विधवा, जारदूती, शूद्रके पुरोहितकी पत्नी तथा ऋतुहीना जो स्त्रियाँ हैं, उनका अन्न भोजन करनेवाले लोगोंको बड़ा पाप लगता है। उस पापके साथ ही जरावस्था उनके पास आती है। रोगोंके साथ पापोंकी सदा अटूट मैत्री होती है। पाप ही रोग, वृद्धावस्था तथा नाना प्रकारके विघ्नोंका बीज है। पापसे रोग होता है, पापसे बुढ़ापा आता है और पापसे ही दैन्य, दुःख एवं भयंकर शोककी उत्पत्ति होती है। इसलिये भारतके संत पुरुष सदा भयातुर हो कभी पापका

आचरण नहीं करते*। क्योंकि यह महान् वैर उत्पन्न करनेवाला, दोषोंका बीज और अमङ्गलकारी होता है।

जो अपने धर्मके आचरणमें लगा हुआ है, भगवान्‌के मन्त्रकी दीक्षा ले चुका है, श्रीहरिकी समाराधनामें संलग्न है, गुरु, देवता और अतिथियोंका भक्त है, तपस्यामें आसक्त है, व्रत और उपवासमें लगा रहता है और सदा तीर्थसेवन करता है, उसे देखकर रोग उसी तरह भाग जाते हैं, जैसे गरुड़को देखकर साँप। ऐसे पुरुषोंके पास जरा-अवस्था नहीं जाती है और न दुर्जय रोगसमूह ही उसपर आक्रमण करते हैं।

पतिव्रते मालावति! वात, पित्त और कफ—ये तीन ज्वरके जनक हैं। ये जिस प्रकार देहधारियोंमें संचार करते और स्वयं जाते हैं, उसके विविध कारणों तथा उपायोंको मुझसे सुनो। जब भूखकी आग प्रज्वलित हो रही हो और उस समय आहार न मिले तो प्राणियोंके शरीरमें—मणिपूरक[1] चक्रमें पित्तका प्रकोप होता है। ताड़ और बेलका फल खाकर तत्काल जल पी लिया जाय तो वही सद्यः प्राणनाशक पित्त हो जाता है। जो दैवका मारा हुआ पुरुष शरद्-ऋतुमें गरम पानी पीता और भादोंमें तिक्त भोजन करता है, उसका पित्त बढ़ जाता है। धनिया पीसकर उसे शक्करके साथ ठंडे जलमें घोल दिया जाय तो उसको पीनेसे पित्तकी शान्ति होती है। चना सब प्रकारका, गव्य पदार्थ, तक्ररहित दही, पके हुए बेल और तालके फल, ईखके रससे बनी हुई सब वस्तुएँ, अदरख, मूँगकी दालका जूस तथा शर्करामिश्रित तिलका चूर्ण—ये सब पित्तका नाश करनेवाली ओषधियाँ हैं, जो तत्काल बल और पुष्टि प्रदान करती हैं पित्तका कारण और उसके नाशका उपाय बताया गया।

अब दूसरी बात मुझसे सुनो। भोजनके बाद तुरंत स्नान करना, बिना प्यासके जल पीना, सारे शरीरमें तिलका तेल मलना, स्निग्ध तैल तथा स्निग्ध आँवलेके द्रवका सेवन, बासी अन्नका भोजन, तक्रपान, केलेका पका हुआ फल, दही, वर्षाका जल, शक्करका शर्बत, अत्यन्त चिकनाईसे युक्त जलका सेवन, नारियलका जल, बासी पानीसे रूखा स्नान (बिना तेल लगाये नहाना), तरबूजके पके फल खाना, ककड़ीके अधिक पके हुए फलका सेवन करना, वर्षा-ऋतुमें तालाबमें नहाना और मूली खाना—इन सबसे कफकी वृद्धि होती है। वह कफ ब्रह्मरन्ध्रमें उत्पन्न होता है, जो महान् वीर्यनाशक माना गया है। गन्धर्वनन्दिनि! आग तापकर शरीरसे पसीना निकालना, भूजी भाँगका सेवन करना, पकाये हुए तेल-विशेषको काममें लाना, घूमना, सूखे पदार्थ खाना, सूखी पकी हर्रेका सेवन करना, कच्चा पिण्डारक[2] (पिण्डारा), कच्चा केला, वेसवार[3] (पीसा हुआ जीरा, मिर्च, लौंग आदि

---

* पापेन जायते व्याधिः पापेन जायते जरा। पापेन जायते दैन्यं दुःखं शोको भयंकरः॥
तस्मात् पापं महावैरं दोषबीजममङ्गलम्। भारते संततं सन्तो नाचरन्ति भयातुराः॥
(ब्रह्मखण्ड १६। ५१-५२)

१. तन्त्रके अनुसार छः चक्रोंमेंसे तीसरा चक्र, जिसकी स्थिति नाभिके पास मानी जाती है। यह तेजोमय और विद्युत्‌के समान आभावाला है। इसका रंग नीला है। इसमें दस दल होते हैं और उन अक्षरोंपर 'ड' से लेकर 'फ' तकके अक्षर अंकित हैं। यह चक्र शिवका निवासस्थान माना जाता है। इसपर ध्यान लगानेसे सब विषयोंका ज्ञान हो जाता है।

२. एक प्रकारका फल-शाक।

३. एक जड़ीका पौधा। भावप्रकाशके अनुसार यह पौधा हिमालयके शिखरोंपर होता है। इसका कन्द लहसुनके कन्दके समान और इसकी पत्तियाँ महीन सारहीन होती हैं। इसकी टहनियोंमें बारीक काँटे होते हैं और

मसाला), सिन्धुवार (सिन्दुवार या निर्गुंडी), अनाहार (उपवास), अपानक (पानी न पीना), घृतमिश्रित रोचना-चूर्ण, घी मिलाया हुआ सूखा शक्कर, काली मिर्च, पिप्पल, सूखा अदरक, जीवक (अष्टवर्गान्तर्गत औषधविशेष) तथा मधु—ये द्रव्य तत्काल कफको दूर करनेवाले तथा बल और पुष्टि देनेवाले हैं।

अब वातके प्रकोपका कारण सुनो। भोजनके बाद तुरंत पैदल यात्रा करना, दौड़ना, आग तापना, सदा घूमना और मैथुन करना, वृद्धा स्त्रीके साथ सहवास करना, मनमें निरन्तर संताप रहना, अत्यन्त रूखा खाना, उपवास करना, किसीके साथ जूझना, कलह करना, कटु वचन बोलना, भय और शोकसे अभिभूत होना—ये सब केवल वायुकी उत्पत्तिके कारण हैं। आज्ञा नामक चक्रमें वायुकी उत्पत्ति होती है। अब उसकी ओषधि सुनो। केलेका पका हुआ फल, बिजौरा नीबूके फलके साथ चीनीका शर्बत, नारियलका जल, तुरंतका तैयार किया हुआ तक्र, उत्तम पिट्ठी (पूआ, कचौरी आदि), भैंसका केवल मीठा दही या उसमें शक्कर मिला हो, तुरंतका बासी अन्न, सौवीर (जौकी काँजी), ठंढा पानी, पकाया हुआ तैलविशेष अथवा केवल तिलका तेल, नारियल, ताड़, खजूर, आँवलेका बना हुआ उष्ण द्रव पदार्थ, ठंडे और गरम जलका स्नान, सुस्निग्ध चन्दनका द्रव, चिकने कमलपत्रकी शय्या और स्निग्ध व्यञ्जन—वत्से! ये सब वस्तुएँ तत्काल ही वायुदोषका नाश करनेवाली हैं। मनुष्योंमें तीन प्रकारके वायु-दोष होते हैं। शारीरिक क्लेशजनित, मानसिक संतापजनित और कामजनित। मालावति! इस प्रकार मैंने तुम्हारे समक्ष रोगसमूहका वर्णन किया तथा उन रोगोंके नाशके लिये श्रेष्ठ विद्वानोंने जो नाना प्रकारके तन्त्र बनाये हैं, उनकी भी चर्चा की। वे सभी तन्त्र रोगोंका नाश करनेवाले हैं। उनमें रोगनिवारणके लिये रसायन आदि परम दुर्लभ उपाय बताये गये हैं। साध्वि! विद्वानोंद्वारा रचे गये उन सब तन्त्रोंका यथावत् वर्णन कोई एक वर्षमें भी नहीं कर सकता। शोभने! बताओ, तुम्हारे प्राणवल्लभकी मृत्यु किस रोगसे हुई है। मैं उसका उपाय करूँगा, जिससे ये जीवित हो जायँगे।

सौति कहते हैं—ब्राह्मणकी यह बात सुनकर गन्धर्वकुमारी चित्ररथ-पुत्री मालावतीने प्रसन्न होकर इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

मालावती बोली—विप्रवर! सुनिये। सभामें लज्जित हुए मेरे प्रियतमने ब्रह्माजीके शापके कारण योगबलसे प्राणोंका परित्याग किया है। मैंने आपके मुँहसे निकले हुए अपूर्व, शुभ एवं मनोहर आख्यानको पूर्णरूपसे सुना है। इस संसारमें विपत्तिके बिना कब, किसको, कहाँ आप-जैसे महात्माओंका संग प्राप्त हुआ है? विद्वन्! अब मुझे मेरे प्राणनाथको जीवित करके दे दीजिये। मैं आप सब लोगोंके चरणोंमें नमस्कार करके स्वामीके साथ अपने घरको जाऊँगी।

मालावतीका यह वचन सुनकर ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णु उसके पाससे उठकर शीघ्र ही देवताओंकी सभामें गये।

(अध्याय १६)

दूध निकलता है। यह अष्टवर्ग औषधके अन्तर्गत है और इसका कंद मधुर, बलकारक, कामोद्दीपक होता है। ऋषभ और जीवक दोनों एक ही जातिके गुल्म हैं, भेद केवल इतना ही है कि ऋषभकी आकृति बैलके सींगकी तरह होती है और जीवककी झाड़की-सी।

ब्राह्मण-बालकके साथ क्रमशः ब्रह्मा, महादेवजी तथा धर्मकी बातचीत, देवताओंद्वारा श्रीविष्णुकी तथा ब्राह्मणद्वारा भगवान् श्रीकृष्णकी उत्कृष्ट महत्ताका प्रतिपादन

सौति कहते हैं—ब्राह्मणको आया देख देवसमुदाय उठकर खड़ा हो गया था। फिर वहाँ सभामें उन सबकी परस्पर बातचीत हुई। ये ब्राह्मणरूपधारी साक्षात् भगवान् विष्णु हैं, यह बात देवताओंकी समझमें नहीं आयी। भगवान् विष्णुकी मायासे मोहित होनेके कारण वे पूर्वापरकी सारी बातें भूल गये थे। शौनकजी! उस समय ब्राह्मणने सब देवताओंको सम्बोधित करके मधुर वाणीमें वह सत्य बात कही, जो प्राणियोंके लिये परम कल्याणकारक थी।

ब्राह्मण बोले—देवताओ! यह उपबर्हणकी भार्या और चित्ररथकी कन्या है। पतिशोकसे पीड़ित होकर इसने स्वामीके जीवनदानके लिये याचना की है। अब इस कार्यके लिये निश्चितरूपसे किस उपायका अवलम्बन करना चाहिये? सब देवता मिलकर मुझे वह उपाय बतायें, जो सदा काममें लाने योग्य और समयोचित हो। मालावती श्रेष्ठ सती एवं तेजस्विनी है। वह अपना मनोरथ सफल न होनेपर समस्त देवताओंको शाप देनेके लिये उद्यत है। अतः आप लोगोंके कल्याणके लिये मैं यहाँ आया हूँ और मैंने सतीको समझा-बुझाकर शान्त किया है। सुना है, आप लोगोंने श्वेतद्वीपमें श्रीहरिकी भी स्तुति की थी; परंतु आप लोगोंके वे स्वामी भगवान् विष्णु यहाँ आये कैसे नहीं? आकाशवाणी हुई थी कि तुम लोग चलो, पीछेसे भगवान् विष्णु भी जायँगे। आकाशवाणीकी बात तो अटल होती है; फिर वह विपरीत कैसे हो गयी?

ब्राह्मणकी यह बात सुनकर साक्षात् जगद्गुरु ब्रह्माने यह परम मङ्गलमय सत्य एवं हितकर बात कही।

ब्रह्माजी बोले—मेरे पुत्र नारद ही शापवश उपबर्हण नामक गन्धर्व हुए थे। फिर मेरे ही शापसे उन्होंने योगधारणाद्वारा प्राणोंको त्याग दिया। भूतलपर उपबर्हणकी स्थिति एक लाख युगतक नियत की गयी थी। इसके बाद वे शूद्रयोनिमें पहुँचकर उस शरीरको त्यागनेके बाद फिर मेरे पुत्रके रूपमें प्रतिष्ठित हो जायँगे। भूतलपर उनके रहनेका जो समय नियत था, उसका कुछ भाग अभी शेष है। उसके अनुसार इस समय इनकी आयु अभी एक सहस्र वर्षतक और बाकी है। मैं स्वयं भगवान् विष्णुकी कृपासे उपबर्हणको जीवन-दान दूँगा। जिससे इस देवसमुदायको शापका स्पर्श न हो, वह उपाय मैं अवश्य करूँगा। ब्रह्मन्! आपने जो यह कहा कि यहाँ भगवान् विष्णु क्यों नहीं आये, सो ठीक नहीं है; क्योंकि भगवान् विष्णु तो सर्वत्र विद्यमान हैं। वे ही सबके आत्मा हैं। आत्माका पृथक् शरीर कहाँ होता है? वे स्वेच्छामय परब्रह्म परमात्मा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य शरीर धारण करते हैं। वे सनातनदेव सर्वत्र हैं, सर्वज्ञ हैं और सबको देखते हैं। 'विष्' धातु व्याप्तिवाचक है और 'णु' का अर्थ सर्वत्र है। वे सर्वात्मा श्रीहरि सर्वत्र व्यापक हैं; इसलिये विष्णु कहे गये हैं। कोई अपवित्र हो या पवित्र अथवा किसी भी अवस्थामें क्यों न हो, जो कमलनयन भगवान् विष्णुका स्मरण करता है, वह बाहर-भीतरसहित पूर्णतः पवित्र हो जाता है*। ब्रह्मन्! कर्मके

---

* अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥
(ब्रह्मखण्ड १७। १७)

आरम्भ, मध्य और अन्तमें जो श्रीविष्णुका स्मरण करता है, उसका वैदिक कर्म साङ्गोपाङ्ग पूर्ण हो जाता है*। जगत्‌की सृष्टि करनेवाला मैं विधाता, संहारकारी हर तथा कर्मोंके साक्षी धर्म—ये सब जिनकी आज्ञाके परिपालक हैं, जिनके भय और आज्ञासे काल समस्त लोकोंका संहार करता है, यम पापियोंको दण्ड देता है और मृत्यु सबको अपने अधिकारमें कर लेती है। सर्वेश्वरी, सर्वाद्या और सर्वजननी प्रकृति भी जिनके सामने भयभीत रहती तथा जिनकी आज्ञाका पालन करती है। वे भगवान् विष्णु ही सबके आत्मा और सर्वेश्वर हैं।

महेश्वर बोले—ब्रह्मन्! ब्रह्माजीके जो सुप्रसिद्ध पुत्र हैं, उनमेंसे किसके वंशमें तुम्हारा जन्म हुआ है? वेदोंका अध्ययन करके तुमने कौन-सा सार तत्त्व जाना है? विप्रवर! तुम किस मुनीन्द्रके शिष्य हो? और तुम्हारा नाम क्या है? तुम अभी बालक हो तो भी सूर्यसे बढ़कर तेज धारण करते हो। तुम अपने तेजसे देवताओंको भी तिरस्कृत करते हो; परंतु सबके हृदयमें अन्तर्यामी आत्मारूपसे विराजमान हमारे स्वामी सर्वेश्वर परमात्मा विष्णुको नहीं जानते हो, यह आश्चर्यकी बात है। उन परमात्माके ही त्याग देनेपर देहधारियोंका यह शरीर गिर जाता है और सभी सूक्ष्म इन्द्रियवर्ग एवं प्राण उसके पीछे उसी तरह निकल जाते हैं, जैसे राजाके पीछे उसके सेवक जाते हैं। जीव उन्हींका प्रतिबिम्ब है। यह तथा मन, ज्ञान, चेतना, प्राण, इन्द्रियवर्ग, बुद्धि, मेधा, धृति, स्मृति, निद्रा, दया, तन्द्रा, क्षुधा, तृष्णा, पुष्टि, श्रद्धा, संतुष्टि, इच्छा, क्षमा और लज्जा आदि भाव उन्हींके अनुगामी माने गये हैं। वे परमात्मा जब जानेको उद्यत होते हैं, तब उनकी शक्ति आगे-आगे जाती है। उपर्युक्त सभी भाव तथा शक्ति उन्हीं परमात्माके आज्ञापालक हैं। देहमें जबतक ईश्वरकी स्थिति है, तभीतक देहधारी जीव सब प्रकारके कर्म करनेमें समर्थ होता है। उन ईश्वर (या उनके अंशभूत जीव)-के निकल जानेपर शरीर शव होकर अस्पृश्य एवं त्याज्य हो जाता है। ऐसे सर्वेश्वर शिवको कौन देहधारी नहीं मानता? सबकी सृष्टि करनेवाले साक्षात् जगत्-विधाता ब्रह्मा निरन्तर उन भगवान्‌के चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं, परंतु उनका दर्शन नहीं कर पाते। ब्रह्माजीने श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये जब एक लाख युगोंतक तप किया, तब इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ और ये संसारकी सृष्टि करनेमें समर्थ हुए। मैंने भी श्रीहरिकी आराधना करते हुए सुदीर्घ कालतक, जिसकी कोई गणना नहीं है, तप किया; परंतु मेरा मन नहीं भरा। भला, मङ्गलकी प्राप्तिसे कौन तृप्त होता है? अब मैं समस्त कर्मोंसे निःस्पृह हो अपने पाँच मुखोंसे उनके नाम और गुणोंका कीर्तन एवं गान करता हुआ सर्वत्र घूमता रहता हूँ। उनके नाम और गुणोंके कीर्तनका ही यह प्रभाव है कि मृत्यु मुझसे दूर भागती है। निरन्तर भगवन्नामका जप करनेवाले पुरुषको देखकर मृत्यु पलायन कर जाती है। चिरकालतक तपस्यापूर्वक उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करनेसे ही मैं समस्त ब्रह्माण्डोंका संहार करनेमें समर्थ एवं मृत्युञ्जय हुआ हूँ। समय आनेपर मैं उन्हीं श्रीहरिमें लीन होता हूँ तथा पुनः उन्हींसे मेरा प्रादुर्भाव होता है। उन्हींकी कृपासे काल मेरा संहार नहीं कर सकता और मौत मुझे मार नहीं सकती। ब्रह्मन्! जो श्रीकृष्ण गोलोकधाममें निवास करते हैं, वे ही वैकुण्ठ और श्वेतद्वीपमें भी हैं। जैसे आग और उसकी चिनगारियोंमें कोई अन्तर नहीं है, उसी प्रकार अंशी और अंशमें भेद नहीं होता। इकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। (प्रत्येक मन्वन्तरमें दो इन्द्र

*कर्मारम्भे च मध्ये वा शेषे विष्णुं च यः स्मरेत्। परिपूर्णं तस्य कर्म वैदिकं च भवेद् द्विज॥ (ब्रह्मखण्ड १७। १८)

व्यतीत होते हैं।) अट्ठाईसवें* इन्द्रके गत होनेपर ब्रह्माजीका एक दिन होता है। इसी संख्यासे विशिष्ट सौ वर्षकी आयुवाले ब्रह्माजीका जब पतन होता है, तब परमात्मा विष्णुके नेत्रकी एक पलक गिरती है। मैं परमात्मा श्रीकृष्णकी एक श्रेष्ठ कलामात्र हूँ। अतः उनकी महिमाका पार कौन पा सकता है? मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

शौनक! ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहाँ चुप हो गये। तब समस्त कर्मोंके साक्षी धर्मने अपना प्रवचन आरम्भ किया।

धर्म बोले—जिनके हाथ-पैर तथा सबको देखनेवाले नेत्र सर्वत्र विद्यमान हैं; जो सबके अन्तरात्मारूपसे प्रत्यक्ष हैं, तथापि दुरात्मा पुरुष जिन्हें नहीं देख या समझ पाते; उन सर्वव्यापी प्रभुके सब देश,काल और वस्तुओंमें विद्यमान होनेपर भी जो तुमने यह कहा कि 'अभीतक भगवान् विष्णु इस सभामें नहीं आये', ऐसा किस बुद्धिसे निश्चय किया? तुम्हारी बात सुनकर मुनियोंको भी मतिभ्रम हो सकता है। जहाँ महापुरुषकी निन्दा होती हो, वहाँ साधु पुरुष उस निन्दाको नहीं सुनते; क्योंकि निन्दक श्रोताओंके साथ ही कुम्भीपाक नरकमें जाता है और वहाँ एक युगतक कष्ट भोगता रहता है। यदि दैववश महापुरुषोंकी निन्दा सुनायी पड़ जाय तो विद्वान् पुरुष श्रीविष्णुका स्मरण करनेपर समस्त पापोंसे मुक्त होता और दुर्लभ पुण्य पाता है। जो इच्छा या अनिच्छासे भी भगवान् विष्णुकी निन्दा करता है तथा जो नराधम सभाके बीचमें बैठकर उस निन्दाको सुनता और हँसता है, वह ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें पकाया जाता है। जहाँ श्रीहरिकी निन्दा होती है, वह स्थान मदिरापात्रकी भाँति अपवित्र माना जाता है। वहाँ जाकर यदि भगवन्निन्दा सुनी गयी तो सुननेवाला प्राणी निश्चय ही नरकमें पड़ता है। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें विष्णु-निन्दाके तीन भेद बताये थे। एक तो वह जो परोक्षमें निन्दा करता है, दूसरा वह जो श्रीहरिको मानता ही नहीं है तथा तीसरी कोटिका निन्दक वह ज्ञानहीन नराधम है, जो दूसरे देवताओंके साथ उनकी तुलना करता है। सौ ब्रह्माओंकी आयुपर्यन्त उस निन्दकका नरकसे उद्धार नहीं होता। जो नराधम गुरु एवं पिताकी निन्दा करता है, वह चन्द्रमा और सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें पड़ा रहता है। भगवान् विष्णु तीनों लोकोंमें सबके गुरु, पिता, ज्ञानदाता, पोषक, पालक, भयसे रक्षक तथा वरदाता हैं।

इन तीनोंकी बात सुनकर वे ब्राह्मणशिरोमणि हँसने लगे। फिर उन देवताओंसे मधुर वाणीमें बोले।

ब्राह्मणने कहा—हे धर्मशाली देवताओ! मैंने भगवान् विष्णुकी क्या निन्दा की है? श्रीहरि यहाँ नहीं आये इसलिये आकाशवाणीकी बात व्यर्थ हो गयी, यही तो मैंने कहा है। देवेश्वरो! धर्मके लिये सच बोलो। जो सभामें बैठकर पक्षपात करते हैं वे अपनी सौ पीढ़ियोंका नाश कर डालते हैं। आप लोग भावुक हैं, बताइये तो सही, यदि विष्णु सदा और सर्वत्र व्यापक हैं तो आप लोग उनसे वर माँगनेके लिये

---

* विष्णुपुराण प्रथम अंश अध्याय ३ के श्लोक १५ से १७ तक यह बात बतायी गयी है कि 'एक सहस्र चतुर्युग बीतनेपर ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। ब्रह्माजीके एक दिनमें चौदह मनु होते हैं। सप्तर्षि, देवगण, इन्द्र, मनु तथा मनुपुत्र—ये एक ही कालमें उत्पन्न होते हैं और एक ही कालमें उनका संहार होता है।' इससे सूचित होता है कि चौदहवें इन्द्रके बीतनेपर ब्रह्माका दिन पूरा होता है; परंतु यहाँ २८ वें इन्द्रके गत होनेपर ब्रह्माका एक दिन बताया गया है। इसकी संगति तभी लग सकती है, जब एक मन्वन्तरमें दो इन्द्रकी सृष्टि और संहार माने जायँ। परंतु ऐसा माननेपर अन्य पुराणोंसे एकवाक्यता नहीं होगी।

श्वेतद्वीपमें क्यों गये थे? अंश और अंशीमें भेद नहीं है तथा आत्मामें भी भेदका अभाव है, यदि यही आपका निश्चित मत है तो बताइये श्रेष्ठ पुरुष कला (अंश)-का त्याग करके पूर्णतम (अंशी)-की उपासना क्यों करते हैं? यद्यपि पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णकी कोटि जन्मोंतक आराधना करके भी उन्हें वशमें कर लेना अत्यन्त कठिन है और असाधु पुरुषोंके लिये तो वे सर्वथा असाध्य हैं, तथापि लोगोंकी बलवती आशा उन्हींकी सेवा करना चाहती है। क्या छोटे और क्या बड़े, सभी परम पदको पाना चाहते हैं। जैसे बामना अपने दोनों हाथोंसे चन्द्रमाको छूना चाहे, उसी तरह लोग उन पूर्णतम परमात्माको हस्तगत करना चाहते हैं। जो विष्णु हैं, वे एक विषय (देश)-में रहते हैं। विश्वके अन्तर्गत श्वेतद्वीपमें निवास करते हैं। आप, ब्रह्मा, महादेव, धर्म तथा दिशाओंके स्वामी दिक्पाल भी एक देशके निवासी हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवेश्वर, देवसमूह और चराचर प्राणी—ये सब भिन्न-भिन्न ब्रह्माण्डोंमें अनेक हैं। उन ब्रह्माण्डों और देवताओंकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उन सबके एकमात्र स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण हैं, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये दिव्य विग्रह धारण करते हैं। जिसे सभी पाना चाहते हैं, वह सत्यलोक या नित्य वैकुण्ठधाम समस्त ब्रह्माण्डसे ऊपर है। उससे भी ऊपर गोलोक है, जिसका विस्तार पचास करोड़ योजन है। वैकुण्ठधाममें वे सनातन श्रीहरि चार भुजाधारी लक्ष्मीपतिके रूपमें निवास करते हैं। वहाँ सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षद उन्हें घेरे रहते हैं। गोलोकमें वे सनातनदेव दो भुजाओंसे युक्त राधावल्लभ श्रीकृष्णरूपसे निवास करते हैं। वहाँ बहुत-सी गोपाङ्गनाएँ, गौएँ तथा द्विभुज गोप-पार्षद उनकी सेवामें उपस्थित रहते हैं। वे गोलोकाधिपति श्रीकृष्ण ही परिपूर्णतम ब्रह्म हैं। वे ही समस्त देहधारियोंके आत्मा हैं। वे सदा स्वेच्छामय रूप धारण करके दिव्य वृन्दावनके अन्तर्गत रासमण्डलमें विहार करते हैं। दिव्य तेजोमण्डल ही उनकी आकृति है। वे करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् हैं। योगी एवं संत-महात्मा सदा उन्हीं निरामय परमात्माका ध्यान करते हैं। नूतन जलधरके समान उनकी श्याम कान्ति है। दो भुजाएँ हैं। श्रीअङ्गोंपर दिव्य पीताम्बर शोभा पाता है। उनका लावण्य करोड़ों कन्दर्पोंसे भी अधिक है। वे लीलाधाम हैं। उनका रूप अत्यन्त मनोहर है। किशोर अवस्था है। वे नित्य शान्त-स्वरूप परमात्मा मुखसे मन्द-मन्द मुस्कानकी आभा बिखेरते रहते हैं। वैष्णव संत उन्हीं सत्यस्वरूप श्यामसुन्दरका सदा भजन और ध्यान करते हैं। आप लोग भी वैष्णव ही हैं और मुझसे पूछ रहे हैं कि 'तुम्हारा जन्म किसके वंशमें हुआ है? तथा तुम किस मुनीन्द्रके शिष्य हो?' ऐसा प्रश्न मुझसे बार-बार किया गया है। देवताओ! मैं जिसके वंशमें उत्पन्न हूँ और जिसका बालक—शिष्य हूँ, उन्हींका यह ज्ञानमय वचन है। तुम लोग इसे सुनो और समझो। देवेश्वर सुरेश! गन्धर्वको शीघ्र जीवित करो। विचार व्यक्त करनेपर स्वतः ज्ञात हो जाता है कि कौन मूर्ख है और कौन विद्वान्? अतः यहाँ वाग्युद्धका क्या प्रयोजन है?

शौनक! ऐसा कहकर वे ब्राह्मणरूपधारी भगवान् विष्णु चुप हो गये और जोर-जोरसे हँसने लगे। (अध्याय १७)

ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा उपबर्हणको जीवित करनेकी चेष्टा, मालावतीद्वारा भगवान् श्रीकृष्णका स्तवन, शक्तिसहित भगवान्का गन्धर्वके शरीरमें प्रवेश तथा गन्धर्वका जी उठना, मालावतीद्वारा दान एवं मङ्गलाचार तथा पूर्वोक्त स्तोत्रके पाठकी महिमा

सौति कहते हैं—भगवान् विष्णुकी मायासे मोहित हुए ब्रह्मा और शिव आदि देवता ब्राह्मणके साथ मालावतीके निकट गये। ब्रह्माजीने शवके शरीरपर कमण्डलुका जल छिड़क दिया और उसमें मनका संचार करके उसके शरीरको सुन्दर बना दिया। फिर ज्ञानानन्दस्वरूप साक्षात् शिवने उसे ज्ञान प्रदान किया। स्वयं धर्मने धर्म-ज्ञान और ब्राह्मणने जीव-दान दिया। अग्निकी दृष्टि पड़ते ही गन्धर्वके शरीरमें जठरानलका प्राकट्य हो गया। फिर कामकी दृष्टि पड़नेसे वह सम्पूर्ण कामनाओंसे सम्पन्न हो गया। जगत्के प्राणस्वरूप वायुका अधिष्ठान होनेसे उस शरीरके भीतर निःश्वास और प्राणोंका संचार होने लगा। फिर सूर्यके अधिष्ठित होनेसे गन्धर्वके नेत्रोंमें देखनेकी शक्ति आ गयी। वाणीकी दृष्टि पड़नेसे वाक्शक्ति और श्रीके दृष्टिपातसे शोभा प्रकट हुई। इतनेपर भी वह शव नहीं उठा। जड़की भाँति सोता ही रहा। आत्माका अधिष्ठान प्राप्त न होनेसे उसे विशिष्ट बोधकी प्राप्ति नहीं हुई। तब ब्रह्माजीके कहनेसे मालावतीने शीघ्र ही नदीके जलमें स्नान किया और दो धुले वस्त्र धारण करके उस सतीने परमेश्वरकी स्तुति प्रारम्भ की।

मालावती बोली—मैं समस्त कारणोंके भी कारणरूप उन परमात्माकी वन्दना करती हूँ, जिनके बिना भूतलके सभी प्राणी शवके समान हैं। वे निर्लिप्त हैं। सबके साक्षी हैं। समस्त कर्मोंमें सर्वत्र और सर्वदा विद्यमान हैं तो भी सबकी दृष्टि (जानकारी)-में नहीं आते हैं। जिन्होंने सबकी आधारभूता उस परात्परा प्रकृतिकी सृष्टि की है; जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिकी भी जननी तथा त्रिगुणमयी है; साक्षात् जगत्स्रष्टा ब्रह्मा जिनकी सेवामें नियमित रूपसे लगे रहते हैं; पालक विष्णु और साक्षात् जगत्संहारक शिव भी जिनकी सेवामें निरन्तर तत्पर रहते हैं; सब देवता, मुनि, मनु, सिद्ध, योगी और संत-महात्मा सदा प्रकृतिसे परे विद्यमान जिन परमेश्वरका ध्यान करते हैं; जो साकार और निराकार भी हैं; स्वेच्छामय रूपधारी और सर्वव्यापी हैं। वर, वरेण्य, वरदायक, वर देनेके योग्य और वरदानके कारण हैं, तपस्याके फल, बीज और फलदाता हैं; स्वयं तपःस्वरूप तथा सर्वरूप हैं; सबके आधार, सबके कारण, सम्पूर्ण कर्म, उन कर्मोंके फल और उन फलोंके दाता हैं तथा जो कर्मबीजका नाश करनेवाले हैं, उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करती हूँ। वे स्वयं तेजःस्वरूप होते हुए भी भक्तोंपर अनुग्रहके लिये ही दिव्य विग्रह धारण करते हैं; क्योंकि विग्रहके बिना भक्तजन किसकी सेवा और किसका ध्यान करेंगे। विग्रहके अभावमें भक्तोंसे सेवा और ध्यान बन ही नहीं सकते। तेजका महान् मण्डल ही उनकी आकृति है। वे करोड़ों सूर्योंके समान दीप्तिमान् हैं। उनका रूप अत्यन्त कमनीय और मनोहर है। नूतन मेघकी-सी श्याम कान्ति, शरद्-ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंके समान नेत्र, शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मन्द मुस्कानकी छटासे सुशोभित मुख और करोड़ों कन्दर्पोंको भी तिरस्कृत करनेवाला लावण्य उनकी सहज विशेषताएँ हैं। वे मनोहर लीलाधाम हैं। उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। दो बड़ी-बड़ी भुजाएँ हैं, हाथमें मुरली है, श्रीअङ्गोंपर रेशमी पीताम्बर शोभा पाता है, किशोर अवस्था है। वे शान्तस्वरूप राधाकान्त अनन्त आनन्दसे परिपूर्ण हैं। कभी निर्जन वनमें गोपाङ्गनाओंसे घिरे रहते हैं। कभी रासमण्डलमें विराजमान हो राधा-

रानीसे समाराधित होते हैं। कभी गोप-बालकोंसे घिरे हुए गोपवेषसे सुशोभित होते हैं। कभी सैकड़ों शिखरवाले गिरिराज गोवर्धनके कारण उत्कृष्ट शोभासे युक्त रमणीय वृन्दावनमें कामधेनुओंके समुदायको चराते हुए बालगोपालके रूपमें देखे जाते हैं। कभी गोलोकमें विरजाके तटपर पारिजातवनमें मधुर-मधुर वेणु बजाकर गोपाङ्गनाओंको मोहित किया करते हैं। कभी निरामय वैकुण्ठधाममें चतुर्भुज लक्ष्मीकान्तके रूपमें रहकर चार भुजाधारी पार्षदोंसे सेवित होते हैं। कभी तीनों लोकोंके पालनके लिये अपने अंशरूपसे श्वेतद्वीपमें विष्णुरूप धारण करके रहते हैं और पद्मा उनकी सेवा करती हैं। कभी किसी ब्रह्माण्डमें अपनी अंशकलाद्वारा ब्रह्मारूपसे विराजमान होते हैं। कभी अपने ही अंशसे कल्याणदायक मङ्गलरूप शिव-विग्रह धारण करके शिवधाममें निवास करते हैं। अपने सोलहवें अंशसे स्वयं ही सर्वाधार, परात्पर एवं महान् विराट्-रूप धारण करते हैं, जिनके रोम-रोममें अनन्त ब्रह्माण्डोंका समुदाय शोभा पाता है। कभी अपनी ही अंशकलाद्वारा जगत्‌की रक्षाके लिये लीलापूर्वक नाना प्रकारके अवतार धारण करते हैं। उन अवतारोंके वे स्वयं ही सनातन बीज हैं। कभी योगियों एवं संत-महात्माओंके हृदयमें निवास करते हैं। वे ही प्राणियोंके प्राणस्वरूप परमात्मा एवं परमेश्वर हैं। मैं मूढ़ अबला उन निर्गुण एवं सर्वव्यापी भगवान्‌की स्तुति करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। वे अलक्ष्य, अनीह, सारभूत तथा मन और वाणीसे परे हैं। भगवान् अनन्त सहस्र मुखोंद्वारा भी उनकी स्तुति नहीं कर सकते। पञ्चमुख महादेव, चतुर्मुख ब्रह्मा, गजानन गणेश और षडानन कार्तिकेय भी जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं, माया भी जिनकी मायासे मोहित रहती है, लक्ष्मी भी जिनकी स्तुति करनेमें सफल नहीं होती, सरस्वती भी जडवत् हो जाती है और वेद भी जिनका स्तवन करनेमें अपनी शक्ति खो बैठते हैं, उन परमात्माका स्तवन दूसरा कौन विद्वान् कर सकता है? मैं शोकातुर अबला उन निरीह परात्पर परमेश्वरकी स्तुति क्या कर सकती हूँ।*

---

*मालावत्युवाच

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम्। विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च सर्वेषां सर्वकर्मसु। विद्यमानं न दृष्टं च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा। ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका॥
जगत्स्रष्टा स्वयं ब्रह्मा नियतो यस्य सेवया। पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शंकरः स्वयम्॥
ध्यायन्ते यं सुराः सर्वे मुनयो मनवस्तथा। सिद्धाश्च योगिनः सन्तः सन्ततं प्रकृतेः परम्॥
साकारं च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम्। वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्॥
तपःफलं तपोबीजं तपसां च फलप्रदम्। स्वयं तपःस्वरूपं च सर्वरूपं च सर्वतः॥
सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तत्कर्मणां फलम्। तेषां च फलदातारं तद्बीजक्षयकारणम्॥
स्वयं तेजःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्। सेवाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना॥
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम्। अतीव कमनीयं च रूपं तत्र मनोहरम्॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम्॥
कोटिकन्दर्पलावण्यं लीलाधाम मनोहरम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम्। किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम्॥
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने। कुत्रचिद्रासमध्यस्थं राधया परिसेवितम्॥
कुत्रचिद् गोपवेशं च वेष्टितं गोपबालकैः। शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने वने॥
निकरं कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम्। गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसम्मोहकारणम्। निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम्॥

ऐसा कहकर गन्धर्व-कुमारी मालावती चुप हो गयी और फूट-फूटकर रोने लगी। भयसे पीड़ित हुई उस सतीने कृपानिधान भगवान् श्रीकृष्णको बारंबार प्रणाम किया। तब निराकार परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण अपनी शक्तियोंके साथ मालावतीके पति—गन्धर्व उपबर्हणके शरीरमें अधिष्ठित हुए। उनका आवेश होते ही गन्धर्व वीणा लिये उठ बैठा और शीघ्र ही स्नानके पश्चात् दो नवीन वस्त्र धारण करके उसने देव-समूहको तथा सामने खड़े हुए उन ब्राह्मणदेवताको प्रणाम किया। फिर तो देवता दुन्दुभि बजाने और फूलोंकी वर्षा करने लगे। उन गन्धर्व-दम्पतिपर दृष्टिपात करके उन

सबने उत्तम आशीर्वाद दिये। गन्धर्वने एक क्षणतक देवताओंके सामने नृत्य और गान किया। देवताओंके वरसे नया जीवन पाकर गन्धर्व उपबर्हण अपनी पत्नीके साथ पुनः गन्धर्व-नगरमें चला गया। सती मालावतीने ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न और नाना प्रकारके धन दिये तथा उन सबको भोजन कराया। उनसे वेदपाठ और मङ्गलकृत्य करवाये। भाँति-भाँतिके बड़े-बड़े उत्सव रचाये। उन सबमें एकमात्र हरिनामकीर्तनरूप मङ्गलकृत्यकी प्रधानता रही। देवता अपने-अपने स्थानको चले गये और ब्राह्मण-रूपधारी साक्षात् श्रीहरि भी अपने धामको पधारे। शौनक! यह सब प्रसंग मैंने तुम्हें कह सुनाया। साथ ही स्तवराजका भी वर्णन किया। जो वैष्णव पुरुष पूजाकालमें इस पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, वह श्रीहरिकी भक्ति एवं उनके दास्यका सौभाग्य पा लेता है। जो आस्तिक पुरुष वर-प्राप्तिकी कामना रखकर उत्तम आस्था और भक्तिभावसे इस स्तोत्रको पढ़ता है, वह धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष-सम्बन्धी फलको निश्चय ही पाता है। इस स्तोत्रके पाठसे विद्यार्थीको विद्याका, धनार्थीको धनका, भार्याकी इच्छावालेको भार्याका और पुत्रकी कामनावालेको पुत्रका लाभ होता है। धर्म चाहनेवाला धर्म और यशकी इच्छावाला यश पाता है। जिसका राज्य छिन गया है, वह राज्य और जिसकी संतान नष्ट हो गयी है, वह संतान पाता है। रोगी रोगसे और कैदी बन्धनसे मुक्त हो

लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितं च चतुर्भुजैः। कुत्रचित् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च॥
श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिसेवितम्। कुत्रचित् स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम्॥
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम्। स्वात्मनः षोडशांशेन सर्वाधारं परात्परम्॥
स्वयं महद्विराड्रूपं विश्वौघं यस्य लोमसु। लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च॥
नानावतारं बिभ्रन्तं बीजं तेषां सनातनम्। वसन्तं कुत्रचित् सन्तं योगिनां हृदये सताम्॥
प्राणरूपं प्राणिनां च परमात्मानमीश्वरम्। तं च स्तोतुमशक्ताहमबला निर्गुणं विभुम्॥
निर्लक्ष्यं च निरीहं च सारं वाङ्मनसोः परम्। यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च॥
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः षडाननः। यं स्तोतुं न क्षमा माया मोहिता यस्य मायया॥
यं स्तोतुं न क्षमा श्रीश्च जडीभूता सरस्वती। वेदा न शक्ता यं स्तोतुं को वा विद्वांश्च वेदवित्॥
किं स्तौमि तमनीहं च शोकार्ता स्त्री परात्परम्। (ब्रह्मखण्ड १८। १—३४½)

जाता है। भयभीत पुरुष भयसे छुटकारा पा जाता है। जिसका धन नष्ट हो गया है, उसे धनकी प्राप्ति होती है। जो विशाल वनमें डाकुओं अथवा हिंसक जन्तुओंसे घिर गया है, दावानलसे दग्ध होनेकी स्थितिमें आ गया है अथवा जलके समुद्रमें डूब रहा है, वह भी इस स्तोत्रका पाठ करके विपत्तिसे छुटकारा पा जाता है।

(अध्याय १८)

ब्रह्माण्डपावन नामक कृष्णकवच, संसारपावन नामक शिवकवच और शिवस्तवराजका वर्णन तथा इन सबकी महिमा

सौति कहते हैं—मालावती ब्राह्मणोंको धन देकर बहुत प्रसन्न हुई। उसने स्वामीकी सेवाके लिये नाना प्रकारसे अपना शृङ्गार किया। वह प्रतिदिन पतिकी सेवा-शुश्रूषा और समयोचित पूजा करने लगी। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली उस पतिव्रताने स्वयं एकान्तमें पतिको भूले हुए महापुरुषके स्तोत्र, पूजन, कवच और मन्त्रका बोध कराया। पूर्वकालमें वसिष्ठजीने पुष्करतीर्थमें गन्धर्व और मालावतीको इस श्रीहरिके स्तोत्र, पूजन आदिका तथा एक मन्त्रका उपदेश दिया

था। इसी तरह शंकरजीका स्तोत्र और कवच भी गन्धर्वको भूल गया था। कृपानिधान वसिष्ठने एकान्तमें गन्धर्वराजको उसका भी बोध कराया। इस प्रकार बोधसम्पन्न हो परमानन्दमय गन्धर्वने अपने कुबेरभवनसदृश आश्रममें रहकर बन्धु-बान्धवोंके साथ राज्य किया। उपबर्हणकी अन्य स्त्रियाँ भी जैसे-तैसे वहाँ आयीं और आकर उन्होंने बड़े आनन्दके साथ पुनः अपने स्वामीको प्राप्त किया।

शौनकने पूछा—सूतनन्दन! पूर्वकालमें वसिष्ठजीने उन दोनों दम्पतिको भगवान् विष्णुके किस स्तोत्र, कवच, मन्त्र और पूजा-विधिका उपदेश किया था—यह आप बतानेकी कृपा करें। पूर्वकालमें वसिष्ठजीने गन्धर्वराजको भगवान् शिवके जिस द्वादशाक्षर-मन्त्र और कवच आदिका उपदेश दिया था, वह भी मुझे बताइये। यह सब सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है; क्योंकि शंकरका स्तोत्र, कवच और मन्त्र दुर्गतिका नाश करनेवाला है।

सौति बोले—शौनकजी! मालतीने जिस स्तोत्रके द्वारा परमेश्वर श्रीकृष्णका स्तवन किया था, वही स्तोत्र वसिष्ठजीने उन गन्धर्व-दम्पतिको दिया था। अब उनके दिये हुए मन्त्र और कवचका वर्णन सुनिये।

'ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा'

—यह षोडशाक्षर-मन्त्र उपासकोंके लिये कल्पवृक्ष-स्वरूप है। इसीका उपदेश वसिष्ठजीने दिया था। पूर्वकालमें श्रीहरिके पुष्करधाममें ब्रह्माजीने कुमारको यह मन्त्र दिया था तथा श्रीकृष्णने गोलोकमें भगवान् शंकरको इसका ज्ञान

प्रदान किया था। यहाँ भगवान् विष्णुके वेदवर्णित स्वरूपका ध्यान किया जाता है, जो सनातन एवं सबके लिये परम दुर्लभ है। पूर्वोक्त मूल मन्त्रसे उत्तम नैवेद्य आदि सभी उपचार समर्पित करने चाहिये। भगवान्‌का जो कवच है, वह अत्यन्त गुप्त है। उसे मैंने अपने पिताजीके मुखसे सुना था। विप्रवर! पूर्वकालमें त्रिशूलधारी भगवान् शंकरने ही पिताजीको गङ्गाके तटपर इसका उपदेश दिया था। भगवान् शंकरको, ब्रह्माजीको तथा धर्मको गोलोकके रासमण्डलमें गोपीवल्लभ श्रीकृष्णने कृपापूर्वक यह परम अद्भुत कवच प्रदान किया था।

ब्रह्मोवाच

राधाकान्त महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम्।
ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो॥ १७॥
मां महेशं च धर्मं च भक्तं च भक्तवत्सल।
त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः॥ १८॥

ब्रह्माजी बोले—महाभाग! राधावल्लभ! प्रभो! ब्रह्माण्डपावन नामक जो कवच आपने प्रकाशित किया है, उसका उपदेश कृपापूर्वक मुझको, महादेवजीको तथा धर्मको दीजिये। भक्तवत्सल! हम तीनों आपके भक्त हैं। आपकी कृपासे मैं अपने पुत्रोंको भक्तिपूर्वक इसका उपदेश दूँगा।

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम्।
अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्॥ १९॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि।
यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च॥ २०॥

श्रीकृष्णने कहा—ब्रह्मन्! महेश्वर! और धर्म! तुम लोग सुनो! मैं इस उत्तम कवचका वर्णन कर रहा हूँ। यद्यपि यह परम दुर्लभ और गोपनीय है तथापि तुम्हें इसका उपदेश दूँगा। परंतु ध्यान रहे, जिस-किसीको भी इसका उपदेश नहीं देना चाहिये; क्योंकि यह मेरे लिये प्राणोंके समान है। जो तेज मेरे शरीरमें है, वही इस कवचमें भी है।

कुरु सृष्टिमिमं धृत्वा धाता त्रिजगतां भव।
संहर्ता भव हे शम्भो मम तुल्यो भवे भव॥ २१॥
हे धर्म त्वमिमं धृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम्।
तपसां फलदाता च यूयं भवत मद्वरात्॥ २२॥

ब्रह्मन्! तुम इस कवचको धारण करके सृष्टि करो और तीनों लोकोंके विधाताके पदपर प्रतिष्ठित रहो। शम्भो! तुम भी इस कवचको ग्रहण करके संहारका कार्य सम्पन्न करो और संसारमें मेरे समान शक्तिशाली हो जाओ। धर्म! तुम इस कवचको धारण करके कर्मोंके साक्षी बने रहो। तुम सब लोग मेरे वरसे तपस्याके फलदाता हो जाओ।

ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम्।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं जगदीश्वरः॥ २३॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः।
त्रिलक्षवारपठनात् सिद्धिदं कवचं विधे॥ २४॥

इस ब्रह्माण्डपावन कवचके स्वयं श्रीहरि ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, मैं जगदीश्वर श्रीकृष्ण ही देवता हूँ तथा धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी सिद्धिके लिये इसका विनियोग* कहा गया है। विधे! तीन लाख बार पाठ करनेपर यह कवच सिद्धिदायक होता है।

यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेत्तु सः।
तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च॥ २५॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च।
भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च॥ २६॥
कृष्णः पायाच्छ्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च।
जिह्विकां वह्निजाया तु कृष्णायेति च सर्वतः॥ २७॥

* इस कवचका विनियोगवाक्य संस्कृतमें इस प्रकार है—
ॐ अस्य श्रीब्रह्माण्डपावनकवचस्य साक्षात् श्रीहरिः ऋषिः, गायत्री छन्दः, स एव जगदीश्वरः श्रीकृष्णो देवता धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः।

श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठं पातु षडक्षरः।
ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं क्लीं पूर्वश्च भुजद्वयम्॥ २८॥
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु।
दन्तपङ्क्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च॥ २९॥
ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा।
स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः॥ ३०॥
ऐं कृष्णाय स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु।
ॐ विष्णवे स्वाहेति च कङ्कालं सर्वतोऽवतु॥ ३१॥
ॐ हरये नम इति पृष्ठं पादं सदाऽवतु।
ॐ गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम्॥ ३२॥
प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः।
दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः॥ ३३॥
वारुण्यां पातु गोविन्दो वायव्यां राधिकेश्वरः।
उत्तरे पातु रासेश ऐशान्यामच्युतः स्वयम्॥ ३४॥
सन्ततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम्।
इति ते कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम्॥ ३५॥
मम जीवनतुल्यं च युष्मभ्यं दत्तमेव च।

जो इस कवचको सिद्ध कर लेता है, वह तेज, सिद्धियोंके योग, ज्ञान और बल-पराक्रममें मेरे समान हो जाता है।

प्रणव (ॐकार) मेरे मस्तककी रक्षा करे, 'नमो रासेश्वराय' (रासेश्वरको नमस्कार है) यह मन्त्र मेरे ललाटका पालन करे। 'नमो राधेश्वराय' (राधापतिको नमस्कार है) यह मन्त्र दोनों नेत्रोंकी रक्षा करे। 'कृष्ण' दोनों कानोंका पालन करें। 'हे हरे' यह नासिकाकी रक्षा करे। 'स्वाहा' मन्त्र जिह्वाको कष्टसे बचावे। 'कृष्णाय स्वाहा' यह मन्त्र सब ओरसे हमारी रक्षा करे। 'श्रीकृष्णाय स्वाहा' यह षडक्षर-मन्त्र कण्ठको कष्टसे बचावे। 'ह्रीं कृष्णाय नमः' यह मन्त्र मुखकी तथा 'क्लीं कृष्णाय नमः' यह मन्त्र दोनों भुजाओंकी रक्षा करे। 'नमो गोपाङ्गनेशाय' (गोपाङ्गनावल्लभ श्रीकृष्णको नमस्कार है) यह अष्टाक्षर-मन्त्र दोनों कंधोंका पालन करे। 'नमो गोपीश्वराय' (गोपीश्वरको नमस्कार है) यह मन्त्र दन्तपंक्ति तथा ओष्ठयुगलकी रक्षा करे। 'ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा' (रासमण्डलके स्वामी सच्चिदानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। उनकी प्रसन्नताके लिये मैं अपने सर्वस्वकी आहुति देता हूँ—त्याग करता हूँ) यह षोडशाक्षर-मन्त्र मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। 'ऐं कृष्णाय स्वाहा' यह मन्त्र सदा मेरे दोनों कानोंको कष्टसे बचावे। 'ॐ विष्णवे स्वाहा' यह मन्त्र मेरे कङ्काल (अस्थिपञ्जर)-की सब ओरसे रक्षा करे। 'ॐ हरये नमः' यह मन्त्र सदा मेरे पृष्ठभाग और पैरोंका पालन करे। 'ॐ गोवर्द्धनधारिणे स्वाहा' यह मन्त्र मेरे सम्पूर्ण शरीरकी रक्षा करे। पूर्व दिशामें श्रीकृष्ण, अग्निकोणमें माधव, दक्षिण दिशामें गोपीश्वर तथा नैर्ऋत्यकोणमें नन्दनन्दन मेरी रक्षा करें। पश्चिम दिशामें गोविन्द, वायव्यकोणमें राधिकेश्वर, उत्तर दिशामें रासेश्वर और ईशानकोणमें स्वयं अच्युत मेरा संरक्षण करें तथा परमपुरुष साक्षात् नारायण सदा सब ओरसे मेरा पालन करें। ब्रह्मन्! इस प्रकार इस परम अद्भुत कवचका मैंने तुम्हारे सामने वर्णन किया। यह मेरे जीवनके तुल्य है। यह मैंने तुम लोगोंको अर्पित किया।

अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात्॥ ३६॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः।
स्नात्वा तं च नमस्कृत्य कवचं धारयेत् सुधीः॥ ३७॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः।
यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद् द्विज॥ ३८॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महापुराणे ब्रह्मखण्डे महापुरुषब्रह्माण्डपावनं नाम श्रीकृष्णकवचं सम्पूर्णम्।

इस कवचको धारण करनेसे जो पुण्य होता है, सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय-यज्ञ उसकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हो सकते। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि स्नान करके वस्त्र-अलङ्कार और चन्दनद्वारा विधिवत् गुरुकी पूजा और वन्दना करनेके पश्चात् कवच धारण

करे। इस कवचके प्रसादसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। शौनकजी! यदि किसीने इस कवचको सिद्ध कर लिया तो वह विष्णुरूप ही हो जाता है।

इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्त महापुराणके ब्रह्मखण्डमें महापुरुषब्रह्माण्डपावन नामक श्रीकृष्णकवच पूरा हुआ।

सौति कहते हैं—शौनक! अब शिवका कवच और स्तोत्र सुनिये, जिसे वसिष्ठजीने गन्धर्वको दिया था। शिवका जो द्वादशाक्षर-मन्त्र है, वह इस प्रकार है, 'ॐ नमो भगवते शिवाय स्वाहा'। प्रभो! इस मन्त्रको पूर्वकालमें वसिष्ठजीने पुष्करतीर्थमें कृपापूर्वक प्रदान किया था। प्राचीन कालमें ब्रह्माजीने रावणको यह मन्त्र दिया था और शंकरजीने पहले कभी बाणासुरको और दुर्वासाको भी इसका उपदेश दिया था। इस मूलमन्त्रसे इष्टदेवको नैवेद्य आदि सम्पूर्ण उत्तम उपचार समर्पित करना चाहिये। इस मन्त्रका वेदोक्त ध्यान 'ध्यायेन्नित्यं[1] महेशं' इत्यादि श्लोकके अनुसार है, जो सर्वसम्मत है।

'ॐ नमो महादेवाय'

बाणासुर उवाच

महेश्वर महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम्।
संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो॥ ४३॥

सच्चिदानन्दस्वरूप श्रीमहादेवजीको नमस्कार है।

बाणासुरने कहा—महाभाग! महेश्वर! प्रभो! आपने संसारपावन नामक जो कवच प्रकाशित किया है, उसे कृपापूर्वक मुझसे कहिये।

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स! कवचं परमाद्भुतम्।
अहं तुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम्॥ ४४॥

पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च।
ममैवेदं च कवचं भक्त्या यो धारयेत् सुधीः॥ ४५॥
जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवानिव लीलया॥ ४६॥

महेश्वर बोले—बेटा! सुनो, उस परम अद्भुत कवचका मैं वर्णन करता हूँ। यद्यपि यह परम दुर्लभ और गोपनीय है तथापि तुम्हें उसका उपदेश दूँगा। पूर्वकालमें त्रैलोक्य-विजयके लिये यह कवच मैंने दुर्वासाको दिया था। जो उत्तम बुद्धिवाला पुरुष भक्तिभावसे मेरे इस कवचको धारण करता है, वह भगवान्‌की भाँति लीलापूर्वक

१. 'ध्यायेन्नित्यं महेशं' इत्यादि श्लोक इस प्रकार है—

ध्यायेन्नित्यं महेशं रजतगिरिनिभं चारुचन्द्रावतंसं दिव्याकल्पोज्ज्वलाङ्गं परशुमृगवराभीतिहस्तं प्रसन्नम्।
रत्नासीनं समन्तात् स्तुतममरगणैर्व्याघ्रकृत्तिं वसानं विश्वाद्यं विश्ववन्द्यं सकलभयहरं पञ्चवक्त्रं त्रिनेत्रम्॥

'प्रतिदिन महेश्वरका ध्यान करे। उनकी अङ्गकान्ति चाँदीके पर्वत अथवा कैलासके समान है, मस्तकपर मनोहर चन्द्रमाका मुकुट शोभा पाता है, दिव्य वेशभूषा एवं शृङ्गारसे उनका प्रत्येक अङ्ग उज्ज्वल—जगमगाता हुआ जान पड़ता है, उनके एक हाथमें फरसा, दूसरेमें मृगछौना तथा शेष दो हाथोंपर अभयकी मुद्राएँ हैं, वे सदा प्रसन्न रहते हैं, रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं, देवता लोग चारों ओरसे खड़े होकर उनकी स्तुति करते हैं। वे बाघम्बर पहने बैठे हैं, सम्पूर्ण विश्वके आदिकारण और वन्दनीय हैं, सबका भय दूर कर देनेवाले हैं, उनके पाँच मुख हैं और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र हैं।

तीनों लोकोंपर विजय पा सकता है।

संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः।
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं च महेश्वरः।
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥ ४७॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत्॥ ४८॥
यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद् भुवि।
तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च॥ ४९॥
शम्भुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः।
दन्तपंक्तिं च नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम्॥ ५०॥
कण्ठं पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ वृषभवाहनः।
वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः॥ ५१॥
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा।
स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु संततम्॥ ५२॥
इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम्।
यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः॥ ५३॥
यत् फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः।
तत् फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात्॥ ५४॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः।
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥ ५५॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते संसारपावनं नाम शंकरकवचं सम्पूर्णम्।

इस संसारपावन नामक शिवकवचके प्रजापति ऋषि, गायत्री छन्द तथा मैं महेश्वर देवता हूँ। धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षके लिये इसका विनियोग है। (विनियोग-वाक्य यों समझना चाहिये—'ॐ अस्य श्रीसंसारपावननामधेयस्य शिवकवचस्य प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्री छन्दो महेश्वरो देवता धर्मार्थकाममोक्षसिद्धौ विनियोगः।') पाँच लाख बार पाठ करनेसे यह कवच सिद्धिदायक होता है। जो इस कवचको सिद्ध कर लेता है, वह तेज, सिद्धियोग, तपस्या और बल-पराक्रममें इस भूतलपर मेरे समान हो जाता है।

शम्भु मेरे मस्तककी और महेश्वर मुखकी रक्षा करें। नीलकण्ठ दाँतोंकी पाँतका और स्वयं हर अधरोष्ठका पालन करें। चन्द्रचूड कण्ठकी और वृषभवाहन दोनों कंधोंकी रक्षा करें। नीलकण्ठ वक्षःस्थलका और दिगम्बर पृष्ठभागका पालन करें। विश्वेश सदा सब दिशाओंमें सम्पूर्ण अङ्गोंकी रक्षा करें। सोते और जागते समय स्थाणुदेव निरन्तर मेरा पालन करते रहें।

बाण! इस प्रकार मैंने तुमसे इस परम अद्भुत कवचका वर्णन किया। इसका उपदेश जो ही आवे, उसीको नहीं देना चाहिये, अपितु प्रयत्नपूर्वक इसको गुप्त रखना चाहिये। मनुष्य सब तीर्थोंमें स्नान करके जिस फलको पाता है, उसको अवश्य इस कवचको धारण करनेमात्रसे पा लेता है। जो अत्यन्त मन्दबुद्धि मानव इस कवचको जाने बिना मेरा भजन करता है, वह सौ लाख बार जप करे तो भी उसका मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।

इस प्रकार श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणमें संसारपावन नामक शिवकवचका वर्णन पूरा हुआ।

सौति कहते हैं—शौनक! यह तो कवच कहा गया। अब स्तोत्र सुनिये। मन्त्रराज कल्पवृक्ष-स्वरूप है। इसे पूर्वकालमें वसिष्ठजीने दिया था।

ॐ नमः शिवाय

बाणासुर उवाच

वन्दे सुराणां सारं च सुरेशं नीललोहितम्।
योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च गुरोर्गुरुम्॥ ५६॥
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम्।
तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्॥ ५७॥
तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम्।
वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः॥ ५८॥
कारणं भुक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम्।
आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्॥ ५९॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभम्।
ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्॥ ६०॥
विषयाणां विभेदेन बिभ्रन्तं बहुरूपकम्।
जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम्॥ ६१॥
वायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्यरूपं महत्प्रभुम्।
आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया॥ ६२॥

भक्तजीवनमीशं च भक्तानुग्रहकातरम्।
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्॥ ६३॥
अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम्।
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्।
त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम्॥ ६४॥
इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं बाणः सुसंयतः।
प्राणमच्छंकरं भक्त्या दुर्वासाश्च मुनीश्वरः॥ ६५॥

सच्चिदानन्दस्वरूप शिवको नमस्कार है।

बाणासुर बोला—जो देवताओंके सार-तत्त्वस्वरूप और समस्त देवगणोंके स्वामी हैं, जिनका वर्ण नील और लोहित है, जो योगियोंके ईश्वर, योगके बीज तथा योगियोंके गुरुके भी गुरु हैं, उन भगवान् शिवकी मैं वन्दना करता हूँ। जो ज्ञानानन्दस्वरूप, ज्ञानरूप, ज्ञानबीज, सनातन देवता, तपस्याके फलदाता तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तपःस्वरूप, तपस्याके बीज, तपोधनोंके श्रेष्ठ धन, वर, वरणीय, वरदायक तथा श्रेष्ठ सिद्धगणोंके द्वारा स्तवन करनेयोग्य हैं, उन भगवान् शंकरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो भोग और मोक्षके कारण, नरकसमुद्रसे पार उतारनेवाले, शीघ्र प्रसन्न होनेवाले, प्रसन्नमुख तथा करुणासागर हैं, उन भगवान् शिवको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनकी अङ्गकान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद तथा श्वेत कमलके सदृश उज्ज्वल है, जो ब्रह्मज्योतिःस्वरूप तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये विभिन्न रूप धारण करनेवाले हैं, उन भगवान् शंकरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो विषयोंके भेदसे बहुतेरे रूप धारण करते हैं, जल, अग्नि, आकाश, वायु, चन्द्रमा और सूर्य जिनके स्वरूप हैं, जो ईश्वर एवं महात्माओंके प्रभु हैं और लीलापूर्वक अपना पद देनेकी शक्ति रखते हैं, जो भक्तोंके जीवन हैं तथा भक्तोंपर कृपा करनेके लिये कातर हो उठते हैं, उन ईश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। वेद भी जिनका स्तवन करनेमें असमर्थ हैं, जो देश, काल और वस्तुसे परिच्छिन्न नहीं हैं तथा मन और वाणीकी पहुँचसे परे हैं, उन परमेश्वर प्रभुकी मैं क्या स्तुति करूँगा! जो व्याघ्रम्बरधारी अथवा दिगम्बर हैं, बैलपर सवार हो त्रिशूल और पट्टिश धारण करते हैं, उन मन्द मुस्कानकी आभासे सुशोभित मुखवाले भगवान् चन्द्रशेखरको मैं प्रणाम करता हूँ।

यों कहकर बाणासुर प्रतिदिन संयमपूर्वक रहकर स्तवराजसे भगवान्‌की स्तुति करता था और भक्तिभावसे शंकरजीके चरणोंमें मस्तक झुकाता था। मुनीश्वर दुर्वासा भी ऐसा ही करते थे।

मुने! वसिष्ठजीने पूर्वकालमें त्रिशूलधारी शिवके इस परम महान् अद्भुत स्तोत्रका गन्धर्वको उपदेश दिया था। जो मनुष्य भक्तिभावसे इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, वह निश्चय ही सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल पा लेता है। जो संयमपूर्वक हविष्य खाकर रहते हुए जगद्गुरु शंकरको प्रणाम करके एक वर्षतक इस स्तोत्रको सुनता है, वह पुत्रहीन हो तो अवश्य ही पुत्र प्राप्त कर लेता है। जिसको गलित कोढ़का रोग हो या उदरमें बड़ा भारी शूल उठता हो, वह यदि एक वर्षतक इस स्तोत्रको सुने तो अवश्य ही उस रोगसे मुक्त हो जाता है। यह बात मैंने व्यासजीके मुँहसे सुनी है। जो कैदमें पड़कर शान्ति न पाता हो, वह भी एक मासतक इस स्तोत्रको श्रवण करके अवश्य ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जिसका राज्य छिन गया हो, ऐसा पुरुष यदि भक्तिपूर्वक एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करे तो अपना राज्य प्राप्त कर लेता है। एक मासतक संयमपूर्वक इसका श्रवण करके निर्धन मनुष्य धन पा लेता है। राजयक्ष्मासे ग्रस्त होनेपर जो आस्तिक पुरुष एक वर्षतक इसका श्रवण करता है, वह भगवान् शंकरके प्रसादसे निश्चय ही रोगमुक्त हो

जाता है। द्विज शौनक! जो सदा भक्तिभावसे इस स्तवराजको सुनता है उसके लिये तीनों लोकोंमें कुछ भी असाध्य नहीं रह जाता। भारतवर्षमें उसको कभी अपने बन्धुओंसे वियोगका दुःख नहीं होता। वह अविचल एवं महान् ऐश्वर्यका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। जो पूर्ण संयमसे रहकर अत्यन्त भक्तिभावसे एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह यदि भार्याहीन हो तो अति विनयशील सती-साध्वी सुन्दरी भार्या पाता है। जो महान् मूर्ख और खोटी बुद्धिका है, ऐसा मनुष्य यदि इस स्तोत्रको एक मासतक सुनता है तो वह गुरुके उपदेशमात्रसे बुद्धि और विद्या पाता है। जो प्रारब्ध-कर्मसे दुःखी और दरिद्र मनुष्य भक्तिभावसे इस स्तोत्रका श्रवण करता है, उसे निश्चय ही भगवान् शंकरकी कृपासे धन प्राप्त होता है। जो प्रतिदिन तीनों संध्याओंके समय इस उत्तम स्तोत्रको सुनता है, वह इस लोकमें सुख भोगता, परम दुर्लभ कीर्ति प्राप्त करता और नाना प्रकारके धर्मका अनुष्ठान करके अन्तमें भगवान् शंकरके धामको जाता है, वहाँ श्रेष्ठ पार्षद होकर भगवान् शिवकी सेवा करता है।

(अध्याय १९)

गोपपत्नी कलावतीके गर्भसे एक शिशुके रूपमें उपबर्हणका जन्म, शूद्रयोनिमें उत्पन्न बालक नारदकी जीवनचर्या, नामकी व्युत्पत्ति, उसके द्वारा संतोंकी सेवा, सनत्कुमारद्वारा उसे उपदेशकी प्राप्ति, उसके द्वारा श्रीहरिके स्वरूपका ध्यान, आकाशवाणी तथा उस बालकके देह-त्यागका वर्णन

सौति कहते हैं—उपबर्हण गन्धर्व अपनी पत्नी मालावतीके साथ तथा अन्य पत्नियोंके साथ भी निर्जन वनमें आनन्दपूर्वक विहार करने लगे। उन्होंने अपनी आयुका शेष काल सानन्द बिताना आरम्भ किया। उपबर्हणके पिता गन्धर्वराज भी स्त्री-पुत्रोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक रहने लगे। उन्होंने नाना प्रकारके श्रेष्ठ कर्म तथा बड़े-बड़े पुण्य कर्म किये। वे कुबेर-भवनके समान वैभवशाली गृहमें राजा होकर राजसुखका उपभोग करने लगे। उन्होंने अपनी सुस्थिरयौवना सुशीला पत्नीके साथ कुछ कालतक विहार किया। फिर समय आनेपर गङ्गाजीके मनोहर तटपर पत्नीसहित गन्धर्वराज प्राणोंका परित्याग करके सानन्द वैकुण्ठधामको चले गये। वे शैव थे, इसलिये उनपर शिवजीकी कृपा हुई तथा उनके पुत्रने श्रीविष्णुकी सेवा की थी, इसलिये भगवान् विष्णुकी भी उनपर कृपादृष्टि हुई। इससे वे वैकुण्ठमें श्रीविष्णुके श्याम-चतुर्भुजरूपधारी पार्षद हुए। माता-पिताका संस्कार करके गन्धर्व उपबर्हणने ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके धन दिये। शौनकजी! फिर अन्तकाल आनेपर ब्रह्माजीके शापसे प्राणोंका परित्याग करके उस विद्वान् गन्धर्वने ब्राह्मणके वीर्य और शूद्राके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। सती मालावतीने मनमें उत्तम संकल्प ले भारतभूमिके पुष्कर तीर्थमें अग्निकुण्डके भीतर अपने प्राणोंका परित्याग कर दिया। वह साध्वी मनुवंशी राजा सृंजयकी पत्नीसे उत्पन्न हुई। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रहता था। उस सुन्दरीके मनमें यही संकल्प था कि उपबर्हण गन्धर्व मेरे पति हों।

शौनकजीने पूछा—सूतनन्दन! उपबर्हण गन्धर्व ब्राह्मणके वीर्य और शूद्र-पत्नीके गर्भसे किस प्रकार उत्पन्न हुए? यह आप बतानेकी कृपा करें।

शौनकजीके यों पूछनेपर सूतजीने 'गोपराज द्रुमिलकी पत्नी कलावतीने मुनिवर काश्यपके स्खलित शुक्रको ग्रहण कर लिया था, इससे उसको पुत्रकी प्राप्ति हुई थी'—इस प्रकार

उपबर्हणके जन्मकी कथा सुनाकर कहा कि गोपराज बदरिकाश्रममें जाकर योगबलसे शरीरको त्यागनेके पश्चात् विमानद्वारा वैकुण्ठधाममें चले गये। तत्पश्चात् शोकविह्वला कलावतीको अपनी माता कहकर एक दयालु ब्राह्मण अपने घर ले गये। साध्वी कलावतीने ब्राह्मणके ही घरमें रहकर एक श्रेष्ठ पुत्रको जन्म दिया, जिसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान दमक रही थी। वह ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान हो रहा था। उस घरमें रहनेवाली सभी स्त्रियोंने उस सुन्दर बालकको देखा। वह अपने ब्रह्मतेजसे ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक प्रचण्ड सूर्यकी प्रभाको पराजित कर रहा था। उसका रूप कामदेवसे भी अधिक सुन्दर तथा मुख चन्द्रमासे भी अधिक मनोहर था। उसके मुखकी शोभासे शरत्पूर्णिमाका चन्द्र लज्जित हो रहा था। उसके नेत्र शरद्-ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको छीने लेते थे। ललित हाथ-पैर, सुन्दर कपोल और मनोहर आकृति थी। पद्म और चक्रसे चिह्नित उसके चरणारविन्द अनुपम परम उज्ज्वल प्रतीत होते थे। उसके दोनों हाथोंकी भी कहीं तुलना नहीं थी। वह स्तन पीनेके लिये रो रहा था। स्त्रियाँ उस बालकको देखकर बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने-अपने आश्रमको गयीं। पुत्र और स्त्रीसहित ब्राह्मण भी बड़े प्रसन्न हुए और नृत्य करने लगे। वह बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगा। ब्राह्मण पुत्रसहित कलावतीका पुत्रीकी भाँति पालन करने लगा।

सौति कहते हैं—शौनकजी! समयके अनुसार क्रमशः बढ़ता हुआ वह बालक पाँच वर्षका हो गया। उसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वह सदा ज्ञानसे सम्पन्न रहता था। उसे पूर्वजन्ममें जपे हुए मन्त्रका सदा स्मरण बना रहा। अतः वह निरन्तर श्रीकृष्णके नाम, यश और गुण आदिका गान किया करता था। क्षणभरमें रोने लगता और दूसरे ही क्षण नृत्य करते हुए उसका सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठता था। वह बालक जहाँ-जहाँ श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाली गाथा तथा तत्सम्बन्धी पुराण सुनता, वहीं ठहरता था। उसके सारे अङ्ग धूलसे धूसरित रहते थे। वह धूलमें भगवान्‌की प्रतिमा बनाकर धूलसे ही श्रीहरिका पूजन करता और धूलका ही अभीष्ट नैवेद्य अर्पित करता था। मुने! यदि माता सबेरे कलेवेके लिये बेटेको बुलाती तो वह माताको यही उत्तर देता था कि 'मैं श्रीहरिका पूजन करता हूँ।'

शौनकने पूछा—सूतनन्दन! इस बालकका इस नये जन्ममें क्या नाम हुआ? संज्ञा और व्युत्पत्तिके साथ आप उसे बतानेकी कृपा करें।

सौतिने कहा—शौनकजी! अनावृष्टिके अन्तमें यह बालक उत्पन्न हुआ था। अतः जन्मकालमें जगत्‌को नार (जल) प्रदान किया। इसीसे उसका नाम 'नारद' हुआ। पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण रखनेवाला वह महाज्ञानी बालक दूसरे बालकोंको नार अर्थात् ज्ञान देता था, इसलिये भी नारद नामसे विख्यात हुआ। मुने! वह मुनीन्द्र नारदसे ही उत्पन्न हुआ था, इस कारण भी उसका नाम नारद रखा गया।

शौनकजीने पूछा—शिशुका जो नारद नाम रखा गया था, वह तो व्युत्पत्तिके अनुसार उचित जान पड़ा। परंतु उसके उत्पादक मुनीन्द्रका मङ्गलमय नाम नारद किस प्रकार हुआ?

सौतिने कहा—शौनकजी! धर्मपुत्र मुनिवर नरने पुत्रहीन ब्राह्मण कश्यपको पुत्र प्रदान किया था, अतः नरप्रदत्त होनेके कारण उसका नाम नारद हुआ।

शौनक बोले—सूतनन्दन! अब मैंने शिशुके भी नारद नामकी व्युत्पत्ति सुन ली। अब यह बताइये कि शूद्रयोनिमें तथा ब्रह्मपुत्र-अवस्थामें उनका नाम नारद कैसे सम्भव हुआ?

सौतिने कहा—कल्पान्तरमें ब्रह्माजीके कण्ठसे

बहुसंख्यक नर उत्पन्न हुए थे। उनके कण्ठने नरका दान किया था, इसलिये वह 'नरद' कहलाया। उस नरद अर्थात् कण्ठसे बालककी उत्पत्ति हुई, इसलिये ब्रह्माजीने उसका मङ्गलमय नाम नारद रखा। अब आप सावधान होकर उस शिशुका वृत्तान्त सुनिये। बालकके नारद नामकी उपलब्धिमें क्या रहस्य है, इस बातकी जानकारी होनेसे कौन-सा विशिष्ट प्रयोजन सिद्ध होता है। वह गोपीका बालक ब्राह्मणके घरमें प्रतिदिन बढ़ने और हृष्ट-पुष्ट होने लगा। ब्राह्मण पुत्रसहित उस गोपीका अपनी पुत्रीकी भाँति पालन करते थे, इसी बीचमें कुछ महातेजस्वी ब्राह्मण, जो देखनेमें पाँच वर्षके बालकोंकी भाँति जान पड़ते थे, उस ब्राह्मणके घर आये। वे अपने तेजसे ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत कर रहे थे। गृहस्थ ब्राह्मणने मधुपर्क आदि देकर उन सबको प्रणाम किया। भोजनके समय उन चारों मुनिवरोंने ब्राह्मणके दिये हुए फल-मूल आदिका आहार ग्रहण किया। उनकी जूँठन उस शिशुने खायी। उनमें जो चौथे मुनि थे, उन्होंने उस बालकको प्रसन्नतापूर्वक श्रीकृष्ण-मन्त्रका उपदेश दिया। ब्राह्मण और अपनी माताकी आज्ञासे वह बालक उन चारों महात्माओंका दास बनकर उनकी सेवा-टहल करता रहा। एक दिन उस शिशुकी माता रातके समय मार्गपर चल रही थी। इतनेहीमें एक साँपने उसे डँस लिया और वह श्रीहरिका स्मरण करती हुई तत्काल चल बसी। वह सती साध्वी गोपी उत्तम रत्नोंद्वारा निर्मित वैष्णव विमानपर बैठकर विष्णु-पार्षदोंके साथ उसी क्षण वैकुण्ठधाममें जा पहुँची। प्रातः-काल वह बालक उन ब्राह्मणोंके साथ गृहस्थ ब्राह्मणके घरसे चल दिया। उन कृपालु ब्राह्मणोंने उस बालकको तत्त्वज्ञान प्रदान किया। इसके बाद वे सब ब्रह्मकुमार उस शिशुको वहीं छोड़कर अपने स्थानको चले गये। वह शिशु बड़ा ज्ञानी था। अतः गङ्गाजीके मनोहर तटपर ठहर गया। वहाँ स्नान करके उसने ब्राह्मणोंके दिये हुए विष्णु-मन्त्रका जप किया, जो क्षुधा, पिपासा, रोग तथा शोकको हर लेनेवाला है और वेदोंमें भी दुर्लभ है। घोर विशाल वनमें पीपलके नीचे योगासन लगाकर वह बालक वहाँ सुदीर्घकालतक बैठा रहा।

शौनकने पूछा—सूतनन्दन! उस बालकको किस मन्त्रकी प्राप्ति हुई? बुद्धिमान् सनत्कुमारके दिये हुए श्रीहरिके उस उत्तम मन्त्रको आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

सौति बोले—शौनकजी! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने गोलोक-धामके भीतर ब्रह्माजीको कृपापूर्वक जिस बाईस अक्षरवाले मन्त्रका उपदेश दिया था, वह वेदोंमें भी परम दुर्लभ है। ब्रह्माजीने बुद्धिमान् सनत्कुमारको उनके भक्तिभावसे प्रभावित होकर वह मन्त्र दिया तथा सनत्कुमारने उक्त गोपी-बालकको उस मन्त्रका उपदेश दिया। वह मन्त्र इस प्रकार है—

ॐ श्रीं नमो भगवते रासमण्डलेशाय श्रीकृष्णाय स्वाहा।

—यह मन्त्र कल्पवृक्षस्वरूप है। इसके साथ ही महापुरुषस्तोत्र तथा पूर्वोक्त कवच भी दिया। इस मन्त्रके लिये उपयोगी जो सामवेदोक्त ध्यान है, उसका भी उपदेश कर दिया। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तेजोमण्डलस्वरूप जो अनिर्वचनीय चिन्मय प्रकाश है, उसमें ध्यान लगाकर योगी, सिद्धगण तथा देवता मनोवाञ्छित रूपका साक्षात्कार करते हैं। वैष्णवजन उस ज्योतिःपुञ्जके भीतर अपने निकट ही जिस रूपका ध्यान करते हैं, वह अत्यन्त कमनीय, अनिर्वचनीय एवं मनोहर है। नूतन जलधरके समान उसकी श्याम कान्ति है। नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल पङ्कजकी शोभाको छीने लेते हैं। मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति आह्लादजनक है। अधर पके हुए बिम्बफलसे भी अधिक अरुण है। मोतियोंकी पंक्तिको तिरस्कृत

झरनेवाली दन्तावलीके कारण वे बड़े मनोहर जान पड़ते हैं। उनके मुखपर मुस्कराहट खेलती रहती है। उनके हाथमें मुरली शोभा पाती है। श्रीअङ्गोंमें करोड़ों कामदेवोंका लावण्य संचित है। वे लीलाके मनोहर धाम हैं। लाखों चन्द्रमाओंकी प्रभा उनके श्रीविग्रहकी सेवा करती है। उनका प्रत्येक अङ्ग परिपुष्ट तथा श्रीसम्पन्न है। वे त्रिभंगी छबिसे सुशोभित होते हैं, उनके दो बाँहें हैं। शरीरपर पीताम्बर शोभा पाता है। रत्नोंके बने हुए बाजूबंद और कंगन तथा रत्ननिर्मित नूपुर उनके विभिन्न अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। दोनों कपोलोंपर रत्नमय कुण्डल झिलमिलाते रहते हैं। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा पाता है। रत्नमयी माला कण्ठदेशको विभूषित करती है। मालतीकी वनमालासे घुटनोंतकका भाग सुशोभित है। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं तथा वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। श्रेष्ठ कौस्तुभमणिकी प्रभासे उनका वक्षःस्थल उद्भासित होता है। सुस्थिर यौवनसे युक्त तथा सदा सब ओर घेरकर खड़ी हुई भूषण-भूषित गोपिकाएँ सदा बाँकी चितवनसे उनकी ओर देखा करती हैं। वे श्रीराधाके वक्षःस्थलमें विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता नित्य-निरन्तर उनकी पूजा, वन्दना और स्तुति करते हैं। उनकी अवस्था किशोर है। वे श्रीराधाके प्राणनाथ, शान्तस्वरूप एवं परात्पर हैं। वे निर्लिप्त एवं साक्षीरूप हैं। निर्गुण तथा प्रकृतिसे परे हैं। वे सर्वेश्वर परमात्मा एवं ऐश्वर्यशाली हैं। इस प्रकार उन भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करे।

मुने! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान्‌के ध्यान, स्तोत्र, कवच तथा मन्त्रोपयोगी सत्यका वर्णन किया है। उनका मन्त्र भी कल्पवृक्षस्वरूप है। शौनक! उस समय वह बालक एक हजार दिव्य वर्षोंतक बिना कुछ खाये-पीये ध्यानमें बैठा रहा। उसका पेट सटकर अत्यन्त कृश हो गया था। फिर भी वह सिद्ध मन्त्रके प्रभावसे परिपुष्ट एवं शक्तिमान् था। उसने ध्यानमें देखा—एक दिव्य लोक है, जहाँ रत्नमय सिंहासनपर एक दिव्य बालक विराजमान है। रत्नमय आभूषण उसके

अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। किशोर-अवस्था, श्याम-कान्ति, गोप-वेष और मुखपर मन्द-मन्द मुस्कान है। वह पीताम्बरधारी द्विभुज किशोर गोपों और गोपाङ्गनाओंसे घिरा हुआ है। उसके हाथमें मुरली है। चन्दनसे उसके श्रीअङ्गोंका शृङ्गार किया गया है तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता उस चिर-शान्त परात्पर पुरुषकी स्तुति कर रहे हैं। वह शान्त स्वभाववाला गोपीका बालक श्यामसुन्दरकी उस मनोहर झाँकीको देखकर ध्यानसे विरत हो गया। ध्यान टूटनेपर जब फिर वह उनका दर्शन न कर सका तब शोकसे पीड़ित हो गया। ध्यानगत बालकको पुनः न देखनेपर वह गोपीकुमार पीपलकी जड़पर बैठकर रोने लगा। तब उस रोते हुए बालकको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई। आकाशवाणीका कथन सत्य, प्रबोधयुक्त, हितकर एवं संक्षिप्त था। आकाशवाणी बोली—'बालक! एक बार जो रूप तेरे दृष्टिपथमें आ चुका है, वही इस समय पर्याप्त

है। अब फिर तुझे उसका दर्शन नहीं हो सकता; क्योंकि जिनके अन्तःकरणकी वासना परिपक्व

नहीं हुई है, ऐसे कुयोगियोंको उस स्वरूपका दर्शन होना अत्यन्त कठिन है। तेरे इस शरीरका अन्त होनेपर जब तुझे दिव्य शरीर प्राप्त होगा, तब तू पुनः जन्म, मृत्यु और जराका नाश करनेवाले गोविन्दका दर्शन करेगा।'

यह सुनकर वह बालक बड़ी प्रसन्नताके साथ पुनः ध्यानके प्रयाससे विरत हो गया। उसने समय आनेपर मन-ही-मन श्रीकृष्णका स्मरण करते हुए तीर्थभूमिमें अपने शरीरको त्याग दिया। उस समय स्वर्गलोकमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। आकाशसे पृथ्वीपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रकार महामुनि नारद शापमुक्त हो गये। गोप-शरीरका त्याग करके वह जीव ब्रह्म-विग्रहमें विलीन हो गया। वह नित्यस्वरूप तो है ही, पूर्वकालमें उसका आविर्भाव हुआ और भिन्न कालमें वह तिरोहित हो गया। नित्यरूपधारी जो भक्तजन हैं, उनका अपनी इच्छासे आविर्भाव अथवा तिरोभाव होता है। उन्हें जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका स्पर्श नहीं होता। (अध्याय २०-२१)

ब्रह्माजीके पुत्रोंके नामोंकी व्युत्पत्ति

सौति कहते हैं—शौनकजी! तदनन्तर कुछ कल्प व्यतीत होनेपर जब ब्रह्माजी पुनः सृष्टि-कार्यमें संलग्न हुए, तब उनके 'नरद' नामक कण्ठदेशसे मरीचि आदि मुनियोंके साथ ये शापमुक्त मुनि प्रकट हुए। इसी कारणसे उन मुनीन्द्रकी 'नारद' नामसे ख्याति हुई। ब्रह्माजीका जो पुत्र उनके चेतस् (चित्त)-से प्रकट हुआ, उसका नाम उन्होंने 'प्रचेता' रखा। जो उनके दक्षिण पार्श्वसे सहसा उत्पन्न हुआ, वह सब कर्मोंमें दक्ष होनेके कारण 'दक्ष' कहलाया। वेदोंमें कर्दम शब्द छायाके अर्थमें विद्यमान है। जो बालक ब्रह्माजीके कर्दम अर्थात् छायासे प्रकट हुआ, उसका नाम 'कर्दम' रखा गया। इसी तरह मरीचि शब्द वेदोंमें तेजोभेदके अर्थमें आता है। अतः जो बालक तत्काल अत्यन्त तेजस्वी रूपमें प्रकट हुआ, वह 'मरीचि' कहलाया। जिस बालकने जन्मान्तरमें क्रतुसंघ (यज्ञसमूह)-का सम्पादन किया था, वह वर्तमान जन्ममें ब्रह्माजीका पुत्र होनेपर भी उसी क्रतुके नामपर 'क्रतु' कहलाया। ब्रह्माजीका मुख प्रधान अङ्ग है। उस अङ्गसे उत्पन्न हुआ बालक इर अर्थात् तेजस्वी था, इसलिये 'अङ्गिरा' नामसे प्रसिद्ध हुआ। शौनक! भृगु शब्द अत्यन्त तेजस्वीके अर्थमें विद्यमान है। ब्रह्माजीसे उत्पन्न जो बालक अत्यन्त तेजस्वी हुआ, उसका नाम 'भृगु' हुआ। जो बालक होनेपर भी तत्काल अत्यन्त तेजके कारण अरुण वर्णका हो गया और उच्च कोटिकी तपस्याके कारण तेजसे प्रज्वलित होने लगा, वह 'अरुण' नामसे विख्यात हुआ। जिस योगीके योगबलसे हंस उसके अधीन रहते थे, वह परम

शिशु नारद

सुतपा ब्राह्मण

योगीन्द्र बालक 'हंसी' नामसे विख्यात हुआ। तत्काल प्रकट हुआ जो बालक वशीभूत और शिष्य होकर विधाताका अत्यन्त प्रीतिपात्र हुआ, उसका नाम 'वसिष्ठ' रखा गया। जिस बालकका तपमें सदा प्रयत्न देखा गया तथा जो सम्पूर्ण कर्मोंमें संयत रहा, वह अपने उसी गुणके कारण 'यति' कहलाया। वेदोंमें 'पुल' शब्द तपस्याके अर्थमें आता है और 'ह' स्फुट-अर्थमें। जिस बालकमें स्फुटरूपसे तपस्याका समूह लक्षित हुआ, वह उसी लक्षणसे 'पुलह' कहलाया। (पुलका अर्थ है—तपः-समूह और 'स्त्य' शब्द अस्ति—'है' के अर्थमें आया है) जिसके पूर्वजन्मोंके तपःसमूह विद्यमान हैं; इसी कारण जो तपः-संघस्वरूप है; वह इसी व्युत्पत्तिके द्वारा 'पुलस्त्य' के नामसे विख्यात हुआ। 'त्रि' शब्द त्रिगुणमयी प्रकृतिके अर्थमें आता है और 'अ' विष्णुके अर्थमें। जिसकी उन दोनोंकि प्रति समान भक्ति है, उस बालकको 'अत्रि' कहा गया। जिसके मस्तकपर तपस्याके तेजसे प्रकट हुई अग्निशिखास्वरूपिणी पाँच जटाएँ थीं, उसका नाम 'पञ्चशिख' हुआ। जिसने दूसरे जन्ममें आन्तरिक अन्धकारसे रहित प्रदेशमें तप किया था, उस शिशुका नाम 'अपान्तरतमा' हुआ। जो स्वयं तपस्या करता और दूसरोंको भी उसकी प्राप्ति करा सकता था तथा जो तपस्याका भार वहन करनेमें पूर्ण समर्थ था, वह अपनी इसी योग्यताके कारण 'वोढु' कहलाया। मुने! जो बालक तपस्याके तेजसे सदा दीप्तिमान् रहता था तथा तपस्यामें जिसके चित्तकी स्वाभाविक रुचि थी, वह 'रुचि' नामसे प्रसिद्ध हुआ। जो ब्रह्माजीके क्रोधके समय ग्यारहकी संख्यामें प्रकट हुए और रोने लगे, वे रोदनके ही कारण 'रुद्र' कहलाये।

सौति फिर बोले—जिनमें सत्त्वगुणकी प्रधानता है, वे भगवान् विष्णु पालक हैं। रजोगुणप्रधान ब्रह्मा सृष्टिकर्ता हैं तथा जिनमें तमोगुणकी प्रधानता है, वे 'रुद्र' कहे गये हैं। उनके वेगको रोकना कठिन है। वे बड़े भयंकर हैं। उन रुद्रोंमेंसे एकका नाम कालाग्नि रुद्र है, जो भगवान् शंकरके अंश हैं। वे ही जगत्‌का संहार करनेवाले हैं। शुद्ध सत्त्वस्वरूप जो शिव हैं, वे सत्पुरुषोंको कल्याण प्रदान करनेवाले हैं। अन्य रुद्र श्रीकृष्णकी कलामात्र हैं। केवल भगवान् विष्णु और शंकर उन परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके दो अंश हैं। वे दोनों ही समान सत्त्वस्वरूप हैं। ब्रह्मन्! यह बात मैंने रुद्रकी उत्पत्तिके प्रसंगमें बतायी है। आप उसे भूल क्यों रहे हैं। सच है, सभी लोग भगवान्‌की मायासे मोहित हो जाते हैं। मुनियोंको भी मतिभ्रम हो जाया करता है। 'सनक' ब्रह्माके प्रथम, 'सनन्दन' द्वितीय, 'सनातन' तृतीय और भगवान् 'सनत्कुमार' चतुर्थ पुत्र हैं। मुने! ब्रह्माजीने उन प्रथम चार पुत्रोंसे सृष्टि करनेके लिये कहा। परंतु उनके लिये यह कार्य असह्य हो गया। इससे ब्रह्माजीको बड़ा क्रोध हुआ। उसी क्रोधसे रुद्रोंकी उत्पत्ति हुई। सनक और सनन्दन—ये दोनों शब्द आनन्दके वाचक हैं। वे दोनों बालक भक्तिभावसे परिपूर्ण होनेके कारण सदा आनन्दित रहते हैं, इसलिये सनक और सनन्दन नामसे विख्यात हुए। नित्य परिपूर्णतम साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण ही सनातन पुरुष हैं। जो उनका भक्त है, वह भी वास्तवमें उन्हींके समान है। इसीलिये वह तीसरा कृष्ण-भक्त बालक सनातन नामसे विख्यात हुआ। 'सनत्' का अर्थ है नित्य और 'कुमार' का अर्थ है शिशु। नित्य शैशवावस्थासे सम्पन्न होनेके कारण इस बालकको ब्रह्माजीने सनत्कुमार नाम दिया। मुने! इस प्रकार मैंने ब्रह्माजीके पुत्रोंके नामोंकी व्युत्पत्ति बतायी। अब आप क्रमशः नारदजीके आख्यानको सुनिये। (अध्याय २२)

ब्रह्माजीसे सृष्टिके लिये दारपरिग्रहकी प्रेरणा पाकर डरे हुए नारदका स्त्री-संग्रहके दोष बताकर तपके लिये जानेकी आज्ञा माँगना

सौति कहते हैं—सृष्टिकर्ता ब्रह्माने अपने सब बालकोंको सृष्टिके कार्यमें लगाकर नारदजीको भी सृष्टि करनेके लिये प्रेरित किया। उन्होंने वेद-वेदाङ्गोंके पारंगत विद्वान् नारदसे यह सत्य, हितकर, वेदसारस्वरूप और परिणाममें सुख देनेवाली बात कही।

ब्रह्माजी बोले—कुलमें श्रेष्ठ मेरे प्राणवल्लभ पुत्र नारद! आओ। तुम ज्ञानदीपकी शिखासे अज्ञानान्धकारका निवारण करनेवाले हो। तुमसे यह बात छिपी नहीं है कि जन्मदाता पिता परम गुरु है। वह सभी वन्दनीय पुरुषोंमें सबसे श्रेष्ठ है। विद्यादाता और मन्त्रदाता दोनों समान हैं तथा पितासे भी बढ़कर हैं। बेटा! मैं तुम्हारा पिता, पालक, विद्यादाता एवं मन्त्रदाता भी हूँ। तुम मेरी आज्ञासे मेरी ही प्रसन्नताके लिये विवाह कर लो।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर मुनिवर नारदके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये। वे भयभीत होकर विनयपूर्वक बोले।

नारदजीने कहा—तात! वही पिता, वही गुरु, वही बन्धु, वही पुत्र और वही मेरा ईश्वर है, जो भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें सुदृढ़ भक्ति उत्पन्न करा दे*। यदि बालक अज्ञानवश कुमार्गपर चल रहे हों तो उन्हींको जो उस मार्गसे हटाता है, वही करुणानिधान पिता है। जो श्रीकृष्ण-चरणोंमें लगी हुई भक्तिका त्याग कराकर पुत्रको दूसरे किसी विषयमें लगाये, वह कैसा पिता है? स्त्रीसंग्रह केवल दुःखका ही कारण है। उससे सुख नहीं मिलता। वह तपस्या, स्वर्ग, भक्ति, मुक्ति एवं सत्कर्मोंमें विघ्न उपस्थित करनेवाला है। ब्रह्मन्! मूढ़चित्त गृहस्थोंके घरोंमें तीन प्रकारकी स्त्रियाँ पायी जाती हैं—साध्वी, भोग्या और कुलटा। वे सब-की-सब स्वार्थपरायणा होती हैं। साध्वी स्त्री परलोकके भयसे, इस लोकमें अपनेको यश मिलनेके लोभसे तथा कामासक्तिसे भी निरन्तर स्वामीकी सेवा करती है। भोग्या स्त्री भोगकी अभिलाषिणी होती है। वह सदा केवल कामासक्तिसे ही प्रियतम पतिकी सेवा करती है। भोगके सिवा और किसी हेतुसे वह क्षणभर भी सेवा नहीं करती। भोग्या स्त्री जबतक वस्त्र, आभूषण, सम्भोग तथा सुस्निग्ध एवं उत्तम आहार पाती है, तबतक ही स्वामीके वशमें रहकर प्यारी बनी रहती है। कुलटा नारी कुलमें अंगारके समान है। वह कुलका नाश करनेवाली है। कुलटा स्त्री कपटसे ही स्वामीकी सेवा करती है, भक्तिसे नहीं। वे अपने स्वार्थकी सिद्धिके लिये सुधाके समान मधुर वचन बोलती हैं। क्रोध होनेपर उनके मुखसे विषके समान दुःसह वचन निकलता है। यदि उनकी बातपर विश्वास किया जाय तब तो सर्वनाश ही हो जाता है। उनके अभिप्रायको समझना बहुत कठिन है। केवल उनका कर्म छिपा होता है। सर्वज्ञ! आप सब कुछ जानते हैं; क्योंकि आत्माराम पुरुषोंके ईश्वर हैं। प्रभो! मुझपर अनुग्रह कीजिये और अब मुझे विदा दीजिये। आप कल्पवृक्षसे भी बढ़कर हैं। मैं आपसे श्रीकृष्ण-भक्तिकी याचना करता हूँ।

ऐसा कहकर नारदजीने पिताके चरण-कमलोंको पकड़कर मङ्गलमय तपके निमित्त जानेके लिये आज्ञा माँगी। फिर दोनों हाथ जोड़कर भक्तिभावसे मस्तक झुका ब्रह्माजीकी परिक्रमा एवं प्रणाम करके वे वहाँसे जानेको उद्यत हुए। (अध्याय २३)

---

* स पिता स गुरुर्बन्धुः स पुत्रः स मदीश्वरः। यः श्रीकृष्णपादपद्मे दृढां भक्तिं च कारयेत्॥ (ब्रह्मखण्ड २३। १७)

ब्रह्माजीका नारदको गृहस्थधर्मका महत्त्व बताते हुए विवाहके लिये राजी करना और नारदका पिताकी आज्ञा ले शिवलोकको जाना

सौति कहते हैं—नारदको इस प्रकार जाते देख ब्रह्माजी उदास हो गये और इस प्रकार बोले।

ब्रह्माजीने कहा—अच्छी बात है। बेटा! तुम तपस्याके लिये जाओ। अब संसारकी सृष्टि करनेसे मेरा भी क्या प्रयोजन है? मैं सर्वेश्वर श्रीकृष्णको जाननेके लिये गोलोकको जाऊँगा। सनक, सनन्दन, सनातन तथा चौथा बेटा सनत्कुमार—ये चारों वैरागी हैं ही। यति, हंसी, आरुणि, वोढु तथा पञ्चशिख—ये सब पुत्र तपस्वी हो गये। फिर संसारकी रचनासे मेरा क्या प्रयोजन? मरीचि, अङ्गिरा, भृगु, रुचि, अत्रि, कर्दम, प्रचेता, क्रतु और मनु—ये मेरे आज्ञापालक हैं। समस्त पुत्रोंमें केवल वसिष्ठ ऐसे हैं, जो सदा मेरी आज्ञाके अधीन रहते हैं। उपर्युक्त पुत्रोंके सिवा अन्य सब-के-सब अविवेकी तथा मेरी आज्ञासे बाहर हैं। ऐसी दशामें मेरा संसारकी सृष्टिसे क्या प्रयोजन है? बेटा! सुनो। मैं तुम्हें वेदोक्त मङ्गलमय वचन सुना रहा हूँ। वह वचन परम्परा-क्रमसे पालित होता आ रहा है तथा धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षरूप चारों पुरुषार्थोंको देनेवाला है। समस्त विद्वान् धर्म, अर्थ, काम और मोक्षकी इच्छा रखते हैं; क्योंकि ये वेदोंमें विहित तथा विद्वानोंकी सभाओंमें प्रशंसित हैं। वेदोंमें जिसका विधान है वह धर्म है और जिसका निषेध है वह अधर्म है। ब्राह्मणको चाहिये कि वह पहले सुखपूर्वक यज्ञोपवीत धारण करके फिर वेदोंका अध्ययन करे। अध्ययन समाप्त होनेपर गुरुको दक्षिणा दे। इसके बाद उत्तम कुलमें उत्पन्न एवं परम विनीत स्वभाववाली कन्याके साथ विवाह करे। उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई नारी साध्वी तथा पतिसेवामें तत्पर होती है। अच्छे कुलकी स्त्री कभी उद्दण्ड नहीं हो सकती। पद्मरागमणिकी खानमें काँच कैसे पैदा हो सकता है? नारद! नीच कुलमें उत्पन्न हुई नारी ही माता-पिताके दोषसे उद्दण्ड होती है। वही दुष्टा तथा सब कर्मोंमें स्वतन्त्र होती है। बेटा! सभी स्त्रियाँ दुष्ट नहीं होती हैं; क्योंकि वे लक्ष्मीकी कलाएँ हैं। जो अप्सराओंके अंशसे तथा नीच कुलमें उत्पन्न होती हैं, वे ही स्त्रियाँ कुलटा हुआ करती हैं। साध्वी स्त्री गुणहीन स्वामीकी सेवा एवं प्रशंसा करती है और कुलटा सद्गुणशाली पतिकी भी सेवा नहीं करती। उलटे उसकी निन्दा करती है। अतः साधुपुरुष प्रयत्नपूर्वक उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई कन्याके साथ विवाह करे। उसके गर्भसे अनेक पुत्रोंको जन्म देकर वृद्धावस्थामें तपस्याके लिये जाय। आगमें निवास करना उत्तम है, साँपके मुखमें तथा काँटेपर भी रह लेना अच्छा है, परंतु मुँहसे दुर्वचन निकालनेवाली स्त्रीके साथ निवास करना कदापि अच्छा नहीं है। वह इन अग्नि, सर्प और कण्टकसे भी अधिक दुःखदायिनी होती है। बेटा! मैंने तुम्हें वेद पढ़ाया है। अब तुम मुझे यही गुरुदक्षिणा दो कि विवाह कर लो। वत्स! तुम्हारी पूर्वजन्मकी पत्नी मालती उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई है। तुम किसी मङ्गलमय दिन और क्षणमें उसके साथ विवाह करो। वह सती तुम्हें पानेके लिये ही मनुवंशी संजयके घरमें जन्म लेकर भारतवर्षमें तपस्या कर रही है। इस समय उसका नाम रत्नमाला है। वह लक्ष्मीकी कला है। तुम उसे ग्रहण करो। भारतवर्षमें लोगोंकी तपस्याका फल व्यर्थ नहीं होता। मनुष्यको अध्ययनके पश्चात् पहले गृहस्थ होना चाहिये, फिर वानप्रस्थ। तत्पश्चात् मोक्षके निमित्त तपस्याका आश्रय लेना चाहिये। वेदमें यही क्रम सुना गया है। श्रुतिमें यह भी सुना गया है कि वैष्णवोंके लिये श्रीहरिकी पूजा ही तपस्या है। तुम वैष्णव हो। अतः घरमें रहो और श्रीकृष्ण-चरणोंकी अर्चना करो। बेटा! जिसके भीतर और बाहर

श्रीहरि ही विद्यमान हैं, उसे तपस्यासे क्या लेना है? जिसके बाहर और भीतर श्रीहरि नहीं हैं अर्थात् जो श्रीहरिको अपने बाहर और भीतर व्याप्त नहीं देखता, उसे भी व्यर्थकी तपस्यासे क्या लेना-देना है? तपस्याके द्वारा श्रीहरिकी ही आराधना की जाती है, दूसरा कोई आराध्य नहीं है। बेटा! जहाँ-तहाँ कहीं भी रहकर की हुई श्रीकृष्णकी सेवा सर्वोत्तम तप है। अतः तुम मेरे कहनेसे ही घरमें रहकर श्रीहरिका भजन करो। मुनिश्रेष्ठ! गृहस्थ बनो; क्योंकि गृहस्थोंको सदा ही सुख मिलता है। पत्नीके परिग्रहका प्रयोजन है पुत्रकी प्राप्ति; क्योंकि पुत्र सैकड़ों प्राणवल्लभा पत्नियोंसे भी अधिक प्रिय होता है। पुत्रसे बढ़कर कोई बन्धु नहीं है तथा पुत्रसे बढ़कर कोई प्रिय नहीं है। सबसे जीवनेकी इच्छा करे। एकमात्र पुत्रसे ही पराजयकी कामना करे। कोई भी प्रिय पदार्थ अपने लिये नहीं (पुत्रके लिये) रखा जाता है; इसलिये भी पुत्र प्रिय होता है। अतः प्रियतम पुत्रको अपना श्रेष्ठ धन सौंप देना चाहिये।

शौनक! ऐसा कहकर ब्रह्माजी चुप हो गये। तब ज्ञानिशिरोमणि नारदने पितासे यह बात कही।

नारदजी बोले—तात! जो स्वयं सब कुछ जानकर अपने पुत्रको कुमार्गमें लगाता है, वह पिता दयालु कैसे माना जा सकता है? ब्रह्मन्! सारा संसार पानीके बुलबुलेके समान नश्वर है। जैसे जलकी रेखा मिथ्या होती है, उसी प्रकार तीनों लोक मिथ्या हैं। जिसका मन श्रीहरिकी दासता छोड़कर विषयके लिये चञ्चल रहता है, उसका दुर्लभ मानव तन व्यर्थ हो गया। भवसागरमें कौन किसकी प्रिया है और कौन किसका पुत्र या बन्धु है? कर्ममयी तरङ्गोंके उठनेसे इन सबका संयोग हो जाता है और उन तरङ्गोंके शान्त होनेपर वे एक-दूसरेसे बिछुड़ जाते हैं। जो सत्कर्म करवाता है, वही मित्र है, वही पिता और गुरु है। जो दुर्बुद्धि उत्पन्न करता

है, वह तो शत्रु है। उसे पिता कैसे कहा जा सकता है? तात! इस प्रकार मैंने शास्त्रके अनुसार वेदका बीज (सारतत्त्व) बताया। यद्यपि यह ध्रुव सत्य है, तथापि मुझे आपकी आज्ञाका पालन करना चाहिये। भगवन्! पहले मैं नर-नारायणके आश्रमपर जाऊँगा। वहाँ नारायणकी वार्ता सुननेके पश्चात् पत्नी-परिग्रह करूँगा।

ऐसा कहकर नारद मुनि पिताके सामने चुप हो रहे, उसी क्षण उनके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। पिताके सामने क्षणभर खड़े रहकर मुनिवर नारदने फिर यह मङ्गलदायक वचन कहा।

श्रीनारद बोले—पिताजी! पहले मुझे कृष्णमन्त्रका उपदेश दीजिये, जो मेरे मनको अभीष्ट है। श्रीकृष्णमन्त्र-सम्बन्धी जो ज्ञान है तथा जिसमें उनके गुणोंका वर्णन है, वह सब भी मुझे बताइये। इसके बाद आपकी प्रसन्नताके लिये मैं दार-संग्रह करूँगा; क्योंकि मनकी इच्छा पूर्ण हो जानेपर ही मनुष्यको कोई काम करनेमें सुख मिलता है।

नारदकी यह बात सुनकर ज्ञानवेत्ताओंमें श्रेष्ठ कमलजन्मा ब्रह्माजी बड़े प्रसन्न हुए और अपने पुत्रसे फिर इस प्रकार बोले।

ब्रह्माजीने कहा—वत्स! भगवान् शंकर तुम्हारे पूर्वजन्मके गुरु हैं और हमारे भी पुरातन गुरु हैं। अतः तुम उन्हीं ज्ञानियोंके गुरु कल्याणदाता शान्तस्वरूप शिवके पास जाओ। वहाँ उन पुरातन गुरुसे भगवन्मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करके नारायणकी कथा-वार्ता सुनो और शीघ्र ही मेरे घर लौट आओ। शौनक! ऐसा कहकर तीनों लोकोंका धारण-पोषण करनेवाले ब्रह्माजी चुप हो गये और नारदमुनि पिताको भक्तिभावसे प्रणाम करके शिवलोकको चले गये। (अध्याय २४)

नारदजीको भगवान् शिवका दर्शन, शिवद्वारा नारदजीका सत्कार तथा उनकी मनोवाञ्छापूर्तिके लिये आश्वासन

सौति कहते हैं—शौनक! तदनन्तर विप्रवर नारद क्षणभरमें बड़ी प्रसन्नताके साथ शिवके मनोहर धाममें आ पहुँचे। भगवान् शिवका वह अभीष्ट लोक ध्रुवसे एक लाख योजन ऊपर था। त्रिशूलधारी शिवने दिव्य रत्नोंद्वारा उसका निर्माण किया है। आधारशून्य आकाशमें योगबलसे शम्भुद्वारा धारण किया गया वह विचित्र लोक भाँति-भाँतिके दिव्य भवनोंसे सुशोभित है तथा दिन-रात तेजसे उद्भासित होता रहता है। पवित्र अन्तःकरणवाले श्रेष्ठ साधक तथा मुनीन्द्रशिरोमणि महात्माजन ही उस लोकका दर्शन कर पाते हैं। मुने! वहाँ सूर्य और चन्द्रमाकी किरणें नहीं पहुँच पातीं। परकोटोंके रूपमें प्रकट हुए अत्यन्त ऊँचे, बहुत बढ़े हुए तथा ज्वालाओंसे जगमगाते हुए असंख्य पावक उस लोकको चारों ओरसे घेरकर स्थित हैं। उस श्रेष्ठ धामका विस्तार एक लाख योजन है। उसमें श्रेष्ठ रत्नोंके बने हुए तीन हजार गृह हैं। हीरेके सार-तत्त्वसे बने हुए भाँति-भाँतिके चित्र-विचित्र मनोहर भवन उसकी शोभा बढ़ाते हैं। वहाँ माणिक्य तथा मुक्तामणिके दर्पण हैं। विश्वकर्माने उस लोकको सपनेमें भी नहीं देखा होगा। एकमात्र शिवसेवी महात्माजन ही उसमें कल्पपर्यन्त निरन्तर वास करते हैं। वह शिवलोक करोड़ों-करोड़ों सिद्धों तथा शिव-पार्षदोंसे युक्त है। वहाँ लाखों विकट भैरव निवास करते हैं। सैकड़ों लाख क्षेत्र उसे घेरे हुए हैं। सुन्दर फूलोंसे भरे हुए मन्दार आदि देववृक्षोंसे वह सदा आवेष्टित है। सुन्दर कामधेनुएँ उस धामकी उसी तरह शोभा बढ़ाती हैं, जैसे सैकड़ों बलाकाएँ आकाशकी। उस लोकको देखकर नारद मुनि मन-ही-मन बड़े विस्मित हुए और सोचने लगे—'जहाँ ज्ञानियों तथा योगियोंके गुरु निवास करते हैं, वहाँ ऐसी विचित्रताका होना क्या आश्चर्य है? यह सृष्टिलोक त्रिलोकीसे अत्यन्त विलक्षण है और भय, मृत्यु, रोग, पीड़ा तथा जरावस्थाको हर लेनेवाला है।

नारदजीने देखा, दूर सभा-मण्डपके मध्य-भागमें शान्तस्वरूप, कल्याणदाता एवं मनोहर शिव विराजमान हैं। उनके पाँच मुख पाँच चन्द्रमाओंके समान आह्लाददायक जान पड़ते हैं। प्रत्येक मुखमें प्रफुल्ल कमलके समान तीन-तीन नेत्र हैं। उन्होंने मस्तकपर गङ्गाजीको धारण कर रखा है तथा उनके भालदेशमें निर्मल चन्द्रमाका मुकुट शोभा पा रहा है। तपाये हुए सुवर्णके समान कान्तिमती पीली जटा धारण करनेवाले दिगम्बर भगवान् शिव उस समय आकाशगङ्गामें उत्पन्न कमलोंके बीज (पद्माक्ष)-की मालासे सानन्द 'श्रीकृष्ण' नामका जप कर रहे थे। उनकी अङ्गकान्ति गौर वर्णकी है, वे अनन्त और अविनाशी हैं। उनके कण्ठमें सुन्दर नील चिह्न शोभा पाता है। वे नागराजके हारसे अलंकृत हैं। बड़े-बड़े योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र और मुनीन्द्र उनके

चरणोंकी वन्दना करते हैं। वे सिद्धेश्वर हैं, सिद्धिविधानके कारण हैं, मृत्युञ्जय हैं तथा काल और यमका भी अन्त करनेवाले हैं। उनका मुख प्रसन्नतासूचक हास्यसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ता है। वे सम्पूर्ण आश्रितोंको कल्याण तथा अभीष्ट वर प्रदान करनेवाले हैं। सदा शीघ्र ही संतुष्ट होनेवाले, भवरोगसे रहित, भक्तजनोंके प्रिय तथा भक्तोंके एकमात्र बन्धु हैं।

दूरसे देखनेके पश्चात् निकट जाकर मुनिने भगवान् शूलपाणिको मस्तक झुकाकर प्रणाम किया। उस समय मुनिके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। वे तीन तारवाली वीणा बजाते हुए कलहंसके समान मधुर कण्ठसे पुनः श्रीकृष्णका गुणगान करने लगे। ब्रह्माजीके पुत्र और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुनीन्द्रशिरोमणि नारदको आया देख भगवान् शंकर योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र और महर्षियोंके साथ मुस्कराते हुए सिंहासनसे वेगपूर्वक उठकर खड़े हो गये। फिर उन्होंने मुनिको बड़े वेगसे पकड़कर हृदयसे लगा लिया और आशीर्वाद तथा आसन आदि दिये। साथ ही उन तपोधनसे आनेका प्रयोजन और कुशल-मङ्गल पूछा। इसके बाद भगवान् शम्भु उत्तम रत्नोंके बने हुए श्रेष्ठ एवं सुन्दर सिंहासनपर अपने प्रमुख पार्षदोंके साथ बैठे। किंतु ब्रह्माजीके पुत्र नारद नहीं बैठे। उन्होंने भक्तिभावसे प्रभुको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़कर उनकी स्तुति की। गन्धर्वराजके द्वारा किये गये शुभदायक वेदोक्त स्तोत्रसे स्तुति करके पुनः प्रणाम करनेके अनन्तर भगवान् शिवकी आज्ञा ले नारदजी उनके वाम-भागमें बैठे। वहीं उन्होंने जगत्‌की वाञ्छा पूर्ण करनेवाले भगवान् शिवसे अपनी हार्दिक अभिलाषा बतायी। मुनिका वह वचन सुनकर कृपानिधान शंकरने तुरंत प्रतिज्ञापूर्वक कहा—'बहुत अच्छा, तुम्हारी अभिलाषा पूर्ण होगी।' (अध्याय २५)

ब्राह्मणोंके आह्निक आचार तथा भगवान्‌के पूजनकी विधिका वर्णन

सौति कहते हैं—शौनकजी! देवर्षि नारदने भगवान् शंकरसे श्रीहरिके स्तोत्र, कवच, मन्त्र, उत्तम पूजाविधान, ध्यान तथा उनके तत्त्वज्ञानकी याचना की। महेश्वरने उन्हें स्तोत्र, कवच, मन्त्र, ध्यान, पूजाविधि तथा उनके पूर्वजन्म-सम्बन्धी ज्ञानका उपदेश दिया। यह सब कुछ पाकर मुनिश्रेष्ठ नारदका मनोरथ पूर्ण हो गया। उन्होंने अपने शरणागतवत्सल गुरु भगवान् शिवको भक्तिभावसे प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! आप ब्राह्मणोंके आह्निक आचार (दिनचर्या या नित्य-कर्म)-का वर्णन कीजिये, जिससे प्रतिदिन स्वधर्मपालन हो सके।

श्रीमहेश्वरने कहा—प्रतिदिन ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर रात्रिमें पहने हुए कपड़ेको बदल दे और अपने ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सूक्ष्म, निर्मल, ग्लानिरहित सहस्रदल-कमलपर विराजमान गुरुदेवका चिन्तन करे। ध्यानमें यह देखे कि ब्रह्मरन्ध्रवर्ती सहस्रदल-कमलपर गुरुजी प्रसन्नतापूर्वक बैठे हैं, मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं, व्याख्याकी मुद्रामें उनका हाथ उठा हुआ है और शिष्यके प्रति उनके हृदयमें बड़ा स्नेह है। मुखपर प्रसन्नता छा रही है। वे शान्त तथा निरन्तर संतुष्ट रहनेवाले हैं और साक्षात् परब्रह्मस्वरूप हैं। सदा इसी प्रकार उनका चिन्तन करना चाहिये। इस तरह ध्यान करके मन-ही-मन गुरुकी आराधना करे। तदनन्तर निर्मल, श्वेत, सहस्रदलभूषित, विस्तृत हृदयकमलपर विराजमान इष्टदेवका चिन्तन करे। जिस देवताका जैसा ध्यान और जो रूप बताया गया है, वैसा ही चिन्तन करना चाहिये। गुरुकी आज्ञा ले समयोचित कर्तव्यका पालन करना चाहिये। क्रम यह है कि पहले गुरुका ध्यान करके उन्हें प्रणाम करे। फिर उनकी विधिवत् पूजा

करनेके पश्चात् उनकी आज्ञा ले इष्टदेवका ध्यान एवं पूजन करे। गुरु ही देवताके स्वरूपका दर्शन कराते हैं। वे ही इष्टदेवके मन्त्र, पूजाविधि और जपका उपदेश देते हैं। गुरुने इष्टदेवको देखा है; किंतु इष्टदेवने गुरुको नहीं देखा है। इसलिये गुरु इष्टदेवसे भी बढ़कर हैं। गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु विष्णु हैं, गुरु महेश्वरदेव हैं, गुरु आद्या प्रकृति—ईश्वरी (दुर्गा देवी) हैं, गुरु चन्द्रमा, अग्नि और सूर्य हैं, गुरु ही वायु और वरुण हैं, गुरु ही माता-पिता और सुहृद् हैं तथा गुरु ही परब्रह्म परमात्मा हैं। गुरुसे बढ़कर दूसरा कोई पूजनीय नहीं है। इष्टदेवके रुष्ट होनेपर गुरु शिष्य अथवा साधककी रक्षा करनेमें समर्थ हैं। परंतु गुरुदेवके रुष्ट होनेपर सम्पूर्ण देवता मिलकर भी उस साधककी रक्षा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जिसपर गुरु सदा संतुष्ट हैं, उसे पग-पगपर विजय प्राप्त होती है और जिसपर गुरुदेव रुष्ट हैं, उसके लिये सदा सर्वनाशकी ही सम्भावना रहती है। जो मूढ़ भ्रमवश गुरुकी पूजा न करके इष्टदेवका पूजन करता है, वह सैकड़ों ब्रह्महत्याओंके पापका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। सामवेदमें साक्षात् भगवान् श्रीहरिने भी ऐसी बात कही है। इसलिये गुरु इष्टदेवसे भी बढ़कर परम पूजनीय हैं।

मुने! इस प्रकार गुरुदेव तथा इष्टदेवका ध्यान एवं स्तवन करके साधक वेदमें बताये हुए स्थानपर पहुँचकर प्रसन्नतापूर्वक मल और मूत्रका त्याग करे। जल, जलके निकटका स्थान, बिलयुक्त भूमि, प्राणियोंके निवासके निकट, देवालयके समीप, वृक्षकी जड़के पास, मार्ग, हलसे जोती हुई भूमि, खेतीसे भरे हुए खेत, गोशाला, नदी, कन्दराके भीतरका स्थान, फुलवाड़ी, कीचड़युक्त अथवा दलदलकी भूमि, गाँव आदिके भीतरकी भूमि, लोगोंके घरके आसपासका स्थान, मेड़ या खम्भेके पास, पुल, सरकंडोंके वन, श्मशानभूमि, अग्निके समीप, क्रीडास्थल (खेल-कूदके मैदान), विशाल वन, मचानके नीचेका स्थान, पेड़की छायासे युक्त स्थान, जहाँ भूमिके भीतर प्राणी रहते हों वह स्थान, जहाँ ढेर-के-ढेर पत्ते जमा हों वह भूमि, जहाँ घनी दूब उगी हो अथवा कुश जमे हों वह स्थान, बाँबी, जहाँ वृक्ष लगाये गये हों वहाँकी भूमि तथा जो किसी विशेष कार्यके लिये झाड़-बुहारकर साफ की गयी हो, वह भूमि—इन सबको छोड़कर सूर्यके तापसे रहित स्थानमें गड्ढा खोद उसीमें मल-मूत्रका त्याग करना चाहिये।

दिनमें उत्तराभिमुख होकर मल-मूत्रका त्याग करे; रातमें पश्चिमकी ओर मुँह करके और संध्याकालमें दक्षिणकी ओर मुँह रखते हुए मलोत्सर्ग तथा मूत्रोत्सर्ग करना उचित है। मौन रहकर, जोर-जोरसे साँस न लेते हुए मलत्याग करे, जिससे उसकी दुर्गन्ध नाकमें न जाय। मलत्यागके पश्चात् उस मलको मिट्टी डालकर ढक दे। तदनन्तर बुद्धिमान् पुरुष गुदा आदि अङ्गोंको शुद्ध करे। पहले ढेले या मिट्टीसे गुदा आदिकी शुद्धि करे। तत्पश्चात् उसे जलसे धोकर शुद्ध करे। मृत्तिकायुक्त जो जल शौचके उपयोगमें आता है, उसका परिमाण सुनो। मूत्रत्यागके पश्चात् लिङ्गमें एक बार मिट्टी लगाये और धोये। फिर बायें हाथमें चार बार मिट्टी लगाकर धोये। तत्पश्चात् दोनों हाथोंमें दो बार मिट्टी लगाकर धोना चाहिये, यह मूत्र-शौच कहा गया। यदि मैथुनके अनन्तर मूत्र-शौच करना हो तो उसमें मिट्टी लगाने और धोनेकी संख्या दुगुनी कर दे अथवा मैथुनके अनन्तरका शौच मूत्र-शौचकी अपेक्षा चौगुना होना चाहिये। मलत्यागके पश्चात् लिङ्गमें एक बार, गुदामें तीन बार, बायें हाथमें दस बार तथा दोनों हाथोंमें सात बार मिट्टी देनी चाहिये। छठे बार मिट्टी लगाकर धोनेसे पैरोंकी शुद्धि होती है। गृहस्थ ब्राह्मणोंके लिये मलत्यागके अनन्तर यही शौच बताया गया है। विधवाओंके लिये इस शौचका परिमाण दुगुना बताया गया है।

यतियों, वैष्णवों, ब्रह्मर्षियों एवं ब्रह्मचारियोंके लिये गृहस्थोंकी अपेक्षा चौगुने शौचका विधान किया गया है। उपनयनरहित द्विज, शूद्र तथा स्त्रीके लिये उतने ही शौचका विधान है, जितनेसे उन-उन अङ्गोंमें लगे हुए मलके लेप और दुर्गन्ध मिट जायँ। क्षत्रिय और वैश्यके लिये भी गृहस्थ ब्राह्मणोंके समान शौचका विधान है। वैष्णव आदि मुनियोंके लिये दुगुना शौच कहा गया है। शुद्धिकी इच्छा रखनेवाले मनुष्यको शौचके उपर्युक्त नियममें न्यूनता या अधिकता नहीं करनी चाहिये; क्योंकि विहित नियमका उल्लङ्घन करनेपर प्रायश्चित्तका भागी होना पड़ता है।

नारद! अब तुम मुझसे शौच तथा उसके नियमके विषयमें सावधान होकर सुनो। मिट्टीसे शुद्धि करनेपर ही वास्तविक शुद्धि होती है। ब्राह्मण भी इस नियमका उल्लङ्घन करे तो वह अशुद्ध ही है। बाँबीकी मिट्टी, चूहोंकी खोदी हुई मिट्टी और पानीके भीतरकी मिट्टी भी शौचके उपयोगमें न लाये। शौचसे बची हुई मिट्टी, घरकी दीवारसे ली हुई मिट्टी तथा लीपने-पोतनेके काममें लायी हुई मिट्टी भी शौचके लिये त्याज्य है। जिसके भीतर प्राणी रहते हों, जहाँ पेड़से गिरे हुए पत्तोंके ढेर लगे हों तथा जहाँकी भूमि हलसे जोती गयी हो, वहाँकी भी मिट्टी न ले। कुश और दूर्वाके जड़से निकाली गयी, पीपलकी जड़के निकटसे लायी गयी तथा शयनकी वेदीसे निकाली गयी मिट्टीको भी शौचके काममें न लाये। चौराहेकी, गोशालाकी, गायकी खुरीकी, जहाँ खेती लहलहा रही हो, उस खेतकी तथा उद्यानकी मिट्टीको भी त्याग दे।

ब्राह्मण नहाया हो अथवा नहीं, उपर्युक्त शौचाचारके पालनमात्रसे शुद्ध हो जाता है तथा जो शौचसे हीन है, वह नित्य अपवित्र एवं समस्त कर्मोंके अयोग्य है। विद्वान् ब्राह्मण इस शौचाचारका पालन करके मुँह धोये। पहले सोलह बार कुल्ला करके मुख शुद्ध करनेके पश्चात् दँतुवनसे दाँतकी सफाई करे। फिर सोलह बार कुल्ला करके मुँह शुद्ध करे। नारद! दाँत माँजनेके लिये जो काठकी लकड़ी ली जाती है, उसके विषयमें भी कुछ नियम है, उसे सुनो। सामवेदमें श्रीहरिने आह्निक प्रकरणमें इसका निरूपण किया है। अपामार्ग (चिड़चिड़ा या ऊँगा), सिन्धुवार (सँभालू या निर्गुण्डी), आम, करवीर (कनेर), खैर, सिरस, जाति (जायफल), पुन्नाग (नागकेसर या कायफल), शाल (साखू), अशोक, अर्जुन, दूधवाला वृक्ष, कदम्ब, जामुन, मौलसिरी, उड्र (अड़उल) और पलाश—ये वृक्ष दँतुवनके लिये उत्तम माने गये हैं। बेर, देवदारु, मन्दार (आक), सेमर, कँटीले वृक्ष तथा लता आदिको त्याग देना चाहिये। पीपल, प्रियाल (पियाल), तिन्तिडीक (इमली), ताड़, खजूर और नारियल आदि वृक्ष दँतुवनके उपयोगमें वर्जित हैं। जिसने दाँतोंकी शुद्धि नहीं की, वह सब प्रकारके शौचसे रहित है। शौचहीन पुरुष सदा अपवित्र होता है। वह समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य है। शौचाचारका पालन करके शुद्ध हुआ ब्राह्मण स्नानके पश्चात् दो धुले हुए वस्त्र धारण करके पैर धो आचमनके पश्चात् प्रातः-कालकी संध्या करे।

इस प्रकार जो कुलीन ब्राह्मण तीनों संध्याओंके समय संध्योपासना करता है, वह समस्त तीर्थोंमें स्नानके पुण्यका भागी होता है। जो त्रिकाल संध्या नहीं करता, वह अपवित्र है। समस्त कर्मोंके अयोग्य है। वह दिनमें जो काम करता है, उसके फलका भागी नहीं होता। जो प्रातः और सायं संध्याका अनुष्ठान नहीं करता, वह शूद्रके समान है। उसको समस्त ब्राह्मणोचित कर्मसे बाहर निकाल देना चाहिये।* प्रातः, मध्याह्न और सायं-

* नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम्। स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥
(ब्रह्मखण्ड २६। ५३)

संध्याका परित्याग करके द्विज प्रतिदिन ब्रह्महत्या और आत्महत्याके पापका भागी होता है। जो एकादशीके व्रत और संध्योपासनासे हीन है, वह द्विज शूद्रजातिकी स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले पापीकी भाँति एक कल्पतक कालसूत्र नामक नरकमें निवास करता है। प्रातःकालकी संध्योपासना करके श्रेष्ठ साधक गुरु, इष्टदेव, सूर्य, ब्रह्मा, महादेव, विष्णु, माया, लक्ष्मी और सरस्वतीको प्रणाम करे। तत्पश्चात् गुरु, घी, दर्पण, मधु और सुवर्णका स्पर्श करके समयानुसार स्नान आदि करे। जब पोखरी या बावड़ीमें स्नान करे, तब धर्मात्मा एवं विद्वान् पुरुष पहले उसमेंसे पाँच पिण्ड मिट्टी निकालकर बाहर फेंक दे। नदी, नद, गुफा अथवा तीर्थमें स्नान करना चाहिये। पहले जलमें गोता लगाकर पुनः स्नानके लिये संकल्प करे। वैष्णव महात्माओंका स्नानविषयक संकल्प श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये होता है और गृहस्थोंका वह संकल्प किये हुए पापोंके नाशके उद्देश्यसे होता है। ब्राह्मण संकल्प करके अपने शरीरमें मिट्टी पोते। उस समय निम्नांकित वेद-मन्त्रका पाठ करे। मिट्टी लगानेका उद्देश्य शरीरकी शुद्धि ही है।

शरीरमें मृत्तिका-लेपनका मन्त्र

अश्वक्रान्ते रथक्रान्ते विष्णुक्रान्ते वसुन्धरे।
मृत्तिके हर मे पापं यन्मया दुष्कृतं कृतम्॥

'वसुन्धरे! तुम्हारे ऊपर अश्व चलते हैं, रथ दौड़ते हैं और भगवान् विष्णुने अपने चरणोंसे तुम्हें आक्रान्त किया है (अथवा अवतारकालमें वे तुम्हारे ऊपर लीलाविहार करते हैं)। मृत्तिकामयी देवि! मैंने जो भी दुष्कर्म किया है, मेरा वह सारा पाप तुम हर लो।'

उद्धृतासि वराहेण कृष्णेन शतबाहुना।
आरुह्य मम गात्राणि सर्वं पापं प्रमोचय॥
पुण्यं देहि महाभागे स्नानानुज्ञां कुरुष्व माम्।

'सैकड़ों भुजाओंसे सुशोभित वराहरूपधारी श्रीकृष्णने एकार्णवके जलसे तुम्हें ऊपर उठाया है। तुम मेरे अङ्गोंपर आरूढ़ हो समस्त पापोंको दूर कर दो। महाभागे! पुण्य प्रदान करो और मुझे स्नान करनेके लिये आज्ञा दो।'

तपोधन! ऐसा कहकर नाभितक जलमें प्रवेश करे और मन्त्रोच्चारणपूर्वक चार हाथ लम्बा-चौड़ा सुन्दर मण्डल बनाकर उसमें हाथ दे तीर्थोंका आवाहन करे। जो-जो तीर्थ हैं, उन सबका वर्णन कर रहा हूँ।

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

'हे गङ्गे! यमुने! गोदावरि! सरस्वति! नर्मदे! सिन्धु! और कावेरि! तुम सब लोग इस जलमें निवास करो' (इस प्रकार आवाहन करनेसे सब तीर्थ जलमें आ जाते हैं)। तदनन्तर नलिनी, नन्दिनी, सीता, मालिनी, महापथा, भगवान् विष्णुके पादार्घ्यसे प्रकट हुई त्रिपथगामिनी गङ्गा, पद्मावती, भोगवती, स्वर्णरेखा, कौशिकी, दक्षा, पृथ्वी, सुभगा, विश्वकाया, शिवामृता, विद्याधरी, सुप्रसन्ना, लोकप्रसाधिनी, क्षेमा, वैष्णवी, शान्ता, शान्तिदा, गोमती, सती, सावित्री, तुलसी, दुर्गा, महालक्ष्मी, सरस्वती, श्रीकृष्णप्राणाधिका राधिका, लोपामुद्रा, दिति, रति, अहल्या, अदिति, संज्ञा, स्वधा, स्वाहा, अरुन्धती, शतरूपा तथा देवहूति इत्यादि देवियोंका शुद्ध बुद्धिवाला बुद्धिमान् पुरुष स्मरण करे। इनके स्मरणसे स्नान कर अथवा बिना स्नान किये ही मनुष्य परम पवित्र हो जाता है। इसके बाद विद्वान् पुरुष दोनों भुजाओंके मूलभागमें, ललाटमें, कण्ठदेशमें और वक्षःस्थलमें तिलक लगाये। यदि ललाटमें तिलक न हो तो स्नान, दान, तप, होम, देवयज्ञ तथा पितृयज्ञ—सब कुछ निष्फल हो जाता है। ब्राह्मण स्नानके पश्चात् तिलक करके संध्या और तर्पण करे। फिर भक्तिभावसे देवताओंको नमस्कार करके प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको जाय। वहाँ यत्नपूर्वक पैर धोकर धुले हुए दो वस्त्र धारण

करे। तत्पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष मन्दिरमें जाय। यह साक्षात् श्रीहरिका ही कथन है। जो स्नान करके पैर धोये बिना ही मन्दिरमें घुस जाता है, उसका स्नान, जप और होम आदि सब नष्ट हो जाता है। जो गृहस्थ पुरुष पानीसे भीगे या तेलसे तर वस्त्र पहनकर घरमें प्रवेश करता है, उसके ऊपर लक्ष्मी रुष्ट हो जाती हैं और उसे अत्यन्त भयंकर शाप देकर उसके घरसे निकल जाती हैं। यदि ब्राह्मण पिण्डलियोंसे ऊपरतक पैरोंको धोता है तो वह जबतक गङ्गाजीका दर्शन न कर ले, तबतक चाण्डाल बना रहता है।

ब्रह्मन्! पवित्र साधक आसनपर बैठकर आचमन करे। फिर संयमपूर्वक रहकर भक्तिभावसे सम्पन्न हो वेदोक्त विधिसे इष्टदेवकी पूजा करे। शालग्राम-शिलामें, मणिमें, मन्त्रमें, प्रतिमामें, जलमें, थलमें, गायकी पीठपर अथवा गुरु एवं ब्राह्मणमें श्रीहरिकी पूजा की जाय तो वह उत्तम मानी जाती है। जो अपने सिरपर शालग्रामका चरणोदक छिड़कता है, उसने मानो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा ग्रहण कर ली। जो मनुष्य प्रतिदिन भक्तिभावसे शालग्राम-शिलाका जल (चरणामृत) पान करता है, वह जीवन्मुक्त होता है और अन्तमें श्रीकृष्णधामको जाता है। नारद! जहाँ शालग्राम-शिलाचक्र विद्यमान है, वहाँ निश्चय ही चक्रसहित भगवान् विष्णु तथा सम्पूर्ण तीर्थ विराजमान हैं। वहाँ जो देहधारी जानकर, अनजानमें अथवा भाग्यवश मर जाता है, वह दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित विमानपर बैठकर श्रीहरिके धामको जाता है। कौन ऐसा साधुपुरुष है, जो शालग्राम-शिलाके सिवा और कहीं श्रीहरिका पूजन करेगा; क्योंकि शालग्राम-शिलामें श्रीहरिकी पूजा करनेपर परिपूर्ण फलकी प्राप्ति होती है।

पूजाके आधार (प्रतीक)-का वर्णन किया गया। अब पूजनकी विधि सुनो। श्रीहरिकी पूजा बहुसंख्यक सज्जनोंद्वारा सम्मानित है। अतः शास्त्रके अनुसार उसका वर्णन करता हूँ। कोई-कोई वैष्णव पुरुष श्रीहरिको प्रतिदिन भक्तिभावसे सोलह सुन्दर तथा पवित्र उपचार अर्पित करते हैं। कोई बारह द्रव्योंका उपचार और कोई पाँच वस्तुओंका उपचार चढ़ाते हैं। जिनकी जैसी शक्ति हो, उसके अनुसार पूजन करें। पूजाकी जड़ है—भगवान्‌के प्रति भक्ति। आसन, वस्त्र, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, पुष्प, चन्दन, धूप, दीप, उत्तम नैवेद्य, गन्ध, माल्य, ललित एवं विलक्षण शय्या, जल, अन्न और ताम्बूल—ये सामान्यतः अर्पित करने योग्य सोलह उपचार हैं। गन्ध, अन्न, शय्या और ताम्बूल—इनको छोड़कर शेष द्रव्य बारह उपचार हैं। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, पुष्प और नैवेद्य—ये पाँच उपचार हैं। श्रेष्ठतम साधक मूलमन्त्रका उच्चारण करके ये सभी उपचार अर्पित करे। गुरुके उपदेशसे प्राप्त हुआ मूलमन्त्र समस्त कर्मोंमें उत्तम माना गया है। पहले भूतशुद्धि करके फिर प्राणायाम करे। तत्पश्चात् अङ्गन्यास, प्रत्यङ्गन्यास, मन्त्रन्यास तथा वर्णन्यासका सम्पादन करके अर्घ्यपात्र प्रस्तुत करे। पहले त्रिकोणाकार मण्डल बनाकर उसके भीतर भगवान् कूर्म (कच्छप)-की पूजा करे। इसके बाद द्विज शङ्खमें जल भरकर उसे वहाँ स्थापित करे। फिर उस जलकी विधिवत् पूजा करके उसमें तीर्थोंका आवाहन करे। तदनन्तर उस जलसे पूजाके सभी उपचारोंका प्रक्षालन करे। इसके बाद फूल लेकर पवित्र साधक योगासनसे बैठे और गुरुके बताये हुए ध्यानके अनुसार अनन्यभावसे भगवान् श्रीकृष्णका चिन्तन करे। इस तरह ध्यान करके साधक मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए पाद्य आदि सब उपचार बारी-बारीसे आराध्यदेवको अर्पित करे। तन्त्रशास्त्रमें बताये हुए अङ्ग-प्रत्यङ्ग देवताओंके साथ श्रीहरिकी पूजा करे। मूलमन्त्रका यथाशक्ति जप करके इष्टदेवके मन्त्रका विसर्जन करे। फिर भाँति-भाँतिके उपहार निवेदित करके स्तुतिके पश्चात् कवचका पाठ करे।

तत्पश्चात् विसर्जन करके पृथ्वीपर माथा टेककर प्रणाम करे। इस तरह देवपूजा सम्पन्न करके बुद्धिमान् एवं विद्वान् पुरुष श्रौत तथा स्मार्त अग्निसे युक्त यज्ञका अनुष्ठान करे। मुने! यज्ञके पश्चात् दिक्पाल आदिको बलि देनी चाहिये। फिर यथाशक्ति नित्य-श्राद्ध और अपने वैभवके अनुसार दान करे। यह सब करके पुण्यात्मा साधक आवश्यक आहार-विहारमें प्रवृत्त हो। श्रुतिमें पूजनका यही क्रम सुना गया है। नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे सम्पूर्ण वेदोक्त उत्तम सूत्रका तथा ब्राह्मणोंके आह्निक कर्मका वर्णन किया। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय २६)

ब्राह्मणोंके लिये भक्ष्याभक्ष्य तथा कर्तव्याकर्तव्यका निरूपण

नारदजीने पूछा—प्रभो! गृहस्थ ब्राह्मणों, यतियों, वैष्णवों, विधवा स्त्रियों और ब्रह्मचारियोंके लिये क्या भक्ष्य है और क्या अभक्ष्य? क्या कर्तव्य है और क्या अकर्तव्य? अथवा उनके लिये क्या भोग्य है और क्या अभोग्य? आप सर्वज्ञ, सर्वेश्वर और सबके कारण हैं, अतः मेरी पूछी हुई सब बातें बताइये।

महादेवजीने कहा—मुने! कोई तपस्वी ब्राह्मण चिरकालतक मौन रहकर बिना आहारके ही रहता है। कोई वायु पीकर रह जाता है और कोई फलाहारी होता है। कोई गृहस्थ ब्राह्मण अपनी स्त्रीके साथ रहकर यथोचित समयपर अन्न ग्रहण करता है। ब्रह्मन्! जिनकी जैसी इच्छा होती है, वे उसीके अनुसार आहार करते हैं; क्योंकि रुचियोंका स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकारका होता है। गृहस्थ ब्राह्मणोंके लिये हविष्यान्न-भोजन सदा उत्तम माना गया है। भगवान् नारायणका उच्छिष्ट प्रसाद ही उनके लिये अभीष्ट भोजन है। जो भगवान्को निवेदित नहीं हुआ है, वह अभक्षणीय है। जो भगवान् विष्णुको अर्पित नहीं किया गया, वह अन्न विष्ठा और जल मूत्रके समान है। एकादशीके दिन सब प्रकारका अन्न-जल मल-मूत्रके तुल्य कहा गया है। जो ब्राह्मण एकादशीके दिन स्वेच्छासे अन्न खाता है, वह पाप खाता है, इसमें संशय नहीं है। नारद! एकादशीका दिन प्राप्त होनेपर गृहस्थ ब्राह्मणोंको कदापि अन्न नहीं खाना चाहिये, नहीं खाना चाहिये, नहीं खाना चाहिये। जन्माष्टमीके दिन, रामनवमीके दिन तथा शिवरात्रिके दिन जो अन्न खाता है, वह भी दूने पातकका भागी होता है। जो सर्वथा उपवास करनेमें समर्थ न हो, वह फल-मूल और जल ग्रहण करे; अन्यथा उपवासके कारण शरीर नष्ट हो जानेपर मनुष्य आत्महत्याके पापका भागी होता है। जो व्रतके दिन एक बार हविष्यान्न खाता अथवा भगवान् विष्णुके नैवेद्यमात्रका भक्षण करता है, उसे अन्न खानेका पाप नहीं लगता। वह उपवासका पूरा फल प्राप्त कर लेता है।*

नारद! गृहस्थ, शैव, शाक्त, विशेषतः वैष्णव यति तथा ब्रह्मचारियोंके लिये यह बात बतायी गयी है। जो वैष्णव पुरुष नित्य भगवान् श्रीकृष्णके नैवेद्य (प्रसाद)-का भोजन करता है, वह जीवन्मुक्त हो प्रतिदिन सौ उपवास-व्रतोंका फल पाता है। सम्पूर्ण देवता और तीर्थ उसके अङ्गोंका स्पर्श चाहते हैं। उसके साथ वार्तालाप तथा उसका दर्शन समस्त पापोंका नाश करनेवाला है। यतियों, विधवाओं और ब्रह्मचारियोंके लिये ताम्बूल-भक्षण निषिद्ध है।

---

* उपवासासमर्थश्च फलमूलजलं पिबेत्। नष्टे शरीरे स भवेदन्यथा चात्मघातकः॥
सकृद् भुंक्ते हविष्यान्नं विष्णोर्नैवेद्यमेव च । न भवेत् प्रत्यवायी स चोपवासफलं लभेत्॥

नारद! समस्त ब्राह्मणोंके लिये जो अभक्ष्य है, उसका वर्णन सुनो। ताँबेके पात्रमें दूध पीना, जूठे बर्तन या अन्नमें घी लेकर खाना तथा नमकके साथ दूध पीना तत्काल गोमांस-भक्षणके समान माना गया है। काँसेके बर्तनमें रखा हुआ एवं जो द्विज उठकर बायें हाथसे जल पीता है, वह शराबी माना गया है और समस्त धर्मोंसे बहिष्कृत है। मुने! भगवान् श्रीहरिको निवेदित न किया गया अन्न, खानेसे बचा हुआ जूठा भोजन तथा पीनेसे शेष रहा जूठा जल—ये सब सर्वथा निषिद्ध हैं। कार्तिकमें बैंगनका फल, माघमें मूली तथा श्रीहरिके शयनकाल (चौमासे)-में कलम्बी[1]का शाक सर्वथा नहीं खाना चाहिये। सफेद ताड़, मसूर और मछली—ये सभी ब्राह्मणोंके लिये समस्त देशोंमें त्याज्य हैं। प्रतिपदाको कूष्माण्ड (कोहड़ा) नहीं खाना चाहिये; क्योंकि उस दिन वह अर्थका नाश करनेवाला है। द्वितीयाको बृहती (छोटे बैंगन अथवा कटेहरी) भोजन कर ले तो उसके दोषसे छुटकारा पानेके लिये श्रीहरिका स्मरण करना चाहिये। तृतीयाको परवल शत्रुओंकी वृद्धि करनेवाला होता है; अतः उस दिन उसे नहीं खाना चाहिये। चतुर्थीको भोजनके उपयोगमें लायी हुई मूली धनका नाश करनेवाली होती है। पञ्चमीको बेल खाना कलङ्क लगनेमें कारण होता है। षष्ठीको नीमकी पत्ती चबायी जाय या उसका फल या दाँतुन मुँहमें डाला जाय तो उस पापसे मनुष्यको पशु-पक्षियोंकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। सप्तमीको ताड़का फल खाया जाय तो वह रोग बढ़ानेवाला तथा शरीरका नाशक होता है। अष्टमीको नारियलका फल खाया जाय तो उससे बुद्धिका नाश होता है। नवमीको लौकी और दशमीको कलम्बीका शाक सर्वथा त्याज्य है। एकादशीको शिम्बी (सेम), द्वादशीको पूतिका (पोई) और त्रयोदशीको बैंगन खानेसे पुत्रका नाश होता है। मांस सबके लिये सदा वर्जित है।

पार्वणश्राद्ध और व्रतके दिन प्रातःकालिक स्नानके समय सरसोंका तेल और पकाया हुआ तेल उपयोगमें लाया जाय तो उत्तम है। अमावास्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति, चतुर्दशी और अष्टमी तिथियोंमें, रविवारको, श्राद्ध और व्रतके दिन स्त्री-सहवास तथा तिलके तेलका सेवन निषिद्ध है। सभी वर्णोंके लिये दिनमें अपनी स्त्रीका भी सेवन वर्जित है। रातमें दही खाना, दिनमें दोनों संध्याओंके समय सोना तथा रजस्वला स्त्रीके साथ समागम करना—ये नरकको प्राप्तिके कारण हैं। रजस्वला तथा कुलटाका अन्न नहीं खाना चाहिये।

ब्रह्मर्षे! शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणका अन्न भी खाने योग्य नहीं है। ब्रह्मन्! सूदखोर और गणकका अन्न भी नहीं खाना चाहिये। अग्रदानी ब्राह्मण (महापात्र) तथा चिकित्सक (वैद्य या डाक्टर)-का अन्न भी खाने योग्य नहीं है। अमावास्या तिथि और कृत्तिका नक्षत्रमें द्विजोंके लिये क्षौर-कर्म (हजामत) वर्जित है। जो मैथुन करके देवताओं तथा पितरोंका तर्पण करता है, उसका वह जल रक्तके समान होता है तथा उसे देनेवाला नरकमें पड़ता है। नारद! जो करना चाहिये, जो नहीं करना चाहिये, जो भक्ष्य है और जो अभक्ष्य है, वह सब तुम्हें बताया गया। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय २७)

---

१. जलज शाकविशेष अथवा कदम्ब।

परब्रह्म परमात्माके स्वरूपका निरूपण

नारदजीने पूछा—जगन्नाथ! जगद्गुरो! आपकी कृपासे मैंने सब कुछ सुन लिया। अब आप ब्रह्मके स्वरूपका वर्णन—ब्रह्मतत्त्वका निरूपण कीजिये। प्रभो! सर्वेश्वर! ब्रह्म साकार है या निराकार? क्या उसका कुछ विशेषण भी है? अथवा वह विशेषणोंसे रहित (निर्विशेष) ही है? ब्रह्मका नेत्रोंसे दर्शन हो सकता है या नहीं? वह समस्त देहधारियोंमें लिप्त है अथवा नहीं? उसका क्या लक्षण बताया गया है? वेदमें उसका किस प्रकार निरूपण किया गया है? क्या प्रकृति ब्रह्मसे अतिरिक्त है या ब्रह्मस्वरूपिणी ही है? श्रुतिमें प्रकृतिका सारभूत लक्षण किस प्रकार सुना गया है? ब्रह्म और प्रकृति इन दोनोंमेंसे किसकी सृष्टिमें प्रधानता है? दोनोंमें कौन श्रेष्ठ है? सर्वज्ञ! इन सब बातोंपर मनसे विचार करके जो सिद्धान्त हो, उसे अवश्य मुझे बताइये।

नारदजीकी यह बात सुनकर भगवान् पञ्चमुख महादेव ठठाकर हँस पड़े और उन्होंने परब्रह्म-तत्त्वका निरूपण आरम्भ किया।

महादेवजी बोले—वत्स नारद! तुमने जो-जो पूछा है, वह उत्तम गूढ़ ज्ञानका विषय है। वेदों और पुराणोंमें भी वह उत्तम एवं गूढ़ ज्ञान परम दुर्लभ है। ब्रह्मन्! मैं ब्रह्मा, विष्णु, शेषनाग, धर्म और महाविराट्—इन सबने तथा श्रुतियोंने भी सब बातोंका निरूपण किया है। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारद! जो सविशेष तथा प्रत्यक्ष दृश्य-तत्त्व है, उसका हम लोगोंने वेदमें निरूपण किया है। प्राचीनकालकी बात है, वैकुण्ठधाममें मैंने, ब्रह्माजीने और धर्मने श्रीहरिके समक्ष अपना प्रश्न उपस्थित किया था। उस समय श्रीहरिने उसका जो कुछ उत्तर दिया, वह सुनो; मैं तुम्हें बताता हूँ। वह ज्ञान तत्त्वोंका सारभूत तत्त्व है, अज्ञानान्धकारसे अन्धे हुए लोगोंके लिये नेत्ररूप है तथा दुविधा अथवा द्वैत नामक भ्रमरूपी अन्धकारका नाश करनेके लिये सर्वोत्तम प्रदीपके समान है। सनातन परब्रह्म परमात्मस्वरूप है। वह देहधारियोंके कर्मोंके साक्षीरूपसे समस्त शरीरोंमें विराजमान है। प्रत्येक शरीरमें पाँचों प्राणोंके रूपमें साक्षात् भगवान् विष्णु विद्यमान हैं। मनके रूपमें प्रजापति ब्रह्मा विराज रहे हैं। सम्पूर्ण ज्ञान (बुद्धि)-के रूपमें स्वयं मैं हूँ और शक्तिके रूपमें ईश्वरीय प्रकृति है। हम सब-के-सब परमात्माके अधीन हैं। शरीरमें उसके स्थित होनेपर ही स्थित होते हैं और उसके चले जाने (सम्बन्ध हटा लेने)-पर हम भी चले जाते हैं। जैसे राजाके सेवक सदा राजाका अनुसरण करते हैं, उसी प्रकार हम लोग उस परमात्माके अनुगामी बने रहते हैं। जीव परमात्माका प्रतिबिम्ब है। वही कर्मोंके फलका उपभोग करता है। जैसे जलसे भरे हुए घड़ोंमें पृथक्-पृथक् सूर्य और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब होता है तथा उन घड़ोंके फूट जानेपर वह प्रतिबिम्ब फिर चन्द्रमा और सूर्यमें लीन हो जाता है, उसी प्रकार सृष्टिकालमें परमात्माके प्रतिबिम्ब-स्वरूप जीवकी उपलब्धि होती है तथा सृष्टिमयी उपाधिके नष्ट हो जानेपर वह प्रतिबिम्बस्वरूप जीव पुनः सर्वव्यापी परमात्मामें लीन हो जाता है।

वत्स! संसारका संहार हो जानेपर एकमात्र परब्रह्म परमात्मा ही शेष रहता है। हम तथा यह चराचर जगत् उसीमें लीन हो जाते हैं। वह ब्रह्म मण्डलाकार ज्योतिःपुञ्जस्वरूप है। ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालमें प्रकट होनेवाले कोटि-कोटि सूर्योंके समान उसका प्रकाश है। वह आकाशके समान विस्तृत, सर्वत्र व्यापक तथा अविनाशी है। योगीजनोंको ही वह चन्द्रमण्डलके समान सुखपूर्वक दिखायी देता है। योगीलोग उसे सनातन परब्रह्म कहते हैं और दिन-रात उस सर्वमङ्गलमय सत्यस्वरूप परमात्माका ध्यान करते रहते हैं। वह परमात्मा निरीह, निराकार तथा सबका ईश्वर है।

उसका स्वरूप उसकी इच्छाके अनुसार है। वह स्वतन्त्र तथा समस्त कारणोंका भी कारण है। परमानन्दस्वरूप तथा परमानन्दकी प्राप्तिका हेतु है। सबसे उत्कृष्ट, प्रधान पुरुष (पुरुषोत्तम), प्राकृत गुणोंसे रहित तथा प्रकृतिसे परे है। प्रलयके समय उसीमें सर्वबीजस्वरूपिणी प्रकृति लीन होती है। ठीक उसी तरह, जैसे अग्निमें उसकी दाहिका शक्ति, सूर्यमें प्रभा, दूधमें धवलता और जलमें शीतलता लीन रहती है। मुने! जैसे आकाशमें शब्द और पृथ्वीमें गन्ध सदा विद्यमान है, उसी तरह निर्गुण ब्रह्ममें निर्गुण प्रकृति सर्वदा स्थित है। जब ब्रह्म सृष्टिके लिये उन्मुख होता है, तब अपने अंशसे पुरुष कहलाता है। वत्स! वही गुणों—विषयोंसे सम्बन्ध स्थापित करनेपर प्राकृत एवं विषयी कहा गया है। त्रिगुणा प्रकृति उस परमात्मामें ही उत्कृष्ट छायारूपिणी मानी गयी है। मुने! जैसे कुम्हार मिट्टीसे घड़ा बनानेमें सदा ही समर्थ होता है, उसी प्रकार वह ब्रह्म प्रकृतिके द्वारा सृष्टिका निर्माण करनेमें नित्य समर्थ है। जैसे सुनार सुवर्णसे कुण्डल बनानेकी शक्ति रखता है, उसी तरह परमेश्वर उपादानभूता प्रकृतिके द्वारा सदा सृष्टि करनेमें समर्थ है। जैसे कुम्हार मिट्टीका निर्माण नहीं करता, मिट्टी उसके लिये नित्य एवं सनातन है तथा जैसे सुनार सुवर्णकी सृष्टि नहीं करता, सुवर्ण उसके लिये नित्य वस्तु ही है, उसी प्रकार वह परब्रह्म परमात्मा नित्य है और वह प्रकृति भी नित्य मानी गयी है। इसीलिये कुछ लोग सृष्टिमें उन दोनोंकी ही समानरूपसे प्रधानता बतलाते हैं। कुम्हार और सुनार स्वयं मिट्टी और सुवर्ण पैदा करके लानेमें समर्थ नहीं हैं तथा मिट्टी और सुवर्ण भी कुम्हार और सुनारको ले आनेकी शक्ति नहीं रखते। अतः मिट्टी और कुम्हारकी घटमें तथा सुवर्ण और सुनारकी कुण्डलमें समानरूपसे प्रधानता है।

नारद! इस विवेचनसे ब्रह्म प्रकृतिसे परे ही सिद्ध होता है। यही बात दृष्टिमें रखकर कुछ लोग प्रकृति और ब्रह्म दोनोंको ही निश्चितरूपसे नित्यतामय प्रतिपादन करते हैं। कुछ विद्वानोंका कथन है कि ब्रह्म स्वयं ही प्रकृति और पुरुषरूपमें प्रकट है। कुछ लोग यह भी कहते हैं कि प्रकृति ब्रह्मसे अतिरिक्त (भिन्न) है। वह ब्रह्म परमधाम-स्वरूप तथा समस्त कारणोंका भी कारण है। ब्रह्मन्! उस ब्रह्मका लक्षण श्रुतिमें कुछ इस प्रकारका सुना गया है—ब्रह्म सबका आत्मा है। वह सबसे निर्लिप्त और सबका साक्षी है। सर्वत्र व्यापक और सबका आदिकारण है। सर्वबीजस्वरूपिणी प्रकृति उस ब्रह्मकी शक्ति है। जिससे वह ब्रह्म शक्तिमान् है, अतः शक्ति और शक्तिमान् दोनों अभिन्न हैं। योगीलोग सदा तेजःस्वरूपमें ही ब्रह्मका ध्यान करते हैं; परंतु सूक्ष्म बुद्धिवाले मेरे भक्त—वैष्णवजन ऐसा नहीं मानते। वे वैष्णवजन उस आश्चर्यमय तेजोमण्डलके भीतर सदा साकार, सर्वात्मा, स्वेच्छामय पुरुषके मनोहर रूपका ध्यान करते हैं। करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान जो मण्डलाकार तेजःपुञ्ज है, उसके भीतर नित्यधाम छिपा हुआ है, जिसका नाम गोलोक है। वह मनोहर लोक चारों ओरसे लक्षकोटि योजन विस्तृत है। सर्वश्रेष्ठ दिव्य रत्नोंके सारतत्त्वसे जिनका निर्माण हुआ है, ऐसे दिव्य भवनों तथा गोपाङ्गनाओंसे वह लोक भरा हुआ है। उसे सुखपूर्वक देखा जा सकता है। चन्द्रमण्डलके समान ही वह गोलाकार है। रत्नेन्द्रसारसे निर्मित वह धाम परमात्माकी इच्छाके अनुसार बिना किसी आधारके ही स्थित है। उस नित्य लोककी स्थिति वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन ऊपर है। वहाँ गौएँ, गोप और गोपियाँ निवास करती हैं। वहाँ कल्पवृक्षोंके वन हैं। गोलोक कामधेनु गौओंसे भरा हुआ तथा रासमण्डलसे मण्डित है। मुने! वह वृन्दावनसे आच्छन्न और विरजा नदीसे आवेष्टित है। वहाँ सैकड़ों शिखरोंसे सुशोभित गिरिराज विराजमान है। सुवर्णनिर्मित

लक्ष कोटि मनोहर आश्रम हैं, जिनसे वह अभीष्ट धाम अत्यन्त दीप्तिमान् एवं श्रीसम्पन्न दिखायी देता है। उन सबके मध्यभागमें एक परम मनोहर आश्रम है, जो अकेला ही सौ मन्दिरोंसे संयुक्त है। यह परकोटों तथा खाइयोंसे घिरा हुआ तथा पारिजातके वनोंसे सुशोभित है। उस आश्रमके भवनोंमें जो कलश लगे हैं, उनका निर्माण रत्नराज कौस्तुभमणिसे हुआ है। इसलिये वे उत्तम ज्योतिःपुञ्जसे जाज्वल्यमान रहते हैं। उन भवनोंमें जो सीढ़ियाँ हैं, वे दिव्य हीरोंके सार-तत्त्वसे बनी हुई हैं। उनसे उन भवनोंका सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है। मणीन्द्रसारसे निर्मित वहाँके किवाड़ोंमें दर्पण जड़े हुए हैं। नाना प्रकारके चित्र-विचित्र उपकरणोंसे वह आश्रम भलीभाँति सुसज्जित है। उसमें सोलह दरवाजे हैं तथा वह आश्रम रत्नमय प्रदीपोंसे अत्यन्त उद्भासित होता रहता है।

वहाँ बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित तथा नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे चित्रित रमणीय रत्नमय सिंहासनपर सर्वेश्वर श्रीकृष्ण बैठे हुए हैं। उनकी अङ्गकान्ति नवीन मेघ-मालाके समान श्याम है। वे किशोर-अवस्थाके बालक हैं। उनके नेत्र शरत्कालकी दोपहरीके सूर्यकी प्रभाको छीने लेते हैं। उनका मुखमण्डल शरत्पूर्णिमाके पूर्ण चन्द्रमाकी शोभाको ढक देता है। उनका सौन्दर्य कोटि कामदेवोंकी लावण्यलीलाको तिरस्कृत कर रहा है। उनका पुष्ट श्रीविग्रह करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभासे सेवित है। उनके मुखपर मुस्कराहट खेलती रहती है। उनके हाथमें मुरली शोभा पाती है। उनके मनोहर छविकी सबने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। वे परम मङ्गलमय हैं। अग्निमें तपाकर शुद्ध किये गये सुवर्णके समान रंगवाले दो पीताम्बर धारण करनेसे उनका श्रीविग्रह परम उज्ज्वल प्रतीत होता है। भगवान्‌के सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित तथा कौस्तुभमणिसे प्रकाशित हैं। घुटनोंतक लटकती हुई मालतीकी माला और वनमालासे वे विभूषित हैं। त्रिभंगी छविसे युक्त और मणिमाणिक्यसे अलंकृत हैं। मोरपंखका मुकुट धारण करते हैं। उत्तम रत्नमय मुकुटसे उनका मस्तक जगमगाता रहता है। रत्नोंके बाजूबंद, कंगन और मंजीरसे उनके हाथ-पैर सुशोभित हैं। उनके गण्डस्थल रत्नमय युगल कुण्डलसे अत्यन्त शोभा पाते हैं। उनकी दन्तपंक्ति मोतियोंकी पाँतिका तिरस्कार करनेवाली है। वे बड़े ही मनोहर हैं। उनके ओठ पके हुए बिम्बफलके समान लाल हैं। उन्नत नासिका उनकी शोभा बढ़ाती है। सब ओरसे घेरकर खड़ी हुई गोपाङ्गनाएँ उन्हें सदा सादर निहारती रहती हैं। वे गोपाङ्गनाएँ भी सुस्थिर यौवनसे युक्त, मन्द मुस्कानसे सुशोभित तथा उत्तम रत्नोंके बने हुए आभूषणोंसे विभूषित हैं। देवेन्द्र, मुनीन्द्र, मुनिगण तथा नरेशोंके समुदाय और ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त तथा धर्म आदि उनकी सानन्द वन्दना किया करते हैं। वे भक्तोंके प्रियतम, भक्तोंके नाथ तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर रहनेवाले हैं। राधाके वक्षःस्थलपर विराजमान परम रसिक रासेश्वर हैं। मुने! वैष्णवजन उन निराकार परमात्माका इस रूपमें ध्यान किया करते हैं। वे परमात्मा ईश्वर हम सब लोगोंके सदा ही ध्येय हैं। उन्हींको अविनाशी परब्रह्म कहा गया है। वे ही दिव्य स्वेच्छामय शरीरधारी सनातन भगवान् हैं। वे निर्गुण, निरीह और प्रकृतिसे परे हैं। सर्वाधार, सर्वबीज, सर्वज्ञ, सर्वरूप, सर्वेश्वर, सर्वपूज्य तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंको हाथमें देनेवाले हैं। वे आदिपुरुष भगवान् स्वयं ही द्विभुज रूप धारण करके गोलोकमें निवास करते हैं। उनकी वेष-भूषा भी ग्वालोंके समान होती है और वे अपने पार्षद गोपालोंसे घिरे रहते हैं। उन परिपूर्णतम भगवान्‌को श्रीकृष्ण कहते हैं। वे सदा श्रीजीके साथ रहनेवाले और श्रीराधिकाके प्राणेश्वर हैं। सबके अन्तरात्मा, सर्वत्र प्रत्यक्ष

दर्शन देनेके योग्य और सर्वव्यापी हैं। 'कृष्'का अर्थ है सब और 'ण' का अर्थ है आत्मा। वे परब्रह्म परमात्मा सबके आत्मा हैं। इसलिये उनका नाम 'कृष्ण' है। 'कृष्' शब्द सर्वका वाचक है और 'ण' कार आदिवाचक है। वे सर्वव्यापी परमेश्वर सबके आदिपुरुष हैं, इसलिये 'कृष्ण' कहे गये हैं। वे ही भगवान् अपने एक अंशसे वैकुण्ठधाममें चार भुजाधारी लक्ष्मीपतिके रूपमें निवास करते हैं, चार भुजाधारी पार्षद उन्हें घेरे रहते हैं। वे ही जगत्पालक भगवान् विष्णु अपनी एक कलासे श्वेतद्वीपमें चार भुजाधारी रमापति-रूपसे निवास करते हैं। समुद्रतनया रमा उनकी पत्नी हैं।

इस प्रकार मैंने तुमसे परब्रह्म-निरूपणविषयक सब बातें बतायीं। ये परमात्मा हम सबके प्रिय, वन्दनीय, सेव्य तथा सर्वदा स्मरणीय हैं।

शौनक! ऐसा कहकर भगवान् शंकर वहीं चुप हो गये। तब नारदने गन्धर्वराज उपबर्हणद्वारा रचे गये स्तोत्रसे उनकी स्तुति की। मुनिके उस स्तोत्रसे संतुष्ट हो अपनी महिमासे कभी च्युत न होनेवाले आदि भगवान् मृत्युञ्जयने उन्हें अभीष्ट वरदान—ज्ञान प्रदान किया। उस समय मुनिवर नारदके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। वे भगवान् शिवको प्रणाम करके उनकी आज्ञा ले पुण्यमय नारायणाश्रमको चले गये।

(अध्याय २८)

बदरिकाश्रममें नारायणके प्रति नारदजीका प्रश्न

सौति कहते हैं—शौनक! देवर्षि नारदने नारायण ऋषिके आश्चर्यमय आश्रमको देखा, जो बेरके वनोंसे सुशोभित था। नाना प्रकारके वृक्षों और फलोंसे भरे हुए उस आश्रममें कोयलकी मीठी कूक मुखरित हो रही थी। बड़े-बड़े शरभों, सिंहों और व्याघ्रसमुदायोंसे घिरे होनेपर भी उस आश्रममें ऋषिराज नारायणके प्रभावसे हिंसा और भयका कहीं नाम नहीं था। वह विशाल वन जनसाधारणके लिये अगम्य और स्वर्गसे भी अधिक मनोहर था। वहाँ नारदजीने देखा—ऋषिप्रवर नारायण मुनियोंकी सभामें रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका रूप बड़ा मनोहर है और वे योगियोंके गुरु हैं। श्रीकृष्णस्वरूप परमेश्वर परब्रह्मका जप करते हुए नारायण मुनिका दर्शन करके ब्रह्मपुत्र नारदने उन्हें प्रणाम किया। उन्हें आया देख नारायणने सहसा उठकर हृदयसे लगा लिया और उत्तम आशीर्वाद प्रदान किया। साथ ही स्नेहपूर्वक कुशल-समाचार पूछा और आतिथ्यसत्कार किया। फिर नारदजीको भी उन्होंने रमणीय रत्नमय सिंहासनपर बिठाया। उस रमणीय आसनपर बैठकर नारदजीने रास्तेकी थकावट दूर की और उन ऋषिश्रेष्ठ सनातन भगवान् नारायणसे, साथ ही उन सब परम दुर्लभ मुनियोंसे भी पूछा, जो पिताके स्थानमें वेदाध्ययन करके वहाँ विराजमान थे।

नारदजी बोले—प्रभो! योगीश्वर शंकरसे ज्ञान और मन्त्रका उपदेश पाकर भी मेरा मन तृप्त नहीं हो रहा है; क्योंकि यह बड़ा चञ्चल है और इसे रोकना अत्यन्त कठिन है। मेरे मनमें प्रभुकी कुछ ऐसी प्रेरणा हुई, जिससे मैंने आपके चरणारविन्दोंका दर्शन किया। इस समय मैं आपसे कुछ विशेष ऐसा ज्ञान प्राप्त करना चाहता हूँ, जिसमें श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन हो, जो कि जन्म, मृत्यु और जराका नाश करनेवाला है। भगवन्! ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, देवराज इन्द्र, मुनि और विद्वान् मनु किसका चिन्तन करते हैं? सृष्टिका प्रादुर्भाव किससे होता है अथवा उसका लय कहाँ होता है? समस्त

कारणोंके भी कारणभूत सर्वेश्वर विष्णु कौन हैं? जगत्पते! उन ईश्वरका रूप अथवा कर्म क्या है? इन सब बातोंपर मन-ही-मन विचार करके आप बतानेकी कृपा करें।

नारदजीका यह वचन सुनकर भगवान् नारायण ऋषि हँसे। फिर उन्होंने त्रिभुवनपावनी पुण्यकथाको कहना आरम्भ किया।

(अध्याय २१)

नारायणके द्वारा परमपुरुष परमात्मा श्रीकृष्ण तथा प्रकृतिदेवीकी महिमाका प्रतिपादन

श्रीनारायण बोले—गणेश, विष्णु, शिव, रुद्र, शेष, ब्रह्मा आदि देवता, मनु, मुनीन्द्रगण, सरस्वती, पार्वती, गङ्गा और लक्ष्मी आदि देवियाँ भी जिनका सेवन करती हैं, उन भगवान् गोविन्दके चरणारविन्दका चिन्तन करना चाहिये। जो अत्यन्त गम्भीर और भयंकर दावाग्निरूपी सर्पसे आवेष्टित हो छटपटाते अङ्गवाले संसार-सागरको लाँघकर उस पार जाना चाहता है और श्रीहरिके दास्य-सुखको पानेकी इच्छा रखता है, वह भगवान् श्रीकृष्णके चरणारविन्दका चिन्तन करे। जिन्होंने गोवर्धन पर्वतको हाथपर उठाकर व्रजभूमिको इन्द्रके कोपसे बचानेकी कीर्ति प्राप्त की है, वाराहावतारके समय एकार्णवके जलमें गली जाती हुई पृथ्वीको अपनी दाढ़ोंके अग्रभागसे उठाकर जलके ऊपर स्थापित किया तथा जो अपने रोमकूपोंमें असंख्य विश्व-ब्रह्माण्डको धारण करते हैं, उन आदिपुरुष भगवान् गोविन्दके चरणारविन्दका चिन्तन करना चाहिये। जो गोपाङ्गनाओंके मुखारविन्दके रसिक भ्रमर हैं और वृन्दावनमें विहार करनेवाले हैं, उन व्रजवेषधारी विष्णुरूप परमपुरुष रसिक-रमण रासेश्वर श्रीकृष्णके चरणारविन्दका चिन्तन करना चाहिये। वत्स नारदमुने! जिनके नेत्रोंकी पलक गिरते ही जगत्स्रष्टा ब्रह्मा नष्ट हो जाते हैं, उनके कर्मका वर्णन करनेमें भूतलपर कौन समर्थ है? तुम भी श्रीहरिके चरणारविन्दका अत्यन्त आदरपूर्वक चिन्तन करो। तुम और हम उन भगवान्‌की कलाकी कलाके अंशमात्र हैं। मनु और मुनीन्द्र भी उनकी कलाके कलांश ही हैं। महादेव और ब्रह्माजी भी कलाविशेष हैं और महान् विराट्-पुरुष भी उनकी विशिष्ट कलामात्र हैं। सहस्र सिरोंवाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको अपने मस्तकपर सरसोंके एक दानेके समान धारण करते हैं, परंतु कूर्मके पृष्ठभागमें वे शेषनाग ऐसे जान पड़ते हैं, मानो हाथीके ऊपर मच्छर बैठा हो। वे भगवान् कूर्म (कच्छप) श्रीकृष्णकी कलाके कलांशमात्र हैं। नारद! गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्णका निर्मल यश वेद और पुराणमें किञ्चिन्मात्र भी प्रकट नहीं हुआ। ब्रह्मा आदि देवता भी उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं हैं। ब्रह्मपुत्र नारद! तुम उन सर्वेश्वर श्रीकृष्णका ही मुख्यरूपसे भजन करो।

जिन विश्वाधार परमेश्वरके सम्पूर्ण लोकोंमें सदा बहुत-से ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र रहा ही करते हैं तथा श्रुतियाँ और देवता भी उनकी नियत संख्याको नहीं जानते हैं, उन्हीं परमेश्वर श्रीकृष्णकी तुम आराधना करो। वे विधाताके भी विधाता हैं। वे ही जगत्प्रसविनी नित्यरूपिणी प्रकृतिको प्रकट करके संसारकी सृष्टि करते हैं। ब्रह्मा आदि सब देवता प्रकृतिजन्य हैं। वे भक्तिदायिनी श्रीप्रकृतिका भजन करते हैं। प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा है। वह ब्रह्मसे भिन्न नहीं है। उसीके द्वारा सनातन पुरुष परमात्मा संसारकी सृष्टि करते हैं, श्रीप्रकृतिको

कलासे ही संसारकी सारी स्त्रियाँ प्रकट हुई हैं। प्रकृति ही माया है, जिसने सबको मोहमें डाल रखा है। वह सनातनी परमा प्रकृति नारायणी कही गयी है; क्योंकि वह परमपुरुष नारायणकी शक्ति है। सर्वात्मा ईश्वर भी उसीके द्वारा शक्तिमान् होते हैं। उस शक्तिके बिना वे सृष्टि करनेमें सदा असमर्थ ही हैं। वत्स! तुम इस समय जाकर विवाह करो। मैं तुम्हें पिताके आदेशका पालन करनेकी आज्ञा देता हूँ। जो गुरुकी आज्ञाका पालन करनेवाला है, वह सदा सर्वत्र पूजनीय तथा विजयी होता है। जो पुरुष वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे अपनी पत्नीका सत्कार करता है, उसपर प्रकृतिदेवी संतुष्ट होती हैं। ठीक उसी तरह जैसे ब्राह्मणकी पूजा-अर्चा करनेपर भगवान् श्रीकृष्ण संतुष्ट होते हैं। प्रकृति ही सम्पूर्ण लोकोंमें अपनी मायासे स्त्रियोंके रूपमें प्रकट हुई हैं। अतः महिलाओंके अपमानसे वे प्रकृतिदेवी ही अपमानित होती हैं। जिसने पति-पुत्रसे युक्त सती-साध्वी दिव्य नारीका पूजन किया है, उसके द्वारा सर्वमङ्गलदायिनी प्रकृतिदेवीका ही पूजन सम्पन्न हुआ है। मूल प्रकृति एक ही है। वह पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी है। उसीको सनातनी विष्णुमाया कहा गया है। सृष्टिकालमें वह पाँच रूपोंमें प्रकट होती है। जो परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी है तथा समस्त प्रकृतियोंमें उन्हें सबसे अधिक प्यारी है, उस मुख्या प्रकृतिका नाम 'राधा' है। दूसरी प्रकृति नारायणप्रिया लक्ष्मी हैं, जो सर्वसम्पत्स्वरूपिणी हैं। तीसरी प्रकृति वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती हैं, जो सदा सबके द्वारा पूजनीया हैं। चौथी प्रकृति वेदमाता सावित्री हैं। वे ब्रह्माजीकी प्यारी पत्नी और सबकी पूजनीया हैं। पाँचवीं प्रकृतिका नाम दुर्गा है, जो भगवान् शंकरकी प्यारी पत्नी हैं। उन्हींके पुत्र गणेश हैं। (अध्याय ३०)

ब्रह्मखण्ड सम्पूर्ण

पञ्चदेवीरूपा प्रकृतिका तथा उनके अंश, कला एवं कलांशका विशद वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! गणेशजननी दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री और राधा—ये पाँच देवियाँ प्रकृति कहलाती हैं। इन्हींपर सृष्टि निर्भर है।

नारदजीने पूछा—ज्ञानियोंमें प्रमुख स्थान प्राप्त करनेवाले साधो! वह प्रकृति कहाँसे प्रकट हुई है, उसका कैसा स्वरूप है, कैसे लक्षण हैं तथा क्यों वह पाँच प्रकारकी हो गयी? इन समस्त देवियोंके चरित्र, उनके पूजाके विधान, उनके गुण और ये किसके यहाँ कैसे प्रकट हुईं—ये सभी प्रसङ्ग आप मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायणने कहा—वत्स! 'प्र' का अर्थ है 'प्रकृष्ट' और 'कृति' से सृष्टिके अर्थका बोध होता है, अतः सृष्टि करनेमें जो प्रकृष्ट (परम प्रवीण) है, उसे देवी 'प्रकृति' कहते हैं। सर्वोत्तम सत्त्वगुणके अर्थमें 'प्र' शब्द, मध्यम रजोगुणके अर्थमें 'कृ' शब्द और तमोगुणके अर्थमें 'ति' शब्द है। जो त्रिगुणात्मकस्वरूपा है, वही सर्वशक्तिसे सम्पन्न होकर सृष्टिविषयक कार्यमें प्रधान है, इसलिये 'प्रधान' या 'प्रकृति' कहलाती है। 'प्र' प्रथम अर्थमें और 'कृति' सृष्टि-अर्थमें है। अतः जो देवी सृष्टिकी आदिकारणरूपा हैं, उसे प्रकृति कहते हैं। सृष्टिके अवसरपर परब्रह्म परमात्मा स्वयं दो रूपोंमें प्रकट हुए—प्रकृति और पुरुष। उनका आधा दाहिना अङ्ग 'पुरुष' और आधा बायाँ अङ्ग 'प्रकृति' हुआ। वही प्रकृति ब्रह्मस्वरूपा, नित्या और सनातनी माया है। जैसे परमात्मा हैं, वैसी उनकी शक्तिस्वरूपा प्रकृति है अर्थात् परब्रह्म परमात्माके सभी अनुरूप गुण इन प्रकृतिमें निहित हैं, जैसे अग्निमें दाहिका शक्ति सदा रहती है। इसीसे परम योगी पुरुष स्त्री और पुरुषमें भेद नहीं मानते हैं। नारद! वे सबको ब्रह्ममय देखते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छामय, सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र परम पुरुष हैं। उनके मनमें सृष्टिकी इच्छा उत्पन्न होते ही सहसा 'मूल प्रकृति' परमेश्वरी प्रकट हो गयीं। तदनन्तर परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार सृष्टि-रचनाके लिये इनके पाँच रूप हो गये। भगवती प्रकृति भक्तोंके अनुरोधसे अथवा उनपर कृपा करनेके लिये विविध रूप धारण करती हैं।

जो गणेशकी माता 'भगवती दुर्गा' हैं, उन्हें 'शिवस्वरूपा' कहा जाता है। ये भगवान् शंकरकी प्रेयसी भार्या हैं। नारायणी, विष्णुमाया और पूर्ण ब्रह्मस्वरूपिणी नामसे ये प्रसिद्ध हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनिगण तथा मनु प्रभृति—सभी इनकी पूजा करते हैं। ये सबकी अधिष्ठात्री देवी हैं, सनातन ब्रह्मस्वरूपा हैं। यश, मङ्गल, धर्म, श्री, सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करना इनका स्वाभाविक गुण है। दुःख, शोक और उद्वेगको ये दूर कर देती हैं। शरणमें आये हुए दीनों एवं पीड़ितोंकी रक्षामें सदा संलग्न रहती हैं। ये तेजःस्वरूपा हैं। इनका विग्रह परम तेजस्वी है। इन्हें तेजकी अधिष्ठात्री देवी कहा जाता है। ये सर्वशक्तिस्वरूपा हैं और भगवान् शंकरको निरन्तर शक्तिशाली बनाये रखती हैं। सिद्धेश्वरी, सिद्धिरूपा, सिद्धिदा, सिद्धिदाताओंकी ईश्वरी, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, पिपासा, छाया, तन्द्रा, दया, स्मृति, जाति, क्षान्ति भ्रान्ति, शान्ति, कान्ति, चेतना, तुष्टि, पुष्टि, लक्ष्मी, वृत्ति और माता—ये सब इनके नाम हैं। श्रीकृष्ण परब्रह्म परमात्मा हैं। उनके समीप सर्वशक्तिरूपसे ये विराजती हैं। श्रुतिमें इनके सुविख्यात गुणका अत्यन्त संक्षेपमें वर्णन किया गया है, जैसा कि आगमोंमें उपलब्ध होता है। ये अनन्ता हैं। अतएव इनमें गुण भी

अनन्त हैं। अब इनके दूसरे रूपका वर्णन करता हूँ, सुनो।

जो परम शुद्ध सत्त्वस्वरूपा हैं, उन्हें 'भगवती लक्ष्मी' कहा जाता है। परम प्रभु श्रीहरिकी वे शक्ति कहलाती हैं। अखिल जगत्‌की सारी सम्पत्तियाँ उनके स्वरूप हैं। उन्हें सम्पत्तिकी अधिष्ठात्री देवी माना जाता है। वे परम सुन्दरी, अनुपम संयमरूपा, शान्तस्वरूपा, श्रेष्ठ स्वभावसे सम्पन्न तथा समस्त मङ्गलोंकी प्रतिमा हैं। लोभ, मोह, काम, क्रोध, मद और अहंकार आदि दुर्गुणोंसे वे सहज ही रहित हैं। भक्तोंपर अनुग्रह करना तथा अपने स्वामी श्रीहरिसे प्रेम करना उनका स्वभाव है। वे सबकी आदिकारणरूपा और पतिव्रता हैं। श्रीहरि प्राणके समान जानकर उनसे अत्यन्त प्रेम करते हैं। वे सदा प्रिय वचन ही बोलती हैं; कभी अप्रिय बात नहीं कहतीं; धान्य आदि सभी शस्य तथा सबके जीवन-रक्षाके उपाय उनके रूप हैं। प्राणियोंका जीवन स्थिर रहे—एतदर्थ उन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। वे परम साध्वी देवी 'महालक्ष्मी' नामसे विख्यात होकर वैकुण्ठमें अपने स्वामीकी सेवामें सदा संलग्न रहती हैं। स्वर्गमें 'स्वर्गलक्ष्मी', राजाओंके यहाँ 'राजलक्ष्मी' तथा मर्त्यलोकवासी गृहस्थोंके घर 'गृहलक्ष्मी'के रूपमें वे विराजमान हैं। समस्त प्राणियों तथा द्रव्योंमें सर्वोत्कृष्ट शोभा उन्हींका स्वरूप है। वे परम मनोहर हैं। पुण्यात्माओंकी कीर्ति उन्हींकी प्रतिमा है। वे राजाओंकी प्रभा हैं। व्यापारियोंके यहाँ वे वाणिज्यरूपसे विराजती हैं। पापीजन जो कलह आदि अशिष्ट व्यवहार करते हैं, उनमें भी इन्हींकी शक्ति है। वे दयामयी हैं, भक्तोंकी माता हैं और उन भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये सदा व्याकुल रहती हैं। इस प्रकार दूसरी शक्ति (या प्रकृति)-का परिचय दिया गया। उनका वेदोंमें वर्णन है तथा सबने उनका सम्मान किया है। सब लोग उनकी आराधना और वन्दना करते हैं।

नारद! अब मैं अन्य प्रकृतिदेवीका परिचय देता हूँ, सुनो। परब्रह्म परमात्मासे सम्बन्ध रखनेवाली वाणी, बुद्धि, विद्या और ज्ञानकी जो अधिष्ठात्री देवी हैं, उन्हें 'सरस्वती' कहा जाता है। सम्पूर्ण विद्याएँ उन्हींके स्वरूप हैं। मनुष्योंको बुद्धि, कविता, मेधा, प्रतिभा और स्मरण-शक्ति उन्हींकी कृपासे प्राप्त होती हैं। अनेक प्रकारके सिद्धान्तभेदों और अर्थोंकी कल्पनाशक्ति वे ही देती हैं। वे व्याख्या और बोधस्वरूपा हैं। उनकी कृपासे समस्त संदेह नष्ट हो जाते हैं। उन्हें विचारकारिणी और ग्रन्थकारिणी कहा जाता है। वे शक्तिस्वरूपा हैं। सम्पूर्ण संगीतकी सन्धि और तालका कारण उन्हींका रूप है। प्रत्येक विश्वमें जीवोंके लिये विषय, ज्ञान और वाणीरूपा वे ही हैं। उनका एक हाथ व्याख्या (अथवा उपदेश)-की मुद्रामें सदा उठा रहता है। वे शान्तस्वरूपा हैं तथा हाथमें वीणा और पुस्तक लिये रहती हैं। उनका विग्रह शुद्धसत्त्वमय है। वे सदाचारपरायण तथा भगवान् श्रीहरिकी प्रिया हैं। हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद और कमलके समान उनकी कान्ति है। वे रत्न (स्फटिकमणि)-की माला फेरती हुई भगवान् श्रीकृष्णके नामोंका जप करती हैं। उनकी मूर्ति तपोमयी है। तपस्वीजनोंको उनके तपका फल प्रदान करनेमें वे सदा तत्पर रहती हैं। सिद्धि-विद्या उनका स्वरूप है। वे सदा सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती हैं। इस प्रकार तृतीया देवी (प्रकृति) श्रीजगदम्बा सरस्वतीका शास्त्रके अनुसार किञ्चित् वर्णन किया गया। अब चौथी प्रकृतिका परिचय सुनो।

नारद! वे चारों वेदोंकी माता हैं। छन्द और वेदाङ्ग भी उन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। संध्या-वन्दनके मन्त्र और तन्त्रोंकी जननी भी वे ही हैं। द्विजातिवर्णोंके लिये उन्होंने अपना यह रूप धारण किया है। वे जगद्रूपा, तपस्विनी, ब्रह्मतेजसे

सम्पन्न तथा सबका संस्कार करनेवाली हैं। उन पवित्र रूप धारण करनेवाली देवीको 'सावित्री' अथवा 'गायत्री' कहते हैं। ये ब्रह्माकी परम प्रिय शक्ति हैं। तीर्थ अपनी शुद्धिके लिये उनके स्पर्शकी कामना करते हैं। शुद्ध स्फटिकमणिके समान उनकी स्वच्छ कान्ति है। ये शुद्ध सत्त्वमय विग्रहसे शोभा पाती हैं। उनका रूप परम आनन्दमय है। उनका सर्वोत्कृष्ट रूप सदा बना रहता है। ये परब्रह्मस्वरूपा हैं। मोक्ष प्रदान करना उनका स्वाभाविक गुण है। ये ब्रह्मतेजसे सम्पन्न परमशक्ति हैं। इन्हें शक्तिकी अधिष्ठात्री माना जाता है। नारद! उनके चरणकी धूलि सम्पूर्ण जगत्‌को पवित्र कर देती है।

नारद! इन चौथी देवीका प्रसंग सुना चुका। अब तुम्हें पाँचवीं देवीका परिचय देता हूँ। ये प्रेम और प्राणोंकी अधिदेवी तथा पञ्चप्राणस्वरूपिणी हैं। परमात्मा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। सम्पूर्ण देवियोंमें अग्रगण्य हैं, सबकी अपेक्षा इनमें सुन्दरता अधिक है। इनमें सभी सद्‌गुण सदा विद्यमान हैं। ये परम सौभाग्यवती और मानिनी हैं। इन्हें अनुपम गौरव प्राप्त है। परब्रह्मका वामार्द्धाङ्ग ही इनका स्वरूप है। ये ब्रह्मके समान ही गुण और तेजसे सम्पन्न हैं। इन्हें परावरा, सारभूता, परमाद्या, सनातनी, परमानन्दरूपा, धन्या, मान्या और पूज्या कहा जाता है। ये नित्यनिकुञ्जेश्वरी, रासक्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके रासमण्डलमें इनका आविर्भाव हुआ है। इनके विराजनेसे रासमण्डलकी विचित्र शोभा होती है। गोलोकधाममें रहनेवाली ये देवी 'रासेश्वरी' एवं 'सुरसिका' नामसे प्रसिद्ध हैं। रासमण्डलमें पधारे रहना इन्हें बहुत प्रिय है। ये गोपोंके वेषमें विराजती हैं। ये परम आह्लादस्वरूपिणी हैं। इनका विग्रह संतोष और हर्षसे परिपूर्ण है। ये निर्गुणा (लौकिक त्रिगुणोंसे रहित स्वरूपभूत गुणवती), निर्लिप्ता (लौकिक विषयभोगसे रहित), निराकारा (पाञ्चभौतिक शरीरसे रहित दिव्यचिन्मयस्वरूपा), आत्मस्वरूपिणी (श्रीकृष्णकी आत्मा) नामसे विख्यात हैं। इच्छा और अहंकारसे ये रहित हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही इन्होंने अवतार धारण कर रखा है। वेदोक्त विधिके अनुसार ध्यान करनेसे विद्वान् पुरुष इनके रहस्यको समझ पाते हैं। सुरेन्द्र एवं मुनीन्द्र प्रभृति समस्त प्रधान देवता अपने चर्मचक्षुओंसे इन्हें देखनेमें असमर्थ हैं। ये अग्निशुद्ध नीले रंगके दिव्य वस्त्र धारण करती हैं। अनेक प्रकारके दिव्य आभूषण इन्हें सुशोभित किये रहते हैं। इनकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रकाशमान है। इनका सर्वशोभासम्पन्न श्रीविग्रह सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न है। भगवान् श्रीकृष्णके भक्तको दास्य-रति प्रदान करनेवाली एकमात्र ये ही हैं; क्योंकि सम्पूर्ण सम्पत्तियोंमें ये इस दास्य-सम्पत्तिको ही परम श्रेष्ठ मानती हैं। श्रीवृषभानुके घर पुत्रीके रूपसे ये पधारी हैं। इनके चरणकमलका संस्पर्श प्राप्तकर पृथ्वी परम पवित्र हो गयी है। मुने! जिन्हें ब्रह्मा आदि देवता नहीं देख सके, वही ये देवी भारतवर्षमें सबके दृष्टिगोचर हो रही हैं। ये स्त्री-रत्नोंमें साररूपा हैं। भगवान् श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर इस प्रकार विराजती हैं, जैसे आकाशस्थित नवीन नील मेघोंमें बिजली चमक रही हो। इन्हें पानेके लिये ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की है। उनकी तपस्याका उद्देश्य यही था कि इनके चरणकमलके नखके दर्शन सुलभ हो जायँ, जिससे मैं परम पवित्र बन जाऊँ; परंतु स्वप्नमें भी वे इन भगवतीके दर्शन प्राप्त न कर सके; फिर प्रत्यक्षकी तो बात ही क्या है। उसी तपके प्रभावसे ये देवी वृन्दावनमें प्रकट हुई हैं—धराधामपर इनका पधारना हुआ है, जहाँ ब्रह्माजीको भी इनका दर्शन प्राप्त हो सका। ये ही पाँचवीं देवी 'भगवती राधा' के नामसे प्रसिद्ध हैं।

इन प्रकृतिदेवीके अंश, कला, कलांश और

कलांशांशभेदसे अनेक रूप हैं। प्रत्येक विश्वमें सम्पूर्ण स्त्रियाँ इन्हींकी रूप मानी जाती हैं। ये पाँच देवियाँ परिपूर्णतम कही गयी हैं। इन देवियोंके जो-जो प्रधान अंश हैं, अब उनका वर्णन करता हूँ, सुनो। भूमण्डलको पवित्र करनेवाली गङ्गा इनका प्रधान अंश हैं। ये सनातनी 'गङ्गा' जलमयी हैं। भगवान् विष्णुके विग्रहसे इनका प्रादुर्भाव हुआ है। पापियोंके पापमय ईंधनको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्नि हैं। इन्हें स्पर्श करने, इनमें नहाने अथवा इनका जलपान करनेसे पुरुष कैवल्य-पदके अधिकारी हो जाते हैं। गोलोक-धाममें जानेके लिये ये सुखप्रद सीढ़ीके रूपमें विराजमान हैं। इनका रूप परम पवित्र है। समस्त तीर्थों और नदियोंमें ये श्रेष्ठ मानी जाती हैं। ये भगवान् शंकरके मस्तकपर जटामें ठहरी थीं। वहींसे निकलीं और पङ्क्तिबद्ध होकर भारतवर्षमें आ गयीं। तपस्वीजन अपनी तपस्यामें सफलता प्राप्त कर सकें—एतदर्थ शीघ्र ही इनका पधारना हो गया। इनका शुद्ध एवं सत्त्वमय स्वरूप चन्द्रमा, श्वेतकमल या दूधके समान स्वच्छ है। मल और अहंकार इनमें लेशमात्र भी नहीं है। ये परम साध्वी गङ्गा भगवान् नारायणको बहुत प्रिय हैं।

श्री 'तुलसी' को प्रकृतिदेवीका प्रधान अंश माना जाता है। ये विष्णुप्रिया हैं। विष्णुको विभूषित किये रहना इनका स्वाभाविक गुण है। भगवान् विष्णुके चरणमें ये सदा विराजमान रहती हैं। मुने! तपस्या, संकल्प और पूजा आदि सभी शुभकर्म इन्हींसे शीघ्र सम्पन्न होते हैं। पुष्पोंमें ये मुख्य मानी जाती हैं। ये परम पवित्र एवं सदा पुण्यप्रदा हैं। अपने दर्शन और स्पर्शमात्रसे ये तुरंत मनुष्योंको परमधामके अधिकारी बना देती हैं। पापमयी सूखी लकड़ीको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्निके समान रूप धारण करके ये कलिमें पधारी हैं। इन देवी तुलसीके चरणकमलका स्पर्श होते ही पृथ्वी परम पावन बन गयी। तीर्थ स्वयं पवित्र होनेके लिये इनका दर्शन एवं स्पर्श करना चाहते हैं। इनके अभावमें अखिल जगत्‌के सम्पूर्ण कर्म निष्फल समझे जाते हैं। इनकी कृपासे मुमुक्षुजन मुक्त हो जाते हैं। जो जिस कामनासे इनकी उपासना करते हैं, उनकी ये सारी इच्छाएँ पूर्ण हो जाती हैं। भारतवर्षमें वृक्षरूपसे पधारनेवाली ये देवी कल्पवृक्षस्वरूपा हैं। भारतवासियोंका त्राण (उद्धार एवं रक्षा) करनेके लिये इनका यहाँ पधारना हुआ है। ये पूजनीयोंमें परम देवता हैं।

प्रकृतिदेवीके एक अन्य प्रधान अंशका नाम देवी 'जरत्कारु' है। ये कश्यपजीकी मानसपुत्री हैं; अतः 'मनसा' देवी कहलाती हैं। इन्हें भगवान् संकरको प्रिय शिष्या होनेका सौभाग्य प्राप्त है। ये परम विदुषी हैं। नागराज शेषकी बहिन हैं। सभी नाग इनका सम्मान करते हैं। नागकी सवारीपर चलनेवाली इन अनुपम सुन्दरी देवीको 'नागेश्वरी' और 'नागमाता' भी कहा जाता है। प्रधान-प्रधान नाग इनके साथ विराजमान रहते हैं। ये नागोंसे सुशोभित रहती हैं। नागराज इनकी स्तुति करते हैं। ये सिद्धयोगिनी हैं और नागलोकमें निवास करती हैं। ये विष्णुस्वरूपिणी हैं। भगवान् विष्णुमें इनकी अटल श्रद्धा-भक्ति है। ये सदा श्रीहरिकी पूजामें संलग्न रहती हैं। इनका विग्रह तपोमय है। तपस्वीजनोंको फल प्रदान करनेमें ये परम कुशल हैं। ये स्वयं भी तपस्या करती हैं। इन्होंने देवताओंके वर्षसे तीन लाख वर्षतक भगवान् श्रीहरिकी प्रसन्नताके लिये तपस्या की है। भारतवर्षमें जितने तपस्वी और तपस्विनियाँ हैं, उन सबमें ये पूज्य एवं श्रेष्ठ हैं। सर्प-सम्बन्धी मन्त्रोंकी ये अधिष्ठात्री देवी हैं। ब्रह्मतेजसे इनका विग्रह सदा प्रकाशमान रहता है। इनको 'परब्रह्मस्वरूपा' कहते हैं। ये ब्रह्मके चिन्तनमें सदा संलग्न रहती हैं। जरत्कारुमुनि भगवान् श्रीकृष्णके अंश हैं। उन्हींकी ये पतिव्रता

पत्नी हैं। मुनिवर आस्तीक, जो तपस्वियोंमें श्रेष्ठ गिने जाते हैं, ये देवी उनकी माता हैं।

नारद! प्रकृतिदेवीके एक प्रधान अंशको 'देवसेना' कहते हैं। मातृकाओंमें ये परम श्रेष्ठ मानी जाती हैं। इन्हें लोग भगवती 'षष्ठी' के नामसे कहते हैं। प्रत्येक लोकमें शिशुओंका पालन एवं संरक्षण करना इनका प्रधान कार्य है। ये तपस्विनी, विष्णुभक्ता तथा कार्तिकेयजीकी पत्नी हैं। ये साध्वी भगवती प्रकृतिका छठा अंश हैं। अतएव इन्हें 'षष्ठी' देवी कहा जाता है। संतानोत्पत्तिके अवसरपर अभ्युदयके लिये इन षष्ठी योगिनीकी पूजा होती है। अखिल जगत्‌में बारहों महीने लोग इनकी निरन्तर पूजा करते हैं। पुत्र उत्पन्न होनेपर छठे दिन सूतिकागृहमें इनकी पूजा हुआ करती है—यह प्राचीन नियम है। कल्याण चाहनेवाले कुछ व्यक्ति इक्कीसवें दिन इनकी पूजा करते हैं। इनकी मातृका संज्ञा है। ये दयास्वरूपिणी हैं। निरन्तर रक्षा करनेमें तत्पर रहती हैं। जल, थल, आकाश, गृह—जहाँ कहीं भी बच्चोंको सुरक्षित रखना इनका प्रधान उद्देश्य है।

प्रकृतिदेवीका एक प्रधान अंश 'मङ्गलचण्डी' के नामसे विख्यात है। ये मङ्गलचण्डी प्रकृतिदेवीके मुखसे प्रकट हुई हैं। इनकी कृपासे समस्त मङ्गल सुलभ हो जाते हैं। सृष्टिके समय इनका विग्रह मङ्गलमय रहता है। संहारके अवसरपर ये क्रोधमयी बन जाती हैं। इसीलिये इन देवीको पण्डितजन 'मङ्गलचण्डी' कहते हैं। प्रत्येक मङ्गलवारको विश्वभरमें इनकी पूजा होती है। इनके अनुग्रहसे साधक पुरुष पुत्र, पौत्र, धन, सम्पत्ति, यश और कल्याण प्राप्त कर लेते हैं। प्रसन्न होनेपर सम्पूर्ण स्त्रियोंके समस्त मनोरथ पूर्ण कर देना इनका स्वभाव ही है। ये भगवती महेश्वरी कुपित होनेपर क्षणमात्रमें विश्वको नष्ट कर सकती हैं।

देवी 'काली' को प्रकृतिदेवीका प्रधान अंश मानते हैं। इन देवीके नेत्र ऐसे हैं, मानो कमल हों। संग्राममें जब भगवती दुर्गाके सामने प्रबल राक्षस-बन्धु शुम्भ और निशुम्भ डटे थे, उस समय ये काली भगवती दुर्गाके ललाटसे प्रकट हुई थीं। इन्हें दुर्गाका आधा अंश माना जाता है। गुण और तेजमें ये दुर्गाके समान ही हैं। इनका परम पुष्ट विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान है। सम्पूर्ण शक्तियोंमें ये प्रमुख हैं। इनसे बढ़कर बलवान् कोई है ही नहीं। ये परम योगस्वरूपिणी देवी सम्पूर्ण सिद्धि प्रदान करती हैं। श्रीकृष्णके प्रति इनमें अटूट श्रद्धा है। तेज, पराक्रम और गुणमें ये श्रीकृष्णके समान ही हैं। इनका सारा समय भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनमें ही व्यतीत होता है। इन सनातनी देवीके शरीरका रंग भी कृष्ण ही है। ये चाहें तो एक श्वासमें समस्त ब्रह्माण्डको नष्ट कर सकती हैं। अपने मनोरञ्जनके लिये अथवा जगत्‌को शिक्षा देनेके विचारसे ही ये संग्राममें दैत्योंके साथ युद्ध करती हैं। सुपूजित होनेपर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष—सब कुछ देनेमें ये पूर्ण समर्थ हैं। ब्रह्मादि देवता, मुनिगण, मनु प्रभृति और मानवसमाज सब-के-सब इनकी उपासना करते हैं।

भगवती 'वसुन्धरा' भी प्रकृतिदेवीके प्रधान अंशसे प्रकट हैं। अखिल जगत् इन्हींपर ठहरा है। ये सर्व-शस्य-प्रसूतिका (सम्पूर्ण खेतीको उत्पन्न करनेवाली) कही जाती हैं। इन्हें लोग 'रत्नाकरा' और 'रत्नगर्भा' भी कहते हैं। सम्पूर्ण रत्नोंकी खान इन्हींके अंदर विराजमान है। राजा और प्रजा—सभी लोग इनकी पूजा एवं स्तुति करते हैं। सबको जीविका प्रदान करनेके लिये ही इन्होंने यह रूप धारण कर रखा है। ये सम्पूर्ण सम्पत्तिका विधान करती हैं। ये न रहें तो सारा चराचर जगत् कहीं भी ठहर नहीं सकता।

मुनिवर! प्रकृतिदेवीकी जो-जो कलाएँ हैं, उन्हें सुनो और ये जिन-जिनकी पत्नियाँ हैं, वह सब भी मैं तुम्हें बताता हूँ। देवी 'स्वाहा' अग्निकी

पत्नी हैं। सम्पूर्ण जगत्‌में इनकी पूजा होती है। इनके बिना देवता अर्पित की हुई हवि पानेमें असमर्थ हैं। यज्ञकी पत्नीको 'दक्षिणा' कहते हैं। इनका सर्वत्र सम्मान होता है। इनके न रहनेपर विश्वभरके सम्पूर्ण कर्म निष्फल समझे जाते हैं। 'स्वधा' पितरोंकी पत्नी हैं। मुनि, मनु और मानव—सभी इनकी पूजा करते हैं। इनका उच्चारण न करके पितरोंको वस्तु अर्पण की जाय तो वह निष्फल हो जाती है। वायुकी पत्नीका नाम देवी 'स्वस्ति' है। प्रत्येक विश्वमें इनका सत्कार होता है। इनके बिना आदान-प्रदान सभी निष्फल हो जाते हैं। 'पुष्टि' गणेशकी पत्नी हैं। धरातलपर सभी इनको पूजते हैं। इनके बिना पुरुष और स्त्री—सभी क्षीणशक्ति—हीन हो जाते हैं। अनन्तकी पत्नीका नाम 'तुष्टि' है। सब लोग इनकी पूजा एवं वन्दना करते हैं। इनके बिना सम्पूर्ण संसार सम्यक् प्रकारसे कभी संतुष्ट हो ही नहीं सकता। ईशानकी पत्नीका नाम 'सम्पत्ति' है। देवता और मनुष्य—सभी इनका सम्मान करते हैं। इनके न रहनेपर विश्वभरकी जनता दरिद्र कहलाती है। 'धृति' कपिलमुनिकी पत्नी हैं। सब लोग सर्वत्र इनका स्वागत करते हैं। ये न रहें तो जगत्‌में सम्पूर्ण प्राणी धैर्यसे हाथ धो बैठें। 'क्षमा' यमकी पत्नी हैं; ये साध्वी और सुशीला हैं, सभी इनका सम्मान करते हैं; ये न हों तो सब लोग रुष्ट एवं उन्मत्त हो जायँ। सती-साध्वी 'रति' कामदेवकी पत्नी हैं, ये क्रीड़ाकी अधिष्ठात्री देवी हैं। ये न रहें तो जगत्‌के सब प्राणी केलि-कौतुकसे शून्य हो जायँ। सती 'मुक्ति' को सत्यकी भार्या कहा गया है। सबसे आदर पानेवाली ये देवी परम लोकप्रिय हैं। इनके बिना जगत् सर्वथा बन्धुता-शून्य हो जाता है। परम साध्वी 'दया' मोहकी पत्नी हैं। ये पूज्य एवं जगत्प्रिय हैं। इनके अभावमें सम्पूर्ण प्राणी सर्वत्र निष्ठुर माने जाते हैं। पुण्यकी सहधर्मिणी 'प्रतिष्ठा' हैं। ये पुण्यरूपा देवी सदा सुपूजित होती हैं। मुने! इनके बिना सारा संसार जीते हुए ही मृतकके समान समझा जाता है। सुकर्मकी पत्नी 'कीर्ति' हैं, जो धन्या और माननीया हैं। सबके द्वारा इनका सम्मान होता है। इनके अभावमें अखिल जगत् यशोहीन होकर मृतकके समान हो जाता है। 'क्रिया' उद्योगकी पत्नी हैं। इन आदरणीया देवीसे सब लोग सहमत हैं। नारद! इनके बिना सारा संसार उच्छिन्न-सा हो जाता है। अधर्मकी पत्नीको 'मिथ्या' कहते हैं। सभी धूर्त इनका सत्कार करते हैं। सत्ययुगमें ये बिलकुल अदृश्य थीं। त्रेतायुगमें सूक्ष्म रूप धारण करके प्रकट हो गयीं। द्वापरमें अपने आधे शरीरसे शोभा पाने लगीं और कलियुगमें तो इन 'मिथ्या' देवीका शरीर पूरा हृष्ट-पुष्ट हो गया है। सब जगह इनकी पहुँच होनेके कारण ये बड़ी प्रगल्भता (धृष्टता)-के साथ सर्वत्र अपना आधिपत्य जमाये रहती हैं। इनके भाईका नाम 'कपट' है। उसके साथ ये प्रत्येक घरमें चक्कर लगाती हैं। 'शान्ति' और 'लज्जा'—ये सुशीलकी दो आदरणीया पत्नियाँ हैं। नारद! इनके न रहनेपर सारा जगत् उन्मत्तकी भाँति जीवन व्यतीत करने लगता है। ज्ञानकी तीन पत्नियाँ हैं—'बुद्धि', 'मेधा' और 'स्मृति'। ये साथ छोड़ दें तो समस्त संसार मूर्ख और मरेके समान हो जाय।

धर्मकी सहधर्मिणीका नाम 'मूर्ति' है। कमनीय कान्तिवाली ये देवी सबके मनको मुग्ध किये रहती हैं। इनका सहयोग न मिले तो परमात्मा निराकार ही रह जायँ और सम्पूर्ण विश्व भी निराधार हो जाय। इनके स्वरूपको अपनाकर ही साध्वी लक्ष्मी सर्वत्र शोभा पाती हैं। 'श्री' और 'मूर्ति'—दोनों इनके स्वरूप हैं। ये परम मान्य, धन्य एवं सुपूज्य हैं। 'कालाग्नि' रुद्रकी पत्नीका नाम है। इनको 'योगनिद्रा' भी कहते हैं। रात्रिमें इनका सहयोग पाकर सम्पूर्ण प्राणी

आच्छन्न अर्थात् नींदसे व्याप्त हो जाते हैं। कालकी तीन भार्याएँ हैं— 'संध्या', 'रात्रि' और 'दिन'। ये न रहें तो ब्रह्मा भी काल-संख्याका परिगणन नहीं कर सकते। 'क्षुधा' और 'पिपासा'—ये दो लोभकी भार्याएँ हैं। ये परम धन्य, मान्य और आदरकी पात्र हैं। इन्होंने सम्पूर्ण जगत्‌पर अपना प्रभाव जमा रखा है। इन्हींके कारण जगत् क्षोभयुक्त तथा चिन्तातुर होता है। 'प्रभा' और 'दाहिका'—ये तेजकी दो स्त्रियाँ हैं। इनके अभावमें जगत्स्रष्टा ब्रह्मा अपना कार्य-सम्पादन करनेमें असमर्थ हैं। ज्वरकी दो प्यारी भार्याएँ हैं—'जरा' और 'मृत्यु'। ये दोनों कालकी पुत्रियाँ हैं। इनकी सत्ता न रहे तो ब्रह्माके बनाये हुए जगत्‌की व्यवस्था ही बिगड़ जाय। निद्राकी कन्याका नाम 'तन्द्रा' है। यह और 'प्रीति'—ये दो सुखकी प्रियाएँ हैं। ब्रह्मपुत्र नारद! विधिके विधानमें बना रहनेवाला यह सारा जगत् इनसे व्याप्त है। 'श्रद्धा' और 'भक्ति'—ये वैराग्यकी दो परम आदरणीय पत्नियाँ हैं। मुने! इनके कृपा-प्रसादसे अखिल जगत् सदा जीवन्मुक्त हो सकता है। देवमाता 'अदिति', गौओंको उत्पन्न करनेवाली 'सुरभि', दैत्योंकी माता 'दिति', 'कद्रू', 'विनता' और 'दनु'—ये सभी देवियाँ सृष्टिका कार्य सँभालती हैं। इन्हें भगवती प्रकृतिकी 'कला' कहा जाता है। अन्य भी बहुत-सी कलाएँ हैं। कुछ कलाओंका परिचय कराता हूँ, सुनो।

चन्द्रमाकी पत्नी 'रोहिणी' और सूर्यकी 'संज्ञा' हैं। मनुकी भार्याका नाम 'शतरूपा' है। 'शची' इन्द्रकी धर्मपत्नी हैं। बृहस्पतिकी सहधर्मिणी 'तारा' हैं। 'अरुन्धती' वसिष्ठमुनिकी धर्मपत्नी हैं। 'अहल्या' गौतमकी, 'अनसूया' अत्रिकी, 'देवहूति' कर्दममुनिकी और 'प्रसूति' दक्षकी पत्नियाँ हैं। पितरोंकी मानसी कन्या 'मेनका' पार्वतीकी जननी हैं। 'लोपामुद्रा', 'आहूति', कुबेरकी पत्नी, वरुणकी पत्नी, यमकी पत्नी, 'बलिकी भार्या विन्ध्यावली', 'कुन्ती', 'दमयन्ती', 'यशोदा' 'सती देवकी', 'गान्धारी', 'द्रौपदी', 'शैब्या', 'सत्यवान्‌की पत्नी सावित्री', 'राधाकी जननी वृषभानुप्रिया कलावती', 'मन्दोदरी', 'कौसल्या', 'सुभद्रा', 'कैकेयी', 'रेवती', 'सत्यभामा', 'कालिन्दी', 'लक्ष्मणा', 'जाम्बवती', 'नाग्नजिती', 'मित्रविन्दा', 'रुक्मिणी', 'सीता'—जो स्वयं लक्ष्मी कहलाती हैं। 'व्यासको जन्म देनेवाली महासती योजनगन्धा', 'काली', 'बाणपुत्री उषा' उसकी सखी 'चित्रलेखा', 'प्रभावती', 'भानुमती', 'सती मायावती', 'परशुरामजीकी माता रेणुका', 'हलधर बलरामकी जननी रोहिणी' और 'श्रीकृष्णकी परम साध्वी बहिन दुर्गास्वरूपा एकानंशा' आदि भारतवर्षमें भगवती प्रकृतिकी बहुत-सी कलाएँ विख्यात हैं। जो-जो ग्राम-देवियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं।

प्रत्येक लोकमें जितनी स्त्रियाँ हैं, उन सबको प्रकृतिकी कलाके अंशका अंश समझना चाहिये। इसीलिये स्त्रियोंके अपमानसे प्रकृतिका अपमान माना जाता है। जो पति और पुत्रवाली साध्वी ब्राह्मणीको वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे पूजा करता है, उसके द्वारा भगवती प्रकृतिकी पूजा सम्पन्न होती है। जिसने ब्राह्मणकी अष्टवर्षा कुमारीका वस्त्र, अलंकार एवं चन्दन आदिसे अर्चन कर लिया, उसके द्वारा भगवती प्रकृति स्वयं पूजित हो गयीं। उत्तम, मध्यम और अधम—सभी स्त्रियाँ भगवती प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न हैं। जो श्रेष्ठ आचरणवाली तथा पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, इन्हें प्रकृतिदेवीका सत्त्वांश समझना चाहिये। इनको 'उत्तम' माना जाता है। जिन्हें भोग ही प्रिय है, वे राजस अंशसे प्रकट स्त्रियाँ 'मध्यम' श्रेणीकी कही गयी हैं। वे सुख-भोगमें आसक्त होकर सदा अपने कार्यमें लगी रहती हैं। प्रकृतिदेवीके तामस अंशसे उत्पन्न स्त्रियाँ 'अधम' कहलाती हैं। उनके कुलका कुछ पता नहीं रहता। वे मुखसे दुर्वचन बोलनेवाली, कुलटा, धूर्त,

स्वेच्छाचारिणी और कलहप्रिया होती हैं। भूमण्डलकी कुलटाएँ, स्वर्गकी अप्सराएँ तथा व्यभिचारिणी स्त्रियाँ प्रकृतिका तामस अंश कही गयी हैं।

नारद! इस प्रकार प्रकृतिके सम्पूर्ण रूपका वर्णन कर दिया। ये सभी देवियाँ पृथ्वीपर पुण्यक्षेत्र भारतमें पूजित हुई हैं। दुर्गा दुर्गतिका नाश करती हैं। राजा सुरथने सर्वप्रथम इनकी उपासना की है। इसके पश्चात् रावणका वध करनेकी इच्छासे भगवान् श्रीरामने देवीकी पूजा की है। तत्पश्चात् भगवती जगदम्बा तीनों लोकोंमें सुपूजित हो गयीं। पहले दैत्यों और दानवोंका वध करनेके लिये ये दक्षके यहाँ प्रकट हुई थीं। परंतु कुछ कालके पश्चात् पिताके यज्ञमें स्वामीका अपमान देखकर इन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। फिर ये हिमालयकी पत्नीके उदरसे उत्पन्न हुईं। उस समय इन्होंने भगवान् शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया। गणेश और स्कन्द—इनके दो पुत्र हुए। गणेशको स्वयं श्रीकृष्ण माना जाता है। स्कन्द विष्णुकी कलासे उत्पन्न हुए हैं। नारद! इसके बाद राजा मङ्गलने सर्वप्रथम लक्ष्मीकी आराधना की है। तत्पश्चात् तीनों लोकोंमें देवता, मुनि और मानव इनकी पूजा करने लगे। राजा अश्वपतिने सबसे पहले सावित्रीकी उपासना की; फिर प्रधान देवता और श्रेष्ठ मुनि भी इनके उपासक बन गये। सबसे पहले ब्रह्माने सरस्वतीका सम्मान किया। इसके बाद ये देवी तीनों लोकोंमें देवताओं और मुनियोंकी पूजनीया हो गयीं। सर्वप्रथम गोलोकमें रासमण्डलके भीतर परमात्मा श्रीकृष्णने भगवती राधाकी पूजा की है। गोपों, गोपियों, गोपकुमारों और कुमारियोंके साथ सुशोभित होकर श्रीकृष्णने राधाका पूजन किया था। उस समय कार्तिकी पूर्णिमाकी चाँदनी रात थी। गौओंका समुदाय भी इस उत्सवमें सम्मिलित था। फिर भगवान्‌की आज्ञा पाकर ब्रह्मा प्रभृति देवता तथा मुनिगण बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक पुष्प एवं धूप आदि सामग्रियोंसे निरन्तर इनकी पूजा-वन्दना करने लगे। इस भूमण्डलमें पहले राधादेवीकी पूजा राजा सुयज्ञने की है। ये नरेश पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें थे। भगवान् शंकरके उपदेशके अनुसार इन्होंने देवीकी उपासना की थी। फिर भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर त्रिलोकीमें मुनिगण पुष्प एवं धूप आदि उपचारोंसे भक्ति प्रदर्शित करते हुए इनकी पूजामें सदा तत्पर रहने लगे। जो-जो कलाएँ प्रकट हुई हैं, उन सबकी भारतवर्षमें पूजा होती है। मुने! तभीसे प्रत्येक ग्राम और नगरमें ग्रामदेवियोंकी पूजा होती है।

नारद! इस प्रकार आगमोंके अनुसार भगवती प्रकृतिका सम्पूर्ण शुभ चरित्र मैंने तुम्हें सुना दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय १)

परब्रह्म श्रीकृष्ण और श्रीराधासे प्रकट चिन्मय देवी और देवताओंके चरित्र

नारदजीने कहा—प्रभो! देवियोंके सम्पूर्ण चरित्रको मैंने संक्षेपसे सुन लिया। अब सम्यक् प्रकारसे बोध होनेके लिये आप पुनः विस्तारपूर्वक उसका वर्णन कीजिये। सृष्टिके अवसरपर भगवती आद्यादेवी कैसे प्रकट हुईं? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! देवीके पञ्चविध होनेमें क्या कारण है? यह रहस्य बतानेकी कृपा करें। देवीकी त्रिगुणमयी कलासे संसारमें जो-जो देवियाँ प्रकट हुईं, उनका चरित्र मैं विस्तारके साथ सुनना चाहता हूँ। सर्वज्ञ प्रभो! उन देवियोंके प्राकट्यका प्रसङ्ग, पूजा एवं ध्यानकी विधि, स्तोत्र, कवच, ऐश्वर्य तथा मङ्गलमय शौर्य—इन सबका वर्णन कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—नारद! आत्मा, आकाश, काल, दिशा, गोकुल तथा गोलोकधाम—ये

सभी नित्य हैं। कभी इनका अन्त नहीं होता। गोलोकधामका एक भाग जो उससे नीचे है, वैकुण्ठधाम है। यह भी नित्य है। ऐसे ही प्रकृतिको भी नित्य माना जाता है। यह परब्रह्ममें लीन रहनेवाली उनकी सनातनी शक्ति है। जिस प्रकार अग्निमें दाहिका शक्ति, चन्द्रमा एवं कमलमें शोभा तथा सूर्यमें प्रभा सदा वर्तमान रहती है, वैसे ही यह प्रकृति परमात्मामें नित्य विराजमान है। जैसे स्वर्णकार सुवर्णके अभावमें कुण्डल नहीं तैयार कर सकता तथा कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा बनानेमें असमर्थ है, ठीक उसी प्रकार परमात्माको यदि प्रकृतिका सहयोग न मिले तो वे सृष्टि नहीं कर सकते। जिसके सहारे श्रीहरि सदा शक्तिमान् बने रहते हैं, वह प्रकृतिदेवी ही शक्तिस्वरूपा हैं। 'शक्'का अर्थ है 'ऐश्वर्य' तथा 'ति' का अर्थ है 'पराक्रम'; ये दोनों जिसके स्वरूप हैं तथा जो इन दोनों गुणोंको देनेवाली है, वह देवी 'शक्ति' कही गयी है। 'भग' शब्द समृद्धि, बुद्धि, सम्पत्ति तथा यशका वाचक है, उससे सम्पन्न होनेके कारण शक्तिको 'भगवती' कहते हैं; क्योंकि वह सदा भगस्वरूपा हैं। परमात्मा सदा इस भगवती प्रकृतिके साथ विराजमान रहते हैं, अतएव 'भगवान्' कहलाते हैं। ये स्वतन्त्र प्रभु साकार और निराकार भी हैं। उनका निराकार रूप तेजःपुञ्जमय है। योगीजन सदा उसीका ध्यान करते और उसे परब्रह्म परमात्मा एवं ईश्वरकी संज्ञा देते हैं। उनका कहना है कि परमात्मा अदृश्य होकर भी सबका द्रष्टा है। वह सर्वज्ञ, सबका कारण, सब कुछ देनेवाला, समस्त रूपोंका अन्त करनेवाला, रूपरहित तथा सबका पोषक है। परंतु जो भगवान्‌के सूक्ष्मदर्शी भक्त वैष्णवजन हैं, वे ऐसा नहीं मानते हैं। वे पूछते हैं—यदि कोई तेजस्वी पुरुष—साकार पुरुषोत्तम नहीं है तो यह तेज किसका है? योगी जिस तेजोमण्डलका ध्यान करते हैं, उसके भीतर अन्तर्यामी तेजस्वी परमात्मा परमपुरुष विद्यमान हैं। वे स्वेच्छामयरूपधारी, सर्वस्वरूप तथा समस्त कारणोंके भी कारण हैं। वे प्रभु जिस रूपको धारण करते हैं, वह अत्यन्त सुन्दर, रमणीय तथा परम मनोहर है। इन भगवान्‌की किशोर अवस्था है, ये शान्त-स्वभाव हैं। इनके सभी अङ्ग परम सुन्दर हैं। इनसे बढ़कर जगत्‌में दूसरा कोई नहीं है। इनका श्याम विग्रह नवीन मेघकी कान्तिका परम धाम है। इनके विशाल नेत्र शरत्कालके मध्याह्नमें खिले हुए कमलोंकी शोभाको छीन रहे हैं। मोतियोंकी शोभाको तुच्छ करनेवाली इनकी सुन्दर दन्तपंक्ति है। मुकुटमें मोरकी पाँख सुशोभित है। मालतीकी मालासे ये अनुपम शोभा पा रहे हैं। इनकी सुन्दर नासिका है। मुखपर मुस्कान छायी है। ये परम मनोहर प्रभु भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल रहते हैं। प्रज्वलित अग्निके समान विशुद्ध पीताम्बरसे इनका विग्रह परम मनोहर हो गया है। इनकी दो भुजाएँ हैं। हाथमें बाँसुरी सुशोभित है। ये रत्नमय भूषणोंसे भूषित, सबके आश्रय, सबके स्वामी, सम्पूर्ण शक्तियोंसे युक्त एवं सर्वव्यापी पूर्ण पुरुष हैं। समस्त ऐश्वर्य प्रदान करना इनका स्वभाव ही है। ये परम स्वतन्त्र एवं सम्पूर्ण मङ्गलके भण्डार हैं। इन्हें 'सिद्ध', 'सिद्धेश', 'सिद्धिकारक' तथा 'परिपूर्णतम ब्रह्म' कहा जाता है। इन देवाधिदेव सनातन प्रभुका वैष्णव पुरुष निरन्तर ध्यान करते हैं। इनकी कृपासे जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय सब नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्माकी आयु इनके एक निमेषकी तुलनामें है। वे ही ये आत्मा परब्रह्म श्रीकृष्ण कहलाते हैं।

'कृष्' का अर्थ है भगवान्‌की भक्ति और 'न' का अर्थ है, उनका 'दास्य'। अतः जो अपनी भक्ति और दास्यभाव देनेवाले हैं, वे 'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृष्' सर्वार्थवाचक है, 'न' से बीज अर्थकी उपलब्धि होती है। अतः सर्वबीजस्वरूप

परब्रह्म परमात्मा 'कृष्ण' कहे गये हैं।

नारद! अतीत कालकी बात है, असंख्य ब्रह्माओंका पतन होनेके पश्चात् भी जिनके गुणोंका नाश नहीं होता है तथा गुणोंमें जिनकी समानता करनेवाला दूसरा नहीं है; वे भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टिके आदिमें अकेले ही थे। उस समय उनके मनमें सृष्टिविषयक संकल्पका उदय हुआ। अपने अंशभूत कालसे प्रेरित होकर ही वे प्रभु सृष्टिकर्मके लिये उन्मुख हुए थे। उनका स्वरूप स्वेच्छामय है। वे अपनी इच्छासे ही दो रूपोंमें प्रकट हो गये। उनका वामांश स्त्रीरूपमें आविर्भूत हुआ और दाहिना भाग पुरुषरूपमें। वे सनातन पुरुष उस दिव्यस्वरूपिणी स्त्रीको देखने लगे। उसके समस्त अङ्ग बड़े ही सुन्दर थे। मनोहर चम्पाके समान उसकी कान्ति थी। उस असीम सुन्दरी देवीने दिव्य स्वरूप धारण कर रखा था। मुसकराती हुई वह बंकिम भङ्गिमाओंसे प्रभुकी ओर ताक रही थी। उसने विशुद्ध वस्त्र पहन रखे थे। रत्नमय दिव्य आभूषण उसके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह अपने चकोर-चक्षुओंके द्वारा श्रीकृष्णके श्रीमुखचन्द्रका निरन्तर हर्षपूर्वक पान कर रही थी। श्रीकृष्णका मुखमण्डल इतना सुन्दर था कि उसके सामने करोड़ों चन्द्रमा भी नगण्य थे। उस देवीके ललाटके ऊपरी भागमें कस्तूरीकी बिंदी थी। नीचे चन्दनकी छोटी-छोटी बिंदियाँ थीं। साथ ही मध्य ललाटमें सिन्दूरकी बिन्दी भी शोभा पा रही थी। प्रियतमके प्रति अनुरक्त चित्तवाली उस देवीके केश घुँघराले थे। मालतीके पुष्पोंका सुन्दर हार उसे सुशोभित कर रहा था। करोड़ों चन्द्रमाओंकी प्रभासे सुप्रकाशित परिपूर्ण शोभासे इस देवीका श्रीविग्रह सम्पन्न था। यह अपनी चालसे राजहंस एवं गजराजके गर्वको नष्ट कर रही थी। श्रीकृष्ण परम रसिक एवं रासके स्वामी हैं। उस देवीको देखकर रासके उल्लासमें उल्लसित हो वे उसके साथ रासमण्डलमें पधारे। रास आरम्भ हो गया। मानो स्वयं शृङ्गार ही मूर्तिमान् होकर नाना प्रकारकी शृङ्गारोचित चेष्टाओंके साथ रसमयी क्रीड़ा कर रहा हो। एक ब्रह्माकी सम्पूर्ण आयुपर्यन्त यह रास चलता रहा। तत्पश्चात् जगत्पिता श्रीकृष्णको कुछ श्रम आ गया। उन नित्यानन्दमयने शुभ वेलामें देवीके भीतर अपने तेजका आधान किया।

उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नारद! रासक्रीडाके अन्तमें श्रीकृष्णके असह्य तेजसे श्रान्त हो जानेके कारण उस देवीके शरीरसे दिव्य प्रस्वेद बह चला और जोर-जोरसे साँस चलने लगी। उस समय जो श्रमजल था, वह समस्त विश्वगोलक बन गया तथा वह निःश्वास वायुरूपमें परिणत हो गया, जिसके आश्रयसे सारा जगत् वर्तमान है। संसारमें जितने सजीव प्राणी हैं, उन सबके भीतर इस वायुका निवास है। फिर वायु मूर्तिमान् हो गया। उसके वामाङ्गसे प्राणोंके समान प्यारी स्त्री प्रकट हो गयी। उससे पाँच पुत्र हुए, जो प्राणियोंके शरीरमें रहकर पञ्चप्राण कहलाते हैं। उनके नाम हैं—प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। यों पाँच वायु और उनके पुत्र पाँच प्राण हुए। पसीनेके रूपमें जो जल बहा था, वही जलका अधिष्ठाता देवता वरुण हो गया। वरुणके बायें अङ्गसे उनकी पत्नी 'वरुणानी' प्रकट हुई।

उस समय श्रीकृष्णकी वह चिन्मयी शक्ति उनकी कृपासे गर्भस्थितिका अनुभव करने लगी। सौ मन्वन्तरतक ब्रह्मतेजसे उसका शरीर देदीप्यमान बना रहा। श्रीकृष्णके प्राणोंपर उस देवीका अधिकार था। श्रीकृष्ण प्राणोंसे भी बढ़कर उससे प्यार करते

थे। वह सदा उनके साथ रहती थी। श्रीकृष्णका वक्षःस्थल ही उसका स्थान था। सौ मन्वन्तरका समय व्यतीत हो जानेपर उसने एक सुवर्णके समान प्रकाशमान बालक उत्पन्न किया। उसमें विश्वको धारण करनेकी समुचित योग्यता थी, किंतु उसे देखकर उस देवीका हृदय दुःखसे संतप्त हो उठा। उसने उस बालकको ब्रह्माण्ड-गोलकके अथाह जलमें छोड़ दिया। इसने बच्चेको त्याग दिया—यह देखकर देवेश्वर श्रीकृष्णने तुरंत उस देवीसे कहा—'अरी कोपशीले! तूने यह जो बच्चेका त्याग कर दिया है, यह बड़ा घृणित कर्म है। इसके फलस्वरूप तू आजसे संतानहीना हो

जा। यह बिलकुल निश्चित है। यही नहीं, किंतु तेरे अंशसे जो-जो दिव्य स्त्रियाँ उत्पन्न होंगी, वे सभी तेरे समान ही नूतन तारुण्यसे सम्पन्न रहनेपर भी संतानका मुख नहीं देख सकेंगी।' इतनेमें उस देवीकी जीभके अग्रभागसे सहसा एक परम मनोहर कन्या प्रकट हो गयी। उसके शरीरका वर्ण शुक्ल था। वह श्वेतवर्णका ही वस्त्र धारण किये हुए थी। उसके दोनों हाथ वीणा और पुस्तकसे सुशोभित थे। सम्पूर्ण शास्त्रोंकी वह अधिष्ठात्री देवी रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थी।

तदनन्तर कुछ समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् वह मूल प्रकृतिदेवी दो रूपोंमें प्रकट हुई। आधे बायें अङ्गसे 'कमला' का प्रादुर्भाव हुआ और दाहिनेसे 'राधिका' का। उसी समय श्रीकृष्ण भी दो रूप हो गये। आधे दाहिने अङ्गसे स्वयं 'द्विभुज' विराजमान रहे और बायें अङ्गसे 'चार भुजावाले विष्णु' का आविर्भाव हो गया। तब श्रीकृष्णने सरस्वतीसे कहा—'देवी! तुम इन विष्णुकी प्रिया बन जाओ। मानिनी राधा यहीं रहेंगी। तुम्हारा परम कल्याण होगा। इसी प्रकार संतुष्ट होकर श्रीकृष्णने लक्ष्मीको नारायणकी सेवामें उपस्थित होनेकी आज्ञा प्रदान की। फिर तो जगत्‌की व्यवस्थामें तत्पर रहनेवाले श्रीविष्णु उन सरस्वती और लक्ष्मी देवियोंके साथ वैकुण्ठ पधारे। मूल प्रकृतिरूपा राधाके अंशसे प्रकट होनेके कारण वे देवियाँ भी संतान प्रसव करनेमें असमर्थ रहीं। फिर नारायणके अङ्गसे चार भुजावाले अनेक पार्षद उत्पन्न हुए। सभी पार्षद गुण, तेज, रूप और अवस्थामें श्रीहरिके समान थे। लक्ष्मीके अङ्गसे उन्हीं-जैसे लक्षणोंसे सम्पन्न करोड़ों दासियाँ उत्पन्न हो गयीं।

मुनिवर नारद! इसके बाद गोलोकेश्वर भगवान् श्रीकृष्णके रोमकूपसे असंख्य गोप प्रकट

हो गये। अवस्था, तेज, रूप, गुण, बल और पराक्रममें वे सभी श्रीकृष्णके समान ही प्रतीत होते थे। प्राणके समान प्रेमभाजन उन गोपोंको परम प्रभु श्रीकृष्णने अपना पार्षद बना लिया। ऐसे

ही श्रीराधाके रोमकूपोंसे बहुत-सी गोपकन्याएँ प्रकट हुईं। वे सभी राधाके समान ही जान पड़ती थीं।

उन मधुरभाषिणी कन्याओंको राधाने अपनी दासी बना लिया। वे रत्नमय भूषणोंसे विभूषित थीं। उनका नया तारुण्य सदा बना रहता था। परम पुरुषके शापसे वे भी सदाके लिये सन्तानहीना हो गयी थीं।

विप्र! इतनेमें श्रीकृष्णके शरीरसे देवी दुर्गाका सहसा आविर्भाव हुआ। ये दुर्गा सनातनी एवं भगवान् विष्णुकी माया हैं। इन्हें नारायणी, ईशानी और सर्वशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है। ये परमात्मा श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सम्पूर्ण देवियाँ इन्हींसे प्रकट होती हैं। अतएव इन्हें देवियोंकी बीजस्वरूपा मूलप्रकृति एवं ईश्वरी कहते हैं। ये परिपूर्णतमा देवी तेजःस्वरूपा तथा त्रिगुणात्मिका हैं। तपाये हुए सुवर्णके समान इनका वर्ण है। प्रभा ऐसी है, मानो करोड़ों सूर्य चमक रहे हों। इनके मुखपर मन्द-मन्द मुस्कराहट छायी रहती है। ये हजारों भुजाओंसे सुशोभित हैं। अनेक प्रकारके अस्त्र और शस्त्रोंको हाथमें लिये रहती हैं। इनके तीन नेत्र हैं। ये विशुद्ध वस्त्र धारण किये हुई हैं। रत्ननिर्मित भूषण इनकी शोभा बढ़ा रहे हैं। सम्पूर्ण स्त्रियाँ इनके अंशकी कलासे उत्पन्न हैं। इनकी माया जगत्‌के समस्त प्राणियोंको मोहित करनेमें समर्थ है। सकामभावसे उपासना करनेवाले गृहस्थोंको ये सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्रदान करती हैं। इनकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णमें भक्ति उत्पन्न होती है। विष्णुके उपासकोंके लिये ये भगवती वैष्णवी (लक्ष्मी) हैं। मुमुक्षुजनोंको मुक्ति प्रदान करना और सुख चाहनेवालोंको सुखी बनाना इनका स्वभाव है। स्वर्गमें 'स्वर्गलक्ष्मी' और गृहस्थोंके घर 'गृहलक्ष्मी' के रूपमें ये विराजती हैं। तपस्वियोंके पास तपस्यारूपसे, राजाओंके यहाँ श्रीरूपसे, अग्निमें दाहिकारूपसे, सूर्यमें प्रभारूपसे तथा चन्द्रमा एवं कमलमें शोभारूपसे इन्हींकी शक्ति शोभा पा रही है। सर्वशक्तिस्वरूपा ये देवी परमात्मा श्रीकृष्णमें विराजमान रहती हैं। इनका सहयोग पाकर आत्मामें कुछ करनेकी योग्यता प्राप्त होती है। इन्हींसे जगत् शक्तिमान् माना जाता है। इनके बिना प्राणी जीते हुए भी मृतकके समान हैं।

नारद! ये सनातनी देवी संसाररूपी वृक्षके लिये बीजस्वरूपा हैं। स्थिति, बुद्धि, फल, क्षुधा, पिपासा, दया, निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, मति, शान्ति, लज्जा, तुष्टि, पुष्टि, भ्रान्ति और कान्ति आदि सभी इन दुर्गाके ही रूप हैं।

ये देवी सर्वेश श्रीकृष्णकी स्तुति करके

उनके सामने विराजमान हुईं। राधिकेश्वर श्रीकृष्णने इन्हें एक रत्नमय सिंहासन प्रदान किया। महामुने! इतनेमें चतुर्मुख ब्रह्मा अपनी शक्तिके साथ वहाँ पधारे। विष्णुके नाभिकमलसे निकलकर उनका पधारना हुआ था। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ परम तपस्वी श्रीमान् ब्रह्मा अपने हाथमें कमण्डलु लिये हुए थे। ब्रह्मतेजसे उनका शरीर देदीप्यमान हो रहा था। अपने चारों मुखोंसे वे भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। उस समय सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान प्रभावशाली उनकी परम सुन्दरी शक्ति अग्निशुद्ध वस्त्र एवं रत्ननिर्मित भूषणोंसे अलंकृत होकर सर्वकारण श्रीकृष्णकी स्तुति करके पतिदेवके साथ श्रीकृष्णके सामने रत्नमय सिंहासनपर प्रसन्नतापूर्वक बैठ गयीं।

इसी समय भगवान् श्रीकृष्णके दो रूप हो गये। उनका आधा बाँया अङ्ग महादेवके रूपमें परिणत हो गया। दक्षिण अङ्गसे गोपीपति श्रीकृष्ण रह गये। महादेवकी कान्ति ऐसी थी, मानो शुद्ध स्फटिकमणि हो। एक अरब सूर्यके समान वे चमक रहे थे। भुजाएँ पट्टिश और त्रिशूलसे सुशोभित थीं। वे बाघम्बर पहने हुए थे। तपाये हुए सुवर्णके सदृश उनके वर्णकी आभा थी। सिरपर जटाओंका भार छबि बढ़ा रहा था। वे शरीरमें भस्म लगाये हुए थे। मस्तकपर चन्द्रमाकी शोभा हो रही थी। मुखमण्डल मुसकानसे भरा था। नीले कण्ठसे शोभा पानेवाले वे शंकर दिगम्बरवेषमें थे। सर्पोंने भूषण बनकर उन्हें भूषित कर रखा था। उनके दाहिने हाथमें रत्नोंकी बनी हुई सुसंस्कृत माला सुशोभित थी। वे अपने पाँच मुखोंसे ब्रह्मज्योतिःस्वरूप सनातन श्रीकृष्णके नामका जप कर रहे थे। श्रीकृष्ण सत्यस्वरूप, परमात्मा एवं ईश्वर हैं। वे कारणोंके कारण, सम्पूर्ण मङ्गलोंके मङ्गल, जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भयको हरनेवाले और मृत्युके भी मृत्यु हैं। मृत्युकी मृत्यु श्रीकृष्णकी स्तुति करके वे 'मृत्युञ्जय' नामसे विख्यात हो गये। फिर महाभाग शंकर सामने रखे हुए रत्नमय सुरम्य सिंहासनपर विराज गये। (अध्याय २)

परिपूर्णतम श्रीकृष्ण और चिन्मयी श्रीराधासे प्रकट विराट्स्वरूप बालकका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर वह बालक जो केवल अण्डाकार था, ब्रह्माकी आयुपर्यन्त ब्रह्माण्डगोलकके जलमें रहा। फिर समय पूरा हो जानेपर वह सहसा दो रूपोंमें प्रकट हो गया। एक अण्डाकार ही रहा और एक शिशुके रूपमें परिणत हो गया। उस शिशुकी ऐसी कान्ति थी, मानो सौ करोड़ सूर्य एक साथ प्रकाशित हो रहे हों। माताका दूध न मिलनेके कारण भूखसे पीड़ित होकर वह कुछ समयतक रोता रहा। माता-पिता उसे त्याग चुके थे। वह निराश्रय होकर जलके अंदर समय व्यतीत कर रहा था। जो असंख्य ब्रह्माण्डका स्वामी है, उसीने अनाथकी भाँति, आश्रय पानेकी इच्छासे ऊपरकी ओर दृष्टि दौड़ायी। उसकी आकृति स्थूलसे भी स्थूल थी। अतएव उसका नाम 'महाविराट्' पड़ा। जैसे परमाणु अत्यन्त सूक्ष्मतम होता है, वैसे ही वह अत्यन्त स्थूलतम था। वह बालक तेजमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंशकी बराबरी कर

रहा था। परमात्मस्वरूपा प्रकृति-संज्ञक राधासे उत्पन्न यह महान् विराट् बालक सम्पूर्ण विश्वका आधार है। यही 'महाविष्णु' कहलाता है। इसके प्रत्येक रोमकूपमें जितने विश्व हैं, उन सबकी संख्याका पता लगाना श्रीकृष्णके लिये भी असम्भव है। वे भी उन्हें स्पष्ट बता नहीं सकते। जैसे जगत्‌के रज:कणको कभी नहीं गिना जा सकता, उसी प्रकार इस शिशुके शरीरमें कितने ब्रह्मा और विष्णु आदि हैं—यह नहीं बताया जा सकता। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव विद्यमान हैं। पातालसे लेकर ब्रह्मलोकतक अनगिनत ब्रह्माण्ड बताये गये हैं। अत: उनकी संख्या कैसे निश्चित की जा सकती है? ऊपर वैकुण्ठलोक है। यह ब्रह्माण्डसे बाहर है। इसके ऊपर पचास करोड़ योजनके विस्तारमें गोलोकधाम है। श्रीकृष्णके समान ही यह लोक भी नित्य और चिन्मय सत्यस्वरूप है। पृथ्वी सात द्वीपोंसे सुशोभित है। सात समुद्र इसकी शोभा बढ़ा रहे हैं। उनचास छोटे-छोटे द्वीप हैं। पर्वतों और वनोंकी तो कोई संख्या ही नहीं है। सबसे ऊपर सात स्वर्गलोक हैं। ब्रह्मलोक भी इन्हींमें सम्मिलित है। नीचे सात पाताल हैं। यही ब्रह्माण्डका परिचय है। पृथ्वीसे ऊपर भूर्लोक, उससे परे भुवर्लोक, भुवर्लोकसे परे स्वर्लोक, उससे परे जनलोक, जनलोकसे परे तपोलोक, तपोलोकसे परे सत्यलोक और सत्यलोकसे परे ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोक ऐसा प्रकाशमान है, मानो तपाया हुआ सोना चमक रहा हो। ये सभी कृत्रिम हैं। कुछ तो ब्रह्माण्डके भीतर हैं और कुछ बाहर। नारद! ब्रह्माण्डके नष्ट होनेपर ये सभी नष्ट हो जाते हैं; क्योंकि पानीके बुलबुलेकी भाँति यह सारा जगत् अनित्य है। गोलोक और वैकुण्ठलोकको नित्य, अविनाशी एवं अकृत्रिम कहा गया है। उस विराट्मय बालकके प्रत्येक रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्ड निश्चितरूपसे विराजमान हैं। एक-एक ब्रह्माण्डमें अलग-अलग ब्रह्मा, विष्णु और शिव हैं। बेटा नारद! देवताओंकी संख्या तीन करोड़ है। ये सर्वत्र व्याप्त हैं। दिशाओंके स्वामी, दिशाओंकी रक्षा करनेवाले तथा ग्रह एवं नक्षत्र—सभी इसमें सम्मिलित हैं। भूमण्डलपर चार प्रकारके वर्ण हैं। नीचे नागलोक है। चर और अचर सभी प्रकारके प्राणी उसपर निवास करते हैं।

नारद! तदनन्तर वह विराट्स्वरूप बालक बार-बार ऊपर दृष्टि दौड़ाने लगा। वह गोलाकार पिण्ड बिलकुल खाली था। दूसरी कोई भी वस्तु वहाँ नहीं थी। उसके मनमें चिन्ता उत्पन्न हो गयी। भूखसे आतुर होकर वह बालक बार-बार रुदन करने लगा। फिर जब उसे ज्ञान हुआ, तब उसने परम पुरुष श्रीकृष्णका ध्यान किया। तब वहाँ उसे सनातन ब्रह्मज्योतिके दर्शन प्राप्त हुए। वे ज्योतिर्मय श्रीकृष्ण नवीन मेघके समान श्याम थे। उनके दो भुजाएँ थीं। उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। उनके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी। मुखमण्डल मुस्कानसे भरा था। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे कुछ व्यस्त-से जान पड़ते थे। पिता परमेश्वरको देखकर वह बालक संतुष्ट होकर हँस पड़ा। फिर तो वरके अधिदेवता श्रीकृष्णने समयानुसार उसे वर दिया। कहा—'बेटा! तुम मेरे समान ज्ञानी बन जाओ। भूख और प्यास तुम्हारे पास न आ सके। प्रलयपर्यन्त यह असंख्य ब्रह्माण्ड तुमपर अवलम्बित रहे। तुम निष्कामी, निर्भय और सबके लिये वरदाता बन जाओ। जरा, मृत्यु, रोग और शोक आदि तुम्हें कष्ट न पहुँचा सकें।' यों कहकर भगवान् श्रीकृष्णने उस बालकके कानमें तीन बार षडक्षर महामन्त्रका उच्चारण किया। यह उत्तम मन्त्र वेदका प्रधान अङ्ग है। आदिमें 'ॐ' का स्थान है। बीचमें चतुर्थी विभक्तिके साथ 'कृष्ण' ये दो अक्षर हैं। अन्तमें अग्निकी पत्नी 'स्वाहा' सम्मिलित हो जाती है। इस प्रकार 'ॐ कृष्णाय

स्वाहा' यह मन्त्रका स्वरूप है। इस मन्त्रका जप करनेसे सम्पूर्ण विघ्न टल जाते हैं।

ब्रह्मपुत्र नारद! मन्त्रोपदेशके पश्चात् परम प्रभु श्रीकृष्णने उस बालकके भोजनकी जो व्यवस्था की, वह तुम्हें बताता हूँ, सुनो! प्रत्येक विश्वमें वैष्णवजन जो कुछ भी नैवेद्य भगवान्‌को अर्पण करते हैं, उसमेंसे सोलहवाँ भाग विष्णुको मिलता है और पंद्रह भाग इस बालकके लिये निश्चित है; क्योंकि यह बालक स्वयं परिपूर्णतम श्रीकृष्णका विराट्-रूप है।

विप्रवर! सर्वव्यापी श्रीकृष्णने उस उत्तम मन्त्रका ज्ञान प्राप्त करानेके पश्चात् पुनः उस विराट्‌मय बालकसे कहा—'पुत्र! तुम्हें इसके सिवा दूसरा कौन-सा वर अभीष्ट है, वह भी मुझे बताओ। मैं देनेके लिये सहर्ष तैयार हूँ।' उस समय विराट् व्यापक प्रभु ही बालकरूपसे विराजमान था। भगवान् श्रीकृष्णकी बात सुनकर उसने उनसे समयोचित बात कही।

बालकने कहा—आपके चरणकमलोंमें मेरी अविचल भक्ति हो—मैं यही वर चाहता हूँ। मेरी आयु चाहे एक क्षणकी हो अथवा दीर्घकालकी; परंतु मैं जबतक जीऊँ, तबतक आपमें मेरी अटल श्रद्धा बनी रहे। इस लोकमें जो पुरुष आपका भक्त है, उसे सदा जीवन्मुक्त समझना चाहिये। जो आपकी भक्तिसे विमुख है, वह मूर्ख जीते हुए भी मरेके समान है। जिस अज्ञानीजनके हृदयमें आपकी भक्ति नहीं है, उसे जप, तप, यज्ञ, पूजन, व्रत, उपवास, पुण्य अथवा तीर्थ-सेवनसे क्या लाभ? उसका जीवन ही निष्फल है। प्रभो! जबतक शरीरमें आत्मा रहता है, तबतक शक्तियाँ साथ रहती हैं। आत्माके चले जानेके पश्चात् सम्पूर्ण स्वतन्त्र शक्तियोंकी भी सत्ता वहाँ नहीं रह जाती। महाभाग! प्रकृतिसे परे वे सर्वात्मा आप ही हैं। आप स्वेच्छामय सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप परमात्मा सबके आदिपुरुष हैं।

नारद! इस प्रकार अपने हृदयका उद्गार प्रकट करके वह बालक चुप हो गया। तब भगवान् श्रीकृष्ण कानोंको सुहावनी लगनेवाली मधुर वाणीमें उसका उत्तर देने लगे।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! मेरी ही भाँति तुम भी बहुत समयतक अत्यन्त स्थिर होकर विराजमान रहो। असंख्य ब्रह्माओंके जीवन समाप्त हो जानेपर भी तुम्हारा नाश नहीं होगा। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें अपने क्षुद्र अंशसे तुम विराजमान रहोगे। तुम्हारे नाभिकमलसे विश्वस्रष्टा ब्रह्मा प्रकट होंगे। ब्रह्माके ललाटसे ग्यारह रुद्रोंका आविर्भाव होगा। शिवके अंशसे वे रुद्र सृष्टिके संहारकी व्यवस्था करेंगे। उन ग्यारह रुद्रोंमें 'कालाग्नि' नामसे जो प्रसिद्ध हैं, वे ही रुद्र विश्वके संहारक होंगे। विष्णु विश्वकी रक्षा करनेके लिये तुम्हारे क्षुद्र अंशसे प्रकट होंगे। मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारे हृदयमें सदा मेरी भक्ति बनी रहेगी। तुम मेरे परम सुन्दर स्वरूपको ध्यानके द्वारा निरन्तर देख सकोगे, यह निश्चित है। तुम्हारी कमनीया माता

मेरे वक्षःस्थलपर विराजमान रहेगी। उसकी भी झाँकी तुम प्राप्त कर सकोगे। वत्स! अब मैं अपने गोलोकमें जाता हूँ। तुम यहीं ठहरो।

इस प्रकार उस बालकसे कहकर भगवान् श्रीकृष्ण अन्तर्धान हो गये और तत्काल वहाँ पहुँचकर उन्होंने सृष्टिकी व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माको तथा संहारकार्यमें कुशल रुद्रको आज्ञा दी।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—वत्स! सृष्टि रचनेके लिये जाओ। विधे! मेरी बात सुनो, महाविराट्‌के एक रोमकूपमें स्थित क्षुद्र विराट् पुरुषके नाभिकमलसे प्रकट होओ। फिर रुद्रको संकेत करके कहा—'वत्स महादेव! जाओ। महाभाग! अपने अंशसे ब्रह्माके ललाटसे प्रकट हो जाओ और स्वयं भी दीर्घकालतक तपस्या करो।'

नारद! जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण यों कहकर चुप हो गये। तब ब्रह्मा और कल्याणकारी शिव—दोनों महानुभाव उन्हें प्रणाम करके विदा हो गये। महाविराट् पुरुषके रोमकूपमें जो ब्रह्माण्ड-गोलकका जल है, उसमें वे महाविराट् पुरुष अपने अंशसे क्षुद्र विराट् पुरुष हो गये, जो इस समय भी विद्यमान हैं। इनकी सदा युवा अवस्था रहती है। इनका श्याम रंगका विग्रह है। ये पीताम्बर पहनते हैं। जलरूपी शय्यापर सोये रहते हैं। इनका मुखमण्डल मुस्कानसे सुशोभित है। इन प्रसन्नमुख विश्वव्यापी प्रभुको 'जनार्दन' कहा जाता है। इन्हींके नाभिकमलसे ब्रह्मा प्रकट हुए और उसके अन्तिम छोरका पता लगानेके लिये वे उस कमलदण्डमें एक लाख युगोंतक चक्कर लगाते रहे। नारद! इतना प्रयास करनेपर भी वे पद्मजन्मा ब्रह्मा पद्मनाभकी नाभिसे उत्पन्न हुए कमलदण्डके अन्ततक जानेमें सफल न हो सके। तब उनके मनमें चिन्ता घिर आयी। वे पुनः अपने स्थानपर आकर भगवान् श्रीकृष्णके चरण-कमलका ध्यान करने लगे। उस स्थितिमें उन्हें दिव्य दृष्टिके द्वारा क्षुद्र विराट् पुरुषके दर्शन प्राप्त हुए। ब्रह्माण्ड-गोलकके भीतर जलमय शय्यापर वे पुरुष शयन कर रहे थे। फिर जिनके रोमकूपमें वह ब्रह्माण्ड था, उन महाविराट् पुरुषके तथा उनके भी परम प्रभु भगवान् श्रीकृष्णके भी दर्शन हुए। साथ ही गोपों और गोपियोंसे सुशोभित गोलोकधामका भी दर्शन हुआ। फिर तो उन्होंने श्रीकृष्णकी स्तुति की और उनसे वरदान पाकर सृष्टिका कार्य आरम्भ कर दिया। सर्वप्रथम ब्रह्मासे सनकादि चार मानसपुत्र हुए। फिर उनके ललाटसे शिवके अंशभूत ग्यारह रुद्र प्रकट हुए। फिर क्षुद्र विराट् पुरुषके वामभागसे जगत्‌की रक्षाके व्यवस्थापक चार भुजाधारी भगवान् श्रीविष्णु प्रकट हुए। वे श्वेतद्वीपमें निवास करने लगे। क्षुद्र विराट् पुरुषके नाभिकमलमें प्रकट हुए ब्रह्माने विश्वकी रचना की। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल—त्रिलोकीके सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंका उन्होंने सृजन किया।

नारद! इस प्रकार महाविराट् पुरुषके सम्पूर्ण रोमकूपोंमें एक-एक करके अनेक ब्रह्माण्ड हुए। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें एक क्षुद्र विराट् पुरुष, ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदि भी हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके मङ्गलमय चरित्रका वर्णन कर दिया। यह सारभूत प्रसंग सुख एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्रह्मन्! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ३)

सरस्वतीकी पूजाका विधान तथा कवच

नारदजीने कहा—भगवन्! आपके कृपा-प्रसादसे यह अमृतमयी सम्पूर्ण कथा मुझे सुननेको मिली है। अब आप इन प्रकृतिसंज्ञक देवियोंके पूजनका प्रसंग विस्तारके साथ बतानेकी कृपा कीजिये। किस पुरुषने किन देवीकी कैसे आराधना की है? मर्त्यलोकमें किस प्रकार उनकी पूजाका प्रचार हुआ? मुने! किस मन्त्रसे किनकी पूजा तथा किस स्तोत्रसे किनकी स्तुति की गयी है? किन देवियोंने किनको कौन-कौन-से वर दिये हैं? मुझे देवियोंके कवच, स्तोत्र, ध्यान, प्रभाव और पावन चरित्रके साथ-साथ उपर्युक्त सारी बातें बतानेकी कृपा कीजिये।

नारायण ऋषि बोले—नारद! गणेशजननी दुर्गा, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती और सावित्री—ये पाँच देवियाँ सृष्टिकी पञ्चविध प्रकृति कही जाती हैं। इनकी पूजा और अद्भुत प्रभाव प्रसिद्ध है। इनका अमृतोपम चरित्र समस्त मङ्गलोंकी प्राप्तिका कारण है। ब्रह्मन्! जो प्रकृतिकी अंशभूता और कलास्वरूपा देवियाँ हैं, उनके पुण्य चरित्र तुम्हें बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। इन देवियोंके नाम हैं—वाणी, वसुन्धरा, गङ्गा, षष्ठी, मङ्गलचण्डिका, तुलसी, मनसा, निद्रा, स्वधा, स्वाहा और दक्षिणा। ये तेज, रूप और गुणमें मेरी समानता करनेवाली हैं। इनके चरित्र पुण्यदायक तथा श्रवणसुखद हैं; जीवोंके कर्मोंका सुखद परिणाम प्रकट करनेवाले हैं। दुर्गा और राधाका चरित्र बहुत विस्तृत है। संक्षेपसे उसे पीछे कहूँगा। इस समय क्रमशः सुनो, मुनिवर! सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने सरस्वतीकी पूजा की है, जिनके प्रसादसे मूर्ख भी पण्डित बन जाता है। इन कामस्वरूपिणी देवीने श्रीकृष्णको पानेकी इच्छा प्रकट की थी। ये सरस्वती सबकी माता कही जाती हैं। सर्वज्ञानी भगवान् श्रीकृष्णने इनका अभिप्राय समझकर सत्य, हितकर तथा परिणाममें सुख देनेवाले वचन कहे।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—साध्वी! तुम नारायणकी सेवा स्वीकार करो। ये मेरे ही अंश हैं। उनकी चार भुजाएँ हैं। उन परम सुन्दर तरुण पुरुषमें मेरे ही समान सभी सद्गुण वर्तमान हैं। करोड़ों कामदेवोंके समान उनकी सुन्दरता है। ये कामिनियोंकी कामना पूर्ण करनेमें समर्थ हैं। मैं सबका स्वामी हूँ। सभी मेरा अनुशासन मानते हैं। किंतु राधाकी इच्छाका प्रतिबन्धक मैं नहीं हो सकता। कारण, वे तेज, रूप और गुण—सबमें मेरे समान हैं। सबको प्राण अत्यन्त प्रिय हैं, फिर मैं अपने प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी इन राधाका त्याग करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ? भद्रे! तुम वैकुण्ठ पधारो। तुम्हारे लिये वहीं रहना हितकर होगा। सर्वसमर्थ विष्णुको अपना स्वामी बनाकर दीर्घ कालतक आनन्दका अनुभव करो। तेज, रूप और गुणमें तुम्हारे ही समान उनकी एक पत्नी लक्ष्मी भी वहाँ हैं। लक्ष्मीमें काम, क्रोध, लोभ, मोह, मान और हिंसा—ये नाममात्र भी नहीं हैं। उनके साथ तुम्हारा समय सदा प्रेमपूर्वक सुखसे व्यतीत होगा। विष्णु तुम दोनोंका समानरूपसे सम्मान करेंगे। सुन्दरि! प्रत्येक ब्रह्माण्डमें माघ शुक्ल पञ्चमीके दिन विद्यारम्भके शुभ अवसरपर बड़े गौरवके साथ तुम्हारी विशाल पूजा होगी। मेरे वरके प्रभावसे आजसे लेकर प्रलयपर्यन्त प्रत्येक कल्पमें मनुष्य, मनुगण, देवता, मोक्षकामी प्रसिद्ध मुनिगण, वसु, योगी, सिद्ध, नाग, गन्धर्व और राक्षस—सभी बड़ी भक्तिके साथ सोलह प्रकारके उपचारोंके द्वारा तुम्हारी पूजा करेंगे। उन संयमशील जितेन्द्रिय पुरुषोंके द्वारा कण्वशाखामें कही हुई विधिके अनुसार तुम्हारा ध्यान और पूजन होगा। वे कलश अथवा पुस्तकमें तुम्हें आवाहित करेंगे। तुम्हारे कवचको भोजपत्रपर

लिखकर उसे सोनेकी डिब्बीमें रख गन्ध एवं चन्दन आदिसे सुपूजित करके लोग अपने गलेमें अथवा दाहिनी भुजामें धारण करेंगे। पूजाके पवित्र अवसरपर विद्वान् पुरुषोंके द्वारा तुम्हारा सम्यक् प्रकारसे स्तुति-पाठ होगा।

इस प्रकार कहकर सर्वपूजित भगवान् श्रीकृष्णने देवी सरस्वतीकी पूजा की। तत्पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु, शिव, अनन्त, धर्म, मुनीश्वर, सनकगण, देवता, मुनि, राजा और मनुगण—इन सबने भगवती सरस्वतीकी आराधना की। तबसे ये सरस्वती सम्पूर्ण प्राणियोंद्वारा सदा पूजित होने लगीं।

नारदजी बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! आप भगवती सरस्वतीकी पूजाका विधान, स्तवन, ध्यान, अभीष्ट कवच, पूजनोपयोगी नैवेद्य, फूल तथा चन्दन आदिका परिचय देनेकी कृपा कीजिये। इसे सुननेके लिये मेरे हृदयमें बड़ा कौतूहल हो रहा है।

भगवान् नारायणने कहा—नारद! सुनो। कण्वशाखामें कही हुई पद्धति बतलाता हूँ। इसमें जगन्माता सरस्वतीके पूजनकी विधि वर्णित है। माघ शुक्ल पञ्चमी विद्यारम्भकी मुख्य तिथि है। उस दिन पूर्वाह्णकालमें ही प्रतिज्ञा करके संयमशील एवं पवित्र हो, स्नान और नित्य-क्रियाके पश्चात् भक्तिपूर्वक कलशस्थापन करे। फिर नैवेद्य आदिसे निम्नाङ्कित छः देवताओंका पूजन करे। पहले गणेशका, फिर सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वतीका पूजन करनेके पश्चात् इष्टदेवता सरस्वतीका पूजन करना उचित है। फिर ध्यान करके देवीका आवाहन करे। तदनन्तर व्रती रहकर षोडशोपचारसे भगवतीकी पूजा करे। सौम्य! पूजाके लिये जो-जो उपयोगी नैवेद्य वेदमें कथित हैं, उन्हें बताता हूँ—ताजा मक्खन, दही, दूध, धानका लावा, तिलके लड्डू, सफेद गन्ना और उसका रस, उसे पकाकर बनाया हुआ गुड़, स्वस्तिक (एक प्रकारका पकवान), शक्कर या मिश्री, सफेद धानका चावल जो टूटा न हो (अक्षत), बिना उबाले हुए धानका चिउड़ा, सफेद लड्डू, घी और सेंधा नमक डालकर तैयार किये गये व्यञ्जनके साथ शास्त्रोक्त हविष्यान्न, जौ अथवा गेहूँके आटेसे घृतमें तले हुए पदार्थ, पके हुए स्वच्छ केलेका पिष्टक, उत्तम अन्नको घृतमें पकाकर उससे बना हुआ अमृतके समान मधुर मिष्टान्न, नारियल, उसका पानी, कसेरू, मूली, अदरख, पका हुआ केला, बढ़िया बेल, बेरका फल, देश और कालके अनुसार उपलब्ध ऋतुफल तथा अन्य भी पवित्र स्वच्छ वर्णके फल—ये सब नैवेद्यके समान हैं।

मुने! सुगन्धित सफेद पुष्प, सफेद स्वच्छ चन्दन तथा नवीन श्वेत वस्त्र और सुन्दर शङ्ख देवी सरस्वतीको अर्पण करना चाहिये। श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत भूषण भी भगवतीको चढ़ावे। महाभाग मुने! भगवती सरस्वतीका श्रेष्ठ ध्यान परम सुखदायी है तथा भ्रमका उच्छेद करनेवाला है। वह ध्यान यह है—

'सरस्वतीका श्रीविग्रह शुक्लवर्ण है। ये परम सुन्दरी देवी सदा मुस्कराती रहती हैं। इनके परिपुष्ट विग्रहके सामने करोड़ों चन्द्रमाकी प्रभा भी तुच्छ है। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र पहने हैं। इनके एक हाथमें वीणा है और दूसरेमें पुस्तक। सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए आभूषण इन्हें सुशोभित कर रहे हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव प्रभृति प्रधान देवताओं तथा सुरगणोंसे ये सुपूजित हैं। श्रेष्ठ मुनि, मनु तथा मानव इनके चरणोंमें मस्तक झुकाते हैं। ऐसी भगवती सरस्वतीको मैं भक्तिपूर्वक प्रणाम करता हूँ।'

इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष पूजनके समग्र पदार्थ मूलमन्त्रसे विधिवत् सरस्वतीको अर्पण कर दे। फिर कवचका पाठ करनेके पश्चात् दण्डकी भाँति भूमिपर पड़कर देवीको साष्टाङ्ग प्रणाम करे। मुने! जो पुरुष भगवती सरस्वतीको अपनी इष्ट देवी मानते हैं, उनके लिये यह

नित्यक्रिया है। बालकोंके विद्यारम्भके अवसरपर वर्षके अन्तमें माघ शुक्ला पञ्चमीके दिन सभीको इन सरस्वतीदेवीकी पूजा करनी चाहिये। 'श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा' यह वैदिक अष्टाक्षर मूलमन्त्र परम श्रेष्ठ एवं सबके लिये उपयोगी है। अथवा जिनको जिस मन्त्रके द्वारा उपदेश प्राप्त हुआ है, उनके लिये वही मूल-मन्त्र है। 'सरस्वती' इस शब्दके साथ चतुर्थी विभक्ति जोड़कर अन्तमें 'स्वाहा' शब्द लगा लेना चाहिये। इसके आदिमें लक्ष्मीका बीज (श्रीं) और मायाबीज (ह्रीं) लगावे। यह (श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा) मन्त्र साधकके लिये कल्पवृक्षरूप है। प्राचीनकालमें कृपाके समुद्र भगवान् नारायणने वाल्मीकि मुनिको इसीका उपदेश किया था। भारतवर्षमें गङ्गाके पावन तटपर यह कार्य सम्पन्न हुआ था। फिर सूर्यग्रहणके अवसरपर पुष्करक्षेत्रमें भृगुजीने शुक्रको इसका उपदेश किया था। मरीचिनन्दन कश्यपने चन्द्रग्रहणके समय प्रसन्न होकर बृहस्पतिको इसे बताया था। बदरी-आश्रममें परम प्रसन्न ब्रह्माने भृगुको इसका उपदेश दिया था। जरत्कारुमुनि क्षीरसागरके पास विराजमान थे। उन्होंने आस्तीकको यह मन्त्र पढ़ाया। बुद्धिमान् ऋष्यशृङ्गने मेरुपर्वतपर विभाण्डक मुनिसे इसकी शिक्षा प्राप्त की थी। शिवने आनन्दमें आकर गौतम तथा कणाद मुनिको इसका उपदेश किया था। याज्ञवल्क्य और कात्यायनने सूर्यकी दयासे इसे पाया था। महाभाग शेष पातालमें बलिके सभाभवनपर विराजमान थे। वहाँ उन्होंने पाणिनि, बुद्धिमान् भारद्वाज और शाकटायनको इसका अभ्यास कराया था। चार लाख जप करनेपर मनुष्यके लिये यह मन्त्र सिद्ध हो सकता है। इस मन्त्रके सिद्ध हो जानेपर अवश्य ही मनुष्यमें बृहस्पतिके समान योग्यता प्राप्त हो सकती है।

विप्रेन्द्र! सरस्वतीका कवच विश्वपर विजय प्राप्त करानेवाला है। जगत्स्रष्टा ब्रह्माने गन्धमादन पर्वतपर भृगुके आग्रहसे इसे इन्हें बताया था, वही मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो।

भृगुने कहा—ब्रह्मन्! आप ब्रह्मज्ञानीजनोंमें प्रमुख, पूर्ण ब्रह्मज्ञानसम्पन्न, सर्वज्ञ, सबके पिता, सबके स्वामी एवं सबके परम आराध्य हैं। प्रभो! आप मुझे सरस्वतीका 'विश्वजय' नामक कवच बतानेकी कृपा कीजिये। यह कवच मायाके प्रभावसे रहित, मन्त्रोंका समूह एवं परम पवित्र है।

ब्रह्माजी बोले—वत्स! मैं सम्पूर्ण कामना पूर्ण करनेवाला कवच कहता हूँ, सुनो। यह श्रुतियोंका सार, कानके लिये सुखप्रद, वेदोंमें प्रतिपादित एवं उनसे अनुमोदित है। रासेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण गोलोकमें विराजमान थे। वहीं वृन्दावनमें रासमण्डल था। रासके अवसरपर उन प्रभुने मुझे यह कवच सुनाया था। कल्पवृक्षकी तुलना करनेवाला यह कवच परम गोपनीय है। जिन्हें किसीने नहीं सुना है, वे अद्भुत मन्त्र इसमें सम्मिलित हैं। इसे धारण करनेके प्रभावसे ही भगवान् शुक्राचार्य सम्पूर्ण दैत्योंके पूज्य बन सके। ब्रह्मन्! बृहस्पतिमें इतनी बुद्धिका समावेश इस कवचकी महिमासे ही हुआ है। वाल्मीकि मुनि सदा इसका पाठ और सरस्वतीका ध्यान करते थे। अतः उन्हें कवीन्द्र कहलानेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे भाषण करनेमें परम चतुर हो गये। इसे धारण करके स्वायम्भुव मनुने सबसे पूजा प्राप्त की। कणाद, गौतम, कण्व, पाणिनि, शाकटायन, दक्ष और कात्यायन—इस कवचको धारण करके ही ग्रन्थोंकी रचनामें सफल हुए। इसे धारण करके स्वयं कृष्णद्वैपायन व्यासदेवने वेदोंका विभागकर खेल-ही-खेलमें अखिल पुराणोंका प्रणयन किया। शातातप, संवर्त, वसिष्ठ, पराशर, याज्ञवल्क्य, ऋष्यशृङ्ग, भारद्वाज, आस्तीक, देवल, जैगीषव्य और जाबालिने इस कवचको धारण करके सबमें पूजित हो ग्रन्थोंकी रचना की थी।

विप्रेन्द्र! इस कवचके ऋषि प्रजापति हैं।

स्वयं बृहती छन्द है। माता शारदा अधिष्ठात्री देवी हैं। अखिल तत्त्वपरिज्ञानपूर्वक सम्पूर्ण अर्थके साधन तथा समस्त कविताओंके प्रणयन एवं विवेचनमें इसका प्रयोग किया जाता है।

श्रीं-ह्रीं-स्वरूपिणी भगवती सरस्वतीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सब ओरसे मेरे सिरकी रक्षा करें। ॐ श्रीं वाग्देवताके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सदा मेरे ललाटकी रक्षा करें। ॐ ह्रीं भगवती सरस्वतीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे निरन्तर कानोंकी रक्षा करें। ॐ श्रीं-ह्रीं भारतीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सदा दोनों नेत्रोंकी रक्षा करें। ऐं-ह्रीं-स्वरूपिणी वाग्वादिनीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सब ओरसे मेरी नासिकाकी रक्षा करें। ॐ ह्रीं विद्याकी अधिष्ठात्री देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे होठकी रक्षा करें। ॐ श्रीं-ह्रीं भगवती ब्राह्मीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे दन्त-पङ्क्तिकी निरन्तर रक्षा करें। 'ऐं' यह देवी सरस्वतीका एकाक्षर-मन्त्र मेरे कण्ठकी सदा रक्षा करे। ॐ श्रीं ह्रीं मेरे गलेकी तथा श्रीं मेरे कंधोंकी सदा रक्षा करे। ॐ श्रीं विद्याकी अधिष्ठात्री देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सदा वक्ष:स्थलकी रक्षा करें। ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपा देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे मेरी नाभिकी रक्षा करें। ॐ ह्रीं-क्लीं-स्वरूपिणी देवी वाणीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सदा मेरे हाथोंकी रक्षा करें। ॐ-स्वरूपिणी भगवती सर्ववर्णात्मिकाके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे दोनों पैरोंको सुरक्षित रखें। ॐ वाग्‌की अधिष्ठात्री देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे मेरे सर्वस्वकी रक्षा करें। सबके कण्ठमें निवास करनेवाली ॐस्वरूपा देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे पूर्व दिशामें सदा मेरी रक्षा करें। जीभके अग्रभागपर विराजनेवाली ॐह्रीं-स्वरूपिणी देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे अग्निकोणमें रक्षा करें।

'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा।'

इसको मन्त्रराज कहते हैं। यह इसी रूपमें सदा विराजमान रहता है। यह निरन्तर मेरे दक्षिण भागकी रक्षा करे। ऐं ह्रीं श्रीं—यह त्र्यक्षरमन्त्र नैर्ऋत्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करे। कविकी जिह्वाके अग्रभागपर रहनेवाली ॐ-स्वरूपिणी देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। ॐ-स्वरूपिणी भगवती सर्वाम्बिकाके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे वायव्यकोणमें सदा मेरी रक्षा करें। गद्य-पद्यमें निवास करनेवाली ॐऐं श्रींमयी देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे उत्तर दिशामें मेरी रक्षा करें। सम्पूर्ण शास्त्रोंमें विराजनेवाली ऐं-स्वरूपिणी देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे ईशानकोणमें सदा मेरी रक्षा करें। ॐ ह्रीं-स्वरूपिणी सर्वपूजिता देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे ऊपरसे मेरी रक्षा करें। पुस्तकमें निवास करनेवाली ऐं-ह्रीं-स्वरूपिणी देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे मेरे निम्नभागकी रक्षा करें। ॐ-स्वरूपिणी ग्रन्थबीजस्वरूपा देवीके लिये श्रद्धाकी आहुति दी जाती है, वे सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

विप्र! यह सरस्वती-कवच तुम्हें सुना दिया। असंख्य ब्रह्ममन्त्रोंका यह मूर्तिमान् विग्रह है। ब्रह्मस्वरूप इस कवचको 'विश्वजय' कहते हैं। प्राचीन समयकी बात है—गन्धमादन पर्वतपर पिता धर्मदेवके मुखसे मुझे इसे सुननेका सुअवसर प्राप्त हुआ था। तुम मेरे परम प्रिय हो। अतएव तुमसे मैंने कहा है। तुम्हें अन्य किसीके सामने इसकी चर्चा नहीं करनी चाहिये। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वस्त्र, चन्दन और अलंकार आदि सामानोंसे विधिपूर्वक गुरुकी पूजा करके दण्डकी

भाँति जमीनपर पड़कर उन्हें प्रणाम करे। तत्पश्चात् उनसे इस कवचका अध्ययन करके इसे हृदयमें धारण करे। पाँच लाख जप करनेके पश्चात् यह कवच सिद्ध हो जाता है। इस कवचके सिद्ध हो जानेपर पुरुषको बृहस्पतिके समान पूर्ण योग्यता प्राप्त हो सकती है। इस कवचके प्रसादसे पुरुष भाषण करनेमें परम चतुर, कवियोंका सम्राट् और त्रैलोक्यविजयी हो सकता है। वह सबको जीतनेमें समर्थ होता है।* मुने! यह कवच कण्व-शाखाके अन्तर्गत है। अब स्तोत्र, ध्यान, वन्दन और पूजाका विधान बताता हूँ, सुनो।

(अध्याय ४)

---

* ब्रह्मोवाच

श्रृणु वत्स प्रवक्ष्यामि कवचं सर्वकामदम्। श्रुतिसारं श्रुतिसुखं श्रुत्युक्तं श्रुतिपूजितम्॥
उक्तं कृष्णेन गोलोके मह्यं वृन्दावने वने। रासेश्वरेण विभुना रासे वै रासमण्डले॥
अतीव गोपनीयं च कल्पवृक्षसमं परम्। अश्रुताद्भुतमन्त्राणां समूहैश्च समन्वितम्॥
यद् धृत्वा भगवाञ्छुक्रः सर्वदैत्येषु पूजितः। यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मन् बुद्धिमांश्च बृहस्पतिः॥
पठनाद्धारणाद्वाग्मी कवीन्द्रो वाल्मिको मुनिः। स्वायम्भुवो मनुश्चैव यद् धृत्वा सर्वपूजितः॥
कणादो गौतमः कण्वः पाणिनिः शाकटायनः। ग्रन्थं चकार यद् धृत्वा दक्षः कात्यायनः स्वयम्॥
धृत्वा वेदविभागं च पुराणान्यखिलानि च। चकार लीलामात्रेण कृष्णद्वैपायनः स्वयम्॥
शातातपश्च संवर्तो वसिष्ठश्च पराशरः। यद् धृत्वा पठनाद् ग्रन्थं याज्ञवल्क्यश्चकार सः॥
ऋष्यशृङ्गो भरद्वाजश्चास्तीको देवलस्तथा। जैगीषव्योऽथ जाबालिर्यद् धृत्वा सर्वपूजिताः॥
कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेव प्रजापतिः। स्वयं छन्दश्च बृहती देवता शारदाम्बिका॥
सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थसाधनेषु च। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु॥
ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रे पातु निरन्तरम्। ॐ श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु। ॐ ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदावतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तिं सदावतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धौ मे श्रीं सदावतु। ॐ श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु॥
ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ॐ ह्रीं क्लीं वाण्यै स्वाहेति मम हस्तौ सदावतु॥
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु। ॐ वागधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा सर्वं सदावतु॥
ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु। ॐ ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु॥
ऐं ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदावतु। कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥
ॐ सर्वाम्बिकायै स्वाहा वायव्ये मां सदावतु। ॐ ऐं श्रीं गद्यपद्यवासिन्यै स्वाहा मामुत्तरेऽवतु॥
ऐं सर्वशास्त्रवासिन्यै स्वाहैशान्यां सदावतु। ॐ ह्रीं सर्वपूजितायै स्वाहा चोर्ध्वं सदावतु॥
ऐं ह्रीं पुस्तकवासिन्यै स्वाहाधो मां सदावतु। ॐ ग्रन्थबीजरूपायै स्वाहा मां सर्वतोऽवतु॥
इति ते कथितं विप्र ब्रह्ममन्त्रौघविग्रहम्। इदं विश्वजयं नाम कवचं ब्रह्मरूपकम्॥
पुरा श्रुतं धर्मवक्त्रात् पर्वते गन्धमादने। तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः। प्रणम्य दण्डवद्भूमौ कवचं धारयेत् सुधीः॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धं तु कवचं भवेत्। यदि स्यात् सिद्धकवचो बृहस्पतिसमो भवेत्॥
महावाग्मी कवीन्द्रश्च त्रैलोक्यविजयी भवेत्। शक्नोति सर्वं जेतुं च कवचस्य प्रसादतः॥

(प्रकृतिखण्ड ४। ६३—९१)

याज्ञवल्क्यद्वारा भगवती सरस्वतीकी स्तुति

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! सरस्वती देवीका स्तोत्र सुनो, जिससे सम्पूर्ण मनोरथ सिद्ध हो जाते हैं। प्राचीन समयकी बात है—याज्ञवल्क्य नामसे प्रसिद्ध एक महामुनि थे। उन्होंने उसी स्तोत्रसे भगवती सरस्वतीकी स्तुति की थी। जब गुरुके शापसे मुनिकी श्रेष्ठ विद्या नष्ट हो गयी, तब वे अत्यन्त दुःखी होकर लोलार्ककुण्डपर, जो उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाला तीर्थ है, गये। उन्होंने तपस्याके द्वारा सूर्यका प्रत्यक्ष दर्शन पाकर शोकविह्वल हो भगवान् सूर्यका स्तवन तथा बारंबार रोदन किया। तब शक्तिशाली सूर्यने याज्ञवल्क्यको वेद और वेदाङ्गका अध्ययन कराया। साथ ही कहा—'मुने! तुम स्मरण-शक्ति प्राप्त करनेके लिये भक्तिपूर्वक वाग्देवता भगवती सरस्वतीकी स्तुति करो।' इस प्रकार कहकर दीनजनोंपर दया करनेवाले सूर्य अन्तर्धान हो गये। तब याज्ञवल्क्य मुनिने स्नान किया और विनयपूर्वक सिर झुकाकर वे भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे।

याज्ञवल्क्य बोले—जगन्माता! मुझपर कृपा करो। मेरा तेज नष्ट हो गया है। गुरुके शापसे मेरी स्मरण-शक्ति खो गयी है। मैं विद्यासे वञ्चित होनेके कारण बहुत दुःखी हूँ। विद्याकी अधिदेवते! तुम मुझे ज्ञान, स्मृति, विद्या, प्रतिष्ठा, कवित्व-शक्ति, शिष्योंको समझानेकी शक्ति तथा ग्रन्थ-रचना करनेकी क्षमता दो। साथ ही मुझे अपना उत्तम एवं सुप्रतिष्ठित शिष्य बना लो। माता! मुझे प्रतिभा तथा सत्पुरुषोंकी सभामें विचार प्रकट करनेकी उत्तम क्षमता दो। दुर्भाग्यवश मेरा जो सम्पूर्ण ज्ञान नष्ट हो गया है, वह मुझे पुनः नवीन रूपमें प्राप्त हो जाय। जिस प्रकार देवता धूल या राखमें छिपे हुए बीजको समयानुसार अङ्कुरित कर देते हैं, वैसे ही तुम भी मेरे लुप्त ज्ञानको पुनः प्रकाशित कर दो। जो ब्रह्मस्वरूपा, परमा, ज्योतीरूपा, सनातनी तथा सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिष्ठात्री हैं, उन वाणीदेवीको बार-बार प्रणाम है। जिनके बिना सारा जगत् सदा जीते-जी मरेके समान है तथा जो ज्ञानकी अधिष्ठात्री देवी हैं, उन माता सरस्वतीको बारंबार नमस्कार है। जिनके बिना सारा जगत् सदा गूँगा और पागलके समान हो जायगा तथा जो वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं, उन वाग्देवताको बारंबार नमस्कार है। जिनकी अङ्गकान्ति हिम, चन्दन, कुन्द, चन्द्रमा, कुमुद तथा श्वेतकमलके समान उज्ज्वल है तथा जो वर्णों (अक्षरों)-की अधिष्ठात्री देवी हैं, उन अक्षर-स्वरूपा देवी सरस्वतीको बारंबार नमस्कार है। विसर्ग, बिन्दु एवं मात्रा—इन तीनोंका जो अधिष्ठान है, वह तुम हो; इस प्रकार साधु पुरुष तुम्हारी महिमाका गान करते हैं। तुम्हीं भारती हो। तुम्हें बारंबार नमस्कार है। जिनके बिना सुप्रसिद्ध गणक भी संख्याके परिगणनमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता, उन कालसंख्या-स्वरूपिणी भगवतीको बारंबार नमस्कार है। जो व्याख्यास्वरूपा तथा व्याख्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं; भ्रम और सिद्धान्त दोनों जिनके स्वरूप हैं, उन वाग्देवीको बारंबार नमस्कार है। जो स्मृतिशक्ति, ज्ञानशक्ति और बुद्धिशक्तिस्वरूपा हैं तथा जो प्रतिभा और कल्पनाशक्ति हैं, उन भगवतीको बारंबार प्रणाम है। एक बार सनत्कुमारने जब ब्रह्माजीसे ज्ञान पूछा, तब ब्रह्मा भी जडवत् हो गये। सिद्धान्तकी स्थापना करनेमें समर्थ न हो सके। तब स्वयं परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ पधारे। उन्होंने आते ही कहा—'प्रजापते! तुम उन्हीं इष्टदेवी

भगवती सरस्वतीकी स्तुति करो।' देवि! परमप्रभु श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर ब्रह्माने तुम्हारी स्तुति की। तुम्हारे कृपा-प्रसादसे उत्तम सिद्धान्तके विवेचनमें वे सफलीभूत हो गये।

ऐसे ही एक समयकी बात है—पृथ्वीने महाभाग अनन्तसे ज्ञानका रहस्य पूछा, तब शेषजी भी मूकवत् हो गये। सिद्धान्त नहीं बता सके। उनके हृदयमें घबराहट उत्पन्न हो गयी। फिर कश्यपकी आज्ञाके अनुसार उन्होंने सरस्वतीकी स्तुति की। इससे शेषने भ्रमको दूर करनेवाले निर्मल सिद्धान्तकी स्थापनामें सफलता प्राप्त कर ली। जब व्यासने वाल्मीकिसे पुराणसूत्रके विषयमें प्रश्न किया, तब वे भी चुप हो गये। ऐसी स्थितिमें वाल्मीकिने आप जगदम्बाका ही स्मरण किया। आपने उन्हें वर दिया, जिसके प्रभावसे मुनिवर वाल्मीकि सिद्धान्तका प्रतिपादन कर सके। उस समय उन्हें प्रमादको मिटानेवाला निर्मल ज्ञान प्राप्त हो गया था। भगवान् श्रीकृष्णके अंश व्यासजी वाल्मीकि मुनिके मुखसे पुराणसूत्र सुनकर उसका अर्थ कविताके रूपमें स्पष्ट करनेके लिये तुम्हारी ही उपासना और ध्यान करने लगे। उन्होंने पुष्करक्षेत्रमें रहकर सौ वर्षोंतक उपासना की। माता! तब तुमसे वर पाकर व्यासजी कवीश्वर बन गये। उस समय उन्होंने वेदोंका विभाजन तथा पुराणोंकी रचना की। जब देवराज इन्द्रने भगवान् शंकरसे तत्त्वज्ञानके विषयमें प्रश्न किया, तब क्षणभर भगवतीका ध्यान करके वे उन्हें ज्ञानोपदेश करने लगे। फिर इन्द्रने बृहस्पतिसे शब्दशास्त्रके विषयमें पूछा। जगदम्बे! उस समय बृहस्पति पुष्करक्षेत्रमें जाकर देवताओंके वर्षसे एक हजार वर्षतक तुम्हारे ध्यानमें संलग्न रहे। इतने वर्षोंके बाद तुमने उन्हें वर प्रदान किया। तब वे इन्द्रको शब्दशास्त्र और उसका अर्थ समझा सके। बृहस्पतिने जितने शिष्योंको पढ़ाया और जितने सुप्रसिद्ध मुनि उनसे अध्ययन कर चुके हैं, वे सब-के-सब भगवती सुरेश्वरीका चिन्तन करनेके पश्चात् ही सफलीभूत हुए हैं। माता! वह देवी तुम्हीं हो। मुनीश्वर, मनु और मानव—सभी तुम्हारी पूजा और स्तुति कर चुके हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, देवता और दानवेश्वर प्रभृति—सबने तुम्हारी उपासना की है। जब हजार मुखवाले शेष, पाँच मुखवाले शंकर तथा चार मुखवाले ब्रह्मा तुम्हारा यशोगान करनेमें जडवत् हो गये, तब एक मुखवाला मैं मानव तुम्हारी स्तुति कर ही कैसे सकता हूँ।

नारद! इस प्रकार स्तुति करके मुनिवर याज्ञवल्क्य भगवती सरस्वतीको प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिके कारण उनका कंधा झुक गया था। उनकी आँखोंसे जलकी धाराएँ निरन्तर गिर रही थीं। इतनेमें ज्योतिःस्वरूपा महामायाका उन्हें दर्शन प्राप्त हुआ। देवीने उनसे

कहा—'मुने! तुम सुप्रख्यात कवि हो जाओ।' यों कहकर भगवती महामाया वैकुण्ठ पधार गयीं। जो पुरुष याज्ञवल्क्यरचित इस सरस्वतीस्तोत्रको पढ़ता है, उसे कवीन्द्रपदकी प्राप्ति हो जाती है। भाषण करनेमें वह बृहस्पतिकी तुलना

कर सकता है। कोई महान् मूर्ख अथवा दुर्बुद्धि ही क्यों न हो, यदि वह एक वर्षतक नियमपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है तो वह निश्चय ही पण्डित, परम बुद्धिमान् एवं सुकवि हो जाता है।*

(अध्याय ५)

---

*याज्ञवल्क्य उवाच

कृपां कुरु जगन्मातर्मामेवं हततेजसम्। गुरुशापात् स्मृतिभ्रष्टं विद्याहीनं च दुःखितम्॥
ज्ञानं देहि स्मृतिं देहि विद्यां विद्याधिदेवते। प्रतिष्ठां कवितां देहि शक्तिं शिष्यप्रबोधिनीम्॥
ग्रन्थकर्तृत्वशक्तिं च सुशिष्यं सुप्रतिष्ठितम्। प्रतिभां सत्सभायां च विचारक्षमतां शुभाम्॥
लुप्तं सर्वं दैववशान्नवीभूतं पुनः कुरु। यथाङ्कुरं भस्मनि च करोति देवता पुनः॥
ब्रह्मस्वरूपा परमा ज्योतीरूपा सनातनी। सर्वविद्याधिदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः॥
यया विना जगत् सर्वं शश्वज्जीवन्मृतं सदा। ज्ञानाधिदेवी या तस्यै सरस्वत्यै नमो नमः॥
यया विना जगत् सर्वं मूकमुन्मत्तवत् सदा। वागधिष्ठातृदेवी या तस्यै वाण्यै नमो नमः॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभा। वर्णाधिदेवी या तस्यै चाक्षरायै नमो नमः॥
विसर्गबिन्दुमात्राणां यदधिष्ठानमेव च। इत्थं त्वं गीयसे सद्भिर्भारत्यै ते नमो नमः॥
यया विना च संख्याता संख्यां कर्तुं न शक्यते। कालसंख्यास्वरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥
व्याख्यास्वरूपा या देवी व्याख्याधिष्ठातृदेवता। भ्रमसिद्धान्तरूपा या तस्यै देव्यै नमो नमः॥
स्मृतिशक्तिर्ज्ञानशक्तिर्बुद्धिशक्तिस्वरूपिणी॥
प्रतिभा कल्पना शक्तिर्या च तस्यै नमो नमः। सनत्कुमारो ब्रह्माणं ज्ञानं पप्रच्छ यत्र वै॥
बभूव जडवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः। तदाऽऽजगाम भगवानात्मा श्रीकृष्ण ईश्वरः॥
उवाच स च तां स्तौहि वाणीमिष्टां प्रजापते। स च तुष्टाव त्वां ब्रह्मा चाज्ञया परमात्मनः॥
चकार त्वत्प्रसादेन तदा सिद्धान्तमुत्तमम्। यदाप्यनन्तं पप्रच्छ ज्ञानमेकं वसुंधरा॥
बभूव मूकवत् सोऽपि सिद्धान्तं कर्तुमक्षमः। तदा त्वां स च तुष्टाव संत्रस्तः कश्यपाज्ञया॥
ततश्चकार सिद्धान्तं निर्मलं भ्रमभञ्जनम्। व्यासः पुराणसूत्रं च पप्रच्छ वाल्मिकिं यदा॥
मौनीभूतः स सस्मार त्वामेव जगदम्बिकाम्। तदा चकार सिद्धान्तं त्वद्वरेण मुनीश्वरः॥
सम्प्राप्य निर्मलं ज्ञानं प्रमादध्वंसकारणम्। पुराणसूत्रं श्रुत्वा च व्यासः कृष्णकलोद्भवः॥
त्वां सिषेवे च दध्यौ च शतवर्षं च पुष्करे। तदा त्वत्तो वरं प्राप्य सत्कवीन्द्रो बभूव ह॥
तदा वेदविभागं च पुराणं च चकार सः। यदा महेन्द्रः पप्रच्छ तत्त्वज्ञानं सदाशिवम्॥
क्षणं त्वामेव संचिन्त्य तस्मै ज्ञानं ददौ विभुः। पप्रच्छ शब्दशास्त्रं च महेन्द्रश्च बृहस्पतिम्॥
दिव्यं वर्षसहस्रं च स त्वां दध्यौ च पुष्करे। तदा त्वत्तो वरं प्राप्य दिव्यवर्षसहस्रकम्॥
उवाच शब्दशास्त्रं च तदर्थं च सुरेश्वरम्। अध्यापिताश्च ये शिष्या यैरधीतं मुनीश्वरैः॥
ते च त्वां परिसंचिन्त्य प्रवर्तन्ते सुरेश्वरीम्। त्वं संस्तुता पूजिता च मुनीन्द्रैर्मनुमानवैः॥
दैत्येन्द्रैश्च सुरैश्चापि ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। जडीभूतः सहस्रास्यः पञ्चवक्त्रश्चतुर्मुखः॥
यां स्तोतुं किमहं स्तौमि तामेकास्येन मानवः। इत्युक्त्वा याज्ञवल्क्यश्च भक्तिनम्रात्मकन्धरः॥
प्रणनाम निराहारो रुरोद च मुहुर्मुहुः। तदा ज्योतिःस्वरूपा सा तेनादृष्टाप्युवाच तम्॥
सुकवीन्द्रो भवेत्युक्त्वा वैकुण्ठं च जगाम ह। याज्ञवल्क्यकृतं वाणीस्तोत्रमेतत्तु यः पठेत्॥
स कवीन्द्रो महावाग्मी बृहस्पतिसमो भवेत्। महामूर्खश्च दुर्मेधा वर्षमेकं यदा पठेत्।
स पण्डितश्च मेधावी सुकविश्च भवेद् ध्रुवम्॥ (प्रकृतिखण्ड ५। ६—३६)

विष्णुपत्नी लक्ष्मी, सरस्वती एवं गङ्गाका परस्पर शापवश भारतवर्षमें पधारना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! ये भगवती सरस्वती स्वयं वैकुण्ठमें भगवान् श्रीहरिके पास रहती हैं। पारस्परिक कलहके कारण गङ्गाने इन्हें शाप दे दिया था। अतः ये भारतवर्षमें अपनी एक कलासे पधारकर नदीरूपमें प्रकट हुईं। मुने! सरस्वती नदी पुण्य प्रदान करनेवाली, पुण्यरूपा और पुण्यतीर्थ-स्वरूपिणी हैं। पुण्यात्मा पुरुषोंको चाहिये कि वे इनका सेवन करें। इनके तटपर पुण्यवानोंकी ही स्थिति है। ये तपस्वियोंके लिये तपोरूपा हैं और तपस्याका फल भी इनसे कोई अलग वस्तु नहीं है। किये हुए सब पाप लकड़ीके समान हैं। उन्हें जलानेके लिये ये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं। भूमण्डलपर रहनेवाले जो मानव इनकी महिमा जानते हुए इनके तटपर अपना शरीर त्यागते हैं, उन्हें वैकुण्ठमें स्थान प्राप्त होता है। भगवान् विष्णुके भवनपर वे बहुत दिनोंतक वास करते हैं।

तदनन्तर सरस्वती नदीमें ज्ञानकी और भी महिमा कहकर नारायणने कहा कि इस प्रकार सरस्वतीकी महिमाका कुछ वर्णन किया गया है। अब पुनः क्या सुनना चाहते हो।

सौति कहते हैं—शौनक! भगवान् नारायणकी बात सुनकर मुनिवर नारदने पुनः तत्काल ही उनसे यह पूछा।

नारदजीने कहा—सत्त्वस्वरूपा तथा सदा पुण्यदायिनी गङ्गाने सर्वपूज्या सरस्वतीदेवीको शाप क्यों दे दिया? इन दोनों तेजस्विनी देवियोंके विवादका कारण अवश्य ही कानोंको सुख देनेवाला होगा। आप इसे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—नारद! यह प्राचीन कथा मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। लक्ष्मी, सरस्वती और गङ्गा—ये तीनों ही भगवान् श्रीहरिकी भार्या हैं। एक बार सरस्वतीको यह संदेह हो गया कि श्रीहरि मेरी अपेक्षा गङ्गासे अधिक प्रेम करते हैं। तब उन्होंने श्रीहरिको कुछ कड़े शब्द कह दिये। फिर वे गङ्गापर क्रोध करके कठोर बर्ताव करने लगीं। तब शान्तस्वरूपा, क्षमामयी लक्ष्मीने उनको रोक दिया। इसपर सरस्वतीने लक्ष्मीको गङ्गाका पक्ष करनेवाली मानकर आवेशमें शाप दे दिया कि 'तुम निश्चय ही वृक्षरूपा और नदीरूपा हो जाओगी।'

लक्ष्मीने सरस्वतीके इस शापको सुन लिया; परंतु स्वयं बदलेमें सरस्वतीको शाप देना तो दूर रहा, उनके मनमें तनिक-सा क्रोध भी उत्पन्न नहीं हुआ। वे वहीं शान्त बैठी रहीं और सरस्वतीके हाथको अपने हाथसे पकड़ लिया। पर गङ्गासे यह नहीं देखा गया। उन्होंने सरस्वतीको शाप दे दिया। कहा—'बहन लक्ष्मी! जो तुम्हें शाप दे चुकी है, वह सरस्वती भी नदीरूपा हो जाय। यह नीचे मर्त्यलोकमें चली जाय, जहाँ सब पापीजन निवास करते हैं।'

नारद! गङ्गाकी यह बात सुनकर सरस्वतीने उन्हें शाप दे दिया कि तुम्हें भी धरातलपर जाना होगा और तुम पापियोंके पापको अङ्गीकार करोगी। इतनेमें भगवान् श्रीहरि वहाँ आ गये। उस समय चार भुजावाले वे प्रभु अपने चार पार्षदोंसे सुशोभित थे। उन्होंने सरस्वतीका हाथ पकड़कर उन्हें अपने समीप प्रेमसे बैठा लिया। तत्पश्चात् वे सर्वज्ञानी श्रीहरि प्राचीन अखिल ज्ञानका रहस्य समझाने लगे। उन दुःखित देवियोंके कलह और शापका मुख्य कारण सुनकर परम प्रभुने समयानुकूल बातें बतायीं।

भगवान् श्रीहरि बोले—लक्ष्मी! शुभे! तुम अपनी कलासे राजा धर्मध्वजके घर पधारो। तुम किसीकी योनिसे उत्पन्न न होकर स्वयं भूमण्डलपर प्रकट हो जाना। वहीं तुम वृक्षरूपसे निवास

करोगी। 'शङ्खचूड' नामक एक असुर मेरे अंशसे

उत्पन्न होगा। तुम उसकी पत्नी बन जाना। तत्पश्चात् निश्चय ही तुम्हें मेरी प्रेयसी भार्या बननेका सौभाग्य प्राप्त होगा। भारतवर्षमें त्रिलोकपावनी 'तुलसी' के नामसे तुम्हारी प्रसिद्धि होगी। वरानने! अभी-अभी तो तुम भारतीके शापसे भारतमें 'पद्मावती' नामक नदी बनकर पधारो।

तदनन्तर गङ्गासे कहा—'गङ्गे! तुम सरस्वतीके शापवश अपने अंशसे पापियोंका पाप भस्म करनेके लिये विश्वपावनी नदी बनकर भारतवर्षमें जाना। सुकल्पिते! भगीरथकी तपस्यासे तुम्हें वहाँ जाना पड़ेगा। धरातलपर तुमको सब लोग भगवती भागीरथी कहेंगे। समुद्र मेरा अंश है। मेरे आज्ञानुसार तुम उसकी पत्नी होना स्वीकार कर लेना।' इसके बाद सरस्वतीसे कहा—'भारती! तुम गङ्गाका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें चलो। तुम अपने पूर्ण अंशसे ब्रह्मसदनपर पधारकर उनकी कामिनी बन जाओ; ये गङ्गा अपने पूर्ण अंशसे शिवके स्थानपर चलें।' यहाँ अपने पूर्ण अंशसे केवल लक्ष्मी रह जायँ। कारण, इनका स्वभाव परम शान्त है। ये कभी तनिक-सा क्रोध नहीं करतीं। मुझपर इनकी अटूट श्रद्धा है। ये सत्त्वस्वरूपा हैं। ये महान् साध्वी, अत्यन्त सौभाग्यवती, क्षमामूर्ति, सुन्दर आचरणोंसे सुशोभित तथा निरन्तर धर्मका पालन करती हैं। इनके एक अंशकी कलाका महत्त्व है कि विश्वभरमें सम्पूर्ण स्त्रियाँ धर्मात्मा, पतिव्रता, शान्तरूपा तथा सुशीला बनकर प्रतिष्ठा प्राप्त करती हैं।

अब भगवान् श्रीहरि स्वयं अपना विचार कहने लगे—अहो! विभिन्न स्वभाववाली तीन स्त्रियों, तीन नौकरों और तीन बान्धवोंका एकत्र रहना वेदकी अनुमतिसे विरुद्ध है। ये एक जगह रहकर कल्याणप्रद नहीं हो सकते। जिन गृहस्थोंके घर स्त्री पुरुषके समान व्यवहार करे और पुरुष स्त्रीके अधीन रहे, उसका जीवन निष्फल समझा जाता है। उसके प्रत्येक पगपर अशुभ है। जिसकी स्त्री मुखदुष्टा, योनिदुष्टा और कलहप्रिया हो, उसके लिये तो जंगल ही घरसे बढ़कर सुखदायी है। कारण, वहाँ उसे जल, स्थल और फल तो मिल ही जाते हैं। ये फल-जल आदि जंगलमें निरन्तर सुलभ रहते हैं, घरपर नहीं मिल सकते। अग्निके पास रहना ठीक है; अथवा हिंसक जन्तुओंके निकट रहनेपर भी सुख मिल सकता है; किंतु दुष्टा स्त्रीके निकट रहनेवाले पुरुषको अवश्य ही महान् क्लेश भोगना पड़ता है। वरानने! पुरुषोंके लिये व्याधिज्वाला अथवा विषज्वालाको ठीक बताया जा सकता है; किंतु दुष्टा स्त्रियोंके मुखकी ज्वाला मृत्युसे भी अधिक कष्टप्रद होती है। स्त्रीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंकी शुद्धि शरीरके भस्म हो जानेपर भी हो जाय—यह निश्चित नहीं है। स्त्रीके वशमें रहनेवाला व्यक्ति दिनमें जो कुछ कर्म करता है, उसके फलका वह भागी नहीं हो पाता। इस लोक और परलोकमें—सब जगह उसकी निन्दा होती है। जो यश और कीर्तिसे रहित है, उसे जीते हुए भी मुर्दा समझना चाहिये। एक भार्यावालेको ही चैन नहीं; फिर जिसके अनेक स्त्रियाँ हों, उसके लिये तो सुखकी कल्पना ही असम्भव है। अतएव

गङ्गे! तुम शिवके पास जाओ और सरस्वती! तुम्हें ब्रह्माके स्थानपर चले जाना चाहिये। यहाँ मेरे भवनपर केवल सुशीला लक्ष्मीजी रह जायँ; क्योंकि परम साध्वी, उत्तम आचरण करनेवाली एवं पतिव्रता स्त्रीका स्वामी इस लोकमें स्वर्गका सुख भोगता है और परलोकमें उसके लिये कैवल्यपद सुरक्षित है। जिसकी पत्नी पतिव्रता है, वह परम पवित्र, सुखी और मुक्त समझा जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तब गङ्गा और लक्ष्मी तथा सरस्वती—तीनों देवियाँ परस्पर एक-दूसरेका आलिङ्गन करके रोने लगीं। शोक और भयने उनके शरीरको कँपा दिया था। उनकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। उन सबको एकमात्र भगवान् ही शरण्य दृष्टिगोचर हुए। अतः वे क्रमशः उनसे प्रार्थना करने लगीं।

सरस्वतीने कहा—नाथ! मुझ दुष्टाको पाप, ताप और शापसे बचानेके लिये कोई प्रायश्चित्त बता दीजिये; जिससे मेरा जन्म और जीवन शुद्ध हो जाय। भला, आप-जैसे महान् सच्चरित्र स्वामीके परित्याग कर देनेपर कहाँ कौन स्त्रियाँ जीवित रह सकती हैं? प्रभो! मैं भारतवर्षमें योगसाधन करके इस शरीरका त्याग कर दूँगी—यह निश्चित है।

गङ्गा बोली—जगत्प्रभो! आप किस अपराधसे मुझे त्याग रहे हैं? मैं जीवित नहीं रह सकूँगी।

लक्ष्मीने कहा—नाथ! आप सत्त्व-स्वरूप हैं। बड़े आश्चर्यकी बात है, आपको कैसे क्षोभ हो गया। आप अपनी इन पत्नियोंपर कृपा कीजिये। कारण, श्रेष्ठ स्वामीके लिये क्षमा ही उत्तम है। मैं सरस्वतीका शाप स्वीकार करके अपनी एक कलासे भारतवर्षमें जाऊँगी। परंतु प्रभो! मुझे कितने समयतक वहाँ रहना होगा और मैं पुनः कब आपके चरणोंके दर्शन प्राप्त कर सकूँगी। पापीजन मेरे जलमें स्नान और आचमन करके अपना पाप मुझपर लाद देंगे, तब उस पापसे मुक्त होकर आपके चरणोंमें आनेका अधिकार मुझे कैसे प्राप्त हो सकेगा? अच्युत! मैं अपनी एक कलासे धर्मध्वजकी पुत्री होकर जब 'तुलसी' (वृन्दा) रूपमें स्थित हो जाऊँगी, तब मुझे पुनः कब आपके चरणकमल प्राप्त होंगे? कृपानिधे! यह तो बताइये कि जब मैं वृक्षरूपमें उसकी अधिदेवी बनकर रहने लगूँगी, तब कबतक आप मेरा उद्धार करेंगे? यदि ये गङ्गा सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें चली जायँगी, तब फिर किस समय शाप और पापसे छुटकारा पाकर आपको प्राप्त कर सकेंगी? गङ्गाके शापसे ये सरस्वती भी यदि भारतमें जायँगी तो कब शापसे मुक्त होकर पुनः आपके चरणकमलोंको पा सकेंगी? प्रभो! आप जो इन सरस्वतीसे कह रहे हैं कि तुम ब्रह्माके घर सिधारो अथवा गङ्गाको शिवके भवनपर जानेकी आज्ञा दे रहे हैं—आपके इन वचनोंके लिये मैं आपसे क्षमा चाहती हूँ। आप कृपा करके इन्हें ऐसा दण्ड न दें।

नारद! इस प्रकार कहकर भगवती लक्ष्मीने अपने स्वामी श्रीहरिके चरण पकड़ लिये, उन्हें प्रणाम किया और अपने केशसे भगवान्‌के चरणोंको आवेष्टित करके वे बारंबार रोने लगीं। भगवान् श्रीहरि सदा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। प्रार्थना सुनकर उन्होंने देवी कमलाको हृदयसे चिपका लिया और प्रसन्नमुखसे मुस्कराते हुए कहा।

भगवान् विष्णु बोले—सुरेश्वरि! कमलेक्षणे! मैं तुम्हारी बात भी रखूँगा और अपने वचनकी भी रक्षा करूँगा। साथ ही तुम तीनोंमें समता कर दूँगा, अतः सुनो। ये सरस्वती कलाके एक अंशसे नदी बनकर भारतवर्षमें जायँ, आधे अंशसे

ब्रह्माके भवनपर पधारें तथा पूर्ण अंशसे स्वयं मेरे पास रहें। ऐसे ही ये गङ्गा भगीरथके सत्प्रयत्नसे अपने कलांशसे त्रिलोकीको पवित्र करनेके लिये भारतवर्षमें जायँ और स्वयं पूर्ण अंशसे मेरे पास भवनपर रहें। वहाँ इन्हें शंकरके मस्तकपर रहनेका दुर्लभ अवसर भी प्राप्त होगा। ये स्वभावत: पवित्र तो हैं ही, किंतु वहाँ जानेपर इनकी पवित्रता और भी बढ़ जायगी। वामलोचने! तुम अपनी कलाके अंशांशसे भारतवर्षमें चलो। वहाँ तुम्हें 'पद्मावती' नदी और 'तुलसी' वृक्षके रूपसे विराजना होगा। कलिके पाँच हजार वर्ष व्यतीत हो जानेपर तुम नदीरूपिणी देवियोंका उद्धार हो जायगा। तदनन्तर तुम लोग मेरे भवनपर लौट आओगी। पद्मभवे! सम्पूर्ण प्राणियोंके पास जो सम्पत्ति और विपत्ति आती है—इसमें कोई-न-कोई हेतु छिपा रहता है। बिना विपत्ति सहे किन्हींको भी गौरव प्राप्त नहीं हो सकता। अब तुम्हारे शुद्ध होनेका उपाय बताता हूँ। मेरे मन्त्रोंकी उपासना करनेवाले बहुत-से संत पुरुष भी तुम्हारे जलमें नहाने-धोनेके लिये पधारेंगे। उस समय तुम उनके दर्शन और स्पर्श प्राप्त करके सब पापोंसे छुटकारा पा जाओगी। सुन्दरि! इतना ही नहीं; किंतु भूमण्डलपर जितने असंख्य तीर्थ हैं, वे सभी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श पाकर परम पावन बन जायँगे। भारतवर्षकी भूमि अत्यन्त पवित्र है। मेरे मन्त्रोंके उपासक अनगिनत भक्त वहाँ वास करते हैं। प्राणियोंको पवित्र करना और तारना ही उनका प्रधान उद्देश्य है। मेरे भक्त जहाँ रहते और अपने पैर धोते हैं, वह स्थान महान् तीर्थ एवं परम पवित्र बन जाता है—यह बिलकुल निश्चित है*। घोर पापी भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शके प्रभावसे पवित्र होकर जीवन्मुक्त हो सकता है। नास्तिक व्यक्ति भी मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो सकता है।

जो कमरमें तलवार बाँधकर द्वारपालकी हैसियतसे जीविका चलाते हैं, मुनीमीमात्र जिनकी जीविकाका साधन है, जो इधर-उधर चिट्ठी-पत्री पहुँचाकर अपना भरण-पोषण करते हैं तथा गाँव-गाँव घूमकर भीख माँगना ही जिनका व्यवसाय है एवं जो बैलोंको जोतते हैं, ऐसे ब्राह्मणको अधम कहा जाता है; किंतु मेरे भक्तके दर्शन और स्पर्श उन्हें पवित्र कर देते हैं। विश्वासघाती, मित्रघाती, झूठी गवाही देनेवाले तथा धरोहर हड़पनेवाले नीच व्यक्ति भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे शुद्ध हो सकते हैं। मेरे भक्तके दर्शन एवं स्पर्शमें ऐसी अद्भुत शक्ति है कि उसके प्रभावसे महापातकी व्यक्तितक पवित्र हो सकता है। सुन्दरि! पिता, माता, स्त्री, छोटा भाई, पुत्र, पुत्री, बहन, गुरुकुल, नेत्रहीन बान्धव, सासु और श्वशुर—जो पुरुष इनके भरण-पोषणकी व्यवस्था नहीं करता, उसे महान् पातकी कहते हैं; किंतु मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्श करनेसे वह भी शुद्ध हो जाता है। पीपलके वृक्षको काटनेवाले, मेरे भक्तोंके निन्दक तथा नीच ब्राह्मणको भी मेरे भक्तका दर्शन और स्पर्श पवित्र बना देता है। घोर पातकी मनुष्य भी मेरे भक्तोंके दर्शन और स्पर्शसे पवित्र हो सकते हैं।

श्रीमहालक्ष्मीने कहा—भक्तोंपर कृपा करनेके लिये आतुर रहनेवाले प्रभो! अब आप उन अपने भक्तोंके लक्षण बतलाइये, जिनके दर्शन और स्पर्शसे हरिभक्तिहीन, अत्यन्त अहंकारी, अपने मुँह अपनी बड़ाई करनेवाले, धूर्त, शठ एवं साधुनिन्दक अत्यन्त अधम मानवतक तुरंत पवित्र हो जाते हैं तथा जिनके नहाने-धोनेसे सम्पूर्ण

---

* मद्भक्ता यत्र तिष्ठन्ति पादं प्रक्षालयन्ति च। तत्स्थानं च महातीर्थं सुपवित्रं भवेद् ध्रुवम्॥
(प्रकृतिखण्ड ६। ९४)

तीर्थोंमें पवित्रता आ जाती है; जिनके चरणोंकी धूलिसे तथा चरणोदकसे पृथ्वीका कल्मष दूर हो जाता है तथा जिनका दर्शन एवं स्पर्श करनेके लिये भारतवर्षमें लोग लालायित रहते हैं; क्योंकि विष्णुभक्त पुरुषोंका समागम सम्पूर्ण प्राणियोंके लिये परम लाभदायक है। जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं हैं और न मृण्मय एवं प्रस्तरमय देवता ही देवता हैं; क्योंकि वे दीर्घकालतक सेवा करनेपर ही पवित्र करते हैं। अहो! साक्षात् देवता तो विष्णु-भक्तोंको मानना चाहिये, जो क्षणभरमें पवित्र कर देते हैं।*

सूतजी कहते हैं—शौनक! महालक्ष्मीकी बात सुनकर उनके आराध्य स्वामी भगवान् श्रीहरिका मुखमण्डल मुस्कानसे खिल उठा। फिर वे अत्यन्त गूढ़ एवं श्रेष्ठ रहस्य कहनेके लिये प्रस्तुत हो गये।

श्रीभगवान् बोले—लक्ष्मी! भक्तोंके लक्षण श्रुति एवं पुराणोंमें छिपे हुए हैं। इन पुण्यमय लक्षणोंमें पापोंका नाश करने, सुख देने तथा भुक्ति-मुक्ति प्रदान करनेकी प्रचुर शक्ति है। जिसको सद्गुरुके द्वारा विष्णुका मन्त्र प्राप्त होता है (और जो सब कुछ छोड़कर केवल मुझको ही सर्वस्व मानता है), उसीको वेद-वेदाङ्ग पुण्यात्मा एवं श्रेष्ठ मनुष्य बतलाते हैं। ऐसे व्यक्तिके जन्म लेनेमात्रसे पूर्वके सौ पुरुष, चाहे वे स्वर्गमें हों अथवा नरकमें—तुरंत मुक्तिके अधिकारी हो जाते हैं। यदि उन पूर्वजोंमेंसे किन्हींका कहीं जन्म हो गया है तो उन्होंने जिस योनिमें जन्म पाया है, वहीं उनमें जीवन्मुक्तता आ जाती है और समयानुसार वे परमधाममें चले जाते हैं। मुझमें भक्ति रखनेवाला मानव मेरे गुणोंसे सम्पन्न होकर मुक्त हो जाता है। उसकी वृत्ति मेरे गुणका अनुसरण करनेमें ही लगी रहती है। वह सदा मेरी कथा-वार्तामें लगा रहता है। मेरा गुणानुवाद सुननेमात्रसे वह आनन्दमग्न हो उठता है। उसका शरीर पुलकित हो जाता है और वाणी गद्गद हो जाती है। उसकी आँखोंमें आँसू भर आते हैं और वह अपनी सुधि-बुधि खो बैठता है। मेरी पवित्र सेवामें नित्य नियुक्त रहनेके कारण सुख, चार प्रकारकी सालोक्यादि मुक्ति, ब्रह्माका पद अथवा अमरत्व—कुछ भी पानेकी अभिलाषा वह नहीं करता। ब्रह्मा, इन्द्र एवं मनुकी उपाधि तथा स्वर्गके राज्यका सुख—ये सभी परम दुर्लभ हैं; किंतु मेरा भक्त स्वप्नमें भी इनकी इच्छा नहीं करता।† ऐसे मेरे बहुत-से भक्त भारतवर्षमें निवास करते हैं। उन भक्तोंके-जैसा जन्म सबके लिये सुलभ नहीं है। जो सदा मेरा गुणानुवाद सुनते और सुनने योग्य पद्योंको गाकर आनन्दसे विह्वल हो जाते हैं, वे बड़भागी भक्त अन्य साधारण मनुष्य, तीर्थ एवं मेरे परमधामको भी पवित्र करके धराधामपर पधारते हैं।

पद्मे! इस प्रकार मैंने तुम्हारे प्रश्नका समाधान कर दिया। अब तुम्हें जो उचित जान पड़े, वह करो। तदनन्तर वे सभी देवियाँ, भगवान् श्रीहरिने जो कुछ आज्ञा दी थी, उसीके अनुसार कार्य करनेमें संलग्न हो गयीं। स्वयं भगवान् अपने सुखदायी आसनपर विराजमान हो गये।

(अध्याय ६)

---

*न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः। ते पुनन्त्यपि कालेन विष्णुभक्ताः क्षणादहो॥
(प्रकृतिखण्ड ६। ११०)

†न वाञ्छन्ति सुखं मुक्तिं सालोक्यादिचतुष्टयम्। ब्रह्मत्वममरत्वं वा तद्वाञ्छा मम सेवने॥
इन्द्रत्वं च मनुत्वं च ब्रह्मत्वं च सुदुर्लभम्। स्वर्गराज्यादिभोगं च स्वप्नेऽपि च न वाञ्छति॥
(प्रकृतिखण्ड ६। ११९-१२०)

कलियुगके भावी चरित्रका, कालमानका तथा गोलोककी श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर सरस्वती अपनी एक कलासे तो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें पधारीं तथा पूर्ण अंशसे उन्हें भगवान् श्रीहरिके निकट रहनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। भारतमें पधारनेसे 'भारती', ब्रह्माकी प्रेमभाजन होनेसे 'ब्राह्मी' तथा वचनकी अधिष्ठात्री होनेसे ये 'वाणी' नामसे विख्यात हुईं। श्रीहरि सम्पूर्ण विश्वमें व्याप्त रहते हुए भी सागरके जल-स्रोतमें शयन करते देखे जाते हैं; अतः 'सरस्' से युक्त होनेके कारण उनका एक नाम 'सरस्वान्' है और उनकी प्रिया होनेसे इन देवीको 'सरस्वती' कहा जाता है। नदीरूपसे पधारकर ये सरस्वती परम पावन तीर्थ बन गयीं। पापीजनोंके पापरूपी ईंधनको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निस्वरूपा हैं।

नारद! तत्पश्चात् वाणीके शापसे गङ्गा अपनी कलासे धरातलपर आयीं। भगीरथके सत्प्रयत्नसे इनका शुभागमन हुआ। ये गङ्गा आ ही रही थीं कि शंकरने इन्हें अपने मस्तकपर धारण कर लिया। कारण, गङ्गाके वेगको केवल शंकर ही सँभाल सकते थे। अतएव उनके वेगको सहनेमें असमर्थ पृथ्वीकी प्रार्थनासे वे इस कार्यके लिये प्रस्तुत हो गये। फिर पद्मा अर्थात् लक्ष्मी अपनी एक कलासे भारतवर्षमें नदीरूपसे पधारीं। इनका नाम 'पद्मावती' हुआ। ये स्वयं पूर्ण अंशसे भगवान् श्रीहरिकी सेवामें उनके समीप ही रहीं। तदनन्तर अपनी एक-दूसरी कलासे वे भारतमें राजा धर्मध्वजके यहाँ पुत्रीरूपसे प्रकट हुईं। उस समय इनका नाम 'तुलसी' पड़ा। पहले सरस्वतीके शापसे और फिर श्रीहरिकी आज्ञासे इन विश्वपावनी देवीने अपनी कलाद्वारा वृक्षमयरूप धारण किया। कलिमें पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें रहकर ये तीनों देवियाँ सरित्-रूपका परित्याग करके वैकुण्ठमें चली आयेंगी। काशी तथा वृन्दावनके अतिरिक्त अन्य प्रायः सभी तीर्थ भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे उन देवियोंके साथ वैकुण्ठ चले जायँगे। शालग्राम, श्रीहरिकी मूर्ति पुरुषोत्तम भगवान् जगन्नाथ कलिके दस हजार वर्ष व्यतीत होनेपर भारतवर्षको छोड़कर अपने धामको पधारेंगे। इनके साथ ही साधु, पुराण, शङ्ख, श्राद्ध, तर्पण तथा वेदोक्त कर्म भी भारतवर्षसे उठ जायँगे। देवपूजा, देवनाम, देवताओंके गुणोंका कीर्तन, वेद, शास्त्र, पुराण, संत, सत्य, धर्म, ग्रामदेवता, व्रत, तप और उपवास—ये सब भी उनके साथ ही इस भारतसे चले जायँगे। (इनमें लोगोंकी श्रद्धा नहीं रह जायगी।)

प्रायः सभी लोग मद्य और मांसका सेवन करेंगे। झूठ और कपटसे किसीको घृणा न होगी। उपर्युक्त देवी एवं देवताओंके भारतवर्ष छोड़ देनेके पश्चात् शठ, क्रूर, दाम्भिक, अत्यन्त अहंकारी, चोर, हिंसक—ये सब संसारमें फैल जायँगे। पुरुषभेद (परस्पर मैत्रीका अभाव) होगा। अपने अथवा पुरुषका भेद, स्त्रीका भेद, विवाह, वाद-निर्णय, जाति या वर्णका निर्णय, अपने या पराये स्वामीका भेद तथा अपनी-परायी वस्तुओंका भेद भी आगे चलकर नहीं रहेगा। सभी पुरुष स्त्रियोंके अधीन होकर रहेंगे। घर-घरमें पुंश्चलियोंका निवास होगा। वे दुराचारिणी स्त्रियाँ सदा डाँट-फटकारकर अपने पतियोंको पीटेंगी। गृहिणी घरकी पूरी मालकिन बनी रहेगी, घरका स्वामी नौकरसे भी अधिक अधम समझा जायगा। घरमें जो बलवान् होंगे, उन्हींको कर्ता माना जायगा। भाई-बन्धु वे ही समझे जायँगे, जिनका सम्बन्ध योनि या जन्मको लेकर होगा, जैसे पुत्र, भाई आदि। (अर्थात् जरा भी दूरके सम्पर्कवालेको लोग भाई-बन्धु भी नहीं मानेंगे।) विद्याध्ययनसे सम्बन्ध रखनेवाले गुरु-

भाई आदिके साथ कोई बात भी नहीं करेगा। पुरुष अपने ही परिवारके लोगोंसे अन्य अपरिचित व्यक्तियोंकी भाँति व्यवहार करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्ण अपनी जातिके आचार-विचारको छोड़ देंगे। संध्या-वन्दन और यज्ञोपवीत आदि संस्कार तो प्रायः बंद ही हो जायँगे। चारों ही वर्ण म्लेच्छके समान आचरण करेंगे। प्रायः सभी लोग अपने शास्त्रोंको छोड़कर म्लेच्छ-शास्त्र पढ़ेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—चारों वर्णोंके लोग सेवावृत्तिसे जीविका चलायेंगे। सम्पूर्ण प्राणियोंमें सत्यका अभाव हो जायगा। जमीनपर धान्य नहीं उपजेंगे। वृक्ष फलहीन हो जायँगे। गौओंमें दूध देनेकी शक्ति नहीं रहेगी। लोग बिना मक्खनके दूधका व्यवहार करेंगे। स्त्री और पुरुषमें प्रेमका अभाव होगा। गृहस्थ असत्य भाषण करेंगे। राजाओंका तेज—अस्तित्व समाप्त हो जायगा। प्रजा भयानक करके भारोंसे अत्यन्त कष्ट पायेगी। चारों वर्णोंमें धर्म और पुण्यका नितान्त अभाव हो जायगा। लाखोंमें कोई एक भी पुण्यवान् न हो सकेगा। बुरी बातें और बुरे शब्दोंका ही व्यवहार होगा। जंगलोंमें रहनेवाले लोग भी 'कर'के भारसे कष्ट भोगेंगे। नदियों और तालाबोंपर धान्य होंगे। अर्थात् समयोचित वर्षाके अभावसे अन्यत्र खेती न होनेके कारण लोग इनके तटपर ही खेती करेंगे। कलियुगमें सम्भ्रान्त कुलके पुरुषोंकी अवनति होगी।

नारद! कलिके मनुष्य अश्लीलभाषी, धूर्त, शठ और असत्यवादी होंगे। भलीभाँति जोते-बोये हुए खेत भी धान्य देनेमें असमर्थ रहेंगे। नीच वर्णवाले धनी होनेके कारण श्रेष्ठ माने जायँगे। देवभक्तोंमें नास्तिकता आ जायगी। नगरनिवासी हिंसक, निर्दयी तथा मनुष्यघाती होंगे। कलिमें प्रायः स्त्री और पुरुष—रोगी, थोड़ी उम्रवाले और युवा-अवस्थासे रहित होंगे। सोलह वर्षमें ही उनके सिरके बाल पक जायँगे। बीस वर्षमें उन्हें बुढ़ापा घेर लेगा। कलियुगमें भगवन्नाम बेचा जायगा। मिथ्या दान होगा—मनुष्य अपनी कीर्ति बढ़ानेके लिये दान देकर स्वयं पुनः उसे वापस ले लेंगे। देववृत्ति, ब्राह्मणवृत्ति अथवा गुरुकुलवृत्ति—चाहे वह अपनी दी हुई हो अथवा दूसरेकी—कलिके मानव उसे छीन लेंगे। कलियुगमें मनुष्यको अगम्यागमनमें कोई हिचक न रहेगी। कलियुगमें स्त्रियों और पतियोंका निर्णय नहीं हो सकेगा। अर्थात् सभी स्त्री-पुरुषोंमें अवैध व्यवहार होंगे। प्रजा किन्हीं ग्रामों और धनोंपर अपना पूर्ण अधिकार नहीं प्राप्त कर सकेगी। प्रायः सब लोग अप्रिय वचन बोलेंगे। सभी चोर और लम्पट होंगे। सभी एक-दूसरेकी हिंसा करनेवाले एवं नरघाती होंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य—सबके वंशजोंमें पाप प्रवेश कर जायगा। सभी लोग लाख, लोहा, रस और नमकका व्यापार करेंगे। पञ्चयज्ञ करनेमें द्विजोंकी प्रवृत्ति न होगी। यज्ञोपवीत पहनना उनके लिये भार हो जायगा। वे संध्या-वन्दन और शौचसे विहीन रहेंगे। पुंश्चली, सूदसे जीविका चलानेवाली तथा कुटनी स्त्री रजस्वला रहती हुई भी ब्राह्मणोंके घर भोजन बनायेगी। अन्नोंमें, स्त्रियोंमें और आश्रमवासी मनुष्योंमें कोई नियम नहीं रहेगा। घोर कलिमें प्रायः सभी म्लेच्छ हो जायँगे।

इस प्रकार जब सम्यक् प्रकारसे कलियुग आ जायगा, तब सारी पृथ्वी म्लेच्छोंसे भर जायगी। तब विष्णुयशा नामक ब्राह्मणके घर उनके पुत्ररूपसे भगवान् कल्कि प्रकट होंगे। सुप्रसिद्ध पराक्रमी ये कल्कि भगवान् नारायणके अंश हैं। ये एक बहुत ऊँचे घोड़ेपर चढ़कर अपनी विशाल तलवारसे म्लेच्छोंका विनाश करेंगे और तीन रातमें ही पृथ्वीको म्लेच्छशून्य कर देंगे। यों वसुधाको म्लेच्छरहित करके वे स्वयं अन्तर्धान हो जायँगे। तब एक बार पृथ्वीपर

अराजकता फैल जायगी। डाकू सर्वत्र लूट-पाट मचाने लगेंगे। तदनन्तर मोटी धारसे असीम जल बरसने लगेगा। लगातार छः दिन-रात वर्षा होगी। पृथ्वीपर सर्वत्र जल-ही-जल दिखायी पड़ेगा। पृथ्वी प्राणी, वृक्ष, गृहसे शून्य हो जायगी। मुने! इसके बाद बारह सूर्य एक साथ उदय होंगे, जिनके प्रचण्ड तेजसे पृथ्वी सूख जायगी।

यों होनेपर दुर्धर्ष कलियुग समाप्त हो जायगा, तब तप और सत्यसे सम्पन्न धर्मका पूर्णरूपसे प्राकट्य होगा। उस समय तपस्वियों, धर्मात्माओं और वेदज्ञ ब्राह्मणोंसे पुनः पृथ्वी शोभा पायेगी। घर-घरमें स्त्रियाँ पतिव्रता और धर्मात्मा होंगी। धर्मप्राण न्यायपरायण क्षत्रियोंके हाथमें राज्यका प्रबन्ध होगा। वे सभी ब्राह्मणोंके भक्त, मनस्वी, तपस्वी, प्रतापी, धर्मात्मा और पुण्यकर्मके प्रेमी होंगे। वैश्य व्यापारमें तत्पर रहेंगे। वे मनमें धार्मिक भावना रखते हुए ब्राह्मणोंके प्रति श्रद्धा रखेंगे। शूद्र धर्मपर आस्था रखते हुए पतिव्रतापूर्वक सेवा करेंगे। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्योंके वंशज भगवती जगदम्बा शक्तिके परम उपासक होंगे। उनके द्वारा देवीके मन्त्रका निरन्तर जप होने लगेगा। सब लोग देवीके ध्यानमें तत्पर रहेंगे। समयानुसार व्यवहार करनेवाले पुरुषोंमें श्रुति, स्मृति और पुराणका पूर्ण ज्ञान प्राप्त रहेगा। इसीको सत्ययुग कहते हैं। इस युगमें धर्म पूर्णरूपसे रहता है। त्रेतामें धर्म तीन पैरसे, द्वापरमें दो पैरसे और कलिमें केवल एक पैरसे रहता है। घोर कलि आनेपर तो यह सम्पूर्ण पैरोंसे हीन हो जाता है!

विप्र! सात दिन हैं। सोलह तिथियाँ कही गयी हैं। बारह महीने और छः ऋतुएँ होती हैं। शुक्ल और कृष्ण—दो पक्ष तथा उत्तरायण एवं दक्षिणायन—दो अयन होते हैं। चार पहरका दिन होता है और चार पहरकी रात होती है। तीस दिनोंका एक महीना होता है। संवत्सर तथा इडावत्सर आदि भेदसे पाँच प्रकारके वर्ष समझने चाहिये। यही कालकी संख्याका नियम है। जैसे दिन आते-जाते रहते हैं, ऐसे ही चारों युगोंका भी आना-जाना लगा रहता है। मनुष्योंका एक वर्ष पूरा होनेपर देवताओंका एक दिन-रात होता है। कालकी संख्याके विशेषज्ञ पुरुषोंका सिद्धान्त है कि मनुष्योंके तीन सौ साठ युग व्यतीत होनेपर देवताओंका एक युग बीतता है। इस प्रकारके इकहत्तर दिव्य युगोंको एक मन्वन्तर कहते हैं। एक इन्द्र एक मन्वन्तरपर्यन्त रहते हैं। यों अट्ठाईस इन्द्र बीत जानेपर ब्रह्माका एक दिन-रात होता है। इस मानसे एक सौ आठ वर्ष व्यतीत होनेपर ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। इसीको प्राकृत प्रलय समझना चाहिये। उस समय पृथ्वी नहीं दिखायी पड़ती। पृथ्वीसहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जलमें लीन हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव और ऋषि आदि सभी परात्पर श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं। उन्हींमें प्रकृति भी लीन हो जाती है। मुने! इसीको प्राकृत प्रलय कहते हैं। इस प्रकार प्राकृत प्रलय हो जानेपर ब्रह्माकी आयु समाप्त हो जाती है। मुनिवर! इतने सुदीर्घ कालको परमात्मा श्रीकृष्णका एक निमेष कहते हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णके एक निमेषमें सम्पूर्ण विश्व और अखिल ब्रह्माण्ड नष्ट हो जाते हैं। केवल गोलोक, वैकुण्ठ तथा पार्षदोंसहित श्रीकृष्ण ही शेष रहते हैं। श्रीकृष्णका निमेषमात्र ही प्रलय है, जिसमें सारा ब्रह्माण्ड जलमग्न हो जाता है। निमेषकालके अनन्तर फिर सृष्टिका क्रम चालू हो जाता है। यों सृष्टि और प्रलय होते रहते हैं। कितने कल्प गये और आये—इसकी संख्या कौन जान सकता है? नारद! सृष्टियों, प्रलयों, ब्रह्माण्डों और ब्रह्माण्डमें रहनेवाले ब्रह्मादि प्रधान प्रबन्धकोंकी संख्याका परिज्ञान भला किस पुरुषको हो सकता है?

परमात्मा श्रीकृष्ण ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंके एकमात्र ईश्वर हैं, जो प्रकृतिसे परे हैं। उनका विग्रह सत्, चित् और आनन्दमय है। ब्रह्मा प्रभृति

देवता, महाविराट् और स्वल्पविराट्—सभी उन परम प्रभु परमात्माके अंश हैं। प्रकृति भी उन्हींका अंश कही गयी है। वे श्रीकृष्ण दो रूपोंमें विभक्त हो जाते हैं—एक द्विभुज और दूसरे चतुर्भुज। चतुर्भुज श्रीहरि वैकुण्ठमें विराजते हैं और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्णका गोलोकमें निवास है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त समस्त चराचर जगत् (प्राकृत सर्गके अन्तर्गत) है। जो-जो प्राकृतिक सृष्टि है, वह सब नश्वर ही है। इस प्रकार सृष्टिके कारणभूत परब्रह्म परमात्मा नित्य, सत्य, सनातन, स्वतन्त्र, निर्गुण, निर्लिप्त और प्रकृतिसे परे हैं; उनको न कोई लौकिक उपाधि है और न कोई भौतिक आकार। भक्तोंपर अनुग्रह करना उनका स्वरूप है—सहज स्वभाव है। वे अत्यन्त कमनीय हैं। उनकी अङ्गकान्ति नूतन जलधरके समान है। उनके दो भुजाएँ हैं। हाथमें मुरली है। गोपों-जैसा वेष और किशोर अवस्था है। वे सर्वज्ञ, सर्वसेव्य, परमात्मा एवं ईश्वर हैं। तुम उनके स्वरूपको ऐसा ही जानो।

इन्हींके दिये हुए ज्ञानसे विराट् पुरुष (विष्णु)-के नाभिकमलसे उत्पन्न ज्ञानस्वरूप ब्रह्मा अखिल ब्रह्माण्डकी सृष्टि करते हैं तथा सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता मृत्युञ्जय शिव संहारका कार्य सँभालते हैं। इन्हींके दिये ज्ञानसे तथा इन्हींके लिये किये गये तपके प्रभावसे वे उनके समान ही महान् एवं सर्वेश्वर हुए हैं। उन परमात्मा श्रीकृष्णके ज्ञानके प्रभावसे ही भगवान् विष्णु महान् विभूतिसे सम्पन्न, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, सर्वव्यापी, सबके रक्षक, सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेमें समर्थ, सर्वेश्वर तथा समस्त जगत्के अधिपति हुए हैं। उन्हींके ज्ञानसे, उन्हींके लिये की गयी तपस्यासे तथा उन्हींके प्रति भक्ति और उन्हींकी सेवासे प्रकृति सर्वशक्तिमती महामाया और सर्वेश्वरी हुई हैं। उन्हींके ज्ञान, भजन, तपस्या एवं सेवा करनेसे देवमाता सावित्री वेदोंकी अधिष्ठात्री देवी और वेदमाता हुई हैं, वेदज्ञा तथा द्विजोंकी पूजनीया हो गयी हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी सेवा और तपका ही प्रभाव है कि सरस्वतीको समस्त विद्याकी अधिष्ठात्री माना जाता है। अखिल विद्वान् उनकी उपासना करते हैं। सनातनी महालक्ष्मी धन और सस्यकी अधिष्ठात्री देवी तथा सब सम्पत्तियोंको देनेमें समर्थ हुई हैं। इन्हींकी उपासिका होनेसे दुर्गाको सब लोग पूजते हैं और वे सर्वेश्वरी सबकी कामनाएँ पूर्ण कर देती हैं। इतना ही नहीं, वे दुर्गतिनाशिनी दुर्गा इन्हींकी कृपासे समस्त गाँवोंकी ग्रामदेवी, सम्पूर्ण सम्पत्ति देनेमें समर्थ, सबके द्वारा स्तुत्य और सर्वज्ञ हुई हैं। उन्होंने सर्वेश्वर शिवको जो पतिरूपमें प्राप्त किया है, यह उनकी श्रीकृष्ण-सेवाका ही फल है।

श्रीकृष्णके वामभागसे प्रकट हुई श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्रेमसे आराधना और सेवा करके ही उनके प्रेमकी अधिष्ठात्री तथा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हुई हैं। श्रीकृष्णकी सेवासे ही उन्होंने सबसे अधिक मनोहर रूप, सौभाग्य, मान, गौरव तथा श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें स्थान—उनका पत्नीत्व प्राप्त किया है। पूर्वकालमें राधाने शतशृङ्ग पर्वतपर एक सहस्र दिव्य युगोंतक निराहार रहकर तपस्या की। इससे वे अत्यन्त कृशकाय हो गयीं। श्रीकृष्णने देखा, राधा चन्द्रमाकी एक कलाके समान अत्यन्त कृश हो गयी हैं, अब इनके शरीरमें साँसका चलना भी बंद हो गया है, तब वे प्रभु करुणासे द्रवित हो उन्हें छातीसे लगाकर फूट-फूटकर रोने लगे। उन्होंने राधाको वह सारभूत वर दिया, जो अन्य सब लोगोंके लिये दुर्लभ है। वे बोले—'प्राणवल्लभे! तुम्हारा स्थान मेरे वक्षःस्थलपर है, तुम यहीं रहो। मुझमें तुम्हारी अविचल प्रेम-भक्ति हो। सौभाग्य, मान, प्रेम और गौरवकी दृष्टिसे तुम मेरे लिये सबसे श्रेष्ठ और सर्वाधिक प्रियतमा बनी रहो। संसारकी समस्त युवतियोंमें तुम्हारा सबसे ऊँचा स्थान है। तुम

सबसे अधिक महत्त्व तथा गौरव प्राप्त करो। मैं

सदा तुम्हारे गुण गाऊँगा, पूजा करूँगा। तुम सदा मुझे अपने अधीन समझो। मैं तुम्हारी प्रत्येक आज्ञाका पालन करनेके लिये बाध्य रहूँगा।' ऐसा कहकर जगदीश्वर श्रीकृष्णने उन्हें सचेत किया और अपनी उन प्राणवल्लभाको सौतके कष्टसे मुक्त कर दिया।

जिन-जिन देवताओंकी जो-जो देवियाँ पतिद्वारा सम्मानित हुई हैं, उनके उस सम्मानमें श्रीकृष्णकी आराधना ही कारण है। मुने! जिनकी जैसी तपस्या है, उन्हें वैसा ही फल प्राप्त हुआ है। देवी दुर्गाने सहस्र दिव्य वर्षोंतक हिमालयपर तप करते हुए श्रीकृष्ण-चरणोंका ध्यान किया। इससे वे सबकी पूजनीया हो गयीं। सरस्वती श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये लाख दिव्य वर्षोंतक गन्धमादन पर्वतपर तपस्या करके सबकी वन्दनीया हुई हैं। लक्ष्मी सौ दिव्य युगोंतक पुष्करतीर्थमें तपस्यापूर्वक श्रीकृष्णकी आराधना करके समस्त सम्पदाओंको देनेमें समर्थ हुई हैं। सावित्री मलयाचलपर साठ हजार दिव्य वर्षोंतक तप एवं श्रीकृष्ण-चरणोंका चिन्तन करके द्विजोंकी पूजनीया हो गयी हैं।

मुने! पूर्वकालमें ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवने सौ मन्वन्तरोंतक श्रीकृष्ण-प्रीतिके लिये तपस्या करके सृष्टि, पालन और संहारका अधिकार प्राप्त किया था। धर्म सौ मन्वन्तरोंतक तप करके सर्वपूज्य हुए। नारद! शेषनाग, सूर्यदेव, इन्द्र तथा चन्द्रमाने भी एक-एक मन्वन्तरतक भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये तप किया था। वायुदेवता सौ दिव्य युगोंतक भक्तिभावसे तपस्या करके सबके प्राण, सबके द्वारा पूजनीय तथा सबके आधार बन गये। इस प्रकार श्रीकृष्ण-प्रीतिके लिये तपस्या करके सब देवता, मुनि, मानव, राजा तथा ब्राह्मण लोकमें पूजित हुए हैं। इस प्रकार मैंने तुमसे यह पुराण तथा आगमका सारभूत सारा तत्त्व सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ७)

पृथ्वीकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग, ध्यान और पूजनका प्रकार तथा स्तुति एवं पृथ्वीके प्रति शास्त्रविपरीत व्यवहार करनेपर नरकोंकी प्राप्तिका वर्णन

नारदजीने कहा—भगवन्! आपने बतलाया है कि श्रीकृष्णके निमेषमात्रमें ब्रह्माकी आयु पूरी हो जाती है। उनका सत्ताशून्य हो जाना ही 'प्राकृतिक प्रलय' कहा जाता है। उस समय पृथ्वी अदृश्य हो जाती है। सम्पूर्ण विश्व जलमें डूब जाता है। सब-के-सब परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं। तब उस समय पृथ्वी छिपकर कहाँ रहती है और सृष्टिके समय वह पुनः कैसे प्रकट हो जाती है? धन्या, मान्या, सबकी आश्रयरूपा एवं विजयशालिनी होनेका सौभाग्य उसे पुनः कैसे प्राप्त होता है? प्रभो! अब आप पृथ्वीकी उत्पत्तिके मङ्गलमय चरित्रको सुनानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—नारद! श्रुति कहती है कि सम्पूर्ण सृष्टियोंके आरम्भमें श्रीकृष्णसे ही सबकी उत्पत्ति होती है और समस्त प्रलयोंके अवसरपर प्राणी उन्हींमें लीन भी हो जाते हैं। अब पृथ्वीके जन्मका प्रसङ्ग सुनो। कुछ लोग कहते हैं, यह आदरणीया पृथ्वी मधु और कैटभके मेदसे उत्पन्न हुई है। इसका भाव यह है कि उन दैत्योंके जीवनकालमें पृथ्वी स्पष्ट दिखलायी नहीं पड़ती थी। वे जब मर गये, तब उनके शरीरसे मेद निकला—वही सूर्यके तेजसे सूख गया। अतः 'मेदिनी' इस नामसे पृथ्वी विख्यात हुई। इस मतका स्पष्टीकरण सुनो। पहले सर्वत्र जल-ही-जल दृष्टिगोचर हो रहा था। पृथ्वी जलसे ढकी थी। मेदसे केवल उसका स्पर्श हुआ। अतः लोग उसे 'मेदिनी' कहने लगे। मुने! अब पृथ्वीके सार्थक जन्मका प्रसङ्ग कहता हूँ। यह चरित्र सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाला है।

मैं पुष्करक्षेत्रमें था। महाभाग धर्मके मुखसे जो कुछ सुन चुका हूँ, वही तुमसे कहूँगा। महाविराट् पुरुष अनन्तकालसे जलमें विराजमान रहते हैं—यह स्पष्ट है। समयानुसार उनके भीतर सर्वव्यापी समष्टि मल प्रकट होता है। महाविराट् पुरुषके सभी रोमकूप उसके आश्रय बन जाते हैं। मुने! उन्हीं रोमकूपोंसे पृथ्वी निकल आती है। जितने रोमकूप हैं, उन सबमेंसे एक-एकसे जलसहित पृथ्वी बार-बार प्रकट होती और छिपती रहती है। सृष्टिके समय प्रकट होकर जलके ऊपर स्थिर रहना और प्रलयकाल उपस्थित होनेपर छिपकर जलके भीतर चले जाना—यही इसका नियम है। अखिल ब्रह्माण्डमें यह विराजती है। वन और पर्वत इसकी शोभा बढ़ाये रहते हैं। यह सात समुद्रोंसे घिरी रहती है। सात द्वीप इसके अङ्ग हैं। हिमालय और सुमेरु आदि पर्वत तथा सूर्य एवं चन्द्रमा प्रभृति ग्रह इसे सदा सुशोभित करते हैं। महाविराट्की आज्ञाके अनुसार ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता प्रकट होते एवं समस्त प्राणी इसपर रहते हैं। पुण्यतीर्थ तथा पवित्र भारतवर्ष-जैसे देशोंसे सम्पन्न होनेका इसे सुअवसर मिलता है। यह पृथ्वी स्वर्णमय भूमि है। इसपर सात स्वर्ग हैं। इसके नीचे सात पाताल हैं। ऊपर ब्रह्मलोक है। ब्रह्मलोकसे भी ऊपर ध्रुवलोक है।

नारद! इस प्रकार इस पृथ्वीपर अखिल विश्वका निर्माण हुआ है। ये निर्मित सभी विश्व नश्वर हैं। यहाँतक कि 'प्राकृत प्रलय' का अवसर आनेपर ब्रह्मा भी चले जाते हैं। उस समय केवल महाविराट् पुरुष विद्यमान रहते हैं। कारण, सृष्टिके आरम्भमें ही परब्रह्म श्रीकृष्णने इन्हें प्रकट करके इस कार्यमें नियुक्त कर दिया है। सृष्टि और प्रलय प्रवाहरूपसे नित्य हैं—इनका क्रम निरन्तर चालू रहता है। ये समयपर नियन्त्रण रखनेवाली अदृष्ट शक्तिके अधीन होकर रहते हैं। प्रवाहक्रमसे पृथ्वी भी नित्य है। वाराहकल्पमें यह मूर्तिमान् रूपसे विराजमान हुई थी और देवताओंने इसका पूजन किया था। मुनि, मनु, गन्धर्व और ब्राह्मण—प्रायः सभी इसकी पूजामें सम्मिलित हुए थे। उस समय भगवान्‌का वाराहावतार हुआ था। श्रुतिके मतसे यह पृथ्वी उनकी पत्नीके रूपमें विराजमान हुई। इससे मङ्गलका जन्म हुआ और मङ्गलसे घटेशकी उत्पत्ति हुई।

नारदने पूछा—प्रभो! देवताओंने वाराहकल्पमें पृथ्वीकी किस रूपसे पूजा की थी? सबको आश्रय प्रदान करनेवाली इस साध्वी देवीकी उस कल्पमें स्वयं भगवान् वाराहने तथा अन्य सबने भी पूजा की थी। भगवन्! इसके पूजनका विधान, जलके नीचेसे इसके ऊपर उठनेका क्रम एवं मङ्गलके जन्मका कल्याणमय प्रसङ्ग विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—नारद! बहुत पहलेकी बात है। उस समय वाराहकल्प चल

रहा था। ब्रह्माके स्तुति करनेपर भगवान् श्रीहरि हिरण्याक्षको मारकर पृथ्वीको रसातलसे निकाल ले आये। उसे जलपर इस प्रकार रख दिया, मानो तालाबमें कमलका पत्ता हो। उसीपर ब्रह्माने सम्पूर्ण मनोहर विश्वकी रचना की। पृथ्वीकी अधिष्ठात्री एक परम सुन्दरी देवीके रूपमें थी। उसे देखकर भगवान् श्रीहरिके मनमें प्रेम हो गया। भगवान् वाराहकी कान्ति ऐसी थी, मानो करोड़ों सूर्य हों। उन्होंने अपना रूप परम मनोहर बना लिया तथा रतिके योग्य एक शय्या तैयार की। फिर उस देवीके साथ एक दिव्य वर्षतक वे एकान्तमें रहे। इसके बाद उन्होंने उस सुन्दरी देवीका संग छोड़ दिया और खेल-ही-खेलमें वे अपने पूर्व वाराहरूपसे विराजमान हो गये। उन्होंने परम साध्वी देवी पृथ्वीका ध्यान और पूजन किया। धूप, दीप, नैवेद्य, सिन्दूर, चन्दन, वस्त्र, फूल और बलि आदि सामग्रियोंसे पूजा करके भगवान्ने उससे कहा।

श्रीभगवान् बोले—शुभे! तुम सबको आश्रय प्रदान करनेवाली बनो। मुनि, मनु, देवता, सिद्ध और दानव आदि सबसे सुपूजित होकर तुम सुख पाओगी। अम्बुवाचीके अतिरिक्त दिनमें गृहप्रवेश, गृहारम्भ, वापी एवं तड़ागके निर्माण अथवा अन्य गृहकार्यके अवसरपर देवता आदि सभी लोग मेरे वरके प्रभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे। जो मूर्ख तुम्हारी पूजा नहीं करना चाहेंगे, उन्हें नरकमें जाना पड़ेगा।

उस समय पृथ्वी गर्भवती हो चुकी थी। उसी गर्भसे तेजस्वी मङ्गल नामक ग्रहकी उत्पत्ति हुई। भगवान्की आज्ञाके अनुसार उपस्थित सम्पूर्ण व्यक्ति पृथ्वीकी उपासना करने लगे। कण्वशाखामें कहे हुए मन्त्रोंको पढ़कर उन्होंने ध्यान किया और स्तुति की। मूलमन्त्र पढ़कर नैवेद्य अर्पण किया। यों त्रिलोकीभरमें पृथ्वीकी पूजा और स्तुति होने लगी।

नारदजीने कहा—भगवन्! पृथ्वीका किस प्रकार ध्यान किया जाता है, इसकी पूजाका प्रकार क्या है और कौन मूलमन्त्र है? सम्पूर्ण पुराणोंमें छिपे हुए इस प्रसङ्गको सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल हो रहा है। अतः बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! सर्वप्रथम भगवान् वाराहने इस पृथ्वीकी पूजा की। उनके पश्चात् ब्रह्मा उसके पूजनमें संलग्न हुए। तदनन्तर सम्पूर्ण प्रधान मुनियों, मनुओं और मानवोंद्वारा इसका सम्मान हुआ। नारद! अब मैं इसका ध्यान, पूजन और मन्त्र बतलाता हूँ, सुनो। 'ॐ ह्रीं श्रीं वसुधायै स्वाहा' इसी मन्त्रसे भगवान् विष्णुने इसका पूजन किया था। ध्यानका प्रकार यह है—'पृथ्वी देवीके श्रीविग्रहका वर्ण स्वच्छ कमलके समान उज्ज्वल है। मुख ऐसा जान पड़ता है,

मानो शरत्पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। सम्पूर्ण अङ्गोंमें ये चन्दन लगाये रहती हैं। रत्नमय अलंकारोंसे इनकी अनुपम शोभा होती है। ये समस्त रत्नोंकी

१-सौरमानसे आर्द्रा नक्षत्रके प्रथम चरणमें पृथ्वी ऋतुमती रहती है। उतने समयका नाम अम्बुवाची है।

आधारभूता और रत्नगर्भा हैं। रत्नोंकी खानें इनको गौरवान्वित किये हुए हैं। ये विशुद्ध चिन्मय वस्त्र धारण किये रहती हैं। इनके मुखपर मुस्कान छायी रहती है। सभी लोग इनकी वन्दना करते हैं। ऐसी भगवती पृथ्वीको मैं आराधना करता हूँ।[1] इसी प्रकार ध्यान करनेसे सब लोगोंद्वारा पृथ्वीकी पूजा सम्पन्न होती है। विप्रेन्द्र! अब कण्वशाखामें प्रतिपादित इनकी स्तुति सुनो।

भगवान् विष्णु बोले—विजयकी प्राप्ति करानेवाली वसुधे! मुझे विजय दो। तुम भगवान् यज्ञवराहकी पत्नी हो। जये! तुम्हारी कभी पराजय नहीं होती है। तुम विजयका आधार, विजयशील और विजयदायिनी हो। देवि! तुम्हीं सबकी आधारभूमि हो। सर्वबीजस्वरूपिणी तथा सम्पूर्ण शक्तियोंसे सम्पन्न हो। समस्त कामनाओंको देनेवाली देवि! तुम इस संसारमें मुझे सम्पूर्ण अभीष्ट वस्तु प्रदान करो। तुम सब प्रकारके शस्योंका घर हो। सब तरहके शस्योंसे सम्पन्न हो। सभी शस्योंको देनेवाली हो तथा समयविशेषमें समस्त शस्योंका अपहरण भी कर लेती हो। इस संसारमें तुम सर्वशस्यस्वरूपिणी हो। मङ्गलमयी देवि! तुम मङ्गलका आधार हो। मङ्गलके योग्य हो। मङ्गलदायिनी हो। मङ्गलमय पदार्थ तुम्हारे स्वरूप हैं। मङ्गलेश्वरि! तुम जगत्‌में मुझे मङ्गल प्रदान करो। भूमे! तुम भूमिपालोंका सर्वस्व हो, भूमिपालपरायणा हो तथा भूपालोंके अहंकारका मूर्तरूप हो। भूमिदायिनी देवि! मुझे भूमि दो*।

नारद! यह स्तोत्र परम पवित्र है। जो पुरुष पृथ्वीका पूजन करके इसका पाठ करता है, उसे अनेक जन्मोंतक भूपाल-सम्राट् होनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। इसे पढ़नेसे मनुष्य पृथ्वीके दानसे उत्पन्न पुण्यके अधिकारी बन जाते हैं। पृथ्वी-दानके अपहरणसे, दूसरेके कुएँको बिना उसकी आज्ञा लिये खोदनेसे, अम्बुवाची योगमें पृथ्वीको खोदनेसे और दूसरेकी भूमिका अपहरण करनेसे जो पाप होते हैं, उन पापोंसे इस स्तोत्रका पाठ करनेपर मनुष्य छुटकारा पा जाता है, इसमें संशय नहीं है। मुने! पृथ्वीपर वीर्य त्यागने तथा दीपक रखनेसे जो पाप होता है, उससे भी पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करनेसे मुक्त हो जाता है।

नारदजी बोले—भगवन्! पृथ्वीका दान करनेसे जो पुण्य तथा उसे छीनने, दूसरेकी भूमिका हरण करने, अम्बुवाचीमें पृथ्वीका उपयोग करने, भूमिपर वीर्य गिराने तथा जमीनपर दीपक रखनेसे जो पाप बनता है, उसे मैं सुनना चाहता हूँ। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! मेरे पूछनेके अतिरिक्त अन्य भी जो पृथ्वीजन्य पाप हैं, उनको उनके प्रतीकारसहित बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण बोले—मुने! जो पुरुष भारतवर्षमें किसी संध्यापूत ब्राह्मणको एक बित्ता भी भूमि दान करता है, वह भगवान् विष्णुके धाममें जाता है। फसलोंसे भरी-पूरी भूमिको ब्राह्मणके लिये अर्पण करनेवाला सत्पुरुष उतने ही वर्षोंतक भगवान् विष्णुके धाममें विराजता है, जितने उस जमीनके रज:कण हों। जो गाँव, भूमि और धान्य ब्राह्मणको देता है, उसके पुण्यसे

---

* विष्णुरुवाच—

यज्ञसूकरजाया त्वं जयं देहि जयावहे। जयेऽजये जयाधारे जयशीले जयप्रदे॥
सर्वाधारे सर्वबीजे सर्वशक्तिसमन्विते। सर्वकामप्रदे देवि सर्वेष्टं देहि मे भवे॥
सर्वशस्यालये सर्वशस्याढ्ये सर्वशस्यदे। सर्वशस्यहरे काले सर्वशस्यात्मिके भवे॥
मङ्गले मङ्गलाधारे मङ्गल्ये मङ्गलप्रदे। मङ्गलार्थे मङ्गलेशे मङ्गलं देहि मे भवे॥
भूमे भूमिपसर्वस्वे भूमिपालपरायणे। भूमिपाहंकाररूपे भूमिं देहि च भूमिदे॥

(प्रकृतिखण्ड ८। ५३—५७)

दाता और प्रतिगृहीता—दोनों व्यक्ति सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर वैकुण्ठधाममें स्थान पाते हैं। जो साधु पुरुष भूमिदानके लिये दाताको उत्साहित करता है, उसे अपने मित्र एवं गोत्रके साथ वैकुण्ठमें जानेका सौभाग्य प्राप्त होता है।

अपनी अथवा दूसरेकी दी हुई ब्राह्मणकी भूमि हरण करनेवाला व्यक्ति सूर्य एवं चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें स्थान पाता है। इतना ही नहीं, इस पापके प्रभावसे उसके पुत्र और पौत्र आदिके पास भी पृथ्वी नहीं ठहरती। वह श्रीहीन, पुत्रहीन और दरिद्र होकर घोर रौरव नरकमें गिरता है। जो गोचरभूमिको जोतकर धान्य उपार्जन करता है और वही धान्य ब्राह्मणको देता है तो इस निन्दित कर्मके प्रभावसे उसे देवताओंके वर्षसे सौ वर्षतक 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें रहना पड़ता है। गौओंके रहनेके स्थान, तड़ाग तथा रास्तेको जोतकर पैदा किये हुए अन्नका दान करनेवाला मानव चौदह इन्द्रकी आयुतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहता है। जो कामान्ध व्यक्ति एकान्तमें पृथ्वीपर वीर्य गिराता है, उसे वहाँकी जमीनमें जितने रजःकण हैं, उतने वर्षोंतक 'रौरव' नरकमें रहना पड़ता है। अम्बुवाचीमें भूमि खोदनेवाला मानव 'कृमिदंश' नामक नरकमें जाता और उसे वहाँ चार युगोंतक रहना पड़ता है। जो दूसरेके तड़ागमें पड़ी हुई कीचड़को निकालकर शुद्ध जल होनेपर स्नान करता है, उसे ब्रह्मलोकमें स्थान मिलता है। जो मन्दबुद्धि मानव भूमिपतिके पितरोंको श्राद्धमें पिण्ड न देकर श्राद्ध करता है, उसे अवश्य ही नरकगामी होना पड़ता है।

दीपक, शिवलिङ्ग, भगवतीकी मूर्ति, शङ्ख, यन्त्र, शालग्रामका जल, फूल, तुलसीदल, जपमाला, पुष्पमाला, कपूर, गोरोचन, चन्दनकी लकड़ी, रुद्राक्षकी माला, कुशकी जड़, पुस्तक और यज्ञोपवीत—इन वस्तुओंको भूमिपर रखनेसे मानव नरकमें वास करता है। गाँठमें बँधे हुए यज्ञसूत्रकी पूजा करना सभी द्विजातिवर्णोंके लिये अत्यावश्यक है। भूकम्प एवं ग्रहणके अवसरपर पृथ्वीको खोदनेसे बड़ा पाप लगता है। इस मर्यादाका उल्लङ्घन करनेसे दूसरे जन्ममें अङ्गहीन होना पड़ता है। इसपर सबके भवन बने हैं, इसलिये यह 'भूमि' कहलाती है। कश्यपकी पुत्री होनेसे 'काश्यपी' तथा स्थिररूप होनेसे 'स्थिरा' कही जाती है। महामुने! विश्वको धारण करनेसे 'विश्वम्भरा', अनन्तरूप होनेसे 'अनन्ता' तथा पृथुकी कन्या होनेसे अथवा सर्वत्र फैली रहनेसे इसका नाम 'पृथ्वी' पड़ा है।

(अध्याय ८-९)

गङ्गाकी उत्पत्तिका विस्तृत प्रसङ्ग

नारदजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! पृथ्वीका यह परम मनोहर उपाख्यान सुन चुका। अब आप गङ्गाका विशद प्रसङ्ग सुनानेकी कृपा कीजिये। प्रभो! सुरेश्वरी, विष्णुस्वरूपा एवं स्वयं विष्णुपदी नामसे विख्यात गङ्गा सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें किस प्रकार और किस युगमें पधारीं? किसकी प्रार्थना एवं प्रेरणासे उन्हें वहाँ जाना पड़ा? पापका उच्छेद करनेवाला यह पवित्र एवं पुण्यप्रद प्रसंग मैं सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! श्रीमान् सगर एक सूर्यवंशी सम्राट् हो चुके हैं। मनको मुग्ध करनेवाली उनकी दो रानियाँ थीं—वैदर्भी और शैब्या। उनकी पत्नी शैब्यासे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। कुलको बढ़ानेवाले उस सुन्दर पुत्रका नाम असमञ्जस पड़ा। उनकी दूसरी पत्नी वैदर्भीने पुत्रकी कामनासे भगवान् शंकरकी उपासना की।

शंकरके वरदानसे उसे भी गर्भ रह गया। पूरे सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर उसके गर्भसे एक मांसपिण्डकी उत्पत्ति हुई। उसे देखकर वह बहुत ही दुःखी हुई और उसने भगवान् शिवका ध्यान किया। तब भगवान् शंकर ब्राह्मणके वेषमें उसके पास पधारे और उन्होंने उस मांसपिण्डको साठ हजार भागोंमें बाँट दिया। वे सभी टुकड़े पुत्ररूपमें परिणत हो गये। उनके बल और पराक्रमकी सीमा नहीं रही। उनके परम तेजस्वी कलेवरने ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालीन सूर्यकी प्रभाका मानो हरण कर लिया था; परंतु वे सभी तेजस्वी कुमार कपिलमुनिके शापसे जलकर भस्म हो गये। यह दुःखद समाचार सुनकर राजा सगरकी आँखें निरन्तर जल बहाने लगीं। वे बेचारे घोर जंगलमें चले गये। तब उनके पुत्र असमञ्जसने गङ्गाको ले आनेके लिये तपस्या आरम्भ कर दी। वे बहुत कालतक तपस्या करते रहे। अन्तमें कालने उन्हें अपना ग्रास बना लिया। असमञ्जसके पुत्रका नाम अंशुमान् था। गङ्गाको ले आनेके लिये लम्बे समयतक तपस्या करनेके पश्चात् वे भी कालके गालमें चले गये।

अंशुमान्के पुत्र भगीरथ थे। भगीरथ भगवान्के परम भक्त, विद्वान्, श्रीहरिमें अटूट श्रद्धा रखनेवाले, गुणवान् तथा वैष्णव पुरुष थे। गङ्गाको ले आनेका निश्चय करके उन्होंने बहुत समयतक तपस्या की। अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके उन्हें साक्षात् दर्शन हुए। उस समय भगवान्के श्रीविग्रहसे ग्रीष्मकालीन करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। उनके दो भुजाएँ थीं। वे हाथमें मुरली लिये हुए थे। उनकी किशोर अवस्था थी। वे गोपके वेषमें पधारे थे। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये उन्होंने यह रूप धारण किया था। मुने! भगवान् श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परब्रह्म हैं। वे चाहे जैसा रूप बना सकते हैं। उस समय ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि उनकी स्तुति कर रहे थे और मुनियोंने उनके सामने अपने मस्तक झुका रखे थे। सदा निर्लिप्त, सबके साक्षी, निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले उन भगवान् श्रीकृष्णका मुख मुस्कानसे सुशोभित था। विशुद्ध चिन्मय वस्त्र तथा दिव्य रत्नोंसे निर्मित आभूषण उनके श्रीविग्रहको सुशोभित कर रहे थे। उनकी यह दिव्य झाँकी पाकर भगीरथने बार-बार उन्हें प्रणाम किया और स्तुति भी की। लीलापूर्वक उन्हें भगवान्से अभीष्ट वर भी मिल गया। वे चाहते थे कि मेरे पूर्वज तर जायँ। परम आनन्दके साथ उन्होंने भगवान्की दिव्य स्तुति की थी।

भगवान् श्रीहरिने गङ्गाजीसे कहा—सुरेश्वरि! तुम सरस्वतीके शापसे अभी भारतवर्षमें जाओ और मेरी आज्ञाके अनुसार सगरके सभी पुत्रोंको पवित्र करो। तुमसे स्पर्शित वायुका संयोग पाकर ही वे सभी राजकुमार मेरे धाममें चले जायँगे। उनका भी विग्रह मेरे-जैसा ही हो जायगा और वे दिव्य रथपर सवार होंगे। उन्हें मेरे पार्षद होनेका सुअवसर प्राप्त होगा। वे सर्वदा आधि-व्याधिसे मुक्त रहेंगे। उनके जन्म-जन्मान्तरके पापोंकी समस्त पूँजी समाप्त हो जायगी। श्रुतिमें

कहा गया है कि भारतवर्षमें मनुष्योंद्वारा उपार्जित करोड़ों जन्मोंके पाप गङ्गाकी वायुके स्पर्शमात्रसे नष्ट हो जाते हैं। स्पर्श और दर्शनकी अपेक्षा गङ्गादेवीमें मौसलस्नान[१] करनेसे दसगुना पुण्य होता है। सामान्य दिनमें भी स्नान करनेसे मनुष्योंके अनेकों जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। पर्वों तथा विशेष पुण्य-तिथियोंपर स्नान करनेका विशेष फल कहा गया है। सामान्यतः गङ्गामें स्नान करनेकी अपेक्षा चन्द्रग्रहणके अवसरपर स्नान करनेसे अनन्त गुना अधिक पुण्य कहा गया है। सूर्यग्रहणमें इससे दसगुना अधिक समझना चाहिये। इससे सौगुना पुण्य अर्धोदयके समय स्नान करनेसे मिलता है।

नारद! इस प्रकार गङ्गा और भगीरथके सामने कहकर देवेश्वर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। तब गङ्गाने भक्तिसे अत्यन्त नम्र होकर उनसे कहा।

गङ्गा बोलीं—नाथ! सरस्वतीका शाप पहलेसे ही मेरे सिरपर सवार है, आप आज्ञा दे ही रहे हैं और इन महाराज भगीरथकी एतदर्थ तपस्या भी हो रही है, अतः मैं अभी भारतवर्षमें जा रही हूँ; परंतु प्रभो! वहाँ जानेपर अनेकों पापीजन अपने जिस-किसी प्रकारके भी पापको मुझपर लाद देंगे। ऐसी स्थितिमें मेरे ऊपर आये हुए वे पाप कैसे नष्ट होंगे—इसका उपाय तो बतला दीजिये। देवेश! मुझे भारतवर्षमें कितने वर्षोंतक रहना पड़ेगा? फिर मैं कब आप परम प्रभुके धाममें आनेकी अधिकारिणी बन सकूँगी? प्रभो! आप सर्वान्तर्यामीसे कोई भी बात छिपी नहीं है। सर्वज्ञ देव! मेरे अन्तःकरणमें अन्य भी जो-जो कामनाएँ छिपी हैं, उनके भी पूर्ण होनेका उपाय बतानेकी कृपा करें।

श्रीभगवान् बोले—सुरेश्वरि! गङ्गे! मैं तुम्हारे सभी अभिप्रायोंसे परिचित हूँ। तुम नदीरूपसे भारतवर्षमें पधारोगी और मेरे ही अंशस्वरूप समुद्र तुम्हारे पति होंगे। भारतवर्षमें सरस्वती आदि अन्य जितनी नदियाँ होंगी, उन सबमें समुद्रके लिये तुम ही सबसे अधिक सौभाग्यवती मानी जाओगी। देवेशि! कलियुगके पाँच हजार वर्षोंतक तुम्हें सरस्वतीके शापसे भारतवर्षमें रहना है। देवि! लक्ष्मीरूपा तुम रसिका हो और मेरे स्वरूप समुद्र रसिकराज हैं। तुम उनके साथ एकान्तमें निरन्तर प्रियसंगम करोगी। भारतवासी सम्पूर्ण मनुष्य भगीरथप्रणीत स्तोत्रसे तुम्हारी स्तुति करेंगे और उनके द्वारा भक्तिपूर्वक तुम सुपूजित भी होओगी। कण्वशाखामें बताये गये प्रकारसे तुम्हारा ध्यान करके लोग तुम्हारी पूजामें तत्पर होंगे। जो तुम्हारी स्तुति और तुम्हें प्रणाम करेगा, उसको अश्वमेध-यज्ञका फल सुलभतासे प्राप्त होगा। चाहे सैकड़ों योजनकी दूरीपर क्यों न हो; किंतु जो 'गङ्गा-गङ्गा' इस नामका उच्चारण करके स्नान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर विष्णुलोकमें चला जाता है। हजारों पापी व्यक्तियोंके स्नानसे जो तुमपर पाप आ जायँगे, मेरे भक्तोंके स्पर्शमात्रसे ही उनकी सत्ता नष्ट हो जायगी। हजारों पापी प्राणियोंके शवका स्पर्श अवश्य ही पापका साधन है; किंतु मेरे मन्त्रका अनुष्ठान करनेवाले पुण्यात्मा भक्तपुरुष भी तो तुम्हारेमें स्नान करने आयेंगे। उनके स्नानसे तुम्हारा वह सारा पाप नष्ट हो जायगा। शुभे! पवित्र भारतवर्षमें ही तुम्हारा निवास होगा। उस पापमोचन स्थानपर सरस्वती आदि सभी श्रेष्ठ नदियाँ तुम्हारा साथ देंगी। जहाँ तुम्हारे गुणोंका कीर्तन होगा, वह स्थान तुरंत तीर्थ बन जायगा। तुम्हारे रजःकणका स्पर्शमात्र हो

१- गङ्गाको प्रणाम करके प्रवेश करे और निश्चेष्ट होकर अर्थात् बिना हाथ-पैर हिलाये शान्तभावसे स्नान कर ले। इसे 'मौसलस्नान' कहते हैं।

आनेपर भी पापी पवित्र हो सकता है और उन रजःकणोंकी जितनी संख्या होती है, उतने वर्षोंतक वह देवीके लोकमें बसनेका अधिकारी माना जाता है।

देवी! जो भक्ति एवं ज्ञानसे सम्पन्न होकर मेरे नामका स्मरण करते हुए प्राण-त्याग करते हैं, वे सीधे मेरे परमधाममें जाते हैं और वहाँ पार्षद बनकर दीर्घकालतक निवास करते हैं। वे असंख्य प्राकृतिक प्रलय देख सकते हैं। मृत व्यक्तिका शव बड़े पुण्यके प्रभावसे ही तुम्हारे अंदर आ सकता है। जितने दिनोंतक उसकी एक-एक हड्डी तुम्हारेमें रहती है, उतने समयतक वह वैकुण्ठमें वास करता है। यदि कोई अज्ञानी व्यक्ति तुम्हारे जलका स्पर्श करके प्राण-त्याग करता है तो वह मेरी कृपासे सालोक्यपदका अधिकारी होता है। अथवा कोई कहीं भी मरे; यदि मरते समय जिस-किसी प्रकारसे भी तुम्हारे नामका स्मरण हो जाता है तो उसे मैं सालोक्य-पद प्रदान करता हूँ। ब्रह्माकी आयुपर्यन्त वह वहाँ रह सकता है। कोई तीर्थमें मरे या अतीर्थमें, तुम्हारे स्मरणके प्रभावसे सारूप्यपदका अधिकारी वह पुरुष ऐसा शक्तिशाली बन जाता है कि वह त्रिलोकीको भी पवित्र कर सकता है। जिनके बान्धव मेरे भक्त हैं—वे चाहे पशु आदि ही क्यों न हों—वे सर्वोत्तम रत्ननिर्मित विमानपर सवार होकर गोलोकमें चले जाते हैं।

मुनिवर! इस प्रकार गङ्गासे कहकर भगवान् श्रीहरिने राजा भगीरथसे कहा—'राजन्! तुम अभी इन गङ्गाकी स्तुति तथा भक्तिभावके साथ पूजा करो।' तब भगीरथ भक्तिपूर्वक गङ्गाके स्तवन और पूजनमें संलग्न हो गये। कौथुमिशाखामें कहे हुए ध्यान और स्तोत्रसे उन्होंने गङ्गाकी पूजा सम्पन्न की। तदनन्तर उन्होंने परमप्रभु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको बार-बार प्रणाम किया। इसके बाद भगीरथ और गङ्गाको अभीष्ट स्थानकी ओर यात्रा आरम्भ हो गयी तथा भगवान् अन्तर्धान हो गये।

नारदने पूछा—वेदज्ञोंमें प्रमुख प्रभो! किस ध्यान-स्तोत्रसे तथा किस पूजा-क्रमसे राजा भगीरथने गङ्गाकी पूजा की? यह मुझे स्पष्ट बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! राजा भगीरथने नित्यक्रियाके पश्चात् स्नान किया। दो स्वच्छ वस्त्र धारण किये। सब इन्द्रियोंको नियन्त्रणमें रखकर भक्तिपूर्वक छः देवताओंकी पूजा की। वे छः देवता हैं—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और भगवती शिवा। इन देवताओंका पूजन करनेपर वे गङ्गाजीकी पूजाके पूर्ण अधिकारी बन गये। नारद! विघ्न दूर होनेके लिये गणेशकी, आरोग्यताके लिये सूर्यकी, पवित्रताके लिये अग्निकी, मुक्ति-प्राप्तिके लिये विष्णुकी, ज्ञानके लिये ज्ञानेश्वर शिवकी तथा बुद्धिकी वृद्धिके लिये भगवती शिवाकी पूजा करना आवश्यक है। विद्वान् पुरुषको इन देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर लेनेपर ही अन्य किसी पूजामें सफलता प्राप्त होती है। मुने! सुनो, इस प्रकारसे भगीरथने गङ्गाका ध्यान किया था।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! यह ध्यान सम्पूर्ण पापोंको नष्ट कर देता है। गङ्गाका वर्ण श्वेत चम्पाके समान स्वच्छ है। ये समस्त पापोंका उच्छेद कर देती हैं। परब्रह्म पूर्णतम भगवान् श्रीकृष्णके श्रीविग्रहसे इनका प्राकट्य हुआ है। ये परम साध्वी और उन्हींके समान सुयोग्य हैं। वह्निशुद्ध चिन्मय वस्त्र इनकी शोभा

बढ़ाते हैं। रत्नमय भूषणोंसे ये विभूषित हैं। इन आदरणीया देवीने शरत्पूर्णिमाके सैकड़ों चन्द्रमाओंकी स्वच्छ प्रतिभाको अपनेमें स्थान दे रखा है। ये सदा मुस्कराती रहती हैं। इनके तारुण्यमें कभी शिथिलता नहीं आती। ये शान्तस्वरूपिणी देवी

भगवान् नारायणकी प्रिया हैं। सत्सौभाग्य कभी इनसे दूर नहीं हो सकता। इनके सिरपर सघन अलकावली है। मालतीके पुष्पोंकी माला इनकी शोभा बढ़ा रही है। इनके ललाटपर चन्दन-बिन्दुओंके साथ सिन्दूरकी बिन्दी है, जिससे उनका लालित्य बढ़ गया है। गण्डस्थलपर कस्तूरीसे पत्ररचना की गयी है, जो नाना प्रकारके चित्रोंसे सुशोभित है। इनके परम मनोहर दोनों होठ पके हुए बिम्बाफलकी लालिमाको तुच्छ कर रहे हैं। इनकी मनोहर दन्तपंक्तियोंके सामने मोतियोंकी लड़ी नगण्य समझी जाती है। इनके कटाक्षपूर्ण बाँकी चितवनसे युक्त नेत्र परम मनोहर हैं। इनका वक्षःस्थल विशाल है। स्थल-कमलकी प्रभाका पराभव करनेवाले दो सुन्दर चरण हैं। रत्नमय पादुकाओंसे शोभा पानेवाले उन चरणोंमें महावर लगा है। देवराज इन्द्रके मुकुटमें लगे हुए मन्दारके फूलोंके रजःकणसे इन देवीके श्रीचरणोंकी लालिमा गाढ़ी हो गयी है। देवता, सिद्ध और मुनीन्द्र अर्घ्य लेकर सदा सामने खड़े हैं। तपस्वियोंके मुकुटमें रहनेवाले भौंरोंकी पंक्तिसे इनके चरण संयुक्त हैं। इनके पावन चरण मुमुक्षुजनोंको मुक्ति देनेमें तथा कामी पुरुषोंको कामना पूर्ण करनेमें अत्यन्त कुशल हैं। ये परमादरणीया देवी सबकी पूज्या, वर देनेमें प्रवीण, भक्तोंपर कृपा करनेमें परम कुशल, भगवान् विष्णुका पद प्रदान करनेवाली तथा विष्णुपदी नामसे सुविख्यात हैं। इन परम साध्वी गङ्गादेवीकी मैं उपासना करता हूँ।

ब्रह्मन्! इसी ध्यानसे तीन मार्गोंसे विचरण करनेवाली कल्याणी गङ्गाका हृदयमें स्मरण करना चाहिये। इसके बाद सोलह प्रकारके उपचारोंसे इनकी पूजा करे। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, आभूषण, माला, चन्दन, आचमन और सुन्दर शय्या—ये अर्पण करनेके योग्य सोलह उपचार हैं। इन्हें भगवती गङ्गाको भक्तिपूर्वक समर्पण करके प्रणाम करे और दोनों हाथ जोड़कर स्तुति करे। इस प्रकार गङ्गादेवीकी उपासना करनेवाले बड़भागी पुरुषको अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है। इसके बाद श्रीगङ्गाजीका परम पुण्यदायक और पापनाशक स्तोत्र सुनाकर फिर भगवान् नारायणने कहा।

भगवान् नारायण बोले—नारद! राजा भगीरथ उस स्तोत्रसे गङ्गाकी स्तुति करके उन्हें साथ ले वहाँ पहुँचे, जहाँ सगरके साठ हजार पुत्र जलकर भस्म हो गये थे। गङ्गाका स्पर्श करके बहनेवाली वायुका स्पर्श होते ही वे राजकुमार तुरंत वैकुण्ठमें चले गये।

भगीरथके सत्प्रयत्नसे गङ्गाका आगमन हुआ है। अतः गङ्गाको 'भागीरथी' कहते हैं। यों गङ्गाका सम्पूर्ण उत्तम उपाख्यान कह दिया। यह उपाख्यान पुण्यदायी तथा मोक्षका साधन है। अब आगे तुम और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—शिवजीके संगीतसे मुग्ध हो जब श्रीकृष्ण और राधा द्रवभावको प्राप्त हो गये तब क्या हुआ? उस समय वहाँ जो लोग उपस्थित थे, उन्होंने कौन-सा उत्तम कार्य किया? ये सब बातें विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण बोले—नारद! एक समयकी बात है—कार्तिककी पूर्णिमा थी। राधा-महोत्सव बड़े धूमधामसे मनाया जा रहा था। भगवान् श्रीकृष्ण सम्यक् प्रकारसे राधाकी पूजा करके रासमण्डलमें विराजमान थे। तत्पश्चात् ब्रह्मादि देवता तथा शौनकादि ऋषि—प्रायः सभी महानुभावोंने बड़े आनन्दके साथ श्रीकृष्णपूजिता श्रीराधाजीकी पूजा की और फिर वे वहाँ विराजमान हो गये। इतनेमें भगवान् श्रीकृष्णको संगीत सुनानेवाली देवी सरस्वती हाथमें वीणा लेकर सुन्दर ताल-स्वरके साथ गीत गाने लगीं। तब ब्रह्माने प्रसन्न होकर एक सर्वोत्तम रत्नसे बना हार पुरस्कार-रूपमें उन्हें अर्पण किया। शिवसे उन्हें अखिल ब्रह्माण्डके लिये दुर्लभ एक उत्तम मणि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें सम्पूर्ण रत्नोंमें श्रेष्ठ कौस्तुभमणि भेंट की। राधाने अमूल्य रत्नोंसे निर्मित एक अनुपम हार, भगवान् नारायणने एक सुन्दर पुष्पमाला तथा लक्ष्मीने बहुमूल्य रत्नोंके दो कुण्डल सरस्वतीको पुरस्काररूपमें दिये। विष्णुमाया, ईश्वरी, दुर्गा, नारायणी और ईशाना नामसे विख्यात भगवती मूलप्रकृतिने सरस्वतीके अन्तःकरणमें परम दुर्लभ परमात्मभक्ति प्रकट की। धर्मने धार्मिक बुद्धि उत्पन्न करनेके साथ ही प्रपञ्चात्मक जगत्में उनकी कीर्ति विस्तृत की। अग्निदेवने चिन्मय वस्त्र तथा पवनदेवने मणिमय नूपुर सरस्वतीको प्रदान किये।

इतनेमें ब्रह्मासे प्रेरित होकर भगवान् शंकर श्रीकृष्णसम्बन्धी पद्य, जिसके प्रत्येक शब्दमें रसके उल्लासको बढ़ानेकी शक्ति भरी थी,

बारंबार गाने लगे। उसे सुनकर सम्पूर्ण देवता मूर्च्छित-से हो गये। जान पड़ता था, मानो सब चित्र-विचित्र पुतले हैं। बड़ी कठिनतासे किसी प्रकार उन्हें चेत हुआ। उस समय देखा गया कि समस्त रासमण्डलमें सम्पूर्ण स्थल जलसे आप्लावित है। श्रीराधा और श्रीकृष्णका कहीं पता नहीं है। फिर तो गोप, गोपी, देवता और ब्राह्मण—सभी अत्यन्त उच्च स्वरसे विलाप करने लगे। उस समय ब्रह्माजी भी वहीं थे। उन्होंने ध्यानके द्वारा भगवान् श्रीकृष्णका पुनीत विचार समझ लिया। भगवान् श्रीकृष्ण ही श्रीराधाके साथ जलमय हो गये हैं—यह बात उन्हें भलीभाँति मालूम हो गयी। तब वे सभी महाभाग देवता परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे। सबने अपनी प्रार्थना सुनायी।

'विभो! हमारा केवल यही अभीष्ट वर है कि आप अपनी श्रीमूर्तिके हमें पुनः दर्शन करा दें।' ठीक उसी समय अति मधुर तथा स्पष्ट शब्दोंमें आकाशवाणी हुई। सब लोगोंने उसे भलीभाँति सुना। आकाशवाणीमें कहा गया—'मैं सर्वात्मा श्रीकृष्ण और मेरी स्वरूपाशक्ति राधा—हम दोनोंने ही भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये यह

जलमय विग्रह धारण कर लिया है। सुरेश्वरो! तुम्हें मेरे तथा इन राधाके शरीरसे क्या प्रयोजन है? मनु, मुनि, मानव तथा अगणित वैष्णवजन मेरे मन्त्रोंसे पवित्र होकर मुझे देखनेके लिये मेरे धाममें आयेंगे। ऐसे ही तुम्हें भी यदि स्पष्ट दर्शन करनेकी इच्छा हो तो प्रयत्न करो। शम्भु यहीं रहकर मेरी आज्ञाका पालन करें। ब्रह्मन्! जगद्गुरो! तुम स्वयं विधाता हो। भगवान् शंकरसे कह दो कि 'ये वेदोंके अङ्गभूत परम मनोहर विशिष्ट शास्त्र अर्थात् तन्त्रशास्त्रका निर्माण करें। उसमें सम्पूर्ण अभीष्ट फल देनेवाले बहुत-से अपूर्व मन्त्र उद्धृत हों। स्तोत्र, ध्यान, पूजाविधि, मन्त्र और कवच—इन सबसे यह तन्त्रशास्त्र सम्पन्न हो। मेरे मन्त्र और कवचका निर्माण करके तुम उसका यत्नपूर्वक गोपन करो। जो मुझसे विमुख हों, उन्हें इसका उपदेश नहीं करना चाहिये। सैकड़ों और सहस्रोंमें कोई एक भी तो मेरा सच्चा उपासक होगा। वे भक्तजन ही मेरे मन्त्रसे पवित्र हों। यदि शंकर देवसभामें ऐसा शास्त्र निर्माण करनेके लिये सुदृढ़ प्रतिज्ञा करते हैं तो उन्हें तुरन्त ही मेरे दर्शन प्राप्त हो जायँगे।'

आकाशवाणीके द्वारा इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि चुप हो गये। उनकी वाणी सुनकर जगत्‌की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्माने प्रसन्नतापूर्वक उसे भगवान् शंकरसे कहा। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा ज्ञानके अधिष्ठाता भगवान् शंकरने ब्रह्माकी बात सुननेके पश्चात् हाथमें गङ्गा-जल ले लिया और आज्ञापालन करनेके लिये प्रतिज्ञा कर ली। फिर तो वे भगवती जगदम्बाके मन्त्रोंसे सम्पन्न उत्तम तन्त्रशास्त्रके निर्माणमें लग गये। 'प्रतिज्ञापालन करनेके लिये मैं वेदके सारभूत महान् तन्त्रशास्त्रका निर्माण करूँगा'—यह विचार उनके हृदयमें गूँजने लगा। उन्होंने अपना विचार व्यक्त किया कि 'यदि कोई मनुष्य गङ्गाका जल हाथमें लेकर प्रतिज्ञा करेगा और फिर उस अपनी की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करेगा तो वह 'कालसूत्र' नामक नरकका भागी होगा और ब्रह्माकी पूरी आयुतक उसे वहाँ रहना पड़ेगा।'

ब्रह्मन्! गोलोकमें देवताओंकी सभा जुड़ी थी। उसमें भगवान् शंकर जब इस प्रकारकी बात कह चुके, तब अकस्मात् परब्रह्म परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण भगवती श्रीराधाके साथ वहाँ प्रकट हो गये। उन पुरुषोत्तम भगवान् श्रीहरिके प्रत्यक्ष दर्शन करनेपर देवताओंकी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रही। वे उनकी स्तुति करने लगे।

इसके बाद उपस्थित देवताओंने अत्यन्त आनन्दमें भरकर फिरसे उत्सव मनाया। तत्पश्चात् समयानुसार भगवान् शंकरने शास्त्रदीपका—शास्त्रीय मतको प्रकाशित करनेवाले सात्त्विक तन्त्रशास्त्रका निर्माण किया।

नारद! इस प्रकार सम्पूर्ण परम गोप्य प्रसङ्ग मैं तुम्हें सुना चुका। यह सबके लिये अत्यन्त दुर्लभ है। वे ही पूर्णब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण जलरूप होकर गङ्गा बन गये थे। गोलोकसे प्रकट होनेवाली गङ्गाका यही रहस्य है। यों भगवान् श्रीराधाकृष्ण ही गङ्गाके रूपमें प्रकट हुए हैं।

श्रीराधा और श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई यह गङ्गा भुक्ति और मुक्ति दोनोंको देनेवाली हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी व्यवस्थाके अनुसार जगह-जगह रहनेका सुअवसर इन्हें प्राप्त हो गया। श्रीकृष्णस्वरूपा इन आदरणीया गङ्गादेवीको सम्पूर्ण ब्रह्माण्डके लोग पूजते हैं। (अध्याय १०)

श्रीराधाजीका गङ्गापर रोष, श्रीकृष्णके प्रति राधाका उपालम्भ, श्रीराधाके भयसे गङ्गाका श्रीकृष्णके चरणोंमें छिप जाना, जलाभावसे पीड़ित देवताओंका गोलोकमें जाना, ब्रह्माजीकी स्तुतिसे राधाका प्रसन्न होना तथा गङ्गाका प्रकट होना, देवताओंके प्रति श्रीकृष्णका आदेश तथा गङ्गाके विष्णुपत्नी होनेका प्रसङ्ग

नारदजीने पूछा—सुरेश्वर! कलिके पाँच हजार वर्ष बीत जानेपर गङ्गाका कहाँ जाना होगा? महाभाग! यह प्रसङ्ग मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायणने कहा—नारद! सरस्वतीके शापसे गङ्गा भारतवर्षमें आयीं। शापकी अवधि पूरी हो जानेपर वह पुनः भगवान् श्रीहरिकी आज्ञासे वैकुण्ठमें चली जायँगी। ऐसे ही सरस्वती भारतवर्षको छोड़कर श्रीहरिके धाममें पधारेंगी। शाप समाप्त हो जानेपर लक्ष्मीका भी भगवान्‌के पास पधारना होगा। नारद! ये ही गङ्गा, सरस्वती और लक्ष्मी भगवान् श्रीहरिकी प्रेयसी पत्नियाँ हैं। ब्रह्मन्! तुलसीसहित चार पत्नियाँ वेदोंमें प्रसिद्ध हैं।

नारदजीने पूछा—भगवन्! भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंसे प्रकट हुई गङ्गादेवी किस प्रकार परब्रह्मके कमण्डलुमें रहीं तथा शंकरकी प्रिया होनेका सुअवसर उन्हें कैसे मिला? मुनिवर! गङ्गा भगवान् नारायणकी प्रेयसी भी हो चुकी हैं। अहो! किस प्रकार ये सभी बातें संघटित हुईं? आप यह रहस्य मुझे बतानेकी कृपा कीजिये।

भगवान् नारायणने कहा—नारद! पूर्वकालमें जलमयी गङ्गा गोलोकमें विराजमान थीं। राधा और श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई यह गङ्गा उनका अंश तथा उन्हींका स्वरूप हैं। द्रवकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके भूमण्डलपर पधारीं। उस समय भूमण्डलमें उनके रूप-लावण्यकी कहीं तुलना नहीं थी। उनका शरीर नूतन यौवनसे सम्पन्न था। उनके सभी अङ्ग रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत थे। शरद्‌ऋतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलकी भाँति उनका मुस्कानभरा मुख परम मनोहर था। उनकी आभा तपाये हुए सुवर्णके सदृश थी। तेजमें वह शरत्कालके चन्द्रमाको भी परास्त कर रही थीं। मनोहरसे भी मनोहर उनकी कान्ति थी। उन्होंने शुद्ध सात्त्विक स्वरूप धारण कर रखा था। विशाल दो नेत्र अनुपम शोभा बढ़ा रहे थे। अत्यन्त कटाक्षपूर्ण दृष्टिसे वे देख रही थीं। सुन्दर अलकावली शोभा बढ़ा रही थी। उसमें उन्होंने मालतीके पुष्पोंका मनोहर हार लगा रखा था। ललाटपर चन्दन-बिन्दुओंके साथ सिन्दूरकी सुन्दर बिंदी थी। दोनों मनोहर गण्डस्थलोंपर कस्तूरीसे पत्ररचनाएँ हुई थीं। नीचे उनका अधर-ओष्ठ इतना सुन्दर था मानो दुपहरियाका विकसित फूल हो। दाँतोंकी अत्यन्त उज्ज्वल पंक्ति पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमक रही थी। अग्नि-शुद्ध दो दिव्य वस्त्रोंको उन्होंने धारण कर रखा था। ऐसी वे गङ्गा लज्जाका भाव प्रदर्शित करती हुई भगवान् श्रीकृष्णके पास विराजमान हो गयीं। वे अञ्चलसे अपना मुँह ढककर निर्निमेष नेत्रोंसे भगवान्‌के मुखरूपी अमृतका निरन्तर प्रसन्नतापूर्वक पान कर रही थीं। उनका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल रहा था। भगवान् श्रीकृष्णके रूपने उन्हें बेसुध तथा अत्यन्त पुलकायमान बना दिया था।

इतनेमें भगवती राधिका वहाँ पधारकर विराजमान हो गयीं। उस समय राधाके साथ असंख्य गोपियाँ थीं। राधाकी कान्ति ऐसी थी मानो करोड़ों चन्द्रमाओंकी ज्योत्स्ना एक साथ

प्रकट हो। वे उस समय क्रोधकी लीला करनेमें साहसी थीं; अतः उनकी आँखें लाल कमलकी तुलना करने लगीं। उनका वर्ण पीले चम्पककी तुलना कर रहा था तथा उनकी चाल ऐसी थी मानो मतवाला गजराज हो। अमूल्य रत्नोंसे बने हुए नाना प्रकारके आभूषण उनके श्रीविग्रहकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके शरीरपर अमूल्य रत्नोंसे जटित दो दिव्य चिन्मय पीताम्बर शोभा पा रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णके अर्घ्यसे सुशोभित चरणकमलोंको उन्होंने हृदयमें धारण कर रखा था। सर्वोत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानसे उतरकर वे वहाँ पधारी थीं। ऋषिगण उनकी सेवामें संलग्न थे। स्वच्छ चँवर डुलाया जा रहा था। कस्तूरीके बिन्दुसे युक्त, चन्दनोंसे समन्वित, प्रज्वलित दीपकके समान आकारवाला बिन्दुरूपमें शोभायमान सिन्दूर उनके ललाटके मध्यभागमें शोभा पा रहा था। उनके सीमन्तका निचला भाग परम स्वच्छ था। पारिजातके पुष्पोंकी सुन्दर माला उनके गलेमें सुशोभित थी। अपनी सुन्दर अलकावलीको कँपाती हुई वे स्वयं भी कम्पित हो रही थीं। रोषके कारण उनके सुन्दर रागयुक्त ओष्ठ फड़क रहे थे। भगवान् श्रीकृष्णके पास जाकर वे सुन्दर रत्नमय सिंहासनपर विराजित हो गयीं। उनको पधारे देखकर भगवान् श्रीकृष्ण उठ गये और कुछ हँसकर आश्चर्य प्रकट करते हुए मधुर वचनोंमें उनसे बातचीत करने लगे।

उस समय गोपोंके भयकी सीमा नहीं रही। नम्रताके कारण कंधे झुकाकर उन्होंने भगवती राधिकाको प्रणाम किया और वे उनकी स्तुति करने लगे। परब्रह्म श्रीकृष्णने भी राधिकाकी स्तुति की। गङ्गा भी तुरंत उठ गयीं और उन्होंने राधाका स्तवन किया। उनके हृदयमें भय छा गया था। अत्यन्त विनय प्रकट करते हुए उन्होंने राधासे कुशल पूछी। वे डरकर नीचे खड़ी हो गयीं। उन्होंने ध्यानके द्वारा मन-ही-मन श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी शरण ली। गङ्गाके हृदयस्थित कमलके आसनपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने उस समय डरी हुई गङ्गाको आश्वासन दिया। इस प्रकार सर्वेश्वर श्रीकृष्णसे वर पाकर देवी गङ्गा स्थिरचित्त हो सकीं। अब गङ्गाने देखा, देवी राधिका ऊँचे सिंहासनपर बैठी हैं। उनका रूप परम मनोहर है। वे देखनेमें बड़ी सुखप्रद हैं। ब्रह्मतेजसे उनका श्रीविग्रह प्रकाशमान हो रहा है। वे सनातनी देवी सृष्टिके आदिमें असंख्य ब्रह्माओंको रचती हैं। उनकी अवस्था सदा बारह वर्षकी रहती है। अभिनव यौवनसे उनका विग्रह परम शोभा पाता है। अखिल विश्वमें उनके सदृश रूपवती और गुणवती कोई भी नहीं है। वे परम शान्त, कमनीय, अनन्त, परम साध्वी तथा आदि-अन्त-रहित हैं। उन्हें 'शुभा', 'सुभद्रा' और 'सुभगा' कहा जाता है। अपने स्वामीके सौभाग्यसे वे सदा सम्पन्न रहती हैं। सम्पूर्ण स्त्रियोंमें वे श्रेष्ठ हैं तथा परम सौन्दर्यसे सुशोभित हैं। उन्हें भगवान् श्रीकृष्णकी अर्द्धाङ्गिनी कहा जाता है। तेज, अवस्था और प्रकाशमें वे भगवान् श्रीकृष्णके ही समान हैं। लक्ष्मीपति भगवान् विष्णुने लक्ष्मीको साथ लेकर उन महालक्ष्मीकी उपासना की है। परमात्मा श्रीकृष्णकी समुज्ज्वल सभाको वे अपनी कान्तिसे सदा आच्छादित करती हैं। सखियोंका दिया हुआ दुर्लभ पान उनके मुखमें शोभा पा रहा है। वे स्वयं अजन्मा होती हुई भी अखिल जगत्‌की जननी हैं। उनकी कीर्ति और प्रतिष्ठा विश्वमें सर्वत्र विस्तृत है। वे भगवान् श्रीकृष्णके प्राणोंकी साक्षात् अधिष्ठात्री देवी हैं। उन परम सुन्दरी देवीको भगवान् प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानते हैं।

नारद! रासेश्वरी श्रीराधाकी इस अनुपम झाँकीको देखकर गङ्गाका मन तृप्त न हो सका। वे निर्निमेष नेत्रोंसे निरन्तर राधा-सौन्दर्य-सुधाका पान करती रहीं। मुने! इतनेमें राधाने मधुर वाणीमें

जगदीश्वर भगवान् श्रीकृष्णसे कहा। उस समय श्रीराधाका विग्रह परम शान्त था। उनमें नम्रता आ गयी थी और उनके मुखपर मुस्कान छायी थी।

श्रीराधाने कहा—प्राणेश! आपके प्रसन्न मुखकमलको मुस्कराकर निहारनेवाली यह कल्याणी कौन है? इसके तिरछे नेत्र आपको लक्ष्य कर रहे हैं। इसके भीतर मिलनेच्छाका भाव जाग्रत् है। आपके मनोहर रूपने इसे अचेत्र कर दिया है। इसके सर्वाङ्ग पुलकित हो रहे हैं। वस्त्रसे मुख ढँककर बार-बार आपको देखा करना मानो इसका स्वभाव ही बन गया है। आप भी उसकी ओर दृष्टिपात करके मधुर-मधुर हँस रहे हैं। आप अनेक बार ऐसा करते हैं और कोमल-स्वभावकी स्त्री-जाति होनेके कारण प्रेमवश मैं क्षमा कर देती हूँ।

आपने 'विरजा' (रजोगुणरहिता देवी)-से प्रेम किया। फिर वह अपना शरीर त्यागकर महान् नदीके रूपमें परिणत हो गयी। आपकी सत्कीर्तिस्वरूपिणी वह देवी नदीरूपमें अब भी विराजमान है। आपके औरस पुत्रके रूपमें उससे समयानुसार सात समुद्र उत्पन्न हो गये। प्राणनाथ! आपने 'शोभा'से प्रेम किया। वह भी शरीर त्यागकर चन्द्रमण्डलमें चली गयी। तदनन्तर उसका शरीर परम स्निग्ध तेज बन गया। आपने उस तेजको टुकड़े-टुकड़े करके वितरण कर दिया। रत्न, सुवर्ण, श्रेष्ठ मणि, स्त्रियोंके मुखकमल, राजा, पुष्पोंकी कलियाँ, पके हुए फल, लहलहाती खेतियाँ, राजाओंके सजे-धजे महल, नवीन पात्र और दूध—ये सब आपके द्वारा उस शोभाके कुछ-कुछ भाग पा गये। मैंने आपको 'प्रभा'के साथ प्रेम करते देखा। वह भी शरीर त्यागकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर गयी। उस समय उसका शरीर अत्यन्त तेजोमय बन गया था। उस तेजोमयी प्रभाको आपने विभाजन करके जगह-जगह बाँट दिया। श्रीकृष्ण! आपकी आँखोंसे दूर हुई प्रभा अग्नि, यक्ष, नरेश, देवता, वैष्णवजन, नाग, ब्राह्मण, मुनि, तपस्वी, सौभाग्यवती स्त्री तथा यशस्वी पुरुष—इन सबको थोड़े-थोड़े रूपोंमें प्राप्त हुई।

एक बार मैंने आपको 'शान्ति' नामक गोपीके साथ रासमण्डलमें प्रेम करते देखा था। प्रभो! वह शान्ति भी अपने उस शरीरको छोड़कर आपमें लीन हो गयी। उस समय उसका शरीर उत्तम गुणके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर आपने उसको विभाजित करके विश्वमें बाँट दिया। प्रभो! उसका कुछ अंश मुझ (राधा)-में, कुछ इस निकुञ्जमें और कुछ ब्राह्मणमें प्राप्त हुआ। विभो! फिर आपने उसका कुछ भाग शुद्ध सत्त्वस्वरूपा लक्ष्मीको, कुछ अपने मन्त्रके उपासकोंको, कुछ वैष्णवोंको, कुछ तपस्वियोंको, कुछ धर्मको और कुछ धर्मात्मा पुरुषोंको सौंप दिया।

पूर्वसमयकी बात है, 'क्षमा'के साथ आप मुझे प्रेम करते दृष्टिगोचर हुए थे। उस समय क्षमा अपना वह शरीर त्यागकर पृथ्वीपर चली गयी। तदनन्तर उसका शरीर उत्तम गुणके रूपमें परिणत हो गया था। फिर उसके शरीरका आपने विभाजन किया और उसमेंसे कुछ-कुछ अंश विष्णुको, वैष्णवोंको, धार्मिक पुरुषोंको, धर्मको, दुर्बलोंको, तपस्वियोंको, देवताओं और पण्डितोंको दे दिया। प्रभो! इतनी सब बातें तो मैं सुना चुकी। आपके ऐसे-ऐसे बहुत-से गुण हैं। आप सदा ही उच्च सुन्दरी देवियोंसे प्रेम किया करते हैं।

इस प्रकार रक्त कमलके समान नेत्रोंवाली राधाने भगवान् श्रीकृष्णसे कहकर साध्वी गङ्गासे कुछ कहना चाहा। गङ्गा योगमें परमप्रवीण थीं। योगके प्रभावसे राधाका मनोभाव उन्हें ज्ञात हो गया। अतः बीच सभामें ही अन्तर्धान होकर वे अपने जलमें प्रविष्ट हो गयीं। तब सिद्धयोगिनी

राधाने योगद्वारा इस रहस्यको जानकर सर्वत्र विद्यमान उन जलस्वरूपिणी गङ्गाको अञ्जलिसे उठाकर पीना आरम्भ कर दिया। ऐसी स्थितिमें राधाका अभिप्राय पूर्ण योगसिद्धा गङ्गासे छिपा नहीं रह सका। अतः वे भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें जाकर उनके चरणकमलोंमें लीन हो गयीं।

तब राधाने गोलोक, वैकुण्ठलोक तथा ब्रह्मलोक आदि सम्पूर्ण स्थानोंमें गङ्गाको खोजा; परंतु कहीं भी वह दिखायी नहीं दीं। उस समय सर्वत्र जलका नितान्त अभाव हो गया था। कीचड़तक सूख गया था। जलचर जन्तुओंके मृत शरीरसे ब्रह्माण्डका कोई भी भाग खाली नहीं रहा था। फिर तो ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, अनन्त, धर्म, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, मनुगण, मुनि-समाज, देवता, सिद्ध और तपस्वी—सभी गोलोकमें आये। उस समय उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। प्रकृतिसे परे सर्वेश भगवान् श्रीकृष्णको सबने प्रणाम किया; क्योंकि ये श्रीकृष्ण सबके परम पूज्य हैं। वर देना इन सर्वोत्तम प्रभुका स्वाभाविक गुण है। इन्हें वरका प्रवर्तक ही माना जाता है। ये परमप्रभु सम्पूर्ण गोप और गोपियोंके समाजमें प्रमुख हैं। इन्हें निरीह, निराकार, निर्लिप्त, निराश्रय, निर्गुण, निरुत्साह, निर्विकार और निरञ्जन कहा गया है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये अपनी इच्छासे ये साकार रूपमें प्रकट हो जाते हैं। ये सत्त्वस्वरूप, सत्येश, साक्षीरूप और सनातनपुरुष हैं। इनसे बढ़कर जगत्में दूसरा कोई शासक नहीं है। अतएव इन पूर्णब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्णको उन ब्रह्मादि समस्त उपस्थित देवताओंने प्रणाम करके स्तवन आरम्भ कर दिया। भक्तिके कारण उनके कंधे झुक गये थे। उनकी वाणी गद्गद हो गयी थी। आँखोंमें आँसू भर आये थे। उनके सभी अङ्गोंमें पुलकावली छायी थी। सबने उन परात्पर ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी स्तुति की। इन सर्वेश प्रभुका विग्रह ज्योतिर्मय है। सम्पूर्ण कारणोंके भी ये कारण हैं। ये उस समय अमूल्य रत्नोंसे निर्मित दिव्य सिंहासनपर विराजमान थे। गोपाल इनकी सेवामें संलग्न होकर श्वेत चँवर डुला रहे थे। गोपियोंके नृत्यको देखकर प्रसन्नताके कारण इनका मुखमण्डल मुस्कानसे भरा था। प्राणोंसे भी अधिक प्रिय श्रीराधा इनके वक्षःस्थलपर शोभा पा रही थीं। उनके दिये हुए सुवासित पान ये चबा रहे थे। ऐसे ये देवाधिदेव परिपूर्णतम भगवान् श्रीकृष्ण रासमण्डलमें विराजमान थे।

वहाँ मुनियों, मनुष्यों, सिद्धों और तपस्वियोंने तपके प्रभावसे इनके दिव्य दर्शन प्राप्त किये। दिव्य दर्शनसे सबके मनमें अपार हर्ष हुआ। साथ ही आश्चर्यकी सीमा भी न रही। सभी परस्पर एक-दूसरेको देखने लगे। तत्पश्चात् उन समस्त सज्जनोंने अपना अभीष्ट अभिप्राय जगत्प्रभु चतुरानन ब्रह्मासे निवेदन किया। ब्रह्माजी उनकी प्रार्थना सुनकर विष्णुको दाहिने और महादेवको बायें करके भगवान् श्रीकृष्णके निकट पहुँचे। उस समय परम आनन्दस्वरूप श्रीकृष्ण और परम आनन्दस्वरूपिणी श्रीराधा साथ विराजमान थीं। उसी समय ब्रह्माने रासमण्डलको केवल श्रीकृष्णमय देखा। सबकी वेष-भूषा एक समान थी। सभी एक-जैसे आसनोंपर बैठे थे। द्विभुज श्रीकृष्णके रूपमें परिणत सभीने हाथोंमें मुरली ले रखी थी। वनमाला सबकी छवि बढ़ा रही थी। सबके मुकुटमें मोरके पंख थे। कौस्तुभमणिसे वे सभी परम सुशोभित थे। गुण, भूषण, रूप, तेज, अवस्था और प्रभासे सम्पन्न उन सबका अत्यन्त कमनीय विग्रह परम शान्त था। सभी परिपूर्णतम थे और सबमें सभी शक्तियाँ संनिहित थीं। इन्हें देखकर कौन सेवक है और कौन सेव्य—इस बातका निर्णय करनेमें ब्रह्मा सफल नहीं हो सके।

क्षणभरमें ही भगवान् श्रीकृष्ण तेजःस्वरूप हो जाते और तुरंत आसनपर बैठे हुए भी दिखायी

पड़ने लगते। एक ही क्षणमें उनके दो रूप निराकार और साकार ब्रह्माको दृष्टिगोचर हुए। फिर एक ही क्षणमें ब्रह्माजीने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण अकेले हैं। इसके बाद तुरंत ही झट उन्हें राधा और कृष्ण प्रत्येक आसनपर बैठे दीख पड़े। फिर क्या देखते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णने राधाका रूप धारण कर लिया है और राधाने श्रीकृष्णका। कौन स्त्रीके वेषमें है और कौन पुरुषके वेषमें—विधाता इस रहस्यको समझ न सके। तब ब्रह्माजीने अपने हृदयरूपी कमलपर विराजमान भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान किया। ध्यान-चक्षुसे भगवान् दीख गये। अतः अनेक प्रकारसे परिहार करते हुए भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् भगवान्‌की आज्ञासे उन्होंने अपनी आँखें मूँद लीं। फिर देखा तो श्रीराधाको वक्षःस्थलपर बैठाये हुए भगवान् श्रीकृष्ण आसनपर अकेले ही विराजमान हैं। इन्हें पार्षदोंने घेर रखा है। झुंड-की-झुंड गोपियाँ इनकी शोभा बढ़ा रही हैं। फिर उन ब्रह्मा प्रभृति प्रधान देवताओंने परम प्रभु भगवान्‌का दर्शन करके प्रणाम किया और स्तुति भी की। तब जो सबके आत्मा, सब कुछ जाननेमें कुशल, सबके शासक तथा सर्वभावन हैं, उन लक्ष्मीपति परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णने उपस्थित देवताओंका अभिप्राय समझकर उनसे कहा।

भगवान् श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! आपकी कुशल हो, यहाँ आइये। मैं समझ गया, आप सभी महानुभाव गङ्गाको ले जानेके लिये यहाँ पधारे हैं; परंतु इस समय यह गङ्गा शरणार्थी बनकर मेरे चरणकमलोंमें छिपी है। कारण, यह मेरे पास बैठी थी। राधाजी उसे देखकर पी जानेके लिये उद्यत हो गयीं। तब यह चरणोंमें आकर ठहर गयी। मैं आप लोगोंको उसे सहर्ष दे दूँगा; परंतु आप पहले उसको निर्भय बनानेका पूर्ण प्रयत्न करें।

नारद! भगवान् श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर कमलोद्भव ब्रह्माका मुख मुस्कानसे भर गया। फिर तो वे सम्पूर्ण देवता, जो सबकी आराध्या तथा भगवान् श्रीकृष्णसे भी सुपूजिता हैं, उन भगवती राधाकी स्तुति करनेमें संलग्न हो गये। भक्तिके कारण अत्यन्त विनीत होकर ब्रह्माजीने अपने चारों मुखोंसे राधाजीकी स्तुति की। चारों वेदोंके प्रणेता चतुरानन ब्रह्माने भगवती राधाका इस प्रकार स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—देवी! यह गङ्गा आपके तथा भगवान् श्रीकृष्णके श्रीअङ्गसे समुत्पन्न है। आप दोनों महानुभाव रासमण्डलमें पधारे थे। शंकरके संगीतने आपको मुग्ध कर दिया था। उसी अवसरपर यह द्रवरूपमें प्रकट हो गयी। अतः आप तथा श्रीकृष्णके अङ्गसे समुत्पन्न होनेके कारण यह आपको प्रिय पुत्रीके समान शोभा पानेवाली गङ्गा आपके मन्त्रोंका अभ्यास करके उपासना करे। इसके द्वारा आपकी आराधना होनी चाहिये। फलस्वरूप वैकुण्ठाधिपति चतुर्भुज भगवान् श्रीहरि इसके पति हो जायँगे। साथ ही अपनी एक कलासे यह भूमण्डलपर भी पधारेगी और वहाँ भगवान्‌के अंश क्षारसमुद्रको इसका पति बननेका सुअवसर प्राप्त होगा। माता! यह गङ्गा जैसे गोलोकमें है, वैसे ही इसे सर्वत्र रहना

चाहिये। आप देवेश्वरी इसकी माता हैं और यह सदाके लिये आपकी पुत्री है।

नारद! ब्रह्माकी इस प्रार्थनाको सुनकर भगवती राधा हँस पड़ीं। उन्होंने ब्रह्माजीकी सभी बातोंको स्वीकार कर लिया। तब गङ्गा श्रीकृष्णके चरणके अँगूठेके नखाग्रसे निकलकर वहीं विराजमान हो गयी। सब लोगोंने उसका सम्मान किया। फिर जलस्वरूपा गङ्गासे उसकी अधिष्ठात्री देवी जलसे निकलकर परम शान्त विग्रहसे शोभा पाने लगी। ब्रह्माने गङ्गाके उस जलको अपने कमण्डलुमें रख लिया। भगवान् शंकरने उस जलको अपने मस्तकपर स्थान दिया। तत्पश्चात् कमलोद्भव ब्रह्माने गङ्गाको 'राधा-मन्त्र' की दीक्षा दी। साथ ही राधाके स्तोत्र, कवच, पूजा और ध्यानकी विधि भी बतलायी। ये सभी अनुष्ठानक्रम सामवेदकथित थे। गङ्गाने इन नियमोंके द्वारा राधाकी पूजा करके वैकुण्ठके लिये प्रस्थान किया।

मुने! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और विश्वपावनी तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी पत्नियाँ हैं। तत्पश्चात् परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने हँसकर ब्रह्माको दुर्बोध एवं अपरिचित सामयिक बातें बतलायीं।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—ब्रह्मन्! तुम गङ्गाको स्वीकार करो। विष्णो! महेश्वर! विधाता! मैं समयकी स्थितिका परिचय कराता हूँ; आपको ध्यान देकर सुनना चाहिये। तुम लोग तथा अन्य जो देवता, मुनिगण, मनु, सिद्ध और यशस्वी यहाँ आये हुए हैं, इन्हींको जीवित समझना चाहिये; क्योंकि गोलोकमें कालके चक्रका प्रभाव नहीं पड़ता। इस समय कल्प समाप्त होनेके कारण सारा विश्व जलार्णवमें डूब गया है। विविध ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले जो ब्रह्मा आदि प्रधान देवता हैं, वे इस समय मुझमें विलीन हो गये हैं। ब्रह्मन्! केवल वैकुण्ठको छोड़कर और सब-का-सब जलमग्न है। तुम जाकर पुनः ब्रह्मलोकादिकी सृष्टि करो। अपने ब्रह्माण्डकी भी रचना करना आवश्यक है। इसके पश्चात् गङ्गा वहाँ जायगी। इसी प्रकार मैं अन्य ब्रह्माण्डोंमें भी इस सृष्टिके अवसरपर ब्रह्मादि लोकोंकी रचनाका प्रयत्न करता हूँ। अब तुम देवताओंके साथ यहाँसे शीघ्र पधारो। बहुत समय व्यतीत हो गया; तुम लोगोंमें कई ब्रह्मा समाप्त हो गये और कितने अभी होंगे भी।

मुने! इस प्रकार कहकर परमाराध्या राधाके प्राणपति भगवान् श्रीकृष्ण अन्तःपुरमें चले गये। ब्रह्मा प्रभृति देवता वहाँसे चलकर यत्नपूर्वक पुनः सृष्टि करनेमें तत्पर हो गये। फिर तो गोलोक, वैकुण्ठ, शिवलोक और ब्रह्मलोक तथा अन्यत्र भी जिस-जिस स्थानमें गङ्गाको रहनेके लिये परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने आज्ञा दी थी, उस-उस स्थानके लिये उसने प्रस्थान कर दिया। भगवान् श्रीहरिके चरणकमलसे गङ्गा प्रकट हुई, इसलिये उसे लोग 'विष्णुपदी' कहने लगे। ब्रह्मन्! इस प्रकार गङ्गाके इस उत्तम उपाख्यानका वर्णन कर चुका। इस सारगर्भित प्रसङ्गसे सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। अब पुनः तुम्हें क्या सुननेकी इच्छा है?

नारदने कहा—भगवन्! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और जगत्को पावन बनानेवाली तुलसी—ये चारों देवियाँ भगवान् नारायणकी ही प्रिया हैं। यह प्रसङ्ग तथा गङ्गाके वैकुण्ठको जानेकी बात मैं आपसे सुन चुका; परंतु गङ्गा विष्णुकी पत्नी कैसे हुई, यह वृत्तान्त सुननेका सुअवसर मुझे नहीं मिला। उसे कृपया सुनाइये।

भगवान् नारायण बोले—नारद! जब गङ्गा वैकुण्ठमें चली गयी, तब थोड़ी देरके बाद जगत्की व्यवस्था करनेवाले ब्रह्मा भी उसके साथ ही वैकुण्ठ पहुँचे और जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिको प्रणाम करके कहने लगे।

श्रीतुलसी

भगवती गंगा

ब्रह्माजीने कहा—भगवन्! श्रीराधा और श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई ब्रह्मद्रवरूपिणी गङ्गा इस समय एक सुशीला देवीके रूपमें विराजमान है। दिव्य यौवनसे सम्पन्न होनेके कारण उसका शरीर परम मनोहर जान पड़ता है। शुद्ध एवं सत्त्वस्वरूपिणी उस देवीमें क्रोध और अहंकार लेशमात्रके लिये भी नहीं है। श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट हुई यह गङ्गा उन्हें छोड़ किसी दूसरेको पति नहीं बनाना चाहती। किंतु परम तेजस्विनी राधा ऐसा नहीं चाहती। वह मानिनी राधा इस गङ्गाको पी जाना चाहती थी, परंतु बड़ी बुद्धिमानीके साथ यह परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रविष्ट हो गयी, इसीसे रक्षा हुई। उस समय सर्वत्र सूखे हुए ब्रह्मण्डगोलकको देखकर मैं गोलोकमें गया। सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण वृत्तान्त जाननेके लिये वहाँ विराजमान थे। उन्होंने सबका अभिप्राय समझकर अपने चरणकमलके नखाग्रसे इसे बाहर निकाल दिया। तब मैंने इसे राधाकी पूजाके मन्त्र याद कराये। इसके जलसे ब्रह्माण्ड-गोलकको पूर्ण कराया। तदनन्तर राधा और श्रीकृष्णके चरणोंमें मस्तक झुकाकर इसे साथ लेकर यहाँ आया। प्रभो! आपसे मेरी प्रार्थना है कि इस सुरेश्वरी गङ्गाको आप अपनी पत्नी बना लीजिये। देवेश! आप पुरुषोंमें रत्न हैं। इस साध्वी देवीको स्त्रियोंमें रत्न माना जाता है। जिनमें सत्-असत्का पूर्ण ज्ञान है, वे पण्डितपुरुष भी इस प्रकृतिका अपमान नहीं करते। सभी पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न हुए हैं और स्त्रियाँ भी उसीकी कलाएँ हैं। केवल आप भगवान् श्रीहरि ही उस प्रकृतिसे परे निर्गुण प्रभु हैं। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण स्वयं दो भागोंमें विभक्त हुए। आधेसे तो दो भुजाधारी श्रीकृष्ण बने रहे और उनका आधा अङ्ग आप चतुर्भुज श्रीहरिके रूपमें प्रकट हो गया। इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्णके वामाङ्गसे आविर्भूत श्रीराधा भी दो रूपोंमें परिणत हुईं। दाहिने अंशसे तो वे स्वयं रहीं और उनके वामांशसे लक्ष्मीका प्राकट्य हुआ। अतएव यह गङ्गा आपको ही वरण करना चाहती है; क्योंकि आपके श्रीविग्रहसे ही यह प्रकट है। प्रकृति और पुरुषकी भाँति स्त्री-पुरुष दोनों एक ही अङ्ग हैं।

मुने! इस प्रकार कहकर महाभाग ब्रह्माने भगवान् श्रीहरिके पास गङ्गाको बैठा दिया और वे वहाँसे चल पड़े। फिर तो स्वयं श्रीहरिने विवाहके नियमानुसार गङ्गाके पुष्प एवं चन्दनसे चर्चित कर-कमलको ग्रहण कर लिया और वे उसके प्रियतम पति बन गये। जो गङ्गा पृथ्वीपर पधार चुकी थी, वह भी समयानुसार अपने उस स्थानपर पुनः आ गयी। यों भगवान्‌के चरणकमलसे प्रकट होनेके कारण इस गङ्गाकी 'विष्णुपदी' नामसे प्रसिद्धि हुई। गङ्गाके प्रति सरस्वतीके मनमें जो डाह था, वह निरन्तर बना रहा। गङ्गा सरस्वतीसे कुछ द्वेष नहीं रखती थी। अन्तमें रुष्टकर विष्णुप्रिया गङ्गाने सरस्वतीको भारतवर्षमें जानेका शाप दे दिया था। मुने! इस प्रकार लक्ष्मीपति भगवान् श्रीहरिकी गङ्गासहित तीन पत्नियाँ हैं। बादमें तुलसीको भी प्रिय पत्नी बननेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। अतएव तुलसीसहित ये चार प्रेयसी पत्नियाँ कही गयी हैं। (अध्याय ११-१२)

तुलसीके कथा-प्रसङ्गमें राजा वृषध्वजका चरित्र-वर्णन

नारदजीने पूछा—प्रभो! साध्वी तुलसी भगवान् श्रीहरिकी पत्नी कैसे बनी? इसका जन्म कहाँ हुआ था और पूर्वजन्ममें यह कौन थी? इस साध्वी देवीने किसके कुलको पवित्र किया था तथा इसके माता-पिता कौन थे? किस तपस्याके प्रभावसे प्रकृतिके अधिष्ठाता भगवान् श्रीहरि इसे

पतिरूपसे प्राप्त हुए? क्योंकि वे परम प्रभु तो बिलकुल निःस्पृह हैं। दूसरा प्रश्न यह है कि ऐसी सुयोग्या देवीको वृक्ष क्यों होना पड़ा और यह परम तपस्विनी देवी कैसे असुरके चंगुलमें फँस गयी? सम्पूर्ण संदेहोंको दूर करनेवाले प्रभो! आप मेरे इस संशयको मिटानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! दक्षसावर्णि नामसे प्रसिद्ध एक पुण्यात्मा मनु हो गये हैं। भगवान् विष्णुके अंशसे प्रकट ये मनु परम पवित्र, यशस्वी, विशद कीर्तिसे सम्पन्न तथा श्रीहरिके प्रति अटूट श्रद्धा रखनेवाले थे। इनके पुत्रका नाम था ब्रह्मसावर्णि। उनका भी अन्तःकरण स्वच्छ था। उनके मनमें धार्मिक भावना थी और भगवान् श्रीहरिपर वे श्रद्धा रखते थे। ब्रह्मसावर्णिके पुत्र धर्मसावर्णि नामसे प्रसिद्ध हुए, जिनकी इन्द्रियाँ सदा वशमें रहती थीं और मन श्रीहरिकी उपासनामें निरत रहता था। धर्मसावर्णिसे इन्द्रियनिग्रही एवं परम भक्त रुद्रसावर्णि पुत्ररूपमें प्रकट हुए। इन रुद्रसावर्णिके पुत्रका नाम देवसावर्णि हुआ। ये भी परम वैष्णव थे। देवसावर्णिके पुत्रका नाम इन्द्रसावर्णि था। फिर भगवान् विष्णुके अनन्य उपासक इन इन्द्रसावर्णिसे वृषध्वजका जन्म हुआ। भगवान् शंकरमें इस वृषध्वजकी असीम श्रद्धा थी। स्वयं भगवान् शंकर इसके यहाँ बहुत कालतक ठहरे थे। इसके प्रति भगवान् शंकरका स्नेह पुत्रसे भी बढ़कर था। राजा वृषध्वजकी भगवान् नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती—इनमें किसीके प्रति श्रद्धा नहीं थी। उसने सम्पूर्ण देवताओंका पूजन त्याग दिया था। अभिमानमें चूर होकर वह भाद्रमासमें महालक्ष्मीकी पूजामें विघ्न उपस्थित किया करता था। माघकी शुक्ल पञ्चमीके दिन समस्त देवता सरस्वतीकी विस्तृतरूपसे पूजा करते थे; परंतु वह नरेश उसमें सम्मिलित नहीं होता था। यज्ञ और विष्णु-पूजाकी निन्दा करना उसका मानो स्वभाव ही बन गया था। वह केवल भगवान् शिवमें ही श्रद्धा रखता था। ऐसे स्वभाववाले राजा वृषध्वजको देखकर सूर्यने उसे शाप दे दिया—'राजन्! तेरी श्री नष्ट हो जाय!'

भक्तपर संकट देख आशुतोष भोलेनाथ भगवान् शंकर हाथमें त्रिशूल उठाकर सूर्यपर टूट पड़े। तब सूर्य अपने पिता कश्यपजीके साथ ब्रह्माजीकी शरणमें गये। शंकर त्रिशूल लिये ब्रह्मलोकको चल दिये। ब्रह्माको भी शंकरजीका भय था, अतएव उन्होंने सूर्यको आगे करके वैकुण्ठकी यात्रा की। उस समय ब्रह्मा, कश्यप और सूर्य तीनों भयभीत थे। उन तीनों महानुभावोंने सर्वेश भगवान् नारायणकी शरण ग्रहण की। तीनोंने मस्तक झुकाकर भगवान् श्रीहरिको प्रणाम किया, बारंबार प्रार्थना की और उनके सामने अपने भयका सम्पूर्ण कारण कह सुनाया। तब भगवान् नारायणने कृपापूर्वक उन सबको अभय प्रदान किया और कहा—'भयभीत देवताओ! स्थिर हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें कोई भय नहीं। विपत्तिके अवसरपर डरे हुए जो भी व्यक्ति जहाँ-कहीं भी मुझे याद करते हैं, मैं हाथमें चक्र लिये तुरंत वहीं पहुँचकर उनकी रक्षा करता हूँ*। देवो! मैं अखिल जगत्‌का कर्ता-भर्ता हूँ। मैं ही ब्रह्मारूपसे सदा संसारकी सृष्टि करता हूँ और शंकररूपसे संहार। मैं ही शिव हूँ। तुम भी मेरे ही रूप हो और ये शंकर भी मुझसे भिन्न नहीं हैं। मैं ही नाना रूप धारण करके सृष्टि और पालनकी व्यवस्था किया करता हूँ। देवताओ! तुम्हारा कल्याण हो; जाओ, अब तुम्हें भय नहीं होगा। मैं वचन देता हूँ, आजसे शंकरका भय तुम्हारे पास नहीं आ सकेगा। वे सर्वेश भगवान्

* स्मरन्ति मे यत्र तत्र मां विपत्तौ भयान्विताः। तांस्तत्र गत्वा रक्षामि चक्रहस्तस्त्वरान्वितः॥
(प्रकृतिखण्ड २३। २०)

शंकर सत्पुरुषोंके स्वामी हैं। उन्हें भक्तात्मा और भक्तवत्सल कहा जाता है और ये सदा भक्तोंके अधीन रहते हैं। ब्रह्मन्! सुदर्शनचक्र और भगवान् शंकर—ये दोनों मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। ब्रह्माण्डमें इनसे अधिक दूसरा कोई तेजस्वी नहीं है। ये शंकर चाहें तो लीलापूर्वक करोड़ों सूर्योंको प्रकट कर सकते हैं। करोड़ों ब्रह्माओंके निर्माणकी भी इनमें पूर्ण सामर्थ्य है। इन त्रिशूलधारी भगवान् शंकरके लिये कोई भी कार्य असाध्य नहीं; तथापि कुछ भी बाहरी ज्ञान न रखकर ये दिन-रात मेरे ही ध्यानमें लगे रहते हैं। अपने पाँच मुखोंसे मेरे मन्त्रोंका जप करना और भक्तिपूर्वक मेरे गुण गाते रहना इनका स्वभाव-सा बन गया है। मैं भी रात-दिन इनके कल्याणकी चिन्तामें ही लगा रहता हूँ; क्योंकि जो जिस प्रकार मेरी उपासना करते हैं, मैं भी उसी प्रकार उनकी सेवामें तत्पर रहता हूँ*—यह मेरा नियम है।'

इतनेमें भगवान् शंकर भी वहाँ पहुँच गये। उनके हाथमें त्रिशूल था। वे वृषभपर आरूढ़ थे और आँखें रक्तकमलके समान लाल थीं। वहाँ पहुँचते ही वे वृषभसे उतर पड़े और भक्तिविनम्र होकर उन्होंने शान्तस्वरूप परात्पर प्रभु लक्ष्मीकान्त भगवान् नारायणको श्रद्धापूर्वक प्रणाम किया। उस समय भगवान् श्रीहरि रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे। रत्ननिर्मित अलङ्कारोंसे उनका श्रीविग्रह सुशोभित था। किरीट, कुण्डल, चक्र और वनमालासे वे अनुपम शोभा पा रहे थे। नूतन मेघके समान उनकी श्याम कान्ति थी। उनका परम सुन्दर विग्रह चार भुजाओंसे सुशोभित था और चार भुजावाले अनेक पार्षद स्वच्छ चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रहे थे। नारद! उनका सम्पूर्ण अङ्ग दिव्य चन्दनोंसे अनुलिप्त था। वे अनेक प्रकारके भूषण और पीताम्बर धारण किये हुए थे। लक्ष्मीका दिया हुआ ताम्बूल उनके मुखमें शोभा पा रहा था। ऐसे प्रभुको देखकर भगवान् शंकरका मस्तक उनके चरणोंमें झुक गया। ब्रह्माने शंकरको प्रणाम किया तथा अत्यन्त डरते हुए सूर्य भी शंकरको प्रणाम करने लगे। कश्यपने अतिशय भक्तिके साथ स्तुति और प्रणाम किया। तदनन्तर भगवान् शिव सर्वेश्वर श्रीहरिकी स्तुति करके एक सुखमय आसनपर विराज गये। विष्णु-पार्षदोंने श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की। जब उनके मार्गका श्रम दूर हो गया, तब भगवान् श्रीहरिने अमृतके समान अत्यन्त मनोहर एवं मधुर वचन कहा।

भगवान् विष्णु बोले—महादेव! यहाँ कैसे पधारना हुआ? अपने क्रोधका कारण बताइये?

महादेवने कहा—भगवन्! राजा वृषध्वज मेरा परम भक्त है। मैं उसे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय मानता हूँ। सूर्यने उसे शाप दे दिया है—यही मेरे क्रोधका कारण है। जब मैं अपने कृपापात्र पुत्रके शोकसे प्रभावित होकर सूर्यको मारनेके लिये तैयार हुआ, तब वह ब्रह्माकी शरणमें चला

* ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्॥ (प्रकृतिखण्ड १३।२१)

गया और इस समय ब्रह्मासहित उसने आपकी शरण ग्रहण कर ली है। जो व्यक्ति ध्यान अथवा वचनसे भी आपके शरणापन्न हो जाते हैं, उनपर विपत्ति और संकट अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकते। वे जरा और मृत्युसे सर्वथा रहित हो जाते हैं। भगवन्! शरणागतिका फल तो प्रत्यक्ष ही है, फिर मैं क्या कहूँ? आपका स्मरण करते ही मनुष्य सदाके लिये अभय एवं मङ्गलमय बन जाते हैं। परंतु जगत्प्रभो! अब मेरे उस भक्तकी जीवनचर्या कैसे चलेगी—यह बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि सूर्यके शापसे उसकी श्री नष्ट हो चुकी है। उसमें सोचने-समझनेकी शक्ति भी तनिक-सी नहीं रह गयी है।

भगवान् विष्णु बोले—शम्भो! दैवकी प्रेरणासे बहुत समय बीत गया। इक्कीस युग समाप्त हो गये। यद्यपि वैकुण्ठमें अभी आधी घड़ीका समय बीता है। अतः अब आप शीघ्र अपने स्थानपर पधारिये। किसीसे भी न रुकनेवाले अत्यन्त भयंकर कालने इस समय वृषध्वजको अपना ग्रास बना लिया है। यही नहीं, किंतु उसका पुत्र रथध्वज भी अब जगत्में नहीं है। इस समय रथध्वजके दो पुत्र हैं, उन महाभाग पुत्रोंके नाम हैं—धर्मध्वज और कुशध्वज। ये परम वैष्णवपुरुष सूर्यके शापसे श्रीहीन होकर जीवन व्यतीत कर रहे हैं—ऐसा कहा जाता है। राज्य भी उनके हाथमें नहीं है। एकमात्र लक्ष्मीकी उपासना ही उनके जीवनका उद्देश्य बन गया है। अतः उनकी भार्याओंके उदरसे भगवती लक्ष्मी अपनी एक कलासे प्रकट होंगी। तब ये दोनों नरेश लक्ष्मीसे सम्पन्न हो जायँगे। शम्भो! अब आपके सेवक वृषध्वजका शरीर नहीं रहा। अतः आप यहाँसे पधार सकते हैं। देवताओ! अब आप लोग भी जानेका कष्ट करें।

नारद! इस प्रकार कहकर भगवान् श्रीहरि लक्ष्मीके सहित सभासे उठे और अन्तःपुरमें चले गये। देवताओंने भी बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने आश्रमकी यात्रा की। परिपूर्णतम शंकर उसी क्षण तपस्या करनेके विचारसे चल पड़े। (अध्याय १३)

वेदवतीकी कथा, इसी प्रसङ्गमें भगवान् रामके चरित्रका एक अंश-कथन, भगवती सीता तथा द्रौपदीके पूर्वजन्मका वृत्तान्त

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! धर्मध्वज और कुशध्वज—इन दोनों नरेशोंने कठिन तपस्याद्वारा भगवती लक्ष्मीकी उपासना करके अपने प्रत्येक अभीष्ट मनोरथको प्राप्त कर लिया। महालक्ष्मीके वर-प्रसादसे उन्हें पुनः पृथ्वीपति होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। वे दोनों धनवान् और पुत्रवान् हो गये। कुशध्वजकी परम साध्वी भार्याका नाम मालावती था। समयानुसार उसके एक कन्या उत्पन्न हुई, जो लक्ष्मीका अंश थी। वह भूमिपर पैर रखते ही ज्ञानसे सम्पन्न हो गयी। उस कन्याने जन्म लेते ही सूतिकागृहमें स्पष्ट स्वरसे वेदके मन्त्रोंका उच्चारण किया और उठकर खड़ी हो गयी। इसलिये विद्वान् पुरुष उसे 'वेदवती' कहने लगे। उत्पन्न होते ही उस कन्याने स्नान किया और तपस्या करनेके विचारसे वह वनकी ओर चल दी। भगवान् नारायणके चिन्तनमें तत्पर रहनेवाली उस देवीको प्रायः सभीने रोका; परंतु उसने किसीकी भी नहीं सुनी। वह तपस्विनी कन्या एक मन्वन्तरतक पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करती रही। उसका तप अत्यन्त कठिन था तो भी लीलापूर्वक चलता रहा। अत्यन्त तपोनिष्ठ रहनेपर भी उसका शरीर हृष्ट-पुष्ट बना रहा। उसमें

दुर्बलता नहीं आ सकी। वह नवयौवनसे सम्पन्न बनी रही। एक दिन सहसा उसे स्पष्ट आकाशवाणी सुनायी पड़ी—'सुन्दरि! दूसरे जन्ममें भगवान् श्रीहरि तुम्हारे पति होंगे। ब्रह्मा प्रभृति देवता भी बड़ी कठिनतासे जिनकी उपासना कर पाते हैं, उन्हीं परम प्रभुको स्वामी बनानेका सौभाग्य तुम्हें प्राप्त होगा।'

मुने! यह आकाशवाणी सुननेके पश्चात् रुष्ट हो वह कन्या गन्धमादन पर्वतपर चली गयी और वहाँ पहलेसे भी अधिक कठोर तप करने लगी। वहाँ चिरकालतक तप करके विश्वस्त हो वहीं रहने लगी। एक दिन वहाँ उसे अपने सामने दुर्निवार रावण दिखायी पड़ा। वेदवतीने अतिथि-धर्मके अनुसार पाद्य, परम स्वादिष्ट फल और शीतल जल देकर उसका सत्कार किया। रावण बड़ा पापिष्ठ था। फल खानेके पश्चात् वह वेदवतीके समीप जा बैठा और पूछने लगा—'कल्याणी! तुम कौन हो और क्यों यहाँ ठहरी हुई हो?' वह देवी परम सुन्दरी थी। उस साध्वी कन्याके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी रहती थी। उसे देखकर दुराचारी रावणका हृदय विकारसे संतप्त हो गया। वह वेदवतीको हाथसे खींचकर उसका शृंगार करनेको उद्यत हुआ। रावणकी इस कुचेष्टाको देखकर उस साध्वीका मन क्रोधसे भर गया। उसने रावणको अपने तपोबलसे इस प्रकार स्तम्भित कर दिया कि वह जडवत् होकर हाथों एवं पैरोंसे निश्चेष्ट हो गया। कुछ भी कहने-करनेकी उसमें क्षमता नहीं रह गयी। ऐसी स्थितिमें उसने मन-ही-मन उस कमललोचना देवीके पास जाकर उसका मानस स्तवन किया। शक्तिकी उपासना विफल नहीं होती, इसे सिद्ध करनेके विचारसे देवी वेदवती रावणपर संतुष्ट हो गयी और परलोकमें उसकी स्तुतिका फल देना उन्होंने स्वीकार कर लिया। साथ ही उसे यह शाप दे दिया—'दुरात्मन्! तू मेरे लिये ही अपने बन्धु-बान्धवोंके साथ कालका ग्रास बनेगा; क्योंकि तूने कामभावसे मुझे स्पर्श कर लिया है; अतः अब मैं इस शरीरको त्याग देती हूँ; देख ले।'

देवी वेदवतीने इस प्रकार कहकर वहीं योगद्वारा अपने शरीरका त्याग कर दिया। तब रावणने उसका मृत शरीर गङ्गामें डाल दिया और मनमें इस प्रकार चिन्ता करते हुए घरकी ओर प्रयाण किया—'अहो! मैंने यह कैसी अद्भुत घटना देखी? यह मैंने क्या कर डाला?'—इस प्रकार विचार कर अपने कुकृत्य और उस देवीके देहत्यागको याद करके रावण बहुत विषाद करने लगा। मुने! वह देवी साध्वी वेदवती दूसरे जन्ममें जनककी कन्या हुई और उस देवीका नाम सीता पड़ा; जिसके कारण रावणको मृत्युका मुख देखना पड़ा था। वेदवती बड़ी तपस्विनी थी। पूर्वजन्मकी तपस्याके प्रभावसे स्वयं भगवान् श्रीराम उसके पति हुए। ये राम साक्षात् परिपूर्णतम श्रीहरि हैं। देवी वेदवतीने घोर तपस्याके द्वारा आराधना करके इन जगदीश्वरको पतिरूपमें प्राप्त किया था। वह साक्षात् रमा थी। सीतारूपसे विराजमान उस सुन्दरी देवीने बहुत दिनोंतक भगवान् श्रीरामके साथ सुख भोगा। उसे पूर्वजन्मकी बातें स्मरण थीं, फिर भी पूर्वसमयमें तपस्यासे जो कष्ट हुआ था, उसपर उसने ध्यान नहीं दिया। वर्तमान सुखके सामने उसने सम्पूर्ण पूर्वक्लेशोंकी स्मृतिका त्याग कर दिया था। श्रीराम परम गुणी, समस्त सुलक्षणोंसे सम्पन्न, रसिक, शान्त-स्वभाव, अत्यन्त कमनीय तथा स्त्रियोंके लिये साक्षात् कामदेवके समान सुन्दर एवं श्रेष्ठतम देवता थे। वेदवतीने ऐसे मनोऽभिलषित स्वामीको प्राप्त किया। कुछ कालके पश्चात् रघुकुलभूषण, सत्यसंध भगवान् श्रीराम पिताके सत्यकी रक्षा करनेके लिये वनमें पधारे। वे सीता और लक्ष्मणके साथ समुद्रके

समीप ठहरे थे। वहाँ ब्राह्मणरूपधारी अग्निसे उनकी भेंट हुई। भगवान् रामको दुःखी देखकर विप्ररूपधारी अग्निका मन संतप्त हो उठा। तब सर्वथा सत्यवादी उन अग्निदेवने सत्यप्रेमी भगवान् रामसे ये सत्यमय वचन कहे।

ब्राह्मणवेषधारी अग्निने कहा—भगवन्! मेरी कुछ प्रार्थना सुनिये। श्रीराम! यह सीताके हरणका समय उपस्थित है। ये मेरी माँ हैं; इन्हें मेरे संरक्षणमें रखकर आप छायामयी सीताको अपने साथ रखिये; फिर अग्निपरीक्षाके समय इन्हें मैं आपको लौटा दूँगा। परीक्षा-लीला भी हो जायगी। इसी कार्यके लिये मुझे देवताओंने यहाँ भेजा है। मैं ब्राह्मण नहीं, साक्षात् अग्नि हूँ।

भगवान् श्रीरामने अग्निकी बात सुनकर लक्ष्मणको बताये बिना ही व्यथित-हृदयसे अग्निके प्रस्तावको मान लिया। नारद! उन्होंने सीताको अग्निके हाथों सौंप दिया। तब अग्निने योगबलसे मायामयी सीता प्रकट की। उसके रूप और गुण साक्षात् सीताके समान ही थे। अग्निदेवने उसे रामको दे दिया। मायासीताको साथ ले वे आगे बढ़े। इस गुप्त रहस्यको प्रकट करनेके लिये भगवान् रामने उसे मना कर दिया। यहाँतक कि लक्ष्मण भी इस रहस्यको नहीं जान सके; फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? इसी बीच भगवान् रामने एक सुवर्णमय मृग देखा। सीताने उस मृगको लानेके लिये भगवान् रामसे अनुरोध किया। भगवान् राम उस वनमें जानकीकी रक्षाके लिये लक्ष्मणको नियुक्त करके स्वयं मृगको मारनेके लिये चले। उन्होंने बाणसे उसे मार गिराया। मरते समय उस मायामृगके मुखसे 'हा लक्ष्मण!'—यह शब्द निकला। फिर सामने श्रीरामको देख उनका स्मरण करते हुए उसने सहसा प्राण त्याग दिये। मृगका शरीर त्यागकर वह दिव्य देहसे सम्पन्न हो गया और रत्ननिर्मित दिव्य विमानपर सवार होकर वैकुण्ठधामको चला गया। यह मारीच पूर्वजन्ममें वैकुण्ठधामके द्वारपर वहाँके द्वारपाल जय और विजयका किंकर था तथा वहीं रहता था। यह बड़ा बलवान् था। उसका नाम था 'जित'। सनकादिकोंके शापसे जय-विजयके साथ यह भी राक्षस-योनिमें आ गया था। उस दिन उसका उद्धार हो गया और वह उन द्वारपालोंके पहले ही वैकुण्ठके द्वारपर पहुँच गया।

तदनन्तर 'हा लक्ष्मण' इस कष्टभरे शब्दको सुनकर सीताने लक्ष्मणको रामके पास जानेके लिये प्रेरित किया। लक्ष्मणके चले जानेपर रावण सीताका अपहरण कर खेल-ही-खेलमें लङ्काकी ओर चल दिया। उधर लक्ष्मणको वनमें देखकर राम विषादमें डूब गये। वे उसी क्षण अपने आश्रमपर गये और सीताको वहाँ न देख विलाप करने लगे। फिर, सीताको खोजते हुए वे बारंबार वनमें चक्कर लगाने लगे। कुछ समय बाद गोदावरी नदीके तटपर उन्हें जटायुद्वारा सीताका समाचार मिला। तब वानरोंको अपना सहायक बनाकर उन्होंने समुद्रमें पुल बाँधा। उसके द्वारा लङ्कामें पहुँचकर उन रघुश्रेष्ठने अपने बाणसे बन्धु-बान्धवोंसहित रावणका वध कर डाला। तत्पश्चात् उन्होंने सीताकी अग्निपरीक्षा करायी। अग्निदेवने उसी क्षण वास्तविक सीताको भगवान् रामके सामने उपस्थित कर दिया। तब छायासीताने अत्यन्त नम्र होकर अग्निदेव और भगवान् श्रीराम—दोनोंसे कहा—'महानुभावो! अब मैं क्या करूँगी, सो बतानेकी कृपा कीजिये।'

तब भगवान् श्रीराम और अग्निदेव बोले—देवी! तुम तप करनेके लिये अत्यन्त पुण्यप्रद पुष्करक्षेत्रमें चली जाओ। वहीं रहकर तपस्या करना। इसके फलस्वरूप तुम्हें स्वर्गलक्ष्मी बननेका सुअवसर प्राप्त होगा।

भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके वचन सुनकर छायासीताने पुष्करक्षेत्रमें जाकर तप

आरम्भ कर दिया। उसकी कठिन तपस्या बहुत लम्बे कालतक चलती रही। इसके बाद उसे स्वर्गलक्ष्मी होनेका सौभाग्य प्राप्त हो गया। समयानुसार वही छायासीता राजा द्रुपदके यहाँ यज्ञकी वेदीसे प्रकट हुई। उसका नाम 'द्रौपदी' पड़ा और पाँचों पाण्डव उसके पतिदेव हुए। इस प्रकार सत्ययुगमें वही कल्याणी वेदवती कुशध्वजकी कन्या, त्रेतायुगमें छायारूपसे सीता बनकर भगवान् श्रीरामकी सहचरी तथा द्वापरमें द्रुपदकुमारी द्रौपदी हुई। अतएव इसे 'त्रिहायणी' कहा गया है। तीनों युगोंमें यह विद्यमान रही है।

नारदजीने पूछा—संदेहोंके निराकरण करनेमें परम कुशल मुनिवर! द्रौपदीके पाँच पति कैसे हुए? मेरे मनकी यह शङ्का मिटानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! अब लङ्कामें वास्तविक सीता भगवान् श्रीरामके पास विराजमान हो गयी, तब रूप और यौवनसे शोभा पानेवाली छायासीताकी चिन्ताका पार न रहा। वह भगवान् श्रीराम और अग्निदेवके आज्ञानुसार भगवान् शंकरकी उपासनामें तत्पर हो गयी। पति प्राप्त करनेके लिये व्यग्र होकर वह बार-बार यही प्रार्थना कर रही थी कि—'भगवान् त्रिलोचन! मुझे पति प्रदान कीजिये।' यही शब्द उसके मुँहसे पाँच बार निकले। भगवान् शंकर परम रसिक हैं। छायासीताकी यह प्रार्थना सुनकर वे मुस्कराते हुए बोले—'तुम्हें पाँच पति मिलेंगे।' नारद! इस प्रकार त्रेताकी जो छायासीता थी, वही द्वापरमें द्रौपदी बनी और पाँचों पाण्डव उसके पति हुए। यह सब जो बीचकी बातें थीं, सुना चुका। अब जो प्रधान विषय चल रहा था, वह सुनो।

भगवान् रामने लङ्कामें मनोहारिणी सीताको पा जानेके पश्चात् वहाँका राज्य विभीषणको सौंप दिया और वे स्वयं अयोध्या पधार गये। अयोध्या भारतवर्षमें है। ग्यारह हजार वर्षोंतक भगवान् श्रीरामने वहाँ राज्य किया। तत्पश्चात् वे समस्त पुरवासियोंसहित वैकुण्ठधामको पधारे। लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत जो वेदवती थी, वह लक्ष्मीके विग्रहमें विलीन हो गयी। इस प्रकारका पवित्र आख्यान मैंने कह सुनाया। इस पुण्यदायी उपाख्यानके प्रभावसे सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। अब धर्मध्वजकी कन्याका प्रसङ्ग कहता हूँ, सुनो। (अध्याय १४)

भगवती तुलसीके प्रादुर्भावका प्रसङ्ग

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! धर्मध्वजकी पत्नीका नाम माधवी था। वह राजाके साथ गन्धमादन पर्वतपर सुन्दर उपवनमें आनन्द करती थी। यों दीर्घकाल बीत गया, किंतु उन्हें इसका ज्ञान न रहा कि कब दिन बीता, कब रात। तदनन्तर राजा धर्मध्वजके हृदयमें ज्ञानका प्रादुर्भाव हुआ और उन्होंने हास-विलाससे विलग होना चाहा; परंतु माधवी अभी तृप्त नहीं हो सकी थी, फिर भी उसे गर्भ रह गया। उसका गर्भ प्रतिदिन बढ़ता और उसकी शोभा बढ़ाता रहा। नारद! कार्तिककी पूर्णिमाके दिन उसके गर्भसे एक कन्या प्रकट हुई। उस समय शुभ दिन, शुभ योग, शुभ क्षण, शुभ लग्न और शुभ ग्रहका संयोग था। ऐसे योगसे सम्पन्न शुक्रवारके दिन देवी माधवीने लक्ष्मीके अंशसे प्रादुर्भूत उस कन्याको जन्म दिया। कन्याका मुख ऐसा मनोहर था मानो शरदऋतुकी पूर्णिमाका चन्द्रमा हो। नेत्र शरत्कालीन प्रफुल्ल कमलके समान सुन्दर थे। अधर पके हुए बिम्बाफलकी तुलना कर रहे थे। मनको

मुग्ध करनेवाली उस कन्याके हाथ और पैरके तलवे लाल थे। उसकी नाभि गहरी थी। शीतकालमें सुख देनेके लिये उसके सम्पूर्ण अङ्ग गरम रहते थे और उष्णकालमें वह शीतलाङ्गी बनी रहती थी। वह सदा सोलह वर्षकी किशोरी जान पड़ती थी। उसके सुन्दर केश ऐसे थे मानो वटवृक्षको घेरकर शोभा पानेवाले बरोह हों। उसकी कान्ति पीले चम्पककी तुलना कर रही थी। वह असंख्य सुन्दरियोंमें एक थी। स्त्री और पुरुष उसे देखकर किसीके साथ तुलना करनेमें असमर्थ हो जाते थे; अतएव विद्वान् पुरुषोंने उसका नाम 'तुलसी' रखा। भूमिपर पधारते ही वह ऐसी सुयोग्या बन गयी, मानो साक्षात् प्रकृति देवी ही हो।

सब लोगोंके मना करनेपर भी उसने तपस्या करनेके विचारसे बदरीवनको प्रस्थान किया। वहाँ रहकर वह दीर्घकालतक कठिन तपस्या करती

रही। उसके मनका निश्चित उद्देश्य यह था कि स्वयं भगवान् नारायण मेरे स्वामी हों। ग्रीष्मकालमें वह पञ्चाग्नि तपती और जाड़ेके दिनोंमें जलमें रहकर तपस्या करती। वर्षा-ऋतुमें वह वृष्टिकी धाराका वेग सहन करती हुई खुले मैदानमें आसन लगाकर बैठी रहती। हजारों वर्षोंतक वह फल और जलपर रही; फिर हजारों वर्षोंतक वह केवल पत्ते चबाकर रही और हजारों वर्षोंतक केवल वायुके आधारपर उसने प्राणोंको टिकाकर रखा। इससे उसका शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया था। तदनन्तर वह सहस्रों वर्षोंतक बिलकुल निराहार रही। निर्लक्ष्य होकर एक पैरपर खड़ी हो वह तपस्या करती रही। उसे देखकर ब्रह्मा उत्तम वर देनेके विचारसे बदरिकाश्रममें पधारे। हंसपर बैठे हुए चतुर्मुख ब्रह्माको देखकर तुलसीने प्रणाम किया। तब जगत्की सृष्टि करनेमें निपुण विधाताने उससे कहा।

ब्रह्माजी बोले—तुलसी! तुम मनोऽभिलषित वर माँग सकती हो। भगवान् श्रीहरिकी भक्ति, उनकी दासी बनना अथवा अजर एवं अमर होना जो भी तुम्हारी इच्छा हो, मैं देनेके लिये तैयार हूँ।

तुलसीने कहा—तात पितामह! सुनिये, मेरे मनमें जो अभिलाषा है, उसे बता रही हूँ, आप सर्वज्ञ हैं; अतः आपके सामने मुझे लज्जा ही क्या है। पूर्वजन्ममें मैं तुलसी नामकी गोपी थी। गोलोक मेरा निवास-स्थान था। भगवान् श्रीकृष्णकी प्रिया, उनकी अनुचरी, उनकी अर्द्धाङ्गिनी तथा उनकी प्रेयसी सखी—सब कुछ होनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त था। गोविन्द नामसे सुशोभित उन प्रभुके साथ मैं हास-विलासमें रत थी। उस परम सुखसे अभी मैं तृप्त नहीं थी। इतनेमें एक दिन रासकी अधिष्ठात्री देवी भगवती राधाने रासमण्डलमें पधारकर रोषसे मुझे यह शाप दे दिया कि 'तुम मानव-योनिमें उत्पन्न होओ।' उसी समय भगवान् गोविन्दने मुझसे कहा—'देवी! तुम भारतवर्षमें रहकर तपस्या करो। ब्रह्मा वर देंगे, जिससे मेरे स्वरूपभूत अंश चतुर्भुज श्रीविष्णुको तुम पतिरूपसे प्राप्त कर लोगी।' इस प्रकार कहकर देवेश्वर

भगवान् श्रीकृष्ण भी अन्तर्धान हो गये। मुने! मैंने अपना वह शरीर त्याग दिया और अब इस भूमण्डलपर उत्पन्न हुई हूँ। सुन्दर विग्रहवाले शान्तस्वरूप भगवान् नारायणको मैं प्रियतम पतिरूपसे प्राप्त करनेके लिये वर माँग रही हूँ। आप मेरी अभिलाषा पूर्ण करनेकी कृपा करें।

ब्रह्माजी बोले—भगवान् श्रीकृष्णके अङ्गसे प्रकट सुदामा नामक एक गोप भी इस समय राधिकाके शापसे भारतवर्षमें उत्पन्न है। उस परम तेजस्वी गोपको श्रीकृष्णका साक्षात् अंश कहते हैं। शापवश उसे दनुके कुलमें उत्पन्न होना पड़ा है। 'शङ्खचूड़' नामसे वह प्रसिद्ध है। त्रिलोकीमें कोई भी ऐसा नहीं है जो उससे बढ़कर हो। वह सुदामा इस समय समुद्रमें विराजमान है। भगवान् श्रीकृष्णका अंश होनेसे उसे पूर्वजन्मकी सभी बातें स्मरण हैं। सुन्दरि! शोभने! तुम भी पूर्वजन्मके सभी प्रसङ्गोंसे परिचित हो। इस जन्ममें वह श्रीकृष्णका अंश तुम्हारा पति होगा। इसके बाद शान्तस्वरूप भगवान् नारायण तुम्हें पतिरूपसे प्राप्त होंगे। लीलावश वे ही नारायण तुमको शाप दे देंगे। अतः अपनी कलासे तुम्हें वृक्ष बनकर भारतमें रहना पड़ेगा और समस्त जगत्को पवित्र करनेकी योग्यता तुम्हें प्राप्त होगी। सम्पूर्ण पुष्पोंमें तुम प्रधान मानी जाओगी। भगवान् विष्णु तुम्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय मानेंगे। तुम्हारे बिना पूजा निष्फल समझी जायगी। वृन्दावनमें वृक्षरूपसे रहते समय लोग तुम्हें 'वृन्दावनी' कहेंगे। तुमसे उत्पन्न पत्तोंसे गोपी और गोपोंद्वारा भगवान् माधवकी पूजा सम्पन्न होगी। तुम मेरे वरके प्रभावसे वृक्षोंकी अधिष्ठात्री देवी बनकर गोपरूपसे विराजनेवाले भगवान् श्रीकृष्णके साथ स्वेच्छापूर्वक निरन्तर आनन्द भोगोगी।

नारद! ब्रह्माकी यह अमरवाणी सुनकर तुलसीके मुखपर हँसी छा गयी। उसके मनमें अपार हर्ष हुआ। उसने महाभाग ब्रह्माको प्रणाम किया और वह कहने लगी।

तुलसीने कहा—पितामह! मैं बिलकुल सच्ची बातें कहती हूँ—दो भुजासे शोभा पानेवाले श्यामसुन्दर भगवान् श्रीकृष्णको पानेके लिये मेरी जैसी अभिलाषा है, वैसी चतुर्भुज श्रीविष्णुके लिये नहीं है; परंतु उन गोविन्दकी आज्ञासे ही मैं चतुर्भुज श्रीहरिके लिये प्रार्थना करती हूँ। ओह! वे गोविन्द मेरे लिये परम दुर्लभ हो गये हैं। भगवन्! आप ऐसी कृपा करें कि उन्हीं गोविन्दको मैं पुनः निश्चय ही प्राप्त कर सकूँ। साथ ही मुझे राधाके भयसे भी मुक्त कर दीजिये।

ब्रह्माजी बोले—देवी! मैं तुम्हारे प्रति भगवती राधाके षोडशाक्षर-मन्त्रका उपदेश करता हूँ। तुम इसे हृदयमें धारण कर लो। मेरे वरके प्रभावसे अब तुम राधाको प्राणके समान प्रिय बन जाओगी। सुभगे! भगवान् गोविन्दके लिये तुम वैसी ही प्रेयसी बन जाओगी जैसी राधा हैं।

मुने! इस प्रकार कहकर जगद्धाता ब्रह्माने तुलसीको भगवती राधाका षोडशाक्षर-मन्त्र बता दिया। साथ ही स्तोत्र, कवच, पूजाकी सम्पूर्ण विधियाँ तथा किस क्रमसे अनुष्ठान करना चाहिये—ये सभी बातें बतला दीं। तब तुलसीने भगवती राधाकी उपासना की और उनके कृपाप्रसादसे वह देवी राधाके समान ही सिद्ध हो गयी। मन्त्रके प्रभावसे ब्रह्माजीने जैसा कहा था, ठीक वैसा ही फल तुलसीको प्राप्त हो गया। तपस्या-सम्बन्धी जो भी क्लेश थे, वे मनमें प्रसन्नता उत्पन्न होनेके कारण दूर हो गये; क्योंकि फल सिद्ध हो जानेपर मनुष्योंका दुःख भी उत्तम सुखके रूपमें परिणत हो जाता है।

(अध्याय १५)

तुलसीको स्वप्नमें शङ्खचूड़के दर्शन, शङ्खचूड़ तथा तुलसीके विवाहके लिये ब्रह्माजीका दोनोंको आदेश, तुलसीके साथ शङ्खचूड़का गान्धर्व-विवाह तथा देवताओंके प्रति उसके पूर्वजन्मका स्पष्टीकरण

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक समयकी बात है। वृषध्वजकी कन्या तुलसी अत्यन्त प्रसन्न होकर शयन कर रही थी। उसने स्वप्नमें एक सुन्दर वेषवाले पुरुषको देखा। वह पुरुष अभी पूर्ण नवयुवक था। उसके मुखपर मुस्कान छायी थी। उसके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दनका अनुलेपन था। रत्नमय आभूषण उसे सुशोभित कर रहे थे। उसके गलेमें सुन्दर माला थी। उसके नेत्र-भ्रमर तुलसीके मुख-कमलका रस-पान कर रहे थे।

मुने! यों स्वप्न देखनेके पश्चात् तुलसी जगकर विषाद करने लगी। इस प्रकार तरुण अवस्थासे सम्पन्न यह देवी वहीं रहकर समय व्यतीत कर रही थी। नारद! उसी समय महान् योगी शङ्खचूड़का बदरीवनमें आगमन हो गया। जैगीषव्यमुनिकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णका मनोहर मन्त्र उसे प्राप्त हो चुका था। उसने पुष्करक्षेत्रमें रहकर उस मन्त्रको सिद्ध भी कर लिया था। सर्वमङ्गलमय कवचसे उसके गलेकी शोभा हो रही थी। ब्रह्मा उसे अभिलषित वर दे चुके थे और उन्हींकी आज्ञासे वह यहाँ आया भी था। वह आ रहा था, तभी तुलसीकी दृष्टि उसपर पड़ गयी। उसकी सुन्दर कमनीय कान्ति थी। उसकी कान्ति श्वेत चम्पाके समान थी। रत्नमय अलंकारोंसे वह अलंकृत था। उसके मुखकी शोभा शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी तुलना कर रही थी। नेत्र ऐसे जान पड़ते थे, मानो शरत्कालके प्रफुल्ल कमल हों। दो रत्नमय कुण्डल उसके गण्डस्थलकी छबि बढ़ा रहे थे। पारिजातके पुष्पोंकी माला उसके गलेको सुशोभित कर रही थी और उसका मुखकमल मुस्कानसे भरा था। कस्तूरी और कुङ्कुमसे युक्त सुगन्धपूर्ण चन्दनद्वारा उसके अङ्ग अनुलिप्त थे। मनको मुग्ध कर देनेवाला वह शङ्खचूड़ अमूल्य रत्नोंसे बने हुए विमानपर विराजमान था।

इस शङ्खचूड़को देखकर तुलसीने वस्त्रसे अपना मुख ढँक लिया। कारण, लज्जावश उसका मुख नीचेकी ओर झुक गया था। शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमा उसके निर्मल दिव्य चन्द-जैसे मुखके सामने तुच्छ थे। अमूल्य रत्नोंसे बने हुए नूपुर उसके चरणोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह मनोहर त्रिवलीसे सम्पन्न थी। सर्वोत्तम मणिसे निर्मित करधनी सुन्दर शब्द करती हुई उसकी कमरमें सुशोभित थी। मालतीके पुष्पोंकी मालासे सम्पन्न केश-कलाप उसके मस्तकपर शोभा पा रहे थे। उसके कानोंमें अमूल्य रत्नोंसे बने हुए मकराकृत कुण्डल थे। सर्वोत्तम रत्नोंसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलको समुज्ज्वल बना रहा था। रत्नमय कंकण, केयूर, शङ्ख और अँगूठियाँ उस देवीकी शोभा बढ़ा रही थीं। साध्वी तुलसीका आचरण अत्यन्त प्रशंसनीय था। ऐसे भव्य शरीरसे शोभा पानेवाली उस सुन्दरी तुलसीको देखकर शङ्खचूड़ उसके पास आकर बैठ गया और मीठे शब्दोंमें बोला।

शङ्खचूड़ने पूछा—देवि! तुम कौन हो? तुम्हारे पिता कौन हैं? तुम अवश्य ही सम्पूर्ण स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं समादरकी पात्र हो। समस्त मङ्गल प्रदान करनेवाली कल्याणि! तुम वास्तवमें हो कौन? सदा सम्मान पानेवाली सुन्दरि! तुम अपना परिचय देनेकी कृपा करो।

नारद! सुन्दर नेत्रोंसे शोभा पानेवाली तुलसीने शङ्खचूड़के ऐसे वचनको सुनकर मुख नीचेकी ओर झुकाकर उससे कहना आरम्भ किया।

तुलसीने कहा—भद्रपुरुष! मैं राजा धर्मध्वजकी कन्या हूँ। तपस्या करनेके विचारसे इस तपोवनमें ठहरी हुई हूँ। तुम कौन हो? यहाँसे सुखपूर्वक चले जाओ; क्योंकि उच्च कुलकी किसी भी अकेली साध्वी कन्याके साथ एकान्तमें कोई भी कुलीन पुरुष बातचीत नहीं करता—ऐसा नियम मैंने श्रुतिमें सुना है। जो कलुषित कुलमें उत्पन्न है तथा जिसे धर्मशास्त्र एवं श्रुतिका अर्थ सुननेका कभी सुअवसर नहीं मिला, वह दुराचारी व्यक्ति ही कामी बनकर परस्त्रीकी कामना करता है। स्त्रीकी मधुर वाणीमें कोई सार नहीं रहता। वह सदा अभिमानमें चूर रहती है। वास्तवमें वह विषसे भरे हुए घड़ेके समान है, परंतु उसका मुख ऐसा जान पड़ता है मानो सदा अमृतसे भरा हो। संसाररूपी कारागारमें जकड़नेके लिये वह साँकल है। स्त्रीको इन्द्रजाल-स्वरूपा तथा स्वप्नके समान मिथ्या कहते हैं। बाहरसे तो यह अत्यन्त सुन्दरता धारण करती है, परंतु उसके भीतरके अङ्ग कुत्सित भावोंसे भरे रहते हैं। उसका शरीर विष्ठा, मूत्र, पीब और मल आदि नाना प्रकारकी दुर्गन्धिपूर्ण वस्तुओंका आधार है। रक्तरञ्जित तथा दोषयुक्त यह शरीर कभी पवित्र नहीं रहता। सृष्टिकी रचनाके समय ब्रह्माने मायावी व्यक्तियोंके लिये इस मायास्वरूपिणी स्त्रीका सृजन किया है। मोक्षकी इच्छा करनेवाले पुरुषोंके लिये यह विषका काम करती है। अतः मोक्ष चाहनेवाले व्यक्ति उसे देखना भी नहीं चाहते।

नारद! शङ्खचूड़से इस प्रकार कहकर तुलसी चुप हो गयी। तब शङ्खचूड़ हँसकर कहने लगा।

शङ्खचूड़ने कहा—देवी! तुमने जो कुछ कहा है, वह असत्य नहीं है। पर अब मेरी कुछ सत्यासत्यमिश्रित बातें सुननेकी कृपा करो। विधाताने दो प्रकारकी स्त्रियोंका निर्माण किया है—वास्तव-स्वरूपा और दूसरी कृत्या-स्वरूपा। दोनों ही एक समान मनोहर होती हैं, पर एकको प्रशस्त कहते हैं और दूसरीको अप्रशस्त। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री और राधिका—ये पाँच देवियाँ सृष्टिसूत्र हैं—सृष्टिकी मूल कारण हैं। इन आद्या देवियोंके प्रादुर्भावका प्रयोजन केवल सृष्टि करना है। इनके अंशसे प्रकट गङ्गा आदि देवियाँ वास्तव-रूपा कहलाती हैं। इनको श्रेष्ठ माना जाता है। ये यशःस्वरूपा और सम्पूर्ण मङ्गलोंकी जननी हैं। शतरूपा, देवहूति, स्वधा, स्वाहा, दक्षिणा, छायावती, रोहिणी, वरुणानी, शची, कुबेरपत्नी, अदिति, दिति, लोपामुद्रा, अनसूया, कोटवी, तुलसी, अहल्या, अरुन्धती, मेना, तारा, मन्दोदरी, दमयन्ती, वेदवती, गङ्गा, मनसा, पुष्टि, तुष्टि, स्मृति, मेधा, कालिका, वसुन्धरा, षष्ठी, मङ्गलचण्डी, धर्म-पत्नी मूर्ति, स्वस्ति, श्रद्धा, शान्ति, कान्ति, क्षमा, निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, सन्ध्या, दिवा, रात्रि, सम्पत्ति, धृति, कीर्ति, क्रिया, शोभा, प्रभा और शिवा—स्त्रीरूपमें प्रकट ये देवियाँ प्रत्येक युगमें उत्तम मानी जाती हैं।

जो स्वर्गकी दिव्य अप्सराएँ हैं, वे कृत्या-स्वरूपा हैं, उन्हें अप्रशस्त कहा गया है। अखिल विश्वमें पुंश्चली-रूपसे ये विख्यात हैं। स्त्रियोंका जो सत्त्वप्रधान रूप है, वही स्वभावतः शुद्ध है; उसीको उत्तम माना जाता है। विश्वमें इन साध्वीरूपा स्त्रियोंकी प्रशंसा की गयी है। विद्वान् पुरुष कहते हैं, इन्हींको 'वास्तव-रूपा' जानना चाहिये। कृत्या स्त्रियोंके दो भेद हैं—रजोमय-रूपा और तमोमय-रूपा। सुन्दरि! जो रजोमय-रूपवाली स्त्रियाँ हैं, उनमें निम्नाङ्कित कारणोंसे ही साध्वीपन रहता है—परपुरुषसे मिलनेके लिये स्थानका न होना, अवसर न मिलना, किसी मध्यवर्ती दूत या दूतीका न होना, शरीरमें क्लेशका होना, रोगका होना, सत्सङ्गका लाभ होना, बहुत-से जनसमुदायद्वारा घिरी रहना तथा शत्रु अथवा राजासे भयका प्राप्त होना। इन्हीं कारणोंसे ये अपने सतीत्वकी रक्षा कर पाती हैं।

मनीषी पुरुषोंका कथन है कि स्त्रियोंका यह रूप मध्यम है। जो तमोमय-रूपवाली स्त्रियाँ हैं, उन्हें कुमार्गपर जानेसे रोक पाना बहुत कठिन होता है। विद्वानोंके मतमें यह स्त्रियोंका अधम रूप है। देवि! तुमने जो कहा है, सत् और असत्‌का विचार रखनेवाले कुलीन पुरुष निर्जन, निर्जल अथवा एकान्त स्थानमें किसी परस्त्रीसे कुछ भी नहीं पूछते, सो ठीक है; मैं भी यही मानता हूँ। परंतु शोभने! मैं तो इस समय ब्रह्माकी आज्ञा पाकर ही तुम्हारे कार्यसाधनके लिये तुम्हारे पास आया हूँ और गान्धर्व-विवाहकी विधिके अनुसार तुम्हें अपनी सहधर्मिणी बनाऊँगा। देवताओंमें भगदड़ मचा देनेवाला शङ्खचूड़ मैं ही हूँ। दनुवंशमें मेरी उत्पत्ति हुई है। विशेष बात तो यह है कि मैं पूर्वजन्ममें श्रीहरिके साथ रहनेवाला उन्हींका अंश सुदामा नामक गोप था। जो सुप्रसिद्ध आठ गोप भगवान्‌के स्वयं पार्षद थे, उनमें एक मैं ही था। देवी राधिकाके शापसे इस समय मैं दानवेन्द्र बना हूँ। भगवान् श्रीकृष्णका मन्त्र मुझे इष्ट है, अतः पूर्वजन्मकी बातोंको मैं जान जाता हूँ। तुम भी पूर्वजन्ममें श्रीकृष्णके पास रहनेवाली तुलसी थी। यह जाननेकी योग्यता तो तुम्हें भी प्राप्त है। तुम भी जो भारतवर्षमें उत्पन्न हुई हो, इसमें मुख्य कारण श्रीराधिकाका रोष ही है।

मुनिवर! जब इस प्रकार कहकर शङ्खचूड़ चुप हो गया, उस समय तुलसीका मन हर्षसे उल्लसित हो उठा, उसके मुखपर मुसकराहट छा गयी। तब उसने यों कहना आरम्भ किया।

तुलसीने कहा—इस प्रकारके सद्विचारसे सम्पन्न विज्ञ पुरुष ही विश्वमें सदा प्रशंसित होते हैं। स्त्री ऐसे ही सत्पतिकी निरन्तर अभिलाषा करती है। सचमुच ही इस समय मैं आपके सद्विचारसे परास्त हो गयी। निन्दाका पात्र तथा अपवित्र तो वह पुरुष माना जाता है, जिसे स्त्रीने जीत लिया हो। स्त्रीजित मनुष्यकी तो पितर, देवता तथा बान्धव—सभी निन्दा करते हैं। यहाँतक कि माता, पिता तथा भ्राता भी मन-ही-मन तथा वाणीद्वारा भी उसकी निन्दा करनेसे नहीं चूकते। जिस प्रकार जन्म तथा मृत्युके अशौचमें ब्राह्मण दस दिनोंपर शुद्ध हो जाता है, क्षत्रिय बारह दिनोंपर और वैश्य पंद्रह दिनोंपर शुद्ध होते हैं तथा शूद्रोंकी शुद्धि एक महीनेपर होती है, वैसे ही गान्धर्व-विवाह-सम्बन्धी पति-पत्नीकी संतान भी समयानुसार शुद्ध हो जाती है। उसमें वर्णसंकर-दोष नहीं आ सकता। यह बात शास्त्रोंमें प्रसिद्ध है। स्त्रीजित मनुष्यकी तो आजीवन शुद्धि नहीं होती। चितापर जलते समय ही वह इस पापसे मुक्त होता है। स्त्रीजित मनुष्यके पितर उसके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते। देवता भी उसके समर्पण किये हुए पुष्प और जल आदिके लेनेमें सम्मत नहीं होते। जिसके मनको स्त्रीने हरण कर लिया है, उस व्यक्तिको ज्ञान, तप, जप, होम, पूजन, विद्या अथवा यशसे क्या लाभ हुआ? मैंने विद्याका प्रभाव जाननेके लिये ही आपकी परीक्षा की है। कारण, कामिनी स्त्रीका प्रधान कर्तव्य है कि कान्तकी परीक्षा करके ही उसे पतिरूपमें स्वीकार करे।

गुणहीन, वृद्ध, अज्ञानी, दरिद्र, मूर्ख, रोगी, कुरूप, परम क्रोधी, अशोभन मुखवाले, पङ्गु, अङ्गहीन, नेत्रहीन, बधिर, जड, मूक तथा नपुंसकके समान पापी वरको जो अपनी कन्या देता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है। शान्त, गुणी, नवयुवक, विद्वान् तथा साधुस्वभाववाले वरको अपनी कन्या अर्पण करनेवाले पुरुषको दस अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। जो व्यक्ति कन्याको पाल-पोसकर विपत्तिवश अथवा धनके

लोभसे बेच देता है, वह 'कुम्भीपाक' नरकमें पचता है*। उस पापीको नरकमें भोजनके स्थानपर कन्याके मल-मूत्र प्राप्त होते हैं। कीड़ों और कौओंद्वारा उसका शरीर नोचा जाता है। बहुत लम्बे समयतक वह कुम्भीपाक नरकमें रहता है। फिर जगत्में जन्म पाकर उसका रोगग्रस्त रहना निश्चित है।

तपको ही सर्वस्व माननेवाले नारद! इस प्रकार कहकर देवी तुलसी चुप हो गयी।

इतनेमें ब्रह्माजीने आकर कहा—शङ्खचूड़!

तुम इस देवीके साथ क्या बातचीत कर रहे हो? अब गान्धर्व-विवाहके नियमानुसार इसे पत्नीरूपसे स्वीकार कर लेना तुम्हारे लिये परम आवश्यक है; क्योंकि तुम पुरुषोंमें रत्न हो और यह साध्वी देवी भी कन्याओंमें रत्न समझी जाती है। इसके बाद ब्रह्माजीने तुलसीसे कहा—'पतिव्रते! तुम ऐसे गुणी पतिकी क्या परीक्षा करती हो? देवता, दानव और असुर—सबको कुचल डालनेकी इसमें शक्ति है। जिस प्रकार भगवान् नारायणके पास लक्ष्मी, श्रीकृष्णके पास राधिका, मेरे पास सावित्री, भगवान् वाराहके पास पृथ्वी, यज्ञके पास दक्षिणा, अत्रिके पास अनसूया, नलके पास दमयन्ती, चन्द्रमाके पास रोहिणी, कामदेवके पास रति, कश्यपके पास अदिति, वसिष्ठके पास अरुन्धती, गौतमके पास अहल्या, कर्दमके पास देवहूति, बृहस्पतिके पास तारा, मनुके पास शतरूपा, अग्निके पास स्वाहा, इन्द्रके पास शची, गणेशके पास पुष्टि, स्कन्दके पास देवसेना तथा धर्मके पास साध्वी मूर्ति पत्नीरूपसे शोभा पाती हैं, वैसे ही तुम भी इस शङ्खचूड़की सौभाग्यवती प्रिया बन जाओ। शङ्खचूड़की मृत्युके पश्चात् तुम पुनः गोलोकमें भगवान् श्रीकृष्णके पास चली जाओगी और फिर वैकुण्ठमें चतुर्भुज भगवान् विष्णुको प्राप्त करोगी।†'

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! शङ्खचूड़ और तुलसीको इस प्रकार आशीर्वाद-रूपमें आज्ञा देकर ब्रह्माजी अपने लोकमें चले गये। तब शङ्खचूड़ने गान्धर्व-विवाहके अनुसार तुलसीको अपनी पत्नी बना लिया। उस समय स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं। आकाशसे पुष्प बरसने लगे। तदनन्तर शङ्खचूड़ अपने भवनमें आकर तुलसीके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

अपनी चिरसङ्गिनी धर्मपत्नी परम सुन्दरी तुलसीके साथ आनन्दमय जीवन बिताते हुए राजाधिराज प्रतापी शङ्खचूड़ने दीर्घकालतक राज्य किया। देवता, दानव, असुर, गन्धर्व, किंनर और राक्षस—सभी शङ्खचूड़के शासनकालमें सदा शान्त रहते थे। अधिकार छिन जानेके कारण देवताओंकी स्थिति भिक्षुक-जैसी हो गयी थी। अतः वे सभी अत्यन्त उदास होकर ब्रह्माकी सभामें गये और अपनी स्थिति बतलाकर बार-बार अत्यन्त विलाप

* यः कन्यापालनं कृत्वा करोति विक्रयं यदि। विपदा धनलोभेन कुम्भीपाकं स गच्छति॥
(प्रकृतिखण्ड १६। ९८)

† पश्चात् प्राप्स्यसि गोविन्दं गोलोके पुनरेव च। चतुर्भुजं च वैकुण्ठे शङ्खचूडे मृते सति॥
(प्रकृतिखण्ड १६। ११४)

करने लगे। तब विधाता ब्रह्मा देवताओंको साथ लेकर भगवान् शंकरके स्थानपर गये। वहाँ पहुँचकर मस्तकपर चन्द्रमाको धारण करनेवाले सर्वेश शिवसे सभी बातें कह सुनायीं। फिर ब्रह्मा और शंकर देवताओंको साथ लेकर वैकुण्ठके लिये प्रस्थित हुए। वैकुण्ठ परम धाम है। यह सबके लिये दुर्लभ है। वहाँ बुढ़ापा और मृत्युका प्रभाव नहीं है। भगवान् श्रीहरिके भवनका प्रवेशद्वार परम श्रेष्ठ है। वहाँ पहुँचकर रत्नमय सिंहासनपर बैठे हुए द्वारपालोंको जब देखा, तब इन ब्रह्मादि देवताओंका मन आश्चर्यसे भर गया। वे सभी परम सुन्दर थे। सभी पीताम्बर धारण किये हुए थे। रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। सबके गलेमें दिव्य वनमाला लहरा रही थी; सुन्दर शरीर श्याम रंगके थे। उनके शङ्ख, चक्र, गदा और पद्मसे सुशोभित चार भुजाएँ थीं और प्रसन्न वदन मुस्कानसे भरे थे। उन मनोहर द्वारपालोंके नेत्र कमलके सदृश विशाल थे।

उन द्वारपालोंसे अनुमति पाकर ब्रह्मा क्रमशः सोलह द्वारोंको पार करके भगवान् श्रीहरिकी सभामें पहुँचे। उस सभाभवनमें चारों ओर देवर्षि तथा पार्षद विराजमान थे। सभी पार्षदोंके चार भुजाएँ थीं; सबका रूप भगवान् नारायणके समान था और सभी कौस्तुभमणिसे अलंकृत थे। वह सभा बाहरसे पूर्ण चन्द्रमण्डलके आकारकी गोल और भीतरसे चौकोर थी। बड़ी मनोहर दिखायी देती थी। श्रेष्ठ रत्नोंके सारभूत सर्वोत्तम दिव्य मणियोंसे उसका निर्माण हुआ था। हीरोंके सारभागसे ही वह सजी हुई थी। श्रीहरिके इच्छानुसार बने हुए उस भवनमें अमूल्य दिव्य रत्न जड़े गये थे। माणिक्य-मालाएँ जालीके रूपमें शोभा दे रही थीं और दिव्य मोतियोंकी झालरें उसकी छवि बढ़ा रही थीं। मण्डलाकार करोड़ों रत्नमय दर्पणोंसे वह सभा सुशोभित थी। उसकी दीवारोंमें लिखित अनेक प्रकारके विचित्र चित्र उसकी सुन्दरता बढ़ा रहे थे। सर्वोत्कृष्ट पद्मराग-मणिसे निर्मित कृत्रिम कमलोंसे वह परम सुशोभित थी। स्यमन्तकमणिसे बनी हुई सैकड़ों सीढ़ियाँ उस भवनकी शोभा बढ़ाती थीं। रेशमकी डोरीमें गुँथे हुए दिव्य चन्दन-वृक्षके सुन्दर पल्लव वन्दनवारका काम दे रहे थे। वहाँके खंभोंका निर्माण इन्द्रनील-मणिसे हुआ था। उत्तम रत्नोंसे भरे कलशोंसे संयुक्त वह सभा अत्यन्त मनोरम जान पड़ती थी। पारिजात-पुष्पोंके बहुत-से हार उसे अलंकृत किये हुए थे। कस्तूरी एवं कुङ्कुमसे युक्त सुगन्धपूर्ण चन्दनके द्रवसे वह भवन सुसज्जित तथा सुसंस्कृत किया गया था। सुगन्धित वायुसे वह सभा सब ओरसे सुवासित थी। उसका विस्तार एक सहस्र योजन था। सर्वत्र सेवक खड़े थे। वहाँ सभी कुछ दिव्य था। सभी उस सभाभवनको देखकर मुग्ध हो गये।

नारद! भगवान् श्रीहरि उस अनुपम सभाके मध्य भागमें इस प्रकार विराजमान थे मानो नक्षत्रोंके बीच चन्द्रमा हों। देवताओंसहित ब्रह्मा और शंकरने उनके साक्षात् दर्शन किये। उस समय श्रीहरि दिव्य रत्नोंसे निर्मित अद्भुत सिंहासनपर विराजित थे। दिव्य किरीट, कुण्डल और वनमालाने उनकी छविको और भी अधिक बढ़ा दिया था। उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त थे। एक हाथमें कमल शोभा पा रहा था। भगवान्‌का श्रीविग्रह अतिशय शान्त था। लक्ष्मीजी उनके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न थीं। भक्तके दिये हुए सुवासित ताम्बूलको प्रभु चबा रहे थे। देवी गङ्गा उत्तम भक्तिके साथ सफेद चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। उपस्थित समाज अत्यन्त भक्तिविनम्र होकर उनका स्तव-गान कर रहा था।

मुने! ऐसे परम विशिष्ट परिपूर्णतम भगवान् श्रीहरिके दर्शन प्राप्त होनेपर ब्रह्मा प्रभृति समस्त भगवद्भक्त देवता भयभीत-से होकर भक्तिभावसे गर्दन झुकाये उन्हें प्रणाम करके स्तुति करने लगे। उस समय हर्षके कारण उनके सर्वाङ्गमें पुलकावली छा गयी थी, आँखोंमें आँसू भर आये थे और वाणी गद्गद थी। परम श्रद्धाके साथ उपासना करके जगत्के व्यवस्थापक ब्रह्माजीने हाथ जोड़कर बड़ी विनयके साथ भगवान् श्रीहरिके सामने सारी परिस्थिति निवेदित की। श्रीहरि सर्वज्ञ एवं सबके अभिप्रायसे पूर्ण परिचित हैं। ब्रह्माकी बात सुनकर उनके मुखपर हँसी छा गयी और उन्होंने मनको मुग्ध करनेवाला अद्भुत रहस्य कहना आरम्भ किया।

भगवान् श्रीहरि बोले—ब्रह्मन्! यह महान् तेजस्वी शङ्खचूड़ पूर्वजन्ममें एक गोप था। यह मेरा ही अंश था। मेरे प्रति इसकी अटूट श्रद्धा थी। इसके सम्पूर्ण वृत्तान्तसे मैं पूर्ण परिचित हूँ। यह वृत्तान्त एक पुराना इतिहास है। गोलोकसे सम्बन्ध रखनेवाले इस समस्त पुण्यप्रद इतिहासको सुनिये। शङ्खचूड़ उस समय सुदामा नामसे प्रसिद्ध गोप था। मेरे पार्षदोंमें उसकी प्रधानता थी। श्रीराधाके शापने उसे दानव-योनिमें उत्पन्न होनेके लिये विवश कर दिया।

राधा अति करुणामयी हैं। सखियोंका तिरस्कार करनेके कारण राधाने शाप तो दे दिया, परंतु जब सुदामा मुझे प्रणाम करके रोता हुआ सभाभवनसे बाहर जाने लगा, तब दयामयी राधा कृपावश तुरंत संतुष्ट हो गयीं। उनकी आँखोंमें आँसू भर आये। उन्होंने सुदामाको रोक लिया। कहा—'वत्स! रुके रहो, मत जाओ, कहाँ जाओगे?' तब मैंने उन राधाको समझाया और कहा—'अभी धैर्य रखें, यह सुदामा आधे क्षणमें ही शापका पालन करके पुनः लौट आयेगा।' 'सुदामन्! तुम यहाँ अवश्य आ जाना'—यों कहकर मैंने किसी प्रकार राधाको शान्त किया। अखिल जगत्के रक्षक ब्रह्मन्! गोलोकके आधे क्षणमें ही भूमण्डलपर एक मन्वन्तरका समय हो जाता है।

ब्रह्मन्! इस प्रकार यह सब कुछ पूर्वनिश्चित व्यवस्थाके अनुसार ही हो रहा है। अतः सम्पूर्ण मायाओंका पूर्ण ज्ञाता अपार बलशाली योगीश यह शङ्खचूड़ समयपर पुनः उस गोलोकमें ही चला जायगा। आप लोग मेरा यह त्रिशूल लेकर शीघ्र भारतवर्षमें चलें। शंकर मेरे त्रिशूलसे उस दानवका संहार करें। दानव शङ्खचूड़ मेरे ही सम्पूर्ण मङ्गल प्रदान करनेवाले कवचोंको कण्ठमें सदा धारण किये रहता है; इसीलिये वह अखिल विश्वविजयी है। ब्रह्मन्! उसके कण्ठमें कवच रहते हुए कोई भी उसे मारनेमें सफल नहीं हो सकता। अतः मैं ही ब्राह्मणका वेष धारण करके कवचके लिये उससे याचना करूँगा। साथ ही जिस समय उसकी स्त्रीका सतीत्व नष्ट होगा, उसी समय उसकी मृत्यु होगी—यह आपने उसको वर दे रखा है। एतदर्थ उसकी पत्नीके उदरमें मैं वीर्य स्थापित करूँगा—मैंने यह निश्चित कर लिया है। (वैसे 'तुलसी' मेरी नित्यप्रिया है, इससे वस्तुतः मुझ सर्वात्माको कोई दोष भी नहीं होगा।) उसी समय शङ्खचूड़की मृत्यु हो जायगी—इसमें कोई संदेह नहीं है। तदनन्तर उस दानवकी वह पत्नी अपने उस शरीरको त्यागकर पुनः मेरी प्रिय पत्नी बन जायगी।

नारद! इस प्रकार कहकर जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरिने शंकरको त्रिशूल सौंप दिया। त्रिशूल लेकर रुद्र और ब्रह्मा सब देवताओंके साथ भारतवर्षको चल दिये। (अध्याय १६)

पुष्पदन्तका दूत बनकर शङ्खचूड़के पास जाना और शङ्खचूड़के द्वारा तुलसीके प्रति ज्ञानोपदेश

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर ब्रह्मा दानवके संहार-कार्यमें शंकरको नियुक्त करके स्वयं उसी क्षण अपने स्थानपर चले गये। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। तब चन्द्रभागा नदीके तटपर एक मनोहर वट-वृक्षके नीचे आकर देवताओंका अभ्युदय करनेके विचारसे महादेवजीने आसन जमा लिया। गन्धर्वराज पुष्पदन्त शंकरका बड़ा प्रेमी था। उन्होंने उसे दूत बनाकर तुरंत हर्षपूर्वक शङ्खचूड़के पास भेजा। उनकी आज्ञा पाकर पुष्पदन्त उसी क्षण शङ्खचूड़के नगरकी ओर चल दिया। दानवराजकी पुरी अमरावतीसे भी श्रेष्ठ थी। कुबेरका भवन उसके सामने तुच्छ था। उस नगरकी लम्बाई दस योजन थी और चौड़ाई पाँच योजन। स्फटिक-मणिके समान रत्नोंसे बने हुए परकोटोंद्वारा वह घिरा था। सात दुर्गम खाइयोंसे वह सुरक्षित था। प्रज्वलित अग्निके समान निरन्तर चमकनेवाले करोड़ों रत्नोंद्वारा उसका निर्माण किया गया था। उसमें सैकड़ों सुन्दर सड़कें और मणिमय विचित्र वेदियाँ थीं। व्यापारकुशल पुरुषोंके द्वारा बनवाये हुए भवन और ऊँचे-ऊँचे महल चारों ओर सुशोभित थे, जिनमें नाना प्रकारकी बहुमूल्य वस्तुएँ भरी थीं। सिन्दूरके समान लाल मणियोंद्वारा बने हुए असंख्य, विचित्र, दिव्य एवं सुन्दर आश्रम उस नगरकी शोभा बढ़ाते थे।

मुने! इस प्रकारके सुन्दर नगरमें जाकर पुष्पदन्तने शङ्खचूड़का भवन देखा। वह नगरके बिलकुल मध्यभागमें था। नगरकी आकृति वलयके समान गोल थी। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो पूर्ण चन्द्रमण्डल हो। प्रज्वलित अग्निकी लपटोंके समान चार परिखाएँ उसे सुरक्षित किये हुए थीं। शत्रुओंके लिये उस भवनमें प्रवेश करना अत्यन्त कठिन था, परंतु हितैषी व्यक्ति बड़ी सुगमतासे उसमें जा सकते थे। अत्यन्त उच्च, गगनस्पर्शी मणिमय प्राचीरोंसे वह भवन घिरा हुआ था। बारह द्वारोंसे भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। प्रत्येक द्वारपर द्वारपाल थे। सर्वोत्तम मणियोंद्वारा निर्मित लाखों मन्दिर, बहुत-से सोपान तथा रत्नमय खंभे थे। एक द्वारको देखनेके बाद पुष्पदन्तने दूसरे प्रधान द्वारको भी देखा। उस द्वारपर हाथमें त्रिशूल लिये एक पुरुष विराजमान था। उसके मुखपर हँसी छायी थी। उसकी पीली आँखें थीं। उसके शरीरका रंग ताँबेके सदृश लाल था। भय उत्पन्न करनेवाले उस द्वारपालसे आज्ञा पाकर पुष्पदन्त आगे बढ़ा और दूसरे द्वारको लाँघकर भीतर चला गया। यह दूत युद्धकी सूचना पहुँचानेवाला है—यह सुनकर कोई भी उसे रोकता नहीं था। इस तरह नौ द्वारोंको लाँघकर पुष्पदन्त सबसे भीतरके द्वारपर पहुँच गया। वहाँ द्वारपालसे अनुमति लेकर वह भीतर गया। वहाँ जाकर देखा, परम मनोहर शङ्खचूड़ राजाओंके मध्यमें सुवर्णके सिंहासनपर बैठा था। उसके मस्तकपर सोनेका सुन्दर छत्र तना था, जिसे एक भृत्यने ले रखा था। उस छत्रमें मणियाँ जड़ी गयी थीं। वह विचित्र छत्र रत्नमय दण्डसे सुशोभित था। रत्ननिर्मित कृत्रिम पुष्प उसकी शोभाको और भी प्रशस्त कर रहे थे। सफेद एवं चमकीले चँवर हाथमें लेकर अनेक पार्षद शङ्खचूड़की सेवामें संलग्न थे। उत्तम वेष एवं रत्नमय भूषणोंसे विभूषित होनेके कारण वह बड़ा सुन्दर जान पड़ता था। मुने! उसके गलेमें माला थी। शरीरपर चन्दनका अनुलेपन था। वह दो महीन उत्तम वस्त्र पहिने हुए था। वह दानव उस समय सुन्दर वेषवाले असंख्य प्रसिद्ध दानवोंसे घिरा था और

असंख्य दूसरे दानव हाथोंमें अस्त्र लिये इधर-उधर घूम रहे थे। ऐसे वैभव-सम्पन्न शङ्खचूड़को देखकर पुष्पदन्त आश्चर्यमें पड़ गया। तदनन्तर उसने शंकरके कथनानुसार युद्धविषयक संदेश सुनाना आरम्भ किया।

पुष्पदन्तने कहा—राजेन्द्र! प्रभो! मैं भगवान् शंकरका दूत हूँ। मेरा नाम पुष्पदन्त है। शंकरजीकी कही हुई बातें ही मैं यहाँ आपसे कह रहा हूँ, सुननेकी कृपा करें। अब आप देवताओंका राज्य तथा उनका अधिकार उन्हें लौटा दें; क्योंकि वे देवेश्वर श्रीहरिकी शरणमें गये थे। उन प्रभुने अपना त्रिशूल देकर आपके विनाशके लिये शंकरको भेजा है। त्रिनेत्रधारी भगवान् शिव इस समय चन्द्रभागा नदीके तटपर वटवृक्षके नीचे विराजमान हैं। आप या तो देवताओंका राज्य लौटा दें या निश्चित रूपसे युद्ध करें। मुझे यह भी बता दें कि मैं भगवान् शंकरके पास जाकर उनको क्या उत्तर दूँ?

नारद! दूतके रूपमें गये हुए पुष्पदन्तकी बात सुनकर शङ्खचूड़ ठठाकर हँस पड़ा और बोला—'दूत! मैं कल प्रातःकाल चलूँगा, तुम जाओ।' तब पुष्पदन्त तुरंत वटके नीचे विराजमान भगवान् शंकरके पास लौट गया और उनसे शङ्खचूड़की बात, जो स्वयं उसने अपने मुखसे कही थी, कह सुनायी। साथ ही, उसके पास जो सेना आदि युद्धोपकरण थे, उनका भी परिचय दिया। इतनेमें योजनानुसार कार्तिकेय शंकरके समीप आ पहुँचे। वीरभद्र, नन्दीश्वर, महाकाल, सुभद्र, विशालाक्ष, पिङ्गलाक्ष, बाणासुर, विकम्पन, विरूप, विकृति, मणिभद्र, बाष्कल, कपिलाक्ष, दीर्घदंष्ट्र, विकट, ताम्रलोचन, कालंकट, बलीभद्र, कालजिह्व, कुटीचर, बलोन्मत्त, रणश्लाघी, दुर्जय, दुर्गम, आठों भैरव, ग्यारहों रुद्र, आठों वसु, इन्द्र आदि देवता, बारहों सूर्य, अग्नि, चन्द्रमा, विश्वकर्मा, दोनों अश्विनीकुमार, कुबेर, यमराज, जयन्त, नलकूबर, वायु, वरुण, बुध, मङ्गल, धर्म, शनि, ईशान और प्रतापी कामदेव आदि भी आ गये।

साथ ही, उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा, कोटरा, कैटभी तथा स्वयं सौ भुजावाली भयंकर भगवती भद्रकाली देवी भी वहाँ आ गयीं। वे देवी अतिशय श्रेष्ठ रत्नद्वारा निर्मित विमानपर बैठी थीं। उनका विग्रह लाल रंगके वस्त्रसे सुशोभित था। उनके गलेमें लाल पुष्पोंकी माला थी। सभी अङ्ग लाल चन्दनसे अनुलिप्त थे। नाचना, हँसना, हर्षके उल्लासमें भरकर मीठे स्वरोंमें गाना, भक्तोंको अभय प्रदान करना तथा शत्रुओंको डराना उन अभयस्वरूपिणी भगवती भद्रकालीका सहज गुण बन गया था। उनके मुखमें बड़ी विकराल लंबी जीभ लपलपा रही थी। शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म, ढाल, तलवार, धनुष, बाण, एक योजन विस्तृत वर्तुलाकार गम्भीर खप्पर, गगनचुम्बी त्रिशूल, एक योजनमें फैली हुई शक्ति, मुद्गर, मुसल, वज्र, पाश, खेटक, प्रकाशमान फलक, वैष्णवास्त्र, वारुणास्त्र, आग्नेयास्त्र, नागपाश, नारायणास्त्र, ब्रह्मास्त्र, गान्धर्व, गरुड़, पार्जन्य एवं पाशुपतास्त्र, जृम्भणास्त्र, पार्वतास्त्र, माहेश्वरास्त्र, वायव्यास्त्र, सम्मोहन दण्ड, शतशः अमोघ अस्त्र तथा सैकड़ों दिव्य अस्त्रोंको धारण करके भगवती भद्रकाली अनन्त योगिनियोंके साथ वहाँ आकर विराज गयीं। उनके साथमें अत्यन्त भयंकर असंख्य डाकिनियोंका यूथ भी सुशोभित था। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, वेताल, राक्षस, यक्ष और किंनर भी सहयोग देनेके लिये आ पहुँचे। इन सबको साथ लेकर स्वामी कार्तिकेयने अपने पिता चन्द्रशेखर शिवको प्रणाम किया और सहायता करनेके विचारसे उनकी आज्ञा लेकर पास बैठ गये।

इधर दूतके चले जानेपर प्रतापी शङ्खचूड़ अन्तःपुरमें गया और उसने अपनी पत्नी तुलसीसे युद्धसम्बन्धी बातें बतायीं। सुनते ही तुलसीके होठ और तालु सूख गये। उसका हृदय संतप्त

हो उठा। फिर परम साध्वी तुलसी मधुर वाणीमें कहने लगी।

तुलसीने कहा—प्राणबन्धो! नाथ! आप मेरे प्राणोंके अधिष्ठाता देव हैं। आप विराजिये। क्षणभर मेरे जीवनकी रक्षा कीजिये। मैं अपने नेत्रोंसे कुछ समयतक तो आदरपूर्वक आपके दर्शन कर लूँ। मेरे प्राण फड़फड़ा रहे हैं। आज मैंने रातके अन्तिम क्षणमें एक बुरा स्वप्न देखा है।

महाराज शङ्खचूड़ ज्ञानी पुरुष था। तुलसीकी बात सुनकर उसने भोजन किया। जल पिया। फिर अवसर पाकर उसने सत्य, हितकर एवं यथार्थ वचन तुलसीसे कहे।

शङ्खचूड़ बोला—प्रिये! कर्म-भोगका सारा निबन्ध कालके सूत्रमें बँधा है। शुभ, हर्ष, सुख, दुःख, भय, शोक और मङ्गल—सभी कालके अधीन हैं। समयानुसार वृक्ष उगते, उनपर शाखाएँ फैलतीं, पुष्प लगते और क्रमशः वे फलसे लद जाते हैं। फिर काल ही उन फलोंको पकाता भी है। बादमें कालके प्रभावसे फूल-फलकर वे सम्पूर्ण वृक्ष नष्ट भी हो जाते हैं। सुन्दरि! समयपर विश्व उत्पन्न होता है और समयानुसार उसकी अन्तिम घड़ी आ जाती है। कालकी महिमा स्वीकार करके ब्रह्मा सृष्टि करते हैं और विष्णु पालनमें तत्पर रहते हैं। रुद्रका संहार-कार्य भी कालके संकेतपर ही निर्भर है। सभी क्रमशः कालानुसार अपने व्यापारमें नियुक्त होते हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि प्रधान देवताओंके भी अधीश्वर हैं—परमात्मा श्रीकृष्ण। जो प्रकृतिसे परे हैं, उन्हींको स्रष्टा, पाता और संहर्ता कहते हैं। वे सदा अपने सम्पूर्ण अंशसे विराजमान रहते हैं। वे ही समयपर स्वेच्छापूर्वक प्रकृतिको उत्पन्न करके विश्वमें रहनेवाले सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंको रचते हैं। उन्हें सर्वेश, सर्वरूप, सर्वात्मा और परमेश्वर कहते हैं। वे जनसे जनकी सृष्टि करते, जनसे जनकी रक्षा करते तथा जनसे जनका संहार करते हैं, उन्हीं त्रिगुणातीत परम प्रभु राधावल्लभकी तुम उपासना करो। उन्हींकी आज्ञासे सदा शीघ्रगामी पवन प्रवाहित होते हैं, सूर्य आकाशमें तपते हैं, इन्द्र समयानुसार वर्षा करते हैं, मृत्यु प्राणियोंमें विचरती है, अग्नि यथावसर दाह उत्पन्न करते हैं तथा शीतल चन्द्रमा भयभीतकी भाँति आकाशमण्डलमें चक्कर लगाते हैं। प्रिये! जो मृत्युकी मृत्यु, कालके काल, यमराजके श्रेष्ठ शासक, ब्रह्माके स्वामी, माता-की-माता, जगत्‌की जननी तथा संहार करनेवालेके भी संहारकर्ता हैं, उन परम प्रभु भगवान् श्रीकृष्णकी शरणमें तुम जाओ। प्रिये! यहाँ कौन किनका बन्धु है! जो सबके बन्धु हैं, उन्हींकी तुम उपासना करो। ब्रह्माने हम दोनोंको एक रस्सीमें बाँध दिया। इससे तुम्हारे साथ जगत्‌के व्यवहारमें मैं फँस गया। पुनः विलग हो जाना विधिकी इच्छापर ही निर्भर है। शोक एवं विपत्ति सामने आनेपर अज्ञानी व्यक्ति घबराता है न कि पण्डित पुरुष। कालचक्रके क्रमसे सुख और दुःख एकके बाद एक आते-जाते ही रहते हैं। अब तुम्हें निश्चय ही वे सर्वेश भगवान् नारायण साक्षात् पतिरूपमें प्राप्त होंगे, जिनके लिये बदरी-आश्रममें रहकर तुम तपस्या कर चुकी हो। तपस्या तथा ब्रह्माके वर-प्रदानसे तुम्हें पानेका सुअवसर मुझे प्राप्त हुआ था। कामिनि! उस समय तुम भगवान् श्रीहरिके लिये तप कर रही थी। अतः अब उन्हींको प्राप्त करोगी। गोलोकमें वृन्दावन है। वहीं तुम भगवान् गोविन्दको पाओगी। मैं भी इस दानवी शरीरका परित्याग करके उसी दिव्यलोकमें चलूँगा। वहीं तुम मुझे देख सकोगी और मैं तुम्हें। इस समय जो मैं परम दुर्लभ भारतवर्षमें आया हूँ, इसमें कारण केवल श्रीराधाजीका शाप है। प्रिये! सुनो! मेरा गोलोकमें पुनः जाना सर्वथा निश्चित है। अतः शोक करनेकी क्या आवश्यकता है? कान्ते! तुम

भी अब शीघ्र ही इस शरीरका परित्याग करके दिव्य रूप धारणकर श्रीहरिको पतिरूपसे प्राप्त कर लोगी। अतः तनिक भी घबरानेकी आवश्यकता नहीं है।

इस प्रकार शङ्खचूड़ तुलसीके साथ सुन्दर बातचीत कर रहा था, इतनेमें सायंकालका समय हो गया। रत्नमय भवनमें पुष्प और चन्दनसे चर्चित श्रेष्ठ शय्या बिछी थी। वह उसपर सो गया और भाँति-भाँतिके वैभवोंकी याद उसके मनमें स्फुरित होने लगी। उसके भवनमें रत्नका दीपक जल रहा था। परम सुन्दरी स्त्रियोंमें रत्न तुलसी सेवामें उपस्थित थी। ज्ञानी शङ्खचूड़ने पुनः तुलसीको दिव्य ज्ञान प्रदर्शित करते हुए समझाया। साथ ही शङ्खचूड़ने तुलसीको सम्पूर्ण शोकोंको दूर करनेवाले उस उत्तम ज्ञानको बतलाया जो दिव्य भाण्डीरवनमें भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे उसे प्राप्त हुआ था। ऐसे श्रेष्ठ ज्ञानको पाकर उस देवीका मुख प्रसन्नतासे भर गया। समस्त जगत् नश्वर है—यह मानकर वह हर्षपूर्वक हास-विलास करने लगी। फिर दोनों सुखपूर्वक सो गये। (अध्याय १७)

शङ्खचूड़का पुष्पभद्रा नदीके तटपर जाना, वहाँ भगवान् शंकरके दर्शन तथा उनसे विशद वार्तालाप

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! राजा शङ्खचूड़ श्रीकृष्णका भक्त था। वह मनमें भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके ब्राह्ममुहूर्तमें ही अपनी पुष्पमयी शय्यासे उठ गया। उसने स्वच्छ जलसे स्नान करके रातके वस्त्र त्याग दिये। धुले हुए दो वस्त्रोंको पहनकर उज्ज्वल तिलक कर लिया; फिर इष्ट देवताके वन्दन आदि प्रतिदिनके आवश्यक कर्तव्योंको पूरा किया। दही, घृत, मधु और लावा आदि माङ्गलिक वस्तुएँ देखीं। नारद! प्रतिदिनकी भाँति उसने भक्तिपूर्वक ब्राह्मणोंको उत्तम रत्न, मणि, स्वर्ण और वस्त्र दान किये। यात्रा मङ्गलमयी होनेके लिये उसने अमूल्य रत्न तथा कुछ मोती, मणि एवं हीरे भी अपने गुरुदेव ब्राह्मणकी सेवामें समर्पित किये। वह अपने कल्याणार्थ श्रेष्ठ हाथी, घोड़े और सर्वोत्तम सुन्दर धन दरिद्र ब्राह्मणोंको खुले हाथों बाँटने लगा। उस समय हजारों वस्तुपूर्ण भवन, लाखों नगर तथा असंख्य गाँव शङ्खचूड़ने दानरूपमें ब्राह्मणोंको दिये। इसके बाद उसने अपने पुत्रको सम्पूर्ण दानवोंका राजा बनाकर उसे अपनी प्रेयसी पत्नी, राज्य, सम्पूर्ण सम्पत्ति, प्रजा एवं सेवकवर्ग, कोष तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन सौंप दिये। उसने स्वयं कवच पहन लिया। हाथमें धनुष और बाण ले लिये। सब सैनिकोंको एकत्र किया। तीन लाख घोड़े और पाँच लाख उत्तम श्रेणीके हाथी उपस्थित हुए। दस हजार रथ तथा तीन-तीन करोड़ धनुर्धारी, ढाल-तलवारधारी और त्रिशूलधारी वीर उसकी सेनाके अङ्ग बने।

नारद! इस प्रकार दानवेश्वर शङ्खचूड़ने अपरिमित सेना सजा ली। युद्धशास्त्रके पारगामी एक महारथी वीरको सेनापतिके पदपर नियुक्त किया। महारथी उसे समझना चाहिये जो रथियोंमें श्रेष्ठ हो। राजा शङ्खचूड़ने उस महारथीको अगणित अक्षौहिणी सेनापर अधिकार प्रदान कर दिया। उस सेनाध्यक्षमें ऐसी योग्यता थी कि स्वयं तीस अक्षौहिणी सेनासे अपनी सेनाकी रक्षा कर सकता था। तत्पश्चात् शङ्खचूड़ मन-ही-मन भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण करता हुआ बाहर निकला। उत्तम रत्नोंसे बने हुए विमानपर सवार हुआ और गुरुवरोंको आगे करके भगवान् शंकरकी सेवामें चल दिया।

नारद! पुष्पभद्रा (या चन्द्रभागा) नदीके तटपर एक सुन्दर अक्षयवट है। वहीं सिद्धोंके बहुत-से आश्रम हैं। उस स्थानको सिद्धक्षेत्र कहा गया है। यह पवित्र स्थान भारतवर्षमें है। इसे कपिलमुनिकी तपोभूमि कहते हैं। यह पश्चिमी समुद्रसे पूर्व तथा मलयपर्वतसे पश्चिममें है, श्रीशैलपर्वतसे उत्तर तथा गन्धमादनसे दक्षिण भागमें है। इसकी चौड़ाई पाँच योजन है और लम्बाई पाँच सौ योजन। वहाँ भारतवर्षमें एक पुण्यप्रदा नदी बहती है। उसका जल स्वच्छ स्फटिकमणिके समान उद्भासित होता है। वह जलसे कभी खाली नहीं होती। उसे पुष्पभद्रा कहते हैं। वह नदी समुद्रकी पत्नीरूपसे विराजमान होकर सदा सौभाग्यवती बनी रहती है। वह शुद्ध स्फटिकके समान निर्मल जलसे पूर्ण है। उसका उद्गम-स्थान हिमालय है। कुछ दूर आगे आनेपर शरावती नामकी नदी उसमें मिल गयी है। वह गोमन्तपर्वतको बायें करके बहती हुई पश्चिम समुद्रकी ओर प्रस्थान करती है। वहाँ पहुँचकर शङ्खचूड़ने भगवान् शंकरको देखा।

उस समय भगवान् शंकर वटवृक्षके नीचे विराजमान थे। उनका विग्रह करोड़ों सूर्योंके समान उद्भासित हो रहा था। वे योगासनसे बैठे थे, उनके हाथोंमें वर और अभयकी मुद्रा थी। मुखमण्डल मुस्कानसे भरा था। वे ब्रह्मतेजसे उद्भासित हो रहे थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल थी। उनके हाथमें त्रिशूल और पट्टिश थे तथा शरीरपर श्रेष्ठ बाघम्बर शोभा पा रहा था। वस्तुतः गौरीके प्रिय पति भगवान् शंकर परम सुन्दर हैं। उनका शान्त विग्रह भक्तके मृत्युभयको दूर करनेमें पूर्ण समर्थ है। तपस्याका फल देना तथा अखिल सम्पत्तियोंको भरपूर रखना उनका स्वाभाविक गुण है। वे बहुत शीघ्र प्रसन्न होते हैं। उनके मुखपर कभी उदासी नहीं आती। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले हैं। उन्हें विश्वनाथ, विश्वबीज, विश्वरूप, विश्वज, विश्वम्भर, विश्ववर और विश्वसंहारक कहा जाता है। वे कारणोंके कारण तथा नरकसे उद्धार करनेमें परम कुशल हैं। वे सनातन प्रभु ज्ञान प्रदान करनेवाले, ज्ञानके बीज तथा ज्ञानानन्द हैं। दानवराज शङ्खचूड़ने विमानसे उतरकर उनके

दर्शन किये और सबके साथ सिर झुकाकर उन भगवान् शंकरको भक्तिपूर्वक प्रणाम किया। उस समय शंकरके वाम-भागमें भद्रकाली विराजित थीं और सामने स्वामिकार्तिकेय थे। इन तीनों महानुभावोंने शङ्खचूड़को आशीर्वाद दिया। उसे आया देखकर नन्दीश्वर प्रभृति सब-के-सब उठकर खड़े हो गये। तदनन्तर सबमें परस्पर साम्ययिक बातें आरम्भ हो गयीं। उनसे बातचीत करनेके पश्चात् राजा शङ्खचूड़ भगवान् शंकरके समीप बैठ गया। तब प्रसन्नात्मा भगवान् महादेव उससे कहने लगे।

महादेवजीने कहा—राजन्! ब्रह्मा अखिल जगत्के रचयिता हैं। वे धर्मज्ञ एवं धर्मके पिता हैं। उनके पुत्र मरीचि हैं। इनमें श्रीहरिके प्रति अपार श्रद्धा तथा धर्मके प्रति निष्ठा है। मरीचिने धर्मात्मा कश्यपको पुत्ररूपसे प्राप्त किया है। प्रजापति दक्षने प्रसन्नतापूर्वक अपनी तेरह कन्याएँ

इन्हें सौंपी है। उन्हीं कन्याओंमें उस वंशकी वृद्धि करनेवाली परम साध्वी एक दनु है। दनुके चालीस पुत्र हैं, जिन्हें परम तेजस्वी दानव कहा जाता है। उन पुत्रोंमें बल एवं पराक्रमसे युक्त एक पुत्रका नाम विप्रचित्ति है। विप्रचित्तिके पुत्र दम्भ हैं। ये दम्भ धर्मात्मा, जितेन्द्रिय एवं वैष्णव पुरुष हैं। इन्होंने शुक्राचार्यको गुरु बनाकर भगवान् श्रीकृष्णके उत्तम मन्त्रका पुष्करक्षेत्रमें लाख वर्षतक जप किया था; तब तुम कृष्णपरायण श्रेष्ठ पुरुष उन्हें पुत्ररूपसे प्राप्त हुए हो। पूर्वजन्ममें तुम भगवान् श्रीकृष्णके पार्षद एक महान् धर्मात्मा गोप थे। गोपोंमें तुम्हारी महती प्रतिष्ठा थी। इस समय तुम श्रीराधिकाके शापसे भारतवर्षमें आकर दानवेश्वर बने हो। वैष्णव पुरुष ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सारी वस्तुओंको भ्रममात्र मानते हैं। उन्हें केवल भगवान् श्रीहरिकी सेवा ही अभीष्ट है। उसे छोड़कर वे सालोक्य, सार्ष्टि, सायुज्य और सामीप्य—इन चार प्रकारकी मुक्तियोंतकको दिये जानेपर भी स्वीकार नहीं करते। वैष्णवोंने ब्रह्मत्व या अमरत्वको भी तुच्छ माना है। इन्द्रत्व या कुबेरत्वको तो वे कुछ गिनते ही नहीं हैं। तुम वही परम वैष्णव श्रीकृष्ण-भक्त पुरुष हो; तुम्हारे लिये देवताओंका राज्य भ्रममात्र है। उसमें तुम्हारी क्या आस्था हो सकती है? राजन्! तुम देवताओंका राज्य उन्हें लौटा दो और मुझे आनन्दित करो। तुम अपने राज्यमें सुखसे रहो और देवता अपने स्थानपर रहें। भाई-भाईमें विरोधसे कोई लाभ नहीं है; तुम सब-के-सब एक ही पिता कश्यपजीके वंशज हो। ब्रह्महत्या आदिसे उत्पन्न हुए जितने पाप हैं, उनकी यदि जातिद्रोह-सम्बन्धी पापोंसे तुलना की जाय तो वे इनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हो सकते।

राजेन्द्र! यदि तुम अपनी सम्पत्तिकी हानि समझते हो तो भला, सोचो तो कौन ऐसे पुरुष हैं जिनकी सदा एक-सी स्थिति बनी रह सकी है? प्राकृतिक प्रलयके समय ब्रह्मा भी अन्तर्धान हो जाते हैं। परमेश्वरकी इच्छासे फिर उनका प्राकट्य हो जाता है। फिर तपस्यासे निश्चय ही उनमें पूर्ववत् ज्ञान, बुद्धि तथा लोककी स्मृतिका उदय होता है। फिर वे स्रष्टा ज्ञानपूर्वक क्रमशः सृष्टि करते हैं। राजन्! सत्ययुगमें धर्म अपने परिपूर्णतम रूपसे प्रतिष्ठित रहता है। उस समय सदा सत्य ही उसका आधार होता है। वही धर्म त्रेतामें तीन भागसे, द्वापरमें दो भागसे तथा कलिमें एक भागसे युक्त कहा जाता है। इन तीन युगोंमें उसका क्रमशः ह्रास होता है। अमावास्याके चन्द्रमाकी भाँति कलिके अन्तमें धर्मकी एक कलामात्र शेष रह जाती है। ग्रीष्म-ऋतुमें सूर्यका जैसा तेज रहता है, वैसा फिर शिशिर-ऋतुमें नहीं रह सकता। दिनमें भी दोपहरके समय जैसा उनका तेज होता है, वैसा प्रातःकाल और सायंकालमें नहीं रहता। सूर्य समयसे उदित होते हैं, फिर क्रमशः बाल एवं प्रचण्ड-अवस्थामें आकर अन्तमें पुनः अस्त हो जाते हैं। कालक्रमसे जब दुर्दिन (वर्षाका समय) आता है, तब उन्हें दिनमें ही छिप जाना पड़ता है। राहुसे ग्रस्त होनेपर सूर्य काँपने लगते हैं; पुनः थोड़ी देरके बाद प्रसन्नता आ जाती है।

राजन्! पूर्णिमाकी रातमें चन्द्रमा जैसे अपनी सभी कलाओंसे पूर्ण रहते हैं, वैसे ही सदा नहीं रहते। प्रतिदिन क्षीण होते रहते हैं। फिर अमावास्याके बाद वे प्रतिदिन पुष्ट होने लगते हैं। शुक्लपक्षमें वे शोभा-सम्पत्तिसे युक्त रहते और कृष्णपक्षमें क्षय-रोगसे पुनः म्लान हो जाते हैं। ग्रहणके अवसरपर उनकी शोभा नष्ट हो जाती है तथा दुर्दिन आनेपर अर्थात् मेघाच्छन्न आकाशमें वे नहीं चमक पाते। काल-भेदके अनुसार चन्द्रमा किसी समय शुद्ध-श्रीसम्पन्न होते हैं तो किसी

समय श्रीहीन हो जाते हैं। बलि भविष्यमें इन्द्र होंगे। यद्यपि इस समय श्रीहीन होकर ये सुतल-लोकमें स्थित हैं। समयपर विश्व नष्ट होते हैं और कालके प्रभावसे पुनः उनकी उत्पत्ति भी होती है। अखिल चराचर प्राणी कालकी प्रेरणाके अनुसार नष्ट और उत्पन्न होते हैं। केवल परमात्मा श्रीकृष्ण ही सम हैं; क्योंकि वे ही सबके ईश्वर हैं। उन्हींकी कृपासे मुझे भी 'मृत्युञ्जय' होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। अतएव असंख्य प्राकृत प्रलयको मैंने देखा है और आगे भी मैं बार-बार देखूँगा। वे परमेश्वर ही प्रकृतिरूप हैं और उन्हींको पुरुष भी कहा जाता है। वे ही आत्मा और वे ही जीव हैं। वे नाना प्रकारके रूप धारण करके सदा कार्यमें संलग्न रहते हैं। जो सदा उनके नाम और गुणोंका कीर्तन करता है, वह काल, मृत्यु, जन्म, रोग तथा जराके भयको जीत लेता है। उन्हीं परमेश्वरने ब्रह्माको सृष्टिकर्ता, विष्णुको पालनकर्ता तथा मुझको संहारकर्ता बनाया है। उन्हींकी कृपासे हम सब लोग जगत्के शासक बने हैं। राजन्! इस समय मैं कालाग्निरुद्रको संहारके कार्यमें नियुक्त करके स्वयं उन परमेश्वरके नाम और गुणका निरन्तर कीर्तन करता हूँ। इसीसे मृत्यु मुझपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकती। इस ज्ञानकी महिमासे मैं सदा निर्भय रहता हूँ। मृत्यु भी मुझसे भय मानकर इस प्रकार भागती है, जैसे गरुड़के भयसे सर्प।

नारद! सर्वेश भगवान् शंकर सभाके मध्यभागमें उपर्युक्त बातें कहकर चुप हो गये। तब दानवराजने उनके वचन सुनकर उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की, साथ ही मधुर वाणीमें विनयपूर्वक अपना भाषण आरम्भ किया।

शङ्खचूडने कहा—भगवन्! आपने जो कुछ कहा है, वह सब सत्य है। उसे कभी अन्यथा नहीं माना जा सकता; तथापि कुछ मेरी भी प्रार्थना है, उसे यथार्थतः सुननेकी कृपा करें। इस समय आपने यहाँ ज्ञातिद्रोहको जो महान् पाप बताया है, वह यदि देवताओंको मान्य है तो राजा बलिका सर्वस्व छीनकर उन्हें सुतललोकमें क्यों भेज दिया गया? मैंने यह सारा ऐश्वर्य अपने पराक्रमसे प्राप्त किया है—दानवोंके पूर्ववैभवका उद्धार किया है। भगवान् गदाधर भी सुतललोकसे दानवसमाजको हटा देनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि वह उनका पैतृक स्थान है। यदि भाईके साथ द्रोह अनुचित है तो देवताओंने भाईसहित हिरण्याक्षकी हिंसा क्यों करवायी? शुम्भ आदि असुरोंको देवताओंने क्यों मार गिराया? पूर्वकालमें जब समुद्र मथा गया, उस समय अमृतका पान केवल देवताओंने किया; वे सम्पूर्ण फलके भागी हुए और हमें वहाँ केवल क्लेशका भागीदार बनाया गया। यह सारा विश्व परमात्मा श्रीकृष्णका क्रीड़ाक्षेत्र है। वे यहाँ जब जिसको देते हैं, उस समय उसीका ऐश्वर्यपर अधिकार होता है। देवताओं और दानवोंका ऐश्वर्यके निमित्त सदासे विवाद होता आया है। कालके अनुसार बारी-बारीसे कभी उनको और कभी हम लोगोंको जय अथवा पराजय प्राप्त होती रहती है। हम दोनोंके विरोधमें आपका आना निष्फल है; क्योंकि आप हम दोनोंके साथ समान सम्बन्ध रखनेवाले, बन्धु, ईश्वर एवं महात्मा हैं। हम लोगोंके साथ इस समय स्पर्धा रखना आपके लिये बड़ी लज्जाकी बात है और यदि कहीं युद्धमें आपकी पराजय हुई तो इससे भी अधिक आपकी अपकीर्ति फैलेगी।

मुने! शङ्खचूडके ये वचन सुनकर भगवान् त्रिलोचन हँसने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने उस दानवेश्वरका समुचित उत्तर देना आरम्भ किया।

महादेवजी बोले—राजन्! तुम लोग भी तो ब्रह्माके ही वंशज हो। फिर तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें तो हमें क्या बड़ी लज्जा होगी और हारनेपर हमारी क्या भारी अपकीर्ति होगी? इसके पहले मधु और कैटभके साथ श्रीहरिका भी तो

युद्ध हो चुका है। राजन्! एक बार ये हिरण्याक्षसे लड़े थे और पुनः दूसरी बार हिरण्यकशिपुसे। स्वयं मैं भी इससे पूर्व त्रिपुर नामक दैत्योंके साथ युद्ध कर चुका हूँ। यही नहीं, किंतु प्राचीन समयमें जो सर्वेश्वरी एवं प्रकृति नामसे प्रसिद्ध भगवती जगदम्बा हैं, उनका शुम्भ आदि असुरोंके साथ अत्यन्त अद्भुत युद्ध हुआ था। तुम तो स्वयं परमात्मा श्रीकृष्णके अंश और उनके पार्षद हो। जो-जो दैत्य मारे गये हैं, उनमेंसे कोई भी तुम्हारे-जैसे बलवान् नहीं थे। फिर राजन्! तुम्हारे साथ युद्ध करनेमें मुझे क्या लज्जा है? देवता भगवान् श्रीहरिकी शरणमें गये हैं। तभी उन्होंने मुझे तुम्हारे पास भेजा है। अतः देवताओंका राज्य तुम लौटा दो। बस, मेरे कहनेका इतना ही अभिप्राय है। अथवा मेरे साथ प्रसन्नतासे लड़नेके लिये तैयार हो जाओ। अब अधिक शब्दोंके अपव्ययसे क्या प्रयोजन है?

नारद! जब इस प्रकार कहकर भगवान् शंकर चुप हो गये, तब शङ्खचूड़ भी अपने मन्त्रियोंके साथ तुरंत उठकर खड़ा हो गया। (अध्याय १८)

भगवान् शंकर और शङ्खचूड़के पक्षोंमें युद्ध, भद्रकालीका घोर युद्ध और आकाशवाणी सुनकर कालीका शङ्खचूड़पर पाशुपतास्त्र न चलाना

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! प्रतापी दानवराज शङ्खचूड़ सिर झुका भगवान् शिवको प्रणाम करके अपने मन्त्रियोंके साथ तत्काल विमानपर जा बैठा। दोनों दलोंमें युद्ध आरम्भ हो गया। दानव स्कन्दकी शक्तिसे निरन्तर पीड़ित होने लगे। उनमें हलचल मच गयी। इधर स्वर्गमें देवताओंकी दुन्दुभियाँ बज उठीं। उस भयंकर समराङ्गणमें ही स्कन्दके ऊपर फूलोंकी वर्षा होने लगी। स्कन्दका युद्ध अत्यन्त अद्भुत और भयानक था। वह प्राकृतिक प्रलयकी भाँति दानवोंके लिये विनाशकारी सिद्ध हो रहा था। उसे देखकर विमानपर बैठे हुए राजा शङ्खचूड़ने बाणोंकी वर्षा आरम्भ कर दी। राजाके बाण इस तरह गिर रहे थे, मानो मेघ जलकी धारा गिरा रहा हो। वहाँ घोर अन्धकार छा गया। फिर आग प्रकट होने लगी। यह देख नन्दीश्वर आदि सब देवता वहाँसे भाग चले। केवल कार्तिकेय ही युद्धके मुहानेपर डटे रहे। राजा शङ्खचूड़ पर्वतों, सर्पों, शिलाओं तथा वृक्षोंकी भयानक वृष्टि करने लगा। उसका वेग दुःसह था। राजाकी बाणवर्षासे शिवकुमार कार्तिकेय ढक गये, मानो सूर्यदेवपर स्निग्ध मेघमालाका आवरण पड़ गया हो। शङ्खचूड़ने स्कन्दके भयंकर एवं दुर्वह धनुषको काट दिया। दिव्य रथके टुकड़े-टुकड़े कर डाले तथा रथके घोड़ोंको भी मार गिराया। उनके मोरको दिव्यास्त्रसे मार-मारकर छलनी कर दिया। इसके बाद दानवेन्द्रने उनके वक्षःस्थलपर सूर्यके समान जाज्वल्यमान प्राणघातक शक्ति चलायी। उस शक्तिके आघातसे एक क्षणतक मूर्च्छित होनेके पश्चात् कार्तिकेय फिर सचेत हो गये। उन्होंने वह दिव्य धनुष हाथमें लिया, जिसे पूर्वकालमें भगवान् विष्णुने प्रदान किया था। फिर रत्नेन्द्रसारसे निर्मित यानपर आरूढ़ हो अस्त्र-शस्त्र लेकर कार्तिकेय भयंकर युद्ध करने लगे। शिवकुमार स्कन्दने अपने दिव्यास्त्रसे क्रोधपूर्वक दानवराजके चलाये हुए समस्त पर्वतों, शिलाखण्डों, सर्पों और वृक्षोंको काट गिराया। उन प्रतापी वीरने पार्जन्यास्त्रके द्वारा आग बुझा दी और खेल-खेलमें ही शङ्खचूड़के रथ, धनुष, कवच, सारथि और उज्ज्वल किरीट-मुकुटको काट डाला। फिर उल्काके समान प्रकाशित होनेवाली अपनी शक्ति दानवराजके वक्षःस्थलपर दे मारी। उसके आघातसे राजा मूर्च्छित हो गया। फिर तुरंत ही होशमें आकर वह दूसरे रथपर जा चढ़ा और दूसरा धनुष हाथमें ले

लिया। नारद! शङ्खचूड़ मायावियोंका शिरोमणि था। उसने मायासे उस युद्धभूमिमें बाणोंका जाल बिछा दिया और उसके द्वारा कार्तिकेयको ढककर सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशित होनेवाली एक अमोघ शक्ति हाथमें ली। भगवान् विष्णुके तेजसे व्याप्त हुई वह शक्ति प्रलयाग्निकी शिखाके समान जान पड़ती थी। दानवराजने उसे क्रोधपूर्वक कार्तिकेयके ऊपर बड़े वेगसे दे मारा। वह शक्ति उनके शरीरपर प्रज्वलित अग्निकी राशिके समान गिरी। महाबली कार्तिकेय उस शक्तिसे आहत हो मूर्च्छित हो गये। तब काली उन्हें गोदमें उठाकर भगवान् शिवके पास ले गयी।

शिवने लीलापूर्वक ज्ञान-बलसे उन्हें जीवित कर दिया। साथ ही असीम बल प्रदान किया। प्रतापी वीर कार्तिकेय तत्काल उठकर खड़े हो गये। उसी क्षण भगवान् शंकरने अपनी सेना तथा देवताओंको युद्धके लिये प्रेरित किया। सेनासहित दानवराजोंके साथ देवताओंका युद्ध पुनः प्रारम्भ हुआ। स्वयं देवराज इन्द्र वृषपर्वाके साथ युद्ध करने लगे। सूर्यदेवने विप्रचित्तिके साथ युद्ध छेड़ दिया। चन्द्रमा दम्भके साथ भिड़ गये और बड़ा भारी युद्ध करने लगे। कालने कालेश्वरके साथ और अग्निदेवने गोकर्णके साथ जूझना आरम्भ किया। कालकेयसे कुबेर और मयासुरसे विश्वकर्मा लड़ने लगे। मृत्युदेवता भयंकर नामक दानवसे और यम संहारके साथ भिड़ गये। कलविङ्क और वरुणमें, चञ्चल और वायुमें, बुध और धृतपृष्ठमें तथा रक्ताक्ष और शनैश्चरमें युद्ध होने लगा। जयन्तने रत्नसारका सामना किया। वसुगण और वर्चोगण परस्पर जूझने लगे। दीप्तिमान्‌के साथ अश्विनीकुमार और धूम्रके साथ नलकूबरका युद्ध आरम्भ हुआ। धर्म और धनुर्धर, मङ्गल और मण्डूकाक्ष, शोभाकर और ईशान तथा पीठर और मन्मथ एक-दूसरेका सामना करने लगे। उल्कामुख, धूम्र, खड्गध्वज, काञ्चीमुख, पिण्ड, धूम्र, नन्दी, विश्व और पलाश—इन सबके साथ आदित्यगण घोर युद्ध करने लगे। ग्यारह महारुद्रगण ग्यारह भयंकर दानवोंके साथ भिड़ गये। उग्रदण्डा आदि और महामारीमें युद्ध होने लगा। नन्दीश्वर आदि समस्त रुद्रगण दानवगणोंके साथ लड़ने लगे। वह महान् युद्ध प्रलयकालके समान भयंकर जान पड़ता था। उस समय भगवान् शंकर काली और पुत्रके साथ वटवृक्षके नीचे ठहरे हुए थे। मुने! शेष समस्त सैन्यसमुदाय निरन्तर युद्धमें तत्पर थे। शङ्खचूड़ रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो करोड़ों दानवोंके साथ रमणीय रत्नमय सिंहासनपर विराजमान था। उस युद्धमें भगवान् शंकरके समस्त योद्धा पराजित हो गये। समस्त देवता क्षत-विक्षत हो भयके मारे भाग चले।

यह देख भगवान् स्कन्दको बड़ा क्रोध हुआ। उन्होंने देवताओंको अभय दान दिया और अपने तेजसे आत्मीय गणोंका बल बढ़ाया। वे स्वयं भी दानवगणोंके साथ युद्ध करने लगे। उन्होंने समराङ्गणमें दानवोंकी सौ अक्षौहिणी सेनाका संहार कर डाला। कमललोचना कालीने कुपित हो खप्पर गिराना आरम्भ किया। वे दानवोंके सौ-सौ खप्पर खून एक साथ पी जाती थीं। लाखों हाथी और घोड़ोंको एक ही हाथसे समेटकर लीलापूर्वक लील जाती थीं। मुने! समरभूमिमें सहस्रों कबन्ध (बिना सिरके धड़) नृत्य करने लगे। स्कन्दके बाण-समूहोंसे क्षत-विक्षत हुए महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न सभी दानव भयके मारे भाग चले। वृषपर्वा, विप्रचित्ति, दम्भ और विकङ्कन—ये सब बारी-बारीसे स्कन्दके साथ युद्ध करने लगे। अब कालीने समराङ्गणमें प्रवेश किया। भगवान् शिव कार्तिकेयकी रक्षा करने लगे। नन्दीश्वर आदि वीर कालीके ही पीछे-पीछे गये। समस्त देवता, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, किन्नर, बहुत-से राज्यभाण्ड और करोड़ों मेघ भी उन्हींके साथ थे। संग्राममें पहुँचकर

कालीने सिंहनाद किया। देवीके उस सिंहनादसे दानव मूर्च्छित हो गये। कालीने बारंबार दैत्योंके लिये अमङ्गलसूचक अट्टहास किया। वे युद्धके मुहानेपर हर्षपूर्वक मधु पीने और नृत्य करने लगीं। उग्रदंष्ट्रा, उग्रचण्डा और कोट्टरी भी मधु-पान करने लगीं। योगिनियों और डाकिनियोंके गण तथा देवगण आदि भी इस कार्यमें योग देने लगे। कालीको उपस्थित देख शङ्खचूड़ तुरंत रणभूमिमें आ पहुँचा। दानव डरे हुए थे। दानवराजने उन सबको अभय दान दिया। कालीने प्रलयाग्निकी शिखाके समान अग्नि फेंकना आरम्भ किया, परंतु राजा शङ्खचूड़ने पार्जन्यास्त्रके द्वारा उसे अवहेलनापूर्वक बुझा दिया। तब कालीने तीव्र एवं परम अद्भुत वारुणास्त्र चलाया। परंतु दानवेन्द्रने गान्धर्वास्त्र चलाकर खेल-खेलमें ही उसे काट डाला। तदनन्तर कालीने अग्निशिखाके समान तेजस्वी माहेश्वरास्त्रका प्रयोग किया, किंतु राजा शङ्खचूड़ने वैष्णवास्त्रका प्रयोग करके उस अस्त्रको अवहेलनापूर्वक शीघ्र शान्त कर दिया। तब देवीने मन्त्रोच्चारणपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उसे देखते ही राजा रथसे उतर पड़ा और उस नारायणास्त्रको प्रणाम करने लगा। शङ्खचूड़ने दण्डकी भाँति भूमिपर पड़कर भक्तिभावसे नारायणास्त्रको साष्टाङ्ग प्रणाम किया। तब प्रलयाग्निकी शिखाके समान तेजस्वी वह अस्त्र ऊपरको चला गया। तदनन्तर कालीने मन्त्रके साथ यत्नपूर्वक ब्रह्मास्त्र चलाया; किंतु महाराज शङ्खचूड़ने अपने ब्रह्मास्त्रसे उसे शान्त कर दिया। फिर तो देवीने मन्त्रोच्चारणपूर्वक बड़े-बड़े दिव्यास्त्र चलाये। परंतु राजाने अपने दिव्यास्त्रोंसे उन सबको शान्त कर दिया। इसके बाद देवीने बड़े यत्नसे शक्तिका प्रहार किया, जो एक योजन लंबी थी। परंतु दानवराजने अपने तीखे अस्त्रोंके समूहसे उसके सौ टुकड़े कर डाले। तब देवीने मन्त्रोच्चारणपूर्वक पाशुपत-अस्त्रको हाथमें उठा लिया और उसे चलाना ही चाहती थीं कि उन्हें मना करती हुई यह स्पष्ट आकाशवाणी हुई—'यह राजा एक महान् पुरुष है, इसकी मृत्यु पाशुपत-अस्त्रसे कदापि नहीं होगी। जबतक यह अपने गलेमें भगवान् श्रीहरिके मन्त्रका कवच धारण किये रहेगा और जबतक इसकी पतिव्रता पत्नी अपने सतीत्वकी रक्षा करती रहेगी, तबतक इसके समीप जरा और मृत्यु अपना कुछ भी प्रभाव नहीं डाल सकती—यह ब्रह्माका वर है।'

इस आकाशवाणीको सुनकर भगवती भद्रकालीने शस्त्र चलाना बंद कर दिया। अब वे क्षुधातुर होकर करोड़ों दानवोंको लीलापूर्वक निगलने लगीं। भयंकर वेषवाली वे देवी शङ्खचूड़को खा जानेके लिये बड़े वेगसे उसकी ओर झपटीं। तब दानवने अपने अत्यन्त तेजस्वी दिव्यास्त्रसे उन्हें रोक दिया। भद्रकाली अपनी सहयोगिनी योगिनियोंके साथ भाँति-भाँतिसे दैत्यदलका विनाश करने लगीं। उन्होंने दानवराज शङ्खचूड़को भी बड़ी चोट पहुँचायी, पर वे दानवराजका कुछ भी नहीं बिगाड़ सकीं। तब वे भगवान् शंकरके पास चली गयीं और उन्होंने आरम्भसे लेकर अन्ततक क्रमशः युद्ध-सम्बन्धी सभी बातें भगवान् शंकरको बतलायीं। दानवोंका विनाश सुनकर भगवान् हँसने लगे।

भद्रकालीने यह भी कहा—'अब भी रणभूमिमें लगभग एक लाख प्रधान दानव बचे हुए हैं। मैं उन्हें खा रही थी, उस समय जो मुखसे निकल गये, वे ही बच रहे हैं। फिर जब मैं संग्राममें दानवराज शङ्खचूड़पर पाशुपतास्त्र छोड़नेको तैयार हुई और जब आकाशवाणी हुई कि यह राजा तुमसे अवध्य है, सबसे महान् ज्ञानी एवं असीम बल-पराक्रमसे सम्पन्न उस दानवराजने मुझपर अस्त्र छोड़ना बंद कर दिया। वह मेरे छोड़े हुए बाणोंको काट भर देता था।' (अध्याय १९)

भगवान् शंकर और शङ्खचूड़का युद्ध, शंकरके त्रिशूलसे शङ्खचूड़का भस्म होना तथा सुदामा गोपके स्वरूपमें उसका विमानद्वारा गोलोक पधारना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भगवान् शिव तत्त्व जाननेमें परम प्रवीण हैं। भद्रकालीद्वारा युद्धकी सारी बातें सुनकर वे स्वयं अपने गणोंके साथ संग्राममें पहुँच गये। उन्हें देखकर शङ्खचूड़ विमानसे उतर गया और उसने परम भक्तिके साथ पृथ्वीपर मस्तक टेककर उन्हें दण्डवत् प्रणाम किया। यों भक्तिविनम्र होकर प्रणाम करनेके पश्चात् वह तुरंत रथपर सवार हो गया और भगवान् शिवके साथ युद्ध करने लगा। ब्रह्मन्! उस समय शिव और शङ्खचूड़में बहुत लंबे कालतक युद्ध होता रहा। कोई किसीसे न जीतते थे और न हारते थे। कभी समयानुसार शङ्खचूड़ शस्त्र रखकर रथपर ही विश्राम कर लेता और कभी भगवान् शंकर भी शस्त्र रखकर वृषभपर ही आराम कर लेते। शंकरके बाणोंसे असंख्य दानवोंका संहार हुआ। इधर संग्राममें देवपक्षके जो-जो योद्धा मरते थे, उनको विभु शंकर पुनः जीवित कर देते थे। उसी समय भगवान् श्रीहरि एक अत्यन्त आतुर बूढ़े ब्राह्मणका वेष बनाकर युद्धभूमिमें आये और दानवराज शङ्खचूड़से कहने लगे।

वृद्ध ब्राह्मणके वेषमें पधारे हुए श्रीहरिने कहा—राजेन्द्र! तुम मुझ ब्राह्मणको भिक्षा देनेकी कृपा करो। इस समय सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रदान करनेकी तुममें पूर्ण योग्यता है। अतः तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करो। मैं निरीह, तृषित एवं वृद्ध ब्राह्मण हूँ। पहले तुम देनेके लिये सत्य प्रतिज्ञा कर लो, तब मैं तुमसे कहूँगा।

राजेन्द्र शङ्खचूड़ने अत्यन्त प्रसन्न होकर कहा—'हाँ, हाँ, बहुत ठीक—आप जो चाहें सो ले सकते हैं।' तब अतिशय माया फैलाते हुए उन वृद्ध ब्राह्मणने कहा—'मैं तुम्हारा 'कृष्णकवच' चाहता हूँ।' उनकी बात सुनकर सत्यप्रतिज्ञ शङ्खचूड़ने तुरंत वह दिव्य कवच उन्हें दे दिया और उन्होंने उसे ले भी लिया। फिर वे ही श्रीहरि शङ्खचूड़का रूप बनाकर तुलसीके निकट गये। वहाँ जाकर कपटपूर्वक उन्होंने उससे हास-विलास किया। (इस प्रकार शङ्खचूड़की पत्नीके रूपमें उसका सतीत्व भङ्ग हो गया। यद्यपि तत्त्वरूपसे तो वह श्रीहरिकी परम प्रेयसी पत्नी ही थी।) ठीक इसी समय शंकरने शङ्खचूड़पर चलानेके लिये श्रीहरिका दिया हुआ त्रिशूल हाथमें उठा लिया। वह त्रिशूल इतना प्रकाशमान था, मानो ग्रीष्म-ऋतुका मध्याह्नकालीन सूर्य हो, अथवा प्रलयकालीन प्रचण्ड अग्नि। वह दुर्निवार्य, दुर्धर्ष, अव्यर्थ और शत्रुसंहारक था। सम्पूर्ण शस्त्रोंकि सारभूत उस त्रिशूलकी तेजमें चक्रके साथ तुलना की जाती थी। उस भयंकर त्रिशूलको शिव अथवा केशव—ये दो ही उठा सकते थे। अन्य किसीके मानका वह नहीं था। वह साक्षात् सजीव ब्रह्म ही था। उसके रूपका कभी परिवर्तन नहीं होता और सभी उसे देख भी नहीं पाते थे। नारद! अखिल ब्रह्माण्डका संहार करनेकी उस त्रिशूलमें पूर्ण शक्ति थी। भगवान् शंकरने लीलासे ही उसे उठाकर हाथपर जमाया और शङ्खचूड़पर फेंक दिया। तब उस बुद्धिमान् नरेशने सारा रहस्य जानकर अपना धनुष धरतीपर फेंक दिया और वह बुद्धिपूर्वक योगासन लगाकर भक्तिके साथ अनन्य-चित्तसे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करने लगा। त्रिशूल कुछ समयतक तो चक्कर काटता रहा। तदनन्तर वह शङ्खचूड़के ऊपर जा गिरा। उसके गिरते ही तुरंत वह दानवेश्वर तथा उसका रथ—सभी जलकर भस्म हो गये।

दानव-शरीरके भस्म होते ही उसने एक दिव्य गोपका वेष धारण कर लिया। उसकी किशोर अवस्था थी। वह दो दिव्य भुजाओंसे सुशोभित था। उसके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी और रत्नमय आभूषण उसके शरीरको विभूषित कर रहे थे। इतनेमें अकस्मात् सर्वोत्तम दिव्य मणियोंद्वारा निर्मित एक दिव्य विमान गोलोकसे उतर आया। उसमें चारों ओर असंख्य गोपियाँ बैठी थीं। शङ्खचूड़ उसीपर सवार होकर गोलोकके लिये प्रस्थित हो गया।

मुने! उस समय वृन्दावनमें रासमण्डलके मध्य भगवान् श्रीकृष्ण और भगवती श्रीराधिका विराजमान थीं। वहाँ पहुँचते ही शङ्खचूड़ने भक्तिके साथ मस्तक झुकाकर उनके चरणकमलोंमें साष्टाङ्ग प्रणाम किया। अपने चिरसेवक सुदामाको देखकर उन दोनोंके श्रीमुख प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने अत्यन्त प्रसन्न होकर उसे अपनी गोदमें उठा लिया। तदनन्तर वह त्रिशूल बड़े वेगसे आदरपूर्वक भगवान् श्रीकृष्णके पास लौट आया। शङ्खचूड़की हड्डियोंसे शङ्खकी उत्पत्ति हुई। वही शङ्ख अनेक प्रकारके रूपोंमें विराजमान होकर देवताओंकी पूजामें निरन्तर पवित्र माना जाता है। उसके जलको श्रेष्ठ मानते हैं; क्योंकि देवताओंको प्रसन्न करनेके लिये वह अचूक साधन है। उस पवित्र जलको तीर्थमय माना जाता है। उसके प्रति केवल शंकरकी आदरबुद्धि नहीं है। जहाँ-कहीं भी शङ्खध्वनि होती है, वहाँ लक्ष्मीजी सम्यक् प्रकारसे विराजमान रहती हैं। जो शङ्खके जलसे स्नान कर लेता है, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नानका फल प्राप्त हो जाता है। शङ्ख साक्षात् भगवान् श्रीहरिका अधिष्ठान है। जहाँपर शङ्ख रहता है, वहाँ भगवान् श्रीहरि भगवती लक्ष्मीसहित सदा निवास करते हैं। अमङ्गल दूरसे ही भाग जाता है।

उधर शिव भी शङ्खचूड़को मारकर अपने लोकको पधार गये। उनके मनमें अपार हर्ष था। वे वृषभपर आरूढ़ होकर अपने गणोंसहित चले गये। अपना राज्य पा जानेके कारण देवताओंके हर्षकी सीमा नहीं रही। स्वर्गमें देव-दुन्दुभियाँ बज उठीं और गन्धर्व तथा किन्नर यशोगान करने लगे। भगवान् शंकरके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। देवताओं और मुनिगणोंने भगवान् शंकरकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। (अध्याय २०)

शङ्खचूड़-वेषधारी श्रीहरिद्वारा तुलसीका पातिव्रत्यभङ्ग, शङ्खचूड़का पुनः गोलोक जाना, तुलसी और श्रीहरिका वृक्ष एवं शालग्राम-पाषाणके रूपमें भारतवर्षमें रहना तथा तुलसीमहिमा, शालग्रामके विभिन्न लक्षण तथा माहात्म्यका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! भगवान् नारायणने कौन-सा रूप धारण करके तुलसीसे हास-विलास किया था? यह प्रसङ्ग मुझे बतानेकी कृपा करें।

भगवान् नारायण ऋषि कहते हैं—नारद! भगवान् श्रीहरिने वैष्णवी माया फैलाकर शङ्खचूड़से कवच ले लिया। फिर शङ्खचूड़का ही रूप धारण करके वे साध्वी तुलसीके घर पहुँचे, वहाँ उन्होंने तुलसीके महलके दरवाजेपर दुन्दुभि बजायी और जय-जयकारके घोषसे उस सुन्दरीको अपने आगमनकी सूचना दी।

तुलसीने पतिको युद्धसे आया देख उत्सव मनाया और महान् हर्षभरे हृदयसे स्वागत किया। फिर दोनोंमें युद्धसम्बन्धी चर्चा हुई; तदनन्तर शङ्खचूड़के वेषमें जगत्प्रभु भगवान् श्रीहरि सो गये। नारद! उस समय तुलसीके साथ उन्होंने सुचारुरूपसे

हास-विलास किया तथापि तुलसीको इस बार पहलेकी अपेक्षा आकर्षण आदिमें व्यतिक्रमका अनुभव हुआ; अतः उसने सारी वास्तविकताका अनुमान लगा लिया और पूछा।

तुलसीने कहा—मायेश! बताओ तो तुम कौन हो? तुमने कपटपूर्वक मेरा सतीत्व नष्ट कर दिया; इसलिये अब मैं तुम्हें शाप दे रही हूँ।

ब्रह्मन्! तुलसीके वचन सुनकर शापके भयसे भगवान् श्रीहरिने लीलापूर्वक अपना सुन्दर मनोहर स्वरूप प्रकट कर दिया। देवी तुलसीने

अपने सामने उन सनातन प्रभु देवेश्वर श्रीहरिको विराजमान देखा। भगवान्‌का दिव्य विग्रह नूतन मेघके समान श्याम था। आँखें शरत्कालीन कमलकी तुलना कर रही थीं। उनके अलौकिक रूप-सौन्दर्यमें करोड़ों कामदेवोंकी लावण्य-लीला प्रकाशित हो रही थी। रत्नमय भूषण उन्हें आभूषित किये हुए थे। उनका प्रसन्नवदन मुस्कानसे भरा था। उनके दिव्य शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था। उन्हें देखकर पतिके निधनका अनुमान करके कामिनी तुलसी मूर्च्छित हो गयी। फिर चेतना प्राप्त होनेपर उसने कहा।

तुलसी बोली—नाथ! आपका हृदय पाषाणके सदृश है; इसीलिये आपमें तनिक भी दया नहीं है। आज आपने छलपूर्वक (मेरे इस शरीरका) धर्म नष्ट करके मेरे (इस शरीरके) स्वामीको मार डाला। प्रभो! आप अवश्य ही पाषाण-हृदय हैं, तभी तो इतने निर्दय बन गये। अतः देव! मेरे शापसे अब पाषाणरूप होकर आप पृथ्वीपर रहें। अहो! बिना अपराध ही अपने भक्तको आपने क्यों मरवा दिया?

इस प्रकार कहकर शोकसे संतप्त हुई तुलसी आँखोंसे आँसू गिराती हुई बार-बार विलाप करने लगी। तदनन्तर करुण-रसके समुद्र कमलापति भगवान् श्रीहरि करुणायुक्त तुलसीदेवीको देखकर नीतिपूर्वक वचनोंसे उसे समझाने लगे।

भगवान् श्रीहरि बोले—भद्रे! तुम मेरे लिये भारतवर्षमें रहकर बहुत दिनोंतक तपस्या कर चुकी हो। उस समय तुम्हारे लिये शङ्खचूड़ भी तपस्या कर रहा था। (वह मेरा ही अंश था।) अपनी तपस्याके फलसे तुम्हें स्त्रीरूपमें प्राप्त करके वह गोलोकमें चला गया। अब मैं तुम्हारी तपस्याका फल देना उचित समझता हूँ। तुम इस शरीरका त्याग करके दिव्य देह धारणकर मेरे साथ आनन्द करो। लक्ष्मीके समान तुम्हें सदा मेरे साथ रहना चाहिये। तुम्हारा यह शरीर नदीरूपमें परिणत हो 'गण्डकी' नामसे प्रसिद्ध होगा। यह पवित्र नदी पुण्यमय भारतवर्षमें मनुष्योंको उत्तम पुण्य देनेवाली बनेगी। तुम्हारे केशकलाप पवित्र वृक्ष होंगे। तुम्हारे केशसे उत्पन्न होनेके कारण तुलसीके नामसे ही उनकी प्रसिद्धि होगी। वरानने! तीनों लोकोंमें देवताओंकी पूजाके काममें आनेवाले जितने भी पत्र और पुष्प हैं, उन सबमें तुलसी प्रधान मानी जायगी। स्वर्गलोक, मर्त्यलोक, पाताल तथा वैकुण्ठ-लोकमें—सर्वत्र तुम मेरे संनिकट रहोगी। सुन्दरि! तुलसीके वृक्ष सब पुष्पोंमें श्रेष्ठ होंगे। गोलोक, विरजा नदीके तट, रासमण्डल, वृन्दावन, भूलोक, भाण्डीरवन, चम्पकवन, मनोहर चन्दनवन एवं माधवी, केतकी,

कुन्द और मल्लिकाके वनमें तथा सभी पुण्य स्थानोंमें तुम्हारे पुण्यप्रद वृक्ष उत्पन्न हों और रहें। तुलसी-वृक्षके नीचेके स्थान परम पवित्र एवं पुण्यदायक होंगे; अतएव वहाँ सम्पूर्ण तीर्थों और समस्त देवताओंका भी अधिष्ठान होगा। वरानने! ऊपर तुलसीके पत्ते पड़ें, इसी उद्देश्यसे वे सब लोग वहाँ रहेंगे। तुलसीपत्रके जलसे जिसका अभिषेक हो गया, उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा समस्त यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल मिल गया। साध्वी! हजारों घड़े अमृतसे नहलानेपर भी भगवान् श्रीहरिको उतनी तृप्ति नहीं होती है, जितनी वे मनुष्योंके तुलसीका एक पत्ता चढ़ानेसे प्राप्त करते हैं। पतिव्रते! दस हजार गोदानसे मानव जो फल प्राप्त करता है, वही फल तुलसी-पत्रके दानसे पा लेता है। जो मृत्युके समय मुखमें तुलसी-पत्रका जल पा जाता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। जो मनुष्य नित्यप्रति भक्तिपूर्वक तुलसीका जल ग्रहण करता है, वही जीवन्मुक्त है और उसे गङ्गा-स्नानका फल मिलता है। जो मानव प्रतिदिन तुलसीका पत्ता चढ़ाकर मेरी पूजा करता है, वह लाख अश्वमेध-यज्ञोंका फल पा लेता है। जो मानव तुलसीको अपने हाथमें लेकर और शरीरपर रखकर तीर्थोंमें प्राण त्यागता है, वह विष्णुलोकमें चला जाता है। तुलसी-काष्ठकी मालाको गलेमें धारण करनेवाला पुरुष पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है, इसमें संदेह नहीं।

जो मनुष्य तुलसीको अपने हाथपर रखकर प्रतिज्ञा करता है, और फिर उस प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे सूर्य और चन्द्रमाकी अवधिपर्यन्त 'कालसूत्र' नामक नरकमें यातना भोगनी पड़ती है। जो मनुष्य तुलसीको हाथमें लेकर या उसके निकट झूठी प्रतिज्ञा करता है, वह 'कुम्भीपाक' नामक नरकमें जाता है और वहाँ दीर्घकालतक वास करता है। मृत्युके समय जिसके मुखमें तुलसीके जलका एक कण भी चला जाता है वह अवश्य ही विष्णुलोकको जाता है। पूर्णिमा, अमावास्या, द्वादशी और सूर्य-संक्रान्तिके दिन, मध्याह्नकाल, रात्रि, दोनों संध्याओं और अशौचके समय, तेल लगाकर, बिना नहाये-धोये अथवा रातके कपड़े पहने हुए जो मनुष्य तुलसीके पत्रोंको तोड़ते हैं, वे मानो भगवान् श्रीहरिका मस्तक छेदन करते हैं। साध्वि! श्राद्ध, व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा देवार्चनके लिये तुलसीपत्र बासी होनेपर भी तीन राततक पवित्र ही रहता है। पृथ्वीपर अथवा जलमें गिरा हुआ तथा श्रीविष्णुको अर्पित तुलसी-पत्र धो देनेपर दूसरे कार्यके लिये शुद्ध माना जाता है।*

---

*तव केशसमूहाश्च पुण्यवृक्षा भवन्त्विति। तुलसीकेशसम्भूतास्तुलसीति च विश्रुताः॥
त्रिषु लोकेषु पुष्पाणां पत्राणां देवपूजने। प्रधानरूपा तुलसी भविष्यति वरानने॥
स्वर्गे मर्त्ये च पाताले वैकुण्ठे मम संनिधौ। भवन्तु तुलसीवृक्षा वराः पुष्पेषु सुन्दरि॥
गोलोके विरजातीरे रासे वृन्दावने भुवि। भाण्डीरे चम्पकवने रम्ये चन्दनकानने॥
माधवीकेतकीकुन्दमल्लिकामालतीवने। भवन्तु तरवस्तत्र पुण्यस्थानेषु पुण्यदाः॥
तुलसीतरुमूले च पुण्यदेशे सुपुण्यदे। अधिष्ठानं तु तीर्थानां सर्वेषां च भविष्यति॥
तत्रैव सर्वदेवानां समधिष्ठानमेव च। तुलसीपत्रपतनप्राप्तये च वरानने॥
स स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। तुलसीपत्रतोयेन योऽभिषेकं समाचरेत्॥
सुधाघटसहस्रेण सा तुष्टिर्न भवेद्धरेः। या च तुष्टिर्भवेन्नृणां तुलसीपत्रदानतः॥
गवामयुतदानेन यत्फलं लभते नरः। तुलसीपत्रदानेन तत्फलं लभते सति॥
तुलसीपत्रतोयं च मृत्युकाले च यो लभेत्। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति॥

तुम निरामय गोलोक-धाममें तुलसीकी अधिष्ठात्री देवी बनकर मेरे स्वरूपभूत श्रीकृष्णके साथ निरन्तर क्रीड़ा करोगी। तुम्हारी देहसे उत्पन्न नदीकी जो अधिष्ठात्री देवी है, वह भारतवर्षमें परम पुण्यप्रदा नदी बनकर मेरे अंशभूत क्षार-समुद्रकी पत्नी होगी। स्वयं तुम महासाध्वी तुलसीरूपसे वैकुण्ठमें मेरे संनिकट निवास करोगी। वहाँ तुम लक्ष्मीके समान सम्मानित होओगी। गोलोकके रासमें भी तुम्हारी उपस्थिति होगी, इसमें संशय नहीं है।

मैं तुम्हारे शापको सत्य करनेके लिये भारतवर्षमें 'पाषाण' (शालग्राम) बनकर रहूँगा। गण्डकी नदीके तटपर मेरा वास होगा। वहाँ रहनेवाले करोड़ों कीड़े अपने तीखे दाँतरूपी आयुधोंसे काट-काटकर उस पाषाणमें मेरे चक्रका चिह्न करेंगे। जिसमें एक द्वारका चिह्न होगा, चार चक्र होंगे और जो वनमालासे विभूषित होगा, वह नवीन मेघके समान श्यामवर्णका पाषाण 'लक्ष्मी-नारायण' का बोधक होगा। जिसमें एक द्वार और चार चक्रके चिह्न होंगे तथा वनमालाकी रेखा नहीं प्रतीत होती होगी, ऐसे नवीन मेघकी तुलना करनेवाले श्यामरंगके पाषाणको 'लक्ष्मीजनार्दन' की संज्ञा दी जानी चाहिये। दो द्वार, चार चक्र और गायके खुरके चिह्नसे सुशोभित एवं वनमालाके चिह्नसे रहित श्याम पाषाणको भगवान् 'राघवेन्द्र' का विग्रह मानना चाहिये। जिसमें बहुत छोटे दो चक्रके चिह्न हों, उस नवीन मेघके समान कृष्णवर्णके पाषाणको भगवान् 'दधिवामन' मानना चाहिये, वह गृहस्थोंके लिये सुखदायक है। अत्यन्त छोटे आकारमें दो चक्र एवं वनमालासे सुशोभित पाषाण स्वयं भगवान् 'श्रीधर' का रूप है—ऐसा समझना चाहिये। ऐसी मूर्ति भी गृहस्थोंको सदा श्रीसम्पन्न बनाती है। जो पूरा स्थूल हो, जिसकी आकृति गोल हो, जिसके ऊपर वनमालाका चिह्न अङ्कित न हो तथा जिसमें दो अत्यन्त स्पष्ट चक्रके चिह्न दिखायी पड़ते हों, उस शालग्राम शिलाकी 'दामोदर' संज्ञा है। जो मध्यम श्रेणीका वर्तुलाकार हो, जिसमें दो चक्र तथा तरकस और बाणके चिह्न शोभा पाते हों, एवं जिसके ऊपर बाणसे कट जानेका चिह्न हो, उस पाषाणको रणमें शोभा पानेवाले भगवान् 'रणराम' की संज्ञा देनी चाहिये। जो मध्यम श्रेणीका पाषाण सात चक्रोंसे तथा छत्र एवं तरकससे अलंकृत हो, उसे भगवान् 'राजराजेश्वर' की प्रतिमा समझे। उसकी उपासनासे मनुष्योंको राजाकी सम्पत्ति सुलभ हो सकती है। चौदह चक्रोंसे सुशोभित तथा नवीन मेघके समान रंगवाले स्थूल पाषाणको भगवान् 'अनन्त' का विग्रह मानना चाहिये। उसके पूजनसे धर्म, अर्थ,

नित्यं यस्तुलसीतोयं भुङ्क्ते भक्त्या च मानवः। स एव जीवन्मुक्तश्च गङ्गास्नानफलं लभेत्॥
नित्यं यस्तुलसीं दत्त्वा पूजयेन्मां च मानवः। लक्षाश्वमेधजं पुण्यं लभते नात्र संशयः॥
तुलसीं स्वकरे कृत्वा देहे धृत्वा च मानवः। प्राणांस्त्यजति तीर्थेषु विष्णुलोकं स गच्छति॥
तुलसीकाष्ठनिर्माणमालां गृह्णाति यो नरः। पदे पदेऽश्वमेधस्य लभते निश्चितं फलम्॥
तुलसीं स्वकरे धृत्वा स्वीकारं यो न रक्षति। स याति कालसूत्रं च यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
करोति मिथ्याशपथं तुलस्या यो हि मानवः। स याति कुम्भीपाकं च यावदिन्द्राश्चतुर्दश॥
तुलसीतोयकणिकां मृत्युकाले च यो लभेत्। रत्नयानं समारुह्य वैकुण्ठं स प्रयाति च॥
पूर्णिमायाममायां च द्वादश्यां रविसंक्रमे। तैलाभ्यङ्गे चास्नाते च मध्याह्ने निशि संध्ययोः॥
अशौचेऽशुचिकाले वा रात्रिवासोऽन्विता नराः। तुलसीं ये विचिन्वन्ति ते छिन्दन्ति हरेः शिरः॥
त्रिरात्रं तुलसीपत्रं शुद्धं पर्युषितं सति। श्राद्धे व्रते च दाने च प्रतिष्ठायां सुरार्चने॥
भूगतं तोयपतितं यद्दत्तं विष्णवे सति। शुद्धं च तुलसीपत्रं क्षालनादन्यकर्मणि॥

(प्रकृतिखण्ड २१। ३२—४२)

काम और मोक्ष—ये चारों फल प्राप्त होवे हैं। जिसकी आकृति चक्रके समान हो तथा जो दो चक्र, श्री और गो-खुरके चिह्नसे शोभा पाता हो, ऐसे नवीन मेघके समान वर्णवाले मध्यम श्रेणीके पाषाणको भगवान् 'मधुसूदन' समझना चाहिये। केवल एक चक्रवाला 'सुदर्शन'का, गुप्तचक्र-चिह्नवाला 'गदाधर'का तथा दो चक्र एवं अश्वके मुखकी आकृतिसे युक्त पाषाण भगवान् 'हयग्रीव' का विग्रह कहा जाता है। साध्वि! जिसका मुख अत्यन्त विस्तृत हो, जिसपर दो चक्र चिह्नित हों तथा जो बड़ा विकट प्रतीत होता हो ऐसे पाषाणको भगवान् 'नरसिंह' की प्रतिमा समझनी चाहिये। वह मनुष्यको तत्काल वैराग्य प्रदान करनेवाला है। जिसमें दो चक्र हों, विशाल मुख हो तथा जो वनमालाके चिह्नसे सम्पन्न हो, गृहस्थोंके लिये सदा सुखदायी हो, उस पाषाणको भगवान् 'लक्ष्मीनारायण' का विग्रह समझना चाहिये। जो द्वार-देशमें दो चक्रोंसे युक्त हो तथा जिसपर श्रीका चिह्न स्पष्ट दिखायी पड़े, ऐसे पाषाणको भगवान् 'वासुदेव' का विग्रह मानना चाहिये। इस विग्रहकी अर्चनासे सम्पूर्ण कामनाएँ सिद्ध हो सकेंगी। सूक्ष्म चक्रके चिह्नसे युक्त, नवीन मेघके समान श्याम तथा मुखपर बहुत-से छोटे-छोटे छिद्रोंसे सुशोभित पाषाण 'प्रद्युम्न' का स्वरूप होगा। उसके प्रभावसे गृहस्थ सुखी हो जायँगे। जिसमें दो चक्र सटे हुए हों और जिसका पृष्ठभाग विशाल हो, गृहस्थोंको निरन्तर सुख प्रदान करनेवाले उस पाषाणको भगवान् 'संकर्षण' की प्रतिमा समझनी चाहिये। जो अत्यन्त सुन्दर गोलाकार हो तथा पीले रंगसे सुशोभित हो, विद्वान् पुरुष कहते हैं कि गृहाश्रमियोंको सुख देनेवाला वह पाषाण भगवान् 'अनिरुद्ध'का स्वरूप है।

जहाँ शालग्रामकी शिला रहती है, वहाँ भगवान् श्रीहरि विराजते हैं और वहीं सम्पूर्ण तीर्थोंको साथ लेकर भगवती लक्ष्मी भी निवास करती हैं। ब्रह्महत्या आदि जितने पाप हैं, वे सब शालग्राम-शिलाकी पूजा करनेसे नष्ट हो जाते हैं। छत्राकार शालग्राममें राज्य देनेकी तथा वर्तुलाकारमें प्रचुर सम्पत्ति देनेकी योग्यता है। शकटके आकारवाले शालग्रामसे दुःख तथा शूलके नोकके समान आकारवालेसे मृत्यु होनी निश्चित है। विकृत मुखवाले दरिद्रता, पिङ्गलवर्णवाले हानि, भग्नचक्रवाले व्याधि तथा फटे हुए शालग्राम निश्चितरूपसे मरणप्रद हैं। व्रत, दान, प्रतिष्ठा तथा श्राद्ध आदि सत्कार्य शालग्रामकी संनिधिमें करनेसे सर्वोत्तम हो सकते हैं। जो अपने ऊपर शालग्राम-शिलाका जल छिड़कता है, वह सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर चुका तथा समस्त यज्ञोंका फल पा गया। अखिल यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंके फलका वह अधिकारी समझा जाता है। साध्वि! चारों वेदोंके पढ़ने तथा तपस्या करनेसे जो पुण्य होता है, वही पुण्य शालग्राम-शिलाकी उपासनासे प्राप्त हो जाता है। जो निरन्तर शालग्राम-शिलाके जलसे अभिषेक करता है, वह सम्पूर्ण दानके पुण्य तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाके उत्तम फलका मानो अधिकारी हो जाता है। शालग्राम-शिलाके जलका निरन्तर पान करनेवाला पुरुष देवाभिलषित प्रसाद पाता है; इसमें संशय नहीं। उसे जन्म, मृत्यु और जरासे छुटकारा मिल जाता है। सम्पूर्ण तीर्थ उस पुण्यात्मा पुरुषका स्पर्श करना चाहते हैं। जीवन्मुक्त एवं महान् पवित्र वह व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके पदका अधिकारी हो जाता है। भगवान्‌के धाममें वह उनके साथ असंख्य प्राकृत प्रलयतक रहनेकी सुविधा प्राप्त करता है। वहाँ जाते ही भगवान् उसे अपना दास बना लेते हैं। उस पुरुषको देखकर, ब्रह्महत्याके समान जितने बड़े-बड़े पाप हैं, वे इस प्रकार भागने लगते हैं, जैसे गरुड़को देखकर सर्प। उस पुरुषके चरणोंकी रजसे पृथ्वीदेवी तुरंत पवित्र हो जाती हैं। उसके जन्म लेते ही लाखों पितरोंका उद्धार हो जाता है।

मृत्युकालमें जो शालग्रामके जलका पान करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर विष्णुलोकको चला जाता है। उसे निर्वाणमुक्ति सुलभ हो जाती है। वह कर्मभोगसे छूटकर भगवान् श्रीहरिके चरणोंमें लीन हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं। शालग्रामको हाथमें लेकर मिथ्या बोलनेवाला व्यक्ति 'कुम्भीपाक' नरकमें जाता है और ब्रह्माकी आयुपर्यन्त उसे वहाँ रहना पड़ता है। जो शालग्रामको धारण करके की हुई प्रतिज्ञाका पालन नहीं करता, उसे लाख मन्वन्तरतक 'असिपत्र' नामक नरकमें रहना पड़ता है। कान्ते! जो व्यक्ति शालग्रामपरसे तुलसीके पत्रको दूर करेगा, उसे दूसरे जन्ममें स्त्री साथ न दे सकेगी। शङ्खसे तुलसीपत्रका विच्छेद करनेवाला व्यक्ति भार्याहीन तथा सात जन्मोंतक रोगी होगा। शालग्राम, तुलसी और शङ्ख—इन तीनोंको जो महान् ज्ञानी पुरुष एकत्र सुरक्षितरूपसे रखता है, उससे भगवान् श्रीहरि बहुत प्रेम करते हैं।

नारद! इस प्रकार देवी तुलसीसे कहकर भगवान् श्रीहरि मौन हो गये। उधर देवी तुलसी अपना शरीर त्यागकर दिव्य रूपसे सम्पन्न हो भगवान् श्रीहरिके वक्षःस्थलपर लक्ष्मीकी भाँति शोभा पाने लगी। कमलापति भगवान् श्रीहरि उसे साथ लेकर वैकुण्ठ पधार गये। नारद! लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी—ये चार देवियाँ भगवान् श्रीहरिकी पत्नियाँ हुईं। उसी समय तुलसीकी देहसे गण्डकी नदी उत्पन्न हुई और भगवान् श्रीहरि भी उसीके तटपर मनुष्योंके लिये पुण्यप्रद शालग्राम-शिला बन गये। मुने! वहाँ रहनेवाले कीड़े शिलाको काट-काटकर अनेक प्रकारकी बना देते हैं। वे पाषाण जलमें गिरकर निश्चय ही उत्तम फल प्रदान करते हैं। जो पाषाण धरतीपर पड़ जाते हैं, उनपर सूर्यका ताप पड़नेसे पीलापन आ जाता है, ऐसी शिलाको पिङ्गला समझनी चाहिये। (यह शिला पूजामें उत्तम नहीं मानी जाती।)

नारद! इस प्रकार यह सभी प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया; अब पुनः क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय २१)

तुलसी-पूजन, ध्यान, नामाष्टक तथा तुलसी-स्तवनका वर्णन

नारदजीने पूछा—प्रभो! तुलसी भगवान् नारायणकी प्रिया हैं, इसलिये परम पवित्र हैं। अतएव वे सम्पूर्ण जगत्के लिये पूजनीया हैं; परंतु इनकी पूजाका क्या विधान है और इनकी स्तुतिके लिये कौन-सा स्तोत्र है? यह मैंने अभीतक नहीं सुना है। मुने! किस मन्त्रसे उनकी पूजा होनी चाहिये? सबसे पहले किसने तुलसीकी स्तुति की है? किस कारणसे वह आपके लिये भी पूजनीया हो गयीं? अहो! ये सब बातें आप मुझे बताइये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! नारदकी बात सुनकर भगवान् नारायणका मुखमण्डल प्रसन्नतासे खिल उठा। उन्होंने पापोंका ध्वंस करनेवाली परम पुण्यमयी प्राचीन कथा कहनी आरम्भ कर दी।

भगवान् नारायण ऋषि बोले—मुने! भगवान् श्रीहरि तुलसीको पाकर उसके और लक्ष्मीके साथ आनन्द करने लगे। उन्होंने तुलसीको भी गौरव तथा सौभाग्यमें लक्ष्मीके समान बना दिया। लक्ष्मी और गङ्गाने तो तुलसीके नवसङ्गम, सौभाग्य और गौरवको सह लिया, किंतु सरस्वती क्रोधके कारण यह सब सहन न कर सकीं। सरस्वतीके द्वारा अपना अपमान होनेसे तुलसी अन्तर्धान हो गयीं। ज्ञानसम्पन्ना देवी तुलसी सिद्धयोगिनी एवं सर्वसिद्धेश्वरी थीं। अतः उन्होंने श्रीहरिकी आँखोंसे अपनेको सर्वत्र ओझल कर लिया। भगवान्ने उसे न देखकर सरस्वतीको समझाया और उससे आज्ञा लेकर वे तुलसीवनमें गये। लक्ष्मीबीज (श्रीं),

मायाबीज (ह्रीं), कामबीज (क्लीं) और वाणीबीज (ऐं)—इन बीजोंका पूर्वमें उच्चारण करके 'वृन्दावनी' इस शब्दके अन्तमें (ङे) विभक्ति लगायी और अन्तमें वह्निजाया (स्वाहा)-का प्रयोग करके 'श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं वृन्दावन्यै स्वाहा' इस दशाक्षर-मन्त्रका उच्चारण किया। नारद! यह मन्त्रराज कल्पतरु है। जो इस मन्त्रका उच्चारण करके विधिपूर्वक तुलसीकी पूजा करता है, उसे निश्चय ही सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्राप्त हो जाती हैं। घृतका दीपक, धूप, सिन्दूर, चन्दन, नैवेद्य और पुष्प आदि उपचारोंसे तथा स्तोत्रद्वारा भगवान्‌से सुपूजित होनेपर तुलसीको बड़ी प्रसन्नता हुई। अतः वह वृक्षसे तुरंत बाहर निकल आयी और परम प्रसन्न होकर भगवान् श्रीहरिके चरणकमलोंकी शरणमें चली गयी। तब भगवान्‌ने उसे वर दिया—'देवी! तुम सर्वपूज्या हो जाओ। मैं स्वयं तुम्हें अपने मस्तक तथा वक्षःस्थलपर धारण करूँगा। इतना ही नहीं, सम्पूर्ण देवता तुम्हें अपने मस्तकपर धारण करेंगे।' यों कहकर उसे साथ ले भगवान् श्रीहरि अपने स्थानपर लौट गये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! तुलसीके अन्तर्धान हो जानेपर भगवान् श्रीहरि विरहसे आतुर होकर वृन्दावन चले गये थे और वहाँ जाकर उन्होंने तुलसीकी पूजा करके इस प्रकार स्तुति की थी।

श्रीभगवान् बोले—जब वृन्दा (तुलसी)-रूप वृक्ष तथा दूसरे वृक्ष एकत्र होते हैं, तब वृक्षसमुदाय अथवा वनको बुधजन 'वृन्दा' कहते हैं। ऐसी वृन्दा नामसे प्रसिद्ध अपनी प्रिया तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ। जो देवी प्राचीनकालमें वृन्दावनमें प्रकट हुई थी, अतएव जिसे 'वृन्दावनी' कहते हैं, उस सौभाग्यवती देवीकी मैं उपासना करता हूँ। जो असंख्य वृक्षोंमें निरन्तर पूजा प्राप्त करती है, अतः जिसका नाम 'विश्वपूजिता' पड़ा है, उस जगत्पूज्या देवीकी मैं उपासना करता हूँ। देवि! जिसने सदा अनन्त विश्वोंको पवित्र किया है, उस 'विश्वपावनी' देवीका मैं विरहसे आतुर होकर स्मरण करता हूँ। जिसके बिना अन्य पुष्प-समूहोंके अर्पण करनेपर भी देवता प्रसन्न नहीं होते, ऐसी 'पुष्पसारा'—पुष्पोंमें सारभूता शुद्धस्वरूपिणी तुलसी देवीका मैं शोकसे व्याकुल होकर दर्शन करना चाहता हूँ। संसारमें जिसकी प्राप्तिमात्रसे भक्त परम आनन्दित हो जाता है, इसलिये 'नन्दिनी' नामसे जिसकी प्रसिद्धि है, वह भगवती तुलसी अब मुझपर प्रसन्न हो जाय। जिस देवीकी अखिल विश्वमें कहीं तुलना नहीं है, अतएव जो 'तुलसी' कहलाती है, उस अपनी प्रियाकी मैं शरण ग्रहण करता हूँ। वह साध्वी तुलसी वृन्दारूपसे भगवान् श्रीकृष्णकी जीवनस्वरूपा है और उनकी सदा प्रियतमा होनेसे 'कृष्णजीवनी' नामसे विख्यात है। वह देवी तुलसी मेरे जीवनकी रक्षा करे*।

---

*नारायण उवाच—

अन्तर्हितायां तस्यां च गत्वा च तुलसीवनम्। हरिः सम्पूज्य तुष्टाव तुलसीं विरहातुरः॥

श्रीभगवानुवाच—

वृन्दारूपाश्च वृक्षाश्च यदैकत्र भवन्ति च। विदुर्बुधास्तेन वृन्दां मत्प्रियां तां भजाम्यहम्॥
पुरा बभूव या देवी त्वादौ वृन्दावने वने। तेन वृन्दावनी ख्याता सौभाग्यां तां भजाम्यहम्॥
असंख्येषु च विश्वेषु पूजिता या निरन्तरम्। तेन विश्वपूजिताख्यां जगत्पूज्यां भजाम्यहम्॥
असंख्यानि च विश्वानि पवित्राणि यया सदा। तां विश्वपावनीं देवीं विरहेण स्मराम्यहम्॥
देवा न तुष्टाः पुष्पाणां समूहेन यया विना। तां पुष्पसारां शुद्धां च द्रष्टुमिच्छामि शोकतः॥
विश्वे यत्प्राप्तिमात्रेण भक्तानन्दो भवेद् ध्रुवम्। नन्दिनी तेन विख्याता सा प्रीता भवताद्धि मे॥

इस प्रकार स्तुति करके लक्ष्मीकान्त भगवान् श्रीहरि वहीं बैठ गये। इतनेमें उनके सामने साक्षात् तुलसी प्रकट हो गयी। उस साध्वीने उनके चरणोंमें तुरंत मस्तक झुका दिया। अपमानके कारण उस मानिनीकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे; क्योंकि पहले उसे बड़ा सम्मान मिल चुका था। ऐसी प्रिया तुलसीको देखकर प्रियतम भगवान् श्रीहरिने तुरंत उसे अपने हृदयमें स्थान दिया। साथ ही सरस्वतीसे आज्ञा लेकर उसे अपने महलमें ले गये। उन्होंने शीघ्र ही सरस्वतीके साथ तुलसीका प्रेम स्थापित करवाया। साथ ही भगवान्‌ने तुलसीको वर दिया—'देवि! तुम सर्वपूज्या और शिरोधार्या होओ। सब लोग तुम्हारा आदर एवं सम्मान करें।' भगवान् विष्णुके इस प्रकार कहनेपर वह देवी परम संतुष्ट हो गयी। सरस्वतीने उसे हृदयसे लगाया और अपने पास बैठा लिया। नारद! लक्ष्मी और गङ्गा इन दोनों देवियोंने मन्द मुस्कानके साथ विनयपूर्वक साध्वी तुलसीका हाथ पकड़कर उसे भवनमें प्रवेश कराया। वृन्दा, वृन्दावनी, विश्वपूजिता, विश्वपावनी, पुष्पसारा, नन्दिनी, तुलसी और कृष्णजीवनी—ये देवी तुलसीके आठ नाम हैं। यह सार्थक नामावली स्तोत्रके रूपमें परिणत है। जो पुरुष तुलसीकी पूजा करके इस 'नामाष्टक' का पाठ करता है, उसे अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त हो जाता है।* कार्तिककी पूर्णिमा तिथिको देवी तुलसीका मङ्गलमय प्राकट्य हुआ और सर्वप्रथम भगवान् श्रीहरिने उसकी पूजा सम्पन्न की। जो इस कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर विश्वपावनी तुलसीकी भक्तिभावसे पूजा करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त होकर भगवान् विष्णुके लोकमें चला जाता है। जो कार्तिक महीनेमें भगवान् विष्णुको तुलसीपत्र अर्पण करता है, वह दस हजार गोदानका फल निश्चितरूपसे पा जाता है। इस तुलसीनामाष्टकके स्मरणमात्रसे संतानहीन पुरुष पुत्रवान् बन जाता है। जिसे पत्नी न हो, उसे पत्नी मिल जाती है तथा बन्धुहीन व्यक्ति बहुत-से बान्धवोंको प्राप्त कर लेता है। इसके स्मरणसे रोगी रोगमुक्त हो जाता है, बन्धनमें पड़ा हुआ व्यक्ति छुटकारा पा जाता है, भयभीत पुरुष निर्भय हो जाता है और पापी पापोंसे मुक्त हो जाता है।

नारद! यह तुलसी-स्तोत्र बतला दिया। अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। तुम तो इस ध्यानको जानते ही हो। वेदकी कण्व-शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। ध्यानमें सम्पूर्ण पापोंको नष्ट करनेकी अबाध शक्ति है। ध्यान करनेके पश्चात् बिना आवाहन किये भक्तिपूर्वक तुलसीके वृक्षमें षोडशोपचारसे इस देवीकी पूजा करनी चाहिये।

परम साध्वी तुलसी पुष्पोंमें सार हैं। ये पूजनीया तथा मनोहारिणी हैं। सम्पूर्ण पापरूपी ईंधनको भस्म करनेके लिये ये प्रज्वलित अग्निकी लपटके समान हैं। पुष्पोंमें अथवा देवियोंमें किसीसे भी इनकी तुलना नहीं हो सकी। इसीलिये उन सबमें पवित्ररूपा इन देवीको तुलसी कहा गया। ये सबके द्वारा अपने मस्तकपर धारण करने योग्य हैं। सभीको इन्हें पानेकी इच्छा रहती है। विश्वको पवित्र करनेवाली ये देवी जीवन्मुक्त

यस्या देव्यास्तुला नास्ति विश्वेषु निखिलेषु च । तुलसी तेन विख्याता तां यामि शरणं प्रियाम्॥
कृष्णजीवनरूपा या शश्वत्प्रियतमा सती । तेन कृष्णजीवनीति मम रक्षतु जीवनम्॥
(प्रकृतिखण्ड २२। १८—२६)

*वृन्दा वृन्दावनी विश्वपूजिता विश्वपावनी । पुष्पसारा नन्दिनी च तुलसी कृष्णजीवनी॥
एतन्नामाष्टकं चैव स्तोत्रं नामार्थसंयुतम् । यः पठेत् तां च सम्पूज्य सोऽश्वमेधफलं लभेत्॥
(प्रकृतिखण्ड २२। ३३-३४)

हैं। मुक्ति और भगवान् श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करना इनका स्वभाव है। ऐसी भगवती तुलसीकी मैं उपासना करता हूँ।* विद्वान् पुरुष इस प्रकार ध्यान, पूजन और स्तवन करके देवी तुलसीको प्रणाम करे। नारद! तुलसीका उपाख्यान कह चुका। पुनः क्या सुनना चाहते हो। (अध्याय २२)

सावित्री देवीकी पूजा-स्तुतिका विधान

नारदजीने कहा—भगवन्! अमृतकी तुलना करनेवाली तुलसीकी कथा मैं सुन चुका। अब आप सावित्रीका उपाख्यान कहनेकी कृपा करें। देवी सावित्री वेदोंकी जननी हैं; ऐसा सुना गया है। ये देवी सर्वप्रथम किससे प्रकट हुईं? सबसे पहले इनकी किसने पूजा की और बादमें किन लोगोंने?

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! सर्वप्रथम ब्रह्माजीने वेदजननी सावित्रीकी पूजा की। तत्पश्चात् ये देवताओंसे सुपूजित हुईं। तदनन्तर विद्वानोंने इनका पूजन किया। इसके बाद भारतवर्षमें राजा अश्वपतिने पहले इनकी उपासना की। तदनन्तर चारों वर्णोंके लोग इनकी आराधनामें संलग्न हो गये।

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! राजा अश्वपति कौन थे? किस कामनासे उन्होंने सावित्रीकी पूजा की थी?

भगवान् नारायण बोले—मुने! महाराज अश्वपति मद्रदेशके नरेश थे। शत्रुओंकी शक्ति नष्ट करना और मित्रोंके कष्टका निवारण करना उनका स्वभाव था। उनकी रानीका नाम मालती था। धर्मोंका पालन करनेवाली वह महारानी राजाके साथ इस प्रकार शोभा पाती थी, जैसे लक्ष्मीजी भगवान् विष्णुके साथ। नारद! उस महासाध्वी रानीने वसिष्ठजीके उपदेशसे भक्तिपूर्वक भगवती सावित्रीकी आराधना की; परंतु उसे देवीकी ओरसे न तो कोई प्रत्यादेश मिला और न देवीजीने साक्षात् दर्शन ही दिये। अतः मनमें कष्टका अनुभव करती हुई दुःखसे घबराकर वह घर चली गयी। राजा अश्वपतिने उसे दुःखी देखकर नीतिपूर्ण वचनोंद्वारा समझाया और स्वयं भक्तिपूर्वक वे सावित्रीकी प्रसन्नताके निमित्त तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये। वहाँ रहकर इन्द्रियोंको वशमें करके उन्होंने बड़ी तपस्या की। तब भगवती सावित्रीके दर्शन तो नहीं हुए, किंतु उनका प्रत्यादेश (उत्तर) प्राप्त हुआ। महाराज अश्वपतिको यह आकाशवाणी सुनायी दी—'राजन्! तुम दस लाख गायत्रीका जप करो।' इतनेमें ही वहाँ मुनिवर पराशरजी पधार गये। राजाने मुनिको प्रणाम किया। मुनि राजासे कहने लगे।

पराशरने कहा—राजन्! गायत्रीका एक बारका जप दिनके पापको नष्ट कर देता है। दस बार जप करनेसे दिन और रातके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं। सौ बार जप करनेसे महीनोंका उपार्जित पाप नहीं ठहर सकता। एक हजारके जपसे वर्षोंके पाप भस्म हो जाते हैं। गायत्रीके एक लाख जपमें एक जन्मके तथा दस लाख जपमें तीन जन्मोंके भी पापोंको नष्ट करनेकी अमोघ शक्ति है। एक करोड़ जप करनेपर सम्पूर्ण जन्मोंके पाप नष्ट हो जाते हैं। दस करोड़ गायत्री-जप ब्राह्मणोंको

---

*तुलसी पुष्पसारां च सतीं पूज्यां मनोहराम्। कृत्स्नपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमाम्॥
पुष्पेषु तुलनाप्यस्या नासीद् देवीषु वा मुने। पवित्ररूपा सर्वासु तुलसी सा च कीर्तिता॥
शिरोधार्यां च सर्वेषामीप्सितां विश्वपावनीम्। जीवन्मुक्तां मुक्तिदां च भजे तां हरिभक्तिदाम्॥
(प्रकृतिखण्ड २२। ४२—४४)

मुक्त कर देता है। द्विजको चाहिये कि वह पूर्वाभिमुख होकर बैठे। हाथको सर्पकी फणके समान कर ले। वह हाथ ऊर्ध्वमुख हो और ऊपरकी ओरसे कुछ-कुछ मुद्रित (मुँदा-सा) रहे। उसे किञ्चित् झुकाये हुए स्थिर रखे। अनामिकाके बिचले पर्वसे आरम्भ करके नीचे और बायें होते हुए तर्जनीके मूलभागतक अँगूठेसे स्पर्शपूर्वक जप करे। हाथमें जप करनेका यही क्रम है।* श्वेत कमलके बीजोंकी अथवा स्फटिक मणिकी माला बनाकर उसका संस्कार कर लेना चाहिये। इन्हीं वस्तुओंकी माला बनाकर तीर्थमें अथवा किसी देवताके मन्दिरमें जप करे। पीपलके सात पत्तोंपर संयमपूर्वक मालाको रखकर गोरोचनसे अनुलिप्त करे। फिर गायत्री-जपपूर्वक विद्वान् पुरुष उस मालाको स्नान करावे। तत्पश्चात् उसी मालापर विधिपूर्वक गायत्रीके सौ मन्त्रोंका जप करना चाहिये। अथवा, पञ्चगव्य या गङ्गाजलसे स्नान करा देनेपर भी मालाका संस्कार हो जाता है। इस तरह शुद्ध की हुई मालासे जप करना चाहिये।

राजर्षे! तुम इस क्रमसे दस लाख गायत्रीका जप करो। इससे तुम्हारे तीन जन्मोंके पाप क्षीण हो जायँगे। तत्पश्चात् तुम भगवती सावित्रीका साक्षात् दर्शन कर सकोगे। राजन्! तुम प्रतिदिन मध्याह्न, सायं एवं प्रातःकालकी संध्या पवित्र होकर करना; क्योंकि संध्या न करनेवाला अपवित्र व्यक्ति सम्पूर्ण कर्मोंके लिये सदा अनधिकारी हो जाता है। वह दिनमें जो कुछ सत्कर्म करता है, उसके फलसे वञ्चित रहता है। जो प्रातः एवं सायंकालकी संध्या नहीं करता है, वह ब्राह्मण सम्पूर्ण ब्राह्मणोचित कर्मोंसे बहिष्कृत माना जाता है। जो प्रातः और सायंकालकी संध्योपासना नहीं करता है, वह शूद्रकी भाँति समस्त द्विजोचित कर्मोंसे बहिष्कृत कर देने योग्य हो जाता है। जीवनपर्यन्त त्रिकाल-संध्या करनेवाले ब्राह्मणमें तेज अथवा तपके प्रभावसे सूर्यके समान तेजस्विता आ जाती है। ऐसे ब्राह्मणकी चरणरजसे पृथ्वी पवित्र हो जाती है। जिस ब्राह्मणके हृदयमें संध्याके प्रभावसे पाप स्थान नहीं पा सके हों, वह तेजस्वी द्विज जीवन्मुक्त ही है। उसके स्पर्शमात्रसे सम्पूर्ण तीर्थ पवित्र हो जाते हैं। पाप उसे छोड़कर वैसे ही भाग जाते हैं; जैसे गरुड़को देखकर सर्पोंमें भगदड़ मच जाती है। त्रिकाल संध्या न करनेवाले द्विजके दिये हुए पिण्ड और तर्पणको उसके पितर इच्छापूर्वक ग्रहण नहीं करते तथा देवगण भी स्वतन्त्रतासे उसे लेना नहीं चाहते।

मुने! इस प्रकार कहकर मुनिवर पराशरने राजा अश्वपतिको सावित्रीकी पूजाके सम्पूर्ण विधान तथा ध्यान आदि अभिलषित प्रयोग बतला दिये। उन महाराजको उपदेश देकर मुनिवर अपने स्थानको चले गये; फिर राजाने सावित्रीकी उपासना की। उन्हें उनके दर्शन प्राप्त हुए और अभीष्ट वर भी प्राप्त हो गया।

नारदने पूछा—भगवन्! मुनिवर पराशरने सावित्रीके किस ध्यान, किस पूजा-विधान, किस स्तोत्र और किस मन्त्रका उपदेश दिया था तथा राजाने किस विधिसे श्रुति-जननी सावित्रीकी पूजा करके किस वरको प्राप्त किया? किस विधानसे भगवती उनसे सुपूजित हुईं? मैं ये सभी प्रसङ्ग सुनना चाहता हूँ। सावित्रीकी श्रेष्ठ महिमा अत्यन्त रहस्यमयी है। कृपया मुझे सुनाइये।

---

* करं सर्पफणाकारं कृत्वा तं चोर्ध्वमुद्रितम्॥
आनम्रमूर्ध्वमचलं प्रजपेत् प्राङ्मुखो द्विजः। अनामिकामध्यदेशादधो वामक्रमेण च॥
तर्जनीमूलपर्यन्तं जपस्यैष क्रमः करे।

(प्रकृतिखण्ड २३। १७—१९)

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! ज्येष्ठ कृष्ण त्रयोदशीके दिन संयमपूर्वक रहकर चतुर्दशीके दिन व्रत करके शुद्ध समयमें भक्तिके साथ भगवती सावित्रीकी पूजा करनी चाहिये। यह चौदह वर्षका व्रत है। इसमें चौदह फल और चौदह नैवेद्य अर्पण किये जाते हैं। पुष्प एवं धूप, वस्त्र तथा यज्ञोपवीत आदिसे विधिपूर्वक पूजन करके नैवेद्य अर्पण करनेका विधान है। एक मङ्गल-कलश स्थापित करके उसपर फल और पल्लव रख दे। द्विजको चाहिये कि गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वतीकी पूजा करके आवाहित कलशपर अपनी इष्टदेवी सावित्रीका पूजन करे। देवी सावित्रीका ध्यान सुनो। यजुर्वेदकी माध्यन्दिनी शाखामें इसका प्रतिपादन हुआ है। स्तोत्र, पूजा-विधान तथा समस्त कामप्रद मन्त्र भी बतलाता हूँ। ध्यान यह है—

'भगवती सावित्रीका वर्ण तपाये हुए सुवर्णके समान है। ये सदा ब्रह्मतेजसे देदीप्यमान रहती हैं। इनकी प्रभा ऐसी है, मानो ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सहस्रों सूर्य हों। इनके प्रसन्न मुखपर मुस्कान छायी रहती है। रत्नमय भूषण इन्हें अलंकृत किये हुए हैं। दो अग्निशुद्ध वस्त्रोंको इन्होंने धारण कर रखा है। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही ये साकाररूपसे प्रकट हुई हैं। जगद्धाता प्रभुकी इन प्राणप्रियाको 'सुखदा', 'मुक्तिदा', 'शान्ता', 'सर्वसम्पत्स्वरूपा' तथा 'सर्वसम्पत्प्रदात्री' कहते हैं। ये वेदोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं (वेद-शास्त्र इनके स्वरूप हैं। मैं ऐसी वेदबीजस्वरूपा वेदमाता आप भगवती सावित्रीकी उपासना करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके अपने मस्तकपर पुष्प रखे। फिर श्रद्धाके साथ ध्यानपूर्वक कलशके ऊपर भगवती सावित्रीका आवाहन करे। वेदोक्त मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए सोलह प्रकारके उपचारोंसे व्रती पुरुष भगवतीकी पूजा करे। विधिपूर्वक पूजा और स्तुति सम्पन्न हो जानेपर देवेश्वरी सावित्रीको प्रणाम करे। आसन, पाद्य, अर्घ्य, स्नान, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, ताम्बूल, शीतल जल, वस्त्र, भूषण, माला, चन्दन, आचमन और मनोहर शय्या—ये देने योग्य षोडश उपचार हैं।

[आसन-समर्पण-मन्त्र]

दारुसारविकारं च हेमादिनिर्मितं च वा।
देवाधारं पुण्यदं च मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५५॥

देवि! यह आसन उत्तम काष्ठके सारतत्त्वसे बना हुआ है। साथ ही सुवर्ण आदिका बना हुआ आसन भी प्रस्तुत है। देवताओंके बैठनेयोग्य यह पुण्यप्रद आसन मैंने सदाके लिये आपकी सेवामें समर्पित कर दिया है।

[पाद्य-मन्त्र]

तीर्थोदकं च पाद्यं च पुण्यदं प्रीतिदं महत्।
पूजाङ्गभूतं शुद्धं च मया भक्त्या निवेदितम्॥ ५६॥

देवेश्वरि! यह तीर्थका पवित्र जल आपके लिये पाद्यके रूपमें प्रस्तुत है, जो अत्यन्त प्रीतिदायक तथा पुण्यप्रद है। पूजाका अङ्गभूत यह शुद्ध पाद्य मैंने भक्तिभावसे आपके चरणोंमें अर्पित किया है।

[अर्घ्य-मन्त्र]

पवित्ररूपमर्घ्यं च दूर्वापुष्पाक्षतान्वितम्।
पुण्यदं शङ्खतोयाक्तं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५७॥

देवि! यह शङ्खके जलसे युक्त तथा दूर्वा, पुष्प और अक्षतसे सम्पन्न परम पवित्र पुण्यदायक अर्घ्य मेरे द्वारा आपकी सेवामें निवेदन किया गया है।

[स्नानीय-मन्त्र]

सुगन्धिधात्रीतैलं च देहसौन्दर्यकारणम्।
मया निवेदितं भक्त्या स्नानीयं प्रतिगृह्यताम्॥ ५८॥

देवि! जो शरीरके सौन्दर्यको बढ़ानेमें कारण है, वह सुगन्धित आँवलेका तैल और स्नानके लिये जल मैंने भक्तिभावसे सेवामें निवेदित किया है। आप यह सब स्वीकार करें।

[अनुलेपन-मन्त्र]

मलयाचलसम्भूतं देहशोभाविवर्द्धनम्।
सुगन्धयुक्तं सुखदं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ५९॥

देवेश्वरि! यह मलयपर्वतसे उत्पन्न, सुगन्धयुक्त सुखद चन्दन, जो देहकी शोभाको बढ़ानेवाला है, मैंने अनुलेपनके रूपमें आपको अर्पित किया है।

[धूप-समर्पण-मन्त्र]

गन्धद्रव्योद्भवः पुण्यः प्रीतिदो दिव्यगन्धदः।
मया निवेदितो भक्त्या धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्॥६०॥

देवि! जो सुगन्धित द्रव्योंसे बना हुआ, पवित्र, प्रीतिदायक तथा दिव्य सुगन्ध प्रकट करनेवाला है, ऐसा यह धूप मैंने भक्तिभावसे आपको अर्पित किया है। आप इसे ग्रहण करें।

[दीप-समर्पण-मन्त्र]

जगतां दर्शनीयं च दर्शनं दीप्तिकारणम्।
अन्धकारध्वंसबीजं मया तुभ्यं निवेदितम्॥ ६१॥

देवेश्वरि! जो जगत्के लिये दर्शनीय, दृष्टिका सहायक तथा दीप्ति (प्रकाश)-का कारण है, जिसे अन्धकारके विनाशका बीज कहा गया है, वह दिव्य दीप मेरे द्वारा आपकी सेवामें निवेदन किया गया है।

[नैवेद्य-समर्पण-मन्त्र]

तुष्टिदं पुष्टिदं चैव प्रीतिदं क्षुद्विनाशनम्।
पुण्यदं स्वादुरूपं च नैवेद्यं प्रतिगृह्यताम्॥ ६२॥

देवि! जो तुष्टि, पुष्टि, प्रीति तथा पुण्य प्रदान करनेवाला तथा भूख मिटानेमें समर्थ है, ऐसा सुस्वादु नैवेद्य आपके समक्ष प्रस्तुत है, आप इसे स्वीकार करें।

[ताम्बूल-समर्पण-मन्त्र]

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
तुष्टिदं पुष्टिदं चैव मया भक्त्या निवेदितम्॥ ६३॥

देवेश्वरि! यह सुन्दर, रमणीय, संतोषप्रद, पुष्टिकारक एवं कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल मैंने भक्तिभावसे अर्पित किया है।

[शीतल जल-समर्पण-मन्त्र]

सुशीतलं वासितं च पिपासानाशकारणम्।
जगतां जीवरूपं च जीवनं प्रतिगृह्यताम्॥ ६४॥

हे देवि! यह प्यास मिटानेमें समर्थ तथा सम्पूर्ण जगत्का जीवनरूप सुवासित एवं सुशीतल जल अर्पित है, इसे स्वीकार करें।

[वस्त्र-समर्पण-मन्त्र]

देहशोभास्वरूपं च सभाशोभाविवर्द्धनम्।
कार्पासजं च कृमिजं वसनं प्रतिगृह्यताम्॥ ६५॥

देवेश्वरि! यह सूती और रेशमी वस्त्र देहकी शोभाका तो स्वरूप ही है, सभामें शरीरकी विशेष शोभाकी वृद्धि करनेवाला है। अतः इसे ग्रहण करें।

[भूषण-समर्पण-मन्त्र]

काञ्चनादिविनिर्माणं श्रीयुक्तं श्रीकरं सदा।
सुखदं पुण्यदं चैव भूषणं प्रतिगृह्यताम्॥ ६६॥

देवि! सुवर्ण आदिका बना हुआ यह आभूषण सेवामें अर्पित है। यह स्वयं तो सुन्दर है ही; जो इसे धारण करता है, उसकी शोभाको भी यह सदा बढ़ाता रहता है। इससे सुख और पुण्यकी प्राप्ति होती है, अतः आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।

[माल्य-समर्पण-मन्त्र]

नानापुष्पविनिर्माणं बहुभाससमन्वितम्।
प्रीतिदं पुण्यदं चैव माल्यं च प्रतिगृह्यताम्॥ ६७॥

देवेश्वरि! नाना प्रकारके फूलोंका बना हुआ यह सुन्दर हार अत्यन्त प्रकाशमान है। इससे आपको प्रसन्नता प्राप्त होगी। अतः कृपया इस पुण्यदायक हारको आप ग्रहण करें।

[गन्ध-समर्पण-मन्त्र]

सर्वमङ्गलरूपश्च सर्वमङ्गलदो वरः।
पुण्यप्रदश्च गन्धाढ्यो गन्धश्च प्रतिगृह्यताम्॥ ६८॥

देवि! यह सर्वमङ्गलरूप एवं सर्वमङ्गलदायक, श्रेष्ठ, पुण्यप्रद तथा सुगन्धित गन्ध आपकी सेवामें समर्पित है, इसे स्वीकार कीजिये।

[आचमनीय-समर्पण-मन्त्र]

शुद्धं शुद्धिप्रदं चैव शुद्धानां प्रीतिदं महत्।
रम्यमाचमनीयं च मया दत्तं प्रगृह्यताम्॥ ६९॥

देवेश्वरि! मेरा दिया हुआ यह रमणीय आचमनीय शुद्ध होनेके साथ ही शुद्धिदायक भी है। इससे शुद्ध पुरुषोंको बड़ी प्रसन्नता प्राप्त होती है। आप कृपापूर्वक इसे स्वीकार करें।

[शय्या-समर्पण-मन्त्र]

रत्नसारादिनिर्माणं पुष्पचन्दनसंयुतम्।
सुखदं पुण्यदं चैव सुतल्पं प्रतिगृह्यताम्॥ ७०॥

देवि! यह सुन्दर शय्या रत्नसार आदिकी बनी हुई है। इसपर फूल बिछे हैं और चन्दनका छिड़काव हुआ है। अतएव यह सुखदायिनी और पुण्यदायिनी भी है। आप इसे ग्रहण करें।

[फल-समर्पण-मन्त्र]

नानावृक्षसमुद्भूतं नानारूपसमन्वितम्।
फलस्वरूपं फलदं फलं च प्रतिगृह्यताम्॥ ७१॥

देवेश्वरि! अनेक वृक्षोंसे उत्पन्न तथा नाना रूपोंमें उपलब्ध अभीष्ट फलस्वरूप एवं अभिलषित फलदायक यह फल सेवामें प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करें।

[सिन्दूर-समर्पण-मन्त्र]

सिन्दूरं च वरं रम्यं भालशोभाविवर्द्धनम्।
भूषणं भूषणानां च सिन्दूरं प्रतिगृह्यताम्॥ ७२॥

देवि! यह सुन्दर एवं सुरम्य सिन्दूर भालकी शोभाको बढ़ानेवाला है। इसे आभूषणोंका पूरक माना गया है। आप इसे ग्रहण करें।

[यज्ञोपवीत-समर्पण-मन्त्र]

विशुद्धग्रन्थिसंयुक्तं पुण्यसूत्रविनिर्मितम्।
पवित्रं वेदमन्त्रेण यज्ञसूत्रं च गृह्यताम्॥ ७३॥

देवेश्वरि! पवित्र सूतका बना हुआ यह यज्ञोपवीत विशुद्ध ग्रन्थियोंसे युक्त है। इसे वेदमन्त्रसे पवित्र किया गया है। कृपया स्वीकार करें।

विद्वान् पुरुष इन द्रव्योंको मूलमन्त्रसे भगवती सावित्रीके लिये अर्पण करके स्तोत्र पढ़े। तदनन्तर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको दक्षिणा दे। 'सावित्री' इस शब्दमें चतुर्थी विभक्ति लगाकर अन्तमें 'स्वाहा' शब्दका प्रयोग होना चाहिये। इसके पूर्व लक्ष्मी, माया और कामबीजका उच्चारण हो। 'श्रीं ह्रीं क्लीं सावित्र्यै स्वाहा' यह अष्टाक्षर-मन्त्र ही मूलमन्त्र कहा गया है। भगवती सावित्रीका सम्पूर्ण कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र माध्यन्दिनी शाखामें वर्णित है। ब्राह्मणोंके लिये जीवनस्वरूप इस स्तोत्रको तुम्हारे सामने मैं व्यक्त करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें गोलोकधाममें विराजमान भगवान् श्रीकृष्णने सावित्रीको ब्रह्माके साथ जानेकी आज्ञा दी; परंतु सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोक जानेको प्रस्तुत नहीं हुईं। तब भगवान् श्रीकृष्णके कथनानुसार ब्रह्माजी भक्तिपूर्वक वेदमाता सावित्रीकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर सावित्रीने संतुष्ट होकर ब्रह्माको पति बनाना स्वीकार कर लिया। ब्रह्माजीने सावित्रीकी इस प्रकार स्तुति की।

ब्रह्माजीने कहा—सुन्दरि! तुम नारायणस्वरूपा एवं नारायणी हो। सनातनी देवि! भगवान् नारायणसे ही तुम्हारा प्रादुर्भाव हुआ है। तुम मुझपर प्रसन्न होनेकी कृपा करो। देवि! तुम परम तेजःस्वरूपा हो। तुम्हारे प्रत्येक अङ्गमें परम आनन्द व्याप्त है। द्विजातियोंके लिये जातिस्वरूपा सुन्दरि! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सुन्दरि! तुम नित्या, नित्यप्रिया तथा नित्यानन्दस्वरूपा हो। तुम अपने सर्वमङ्गलमय रूपसे मुझपर प्रसन्न हो जाओ। शोभने! तुम ब्राह्मणोंके लिये सर्वस्व हो। तुम सर्वोत्तम एवं मन्त्रोंकी सार-तत्त्व हो। तुम्हारी उपासनासे सुख और मोक्ष सुलभ हो जाते हैं। मुझपर प्रसन्न हो जाओ। सुन्दरि! तुम ब्राह्मणोंके पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्नि हो। ब्रह्मतेज प्रदान करना तुम्हारा सहज गुण है। तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। मनुष्य मन, वाणी अथवा शरीरसे जो भी

पाप करता है, वे सभी पाप तुम्हारे नामका स्मरण करते ही भस्म हो जायँगे।*

इस प्रकार स्तुति करके जगद्धाता ब्रह्माजी वहीं गोलोककी सभामें विराजमान हो गये। तब सावित्री उनके साथ ब्रह्मलोकमें जानेके लिये प्रस्तुत हो गयीं। मुने! इसी स्तोत्रराजसे राजा अश्वपतिने भगवती सावित्रीकी स्तुति की थी, तब उन देवीने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिये। राजाने उनसे मनोऽभिलषित वर प्राप्त किया। यह स्तवराज परम पवित्र है। पुरुष यदि संध्याके पश्चात् इस स्तवका पाठ करता है तो चारों वेदोंके पाठ करनेसे जो फल मिलता है, उसी फलका वह अधिकारी हो जाता है।

(अध्याय २३)

राजा अश्वपतिद्वारा सावित्रीकी उपासना तथा फलस्वरूप सावित्री नामक कन्याकी उत्पत्ति, सत्यवान्‌के साथ सावित्रीका विवाह, सत्यवान्‌की मृत्यु, सावित्री और यमराजका संवाद

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! जब राजा अश्वपतिने विधिपूर्वक भगवती सावित्रीकी पूजा करके इस स्तोत्रसे उनका स्तवन किया, तब देवी उनके सामने प्रकट हो गयीं। उनका श्रीविग्रह ऐसा प्रकाशमान था, मानो हजारों सूर्य एक साथ उदित हो गये हों। साध्वी सावित्री अत्यन्त प्रसन्न होकर हँसती हुई राजा अश्वपतिसे इस प्रकार बोलीं, मानो माता अपने पुत्रसे बात कर रही हो। उस समय देवी सावित्रीकी प्रभासे चारों दिशाएँ उद्भासित हो रही थीं।

देवी सावित्रीने कहा—महाराज! तुम्हारे मनकी जो अभिलाषा है, उसे मैं जानती हूँ। तुम्हारी पत्नीके सम्पूर्ण मनोरथ भी मुझसे छिपे नहीं हैं। अत: सब कुछ देनेके लिये मैं निश्चितरूपसे प्रस्तुत हूँ। राजन्! तुम्हारी परम साध्वी रानी कन्याकी अभिलाषा करती है और तुम पुत्र चाहते हो; क्रमसे दोनों ही प्राप्त होंगे।

इस प्रकार कहकर भगवती सावित्री ब्रह्मलोकमें चली गयीं और राजा भी अपने घर लौट आये। वहाँ समयानुसार पहले कन्याका जन्म हुआ। भगवती सावित्रीकी आराधनासे उत्पन्न हुई लक्ष्मीकी कलास्वरूपा उस कन्याका नाम राजा अश्वपतिने सावित्री रखा। वह कन्या समयानुसार शुक्लपक्षके चन्द्रमाके समान प्रतिदिन बढ़ने लगी। समयपर उस सुन्दरी कन्यामें नवयौवनके लक्षण प्रकट हो गये। द्युमत्सेनकुमार सत्यवान्‌का उसने पतिरूपमें वरण किया; क्योंकि सत्यवान् सत्यवादी, सुशील एवं नाना प्रकारके उत्तम गुणोंसे सम्पन्न थे। राजाने रत्नमय भूषणोंसे अलंकृत करके अपनी कन्या सावित्री सत्यवान्‌को समर्पित कर दी। सत्यवान् भी श्वशुरकी ओरसे मिले हुए बड़े भारी दहेजके साथ उस कन्याको लेकर अपने घर चले गये।

---

*ब्रह्मोवाच

नारायणस्वरूपे च नारायणि सनातनि। नारायणात्समुद्भूते प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
तेज:स्वरूपे परमे परमानन्दरूपिणि। द्विजातीनां जातिरूपे प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
नित्ये नित्यप्रिये देवि नित्यानन्दस्वरूपिणि। सर्वमङ्गलरूपेण प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
सर्वस्वरूपे विप्राणां मन्त्रसारे परात्परे। सुखदे मोक्षदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
विप्रपापेध्मदाहाय ज्वलदग्निशिखोपमे। ब्रह्मतेज:प्रदे देवि प्रसन्ना भव सुन्दरि॥
कायेन मनसा वाचा यत्पापं कुरुते द्विज:। तत् ते स्मरणमात्रेण भस्मीभूतं भविष्यति॥

(प्रकृतिखण्ड २३। ७९—८४)

एक वर्ष व्यतीत हो जानेके पश्चात् सत्यपराक्रमी सत्यवान् अपने पिताकी आज्ञाके अनुसार हर्षपूर्वक फल और ईंधन लानेके लिये अरण्यमें गये। उनके पीछे-पीछे साध्वी सावित्री भी गयी। दैववश सत्यवान् वृक्षसे गिरे और उनके प्राण प्रयाण कर गये। मुने! यमराजने उनके अङ्गुष्ठ-सदृश जीवात्माको सूक्ष्म शरीरके साथ बाँधकर यमपुरीके लिये प्रस्थान किया। तब साध्वी सावित्री भी उनके पीछे लग गयी। संयमनीपुरीके स्वामी साधुश्रेष्ठ यमराजने सुन्दरी सावित्रीको पीछे-पीछे आती देख मधुर वाणीमें कहा।

धर्मराजने कहा—अहो सावित्री! तुम इस मानव-देहसे कहाँ जा रही हो? यदि पतिदेवके साथ जानेकी तुम्हारी इच्छा है तो पहले इस शरीरका त्याग कर दो। मर्त्यलोकका प्राणी इस पाञ्चभौतिक शरीरको लेकर मेरे लोकमें नहीं जा सकता। नश्वर व्यक्ति नश्वर लोकमें ही जानेका अधिकारी है। साध्वि! तुम्हारा पति सत्यवान् भारतवर्षमें आया था। उसकी आयु अब पूर्ण हो चुकी, अतएव अपने किये हुए कर्मका फल भोगनेके लिये अब वह मेरे लोकको जा रहा है। प्राणीका कर्मसे ही जन्म होता है और कर्मसे ही उसकी मृत्यु भी होती है। सुख, दुःख, भय और शोक—ये सब कर्मके अनुसार प्राप्त होते रहते हैं। कर्मके प्रभावसे जीव इन्द्र भी हो सकता है। अपना उत्तम कर्म उसे ब्रह्मपुत्रतक बनानेमें समर्थ है। अपने शुभ कर्मकी सहायतासे प्राणी श्रीहरिका दास बनकर जन्म आदि विकारोंसे मुक्त हो सकता है। सम्पूर्ण सिद्धि, अमरत्व तथा श्रीहरिके सालोक्यादि चार प्रकारके पद भी अपने शुभ कर्मके प्रभावसे मिल सकते हैं। देवता, मनु, राजेन्द्र, शिव, गणेश, मुनीन्द्र, तपस्वी, क्षत्रिय, वैश्य, म्लेच्छ, स्थावर, जङ्गम, पर्वत, राक्षस, किन्नर, अधिपति, वृक्ष, पशु, किरात, अत्यन्त सूक्ष्म जन्तु, कीड़े, दैत्य, दानव तथा असुर—ये सभी योनियाँ प्राणीको अपने कर्मके अनुसार प्राप्त होती हैं। इसमें कुछ भी संशय नहीं है।

इस प्रकार सावित्रीसे कहकर यमराज मौन हो गये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! पतिव्रता सावित्रीने यमराजकी बात सुनकर परम भक्तिके साथ उनका स्तवन किया; फिर वह उनसे पूछने लगी।

सावित्रीने पूछा—भगवन्! कौन कार्य है, किस कर्मके प्रभावसे क्या होता है, कैसे फलमें कौन कर्म हेतु है, कौन देह है और कौन देही है अथवा संसारमें प्राणी किसकी प्रेरणासे कर्म करता है? ज्ञान, बुद्धि, शरीरधारियोंके प्राण, इन्द्रियाँ तथा उनके लक्षण एवं देवता, भोक्ता, भोजयिता, भोज, निष्कृति तथा जीव और परमात्मा—ये सब कौन और क्या हैं? इन सबका परिचय देनेकी कृपा कीजिये।

धर्मराज बोले—साध्वी सावित्री! कर्म दो प्रकारके हैं—शुभ और अशुभ। वेदोक्त कर्म शुभ हैं। इनके प्रभावसे प्राणी कल्याणके भागी होते हैं। वेदमें जिसका स्थान नहीं है, वह अशुभ कर्म नरकप्रद है। भगवान् विष्णुकी जो संकल्परहित अहैतुकी सेवा की जाती है, उसे 'कर्म-निर्मूलरूपा' कहते हैं। ऐसी ही सेवा 'हरि-भक्ति' प्रदान करती है। कौन कर्मके फलका भोक्ता है और कौन निर्लिप्त—इसका उत्तर यह है। श्रुतिका वचन है कि श्रीहरिका जो भक्त है, वह मनुष्य मुक्त हो जाता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, शोक और भय—ये उसपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते। साध्वि! श्रुतिमें मुक्ति भी दो प्रकारकी बतायी गयी है, जो सर्वसम्मत है। एकको 'निर्वाणप्रदा' कहते हैं और दूसरीको 'हरिभक्तिप्रदा'। मनुष्य इन दोनोंके अधिकारी हैं। वैष्णव पुरुष हरिभक्तिस्वरूपा मुक्ति चाहते हैं और अन्य साधु-जन निर्वाणप्रदा मुक्तिकी इच्छा करते

हैं। कर्मका जो बीजरूप है, वही सदा फल प्रदान करनेवाला है। कर्म कोई दूसरी वस्तु नहीं, भगवान् श्रीकृष्णका ही रूप है। वे भगवान् प्रकृतिसे परे हैं। कर्म भी इन्हींसे होता है; क्योंकि वे उसके हेतुरूप हैं। जीव कर्मका फल भोगता है; आत्मा तो सदा निर्लिप्त ही है। देही आत्माका प्रतिबिम्ब है, वही जीव है। देह तो सदासे नश्वर है। पृथ्वी, तेज, जल, वायु और आकाश—ये पाँच भूत उसके उपादान हैं। परमात्माके सृष्टि-कार्यमें ये सूत्ररूप हैं। कर्म करनेवाला जीव देही है। वही भोक्ता और अन्तर्यामीरूपसे भोजयिता भी है। सुख एवं दुःखके साक्षात् स्वरूप वैभवका ही दूसरा नाम भोग है। निष्कृति मुक्तिको ही कहते हैं। सदसत्सम्बन्धी विवेकके आदिकारणका नाम ज्ञान है। इस ज्ञानके अनेक भेद हैं। घट-पटादि विषय तथा उनका भेद ज्ञानके भेदमें कारण कहा जाता है। विवेचनमयी शक्तिको 'बुद्धि' कहते हैं। श्रुतिमें ज्ञानबीज नामसे इसकी प्रसिद्धि है। वायुके ही विभिन्न रूप प्राण हैं। इन्हींके प्रभावसे प्राणियोंके शरीरमें शक्तिका संचार होता है। जो इन्द्रियोंमें प्रमुख, परमात्माका अंश, संशयात्मक, कर्मोंका प्रेरक, प्राणियोंके लिये दुर्निवार्य, अनिरूप्य, अदृश्य तथा बुद्धिका एक भेद है, उसे 'मन' कहा गया है। यह शरीरधारियोंका अङ्ग तथा सम्पूर्ण कर्मोंका प्रेरक है। यही इन्द्रियोंको विषयोंमें लगाकर दुःखी बनानेके कारण शत्रुरूप हो जाता है और सत्कार्यमें लगाकर सुखी बनानेके कारण मित्ररूप है। आँख, कान, नाक, त्वचा और जिह्वा आदि इन्द्रियाँ हैं। सूर्य, वायु, पृथ्वी और वाणी आदि इन्द्रियोंके देवता कहे गये हैं। जो प्राण एवं देहादिको धारण करता है, उसीकी 'जीव' संज्ञा है। प्रकृतिसे परे जो सर्वव्यापी निर्गुण ब्रह्म हैं, उन्हींको 'परमात्मा' कहते हैं। ये कारणोंके भी कारण हैं। ये स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं।

वत्से! तुमने जो कुछ पूछा था, वह सब मैंने शास्त्रानुसार बतला दिया। यह विषय ज्ञानियोंके लिये परम ज्ञानमय है। अब तुम सुखपूर्वक लौट जाओ।

सावित्रीने कहा—प्रभो! आप ज्ञानके अथाह समुद्र हैं। अब मैं इन अपने प्राणनाथ और आपको छोड़कर कैसे कहाँ जाऊँ? मैं जो-जो बातें पूछती हूँ, उसे आप मुझे बतानेकी कृपा करें। जीव किस कर्मके प्रभावसे किन-किन योनियोंमें जाता है? पिताजी! कौन कर्म स्वर्गप्रद है और कौन नरकप्रद? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी मुक्त हो जाता है तथा श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेके लिये कौन-सा कर्म कारण होता है? किस कर्मके फलस्वरूप प्राणी रोगी होता है और किस कर्मफलसे नीरोग? दीर्घजीवी और अल्पजीवी होनेमें कौन-कौनसे कर्म प्रेरक हैं? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी सुखी होता है और किस कर्मके प्रभावसे दुःखी? किस कर्मसे मनुष्य अङ्गहीन, एकाक्ष, बधिर, अन्धा, पङ्गु, उन्मादी, पागल तथा अत्यन्त लोभी और नरघाती होता है एवं सिद्धि और सालोक्यादि मुक्ति प्राप्त होनेमें कौन कर्म सहायक है? किस कर्मके प्रभावसे प्राणी ब्राह्मण होता है और किस कर्मके प्रभावसे तपस्वी? स्वर्गादि भोग प्राप्त होनेमें कौन कर्म साधन है? किस कर्मसे प्राणी वैकुण्ठमें जाता है? ब्रह्मन्! गोलोक निरामय और सम्पूर्ण स्थानोंसे उत्तम धाम है। किस कर्मके प्रभावसे उसकी प्राप्ति हो सकती है? कितने प्रकारके नरक हैं और उनकी कितनी संख्या और उनके क्या-क्या नाम हैं? कौन किस नरकमें जाता है और कितने समयतक वहाँ यातना भोगता है? किस कर्मके फलसे पापियोंके शरीरमें कौन-सी व्याधि उत्पन्न होती है? भगवन्! मैंने ये जो-जो प्रश्न किये हैं, इन सबके उत्तर देनेकी आप कृपा करें। (अध्याय २४-२५)

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर, सावित्रीको वरदान

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! सावित्रीके वचन सुनकर यमराजके मनमें बड़ा आश्चर्य हुआ। वे हँसकर प्राणियोंके कर्म-विपाक कहनेके लिये उद्यत हो गये।

धर्मराजने कहा—प्यारी बेटी! अभी तुम हो तो अल्प वयकी बालिका, किंतु तुम्हें पूर्ण विद्वानों, ज्ञानियों और योगियोंसे भी बढ़कर ज्ञान प्राप्त है। पुत्री! भगवती सावित्रीके वरदानसे तुम्हारा जन्म हुआ है। तुम उन देवीकी कला हो। राजाने तपस्याके प्रभावसे सावित्री-जैसी कन्यारत्नको प्राप्त किया है। जिस प्रकार लक्ष्मी भगवान् विष्णुके, भवानी शंकरके, राधा श्रीकृष्णके, सावित्री ब्रह्माके, मूर्ति धर्मके, शतरूपा मनुके, देवहूति कर्दमके, अरुन्धती वसिष्ठके, अदिति कश्यपके, अहल्या गौतमके, शची इन्द्रके, रोहिणी चन्द्रमाके, रति कामदेवके, स्वाहा अग्निके, स्वधा पितरोंके, संज्ञा सूर्यके, वरुणानी वरुणके, दक्षिणा यज्ञके, पृथ्वी वाराहके और देवसेना कार्तिकेयके पास सौभाग्यवती प्रिया बनकर शोभा पाती हैं, तुम भी वैसी ही सत्यवान्‌की प्रिया बनो। मैंने यह तुम्हें वर दे दिया। महाभागे! इसके अतिरिक्त भी जो तुम्हें अभीष्ट हो, वह वर माँगो। मैं तुम्हें सभी अभिलषित वर देनेको तैयार हूँ।

सावित्री बोली—महाभाग! सत्यवान्‌के औरस अंशसे मुझे सौ पुत्र प्राप्त हों—यही मेरा अभिलषित वर है। साथ ही, मेरे पिता भी सौ पुत्रोंके जनक हों। मेरे श्वशुरको नेत्र-लाभ हो और उन्हें पुनः राज्यश्री प्राप्त हो जाय, यह भी मैं चाहती हूँ। जगत्प्रभो! सत्यवान्‌के साथ मैं बहुत लंबे समयतक रहकर अन्तमें भगवान् श्रीहरिके धाममें चली जाऊँ, यह वर भी देनेकी आप कृपा करें।

प्रभो! मुझे जीवके कर्मका विपाक तथा विश्वसे तर जानेका उपाय भी सुननेके लिये मनमें महान् कौतूहल हो रहा है; अतः आप यह भी बतायें।

धर्मराजने कहा—महासाध्वि! तुम्हारे सम्पूर्ण मनोरथ पूर्ण होंगे। अब मैं प्राणियोंका कर्म-विपाक कहता हूँ, सुनो। भारतवर्षमें ही शुभ-अशुभ कर्मोंका जन्म होता है—यहींके कर्मोंको 'शुभ' या 'अशुभ' की संज्ञा दी गयी है। यहाँ सर्वत्र पुण्यक्षेत्र है, अन्यत्र नहीं; अन्यत्र प्राणी केवल कर्मोंका फल भोगते हैं। पतिव्रते! देवता, दैत्य, दानव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस तथा मनुष्य—ये सभी कर्मके फल भोगते हैं। परंतु सबका जीवन समान नहीं है। उनमेंसे मानव ही कर्मका जनक होता है अर्थात् मनुष्ययोनिमें ही शुभाशुभ कर्म किये जाते हैं; जिनका फल सर्वत्र सभी योनियोंमें भोगना पड़ता है। विशिष्ट जीवधारी—विशेषतः मानव ही सब योनियोंमें कर्मोंका फल भोगते हैं और सभी योनियोंमें भटकते हैं। वे पूर्व-जन्मका किया हुआ शुभाशुभ कर्म भोगते हैं। शुभ कर्मके प्रभावसे वे स्वर्गलोकमें जाते हैं और अशुभ कर्मसे उन्हें नरकमें भटकना पड़ता है। कर्मका निर्मूलन हो जानेपर मुक्ति होती है। साध्वि! मुक्ति दो प्रकारकी बतलायी गयी है—एक निर्वाणस्वरूपा और दूसरी परमात्मा श्रीकृष्णकी सेवारूपा। बुरे कर्मसे प्राणी रोगी होता है और शुभ कर्मसे आरोग्यवान्। वह अपने शुभाशुभ कर्मके अनुसार दीर्घजीवी, अल्पायु, सुखी एवं दुःखी होता है। कुत्सित कर्मसे ही प्राणी अङ्गहीन, अंधे-बहरे आदि होते हैं। उत्तम कर्मके फलस्वरूप सिद्धि आदिकी प्राप्ति होती है।

देवि! सामान्य बातें बतायी गयीं; अब विशेष बातें सुनो। सुन्दरि! यह अतिशय दुर्लभ विषय शास्त्रों और पुराणोंमें वर्णित है। इसे सबके सामने नहीं कहना चाहिये। सभी जातियोंके लिये भारतवर्षमें मनुष्यका जन्म पाना परम दुर्लभ है। साध्वि! उन सब जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ माना

जाता है। वह समस्त कर्मोंमें प्रशस्त होता है। भारतवर्षमें विष्णुभक्त ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है। पतिव्रते! वैष्णवके भी दो भेद हैं—सकाम और निष्काम। सकाम वैष्णव कर्मप्रधान होता है और निष्काम वैष्णव केवल भक्त। सकाम वैष्णव कर्मोंका फल भोगता है और निष्काम वैष्णव शुभाशुभ भोगके उपद्रवसे दूर रहता है।

साध्वि! ऐसा निष्काम वैष्णव शरीर त्यागकर भगवान् विष्णुके निरामय पदको प्राप्त कर लेता है। ऐसे निष्काम वैष्णवोंका संसारमें पुनरागमन नहीं होता। द्विभुज भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णब्रह्म परमेश्वर हैं। उनकी उपासना करनेवाले भक्तपुरुष अन्तमें दिव्य शरीर धारण करके गोलोकमें जाते हैं। सकाम वैष्णव पुरुष उच्च वैष्णव लोकोंमें जाकर समयानुसार पुनः भारतवर्षमें लौट आते हैं। द्विजातियोंके कुलमें उनका जन्म होता है। वे भी कालक्रमसे निष्काम भक्त बन जाते और भगवान् उन्हें निर्मल भक्ति भी अवश्य देते हैं। वैष्णव ब्राह्मणसे भिन्न जो सकाम मनुष्य हैं, वे विष्णुभक्तिसे रहित होनेके कारण किसी भी जन्ममें विशुद्ध बुद्धि नहीं पा सकते। साध्वि! जो तीर्थस्थानमें रहकर सदा तपस्या करते हैं, वे द्विज ब्रह्माके लोकमें जाते हैं और पुण्यभोगके पश्चात् पुनः भारतवर्षमें आ जाते हैं। भारतमें रहकर अपने कर्तव्य-कर्मोंमें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण तथा सूर्यभक्त शरीर त्यागनेपर सूर्यलोकमें जाते हैं और पुण्यभोगके पश्चात् पुनः भारतवर्षमें जन्म पाते हैं। अपने धर्ममें निरत रहकर शिव, शक्ति तथा गणपतिकी उपासना करनेवाले ब्राह्मण शिवलोकमें जाते हैं; फिर उन्हें लौटकर भारतवर्षमें आना पड़ता है। जो धर्मरहित होनेपर भी निष्कामभावसे श्रीहरिका भजन करते हैं, वे भी भक्तिके बलसे श्रीहरिके धाममें चले जाते हैं।

साध्वि! जो अपने धर्मका पालन नहीं करते, वे आचारहीन, कामलोलुप लोग अवश्य ही नरकमें जाते हैं। चारों ही वर्ण अपने धर्ममें कटिबद्ध रहनेपर ही शुभकर्मका फल भोगनेके अधिकारी होते हैं। जो अपना कर्तव्य-कर्म नहीं करते, वे अवश्य ही नरकमें जाते हैं। कर्मका फल भोगनेके लिये वे भारतवर्षमें नहीं आ सकते। अतएव चारों वर्णोंके लिये अपने धर्मका पालन करना अत्यन्त आवश्यक है।

अपने धर्ममें संलग्न रहनेवाले ब्राह्मण, स्वधर्मनिरत विप्रको अपनी कन्या देनेके फलस्वरूप चन्द्रलोकको जाते हैं और वहाँ चौदह मन्वन्तर कालतक रहते हैं। साध्वि! यदि कन्याको अलंकृत करके दानमें दिया जाय तो उससे दुगुना फल प्राप्त होता है। उन साधु पुरुषोंमें यदि कामना हो तब तो वे चन्द्रमाके लोकमें जाते हैं। निष्कामभावसे दान करें तो वे भगवान् विष्णुके परम धाममें पहुँच जाते हैं। गव्य (दूध), चाँदी, सुवर्ण, वस्त्र, घृत, फल और जल ब्राह्मणोंको देनेवाले पुण्यात्मा पुरुष चन्द्रलोकमें जाते हैं। साध्वि! एक मन्वन्तरतक वे वहाँ सुविधापूर्वक निवास करते हैं। उस दानके प्रभावसे उन्हें वहाँ सुदीर्घ कालतक निवास प्राप्त होता है। पतिव्रते! पवित्र ब्राह्मणको सुवर्ण, गौ और ताम्र आदि द्रव्यका दान करनेवाले सत्पुरुष सूर्यलोकमें जाते हैं। वे भय-बाधासे शून्य हो, उस विस्तृत लोकमें सुदीर्घ कालतक वास करते हैं। जो ब्राह्मणोंको पृथ्वी अथवा प्रचुर धान्य दान करता है, वह भगवान् विष्णुके परम सुन्दर श्वेतद्वीपमें जाता है और दीर्घकालतक वहाँ वास करता है। भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गृह-दान करनेवाले पुरुष स्वर्गलोकमें जाते और वहाँ दीर्घकालतक निवास करते हैं; वे उस लोकमें उतने वर्षोंतक रहते हैं, जितनी संख्यामें उस दान-गृहके रजःकण हैं। मनुष्य जिस-जिस देवताके उद्देश्यसे गृह-दान करता है, अन्तमें उसी देवताके लोकमें जाता है और घरमें जितने धूलिकण हैं, उतने वर्षोंतक वहाँ रहता

है। अपने घरपर दान करनेकी अपेक्षा देवमन्दिरमें दान करनेसे चौगुना, पूर्तकर्म (वापी, कूप, तड़ाग आदिके निर्माण)-के अवसरपर करनेसे सौगुना तथा किसी श्रेष्ठ तीर्थस्थानमें करनेसे आठगुना फल होता है—यह ब्रह्माजीका वचन है।

समस्त प्राणियोंके उपकारके लिये तड़ागका दान करनेवाला दस हजार वर्षोंकी अवधि लेकर जनलोकमें जाता है। बावलीका दान करनेसे मनुष्यको सदा सौगुना फल मिलता है। वह सेतु (पुल)-का दान करनेपर तड़ागके दानका भी पुण्यफल प्राप्त कर लेता है। तड़ागका प्रमाण चार हजार धनुष[१] चौड़ा और उतना ही लंबा निश्चित किया गया है। इससे जो लघु प्रमाणमें है, वह वापी कही जाती है। सत्पात्रको दी हुई कन्या दस वापीके समान पुण्यप्रदा होती है। यदि उस कन्याको अलंकृत करके दान किया जाय तो दुगुना फल मिलता है। तड़ागके दानसे जो पुण्यफल प्राप्त होता है, वही उसके भीतरसे कीचड़ और मिट्टी निकालनेसे सुलभ हो जाता है। वापीके कीचड़को दूर करानेसे उसके निर्माण कराने-जितना फल होता है। पतिव्रते! जो पुरुष पीपलका वृक्ष लगाकर उसकी प्रतिष्ठा करता है, वह हजारों वर्षोंके लिये भगवान् विष्णुके तपोलोकमें जाता है। सावित्री! जो सबकी भलाईके लिये पुष्पोद्यान लगाता है, वह दस हजार वर्षोंतक ध्रुवलोकमें स्थान पाता है। पतिव्रते! विष्णुके उद्देश्यसे विमानका दान करनेवाला मानव एक मन्वन्तरतक विष्णुलोकमें वास करता है। यदि वह विमान विशाल और चित्रोंसे सुसज्जित किया गया हो तो उसके दानसे चौगुना फल प्राप्त होता है। शिबिका-दानमें उससे आधा फल होना निश्चित है। जो पुरुष भक्तिपूर्वक भगवान् श्रीहरिके उद्देश्यसे मन्दिराकार झूला दान करता है, वह अति दीर्घकालतक भगवान् विष्णुके लोकमें वास करता है। पतिव्रते! जो सड़क बनवाता और उसके किनारे लोगोंके ठहरनेके लिये महल (धर्मशाला) बनवा देता है, वह सत्पुरुष हजारों वर्षोंतक इन्द्रके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। ब्राह्मणों अथवा देवताओंको दिया हुआ दान समान फल प्रदान करता है। जो पूर्वजन्ममें दिया गया है, वही जन्मान्तरमें प्राप्त होता है। जो नहीं दिया गया है, वह कैसे प्राप्त हो सकता है? पुण्यवान् पुरुष स्वर्गीय सुख भोगकर भारतवर्षमें जन्म पाता है। उसे क्रमशः उत्तम-से-उत्तम ब्राह्मण-कुलमें जन्म लेनेका सौभाग्य प्राप्त होता है। पुण्यवान् ब्राह्मण स्वर्गसुख भोगनेके अनन्तर पुनः ब्राह्मण ही होता है। यही नियम क्षत्रिय आदिके लिये भी है। क्षत्रिय अथवा वैश्य तपस्याके प्रभावसे ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है—ऐसी बात श्रुतिमें सुनी जाती है। धर्मरहित ब्राह्मण नाना योनियोंमें भटकते हैं और कर्मभोगके पश्चात् फिर ब्राह्मणकुलमें ही जन्म पाते हैं। कितना ही काल क्यों न बीत जाय, बिना भोग किये कर्म क्षीण नहीं हो सकते। अपने किये हुए शुभ और अशुभ कर्मोंका फल प्राणियोंको अवश्य भोगना पड़ता है। देवता और तीर्थकी सहायता तथा कायव्यूहसे प्राणी शुद्ध हो जाता है।

साध्वि! ये कुछ बातें तो तुम्हें बतला दीं, अब आगे और क्या सुनना चाहती हो?

(अध्याय २६)

१-चार हाथकी लंबाईको धनुषका प्रमाण कहते हैं।

सावित्री-धर्मराजके प्रश्नोत्तर तथा सावित्रीके द्वारा धर्मराजको प्रणाम-निवेदन

सावित्रीने कहा—धर्मराज! जिस कर्मके प्रभावसे पुण्यात्मा मनुष्य स्वर्ग अथवा अन्य लोकमें जाते हैं, वह मुझे बतानेकी कृपा करें।

धर्मराज बोले—पतिव्रते! ब्राह्मणको अन्न दान करनेवाला पुरुष इन्द्रलोकमें जाता है और दान किये हुए अन्नमें जितने दाने होते हैं उतने वर्षोंतक वह वहाँ निवास पाता है। अन्नदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। इसमें न कभी पात्रकी परीक्षाकी आवश्यकता होती है और न समयकी*। साध्वि! यदि ब्राह्मणों अथवा देवताओंको आसन दान किया जाय तो हजारों वर्षोंतक अग्निदेवके लोकमें रहनेकी सुविधा प्राप्त हो जाती है। जो पुरुष ब्राह्मणको दूध देनेवाली गौ दान करता है, वह गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठित रहता है। यह गोदान साधारण दिनोंकी अपेक्षा पर्वके समय चौगुना, तीर्थमें सौगुना और नारायणक्षेत्रमें कोटिगुना फल देनेवाला होता है। जो मानव भारतवर्षमें रहकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको गौ प्रदान करता है, वह हजारों वर्षोंतक चन्द्रलोकमें रहनेका अधिकारी बन जाता है। दुग्धवती गौ ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष उसके रोमपर्यन्त वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो ब्राह्मणको वस्त्रसहित शालग्राम-शिलाका दान करता है, वह चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालतक वैकुण्ठमें सम्मानपूर्वक रहता है। ब्राह्मणको सुन्दर स्वच्छ छत्र दान करनेवाला व्यक्ति हजारों वर्षोंतक वरुणके लोकमें आनन्द करता है। साध्वि! जो ब्राह्मणको दो पादुकाएँ प्रदान करता है, उसे दस हजार वर्षतक वायुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। मनोहर दिव्य शय्या ब्राह्मणको देनेसे दीर्घकालतक चन्द्रलोकमें प्रतिष्ठा होती है। जो देवताओं अथवा ब्राह्मणोंको दीप-दान करता है, वह ब्रह्मलोकमें वास करता है। उस पुण्यसे उसके नेत्रोंमें ज्योति बनी रहती है तथा वह यमलोकमें नहीं जाता। भारतवर्षमें जो मनुष्य ब्राह्मणको हाथी दान करता है, वह इन्द्रकी आयुपर्यन्त उनके आधे आसनपर विराजमान होता है। ब्राह्मणको घोड़ा देनेवाला भारतवासी मनुष्य वरुणलोकमें आनन्द करता है। ब्राह्मणको उत्तम शिबिका—पालकी प्रदान करनेवाला विष्णुलोकमें जाता है। जो ब्राह्मणको पंखा तथा सफेद चँवर अर्पण करता है, वह वायुलोकमें सम्मान पाता है। जो भारतवर्षमें ब्राह्मणको धानका पर्वत देता है, वह धानके दानोंके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठित होता है। दाता और प्रतिगृहीता दोनों ही वैकुण्ठलोकमें चले जाते हैं।

जो भारतवर्षमें निरन्तर भगवान् श्रीहरिके नामका कीर्तन करता है, उस चिरजीवी मनुष्यको देखते ही मृत्यु भाग जाती है। भारतवर्षमें जो विद्वान् मनुष्य पूर्णिमाको रातभर दोलोत्सव मनानेका प्रबन्ध करता है, वह जीवन्मुक्त है। इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वह भगवान् विष्णुके धामको प्राप्त होता है। उत्तराफाल्गुनीमें उत्सव मनानेसे इससे दुगुना फल मिलता है। जो भारतवर्षमें ब्राह्मणको तिलदान करता है, वह तिलके बराबर वर्षोंतक विष्णुधाममें सम्मान पाता है। उसके बाद उत्तम योनिमें जन्म पाकर चिरजीवी हो सुख भोगता है। ताँबेके पात्रमें तिल रखकर दान करनेसे दूना फल मिलता है। जो मनुष्य ब्राह्मणको फलयुक्त वृक्ष प्रदान करता है, वह फलके बराबर वर्षोंतक इन्द्रलोकमें सम्मान पाता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह सुयोग्य पुत्र प्राप्त करता है। फलवाले वृक्षोंके दानकी महिमा इससे हजारगुना अधिक बतायी

*अन्नदानात् परं दानं न भूतं न भविष्यति। नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥

(प्रकृतिखण्ड २७। ३)

गयी है। अथवा ब्राह्मणको केवल फलका भी दान करनेवाला पुरुष दीर्घकालतक स्वर्गमें वास करके पुनः भारतवर्षमें जन्म पाता है।

भारतवर्षमें रहनेवाला जो पुरुष अनेक द्रव्योंसे सम्पन्न तथा भाँति-भाँतिके धान्योंसे भरे-पूरे विशाल भवन ब्राह्मणको दान करता है, वह उसके फलस्वरूप दीर्घकालतक कुबेरके लोकमें वास पाता है। तत्पश्चात् उत्तम योनिमें जन्म पाकर वह महान् धनवान् होता है। साध्वि! हरी-भरी खेतीसे युक्त सुन्दर भूमि भक्तिपूर्वक ब्राह्मणको अर्पण करनेवाला पुरुष निश्चयपूर्वक वैकुण्ठधाममें प्रतिष्ठित होता है। जो मानव उत्तम गोशाला तथा गाँव ब्राह्मणको दान करता है, उसकी वैकुण्ठलोकमें प्रतिष्ठा होती है। फिर, जहाँकी उत्तम प्रजाएँ हों, जहाँकी भूमि पकी हुई खेतियोंसे लहलहा रही हो, अनेक प्रकारकी पुष्करिणियोंसे संयुक्त हो तथा फलवाले वृक्ष और लताएँ जिसकी शोभा बढ़ा रही हों, ऐसा श्रेष्ठ नगर जो पुरुष भारतवर्षमें ब्राह्मणको दान करता है, वह बहुत लंबे समयपर्यन्त वैकुण्ठधाममें सुप्रतिष्ठित होता है। फिर भारतवर्षमें उत्तम जन्म पाकर राजेश्वर होता है। उसे लाखों नगरोंका प्रभुत्व प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं है। निश्चितरूपसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य भूमण्डलपर उसके पास विराजमान रहते हैं।

अत्यन्त उत्तम अथवा मध्यम श्रेणीका भी नगर प्रजाओंसे सम्पन्न हो, वापी, तड़ाग तथा भाँति-भाँतिके वृक्ष जिसकी शोभा बढ़ाते हों, ऐसे सौ नगर ब्राह्मणको दान करनेवाला पुण्यात्मा वैकुण्ठलोकमें सुप्रतिष्ठित होता है। जैसे इन्द्र सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न होकर स्वर्गलोकमें शोभा पाते हैं, वैसे ही भूमण्डलपर उस पुरुषकी शोभा होती है। दीर्घ कालतक पृथ्वी उसका साथ नहीं छोड़ती। वह महान् सम्राट् होता है। अपना सम्पूर्ण अधिकार ब्राह्मणको देनेवाला पुरुष चौगुने फलका भागी होता है; इसमें संशय नहीं है। पतिव्रते! जो पुरुष ब्राह्मणको जम्बूद्वीपका दान करता है, उसे निश्चितरूपसे सौगुने फल प्राप्त होते हैं। जो सातों द्वीपोंकी पृथ्वीका दान करनेवाले, सम्पूर्ण तीर्थोंमें निवास करनेवाले, समस्त तपस्याओंमें संलग्न, सम्पूर्ण उपवास-व्रतके पालक, सर्वस्व दान करनेवाले तथा सम्पूर्ण सिद्धियोंके पारङ्गत तथा श्रीहरिके भक्त हैं, उन्हें पुनः जगत्में जन्म धारण करना नहीं पड़ता। उनके सामने असंख्य ब्रह्माओंका पतन हो जाता है, परंतु वे श्रीहरिके गोलोक या वैकुण्ठधाममें निवास करते रहते हैं। विष्णु-मन्त्रकी उपासना करनेवाले पुरुष अपने मानवशरीरका त्याग करनेके पश्चात् जन्म, मृत्यु एवं जरासे रहित दिव्य रूप धारण करके श्रीहरिका सारूप्य पाकर उनकी सेवामें संलग्न हो जाते हैं। देवता, सिद्ध तथा अखिल विश्व—ये सब-के-सब समयानुसार नष्ट हो जाते हैं, किंतु श्रीकृष्णभक्तोंका कभी नाश नहीं होता। जन्म, मृत्यु और वृद्धावस्था उनके निकट नहीं आ सकती।

जो पुरुष कार्तिकमासमें श्रीहरिको तुलसी अर्पण करता है, वह पत्र-संख्याके बराबर युगोंतक भगवान्‌के धाममें विराजमान होता है। फिर उत्तम कुलमें उसका जन्म होता और निश्चितरूपसे भगवान्‌के प्रति उसके मनमें भक्ति उत्पन्न होती है, वह भारतमें सुखी एवं चिरजीवी होता है। जो कार्तिकमें श्रीहरिको घीका दीप देता है, वह जितने पल दीपक जलता है, उतने वर्षोंतक हरिधाममें आनन्द भोगता है। फिर अपनी योनिमें आकर विष्णुभक्ति पाता है; महाधनवान् नेत्रकी ज्योतिसे युक्त तथा दीप्तिमान् होता है। जो पुरुष माघमें अरुणोदयके समय प्रयागकी गङ्गामें स्नान करता है, उसे दीर्घकालतक भगवान् श्रीहरिके मन्दिरमें आनन्द लाभ करनेका सुअवसर मिलता है। फिर वह उत्तम योनिमें आकर भगवान् श्रीहरिकी भक्ति एवं मन्त्र पाता है; भारतमें

जितेन्द्रियशिरोमणि होता है। पुनः यथासमय मानव-शरीरको त्यागकर 'भगवद्धाम' में जाता है। वहाँसे पुनः पृथ्वीतलपर आनेकी स्थिति उसके सामने नहीं आती। भगवान्‌का सारूप्य प्राप्तकर वह उन्हींकी सेवामें सदा लगा रहता है। गङ्गामें सर्वदा स्नान करनेवाला पुरुष सूर्यकी भाँति भूमण्डलपर पवित्र माना जाता है। उसे पद-पदपर अश्वमेध-यज्ञका फल प्राप्त होता है, यह निश्चित है। उसकी चरण-रजसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। वह वैकुण्ठलोकमें सुखपूर्वक निवास करता है। उस तेजस्वी पुरुषको जीवन्मुक्त कहना चाहिये। सम्पूर्ण तपस्वी उसका आदर करते हैं। जो पुरुष मीन और कर्कके मध्यवर्तीकालमें भारतवर्षमें सुवासित जलका दान करता है, वह वैकुण्ठमें आनन्द भोगता रहता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म पाकर रूपवान्, सुखी, शिवभक्त, तेजस्वी तथा वेद और वेदाङ्गका पारगामी विद्वान् होता है। वैशाखमासमें ब्राह्मणको सत्तू दान करनेवाला पुरुष सत्तूकणके बराबर वर्षोंतक विष्णुमन्दिरमें प्रतिष्ठित होता है। भारतवर्षमें रहनेवाला जो प्राणी श्रीकृष्णजन्माष्टमीका व्रत करता है, वह सौ जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है। इसमें संशय नहीं है। वह दीर्घकालतक वैकुण्ठलोकमें आनन्द भोगता है। फिर उत्तम योनिमें जन्म लेनेपर उसे भगवान् श्रीकृष्णके प्रति भक्ति उत्पन्न हो जाती है—यह निश्चित है। इस भारतवर्षमें ही शिवरात्रिका व्रत करनेवाला पुरुष दीर्घकालतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित होता है। जो शिवरात्रिके दिन भगवान् शंकरको बिल्वपत्र चढ़ाता है, वह पत्र-संख्याके बराबर युगोंतक कैलासमें सुखपूर्वक वास करता है। पुनः श्रेष्ठ योनिमें जन्म लेकर भगवान् शिवका परम भक्त होता है। विद्या, पुत्र, सम्पत्ति, प्रजा और भूमि—ये सभी उसके लिये सुलभ रहते हैं।

जो व्रती पुरुष चैत्र अथवा माघमासमें शंकरकी पूजा करता है तथा बेंत लेकर उनके सम्मुख रात-दिन भक्तिपूर्वक नृत्य करनेमें तत्पर रहता है, वह चाहे एक मास, आधा मास, दस दिन, सात दिन अथवा दो ही दिन या एक ही दिन ऐसा क्यों न करे, उसे दिनकी संख्याके बराबर युगोंतक भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त हो जाती है।

साध्वि! जो मनुष्य भारतमें रामनवमीका व्रत करता है, वह सात मन्वन्तरोंतक विष्णुधाममें आनन्दका अनुभव करता है, फिर अपनी योनिमें आकर रामभक्ति पाता और जितेन्द्रियशिरोमणि होता है। जो पुरुष भगवतीकी शरत्कालीन महापूजा करता है; साथ ही नृत्य, गीत तथा वाद्य आदिके द्वारा नाना प्रकारके उत्सव मनाता है, वह पुरुष भगवान् शिवके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर श्रेष्ठ योनिमें जन्म पाकर वह निर्मल बुद्धि पाता है। अतुल सम्पत्ति, पुत्र-पौत्रोंकी अभिवृद्धि, महान् प्रभाव तथा हाथी-घोड़े आदि वाहन—ये सभी उसे प्राप्त हो जाते हैं। वह राजराजेश्वर भी होता है। इसमें कोई संशय नहीं है। जो पुरुष पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें रहकर भाद्रपदमासकी शुक्लाष्टमीके अवसरपर एक पक्षतक नित्य भक्ति-भावसे महालक्ष्मीकी उपासना करता है, सोलह प्रकारके उत्तम उपचारोंसे भलीभाँति पूजा करनेमें संलग्न रहता है, वह वैकुण्ठधाममें रहनेका अधिकारी होता है।

भारतवर्षमें कार्तिककी पूर्णिमाके अवसरपर सैकड़ों गोप एवं गोपियोंको साथ लेकर रासमण्डल-सम्बन्धी उत्सव मनानेकी बड़ी महिमा है। उस दिन पाषाणमयी प्रतिमामें सोलह प्रकारके उपचारोंद्वारा श्रीराधा-कृष्णकी पूजा करे। इस पुण्यमय कार्यको सम्पन्न करनेवाला पुरुष गोलोकमें वास करता है और भगवान् श्रीकृष्णका परम भक्त बनता है। उसकी भक्ति क्रमशः वृद्धिको प्राप्त होती है। वह सदा भगवान् श्रीहरिका मन्त्र जपता है। वहाँ

भगवान् श्रीकृष्णके समान रूप प्राप्त करके उनका प्रमुख पार्षद होता है। जरा और मृत्युको जीतनेवाले उस पुरुषका पुनः वहाँसे पतन नहीं होता।

जो पुरुष शुक्ल अथवा कृष्ण-पक्षकी एकादशीका व्रत करता है, उसे वैकुण्ठमें रहनेकी सुविधा प्राप्त होती है। फिर भारतवर्षमें आकर वह भगवान् श्रीकृष्णका अनन्य उपासक होता है। क्रमशः भगवान् श्रीहरिके प्रति उसकी भक्ति सुदृढ़ होती जाती है। शरीर त्यागनेके बाद पुनः गोलोकमें जाकर वह भगवान् श्रीकृष्णका सारूप्य प्राप्त करके उनका पार्षद बन जाता है। पुनः उसका संसारमें आना नहीं होता। जो पुरुष भाद्रपदमासकी शुक्ल द्वादशी तिथिके दिन इन्द्रकी पूजा करता है, वह सम्मानित होता है। जो प्राणी भारतवर्षमें रहकर रविवार, संक्रान्ति अथवा शुक्लपक्षकी सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यकी पूजा करके हविष्यान्न भोजन करता है, वह सूर्यलोकमें विराजमान होता है। फिर भारतवर्षमें जन्म पाकर आरोग्यवान् और धनाढ्य पुरुष होता है। ज्येष्ठ महीनेकी कृष्ण-चतुर्दशीके दिन जो व्यक्ति भगवती सावित्रीकी पूजा करता है, वह ब्रह्माके लोकमें प्रतिष्ठित होता है। फिर वह पृथ्वीपर आकर श्रीमान् एवं अतुल पराक्रमी पुरुष होता है। साथ ही वह चिरंजीवी, ज्ञानी और वैभव-सम्पन्न होता है। जो मानव माघमासके शुक्लपक्षकी पञ्चमी तिथिके दिन संयमपूर्वक उत्तम भक्तिके साथ षोडशोपचारसे भगवती सरस्वतीकी अर्चना करता है, वह वैकुण्ठधाममें स्थान पाता है। जो भारतवासी व्यक्ति जीवनभर भक्तिके साथ नित्यप्रति ब्राह्मणको गौ और सुवर्ण आदि प्रदान करता है, वह वैकुण्ठमें सुख भोगता है। भारतवर्षमें जो प्राणी ब्राह्मणोंको मिष्टान्न भोजन कराता है, वह ब्राह्मणकी रोमसंख्याके बराबर वर्षोंतक विष्णुलोकमें प्रतिष्ठा प्राप्त करता है। जो भारतवासी व्यक्ति भगवान् श्रीहरिके नामका स्वयं कीर्तन करता है अथवा दूसरेको कीर्तन करनेके लिये उत्साहित करता है, वह नाम-संख्याके बराबर युगोंतक वैकुण्ठमें विराजमान होता है। यदि नारायणक्षेत्रमें नामोच्चारण किया जाय तो करोड़ोंगुना अधिक फल मिलता है। जो पुरुष नारायणक्षेत्रमें भगवान् श्रीहरिके नामका एक करोड़ जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे छूटकर जीवन्मुक्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है। वह पुनः जन्म न पाकर विष्णुलोकमें विराजमान होता है*। उसे भगवान्‌का सारूप्य प्राप्त हो जाता है। वहाँसे वह फिर गिर नहीं सकता।

जो पुरुष प्रतिदिन पार्थिव मूर्ति बनाकर शिवलिङ्गकी अर्चा करता है और जीवनभर इस नियमका पालन करता रहता है, वह भगवान् शिवके धाममें जाता है और लंबे समयतक शिवलोकमें प्रतिष्ठित रहता है; तत्पश्चात् भारतवर्षमें आकर राजेन्द्रपदको सुशोभित करता है। निरन्तर शालग्रामकी पूजा करके उनका चरणोदक पान करनेवाला पुण्यात्मा पुरुष अतिदीर्घकालपर्यन्त वैकुण्ठमें विराजमान होता है। उसे दुर्लभ भक्ति सुलभ हो जाती है। संसारमें उसका पुनः आना नहीं होता। जिसके द्वारा सम्पूर्ण तप और व्रतका पालन होता है, वह पुरुष इन सत्कर्मोंके फलस्वरूप वैकुण्ठमें रहनेका अधिकार पाता है। पुनः उसे जन्म नहीं लेना पड़ता। जो सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करके पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करता है, उसे निर्वाणपद मिल जाता है। पुनः संसारमें उसकी उत्पत्ति नहीं होती। भारत-जैसे पुण्यक्षेत्रमें जो अश्वमेधयज्ञ करता है, वह दीर्घकालतक

*नाम्नां कोटिं हरेर्यो हि क्षेत्रे नारायणे जपेत्॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो जीवन्मुक्तो भवेद्ध्रुवम्। लभते न पुनर्जन्म वैकुण्ठे स महीयते॥
(प्रकृतिखण्ड २७। ११०-१११)

इन्द्रके आधे आसनपर विराजमान रहता है। राजसूययज्ञ करनेसे मनुष्यको इससे चौगुना फल मिलता है।

सुन्दरि! सम्पूर्ण यज्ञोंसे भगवान् विष्णुका यज्ञ श्रेष्ठ कहा गया है। ब्रह्माने पूर्वकालमें बड़े समारोहके साथ इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। पतिव्रते! उसी यज्ञमें दक्ष प्रजापति और शंकरमें कलह मच गया था। ब्राह्मणोंने क्रोधमें आकर नन्दीको शाप दिया था और नन्दीने ब्राह्मणोंको। यही कारण है कि भगवान् शंकरने दक्षके यज्ञको नष्ट कर डाला। पूर्वकालमें दक्ष, धर्म, कश्यप, शेषनाग, कर्दममुनि, स्वायम्भुवमनु, उनके पुत्र प्रियव्रत, शिव, सनत्कुमार, कपिल तथा ध्रुवने विष्णुयज्ञ किया था। उसके अनुष्ठानसे हजारों राजसूययज्ञोंका फल निश्चितरूपसे मिल जाता है। वह पुरुष अवश्य ही अनेक कल्पोंतक जीवन धारण करनेवाला तथा जीवन्मुक्त होता है।

भामिनि! जिस प्रकार देवताओंमें विष्णु, वैष्णवपुरुषोंमें शिव, शास्त्रोंमें वेद, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें गङ्गा, पुण्यात्मा पुरुषोंमें वैष्णव, व्रतोंमें एकादशी, पुष्पोंमें तुलसी, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, पक्षियोंमें गरुड, स्त्रियोंमें भगवती मूलप्रकृति राधा, आधारोंमें वसुन्धरा, चञ्चल स्वभाववाली इन्द्रियोंमें मन, प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, प्रजेश्वरोंमें प्रजापति, वनोंमें वृन्दावन, वर्षोंमें भारतवर्ष, श्रीमानोंमें लक्ष्मी, विद्वानोंमें सरस्वती, पतिव्रताओंमें भगवती दुर्गा और सौभाग्यवती श्रीकृष्णपत्नियोंमें श्रीराधा सर्वोपरि मानी जाती हैं; उसी प्रकार सम्पूर्ण यज्ञोंमें विष्णुयज्ञ श्रेष्ठ माना जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंका स्नान, अखिल यज्ञोंकी दीक्षा तथा व्रतों एवं तपस्याओं और चारों वेदोंके पाठका तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका फल अन्तमें यही है कि भगवान् श्रीकृष्णकी मुक्तिदायिनी सेवा सुलभ हो। पुराणों, वेदों और इतिहासमें सर्वत्र श्रीकृष्णके चरण-कमलोंकी अर्चनाको ही सारभूत माना गया है। भगवान्‌के स्वरूपका वर्णन, उनका ध्यान, उनके नाम और गुणोंका कीर्तन, स्तोत्रोंका पाठ, नमस्कार, जप, उनका चरणोदक और नैवेद्य ग्रहण करना—यह नित्यका परम कर्तव्य है। साध्वि! इसे सभी चाहते हैं और सर्वसम्मतिसे यही सिद्ध भी है।

वत्से! अब तुम प्रकृतिसे पर तथा प्राकृत गुणोंसे रहित परब्रह्म श्रीकृष्णकी निरन्तर उपासना करो। मैं तुम्हारे पतिदेवको लौटा देता हूँ। इन्हें लो और सुखपूर्वक अपने घरको जाओ। मनुष्योंका यह मङ्गलमय कर्म-विपाक मैंने तुमको सुना दिया। यह प्रसङ्ग सर्वेप्सित, सर्वसम्मत तथा तत्त्वज्ञान प्रदान करनेवाला है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! धर्मराजके मुखसे उपर्युक्त वर्णन सुनकर सावित्रीकी आँखोंमें आनन्दके आँसू छलक पड़े। उसका शरीर पुलकायमान हो गया। उसने पुनः धर्मराजसे कहा।

सावित्री बोली—धर्मराज! वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ प्रभो! मैं किस विधिसे प्रकृतिसे भी पर भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना करूँ, यह बताइये। भगवन्! मैं आपके द्वारा मनुष्योंके मनोहर शुभकर्मका विपाक सुन चुकी। अब आप मुझे अशुभकर्म-विपाककी व्याख्या सुनानेकी कृपा करें।

ब्रह्मन्! सती सावित्री इस प्रकार कहकर फिर भक्तिसे अत्यन्त नम्र हो वेदोक्त स्तुतिका पाठ करके धर्मराजकी स्तुति करने लगी।

सावित्रीने कहा—प्राचीनकालकी बात है, महाभाग सूर्यने पुष्करमें तपस्याके द्वारा धर्मकी आराधना की। तब धर्मके अंशभूत जिन्हें पुत्ररूपमें प्राप्त किया, उन भगवान् धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ। जो सबके साक्षी हैं, जिनकी सम्पूर्ण भूतोंमें समता है, अतएव जिनका नाम शमन है, उन भगवान् शमनको मैं प्रणाम करती हूँ। जो कर्मानुरूप कालके सहयोगसे विश्वके सम्पूर्ण

प्राणियोंका अन्त करते हैं, उन भगवान् कृतान्तको मैं प्रणाम करती हूँ। जो पापीजनोंको शुद्ध करनेके निमित्त दण्डनीयके लिये ही हाथमें दण्ड धारण करते हैं तथा जो समस्त कर्मोंके उपदेशक हैं, उन भगवान् दण्डधरको मेरा प्रणाम है। जो विश्वके सम्पूर्ण प्राणियोंका तथा उनकी समूची आयुका निरन्तर परिगणन करते रहते हैं, जिनकी गतिको रोक देना अत्यन्त कठिन है, उन भगवान् कालको मैं प्रणाम करती हूँ। जो तपस्वी, वैष्णव, धर्मात्मा, संयमी, जितेन्द्रिय और जीवोंके लिये कर्मफल देनेको उद्यत हैं, उन भगवान् यमको मैं प्रणाम करती हूँ। जो अपनी आत्मामें रमण करनेवाले, सर्वज्ञ, पुण्यात्मा पुरुषोंके मित्र तथा पापियोंके लिये कष्टप्रद हैं, उन 'पुण्यमित्र' नामसे प्रसिद्ध भगवान् धर्मराजको मैं प्रणाम करती हूँ। जिनका जन्म ब्रह्माजीके वंशमें हुआ है तथा जो ब्रह्मतेजसे सदा प्रज्वलित रहते हैं एवं जिनके द्वारा परब्रह्मका सतत ध्यान होता रहता है, उन ब्रह्मवंशी भगवान् धर्मराजको मेरा प्रणाम है।*

मुने! इस प्रकार प्रार्थना करके सावित्रीने धर्मराजको प्रणाम किया। तब धर्मराजने सावित्रीको विष्णु-भजन तथा कर्मके विपाकका प्रसङ्ग सुनाया। जो मनुष्य प्रातः उठकर निरन्तर इस 'यमाष्टक' का पाठ करता है, उसे यमराजसे भय नहीं होता और उसके सारे पाप नष्ट हो जाते हैं। यदि महान् पापी व्यक्ति भी भक्तिसे सम्पन्न होकर निरन्तर इसका पाठ करता है तो यमराज अपने कायव्यूहसे निश्चित ही उसकी शुद्धि कर देते हैं। (अध्याय २७-२८)

नरककुण्डों और उनमें जानेवाले पापियों तथा पापोंका वर्णन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! रविनन्दन धर्मराजने सावित्रीको विधिपूर्वक विष्णुका महामन्त्र देकर 'अशुभकर्मका विपाक' कहना आरम्भ किया।

धर्मराजने कहा—पतिव्रते! मानव शुभकर्मके विपाकसे नरकमें नहीं जा सकता। नरकमें जानेमें कारण है—अशुभकर्मका विपाक। अतएव अब मैं अशुभकर्मका विपाक बतलाता हूँ, सुनो। नाना प्रकारके स्वर्ग हैं। प्राणी अपने-अपने कर्मोंके प्रभावसे उन स्वर्गोंमें जाते हैं। नरकोंमें जाना कोई मनुष्य नहीं चाहते, परंतु अशुभकर्म-विपाक उन्हें नरकमें जानेके लिये विवश कर देते हैं। नरकोंके नाना प्रकारके कुण्ड हैं। विभिन्न पुराणोंके भेदसे इनके नामोंके भी भेद हो गये हैं। ये सभी कुण्ड बड़े ही विस्तृत हैं। पापियोंको दुःखका भोग कराना ही इन कुण्डोंका प्रयोजन है। वत्से! ये भयंकर कुण्ड अत्यन्त भयावह तथा कुत्सित हैं। इनमें छियासी कुण्ड तो प्रसिद्ध हैं,

---

*तपसा धर्ममाराध्य पुष्करे भास्करः पुरा। धर्मांशं यं सुतं प्राप धर्मराजं नमाम्यहम्॥
समता सर्वभूतेषु यस्य सर्वस्य साक्षिणः। अतो यन्नाम शमन इति तं प्रणमाम्यहम्॥
येनान्तश्च कृतो विश्वे सर्वेषां जीविनां परम्। कर्मानुरूपकालेन तं कृतान्तं नमाम्यहम्॥
बिभर्ति दण्डं दण्डाय पापिनां शुद्धिहेतवे। नमामि तं दण्डधरं यः शास्ता सर्वकर्मणाम्॥
विश्वं यः कलयत्येव सर्वायुश्चापि सन्ततम्। अतीव दुर्निवार्यं च तं कालं प्रणमाम्यहम्॥
तपस्वी वैष्णवो धर्मी संयमी संजितेन्द्रियः। जीविनां कर्मफलदं तं यमं प्रणमाम्यहम्॥
स्वात्मारामश्च सर्वज्ञो मित्रं पुण्यकृतां भवेत्। पापिनां क्लेशदो यस्तं पुण्यमित्रं नमाम्यहम्॥
यज्जन्म ब्रह्मणो वंशे ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा। यो ध्यायति परं ब्रह्म ब्रह्मवंशं नमाम्यहम्॥
(प्रकृतिखण्ड २८। ८—१५)

नारदजीने पूछा—मुने! दक्षिणाहीन कर्मके फलको कौन भोगता है? साथ ही यज्ञपुरुषने भगवती दक्षिणाकी किस प्रकार पूजा की थी; यह भी बतलाइये।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! दक्षिणाहीन कर्ममें फल ही कैसे लग सकता है; क्योंकि फल प्रसव करनेकी योग्यता तो दक्षिणावाले कर्ममें ही है। मुने! बिना दक्षिणाका कर्म तो बलिके पेटमें चला जाता है। पूर्वसमयमें भगवान् वामन बलिके लिये आहाररूपमें इसे अर्पण कर चुके हैं। नारद! अश्रोत्रिय और श्रद्धाहीन व्यक्तिके द्वारा श्राद्धमें दी हुई वस्तुको बलि भोजनरूपसे प्राप्त करते हैं। शूद्रोंसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मणोंके पूजासम्बन्धी द्रव्य, निषिद्ध एवं आचरणहीन ब्राह्मणोंद्वारा किया हुआ पूजन तथा गुरुमें भक्ति न रखनेवाले पुरुषका कर्म—ये सब बलिके आहार हो जाते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है।

मुने! भगवती दक्षिणाके ध्यान, स्तोत्र और पूजाकी विधिके क्रम कण्वशाखामें वर्णित हैं। वह सब मैं कहता हूँ, सुनो।

यज्ञपुरुषने कहा—महाभागे! तुम पूर्वसमयमें गोलोककी एक गोपी थी। गोपियोंमें तुम्हारा प्रमुख स्थान था। राधाके समान ही तुम उनकी सखी थीं। भगवान् श्रीकृष्ण तुमसे प्रेम करते थे। कार्तिकी पूर्णिमाके अवसरपर राधा-महोत्सव मनाया जा रहा था। कुछ कार्यान्तर उपस्थित हो जानेके कारण तुम भगवान् श्रीकृष्णके दक्षिण कंधेसे प्रकट हुई थीं। अतएव तुम्हारा नाम 'दक्षिणा' पड़ गया। शोभने! तुम इससे पहले परम शीलवती होनेके कारण 'सुशीला' कहलाती थीं। तुम ऐसी सुयोग्या देवी श्रीराधाके शापसे गोलोकसे च्युत होकर दक्षिणा नामसे सम्पन्न हो मुझे सौभाग्यवश प्राप्त हुई हो। सुभगे! तुम मुझे अपना स्वामी बनानेकी कृपा करो। तुम्हीं यज्ञशाली पुरुषोंके कर्मका फल प्रदान करनेवाली आदरणीया देवी हो। तुम्हारे बिना सम्पूर्ण प्राणियोंके सभी कर्म निष्फल हो जाते हैं। तुम्हारी अनुपस्थितिमें कर्मियोंका कर्म भी शोभा नहीं पाता। ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा दिक्पाल प्रभृति सभी देवता तुम्हारे न रहनेसे कर्मोंका फल देनेमें असमर्थ रहते हैं। ब्रह्मा स्वयं कर्मरूप हैं। शंकरको फलरूप बतलाया गया है। मैं विष्णु स्वयं यज्ञरूपसे प्रकट हूँ। इन सबमें साररूपा तुम्हीं हो। साक्षात् परब्रह्म परमात्मा श्रीकृष्ण, जो प्राकृत गुणोंसे रहित तथा प्रकृतिसे परे हैं, समस्त फलोंके दाता हैं, परंतु वे श्रीकृष्ण भी तुम्हारे बिना कुछ करनेमें समर्थ नहीं हैं। कान्ते! सदा जन्म-जन्ममें तुम्हीं मेरी शक्ति हो। वरानने! तुम्हारे साथ रहकर ही मैं समस्त कर्मोंमें समर्थ हूँ। ऐसा कहकर यज्ञके अधिष्ठाता देवता दक्षिणाके सामने खड़े हो गये। तब कमलाकी कलास्वरूपा उस देवीने संतुष्ट होकर यज्ञपुरुषका वरण किया। यह भगवती दक्षिणाका स्तोत्र है। जो पुरुष यज्ञके अवसरपर इसका पाठ करता है, उसे सम्पूर्ण यज्ञोंके फल सुलभ हो जाते हैं, इसमें संशय नहीं। सभी प्रकारके यज्ञोंके आरम्भमें जो पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसके वे सभी यज्ञ निर्विघ्न सम्पन्न हो जाते हैं, यह ध्रुव सत्य है।

यह स्तोत्र तो कह दिया, अब ध्यान और पूजा-विधि सुनो। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि शालग्रामकी मूर्तिमें अथवा कलशपर आवाहन करके भगवती दक्षिणाकी पूजा करे। ध्यान यों करना चाहिये—'भगवती लक्ष्मीके दाहिने कंधेसे प्रकट होनेके कारण दक्षिणा नामसे विख्यात ये देवी साक्षात् कमलाकी कला हैं। सम्पूर्ण यज्ञ-यागादि कर्मोंमें अखिल कर्मोंका फल प्रदान करना इनका सहज गुण है। ये भगवान् विष्णुकी शक्तिस्वरूपा हैं। मैं इनकी आराधना करता हूँ। ऐसी शुभा, शुद्धिदा, शुद्धिरूपा एवं सुशीला नामसे प्रसिद्ध भगवती दक्षिणाकी मैं उपासना करता हूँ।' नारद! इसी मन्त्रसे ध्यान करके विद्वान् पुरुष मूलमन्त्रसे इन वरदायिनी देवीकी पूजा करे। पाद्य, अर्घ्य आदि सभी इसी वेदोक्त मन्त्रके द्वारा अर्पण करने चाहिये। मन्त्र यह है—'ॐ श्रीं क्लीं ह्रीं दक्षिणायै स्वाहा।' सुधीजनोंको चाहिये कि सर्वपूजिता इन भगवती दक्षिणाकी अर्चना भक्तिपूर्वक उत्तम विधिके साथ करें।

ब्रह्मन्! इस प्रकार भगवती दक्षिणाका उपाख्यान कह दिया। यह उपाख्यान सुख, प्रीति एवं सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाला है। जो पुरुष देवी दक्षिणाके इस चरित्रका सावधान होकर श्रवण करता है, भारतकी भूमिपर किये गये उसके कोई कर्म अङ्गहीन नहीं होते। इसके श्रवणसे पुत्रहीन पुरुष अवश्य ही गुणवान् पुत्र प्राप्त कर लेता है और जो भार्याहीन हो, उसे परम सुशीला सुन्दरी पत्नी सुलभ हो जाती है। वह पत्नी विनीत, प्रियवादिनी एवं पुत्रवती होती है। पतिव्रता, उत्तम व्रतका पालन करनेवाली, शुद्ध आचार-विचार रखनेवाली तथा श्रेष्ठ कुलकी कन्या होती है। विद्याहीन विद्या, धनहीन धन, भूमिहीन भूमि तथा प्रजाहीन मनुष्य श्रवणके प्रभावसे प्रजा प्राप्त कर लेता है। संकट, बन्धुविच्छेद, विपत्ति तथा बन्धनके कष्टमें पड़ा हुआ पुरुष एक महीनेतक इसका श्रवण करके इन सबसे छूट जाता है, इसमें कोई संशय नहीं है।

(अध्याय ४२)

देवी षष्ठीके ध्यान, पूजन, स्तोत्र तथा विशद महिमाका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! भगवती 'षष्ठी', मङ्गलचण्डिका तथा देवी मनसा—ये देवियाँ मूलप्रकृतिकी कला मानी गयी हैं। मैं अब इनके प्राकट्यका प्रसङ्ग यथार्थरूपसे सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण ये 'षष्ठी' देवी कहलाती हैं। बालकोंकी ये अधिष्ठात्री देवी हैं। इन्हें 'विष्णुमाया' और 'बालदा' भी कहा जाता है। मातृकाओंमें 'देवसेना' नामसे ये प्रसिद्ध हैं। उत्तम व्रतका पालन करनेवाली इन साध्वी देवीको स्वामी कार्तिकेयकी पत्नी होनेका सौभाग्य प्राप्त है। ये प्राणोंसे भी बढ़कर इनसे प्रेम करते हैं। बालकोंको दीर्घायु बनाना तथा उनका भरण-पोषण एवं रक्षण करना इनका स्वाभाविक गुण है। ये सिद्धियोगिनी देवी अपने योगके प्रभावसे बच्चोंके पास सदा विराजमान रहती हैं। ब्रह्मन्! इनकी पूजा-विधिके साथ ही यह एक उत्तम इतिहास सुनो। पुत्र प्रदान करनेवाला यह परम सुखदायी उपाख्यान धर्मदेवके मुखसे मैंने सुना है।

प्रियव्रत नामसे प्रसिद्ध एक राजा हो चुके हैं। उनके पिताका नाम था—स्वायम्भुव मनु। प्रियव्रत योगिराज होनेके कारण विवाह करना नहीं चाहते थे। तपस्यामें उनकी विशेष रुचि

थी। परंतु ब्रह्माजीकी आज्ञा तथा सत्प्रयत्नके प्रभावसे उन्होंने विवाह कर लिया। मुने! विवाहके बाद सुदीर्घकालतक उन्हें कोई भी संतान नहीं हो सकी। तब कश्यपजीने उनसे पुत्रेष्टि-यज्ञ कराया। राजाकी प्रेयसी भार्याका नाम मालिनी था। मुनिने उन्हें चरु प्रदान किया। चरु-भक्षण करनेके पश्चात् रानी मालिनी गर्भवती हो गयीं। तत्पश्चात् सुवर्णके समान प्रतिभावाले एक कुमारकी उत्पत्ति हुई; परंतु सम्पूर्ण अङ्गोंसे सम्पन्न वह कुमार मरा हुआ था। उसकी आँखें उलट चुकी थीं। उसे देखकर समस्त नारियाँ तथा बान्धवोंकी स्त्रियाँ भी रो पड़ीं। पुत्रके असह्य शोकके कारण माताको मूर्च्छा आ गयी।

मुने! राजा प्रियव्रत उस मृत बालकको लेकर श्मशानमें गये। उस एकान्त भूमिमें पुत्रको छातीसे चिपकाकर आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहाने लगे। इतनेमें उन्हें वहाँ एक दिव्य विमान दिखायी पड़ा। शुद्ध स्फटिकमणिके समान चमकनेवाला वह विमान अमूल्य रत्नोंसे बना था। तेजसे जगमगाते हुए उस विमानकी रेशमी वस्त्रोंसे अनुपम शोभा हो रही थी। अनेक प्रकारके अद्भुत चित्रोंसे वह विभूषित था। पुष्पोंकी मालासे वह सुसज्जित था। उसीपर बैठी हुई मनको मुग्ध करनेवाली एक परम सुन्दरी देवीको राजा प्रियव्रतने देखा। श्वेत चम्पाके फूलके समान उनका उज्ज्वल वर्ण था। सदा सुस्थिर तारुण्यसे शोभा पानेवाली वे देवी मुस्करा रही थीं। उनके मुखपर प्रसन्नता छायी थी। रत्नमय भूषण उनकी छवि बढ़ाये हुए थे। योगशास्त्रमें पारंगत वे देवी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये आतुर थीं। ऐसा जान पड़ता था मानो वे मूर्तिमती कृपा ही हों। उन्हें सामने विराजमान देखकर राजाने बालकको भूमिपर रख दिया और बड़े आदरके साथ उनकी पूजा और स्तुति की। नारद! उस समय स्कन्दकी प्रिया देवी षष्ठी अपने तेजसे देदीप्यमान थीं। उनका शान्त विग्रह ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमचमा रहा था। उन्हें प्रसन्न देखकर राजाने पूछा।

राजा प्रियव्रतने पूछा—सुशोभने! कान्ते! सुव्रते! वरारोहे! तुम कौन हो, तुम्हारे पतिदेव कौन हैं और तुम किसकी कन्या हो? तुम स्त्रियोंमें धन्यवाद एवं आदरकी पात्र हो।

नारद! जगत्को मङ्गल प्रदान करनेमें प्रवीण तथा देवताओंके रणमें सहायता पहुँचानेवाली वे भगवती 'देवसेना' थीं। पूर्वसमयमें देवता दैत्योंसे ग्रस्त हो चुके थे। इन देवीने स्वयं सेना बनकर देवताओंका पक्ष ले युद्ध किया था। इनकी कृपासे देवता विजयी हो गये थे। अतएव इनका नाम 'देवसेना' पड़ गया। महाराज प्रियव्रतकी बात सुनकर ये उनसे कहने लगीं।

भगवती देवसेनाने कहा—राजन्! मैं ब्रह्माकी मानसी कन्या हूँ। जगत्पर शासन करनेवाली मुझ देवीका नाम 'देवसेना' है। विधाताने मुझे उत्पन्न करके स्वामी कार्तिकेयको सौंप दिया है। मैं सम्पूर्ण मातृकाओंमें प्रसिद्ध हूँ। स्कन्दकी पतिव्रता भार्या होनेका गौरव मुझे प्राप्त है। भगवती मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेके कारण विश्वमें देवी 'षष्ठी' नामसे मेरी प्रसिद्धि है। मेरे प्रसादसे पुत्रहीन व्यक्ति सुयोग्य पुत्र, प्रियाहीन जन प्रिया, दरिद्री धन तथा कर्मशील पुरुष कर्मोंके उत्तम फल प्राप्त कर लेते हैं। राजन्! सुख, दुःख, भय, शोक, हर्ष, मङ्गल, सम्पत्ति और विपत्ति—ये सब कर्मके अनुसार होते हैं। अपने ही कर्मके प्रभावसे पुरुष अनेक पुत्रोंका पिता होता है और कुछ लोग पुत्रहीन भी होते हैं। किसीको मरा हुआ पुत्र होता है और किसीको दीर्घजीवी—यह कर्मका ही फल है। गुणी, अङ्गहीन, अनेक पत्नियोंका स्वामी, भार्यारहित, रूपवान्, रोगी और धर्मी होनेमें मुख्य कारण अपना कर्म ही है। कर्मके अनुसार ही व्याधि होती है और पुरुष आरोग्यवान् भी हो जाता

है। अतएव राजन्! कर्म सबसे बलवान् है—यह बात श्रुतिमें कही गयी है।

मुने! इस प्रकार कहकर देवी षष्ठीने उस बालकको उठा लिया और अपने महान् ज्ञानके प्रभावसे खेल-खेलमें ही उसे पुनः जीवित कर दिया। अब राजाने देखा तो सुवर्णके समान प्रतिभावाला वह बालक हँस रहा था। अभी महाराज प्रियव्रत उस बालककी ओर देख ही रहे थे कि देवी देवसेना उस बालकको लेकर आकाशमें जानेको तैयार हो गयीं। ब्रह्मन्! यह देख राजाके कण्ठ, ओष्ठ और तालू सूख गये, उन्होंने पुनः देवीकी स्तुति की। तब संतुष्ट हुई देवीने राजासे कर्मनिर्मित वेदोक्त वचन कहा।

देवीने कहा—तुम स्वायम्भुव मनुके पुत्र हो। त्रिलोकीमें तुम्हारा शासन चलता है। तुम सर्वत्र मेरी पूजा कराओ और स्वयं भी करो। तब मैं तुम्हें कमलके समान मुखवाला यह मनोहर पुत्र प्रदान करूँगी। इसका नाम सुव्रत होगा। इसमें सभी गुण और विवेकशक्ति विद्यमान रहेंगी। यह भगवान् नारायणका कलावतार तथा प्रधान योगी होगा। इसे पूर्वजन्मकी बातें याद रहेंगी। क्षत्रियोंमें श्रेष्ठ यह बालक सौ अश्वमेध-यज्ञ करेगा। सभी इसका सम्मान करेंगे। उत्तम बलसे सम्पन्न होनेके कारण यह ऐसी शोभा पायेगा, जैसे लाखों हाथियोंमें सिंह। यह धनी, गुणी, शुद्ध, विद्वानोंका प्रेमभाजन तथा योगियों, ज्ञानियों एवं तपस्वियोंका सिद्धरूप होगा। त्रिलोकीमें इसकी कीर्ति फैल जायगी। यह सबको सब सम्पत्ति प्रदान कर सकेगा।

इस प्रकार कहनेके पश्चात् भगवती देवसेनाने उन्हें वह पुत्र दे दिया। राजा प्रियव्रतने पूजाकी सभी बातें स्वीकार कर लीं। यों भगवती देवसेनाने उन्हें उत्तम वर दे स्वर्गके लिये प्रस्थान किया। राजा भी प्रसन्नमन होकर मन्त्रियोंके साथ अपने घर लौट आये। आकर पुत्रविषयक वृत्तान्त सबसे कह सुनाया। नारद! यह प्रिय वचन सुनकर स्त्री और पुरुष सब-के-सब परम संतुष्ट हो गये। राजाने सर्वत्र पुत्र-प्राप्तिके उपलक्षमें माङ्गलिक कार्य आरम्भ करा दिया। भगवतीकी पूजा की। ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। तबसे प्रत्येक मासमें शुक्लपक्षकी षष्ठी तिथिके अवसरपर भगवती षष्ठीका महोत्सव यत्नपूर्वक मनाया जाने लगा। बालकोंके प्रसवगृहमें छठे दिन, इक्कीसवें दिन तथा अन्नप्राशनके शुभ समयपर यत्नपूर्वक देवीकी पूजा होने लगी। सर्वत्र इसका पूरा प्रचार हो गया। स्वयं राजा प्रियव्रत भी पूजा करते थे।

सुव्रत! अब भगवती देवसेनाका ध्यान, पूजन, स्तोत्र कहता हूँ, सुनो। यह प्रसङ्ग कौथुमशाखामें वर्णित है। धर्मदेवके मुखसे सुननेका मुझे अवसर मिला था। मुने! शालग्रामकी प्रतिमा, कलश अथवा वटके मूलभागमें या दीवालपर पुत्तलिका बनाकर प्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली शुद्धस्वरूपिणी इन भगवतीकी इस प्रकार पूजा करनी चाहिये। विद्वान् पुरुष इनका इस प्रकार ध्यान करे—'सुन्दर पुत्र, कल्याण तथा दया प्रदान करनेवाली ये देवी जगत्की माता हैं। श्वेत चम्पकके समान इनका

वर्ण है। रत्नमय भूषणोंसे ये अलंकृत हैं। इन परम पवित्रस्वरूपिणी भगवती देवसेनाकी मैं उपासना करता हूँ।' विद्वान् पुरुष यों ध्यान करनेके पश्चात् भगवतीको पुष्पाञ्जलि समर्पण करे। पुनः ध्यान करके मूलमन्त्रसे इन साध्वी देवीकी पूजा करनेका विधान है। पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय, गन्ध, धूप, दीप, विविध प्रकारके नैवेद्य तथा सुन्दर फलद्वारा भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। उपचार अर्पण करनेके पूर्व 'ॐ ह्रीं षष्ठीदेव्यै स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करना विहित है। पूजक पुरुषको चाहिये कि यथाशक्ति इस अष्टाक्षर महामन्त्रका जप भी करे।

तदनन्तर मनको शान्त करके भक्तिपूर्वक स्तुति करनेके पश्चात् देवीको प्रणाम करे। फल प्रदान करनेवाला यह उत्तम स्तोत्र सामवेदमें वर्णित है। जो पुरुष देवीके उपर्युक्त अष्टाक्षर महामन्त्रका एक लाख जप करता है, उसे अवश्य ही उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है, ऐसा ब्रह्माजीने कहा है। मुनिवर! अब सम्पूर्ण शुभ कामनाओंको प्रदान करनेवाला स्तोत्र सुनो। नारद! सबका मनोरथ पूर्ण करनेवाला यह स्तोत्र वेदोंमें गोप्य है।

'देवीको नमस्कार है। महादेवीको नमस्कार है। भगवती सिद्धि एवं शान्तिको नमस्कार है। शुभा, देवसेना एवं भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। वरदा, पुत्रदा, धनदा, सुखदा एवं मोक्षदा भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मूलप्रकृतिके छठे अंशसे प्रकट होनेवाली भगवती सिद्धाको नमस्कार है। माया, सिद्धयोगिनी, सारा, शारदा और परादेवी नामसे शोभा पानेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। बालकोंकी अधिष्ठात्री, कल्याण प्रदान करनेवाली, कल्याण-स्वरूपिणी एवं कर्मोंके फल प्रदान करनेवाली देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। अपने भक्तोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाली तथा सबके लिये सम्पूर्ण कार्योंमें पूजा प्राप्त करनेकी अधिकारिणी स्वामी कार्तिकेयकी प्राणप्रिया देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। मनुष्य जिनकी सदा वन्दना करते हैं तथा देवताओंकी रक्षामें जो तत्पर रहती हैं, उन शुद्धसत्त्वस्वरूपा देवी षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। हिंसा और क्रोधसे रहित भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुरेश्वरि! तुम मुझे धन दो, प्रिय पत्नी दो और पुत्र देनेकी कृपा करो। महेश्वरि! तुम मुझे सम्मान दो, विजय दो और मेरे शत्रुओंका संहार कर डालो। धन और यश प्रदान करनेवाली भगवती षष्ठीको बार-बार नमस्कार है। सुपूजिते! तुम भूमि दो, प्रजा दो, विद्या दो तथा कल्याण एवं जय प्रदान करो। तुम षष्ठीदेवीको बार-बार नमस्कार है।'

इस प्रकार स्तुति करनेके पश्चात् महाराज प्रियव्रतने षष्ठीदेवीके प्रभावसे यशस्वी पुत्र प्राप्त कर लिया। ब्रह्मन्! जो पुरुष भगवती षष्ठीके इस स्तोत्रको एक वर्षतक श्रवण करता है, वह यदि अपुत्री हो तो दीर्घजीवी सुन्दर पुत्र प्राप्त कर लेता है। जो एक वर्षतक भक्तिपूर्वक देवीकी पूजा करके इनका यह स्तोत्र सुनता है, उसके सम्पूर्ण पाप विलीन हो जाते हैं। महान् वन्ध्या भी इसके प्रसादसे संतान प्रसव करनेकी योग्यता प्राप्त कर लेती है। वह भगवती देवसेनाकी कृपासे गुणी, विद्वान्, यशस्वी, दीर्घायु एवं श्रेष्ठ पुत्रकी जननी होती है। काकवन्ध्या अथवा मृतवत्सा नारी एक वर्षतक इसका श्रवण करनेके फलस्वरूप भगवती षष्ठीके प्रभावसे पुत्रवती हो जाती है। यदि बालकको रोग हो जाय तो उसके माता-पिता एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करें तो षष्ठीदेवीकी कृपासे उस बालककी व्याधि शान्त हो जाती है। (अध्याय ४३)

भगवती मङ्गलचण्डी और मनसादेवीका उपाख्यान

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्मपुत्र नारद! आगम शास्त्रके अनुसार षष्ठीदेवीका चरित्र कह दिया। अब भगवती मङ्गलचण्डीका उपाख्यान सुनो, साथ ही उनकी पूजाका विधान भी। इसे मैंने धर्मदेवके मुखसे सुना था, वही बता रहा हूँ। यह श्रुतिसम्मत उपाख्यान सम्पूर्ण विद्वानोंको भी अभीष्ट है। 'चण्डी' शब्दका प्रयोग 'दक्षा' (चतुरा)-के अर्थमें होता है और 'मङ्गल' शब्द कल्याणका वाचक है। जो मङ्गल—कल्याण करनेमें दक्ष हो, वह 'मङ्गलचण्डिका' कही जाती है। 'दुर्गा' के अर्थमें चण्डी शब्दका प्रयोग होता है और मङ्गल शब्द भूमिपुत्र मङ्गलके अर्थमें भी आता है। अतः जो मङ्गलकी अभीष्ट देवी हैं, उन देवीको 'मङ्गलचण्डिका' कहा गया है। मनुवंशमें मङ्गल नामक एक राजा थे। सप्तद्वीपवती पृथ्वी उनके शासनमें थी। उन्होंने इन देवीको अभीष्ट देवता मानकर पूजा की थी। इसलिये भी ये 'मङ्गलचण्डी' नामसे विख्यात हुईं। जो मूलप्रकृति भगवती जगदीश्वरी 'दुर्गा' कहलाती हैं, उन्हींका यह रूपान्तर है। ये देवी कृपाकी मूर्ति धारण करके सबके सामने प्रत्यक्ष हुई हैं। स्त्रियोंकी ये इष्टदेवी हैं।

सर्वप्रथम भगवान् शंकरने इन सर्वश्रेष्ठरूपा देवीकी आराधना की। ब्रह्मन्! त्रिपुर नामक दैत्यके भयंकर वधके समयका यह प्रसङ्ग है। भगवान् शंकर बड़े संकटमें पड़ गये थे। दैत्यने रोषमें आकर उनके वाहन विमानको आकाशसे नीचे गिरा दिया था। तब ब्रह्मा और विष्णुने उन्हें प्रेरणा की। उन महानुभावोंका उपदेश मानकर शंकर भगवती दुर्गाकी स्तुति करने लगे। वे ही देवी मङ्गलचण्डी ही थीं। केवल रूप बदल लिया था। स्तुति करनेपर वे ही देवी भगवान् शंकरके सामने प्रकट हुईं और उनसे बोलीं—'प्रभो! तुम्हें भय नहीं करना चाहिये। स्वयं सर्वेश भगवान् श्रीहरि ही वृषभका रूप धारण करके तुम्हारे सामने उपस्थित होंगे। वृषध्वज! मैं युद्ध-शक्तिस्वरूपा बनकर तुम्हारा साथ दूँगी। फिर स्वयं मेरी तथा श्रीहरिकी सहायतासे तुम देवताओंको पदच्युत करनेवाले उस दानवको, जिसने घोर शत्रुता ठान रखी है, मार डालोगे।'

मुनिवर! इस प्रकार कहकर भगवती अन्तर्धान हो गयीं। उसी क्षण उन शक्तिरूपी देवीसे शंकर सम्पन्न हो गये। भगवान् श्रीहरिने एक अस्त्र दे दिया था। अब उसी अस्त्रसे त्रिपुर-वधमें उन्हें सफलता प्राप्त हो गयी। दैत्यके मारे जानेपर सम्पूर्ण देवताओं तथा महर्षियोंने भगवान् शंकरका स्तवन किया। उस समय सभी भक्तिमें सराबोर होकर अत्यन्त नम्र हो गये थे। उसी क्षण भगवान् शंकरके मस्तकपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। ब्रह्मा और विष्णुने परम संतुष्ट होकर उन्हें शुभ आशीर्वाद और सदुपदेश भी दिया। तब भगवान् शंकर सम्यक् प्रकारसे स्नान करके भक्तिके साथ भगवती मङ्गलचण्डीकी आराधना करने लगे। पाद्य, अर्घ्य, आचमन, विविध वस्त्र, पुष्प, चन्दन, भाँति-भाँतिके नैवेद्य, बलि, वस्त्र, अलंकार, माला, खीर, पिष्टक, मधु, सुधा तथा नाना प्रकारके फलोंद्वारा भक्तिपूर्वक उन्होंने देवीकी पूजा की। नाच, गान, वाद्य और नाम-कीर्तन भी कराया। तत्पश्चात् माध्यन्दिन शाखामें कहे हुए ध्यान-मन्त्रके द्वारा भगवती मङ्गलचण्डीका भक्तिपूर्वक ध्यान किया। नारद! उन्होंने मूलमन्त्रका उच्चारण करके ही भगवतीको सभी द्रव्य समर्पण किये थे। वह मन्त्र इस प्रकार है—

'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके ऐं क्रूं फट् स्वाहा।'*

---

* देवीभागवत नवम स्कन्धके ४७वें अध्यायमें भी यह मन्त्र आया है, वहाँ 'ऐं क्रूं'के स्थानमें 'हूं हूं' ऐसा पाठ है।

—इक्कीस अक्षरका यह मन्त्र सुपूजित होनेपर भक्तोंको सम्पूर्ण कामना प्रदान करनेके लिये कल्पवृक्षस्वरूप है। दस लाख जप करनेपर इस मन्त्रकी सिद्धि होती है।

ब्रह्मन्! अब ध्यान सुनो। सर्वसम्मत ध्यान वेदप्रणीत है। 'सुस्थिरयौवना भगवती मङ्गलचण्डिका सदा सोलह वर्षकी ही जान पड़ती हैं। ये सम्पूर्ण रूप-गुणसे सम्पन्न, कोमलाङ्गी एवं मनोहारिणी हैं। श्वेत चम्पाके समान इनका गौरवर्ण तथा करोड़ों चन्द्रमाओंके तुल्य इनकी मनोहर कान्ति है। ये अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण किये रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। मल्लिका-पुष्पोंसे समलंकृत केशपाश धारण करती हैं। बिम्बसदृश लाल ओठ, सुन्दर दन्त-पंक्ति तथा शरत्कालके प्रफुल्ल कमलकी भाँति शोभायमान मुखवाली मङ्गलचण्डिकाके प्रसन्न वदनारविन्दपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही है। इनके दोनों नेत्र सुन्दर खिले हुए नीलकमलके समान मनोहर जान पड़ते हैं। सबको सम्पूर्ण सम्पदा प्रदान करनेवाली ये जगदम्बा घोर संसार-सागरसे उबारनेमें जहाजका काम करती हैं। मैं सदा इनका भजन करता हूँ।' मुने! यह तो भगवती मङ्गलचण्डिकाका ध्यान हुआ। ऐसे ही स्तवन भी है, सुनो।

महादेवजीने कहा—जगन्माता भगवती मङ्गलचण्डिके! तुम सम्पूर्ण विपत्तियोंका विध्वंस करनेवाली हो एवं हर्ष तथा मङ्गल प्रदान करनेको सदा प्रस्तुत रहती हो। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। खुले हाथ हर्ष और मङ्गल देनेवाली हर्षमङ्गलचण्डिके! तुम शुभा, मङ्गलदक्षा, शुभमङ्गलचण्डिका, मङ्गला, मङ्गलार्हा तथा सर्वमङ्गलमङ्गला कहलाती हो। देवि! साधुपुरुषोंको मङ्गल प्रदान करना तुम्हारा स्वाभाविक गुण है। तुम सबके लिये मङ्गलका आश्रय हो। देवि! तुम मङ्गलग्रहकी इष्टदेवी हो। मङ्गलके दिन तुम्हारी पूजा होनी चाहिये। मनुवंशमें उत्पन्न राजा मङ्गलकी पूजनीया देवी हो। मङ्गलाधिष्ठात्री देवि! तुम मङ्गलोंके लिये भी मङ्गल हो। जगत्‌के समस्त मङ्गल तुमपर आश्रित हैं। तुम सबको मोक्षमय मङ्गल प्रदान करती हो। मङ्गलको सुपूजित होनेपर मङ्गलमय सुख प्रदान करनेवाली देवि! तुम संसारकी सारभूता मङ्गलाधारा तथा समस्त कर्मोंसे परे हो।'

इस स्तोत्रसे स्तुति करके भगवान् शंकरने देवी मङ्गलचण्डिकाकी उपासना की। वे प्रति मङ्गलवारको उनका पूजन करके चले जाते हैं। यों ये भगवती सर्वमङ्गला सर्वप्रथम भगवान् शंकरसे पूजित हुईं। उनके दूसरे उपासक मङ्गल ग्रह हैं। तीसरी बार राजा मङ्गलने तथा चौथी बार मङ्गलके दिन कुछ सुन्दरी स्त्रियोंने इन देवीकी पूजा की। पाँचवीं बार मङ्गलकी कामना रखनेवाले बहुसंख्यक मनुष्योंने मङ्गलचण्डिकाका पूजन किया। फिर तो विश्वेश शंकरसे सुपूजित ये देवी प्रत्येक विश्वमें सदा पूजित होने लगीं। मुने! इसके बाद देवता, मुनि, मनु और मानव—सभी सर्वत्र इन परमेश्वरीकी पूजा करने लगे।

जो पुरुष मनको एकाग्र करके भगवती मङ्गलचण्डिकाके इस मङ्गलमय स्तोत्रका श्रवण करता है, उसे सदा मङ्गल प्राप्त होता है। अमङ्गल उसके पास नहीं आ सकता। उसके पुत्र और पौत्रोंमें वृद्धि होती है तथा उसे प्रतिदिन मङ्गल ही दृष्टिगोचर होता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! आगमोंके अनुसार देवी षष्ठी और मङ्गलचण्डिकाका उपाख्यान कह चुका। अब मनसादेवीका चरित्र, जो धर्मके मुखसे मैं सुन चुका हूँ, तुमसे कहता हूँ, सुनो। ये भगवती कश्यपजीकी मानसी कन्या हैं तथा मनसे उद्दीप्त होती हैं, इसलिये 'मनसा' देवीके नामसे विख्यात हैं। आत्मामें रमण करनेवाली इन सिद्धयोगिनी वैष्णवीदेवीने तीन युगोंतक परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तपस्या की है।

गोपीपति परम प्रभु उन परमेश्वरने इनके वस्त्र और शरीरको जीर्ण देखकर इनका 'जरत्कारु' नाम रख दिया। साथ ही, उन कृपानिधिने कृपापूर्वक इनकी सभी अभिलाषाएँ पूर्ण कर दीं, इनकी पूजाका प्रचार किया और स्वयं भी इनकी पूजा की। स्वर्गमें, ब्रह्मलोकमें, भूमण्डलमें और पातालमें—सर्वत्र इनकी पूजा प्रचलित हुई। सम्पूर्ण जगत्‌में ये अत्यधिक गौरवर्णा, सुन्दरी और मनोहारिणी हैं; अतएव ये साध्वी देवी 'जगद्गौरी' के नामसे विख्यात होकर सम्मान प्राप्त करती हैं। भगवान् शिवसे शिक्षा प्राप्त करनेके कारण ये देवी 'शैवी' कहलाती हैं। भगवान् विष्णुकी ये अनन्य उपासिका हैं। अतएव लोग इन्हें 'वैष्णवी' कहते हैं। राजा जनमेजयके यज्ञमें इन्हींके सत्प्रयत्नसे नागोंके प्राणोंकी रक्षा हुई थी, अतः इनका नाम 'नागेश्वरी' और 'नागभगिनी' पड़ गया। विषका संहार करनेमें परम समर्थ होनेसे इनका एक नाम 'विषहरी' है। इन्हें भगवान् शंकरसे योगसिद्धि प्राप्त हुई थी। अतः ये 'सिद्धयोगिनी' कहलाने लगीं। इन्होंने शंकरसे महान् गोपनीय ज्ञान एवं मृतसंजीवनी नामक उत्तम विद्या प्राप्त की है, इस कारण विद्वान् पुरुष इन्हें 'महाज्ञानयुता' कहते हैं। ये परम तपस्विनी देवी मुनिवर आस्तीककी माता हैं। अतः ये देवी जगत्‌में सुप्रतिष्ठित होकर 'आस्तीकमाता' नामसे विख्यात हुई हैं। जगत्पूज्य योगी महात्मा मुनिवर जरत्कारुकी प्यारी पत्नी होनेके कारण ये 'जरत्कारुप्रिया' नामसे विख्यात हुईं। जरत्कारु, जगद्गौरी, मनसा, सिद्धयोगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, शैवी, नागेश्वरी, जरत्कारुप्रिया, आस्तीकमाता, विषहरी और महाज्ञानयुता—इन बारह नामोंसे विश्व इनकी पूजा करता है। जो पुरुष पूजाके समय इन बारह नामोंका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजको भी सर्पका भय नहीं हो सकता।* जिस शयनागारमें नागोंका भय हो, जिस भवनमें बहुतेरे नाग भरे हों, नागोंसे युक्त होनेके कारण जो महान् दारुण स्थान बन गया हो तथा जो नागोंसे वेष्टित हो, वहाँ भी पुरुष इस स्तोत्रका पाठ करके सर्पभयसे मुक्त हो जाता है—इसमें कोई संशय नहीं है। जो नित्य इसका पाठ करता है, उसे देखकर नाग भाग जाते हैं। दस लाख पाठ करनेसे यह स्तोत्र मनुष्योंके लिये सिद्ध हो जाता है। जिसे यह स्तोत्र सिद्ध हो गया, वह विष-भक्षण करने तथा नागोंको भूषण बनाकर नागपर सवारी करनेमें भी समर्थ हो सकता है। वह नागासन, नागतल्प तथा महान् सिद्ध हो जाता है।

मुनिवर! अब मैं देवी मनसाकी पूजाका विधान तथा सामवेदोक्त ध्यान बतलाता हूँ, सुनो। 'भगवती मनसा श्वेतचम्पक-पुष्पके समान वर्णवाली हैं। इनका विग्रह रत्नमय भूषणोंसे विभूषित है। अग्निशुद्ध वस्त्र इनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे हैं। इन्होंने सर्पोंका यज्ञोपवीत धारण कर रखा है। महान् ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण प्रसिद्ध ज्ञानियोंमें भी ये प्रमुख मानी जाती हैं। ये सिद्धपुरुषोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। सिद्धि प्रदान करनेवाली तथा सिद्धा हैं; मैं इन भगवती मनसाकी उपासना करता हूँ।' इस प्रकार ध्यान करके मूलमन्त्रसे भगवतीकी पूजा करनी चाहिये। अनेक प्रकारके नैवेद्य तथा गन्ध, पुष्प और अनुलेपनसे देवीकी पूजा होती है। सभी उपचार मूलमन्त्रको पढ़कर अर्पण करने चाहिये। मुने! इनके मूलमन्त्रका नाम है—'मूल कल्पतरु'—यह सुसिद्ध मन्त्र है। इसमें बारह

---

* जरत्कारुर्जगद्गौरी मनसा सिद्धयोगिनी। वैष्णवी नागभगिनी शैवी नागेश्वरी तथा॥
जरत्कारुप्रियाऽऽस्तीकमाता विषहरीति च। महाज्ञानयुता चैव सा देवी विश्वपूजिता॥
द्वादशैतानि नामानि पूजाकाले तु यः पठेत्। तस्य नागभयं नास्ति तस्य वंशोद्भवस्य च॥
(प्रकृतिखण्ड ४५। १५—१७)

अक्षर है। इसका वर्णन वेदमें है। यह भक्तोंके मनोरथको पूर्ण करनेवाला है। मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं मनसादेव्यै स्वाहा।' पाँच लाख मन्त्र जप करनेपर यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जिसे इस मन्त्रकी सिद्धि प्राप्त हो गयी, वह धरातलपर सिद्ध है। उसके लिये विष भी अमृतके समान हो जाता है। उस पुरुषकी धन्वन्तरिसे तुलना की जा सकती है।

ब्रह्मन्! जो पुरुष आषाढ़की संक्रान्तिके दिन 'गुडा' (कपास या सेंहुड़) नामक वृक्षकी शाखापर यत्नपूर्वक इन भगवती मनसाका आवाहन करके भक्तिभावके साथ पूजा करता है तथा मनसापञ्चमीको उन देवीके लिये बलि अर्पण करता है, वह अवश्य ही धनवान्, पुत्रवान् और कीर्तिमान् होता है। महाभाग! पूजाका विधान कह चुका। अब धर्मदेवके मुखसे जैसा कुछ सुना है, वह उपाख्यान कहता हूँ, सुनो।

प्राचीन समयकी बात है। भूमण्डलके सभी मानव नागोंके भयसे आक्रान्त हो गये थे। नाग जिन्हें काट खाते, वे जीवित नहीं बचते थे। यह देख-सुनकर कश्यपजी भी भयभीत हो गये; अतः ब्रह्माजीके अनुरोधसे उन्होंने सर्पभयनिवारक मन्त्रोंकी रचना की। ब्रह्माजीके उपदेशसे वेदबीजके अनुसार मन्त्रोंकी रचना हुई। साथ ही ब्रह्माजीने अपने मनसे उत्पन्न करके इन देवीको इस मन्त्रकी अधिष्ठात्री देवी बना दिया। तपस्या तथा मनसे प्रकट होनेके कारण ये देवी 'मनसा' नामसे विख्यात हुईं। कुमारी अवस्थामें ही ये भगवान् शंकरके धाममें चली गयीं। कैलासमें पहुँचकर इन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान् चन्द्रशेखरकी पूजा करके उनकी स्तुति की। मुनिकुमारी मनसाने देवताओंके वर्षसे हजार वर्षोंतक भगवान् शंकरकी उपासना की। तदनन्तर भगवान् आशुतोष इनपर प्रसन्न हो गये। मुने! भगवान् शंकरने प्रसन्न होकर इन्हें महान् ज्ञान प्रदान किया। सामवेदका अध्ययन कराया और भगवान् श्रीकृष्णके कल्पवृक्षरूप अष्टाक्षर-मन्त्रका उपदेश किया।

मन्त्रका रूप ऐसा है—लक्ष्मीबीज, मायाबीज और कामबीजको पूर्वमें प्रयोग करके कृष्ण शब्दके अन्तमें 'ङे' विभक्ति लगाकर नमः पद जोड़ दिया जाता है (श्रीं ह्रीं क्लीं कृष्णाय नमः)। भगवान् शंकरकी कृपासे जब मुनिकुमारी मनसाको उक्त मन्त्रके साथ त्रैलोक्यमङ्गल नामक कवच, पूजनका क्रम, सर्वमान्य स्तवन, भुवनपावन ध्यान, सर्वसम्मत वेदोक्त पुरश्चरणका नियम तथा मृत्युञ्जय-ज्ञान प्राप्त हो गया, तब वह साध्वी उनसे आज्ञा ले पुष्करक्षेत्रमें तपस्या करनेके लिये चली गयी। वहाँ जाकर उसने परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी तीन युगोंतक उपासना की। इसके बाद उसे तपस्यामें सिद्धि प्राप्त हुई। भगवान् श्रीकृष्णने सामने प्रकट होकर उसे दर्शन दिये। उस समय कृपानिधि श्रीकृष्णने उस कृशाङ्गी बालापर अपनी कृपाकी दृष्टि डाली। उन्होंने उसका दूसरोंसे पूजन कराया और स्वयं भी उसकी पूजा की; साथ ही वर दिया कि 'देवि! तुम जगत्में पूजा प्राप्त करो।' इस प्रकार कल्याणी मनसाको वर प्रदान करके भगवान् अन्तर्धान हो गये।

इस तरह इस मनसादेवीकी सर्वप्रथम भगवान् श्रीकृष्णने पूजा की। तत्पश्चात् शंकर, कश्यप, देवता, मुनि, मनु, नाग एवं मानव आदिसे त्रिलोकीमें श्रेष्ठ व्रतका पालन करनेवाली यह देवी सुपूजित हुई। फिर कश्यपजीने जरत्कारु मुनिके साथ उसका विवाह कर दिया। वे मुनि महान् योगी थे। विवाह करनेके पश्चात् तपस्या करनेमें संलग्न हो गये। वे एक दिन पुष्करक्षेत्रमें उस वटवृक्षके नीचे देवी जरत्कारुकी जाँघपर लेट गये और उन्हें नींद आ गयी। इतनेमें सायंकाल होनेको आया। सूर्यनारायण अस्ताचलको जाने लगे। देवी मनसा परम साध्वी एवं पतिव्रता थी। उसने मनमें विचार किया—'द्विजोंके लिये

नित्य सायंकाल संध्या करनेका विधान है। यदि मेरे पति सोये ही रह जाते हैं तो इन्हें पाप लग जायगा; क्योंकि ऐसा नियम है कि जो प्रातः और सायंकालकी संध्या ठीक समयपर नहीं करता, वह अपवित्र होकर पापका भागी होता है।' यों विचार करके उस परम सुन्दरी मनसाने पतिदेवको जगा दिया। मुने! मुनिवर जरत्कारु जगनेपर क्रोधसे भर गये।

मुनिने कहा—साध्वि! मैं सुखपूर्वक सो रहा था; तुमने मेरी निद्रा क्यों भङ्ग कर दी? जो स्त्री अपने स्वामीका अपकार करती है, उसके व्रत, तपस्या, उपवास और दान आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं। स्वामीका अप्रिय करनेवाली स्त्री किसी भी सत्कर्मका फल नहीं प्राप्त कर सकती। जिसने अपने पतिकी पूजा की, उससे मानो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सुपूजित हो गये। पतिव्रताओंके व्रतके लिये स्वयं भगवान् श्रीहरि पतिके रूपमें विराजमान रहते हैं। सम्पूर्ण दान, यज्ञ, तीर्थसेवन, व्रत, तप, उपवास, धर्म, सत्य और देवपूजन—ये सब-के-सब स्वामीकी सेवाकी सोलहवीं कलाकी भी तुलना नहीं कर सकते। जो स्त्री भारतवर्ष-जैसे पुण्यक्षेत्रमें पतिकी सेवा करती है, वह अपने स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिके चरणोंमें शरण पाती है। साध्वि! जो असत्कुलमें उत्पन्न स्त्री अपने स्वामीके प्रतिकूल आचरण करती तथा उसके प्रति कटु वचन बोलती है, वह कुम्भीपाक नरकमें सूर्य और चन्द्रमाकी आयुपर्यन्त वास करती है। तदनन्तर चाण्डालके घरमें उसका जन्म होता है और पति एवं पुत्रके सुखसे वह वञ्चित रहती है। यों कहकर वे चुप हो गये। तब साध्वी मनसा भयसे काँपने लगी। उसने पतिदेवसे कहा।

साध्वी मनसाने कहा—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले महाभाग! आपकी संध्योपासनाका लोप न हो जाय, इसी भयसे मैंने आपको जगा दिया है—यह मेरा दोष अवश्य है।

इस प्रकार कहकर देवी मनसा भक्तिपूर्वक अपने स्वामी जरत्कारु मुनिके चरण-कमलोंमें पड़ गयी। उस समय रोषके आवेशमें आकर मुनि सूर्यको भी शाप देनेके लिये उद्यत हो गये। नारद! उन्हें देखकर स्वयं भगवान् सूर्य संध्यादेवीको साथ लेकर वहाँ आये और भयभीत होकर विनयपूर्वक मुनिवर जरत्कारुसे सम्यक् प्रकारसे यथार्थ बात कहने लगे।

भगवान् सूर्यने कहा—भगवन्! आप परम शक्तिशाली ब्राह्मण हैं। संध्याका समय देखकर धर्मलोप हो जानेके भयसे इस साध्वीने आपको जगा दिया। मुने! विप्रवर! मैं आपकी शरणमें उपस्थित हूँ। मुझे शाप देना आपके लिये उचित नहीं है। ब्राह्मणोंका हृदय सदा नवनीतके समान कोमल होता है। ब्राह्मण चाहें तो पुनः सृष्टि कर सकते हैं; इनसे बढ़कर तेजस्वी दूसरा कोई है ही नहीं। ब्रह्मज्योति ब्राह्मणके द्वारा निरन्तर सनातन भगवान् श्रीकृष्णकी आराधना होती है।

सूर्यके उपर्युक्त वचन सुनकर विप्रवर जरत्कारु प्रसन्न हो गये। उनसे आशीर्वाद लेकर सूर्य अपने स्थानको चले गये। प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उन ब्राह्मणदेवताने देवी मनसाका त्याग कर दिया। उस समय देवीके शोककी सीमा नहीं रही। दुःखके कारण उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा था। वे रो रही थीं। उस विपत्तिके अवसरपर भयसे व्याकुल होकर उस देवीने अपने गुरुदेव शंकर, इष्टदेवता ब्रह्मा और श्रीहरि तथा जन्मदाता कश्यपजीका स्मरण किया। देवी मनसाके चिन्तन करनेपर तुरंत गोपीश भगवान् श्रीकृष्ण, शंकर, ब्रह्मा और कश्यप मुनि वहाँ आ गये। प्रकृतिसे परे निर्गुण परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण मुनिवर जरत्कारुके अभीष्ट देवता थे। उनके दर्शन पाकर परम भक्तिके साथ मुनि बार-बार प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगे। फिर भगवान् शंकर,

ब्रह्मा और कश्यपको भी नमस्कार किया। यों पूछा—'महाभाग देवताओ! आप लोगोंका यहाँ कैसे पधारना हुआ है?'

मुनिवर जरत्कारुकी बात सुनकर ब्रह्माजीने समयोचित बातें कहीं। भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलको प्रणाम करके उन्होंने मुनिको उत्तर दिया—'मुने! तुम्हारी यह धर्मपत्नी मनसा परम साध्वी एवं धर्ममें आस्था रखनेवाली है। यदि तुम इसे त्यागना चाहते हो तो पहले इसको किसी संतानकी जननी बना दो, जिससे यह अपने धर्मका पालन कर सके। संतान हो जानेके पश्चात् स्त्रीको त्यागा जा सकता है। जो पुरुष पुत्रोत्पत्ति कराये बिना ही प्रिय पत्नीका त्याग कर देता है, उसका पुण्य चलनीसे बह जानेवाले जलकी भाँति साथ छोड़ देता है।'

नारद! ब्रह्माजीकी बात सुनकर मुनिवर जरत्कारुने मन्त्र पढ़कर योगबलका सहारा ले देवी मनसाकी नाभिका स्पर्श कर दिया और उससे कहा।

मुनिवर जरत्कारुने कहा—मनसे! इस गर्भसे तुम्हें पुत्र होगा। वह पुत्र जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ, धार्मिक, ब्रह्मज्ञानी, तेजस्वी, तपस्वी, यशस्वी, गुणी, वेदवेत्ताओं, ज्ञानियों और योगियोंमें प्रमुख, विष्णुभक्त तथा अपने कुलका उद्धारक होगा। ऐसे सुयोग्य पुत्रके उत्पन्न होनेमात्रसे पितर आनन्दमें भरकर नाचने लगते हैं। जो पतिव्रताधर्मका पालन करती है, प्रिय बोलती है और सुशीला है, वह 'प्रिया' है। जो धर्ममें श्रद्धा रखती है, पुत्र उत्पन्न करती है तथा कुलकी रक्षा करती है, उसीको 'कुलीन स्त्री' कहते हैं। जो भगवान् श्रीहरिके प्रति भक्ति उत्पन्न करता एवं अभीष्ट सुख देनेमें तत्पर रहता है, वही 'बन्धु' है। यदि भगवान् श्रीहरिके मार्गका प्रदर्शक हो तो उस बन्धुको पिता भी कह सकते हैं। वही 'गर्भधारिणी स्त्री' कहलाती है, जो ज्ञानोपदेशद्वारा संतानको गर्भवाससे मुक्त कर दे। 'दयारूपा भगिनी' उसको कहते हैं, जिसकी कृपासे प्राणी यमराजके भयसे मुक्त हो जाय। भगवान् विष्णुके मन्त्रको प्रदान करनेवाला गुरु वही है, जो भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करा दे। ज्ञानदाता गुरु उसीको कहते हैं, जिसकी कृपासे भगवान् श्रीकृष्णके चिन्तनकी योग्यता प्राप्त हो जाय; क्योंकि ब्रह्मापर्यन्त चराचर सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता और नष्ट हो जाता है।

वेद अथवा यज्ञसे जो कुछ सारतत्त्व निकलता है, वह यही है कि भगवान् श्रीहरिका सेवन किया जाय। यही तत्त्वोंका भी तत्त्व है। भगवान् श्रीहरिकी उपासनाके अतिरिक्त सब कुछ केवल विडम्बनामात्र है। मैंने तुम्हें यथार्थ ज्ञानोपदेश कर दिया; क्योंकि स्वामी भी वही कहलाता है, जो ज्ञान प्रदान कर दे। ज्ञानके द्वारा बन्धनसे मुक्त करनेवाला 'स्वामी' माना जाता है और वही यदि बन्धनमें डालता है तो 'शत्रु' है। जो गुरु भगवान् श्रीहरिमें भक्ति उत्पन्न करनेवाला ज्ञान नहीं देता, उसे 'शिष्यघाती' कहते हैं; क्योंकि वह शिष्यको बन्धनमुक्त नहीं कर सका। जो जननीके गर्भमें रहनेके क्लेशसे तथा यमयातनासे मुक्त नहीं कर सकता, उसे गुरु, तात और बान्धव कैसे कहा जाय? भगवान्

श्रीकृष्णका सनातन मार्ग परमानन्द-स्वरूप है। जो निरन्तर ऐसे मार्गका प्रदर्शन नहीं कराता, वह मनुष्योंके लिये कैसा बान्धव है? अतः साध्वि! तुम निर्गुण एवं अच्युत ब्रह्म भगवान् श्रीकृष्णकी उपासना करो; इनकी उपासनासे पुरुषोंके सारे कर्ममूल कट जाते हैं। प्रिये! मैंने जो तुम्हारा त्याग कर दिया है, इस अपराधको क्षमा करो। साध्वी स्त्रियाँ क्षमापरायण होती हैं। सत्त्वगुणके प्रभावसे उनमें क्रोध नहीं रहता। देवि! मैं तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें जा रहा हूँ। तुम भी सुखपूर्वक यहाँसे जा सकती हो; क्योंकि निःस्पृह पुरुषोंके लिये एकमात्र मनोरथ यही है कि वे भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलकी उपासनामें लग जायँ।

मुनिवर! जरत्कारुका यह वचन सुनकर देवी मनसा शोकसे आतुर हो गयी। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये। उसने विनयभाव प्रदर्शित करते हुए अपने प्राणप्रिय पतिदेवसे कहा।

देवी मनसा बोली—प्रभो! मैंने आपकी निद्रा भङ्ग कर दी, यह मेरा दोष नहीं कहा जा सकता, जिससे आप मेरा त्याग कर रहे हैं। अतएव मेरी प्रार्थना है कि जहाँ मैं आपका स्मरण करूँ, वहीं आप मुझे दर्शन देनेकी कृपा कीजियेगा। पतिव्रता स्त्रियोंके लिये सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रेमका भाजन पति है। पति स्त्रियोंके लिये सम्यक् प्रकारसे प्रिय है; अतएव विद्वान् पुरुषोंने पतिको 'प्रिय' की संज्ञा दी है। जिस प्रकार एक पुत्रवालोंका पुत्रमें, वैष्णव-पुरुषोंका भगवान् श्रीहरिमें, एक नेत्रवालोंका नेत्रमें, प्यासे जनोंका जलमें, क्षुधातुरोंका अन्नमें, विद्वानोंका शास्त्रमें तथा वैश्योंका वाणिज्यमें निरन्तर मन लगा रहता है, प्रभो! वैसे ही पतिव्रता स्त्रियोंका मन सदा अपने स्वामीका किङ्कर बना रहता है। इस प्रकार कहकर मनसादेवी अपने स्वामीके चरणोंमें पड़ गयी।

मुनिवर जरत्कारु कृपाके समुद्र थे। उन्होंने कृपाके वशीभूत होकर क्षणभरके लिये उसे अपनी गोदमें ले लिया। मुनिके नेत्रोंसे जलकी ऐसी धारा गिरी कि वह साध्वी मनसा नहा उठी तथा वियोग-भयसे कातर हुई मनसाने भी अपने आँसुओंसे मुनिके वक्षःस्थलको भिगो दिया। तत्पश्चात् वे दोनों पति-पत्नी ज्ञानद्वारा शोकसे मुक्त हुए।

तदनन्तर मुनिवर जरत्कारु परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णके चरणकमलका बार-बार स्मरण करते हुए अपनी प्रिया मनसाको समझाकर तपस्या करनेके लिये चले गये। उधर देवी मनसा भी कैलासपर पहुँचकर अपने गुरु भगवान् शंकरके निवास-गृहमें चली गयी। वह शोकसे व्याकुल थी। भगवती पार्वतीने उसे भलीभाँति समझाया। भगवान् शंकरने भी उसे मङ्गलमय ज्ञान देकर ढाढ़स बँधाया। वह शिवधाममें रहने लगी। वहाँ उत्तम दिनकी मङ्गलमयी वेलामें साध्वी मनसाने पुत्र उत्पन्न किया, जो भगवान् नारायणका अंश और योगियों एवं ज्ञानियोंका भी गुरु था। वह गर्भमें था तभी भगवान् शंकरके मुखसे उसे महाज्ञानकी उपलब्धि हो चुकी थी। अतएव वह बालक योगीन्द्र तथा योगियों और ज्ञानियोंका गुरु होनेका अधिकारी बना। भगवान् शंकरने उसका जातकर्म और नामकरण आदि माङ्गलिक संस्कार कराया। भगवान् शिवने उस शिशुके कल्याणार्थ उसे वेद पढ़ाये। बहुत-से मणि, रत्न और किरीट ब्राह्मणोंको दान किये। देवी पार्वतीद्वारा लाखों गौएँ तथा भाँति-भाँतिके रत्न ब्राह्मणोंको वितरण किये गये। भगवान् शिव स्वयं उस बालकको चारों वेद और वेदाङ्ग निरन्तर पढ़ाते रहे। साथ

ही मृत्युञ्जयने श्रेष्ठ ज्ञानका भी उपदेश किया। मनसाकी अपने प्राणवल्लभ पतिमें, इष्टदेव श्रीहरिमें तथा गुरुदेव भगवान् शिवमें पूर्ण भक्ति थी; अतः 'यस्या भक्तिरास्ते तस्याः पुत्रः'—इस व्युत्पत्तिके अनुसार उस पुत्रका नाम 'आस्तीक' हुआ।

(वहाँ आये हुए) मुनिवर जरत्कारु उसी क्षण भगवान् शंकरसे आज्ञा लेकर भगवान् विष्णुकी तपस्या करनेके लिये पुष्करक्षेत्रमें चले गये थे। उन तपोधन मुनिने परमात्मा श्रीकृष्णका महामन्त्र प्राप्त करके दीर्घकालतक तप किया। फिर वे महान् योगी मुनि भगवान् शंकरको प्रणाम करनेके विचारसे कैलासपर आये। शंकरको नमस्कार करके कुछ समयके लिये वहीं रुक गये। तबतक वह बालक भी वहीं था। उदार देवी मनसा उस बालकको लेकर अपने पिता कश्यपमुनिके आश्रममें चली आयी। उस समय पुत्रवती कन्याको देखकर प्रजापति कश्यपके मनमें अपार हर्ष हुआ। मुने! उस अवसरपर प्रजापतिने ब्राह्मणोंको प्रचुर रत्न दान किये। शिशुके कल्याणार्थ असंख्य ब्राह्मणोंको भोजन कराया। परंतप! कश्यपजीकी दिति-अदिति तथा अन्य भी जितनी पत्नियाँ थीं, उनके मनमें भी बड़ी प्रसन्नता हुई। उनकी वह कन्या मनसा पुत्रके साथ सुदीर्घ कालतक उस आश्रमपर ठहरी रही। इसीके आगेका उपाख्यान कहता हूँ, सुनो।

अभिमन्युकुमार राजा परीक्षित्‌को ब्राह्मणका शाप लग गया। ब्रह्मन्! दुर्दैवकी प्रेरणासे ऐसा कर्म बन गया कि सहसा परीक्षित् शापसे ग्रस्त हो गये। शृङ्गी ऋषिने कौशिकीका जल हाथमें लेकर शाप दे दिया कि 'एक सप्ताहके बीतते ही तक्षक सर्प तुम्हें काट खायगा।' तक्षकने सातवें दिन उन्हें डँस लिया। राजा सहसा शरीर त्यागकर परलोक चले गये। जनमेजयने उन अपने पिताका दाह-संस्कार कराया। मुने! इसके बाद उन महाराज जनमेजयने सर्पसत्र आरम्भ किया। ब्रह्मतेजके कारण समूह-के-समूह सर्प प्राणोंसे हाथ धोने लगे। तक्षक भयसे घबराकर इन्द्रकी शरणमें चला गया। तब ब्राह्मणमण्डली इन्द्रसहित तक्षकको होम देनेके लिये उद्यत हो गयी। ऐसी स्थितिमें इन्द्रके साथ देवता भगवती मनसाके पास गये। उस समय इन्द्र भयसे अधीर हो उठे थे। उन्होंने भगवती मनसाकी स्तुति की। फलस्वरूप मुनिवर आस्तीक माताकी आज्ञासे राजा जनमेजयके यज्ञमें आये। उन्होंने जनमेजयसे इन्द्र और तक्षकके प्राणोंकी याचना की। ब्राह्मणोंकी आज्ञा अथवा कृपावश राजाने वर दे दिया। यज्ञकी पूर्णाहुति कर दी गयी। सुप्रसन्न राजाद्वारा ब्राह्मण यज्ञान्त-दक्षिणा पा गये। तत्पश्चात् ब्राह्मण, देवता और मुनि सभी देवी मनसाके पास गये तथा सबने पृथक्-पृथक् उस देवीकी पूजा और स्तुति की। इन्द्रने पवित्र हो श्रेष्ठ सामग्रियोंको लेकर उनके द्वारा देवी मनसाका पूजन किया। फिर वे भक्तिपूर्वक नित्य पूजा करने लगे। षोडशोपचारसे अतिशय आदर प्रकट करते हुए उन्होंने पूजा और स्तुति की। यों देवी मनसाकी अर्चना करनेके पश्चात् ब्रह्मा, विष्णु एवं शिवके आज्ञानुसार संतुष्ट होकर सभी देवता अपने स्थानोंपर चले गये।

मुने! इस प्रकारकी ये सम्पूर्ण कथाएँ कह चुका। अब आगे और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—प्रभो! देवराज इन्द्रने किस स्तोत्रसे देवी मनसाकी स्तुति की थी तथा किस विधिके क्रमसे पूजन किया था? इस प्रसङ्गको मैं सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! देवराज इन्द्रने स्नान किया। पवित्र हो आचमन करके दो नूतन वस्त्र धारण किये। देवी मनसाको रत्नमय सिंहासनपर पधराया और भक्तिपूर्वक स्वर्गगङ्गाका जल रत्नमय कलशमें लेकर वेदमन्त्रोंका उच्चारण करते हुए उससे देवीको स्नान कराया। विशुद्ध दो मनोहर अग्निशुद्ध वस्त्र पहननेके लिये अर्पण किये। देवीके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दन लगाया।

भक्तिपूर्वक पाद्य और अर्घ्यको उनके सामने निवेदन किया। उस समय देवराज इन्द्रने गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और गौरी—इन छः देवताओंका पूजन करनेके पश्चात् साध्वी मनसाकी पूजा की थी। 'ॐ ह्रीं श्रीं मनसादेव्यै स्वाहा।' इस दशाक्षर मूलमन्त्रका उच्चारण करके यथोचित रूपसे पूजनकी सभी सामग्री देवीको अर्पण की। इस तरह सोलह प्रकारकी दुर्लभ वस्तुएँ देवराज इन्द्रके द्वारा साध्वी मनसाकी सेवामें अर्पित हुईं। भगवान् विष्णुकी प्रेरणासे इन्द्र प्रसन्नतापूर्वक भक्तिसहित पूजामें लगे रहे। उस समय उन्होंने नाना प्रकारके बाजे बजवाये। देवी मनसाके ऊपर पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। तदनन्तर ब्रह्मा, विष्णु और शिवकी आज्ञासे पुलकित-शरीर होकर नेत्रोंमें अश्रु भरे हुए इन्द्रने देवी मनसाकी स्तुति की।

इन्द्र बोले—देवि! तुम साध्वी पतिव्रताओंमें परम श्रेष्ठ तथा परात्पर देवी हो। इस समय मैं तुम्हारी स्तुति करना चाहता हूँ; किंतु यह महत्त्वपूर्ण कार्य मेरी शक्तिके बाहर है। देवी प्रकृते! वेदोंमें स्तोत्रोंका लक्षण यह बताया गया है कि स्तुत्यके स्वभावका प्रतिपादन किया जाय; परंतु सुव्रते! मैं तुम्हारे स्वभावका वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ। तुम शुद्ध-सत्त्वस्वरूपा हो, तुममें कोप और हिंसाका नितान्त अभाव है। यही कारण है कि जरत्कारु मुनिके द्वारा परित्यक्त होनेपर भी तुमने उन मुनिको शाप नहीं दिया। साध्वि! मैंने माता अदितिके समान मानकर तुम्हारा पूजन किया है। तुम मेरी दयारूपिणी भगिनी और माताके समान क्षमाशील हो। सुरेश्वरि! तुमने पुत्र और स्त्रीसहित मेरे प्राणोंकी रक्षा की है, मैं तुम्हें पूजनीया बनाता हूँ। तुम्हारे प्रति मेरी प्रीति निरन्तर बढ़ रही है। जगदम्बिके! यद्यपि इस जगत्में तुम्हारी नित्य पूजा होती है, फिर भी मैं तुम्हारी पूजाका प्रचार और प्रसार कर रहा हूँ। सुरेश्वरि! जो पुरुष आषाढ़ मासकी संक्रान्तिके समय, मनसासंज्ञक पञ्चमी (नागपञ्चमी)-को अथवा आषाढ़से आश्विनतक प्रतिदिन भक्तिके साथ तुम्हारी पूजा करेंगे, उनके यहाँ पुत्र-पौत्र आदिकी और धनकी वृद्धि होगी—यह निश्चित है। साथ ही वे यशस्वी, कीर्तिमान्, विद्वान् और गुणी होंगे। जो व्यक्ति अज्ञानके कारण तुम्हारी पूजासे विमुख होकर निन्दा करेंगे, उनके यहाँ लक्ष्मी नहीं ठहरेगी और उन्हें सर्पोंसे सदा भय बना रहेगा। तुम स्वयं स्वर्गमें स्वर्गलक्ष्मी हो। वैकुण्ठमें कमलाकी कला हो। ये मुनिवर जरत्कारु भगवान् नारायणके साक्षात् अंश हैं। पिताजीने हम सबकी रक्षाके लिये ही तपस्या और तेजके प्रभावसे मनके द्वारा तुम्हारी सृष्टि की है। अतएव तुम मनसादेवी कहलाती हो। देवि! तुम सिद्धयोगिनी हो, अतः स्वतः मनसे देवन (सर्वत्र गमन) करनेकी शक्ति रखती हो; इसलिये जगत्में मनसादेवीके नामसे पूजित और वन्दित होती हो। देवता भक्तिपूर्वक निरन्तर मनसे तुम्हारी पूजा करते हैं, इसीसे विद्वान् पुरुष तुम्हें मनसादेवी कहते हैं। देवि! तुम सदा सत्त्वका सेवन करनेसे सत्त्वस्वरूपा हो। जो पुरुष जिस वस्तुका निरन्तर चिन्तन करते हैं, वे वैसी वस्तुको सौगुनी संख्यामें पा जाते हैं। मुने! इस प्रकार इन्द्र देवी मनसाकी स्तुति करके वस्त्र और आभूषणोंसे विभूषित उस बहिनको साथ ले अपने निवास-स्थानको चले गये।*

---

*पुरन्दर उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि साध्वीनां प्रवरां पराम्॥

परात्परां च परमां न हि स्तोतुं क्षमोऽधुना। स्तोत्राणां लक्षणं वेदे स्वभावाख्यानतः परम्॥

न क्षमः प्रकृतिं वक्तुं गुणानां तव सुव्रते। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं कोपहिंसाविवर्जिता॥

न च शप्तो मुनिस्तेन त्यक्तया च त्वया यतः। त्वं मया पूजिता साध्वि जननी मे यथादितिः॥

दयारूपा च भगिनी क्षमारूपा यथा प्रसूः। त्वया मे रक्षिताः प्राणाः पुत्रदाराः सुरेश्वरि॥

देवी मनसाने अपने पुत्रके साथ पिता कश्यपजीके आश्रममें दीर्घकालतक वास किया। भ्रातृवर्ग सदा उनका पूजन, अभिवादन और सम्मान करता था। ब्रह्मन्! तदनन्तर एक बार गोलोकसे सुरभी गौ आयी और उसने अपने दूधसे आदरणीया मनसाको स्नान कराकर सादर उनका पूजन किया। साथ ही, उसने सर्वदुर्लभ गोप्य ज्ञानका भी उपदेश दिया। उस समय सुरभी देवताओंसे पूजित हो स्वर्गलोकमें चली गयी।

यह स्तोत्र पुण्यबीज कहलाता है। जो पुरुष मनसादेवीकी पूजा करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशके लिये भी नागसे भय नहीं हो सकता। यदि यह स्तोत्र सिद्ध हो जाय तो पुरुषके लिये विष भी अमृत-तुल्य हो जाता है। इस स्तोत्रका पाँच लाख जप करनेपर यह सिद्ध हो जाता है। फिर मन्त्रसिद्ध पुरुष सर्पशायी तथा सर्पवाहन हो सकता है अर्थात् उसपर सर्पका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। (अध्याय ४४—४६)

आदिगौ सुरभीदेवीका उपाख्यान

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! यह सुरभीदेवी कौन थी, जो गोलोकसे आयी थी? मैं उसके जन्म और चरित्र सुनना चाहता हूँ।

भगवान् नारायण बोले—नारद! देवी सुरभी गोलोकमें प्रकट हुई। वह गौओंकी अधिष्ठात्री देवी, गौओंकी आदि, गौओंकी जननी तथा सम्पूर्ण गौओंमें प्रमुख है। मुने! मैं सबसे पहली सृष्टिका प्रसङ्ग सुना रहा हूँ, जिसके अनुसार पूर्वकालमें वृन्दावनमें उस सुरभीका ही जन्म हुआ था।

एक समयकी बात है। गोपाङ्गनाओंसे घिरे हुए राधापति भगवान् श्रीकृष्ण कौतूहलवश श्रीराधाके साथ पुण्य-वृन्दावनमें गये। वहाँ वे विहार करने लगे। उस समय कौतुकवश उन

अहं करोमि त्वां पूज्यां प्रीतिश्च वर्धते मम । नित्यं यद्यपि त्वं पूज्या भवेऽत्र जगदम्बिके ॥
तथापि तव पूजां च वर्धयामि च सर्वतः । ये त्वामाषाढसंक्रान्त्यां पूजयिष्यन्ति भक्तितः ॥
पञ्चम्यां मनसाख्यायां मासान्तं वा दिने दिने । पुत्रपौत्रादयस्तेषां वर्धन्ते च धनानि वै ॥
यशस्विनः कीर्तिमन्तो विद्यावन्तो गुणान्विताः । ये त्वां न पूजयिष्यन्ति निन्दन्त्यज्ञानतो जनाः ।
लक्ष्मीहीना भविष्यन्ति तेषां नागभयं सदा । त्वं स्वर्गलक्ष्मीः स्वर्गे च वैकुण्ठे कमलाकला ॥
नारायणांशो भगवान् जरत्कारुर्मुनीश्वरः । तपसा तेजसा त्वां च मनसा ससृजे पिता ॥
अस्माकं रक्षणायैव तेन त्वं मनसाभिधा । मनसा देवितुं शक्ता स्वात्मना सिद्धयोगिनी ॥
तेन त्वं मनसादेवी पूजिता वन्दिता भवे । ये भक्त्या मनसां देवाः पूजयन्त्यनिशं भृशम् ॥
तेन त्वां मनसादेवीं प्रवदन्ति मनीषिणः । सत्यस्वरूपा देवी त्वं शश्वत्सत्यनिषेवया ॥
यो हि यद् भावयेन्नित्यं शतं प्राप्नोति तत्समम् । इन्द्रश्च मनसां स्तुत्वा गृहीत्वा भगिनीं च ताम् ॥
प्रजगाम स्वभवनं भूषावासपरिच्छदाम् । (प्रकृतिखण्ड ४६ । १२८—१४२ १/२)

स्वेच्छामय प्रभुके मनमें सहसा दूध पीनेकी इच्छा जाग उठी। तब भगवान्‌ने अपने वामपार्श्वसे लीलापूर्वक सुरभी गौको प्रकट किया। उसके साथ बछड़ा भी था। वह दुग्धवती थी। उस सवत्सा गौको सामने देख सुदामाने एक रत्नमय पात्रमें उसका दूध दुहा। वह दूध सुधासे भी अधिक मधुर तथा जन्म और मृत्युको दूर करनेवाला था। स्वयं गोपीपति भगवान् श्रीकृष्णने उस गरम-गरम स्वादिष्ट दूधको पीया। फिर हाथसे छूटकर वह पात्र गिर पड़ा और दूध धरतीपर फैल गया। उस दूधसे वहाँ एक सरोवर बन गया। उसकी लंबाई और चौड़ाई सब ओरसे सौ-सौ योजन थी। गोलोकमें वह सरोवर 'क्षीरसरोवर' नामसे प्रसिद्ध हुआ है। गोपिकाओं और श्रीराधाके लिये वह क्रीड़ा-सरोवर बन गया। भगवान्‌की इच्छासे उस क्रीड़ावापीके घाट तत्काल अमूल्य दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित हो गये। उसी समय अकस्मात् असंख्य कामधेनु प्रकट हो गयीं। जितनी वे गौएँ थीं, उतने ही बछड़े भी उस सुरभी गौके रोमकूपसे निकल आये। फिर उन गौओंके बहुत-से पुत्र-पौत्र भी हुए, जिनकी संख्या नहीं की जा सकती। यों उस सुरभी देवीसे गौओंकी सृष्टि कही गयी, जिससे सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है।

मुने! पूर्वकालमें भगवान् श्रीकृष्णने देवी सुरभीकी पूजा की थी। तत्पश्चात् त्रिलोकीमें उस देवीकी दुर्लभ पूजाका प्रचार हो गया। दीपावलीके दूसरे दिन भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवी सुरभीकी पूजा सम्पन्न हुई थी। यह प्रसङ्ग मैं अपने पिता धर्मके मुखसे सुन चुका हूँ। महाभाग! देवी सुरभीका ध्यान, स्तोत्र, मूलमन्त्र तथा पूजाकी विधिका वेदोक्त क्रम मैं तुमसे कहता हूँ, सुनो। 'ॐ सुरभ्यै नमः' सुरभीदेवीका यह षडक्षर-मन्त्र है। एक लाख जप करनेपर मन्त्र सिद्ध होकर भक्तोंके लिये कल्पवृक्षका काम करता है। ध्यान और पूजन यजुर्वेदमें सम्यक् प्रकारसे वर्णित हैं। जो ऋद्धि, वृद्धि, मुक्ति और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली हैं; जो लक्ष्मीस्वरूपा, श्रीराधाकी सहचरी, गौओंकी अधिष्ठात्री, गौओंकी आदिजननी, पवित्ररूपा, पूजनीया, भक्तोंके अखिल मनोरथ सिद्ध करनेवाली हैं तथा जिनसे यह सारा विश्व पावन बना है, उन भगवती सुरभीकी मैं उपासना करता हूँ। कलश, गायके मस्तक, गौओंके बाँधनेके खंभे, शालग्रामकी मूर्ति, जल अथवा अग्निमें देवी सुरभीकी भावना करके द्विज इनकी पूजा करें। जो दीपमालिकाके दूसरे दिन पूर्वाह्णकालमें भक्तिपूर्वक भगवती सुरभीकी पूजा करेगा, वह जगत्‌में पूज्य हो जायगा।

एक बार वाराहकल्पमें देवी सुरभीने दूध देना बंद कर दिया। उस समय त्रिलोकीमें दूधका अभाव हो गया था। तब देवता अत्यन्त चिन्तित होकर ब्रह्मलोकमें गये और ब्रह्माजीकी स्तुति करने लगे। तदनन्तर ब्रह्माजीकी आज्ञा पाकर इन्द्रने देवी सुरभीकी स्तुति आरम्भ की।

इन्द्रने कहा—देवी एवं महादेवी सुरभीको बार-बार नमस्कार है। जगदम्बिके! तुम गौओंकी बीजस्वरूपा हो; तुम्हें नमस्कार है। तुम श्रीराधाकी प्रिय हो, तुम्हें नमस्कार है। तुम लक्ष्मीकी अंशभूता हो, तुम्हें बार-बार नमस्कार है। श्रीकृष्ण-प्रियाको नमस्कार है। गौओंकी माताको बार-बार नमस्कार है। जो सबके लिये कल्पवृक्षस्वरूपा तथा श्री, धन और वृद्धि प्रदान करनेवाली हैं, उन भगवती सुरभीको बार-बार नमस्कार है। शुभदा, प्रसन्ना और गोप्रदायिनी सुरभी देवीको बार-बार नमस्कार है। यश और कीर्ति प्रदान करनेवाली धर्मज्ञा देवीको बार-बार नमस्कार है।*

* पुरन्दर उवाच—

नमो देव्यै महादेव्यै सुरभ्यै च नमो नमः। गवां बीजस्वरूपायै नमस्ते जगदम्बिके॥

इस प्रकार स्तुति सुनते ही सनातनी जगज्जननी भगवती सुरभी संतुष्ट और प्रसन्न हो उस ब्रह्मलोकमें ही प्रकट हो गयीं। देवराज इन्द्रको परम दुर्लभ मनोवाञ्छित वर देकर वे पुनः गोलोकको चली गयीं। देवता भी अपने-अपने स्थानोंको चले गये। नारद! फिर तो सारा विश्व सहसा दूधसे परिपूर्ण हो गया। दूधसे घृत बना और घृतसे यज्ञ सम्पन्न होने लगे तथा उनसे देवता संतुष्ट हुए।

जो मानव इस महान् पवित्र स्तोत्रका भक्तिपूर्वक पाठ करेगा, वह गोधनसे सम्पन्न, प्रचुर सम्पत्तिवाला, परम यशस्वी और पुत्रवान् हो जायगा। उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करने तथा अखिल यज्ञोंमें दीक्षित होनेका फल सुलभ होगा। ऐसा पुरुष इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् श्रीकृष्णके धाममें चला जाता है। चिरकालतक वहाँ रहकर भगवान्‌की सेवा करता रहता है। नारद! उसे पुनः इस संसारमें नहीं आना पड़ता। (अध्याय ४७)

नारद-नारायण-संवादमें पार्वतीजीके पूछनेपर महादेवजीके द्वारा श्रीराधाके प्रादुर्भाव एवं महत्त्व आदिका वर्णन

नारदजी बोले— भगवान् नारायणके ध्यानमें तत्पर रहनेवाले महाभाग मुनिवर नारायण! आप नारायणके ही अंश हैं। अतः भगवन्! आप नारायणसे सम्बन्ध रखनेवाली कथा कहिये। सुरभीका उपाख्यान अत्यन्त मनोहर है, उसे मैंने सुन लिया। वह समस्त पुराणोंमें गोपनीय कहा गया है। पुराणवेत्ताओंने उसकी बड़ी प्रशंसा की है। अब मैं श्रीराधाका परम उत्तम आख्यान सुनना चाहता हूँ। उनके प्रादुर्भावके प्रसङ्ग तथा उनके ध्यान, स्तोत्र और उत्तम कवचको भी सुननेकी मेरी प्रबल इच्छा है; अतः आप इन सबका वर्णन कीजिये।

मुनिवर श्रीनारायणने कहा— नारद! पूर्वकालकी बात है, कैलास-शिखरपर सनातन भगवान् शंकर, जो सर्वस्वरूप, सबसे श्रेष्ठ, सिद्धोंके स्वामी तथा सिद्धिदाता हैं, बैठे हुए थे। मुनिलोग भी उनकी स्तुति करके उनके पास ही बैठे थे। भगवान् शिवका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला हुआ था। उनके अधरोंपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे कुमारको परमात्मा श्रीकृष्णके

रासोत्सवका सरस आख्यान सुना रहे थे। उस प्रसङ्गके श्रवणमें कुमारकी बड़ी रुचि थी। रासमण्डलका वर्णन चल रहा था। जब इस

नमो राधाप्रियायै च पद्मांशायै नमो नमः। नमः कृष्णप्रियायै च गवां मात्रे नमो नमः॥
कल्पवृक्षस्वरूपायै सर्वेषां सततं परम्। श्रीदायै धनदायै च बुद्धिदायै नमो नमः॥
शुभदायै प्रसन्नायै गोप्रदायै नमो नमः। यशोदायै कीर्तिदायै धर्मज्ञायै नमो नमः॥
(प्रकृतिखण्ड ४७। २४—२७)

आख्यानकी समाप्ति हुई और अपनी बात प्रस्तुत करनेका अवसर आया, उस समय सती-साध्वी पार्वती मन्द मुस्कानके साथ अपने प्राणवल्लभके समक्ष प्रश्न उपस्थित करनेको उद्यत हुईं। पहले तो वे डरती हुई-सी स्वामीकी स्तुति करने लगीं। फिर जब प्राणेश्वरने मधुर वचनोंद्वारा उन्हें प्रसन्न किया, तब वे देवेश्वरी महादेवी उमा महादेवजीके सामने वह अपूर्व राधिकोपाख्यान सुनानेके लिये अनुरोध करने लगीं, जो पुराणोंमें भी परम दुर्लभ है।

श्रीपार्वती बोलीं—नाथ! मैंने आपके मुखारविन्दसे पाञ्चरात्र आदि सारे उत्तमोत्तम आगम, नीतिशास्त्र, योगियोंके योगशास्त्र, सिद्धोंके सिद्धि-शास्त्र, नानाप्रकारके मनोहर तन्त्रशास्त्र, परमात्मा श्रीकृष्णके भक्तोंके भक्तिशास्त्र तथा समस्त देवियोंके चरित्रका श्रवण किया। अब मैं श्रीराधाका उत्तम आख्यान सुनना चाहती हूँ। श्रुतिमें कण्वशाखाके भीतर श्रीराधाकी प्रशंसा संक्षेपसे की गयी है, उसे मैंने आपके मुखसे सुना है; अब व्यासद्वारा वर्णित श्रीराधाकी महत्ता सुनाइये। पहले आगमाख्यानके प्रसङ्गमें आपने मेरी इस प्रार्थनाको स्वीकार किया था। ईश्वरकी वाणी कभी मिथ्या नहीं हो सकती। अतः आप श्रीराधाके प्रादुर्भाव, ध्यान, उत्तम नाम-माहात्म्य, उत्तम पूजा-विधान, चरित्र, स्तोत्र, उत्तम कवच, आराधन-विधि तथा अभीष्ट पूजा-पद्धतिका इस समय वर्णन कीजिये। भक्तवत्सल! मैं आपकी भक्त हूँ, अतः मुझे ये सब बातें अवश्य बताइये। साथ ही, इस बातपर भी प्रकाश डालिये कि आपने आगमाख्यानसे पहले ही इस प्रसङ्गका वर्णन क्यों नहीं किया था?

पार्वतीका उपर्युक्त वचन सुनकर भगवान् पञ्चमुख शिवने अपना मस्तक नीचा कर लिया। अपना सत्य भङ्ग होनेके भयसे वे मौन हो गये—चिन्तामें पड़ गये। उस समय उन्होंने अपने इष्टदेव करुणानिधान भगवान् श्रीकृष्णका ध्यानद्वारा स्मरण किया और उनकी आज्ञा पाकर वे अपनी अर्धाङ्गस्वरूपा पार्वतीसे इस प्रकार बोले—'देवि! आगमाख्यानका आरम्भ करते समय मुझे परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णने राधाख्यानके प्रसङ्गसे रोक दिया था, परंतु महेश्वरि! तुम तो मेरा आधा अङ्ग हो; अतः स्वरूपतः मुझसे भिन्न नहीं हो। इसलिये भगवान् श्रीकृष्णने इस समय मुझे यह प्रसङ्ग तुम्हें सुनानेकी आज्ञा दे दी है। सतीशिरोमणे! मेरे इष्टदेवकी वल्लभा श्रीराधाका चरित्र अत्यन्त गोपनीय, सुखद तथा श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करनेवाला है। दुर्गे! वह सब पूर्वापर श्रेष्ठ प्रसङ्ग मैं जानता हूँ। मैं जिस रहस्यको जानता हूँ, उसे ब्रह्मा तथा नागराज शेष भी नहीं जानते। सनत्कुमार, सनातन, देवता, धर्म, देवेन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र तथा सिद्धपुङ्गवोंको भी उसका ज्ञान नहीं है। सुरेश्वरि! तुम मुझसे भी बलवती हो; क्योंकि इस प्रसङ्गको न सुनानेपर अपने प्राणोंका परित्याग कर देनेको उद्यत हो गयी थीं। अतः मैं इस गोपनीय विषयको भी तुमसे कहता हूँ। दुर्गे! यह परम अद्भुत रहस्य है। मैं इसका कुछ वर्णन करता हूँ, सुनो। श्रीराधाका चरित्र अत्यन्त पुण्यदायक तथा दुर्लभ है।

एक समय रासेश्वरी श्रीराधाजी श्यामसुन्दर श्रीकृष्णसे मिलनेको उत्सुक हुईं। उस समय वे रत्नमय सिंहासनपर अमूल्य रत्नाभरणोंसे विभूषित होकर बैठी थीं। अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहा था। उनकी मनोहर अङ्गकान्ति करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंको लज्जित कर रही थी। उनकी प्रभा तपाये हुए सुवर्णके सदृश जान पड़ती थी। वे अपनी ही दीप्तिसे दमक रही थीं। शुद्धस्वरूपा श्रीराधाके अधरपर मन्द मुसकान खेल रही थी। उनकी दन्तपंक्ति बड़ी ही सुन्दर थी। उनका मुखारविन्द शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहा था। वे मालती-सुमनोंकी मालासे मण्डित रमणीय केशपाश धारण करती थीं। उनके गलेकी रत्नमयी माला

ग्रीष्म-ऋतुके सूर्यके समान दीप्तिमती थी। कण्ठमें प्रकाशित शुभ मुक्ताहार गङ्गाकी धवल धारके समान शोभा पा रहा था। रसिकशेखर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने मन्द-मन्द मुस्कराती हुई अपनी उन प्रियतमाको देखा। प्राणवल्लभापर दृष्टि पड़ते ही विश्वकान्त श्रीकृष्ण मिलनके लिये उत्सुक हो गये। परम मनोहर कान्तिवाले प्राणवल्लभको देखते ही श्रीराधा उनके सामने दौड़ी गयीं। महेश्वरि! उन्होंने अपने प्राणारामकी ओर धावन किया, इसीलिये पुराणवेत्ता महापुरुषोंने उनका 'राधा' यह सार्थक नाम निश्चित किया। राधा श्रीकृष्णकी आराधना करती हैं और श्रीकृष्ण श्रीराधाकी। वे दोनों परस्पर आराध्य और आराधक हैं। संतोंका कथन है कि उनमें सभी दृष्टियोंसे पूर्णत: समता है।* महेश्वरि! मेरे ईश्वर श्रीकृष्ण रासमें प्रियाजीके धावनकर्मका स्मरण करते हैं, इसीलिये वे उन्हें 'राधा' कहते हैं, ऐसा मेरा अनुमान है। दुर्गे! भक्त पुरुष 'रा' शब्दके उच्चारणमात्रसे परम दुर्लभ मुक्तिको पा लेता है और 'धा' शब्दके उच्चारणसे वह निश्चय ही श्रीहरिके चरणोंमें दौड़कर पहुँच जाता है। 'रा' का अर्थ है 'पाना' और 'धा' का अर्थ है 'निर्वाण' (मोक्ष)। भक्तजन उनसे निर्वाण-मुक्ति पाता है, इसलिये उन्हें 'राधा' कहा गया है। श्रीराधाके रोमकूपोंसे गोपियोंका समुदाय प्रकट हुआ है तथा श्रीकृष्णके रोमकूपोंसे सम्पूर्ण गोपोंका प्रादुर्भाव हुआ है। श्रीराधाके वामांश-भागसे महालक्ष्मीका प्राकट्य हुआ है। वे ही शस्यकी अधिष्ठात्री देवी तथा गृहलक्ष्मीके रूपमें भी आविर्भूत हुई हैं। देवी महालक्ष्मी चतुर्भुज विष्णुकी पत्नी हैं और वैकुण्ठधाममें वास करती हैं। राजाको सम्पत्ति देनेवाली राजलक्ष्मी भी उन्हींकी अंशभूता हैं। राजलक्ष्मीकी अंशभूता मर्त्यलक्ष्मी हैं, जो गृहस्थोंके घर-घरमें वास करती हैं। वे ही शस्याधिष्ठातृदेवी तथा वे ही गृहदेवी हैं। स्वयं श्रीराधा श्रीकृष्णकी प्रियतमा हैं तथा श्रीकृष्णके ही वक्ष:स्थलमें वास करती हैं। वे उन परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं।†

पार्वति! ब्रह्मासे लेकर तृण अथवा कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् मिथ्या ही है। केवल त्रिगुणातीत परब्रह्म परमात्मा श्रीराधावल्लभ श्रीकृष्ण ही परम सत्य हैं; अत: तुम उन्हींकी आराधना करो।‡ वे सबसे प्रधान, परमात्मा, परमेश्वर, सबके आदिकारण, सर्वपूज्य, निरीह तथा प्रकृतिसे परे विराजमान हैं। उनका नित्यरूप स्वेच्छामय है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही शरीर धारण करते हैं। श्रीकृष्णसे भिन्न जो दूसरे-दूसरे देवता हैं; उनका रूप प्राकृत तत्त्वोंसे ही गठित है। श्रीराधा श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। वे परम सौभाग्यशालिनी हैं। वे मूलप्रकृति परमेश्वरी श्रीराधा महाविष्णुकी जननी हैं। संत पुरुष मानिनी राधाका सदा सेवन करते हैं। उनका चरणारविन्द ब्रह्मादि देवताओंके लिये परम दुर्लभ होनेपर भी भक्तजनोंके लिये सदा सुलभ है। सुदामाके शापसे देवी श्रीराधाको गोलोकसे इस भूतलपर आना पड़ा था। उस समय वे वृषभानु गोपके घरमें अवतीर्ण हुई थीं। वहाँ उनकी माता कलावती थीं। (अध्याय ४८)

---

* राधा भजति श्रीकृष्णं स च तां च परस्परम् । उभयोः सर्वसाम्यं च सदा सन्तो वदन्ति च॥ (प्रकृतिखण्ड ४८। ३८)

† प्राणाधिष्ठातृदेवी च तस्यैव परमात्मनः। (प्रकृतिखण्ड ४८। ४७)

‡ आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं सर्वं मिथ्यैव पार्वति । भज सत्यं परं ब्रह्म राधेशं त्रिगुणात्परम्॥ (प्रकृतिखण्ड ४८। ४८)

श्रीराधा और श्रीकृष्णके चरित्र तथा श्रीराधाकी पूजा-परम्पराका अत्यन्त संक्षिप्त परिचय

श्रीमहादेवजी कहते हैं—पार्वति! एक समयकी बात है, श्रीकृष्ण विरजा नामवाली सखीके यहाँ उसके पास थे। इससे श्रीराधाजीको क्षोभ हुआ। इस कारण विरजा वहाँ नदीरूप होकर प्रवाहित हो गयी। विरजाकी सखियाँ भी छोटी-छोटी नदियाँ बनीं। पृथ्वीकी बहुत-सी नदियाँ और सातों समुद्र विरजासे ही उत्पन्न हैं। राधाने प्रणयकोपसे श्रीकृष्णके पास जाकर उनसे कुछ कठोर शब्द कहे। सुदामाने इसका विरोध किया। इसपर लीलामयी श्रीराधाने उसे असुर होनेका शाप दे दिया। सुदामाने भी लीलाक्रमसे ही श्रीराधाको मानवीरूपमें प्रकट होनेकी बात कह दी। सुदामा माता राधा तथा पिता श्रीहरिको प्रणाम करके जब जानेको उद्यत हुआ तब श्रीराधा पुत्रविरहसे कातर हो आँसू बहाने लगीं। श्रीकृष्णने उन्हें समझा-बुझाकर शान्त किया और शीघ्र उसके लौट आनेका विश्वास दिलाया। सुदामा ही तुलसीका स्वामी शङ्खचूड़ नामक असुर हुआ था, जो मेरे शूलसे विदीर्ण एवं शापमुक्त हो पुन: गोलोक चला गया। सती राधा इसी वाराहकल्पमें गोकुलमें अवतीर्ण हुई थीं। वे व्रजमें वृषभानु वैश्यकी कन्या हुईं। वे देवी अयोनिजा थीं, माताके पेटसे नहीं पैदा हुई थीं। उनकी माता कलावतीने अपने गर्भमें 'वायु' को धारण कर रखा था। उसने योगमायाकी प्रेरणासे वायुको ही जन्म दिया; परंतु वहाँ स्वेच्छासे श्रीराधा प्रकट हो गयीं। बारह वर्ष बीतनेपर उन्हें नूतन यौवनमें प्रवेश करती देख माता-पिताने 'रायाण' वैश्यके साथ उसका सम्बन्ध निश्चित कर दिया। उस समय श्रीराधा घरमें अपनी छायाको स्थापित करके स्वयं अन्तर्धान हो गयीं। उस छायाके साथ ही उक्त रायाणका विवाह हुआ।

'जगत्पति श्रीकृष्ण कंसके भयसे रक्षाके बहाने शैशवावस्थामें ही गोकुल पहुँचा दिये गये थे। वहाँ श्रीकृष्णकी माता जो यशोदा थीं, उनका सहोदर भाई 'रायाण' था। गोलोकमें तो वह श्रीकृष्णका अंशभूत गोप था, पर इस अवतारके समय भूतलपर वह श्रीकृष्णका मामा लगता था। जगत्स्रष्टा विधाताने पुण्यमय वृन्दावनमें श्रीकृष्णके साथ साक्षात् श्रीराधाका विधिपूर्वक विवाहकर्म सम्पन्न कराया था। गोपगण स्वप्नमें भी श्रीराधाके चरणारविन्दका दर्शन नहीं कर पाते थे। साक्षात् राधा श्रीकृष्णके वक्ष:स्थलमें वास करती थीं और छायाराधा रायाणके घरमें। ब्रह्माजीने पूर्वकालमें श्रीराधाके चरणारविन्दका दर्शन पानेके लिये पुष्करमें साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी; उसी तपस्याके फलस्वरूप इस समय उन्हें श्रीराधा-चरणोंका दर्शन प्राप्त हुआ था। गोकुलनाथ श्रीकृष्ण कुछ कालतक वृन्दावनमें श्रीराधाके साथ आमोद-प्रमोद करते रहे। तदनन्तर सुदामाके शापसे उनका श्रीराधाके साथ वियोग हो गया। इसी बीचमें श्रीकृष्णने पृथ्वीका भार उतारा। सौ वर्ष पूर्ण हो जानेपर तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे श्रीराधाने श्रीकृष्णका और श्रीकृष्णने श्रीराधाका दर्शन प्राप्त किया। तदनन्तर तत्त्वज्ञ श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ गोलोकधाम पधारे। कलावती (कीर्तिदा) और यशोदा भी श्रीराधाके साथ ही गोलोक चली गयीं।

प्रजापति द्रोण नन्द हुए। उनकी पत्नी धरा यशोदा हुईं। उन दोनोंने पहले की हुई तपस्याके प्रभावसे परमात्मा भगवान् श्रीकृष्णको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। महर्षि कश्यप वसुदेव हुए थे। उनकी पत्नी सती साध्वी अदिति अंशत: देवकीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। प्रत्येक कल्पमें जब भगवान् अवतार लेते हैं, देवमाता अदिति तथा देवपिता कश्यप उनके माता-पिताका स्थान ग्रहण करते हैं। श्रीराधाकी माता कलावती (कीर्तिदा)

पितरोंकी मानसी कन्या थी। गोलोकसे वसुदाम गोप ही वृषभानु होकर इस भूतलपर आये थे।

दुर्गे! इस प्रकार मैंने श्रीराधाका उत्तम उपाख्यान सुनाया। यह सम्पत्ति प्रदान करनेवाला, पापहारी तथा पुत्र और पौत्रोंकी वृद्धि करनेवाला है। श्रीकृष्ण दो रूपोंमें प्रकट हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुजरूपसे वे वैकुण्ठधाममें निवास करते हैं और स्वयं द्विभुज श्रीकृष्ण गोलोकधाममें। चतुर्भुजकी पत्नी महालक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा और तुलसी हैं। ये चारों देवियाँ चतुर्भुज नारायणदेवकी प्रिया हैं। श्रीकृष्णकी पत्नी श्रीराधा हैं, जो उनके अर्धाङ्गसे प्रकट हुई हैं। वे तेज, अवस्था, रूप तथा गुण सभी दृष्टियोंसे उनके अनुरूप हैं। विद्वान् पुरुषको पहले 'राधा' नामका उच्चारण करके पश्चात् 'कृष्ण' नामका उच्चारण करना चाहिये। इस क्रमसे उलट-फेर करनेपर वह पापका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है।

कार्तिककी पूर्णिमाको गोलोकके रासमण्डलमें श्रीकृष्णने श्रीराधाका पूजन किया और तत्सम्बन्धी महोत्सव रचाया। उत्तम रत्नोंकी गुटिकामें राधा-कवच रखकर गोपोंसहित श्रीहरिने उसे अपने कण्ठ और दाहिनी बाँहमें धारण किया। भक्तिभावसे उनका ध्यान करके स्तवन किया। फिर मधुसूदनने राधाके चबाये हुए ताम्बूलको लेकर स्वयं खाया। राधा श्रीकृष्णकी पूजनीया हैं और भगवान् श्रीकृष्ण राधाके पूजनीय हैं। वे दोनों एक-दूसरेके इष्ट देवता हैं। उनमें भेदभाव करनेवाला पुरुष नरकमें पड़ता है।* श्रीकृष्णके बाद धर्मने, ब्रह्माजीने, मैंने, अनन्तने, वासुकिने तथा सूर्य और चन्द्रमाने श्रीराधाका पूजन किया। तत्पश्चात् देवराज इन्द्र, रुद्रगण, मनु, मनुपुत्र, देवेन्द्रगण, मुनीन्द्रगण तथा सम्पूर्ण विश्वके लोगोंने श्रीराधाकी पूजा की। ये सब द्वितीय आवरणके पूजक हैं। तृतीय आवरणमें सातों द्वीपोंके सम्राट् सुयज्ञने तथा उनके पुत्र-पौत्रों एवं मित्रोंने भारतवर्षमें प्रसन्नतापूर्वक श्रीराधिकाका पूजन किया। उन महाराजको दैववश किसी ब्राह्मणने शाप दे दिया था, जिससे उनका हाथ रोगग्रस्त हो गया था। इस कारण वे मन-ही-मन बहुत दुःखी रहते थे। उनकी राज्यलक्ष्मी छिन गयी थी; परंतु श्रीराधाके वरसे उन्होंने अपना राज्य प्राप्त कर लिया। ब्रह्माजीके दिये हुए स्तोत्रसे परमेश्वरी श्रीराधाकी स्तुति करके राजाने उनके अभेद्य कवचको कण्ठ और बाँहमें धारण किया तथा पुष्करतीर्थमें सौ वर्षोंतक ध्यानपूर्वक उनकी पूजा की। अन्तमें वे महाराज रत्नमय विमानपर सवार होकर गोलोकधाममें चले गये। पार्वति! यह सारा प्रसङ्ग मैंने तुम्हें कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ४९)

राजा सुयज्ञकी यज्ञशीलता और उन्हें ब्राह्मणके शापकी प्राप्ति, ऋषियोंद्वारा ब्राह्मणको क्षमाके लिये प्रेरित करते हुए कृतघ्नोंके भेद तथा विभिन्न पापोंके फलका प्रतिपादन

पार्वतीने पूछा—प्रभो! राजा सुयज्ञ कौन थे? किस वंशमें उनका जन्म हुआ था? उन्हें ब्राह्मणका शाप कैसे प्राप्त हुआ था और किस तरह श्रीराधाजीको वे पा सके? जो सर्वात्मा श्रीकृष्णकी पत्नी हैं तथा साक्षात् श्रीकृष्णने जिनका पूजन किया है, उन्हीं परमेश्वरी श्रीराधाकी सेवाका सौभाग्य एक मल-मूत्रधारी मनुष्यको कैसे मिल सका? जिनके चरणारविन्दोंकी रजको पानेके लिये ब्रह्माजीने पूर्वकालमें पुष्करतीर्थके भीतर साठ हजार वर्षोंतक तप किया तथा जिनका

* राधा पूज्या च कृष्णस्य तत्पूज्यो भगवान् प्रभुः। परस्पराभीष्टदेवौ भेदकृन्नरकं व्रजेत्॥
(प्रकृतिखण्ड ४९। ५३)

दर्शन पाना आपके लिये भी अत्यन्त कठिन है, उन्हीं पुरातनी महालक्ष्मी श्रीराधादेवीका दर्शन राजा सुयज्ञने कैसे किया? वे मनुष्योंके दृष्टिपथमें कैसे आयीं? तीनों लोकोंके स्रष्टा ब्रह्माने राजा सुयज्ञको श्रीराधाका कवच किस प्रकार दिया? उनके ध्यान, पूजन-विधि तथा स्तोत्रका उपदेश कैसे दिया? यह सब बतानेकी कृपा कीजिये।

श्रीमहादेवजी बोले—देवि! चौदह मनुओंमें जो सबसे प्रथम हैं, उन्हें स्वायम्भुव मनु कहते हैं। वे ब्रह्माजीके पुत्र और तपस्वी कहे गये हैं। उन्होंने शतरूपासे विवाह किया था। मनु और शतरूपाके पुत्र उत्तानपाद हुए। उत्तानपादके पुत्र केवल ध्रुव हैं। गिरिराजनन्दिनि! ध्रुवकी कीर्ति तीनों लोकोंमें विख्यात है। ध्रुवके पुत्र उत्कल हुए, जो भगवान् नारायणके अनन्य भक्त थे। उन्होंने पुष्करतीर्थमें एक हजार राजसूय-यज्ञोंका अनुष्ठान किया था, उस यज्ञमें सारे पात्र रत्नोंके बने हुए थे। राजाने बड़ी प्रसन्नताके साथ वे सब पात्र ब्राह्मणोंको दान कर दिये थे। यज्ञान्तमहोत्सवमें राजाने बहुमूल्य वस्त्रोंकी सहस्रों राशियाँ जो तेजःपुञ्जसे उद्भासित होती थीं,

ब्राह्मणोंको बाँट दीं। प्रिये! उस सुन्दर यज्ञको देखकर ब्रह्माजीने देवसभामें राजा उत्कलका नाम सुयज्ञ रख दिया। राजा सुयज्ञ अन्न, रत्न तथा सब प्रकारकी सम्पत्तियोंके दाता थे। वे प्रतिदिन प्रसन्नतापूर्वक उचित दक्षिणाके साथ ब्राह्मणोंको दस-बारह लाख गौएँ दानमें देते थे। उन गौओंके सींग रत्नोंसे मढ़े होते थे तथा दुग्धपात्र आदि सामग्री भी रत्नमयी ही होती थी। वे प्रतिदिन छः करोड़ ब्राह्मणोंको भोजन कराया करते थे। उन्हें प्रतिदिन चूसने, चबाने, चाटने और पीनेयोग्य भोजनसामग्री देकर तृप्त करते थे। नित्यप्रति एक लाख रसोइयोंको भोजन दिया करते थे। पूआ, रोटी-चावल आदि अन्न, दाल आदि व्यञ्जन दहीके साथ परोसे जाते थे। उस भोजनसामग्रीमें मांसका सर्वथा अभाव होता था। ब्राह्मणलोग भोजनके समय मनुवंशी राजा सुयज्ञकी ही नहीं, उनके पितरोंकी भी स्तुति करते थे। सुन्दरि! यज्ञके दिनोंमें तथा उसकी समाप्तिके दिन कुल मिलाकर छत्तीस लाख करोड़ ब्राह्मणोंने अत्यन्त तृप्तिपूर्वक सु-अन्न भोजन किया था। उन्होंने दक्षिणामें इतने रत्न ग्रहण किये थे कि उन सबको अपने घरतक ढो ले जाना उनके लिये असम्भव हो गया था। कुछ तो उन्होंने शूद्रोंको बाँट दिया और कुछ रास्तेमें छोड़ दिया। ब्राह्मण-भोजनके अन्तमें राजाने ब्राह्मणेतरोंको भी भोजन दिया तथापि वहाँ अन्नकी सहस्रों राशियाँ शेष रह गयीं।

इस प्रकार यज्ञ करके महाबाहु राजा सुयज्ञ अपनी राजसभामें रमणीय रत्न-सिंहासनपर बैठे हुए थे। वह सिंहासन रत्नेन्द्रसारसे निर्मित अनेक छत्रोंसे सुशोभित था। उसे अच्छी तरह सजाया गया था। उसपर चन्दन आदि सुगन्धित वस्तुओंका लेप हुआ था। चन्दनपल्लवोंसे उसकी रमणीयता और बढ़ गयी थी। वहाँ वसु, वासव, चन्द्रमा, इन्द्र, आदित्यगण, मुनिवर नारद तथा बड़े-बड़े देवता विराजमान थे। इसी समय वहाँ एक ब्राह्मण आया,

जो रूखा और मलिन वस्त्र पहने था। उसके कण्ठ, ओठ और तालु सूखे हुए थे। उसने मुसकराते हुए हाथ जोड़कर रत्नसिंहासनपर बैठे हुए पुष्पमाला और चन्दनसे चर्चित राजाको आशीर्वाद दिया। राजाने भी ब्राह्मणको प्रणाम तो किया, किंतु वे अपने स्थानसे उठे नहीं। उस सभाके सभासद् भी ब्राह्मणकी ओर देखकर खड़े नहीं हुए। वे सभी थोड़ा-थोड़ा हँसते रहे। तब वह श्रेष्ठ ब्राह्मण मुनियों और देवताओंको नमस्कार करके निरङ्कुश-भावसे वहाँ खड़ा हो गया और क्रोधपूर्वक राजाको

शाप देता हुआ बोला—'ओ पामर! तू इस राज्यसे दूर चला जा, श्रीहीन हो जा तथा शीघ्र ही गलित कोढ़से युक्त, बुद्धिहीन और उपद्रवोंसे ग्रस्त हो जा।' ऐसा कहकर क्रोधसे काँपता हुआ ब्राह्मण सभासदोंको शाप देनेके लिये उद्यत हो गया। जो लोग वहाँ हँसे थे, वे सब उठकर खड़े हो गये। उन सबने अपने दोषका परिहार कर लिया। अतः उनकी ओरसे ब्राह्मणका क्रोध जाता रहा।

राजा उस ब्राह्मणको प्रणाम करके भयसे कातर हो रोने लगे। वे व्यथित-हृदयसे सभाके बीचसे बाहर निकले। तब गुरुरूपधारी वे ब्राह्मणदेवता भी ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होते हुए चल दिये। उनके पीछे-पीछे भयसे कातर हुए समस्त मुनि भी चले और बारंबार उच्चस्वरसे पुकारने लगे—'हे विप्र! ठहरो, ठहरो।' उन मुनियोंके नाम इस प्रकार हैं—पुलह, पुलस्त्य, प्रचेता, भृगु, अङ्गिरा, मरीचि, कश्यप, वसिष्ठ, क्रतु, शुक्र, बृहस्पति, दुर्वासा, लोमश, गौतम, कणाद, कण्व, कात्यायन, कठ, पाणिनि, जाजलि, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, आपिशलि, तैत्तिरि, महातपस्वी मार्कण्डेय, वोढु, पैल, सनक, सनन्दन, सनातन, भगवान् सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषि, पराशर, जरत्कारु, संवर्त, करथ, और्व, च्यवन, भरद्वाज, वाल्मीकि, अगस्त्य, अत्रि, उतथ्य, संवर्त, आस्तीक, आसुरि, शिलालि, लाङ्गलि, शाकल्य, शाकटायन, गर्ग, वात्स्य, पञ्चशिख, जमदग्नि, देवल, जैगीषव्य, वामदेव, बालखिल्य आदि, शक्ति, दक्ष, कर्दम, प्रस्कन्न, कपिल, विश्वामित्र, कौत्स, ऋचीक और अघमर्षण—ये तथा और भी मुनि, पितर, अग्नि, हरिप्रिय, दिक्पाल तथा समस्त देवता भी ब्राह्मणके पीछे-

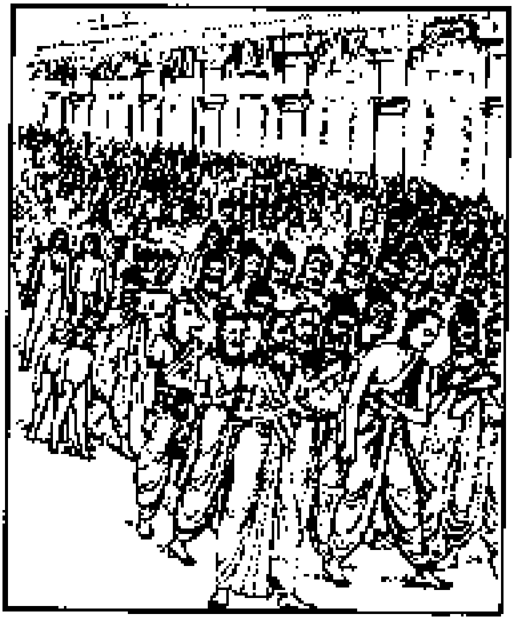

पीछे चले। पार्वति! उन नीतिविशारद मुनियोंने

ब्राह्मणको समझाया, एक स्थानपर ठहराया और क्रमशः उनसे नीतिकी बातें कहीं।

पार्वतीने पूछा—प्रभो! ब्राह्मणों और ब्रह्माजीके पुत्रोंने, जो नीतिके विद्वान् थे, उस समय उन ब्राह्मणदेवतासे नीतिकी कौन-सी बात कही, यह मुझे बतानेकी कृपा करें।

श्रीमहादेवजी बोले—सुमुखि! उस मुनि-समुदायने स्तुति और विनयसे ब्राह्मणको संतुष्ट करके क्रमशः इस प्रकार कहना आरम्भ किया।

सनत्कुमारने कहा—ब्रह्मन्! तुम्हारे पीछे-पीछे राजाकी लक्ष्मी और कीर्ति भी चली आयी है। सत्त्व, यश, सुशीलता, महान् ऐश्वर्य, पितर, अग्नि और देवता भी राजाको श्रीहीन करके उनके घरसे बाहर चले आये हैं। द्विजश्रेष्ठ! अब तुम संतुष्ट हो जाओ; क्योंकि ब्राह्मण शीघ्र ही संतुष्ट होनेवाला कहा गया है। मुने! ब्राह्मणोंका हृदय नवनीतके समान कोमल होता है। वह तपस्यासे परिमार्जित होनेके कारण अत्यन्त निर्मल और शुद्ध होता है। अतः विप्रवर! अब क्षमा करो। आओ और राजभवनको पवित्र करो। जिसके घरसे अतिथि निराश होकर लौट जाता है, उसके देवता, पितर तथा अग्नि भी निराश होकर लौट जाते हैं; क्योंकि वहाँ अतिथिका सत्कार नहीं हुआ। इसलिये विप्रवर! क्षमा करो, आओ और राजभवनको शुद्ध करो।

पुलस्त्यजी बोले—जो घरपर आये हुए अतिथिको टेढ़ी आँखोंसे देखते हैं, उन्हें अतिथि अपना पाप देकर और उनके पुण्य लेकर चला जाता है। अतः तुम राजाके दोषको क्षमा कर दो। वत्स! तुम्हारी जहाँ मौज हो, जाओ। राजा अपने कर्मदोषसे ही उठकर खड़े नहीं हुए थे। उनके उस दोषको तुम क्षमा कर दो।

पुलहने कहा—जो क्षत्रिय, राजलक्ष्मीके मदसे अथवा जो ब्राह्मण विद्याके मदसे किसी ब्राह्मणका अपमान करता है, वह क्षत्रिय श्रीहीन होता है तथा वह ब्राह्मण त्रिकाल संध्यासे शून्य हो जाता है। वे दोनों ही एकादशीव्रत तथा भगवान् विष्णुके नैवेद्यसे वञ्चित हो जाते हैं।

क्रतु बोले—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य अथवा शूद्र कोई भी क्यों न हो, जो ब्राह्मणका अपमान करता है, वह दीक्षाके पुण्य और अधिकारसे भ्रष्ट हो जाता है। इतना ही नहीं, उसका धन नष्ट हो जाता है तथा वह पुत्र और फलोंसे भी हीन हो जाता है। यह एक अटल सत्य है, अतः भगवन्! क्षमा करो। आओ और राजाके घरको पवित्र करो।

अङ्गिराने कहा—जो ज्ञानवान् ब्राह्मण होकर किसी ब्राह्मणका अपमान करता है, वह भारतवर्षमें सात जन्मोंतक सवारी ढोनेवाला बैल होता है।

मरीचि बोले—जो पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें देवता, ब्राह्मण तथा गुरुका अपमान करता है, वह भगवान् विष्णुकी भक्तिसे वञ्चित हो जाता है।

कश्यपने कहा—जो वैष्णव ब्राह्मणको देखकर उसका अपमान करता है, वह विष्णुमन्त्रकी दीक्षासे वञ्चित हो विष्णुपूजासे भी विरत हो जाता है।

प्रचेता बोले—जो अतिथि ब्राह्मणको आया देख उसके लिये अभ्युत्थान नहीं करता—उठकर खड़ा नहीं हो जाता, वह भारतभूमिमें माता-पिताकी भक्तिसे रहित होता है। उस मूढ़को सात जन्मोंतक हाथीकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। अतः द्विजश्रेष्ठ! शीघ्र चलो। राजाको आशीर्वाद दो।

दुर्वासाने कहा—जो गुरु, ब्राह्मण अथवा देवताकी प्रतिमाको देखकर शीघ्र ही उसके सामने मस्तक नहीं झुकाता, वह पृथ्वीपर सूअर होता है। अतः ब्रह्मन्! हमारे सब अपराधोंको क्षमा करो और चलकर अतिथि-सत्कार ग्रहण करो।

राजाने पूछा—आप सब लोग श्रेष्ठ मुनि हैं। आपने किसी-न-किसी बहानेसे धर्मका उपदेश किया है। अतः सब कुछ स्पष्ट बताकर

मुझ मूर्खको समझाइये। विद्वानो! आप लोग पहले मुझे यह बतायें कि स्त्रीहत्या, गोहत्या, कृतघ्नता, गुरुपत्नीगमन तथा ब्रह्महत्या करनेवालोंको कौन-सा दोष लगता है तथा उसका परिहार कैसे होता है?

वसिष्ठजी बोले—राजन्! यदि स्वेच्छापूर्वक गो-वधका पाप किया गया हो तो उसके प्रायश्चित्तके लिये मनुष्य एक वर्षतक तीर्थोंमें भ्रमण करता रहे। वह प्रतिदिन जौकी रोटी अथवा जौकी लप्सी खाये और हाथसे ही जल पीये। वर्ष पूरा होनेपर ब्राह्मणोंको दक्षिणासहित सौ अच्छी और दुधारू गौओंका दान करे। प्रायश्चित्तसे पाप क्षीण हो जानेपर भी मनुष्य अपने सम्पूर्ण पापसे मुक्त नहीं होता। जो पाप शेष रह जाता है, उसीके फलसे वह दुःखी एवं चाण्डाल होता है। यदि आतिदेशिक हत्या हुई हो अर्थात् साक्षात् गोवध आदि न होकर उसके समान बताया गया कोई पापकर्म बन गया हो तो उसमें साक्षात् की हुई हत्यासे आधा फल भोगना पड़ता है। अनुकल्परूप प्रायश्चित्तसे उस हत्याका पाप यद्यपि क्षीण हो जाता है तथापि उससे पूर्णतया छुटकारा नहीं मिलता।

शुक्रने कहा—स्त्रीकी हत्या करनेपर निश्चय ही गोहत्यासे दूना पाप लगता है। स्त्रीहत्यारा हजारों वर्षोंतक कालसूत्र नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर वह महापापी मानव सात जन्मोंतक सूअर और सात जन्मोंतक सर्प होता है। इसके बाद उसकी शुद्धि होती है।

बृहस्पति बोले—स्त्रीहत्यासे दूना पाप लगता है ब्रह्महत्यामें। ब्रह्महत्यारा एक लाख वर्षोंतक निश्चय ही महाभयंकर कुम्भीपाक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर उस महापापीको सौ वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होना पड़ता है, इसके बाद सात जन्मोंतक सर्प होकर वह उस पापसे शुद्ध होता है।

गौतमने कहा—राजेन्द्र! कृतघ्नको ब्रह्महत्यासे चौगुना पाप लगता है। वेदमें अवश्य ही कृतघ्नोंकी शुद्धिके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं कहा गया है।

राजाने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! आप मुझे कृतघ्नोंका लक्षण बताइये। कृतघ्नोंके कितने भेद हैं और उनमेंसे किन्हें किस दोषकी प्राप्ति होती है?

ऋष्यशृङ्गने उत्तर दिया—सामवेदमें सोलह प्रकारके कृतघ्नोंका निरूपण किया गया है। वे सब-के-सब प्रत्येक दोषसे प्रत्येक फलके भागी होते हैं। सत्कर्म, सत्य, पुण्य, स्वधर्म, तप, प्रतिज्ञा, दान, स्वगोष्ठी-परिपालन, गुरुकृत्य, देवकृत्य, कामकृत्य, द्विजपूजन, नित्य-कृत्य, विश्वास, परधर्म और परप्रदान—इनमें स्थित हुए मनुष्योंका जो वध करता है, वह पापिष्ठ कृतघ्न कहा गया है। इनके लिये जो लोक हैं, वे उस जन्मसे भिन्न योनियोंमें उपलब्ध होते हैं। राजेन्द्र! वे पापी कृतघ्न जिन-जिन नरकोंमें जाते हैं, वे-वे नरक निश्चय ही यमलोकमें विद्यमान हैं।

सुयज्ञने पूछा—प्रभो! किस प्रकारके कृतघ्न कौन-सा कर्म करके किन-किन भयंकर नरकोंमें जाते हैं? इसे एक-एक करके मैं सुनना चाहता हूँ। आप बतानेकी कृपा करें।

कात्यायनने कहा—जो सपथ खाकर भी अपने सत्यको मिटा देता है, उसका पालन नहीं करता, वह कृतघ्न अवश्य ही चार युगोंतक कालसूत्र नरकमें निवास करता है। फिर सात-सात जन्मोंतक कौआ और उल्लू होकर पुनः सात जन्मोंतक महारोगी शूद्र होता है। इसके बाद उसकी शुद्धि होती है। तत्पश्चात् सर्वश्री सनन्दन, सनातन, पराशर, सत्कार, भरद्वाज और विभाण्डकने विभिन्न कृतघ्नोंके भेद तथा उनको प्राप्त होनेवाली दुर्गतिका वर्णन किया। तदनन्तर श्रीमार्कण्डेयजी बोले।

मार्कण्डेयने कहा—नरेश्वर! शूद्रजातीय स्त्रीके

साथ समागम करनेपर ब्राह्मणको जो दोष प्राप्त होता है, उसका वर्णन वेदोंमें किया गया है। उसे बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। जो ब्राह्मण शूद्रजातीय स्त्रीके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, वह कृतघ्नोंमें प्रधान है। उसे चौदह इन्द्रोंके स्थितिकालतक कृमिदंष्ट्र नामक नरकमें निवास करना पड़ता है। वहाँ वह ब्राह्मण कीड़ोंके काटनेसे व्याकुल रहता है। यमराजके दूत उससे प्रतिदिन तपायी हुई लोहेकी प्रतिमाका आलिङ्गन करवाते हैं। तदनन्तर निश्चय ही वह व्यभिचारिणी स्त्रीकी योनिका कीड़ा होता है। इस अवस्थामें एक हजार वर्षोंतक रहनेके बाद वह शूद्र होता है। तत्पश्चात् उसकी शुद्धि होती है।

सुयज्ञ बोले—मुने! अन्य कृतघ्नोंके भी कर्मोंका फल बताइये। यह ब्राह्मणका शाप मेरे लिये श्लाघ्य है; क्योंकि इसके कारण मुझे सत्संगका लाभ हुआ। भला, विपत्तिमें पड़े बिना किसको सम्पत्ति प्राप्त होती है। मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ। मेरा जीवन सफल हो गया; क्योंकि आज मेरे घरपर मुक्त मुनिगण और देवता पधारे हैं।

(अध्याय ५०-५१)

शेष कृतघ्नोंके कर्मफलोंका विभिन्न मुनियोंद्वारा प्रतिपादन

पार्वतीने पूछा—प्रभो! अन्य कृतघ्नोंको जिस-जिस फलकी प्राप्ति होती है, उसके विषयमें उन वेद-वेदाङ्गके पारगत विद्वानोंने क्या कहा?

श्रीमहेश्वर बोले—प्रिये! राजेन्द्र सुयज्ञके प्रश्न करनेपर उन सब मुनियोंमें महान् ऋषि नारायणने प्रवचन देना आरम्भ किया।

नारायणने कहा—भूपाल! जो अपनी या दूसरोंकी दी हुई ब्राह्मणवृत्तिका अपहरण करता है, उसे कृतघ्न समझना चाहिये। उसे जो फल मिलता है, उसको सुनो। जिनकी जीविका छिन जाती है, उन ब्राह्मणोंके आँसुओंसे धरतीके जितने धूलिकण भीगते हैं, उतने सहस्र वर्षोंतक वह 'शूलप्रोत' नामक नरकमें रहता है। दहकते हुए अंगार उसे खानेको मिलते हैं और औंटाया हुआ मूत्र पीनेको। तपे हुए अंगारोंकी शय्यापर उसे सोना पड़ता है। उठनेकी चेष्टा करनेपर यमराजके दूत उन्हें पीटते हैं। उस नरकयातनाके अन्तमें वह महापापी जीव भारतवर्षमें विष्ठाका कीड़ा होता है। उस योनिमें उसे देवताके वर्षसे साठ हजार वर्षोंतक रहना पड़ता है। तत्पश्चात् वह मानव भूमिहीन, संतानहीन, दरिद्र, कृपण, रोगी और निन्दनीय शूद्र होता है। उसके बाद उसकी शुद्धि होती है।

नारद बोले—जो नराधम अपनी अथवा परायी कीर्तिका हनन करता है, वह कृतघ्न कहा गया है। उसको मिलनेवाले फलका वर्णन सुनो। नरेश्वर! वह अत्यन्त दीर्घकालतक अन्धकूप नामक नरकमें निवास करता है। उसमें सरौते-जैसे कीड़े उसे सदा काटते और खाते रहते हैं। वह पापी वहाँ तपाया हुआ खारा पानी पीता और खाता है। तदनन्तर सात जन्मोंतक सर्प और पाँच जन्मोंतक कौआ होनेके बाद वह शुद्ध होता है।

देवलने कहा—जो भारतवर्षमें ब्राह्मण, गुरु अथवा देवताके धनका अपहरण करता है, उसे महान् पापी एवं कृतघ्न समझना चाहिये। वह बहुत लंबे समयतक 'अवटोद' नामक नरकमें निवास करता है। तदनन्तर शराबी और शूद्र होता है। इसके बाद उसकी शुद्धि होती है।

जैगीषव्य बोले—जो पिता, माता तथा गुरुके प्रति भक्तिसे हीन होकर उनका पालन नहीं करता, उलटे वाणीद्वारा उनकी ताड़ना करता है, उसे 'कृतघ्न' कहा गया है। जो कुलटा नारी

प्रतिदिन वाणीद्वारा अपने स्वामीको ताने मारती या फटकारती है, वह 'कृतघ्नी' कही गयी है। भारतवर्षमें वह बहुत बड़ी पापिनी है। कृतघ्न पुरुष हो या स्त्री, दोनों 'वह्निकुण्ड' नामक महाघोर नरकमें पड़ते हैं। वहाँ बहुत लंबे समयतक वे अग्निमें ही वास करते हैं। तत्पश्चात् सात जन्मोंतक जलौका (जोंक) होकर वह शुद्ध होता है।

वाल्मीकिने कहा—राजन्! जैसे सभी तरुओंमें सर्वत्र वृक्षत्व है, कहीं भी वृक्षत्वका त्याग नहीं है, उसी तरह सम्पूर्ण पापोंमें कृतघ्नता है। जो काम, क्रोध तथा भयके कारण झूठी गवाही देता है तथा सभामें पक्षपातपूर्वक बात करता है, वह कृतघ्न माना गया है। राजन्! जो पुण्यमात्रका हनन करता है, वह भी कृतघ्न ही है। सर्वत्र सबके पुण्यकी हानिमें कृतघ्नता निहित है। नरेश्वर! जो भारतवर्षमें झूठी गवाही देता या पक्षपातपूर्ण बात करता है, वह निश्चय ही बहुत लंबे समयतक सर्पकुण्डमें निवास करता है। सदा उसके शरीरमें साँप लिपटे रहते हैं; वह डरा रहता है और साँप डसे खाये जाते हैं। यमदूतोंकी मार पड़नेपर वह साँपोंका मल-मूत्र खानेको विवश होता है। तदनन्तर भारतमें सात-सात जन्मोंतक वह अपनी सात पीढ़ीके पूर्वजोंसहित गिरगिट और मेढक होता है। इसके बाद विशाल वनमें सेमलका वृक्ष होता है। तत्पश्चात् गूँगा मनुष्य एवं शूद्र होकर वह शुद्धि-लाभ करता है।

आस्तीक बोले—गुरुपत्नीगमन करनेपर मानव मातृगामी समझा जाता है। मातृगमन करनेपर मनुष्योंके लिये प्रायश्चित्त नहीं मिलता। नृपश्रेष्ठ! भारतवर्षमें मातृगामी पुरुषोंको जो दोष प्राप्त होता है, वह शूद्रोंको ब्राह्मणीके साथ समागम करनेपर लगता है। यदि ब्राह्मणी शूद्रके साथ मैथुन करे तो उसे भी उतना ही दोष प्राप्त होता है। कन्या, पुत्रवधू, सास, गर्भवती भौजाई और भगिनीके साथ समागम करनेपर भी वैसा ही दोष लगता है। राजेन्द्र! अब ब्रह्माजीके बताये अनुसार दोषका निरूपण करूँगा। जो महापापी मानव इन सबके साथ मैथुन करता है वह जीते-जी ही मृतक-तुल्य होता है, चाण्डाल एवं अस्पृश्य समझा जाता है। उसे सूर्यमण्डलके दर्शनका भी अधिकार नहीं होता। वह शालग्रामका, उनके चरणामृतका, तुलसीदलमिश्रित जलका, सम्पूर्ण तीर्थजलका तथा ब्राह्मणोंके चरणोदकका स्पर्श भी नहीं कर सकता। वह पातकी मनुष्य विष्ठाके तुल्य घृणित होता है। उसे देवता, गुरु और ब्राह्मणको नमस्कार करनेका भी अधिकार नहीं रह जाता है। उसका जल मूत्रसे भी अधिक अपवित्र होता है। भारतमें पृथ्वी उसके भारसे दब जाती है। वह उसके बोझको ढोनेमें असमर्थ हो जाती है। बेटी बेचनेवाले पापीकी भाँति गुरुपत्नीगामीके पापसे भी सारा देश पतित हो जाता है। उसके स्पर्शसे, उसके साथ वार्तालाप करनेसे, सोनेसे, एक स्थानमें रहने और साथ-साथ भोजन करनेसे मनुष्योंको पाप लगता है। वह कुम्भीपाकमें निवास करता है। वहाँ उसे दिन-रात अविरामगतिसे चक्रकी भाँति घूमना पड़ता है। वह आगकी लपटोंसे जलता और यमदूतोंद्वारा पीटा जाता है। इस प्रकार वह महापापी प्रतिदिन नरक-यातना भोगता है। घोर प्राकृतिक महाप्रलय बीतनेपर जब पुनः सृष्टिका आरम्भ होता है तो वह फिर वैसा ही हो जाता है। नरक-यातनाके पश्चात् हजारों वर्षोंतक उसे विष्ठाका कीड़ा होना पड़ता है। तदनन्तर वह पत्नीहीन नपुंसक चाण्डाल होता है। तत्पश्चात् उसे सात जन्मोंतक गलित कोढ़से युक्त शूद्र एवं नपुंसक होना पड़ता है। इसके बाद वह कोढ़ी, अन्धा एवं नपुंसक ब्राह्मण होता है। इस प्रकार सात जन्म धारण करनेके पश्चात् उस महापापीकी शुद्धि होती है।

मुनि बोले—इस प्रकार हमने शास्त्रके अनुसार सब बातें बतायीं। राजन्! तुम इन विप्रवरको प्रणाम करो और निश्चय ही इन्हें अपने

परको लौटा ले चलो। वहाँ यत्नपूर्वक ब्राह्मण-देवताका पूजन करके इनका आशीर्वाद लो। महाराज! इसके बाद शीघ्र ही वनको जाओ और तपस्या करो। ब्राह्मणके शापसे छुटकारा मिलने-पर फिर यहाँ आओगे।

पार्वति! ऐसा कहकर सब मुनि, देवता, राजा तथा बन्धुवर्गके लोग तुरंत अपने-अपने स्थानको चले गये। (अध्याय ५२)

सुतपाके द्वारा सुयज्ञको शिवप्रदत्त परम दुर्लभ महाज्ञानका उपदेश

श्रीपार्वतीजीने पूछा—प्रभो! मुनिसमूहोंके चले जानेपर मनुष्योंके कर्मफलका वर्णन सुननेके अनन्तर ब्रह्मशापसे विह्वल हुए नृपश्रेष्ठ सुयज्ञने क्या किया? अतिथि ब्राह्मणने भी क्या किया? वे लौटकर राजाके घरमें गये या नहीं, यह बतानेकी कृपा करें।

महेश्वरने कहा—प्रिये! मुनिसमूहोंके चले जानेपर वे शापग्रस्त नरेश धर्मात्मा पुरोहित वसिष्ठजीकी आज्ञासे भूतलपर ब्राह्मणके दोनों चरणोंमें दण्डकी भाँति गिर पड़े। तब उन श्रेष्ठ द्विजने क्रोध छोड़कर उन्हें शुभ आशीर्वाद दिया। उन कृपामूर्ति ब्राह्मणको क्रोध छोड़कर मुस्कराते देख नृपश्रेष्ठ सुयज्ञने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़ लिये और अत्यन्त विनम्रभावसे

आत्मसमर्पण करते हुए उनसे परिचय पूछा।

राजाकी बात सुनकर वे मुनिश्रेष्ठ हँसने लगे। उन्होंने मेरे दिये हुए सर्वदुर्लभ परम तत्त्वका उन्हें उपदेश दिया।

अतिथि बोले—ब्रह्माजीके पुत्र मरीचि हैं। उनके पुत्र स्वयं कश्यपजी हैं। कश्यपके प्रायः सभी पुत्र मनोवाञ्छित देवभावको प्राप्त हुए हैं। उनमें त्वष्टा बड़े ज्ञानी हुए। उन्होंने सहस्र दिव्य वर्षोंतक पुष्करमें परम दुष्कर तपस्या की। ब्राह्मण-पुत्रकी प्राप्तिके लिये देवाधिदेव परमात्मा श्रीहरिकी समाराधना की। तब भगवान् नारायणसे उन्हें एक तेजस्वी ब्राह्मण-पुत्र वरके रूपमें प्राप्त हुआ। वह पुत्र तपस्याके धनी तेजस्वी विश्वरूपके नामसे प्रसिद्ध हुआ। एक समय बृहस्पतिजी देवराजके प्रति कुपित हो जब कहीं अन्यत्र चले गये, तब इन्द्रने विश्वरूपको ही अपना पुरोहित बनाया था। विश्वरूपके मातामह दैत्य थे। अतः वे देवताओंके यज्ञमें दैत्योंके लिये भी घीकी आहुति देने लगे। जब इन्द्रको इस बातका पता लगा तो उन्होंने अपनी माताकी आज्ञा लेकर ब्राह्मण विश्वरूपके मस्तक काट दिये। नरेश्वर! विश्वरूपके पुत्र विरूप हुए, जो मेरे पिता हैं। मैं उनका पुत्र सुतपा हूँ। मेरा काश्यप गोत्र है और मैं वैरागी ब्राह्मण हूँ। महादेवजी मेरे गुरु हैं। उन्होंने ही मुझे विद्या, ज्ञान और मन्त्र दिये हैं। प्रकृतिसे परवर्ती सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण मेरे इष्टदेव हैं। मैं उन्हींके चरण-कमलोंका चिन्तन करता हूँ। मेरे मनमें सम्पत्तिके लिये कोई

इच्छा नहीं है। राधावल्लभ श्रीकृष्ण मुझे सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य और सामीप्य नामक मोक्ष देते हैं; परंतु मैं उनकी कल्याणमयी सेवाके सिवा दूसरी कोई वस्तु नहीं लेता हूँ। ब्रह्मत्व और अमरत्वको भी मैं जलमें दिखायी देनेवाले प्रतिबिम्बको भाँति मिथ्या मानता हूँ। नरेश्वर! भक्तिके अतिरिक्त सब कुछ मिथ्या भ्रममात्र है, नश्वर है। इन्द्र, मनु अथवा सूर्यका पद भी जलमें खींची गयी रेखाके समान मिथ्या है। मैं उसे सत्य नहीं मानता। फिर राजाके पदको कौन गिनता है। सुयज्ञ! तुम्हारे यज्ञमें मुनियोंका आगमन सुनकर मेरे मनमें भी यहाँ आनेकी लालसा हुई। मैं तुम्हें विष्णुभक्तिकी प्राप्ति करानेके लिये यहाँ आया हूँ। इस समय मैंने तुमपर केवल अनुग्रह किया। तुम्हें शाप नहीं दिया। तुम एक भयानक गहरे भवसागरमें गिर गये थे। मैंने तुम्हारा उद्धार किया है। केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं है। भगवान्‌के भक्त भी तीर्थ हैं, मिट्टी और पत्थरकी प्रतिमारूप देवता ही देवता नहीं हैं, भगवद्भक्त भी देवता हैं। जलमय तीर्थ और मिट्टी-पत्थरके देवता मनुष्यको दीर्घकालमें पवित्र करते हैं; परंतु श्रीकृष्णभक्त दर्शन देनेके साथ ही पवित्र कर देते हैं।*

राजन्! निकलो इस घरसे। दे दो राज्य अपने पुत्रको। वत्स! अपनी साध्वी पत्नीकी रक्षाका भार बेटेको सौंपकर शीघ्र ही वनको चलो। भूमिपाल! ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सब कुछ मिथ्या ही है। जो सबके ईश्वर हैं, उन परमात्मा राधावल्लभ श्रीकृष्णका भजन करो। वे ध्यानसे सुलभ हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके लिये भी उनकी समाराधना कठिन है। वे उत्पत्ति-विनाशशील प्राकृत पदार्थों और प्रकृतिसे भी परे हैं। जिनकी ही मायासे ब्रह्मा सृष्टि, विष्णु पालन तथा रुद्रदेव संहार करते हैं। दिशाओंके स्वामी दिक्पाल जिनकी मायासे ही भ्रमण करते हैं, जिनकी आज्ञासे वायु चलती है, दिनेश सूर्य तपते हैं तथा निशापति चन्द्रमा सदा खेतीको सुस्निग्धता प्रदान करते हैं। सम्पूर्ण विश्वोंमें सबकी मृत्यु कालके द्वारा ही होती है। काल आनेपर ही इन्द्र वर्षा करते और अग्निदेव जलाते हैं। सम्पूर्ण विश्वके शासक तथा प्रजाको संयममें रखनेवाले यम कालसे ही भयभीत-से होकर अपने कार्यमें लगे रहते हैं। काल ही समय आनेपर संहार करता है और वही यथासमय सृष्टि तथा पालन करता है। कालसे प्रेरित होकर ही समुद्र अपने देश (स्थान)-की सीमामें रहता है, पृथ्वी अपने स्थानपर स्थिर रहती है, पर्वत अपने स्थानपर रहते हैं और पाताल अपने स्थानपर। राजेन्द्र! सात स्वर्गलोक, सात द्वीपोंसहित पृथ्वी, पर्वत और समुद्रोंसहित सात पाताल—इन समस्त लोकोंसहित जो ब्रह्माण्ड है, वह अण्डेके आकारमें जलपर तैर रहा है। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि रहते हैं। देवता, मनुष्य, नाग, गन्धर्व तथा राक्षस आदि निवास करते हैं। राजन्! पातालसे लेकर ब्रह्मलोकतक जो अण्ड है, वही ब्रह्माजीका कृत्रिम ब्रह्माण्ड है। यह जलमें शयन करनेवाले क्षुद्र विराट् विष्णुके नाभिकमलपर उसी तरह है जैसे कमलकी कर्णिकामें बीज रहा करता है।

इस प्रकार सुविस्तृत जलशय्यापर शयन करनेवाले ये प्राकृत महायोगी क्षुद्र विराट् विष्णु भी प्रकृतिसे परवर्ती ईश्वर, सर्वात्मा, कालेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करते हैं; उनका आधार है महाविष्णुका विस्तृत रोमकूप। महाविष्णुके अनन्त रोमकूपोंमेंसे प्रत्येकमें ऐसे-ऐसे ब्रह्माण्ड स्थित हैं। महाविष्णुके शरीरमें असंख्य रोम हैं और उन रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड हैं। अण्डाकार ब्रह्माण्डोंकी

* न ह्यम्मयानि तीर्थानि न देवा मृच्छिलामयाः ॥ ते पुनन्त्युरुकालेन कृष्णभक्ताश्च दर्शनात्।
(प्रकृतिखण्ड ५३। ३५-३६)

उत्पत्तिके स्थानभूत वे महाविष्णु भी सदा श्रीकृष्णकी इच्छासे प्रकृतिके गर्भसे अण्डरूपमें प्रकट होते हैं। सबके आधारभूत वे महाविष्णु भी कालके स्वामी सर्वेश्वर परमात्मा श्रीकृष्णका सदा चिन्तन किया करते हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण ब्रह्माण्डोंमें स्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि तथा महान् विराट् और क्षुद्र विराट् इन सबकी बीजरूपा जो मूलप्रकृति ईश्वरी है, वह प्रलयकालमें कालेश्वर श्रीकृष्णमें लीन होती है तथा सदा उन्हींका ध्यान किया करती है। यह सब परम दुर्लभ महाज्ञान तुम्हें बताया गया है। गुरुदेव शिवने यह ज्ञान मुझे दिया था। इसे तो तुमने सुन लिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ५३)

गोलोक एवं श्रीकृष्णकी उत्कृष्टता, कालमान एवं विभिन्न प्रलयोंका निरूपण, चौदह मनुओंका परिचय, ब्रह्मासे लेकर प्रकृतितकके श्रीकृष्णमें लय होनेका वर्णन, शिवका मृत्युञ्जयत्व, मूलप्रकृतिसे महाविष्णुका प्रादुर्भाव, सुयज्ञको विप्रचरणोदकका महत्त्व तथा राधाका मन्त्र बताकर सुतपाका जाना, पुष्करमें राजाकी दुष्कर तपस्या तथा राधामन्त्रके जपसे सुयज्ञका श्रीराधाकी कृपासे गोलोकमें जाना और श्रीकृष्णका दर्शन एवं कृपाप्रसाद प्राप्त करना

राजाने पूछा—मुनीश्वर! सभी कालसे भयभीत रहते हैं तो उनका आधार कहाँ है? कालकी माया कितनी है? क्षुद्र विराट्की आयु कितने कालकी है? ब्रह्मा, प्रकृति, मनु, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य तथा अन्य प्राकृत जनोंकी परमायु क्या है? वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महर्षे! उनकी वेदोक्त आयुका भलीभाँति विचार करके मेरे समक्ष वर्णन कीजिये। महाभाग! समस्त विश्वोंके ऊर्ध्वभागमें कौन-सा लोक है? यह बताइये और मेरे संदेहका निवारण कीजिये।

मुनि बोले—राजन्! सम्पूर्ण विश्वोंके ऊर्ध्वभागमें गोलोक विद्यमान है, जो आकाशके समान विस्तृत है। वह श्रीकृष्णकी इच्छासे प्रकट हो सदा नित्य-अण्डके रूपमें प्रकाशित होता है। भूपाल! आदिसर्गमें सृष्टिके लिये उन्मुख हो अपनी कलास्वरूपा प्रकृतिके साथ संयुक्त श्रीकृष्ण जब क्रीडापरायण होकर लीलासे ही थकानका अनुभव करते हैं, उस समय उनके मुखमण्डलसे निर्गत पसीनेकी बूँदोंसे जो जलराशि प्रकट होती है, उसीके द्वारा गोलोकधाम जलसे परिपूर्ण रहता है। प्रकृतिके गर्भसे संयुक्त एवं अण्डाकारमें उत्पन्न जो विश्वके आधारभूत महाविष्णु (या महाविराट्) हैं, उनका आधार वहाँ उपर्युक्त विस्तृत गोलोकधाम ही है। अत्यन्त विस्तृत जलाधार (अथवा जलशय्या)-पर शयन करनेवाले जो महाविराट् हैं, वे श्रीराधावल्लभ श्रीकृष्णका सोलहवाँ अंश कहे गये हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति दूर्वादलके समान श्याम है। उनके मुखपर मन्द मुसकान खेलती रहती है। उनके चार भुजाएँ हैं। वे वनमाला धारण करते हैं। श्रीमान् महाविष्णु पीताम्बरसे सुशोभित हैं। सर्वोपरि आकाशमें श्रीविष्णुका नित्य वैकुण्ठधाम है, जो आत्माकाशके समान नित्य तथा चन्द्रमण्डलके तुल्य विस्तृत है। ईश्वरकी इच्छासे उसका आविर्भाव हुआ है।

यह अलक्ष्य तथा आश्रयरहित है। आकाशके समान अत्यन्त विस्तृत तथा अमूल्य दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित है। वहाँ वनमालाधारी श्रीमान् चतुर्भुज नारायणदेव, जो लक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा तथा तुलसीके पति हैं; सुनन्द, नन्द तथा कुमुद आदि पार्षदोंसे घिरे हुए निवास करते हैं।

सर्वेश्वर, सर्वसिद्धेश्वर एवं भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य विग्रह (अथवा कृपामय शरीर) धारण करनेवाले भगवान् श्रीकृष्ण दो रूपोंमें प्रकट हैं—द्विभुज एवं चतुर्भुज। चतुर्भुजरूपसे वे वैकुण्ठमें वास करते हैं और द्विभुजरूपसे गोलोकधाममें। वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन ऊपर गोलाकार 'गोलोक'धाम विद्यमान है, जो समस्त लोकोंसे श्रेष्ठतम है। बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित विशाल भवन उस धामकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नेन्द्रसारके बने हुए विचित्र खम्भों और सीढ़ियोंसे वे भवन अलंकृत हैं। श्रेष्ठ मणिमय दर्पणोंसे जटित किवाड़ों तथा कलशोंसे उज्ज्वल एवं नाना प्रकारके चित्रोंसे विचित्र शोभा पानेवाले शिविर उस धामकी श्रीवृद्धि करते हैं। उसका विस्तार एक करोड़ योजन है तथा लंबाई उससे सौगुनी है। विरजा नदीसे घिरा हुआ शतशृङ्ग पर्वत उस धामका परकोटा है। विरजा नदीकी आधी लंबाई-चौड़ाई तथा शतशृङ्ग पर्वतकी आधी ऊँचाईवाले वृन्दावनसे यह धाम सुशोभित है। वृन्दावनकी अपेक्षा आधी लंबाई-चौड़ाईमें निर्मित रासमण्डल गोलोकधामका अलंकार है। उपर्युक्त नदी, पर्वत और वन आदिके मध्यभागमें मुख्य गोलोकधाम है। जैसे कमलमें कर्णिका होती है, उसी प्रकार उक्त नदी, शैल आदिके बीचमें वह मनोहर धाम प्रतिष्ठित है। वहाँ रासमण्डलमें गौओं, गोपों और गोपियोंसे घिरे हुए गोपीवल्लभ श्रीकृष्ण रासेश्वरी श्रीराधाके साथ निरन्तर निवास करते हैं। उनके दो भुजाएँ हैं, वे हाथोंमें मुरली लिये बाल-गोपालका रूप धारण किये रहते हैं। अग्निशुद्ध चिन्मय वस्त्र उनका परिधान है। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं। गलेमें रत्नोंका हार शोभा देता है। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनके ऊपर रत्नमय छत्र तना हुआ है तथा उनके प्रिय सखा ग्वालबाल श्वेत चवँर लिये सदा उनकी सेवामें तत्पर रहते हैं। वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सुन्दर वेषवाली गोपियाँ माला और चन्दनके द्वारा उनका शृङ्गार करती हैं। वे मन्द-मन्द मुस्कराते रहते हैं और वे गोपियाँ कटाक्षपूर्ण चितवनसे उनकी ओर निहारती रहती हैं।

इस प्रकार जैसा मैंने भगवान् शंकरके मुखसे सुना था और आगमोंमें जैसा वर्णन मिलता है, तदनुसार लोकविस्तारकी यथाशक्ति चर्चा की है। अब कालका मान सुनो। छः पल सोनेका बना हुआ एक पात्र हो, जिसकी गहराई चार अंगुलकी हो। उसमें एक-एक माशे सोनेके बने हुए चार-

चार अंगुल लंबे चार कीलोंसे छेद कर दिये जायँ। फिर उस पात्रको जलके ऊपर रख दिया जाय। उन छिद्रोंसे पानी आकर जितनी देरमें वह पात्र भर दे, उतने समयको एक दण्ड कहते हैं। दो दण्डका एक मुहूर्त और चार मुहूर्तोंका एक प्रहर होता है। आठ प्रहरोंसे एक दिन-रातकी पूर्ति होती है। पंद्रह दिन-रातको एक पक्ष कहते हैं। दो पक्षोंका एक मास और बारह मासका एक वर्ष होता है। मनुष्योंके एक मासमें जितना समय व्यतीत होता है, वह पितरोंका एक दिन-रात है। कृष्णपक्षमें उनका दिन कहा गया है और शुक्लपक्षमें रात्रि। मनुष्योंके एक वर्षमें देवताओंके एक दिन-रातकी पूर्ति होती है। उत्तरायणमें उनका दिन होता है और दक्षिणायनमें रात्रि। नरेश्वर! मनुष्य आदिकी अवस्था युग एवं कर्मके अनुरूप होती है। अब प्रकृति, प्राकृत पदार्थ एवं ब्रह्मा आदिकी आयुका परिमाण सुनो। सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग—इन चारोंको एक चतुर्युग कहते हैं। इनकी काल-संख्या बारह हजार दिव्य वर्ष है। सावधान होकर सुनो, सत्ययुग आदिका कालमान क्रमशः चार, तीन, दो और एक दिव्य वर्ष है। उनकी संध्या और संध्यांशकाल दो हजार दिव्य वर्षोंके बताये गये हैं*। मनुष्योंके मानसे चारों युगोंका परिमाण तैंतालीस लाख बीस हजार वर्ष है। इनमें गणनाके विद्वानोंने सत्ययुगका मान मनुष्योंके वर्षसे सत्रह लाख अट्ठाईस हजार बताया है। इसी तरह त्रेताका कालमान बारह लाख छियानबे हजार मानव-वर्ष है। द्वापरका आठ लाख चौसठ हजार तथा कलियुगका चार लाख बत्तीस हजार मानव-वर्ष है।

जैसे सात वार, सोलह तिथियाँ, दिन-रात, दो पक्ष, बारह मास और वर्ष चक्रवत् घूमते रहते हैं, उसी प्रकार चारों युगोंका चक्र भी सदा ही चलता रहता है। राजेन्द्र! जैसे युग परिवर्तित होते हैं, उसी प्रकार मन्वन्तर भी। इकहत्तर दिव्य युगोंका एक मन्वन्तर होता है। इसी क्रमसे चौदह मनु भ्रमण करते रहते हैं।

नरेश्वर! मैंने भगवान् शंकरके मुखसे धर्मात्मा मनुओंका जो आख्यान सुना है, वह बता रहा हूँ। तुम मुझसे सुनो। आदिमनु ब्रह्माजीके पुत्र हैं। इसलिये उन्हें स्वायम्भुव मनु कहा गया है। उनकी पत्नी पतिव्रता शतरूपा हैं। स्वायम्भुव मनु धर्मात्माओंमें वरिष्ठ और मनुओंमें गरिष्ठ हैं। ये तुम्हारे प्रपितामह लगते हैं। उन्होंने भगवान् शंकरका शिष्यत्व ग्रहण किया है। ये विष्णुव्रतका पालन करनेवाले जीवन्मुक्त एवं महाज्ञानी थे। उन्होंने भगवान् शंकरकी आज्ञासे भगवान् विष्णुकी प्रसन्नताके लिये प्रतिदिन एक लाख बहुमूल्य रत्न, दस करोड़ स्वर्णमुद्रा, सोनेके सींगसे सुशोभित एवं सुपूजित एक लाख दिव्य धेनु, अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र, एक लाख श्रेष्ठ मणि, सब प्रकारकी

---

*इस विषयका स्पष्टीकरण यों समझना चाहिये। सत्ययुग चार हजार दिव्य वर्षोंका होता है। युगके आरम्भमें चार सौ दिव्य वर्षोंकी संध्या होती है और युगके अन्तमें चार सौ दिव्य वर्षोंका संध्यांशकाल होता है। इस प्रकार सत्ययुगका कालमान चार हजार आठ सौ दिव्य वर्ष है। त्रेताका संध्यामान तीन सौ दिव्य वर्ष, युगमान तीन सहस्र दिव्य वर्ष और संध्यांशमान तीन सौ दिव्य वर्ष। इस तरह त्रेताका सम्पूर्ण कालमान तीन हजार छः सौ दिव्य वर्ष है। द्वापरका संध्यामान दो सौ दिव्य वर्ष, युगमान दो हजार दिव्य वर्ष और संध्यांशमान दो सौ दिव्य वर्ष है। ये सब मिलाकर दो हजार चार सौ दिव्य वर्ष होते हैं। इसी तरह कलियुगका संध्यामान एक सौ दिव्य वर्ष, युगमान एक सहस्र दिव्य वर्ष और संध्यांशमान एक सौ दिव्य वर्ष है। इस प्रकार कलियुगका पूरा मान बारह सौ दिव्य वर्ष है। इन चार युगोंका सम्मिलित कालमान बारह हजार दिव्य वर्ष है।

खेतीसे हरी-भरी भूमि, लाखों उत्तमोत्तम गजराज, सोनेके आभूषणोंसे विभूषित तीन लाख रत्न, सहस्रों स्वर्णजटित रथरत्न, एक लाख शिबिका, अन्नसे भरे हुए तीन करोड़ सुवर्णपात्र, जलसे भरे हुए तीन कोटि सुवर्ण-कलश, कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल और विश्वकर्माद्वारा रचित तथा श्रेष्ठ रत्नोंके सारभागसे खचित एवं वह्निशुद्ध विचित्र वस्त्रसहित माल्यसमूहोंसे सुशोभित तीन करोड़ विचित्र स्वर्ण-पर्यङ्क ब्राह्मणोंके लिये दान किया था। भगवान् शंकरसे परम दुर्लभ ज्ञान, श्रीकृष्णका मन्त्र तथा श्रीहरिका दास्यभाव प्राप्त करके वे गोलोकको चले गये। अपने पुत्रको मुक्त हुआ देख प्रजापति ब्रह्मा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने संतुष्ट होकर भगवान् शंकरकी स्तुति की और आदिमनुके स्थानपर दूसरे मनुकी सृष्टि की। ये भी स्वयम्भूके पुत्र होनेके कारण स्वायम्भुव मनु कहलाये। दूसरे मनुका नाम स्वारोचिष है। ये अग्निदेवके पुत्र हैं। राजा स्वारोचिष भी स्वायम्भुव मनुके समान ही महान् धर्मिष्ठ एवं दानी रहे हैं। दो अन्य मनु राजा प्रियव्रतके पुत्र तथा धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ हैं। उनके नाम हैं—तापस और उत्तम। दोनों ही वैष्णव हैं तथा क्रमशः तीसरे और चौथे मनुके पदपर प्रतिष्ठित हैं। ये दोनों भी भगवान् शंकरके शिष्य हैं तथा श्रीकृष्णकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं। धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ रैवत पाँचवें मनु हैं। चाक्षुषको छठा मनु जानना चाहिये। ये भी विष्णुभक्तिमें तत्पर रहनेवाले हैं। सूर्यपुत्र श्राद्धदेव जो विष्णुके भक्त हैं, सातवें मनु कहे गये हैं (इन्हींको वैवस्वत मनु कहते हैं)। सूर्यके दूसरे वैष्णव पुत्र सावर्णि आठवें मनु हैं। विष्णुव्रतपरायण दक्षसावर्णि नवें मनु हैं। ब्रह्मज्ञानविशारद ब्रह्मसावर्णि दसवें मनु हैं। ग्यारहवें मनुका नाम धर्मसावर्णि है। ये धर्मिष्ठ, वरिष्ठ तथा सदा ही वैष्णवोंके व्रतका पालन करनेवाले हैं। ज्ञानी रुद्रसावर्णि बारहवें मनु हैं तथा धर्मात्मा देवसावर्णिको तेरहवाँ मनु कहा गया है। महाज्ञानी चन्द्रसावर्णि चौदहवें मनु हैं। मनुओंकी जितनी आयु होती है, उतनी ही इन्द्रोंकी भी होती है।

ब्रह्माका एक दिन चौदह इन्द्रोंसे अविच्छिन्न कहा जाता है। जितना बड़ा उनका दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात भी होती है। नरेश्वर! उसे ब्राह्मी निशाके नामसे जानना चाहिये। उसीको वेदोंमें 'कालरात्रि' कहा गया है। राजन्! ब्रह्माका एक दिन एक छोटा कल्प माना गया है। महातपस्वी मार्कण्डेय ऐसे ही कल्पोंसे सात कल्पतक जीवित रहते हैं। ब्रह्माका दिन बीतनेपर ब्रह्मलोकसे नीचेके सारे लोक प्रलयाग्निसे जलकर भस्म हो जाते हैं। वह अग्नि सहसा संकर्षण (शेषनाग)-के मुखसे प्रकट होती है। उस समय चन्द्रमा, सूर्य और ब्रह्माजीके पुत्रगण निश्चय ही ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। जब ब्रह्माकी रात बीत जाती है, तब वे पुनः सृष्टिका कार्य प्रारम्भ करते हैं। ब्रह्माकी रात्रिमें जो लोकोंका संहार होता है, उसे 'क्षुद्र प्रलय' कहते हैं। उसमें देवता, मनु और मनुष्य आदि दग्ध हो जाते हैं। इस प्रकार जब ब्रह्माके तीस दिन-रात व्यतीत हो जाते हैं, तब उनका एक मास पूरा होता है। वैसे ही बारह महीनोंका उनका एक वर्ष होता है। इस प्रकार ब्रह्माके पंद्रह वर्ष व्यतीत होनेपर एक प्रलय होता है, जिसे वेदोंमें 'दैनन्दिन प्रलय' कहा गया है। प्राचीन वेदज्ञोंने उसीको 'मोहरात्रि' की संज्ञा दी है। उसमें चन्द्रमा, सूर्य आदि; दिक्पाल, आदित्य, वसु, रुद्र मनु, इन्द्र, मानव, ऋषि, मुनि, गन्धर्व तथा राक्षस आदि; मार्कण्डेय, लोमश और पेचक आदि चिरजीवी; राजा इन्द्रद्युम्न, अकूपार नामक कच्छप तथा नाडीजंघ नामक बक—ये सब-के-सब नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मलोकके नीचेके सब लोक तथा नागोंके स्थान भी विनाशको प्राप्त हो जाते हैं। ऐसे समयमें

ब्रह्मपुत्र आदि सब लोग ब्रह्मलोकमें चले जाते हैं। दैनन्दिन प्रलय व्यतीत होनेपर ब्रह्माजी पुनः लोकोंकी सृष्टि आरम्भ करते हैं। इस प्रकार सौ वर्षोंतक ब्रह्माकी आयु पूरी होती है। तदनन्तर ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर एक कल्प पूरा हो जाता है। उस समय जो 'महाप्रलय' आता है, उसीको पुरातन महर्षियोंने 'महारात्रि' कहा है।

ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर ब्रह्माण्डसमूह जलमें डूब जाता है। वेदमाता सावित्री, वेद और धर्म आदि सब-के-सब तिरोहित हो जाते हैं। मृत्युका भी विनाश हो जाता है। परंतु देवी प्रकृति और भगवान् शिवका नाश नहीं होता। विष्णुके वैष्णवगण भगवान् नारायणमें लीन हो जाते हैं। संहारकारी कालाग्निरुद्र समस्त रुद्रगणोंके साथ मृत्युञ्जय महादेवमें लीन हो जाते हैं। उनके साथ ही तमोगुणका भी लय हो जाता है। तदनन्तर प्रकृतिकी एक पलक गिरती है। साथ ही नारायण, शिव तथा महाविष्णुकी भी पलक गिरती है। नरेश्वर! निमेषके अन्तमें अर्थात् पलक उठनेपर श्रीकृष्णकी इच्छासे पुनः सृष्टिका आरम्भ होता है। श्रीकृष्ण निमेषसे रहित हैं। उनकी पलक नहीं गिरती है; क्योंकि वे प्रकृतिसे परे तथा प्राकृत गुणोंसे रहित हैं। जो सगुण हैं, उन्हींके निमेष होता है। वह निमेष काल-संख्यात्मक अवस्थासे सीमित होता है। जो नित्य, निर्गुण, अनादि और अनन्त हैं, उनके निमेष कहाँ? जब प्रकृतिकी एक सहस्र बार पलकें गिर जाती हैं, तब उसका एक दण्ड पूरा होता है। ऐसे साठ दण्डोंका उसका एक दिन कहा गया है। तीस दिनोंका एक मास और बारह महीनोंका वर्ष होता है। ऐसे एक सौ वर्ष बीत जानेपर प्रकृतिका श्रीकृष्णमें लय होता है। श्रीकृष्णमें उसके लय होनेपर जो प्रलय होता है, उसे 'प्राकृत प्रलय' कहा गया है। महाविष्णुकी जननी वह एकमात्र मूलप्रकृति ईश्वरी सबका संहार करके स्वयं श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें विलीन हो जाती है। संतपुरुष उसीको सनातनी विष्णुमाया, सर्वशक्तिस्वरूपा दुर्गा, सती नारायणी, श्रीकृष्णकी बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी तथा निर्गुणात्मिका कहते हैं। जिसकी मायासे बड़े-बड़े देवता मोहित होते हैं, उस देवीको वैष्णवजन महालक्ष्मी तथा 'परा राधा' कहते हैं। श्रीकृष्णके आधे अङ्गसे प्रकट हुई महालक्ष्मी नारायणकी प्रिया हैं। वही राधारूपसे श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी और उनकी प्राणाधिका है। शश्वत् प्रेममयी शक्ति है। निर्गुण परमात्माकी निर्गुणा प्रियतमा है।

नारायण और शिव दोनों शुद्ध-सत्त्वस्वरूपी हैं। वे अपने बहुत-से पार्षदगणोंका अपने-आपमें संहार करके निर्गुण श्रीकृष्णमें लीन हो जाते हैं। नरेश्वर! गोप, गोपियाँ और सवत्सा गौएँ सब-की-सब प्रकृतिस्वरूपा श्रीराधामें लीन हो जाती हैं और ये प्रकृतिदेवी परमेश्वर श्रीकृष्णमें। जो क्षुद्र विष्णु हैं, वे सब महाविष्णुमें लीन होते हैं। महाविष्णु प्रकृतिमें और वह श्रीकृष्णकी मूल-प्रकृति परमात्मा श्रीकृष्णमें लीन होती है। माया तथा ईश्वरकी इच्छासे प्रकृतिने योगनिद्रा बनकर श्रीकृष्णके नेत्रकमलोंमें निवास किया। जितने समयमें प्रकृतिका एक दिन होता है, उतने समयतक वृन्दावनमें परमात्मा श्रीकृष्णको नींद लगी रहती है। वहाँ बहुमूल्य रत्नोंका पर्यङ्क बिछा होता है, जो अग्निशुद्ध चिन्मय वस्त्रोंसे आच्छादित होता है। गन्ध, चन्दन और फूलोंकी वायुसे वह पर्यङ्क सुवासित रहता है। उसीपर श्यामसुन्दर शयन करते हैं। उनके पुनः जागनेपर सारी सृष्टिका कार्य आरम्भ होता है। उन निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णका वन्दन, स्मरण, ध्यान, पूजन और गुण-कीर्तन महापातकोंका नाश करनेवाला है। महाराज! मैंने मृत्युञ्जय महादेवके मुखसे जैसा सुना था और आगमोंमें जो कुछ कहा गया है, उसके अनुसार यह सब कुछ बता दिया। अब

तुम और क्या सुनना चाहते हो?

सुयज्ञने पूछा—ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर समस्त लोकोंके संहारकारी कालाग्निरुद्र, तमोगुण तथा सत्त्वगुण यदि मृत्युञ्जय शिवमें विलीन होते हैं तथा यदि उस प्राकृत लयकी वेलामें शिव निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णमें लीन होते हैं तो आपके गुरु भगवान् शिवका नाम श्रुतिमें मृत्युञ्जय क्यों रखा गया? तथा जिनके रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड निवास करते हैं, उन महाविष्णुकी जननी यह मूलप्रकृति कैसे हुई?

सुतपा बोले—नरेश्वर! ब्रह्माजीकी आयु पूर्ण होनेपर ब्रह्मा आदि समस्त लोकोंका संहार करनेवाली मृत्युकन्या जलबिम्बकी भाँति नष्ट हो जाती है। ऐसी कितनी ही मृत्युकन्याओं और करोड़ों ब्रह्माओंका लय हो जानेपर यथासमय भगवान् शिव सत्त्वरूपधारी निर्गुण श्रीकृष्णमें लीन होते हैं। मेरे गुरु भगवान् शिवने मृत्युकन्यापर सदा ही विजय पायी है। परंतु मृत्युने कभी शिवको पराजित नहीं किया है। यह बात प्रत्येक कल्पमें श्रुतियोंद्वारा सुनी गयी है। अतः भगवान् शिवका मृत्युञ्जय नाम उचित ही है। नरेश्वर! शम्भु, नारायण और प्रकृति—इन तीनों नित्य तत्त्वोंका नित्य परमात्मा श्रीकृष्णमें लय होना लीलामात्र है, वास्तविक नहीं है। स्वयं निर्गुण परमपुरुष परमात्मा ही कालके अनुसार सगुण होते हैं। वे स्वयं ही मायासे नारायण, शिव एवं प्रकृतिके रूपमें प्रकट होते हैं; अतः सदा उनके समान ही हैं। जैसे अग्नि और उसकी चिनगारियोंमें भेद नहीं है, वैसे ही नारायण आदि तथा श्रीकृष्णमें कोई अन्तर नहीं है। ब्रह्माजीके द्वारा प्रत्येक कल्पमें जिन-जिन रुद्र, आदित्य आदिकी सृष्टि हुई है, वे सब मृत्युकन्यासे पराजित होनेके कारण नश्वर हैं। परंतु शिवकी सृष्टि ब्रह्माजीने नहीं की है। शिव सत्य, नित्य एवं सनातन हैं। भूमिपाल! उनके निमेषमात्रमें कितने ही ब्रह्माओंका पतन हो जाता है। आदिसर्गमें जगद्गुरु श्रीकृष्णने प्रकृतिके भीतर वीर्यका आधान किया था। पवित्र वृन्दावनके भीतर रासमें उनके वामांशसे प्रकट हुई रासेश्वरी राधा ही परा प्रकृति हैं। उन्होंने ही गर्भ धारण किया। तदनन्तर समय आनेपर राधाने गोलोकके रासमण्डलमें एक अण्डको जन्म दिया। अपनी संततिको अण्डाकार देख उनके हृदयमें बड़ी व्यथा हुई। वे कुपित हो उठीं तथा उन्होंने उस अण्डेको वहींसे नीचे विश्वगोलकमें फेंक दिया। उसी अण्डसे सबके आधारभूत महाविराट् (महाविष्णु)-की उत्पत्ति हुई।

सुयज्ञने कहा—प्रभो! आज मेरा जन्म सफल हो गया। जीवन सार्थक हो गया। मेरे लिये आपका शाप भक्तिका कारण होनेसे वरदान बन गया। समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल करनेवाली हरि-भक्ति परम दुर्लभ है। विप्रवर! वेदोंमें जो पाँच प्रकारकी भक्ति बतायी गयी है, वह भी इसके समान नहीं है। महामुने! परमात्मा श्रीकृष्णमें जिस प्रकार भी मेरी भक्ति सम्भव हो सके, वह उपाय कीजिये; क्योंकि वह सभीके लिये परम दुर्लभ है। केवल जलमय तीर्थ ही तीर्थ नहीं है, मिट्टी और पत्थरकी प्रतिमारूप देवता ही देवता नहीं हैं, श्रीकृष्णभक्त ही मुख्य तीर्थ और देवता हैं। वे जलमय तीर्थ और मिट्टी-पत्थरके देवता दीर्घकालमें उपासकको पवित्र करते हैं, परंतु श्रीकृष्णभक्त दर्शनमात्रसे ही पवित्र कर देते हैं। समस्त वर्णोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं, उनमें भी जो भारतवर्षमें रहकर स्वधर्म-पालनमें लगे रहते हैं, वे श्रेष्ठ हैं। उनमें भी जो श्रीकृष्णमन्त्रका उपासक श्रीकृष्णभक्तिपरायण तथा प्रतिदिन श्रीकृष्णके नैवेद्यको भोजन करनेवाला है, वह सर्वश्रेष्ठ और महान् पवित्र है। आप वैष्णव हैं, अतः ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ हैं। साथ ही महान् ज्ञानके श्रेष्ठ सागर हैं। मुने! आप-जैसे शिव-शिष्य महात्मा पुरुषको पाकर मैं दूसरे किसकी शरण जाऊँ? महामुने!

आपके शापसे इस समय मैं गलित कुष्ठका रोगी हूँ। अपवित्र हूँ और तपके अधिकारसे वञ्चित हूँ। ऐसी दशामें कैसे तपस्या करूँ?

सुतपा बोले—राजन्! सनातनी विष्णुमाया हरि-भक्ति प्रदान करनेवाली है। वह जिन लोगोंपर कृपा करती है, उन्हें भगवान्‌की भक्ति देती है। माया जिन्हें मोहित करती है, उन्हें हरि-भक्ति नहीं देती है, अपितु उनको नश्वर धन देकर ठग लेती है। अतः तुम प्राकृत गुणोंसे रहित कृष्णप्रेममयी शक्ति तथा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी श्रीराधाकी आराधना करो, जो सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेवाली हैं। उनके अनुग्रह एवं सेवासे शीघ्र ही गोलोकमें चले जाओगे। वे सर्वाराध्य श्रीकृष्णसे भी सेवित एवं पूजित हैं। निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्ण ध्यानसे भी वशमें न होनेवाले और दुराराध्य हैं। उनकी सेवा करके भक्त-जन सुदीर्घकाल किंवा अनेक जन्मोंके पश्चात् गोलोकमें जाते हैं। परंतु सर्वसम्पत्स्वरूपिणी श्रीराधा महाविष्णुकी भी जननी हैं, कृपामयी हैं। अतः उनका सेवन करके भक्तजन शीघ्र ही गोलोकमें चले जाते हैं। तुम एक सहस्र वर्षोंतक ब्राह्मणका चरणोदक पीते रहो। इससे कामदेवके समान रूपवान् तथा रोगहीन हो जाओगे। जबतक पृथ्वी ब्राह्मणके चरणोदकसे भीगी रहती है, तबतक उस ब्राह्मणभक्त पुरुषके पितर कमलके पत्तोंमें जल पीते हैं। पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ हैं, वे सब समुद्रमें भी हैं और समुद्रमें जो तीर्थ हैं, वे सब ब्राह्मणके चरणोंमें हैं। ब्राह्मणका चरणोदक पापों तथा रोगोंका विनाश करनेवाला है। यह सम्पूर्ण तीर्थोंके जलके समान भोग तथा मोक्ष देनेवाला और शुभ है। ब्राह्मण मनुष्यके रूपमें साक्षात् देवाधिदेव जनार्दन हैं। ब्राह्मणके दिये हुए पदार्थको सब देवता भोग लगाते हैं।

ऐसा कहकर ब्राह्मण सुतपा सुयज्ञके सत्कारको ग्रहण करके अपने घरको चले गये। जाते-जाते यह कह गये कि मैं एक वर्षके बाद फिर आऊँगा। शिवे! राजा प्रतिदिन भक्तिभावसे ब्राह्मणके चरणोदकका पान करने लगे। उन्होंने एक वर्षतक ब्राह्मणोंकी पूजा की और उन्हें भोजन कराया। वर्ष बीतते-बीतते राजा रोग-व्याधिसे मुक्त हो गये। फिर कश्यपकुलके अग्रणी मुनिश्रेष्ठ सुतपा वहाँ आये। उन्होंने श्रीराधाकी पूजाके विधान, स्तोत्र, कवच, मन्त्र और सामवेदोक्त ध्यानका राजा सुयज्ञको उपदेश दिया और कहा—'राजन्! शीघ्र घर छोड़कर निकल जाओ।' ऐसा कहकर मुनि तो तपस्याके लिये चले गये और राजा तुरंत ही घर छोड़कर दुर्गम वनको चल दिये। राजाकी चारों रानियोंने प्राण त्याग दिये तथा उनका पुत्र राजा हुआ। सुयज्ञने पुष्करमें जाकर सुदुष्कर तपस्या की। उन्होंने सौ

दिव्य वर्षोंतक श्रीराधाके उत्कृष्ट मन्त्रका जप किया। तब उन्होंने आकाशमें रथपर बैठी हुई परमेश्वरी श्रीराधाके दर्शन किये। उनके दर्शनमात्रसे राजाके सारे पाप-ताप दूर हो गये। उन्होंने मनुष्यदेहको त्याग दिया और दिव्य रूप धारण कर लिया। देवी श्रीराधा उस रत्नेन्द्रनिर्मित

विमानद्वारा राजाको साथ ले गोलोकमें चली गयीं। राजाने विरजा नदी तथा मनोहर शतशृङ्ग पर्वतसे घिरे हुए, श्रीवृन्दावनसे युक्त तथा रासमण्डलसे मण्डित गोलोकका दर्शन किया। वह धाम गौओं, गोपियों और गोपसमूहोंसे सेवित तथा रत्नेन्द्रसारसे निर्मित अत्यन्त मनोहर भवनोंद्वारा सुशोभित हो रहा था। भाँति-भाँतिके चित्र-विचित्र दृश्य उसकी शोभा बढ़ाते थे तथा वह कल्पवृक्षयुक्त सैंतीस उपवनोंसे शोभायमान था। उन उपवनोंमें पारिजातके वृक्ष भी भरे हुए थे। सारा गोलोक कामधेनुओंसे आवेष्टित था। आकाशकी भाँति विपुल विस्तारसे युक्त तथा चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार था। वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन ऊपर वह शून्यमें बिना किसी आधारके स्थित है और भगवान्‌की इच्छासे ही सुस्थिर है। आत्माकाशके समान नित्य है और हमलोगोंके लिये भी परम दुर्लभ है। मैं, नारायण, अनन्त, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, धर्म, क्षुद्र विराट्, गङ्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, तुम (पार्वती), विष्णुमाया, सावित्री, तुलसी, गणेश, सनत्कुमार, स्कन्द, नर-नारायण ऋषि, कपिल, दक्षिणा, यज्ञ, ब्रह्मपुत्र, योगी, वायु, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, रुद्र, अग्नि तथा कृष्णमन्त्रके उपासक भारतीय वैष्णव—इन सबने ही गोलोकको देखा है। दूसरोंने इसे कभी नहीं देखा है।

उस गोलोकधाममें श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण निरामय रत्नसिंहासनपर विराजमान हैं। रत्नोंके हार, किरीट तथा रत्नमय भूषणोंसे वे विभूषित हैं। अग्निशुद्ध, अत्यन्त निर्मल चिन्मय पीताम्बर उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाता है। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं। वे किशोर गोपबालकके रूपमें दिखायी देते हैं। नूतन जलधरके समान श्याम कान्ति, श्वेत कमलके समान नेत्र, शरत्‌की पूर्णिमाके चन्द्रमण्डलको तिरस्कृत करनेवाला मन्द हास्यसे सुशोभित मुख, मनोहर आकृति, दो भुजाएँ और हाथोंमें मुरली—यही उनके

रूपकी झाँकी है। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही वे दिव्य विग्रह धारण करते हैं। श्रीकृष्ण स्वेच्छामय (परम स्वतन्त्र), प्रकृतिसे परे, परब्रह्मस्वरूप निर्गुण परमात्मा हैं। ध्यानसे भी वे वशमें आनेवाले नहीं हैं। उनकी आराधना बहुत कठिन है। वे हमारे लिये भी परम दुर्लभ हैं। उनके प्रिय सखा बारह ग्वालबाल सफेद चँवर लिये उनकी सेवा करते हैं। प्रेमपीडिता, सुस्थिरयौवना, वह्निशुद्ध चिन्मय वस्त्रधारिणी, रत्नभूषणभूषिता एवं परम मनोहारिणी गोपिकाएँ मन्द-मन्द मुस्कराती हुई उनकी छवि निहारती रहती हैं। रासमण्डलके मध्यभागमें परात्पर पुरुष श्रीकृष्णके राजा सुयज्ञने इसी रूपमें दर्शन किये। श्रीराधाने ही वहाँ उन्हें अपने प्राणवल्लभके दर्शन कराये थे। चारों वेद मनोहर मूर्ति धारण करके उनके दर्शन करते थे। राग-रागिनियाँ भी मूर्तिमती होकर वाद्ययन्त्र और मुखसे उन्हें अत्यन्त मनोहर संगीत सुनाती थीं। शिवे! नित्य सनातनी प्रकृतिके साथ तुम भी सदा उनके चरणारविन्दोंकी सेवा करती हो। वे तुलसीदलसे मण्डित होते हैं तथा कस्तूरी, कुङ्कुम, गन्ध, चन्दन, दूर्वा, अक्षत,

पारिजातपुष्प तथा विरजाके निर्मल जलसे उनके लिये नित्य अर्घ्य दिया जाता है। उस समय उनकी बड़ी शोभा होती है। वे सुप्रसन्न, स्वतन्त्र, समस्त कारणोंके भी कारण, सर्वान्तरात्मा, सर्वेश्वर, सर्वजीवन, सर्वाधार, परमपूज्य, सनातन ब्रह्मज्योति, सर्वसम्पत्तिस्वरूप, सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता, सर्वमङ्गलरूप, सर्वमङ्गलकारण, सर्वमङ्गलदाता तथा समस्त मङ्गलोंके भी मङ्गल हैं।

श्रीकृष्णका दर्शन करके सशङ्कित हो राजा सुयज्ञ तुरंत रथसे उतर पड़े और नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए पुलकित शरीरसे भगवान्‌के चरणोंमें मस्तक रखकर उन्होंने प्रणाम किया। परमात्मा श्रीकृष्णने राजाको अपना दासत्व, शुभाशीर्वाद तथा यह सत्य एवं अविचल श्रीकृष्णभक्ति प्रदान की, जो हमलोगोंके लिये भी परम दुर्लभ है। तदनन्तर श्रीराधा अपने रथसे उतरकर श्रीकृष्णके वक्षमें विराजमान हो गयीं। उनकी अत्यन्त प्यारी गोपियाँ सफेद चँवर लिये उनकी सेवामें लग गयीं। उनके आनेपर श्रीकृष्ण भक्ति और आदरसे सहसा उठकर खड़े हो गये। उन्होंने मन्द मुस्कानके साथ श्रीराधाके साथ वार्तालाप और उनका सम्मान किया। प्राचीनकालके वे वेदवेत्ता विद्वान् वेदोंके कथनानुसार पहले राधा नामका उच्चारण करके पीछे कृष्ण या माधव कहते हैं। जो इसके विपरीत उच्चारण करते या उन जगदम्बा श्रीकृष्णप्राणाधिका एवं प्रेममयी शक्ति श्रीराधिकाकी निन्दा करते हैं, वे चन्द्रमा तथा सूर्यकी स्थितिपर्यन्त कालसूत्र नरकमें यातना भोगते हैं। तत्पश्चात् सौ वर्षोंतक स्त्री-पुत्रसे रहित तथा रोगी होते हैं।

दुर्गे! इस प्रकार मैंने परम उत्तम राधिकाख्यानका वर्णन किया है। वह सती भगवती वैष्णवी, सनातनी, नारायणी, विष्णुमाया, मूलप्रकृति एवं ईश्वरी नाम धारण करनेवाली तुम्हीं हो। मायाका आश्रय लेकर मुझसे पूछ रही हो। तुम स्वयं ही सर्वज्ञा, सर्वरूपिणी, स्त्रीजातिकी अधिदेवी तथा पूर्वजन्मकी बातोंको याद रखनेवाली श्रेष्ठ पराशक्ति हो। राधिकाकी कथा तो मैंने सुना दी, अब और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ५४)

श्रीराधाके ध्यान, षोडशोपचार-पूजन, परिचारिकापूजन, परिहारस्तवन, पूजन-महिमा तथा स्तुति एवं उसके माहात्म्यका वर्णन

श्रीपार्वतीने पूछा—भगवन्! आप पुरुषोंके ईश्वर श्रीकृष्णके मन्त्रके होते हुए उन वैष्णवनरेश सुयज्ञने राधाका मन्त्र क्यों ग्रहण किया? सुतपाने राजाको श्रीराधाकी पूजाका कौन-सा विधान बताया? तथा किस ध्यान, किस स्तोत्र, किस कवच और किस मन्त्रका उपदेश दिया? श्रीराधाकी पूजापद्धति क्या है? ये सब बातें बताइये।

श्रीमहेश्वर बोले—प्रिये! राजाने यह प्रश्न किया था कि 'हे विप्र! हे मुने! मैं किसका भजन करूँ? किसकी आराधनासे शीघ्र गोलोक प्राप्त कर लूँगा?' उनके ऐसा कहनेपर उन ब्राह्मणशिरोमणिने राजेन्द्र सुयज्ञसे कहा—'महाराज! श्रीकृष्णकी सेवासे उनके लोकको तुम बहुत जन्मोंमें प्राप्त करोगे, अतः उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी परात्परस्वरूपा श्रीराधाका भजन करो। वे कृपामयी हैं। उनके प्रसादसे साधक शीघ्र ही उनके धामको प्राप्त कर लेता है'—ऐसा कहकर मुनिने उन्हें राधाके इस षडक्षर-मन्त्रका उपदेश दिया। वह मन्त्र इस प्रकार है—'ॐ राधायै स्वाहा।' इसके बाद प्राणायाम, भूतशुद्धि, मन्त्रन्यास, करन्यास, अङ्गन्यास, उनके सर्व-दुर्लभ ध्यान, स्तोत्र और कवचकी भक्तिभावसे राजाको शिक्षा दी। राजाने उसी क्रमसे उस मन्त्रका जप किया। साथ ही श्रीकृष्णने पूर्वकालमें

जिस ध्यानके द्वारा श्रीराधाका चिन्तन एवं पूजन किया था, उसी सामवेदोक्त ध्यानके अनुसार उनके स्वरूपका चिन्तन किया। वह ध्यान भक्तोंके लिये भी मङ्गलकारी है।

ध्यान—

श्रीराधाकी अङ्गकान्ति श्वेत चम्पाके समान गौर है। वे अपने अङ्गोंमें करोड़ों चन्द्रमाओंके समान मनोहर कान्ति धारण करती हैं। उनका मुख शरद्-ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित करता है। दोनों नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको छीने लेते हैं। उनके श्रोणिदेश एवं नितम्बभाग बहुत ही सुन्दर हैं। अधर पके हुए बिम्बफलकी लाली धारण करते हैं। वे श्रेष्ठ सुन्दरी हैं। मुक्ताकी पंक्तियोंको तिरस्कृत करनेवाली दन्तपङ्क्ति उनके मुखकी मनोहरताको बढ़ाती है। उनके वदनपर मन्द मुस्कानजनित प्रसन्नता खेलती रहती है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल रहती हैं। अग्निशुद्ध चिन्मय वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंको आच्छादित करते हैं। वे रत्नोंके हारसे विभूषित हैं। रत्नमय केयूर और कंगन धारण करती हैं। रत्नोंके ही बने हुए मंजीर उनके पैरोंकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्ननिर्मित विचित्र कुण्डल उनके दोनों कानोंकी श्रीवृद्धि करते हैं। सूर्यप्रभाकी प्रतिमारूप कपोल-युगलसे वे सुशोभित होती हैं। अमूल्य रत्नोंके बने हुए कण्ठहार उनके ग्रीवा-प्रदेशको विभूषित करते हैं। उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित किरीट-मुकुट उनकी उज्ज्वलताको जाग्रत् किये रहते हैं। रत्नोंकी मुद्रिका और पाशक (चेन या पासा आदि) उनकी शोभा बढ़ाते हैं। वे मालतीके पुष्पों और हारोंसे अलंकृत केशपाश धारण करती हैं। वे रूपकी अधिष्ठात्री देवी हैं और गजराजकी भाँति मन्द गतिसे चलती हैं। जो

उन्हें अत्यन्त प्यारी हैं, ऐसी गोप-किशोरियाँ श्वेत चँवर लेकर उनकी सेवा करती हैं। कस्तूरीकी बेंदी, चन्दनके बिन्दु और सिन्दूरकी टीकीसे उनके मनोहर सीमन्तका निम्नभाग अत्यन्त उद्दीप्त दिखायी देता है। रासमें रासेश्वरके सहित विराजित रासेश्वरी राधाका मैं भजन करता हूँ।*

इस प्रकार ध्यान कर मस्तकपर पुष्प अर्पित करके पुनः जगदम्बा श्रीराधाका चिन्तन करे और

---

*श्वेतचम्पकवर्णाभां कोटिचन्द्रसमप्रभाम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यां शरत्पङ्कजलोचनाम्॥
सुश्रोणीं सुनितम्बां च पक्वबिम्बाधरां वराम्।
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहराम्। ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकातराम्॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नमालाविभूषिताम्।
रत्नकेयूरवलयां रत्नमञ्जीररञ्जिताम्। रत्नकुण्डलयुग्मेन विचित्रेण विराजिताम्॥
सूर्यप्रभाप्रतिकृतिगण्डस्थलविराजिताम्॥
अमूल्यरत्ननिर्माणग्रैवेयकविभूषिताम्। सद्रत्नसारनिर्माणकिरीटमुकुटोज्ज्वलाम्॥
रत्नाङ्गुलीयसंयुक्तां रत्नपाशकशोभिताम्॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मालतीमाल्यभूषिताम्। रूपाधिष्ठातृदेवीं च गजेन्द्रमन्दगामिनीम्॥

फूल चढ़ावे। पुनः ध्यानके पश्चात् सोलह उपचार अर्पित करे। आसन, वसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, अनुलेपन, धूप, दीप, सुन्दर पुष्प, स्नानीय, रत्नभूषण, विविध नैवेद्य, सुवासित ताम्बूल, जल, मधुपर्क तथा रत्नमयी शय्या—ये सोलह उपचार हैं। राजाने इनमेंसे प्रत्येकको वेदमन्त्रके उच्चारणपूर्वक भक्तिभावसे अर्पित किया। शिवे! इन उपचारोंके समर्पणके लिये जो सर्वसम्मत मन्त्र हैं, उन्हें सुनो।

(१) आसन

रत्नसारविकारं च निर्मितं विश्वकर्मणा।
वरं सिंहासनं रम्यं राधे पूजासु गृह्यताम्॥

राधे! पूजाके अवसरपर विश्वकर्माद्वारा रचित रमणीय श्रेष्ठ सिंहासन, जो रत्नसारका बना हुआ है, ग्रहण करो।*

(२) वसन

अमूल्यरत्नखचितममूल्यं सूक्ष्ममेव च।
वह्निशुद्धं निर्मलं च वसनं देवि गृह्यताम्॥

देवि! बहुमूल्य रत्नोंसे जटित सूक्ष्म वस्त्र, जिसका मूल्य आँका नहीं जा सकता, आपकी सेवामें प्रस्तुत है। यह अग्निसे शुद्ध किया गया, चिन्मय एवं स्वभावतः निर्मल है। इसे स्वीकार करो।

(३) पाद्य

सद्रत्नसारपात्रस्थं सर्वतीर्थोदकं शुभम्।
पादप्रक्षालनार्हं च राधे पाद्यं च गृह्यताम्॥

राधे! उत्तम रत्नसारद्वारा निर्मित पात्रमें सम्पूर्ण तीर्थोंका शुभ जल तुम्हारी सेवामें अर्पित किया गया है। तुम्हारे दोनों चरणोंको पखारनेके लिये यह पाद्य जल है। इसे ग्रहण करो।

(४) अर्घ्य

दक्षिणावर्तशङ्खस्थं सदूर्वापुष्पचन्दनम्।
पूतं युक्तं तीर्थतोयै राधेऽर्घ्यं प्रतिगृह्यताम्॥

राधे! दक्षिणावर्त शङ्खमें रखा हुआ दूर्वा, पुष्प, चन्दन तथा तीर्थजलसे युक्त यह पवित्र अर्घ्य प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करो।

(५) गन्ध

पार्थिवद्रव्यसम्भूतमतीवसुरभीकृतम्।
मङ्गलार्हं पवित्रं च राधे गन्धं गृहाण मे॥

राधे! पार्थिव द्रव्योंसे सम्भूत अत्यन्त सुगन्धित मङ्गलोपयोगी तथा पवित्र गन्ध मुझसे ग्रहण करो।

(६) अनुलेपन (चन्दन)

श्रीखण्डचूर्णं सुस्निग्धं कस्तूरीकुङ्कुमान्वितम्।
सुगन्धयुक्तं देवेशि गृह्यतामनुलेपनम्॥

देवेश्वरि! कस्तूरी, कुङ्कुम और सुगन्धसे युक्त यह सुस्निग्ध चन्दनचूर्ण अनुलेपनके रूपमें तुम्हारे सामने प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करो।

(७) धूप

वृक्षनिर्यासंयुक्तं पार्थिवद्रव्यसंयुतम्।
अग्निखण्डशिखाजातं धूपं देवि गृहाण मे॥

देवि! वृक्षकी गोंद (गुग्गुल) तथा पार्थिव द्रव्योंसे संयुक्त यह धूप प्रज्वलित अग्निशिखासे निर्गत धूमके रूपमें प्रस्तुत है। मेरी इस वस्तुको ग्रहण करो।

(८) दीप

अन्धकारे भयहरममूल्यमणिशोभितम्।
रत्नप्रदीपं शोभाढ्यं गृहाण परमेश्वरि॥

परमेश्वरि! अमूल्य रत्नोंका बना हुआ यह परम उज्ज्वल शोभाशाली रत्नप्रदीप अन्धकार-

---

गोपीभिः सुप्रियाभिश्च सेवितां श्वेतचामरैः। कस्तूरीबिन्दुभिः सार्द्धमधश्चन्दनबिन्दुना॥
सिन्दूरबिन्दुना चारुसीमन्ताधःस्थलोज्ज्वलाम्। रासे रासेश्वरयुतां राधां रासेश्वरीं भजे॥
(प्रकृतिखण्ड ५५। १०—१५, १९)

*आसन आदिके स्थानपर साधारण लोग पुष्प आदिका आसन तथा अन्य उपचार, जो सर्वसुलभ हैं, दे सकते हैं; परंतु मानसिक भावनाद्वारा उसे रत्नसिंहासन आदि मानकर ही अर्पित करें। इस भावनाके अनुसार ये पूजासम्बन्धी मन्त्र हैं। मानसिक भावनाद्वारा उत्तम-से-उत्तम वस्तु इष्टदेवको अर्पित की जा सकती है।

भयको दूर करनेवाला है। इसे स्वीकार करो।

(९) पुष्प

पारिजातप्रसूनं च गन्धचन्दनचर्चितम्।
अतीव शोभनं रम्यं गृह्यतां परमेश्वरि॥

परमेश्वरि! गन्ध और चन्दनसे चर्चित, अत्यन्त शोभायमान यह रमणीय पारिजात-पुष्प ग्रहण करो।

(१०) स्नानीय

सुगन्धामलकीचूर्णं सुस्निग्धं सुमनोहरम्।
विष्णुतैलसमायुक्तं स्नानीयं देवि गृह्यताम्॥

देवि! विष्णुतैलसे युक्त यह अत्यन्त मनोहर एवं सुस्निग्ध सुगन्धित आँवलेका चूर्ण सेवामें प्रस्तुत है। इस स्नानोपयोगी वस्तुको तुम स्वीकार करो।

(११) भूषण

अमूल्यरत्ननिर्माणं केयूरवलयादिकम्।
शङ्खं सुशोभनं राधे गृह्यतां भूषणं मम॥

राधे! अमूल्य रत्नोंके बने हुए केयूर, कङ्कण आदि आभूषणोंको तथा परम शोभाशाली शङ्खकी चूड़ियोंको मेरी ओरसे ग्रहण करो।

(१२) नैवेद्य

कालदेशोद्भवं पक्वफलं च लड्डुकादिकम्।
परमान्नं च मिष्टान्नं नैवेद्यं देवि गृह्यताम्॥

देवि! देश-कालके अनुसार उपलब्ध हुए पके फल तथा लड्डू आदि उत्तम मिष्टान्न नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। इसे स्वीकार करो।

(१३) ताम्बूल और (१४) जल

ताम्बूलं च वरं रम्यं कर्पूरादिसुवासितम्।
सर्वभोगाधिकं स्वादु सलिलं देवि गृह्यताम्॥

देवि! कर्पूर आदिसे सुवासित, सब भोगोंसे उत्कृष्ट, रमणीय एवं सुन्दर ताम्बूल तथा स्वादिष्ट जल ग्रहण करो।

(१५) मधुपर्क

अशनं रत्नपात्रस्थं सुस्वादु सुमनोहरम्।
मया निवेदितं भक्त्या गृह्यतां परमेश्वरि॥

परमेश्वरि! रत्नमय पात्रमें रखा हुआ यह अशन (मधुपर्क) अत्यन्त स्वादिष्ट तथा परम मनोहर है। मैंने भक्तिभावसे इसे सेवामें समर्पित किया है। कृपया स्वीकार करो।

(१६) शय्या

रत्नेन्द्रसारनिर्माणं वह्निशुद्धांशुकान्वितम्।
पुष्पचन्दनचर्चाढ्यं पर्यङ्कं देवि गृह्यताम्॥

देवि! श्रेष्ठ रत्नोंके सारभागसे निर्मित, अग्निशुद्ध निर्मल वस्त्रसे आच्छादित तथा पुष्प और चन्दनसे चर्चित यह शय्या प्रस्तुत है। इसे ग्रहण करो।

इस प्रकार देवी श्रीराधाका सम्यक् पूजन करके उनके लिये तीन बार पुष्पाञ्जलि दे तथा देवीकी आठ नायिकाओंका, जो उनकी परम प्रिया परिचारिकाएँ हैं, यत्नपूर्वक भक्तिभावसे षोडशोपचार पूजन करे। प्रिये! उनके पूजनका क्रम पूर्व आदिसे आरम्भ करके दक्षिणावर्त बताया गया है। पूर्वदिशामें मालावती, अग्निकोणमें माधवी, दक्षिणमें रत्नमाला, नैर्ऋत्यकोणमें सुशीला, पश्चिममें शशिकला, वायव्यकोणमें पारिजाता, उत्तरमें पद्मावती तथा ईशानकोणमें सुन्दरीकी पूजा करे।

व्रती पुरुष व्रतकालमें यूथिका (जूही), मालती और कमलोंकी माला चढ़ावे। तत्पश्चात् सामवेदोक्त रीतिसे परिहार नामक स्तुति करे—परिहारके मन्त्र इस प्रकार हैं—

त्वं देवी जगतां माता विष्णुमाया सनातनी।
कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी।
कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम।
पूजितासि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता॥

कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता।
रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या।
चम्पावती कृष्णसङ्गे क्रीडा चम्पककानने॥
चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृंगे सतीति च।
विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे।
भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या वै काम्यके वने॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि।
क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया॥
सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी।
सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकरवक्षसि॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि।
कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रसूः॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी।
लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः।
अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे।
कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत्।
पुराकृतं स्तोत्रमेतद्भक्तिदास्यप्रदं शुभम्॥

(श्लोक ४४—५५)

श्रीराधे! तुम देवी हो। जगज्जननी सनातनी विष्णुमाया हो। श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी तथा उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। शुभस्वरूपा हो। कृष्णप्रेममयी शक्ति तथा श्रीकृष्णसौभाग्यरूपिणी हो। श्रीकृष्णकी भक्ति प्रदान करनेवाली मङ्गलदायिनी राधे! तुम्हें नमस्कार है। आज मेरा जन्म सफल है। आज मेरा जीवन सार्थक हुआ; क्योंकि श्रीकृष्णने जिसकी पूजा की है, वही देवी आज मेरे द्वारा पूजित हुई। श्रीकृष्णके वक्षःस्थलमें जो सर्वसौभाग्यशालिनी राधा हैं, वे ही रासमण्डलमें रासेश्वरी, वृन्दावनमें वृन्दा, गोलोकमें कृष्णप्रिया, तुलसी-काननमें तुलसी, कृष्णसंगमें चम्पावती, चम्पक-काननमें क्रीडा, चन्द्रवनमें चन्द्रावली, शतशृङ्ग पर्वतपर सती, विरजातटवर्ती काननमें विरजादर्पहन्त्री, पद्मवनमें पद्मावती, कृष्णसरोवरमें कृष्णा, कुञ्जकुटीरमें भद्रा, काम्यकवनमें काम्या, वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, नारायणके हृदयमें वाणी, क्षीरसागरमें सिन्धुकन्या, मर्त्यलोकमें हरिप्रिया लक्ष्मी, सम्पूर्ण स्वर्गमें देवदुःखविनाशिनी स्वर्गलक्ष्मी तथा शंकरके वक्षःस्थलपर सनातनी विष्णुमाया दुर्गा हैं। वही अपनी कलाद्वारा वेदमाता सावित्री होकर ब्रह्मवक्षमें विलास करती हैं। देवि राधे! तुम्हीं अपनी कलासे धर्मकी पत्नी एवं मुनि नर-नारायणकी जननी हो। तुम्हीं अपनी कलाद्वारा तुलसी तथा भुवनपावनी गङ्गा हो। गोपियाँ तुम्हारे रोमकूपोंसे प्रकट हुई हैं। रोहिणी तथा रति तुम्हारी कलाकी अंशस्वरूपा हैं। शतरूपा, शची और दिति तुम्हारी कलाकी कलांशरूपिणी हैं। देवमाता हरिप्रिया अदिति तुम्हारी कलांशरूपा हैं। शुभे! देवाङ्गनाएँ और मुनिपत्नियाँ तुम्हारी कलाकी कलासे प्रकट हुई हैं। कृष्णपूजिते! तुम मुझे श्रीकृष्णकी भक्ति और श्रीकृष्णका दास्य प्रदान करो।

इस प्रकार परिहार एवं स्तुति करके कवचका पाठ करे। यह प्राचीन शुभ स्तोत्र श्रीहरिकी भक्ति एवं दास्य प्रदान करनेवाला है।

इस प्रकार जो प्रतिदिन श्रीराधाकी पूजा करता है, वह भारतवर्षमें साक्षात् विष्णुके समान है। जीवन्मुक्त एवं पवित्र है। उसे निश्चय ही गोलोकधामकी प्राप्ति होती है। शिवे! जो प्रतिवर्ष कार्तिककी पूर्णिमाको इसी क्रमसे राधाकी पूजा करता है, वह राजसूय-यज्ञके फलका भागी होता है। इहलोकमें उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न एवं पुण्यवान् होता है और अन्तमें सब पापोंसे मुक्त हो श्रीकृष्णधाममें जाता है। पार्वति! आदिकालमें पहले श्रीकृष्णने इसी क्रमसे वृन्दावनके रासमण्डलमें श्रीराधाकी स्तुति एवं पूजा की थी। दूसरी बार

तुम्हारे वरसे वेदमाता सावित्रीको पाकर सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने इसी क्रमसे राधाका पूजन किया था। नारायणने भी श्रीराधाकी आराधना करके महालक्ष्मी, सरस्वती, गङ्गा तथा भुवनपावनी पराशक्ति तुलसीको प्राप्त किया था। क्षीरसागरशायी श्रीविष्णुने राधाकी आराधना करके ही सिन्धुसुताको प्राप्त किया था। पहले दक्षकन्याकी मृत्यु हो जानेपर मैंने भी श्रीकृष्णकी आज्ञासे पुष्करमें श्रीराधाकी पूजा की और उसके प्रभावसे तुम्हें प्राप्त किया। पतिव्रता श्रीराधाकी पूजा करके उनके दिये हुए वरसे कामदेवने रतिको, धर्मदेवने सती साध्वी मूर्तिको तथा देवताओं और मुनियोंने धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्षको प्राप्त किया था। इस प्रकार मैंने श्रीराधाकी पूजाका विधान बताया है। अब स्तोत्र सुनो।

एक बार श्रीराधाजी मान करके श्रीकृष्णके समीपसे अन्तर्धान हो गयीं। तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सब देवता ऐश्वर्यभ्रष्ट, श्रीहीन, भार्यारहित तथा उपद्रवग्रस्त हो गये। इस परिस्थितिपर विचार करके उन सबने भगवान् श्रीकृष्णकी शरण ली। उनके स्तोत्रसे संतुष्ट हुए सबके परमात्मा श्रीकृष्णने स्नान करके शुद्ध हो सती राधिकाकी पूजा करके उनका इस प्रकार स्तवन किया।

श्रीकृष्ण बोले—सुमुखि श्रीराधे! क्या मैं इसी प्रकार तुम्हारा प्रिय हूँ और मुझमें तुम्हारी प्रीति है? तुम्हारी वाणीमें जो छलना थी, वह आज अच्छी तरह प्रकट हो गयी। 'हे कृष्ण! तुम मेरे प्राण हो, जीवात्मा हो' इस तरहकी बातें जो तुम नित्य-निरन्तर प्रेमपूर्वक कहा करती थीं, वे अब तत्काल कहाँ चली गयीं? मैं पहले तुम्हारे सामने जो कुछ कहता था, मेरा वचन आज भी ध्रुव सत्य है। 'तुम मेरे पाँचों प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हो', 'राधा मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है'—मेरी ये बातें जैसे पहले सत्य थीं, उसी तरह आज भी हैं। मैं तुम्हें अपने पास रखनेमें समर्थ न हो सका, अतः तुम्हारे बिना मेरे प्राण चले जा रहे हैं। अधिष्ठात्री देवीके बिना कौन कहाँ जीवित रह सकता है? तुम महाविष्णुकी माता, मूलप्रकृति ईश्वरी हो। अपनी कलासे तुम सगुणरूपमें प्रकट होती हो। स्वयं तो निर्गुणा (प्राकृत गुणोंसे रहित) ही हो। ज्योतिःपुञ्ज ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम वास्तवमें निराकार हो। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही तुम रूप धारण करती हो। भक्तोंकी विभिन्न रुचिके कारण नाना प्रकारकी मूर्तियाँ ग्रहण करती हो। वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वतीके रूपमें तुम्हारा ही निवास है। पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें सत्पुरुषोंकी जननी भी तुम्हीं हो। सती और पार्वतीके रूपमें तुम्हारा ही प्राकट्य हुआ है। तुम्हीं पुण्यरूपा तुलसी और भुवनपावनी गङ्गा हो। ब्रह्मलोकमें सावित्रीके रूपमें तुम्हीं रहती हो। तुम्हीं अपनी कलासे वसुन्धरा हुई हो, गोलोकमें तुम्हीं समस्त गोपालोंकी अधीश्वरी राधा हो। तुम्हारे बिना मैं निर्जीव हूँ। किसी भी कर्मको करनेमें असमर्थ हूँ। तुम्हें शक्तिके रूपमें पाकर ही शिव शक्तिमान् हैं। तुम्हारे बिना वे शिव नहीं, शव हैं। तुम्हें ही वेदमाता सावित्रीके रूपमें अपने साथ पाकर साक्षात् ब्रह्माजी वेदोंके प्राकट्यकर्ता माने गये हैं। तुम लक्ष्मीका सहयोग मिलनेसे ही जगत्पालक नारायण जगत्का पालन करते हैं। तुम्हीं दक्षिणारूपसे साथ रहती हो, इसलिये यज्ञ फल देता है। पृथ्वीके रूपमें तुम्हें मस्तकपर धारण करके ही शेषनाग सृष्टिका संरक्षण करते हैं। गङ्गाधर शिव तुम्हें ही गङ्गारूपमें अपने मस्तकपर धारण करते हैं। तुमसे ही सारा जगत् शक्तिमान् है। तुम्हारे बिना सब कुछ शव-(मृतक-) के तुल्य है। तुम वाणी हो। तुम्हें पाकर ही सब लोग वक्ता बनते हैं। तुम्हारे बिना पौराणिक सूत भी मूक हो जाता है। जैसे कुम्हार सदा मिट्टीके सहयोगसे ही घड़ा बनानेमें समर्थ होता है, उसी प्रकार

तुम प्रकृतिदेवीके साथ ही मैं सृष्टि-रचनामें सफल होता हूँ। तुम्हारे बिना मैं सर्वत्र जड हूँ। कहीं भी शक्तिमान् नहीं हूँ। तुम्हीं सर्वशक्तिस्वरूपा हो। अतः मेरे निकट आओ। अग्निमें तुम्हीं दाहिकाशक्ति हो। तुम्हारे बिना अग्नि दाहकर्ममें समर्थ नहीं है। चन्द्रमामें तुम्हीं शोभा बनकर रहती हो। तुम्हारे बिना चन्द्रमा सुन्दर नहीं लगेगा। सूर्यमें तुम्हीं प्रभा हो। तुम्हारे बिना सूर्यदेव प्रभापूर्ण नहीं रह सकते। प्रिये! तुम्हीं रति हो। तुम्हारे बिना कामदेव कामिनियोंके प्राणवल्लभ नहीं हो सकते।

इस प्रकार श्रीराधाकी स्तुति करके जगत्प्रभु श्रीकृष्णने उन्हें प्राप्त किया। फिर तो सब देवता सश्रीक, सस्त्रीक और शक्तिसम्पन्न हो गये। गिरिराजनन्दिनि! तदनन्तर सारा जगत् सस्त्रीक हो गया। श्रीराधाकी कृपासे गोलोक गोपाङ्गनाओंसे परिपूर्ण हो गया। इसी प्रकार हरिप्रिया श्रीराधाकी स्तुति करके राजा सुयज्ञ गोलोकधाममें चले गये। जो मनुष्य श्रीकृष्णद्वारा किये गये इस राधास्तोत्रका पाठ करता है, वह श्रीकृष्णकी भक्ति और दास्यभाव प्राप्त कर लेता है, इसमें संशय नहीं है। स्त्रीसे वियोग होनेपर जो पवित्रभावसे एक मासतक इस स्तोत्रका श्रवण करता है, वह शीघ्र ही सती, सुन्दरी और सुशीला स्त्रीको प्राप्त कर लेता है। जो भार्या और सौभाग्यसे हीन है, वह यदि एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करे तो उसे भी शीघ्र ही सुन्दरी, सुशीला एवं सती भार्याकी प्राप्ति हो जाती है। पार्वति! पूर्वकालमें जब दक्ष-कन्या सतीकी मृत्यु हो गयी थी, तब परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर मैंने इसी स्तोत्रसे श्रीराधाकी स्तुति की और तुम्हें पा लिया। पूर्वकालमें ब्रह्माजीको भी इसी स्तोत्रके प्रभावसे सावित्रीकी प्राप्ति हुई थी। पूर्वकालमें दुर्वासाके शापसे जब देवतालोग श्रीहीन हो गये, तब इसी स्तोत्रसे श्रीराधाकी स्तुति करके उन्होंने परम दुर्लभ लक्ष्मी प्राप्त की थी। पुत्रकी इच्छावाला पुरुष यदि एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करे तो उसे पुत्र प्राप्त हो जाता है। इस स्तोत्रके प्रसादसे मनुष्य बहुत बड़ी व्याधि एवं रोगोंसे मुक्त हो जाता है। जो कार्तिककी पूर्णिमाको श्रीराधाका पूजन करके इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह अविचल लक्ष्मीको पाता है तथा राजसूय-यज्ञके फलका भागी होता है। यदि नारी इस स्तोत्रका श्रवण करे तो वह पतिके सौभाग्यसे सम्पन्न होती है। जो भक्तिपूर्वक इस स्तोत्रको सुनता है, वह निश्चय ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो प्रतिदिन भक्तिभावसे श्रीराधाकी पूजा करके प्रेमपूर्वक इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह भवबन्धनसे मुक्त हो गोलोकधाममें जाता है। (अध्याय ५५)

श्रीजगन्मङ्गल-राधाकवच तथा उसकी महिमा

श्रीपार्वती बोलीं— श्रीराधाकी पूजाका विधान और स्तोत्र अत्यन्त अद्भुत है, उसे मैंने सुन लिया। अब राधाकवचका वर्णन कीजिये। आपकी कृपासे उसे भी सुनूँगी।

श्रीमहेश्वरने कहा— दुर्गे! सुनो। मैं परम अद्भुत राधाकवचका वर्णन आरम्भ करता हूँ। पूर्वकालमें साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णने गोलोकमें इस अति गोपनीय परम तत्त्वरूप तथा सर्वमन्त्रसमूहमय कवचका मुझसे वर्णन किया था। यह वही कवच है, जिसे धारण करके पाठ करनेसे ब्रह्माने वेदमाता सावित्रीको पत्नीरूपमें प्राप्त किया। सुरेश्वरि! तुम सर्वलोकजननी हो। मुझे तुम्हारा स्वामी होनेका जो सौभाग्य प्राप्त हुआ है, वह इस कवचको धारण करनेका ही प्रभाव

है। इसीको धारण करके भगवान् नारायणने महालक्ष्मीको प्राप्त किया। इसीको धारण करनेसे प्रकृतिसे परवर्ती निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्ण पूर्वकालमें सृष्टिरचना करनेकी शक्तिसे सम्पन्न हुए। जगत्पालक विष्णुने इसीको धारण करके सिन्धुकन्याको प्राप्त किया। इसी कवचके प्रभावसे शेषनाग समस्त ब्रह्माण्डको अपने मस्तकपर सरसोंके दानेकी भाँति धारण करते हैं। इसीका आश्रय ले महाविराट् प्रत्येक रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्डोंको धारण करते हैं और सबके आधार बने हैं। इस कवचका धारण और पाठ करनेसे धर्म सबके साक्षी और कुबेर धनाध्यक्ष हुए हैं। इसके पाठ और धारणका ही यह प्रभाव है कि इन्द्र देवताओंके स्वामी तथा मनु नरेशोंके भी सम्राट् हुए हैं। इसके पाठ और धारणसे ही श्रीमान् चन्द्रदेव राजसूय-यज्ञ करनेमें सफल हुए और सूर्यदेव तीनों लोकोंके ईश्वर-पदपर प्रतिष्ठित हो सके। इसका मनके द्वारा धारण और वाणीद्वारा पाठ करनेसे अग्निदेव जगत्‌को पवित्र करते हैं तथा पवनदेव मन्दगतिसे प्रवाहित हो तीनों भुवनोंको पावन बनाते हैं। इस कवचको ही धारण करनेका यह प्रभाव है कि मृत्युदेव समस्त प्राणियोंमें स्वच्छन्दगतिसे विचरते हैं। इसके पाठ और धारणसे ही सशक्त हो जमदग्निनन्दन परशुरामने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे सूनी कर दिया और कुम्भज ऋषिने समुद्रको पी लिया। इसे धारण करके ही भगवान् सनत्कुमार ज्ञानियोंके गुरु हुए हैं और नर-नारायण ऋषि जीवन्मुक्त एवं सिद्ध हो गये हैं। इसीके धारण और पठनसे ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ सिद्ध हो गये हैं। कपिल सिद्धोंके स्वामी हुए हैं। इसीके प्रभावसे प्रजापति दक्ष और भृगु मुझसे निर्भय होकर द्वेष करते हैं, कूर्म शेषको भी धारण करते हैं, वायुदेव सबके आधार हुए हैं और वरुण सबको पवित्र करनेवाले हो सके हैं। शिवे! इसीके प्रभावसे ईशान दिक्पाल और यम शासक हुए हैं। इसीका आश्रय लेनेसे काल एवं कालाग्निरुद्र तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हो सके हैं। इसीको धारण करके गौतम सिद्ध हुए, कश्यप प्रजापतिके पदपर प्रतिष्ठित हो सके और मुनिवर दुर्वासाने अपनी पत्नीका वियोग होनेपर पूर्वकालमें देवीकी कलास्वरूपा वसुदेवकुमारी एकानंशाको प्राप्त किया। पूर्वकालमें श्रीरामचन्द्रजीने रावणद्वारा हरी हुई सीताको इसी कवचके प्रतापसे प्राप्त किया। राजा नलने इसीके पाठसे सती दमयन्तीको पाया। महावीर शङ्खचूड़ इसीके प्रभावसे दैत्योंका स्वामी हुआ। दुर्गे! इसीका आश्रय लेनेसे वृषभ नन्दिकेश्वर मुझको वहन करते हैं और गरुड़ श्रीहरिके वाहन हो सके हैं। पूर्वकालके सिद्धों और मुनियोंने इसीके प्रभावसे सिद्धि प्राप्त की। इसीको धारण करके महालक्ष्मी सम्पूर्ण सम्पदाओंको देनेमें समर्थ हुई। सरस्वतीको सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ स्थान प्राप्त हुआ तथा कामपत्नी रति क्रीडामें कुशल हो सकी। वेदमाता सावित्रीने इस कवचके प्रभावसे ही सिद्धि प्राप्त की। सिन्धुकन्या इसीके बलसे मर्त्यलक्ष्मी और विष्णुकी पत्नी हुई। इसीको धारण करके तुलसी पवित्र और गङ्गा भुवनपावनी हुई। इसका आश्रय लेकर ही वसुन्धरा सबकी आधारभूमि तथा सम्पूर्ण शस्योंसे सम्पन्न हुई। इसको धारण करनेसे मनसादेवी विश्वपूजित सिद्धा हुई और देवमाता अदितिने भगवान् विष्णुको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। लोपामुद्रा और अरुन्धतीने इस कवचको धारण करके ही पतिव्रताओंमें ऊँचा स्थान प्राप्त किया तथा सती देवहूतिने इसीके प्रभावसे कपिल-जैसा पुत्र पाया। शतरूपाने जो प्रियव्रत और उत्तानपाद-जैसे पुत्र प्राप्त किये तथा तुम्हारी माता मेनाने भी जो तुम-जैसी देवी गिरिजाको पुत्रीके रूपमें पाया, वह इस कवचका ही माहात्म्य है। इस प्रकार समस्त सिद्धगणोंने राधाकवचके प्रभावसे सम्पूर्ण ऐश्वर्य प्राप्त किये हैं।

विनियोग

ॐ अस्य श्रीजगन्मङ्गलकवचस्य प्रजापति-र्ऋषिर्गायत्री छन्दः स्वयं रासेश्वरी देवता श्रीकृष्ण-भक्तिसम्प्राप्तौ विनियोगः।

इस जगन्मङ्गल राधाकवचके प्रजापति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है, स्वयं रासेश्वरी देवता हैं और श्रीकृष्णभक्ति-प्राप्तिके लिये इसका विनियोग बताया गया है।

जो अपना शिष्य और श्रीकृष्णभक्त ब्राह्मण हो, उसीके समक्ष इस कवचको प्रकाशित करे। जो शठ तथा दूसरेका शिष्य हो, उसको इसका उपदेश देनेसे मृत्युकी प्राप्ति होती है। प्रिये! राज्य दे दे, अपना मस्तक कटा दे; परंतु अनधिकारीको यह कवच न दे। मैंने गोलोकमें देखा था कि साक्षात् परमात्मा श्रीकृष्णने भक्तिभावसे अपने कण्ठमें इसको धारण किया था। पूर्वकालमें ब्रह्मा और विष्णुने भी इसे अपने गलेमें स्थान दिया था।

'ॐ राधायै स्वाहा।' यह मन्त्र कल्पवृक्षके समान मनोवाञ्छित फल देनेवाला है और श्रीकृष्णने इसकी उपासना की है। यह मेरे मस्तककी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा।' यह मन्त्र मेरे कपालकी तथा दोनों नेत्रों और कानोंकी सदा रक्षा करे। 'ॐ रां ह्रीं श्रीं राधिकायै स्वाहा।' यह मन्त्रराज सदा मेरे मस्तक और केशसमूहोंकी रक्षा करे। 'ॐ रां राधायै स्वाहा।' यह सर्वसिद्धिदायक मन्त्र मेरे कपोल, नासिका और मुखकी रक्षा करे। 'ॐ क्लीं श्रीं कृष्णप्रियायै नमः।' यह मन्त्र मेरे कण्ठकी रक्षा करे। 'ॐ रां रासेश्वर्यै नमः।' यह मन्त्र मेरे कंधेकी रक्षा करे। 'ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा।' यह मन्त्र मेरे पृष्ठभागकी सदा रक्षा करे। 'ॐ वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा।' यह मन्त्र वक्षःस्थलकी सदा रक्षा करे। 'ॐ तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा।' यह मन्त्र नितम्बकी रक्षा करे। 'ॐ कृष्णप्राणाधिकायै स्वाहा।' यह मन्त्र दोनों चरणों तथा सम्पूर्ण अङ्गोंकी सदा सब ओरसे रक्षा करे। राधा पूर्व-दिशामें मेरी रक्षा करें। कृष्णप्रिया अग्निकोणमें मेरा पालन करें। रासेश्वरी दक्षिणदिशामें मेरी रक्षाका भार सँभालें। गोपीश्वरी नैर्ऋत्यकोणमें मेरा संरक्षण करें। निर्गुणा पश्चिम तथा कृष्णपूजिता वायव्यकोणमें मेरा पालन करें। मूलप्रकृति ईश्वरी उत्तरदिशामें निरन्तर मेरे संरक्षणमें लगी रहें। सर्वपूजिता सर्वेश्वरी सदा ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। महाविष्णु-जननी जल, स्थल, आकाश, स्वप्न और जागरणमें सदा सब ओरसे मेरा संरक्षण करें।

दुर्गे! यह परम उत्तम श्रीजगन्मङ्गलकवच मैंने तुमसे कहा है। यह गूढ़से भी परम गूढ़तर तत्त्व है। इसका उपदेश हर एकको नहीं देना चाहिये। मैंने तुम्हारे स्नेहवश इसका वर्णन किया है। किसी अनधिकारीके सामने इसका प्रवचन नहीं करना चाहिये। जो वस्त्र, आभूषण और चन्दनसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके इस कवचको कण्ठ या दाहिनी बाँहमें धारण करता है, वह भगवान् विष्णुके समान तेजस्वी हो जाता है। सौ लाख जप करनेपर यह कवच सिद्ध हो जाता है। यदि किसीको यह कवच सिद्ध हो जाय तो वह आगसे जलता नहीं है। दुर्गे! पूर्वकालमें इस कवचको धारण करनेसे ही राजा दुर्योधनने जल और अग्निका स्तम्भन करनेमें निश्चितरूपसे दक्षता प्राप्त की थी। मैंने पहले पुष्करतीर्थमें सूर्यग्रहणके अवसरपर सनत्कुमारको इस कवचका उपदेश दिया था। सनत्कुमारने मेरुपर्वतपर सान्दीपनिको यह कवच प्रदान किया। सान्दीपनिने बलरामजीको और बलरामजीने दुर्योधनको इसका उपदेश दिया। इस कवचके प्रसादसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो सकता है।*

*ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च। कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं राधिका ङेऽन्तं वह्निजायान्तमेव च। कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदावतु॥

जो राधामन्त्रका उपासक होकर प्रतिदिन इस कवचका भक्तिभावसे पाठ करता है, वह विष्णुतुल्य तेजस्वी होता तथा राजसूय-यज्ञका फल पाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, सब प्रकारका दान, सम्पूर्ण व्रतोंमें उपवास, पृथ्वीकी परिक्रमा, समस्त यज्ञोंकी दीक्षाका ग्रहण, सदैव सत्यकी रक्षा, नित्यप्रति श्रीकृष्णकी सेवा, श्रीकृष्ण-नैवेद्यका भक्षण तथा चारों वेदोंका पाठ करनेपर मनुष्य जिस फलको पाता है, उसे निश्चय ही वह इस कवचके पाठसे पा लेता है। राजद्वारपर, श्मशानभूमिमें, सिंहों और व्याघ्रोंसे भरे हुए वनमें, दावानलमें, विशेष संकटके अवसरपर, डाकुओं और चोरोंसे भय प्राप्त होनेपर, जेल जानेपर, विपत्तिमें पड़ जानेपर, भयंकर एवं अटूट बन्धनमें बँधनेपर तथा रोगोंसे आक्रान्त होनेपर यदि मनुष्य इस कवचको धारण कर ले तो निश्चय ही वह समस्त दुःखोंसे छूट जाता है। दुर्गे! महेश्वरि! यह तुम्हारा ही कवच तुमसे कहा है। तुम्हीं सर्वरूपा माया हो और छलसे इस विषयमें मुझसे पूछ रही हो।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार राधिकाकी कथा कहकर बारंबार माधवका स्मरण करके भगवान् शंकरके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगी। श्रीकृष्णके समान कोई देवता नहीं है, गङ्गा-जैसी दूसरी नदी नहीं है, पुष्करके समान कोई तीर्थ नहीं है तथा ब्राह्मणसे बढ़कर कोई वर्ण नहीं है। नारद! जैसे परमाणुसे बढ़कर सूक्ष्म, महाविष्णु (महाविराट्)-से बढ़कर महान् तथा आकाशसे अधिक विस्तृत दूसरी कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार वैष्णवसे बढ़कर ज्ञानी तथा भगवान् शंकरसे बढ़कर कोई योगीन्द्र नहीं है। देवर्षे! उन्होंने ही काम, क्रोध, लोभ और मोहपर विजय पायी है। भगवान् शिव सोते, जागते हर समय श्रीकृष्णके ध्यानमें तत्पर रहते हैं। जैसे कृष्ण हैं, वैसे शिव हैं। श्रीकृष्ण और शिवमें कोई भेद नहीं है।* वत्स! जैसे वैष्णवोंमें शम्भु तथा देवताओंमें माधव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार कवचोंमें यह जगन्मङ्गल राधाकवच सर्वोत्तम है। 'शि' यह मङ्गलवाचक है

ॐ रां ह्रीं श्रीं राधिकेति ङेऽन्तं वह्निजायान्तमेव च । मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदावतु ॥
ॐ रां राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च । सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम् ॥
क्लीं श्रीं कृष्णप्रिया ङेऽन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम् । ॐ रां रासेश्वरी ङेऽन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम् ॥
ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदावतु । वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदावतु ॥
तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम् । कृष्णप्राणाधिका ङेऽन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् ॥
पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः । राधा रक्षतु प्राच्यां च वह्नौ कृष्णप्रियावतु ॥
दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु । पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता ॥
उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी । सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता ॥
जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा । महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम् ॥
कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गूढाद् गूढतरं परम् ॥
तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् । गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालंकारचन्दनैः ॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत् । शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत् ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत् । एतस्मात् कवचाद् दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा ॥
विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम् । मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे ॥
सूर्यपर्वणि मेरौ च स सान्दीपनये ददौ । बलाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ।

(प्रकृतिखण्ड ५६ । ३२—४९)

* यथा कृष्णस्तथा शम्भुर्न भेदो माधवेशयोः ॥

(प्रकृतिखण्ड ५६ । ६२)

और 'व' कारका अर्थ है दाता। जो मङ्गलदाता है, वही शिव कहा गया है। जो विश्वके मनुष्योंका सदा 'शं' अर्थात् कल्याण करते हैं, वे ही शंकर कहे गये हैं। कल्याणका तात्पर्य यहाँ मोक्षसे है। ब्रह्मा आदि देवता तथा वेदवादी मुनि—ये महान् कहे गये हैं। उन महान् पुरुषोंके जो देवता हैं, उन्हें महादेव कहते हैं। सम्पूर्ण विश्वमें पूजित मूलप्रकृति ईश्वरीको महती देवी कहा गया है। उस महादेवीके द्वारा पूजित देवताका नाम महादेव है। विश्वमें स्थित जितने महान् हैं, उन सबके वे ईश्वर हैं। इसलिये मनीषी पुरुष इन्हें महेश्वर कहते हैं।* ब्रह्मपुत्र नारद! तुम धन्य हो, जिसके गुरु श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करनेवाले साक्षात् महेश्वर हैं। फिर तुम मुझसे क्यों पूछ रहे हो! (अध्याय ५६)

दुर्गाजीके सोलह नामोंकी व्याख्या, दुर्गाकी उत्पत्ति तथा उनके पूजनकी परम्पराका संक्षिप्त वर्णन

नारदजी बोले—ब्रह्मन्! मैंने अत्यन्त अद्भुत सम्पूर्ण उपाख्यानोंको सुना। अब दुर्गाजीके उत्तम उपाख्यानको सुनना चाहता हूँ। वेदकी कौथुमी शाखामें जो दुर्गा, नारायणी, ईशाना, विष्णुमाया, शिवा, सती, नित्या, सत्या, भगवती, सर्वाणी, सर्वमङ्गला, अम्बिका, वैष्णवी, गौरी, पार्वती और सनातनी—ये सोलह नाम बताये गये हैं, वे सबके लिये कल्याणदायक हैं। वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारायण! इन सोलह नामोंका जो उत्तम अर्थ है, वह सबको अभीष्ट है। उसमें सर्वसम्मत वेदोक्त अर्थको आप बताइये। पहले किसने दुर्गाजीकी पूजा की है? फिर दूसरी, तीसरी और चौथी बार किन-किन लोगोंने उनका सर्वत्र पूजन किया है?

श्रीनारायणने कहा—देवर्षे! भगवान् विष्णुने वेदमें इन सोलह नामोंका अर्थ किया है, तुम उसे जानते हो तो भी मुझसे पुनः पूछते हो। अच्छा, मैं आगमोंके अनुसार उन नामोंका अर्थ कहता हूँ। दुर्गा शब्दका पदच्छेद यों है—दुर्ग+आ। 'दुर्ग' शब्द दैत्य, महाविघ्न, भवबन्धन, कर्म, शोक, दुःख, नरक, यमदण्ड, जन्म, महान् भय तथा अत्यन्त रोगके अर्थमें आता है तथा 'आ' शब्द 'हन्ता' का वाचक है। जो देवी इन दैत्य और महाविघ्न आदिका हनन करती है, उसे 'दुर्गा' कहा गया है। यह दुर्गा यश, तेज, रूप और गुणोंमें नारायणके समान है तथा नारायणकी ही शक्ति है। इसलिये 'नारायणी' कही गयी है। ईशानाका पदच्छेद इस प्रकार है—ईशान+आ। 'ईशान' शब्द सम्पूर्ण सिद्धियोंके अर्थमें प्रयुक्त होता है और 'आ' शब्द दाताका वाचक है। जो सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाली है, वह देवी 'ईशाना' कही गयी है। पूर्वकालमें सृष्टिके समय परमात्मा विष्णुने मायाकी सृष्टि की थी और अपनी उस मायाद्वारा सम्पूर्ण विश्वको मोहित किया। वह मायादेवी विष्णुकी ही शक्ति है, इसलिये 'विष्णुमाया' कही गयी है। 'शिवा' शब्दका पदच्छेद यों है—शिव+आ। 'शिव' शब्द शिव एवं कल्याण-

---

*शिरिति मङ्गलार्थं च वकारो दातृवाचकः। मङ्गलानां प्रदाता यः स शिवः परिकीर्तितः॥
नराणां संततं विश्वे शं कल्याणं करोति यः। कल्याणं मोक्षवचनं स एव शंकरः स्मृतः॥
ब्रह्मादीनां सुराणां च मुनीनां वेदवादिनाम्। तेषां च महतां देवो महादेवः प्रकीर्तितः॥
महती पूजिता विश्वे मूलप्रकृतिरीश्वरी। तस्या देवः पूजितश्च महादेवः स च स्मृतः॥
विश्वस्थानां च सर्वेषां महतामीश्वरः स्वयम्। महेश्वरं च तेनेमं प्रवदन्ति मनीषिणः॥
(प्रकृतिखण्ड ५६। ६३—६७)

अर्थमें प्रयुक्त होता है तथा 'आ' शब्द प्रिय और दाता-अर्थमें। वह देवी कल्याणस्वरूपा है, शिवदायिनी है और शिवप्रिया है, इसलिये 'शिवा' कही गयी है। देवी दुर्गा सद्बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं, प्रत्येक युगमें विद्यमान हैं तथा पतिव्रता एवं सुशीला हैं। इसीलिये उन्हें 'सती' कहते हैं। जैसे भगवान् नित्य हैं, उसी तरह भगवती भी 'नित्या' हैं। प्राकृत प्रलयके समय वे अपनी मायासे परमात्मा श्रीकृष्णमें तिरोहित रहती हैं। ब्रह्मासे लेकर तृण अथवा कीटपर्यन्त सम्पूर्ण जगत् कृत्रिम होनेके कारण मिथ्या ही है, परंतु दुर्गा सत्यस्वरूपा हैं। जैसे भगवान् सत्य हैं, उसी तरह प्रकृतिदेवी भी 'सत्या' हैं। सिद्ध, ऐश्वर्य आदिके अर्थमें 'भग' शब्दका प्रयोग होता है, ऐसा समझना चाहिये। वह सम्पूर्ण सिद्ध, ऐश्वर्यादिरूप भग प्रत्येक युगमें जिनके भीतर विद्यमान है, वे देवी दुर्गा 'भगवती' कही गयी हैं। जो विश्वके सम्पूर्ण चराचर प्राणियोंको जन्म, मृत्यु, जरा आदिकी तथा मोक्षकी भी प्राप्ति कराती हैं, वे देवी अपने इसी गुणके कारण 'सर्वाणी' कही गयी हैं। 'मङ्गल' शब्द मोक्षका वाचक है और 'आ' शब्द दाताका। जो सम्पूर्ण मोक्ष देती हैं, वे ही देवी 'सर्वमङ्गला' हैं। 'मङ्गल' शब्द हर्ष, सम्पत्ति और कल्याणके अर्थमें प्रयुक्त होता है। जो उन सबको देती हैं, वे ही देवी 'सर्वमङ्गला' नामसे विख्यात हैं। 'अम्बा' शब्द माताका वाचक है तथा वन्दन और पूजन-अर्थमें भी 'अम्ब' शब्दका प्रयोग होता है। वे देवी सबके द्वारा पूजित और वन्दित हैं तथा तीनों लोकोंकी माता हैं, इसलिये 'अम्बिका' कहलाती हैं। देवी श्रीविष्णुकी भक्ता, विष्णुरूपा तथा विष्णुकी शक्ति हैं। साथ ही सृष्टिकालमें विष्णुके द्वारा ही उनकी सृष्टि हुई है। इसलिये उनकी 'वैष्णवी' संज्ञा है। 'गौर' शब्द पीले रंग, निर्लिप्त एवं निर्मल परब्रह्म परमात्माके अर्थमें प्रयुक्त होता है। उन 'गौर' शब्दवाच्य परमात्माकी वे शक्ति हैं, इसलिये वे 'गौरी' कही गयी हैं। भगवान् शिव सबके गुरु हैं और देवी उनकी सती-साध्वी प्रिया शक्ति हैं। इसलिये 'गौरी' कही गयी हैं। श्रीकृष्ण ही सबके गुरु हैं और देवी उनकी माया हैं। इसलिये भी उनको 'गौरी' कहा गया है। 'पर्व' शब्द तिथिभेद (पूर्णिमा), पर्वभेद, कल्पभेद तथा अन्यान्य भेद अर्थमें प्रयुक्त होता है तथा 'ती' शब्द ख्यातिके अर्थमें आता है। उन पर्व आदिमें विख्यात होनेसे उन देवीकी 'पार्वती' संज्ञा है। 'पर्वन्' शब्द महोत्सव-विशेषके अर्थमें आता है। उसकी अधिष्ठात्री देवी होनेके नाते उन्हें 'पार्वती' कहा गया है। वे देवी पर्वत (गिरिराज हिमालय)-की पुत्री हैं। पर्वतपर प्रकट हुई हैं तथा पर्वतकी अधिष्ठात्री देवी हैं। इसलिये भी उन्हें 'पार्वती' कहते हैं। 'सना' का अर्थ है सर्वदा और 'तनी' का अर्थ है विद्यमान। सर्वत्र और सब कालमें विद्यमान होनेसे वे देवी 'सनातनी' कही गयी हैं।

महामुने! आगमोंके अनुसार सोलह नामोंका अर्थ बताया गया। अब देवीका वेदोक्त उपाख्यान सुनो। पहले-पहल परमात्मा श्रीकृष्णने सृष्टिके आदिकालमें गोलोकवर्ती वृन्दावनके रासमण्डलमें देवीकी पूजा की थी। दूसरी बार मधु और कैटभसे भय प्राप्त होनेपर ब्रह्माजीने उनकी पूजा की। तीसरी बार त्रिपुरारि महादेवने त्रिपुरसे प्रेरित होकर देवीका पूजन किया था। चौथी बार पहले दुर्वासाके शापसे राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हुए देवराज इन्द्रने भक्तिभावके साथ देवी भगवती सतीकी समाराधना की थी। तबसे मुनीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों, देवताओं तथा श्रेष्ठ महर्षियोंद्वारा सम्पूर्ण विश्वमें सब ओर और सदा देवीकी पूजा होने लगी।

मुने! पूर्वकालमें सम्पूर्ण देवताओंके तेजःपुञ्जसे देवी प्रकट हुई थीं। उस समय सब देवताओंने अस्त्र-शस्त्र और आभूषण दिये थे। उन्हीं दुर्गादेवीने दुर्ग आदि दैत्योंका वध किया

और देवताओंको अभीष्ट वरके साथ स्वराज्य दिया। दूसरे कल्पमें महात्मा राजा सुरथने, जो मेधस् ऋषिके शिष्य थे, सरिताके तटपर मिट्टीकी मूर्तिमें देवीकी पूजा की थी। उन्होंने वेदोक्त सोलह उपचार अर्पित करके विधिवत् पूजन और ध्यानके पश्चात् कवच धारण किया तथा परिहार नामक स्तुति करके अभीष्ट वर पाया। इसी तरह उसी सरिताके तटपर उसी मृण्मयी मूर्तिमें एक वैश्यने भी देवीकी पूजा करके मोक्ष प्राप्त किया। राजा और वैश्यने नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए दोनों हाथ जोड़कर देवीकी स्तुति की और उनकी उस मृण्मयी प्रतिमाका नदीके निर्मल गम्भीर जलमें विसर्जन कर दिया। वैसी मृण्मयी प्रतिमाको जलमग्न हुई देख राजा और वैश्य दोनों रो पड़े और वहाँसे अन्यत्र चले गये। वैश्यने देह त्याग करके जन्मान्तरमें पुष्करतीर्थमें दुष्कर तपस्या की और दुर्गादेवीके वरदानसे वे गोलोकधाममें चले गये। राजा अपने निष्कण्टक राज्यको लौट गये और वहाँ सबके आदरणीय होकर बलपूर्वक शासन करने लगे। उन्होंने साठ हजार वर्षोंतक राज्य भोग किया। तत्पश्चात् अपनी पत्नी तथा राज्यका भार पुत्रको सौंपकर वे कालयोगसे पुष्करमें तप करके दूसरे जन्ममें सावर्णि मनु हुए। वत्स! मुनिश्रेष्ठ! इस प्रकार मैंने आगमोंके अनुसार दुर्गोपाख्यानका संक्षेपसे वर्णन किया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर भगवान् नारायणने ताराकी कथा कही और चैत्रतनय राजा अधिरथसे राजा सुरथकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाया।

(अध्याय ५७—६१)

सुरथ और समाधि वैश्यका मेधस्के आश्रमपर जाना, मुनिका दुर्गाकी महिमा एवं उनकी आराधना-विधिका उपदेश देना तथा दुर्गाकी आराधनासे उन दोनोंके अभीष्ट मनोरथकी पूर्ति

तदनन्तर नारदजीके प्रश्नका उत्तर देते हुए भगवान् नारायण बोले—ध्रुवके पौत्र तथा उत्कलके पुत्र बलवान् नन्दि स्वायम्भुव मनुके वंशमें सत्यवादी एवं जितेन्द्रिय राजा थे। उन्होंने सौ अक्षौहिणी सेना लेकर महामति सुरथके राज्यको चारों ओरसे घेर लिया। नारद! दोनों पक्षोंमें पूरे एक वर्षतक निरन्तर युद्ध होता रहा। अन्तमें चिरंजीवी वैष्णवनरेश नन्दिने सुरथपर विजय पायी। नन्दिने उन्हें राज्यसे बाहर कर दिया। भयभीत राजा सुरथ रातमें अकेले घोड़ेपर सवार हो गहन वनमें चले गये। वहाँ भद्रा नदीके तटपर उनकी एक वैश्यसे भेंट हुई। मुने! उन दोनोंने परस्पर बन्धुभावकी स्थापना की और उनमें बड़ा प्रेम हो गया। राजा वैश्यके साथ मेधस्के आश्रमपर गये। भारतमें सत्पुरुषोंके लिये जो दुष्कर पुण्यक्षेत्र है, उस पुष्करमें जाकर राजाने उन महातेजस्वी मुनिका दर्शन किया। मेधस्जी अपने शिष्योंको परम दुर्लभ ब्रह्मतत्त्वका उपदेश दे रहे थे। राजा और वैश्यने मस्तक झुकाकर उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम किया। मुनिने उन दोनों अतिथियोंका आदर किया और उन्हें शुभाशीर्वाद दिया। फिर पृथक्-पृथक् उन दोनोंका कुशल-मङ्गल, जाति और नाम पूछा। राजा सुरथने उन मुनीश्वरको क्रमशः उनके प्रश्नोंका उत्तर दिया।

सुरथ बोले—ब्रह्मन्! मैं राजा सुरथ हूँ। मेरा जन्म चैत्रवंशमें हुआ है। इस समय बलवान् राजा नन्दिने मुझे अपने राज्यसे निकाल दिया है। अब मैं कौन उपाय करूँ? किस प्रकार पुनः अपने राज्यपर मेरा अधिकार हो? यह आप बतावें। महाभाग मुने! मैं आपकी ही शरणमें आया हूँ।

यह समाधि नामक वैश्य है और बड़ा धर्मात्मा है; तथापि दैववश इसके स्त्री-पुत्रोंने धनके लोभसे इसको घरसे बाहर निकाल दिया है। इसका अपराध इतना ही है कि यह स्त्री, पुत्रों और बन्धु-बान्धवोंके मना करनेपर भी प्रतिदिन ब्राह्मणोंको प्रचुर धन और रत्न दानमें दिया करता था। इसीसे क्रोधमें आकर उन लोगोंने इसे घरसे निकाल दिया। फिर शोकके कारण वे पुनः इसका अन्वेषण करते हुए आये। परंतु यह पवित्र, ज्ञानी एवं विरक्त वैश्य उनके आग्रह करनेपर भी घरको नहीं लौटा। तब इसके पुत्र भी पितृशोकसे संतप्त हो सब कर्मोंसे विरक्त हो गये और सारा धन ब्राह्मणोंको देकर घर छोड़ वनको चले गये। 'श्रीहरिका परम दुर्लभ दास्य प्राप्त हो'—यही इस वैश्यका अभीष्ट मनोरथ है। इस निष्काम वैश्यको यह अभीष्ट वस्तु कैसे प्राप्त होगी? यह बात आप विस्तारपूर्वक बतानेकी कृपा करें।

श्रीमेधस्ने कहा—राजन्! निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णकी आज्ञासे दुर्लङ्घ्य त्रिगुणमयी विष्णुमाया सम्पूर्ण विश्वको अपनी मायासे आच्छन्न कर देती है। यह कृपामयी देवी जिन धर्मात्मा पुरुषोंपर कृपा करती है, उन्हें दया करके परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-भक्ति प्रदान करती है। नरेश्वर! परंतु जिन मायावी पुरुषोंपर विष्णुमाया दया नहीं करती है, उन दुर्गतिग्रस्त जीवोंको मायाद्वारा ही मोहजालसे बाँध देती है। फिर तो वे बर्बर जीव इस नश्वर एवं अनित्य संसारमें सदा नित्यबुद्धि कर लेते हैं और परमेश्वरकी उपासना छोड़कर दूसरे-दूसरे देवताओंकी सेवामें लग जाते हैं तथा उन्हीं देवताओंके मन्त्रका जप करते हैं। लोभवश मनमें किसी मिथ्या निमित्तको स्थान देकर वे इस तरह भटक जाते हैं। अन्य देवता भी श्रीहरिकी कलाएँ हैं। उनका सात जन्मोंतक सेवन करनेके पश्चात् वे देवी प्रकृतिकी कृपासे उनकी आराधनामें संलग्न होते हैं। सात जन्मोंतक कृपामयी विष्णुमायाकी सेवा करनेके बाद उन्हें सनातन ज्ञानानन्दस्वरूप शिवकी भक्ति प्राप्त होती है। भगवान् शंकर श्रीहरिके ज्ञानके अधिष्ठाता देवता हैं। उनका सेवन करके मनुष्य शीघ्र ही उनसे श्रीविष्णु-भक्ति प्राप्त कर लेते हैं। तब उनके द्वारा सत्त्वस्वरूप सगुण विष्णुकी सेवा होने लगती है। इससे उनको परम निर्मल ज्ञानका साक्षात्कार होता है। सगुण विष्णुकी आराधनाके पश्चात् सात्त्विक वैष्णव मानव प्रकृतिसे परवर्ती निर्गुण श्रीकृष्णकी भक्ति पाते हैं। तदनन्तर वे साधु पुरुष श्रीकृष्णके निरामय मन्त्रको ग्रहण करते हैं और उन निर्गुण देवकी आराधनासे स्वयं निर्गुण हो जाते हैं। वे वैष्णव पुरुष निरामय गोलोकमें रहकर निरन्तर भगवान्‌का दास्य-(कैंकर्य-)मय सेवन करते हैं और अपनी आँखोंसे अगणित ब्रह्माओंका पतन (विनाश) देखते हैं। जो श्रेष्ठ मानव श्रीकृष्णभक्तसे उनके मन्त्रकी दीक्षा ग्रहण करता है, वह अपने पूर्वजोंकी सहस्रों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। इतना ही नहीं, वह नानाके कुलकी सहस्रों पीढ़ियोंका, माताका तथा दास आदिका भी उद्धार करके गोलोकमें चला जाता है। महाभयंकर भवसागरमें कर्णधाररूपिणी दुर्गा श्रीकृष्ण-भक्तिरूपी नौकाद्वारा उन सबको पार कर देती है। वैष्णवोंके कर्म-बन्धनका उच्छेद करनेके लिये परमात्मा श्रीकृष्णकी वह वैष्णवी शक्ति तीखे शस्त्रका काम करती है। नरेश्वर! उस शक्तिकी शक्ति भी दो प्रकारकी है। एक विवेचनाशक्ति और दूसरी आवरणी शक्ति। पहली अर्थात् विवेचनाशक्ति तो वह भक्तोंको देती है और दूसरी आवरणी शक्ति अभक्तके पल्ले बाँधती है। भगवान् श्रीकृष्ण सत्यस्वरूप हैं। उनसे भिन्न सारा जगत् नश्वर है। विवेचना-बुद्धि नित्यरूपा एवं सनातनी है। यह मेरी श्री है। यही वैष्णव भक्तोंको प्राप्त होती है। किंतु आवरणी बुद्धि कर्मोंका फल भोगनेवाले अधम अवैष्णव पुरुषोंको

प्राप्त हुआ करती है। राजन्! मैं प्रचेताका पुत्र और ब्रह्माजीका पौत्र हूँ तथा भगवान् शंकरसे ज्ञान प्राप्त करके परमात्मा श्रीकृष्णका भजन करता हूँ। महाराज! नदीके तटपर जाओ और सनातनी दुर्गाका भजन करो। तुम्हारे मनमें राज्यकी कामना है, इसलिये वे देवी तुम्हें आवरणी बुद्धि प्रदान करेंगी तथा इस निष्काम वैष्णव वैश्यको वे कृपामयी वैष्णवीदेवी शुद्ध विवेचना-बुद्धि देंगी।

ऐसा कहकर कृपानिधान मुनिवर मेधस्ने उन दोनोंको दुर्गाजीकी पूजाकी विधि, स्तोत्र, कवच और मन्त्रका उपदेश दिया। वैश्यने उन कृपामयी देवीकी आराधना करके मोक्ष प्राप्त किया तथा राजाको अपना अभीष्ट राज्य, मनुका पद और मनोवाञ्छित परम ऐश्वर्य प्राप्त हुआ। इस प्रकार मैंने सुखद, सारभूत एवं मोक्षदायक परम उत्तम दुर्गाका उपाख्यान पूर्णरूपसे सुना दिया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ६२)

सुरथ और समाधिपर देवीकी कृपा और वरदान, देवीकी पूजाका विधान, ध्यान, प्रतिमाकी स्थापना, परिहारस्तुति, शङ्खमें तीर्थोंका आवाहन तथा देवीके षोडशोपचार-पूजनका क्रम

नारदजीने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ महाभाग नारायण! अब कृपया यह बताइये कि राजाने किस प्रकारसे पराप्रकृतिका सेवन किया था? समाधि नामक वैश्यने भी किस प्रकार प्रकृतिका उपदेश पाकर निर्गुण एवं निष्काम परमात्मा श्रीकृष्णको प्राप्त किया था। उनकी पूजाका विधान, ध्यान, मन्त्र, स्तोत्र अथवा कवच क्या है? जिसका उपदेश महामुनि मेधस्ने राजा सुरथको दिया था। समाधि वैश्यको देवी प्रकृतिने कौन-सा उत्तम ज्ञान दिया था? किस उपायसे उन दोनोंको सहसा प्रकृतिदेवीका साक्षात्कार प्राप्त हुआ था? वैश्यने ज्ञान पाकर किस दुर्लभ पदको प्राप्त किया था? अथवा राजाकी क्या गति हुई थी? उसे मैं सुनना चाहता हूँ।

श्रीनारायणने कहा—मुने! राजा सुरथ और समाधि वैश्यने मेधस् मुनिसे देवीका मन्त्र, स्तोत्र, कवच, ध्यान तथा पुरश्चरण-विधि प्राप्त करके पुष्करतीर्थमें उत्तम मन्त्रका जप आरम्भ कर दिया। वे एक वर्षतक त्रिकाल स्नान करके देवीकी समाराधनामें लगे रहे, फिर दोनों शुद्ध हो गये। वहाँ उन्हें मूलप्रकृति ईश्वरीके साक्षात् दर्शन हुए। देवीने राजाको राज्यप्राप्तिका वर दिया। भविष्यमें मनुके पद और मनोवाञ्छित सुखकी प्राप्तिके लिये आश्वासन दिया। परमात्मा श्रीकृष्णने भगवान् शंकरको जो पूर्वकालमें ज्ञान दिया था, वही परम दुर्लभ गूढ़ ज्ञान देवीने वैश्यको दिया। कृपामयी देवी उपवाससे अत्यन्त क्लेश पाते हुए वैश्यको निश्चेष्ट तथा श्वासरहित हुआ देख उसे गोदमें उठाकर दुःख करने लगीं और बार-बार कहने लगीं—'बेटा! होशमें आओ।' चैतन्यरूपिणी देवीने स्वयं ही उसे चेतना दी। उस चेतनाको पाकर वैश्य होशमें आया और प्रकृतिदेवीके सामने रोने लगा। अत्यन्त कृपामयी देवी उसपर प्रसन्न हो कृपापूर्वक बोलीं।

श्रीप्रकृतिने कहा—बेटा! तुम्हारे मनमें जिस वस्तुकी इच्छा हो, उसके लिये वर माँगो। अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मत्व, अमरत्व, इन्द्रत्व, मनुत्व और सम्पूर्ण सिद्धियोंका संयोग, जो चाहो, ले लो। मैं तुम्हें बालकोंको बहलानेवाली कोई नश्वर वस्तु नहीं दूँगी।

वैश्य बोला—माँ! मुझे ब्रह्मत्व या अमरत्व पानेकी इच्छा नहीं है। उससे भी अत्यन्त दुर्लभ

कौन-सी वस्तु है? यह मैं स्वयं ही नहीं जानता। यदि कोई ऐसी वस्तु हो तो वही मेरे लिये अभीष्ट है। अब मैं तुम्हारी ही शरणमें आया हूँ, तुम्हें जो अभीष्ट हो, वही मुझे दे दो। मुझे ऐसा वर देनेकी कृपा करो, जो नश्वर न हो और सबका सार-तत्त्व हो।

श्रीप्रकृतिने कहा—बेटा! मेरे पास तुम्हारे लिये कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। जो वस्तु मुझे अभीष्ट है, वही मैं तुम्हें दूँगी, जिससे तुम परम दुर्लभ गोलोकधाममें जाओगे। महाभाग वत्स! जो देवर्षियोंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है, वह सबका सारभूत ज्ञान ग्रहण करो और श्रीहरिके धाममें जाओ। भगवान् श्रीकृष्णका स्मरण, वन्दन, ध्यान, पूजन, गुण-कीर्तन, श्रवण, भावन, सेवा और सब कुछ श्रीकृष्णको समर्पण—यह वैष्णवोंकी नवधा भक्तिका लक्षण है। यह भक्ति जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि तथा यम-यातनाका नाश करनेवाली है।* जो नवधा भक्तिसे हीन, अधम एवं पापी हैं, उन लोगोंकी सूर्यदेव सदा आयु ही हरते रहते हैं। जो भक्त हैं और भगवान्‌में जिनका चित्त लगा हुआ है, ऐसे वैष्णव चिरजीवी, जीवन्मुक्त, निष्पाप तथा जन्मादि विकारोंसे रहित होते हैं। शिव, शेषनाग, धर्म, ब्रह्मा, विष्णु, महाविराट्, सनत्कुमार, कपिल, सनक, सनन्दन, वोढु, पञ्चशिख, दक्ष, नारद, सनातन, भृगु, मरीचि, दुर्वासा, कश्यप, पुलह, अङ्गिरा, मेधस्, लोमश, शुक्र, वसिष्ठ, क्रतु, बृहस्पति, कर्दम, शक्ति, अत्रि, पराशर, मार्कण्डेय, बलि, प्रह्लाद, गणेश्वर, यम, सूर्य, वरुण, वायु, चन्द्रमा, अग्नि, अकूपार, उलूक, नाडीजङ्घ, वायुपुत्र हनुमान्, नर, नारायण, कूर्म, इन्द्रद्युम्न और विभीषण—ये परमात्मा श्रीकृष्णकी नवधा भक्तिसे युक्त महान् 'धर्मिष्ठ' भक्तशिरोमणि हैं। वैश्यराज! जो भगवान् श्रीकृष्णके भक्त हैं, वे उन्हींके अंश हैं तथा सदा जीवन्मुक्त रहते हैं। इतना ही नहीं, वे भूमण्डलके समस्त तीर्थोंके पापोंका अपहरण करनेमें समर्थ हैं। ऊपर सात स्वर्ग हैं, बीचमें सात द्वीपोंसे युक्त पृथ्वी है और नीचे सात पाताल हैं। ये सब मिलकर 'ब्रह्माण्ड' कहलाते हैं। बेटा! ऐसे विश्व-ब्रह्माण्डोंकी कोई गणना नहीं है। प्रत्येक विश्वमें पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, देवर्षि, मनु और मानव आदि हैं। सम्पूर्ण आश्रम भी हैं। सर्वत्र मायाबद्ध जीव रहते हैं। जिन महाविष्णुके रोमकूपमें असंख्य ब्रह्माण्ड वास करते हैं, उन्हें महाविराट् कहते हैं। वे परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंश हैं। सबके अभीष्ट आत्मा श्रीकृष्ण सत्य, नित्य, परब्रह्मस्वरूप, निर्गुण, अच्युत, प्रकृतिसे परे एवं परमेश्वर हैं। तुम उनका भजन करो। वे निरीह, निराकार, निर्विकार, निरञ्जन, निष्काम, निर्विरोध, नित्यानन्द और सनातन हैं। स्वेच्छामय (स्वतन्त्र) तथा सर्वरूप हैं। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही वे दिव्य शरीर धारण करते हैं। परम तेजः-स्वरूप तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। ध्यानके द्वारा उन्हें वशमें कर लिया जाय, यह असम्भव है। शिव आदि योगियोंके लिये भी उनकी आराधना कठिन है। वे सर्वेश्वर, सर्वपूज्य, सबकी सम्पूर्ण कामनाओंके दाता, सर्वाधार, सर्वज्ञ, सबको आनन्द प्रदान करनेवाले, सम्पूर्ण धर्मोंके दाता, सर्वरूप, प्राणरूप, सर्वधर्मस्वरूप, सर्वकारणकारण, सुखद, मोक्षदायक, साररूप, उत्कृष्ट रूपसम्पन्न, भक्तिदायक, दास्यप्रदायक तथा सत्पुरुषोंको सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करनेवाले हैं। उनसे भिन्न सारा कृत्रिम जगत् नश्वर है।

*स्मरणं वन्दनं ध्यानमर्चनं गुणकीर्तनम्। श्रवणं भावनं सेवा कृष्णे सर्वनिवेदनम्॥
एतदेव वैष्णवानां नवधाभक्तिलक्षणम्। जन्ममृत्युजराव्याधियमयातनखण्डनम्॥
(प्रकृतिखण्ड ६३। १९-२०)

वे परात्परतर शुद्ध, परिपूर्णतम एवं शिवरूप हैं। बेटा! तुम सुखपूर्वक उन्हीं भगवान् अधोक्षजकी शरण लो। 'कृष्ण' यह दो अक्षरोंका मन्त्र श्रीकृष्णदास्य प्रदान करनेवाला है। तुम इसे ग्रहण करो और दुष्कर सिद्धिकी प्राप्ति करानेवाले पुष्करतीर्थमें जाकर इस मन्त्रका दस लाख जप करो। दस लाखके जपसे ही तुम्हारे लिये यह मन्त्र सिद्ध हो जायगा।

ऐसा कहकर भगवती प्रकृति वहीं अन्तर्धान हो गयीं। मुने! उन्हें भक्तिभावसे नमस्कार करके समाधि वैश्य पुष्करतीर्थमें चला गया। पुष्करमें दुष्कर तप करके उसने परमेश्वर श्रीकृष्णको प्राप्त कर लिया। भगवती प्रकृतिके प्रसादसे वह श्रीकृष्णका दास हो गया।

भगवान् नारायण कहते हैं—महाभाग नारद! राजा सुरथने जिस क्रमसे देवी परा प्रकृतिकी आराधना की थी, वह वेदोक्त क्रम बता रहा हूँ, सुनो। महाराज सुरथने स्नान करके आचमन किया। फिर त्रिविध न्यास, करन्यास, अङ्गन्यास तथा मन्त्राङ्गन्यास करके भूतशुद्धि की। इसके बाद प्राणायाम करके शङ्ख-शोधनके अनन्तर देवीका ध्यान किया और मिट्टीकी प्रतिमामें उनका आवाहन किया। फिर भक्तिभावसे ध्यान करके प्रेमपूर्वक उनका पूजन किया। देवीके दाहिने भागमें लक्ष्मीकी स्थापना करके परम धार्मिक नरेशने उनकी भी भक्तिभावसे पूजा की। नारद! तत्पश्चात् देवीके सामने कलशपर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छः देवताओंका आवाहन करके राजाने विधिपूर्वक भक्तिसे उनका पूजन किया। प्रत्येक विद्वान् पुरुषको चाहिये कि वह पूर्वोक्त छः देवताओंकी पूजा और वन्दना करके महादेवीका प्रेमपूर्वक निम्नाङ्कित रीतिसे ध्यान करे। मुने! सामवेदमें जो ध्यान बताया गया है, वह परम उत्तम तथा कल्पवृक्षके समान वाञ्छापूरक है।

ध्यान

मूलप्रकृति ईश्वरी महादेवीका नित्य ध्यान करे। वे सनातनी देवी ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके लिये भी पूजनीया तथा वन्दनीया हैं। उन्हें नारायणी और विष्णुमाया कहते हैं। वे वैष्णवीदेवी विष्णुभक्ति देनेवाली हैं। यह सब कुछ उनका ही स्वरूप है। वे सबकी ईश्वरी, सबकी आधारभूता, परात्परा, सर्वविद्यारूपिणी, सर्वमन्त्रमयी तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। वे सगुणा और निर्गुणा हैं। सत्यस्वरूपा, श्रेष्ठा, स्वेच्छामयी एवं सती हैं। महाविष्णुकी जननी हैं। श्रीकृष्णके आधे अङ्गसे प्रकट हुई हैं। कृष्णप्रिया, कृष्णशक्ति एवं कृष्णबुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णने उनकी स्तुति, पूजा और वन्दना की है। वे कृपामयी हैं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान है। उनकी प्रभा करोड़ों सूर्योंकी दीप्तिको भी लज्जित करती है। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द-मन्द हास्यकी छटा छायी हुई है। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल हैं। उनका नाम दुर्गादेवी है। वे सौ भुजाओंसे युक्त हैं और महती दुर्गतिका नाश करनेवाली हैं। त्रिनेत्रधारी महादेवजीकी प्रिया हैं। साध्वी हैं। त्रिगुणमयी एवं त्रिलोचना हैं। त्रिलोचन शिवकी प्राणरूपा हैं। उनके मस्तकपर विशुद्ध अर्द्धचन्द्रका मुकुट है। वे मालतीकी पुष्पमालाओंसे अलंकृत केशपाश धारण करती हैं। उनका मुख सुन्दर एवं गोलाकार है। वे भगवान् शिवके मनको मोहनेवाली हैं। रत्नोंके युगल कुण्डलसे उनके कपोल उद्भासित होते रहते हैं। वे नासिकाके दक्षिण भागमें गजमुक्तासे निर्मित नथ धारण करती हैं। कानोंमें बहुसंख्यक बहुमूल्य रत्नमय आभूषण पहनती हैं। मोतियोंकी पाँतको तिरस्कृत करनेवाली दन्तपंक्ति उनके मुखकी शोभा बढ़ाती है। पके हुए बिम्बफलके समान उनके लाल-लाल ओठ हैं। वे अत्यन्त प्रसन्न तथा परम मङ्गलमयी हैं। विचित्र पत्ररचनासे रमणीय

उनके कपोल-युगल परम उज्ज्वल प्रतीत होते हैं। रत्नोंके बने हुए बाजूबन्द, कंगन तथा रत्नमय मञ्जीर उनके विभिन्न अङ्गोंका सौन्दर्य बढ़ाते हैं। रत्नमय कङ्कणोंसे उनके दोनों हाथ विभूषित हैं। रत्नमय पाशक उनकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नमयी अंगूठियोंसे उनके हाथोंकी अँगुलियाँ जगमगाती रहती हैं। पैरोंकी अँगुलियोंके और नखोंमें लगे हुए महावरकी रेखा उनकी शोभावृद्धि करती है। वे अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण करती हैं। उनके विभिन्न अङ्ग गन्ध, चन्दनसे चर्चित हैं। वे कस्तूरीके बिन्दुओंसे सुशोभित दो स्तन धारण करती हैं। सम्पूर्ण रूप और गुणोंसे सम्पन्न हैं तथा गजराजके समान मन्द गतिसे चलती हैं। अत्यन्त कान्तिमती तथा शान्तस्वरूपा हैं। योगसिद्धियोंमें बहुत बढ़ी-चढ़ी हैं। विधाताकी भी सृष्टि करनेवाली तथा सबकी माता हैं। समस्त लोकोंका कल्याण करनेवाली हैं। शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति उनका परम सुन्दर मुख है। वे अत्यन्त मनोहारिणी हैं। उनके भालदेशका मध्यभाग कस्तूरी-बिन्दु, चन्दन-बिन्दु तथा सिन्दूर-बिन्दुसे सदा उद्दीप्त होता रहता है। उनके नेत्र शरदृतुके मध्याह्नकालमें खिले हुए कमलोंकी कान्तिको छीने लेते हैं। काजलकी सुन्दर रेखाओंसे वे सर्वथा सुशोभित होते हैं। उनके श्रीअङ्ग करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्यलीलाको तिरस्कृत करनेवाले हैं। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान हैं। उनका मस्तक उत्तम रत्नोंके बने हुए मुकुटसे उद्भासित होता है। वे स्रष्टाकी सृष्टिमें शिल्परूपा और पालकके पालनमें दयारूपा हैं। संहारकालमें संहारककी उत्तम संहाररूपिणी शक्ति हैं। निशुम्भ और शुम्भको मथ डालनेवाली तथा महिषासुरका मर्दन करनेवाली हैं। पूर्वकालमें त्रिपुर-युद्धके समय त्रिपुरारि महादेवने इनकी स्तुति की थी। मधु और कैटभके युद्धमें ये विष्णुकी शक्तिस्वरूपिणी थीं। समस्त दैत्योंका वध तथा रक्तबीजका विनाश करनेवाली यही हैं। हिरण्यकशिपुके वधकालमें ये नृसिंहशक्तिरूपमें प्रकट हुई थीं। हिरण्याक्षके वधकालमें भगवान् वाराहके भीतर वाराही शक्ति यही थीं। ये परब्रह्मरूपिणी तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। मैं सदा इनका भजन करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करके विद्वान् पुरुष अपने सिरपर पुष्प रखे और पुनः ध्यान करके भक्तिभावसे आवाहन करे। प्रकृतिकी प्रतिमाका स्पर्श करके मनुष्य इस प्रकार मन्त्र पढ़े तथा मन्त्रद्वारा ही यत्नपूर्वक जीव-न्यास करे।

अम्ब! भगवति! सनातनि! शिवलोकसे आओ, आओ। सुरेश्वरि! मेरी शारदीया पूजा ग्रहण करो। जगत्पूज्ये! महेश्वरि! यहाँ आओ, ठहरो, ठहरो। हे मातः! हे अम्बिके! तुम इस प्रतिमामें निवास करो। अच्युते! इस प्रतिमामें तुम्हारे प्राण निम्नभागमें रहनेवाले प्राणोंके साथ आवें, रहें। तुम्हारी सम्पूर्ण शक्तियाँ इस प्रतिमामें तुरंत पदार्पण करें। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गायै स्वाहा।' इस मन्त्रका उच्चारण करके कहे—'हे सदाशिवे! इस प्रतिमाके हृदयमें प्राण स्थित हों। चण्डिके! सम्पूर्ण इन्द्रियोंके अधिदेवता यहाँ आवें। तुम्हारी शक्तियाँ यहाँ आवें। ईश्वर यहाँ आवें। देवि! तुम इस प्रतिमामें पधारो।' इस प्रकार आवाहन करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे परिहार-स्तुति करनी चाहिये। विप्रवर! एकाग्रचित्त होकर परिहारको सुनो।

शिवप्रिये! भगवति अम्बे! शिवलोकसे जो तुम आयी हो, तुम्हारा स्वागत है। भद्रे! मुझपर कृपा करो। भद्रकालि! तुम्हें नमस्कार है। दुर्गे! माहेश्वरि! तुम जो मेरे घरमें आयी हो, इससे मैं धन्य हूँ, कृतकृत्य हूँ और मेरा जीवन सफल है। आज मेरा जन्म सफल और जीवन सार्थक हुआ; क्योंकि मैं भारतवर्षके पुण्यक्षेत्रमें दुर्गाजीका पूजन करता हूँ। जो विद्वान् भारतवर्षमें आप पूजनीया दुर्गाका पूजन करता है, वह अन्तमें गोलोकधामको जाता है और इहलोकमें भी उत्तम ऐश्वर्यसे सम्पन्न

बना रहता है। वैष्णवीदेवीकी पूजा करके विद्वान् पुरुष विष्णुलोकमें जाता है और माहेश्वरीकी पूजा करके वह शिवलोकको प्राप्त होता है। वेदोंमें सात्त्विकी, राजसी और तामसीके भेदसे तीन प्रकारकी देवीकी पूजा बतायी गयी है, जो क्रमशः उत्तम, मध्यम और अधम है। सात्त्विकी पूजा वैष्णवोंकी है, शाक्त आदि राजसी पूजा करते हैं और जो किसी मन्त्रकी दीक्षा नहीं ले सके हैं, ऐसे असत् पुरुषोंकी पूजा तामसी कही गयी है। जो पूजा जीवहत्यासे रहित और श्रेष्ठ है, वही सात्त्विकी एवं वैष्णवी मानी गयी है। वैष्णवलोग वैष्णवीदेवीके वरदानसे गोलोकमें जाते हैं। माहेश्वरी एवं राजसी पूजामें बलिदान होता है। शाक्त आदि राजस पुरुष उस पूजासे कैलासमें जाते हैं। किरात लोग तामसी पूजाद्वारा भूत-प्रेतोंकी आराधना करके नरकमें पड़ते हैं। माँ! तुम्हीं जगत्‌के जीवोंको धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चारों फल प्रदान करनेवाली हो। तुम परमात्मा श्रीकृष्णकी सर्वशक्तिस्वरूपा हो। जन्म, मृत्यु, जरा और व्याधिका अपहरण करनेवाली परात्परा हो। सुखदायिनी, मोक्षदायिनी, भद्रा (कल्याणकारिणी) तथा सदा श्रीकृष्णभक्ति प्रदान करनेवाली हो। महामाये! नारायणि! दुर्गे! तुम दुर्गतिका नाश करनेवाली हो। दुर्गा नामके स्मरणमात्रसे यहाँ मनुष्योंका दुर्गम कष्ट दूर हो जाता है।

इस प्रकार परिहार-स्तवन करके साधक देवीके बायें भागमें तिपाईके ऊपर शङ्ख रखे। उसमें जल भर दे और दूर्वा, पुष्प तथा चन्दन डाल दे। तत्पश्चात् उसे दाहिने हाथसे पकड़कर मनुष्य इस तरह मन्त्र पढ़े।

'हे शङ्ख! तुम पवित्र वस्तुओंमें परम पवित्र हो, मङ्गलोंके भी मङ्गल हो। पूर्वकल्पमें शङ्खचूडसे तुम्हारी उत्पत्ति हुई, इसलिये परम पवित्र हो।' इस विधिसे अर्घ्यपात्रकी स्थापना करके विद्वान् पुरुष उसे देवीको अर्पित करे। तदनन्तर सोलह उपचार चढ़ाकर देवीकी पूजा करे। सजल कुशसे त्रिकोण मण्डल बनाकर वहाँ धार्मिक पुरुष कच्छप, शेषनाग और पृथ्वीका पूजन करे। मण्डलके भीतर ही तिपाई रखे और उसके ऊपर शङ्ख। शङ्खमें तीन भाग जल डालकर उसकी पूजा करे तथा उसमें गङ्गा आदि तीर्थोंका आवाहन करते हुए कहे—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि चन्द्रभागे च कौशिकि॥
स्वर्णरेखे कनखले पारिभद्रे च गण्डकि।
श्वेतगङ्गे चन्द्ररेखे पम्पे चम्पे च गोमति॥
पद्मावति त्रिपर्णाशे विपाशे विरजे प्रभे।
शतह्रदे चेलगङ्गे जलेऽस्मिन् संनिधिं कुरु॥

हे गङ्गे! यमुने! गोदावरि! सरस्वति! नर्मदे! सिन्धु! कावेरि! चन्द्रभागे! कौशिकि! स्वर्णरेखे! कनखले! पारिभद्रे! गण्डकि! श्वेतगङ्गे! चन्द्ररेखे! पम्पे! चम्पे! गोमति! पद्मावति! त्रिपर्णाशे! विपाशे! विरजे! प्रभे! शतह्रदे! तथा चेलगङ्गे! आपलोग इस जलमें निवास करें।

तत्पश्चात् उस जलमें तुलसी और चन्दनसे अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा, विष्णु, वरुण तथा शिव—इन छः देवताओंकी पूजा करे। फिर उस जलसे समस्त नैवेद्योंका प्रोक्षण करे। इसके बाद एक-एक करके सोलह उपचार समर्पित करे। आसन, वसन, पाद्य, स्नानीय, अनुलेपन, मधुपर्क, गन्ध, अर्घ्य, पुष्प, अभीष्ट नैवेद्य, आचमनीय, ताम्बूल, रत्नमय भूषण, धूप, दीप और शय्या—ये सोलह उपचार हैं।

(आसन) शंकरप्रिये! अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित तथा नाना प्रकारके चित्रोंद्वारा शोभित श्रेष्ठ सिंहासन ग्रहण करो। (वस्त्र) शिवे! असंख्य सूत्रोंसे बने हुए तथा ईश्वरकी इच्छासे निर्मित प्रज्वलित अग्निद्वारा शुद्ध किया हुआ दिव्य वस्त्र स्वीकार करो। (पाद्य) दुर्गे! बहुमूल्य रत्नमय पात्रमें रखे हुए निर्मल गङ्गाजलको पैर धोनेके लिये पाद्यके रूपमें ग्रहण करो। (स्नानीय) परमेश्वरि! सुगन्धित आँवलेका

स्निग्ध द्रव और परम दुर्लभ सुपक्व विष्णुतैल स्नानीय सामग्रीके रूपमें प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करो। (अनुलेपन) जगदम्ब! कस्तूरी और कुङ्कुमसे मिश्रित सुगन्धित चन्दनद्रव सुवासित अनुलेपनके रूपमें समर्पित है। इसे ग्रहण करो। (मधुपर्क) महादेवि! रत्नपात्रमें स्थित परम पवित्र एवं परम मङ्गलमय माध्वीक मधुपर्कके रूपमें प्रस्तुत है। इसे प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करो। (गन्ध) देवि! विभिन्न वृक्षोंके मूलका चूर्ण गन्ध द्रव्यसे युक्त हो परम पवित्र एवं मङ्गलोपयोगी गन्धके रूपमें समर्पित है। इसे ग्रहण करो। (अर्घ्य) चण्डिके! पवित्र शङ्खपात्रमें स्थित स्वर्गङ्गाका जल दूर्वा, पुष्प और अक्षतसे युक्त अर्घ्यके रूपमें अर्पित है। इसे स्वीकार करो। (पुष्प) जगदम्बिके! पारिजात-वृक्षसे उत्पन्न सुगन्धित श्रेष्ठ पुष्प और मालती आदि फूलोंकी माला ग्रहण करो। (नैवेद्य) शिवे! दिव्य सिद्धान्न, आमान्न, पीठा, खीर आदि, लड्डू और दूसरे-दूसरे मिष्टान्न तथा सामयिक फल नैवेद्यके रूपमें प्रस्तुत हैं। इन्हें स्वीकार करो। (आचमनीय) गिरिराजनन्दिनि! मैंने भक्तिभावसे आचमनीयके रूपमें कर्पूर आदिसे सुसंस्कृत एवं सुवासित शीतल जल अर्पित किया है। इसे ग्रहण करो। (ताम्बूल) देवि! सुपारी, पान और चूनाको एकत्र करके उसे कर्पूर आदिसे सुवासित किया है। वही यह समस्त भोगोंमें श्रेष्ठ रमणीय ताम्बूल है। इसे स्वीकार करो। (रत्नमय भूषण) देवि! अत्यन्त मूल्यवान् रत्नोंके सार-भागके द्वारा ईश्वरेच्छासे निर्मित तथा सम्पूर्ण अङ्गोंको शोभासम्पन्न बनानेवाला रत्नमय आभूषण ग्रहण करो। (धूप) देवि! वृक्षकी गोंदके चूर्णको सुगन्धित वस्तुओंसे मिश्रित करके अग्निकी शिखासे शुद्ध किया गया है। इस धूपको स्वीकार करो। (दीप) परमेश्वरि! घने अन्धकारको दूर करनेवाला यह परम पवित्र दीप दिव्य रत्नविशेष है। इसे ग्रहण करो। (शय्या) देवि! यह उत्तम दिव्य पर्यङ्क रत्नोंके सारभागसे निर्मित हुआ है। इसपर गद्दा है और वह महीन वस्त्रकी चादरसे ढका हुआ है। तुम इस शय्याको स्वीकार करो।

मुने! इस प्रकार दुर्गादेवीका पूजन करके उन्हें पुष्पाञ्जलि चढ़ावे। तदनन्तर देवीकी सहचरी आठ नायिकाओंका यत्नतः पूजन करे। उनके नाम इस प्रकार हैं—उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डोग्रा, चण्डनायिका, अतिचण्डा, चामुण्डा, चण्डा और चण्डवती। अष्टदल कमलपर पूर्व आदि दिशाके क्रमसे इनकी स्थापना करके पञ्चोपचारोंद्वारा पूजन करे। दलोंके मध्यभागमें भैरवोंका पूजन करना चाहिये। उनके नाम इस प्रकार हैं—महाभैरव, संहारभैरव, असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, कालभैरव, क्रोधभैरव, ताम्रचूडभैरव तथा चन्द्रचूडभैरव। इन सबकी पूजा करके बीचकी कर्णिकामें नौ शक्तियोंका पूजन करे। क्रम यह है कि कमलके आठ दलोंमें आठ शक्तियोंकी और बीचकी कर्णिकामें नवीं शक्तिकी स्थापना करे। इस तरह इन सबका भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिये। इन शक्तियोंके नाम यों हैं—ब्रह्माणी, वैष्णवी, रौद्री, माहेश्वरी, नारसिंही, वाराही, इन्द्राणी तथा कार्तिकी (कौमारी)। इनके अतिरिक्त नवीं प्रधाना शक्ति हैं सर्वमङ्गला, जो सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। इन नौ शक्तियोंका पूजन करनेके पश्चात् कलशमें देवताओंका पूजन करे। शंकर, कार्तिकेय, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, वरुण, देवीकी चेटी, वटु तथा चौंसठ योगिनी—इन सबका विधिवत् पूजन करके यथाशक्ति भेंट-उपहार अर्पित करके विद्वान् पुरुष स्तुति करे। कवचको भक्तिपूर्वक पढ़कर उसे गलेमें बाँध ले। फिर परिहारनामक स्तुति करके विद्वान् पुरुष देवीको नमस्कार करे। इस प्रकार उपहार दे स्तुति करके कवच बाँधकर विद्वान् पुरुष धरतीपर माथा टेक दण्डवत् प्रणाम करे और ब्राह्मणको दक्षिणा दे। (अध्याय ६३-६४)

देवीके बोधन, आवाहन, पूजन और विसर्जनके नक्षत्र, इन सबकी महिमा, राजाको देवीका दर्शन एवं उत्तम ज्ञानका उपदेश देना

नारदजीने पूछा— महाभाग! आपने जो कुछ कहा है, वह अमृतरससे भी बढ़कर मधुर और उत्तम है। उसे पूर्णरूपसे मैंने सुन लिया। प्रभो! अब भलीभाँति यह बताइये कि देवीका स्तोत्र और कवच क्या है? तथा उनके पूजनसे किस फलकी प्राप्ति होती है?

नारायणने कहा— आर्द्रा नक्षत्रमें देवीको जगावे और मूल नक्षत्रमें उनका प्रतिमामें प्रवेश या आवाहन करे। फिर उत्तराषाढ़ नक्षत्रमें पूजा करके श्रवण नक्षत्रमें देवीका विसर्जन करे। आर्द्रायुक्त नवमी तिथिमें देवीको जगाकर जो पूजा की जाती है, उस एक बारकी पूजासे मनुष्य सौ वर्षोंतककी की हुई पूजाका फल पा लेता है। मूल नक्षत्रमें देवीका प्रवेश होनेपर यज्ञका फल प्राप्त होता है। उत्तराषाढ़में पूजन करनेपर वाजपेय-यज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। श्रवण नक्षत्रमें देवीका विसर्जन करके मनुष्य लक्ष्मी तथा पुत्र-पौत्रोंको पाता है, इसमें संशय नहीं है। देवीकी पूजासे मनुष्यको पृथ्वीकी परिक्रमाका पुण्य प्राप्त होता है। यदि तिथिके साथ आर्द्रा नक्षत्रका योग न मिले तो केवल नवमीमें पार्वतीका बोधन करके मनुष्य एक पक्षतक पूजन करे तो उसे अश्वमेधयज्ञका फल प्राप्त होता है। उस दशामें नवमीको पूजन करके दशमीको विसर्जन कर दे। सप्तमीको पूजन करके विद्वान् पुरुष बलि अर्पण करे, अष्टमीको बलिरहित पूजन उत्तम माना गया है। अष्टमीको बलि देनेसे मनुष्योंपर विपत्ति आती है। विद्वान् पुरुष नवमी तिथिको भक्तिभावसे विधिवत् बलि दे। विप्रवर! उस बलिसे मनुष्योंपर दुर्गाजी प्रसन्न होती हैं। परंतु यह बलि हिंसात्मक नहीं होनी चाहिये; क्योंकि हिंसासे मनुष्य पापका भागी होता है, इसमें संशय नहीं। जो जिसका वध करता है, वह मारा गया प्राणी भी जन्मान्तरमें उस मारनेवालेका वध करता है—यह वेदकी वाणी है।* इसीलिये वैष्णवजन वैष्णवी (हिंसारहित) पूजा करते हैं।

इस प्रकार पूरे वर्षतक भक्तिभावसे पूजन करके गलेमें कवच बाँधकर राजाने परमेश्वरीका स्तवन किया। उनके द्वारा किये गये स्तावनसे संतुष्ट हुई देवीने उन्हें साक्षात् दर्शन दिये। उन्होंने सामने देवीको देखा, वे ग्रीष्म-ऋतुके सूर्यकी भाँति देदीप्यमान थीं। वे तेजःस्वरूपा, सगुणा एवं निर्गुणा परादेवी तेजोमण्डलके मध्यभागमें स्थित हो अत्यन्त कमनीय जान पड़ती थीं। भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर हुई उन कृपारूपा स्वेच्छामयी देवीको देखकर राजेन्द्र सुरथने भक्तिसे गर्दन नीची करके पुनः उनकी स्तुति की। उस स्तुतिसे संतुष्ट हो जगदम्बाने मन्द मुस्कराहटके साथ राजेन्द्रको सम्बोधित करके कृपापूर्वक यह सत्य बात कही।

प्रकृति बोली— राजन्! तुम साक्षात् मुझको पाकर उत्तम वैभव माँग रहे हो। इस समय तुम्हें यही अभीष्ट है, इसलिये मैं वैभव ही दे रही हूँ। महाराज! तुम अपने समस्त शत्रुओंको जीतकर निष्कण्टक राज्य पाओ। फिर दूसरे जन्ममें तुम सावर्णि नामक आठवें मनु होओगे। नरेश्वर! मैं परिणाममें (अन्ततोगत्वा) तुम्हें ज्ञान दूँगी। साथ ही परमात्मा श्रीकृष्णमें भक्ति एवं दास्यभाव प्रदान करूँगी। जो मन्दबुद्धि मानव साक्षात् मुझको पाकर वैभवकी याचना करता है, वह मायासे ठगा गया है; इसलिये विष खाता है और अमृतका त्याग करता है। ब्रह्मा आदिसे

---

* हिंसाजन्यं च पापं च लभते नात्र संशयः॥ यो यं हन्ति स तं हन्ति चेति वेदोक्तमेव च।
(प्रकृतिखण्ड ६५। १०, १२)

लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् नश्वर ही है, केवल निर्गुण परब्रह्म श्रीकृष्ण ही नित्य सत्य हैं। ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिकी आदिजननी परात्परा प्रकृति मैं ही हूँ। मैं सगुणा, निर्गुणा, श्रेष्ठा, सदा स्वेच्छामयी, नित्यानित्या, सर्वरूपा, सर्वकारणकारणा और सबकी बीजरूपा मूलप्रकृति ईश्वरी हूँ। रमणीय गोलोकमें पुण्यमय वृन्दावनके भीतर रासमण्डलमें परमात्मा श्रीकृष्णकी प्राणाधिका राधा मैं ही हूँ। मैं ही दुर्गा, विष्णुमाया तथा बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हूँ। वैकुण्ठमें मैं ही लक्ष्मी और साक्षात् सरस्वती देवी हूँ। ब्रह्मलोकमें मुझे ही ब्रह्माणी तथा वेदमाता सावित्री कहते हैं। मैं ही गङ्गा, तुलसी तथा सबकी आधारभूता वसुन्धरा हूँ। नरेश्वर! मैंने अपनी कलासे नाना प्रकारके रूप धारण किये हैं। मायाद्वारा सम्पूर्ण स्त्रियोंके रूपमें मेरा ही प्रादुर्भाव हुआ है। परम पुरुष परमात्मा श्रीकृष्णने अपनी भ्रूभङ्गलीलासे मेरी सृष्टि की है। उन्हीं पुरुषोत्तमने अपनी भ्रूभङ्गलीलासे उस महान् विराट्की भी सृष्टि की है, जिसके रोमकूपोंमें सदैव असंख्य विश्व-ब्रह्माण्ड निवास करते हैं। ये सब-के-सब कृत्रिम हैं, तथापि मायासे सब लोग उन अनित्य लोकोंमें भी सदा नित्यबुद्धि करते हैं। सातों द्वीपों और समुद्रोंसे युक्त पृथ्वी, नीचेके सात पाताल और ऊपरके सात स्वर्ग—इन सबको मिलाकर एक विश्व-ब्रह्माण्ड कहा गया है, जिसकी रचना ब्रह्माद्वारा हुई है। इस तरहके जो असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, उन सबमें पृथक्-पृथक् ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि विद्यमान हैं। उन सबके ईश्वर श्रीकृष्ण हैं। यही परात्पर ज्ञान है। वेदों, व्रतों, तीर्थों, तपस्याओं, देवताओं और पुण्योंका जो सारतत्त्व है, वह श्रीकृष्ण है। श्रीकृष्ण-भक्तिसे हीन जो मूढ़ मनुष्य है, वह निश्चय ही जीते-जी मृतकके समान है। श्रीकृष्ण-भक्तोंको छूकर बहनेवाली वायुका स्पर्श पाकर सारे तीर्थ पवित्र हो गये हैं। श्रीकृष्ण-मन्त्रोंका उपासक ही जीवन्मुक्त माना गया है। जप, तप, तीर्थ और पूजाके बिना केवल मन्त्रग्रहणमात्रसे नर नारायण हो जाता है। श्रीकृष्ण-भक्त अपने नाना और उनके ऊपरकी सौ पीढ़ियोंका तथा पितासे लेकर ऊपरकी एक सहस्र पीढ़ियोंका उद्धार करके गोलोकमें जाता है। नरेश्वर! यह सारभूत ज्ञान मैंने तुम्हें बताया है। सावर्णिक मन्वन्तरके अन्तमें अब तुम्हारे सारे दोष समाप्त हो जायँगे, उस समय मैं तुम्हें श्रीहरिकी भक्ति प्रदान करूँगी।

कर्मोंका फल भोगे बिना उनका सैकड़ों करोड़ कल्पोंमें भी क्षय नहीं होता है। अपने किये हुए शुभ या अशुभ कर्मका फल अवश्य ही भोगना पड़ता है।* मैं जिसपर अनुग्रह करती हूँ, उसे परमात्मा श्रीकृष्णके प्रति निर्मल, निश्चल एवं सुदृढ़ भक्ति प्रदान करती हूँ और जिन्हें ठगना चाहती हूँ; उन्हें प्रातःकालिक स्वप्नके समान मिथ्या एवं भ्रमरूपिणी सम्पत्ति प्रदान करती हूँ। बेटा! मैंने तुम्हें यह ज्ञानकी बात बतायी है। अब तुम सुखपूर्वक जाओ।

ऐसा कहकर महादेवी वहीं अन्तर्धान हो गयीं। राज्यप्राप्तिका वरदान पाकर राजा देवीको नमस्कार करके अपने घरको चले गये। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हें दुर्गाजीका परम उत्तम उपाख्यान सुनाया है। (अध्याय ६५)

---

* मा भुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥
(प्रकृतिखण्ड ६५। ७७)

दुर्गाजीका दुर्गनाशनस्तोत्र तथा प्रकृतिकवच या ब्रह्माण्डमोहनकवच एवं उसका माहात्म्य

नारदजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! मैंने सब कुछ सुन लिया। अवश्य ही अब कुछ भी सुनना शेष नहीं रहा। केवल प्रकृतिदेवीके स्तोत्र और कवचका मुझसे वर्णन कीजिये।

श्रीनारायण बोले—नारद! सबसे पहले गोलोकमें परमात्मा श्रीकृष्णने वसन्त-ऋतुमें रासमण्डलके भीतर प्रसन्नतापूर्वक देवीकी पूजा करके उनकी स्तुति की थी। दूसरी बार मधु और कैटभके साथ युद्धके अवसरपर भगवान् विष्णुने देवीका स्तवन किया। तीसरी बार जहाँ प्राणसंकटका अवसर आया जान ब्रह्माजीने दुर्गादेवीकी स्तुति की थी। मुने! चौथी बार त्रिपुरारि शिवने त्रिपुरोंके साथ अत्यन्त घोरतर युद्धका अवसर आनेपर भक्तिभावसे देवीका स्तवन किया था और पाँचवीं बार वृत्रासुरवधके समय घोर प्राणसंकटकी वेलामें सम्पूर्ण देवताओंसहित इन्द्रने दुर्गादेवीकी स्तुति की थी। तबसे मुनीन्द्रों, मनुओं और सुरथ आदि मनुष्योंने प्रत्येक कल्पमें परात्परा परमेश्वरीका स्तवन एवं पूजन करना आरम्भ किया। ब्रह्मन्! अब तुम देवीका स्तोत्र सुनो, जो सम्पूर्ण विघ्नोंका नाश करनेवाला, सुखदायक, मोक्षदायक, सार वस्तु तथा भवसागरसे पार होनेका साधन है।

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी।
त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्।
परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा।
सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया।
सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी।
सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी॥
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम्।
दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी॥
निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चात्मनः प्रिया।
क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती॥
श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा दया तथा।
सतां सम्पत्स्वरूपा च विपत्तिरसतामिह॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा।
शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम्॥
देवेभ्यः स्वपदोदात्री धातुर्धात्री कृपामयी।
हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम्।
सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी॥
ब्रह्माणी माहेश्वरी च विष्णुमाया च वैष्णवी।
भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयङ्करी॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे।
सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा॥
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी।
रक्षास्वरूपा शिष्टानां मातेव हितकारिणी॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा।
ब्राह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम्॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्।
मेधास्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम्॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी।
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने॥
तथान्ते त्वं महामारी विश्वस्य विश्वपूजिते।
कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया सम्मोहितं जगत्।
यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गाया दुर्गनाशनम्।
पूजाकाले पठेद्यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता॥

(प्रकृतिखण्ड ६६। ७—२६)

श्रीकृष्ण बोले—देवि! तुम्हीं सबकी जननी, मूलप्रकृति ईश्वरी हो। तुम्हीं सृष्टिकार्यमें आद्याशक्ति हो। तुम अपनी इच्छासे त्रिगुणमयी बनी हुई हो। कार्यवश सगुण रूप धारण करती हो। वास्तवमें स्वयं निर्गुणा हो। सत्या, नित्या, सनातनी एवं परब्रह्मस्वरूपा हो, परमा तेज:स्वरूपा हो। भक्तोंपर कृपा करनेके लिये दिव्य शरीर धारण करती हो। तुम सर्वस्वरूपा, सर्वेश्वरी, सर्वाधारा, परात्परा, सर्वबीजस्वरूपा, सर्वपूज्या, निराश्रया, सर्वज्ञा, सर्वतोभद्रा (सब ओरसे मङ्गलमयी), सर्वमङ्गलमङ्गला, सर्वबुद्धिस्वरूपा, सर्वशक्तिरूपिणी, सर्वज्ञानप्रदा देवी, सब कुछ जाननेवाली और सबको उत्पन्न करनेवाली हो। देवताओंके लिये हविष्य दान करनेके निमित्त तुम्हीं स्वाहा हो, पितरोंके लिये श्राद्ध अर्पण करनेके निमित्त तुम स्वयं ही स्वधा हो, सब प्रकारके दानयज्ञमें दक्षिणा हो तथा सम्पूर्ण शक्तियाँ तुम्हारा ही स्वरूप हैं। तुम निद्रा, दया और मनको प्रिय लगनेवाली तृष्णा हो। क्षुधा, क्षमा, शान्ति, ईश्वरी, कान्ति तथा शाश्वती सृष्टि भी तुम्हीं हो। तुम्हीं श्रद्धा, पुष्टि, तन्द्रा, लज्जा, शोभा और दया हो। सत्पुरुषोंके यहाँ सम्पत्ति और दुष्टोंके घरमें विपत्ति भी तुम्हीं हो। तुम्हीं पुण्यवानोंके लिये प्रीतिरूप हो, पापियोंके लिये कलहका अङ्कुर हो तथा समस्त जीवोंकी कर्ममयी शक्ति भी सदा तुम्हीं हो। देवताओंको उनका पद प्रदान करनेवाली तुम्हीं हो। धाता (ब्रह्मा)-का भी धारण-पोषण करनेवाली दयामयी धात्री तुम्हीं हो। सम्पूर्ण देवताओंके हितके लिये तुम्हीं समस्त असुरोंका विनाश करती हो। तुम योगनिद्रा हो। योग तुम्हारा स्वरूप है। तुम योगियोंको योग प्रदान करनेवाली हो। सिद्धोंकी सिद्धि भी तुम्हीं हो। तुम सिद्धिदायिनी और सिद्धयोगिनी हो। ब्रह्माणी, माहेश्वरी, विष्णु-माया, वैष्णवी तथा भद्रदायिनी भद्रकाली भी तुम्हीं हो। तुम्हीं समस्त लोकोंके लिये भय उत्पन्न करती हो। गाँव-गाँवमें ग्रामदेवी और घर-घरमें गृहदेवी भी तुम्हीं हो। तुम्हीं सत्पुरुषोंकी कीर्ति और प्रतिष्ठा हो। दुष्टोंकी होनेवाली सदा निन्दा भी तुम्हारा ही स्वरूप है। तुम महायुद्धमें दुष्टसंहाररूपिणी महामारी हो और शिष्ट पुरुषोंके लिये माताकी भाँति हितकारिणी एवं रक्षारूपिणी हो। ब्रह्मा आदि देवताओंने सदा तुम्हारी वन्दना, पूजा एवं स्तुति की है। ब्राह्मणोंकी ब्राह्मणता और तपस्वीजनोंकी तपस्या भी तुम्हीं हो, विद्वानोंकी विद्या, बुद्धिमानोंकी बुद्धि, सत्पुरुषोंकी मेधा और स्मृति तथा प्रतिभाशाली पुरुषोंकी प्रतिभा भी तुम्हारा ही स्वरूप है। राजाओंका प्रताप और वैश्योंका वाणिज्य भी तुम्हीं हो। विश्वपूजिते! सृष्टिकालमें सृष्टिरूपिणी, पालनकालमें रक्षारूपिणी तथा संहारकालमें विश्वका विनाश करनेवाली महामारीरूपिणी भी तुम्हीं हो। तुम्हीं कालरात्रि, महारात्रि तथा मोहिनी, मोहरात्रि हो; तुम मेरी दुर्लङ्घ्य माया हो, जिसने सम्पूर्ण जगत्को मोहित कर रखा है तथा जिससे मुग्ध हुआ विद्वान् पुरुष भी मोक्षमार्गको नहीं देख पाता।

इस प्रकार परमात्मा श्रीकृष्णद्वारा किये गये दुर्गाके दुर्गम संकटनाशनस्तोत्रका जो पूजाकालमें पाठ करता है, उसे मनोवाञ्छित सिद्धि प्राप्त होती है।

जो नारी वन्ध्या, काकवन्ध्या, मृतवत्सा तथा दुर्भगा है, वह भी एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण करके निश्चय ही उत्तम पुत्र प्राप्त कर लेती है। जो पुरुष अत्यन्त घोर कारागारके भीतर दृढ़ बन्धनमें बँधा हुआ है, वह एक ही मासतक इस स्तोत्रको सुन ले तो अवश्य ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य राजयक्ष्मा, गलित कोढ़, महाभयंकर शूल और महान् ज्वरसे ग्रस्त है, वह एक वर्षतक इस स्तोत्रका श्रवण कर

ले तो शीघ्र ही रोगसे छुटकारा पा जाता है। पुत्र, प्रजा और पत्नीके साथ भेद (कलह आदि) होनेपर यदि एक मासतक इस स्तोत्रको सुने तो इस संकटसे मुक्ति प्राप्त होती है, इसमें संशय नहीं है। राजद्वार, श्मशान, विशाल वन तथा रणक्षेत्रमें और हिंसक जन्तुके समीप भी इस स्तोत्रके पाठ और श्रवणसे मनुष्य संकटसे मुक्त हो जाता है। यदि घरमें आग लगी हो, मनुष्य दावानलसे घिर गया हो अथवा डाकुओंकी सेनामें फँस गया हो तो इस स्तोत्रके श्रवणमात्रसे वह उस संकटसे पार हो जाता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। जो महादरिद्र और मूर्ख है, वह भी एक वर्षतक इस स्तोत्रको पढ़े तो निस्संदेह विद्वान् और धनवान् हो जाता है।

नारदजीने कहा—समस्त धर्मोंके ज्ञाता तथा सम्पूर्ण ज्ञानमें विशारद भगवन्! ब्रह्माण्ड-मोहन नामक प्रकृतिकवचका वर्णन कीजिये।

भगवान् नारायण बोले—वत्स! सुनो। मैं उस परम दुर्लभ कवचका वर्णन करता हूँ। पूर्वकालमें साक्षात् श्रीकृष्णने ही ब्रह्माजीको इस कवचका उपदेश दिया था। फिर ब्रह्माजीने गङ्गाजीके तटपर धर्मके प्रति इस सम्पूर्ण कवचका वर्णन किया था। फिर धर्मने पुष्करतीर्थमें मुझे कृपापूर्वक इसका उपदेश दिया, यह वही कवच है, जिसे पूर्वकालमें धारण करके त्रिपुरारि शिवने त्रिपुरासुरका वध किया था और ब्रह्माजीने जिसे धारण करके मधु और कैटभसे प्राप्त होनेवाले भयको त्याग दिया था। जिसे धारण करके भद्रकालीने रक्तबीजका संहार किया, देवराज इन्द्रने खोयी हुई राज्य-लक्ष्मी प्राप्त की, महाकाल चिरजीवी और धार्मिक हुए, नन्दी महाज्ञानी होकर सानन्द जीवन बिताने लगा, परशुरामजी शत्रुओंको भय देनेवाले महान् योद्धा बन गये तथा जिसे धारण करके ज्ञानिशिरोमणि दुर्वासा भगवान् शिवके तुल्य हो गये।

'ॐ दुर्गायै स्वाहा' यह मन्त्र मेरे मस्तककी रक्षा करे। इस मन्त्रमें छः अक्षर हैं। यह भक्तोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। मुने! इस मन्त्रको ग्रहण करनेके विषयमें वेदोंमें किसी बातका विचार नहीं किया गया है। मन्त्रको ग्रहण करनेमात्रसे मनुष्य विष्णुके समान हो जाता है। 'ॐ दुर्गायै नमः' यह मन्त्र सदा मेरे मुखकी रक्षा करे। 'ॐ दुर्गे रक्ष' यह मन्त्र सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं' यह मन्त्र निरन्तर मेरे कंधेका संरक्षण करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं' यह मन्त्र सदा सब ओरसे मेरे पृष्ठभागका पालन करे। 'ह्रीं' मेरे वक्षःस्थलकी और 'श्रीं' सदा मेरे हाथकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं' यह मन्त्र सोते और जागते समय सदा मेरे सर्वाङ्गका संरक्षण करे। पूर्वदिशामें प्रकृति मेरी रक्षा करे। अग्निकोणमें चण्डिका रक्षा करे। दक्षिणदिशामें भद्रकाली, नैर्ऋत्यकोणमें महेश्वरी, पश्चिमदिशामें वाराही और वायव्यकोणमें सर्वमङ्गला मेरा संरक्षण करे। उत्तरदिशामें वैष्णवी, ईशानकोणमें शिवप्रिया तथा जल, थल और आकाशमें जगदम्बिका मेरा पालन करे।

वत्स! यह परम दुर्लभ कवच मैंने तुमसे कहा है। इसका उपदेश हर एकको नहीं देना चाहिये और न किसीके सामने इसका प्रवचन ही करना चाहिये। जो वस्त्र, आभूषण और चन्दनसे गुरुकी विधिवत् पूजा करके इस कवचको धारण करता है, वह विष्णु ही है, इसमें संशय नहीं है। मुने! सम्पूर्ण तीर्थोंकी यात्रा और पृथ्वीकी परिक्रमा करनेपर मनुष्यको जो फल मिलता है, वही इस कवचको धारण करनेसे मिल जाता है। पाँच लाख जप करनेसे निश्चय ही यह कवच सिद्ध हो जाता है। जिसने कवचको सिद्ध कर लिया है, उस मनुष्यको रणसंकटमें

अस्त्र नहीं बेधता है। अवश्य ही वह जल या अग्निमें प्रवेश कर सकता है। वहाँ उसकी मृत्यु नहीं होती है। वह सम्पूर्ण सिद्धोंका ईश्वर एवं जीवन्मुक्त हो जाता है। जिसको यह कवच सिद्ध हो गया है, वह निश्चय ही भगवान् विष्णुके समान हो जाता है।*

मुने! इस प्रकार प्रकृतिखण्डका वर्णन किया गया, जो अमृतकी खाँड़से भी अधिक मधुर है। जिन्हें मूलप्रकृति कहते हैं तथा जिनके पुत्र गणेश हैं, उन देवी पार्वतीने श्रीकृष्णका व्रत करके ही गणपति-जैसा पुत्र प्राप्त किया था। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण अपने अंशसे गणेश हुए थे। यह प्रकृतिखण्ड सुननेमें सुखद और सुधाके समान मधुर है। इसे सुनकर वक्ताको दही, अन्न भोजन करावे और उसे सुवर्ण दान दे। बछड़ेसहित सुन्दर गौका भक्तिपूर्वक दान करे। मुने! वाचकको वस्त्र, आभूषण तथा रत्न देकर संतुष्ट करे। पुष्प, आभूषण, वस्त्र तथा नाना प्रकारके उपहार ले भक्ति और श्रद्धाके साथ पुस्तककी पूजा करे। जो ऐसा करके कथा सुनता है, उसपर भगवान् विष्णु प्रसन्न होते हैं। उसके पुत्र-पौत्र आदिकी वृद्धि होती है। वह भगवान्‌की कृपासे यशस्वी होता है। उसके घरमें लक्ष्मी निवास करती हैं और अन्तमें वह गोलोकको प्राप्त होता है। उसे श्रीकृष्णका दास्यभाव सुलभ होता है तथा भगवान् श्रीकृष्णमें उसकी अविचल भक्ति हो जाती है।

(अध्याय ६६-६७)

॥ प्रकृतिखण्ड सम्पूर्ण॥

---

*ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तं स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु। मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः।
विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणे च मनोर्मुने॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः। मम वक्त्रं सदा पातु ॐ दुर्गायै नमोऽन्ततः॥
ॐ दुर्गे रक्ष इति च कण्ठं पातु सदा मम। ॐ ह्रीं श्रीं इति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम्॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इति पृष्ठं च पातु मे सर्वतः सदा। ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम्॥
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा। प्राच्यां मां पातु प्रकृतिः पातु वह्नौ च चण्डिका॥
दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋत्यां च महेश्वरी। वारुण्यां पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला॥
उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया। जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका॥
इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम्। यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद्वस्त्रालङ्कारचन्दनैः। कवचं धारयेद्यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे। यत् फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणे मुने॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद्भवेद् ध्रुवम्। लोकं च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे॥
न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विशेद् ध्रुवम्। जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरः स्वयम्॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्। (प्रकृतिखण्ड ६७। ६ १/२—१९ १/२)

गणपतिखण्ड

नारदजीकी नारायणसे गणेशचरितके विषयमें जिज्ञासा, नारायणद्वारा शिव-पार्वतीके विवाह तथा स्कन्दकी उत्पत्तिका वर्णन, पार्वतीकी महादेवजीसे पुत्रोत्पत्तिके लिये प्रार्थना, शिवजीका उन्हें पुण्यक-व्रतके लिये प्रेरित करना

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत्॥

अन्तर्यामी नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण, (उनके नित्यसखा) नरस्वरूप नरश्रेष्ठ अर्जुन, (उनकी लीलाको प्रकट करनेवाली) देवी सरस्वती तथा (उस लीलाको संकलित करनेवाले) व्यासजीको नमस्कार करके जय (पुराण-इतिहास आदि)-का पाठ करना चाहिये।

नारदजीने पूछा—भगवन्! जो सर्वोत्कृष्ट, मूढ़ोंके लिये ज्ञानकी वृद्धि करनेवाला तथा अमृतका उत्तम सागर है, उस अभीप्सित प्रकृतिखण्डको तो मैंने सुन लिया। अब मैं गणेशखण्डको, जो मनुष्योंके सम्पूर्ण मङ्गलोंका भी मङ्गलस्वरूप तथा गणेशजीके जन्म-वृत्तान्तसे परिपूर्ण है, सुनना चाहता हूँ। जगदीश्वर! भला, पार्वतीजीके शुभ उदरसे सुरश्रेष्ठ गणेशकी उत्पत्ति कैसे हुई? किस प्रकार पार्वतीदेवीने ऐसे पुत्रको प्राप्त किया? गणेशजी किस देवताके अंशसे उत्पन्न हुए थे? उन्हें जन्म क्यों लेना पड़ा? वे अयोनिज थे अथवा किसी योनिसे उत्पन्न हुए थे? उनका ब्रह्मतेज कैसा था? उनमें कितना पराक्रम था? उनकी तपस्या कैसी थी? वे कितने ज्ञानी थे तथा उनका यश कितना निर्मल था? जगदीश्वर नारायण, शम्भु और ब्रह्माके रहते हुए सम्पूर्ण विश्वमें उनकी अग्रपूजा क्यों होती है? वे हाथीके मुखवाले एकदन्त तथा विशाल तोंदवाले कैसे हो गये? महाभाग! पुराणोंमें उनके रहस्यमय जन्म-वृत्तान्तका वर्णन किया गया है। आप उस परम मनोहर तथा अत्यन्त विस्तृत चरित्रको पूर्णरूपसे वर्णन कीजिये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मुझे परम कौतूहल हो रहा है।

श्रीनारायणने कहा—नारद! मैं उस परम अद्भुत रहस्यका वर्णन करता हूँ, सुनो! वह पाप-संतापका हरण करनेवाला, सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाशक, समस्त मङ्गलोंका दाता, साररूप, निखिल श्रुतियोंके लिये मनोहर सुखप्रद, मोक्षका बीज तथा पापोंका मूलोच्छेद करनेवाला है। दैत्योंद्वारा पीड़ित हुए देवताओंकी तेजोराशिसे उत्पन्न हुई देवीने दैत्यसमुदायका संहार कर डाला। तत्पश्चात् वे दक्षकी कन्या होकर प्रकट हुईं। उस समय उन देवीका नाम सती था। उन्होंने अपने स्वामी (शिवजी)-की निन्दा होनेके कारण योगधारणाद्वारा अपने शरीरका परित्याग कर दिया और फिर शैलराजकी प्रिय पत्नी (मेना)-के पेटसे जन्म लिया। पर्वतराजने उन पार्वतीजीका विवाह शंकरजीके साथ कर दिया। तब महादेवजी उन्हें साथ लेकर निर्जन वनमें चले गये। वहाँ दीर्घकालतक शंकर-पार्वतीका विहार चलता रहा। जब देवताओंने आकर विहारसे विरत होनेके लिये उनसे प्रार्थना की, तब भगवान् शंकर विरत हो गये। उस समय महादेवजीका शुक्र भूमिपर गिर पड़ा, जिससे स्कन्द—कार्तिकेय उत्पन्न हुए। तब पार्वतीजीने श्रीशंकरजीसे एक श्रेष्ठ पुत्रके लिये प्रार्थना की।

इसपर महादेवजीने कहा—पार्वति! मैं उपाय बतलाता हूँ, सुनो। उससे तुम्हारा परम

कल्याण होगा; क्योंकि त्रिलोकीमें उपाय करनेसे कार्यसिद्धि होती ही है। मैं तुमसे जिस उपायका वर्णन करूँगा, वह सम्पूर्ण अभीष्ट-सिद्धिका बीजरूप, परम मङ्गलदायक तथा मनको हर्ष प्रदान करनेवाला है। वरानने! तुम श्रीहरिकी आराधना करके व्रत आरम्भ करो। एक वर्षतक इसका अनुष्ठान करना होगा। इस व्रतका नाम पुण्यक है। यह महाकठोर बीज, कल्पतरुके समान अभीष्ट सिद्ध करनेवाला, उत्कृष्ट, सुखदायक, पुण्यदाता, साररूप, पुत्रप्रद और समस्त सम्पत्तियोंको देनेवाला है। प्रिये! जैसे नदियोंमें गङ्गा, देवताओंमें श्रीहरि, वैष्णवोंमें मैं (शिव), देवियोंमें तुम, वर्णोंमें ब्राह्मण, तीर्थोंमें पुष्कर, पुष्पोंमें पारिजात, पत्रोंमें तुलसीदल, पुण्य प्रदान करनेवालोंमें एकादशी तिथि, वारोंमें पुण्यप्रद रविवार, मासोंमें मार्गशीर्ष, ऋतुओंमें वसन्त, वत्सरोंमें संवत्सर, युगोंमें कृतयुग, पूजनीयोंमें विद्या पढ़ानेवाले गुरु, गुरुजनोंमें माता, आप्तजनोंमें साध्वी पत्नी, विश्वस्तोंमें मन, धनोंमें रत्न, प्रियजनोंमें पति, बन्धुजनोंमें पुत्र, वृक्षोंमें कल्पतरु, फलोंमें आमका फल, वर्षोंमें भारतवर्ष, वनोंमें वृन्दावन, स्त्रियोंमें शतरूपा, पुरियोंमें काशी, तेजस्वियोंमें सूर्य, सुखदाताओंमें चन्द्रमा, रूपवानोंमें कामदेव, शास्त्रोंमें वेद, सिद्धोंमें कपिल मुनि, वानरोंमें हनुमान, क्षेत्रोंमें ब्राह्मणका मुख, यश प्रदान करनेवालोंमें विद्या तथा मनोहारिणी कविता, व्यापक वस्तुओंमें आकाश, शरीरके अङ्गोंमें नेत्र, विभवोंमें हरिकथा, सुखोंमें हरिस्मरण, स्पर्शोंमें पुत्रका स्पर्श, हिंसकोंमें दुष्ट, पापोंमें असत्यभाषण, पापियोंमें पुंश्चली स्त्री, पुण्योंमें सत्यभाषण, तपस्याओंमें श्रीहरिकी सेवा, गव्य पदार्थोंमें घृत, तपस्वियोंमें ब्रह्मा, भक्ष्य वस्तुओंमें अमृत, अन्नोंमें धान, पवित्र करनेवालोंमें जल, शुद्ध पदार्थोंमें अग्नि, तैजस वस्तुओंमें सुवर्ण, मीठे पदार्थोंमें प्रियभाषण, पक्षियोंमें गरुड़, हाथियोंमें इन्द्रका वाहन ऐरावत, योगियोंमें कुमार (सनत्कुमार आदि), देवर्षियोंमें नारद, गन्धर्वोंमें चित्ररथ, बुद्धिमानोंमें बृहस्पति, श्रेष्ठ कवियोंमें शुक्राचार्य, काव्योंमें पुराण, सोतोंमें समुद्र, क्षमाशीलोंमें पृथ्वी, लाभोंमें मुक्ति, सम्पत्तियोंमें हरिभक्ति, पवित्रोंमें वैष्णव, वर्णोंमें ॐकार, मन्त्रोंमें विष्णुमन्त्र, बीजोंमें प्रकृति, विद्वानोंमें वाणी, छन्दोंमें गायत्री छन्द, यक्षोंमें कुबेर, सर्पोंमें वासुकिनाग, पर्वतोंमें तुम्हारे पिता हिमवान्, गौओंमें सुरभि, वेदोंमें सामवेद, तृणोंमें कुश, सुखप्रदोंमें लक्ष्मी, शीघ्रगामियोंमें मन, अक्षरोंमें अकार, हितैषियोंमें पिता, यन्त्रोंमें शालग्रामशिला, पशु-अस्थियोंमें विष्णुपञ्जर, चौपायोंमें सिंह, जीवधारियोंमें मनुष्य, इन्द्रियोंमें मन, रोगोंमें मन्दाग्नि, बलवानोंमें शक्ति, शक्तिमानोंमें अहंकार, स्थूलोंमें महाविराट्, सूक्ष्मोंमें परमाणु, अदितिपुत्रोंमें इन्द्र, दैत्योंमें बलि, साधुओंमें प्रह्लाद, दानियोंमें दधीचि, अस्त्रोंमें ब्रह्मास्त्र, चक्रोंमें सुदर्शनचक्र, मनुष्योंमें राजा रामचन्द्र और धनुर्धारियोंमें लक्ष्मण श्रेष्ठ हैं तथा जैसे श्रीकृष्ण सर्वाधार, समस्त जीवोंद्वारा सेवनीय, सबके बीजस्वरूप, सर्वाभीष्टप्रदाता और सम्पूर्ण वस्तुओंके साररूप हैं, उसी प्रकार यह पुण्यक-व्रत सम्पूर्ण व्रतोंमें श्रेष्ठ है।

इसलिये महाभागे! तुम इस व्रतका अनुष्ठान करो, यह तीनों लोकोंमें दुर्लभ है। इस व्रतके पालनसे ही तुम्हें सम्पूर्ण वस्तुओंका साररूप पुत्र प्राप्त होगा। इस व्रतके द्वारा सम्पूर्ण प्राणियोंके मनोरथ सिद्ध करनेवाले श्रीकृष्णकी आराधना की जाती है, जिनके सेवनसे मनुष्य अपने करोड़ों पितरोंके साथ मुक्त हो जाता है। जो मनुष्य विष्णुमन्त्र ग्रहण करके श्रीहरिकी सेवा करता है, वह भारतवर्षमें अपने जन्म-धारणको सफल कर लेता है। वह अपने पूर्वजोंका उद्धार करके निश्चय ही वैकुण्ठमें जाता है और श्रीकृष्णका पार्षद होकर सुखपूर्वक आनन्दका उपभोग करता है। वह भक्त अपने भाई, बन्धु-बान्धव, भृत्य, संगी-साथी तथा अपनी स्त्रीका उद्धार करके श्रीहरिके परमपदको प्राप्त हो जाता है। इसलिये गिरिजे! तुम इस परम दुर्लभ विष्णुमन्त्रको ग्रहण करो और उस व्रतकालमें इसी मन्त्रका जप करो; क्योंकि यह पितरोंकी मुक्तिका कारण है। यों कहकर भगवान् शंकर गिरिजाके साथ तुरंत ही गङ्गा-तटपर गये और उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक कवच तथा स्तोत्रसहित मनोहर विष्णुमन्त्र पार्वतीजीको बतलाया। मुने! तत्पश्चात् उन्होंने पार्वतीसे पूजाकी विधि एवं नियमोंका भी वर्णन किया।

(अध्याय १—३)

शिवजीद्वारा पार्वतीसे पुण्यक-व्रतकी सामग्री, विधि तथा फलका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! पुण्यक-व्रतका विधान सुनकर पार्वतीका मन प्रसन्न हो गया। तत्पश्चात् उन्होंने व्रतकी सम्पूर्ण विधिके विषयमें प्रश्न करना आरम्भ किया।

पार्वती बोलीं—नाथ! आप वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ, करुणाके सागर तथा परात्पर हैं। दीनबन्धो! इस व्रतका सारा विधान मुझे बतलाइये। प्रभो! कौन-कौन-से द्रव्य और फल इस व्रतमें उपयोगी होते हैं? इसका समय क्या है? किस नियमका पालन करना पड़ता है? इसमें आहारका क्या विधान है? और इसका क्या फल होता है? यह सब मुझ विनम्र सेविकासे वर्णन कीजिये। साथ ही एक उत्तम पुरोहित, पुष्प एकत्रित करनेके लिये ब्राह्मण और सामग्री जुटानेके लिये भृत्योंको भी नियुक्त कर दीजिये। इनके अतिरिक्त और भी जो व्रतोपयोगी वस्तुएँ हैं, जिन्हें मैं नहीं जानती हूँ, वह सब भी एकत्र करा दीजिये; क्योंकि स्त्रियोंके लिये स्वामी ही सब कुछ प्रदान करनेवाला होता है। स्त्रियोंकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—कौमार, युवा और वृद्ध। कौमार-अवस्थामें पिता, युवावस्थामें पति और वृद्धावस्थामें पुत्र सब तरहसे पालन करनेवाले होते हैं। प्राणनाथ! आप तो सर्वात्मा, ऐश्वर्यशाली, सर्वसाक्षी और सर्वज्ञ हैं, अतः अपने आत्माकी निर्वृतिका कारणभूत एक श्रेष्ठ पुत्र मुझे प्रदान कीजिये। भगवन्! यह तो मैंने अपनी जानकारीके अनुरूप आप-जैसे महात्मासे निवेदन किया है। आप तो सबके आन्तरिक अभिप्रायके ज्ञाता और परम ज्ञानी हैं। भला, मैं आपको क्या समझा सकती हूँ? यों कहकर पार्वतीने प्रेमपूर्वक अपने पतिदेवके चरणोंमें माथा टेक दिया। तब कृपासिन्धु भगवान् शिव कहनेको उद्यत हुए।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! मैं इस व्रतकी विधि, नियम, फल और व्रतोपयोगी द्रव्यों तथा फलोंका वर्णन करता हूँ, सुनो। इस व्रतके हेतु मैं फल-पुष्प लानेके लिये सौ शुद्ध ब्राह्मणोंको, सामग्री जुटानेके निमित्त सौ भृत्यों और बहुसंख्यक दासियोंको तथा पुरोहितके स्थानपर सनत्कुमारको, जो सम्पूर्ण व्रतोंकी विधिके ज्ञाता, वेद-वेदान्तके पारंगत विद्वान्, हरिभक्तोंमें सर्वश्रेष्ठ, सर्वज्ञ, उत्तम

ज्ञानी और मेरे ही समान हैं, नियुक्त करता हूँ। तुम इन्हें ग्रहण करो। देवि! शुद्ध समय आनेपर परम नियमपूर्वक व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। प्रिये! माघमासकी शुक्ल त्रयोदशीके दिन इस व्रतका आरम्भ शुभ होता है। उत्तम व्रतीको चाहिये कि वह व्रतारम्भके पूर्वदिन उपवास करे और शरीरको अत्यन्त निर्मल करके यत्नपूर्वक वस्त्रको धोकर स्वच्छ कर ले। फिर दूसरे दिन अरुणोदय-वेलामें शय्यासे उठ जाय और मुखको शुद्ध करके निर्मल जलमें स्नान करे। तत्पश्चात् हरिस्मरणपूर्वक आचमन करके पवित्र हो जाय। फिर भक्तिसहित श्रीहरिको अर्घ्य देकर शीघ्र ही घर लौट आये। वहाँ धुली हुई धोती और चादर धारण करके पवित्र आसनपर बैठे। फिर आचमन और तिलक करके अपना नित्यकर्म समाप्त करे। तत्पश्चात् पहले प्रयत्नपूर्वक पुरोहितका वरण करके स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करे। फिर वेदविहित संकल्प करके इस व्रतका अनुष्ठान आरम्भ करे।

तदनन्तर सौन्दर्य, नेत्रदीप्ति, विविध अङ्गोंके सौन्दर्य, पति-सौभाग्य आदिके लिये विभिन्न वस्तुओंके संख्यासहित समर्पण करनेकी बात कहकर शंकरजी पुनः बोले—देवि! पुत्र-प्राप्तिके लिये कूष्माण्ड, नारियल, जम्बीर तथा श्रीफल—इन फलोंको श्रीहरिके अर्पण करना चाहिये। असंख्य जन्मपर्यन्त स्वामीके धनकी वृद्धिके निमित्त यत्नपूर्वक श्रीकृष्णको एक लाख रत्नेन्द्रसार समर्पित करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि व्रतकालमें सम्पत्तिकी वृद्धिके हेतु झाँझ-मजीरा आदि नाना प्रकारके उत्तम बाजे बजाकर श्रीहरिको सुनावे। स्वामीकी भोगवृद्धिके लिये भक्तिपूर्वक श्रीहरिको मनोहर खीर और शक्करयुक्त घी तथा पूड़ीका भोग प्रदान करे। हरिभक्तिकी विशेष उन्नतिके लिये स्वेच्छानुसार सुगन्धित पुष्पोंकी एक लाख माला, जो टूटी हुई न हों, भक्तिपूर्वक श्रीहरिको अर्पित करनी चाहिये। दुर्गे! श्रीकृष्णकी प्रसन्नता-प्राप्तिके हेतु नाना प्रकारके स्वादिष्ट एवं मधुर नैवेद्योंका भोग लगाना चाहिये। सुव्रते! इस व्रतमें श्रीकृष्णको प्रसन्न करनेके लिये भक्तिसहित तुलसीदलसे संयुक्त अनेक प्रकारके पुष्प निवेदन करना चाहिये। व्रतीको चाहिये कि वह व्रतकालमें जन्म-जन्मान्तरमें अपने धन-धान्यकी समृद्धिके लिये प्रतिदिन एक सहस्र ब्राह्मणोंको भोजन करावे। देवि! प्रतिदिन पूजनकालमें पुष्पोंसे भरी हुई सौ अञ्जलियाँ समर्पित करे तथा भक्तिकी वृद्धिके लिये सौ बार प्रणाम करना चाहिये। सुव्रते! व्रतकालमें छः मासतक हविष्यान्न, पाँच मासतक फलाहार और एक पक्षतक हविका भोजन करे तथा एक पक्षतक केवल जल पीकर रहना चाहिये। अग्निदेवके लिये सौ अखण्ड रत्नदीपोंका दान करना चाहिये। रात्रिमें कुशासन बिछाकर नित्य जागरण करना उत्तम है। व्रतीको चाहिये कि व्रतकी शुद्धिके लिये स्मरण, कीर्तन, केलि, प्रेक्षण, गुह्यभाषण, संकल्प, अध्यवसाय तथा क्रियानिष्पत्ति—इन अष्टविध मैथुनोंका परित्याग कर दे।

देवि! इस प्रकार व्रतके भलीभाँति पूर्ण होनेपर तदनन्तर व्रतोद्यापन करना चाहिये। उस समय तीन सौ साठ डलियाएँ, जो वस्त्रोंसे आच्छादित तथा भोजनके पदार्थ, यज्ञोपवीत और मनोहर उपहारोंसे सजी हुई हों, दान करनी चाहिये। एक हजार तीन सौ साठ ब्राह्मणोंको भोजन तथा एक हजार तीन सौ साठ तिलकी आहुतियाँ देनेका विधान है। फिर व्रत समाप्त हो जानेपर विधिपूर्वक एक हजार तीन सौ साठ स्वर्णमुद्राओंकी दक्षिणा देनी चाहिये। इसके अतिरिक्त व्रत-समाप्तिके दिन दूसरी दक्षिणा भी बतलाऊँगा। देवि! इस व्रतका फल यही है कि श्रीहरिमें भक्ति दृढ़ हो जाती है। श्रीहरिके सदृश तीनों भुवनोंमें विख्यात पुत्र उत्पन्न होता है और सौन्दर्य, पतिसौभाग्य, ऐश्वर्य और अतुल धनकी

प्राप्ति होती है। महेश्वरि! यह व्रत प्रत्येक जन्ममें समस्त वाञ्छित सिद्धियोंका बीज है, जिसका मैंने इस प्रकार वर्णन किया है; अतः देवि! तुम भी इस व्रतका अनुष्ठान करो। साध्वि! तुम्हें पुत्र उत्पन्न होगा। यों कहकर शिवजी चुप हो गये। (अध्याय ४)

पुण्यक-व्रतकी माहात्म्य-कथाका कथन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार व्रतके विधानको सुनकर दुर्गाका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। तत्पश्चात् उन्होंने अपने स्वामी शिवजीसे दिव्य एवं शुभकारिणी व्रत-कथाके विषयमें जिज्ञासा प्रकट की।

श्रीपार्वतीजीने पूछा—नाथ! यह व्रत तथा इसका फल और विधान बड़ा ही अद्भुत है। भला, किसने इस व्रतको प्रकाशित किया है? इसकी श्रेष्ठ कथाका वर्णन कीजिये।

अथ व्रतकथा

श्रीमहादेवजी बोले—प्रिये! मनुकी पत्नी शतरूपा, जो पुत्रके दुःखसे दुःखी थी, ब्रह्मलोकमें आकर ब्रह्माजीसे बोली।

शतरूपाने कहा—ब्रह्मन्! आप जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाले तथा सृष्टिके कारणोंके भी कारण हैं। अतः आप मुझे यह बतलानेकी कृपा करें कि किस उपायसे वन्ध्याको पुत्र उत्पन्न हो सकता है; क्योंकि ब्रह्मन्! उसका जन्म, ऐश्वर्य और धन सब निष्फल ही होता है। पुत्रवानोंके घरमें पुत्रके बिना अन्य किसी वस्तुकी शोभा नहीं होती। तपस्या और दानसे उत्पन्न हुआ पुण्य जन्मान्तरमें सुखदायक होता है, परंतु पुत्र पिताको (इसी जन्ममें) सुख, मोक्ष और हर्ष प्रदान करता है। निश्चय ही पुत्र 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेका हेतु होता है। ब्रह्मन्! आप पुत्रतापसे संतप्त हुई मुझ अबलाको पुत्र-प्राप्तिका उपाय बतला दें, तभी कल्याण है; अन्यथा मैं पतिके साथ वनमें चली जाऊँगी। आप प्रजाको धारण करनेवाली पृथ्वी, धन, ऐश्वर्य और राज्य आदि ग्रहण कीजिये; क्योंकि तात! हम दोनों पुत्रहीनोंको पुत्रके बिना इन सबसे क्या प्रयोजन है? साक्षात् ब्रह्माजीसे यों कहकर शतरूपा फूट-फूटकर रुदन करने लगी। तब उसकी ओर देखकर कृपालु ब्रह्माजीने कहा।

ब्रह्माजी बोले—वत्से! जो समस्त ऐश्वर्य आदिका कारणरूप, सम्पूर्ण मनोरथोंका दाता तथा शुभकारक है, उस सुखदायक पुत्र-प्राप्तिके उपायका वर्णन करता हूँ, सुनो। सुव्रते! माघमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशीके दिन शुद्ध कालमें सर्वस्व प्रदान करनेवाले श्रीकृष्णकी आराधना करके इस उत्तम पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान करना चाहिये। कण्वशाखामें इस व्रतका वर्णन किया गया है। इसे पूरे वर्षभरतक करना चाहिये। यह सारी अभीष्ट-सिद्धियोंका प्रदाता तथा सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाशक है। व्रतकालमें वेदोक्त द्रव्योंका दान करना चाहिये। शुभे! तुम भी इस व्रतका अनुष्ठान करके विष्णुके समान पराक्रमी पुत्र प्राप्त करो।

ब्रह्माजीका कथन सुनकर शतरूपाने इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया, जिससे उन्हें प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो मनोहर पुत्र प्राप्त हुए। देवहूतिने इस पुण्यप्रद एवं शुभ पुण्यक-व्रतको करके कपिल नामक पुत्र प्राप्त किया, जो सर्वश्रेष्ठ सिद्ध तथा नारायणके अंशसे प्रकट हुए थे। शुभलक्षणा अरुन्धतीने इस व्रतको करके शक्तिको पुत्र-रूपमें पाया। शक्ति-पत्नीको इस व्रतके पालनसे पराशर नामक पुत्रकी प्राप्ति हुई। अदितिने इस व्रतका अनुष्ठान करके वामन नामक पुत्र प्राप्त किया। ऐश्वर्यशालिनी शचीने इस व्रतको

करके जयन्त नामक पुत्रको जन्म दिया। इस व्रतके करनेसे उत्तानपादकी पत्नीने ध्रुवको और कुबेरकी भार्याने नलकूबरको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। इस उत्तम व्रतके पालनसे सूर्यपत्नीको मनु तथा अत्रिपत्नीको चन्द्रमा पुत्ररूपमें मिले। अङ्गिराकी पत्नीने भी इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान किया था, जिसके प्रभावसे उनके पुत्र बृहस्पति हुए, जो देवताओंके आचार्य कहलाते हैं। भृगुपत्नीने इस व्रतका पालन करके शुक्रको पुत्ररूपमें प्राप्त किया, जो नारायणके अंश और समस्त तेजस्वियोंमें परमोत्कृष्ट हैं। ये ही दैत्योंके गुरु हुए। देवि! इस प्रकार मैंने तुमसे व्रतोंमें उत्तम पुण्यक-व्रतका वर्णन कर दिया। कल्याणमयी गिरिराजनन्दिनि! तुम भी इस व्रतको करो। शुभे! यह व्रत राजेन्द्रपत्नियोंके लिये सुखसाध्य है, देवियोंके लिये सुखप्रद है और साध्वी नारियोंके लिये तो यह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। महासाध्वि! इस व्रतके प्रभावसे सम्पूर्ण देवताओंके ईश्वर स्वयं गोपाङ्गनेश्वर श्रीकृष्ण तुम्हारे पुत्र होंगे।

नारद! यों कहकर शंकरजी चुप हो गये। तत्पश्चात् परम प्रसन्न हुई पार्वतीदेवीने शंकरजीकी आज्ञासे उस व्रतका अनुष्ठान किया। इस प्रकार मैंने तुमसे गणेशजीके जन्मका कारण, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और साररूप है, वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय ५)

पार्वतीजीका व्रतारम्भके लिये उद्योग, ब्रह्मादि देवों तथा ऋषि आदिका आगमन, शिवजीद्वारा उनका सत्कार तथा श्रीविष्णुसे पुण्यक-व्रतके विषयमें प्रश्न, श्रीविष्णुका व्रतके माहात्म्य तथा गणेशकी उत्पत्तिका वर्णन करना

नारदजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! पार्वतीजीने पतिकी आज्ञासे किस प्रकार उस शुभदायक व्रतका पालन किया था, वह मुझे बतलाइये। ब्रह्मन्! तत्पश्चात् उत्तम व्रतवाली पार्वतीके द्वारा उस व्रतके पूर्ण किये जानेपर गोपीश श्रीकृष्णने किस प्रकार जन्म धारण किया, वह मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

श्रीनारायणने कहा—नारद! शिवजी यद्यपि स्वयं ही तपके विधाता हैं तथापि वे पार्वतीसे व्रतकी विधि तथा उसकी दिव्य कथाका वर्णन करके तप करनेके लिये चले गये। यद्यपि शिवजी श्रीहरिके ही पृथक् स्वरूप हैं तथापि वे वहाँ श्रीहरिकी आराधनामें संलग्न होकर उन्हींके ध्यानमें तत्पर हो श्रीहरिकी भावना करने लगे। वे सनातनदेव ज्ञानानन्दमें निमग्न तथा परमानन्दसे परिपूर्ण थे और प्रकटरूपसे विष्णुमन्त्रके स्मरणमें इस प्रकार तल्लीन थे कि उन्हें रात-दिनका आना-जाना ज्ञात नहीं होता था। इधर शुभदायिनी पार्वतीदेवीने पतिके आज्ञानुसार हर्षपूर्ण मनसे व्रतकार्यके लिये ब्राह्मणों तथा भृत्योंको प्रेरित किया और व्रतोपयोगी सभी वस्तुओंको मँगवाकर शुभ मुहूर्तमें व्रत करना आरम्भ किया। उसी समय ब्रह्माके पुत्र भगवान् सनत्कुमार वहाँ आ पहुँचे। वे तेजके मूर्तिमान् राशि थे और ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। तदनन्तर पत्नीसहित ब्रह्मा भी प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। अत्यन्त भयभीत हुए भगवान् महेश्वर भी वहाँ आये। नारद! जो क्षीरसागरमें शयन करते हैं तथा जगत्के शासक और पालन-पोषण करनेवाले हैं, जिनके गलेमें वनमाला लटकती रहती है, जो रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित हैं तथा जिनके शरीरका वर्ण श्याम है, वे चार भुजाधारी भगवान् विष्णु लक्ष्मी तथा पार्षदोंके साथ बहुत-सी सामग्री लिये हुए रत्नजटित

विमानपर आरूढ़ हो वहाँ उपस्थित हुए। तत्पश्चात् सनक, सनन्दन, सनातन, कपिल, आसुरि, क्रतु, हंस, वोढु, पञ्चशिख, आरुणि, यति, सुमति, अनुयायियोंसहित वसिष्ठ, पुलह, पुलस्त्य, अत्रि, भृगु, अङ्गिरा, अगस्त्य, प्रचेता, दुर्वासा, च्यवन, मरीचि, कश्यप, कण्व, जरत्कारु, गौतम, बृहस्पति, उतथ्य, संवर्त, सौभरि, जाबालि, जमदग्नि, जैगीषव्य, देवल, गोकामुख, वक्ररथ, पारिभद्र, पराशर, विश्वामित्र, वामदेव, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, मार्कण्डेय, मृकण्डु, पुष्कर, लोमश, कौत्स, वत्स, दक्ष, कालाग्नि, अघमर्षण, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, शाकल्यायन, शङ्कु, आपिशलि, शाकल्य, शङ्ख—ये तथा और भी बहुत-से मुनि शिष्योंसहित वहाँ पधारे। मुने! धर्मपुत्र नर-नारायण भी आये। पार्वतीके उस व्रतमें दिक्पाल, देवता, यक्ष, गन्धर्व, किंनर और गणोंसहित सभी पर्वत भी उपस्थित हुए। शैलराज हिमालय, जो अनन्त रत्नोंके उद्भवस्थान हैं, कौतुकवश अपनी कन्याके व्रतमें रत्नाभरणोंसे अलंकृत हो पत्नी, पुत्र, गण और अनुयायियोंसहित पधारे। उनके साथ नाना प्रकारके द्रव्योंसे संयुक्त बहुत बड़ी सामग्री थी। उसमें व्रतोपयोगी मणि-माणिक्य और रत्न थे। अनेक प्रकारकी ऐसी वस्तुएँ थीं, जो संसारमें दुर्लभ हैं। एक लाख गज-रत्न, तीन लाख अश्व-रत्न, दस लाख गो-रत्न, एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ, चार लाख मुक्ता, एक सहस्र कौस्तुभमणि और अत्यन्त स्वादिष्ट तथा मीठे पदार्थोंके एक लाख भार थे। इसके अतिरिक्त पार्वतीके व्रतमें ब्राह्मण, मनु, सिद्ध, नाग और विद्याधरोंके समुदाय तथा संन्यासी, भिक्षुक और बंदीगण भी आये। उस समय कैलासपर्वतके राजमार्गोंपर चन्दनका छिड़काव किया गया था। पद्मरागमणिके बने हुए शिवमन्दिरमें आम्रके पल्लवोंकी बंदनवारें बँधी थीं। कदलीके खंभे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। वह दूब, धान्य, पत्ते, खील, फल और पुष्पोंसे सुसज्जित था। उपस्थित सारा जन-समुदाय आनन्दपूर्वक उसे निहार रहा था। सारे कैलासवासी परमानन्दमें निमग्न थे।

तदनन्तर शंकरजीने समागत अतिथियोंको ऊँचे-ऊँचे सिंहासनोंपर बैठाकर उनका आदर-सत्कार किया। पार्वतीके इस व्रतमें इन्द्र दानाध्यक्ष, कुबेर कोषाध्यक्ष, स्वयं सूर्य आदेश देनेवाले और वरुण परोसनेके कामपर नियुक्त थे। उस समय दही, दूध, घृत, गुड़, चीनी, तेल और मधु आदिकी लाखों नदियाँ बहने लगी थीं। इसी प्रकार गेहूँ, चावल, जौ और चिउरे आदिके पहाड़ों-के-पहाड़ लग गये थे। महामुने! पार्वतीके व्रतमें कैलास पर्वतपर सोना, चाँदी, मूँगा और मणियोंके पर्वत-सरीखे ढेर लगे हुए थे। लक्ष्मीने भोजन तैयार किया था, जिसमें परम मनोहर खीर, पूड़ी, अगहनीका चावल और घृतसे बने हुए अनेकविध व्यञ्जन थे। देवर्षिगणोंके साथ स्वयं नारायणने भोजन किया। उस समय एक लाख ब्राह्मण परोसनेका काम कर रहे थे। (भोजन कर लेनेके पश्चात्) जब वे रत्नसिंहासनोंपर विराजमान हुए, तब परम चतुर लाखों ब्राह्मणोंने उन्हें कर्पूर आदिसे सुवासित पानके बीड़े समर्पित किये। ब्रह्मन्! देवर्षियोंसे भरी हुई उस सभामें जब क्षीरसागरशायी भगवान् विष्णु रत्नसिंहासनपर आसीन थे, प्रसन्न मुखवाले पार्षद उनपर श्वेत चँवर डुला रहे थे, ऋषि, सिद्ध तथा देवगण उनकी स्तुति कर रहे थे, वे गन्धर्वोंके मनोहर गीत सुन रहे थे, उसी समय ब्रह्माकी प्रेरणासे शंकरजीने हाथ जोड़कर भक्तिपूर्वक उन ब्रह्मेशसे अपने अभीष्ट कर्तव्य व्रतके विषयमें प्रश्न किया।

श्रीमहादेवजीने पूछा—प्रभो! आप श्रीनिवास, तपःस्वरूप, तपस्याओं और कर्मोंके फलदाता, सबके द्वारा पूजित, सम्पूर्ण व्रतों, जप-यज्ञों और पूजनोंके बीजरूपसे वाञ्छाकल्पतरु और पापोंका हरण करनेवाले हैं। नाथ! मेरी एक प्रार्थना

सुनिये। ब्रह्मन्! पुत्रशोकसे पीड़ित हुई पार्वतीका हृदय दुःखी हो गया है, अतः यह पुत्रकी कामनासे परमोत्तम पुण्यक-व्रत करना चाहती है। यह सुव्रता व्रतके फलस्वरूपमें उत्तम पुत्र और पति-सौभाग्यकी याचना कर रही है। इनके बिना उसे संतोष नहीं है। प्राचीन कालमें इस मानिनीने अपने पिताके यज्ञमें मेरी निन्दा होनेके कारण अपने शरीरका त्याग कर दिया था और अब पुनः हिमालयके घरमें जन्म धारण किया है। यह सारा वृत्तान्त तो आप जानते ही हैं, आप सर्वज्ञको मैं क्या बतलाऊँ। तत्त्वज्ञ! इस विषयमें आपकी क्या आज्ञा है? आप परिणाममें शुभप्रदायिनी अपनी वह आज्ञा बतलाइये। नाथ! मैंने सब कुछ निवेदन कर दिया है, अब जो कर्तव्य हो, उसे बतानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि परामर्शपूर्वक किया हुआ सारा कार्य परिणाममें सुखदायक होता है।

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! उस सभामें यों कहकर भगवान् शंकरने कमलापति विष्णुकी स्तुति की और फिर ब्रह्माके मुखकी ओर देखकर वे चुप हो गये। शंकरजीका वचन सुनकर जगदीश्वर विष्णु ठठाकर हँस पड़े और हितकारक तथा नीतिपूर्ण वचन कहने लगे।

श्रीविष्णुने कहा—पार्वतीश्वर! आपकी पत्नी सती संतान-प्राप्तिके लिये जिस उत्तम पुण्यक-व्रतको करना चाहती है, वह व्रतोंका सारतत्त्व, स्वामि-सौभाग्यका बीज, सबके द्वारा असाध्य, दुराराध्य, सम्पूर्ण अभीष्ट फलका दाता, सुखदायक, सुखका सार तथा मोक्षप्रद है। जो सबके आत्मा, साक्षीस्वरूप, ज्योतिरूप, सनातन, आश्रयरहित, निर्लिप्त, उपाधिहीन, निरामय, भक्तोंके प्राणस्वरूप, भक्तोंके ईश्वर, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, दूसरोंके लिये दुराराध्य, परंतु भक्तोंके लिये सुसाध्य, भक्तिके वशीभूत, सर्वसिद्ध और कलारहित हैं, ये ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिन पुरुषकी कलाएँ हैं, महान् विराट् जिनका एक अंश है, जो निर्लिप्त, प्रकृतिसे परे, अविनाशी, निग्रहकर्ता, उग्रस्वरूप, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रहस्वरूप, ग्रहोंमें उग्र ग्रह और ग्रहोंका निग्रह करनेवाले हैं, वे भगवान् आपके बिना करोड़ों जन्मोंमें भी साध्य नहीं हो सकते।

सूर्य, शिव, नारायणी माया, कला आदिकी दीर्घकालतक उपासना करनेके बाद मनुष्य भक्त-संसर्गकी हेतुस्वरूपा कृष्णभक्तिको पाता है। शिवजी! उस निष्पक्व भक्तिको पाकर भारतवर्षमें बारंबार भ्रमण करते हुए जब भक्तोंकी सेवा करनेसे उसकी भक्ति परिपक्व हो जाती है, तब भक्तोंकी कृपासे तथा देवताओंके आशीर्वादसे उसे श्रीकृष्णमन्त्र प्राप्त होता है, जो परमोत्कृष्ट निर्वाणरूप फल प्रदान करनेवाला है। कृष्णव्रत और कृष्णमन्त्र सम्पूर्ण कामनाओंके फलके प्रदाता हैं। चिरकालतक श्रीकृष्णकी सेवा करनेसे भक्त श्रीकृष्ण-तुल्य हो जाता है। महाप्रलयके अवसरपर समस्त प्राणियोंका विनाश हो जाता है—यह सर्वथा निश्चित है; परंतु जो कृष्णभक्त हैं, वे अविनाशी हैं। उन साधुओंका नाश नहीं होता। शिवजी! श्रीकृष्णभक्त अत्यन्त निश्चिन्त होकर अविनाशी गोलोकमें आनन्द मनाते हैं। महेश्वर! आप सबका संहार करनेवाले हैं, परंतु कृष्णभक्तोंपर आपका वश नहीं चलता। उसी प्रकार माया सबको मोहग्रस्त कर लेती है, परंतु मेरी कृपासे वह भक्तोंको नहीं मोह पाती। नारायणी माया समस्त प्राणियोंकी माता है। वह कृष्णभक्तिका दान करनेवाली है, वह नारायणी माया मूलप्रकृति, अधीश्वरी, कृष्णप्रिया, कृष्णभक्ता, कृष्णतुल्या, अविनाशिनी, तेजःस्वरूपा और स्वेच्छानुसार शरीर धारण करनेवाली है। (दैत्योद्धार) सुरनिग्रहके अवसरपर यह देवताओंके तेजसे प्रकट हुई थी। उसने दैत्यसमूहोंका संहार करके दक्षके अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप भारतवर्षमें दक्षपत्नीके

गर्भसे जन्म लिया। फिर वह सतीदेवी, जो सनातनी कृष्णशक्ति हैं पिताके यज्ञमें आपकी निन्दा होनेके कारण शरीरका त्याग करके गोलोकको चली गयीं। शंकर! तब पूर्वकालमें आप उनके रूप तथा गुणके आश्रयभूत परम सुन्दर शरीरको लेकर भारतवर्षमें भ्रमण करते हुए दुःखी हो गये थे। उस समय श्रीशैलपर नदीके किनारे मैंने आपको समझाया था। फिर उसी देवीने शीघ्र ही शैलराजकी पत्नीके गर्भसे जन्म लिया।

शंकर! उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली साध्वी शिवा पुण्यक नामक उत्तम व्रतका अनुष्ठान करें। इस व्रतके पालनसे सहस्रों राजसूय-यज्ञोंका पुण्य प्राप्त होता है। त्रिलोचन! इस व्रतमें सहस्रों राजसूय-यज्ञोंके समान धनका व्यय होता है, अतः यह व्रत सभी साध्वी महिलाओंद्वारा साध्य नहीं है। इस पुण्यक-व्रतके प्रभावसे स्वयं गोलोकनाथ श्रीकृष्ण पार्वतीके गर्भसे उत्पन्न होकर आपके पुत्र होंगे। वे कृपानिधि स्वयं समस्त देवगणोंके ईश्वर हैं, इसलिये त्रिलोकीमें 'गणेश' नामसे विख्यात होंगे। जिनके स्मरणमात्रसे निश्चय ही जगत्‌के विघ्नोंका नाश हो जाता है, इस कारण उन विभुका नाम 'विघ्ननिघ्न' हो गया। चूँकि पुण्यक-व्रतमें उन्हें नानाप्रकारके द्रव्य समर्पित किये जाते हैं, जिन्हें खाकर उनका उदर लंबा हो जाता है; अतः वे 'लम्बोदर' कहलायेंगे। शनिकी दृष्टि पड़नेसे सिरके कट जानेपर पुनः हाथीका सिर जोड़ा जायगा, इस कारण उन्हें 'गजानन' कहा जायगा। परशुरामजीके फरसेसे जब इनका एक दाँत टूट जायगा, तब ये अवश्य ही 'एकदन्त' नामवाले होंगे। ये ऐश्वर्यशाली शिशु सम्पूर्ण देवगणोंके, हमलोगोंके तथा जगत्‌के पूज्य होंगे। मेरे वरदानसे इनकी सबसे पहले पूजा होगी। सम्पूर्ण देवोंकी पूजाके समय सबसे पहले इनकी पूजा करके मनुष्य निर्विघ्नतापूर्वक पूजाके फलको पा लेता है, अन्यथा उसकी पूजा व्यर्थ हो जाती है।

मनुष्योंको चाहिये कि गणेश, सूर्य, विष्णु, शम्भु, अग्नि और दुर्गा—इन सबकी पहले पूजा करके तब अन्य देवताकी पूजन करे। गणेशका पूजन करनेपर जगत्‌के विघ्न निर्मूल हो जाते हैं। सूर्यकी पूजासे नीरोगता आती है। श्रीविष्णुके पूजनसे पवित्रता, मोक्ष, पापनाश, यश और ऐश्वर्यकी वृद्धि होती है। शंकरका पूजन तत्त्वज्ञानके विषयमें परम तृप्तिका बीज है। अग्निका पूजन अपनी बुद्धिकी शुद्धिका उत्पादक कहा गया है। ब्रह्माद्वारा संस्कृत अग्निकी पूजासे मनुष्य अन्तसमयमें ज्ञान-मृत्युको प्राप्त करता है तथा शंकराग्निके सेवनसे दाता और भोक्ता होता है। दुर्गाकी अर्चना हरिभक्ति प्रदान करनेवाली तथा परम मङ्गलदायिनी होती है। इनकी पूजाके बिना अन्यकी पूजा करनेसे वह पूजन विपरीत हो जाता है। महादेव! त्रिलोकीके लिये यही क्रम प्रत्येक कल्पमें निश्चित है। ये देव निरन्तर विद्यमान रहनेवाले, नित्य तथा सृष्टिपरायण हैं। इनका आविर्भाव और तिरोभाव ईश्वरकी इच्छापर ही निर्भर है। उस सभाके बीच यों कहकर श्रीहरि मौन हो गये। उस समय देवता, ब्राह्मण तथा पार्वतीसहित शंकर परम प्रसन्न हुए।

(अध्याय ६)

पार्वतीद्वारा व्रतारम्भ, व्रत-समाप्तिमें पुरोहितद्वारा शिवको दक्षिणारूपमें माँगे जानेपर पार्वतीका मूर्च्छित होना, शिवजी तथा देवताओं और मुनियोंका उन्हें समझाना, पार्वतीका विषाद, नारायणका आगमन और उनके द्वारा पतिके बदले गोमूल्य देकर पार्वतीको व्रत समाप्त करनेका आदेश, पुरोहितद्वारा उसका अस्वीकार, एक अद्भुत तेजका आविर्भाव और देवताओं, मुनियों तथा पार्वतीद्वारा उसका स्तवन

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर हर्षसे गद्गद हुए मनवाले शिवजीने श्रीहरिकी आज्ञा स्वीकार करके श्रीहरिके साथ किये गये माङ्गलिक वार्तालापको प्रेमपूर्वक पार्वतीसे कह सुनाया। तब पार्वतीका मन प्रसन्न हो गया। फिर तो उन्होंने शिवजीकी आज्ञा मानकर उस मङ्गलव्रतके अवसरपर माङ्गलिक बाजा बजवाया। फिर सुन्दर दाँतोंवाली पार्वतीने भलीभाँति स्नान करके शरीरको शुद्ध किया और स्वच्छ साड़ी तथा चद्दर धारण किया। तत्पश्चात् जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे विभूषित, फल और अक्षतसे सुशोभित तथा आमके पल्लवसे संयुक्त था, ऐसे रत्नकलशको चावलकी राशिपर स्थापित किया। फिर रत्नोंके उद्भवस्थान हिमालयकी कन्या सती पार्वतीने, जो रत्नोंसे विभूषित तथा रत्नजटित आसनपर विराजमान थी, रत्नसिंहासनोंपर समासीन मुनिश्रेष्ठोंकी पूजा करके चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और रत्नाभरणोंसे भूषित तथा रत्नसिंहासनपर विराजमान पुरोहितकी समर्चना की। इसके बाद विधि-विधानके अनुसार रत्नभूषित दिक्पालों, देवताओं, मनुष्यों और नागोंको आगे स्थापित करके भक्तिपूर्वक उनका भलीभाँति पूजन किया। फिर पुण्यक-व्रतमें, जिनकी अग्निमें तपाकर शुद्ध किये गये बहुमूल्य रत्नोंके भूषणों, उत्तम-उत्तम वस्त्रों तथा पूजनोपयोगी नाना प्रकारकी सामग्रियोंसे पूजा की गयी थी और जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे सुशोभित थे, उन ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरकी परम भक्तिपूर्वक समर्चना की।

मुने! तत्पश्चात् पार्वतीदेवीने स्वस्तिवाचनपूर्वक व्रत आरम्भ किया। तदनन्तर उत्तम व्रतका आचरण करनेवाली सतीने उस मङ्गल-कलशपर अपने अभीष्ट देवता श्रीकृष्णका आवाहन करके उन्हें भक्तिपूर्वक क्रमशः षोडशोपचार समर्पित किया। फिर व्रतमें जिन अनेक प्रकारके द्रव्योंके देनेका विधान है, एक-एक करके उन सभी फलदायी पदार्थोंको प्रदान किया। पुनः व्रतके लिये कहा गया उपहार, जो त्रिलोकीमें दुर्लभ है, वह सब भी भक्तिसहित अर्पण किया। इस प्रकार उस सतीने वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक सभी पदार्थोंको अर्पित करके तिल और घीसे तीन लाख आहुतियोंका हवन कराया और ब्राह्मणों, देवताओं तथा भूखित अतिथियोंको भोजनसे तृप्त किया। इस प्रकार उत्तम व्रतवाली सतीने उस पालनीय पुण्यक-व्रतमें सारे कर्तव्यको वर्षपर्यन्त प्रतिदिन विधानके साथ पूर्ण किया। समाप्तिके दिन विप्रवर पुरोहितने उनसे कहा—'सुव्रते! इस उत्तम व्रतमें तुम मुझे अपने पतिको दक्षिणारूपमें दे दो।' पुरोहितके इस कथनको सुनकर महामाया पार्वती उस देव-सभाके मध्य विलाप करके मूर्च्छित हो गयीं; क्योंकि उस समय मायाने उनके चित्तको मोह लिया था।

नारद! उन्हें मूर्च्छित देखकर उन मुनिवरोंको तथा ब्रह्मा और विष्णुको हँसी आ गयी। तब उन्होंने शंकरजीको पार्वतीके पास भेजा। उस समय पार्वतीको होशमें लानेके लिये सभासदोंद्वारा प्रेरित किये जानेपर वक्ताओंमें श्रेष्ठ शिवजी कहने लगे।

श्रीमहादेवजीने कहा—भद्रे! उठो, निस्संदेह तुम्हारा कल्याण होगा। तुम होशमें आकर मेरी बात सुनो। फिर जिनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे, उन पार्वतीसे यों कहकर शिवजीने उन्हें हृदयसे लगा लिया और चेतनायुक्त कर दिया। तत्पश्चात् हितकर, सत्य, परिमित, परिणाममें सुखप्रद, यशस्कर और फलदायक वचन कहना आरम्भ किया। देवि! जिसका वेदने निरूपण किया है, जो सर्वसम्मत और इष्ट है, उस धर्मार्थका इस धर्मसभामें मैं वर्णन करता हूँ, सुनो। देवि! दक्षिणा समस्त कर्मोंकी सारभूता है। धर्मिष्ठे! वह धर्म-कर्ममें नित्य ही यश और फल प्रदान करनेवाली है। प्रिये! देवकार्य, पितृकार्य अथवा नित्य-नैमित्तिक जो भी कर्म दक्षिणासे रहित होता है, वह सब निष्फल हो जाता है और उस कर्मसे निश्चय ही दाता कालसूत्र नामक नरकमें जाता है। तत्पश्चात् वह शत्रुओंसे पीड़ित होकर दीनताको प्राप्त होता है। ब्राह्मणके उद्देश्यसे संकल्प की हुई दक्षिणा यदि उसी समय नहीं दे दी जाती है तो वह बढ़ते-बढ़ते अनेक गुनी हो जाती है।

श्रीविष्णुने कहा—धर्मिष्ठे! धर्मकर्मके विषयमें तुम अपने धर्मकी रक्षा करो; क्योंकि धर्मज्ञे! अपने धर्मका पूर्णतया पालन करनेपर सबकी रक्षा हो जाती है।

ब्रह्माने कहा—धर्मज्ञे! जो किसी कारणवश धर्मकी रक्षा नहीं करता है तो धर्मके नष्ट हो जानेपर उसके कर्ताका विनाश हो जाता है।

धर्मने कहा—साध्वि! पतिको दक्षिणारूपमें देकर यत्नपूर्वक मेरी रक्षा करो। महासाध्वि! मेरे सुरक्षित रहनेपर सब कुछ कल्याण ही होगा।

देवताओंने कहा—महासाध्वि! तुम धर्मकी रक्षा करके अपने व्रतको पूर्ण करो। सती! तुम्हारे व्रतके पूरा हो जानेपर हमलोग तुम्हारे मनोरथको पूर्ण कर देंगे।

मुनियोंने कहा—पतिव्रते! हवनको पूरा करके ब्राह्मणोंको दक्षिणा प्रदान करो। धर्मज्ञे! हमलोगोंके उपस्थित रहते अमङ्गल कैसे होगा?

सनत्कुमारने कहा—शिवे! या तो तुम मुझे शिवको दक्षिणारूपमें दे दो, अन्यथा इस व्रतके फलको तथा चिरकालसे संचित अपनी तपस्याके फलको भी छोड़ दो। साध्वि! इस प्रकार कर्मके दक्षिणारहित हो जानेपर मैं इस व्रतके फलको तथा यजमानके सारे कर्मोंके फलको पा जाऊँगा।

तब पार्वतीजी बोलीं—देवेश्वरो! जिस कर्ममें पतिकी ही दक्षिणा दी जाती है, उस कर्मसे मुझे क्या लाभ? मुने! दक्षिणा देनेसे तथा धर्म और पुत्रकी प्राप्तिसे भी मेरा कौन-सा प्रयोजन सिद्ध होगा? भला, यदि भूमिकी पूजा न की जाय तो वृक्षके पूजनसे क्या फल मिलेगा? क्योंकि कारणके नष्ट हो जानेपर कार्यकी स्थिति कहाँ और फिर अन्न तथा फल कहाँसे प्राप्त हो सकते हैं? यदि स्वेच्छानुसार प्राणोंका ही त्याग कर दिया जाय तो फिर शरीरसे क्या प्रयोजन है? जिसकी दृष्टिशक्ति ही नष्ट हो गयी है, उस आँखसे क्या लाभ? सुरेश्वरो! पतिव्रताओंके लिये पति सौ पुत्रोंके समान होता है। ऐसी दशामें यदि व्रतमें पतिको ही दे देना है तो उस व्रतसे अथवा (व्रतके फलस्वरूप) पुत्रसे क्या सिद्ध होगा? माना कि पुत्र पतिका वंश होता है, किंतु उसका एकमात्र मूल तो पति ही है। भला, जहाँ मूलधन ही नष्ट हो जाय वहाँ उसका सारा व्यापार तो निष्फल हो ही जायगा।

इस प्रकार वाद-विवाद चल ही रहा था, इसी बीच उस सभामें स्थित देवताओं और मुनियोंने आकाशमें बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए एक रथको देखा, जो पार्षदोंद्वारा घिरा हुआ था। वे सभी पार्षद श्याम रंगवाले तथा चार भुजाधारी थे। उनके गलेमें वनमाला शोभा पा रही थी और वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थे। तत्पश्चात्

वैकुण्ठवासी भगवान् उस विमानसे उतरकर हर्षपूर्वक उस सभामें आये। फिर तो सुरेश्वरोंने उनकी स्तुति करना आरम्भ किया। तदनन्तर जिनके चार भुजाएँ थीं; जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे; जो लक्ष्मी और सरस्वतीके स्वामी, शान्तस्वरूप, परम मनोहर और सुखपूर्वक दर्शन करने योग्य थे, परंतु भक्तिहीनोंके लिये जिनका दर्शन करोड़ों जन्मोंमें भी नहीं हो सकता; जिनके नील रंगकी आभा करोड़ों कामदेवोंको मात कर रही थी; जिनका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंके समान था; जो अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित सुन्दर भूषणोंसे विभूषित थे, जो ब्रह्म आदि देवताओंद्वारा सेवनीय हैं, भक्तगण सदा जिनका स्तवन करते हैं; जो अपने प्रकाशसे आच्छादित देवर्षियोंद्वारा घिरे हुए थे—उन परमेश्वरको ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवताओंने एक श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर बैठाया और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। उस समय उन सबकी अञ्जलियाँ बँधी हुई थीं, शरीर रोमाञ्चित थे और आँखोंमें आँसू छलक आये थे। तब परम बुद्धिमान् भगवान्‌ने मुस्कराते हुए मधुर वाणीद्वारा उनसे सारा वृत्तान्त पूछा और उनके द्वारा सब जान लेनेपर कहना आरम्भ किया।

श्रीनारायण बोले—सुरगणो! मेरे सिवा ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त यह सारा जगत् प्रकृतिसे उत्पन्न हुआ है—यह सर्वथा सत्य है। विश्वमें सारे प्राणी जिस शक्तिसे शक्तिमान् हुए हैं, उस शक्तिको मैंने ही प्रकाशित किया है। सृष्टिके आदिमें मेरी इच्छासे यह प्रकृतिदेवी मुझसे ही प्रकट हुई हैं और मेरे सृष्टिका संहार कर लेनेपर यह अन्तर्हित होकर शयन करती हैं। प्रकृति ही सृष्टिकी विधायिका और समस्त प्राणियोंकी परा जननी हैं। यह मेरी माया मेरे समान है, इसी कारण नारायणी कहलाती है। शम्भुने चिरकालतक मेरा ध्यान करते हुए तपस्या की है, इसलिये तपकी फलस्वरूपा मायाको मैंने उन्हें प्रदान किया है। मायारूपा पार्वतीका यह व्रत लोकशिक्षाके लिये ही है, अपने लिये नहीं है; क्योंकि त्रिलोकीमें व्रतों और तपस्याओंका फल देनेवाली तो ये स्वयं ही हैं। इनकी मायासे सभी प्राणी मोहित हैं। फिर प्रत्येक कल्पमें पुनः-पुनः इनके स्तवन, व्रत और व्रत-फलकी साधनासे क्या लाभ? देवताओंमें श्रेष्ठ जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर हैं, वे मेरे ही अंश हैं तथा जीवधारी प्राणी और देवता आदि मेरी ही कलाएँ तथा कलांशरूप हैं। जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घटका निर्माण नहीं कर सकता तथा सोनार स्वर्णके बिना कुण्डल बनानेमें असमर्थ है, उसी तरह मैं भी शक्तिके बिना अपनी सृष्टिकी रचना करनेमें असमर्थ हूँ। अतः सृष्टिके सृजनमें शक्तिकी ही प्रधानता है—यह सभी दर्शनशास्त्रोंको मान्य है। मैं समस्त देहधारियोंका आत्मा, निर्लेप, अदृश्य और साक्षी हूँ। प्रकृतिसे उत्पन्न सभी पाञ्चभौतिक शरीर नश्वर हैं, परंतु सूर्यके समान प्रकाशमान शरीरवाला मैं नित्य हूँ। जगत्‌में प्रकृति सबकी आधारस्वरूपा है और मैं सबका आत्मा हूँ। वेदमें ऐसा निरूपण किया गया है कि मैं आत्मा हूँ, ब्रह्मा मन हैं, महेश्वर ज्ञानरूप हैं, स्वयं विष्णु पञ्चप्राण हैं, ऐश्वर्यशालिनी प्रकृति बुद्धि है, मेधा, निद्रा आदि ये सभी प्रकृतिकी कलाएँ हैं और वह प्रकृति ही ये शैलराजकन्या पार्वती हैं। मैं सनातनदेव ही वैकुण्ठका अधिपति हूँ और मैं ही गोलोकका भी स्वामी हूँ। वहाँ गोलोकमें मैं दो भुजाधारी होकर गोप और गोपियोंसे घिरा रहता हूँ तथा यहाँ वैकुण्ठमें मैं देवेश्वर और लक्ष्मीपतिके रूपमें चार भुजाएँ धारण करता हूँ और मेरे पार्षद मुझे घेरे रहते हैं। वैकुण्ठसे ऊपर पचास करोड़ योजनकी दूरीपर स्थित गोलोकमें मेरा निवास-स्थान है, वहाँ मैं 'गोपीनाथ' रूपसे रहता हूँ। उन्हीं द्विभुजधारी गोपीनाथकी व्रतद्वारा आराधना की

जाती है और वे ही उसका फल प्रदान करते हैं। जो जिस रूपसे उनका ध्यान करता है, उसे उसी रूपसे उसका फल देते हैं। अतः शिवे! तुम शिवको दक्षिणारूपमें देकर अपना व्रत पूर्ण करो। फिर समुचित मूल्य देकर अपने स्वामीको वापस कर लेना। शुभे! जैसे गौएँ विष्णुकी देहस्वरूपा हैं, उसी प्रकार शिव भी विष्णुके शरीर हैं; अतः तुम ब्राह्मणको गोमूल्य प्रदान करके अपने स्वामीको लौटा लेना। यह बात श्रुतिसम्मत है; क्योंकि जैसे स्वामी यज्ञपत्नीका दान करनेके लिये सदैव समर्थ है, उसी तरह यज्ञपत्नी भी स्वामीको दे डालनेकी अधिकारिणी है।

सभाके बीच यों कहकर नारायण वहीं अन्तर्धान हो गये। इसे सुनकर सभी सभासद् हर्षविभोर हो गये तथा हर्ष-गद्गद हुई पार्वती दक्षिणा देनेको उद्यत हुईं। तदनन्तर शिवाने हवनकी पूर्णाहुति करके शिवको दक्षिणारूपमें दे दिया और उधर सनत्कुमारजीने उस देवसभामें 'स्वस्ति' ऐसा कहकर दक्षिणा ग्रहण कर ली। उस समय भयभीत होनेके कारण दुर्गाका कण्ठ, ओठ और तालु सूख गया था, वे हाथ जोड़कर दुःखी हृदयसे ब्राह्मणसे बोलीं।

पार्वतीजीने कहा—विप्रवर! 'गौका मूल्य मेरे पतिके बराबर है'—ऐसा वेदमें कहा गया है, अतः मैं आपको एक लाख गौएँ प्रदान करूँगी। आप मेरे स्वामीको लौटा दीजिये। पतिके मिल जानेपर मैं ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारकी दक्षिणाएँ बाँटूँगी। (अभी तो मैं आत्महीन हूँ, ऐसी दशामें) भला, आत्मासे रहित शरीर कौन-सा कर्म करनेमें समर्थ हो सकता है?

सनत्कुमारजी बोले—देवि! मैं ब्राह्मण हूँ। मुझे एक लाख गौओंसे क्या प्रयोजन है और इस अमूल्य रत्नको गौओंके बदले देनेसे भी क्या लाभ होगा? त्रिलोकीमें सभी लोग स्वयं अपने-अपने कर्मोंके कर्ता हैं। क्या कर्ताका अभीष्ट कर्म कहीं दूसरेकी इच्छासे होता है? मैं इन दिगम्बरको आगे करके तीनों लोकोंमें भ्रमण करूँगा। उस समय ये बालक-बालिकाओंके समुदायके लिये हँसीके कारण होंगे।

मुने! उस देवसभामें यों कहकर ब्रह्माके पुत्र तेजस्वी सनत्कुमारने शंकरजीको अपने सँनिकट बैठा लिया। इस प्रकार कुमारद्वारा शंकरजीको ग्रहण किये जाते देखकर पार्वतीके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये। वे शरीर छोड़ देनेके लिये उद्यत हो गयीं। उस समय वे मन-ही-मन सोचने लगीं कि यह कैसी कठिन बात हुई कि न तो अभीष्टदेवका दर्शन मिला और न व्रतका फल ही प्राप्त हुआ। इसी बीच पार्वतीसहित देवताओंने आकाशमें एक परमोत्कृष्ट तेजसमूह देखा। उसकी प्रभा करोड़ों सूर्योंकी प्रभासे उत्कृष्ट थी, वह दसों दिशाओंको प्रज्वलित कर रहा था और सम्पूर्ण देवताओंसे युक्त कैलास पर्वतको तथा सबको आच्छादित कर रहा था। उसकी मण्डलाकृति बड़ी विस्तृत थी। भगवान्के उस तेजको देखकर देवता लोग क्रमशः उनकी स्तुति करने लगे।

विष्णुने कहा—भगवन्! यह जो महाविराट् है, जिसके रोमछिद्रोंमें सभी ब्रह्माण्ड वर्तमान हैं, वह जब आपका सोलहवाँ अंश है, तब हम लोगोंकी क्या गणना है?

ब्रह्माने कहा—परमेश्वर! जो वेदोंके उपयुक्त दृश्य है, उसका प्रत्यक्ष दर्शन करने, स्तवन करने तथा वर्णन करनेमें मैं समर्थ हूँ; परंतु जो वेदोंसे परे है, उसकी मैं क्या स्तुति करूँ?

श्रीमहादेवजीने कहा—भगवन्! जो सबके लिये अनिर्वचनीय, स्वेच्छामय, व्यापक और ज्ञानसे परे है, उन आपका मैं ज्ञानका अधिष्ठातृदेवता होकर किस प्रकार स्तवन करूँ?

धर्मने कहा—जो अदृश्य होते हुए भी अवतारके समय सभी प्राणियोंके लिये दृश्य हो

जाते हैं, उन भक्तोंके मूर्तिमान् अनुग्रहस्वरूप तेजोरूपकी मैं कैसे स्तुति करूँ?

देवताओंने कहा—देवेश्वर! भला जिनका गुणगान करनेमें वेद समर्थ नहीं हैं तथा सरस्वतीकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है, उन आपका स्तवन करनेके लिये हम लोग कैसे समर्थ हो सकते हैं; क्योंकि हम तो आपके कलांश हैं।

मुनियोंने कहा—देव! वेदोंको पढ़कर विद्वान् कहलानेवाले हम लोग वेदोंके कारण-स्वरूप आपकी स्तुति कैसे कर सकते हैं? आप मन-वाणीके परे हैं; आपका स्तवन सरस्वती भी नहीं कर सकतीं।

सरस्वतीने कहा—अहो! यद्यपि वेदवादी लोग मुझे वाणीकी अधिष्ठातृदेवी कहते हैं, तथापि आपकी स्तुति करनेके लिये मुझमें कुछ भी शक्ति नहीं है; क्योंकि आप वाणी और मनके अगोचर हैं।

सावित्रीने कहा—नाथ! प्राचीनकालमें मेरी उत्पत्ति आपकी कलासे हुई थी। मैं वेदोंकी जननी हूँ। अतः स्त्रीस्वभाववश मैं सम्पूर्ण कारणोंके भी कारणस्वरूप आपकी किस प्रकार स्तुति करूँ?

लक्ष्मीने कहा—भगवन्! मैं आपके अंशभूत विष्णुकी पत्नी हूँ, जगत्‌का पालन-पोषण करनेवाली हूँ और आपकी कलासे उत्पन्न हुई हूँ। ऐसी दशामें जगत्‌की उत्पत्तिके कारणस्वरूप आपका स्तवन कैसे कर सकती हूँ?

हिमालयने कहा—नाथ! मैं कर्मसे स्थावर हूँ, अतः मुझे स्तुति करनेके लिये उद्यत देखकर सत्पुरुष मेरा उपहास कर रहे हैं। मैं क्षुद्र हूँ और स्तवन करनेके लिये सर्वथा अयोग्य हूँ; फिर किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ?

मुने! इस प्रकार जब सभी देवता, देवियाँ और मुनिगण क्रमशः उन नारायणकी स्तुति करके चुप हो गये, तब जो उत्तमव्रतपरायणा, तपस्याओं और सम्पूर्ण कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली और जगन्माता हैं, वे पार्वतीदेवी शिवजीकी प्रेरणासे व्रतके आराध्यदेव परमात्माकी स्तुति करनेको उद्यत हुईं। उस व्रतकालमें उन सतीका शरीर पीतवस्त्रसे आच्छादित था। वे सिरपर जटाका भार धारण किये हुए थीं। उनका रूप धधकती हुई अग्निकी लपटके समान प्रकाशमान था और वे तेजकी मूर्तिमान् विग्रह जान पड़ती थीं।

पार्वतीजी बोलीं—श्रीकृष्ण! आप तो मुझे जानते हैं; परंतु मैं आपको जाननेमें असमर्थ हूँ। भद्र! आपको वेदज्ञ, वेद अथवा वेदकर्ता—इनमेंसे कौन जानते हैं? अर्थात् कोई नहीं। भला, जब आपके अंश आपको नहीं जानते, तब आपकी कलाएँ आपको कैसे जान सकती हैं? इस तत्त्वको आप ही जानते हैं। आपके अतिरिक्त दूसरे लोग कौन इसे जाननेमें समर्थ हैं? आप सूक्ष्मसे भी सूक्ष्मतम, अव्यक्त, स्थूलसे भी महान् स्थूलतम हैं। आप सनातन, विश्वके कारण, विश्वरूप और विश्व हैं। आप ही कार्य, कारण, कारणोंके भी कारण, तेजःस्वरूप, षडैश्वर्योंसे युक्त, निराकार, निराश्रय, निर्लिप्त, निर्गुण, साक्षी, स्वात्माराम, परात्पर, प्रकृतिके अधीश्वर और विराट्‌के बीज हैं। आप ही विराट्‌रूप भी हैं। आप सगुण हैं और सृष्टि-रचनाके लिये अपनी कलासे प्राकृतिक रूप धारण कर लेते हैं। आप ही प्रकृति हैं, आप ही पुरुष हैं और आप ही वेदस्वरूप हैं। आपके अतिरिक्त अन्य कहीं कुछ भी नहीं है। आप जीव, साक्षीके भोक्ता और अपने आत्माके प्रतिबिम्ब हैं। आप ही कर्म और कर्मबीज हैं तथा कर्मोंके फलदाता भी आप ही हैं। योगीलोग आपके निराकार तेजका ध्यान करते हैं तथा कोई-कोई आपके चतुर्भुज, शान्त, लक्ष्मीकान्त मनोहर रूपमें ध्यान लगाते हैं। नाथ! जो वैष्णव भक्त हैं, वे आपके उस तेजस्वी, साकार, कमनीय, मनोहर, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी,

पीताम्बरसे सुशोभित, रूपका ध्यान करते हैं और आपके भक्तगण परमोत्कृष्ट, कमनीय, दो भुजावाले, सुन्दर, किशोर-अवस्थावाले, श्यामसुन्दर, शान्त, गोपीनाथ तथा रत्नाभरणोंसे विभूषित रूपका निरन्तर हर्षपूर्वक सेवन करते हैं। योगीलोग भी जिस रूपका ध्यान करते हैं, वह भी उस तेजस्वी रूपके अतिरिक्त और क्या है? देव! प्राचीनकालमें जब असुरोंका वध करनेके लिये ब्रह्माजीने मेरा स्तवन किया, तब मैं आपके उस तेजको धारण करनेवाले देवताओंके तेजसे प्रकट हुई। विभो! मैं अविनाशिनी तथा तेजःस्वरूपा हूँ। उस समय मैं शरीर धारण करके रमणीय रमणीरूप बनाकर वहाँ उपस्थित हुई। तत्पश्चात् आपकी मायास्वरूपा मैंने उन असुरोंको मायाद्वारा मोहित कर लिया और फिर उन सबको मारकर मैं शैलराज हिमालयपर चली गयी। तदनन्तर तारकाक्षद्वारा पीड़ित हुए देवताओंने जब मेरी सम्यक् प्रकारसे स्तुति की, तब मैं उस जन्ममें दक्ष-पत्नीके गर्भसे उत्पन्न होकर शिवजीकी भार्या हुई और दक्षके यज्ञमें शिवजीकी निन्दा होनेके कारण मैंने उस शरीरका परित्याग कर दिया। फिर मैंने ही शैलराजके कर्मोंके परिणामस्वरूप हिमालयकी पत्नीके गर्भसे जन्म धारण किया। इस जन्ममें भी अनेक प्रकारकी तपस्याके फलस्वरूप शिवजी मुझे प्राप्त हुए और ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे उन सर्वव्यापी योगीन्द्र मैं। [illegible] किये; परंतु देवमायावश मुझे उनके शृङ्गारजन्य तेजकी प्राप्ति नहीं हुई। परमेश्वर! इसी कारण पुत्र-दुःखसे दुःखी होकर मैं आपका स्तवन कर रही हूँ और इस समय आपके सदृश पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ; परंतु अङ्गोंसहित वेदमें आपने ऐसा विधान बना रखा है कि इस व्रतमें अपने स्वामीकी दक्षिणा दी जाती है (जो बड़ा दुष्कर कार्य है)। कृपासिन्धो! यह सब सुनकर आपको मुझपर कृपा करनी चाहिये।

नारद! वहाँ ऐसा कहकर पार्वती चुप हो गयीं। जो मनुष्य मनको पूर्णतया एकाग्र करके भारतवर्षमें इस पार्वतीकृत स्तोत्रको सुनता है, उसे निश्चय ही विष्णुके समान पराक्रमी उत्तम पुत्रकी प्राप्ति होती है। जो वर्षभरतक हविष्यान्नका भोजन करके भक्तिभावसे श्रीहरिकी अर्चना करता है, वह इस उत्तम पुण्यक-व्रतके फलको पाता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। ब्रह्मन्! यह विष्णुका स्तवन सम्पूर्ण सम्पत्तियोंकी वृद्धि करनेवाला, सुखदायक, मोक्षप्रद, साररूप, स्वामीके सौभाग्यका वर्धक, सम्पूर्ण सौन्दर्यका बीज, यशकी राशिको बढ़ानेवाला, हरि-भक्तिका दाता और तत्त्वज्ञान तथा बुद्धिकी विशेषरूपसे उन्नति करनेवाला है।*

(अध्याय ७)

---

* पार्वत्युवाच—

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी। के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः॥
त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति त्वत्कलाः। त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात् स्थूलतमो महान्। विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातनः॥
कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम्। तेजःस्वरूपो भगवान् निराकारो निराश्रयः॥
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामः परात्परः। प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च॥
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे॥
प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च वेदान्यो न क्वचिद् भवेत्। जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकः॥
कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः। ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरिणम्॥
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम्॥

पार्वतीकी स्तुतिसे प्रसन्न हुए श्रीकृष्णका पार्वतीको अपने रूपके दर्शन कराना, वर प्रदान करना और बालकरूपसे उनकी शय्यापर खेलना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! पार्वतीद्वारा किये गये उस स्तवनको सुनकर करुणानिधि श्रीकृष्णने पार्वतीको अपने उस स्वरूपके, जो सबके लिये अदृश्य और परम दुर्लभ है, दर्शन कराये। उस समय पार्वतीदेवी स्तुति करके अपने मनको एकमात्र श्रीकृष्णमें लगाकर ध्यानमें संलग्न थीं। उन्होंने उस तेजोराशिके मध्य सबको मोहित करनेवाले श्रीकृष्णके स्वरूपका दर्शन किया। वह एक रत्नपूर्ण मनोरम आसनपर, जो बहुमूल्य रत्नोंका बना हुआ था, जिसमें हीरे जड़े हुए थे और जो मणियोंकी मालाओंसे शोभित था, विराजमान था। उसके शरीरपर पीताम्बर सुशोभित था, हाथमें वंशी शोभा दे रही थी। गलेमें वनमालाकी निराली छटा थी। शरीरका रंग श्याम था। रत्नोंके आभूषण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसकी किशोर-अवस्था तथा वेश-भूषा विचित्र थी। उसके ललाटपर चन्दनकी खौर लगी थी। मुखपर मनोहर मुस्कान खेल रही थी। वह वन्दनीय स्वरूप शरदृतुके चन्द्रमाका उपहासक तथा मालतीकी मालाओंसे युक्त था। उसके मस्तकपर मयूरपिच्छकी अनोखी छवि थी। गोपाङ्गनाएँ उसे घेरे हुए थीं। वह राधाके वक्षःस्थलको उद्भासित कर रहा था, उसकी लावण्यता करोड़ों कामदेवोंको मात कर रही थी, वही लीलाका धाम, मनोहर, अत्यन्त प्रसन्न, सबका प्रेमपात्र और भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाला था। ऐसे उस रूपको देखकर सुन्दरी पार्वतीने मन-ही-मन उसीके अनुरूप पुत्रकी कामना की और उसी क्षण उन्हें वह वर प्राप्त भी हो गया। इस प्रकार वरदानी परमात्माने पार्वतीके मनमें जिस-जिस वस्तुकी कामना थी, उसे पूर्ण करके देवताओंका भी अभीष्ट सिद्ध किया। तत्पश्चात् वह तेज अन्तर्धान हो गया। तब देवताओंने कृपापरवश हो सनत्कुमारको समझाया और

वैष्णवाशीष साकारं कमनीयं मनोहरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम् । शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते सततं मुदा । ध्यायन्ति योगिनो यत् तत् कुतस्तेजस्विनं विना ॥
तत् तेजो बिभ्रतां देव देवानां तेजसा पुरा । आविर्भूतासुराणां च वधाय ब्रह्मणः स्तुता ॥
नित्या तेजःस्वरूपाहं विधृत्य विग्रहं विभो । स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता ॥
मायया तव मायाहं मोहयित्वासुरान् पुरा । निहत्य सर्वान् शैलेन्द्रमगमं तं हिमाचलम् ॥
ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः । अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री तत्र जन्मनि ॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाहं शिवनिन्दया । अभवं शैलजायायां शैलाधीशस्य कर्मणा ।
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि । पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः ॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं दैवमायया । स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥
व्रते भवाद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम् । दैवेन विहिता वेदे साक्षे स्वस्वामिदक्षिणा ॥
श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मां कर्तुमर्हसि । इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद ॥
भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः । सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः । सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥
विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्धनम् । सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम् ॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम् । हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविवर्धनम् ॥

(गणपतिखण्ड ७। १०९—१३१)

उन्होंने उन उमासहित दिगम्बर शिवको प्रसन्नचित्तवाली पार्वतीको लौटा दिया। फिर तो विश्वको आनन्दित करनेवाली दुर्गाने ब्राह्मणोंको अनेक प्रकारके रत्न तथा भिक्षुओं और बन्दियोंको सुवर्ण दान किये। ब्राह्मणों, देवताओं तथा पर्वतोंको भोजन कराया। सर्वोत्तम उपहारोंद्वारा शंकरजीकी पूजा की, बाजा बजवाया, माङ्गलिक कार्य कराये और श्रीहरिसे सम्बन्ध रखनेवाले सुन्दर गीत गवाये। इस प्रकार दुर्गाने व्रतको समाप्त करके परम उल्लासके साथ दान देकर सबको भोजन कराया। तत्पश्चात् अपने स्वामी शिवजीके साथ स्वयं भी भोजन किया। इसके बाद उत्तम पानके सुन्दर बीड़े, जो कपूर आदिसे सुवासित थे, क्रमश: सबको देकर कौतुकवश शिवजीके साथ स्वयं भी खाया। तदनन्तर पार्वतीदेवी एकान्तमें भगवान् शंकरके साथ विहार करने लगीं। इसी बीचमें एक ब्राह्मण दरवाजेपर आया। मुने! उस भिक्षुक ब्राह्मणका रूप तैलाभावके कारण रूखा था, शरीर मैले वस्त्रसे आच्छादित था, उसके दाँत अत्यन्त स्वच्छ थे, वह तृष्णासे पूर्णतया पीड़ित था, उसका शरीर कृश था, वह उज्ज्वल वर्णका तिलक धारण किये हुए था, उसका स्वर बहुत दीन था और दीनताके कारण उसकी मूर्ति कुत्सित थी। इस प्रकारके उस अत्यन्त वृद्ध तथा दुर्बल ब्राह्मणने अन्नकी याचना करनेके लिये दरवाजेपर डंडेके सहारे खड़े होकर महादेवजीको पुकारा।

ब्राह्मणने कहा—महादेव! आप क्या कर रहे हैं? मैं सात राततक चलनेवाले व्रतके समाप्त होनेपर भूखसे व्याकुल होकर भोजनकी इच्छासे आपकी शरणमें आया हूँ, मेरी रक्षा कीजिये। हे तात! आप तो करुणाके सागर हैं, अत: मुझ जराग्रस्त तथा तृष्णासे अत्यन्त पीड़ित वृद्धकी ओर दृष्टि डालिये। अरे ओ महादेव! आप क्या कर रहे हैं? माता पार्वती! उठो और मुझे सुवासित जल तथा अन्न प्रदान करो। गिरिराजकुमारी! मुझ शरणागतकी रक्षा करो। माता! ओ माता! तुम तो जगत्‌की माता हो, फिर मैं जगत्‌से बाहर थोड़े ही हूँ; अत: शीघ्र आओ। भला, अपनी माताके रहते हुए मैं किस कारण तृष्णासे पीड़ित हो रहा हूँ? ब्राह्मणकी दीन वाणी सुनकर शिव-पार्वती उठे। इसी समय शिवजीका शुक्रपात हो गया। वे पार्वतीके साथ द्वारपर आये। वहाँ उन्होंने उस वृद्ध तथा दीन ब्राह्मणको देखा जो वृद्ध-अवस्थासे अत्यन्त पीड़ित था। उसके शरीरमें झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। वह डंडा लिये हुए था और उसकी कमर झुक गयी थी। वह तपस्वी होते हुए भी अशान्त था। उसके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे और वह बड़ी शक्ति लगाकर उन दोनोंको प्रणाम तथा उनका स्तवन कर रहा था। उसके अमृतसे भी उत्तम वचन सुनकर नीलकण्ठ महादेवजी प्रसन्न हो गये। तब वे मुस्कराकर परम प्रेमके साथ उससे बोले।

शंकरजीने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ विप्रवर! इस समय मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपका घर कहाँ है और आपका नाम क्या है? इसे शीघ्र बतलाइये।

पार्वतीजी बोलीं—विप्रवर! कहाँसे आपका आगमन हुआ है? मेरा परम सौभाग्य था जो आप यहाँ पधारे। आप ब्राह्मण अतिथि होकर मेरे घरपर आये हैं, अत: आज मेरा जन्म सफल हो गया। द्विजश्रेष्ठ! अतिथिके शरीरमें देवता, ब्राह्मण और गुरु निवास करते हैं; अत: जिसने अतिथिका आदर-सत्कार कर लिया, उसने मानो तीनों लोकोंकी पूजा कर ली। अतिथिके चरणोंमें सभी तीर्थ सदा वर्तमान रहते हैं, अत: अतिथिके चरण-प्रक्षालनके जलसे निश्चय ही गृहस्थको तीर्थोंका फल प्राप्त हो जाता है। जिसने अपनी शक्तिके अनुसार यथोचितरूपसे अतिथिकी पूजा कर ली, उसने मानो सभी तीर्थोंमें स्नान कर लिया तथा सभी यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली। जिसने

भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक अतिथिका पूजन कर लिया, उसके द्वारा मानो भूतलपर सम्पूर्ण महादान कर लिये गये; क्योंकि वेदोंमें वर्णित जो नाना प्रकारके पुण्य हैं, वे तथा उनके अतिरिक्त अन्य पुण्यकर्म भी अतिथि-सेवाकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। इसलिये जिसके घरसे अतिथि अनादृत होकर लौट जाता है, उस गृहस्थके पितर, देवता, अग्नि और गुरुजन भी तिरस्कृत हो उस अतिथिके पीछे चले जाते हैं। जो अपने अभीष्ट अतिथिकी अर्चना नहीं करता, वह बड़े-बड़े पापोंको प्राप्त करता है।

ब्राह्मणने कहा—वेदज्ञे! आप तो वेदोंके ज्ञानसे सम्पन्न हैं, अतः वेदोक्त विधिसे पूजन कीजिये। माता! मैं भूख-प्याससे पीड़ित हूँ। मैंने श्रुतियोंमें ऐसा वचन भी सुना है कि जब मनुष्य व्याधियुक्त, आहाररहित अथवा उपवास-व्रती होता है, तब वह स्वेच्छानुसार भोजन करना चाहता है।

पार्वतीजीने पूछा—विप्रवर! आप क्या भोजन करना चाहते हैं? वह यदि त्रिलोकीमें परम दुर्लभ होगा तो भी आज मैं आपको खिलाऊँगी। आप मेरा जन्म सफल कीजिये।

ब्राह्मणने कहा—सुव्रते! मैंने सुना है कि उत्तम व्रतपरायणा आपने पुण्यक-व्रतमें सभी प्रकारका भोजन एकत्रित किया है, अतः उन्हीं अनेक प्रकारके मिष्टान्नोंको खानेके लिये मैं आया हूँ। मैं आपका पुत्र हूँ। जो मिष्टान्न तीनों लोकोंमें दुर्लभ हैं, उन पदार्थोंको मुझे देकर आप सबसे पहले मेरी पूजा करें। साध्वि! वेदवादियोंका कथन है कि पिता पाँच प्रकारके होते हैं। माताएँ अनेक तरहकी कही जाती हैं और पुत्रके पाँच भेद हैं। विद्यादाता (गुरु), अन्नदाता, भयसे रक्षा करनेवाला, जन्मदाता (पिता) और कन्यादाता (श्वशुर)—ये मनुष्योंके वेदोक्त पिता कहे गये हैं। गुरुपत्नी, गर्भधात्री (जननी), स्तनदात्री (धाय), पिताकी बहिन (बूआ), माताकी बहिन (मौसी), माताकी सपत्नी (सौतेली माता), अन्न प्रदान करनेवाली (पाचिका) और पुत्रवधू—ये माताएँ कहलाती हैं। भृत्य, शिष्य, दत्तक, वीर्यसे उत्पन्न (औरस) और शरणागत—ये पाँच प्रकारके पुत्र हैं। इनमें चार धर्मपुत्र कहलाते हैं और पाँचवाँ औरस पुत्र धनका भागी होता है*। माता! मैं आप पुत्रहीनाका ही अनाथ पुत्र हूँ, वृद्धावस्थासे ग्रस्त हूँ और इस समय भूख-प्याससे पीड़ित होकर आपकी शरणमें आया हूँ। गिरिराजकिशोरी! अन्नोंमें श्रेष्ठ पूड़ी, उत्तम-उत्तम पके फल, आटेके बने हुए नानाप्रकारके पदार्थ, काल-देशानुसार उत्पन्न हुई वस्तुएँ, पक्वान्न, चावलके आटेका बना हुआ तिकोना पदार्थविशेष, दूध, गन्ना, गुड़के बने हुए द्रव्य, घी, दही, अगहनीका भात, घृतमें पका हुआ व्यञ्जन, गुड़मिश्रित तिलोंके लड्डू, मेरी जानकारीसे बाहर सुधा-तुल्य अन्य वस्तुएँ, कर्पूर आदिसे सुवासित सुन्दर श्रेष्ठ ताम्बूल, अत्यन्त निर्मल तथा स्वादिष्ट जल—इन सभी सुवासित पदार्थोंको, जिन्हें खाकर मेरी सुन्दर तोंद हो जाय, मुझे प्रदान कीजिये।

आपके स्वामी सारी सम्पत्तियोंके दाता तथा त्रिलोकीके सृष्टिकर्ता हैं और आप सम्पूर्ण ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाली महालक्ष्मीस्वरूपा हैं; अतः आप मुझे रमणीय रत्नसिंहासन, अमूल्य रत्नोंके आभूषण, अग्निशुद्ध सुन्दर वस्त्र, अत्यन्त दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति,

* विद्यादाताऽन्नदाता च भयत्राता च जन्मदः। कन्यादाता च वेदोक्ता नराणां पितरः स्मृताः॥
गुरुपत्नी गर्भधात्री स्तनदात्री पितुः स्वसा। स्वसा मातुः सपत्नी च पुत्रभार्याऽन्नदायिका॥
भृत्यः शिष्यश्च पोष्यश्च वीर्यजः शरणागतः। धर्मपुत्राश्च चत्वारो वीर्यजो धनभागिति॥
(गणपतिखण्ड ८। ५७—५९)

मृत्युञ्जय नामक ज्ञान, सुखप्रदायिनी दानशक्ति और सर्वसिद्धि दीजिये। सतीमाता! आप ही सदा श्रीहरिकी प्रिया तथा सर्वस्व प्रदान करनेवाली शक्ति हैं; अतः अपने पुत्रके लिये आपको कौन-सी वस्तु अदेय है? मैं उत्तम धर्म और तपस्यामें लगे हुए मनको अत्यन्त निर्मल करके सारा कार्य करूँगा, परंतु जन्महेतुक कामनाओंमें नहीं लगूँगा; क्योंकि मनुष्य अपनी इच्छासे कर्म करता है, कर्मसे भोगकी प्राप्ति होती है। ये भोग शुभ और अशुभ दो प्रकारके होते हैं और ये ही दोनों सुख-दुःखके हेतु हैं। जगदम्बिके! न किसीसे दुःख होता है न सुख, सब अपने कर्मका ही भोग है; इसलिये विद्वान् पुरुष कर्मसे विरत हो जाते हैं। सत्पुरुष निरन्तर आनन्दपूर्वक बुद्धिद्वारा हरिका स्मरण करनेसे, तपस्यासे तथा भक्तोंके सङ्गसे कर्मको ही निर्मूल कर देते हैं; क्योंकि इन्द्रिय और उनके विषयोंके संयोगसे उत्पन्न हुआ सुख तभीतक रहता है, जबतक उनका नाश नहीं हो जाता, परंतु हरिकीर्तनरूप सुख सब कालमें वर्तमान रहता है।

सतीदेवि! हरिध्यानपरायण भक्तोंकी आयु नष्ट नहीं होती; क्योंकि काल तथा मृत्युञ्जय उनपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते—यह ध्रुव है। वे चिरजीवी भक्त भारतवर्षमें चिरकालतक जीवित रहते हैं और सम्पूर्ण सिद्धियोंका ज्ञान प्राप्त करके स्वच्छन्दतापूर्वक सर्वत्रगामी होते हैं। हरिभक्तोंको पूर्वजन्मका स्मरण बना रहता है। वे अपने करोड़ों जन्मोंको जानते हैं और उनकी कथाएँ कहते हैं; फिर आनन्दके साथ स्वेच्छानुसार जन्म धारण करते हैं। वे स्वयं तो पवित्र होते ही हैं, अपनी लीलासे दूसरोंको तथा तीर्थोंको पवित्र कर देते हैं। इस पुण्यक्षेत्र भारतमें वे परोपकार और सेवाके लिये भ्रमण करते रहते हैं। वे वैष्णव जिस तीर्थमें गोदोहन-कालमात्र भी ठहर जाते हैं तो उनके चरणस्पर्शसे वसुन्धरा तत्काल ही पवित्र हो जाती है। जिन मनुष्योंको भक्तोंका दर्शन अथवा आलिङ्गन प्राप्त हो जाता है, वे मानो समस्त तीर्थोंमें भ्रमण कर चुके और उन्हें सम्पूर्ण यज्ञोंकी दीक्षा मिल चुकी। जैसे सब कुछ भक्षण करनेपर भी अग्नि और समस्त पदार्थोंका स्पर्श करनेपर भी वायु दूषित नहीं कहे जाते, उसी प्रकार निरन्तर हरिमें चित्त लगानेवाले भक्त पापोंसे लिप्त नहीं होते। करोड़ों जन्मोंके अन्तमें मनुष्य-जन्म मिलता है। फिर मनुष्य-योनिमें बहुत-से जन्मोंके बाद उसे भक्तोंका सङ्ग प्राप्त होता है।

सती पार्वति! भक्तोंके सङ्गसे प्राणियोंके हृदयमें भक्तिका अंकुर उत्पन्न होता है और भक्तिहीनोंके दर्शनसे वह सूख जाता है। पुनः वैष्णवोंके साथ वार्तालाप करनेसे वह प्रफुल्लित हो उठता है। तत्पश्चात् वह अविनाशी अंकुर प्रत्येक जन्ममें बढ़ता रहता है। सती! वृद्धिको प्राप्त होते हुए उस वृक्षका फल हरिकी दासता है। इस प्रकार भक्तिके परिपक्व हो जानेपर परिणाममें वह श्रीहरिका पार्षद हो जाता है। फिर तो महाप्रलयके अवसरपर ब्रह्मा, ब्रह्मलोक तथा सम्पूर्ण सृष्टिका संहार हो जानेपर भी निश्चय ही उसका नाश नहीं होता। अम्बिके! इसलिये मुझे सदा नारायणके चरणोंमें भक्ति प्रदान कीजिये; क्योंकि विष्णुमाये! आपके बिना विष्णुमें भक्ति नहीं प्राप्त होती। आपकी तपस्या और पूजन तो लोकशिक्षाके लिये हैं; क्योंकि आप नित्यस्वरूपा सनातनी देवी हैं और समस्त कर्मोंका फल प्रदान करनेवाली हैं। प्रत्येक कल्पमें श्रीकृष्ण गणेशरूपसे आपके पुत्र बनकर आपकी गोदमें आते हैं।

यों कहकर वे ब्राह्मण तुरंत ही अन्तर्धान हो गये। वे परमेश्वर इस प्रकार अन्तर्हित होकर बालरूप धारण करके महलके भीतर स्थित पार्वतीकी शय्यापर जा पहुँचे और जन्मे हुए बालककी भाँति घरकी छतके भीतरी भागकी ओर देखने लगे। उस बालकके शरीरकी आभा

शुद्ध चम्पकके समान थी। उसका प्रकाश करोड़ों चन्द्रमाओंकी भाँति उद्दीप्त था। सब लोग सुखपूर्वक उसकी ओर देख सकते थे। वह नेत्रोंकी ज्योति बढ़ानेवाला था। कामदेवको विमोहित करनेवाला उसका अत्यन्त सुन्दर शरीर था। उसका अनुपम मुख शारदीय पूर्णिमाका उपहास कर रहा था। सुन्दर कमलको तिरस्कृत करनेवाले उसके सुन्दर नेत्र थे। ओठ और अधरपुट ऐसे लाल थे कि उसे देखकर पका हुआ बिम्बाफल भी लज्जित हो जाता था। कपाल और कपोल परम मनोहर थे। गरुड़के चोंचकी भी निन्दा करनेवाली रुचिर नासिका थी। उसके सभी अङ्ग उत्तम थे। त्रिलोकीमें कहीं उसकी उपमा नहीं थी। इस प्रकार वह रमणीय शय्यापर सोया हुआ शिशु हाथ-पैर उछाल रहा था।

(अध्याय ८)

श्रीहरिके अन्तर्धान हो जानेपर शिव-पार्वतीद्वारा ब्राह्मणकी खोज, आकाशवाणीके सूचित करनेपर पार्वतीका महलमें जाकर पुत्रको देखना और शिवजीको बुलाकर दिखाना, शिव-पार्वतीका पुत्रको गोदमें लेकर आनन्द मनाना

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! इस प्रकार जब श्रीहरि अन्तर्धान हो गये, तब दुर्गा और शंकर ब्राह्मणकी खोज करते हुए चारों ओर घूमने लगे।

उस समय पार्वतीजी कहने लगीं—हे विप्रवर! आप तो अत्यन्त वृद्ध और भूखसे व्याकुल थे। हे तात! आप कहाँ चले गये? विभो! मुझे दर्शन दीजिये और मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिये। शिवजी! शीघ्र उठिये और उन ब्राह्मणदेवकी खोज कीजिये। वे क्षणमात्रके लिये उदास मनवाले हम लोगोंके सामने आये थे। परमेश्वर! यदि भूखसे पीड़ित अतिथि गृहस्थके घरसे अपूजित होकर चला जाता है तो क्या उस गृहस्थका जीवन व्यर्थ नहीं हो जाता? यहाँतक कि उसके पितर उसके द्वारा दिये गये पिण्डदान और तर्पणको नहीं ग्रहण करते तथा अग्नि उसकी दी हुई आहुति और देवगण उसके द्वारा निवेदित पुष्प एवं जल नहीं स्वीकार करते। उस अपवित्रका हव्य, पुष्प, जल और द्रव्य—सभी मदिराके तुल्य हो जाता है। उसका शरीर मल-सदृश और स्पर्श पुण्यनाशक हो जाता है।

इसी बीच वहाँ आकाशवाणी हुई, जिसे शोकसे आतुर तथा विकलतासे युक्त दुर्गाने सुना। (आकाशवाणीने कहा—)जगन्माता! शान्त हो जाओ और मन्दिरमें अपने पुत्रकी ओर दृष्टिपात करो। वह साक्षात् गोलोकाधिपति परिपूर्णतम परात्पर श्रीकृष्ण है तथा सुपुण्यक-व्रतरूपी वृक्षका सनातन फल है। योगी लोग जिस अविनाशी तेजका प्रसन्नमनसे निरन्तर ध्यान करते हैं; वैष्णवगण तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता जिसके ध्यानमें लीन रहते हैं; प्रत्येक कल्पमें जिस पूजनीयकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जिसके स्मरणमात्रसे समस्त विघ्न नष्ट हो जाते हैं, तथा जो पुण्यकी राशिस्वरूप है, मन्दिरमें विराजमान अपने उस पुत्रको ओर तो दृष्टि डालो। प्रत्येक कल्पमें तुम जिस सनातन ज्योति रूपका ध्यान करती हो, वही तुम्हारा पुत्र है। यह मुक्तिदाता तथा भक्तोंके अनुग्रहका मूर्त रूप है। जरा उसकी ओर तो निहारो। जो तुम्हारी कामनापूर्तिका बीज, तपरूपी कल्पवृक्षका फल और लावण्यतामें करोड़ों कामदेवोंकी निन्दा करनेवाला है, अपने उस सुन्दर पुत्रको देखो। दुर्गे! तुम क्यों विलाप कर रही हो? अरे, वह क्षुधातुर ब्राह्मण नहीं है, वह तो विप्रवेषमें जनार्दन

हैं। अब कहाँ वह वृद्ध और कहाँ वह अतिथि? नारद! यों कहकर सरस्वती चुप हो गयी।

तब उस आकाशवाणीको सुनकर सती पार्वती भयभीत हो अपने महलमें गयीं। वहाँ उन्होंने पलंगपर सोये हुए बालकको देखा। वह आनन्दपूर्वक मुस्कराते हुए महलकी छतके भीतरी भागको निहार रहा था। उसकी प्रभा सैकड़ों चन्द्रमाओंके तुल्य थी। वह अपने प्रकाशसमूहसे भूतलको प्रकाशित कर रहा था। हर्षपूर्वक स्वेच्छानुसार इधर-उधर देखते हुए शय्यापर उछल-कूद रहा था और स्तनपानकी इच्छासे रोते हुए 'उमा' ऐसा शब्द कर रहा था। उस अद्भुत रूपको देखकर सर्वमङ्गला पार्वती त्रस्त हो शंकरजीके संनिकट गयीं और उन प्राणेश्वरसे मङ्गल-वचन बोलीं।

पार्वतीने कहा—प्राणपति! घर चलिये और मन्दिरके भीतर चलकर प्रत्येक कल्पमें आप जिसका ध्यान करते हैं तथा जो तपस्याका फलदाता है, उसे देखिये। जो पुण्यका बीज, महोत्सवस्वरूप, 'पुत्' नामक नरकसे रक्षा करनेका कारण और भवसागरसे पार करनेवाला है, शीघ्र ही उस पुत्रके मुखका अवलोकन कीजिये; क्योंकि समस्त तीर्थोंमें स्नान तथा सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा-ग्रहणका पुण्य इस पुत्रदर्शनके पुण्यकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकता। सर्वस्व दान कर देनेसे जो पुण्य होता है तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा करनेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वे सभी इस पुत्रदर्शन जन्य पुण्यके सोलहवें अंशके भी बराबर नहीं हैं।

पार्वतीके ये वचन सुनकर शिवजीका मन हर्षमग्न हो गया। वे तुरंत ही अपनी प्रियतमाके साथ अपने घर आये। वहाँ उन्होंने शय्यापर अपने पुत्रको देखा। उसकी कान्ति तपाये हुए स्वर्णके

समान उद्दीप्त थी। (फिर सोचने लगे—) मेरे हृदयमें जो अत्यन्त मनोहर रूप विद्यमान था, यह तो वही है। तत्पश्चात् दुर्गाने उस पुत्रको शय्यापरसे उठा लिया और उसे छातीसे लगाकर वे उसका चुम्बन करने लगीं। उस समय वे आनन्द-सागरमें निमग्न होकर यों कहने लगीं—'बेटा! जैसे दरिद्रका मन सहसा उत्तम धन पाकर संतुष्ट हो जाता है, उसी तरह तुझ सनातन अमूल्य रत्नकी प्राप्तिसे मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। जैसे चिरकालसे प्रवासी हुए प्रियतमके घर लौटनेपर स्त्रीका मन पूर्णतया हर्षमग्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी हो रही है। वत्स! जैसे एक पुत्रवाली माता चिरकालसे बाहर गये हुए अपने इकलौते पुत्रको आया हुआ देखकर परितुष्ट होती है, वैसे ही इस समय मैं भी संतुष्ट हो रही हूँ। जैसे मनुष्य चिरकालसे नष्ट हुए उत्तम रत्नको तथा अनावृष्टिके समय उत्तम वृष्टिको पाकर हर्षसे फूल उठता है, उसी प्रकार तुझ पुत्रको पाकर मैं भी हर्ष-गद्गद हो रही हूँ। जैसे चिरकालके पश्चात् आश्रयहीन अंधेका मन परम निर्मल नेत्रकी प्राप्तिसे प्रसन्न हो जाता है, वही अवस्था (तुझे पाकर) मेरे मनकी भी हो रही है। जैसे दुस्तर अगाध सागरमें गिरे हुए अथवा विपत्तिमें फँसे हुए नौका आदि

साधनविहीन मनुष्यका मन नौकाको पाकर आनन्दसे भर जाता है, वैसे ही मेरा मन भी आनन्दित हो रहा है। जैसे प्याससे सूखे हुए कण्ठवाले मनुष्योंका मन चिरकालके पश्चात् अत्यन्त शीतल एवं सुवासित जलको पाकर प्रसन्न हो जाता है, वही दशा मेरे मनकी भी है। जैसे दावाग्निसे घिरे हुएको अग्निरहित स्थान और आश्रयहीनको आश्रय मिल जानेसे मनकी इच्छा पूरी हो जाती है, उसी प्रकार मेरी भी इच्छापूर्ति हो रही है। चिरकालसे व्रतोपवास करनेवाले भूखे मनुष्योंका मन जैसे सामने उत्तम अन्न देखकर प्रसन्न हो उठता है, उसी तरह मेरा मन भी हर्षित हो रहा है।' यों कहकर पार्वतीने अपने बालकको गोदमें लेकर प्रेमके साथ उसके मुखमें अपना स्तन दे दिया। उस समय उनका मन परमानन्दमें निमग्न हो रहा था। तत्पश्चात् भगवान् शंकरने भी प्रसन्नमनसे उस बालकको अपनी गोदमें उठा लिया। (अध्याय ९)

शिव, पार्वती तथा देवताओंद्वारा अनेक प्रकारका दान दिया जाना, बालकको देवताओं एवं देवियोंका शुभाशीर्वाद और इस मङ्गलाध्यायके श्रवणका फल

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर उन दोनों पति-पत्नी—शिव-पार्वतीने बाहर जाकर पुत्रकी मङ्गलकामनासे हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको नानाप्रकारके रत्न दान किये तथा भिक्षुओं और वन्दियोंको विभिन्न प्रकारकी वस्तुएँ बाँटीं। उस अवसरपर शंकरजीने अनेक प्रकारके बाजे बजवाये। हिमालयने ब्राह्मणोंको एक लाख रत्न, एक हजार श्रेष्ठ हाथी, तीन लाख घोड़े, दस लाख गौएँ, पाँच लाख स्वर्णमुद्राएँ तथा और भी जो मुक्ता, हीरे और रत्न आदि श्रेष्ठ मणियाँ थीं, वे सभी दान कीं। इसके अतिरिक्त दूसरे प्रकारके भी दान—जैसे वस्त्र, आभूषण और क्षीरसागरसे उत्पन्न सभी तरहके अमूल्य रत्न आदि दिये। कौतुकी विष्णुने ब्राह्मणोंको कौस्तुभमणिका दान दिया। ब्रह्माने हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको ऐसी विशिष्ट वस्तुएँ दान कीं जो सृष्टिमें परम दुर्लभ थीं तथा वे ब्राह्मण जिन्हें पाना चाहते थे। इसी तरह धर्म, सूर्य, इन्द्र, देवगण, मुनिगण, गन्धर्व, पर्वत तथा देवियोंने क्रमशः दान दिये। ब्रह्मन्! उस अवसरपर क्षीरसागरने हर्षित होकर कौतुकवश एक हजार माणिक्य, एक सौ कौस्तुभमणि, एक सौ हीरक, एक सहस्र हरे रंगकी श्रेष्ठ मणियाँ, एक लाख गो-रत्न, एक सहस्र गज-रत्न, श्वेतवर्णके अन्यान्य अमूल्य रत्न, एक करोड़ स्वर्णमुद्राएँ और अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए वस्त्र ब्राह्मणोंको प्रदान किये। सरस्वतीदेवीने अमूल्य रत्नोंका बना हुआ एक ऐसा हार दिया, जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ था। वह अत्यन्त निर्मल, साररूप और अपनी प्रभासे सूर्यके प्रकाशकी निन्दा करनेवाला, मणिजटित और हीरेके नगोंसे सुशोभित था। उस रमणीय हारके मध्यमें कौस्तुभमणि पिरोयी हुई थी। सावित्रीने हर्षित होकर एक बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित त्रिलोकीका साररूप हार और सब तरहके आभूषण प्रदान किये। आनन्दमग्न कुबेरने एक लाख सोनेकी सिलें, अनेक प्रकारके धन और एक सौ अमूल्य रत्न दान किये। मुने! शिवपुत्रके जन्मोत्सवमें उपस्थित सभी लोगोंने इस प्रकार ब्राह्मणोंको दान देकर तत्पश्चात् उस शिशुका दर्शन किया। उस समय वे सब परमानन्दमें निमग्न थे। मुने! उस दानमें ब्राह्मणों तथा वन्दियोंको इतना धन मिला था कि वे उसका भार ढोनेमें असमर्थ थे, इसलिये बोझसे घबराकर मार्गमें ठहर-ठहरकर चलते थे। वे सभी विश्राम कर चुकनेपर पूर्वकालके दाताओंकी कथाएँ कहते थे, जिसे वृद्ध एवं युवा भिक्षुक प्रेमपूर्वक सुनते थे।

नारद! उस अवसरपर विष्णुने आनन्दमग्न होकर दुन्दुभिका शब्द कराया, गीत गवाया, नाच कराया, वेदों और पुराणोंका पाठ कराया। फिर मुनिवरोंको बुलवाकर हर्षपूर्वक उनका पूजन किया, माङ्गलिक कार्य कराया और उनसे आशीर्वाद दिलाया। तत्पश्चात् देवी तथा देवगणोंके साथ वे स्वयं भी उस बालकको शुभाशीर्वाद देने लगे।

विष्णुने कहा—बालक! तुम दीर्घायु, ज्ञानमें शिवके सदृश, पराक्रममें मेरे तुल्य और सम्पूर्ण सिद्धियोंके ईश्वर होओ।

ब्रह्माने कहा—वत्स! तुम्हारे यशसे जगत् पूर्ण हो जाय, तुम शीघ्र ही सर्वपूज्य हो जाओ और सबसे पहले तुम्हारी परम दुर्लभ पूजा हो।

धर्मने कहा—पार्वतीनन्दन! तुम मेरे समान परम धार्मिक, सर्वज्ञ, दयालु, हरिभक्त और श्रीहरिके समान परम दुर्लभ होओ।

महादेवने कहा—प्राणप्रिय पुत्र! तुम मेरी भाँति दाता, हरिभक्त, बुद्धिमान्, विद्यावान्, पुण्यवान्, शान्त और जितेन्द्रिय होओ।

लक्ष्मीने कहा—बेटा! तुम्हारे घरमें तथा शरीरमें मेरी सनातनी स्थिति बनी रहे और मेरी ही तरह तुम्हें शान्त एवं मनोहर रूपवाली पतिव्रता पत्नी प्राप्त हो।

सरस्वतीने कहा—पुत्र! मेरे ही तुल्य तुम्हें परमोत्कृष्ट कवित्वशक्ति, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति और विवेचन-शक्तिकी प्राप्ति हो।

सावित्रीने कहा—वत्स! मैं वेदमाता हूँ, अतः तुम मेरे मन्त्रजपमें तत्पर होकर शीघ्र ही वेदवादियोंमें श्रेष्ठ तथा वेदज्ञानी हो जाओ।

हिमालयने कहा—बेटा! तुम्हारी बुद्धि सदा श्रीकृष्णमें लगी रहे, श्रीकृष्णमें ही तुम्हारी सनातनी भक्ति हो, तुम श्रीकृष्णके समान गुणवान् होओ और सदा श्रीकृष्णपरायण बने रहो।

मेनकाने कहा—वत्स! तुम गम्भीरतामें समुद्रके समान, सुन्दरतामें कामदेवके सदृश, लक्ष्मीवानोंमें श्रीपतिके तुल्य और धर्ममें धर्मकी तरह होओ।

वसुन्धराने कहा—वत्स! तुम मेरी तरह क्षमाशील, शरणदाता, सम्पूर्ण रत्नोंसे सम्पन्न, विघ्नरहित, विघ्नविनाशक और शुभके आश्रयस्थान होओ।

पार्वतीने कहा—बेटा! तुम अपने पिताके समान महान् योगी, सिद्ध, सिद्धियोंके प्रदाता, शुभकारक, मृत्युञ्जय, ऐश्वर्यशाली और अत्यन्त निपुण होओ।

तदनन्तर समागत सभी ऋषियों, मुनियों और सिद्धोंने आशीर्वाद दिया और ब्राह्मणों तथा बन्दियोंने सब प्रकारकी मङ्गल-कामना की। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने गणेशका जन्मवृत्तान्त, जो सम्पूर्ण मङ्गलोंका मङ्गल करनेवाला तथा समस्त विघ्नोंका विनाशक है, पूर्णतया तुमसे वर्णन कर दिया। जो मनुष्य अत्यन्त समाहित होकर इस शुभमङ्गलाध्यायको सुनता है, वह सम्पूर्ण मङ्गलोंसे युक्त होकर मङ्गलोंका आवासस्थान हो जाता है। इसके श्रवणसे पुत्रहीनको पुत्र, निर्धनको धन, कृपणको निरन्तर धन प्रदान करनेकी शक्ति, भार्यार्थीको भार्या, प्रजाकामीको प्रजा और रोगीको आरोग्य प्राप्त होता है। दुर्भगा स्त्रीको सौभाग्य, भ्रष्ट हुआ पुत्र, नष्ट हुआ धन और प्रवासी पति मिल जाता है तथा शोकग्रस्तको सदा आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है, इसमें संशय नहीं है। मुने! गणेशाख्यानके श्रवणसे मनुष्यको जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, वह फल निश्चय ही इस अध्यायके श्रवणसे मिल जाता है। यह मङ्गलाध्याय जिसके घरमें विद्यमान रहता है, वह सदा मङ्गलयुक्त रहता है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यात्राकालमें अथवा पुण्यपर्वपर जो मनुष्य एकाग्रचित्तसे इसका श्रवण करता है, वह श्रीगणेशकी कृपासे अपने सभी मनोरथोंको पा जाता है। (अध्याय १०)

गणेशको देखनेके लिये शनैश्चरका आना और पार्वतीके पूछनेपर अपने द्वारा किसी वस्तुके न देखनेका कारण बताना

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! इस प्रकार उस बालकको आशीर्वाद देकर श्रीहरि उस सभामें देवताओं और मुनियोंके साथ एक रत्ननिर्मित श्रेष्ठ सिंहासनपर विराजमान हुए। उनके दक्षिणभागमें शंकर, वामभागमें प्रजापति ब्रह्मा और आगे धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ तथा जगत्के साक्षी धर्मने आसन ग्रहण किया। ब्रह्मन्! फिर धर्मके समीप सूर्य, इन्द्र, चन्द्रमा, देवगण, मुनिसमुदाय और पर्वतसमूह सुखपूर्वक आसनोंपर बैठे। इसी बीच महायोगी सूर्यपुत्र शनैश्चर शंकरनन्दन गणेशको देखनेके लिये वहाँ आये। उनका मुख अत्यन्त नम्र था, आँखें कुछ मुँदी हुई थीं और मन एकमात्र श्रीकृष्णमें लगा हुआ था; अतः वे बाहर-भीतर श्रीकृष्णका स्मरण कर रहे थे। वे तपःफलको खानेवाले, तेजस्वी, धधकती हुई अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान, अत्यन्त सुन्दर, श्यामवर्ण, पीताम्बरधारी और श्रेष्ठ थे। उन्होंने वहाँ पहले विष्णु, ब्रह्मा, शिव, धर्म, सूर्य, देवगणों और मुनिवरोंको प्रणाम किया। फिर उनकी आज्ञासे वे उस बालकको देखनेके लिये गये। भीतर जाकर शनैश्चरने सिर झुकाकर पार्वतीदेवीको नमस्कार किया। उस समय वे पुत्रको छातीसे चिपटाये रत्नसिंहासनपर विराजमान हो आनन्दपूर्वक मुस्करा रही थीं। पाँच सखियाँ निरन्तर उनपर श्वेत चँवर डुलाती जाती थीं। वे सखीद्वारा दिये गये सुवासित ताम्बूलको चबा रही थीं। उनके शरीरपर अग्निसे तपाकर शुद्ध की हुई सुन्दर साड़ी शोभायमान थी। रत्नोंके आभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। सहसा सूर्यनन्दन शनैश्चरको सिर झुकाये देखकर दुर्गाने उन्हें शीघ्र ही शुभाशीर्वाद दिया और फिर उनसे वार्तालाप करके उनका कुशल-मङ्गल पूछा।

पार्वतीने पुनः पूछा—ग्रहेश्वर! इस समय तुम्हारा मुख नीचेकी ओर क्यों झुका हुआ है तथा तुम मुझे अथवा इस बालकको ओर देख क्यों नहीं रहे हो? साधो! मैं इसका कारण सुनना चाहती हूँ।

शनैश्चरने कहा—साध्वि! सारे जीव स्वकर्मानुसार अपनी करनीका फल भोगते हैं; क्योंकि जो भी शुभ अथवा अशुभ कर्म होता है, उसका करोड़ों कल्पोंमें भी नाश नहीं होता। जीव कर्मानुसार ब्रह्मा, इन्द्र और सूर्यके भवनमें जन्म लेता है। कर्मसे ही वह मनुष्यके घरमें और कर्मसे ही पशु आदि योनियोंमें उत्पन्न होता है। कर्मसे वह नरकमें जाता है और कर्मसे ही उसे वैकुण्ठकी प्राप्ति होती है। स्वकर्मानुसार वह चक्रवर्ती राजा हो जाता है और अपने ही कर्मसे वही नौकर भी होता है। माता! कर्मसे ही वह सुन्दर होता है और अपने कर्मके फलस्वरूप वह सदा रोगग्रस्त बना रहता है। कर्मानुसार ही वह विषयप्रेमी और अपने कर्मसे ही विषयोंसे निर्लिप्त रहता है। कर्मसे ही वह लोकमें धनवान्, कर्मसे ही दरिद्र, कर्मसे ही उत्तम कुटुम्बवाला और कर्मसे ही बन्धुओंके लिये कण्टकरूप हो जाता है। अपने कर्मसे ही जीवको उत्तम पत्नी, उत्तम पुत्र और निरन्तर सुखकी प्राप्ति होती है तथा स्वकर्मसे ही वह पुत्रहीन, दुष्ट स्वभावा स्त्रीका स्वामी अथवा स्त्रीहीन होता है।

शंकरवल्लभे! मैं एक परम गोपनीय इतिहास, यद्यपि वह लज्जाजनक तथा माताके समक्ष कहने योग्य नहीं है, कहता हूँ, सुनिये। मैं बचपनसे ही श्रीकृष्णका भक्त था। मेरा मन सदा एकमात्र श्रीकृष्णके ध्यानमें ही लगा रहता था। मैं विषयोंसे विरक्त होकर निरन्तर तपस्यामें रत रहता था।

पिताजीने चित्ररथकी कन्यासे मेरा विवाह कर दिया। वह सती-साध्वी नारी अत्यन्त तेजस्विनी तथा सतत तपस्यामें रत रहनेवाली थी। एक दिन ऋतुस्नान करके वह मेरे पास आयी। उस समय मैं भगवच्चरणोंका ध्यान कर रहा था। मुझे बाह्यज्ञान बिलकुल नहीं था। पत्नीने अपना ऋतुकाल निष्फल जानकर मुझे शाप दे दिया कि 'तुम अब जिसकी ओर दृष्टि करोगे, वही नष्ट हो जायगा'। तदनन्तर जब मैं ध्यानसे विरत हुआ, तब मैंने उस सतीको संतुष्ट किया; परंतु अब तो वह शापसे मुक्त करानेमें असमर्थ थी; अतः पश्चात्ताप करने लगी। माता! इसी कारण मैं किसी वस्तुको अपने नेत्रोंसे नहीं देखता और तभीसे मैं जीवहिंसाके भयसे स्वाभाविक ही अपने मुखको नीचे किये रखता हूँ। मुने! शनैश्चरकी बात सुनकर पार्वती हँसने लगीं और नर्तकियों तथा किंनरियोंका सारा समुदाय ठहाका मारकर हँस पड़ा। (अध्याय ११)

पार्वतीके कहनेसे शनैश्चरका गणेशपर दृष्टिपात करना, गणेशके सिरका कटकर गोलोकमें चला जाना, पार्वतीकी मूर्च्छा, श्रीहरिका आगमन और गणेशके धड़पर हस्तीका सिर जोड़कर जीवित करना, फिर पार्वतीको होशमें लाकर बालकको आशीर्वाद देना, पार्वतीद्वारा शनैश्चरको शाप

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! शनैश्चरका वचन सुनकर दुर्गाने परमेश्वर श्रीहरिका स्मरण किया और 'सारा जगत् ईश्वरकी इच्छाके वशीभूत ही है' यों कहा। फिर दैववशीभूता पार्वतीदेवीने कौतूहलवश शनैश्चरसे कहा—'तुम मेरी तथा मेरे बालककी ओर देखो। भला, इस निषेक (कर्मफलभोग)-को कौन हटा सकता है?' तब पार्वतीका वचन सुनकर शनैश्चर स्वयं मन-ही-मन यों विचार करने लगे—'अहो! क्या मैं इस पार्वतीनन्दनपर दृष्टिपात करूँ अथवा न करूँ? क्योंकि यदि मैं बालकको देख लूँगा तो निश्चय ही उसका अनिष्ट हो जायगा।' यों कहकर धर्मात्मा शनैश्चरने धर्मको साक्षी बनाकर बालकको तो देखनेका विचार किया, परंतु बालककी माताको नहीं। शनैश्चरका मन तो पहलेसे ही खिन्न था। उनके कण्ठ, ओष्ठ और तालु भी सूख गये थे; फिर भी उन्होंने अपने बायें नेत्रके कोनेसे शिशुके मुखकी ओर निहारा। मुने! शनिकी दृष्टि पड़ते ही शिशुका मस्तक धड़से अलग हो गया। तब शनैश्चरने

अपनी आँख फेर ली और फिर वे नीचे मुख करके खड़े हो गये। इसके बाद उस बालकका खूनसे लथपथ हुआ सारा शरीर तो पार्वतीकी गोदमें पड़ा रह गया, परंतु मस्तक अपने अभीष्ट गोलोकमें जाकर श्रीकृष्णमें प्रविष्ट हो गया। यह देखकर पार्वतीदेवी बालकको छातीसे चिपटाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगीं और उन्मत्तकी

भाँति भूमिपर गिरकर मूर्च्छित हो गयीं। तब वहाँ उपस्थित सभी देवता, देवियाँ, पर्वत, गन्धर्व, शिव तथा कैलासवासी जन यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गये। उस समय उनकी दशा चित्रलिखित पुत्तलिकाके समान जड़ हो गयी।

इस प्रकार उन सबको मूर्च्छित देखकर श्रीहरि गरुड़पर सवार हुए और उत्तरदिशामें स्थित पुष्पभद्राके निकट गये। वहाँ पुष्पभद्रा नदीके तटपर वनमें स्थित एक गजेन्द्रको देखा, जो निद्राके वशीभूत हो बच्चोंसे घिरकर हथिनीके साथ सो रहा था। उसका सिर उत्तर दिशाकी ओर था, मन परमानन्दसे पूर्ण था और वह सुरतके परिश्रमसे थका हुआ था। फिर तो श्रीहरिने शीघ्र ही सुदर्शनचक्रसे उसका सिर काट लिया और रक्तसे भीगे हुए उस मनोहर मस्तकको बड़े हर्षके साथ गरुड़पर रख लिया। गजके कटे हुए अङ्गके गिरनेसे हथिनीकी नींद टूट गयी। तब अमङ्गल शब्द करती हुई उसने अपने शावकोंको भी जगाया। फिर वह शोकसे विह्वल हो शावकोंके साथ बिलख-बिलखकर चीत्कार करने लगी। तत्पश्चात् जो लक्ष्मीके स्वामी हैं, जिनका स्वरूप परम शान्त है; जिनके करकमलोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते हैं; जो पीताम्बरधारी, परात्पर, जगत्‌के स्वामी, निषेकका खण्डन करनेमें समर्थ, निषेकको उत्पन्न करनेवाले, सर्वव्यापक, निषेकके भोगके दाता और भोगके निस्तारके कारणस्वरूप हैं तथा जो गरुड़पर आरूढ़ हो मुस्कराते हुए सुदर्शनचक्रको घुमा रहे हैं—उन परमेश्वरका उसने स्तवन किया। विप्रवर! उसकी स्तुतिसे प्रसन्न होकर भगवान्‌ने उसे वर दिया और दूसरे गजका मस्तक काटकर इसके धड़से जोड़ दिया। फिर उन ब्रह्मवेत्ताने ब्रह्मज्ञानसे उसे जीवित कर दिया और उस गजेन्द्रके सर्वाङ्गमें अपने चरणकमलका स्पर्श कराते हुए कहा—'गज! तू अपने कुटुम्बके साथ एक कल्पपर्यन्त जीवित रह।' यों कहकर मनके समान वेगशाली भगवान् कैलासपर आ पहुँचे। वहाँ पार्वतीके वासस्थानपर आकर उन्होंने उस बालकको अपनी छातीसे चिपटा लिया और उस हाथीके मस्तकको सुन्दर बनाकर बालकके धड़से जोड़ दिया। फिर ब्रह्मस्वरूप भगवान्‌ने ब्रह्मज्ञानसे हुंकारोच्चारण किया और खेल-खेलमें ही उसे जीवित कर दिया। पुनः श्रीकृष्णने पार्वतीको सचेत करके उस शिशुको उनकी गोदमें रख दिया और आध्यात्मिक ज्ञानद्वारा पार्वतीको समझाना आरम्भ किया।

विष्णुने कहा—शिवे! तुम तो जगत्‌की बुद्धिस्वरूपा हो। क्या तुम नहीं जानतीं कि ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् अपने कर्मानुसार फल भोगता है। प्राणियोंका जो स्वकर्मार्जित भोग है, वह सौ करोड़ कल्पोंतक प्रत्येक योनिमें शुभ-अशुभ फलरूपसे नित्य प्राप्त होता रहता है। सती! इन्द्र अपने कर्मवश कीड़ेकी योनिमें जन्म ले सकते हैं और कीड़ा पूर्वकर्मफलानुसार इन्द्र भी हो सकता है। पूर्वजन्मार्जित कर्मफलके बिना सिंह मक्खीको भी मारनेमें असमर्थ है और मच्छर अपने प्राक्तन कर्मके बलसे हाथीको भी मार डालनेकी शक्ति रखता है। सुख-दुःख, भय-शोक, आनन्द—ये कर्मके ही फल हैं। इनमें सुख और हर्ष उत्तम कर्मके और अन्य पापकर्मके परिणाम हैं*। कर्मका भोग शुभ-अशुभ-रूपसे इहलोक अथवा परलोकमें प्राप्त होता है, परंतु कर्मोपार्जनके योग्य पुण्यक्षेत्र भारत ही है। स्वयं श्रीकृष्ण कर्मके फलदाता, विधिके विधाता, मृत्युके भी मृत्यु, कालके काल, निषेकके

* सुखं दुःखं भयं शोकमानन्दं कर्मणः फलम्। सुकर्मणः सुखं हर्षमितरे पापकर्मणः॥
(गणपतिखण्ड १२। २७)

निषेककर्ता, संहर्ताके भी संहारक, पालकके भी पालक, परात्पर, परिपूर्णतम गोलोकनाथ हैं। हम ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिस पुरुषकी कलाएँ हैं, महाविराट् जिसका अंश है, जिसके रोम-विवरमें जगत् भरे हैं, कोई-कोई उनके कलांश हैं और कोई-कोई कलांशके भी अंश हैं और जो सम्पूर्ण चराचर जगत्-स्वरूप हैं, उन्हीं श्रीकृष्णमें विनायक स्थित हैं।

इस प्रकार श्रीविष्णुका कथन सुनकर पार्वतीका मन संतुष्ट हो गया। तब वे उन गदाधर भगवान्को प्रणाम करके शिशुको दूध पिलाने लगीं। तदनन्तर प्रसन्न हुई पार्वतीने शंकरजीकी प्रेरणासे अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उन कमलापति भगवान् विष्णुकी स्तुति की। तब विष्णुने शिशुको तथा शिशुकी माताको आशीर्वाद दिया और अपने आभूषण कौस्तुभमणिको बालकके गलेमें डाल दिया। ब्रह्माने अपना मुकुट और धर्मने रत्नका आभूषण दिया। फिर क्रमशः देवियोंने तथा उपस्थित सभी देवताओं, मुनियों, पर्वतों, गन्धर्वों और समस्त महिलाओंने यथोचितरूपसे रत्न प्रदान किये। उस समय महादेवजीका हृदय अत्यन्त हर्षमग्न था। वे विष्णुका स्तवन करने लगे। नारद! वहाँ मरकर जीवित हुए बालकको देखकर शिव-पार्वतीने ब्राह्मणोंको असंख्य रत्न दान किये। मरे हुए बालकके जी उठनेपर हर्षगद्गद हुए हिमालयने वन्दियोंको एक सौ हाथी और एक सहस्र घोड़े प्रदान किये तथा देवगण हर्षित होकर ब्राह्मणोंको और सभी नारियोंने वन्दियोंको दान दिया। लक्ष्मीपति विष्णुने माङ्गलिक कार्य सम्पन्न कराया, ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त किया और वेदों तथा पुराणोंका पाठ कराया। तत्पश्चात् शनैश्चरको लज्जायुक्त देखकर पार्वतीको क्रोध आ गया और उन्होंने उस सभाके बीच शनैश्चरको यों शाप देते हुए कहा—'तुम अङ्गहीन हो जाओ।' (अध्याय १२)

विष्णु आदि देवताओंद्वारा गणेशकी अग्रपूजा, पार्वतीकृत विशेषोपचारसहित गणेशपूजन, विष्णुकृत गणेशस्तवन और 'संसारमोहन' नामक कवचका वर्णन

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर विष्णुने शुभ समय आनेपर देवों तथा मुनियोंके साथ सर्वश्रेष्ठ उपहारोंसे उस बालकका पूजन किया और उससे यों कहा—'सुरश्रेष्ठ! मैंने सबसे पहले तुम्हारी पूजा की है; अतः वत्स! तुम सर्वपूज्य तथा योगीन्द्र होओ।' यों कहकर श्रीहरिने उसके गलेमें वनमाला डाल दी और उसे मुक्तिदायक ब्रह्मज्ञान तथा सम्पूर्ण सिद्धियाँ प्रदान करके अपने समान बना दिया। फिर षोडशोपचारकी सुन्दर वस्तुएँ दीं और मुनियों तथा देवोंके साथ उसका इस प्रकार नामकरण किया—विघ्नेश, गणेश, हेरम्ब, गजानन, लम्बोदर, एकदन्त, शूर्पकर्ण और विनायक—उसके ये आठ नाम रखे गये। पुनः सनातन श्रीहरिने उन मुनियोंको बुलवाकर उसे आशीर्वाद दिलाया। तदनन्तर सभी देव-देवियोंने तथा मुनियों आदिने अनेक प्रकारके उपहार गणेशको दिये और फिर क्रमशः उन्होंने भक्तिपूर्वक उसकी पूजा की।

नारद! तदनन्तर जगज्जननी पार्वतीने, जिनका मुखकमल हर्षके कारण विकसित हो रहा था, अपने पुत्रको रत्ननिर्मित सिंहासनपर बैठाया। फिर उन्होंने आनन्दपूर्वक समस्त तीर्थोंके जलसे भरे हुए सौ कलशोंसे मुनियोंद्वारा वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक उसे स्नान कराया और अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए दो वस्त्र दिये। फिर पाद्यके लिये गोदावरीका जल, अर्घ्यके निमित्त गङ्गाजल और आचमनके हेतु दूर्वा, अक्षत, पुष्प और चन्दनसे युक्त पुष्करका जल लाकर दिया। रत्नपात्रमें रखे हुए

शक्करयुक्त द्रवका मधुपर्क प्रदान किया। पुनः स्वर्गलोकके वैद्य अश्विनीकुमारद्वारा निर्मित स्नानोपयोगी विष्णुतैल, बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए सुन्दर आभूषण, पारिजातके पुष्पोंकी सौ मालाएँ, मालती, चम्पक आदि अनेक प्रकारके पुष्प, तुलसीके अतिरिक्त पूजोपयोगी तरह-तरहके पत्र, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, ढेर-के-ढेर रत्नप्रदीप और धूप सादर समर्पित किये। तत्पश्चात् उसे प्रिय लगनेवाले नैवेद्यों—तिलके लड्डू, जौ और गेहूँके चूर्ण, पूड़ी, अत्यन्त स्वादिष्ट तथा मनोहर पक्वान्न, शर्करामिश्रित स्वादिष्ट स्वस्तिकके आकारका बना हुआ त्रिकोण पकवानविशेष, गुड़युक्त खीर, चिउड़ा और अगहनीके चावलके आटेके बने हुए पदार्थके नानाप्रकारके व्यञ्जनोंके साथ पहाड़ लगा दिया। नारद! फिर उस पूजनमें सुन्दरी पार्वतीने हर्षमें भरकर एक लाख घड़े, दूध, एक लाख घड़े दही, तीन लाख घड़े मधु और पाँच लाख घड़े घी सादर अर्पित किया। नारद! फिर अनार और बेलके असंख्य फल, भाँति-भाँतिके खजूर, कैथ, जामुन, आम, कटहल, केला और नारियलके असंख्य फल दिये। इनके सिवा और भी जो ऋतुके अनुसार विभिन्न देशोंमें उत्पन्न हुए स्वादिष्ट एवं मधुर पके हुए फल थे, उन्हें भी महामायाने समर्पित किया। पुनः आचमन और पान करनेके लिये अत्यन्त निर्मल कर्पूर आदिसे सुवासित स्वच्छ गङ्गाजल दिया। नारद! इसके बाद उसी प्रकार सुवासित उत्तम रमणीय पानके बीड़े और व्यञ्जनसे परिपूर्ण सैकड़ों स्वर्णपात्र दिये।

तदनन्तर मेनका, हिमालय, हिमालयके पुत्र और प्रिय अमात्योंने गिरिजाके पुत्रका पूजन किया। वहाँ उपस्थित ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवता—

'ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं गणेश्वराय ब्रह्मरूपाय चारवे।
सर्वसिद्धिप्रदेशाय विघ्नेशाय नमो नमः॥'

—इसी मन्त्रसे भक्तिपूर्वक वस्तुएँ समर्पित करके परमानन्दमें मग्न थे। इस मन्त्रमें बत्तीस अक्षर हैं। यह सम्पूर्ण कामनाओंका दाता, धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका फल देनेवाला और सर्वसिद्धिप्रद है। इसके पाँच लाख जपसे ही जापकको मन्त्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। भारतवर्षमें जिसे मन्त्रसिद्धि हो जाती है, वह विष्णु-तुल्य हो जाता है। उसके नाम-स्मरणसे सारे विघ्न भाग जाते हैं। निश्चय ही वह महान् वक्ता, महासिद्ध, सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न, श्रेष्ठ कवियोंमें भी श्रेष्ठ गुणवान्, विद्वानोंके गुरुका गुरु तथा जगत्‌के लिये साक्षात् वाक्पति हो जाता है। उस उत्सवके अवसरपर आनन्दमग्न हुए देवताओंने इस मन्त्रसे शिशुकी पूजा करके अनेक प्रकारके बाजे बजवाये, उत्सव कराया, ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त किया; फिर उन ब्राह्मणोंको तथा विशेषतया बन्दियोंको दान दिया।

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर उस सभाके बीच विष्णु परमभक्तिपूर्वक सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाशक उन गणेश्वरकी भलीभाँति पूजा करके उनकी स्तुति करने लगे।

श्रीविष्णुने कहा—ईश! मैं सनातन ब्रह्मज्योतिःस्वरूप आपका स्तवन करना चाहता हूँ, परंतु आपके अनुरूप निरूपण करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ; क्योंकि आप इच्छारहित, सम्पूर्ण देवोंमें श्रेष्ठ, सिद्धों और योगियोंके गुरु, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, ज्ञानराशिस्वरूप, अव्यक्त, अविनाशी, नित्य, सत्य, आत्मस्वरूप, वायुके समान अत्यन्त निर्लेप, क्षतरहित, सबके साक्षी, संसार-सागरसे पार होनेके लिये परम दुर्लभ मायारूपी नौकाके कर्णधारस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, श्रेष्ठ, वरणीय, वरदाता, वरदानियोंके भी ईश्वर, सिद्ध, सिद्धिस्वरूप, सिद्धिदाता, सिद्धिके साधन, ध्यानसे अतिरिक्त ध्येय, ध्यानद्वारा असाध्य, धार्मिक, धर्मस्वरूप, धर्मके ज्ञाता, धर्म और अधर्मका फल प्रदान करनेवाले, संसार-वृक्षके

बीज, अंकुर और उसके आश्रय, स्त्री-पुरुष और नपुंसकके स्वरूपमें विराजमान तथा इनको इन्द्रियोंसे परे, सबके आदि, अग्रपूज्य, सर्वपूज्य, गुणके सागर, स्वेच्छासे सगुण ब्रह्म तथा स्वेच्छासे ही निर्गुण ब्रह्मका रूप धारण करनेवाले, स्वयं प्रकृतिरूप और प्रकृतिसे परे प्राकृतरूप हैं। शेष अपने सहस्रों मुखोंसे भी आपकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। आपके स्तवनमें न पञ्चमुख महेश्वर समर्थ हैं न चतुर्मुख ब्रह्मा ही; न सरस्वतीकी शक्ति है और न मैं ही कर सकता हूँ। न चारों वेदोंकी ही शक्ति है, फिर उन वेदवादियोंकी क्या गणना?

इस प्रकार देवसभामें देवताओंके साथ सुरेश्वर गणेशकी स्तुति करके सुराधीश रमापति मौन हो गये। मुने! जो मनुष्य एकाग्रचित्त हो भक्तिभावसे प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल इस विष्णुकृत गणेशस्तोत्रका सतत पाठ करता है, विघ्नेश्वर उसके समस्त विघ्नोंका विनाश कर देते हैं, सदा उसके सब कल्याणोंकी वृद्धि होती है और वह स्वयं कल्याणजनक हो जाता है। जो यात्राकालमें भक्तिपूर्वक इसका पाठ करके यात्रा करता है, निस्संदेह उसकी सभी अभीप्सित कामनाएँ सिद्ध हो जाती हैं। उसके द्वारा देखा गया दुःस्वप्न सुस्वप्नमें परिणत हो जाता है। उसे कभी दारुण ग्रहपीड़ा नहीं भोगनी पड़ती। उसके शत्रुओंका विनाश और बन्धुओंका विशेष उत्कर्ष होता है। निरन्तर विघ्नोंका क्षय और सदा सम्पत्तिकी वृद्धि होती रहती है। उसके घरमें पुत्र-पौत्रको बढ़ानेवाली लक्ष्मी स्थिररूपसे वास करती हैं। वह इस लोकमें सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका भागी होकर अन्तमें विष्णु-पदको प्राप्त हो जाता है। तीर्थों, यज्ञों और सम्पूर्ण महादानोंसे जो फल मिलता है, वह उसे श्रीगणेशकी कृपासे प्राप्त हो जाता है—यह ध्रुव सत्य है।

नारदजीने कहा—प्रभो! गणेशके स्तोत्र तथा उनके मनोहर पूजनको तो मैंने सुन लिया, अब मुझे जन्म-मृत्युके चक्रसे छुड़ानेवाले कवचके सुननेकी इच्छा है।

श्रीनारायणने कहा—नारद! उस देवसभाके मध्य जब गणेशकी पूजा समाप्त हुई, तब शनैश्चरने सबके तारक जगद्गुरु विष्णुसे कहा।

शनैश्चर बोले—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! सम्पूर्ण दुःखोंके विनाश और दुःखकी पूर्णतया शान्तिके लिये विघ्नहन्ता गणेशके कवचका वर्णन कीजिये। प्रभो! हमारा मायाशक्तिके साथ विवाद हो गया है; अतः उस विघ्नके प्रशमनके लिये मैं उस कवचको धारण करूँगा।

तदनन्तर भगवान् विष्णुने कवचकी गोपनीयता और महिमा बतलाते हुए कहा—सूर्यनन्दन! दस लाख जप करनेसे कवच सिद्ध हो जाता है। जो मनुष्य कवच सिद्ध कर लेता है, वह मृत्युको जीतनेमें समर्थ हो जाता है। सिद्ध-कवचवाला मनुष्य उसके ग्रहणमात्रसे भूतलपर वाग्मी, चिरजीवी, सर्वत्र विजयी और पूज्य हो जाता है। इस मालामन्त्रको तथा इस पुण्यकवचको धारण करनेवाले मनुष्योंके सारे पाप निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी, बेताल आदि, बालग्रह, ग्रह तथा क्षेत्रपाल आदि कवचके शब्दमात्रके श्रवणसे भयभीत होकर भाग खड़े होते हैं। जैसे गरुड़के निकट सर्प नहीं जाते, उसी तरह कवचधारी पुरुषोंके संनिकट आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) और भयदायक शोक नहीं फटकते। इसे अपने सरल स्वभाववाले गुरुभक्त शिष्यको ही बतलाना चाहिये।

शनैश्चर! इस 'संसारमोहन' नामक कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है और स्वयं लम्बोदर गणेश देवता हैं। धर्म, अर्थ, काम और मोक्षमें इसका विनियोग कहा गया है। मुने! यह सम्पूर्ण कवचोंका सारभूत है। 'ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा' यह मेरे मस्तककी रक्षा करे। बत्तीस

अक्षरोंवाला मन्त्र सदा मेरे ललाटको बचावे। 'ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गम्' यह निरन्तर मेरे नेत्रोंकी रक्षा करे। विघ्नेश भूतलपर सदा मेरे तालुकी रक्षा करें। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं' यह निरन्तर मेरी नासिकाकी रक्षा करे तथा 'ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा' यह मेरे ओठको सुरक्षित रखे। षोडशाक्षर-मन्त्र मेरे दाँत, तालु और जीभको बचावे। 'ॐ लं श्रीं लम्बोदराय स्वाहा' सदा गण्डस्थलकी रक्षा करे। 'ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा' सदा कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं गं गजाननाय स्वाहा' सदा कंधोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं विनायकाय स्वाहा' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। 'ॐ क्लीं ह्रीं' कंकालकी और 'गं' वक्षःस्थलकी रक्षा करे। विघ्ननिहन्ता हाथ, पैर तथा सर्वाङ्गको सुरक्षित रखे। पूर्वदिशामें लम्बोदर और अग्निकोणमें विघ्ननायक रक्षा करें। दक्षिणमें विघ्नेश और नैर्ऋत्यकोणमें गजानन रक्षा करें। पश्चिममें पार्वतीपुत्र, वायव्यकोणमें शंकरात्मज, उत्तरमें परिपूर्णतम श्रीकृष्णका अंश, ईशानकोणमें एकदन्त और ऊर्ध्वभागमें हेरम्ब रक्षा करें। अधोभागमें सर्वपूज्य गणाधिप सब ओरसे मेरी रक्षा करें। शयन और जागरणकालमें योगियोंके गुरु मेरा पालन करें। वत्स! इस प्रकार जो सम्पूर्ण मन्त्रसमूहोंका विग्रहस्वरूप है, उस परम अद्भुत संसारमोहन नामक कवचका तुमसे वर्णन कर दिया। सूर्यनन्दन! इसे प्राचीनकालमें गोलोकके वृन्दावनमें रासमण्डलके अवसरपर श्रीकृष्णने मुझ विनीतको दिया था। वही मैंने तुम्हें प्रदान किया है। तुम इसे जिस-किसीको मत दे डालना। यह परम श्रेष्ठ, सर्वपूज्य और सम्पूर्ण संकटोंसे उबारनेवाला है। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरुकी अभ्यर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दक्षिण भुजापर धारण करता है, वह निस्संदेह विष्णु ही है। ग्रहेन्द्र! हजारों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय-यज्ञ इस कवचकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। जो मनुष्य इस कवचको जाने बिना शंकर-सुवन गणेशकी भक्ति करता है, उसके लिये सौ लाख जपनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।* इस प्रकार सूर्यपुत्र शनैश्चरको यह कवच प्रदान करके सुरेश्वर विष्णु चुप हो गये। तब समीपमें स्थित परमानन्दमें निमग्न हुए देवताओंने कहा। (अध्याय १३)

---

* संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरः स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने। ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्॥
द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदावतु॥
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च संततं पातु लोचनम्। तालुकं पातु विघ्नेशः संततं धरणीतले॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति च संततं पातु नासिकाम्। ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम।
दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः॥
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदावतु। ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदावतु॥
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदावतु। ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदावतु॥
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम्। करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत्॥
प्राच्यां लम्बोदरः पातु आग्नेय्यां विघ्ननायकः। दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः॥
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः। कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः। अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः॥
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले। वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज॥

पार्वतीको देवताओंद्वारा कार्तिकेयका समाचार प्राप्त होना, शिवजीका कृत्तिकाओंके पास दूतोंको भेजना, वहाँ कार्तिकेय और नन्दीका संवाद

तदनन्तर, पहले शंकरका वीर्य पृथ्वीपर गिरनेसे कार्तिकेयके उत्पन्न होनेकी बात आयी थी, उसीके सम्बन्धमें बात छिड़नेपर—

श्रीधर्मने कहा—भगवन्! प्रकोपके कारण रतिसे उठते हुए शंकरजीका वह अमोघ वीर्य भूतलपर गिरा था, यह मुझे ज्ञात है।

भूमिने कहा—ब्रह्मन्! उस वीर्यका वहन करना अत्यन्त कठिन था, इसलिये जब मैं उसका भार सहन न कर सकी, तब मैंने उसे अग्निमें डाल दिया; अतः मुझ अबलाको क्षमा कीजिये।

अग्निने कहा—जगन्नाथ! मैंने भी उस वीर्यका भार उठानेमें असमर्थ होकर उसे सरकंडोंके वनमें फेंक दिया। भला, दुर्बलका पुरुषार्थ ही क्या और उसका यश ही कैसा?

वायुने कहा—विष्णो! स्वर्णरेखा नदीके तटपर सरकंडोंमें गिरा हुआ वह वीर्य तुरंत ही अत्यन्त सुन्दर बालक हो गया।

श्रीसूर्यने कहा—भगवन्! कालचक्रसे प्रेरित हुआ मैं उस रोते हुए बालकको देखकर अस्ताचलकी ओर चला गया; क्योंकि मैं रातमें ठहरनेके लिये असमर्थ हूँ।

चन्द्रमाने कहा—विष्णो! उसी समय कृत्तिकाओंका समुदाय बदरिकाश्रमसे आ रहा था। उन्होंने उस रुदन करते हुए बालकको देखा और उसे उठाकर वे अपने भवनको चली गयीं।

जलने कहा—प्रभो! कृत्तिकाओंने उस रोते हुए शिशुको अपने घर लाकर और उसके भूखे होनेपर उसे अपने स्तनोंका दूध पिलाकर बढ़ाया। वह शिव-पुत्र सूर्यसे भी अधिक प्रभावशाली था।

दोनों संध्याओंने कहा—भगवन्! इस समय वह बालक छहों कृत्तिकाओंका पोष्य पुत्र है। उन्होंने स्वयं ही प्रेमपूर्वक उसका 'कार्तिकेय' ऐसा नाम रखा है।

रात्रिने कहा—प्रभो! वे कृत्तिकाएँ उस बालकको आँखोंसे ओझल नहीं करती हैं। उनके लिये वह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेमपात्र है; क्योंकि जो पालन करनेवाला होता है, उसीका वह पुत्र कहलाता है।

दिनने कहा—देव! जो-जो वस्तुएँ त्रिलोकीमें दुर्लभ हैं और अपने स्वादके लिये प्रशंसित हैं, उन्हींको वे उस बालकको खिलाती हैं।

जब उस सभामें उन सब लोगोंने प्रसन्नमनसे श्रीहरिसे यों कहा, तब उनके उस कथनको सुनकर मधुसूदन संतुष्ट हो गये। पुत्रका पूरा समाचार पाकर पार्वतीका मन हर्षसे खिल उठा। उन्होंने ब्राह्मणोंको करोड़ों रत्न, बहुत-सा धन और विभिन्न प्रकारके सभी वस्त्र दिये। तत्पश्चात् लक्ष्मी, सरस्वती, सावित्री, मेना आदि सभी महिलाओंने तथा विष्णु आदि सभी देवताओंने ब्राह्मणोंको धन दिया।

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! पुत्रका समाचार मिल जानेपर जब विष्णु, देवगण, मुनिसमुदाय और पर्वतोंने पार्वतीसहित शंकरको प्रेरित किया, तब उन्होंने लाखों क्षेत्रपाल, भूत, बेताल, यक्ष, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनी और भैरवोंके साथ महान् बल-पराक्रमसम्पन्न वीरभद्र,

---

मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि । परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसंकटतारणम् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । महेन्द्र कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

(गणपतिखण्ड १३ । ७९—८५)

विशालाक्ष, शंकुकर्ण, कबन्ध, नन्दीश्वर, महाकाल, वज्रदन्त, भगन्दर, गोधामुख, दधिमुख आदि दूतोंको, जो धधकती हुई आगकी लपटके समान उद्दीप्त हो रहे थे, भेजा। उन सभी शिव-दूतोंने, जो नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित थे, शीघ्र ही जाकर कृत्तिकाओंके भवनको चारों ओरसे घेर लिया। उन्हें देखकर सभी कृत्तिकाओंका मन भयसे व्याकुल हो गया। तब वे ब्रह्मतेजसे उद्दीप्त होते हुए कार्तिकेयके पास जाकर कहने लगीं।

कृत्तिकाओंने कहा—बेटा कार्तिकेय! असंख्यों कराल सेनाओंने भवनको चारों ओरसे घेर लिया है और हमें पता भी नहीं है कि ये किसकी हैं।

तब कार्तिकेय बोले—माताओ! आपलोगोंका भय दूर हो जाना चाहिये। मेरे रहते आपको भय कैसा? यह कर्मभोग दुर्निवार्य है, इसे कौन हटा सकता है। इसी बीच सेनापति नन्दिकेश्वर भी वहाँ कार्तिकेयके समक्ष उपस्थित हुए और कृत्तिकाओंसे बोले।

नन्दिकेश्वरने कहा—भ्राता! संहारकर्ता सुरश्रेष्ठ शंकर और माता पार्वतीद्वारा भेजे गये शुभ समाचारको मुझसे श्रवण करो। कैलासपर्वतपर गणेशके माङ्गलिक जन्मोत्सवके अवसरपर सभामें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवता उपस्थित हैं। वहाँ गिरिराजकिशोरीने जगत्का पालन करनेवाले विष्णुको सम्बोधित करके उनसे तुम्हारे अन्वेषणके लिये कहा। तब विष्णुने तुम्हारी प्राप्तिके निमित्त क्रमशः उन सभी देवोंसे पूछा। उनमेंसे प्रत्येकने यथोचित उत्तर भी दिया। उन्हींमें धर्म-अधर्मके साक्षी धर्म आदि सभी देवताओंने परमेश्वरको तुम्हारे यहाँ कृत्तिकाओंके भवनमें रहनेकी सूचना दी। प्राचीनकालमें शिव-पार्वतीकी जो एकान्त क्रीड़ा हुई थी, उसमें देवताओंद्वारा देखे जानेपर शम्भुका शुक्र भूतलपर गिर पड़ा था। भूमिने उस शुक्रको अग्निमें और अग्निने उसे सरकंडोंके वनमें फेंक दिया। वहाँसे इन कृत्तिकाओंने तुम्हें पाया है। अब तुम अपने घर चलो। वहाँ तुम्हें सम्पूर्ण शस्त्रास्त्रोंकी प्राप्ति होगी, विष्णु देवताओंको साथ लेकर तुम्हारा अभिषेक करेंगे और तब तुम तारकासुरका वध करोगे। तुम विश्वसंहर्ता शंकरके पुत्र हो, अतः ये कृत्तिकाएँ तुम्हें उसी तरह नहीं छिपा सकतीं, जैसे शुष्क वृक्ष अपने कोटरमें अग्निको गुप्त नहीं रख सकता। तुम तो विश्वमें दीप्तिमान् हो। इन कृत्तिकाओंके घरमें तुम्हारी उसी प्रकार शोभा नहीं हो रही है, जैसे महाकूपमें पड़े हुए चन्द्रमा शोभित नहीं होते। जैसे सूर्य मनुष्यके हाथोंकी ओटमें नहीं छिप सकते, उसी तरह तुम भी इनके अङ्गतेजसे आच्छादित न होकर जगत्को प्रकाशित कर रहे हो। शम्भुनन्दन! तुम तो जगद्व्यापी विष्णु हो, अतः इन कृत्तिकाओंके व्याप्य नहीं हो, जैसे आकाश किसीका व्याप्य नहीं है, बल्कि वह स्वयं ही सबका व्यापक है। तुम विषयोंसे निर्लिप्त योगीन्द्र हो तथा विश्वके आधार और परमेश्वर हो। ऐसी दशामें कृत्तिकाओंके भवनमें तुम सर्वेश्वरका निवास होना उसी प्रकार सम्भव नहीं है, जैसे क्षुद्र गौरैयाके उदरमें गरुड़का रहना असम्भव है। तुम भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रह तथा गुणों और तेजोंकी राशि हो। देवगण तुम्हें उसी तरह नहीं जानते जैसे योगहीन पुरुष ज्ञानसे अनभिज्ञ होता है। जैसे मोहितचित्तवाले भक्तिहीन मनुष्योंको हरिकी उत्कृष्ट भक्तिका ज्ञान नहीं होता, उसी तरह ये कृत्तिकाएँ तुम्हें कैसे जान सकती हैं; क्योंकि तुम अनिर्वचनीय हो। भ्राता! जो लोग जिसके गुणको नहीं जानते, वे उसका अनादर ही करते हैं; जैसे मेढक एक साथ रहनेवाले कमलोंका आदर नहीं करते।

कार्तिकेयने कहा—भ्राता! जो भूत, भविष्यत्, वर्तमान—तीनों कालोंका ज्ञान है, वह सब मुझे ज्ञात है। तुम भी तो ज्ञानी हो; क्योंकि मृत्युञ्जयके आश्रित हो। ऐसी दशामें तुम्हारी क्या प्रशंसा की

जाय। भाई! कर्मानुसार जिनका जिन-जिन योनियोंमें जन्म होता है, वे उन्हीं योनियोंमें निरन्तर रहते हुए निर्वृति लाभ करते हैं। वे चाहे संत हों अथवा मूर्ख हों, जिन्हें कर्मभोगके परिणामस्वरूप जिस योनिकी प्राप्ति हुई है, वे विष्णुमायासे मोहित होकर उसी योनिको बहुत बढ़कर समझते हैं। जो सनातनी विष्णुमाया सबकी आदि, सर्वस्व प्रदान करनेवाली और विश्वका मङ्गल करनेवाली हैं, उन्हीं जगज्जननीने इस समय भारतवर्षमें शैलराजकी पत्नीके गर्भसे जन्म धारण किया है और दारुण तपस्या करके शंकरको पतिरूपमें प्राप्त किया है। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सारी सृष्टि कृत्रिम है, अतएव मिथ्या ही है। सभी श्रीकृष्णसे उत्पन्न हुए हैं और समय आनेपर केवल श्रीकृष्णमें ही विलीन हो जाते हैं। प्रत्येक कल्पमें सृष्टिके विधानमें मैं नित्य होते हुए भी मायासे आबद्ध होकर जन्म-धारण करता हूँ, उस समय प्रत्येक जन्ममें जगज्जननी पार्वती मेरी माता होती हैं। जगत्‌में जितनी नारियाँ हैं, वे सभी प्रकृतिसे उत्पन्न हुई हैं। उनमेंसे कुछ प्रकृतिकी अंशभूता हैं तो कुछ कलात्मिका तथा कुछ कलांशके अंशसे प्रकट हुई हैं। ये ज्ञानसम्पन्ना योगिनी कृत्तिकाएँ प्रकृतिकी कलाएँ हैं। इन्होंने निरन्तर अपने स्तनके दूध तथा उपहारसे मेरा पालन-पोषण किया है। अतः मैं उनका पोष्य पुत्र हूँ और पोषण करनेके कारण ये मेरी माताएँ हैं। साथ ही मैं उन प्रकृतिदेवी (पार्वती)-का भी पुत्र हूँ; क्योंकि तुम्हारे स्वामी शंकरजीके वीर्यसे उत्पन्न हुआ हूँ। नन्दिकेश्वर! मैं गिरिराजनन्दिनीके गर्भसे उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, अतः जैसे वे मेरी धर्ममाता हैं, वैसे ही ये कृत्तिकाएँ भी सर्वसम्मतिसे मेरी धर्म-माताएँ हैं; क्योंकि स्तन पिलानेवाली (धाय), गर्भमें धारण करनेवाली (जननी), भोजन देनेवाली (पाचिका), गुरुपत्नी, अभीष्ट देवताकी पत्नी, पिताकी पत्नी (सौतेली माता), कन्या, बहिन, पुत्रवधू, पत्नीकी माता (सास), माताकी माता (नानी), पिताकी माता (दादी), सहोदर भाईकी पत्नी, माताकी बहिन (मौसी), पिताकी बहिन (बूआ) तथा मामी—ये सोलह मनुष्योंकी वेदविहित माताएँ कहलाती हैं।* ये कृत्तिकाएँ सम्पूर्ण सिद्धियोंकी ज्ञाता, परमैश्वर्यसम्पन्न और तीनों लोकोंमें पूजित हैं। ये क्षुद्र नहीं हैं, बल्कि ब्रह्माकी कन्याएँ हैं। तुम भी सत्त्वसम्पन्न तथा शम्भुके पुत्रके समान हो और विष्णुने तुम्हें भेजा है; अतः चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। वहाँ देवसमुदायका दर्शन करूँगा। (अध्याय १४-१५)

कार्तिकेयका नन्दिकेश्वरके साथ कैलासपर आगमन, स्वागत, सभामें जाकर विष्णु आदि देवोंको नमस्कार करना और शुभाशीर्वाद पाना

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! शंकरसुवन कार्तिकेय नन्दिकेश्वरसे यों कहकर शीघ्र ही कृत्तिकाओंको समझाते हुए नीतियुक्त वचन बोले।

कार्तिकेयने कहा—माताओ! मैं देवसमुदाय, बन्धुवर्ग तथा माताको देखना चाहता हूँ; अतः शंकरजीके निवासस्थानपर जाऊँगा, इसके लिये आपलोग मुझे आज्ञा प्रदान करें। सारा जगत्, शुभदायक जन्म-कर्म, संयोग-वियोग सभी दैवके

---

* स्तनदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया। अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका॥
सगर्भकन्या भगिनी पुत्रपत्नी प्रियाप्रसूः। मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा॥
मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च। जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः॥
(गणपतिखण्ड १५। ३८—४०)

अधीन है। दैवसे बढ़कर दूसरा कोई बली नहीं है। वह दैव श्रीकृष्णके वशमें रहनेवाला है; क्योंकि वे दैवसे परे हैं। इसीलिये संतलोग उन ऐश्वर्यशाली परमात्माका निरन्तर भजन करते हैं। अविनाशी श्रीकृष्ण अपनी लीलासे दैवको बढ़ाने और घटानेमें समर्थ हैं। उनका भक्त दैवके वशीभूत नहीं होता—ऐसा निर्णीत है। इसलिये आपलोग इस दुःखदायक मोहका परित्याग कीजिये और जो सुखदाता, मोक्षप्रद, सारसर्वस्व, जन्म-मृत्युके भयके विनाशकर्ता, परमानन्दके जनक और मोह-जालके उच्छेदक हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सभी देवगण जिनका निरन्तर भजन करते हैं, उन गोविन्दकी भक्ति कीजिये। इस भवसागरमें मैं आपलोगोंका कौन हूँ और आपलोग मेरी कौन हैं? संसार-प्रवाहका वह सारा कर्म फेनकी भाँति पुञ्जीभूत हो गया है। (वस्तुतः कोई किसीका नहीं है।) संयोग अथवा वियोग—यह सब ईश्वरकी इच्छासे ही होता है। यहाँतक कि सारा ब्रह्माण्ड ईश्वरके अधीन है, वह भी स्वतन्त्र नहीं है—ऐसा विद्वान् लोग कहते हैं। सारी त्रिलोकी जलके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर है, फिर भी मायासे मोहित चित्तवाले लोग इस अनित्य जगत्‌में मायाका विस्तार करते हैं; परंतु जो श्रीकृष्णपरायण संत हैं, वे जगत्‌में रहते हुए भी वायुकी भाँति लिप्त नहीं होते। इसलिये माताओ! आपलोग मोहका परित्याग करके मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये।

यों कहकर ऐश्वर्यशाली कार्तिकेयने उन कृत्तिकाओंको नमस्कार किया और फिर मन-ही-मन श्रीहरिका स्मरण करते हुए शंकरजीके पार्षदोंके साथ यात्राके लिये प्रस्थान किया। इसी बीच उन्होंने वहाँ एक उत्तम रथको देखा। वह बहुमूल्य रत्नोंका बना हुआ था, जिसे विश्वकर्माने भलीभाँति निर्माण किया था, उसमें स्थान-स्थानपर माणिक्य और हीरे जड़े गये थे, जिससे उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। पारिजात-पुष्पोंकी मालावलीसे वह सुशोभित था। मणियोंके दर्पण तथा श्वेत चँवरोंसे वह अत्यन्त उद्भासित हो रहा था और चित्रकारीयुक्त रमणीय क्रीडा-भवनोंसे वह भलीभाँति सुसज्जित था। वह मनोहर तो था ही, उसका विस्तार भी बड़ा था। उसमें सौ पहिये लगे थे। उसका वेग मनके समान था और श्रेष्ठ पार्षद उसे घेरे हुए थे। उस रथको पार्वतीने भेजा था। उस रथपर कार्तिकेयको चढ़ते देखकर कृत्तिकाओंका हृदय दुःखसे फटा जा रहा था। उनके केश खुल गये थे और वे शोकसे व्याकुल थीं। सहसा चेतना प्राप्त होनेपर अपने सामने स्कन्दको देख वे अत्यन्त शोकके कारण ठगी-सी रह गयीं; फिर वहीं भयवश उन्मत्तकी भाँति कहने लगीं।

कृत्तिकाओंने कहा—हाय! अब हमलोग क्या करें, कहाँ चली जायँ? बेटा! हमारे आश्रय तो तुम्हीं हो। इस समय तुम हमलोगोंको छोड़कर कहाँ जा रहे हो? यह तुम्हारे लिये धर्मसङ्गत बात नहीं है। हमलोगोंने बड़े स्नेहसे तुम्हें पाला-पोसा है, अतः तुम धर्मानुसार हमारे पुत्र हो। भला, उपयुक्त पुत्र मातृवर्गोंका परित्याग कर दे—यह भी कोई धर्म है? यों कहकर सभी कृत्तिकाओंने कार्तिकेयको छातीसे चिपका लिया और पुत्र-वियोगजन्य दारुण दुःखके कारण वे पुनः मूर्च्छित हो गयीं। मुने! तत्पश्चात् कुमार कार्तिकेयने आध्यात्मिक वचनोंद्वारा उन्हें समझाया और फिर उनके तथा पार्षदोंके साथ वे उस रथपर सवार हुए। मुने! यात्राकालमें उन्होंने अपने सामने साँड़, गजराज, घोड़ा, जलती हुई आग, भरा हुआ सुवर्ण-कलश, अनेक प्रकारके पके हुए फल, पति-पुत्रसे युक्त स्त्री, प्रदीप, उत्तम मणि, मोती, पुष्पमाला, मछली और चन्दन—इन माङ्गलिक वस्तुओंको, वामभागमें शृगाल, नकुल, कुम्भ और शुभदायक शवको तथा दक्षिणभागमें राजहंस,

मयूर, खञ्जन, शुक, कोकिल, कबूतर, शङ्खचिल (सफेद चील), माङ्गलिक चक्रवाक, कृष्णसार-मृग, सुरभी और चमरी गौ, श्वेत चँवर, सवत्सा धेनु और शुभ पताकाको देखा। उस समय नाना प्रकारके बाजोंकी मङ्गलध्वनि सुनायी पड़ने लगी, हरिकीर्तन तथा घण्टा और शङ्खका शब्द होने लगा। इस प्रकार मङ्गल-शकुनोंको देखते तथा सुनते हुए कार्तिकेय आनन्दपूर्वक उस मनके समान वेगशाली रथके द्वारा क्षणमात्रमें ही पिताके मन्दिरपर जा पहुँचे। वहाँ कैलासपर पहुँचकर वे अविनाशी वट-वृक्षके नीचे कृत्तिकाओं तथा श्रेष्ठ पार्षदोंके साथ कुछ देरके लिये ठहर गये। उस नगरके राजमार्ग बड़े मनोहर थे। उनपर चारों ओर पद्मराग और इन्द्रनीलमणि जड़ी हुई थी। समूह-के-समूह केलेके खंभे गड़े थे, जिनपर रेशमी सूतमें गुँथे हुए चन्दनके पल्लवोंकी वन्दनवार लटक रही थी। वह पूर्ण कुम्भोंसे सुशोभित था। उसपर चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया था। असंख्यों रत्नप्रदीपों तथा मणियोंसे उसकी विशेष शोभा हो रही थी। वह सदा उत्सवोंसे व्याप्त, हाथोंमें दूब और पुष्प लिये हुए बन्दियों और ब्राह्मणोंसे युक्त तथा पति-पुत्रवती साध्वी नारियोंसे समन्वित था। समस्त मङ्गल-कार्य करके पार्वती देवी लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, तुलसी, रति, अरुन्धती, अहल्या, दिति, सुन्दरी तारा, अदिति, शतरूपा, शची, संध्या, रोहिणी, अनसूया, स्वाहा, संज्ञा, वरुण-पत्नी, आकूति, प्रसूति, देवहूति, मेनका, एक रंग तथा एक प्रकृतिवाली मैनाक-पत्नी, वसुन्धरा और मनसादेवीको आगे करके वहाँ आयीं। तदनन्तर देवगण, मुनिसमुदाय, पर्वत, गन्धर्व तथा किंनर सब-के-सब आनन्दमग्न हो कुमारके स्वागतमें गये। महेश्वर भी नाना प्रकारके बाजों, रुद्रगणों, पार्षदों, भैरवों तथा क्षेत्रपालोंके साथ वहाँ पधारे। तत्पश्चात् शक्तिधारी कार्तिकेय पार्वतीको निकट देखकर

हर्षगद्गद हो गये। उस समय वे तुरंत ही रथसे उतर पड़े और सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करने लगे। तब पार्वतीने कार्तिकेयको देखकर लक्ष्मी आदि देवियों, मुनि-पत्नियों और शिव आदि सभीसे यत्नपूर्वक परम भक्तिके साथ सम्भाषण किया और उन्हें अपनी गोदमें उठाकर वे चूमने लगीं। फिर शंकर, देवगण, पर्वत, शैलपत्नियों, पार्वती आदि देवियों तथा सभी मुनियोंने कार्तिकेयको शुभाशीर्वाद दिया। तदनन्तर कुमार गणोंके साथ शिव-भवनमें आये। वहाँ सभाके मध्यमें उन्होंने क्षीरसागरमें शयन करनेवाले भगवान् विष्णुको देखा। वे रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। धर्म, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्रमा, सूर्य, अग्नि, वायु आदि देवता उन्हें घेरे हुए थे। उनका मुख प्रसन्न था तथा उसपर थोड़ी-थोड़ी मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर हो रहे थे। उनपर श्वेत चँवर डुलाया जा रहा था और देवेन्द्र तथा मुनीन्द्र उनका स्तवन कर रहे थे। उन जगन्नाथको देखकर कार्तिकेयके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया। उन्होंने भक्तिभावपूर्वक सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया। इसके बाद

ब्रह्मा, धर्म, देवताओं और हर्षित मुनिवरोंमें प्रत्येकको प्रणाम किया और उनका शुभाशीर्वाद पाया। फिर बारी-बारीसे सबसे कुशल-समाचार पूछकर वे एक रत्नसिंहासनपर बैठे। उस समय पार्वतीसहित शंकरने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान किया। (अध्याय १६)

कार्तिकेयका अभिषेक तथा देवताओंद्वारा उन्हें उपहार-प्रदान

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! तदनन्तर जगदीश्वर विष्णुने प्रसन्नमनसे शुभ मुहूर्त निश्चय करके कार्तिकेयको एक रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठाया और कौतुकवश नाना प्रकारके झाँझ-मँजीरा तथा यन्त्रमय बाजे बजवाये। फिर अमूल्य रत्नोंके बने हुए सैकड़ों घड़ोंसे, जो वेदमन्त्रोंद्वारा अभिषिक्त तथा सम्पूर्ण तीर्थोंके जलोंसे परिपूर्ण थे, कार्तिकेयको हर्षपूर्वक स्नान कराया। तत्पश्चात् कार्तिकेयको प्रसन्नमनसे बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित किरीट, दो माङ्गलिक बाजूबंद, अमूल्य रत्नोंके बने हुए बहुत-से आभूषण, अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए दो दिव्य वस्त्र, क्षीरसागरसे उत्पन्न हुई कौस्तुभमणि और वनमाला दी। ब्रह्माने यज्ञसूत्र, वेद, वेदमाता गायत्री, संध्या-मन्त्र, कृष्ण-मन्त्र, श्रीहरिका स्तोत्र और कवच, कमण्डलु, ब्रह्मास्त्र तथा शत्रुविनाशिनी विद्या प्रदान की। धर्मने दिव्य धर्मबुद्धि और समस्त जीवोंपर दया समर्पित की। शिवने परमोत्कृष्ट मृत्युञ्जय-ज्ञान, सम्पूर्ण शास्त्रोंका ज्ञान, निरन्तर सुख प्रदान करनेवाला परम मनोहर तत्त्वज्ञान, योगतत्त्व, सिद्धितत्त्व, परम दुर्लभ ब्रह्मज्ञान, त्रिशूल, पिनाक, फरसा, शक्ति, पाशुपतास्त्र, धनुष और संधान-संहारके ज्ञानसहित संहारास्त्र अर्पित किया। वरुणने श्वेत छत्र और रत्नोंकी माला, महेन्द्रने गजराज, अमृतसागरने अमृतका कलश, सूर्यने मनके समान वेगशाली रथ और मनोहर कवच, यमने यमदण्ड और अग्निने बहुत बड़ी शक्ति प्रदान की। इसी प्रकार अन्यान्य सभी देवताओंने भी हर्षपूर्वक नाना प्रकारके शस्त्र उन्हें भेंट किये। कामदेवने हर्षमग्न होकर उन्हें कामशास्त्र और क्षीरसागरने अमूल्य रत्न तथा रत्नोंके बने हुए विशिष्ट नूपुर दिये। पार्वतीका मन तो उस समय परमानन्दमें निमग्न था, उन्होंने मुस्कराते हुए महाविद्या, सुशीलविद्या, मेधा, दया, स्मृति, अत्यन्त निर्मल बुद्धि, शान्ति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, धृति, श्रीहरिमें सुदृढ़ भक्ति और श्रीहरिकी दासता प्रदान की। नारद! प्रजापतिने देवसेनाको, जो रत्नाभरणोंसे विभूषित, परम विनीत, उत्तम शीलवती, मनको हरण कर लेनेवाली अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसे विद्वान् लोग शिशुओंकी रक्षा करनेवाली महाषष्ठी कहते हैं, वैवाहिक विधिके अनुसार वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक कार्तिकेयके अर्पित कर दिया। इस प्रकार कुमारका अभिषेक करके सभी देवता, मुनिगण और गन्धर्व जगदीश्वरोंको प्रणाम करके अपने-अपने घर चले गये।

नारद! इसके बाद शंकरने नारायण, ब्रह्मा और धर्मकी स्तुति की और फिर धर्मका आलिङ्गन करके परमप्रिय श्रीहरिको मस्तक झुकाया। तदनन्तर शंकरद्वारा सत्कृत होकर शैलराज हिमालय गणोंसहित प्रेमपूर्वक वहाँसे विदा हुए। इस प्रकार जो-जो लोग वहाँ आये थे, वे सभी आनन्दपूर्वक प्रस्थान कर गये। तब महेश्वर देवी पार्वतीके साथ बड़े आनन्दसे वहाँ रहने लगे। कुछ समय बीतनेके बाद शंकरने पुनः उन सभी देवोंको बुलाकर विवाह-विधिके अनुसार पुष्टिको महात्मा गणेशके हाथों समर्पित कर दिया। इस प्रकार दोनों पुत्रों तथा गणोंके साथ रहती हुई पार्वतीका मन बड़ा प्रसन्न था।

वे सम्पूर्ण कामनाओंके देनेवाले स्वामीके चरणकमलोंकी सेवा करती रहती थीं। नारद! इस प्रकार मैंने देवताओंका समागम, पार्वतीको पुत्र-प्राप्ति, कुमारका अभिषेक, उनका पूजन और विवाह तथा गणेशका विवाह—यह सारा वृत्तान्त तुमसे वर्णन कर दिया। अब तुम्हारे मनमें कौन-सी अभिलाषा है? फिर और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय १७)

गणेशके शिरश्छेदनके वर्णनके प्रसङ्गमें शंकरद्वारा सूर्यका मारा जाना, कश्यपका शिवको शाप देना, सूर्यका जीवित होना और माली-सुमालीकी रोगनिवृत्ति

नारदने पूछा—महाभाग नारायण! आप तो वेदवेदाङ्गोंके पारगामी विद्वान् हैं। परमेश्वर! मैं आपसे एक बहुत बड़े संदेहका समाधान जानना चाहता हूँ। प्रभो! जो देवेश्वर महात्मा शंकरके पुत्र तथा विघ्नोंके विनाशक हैं, उन गणेश्वरके लिये जो विघ्न घटित हुआ, उसका क्या कारण है? जब परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा श्रीमान् गोलोकनाथ स्वयं ही अपने अंशसे पार्वतीके पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे, तब उन ग्रहाधिराज भगवान् श्रीकृष्णके मस्तकका ग्रहकी दृष्टिसे कट जाना बड़े आश्चर्यकी बात है। आप इस वृत्तान्तको मुझे बतलानेकी कृपा करें।

श्रीनारायणने कहा—ब्रह्मन्! विघ्नेश्वरका यह विघ्न जिस कारणसे हुआ था, उस प्राचीन इतिहासको तुम सावधान होकर श्रवण करो। नारद! एक समयकी बात है। भक्तवत्सल शंकरने माली और सुमालीको मारनेवाले सूर्यपर बड़े क्रोधके साथ त्रिशूलसे प्रहार किया। वह शिवके समान तेजस्वी त्रिशूल अमोघ था। अतः उसकी चोटसे सूर्यकी चेतना नष्ट हो गयी और वे तुरंत ही रथसे नीचे गिर पड़े। जब कश्यपजीने देखा कि मेरे पुत्रकी आँखें ऊपरको चढ़ गयी हैं और वह चेतनाहीन हो गया है, तब वे उसे छातीसे लगाकर फूट-फूटकर विलाप करने लगे। उस समय सारे देवताओंमें हाहाकार मच गया। वे सभी भयभीत होकर जोर-जोरसे रुदन करने लगे। अन्धकार छा जानेसे सारा जगत् अंधीभूत हो गया। तब ब्रह्माके पौत्र तपस्वी कश्यपजी, जो ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे, अपने पुत्रको प्रभाहीन देखकर शिवको शाप देते हुए बोले—'जिस प्रकार आज तुम्हारे त्रिशूलसे मेरे पुत्रका वक्षःस्थल विदीर्ण हो गया है, उसी तरह तुम्हारे पुत्रका मस्तक कट जायगा।' शिवजी आशुतोष तो हैं ही; अतः क्षणमात्रमें ही उनका क्रोध जाता रहा। तब उन्होंने उसी क्षण ब्रह्मज्ञानद्वारा सूर्यको जीवित कर दिया। तदनन्तर जो ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अंशसे उत्पन्न हैं, वे त्रिगुणात्मक भक्तवत्सल सूर्य चेतना प्राप्त करके पिताके समक्ष खड़े हुए। फिर भक्तिपूर्वक पिताको तथा शंकरको नमस्कार किया। साथ ही (पिताद्वारा दिये गये) शम्भुके शापको जानकर वे कश्यपजीपर क्रुद्ध हो गये, जिससे उन्होंने अपने विषयको ग्रहण नहीं किया और क्रोधावेशमें यों कहा—'ईश्वरके बिना यह सब कुछ तुच्छ, अनित्य और नश्वर है, अतः विद्वान्को चाहिये कि वह मङ्गलकारक सत्यको छोड़कर अमङ्गलकी इच्छा न करे। इसलिये अब मैं विषयका परित्याग करके परमेश्वर श्रीकृष्णका भजन करूँगा।' यह सुनकर देवताओंने ब्रह्माको प्रेरित किया, तब उन प्रभुने शीघ्रतापूर्वक वहाँ पधारकर सूर्यको समझाया और उन्हें उनके कार्यपर नियुक्त किया। फिर ब्रह्मा, शिव और कश्यप आनन्दपूर्वक सूर्यको आशीर्वाद देकर अपने-अपने भवनको चले गये। इधर सूर्य भी अपनी राशिपर आरूढ़ हुए। तत्पश्चात् माली

और सुमाली व्याधिग्रस्त हो गये। उनके शरीरमें सफेद कोढ़ हो गयी, जिससे सारा अङ्ग गल गया, शक्ति जाती रही और प्रभा नष्ट हो गयी। तब स्वयं ब्रह्माने उन दोनोंसे कहा—'सूर्यके कोपसे ही तुम दोनों हतप्रभ हो गये हो और तुम्हारा शरीर गल गया है, अतः तुमलोग सूर्यका भजन करो।' फिर ब्रह्मा उन दोनोंको सूर्यका कवच, स्तोत्र और पूजाकी सारी विधि बतलाकर ब्रह्मलोकको चले गये। मुने! तदनन्तर वे दोनों पुष्करमें जाकर सूर्यका भजन करने लगे। वहाँ वे तीनों काल स्नान करके भक्तिपूर्वक उत्तम सूर्य-मन्त्रके जपमें तल्लीन हो गये। फिर समयानुसार सूर्यसे वरदान पाकर वे पुनः अपने असली रूपमें आ गये। इस प्रकार मैंने यह सारा वृत्तान्त वर्णन कर दिया, अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय १८)

ब्रह्माद्वारा माली-सुमालीको सूर्यके कवच और स्तोत्रकी प्राप्ति तथा सूर्यकी कृपासे उन दोनोंका नीरोग होना

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर नारायण बोले—नारद! मैं श्रीसूर्यके पूजनका क्रम तथा सम्पूर्ण पापों और व्याधियोंसे विमुक्त करनेवाले कवच और स्तोत्रका वर्णन करता हूँ, सुनो। जब माली और सुमाली—ये दोनों दैत्य व्याधिग्रस्त हो गये, तब उन्होंने स्तवन करनेके लिये शिव-मन्त्र प्रदान करनेवाले ब्रह्माका स्मरण किया। ब्रह्माने वैकुण्ठमें जाकर कमलापति विष्णुसे पूछा। उस समय शिव भी वहीं श्रीहरिके संनिकट विराजमान थे।

ब्रह्मा बोले—हरे! माली और सुमाली दोनों दैत्य व्याधिग्रस्त हो गये हैं, अतः उनके रोगके विनाशका कौन-सा उपाय है—यह बतलाइये।

विष्णुने कहा—ब्रह्मन्! वे दोनों पुष्करमें जाकर वर्षभरतक मेरे अंशभूत व्याधिहन्ता सूर्यकी सेवा करें, इससे वे रोगमुक्त हो जायँगे।

शंकरने कहा—जगदीश्वर! उन दोनोंको रोगनाशक महात्मा सूर्यका स्तोत्र, कवच और मन्त्र, जो कल्पतरुके समान है, प्रदान कीजिये। ब्रह्मन्! स्वयं श्रीहरि तो सर्वस्व प्रदान करनेवाले हैं और सूर्य रोगनाशक हैं। जिसका जो-जो विषय है, अपने विषयमें ये दोनों सम्पत्ति-प्रदायक हैं। इस प्रकार विष्णु और शिवकी अनुमति पाकर ब्रह्मा उन दैत्योंके घर गये। तब दैत्योंने उन्हें प्रणाम करके कुशल-समाचार पूछा और बैठनेके लिये आसन दिया। उन दैत्योंका शरीर गल गया था, उसमेंसे पीब और दुर्गन्ध निकल रही थी। आहाररहित होनेके कारण वे चलने-फिरनेमें असमर्थ हो गये थे। तब स्वयं दयालु ब्रह्माने उन दोनोंसे कहा।

ब्रह्मा बोले—वत्सो! तुम दोनों कवच, स्तोत्र और पूजाकी विधिका क्रम ग्रहण करके पुष्करमें जाओ और वहाँ विनम्रभावसे सूर्यका भजन करो।

उन दोनोंने कहा—ब्रह्मन्! किस विधिसे और किस मन्त्रसे हम सूर्यका भजन करें, उनका स्तोत्र कौन-सा है और कवच क्या है—यह सब हमें प्रदान कीजिये।

ब्रह्माने कहा—वत्स! वहाँ त्रिकाल स्नान करके इस मन्त्रसे भक्तिपूर्वक भास्करकी भलीभाँति सेवा करनेपर तुमलोग नीरोग हो जाओगे। (वह मन्त्र इस प्रकार है—)'ॐ ह्रीं नमो भगवते सूर्याय परमात्मने स्वाहा'—इस मन्त्रसे सावधानतया सूर्यका पूजन करके उन्हें भक्तिपूर्वक सोलह उपहार प्रदान करना चाहिये। यों ही पूरे वर्षभरतक करना होगा। इससे तुमलोग निश्चय ही रोगमुक्त हो जाओगे।

पूर्वकालमें अहल्याका हरण करनेके कारण गौतमके शापसे जब इन्द्रके शरीरमें सहस्र भग हो गये थे, उस संकट-कालमें बृहस्पतिजीने प्रेमपूर्वक पापयुक्त इन्द्रको जो कवच दिया था, वही अपूर्व सूर्यकवच मैं तुमलोगोंको प्रदान करता हूँ।

बृहस्पतिने कहा—इन्द्र! सुनो। मैं उस परम अद्भुत कवचका वर्णन करता हूँ जिसे धारण करके मुनिगण पवित्र हो भारतवर्षमें जीवन्मुक्त हो गये। इस कवचके धारण करनेवालेके संनिकट व्याधि भयके मारे उसी प्रकार नहीं जाती है, जैसे गरुड़को देखकर साँप दूर भाग जाते हैं। इसे अपने शिष्यको, जो गुरुभक्त और शुद्ध हो, बतलाना चाहिये परंतु जो दूसरेके दुष्ट स्वभाववाले शिष्यको देता है, वह मृत्युको प्राप्त हो जाता है। इस जगद्विलक्षण कवचके प्रजापति ऋषि हैं, गायत्री छन्द है और स्वयं सूर्य देवता हैं। व्याधिनाश तथा सौन्दर्यके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह सारस्वरूप कवच तत्काल ही पवित्र करनेवाला और सम्पूर्ण पापोंका विनाशक है। 'ह्रीं ॐ क्लीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा' मेरे मस्तककी रक्षा करे। उपर्युक्त अष्टादशाक्षर-मन्त्र सदा मेरे कपालको बचावे। 'ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं श्रीसूर्याय स्वाहा' मेरी नासिकाको सुरक्षित रखे। सूर्य मेरे नेत्रोंकी, विकर्तन पुतलियोंकी, भास्कर ओठोंकी और दिनकर दाँतोंकी रक्षा करें। प्रचण्ड मेरे गण्डस्थलका, मार्तण्ड कानोंका, मिहिर स्कन्धोंका और पूषा जंघाओंका सदा पालन करें। रवि मेरे वक्षःस्थलकी, स्वयं सूर्य नाभिकी और सर्वदेवनमस्कृत कङ्कालकी सदा देख-रेख करें। ब्रध्न हाथोंको, प्रभाकर पैरोंको और सामर्थ्यशाली विभाकर मेरे सारे शरीरको निरन्तर सुरक्षित रखें। वत्स! यह 'जगद्विलक्षण' नामक कवच अत्यन्त मनोहर तथा त्रिलोकीमें परम दुर्लभ है। इसे मैंने तुम्हें बतला दिया। पूर्वकालमें पुलस्त्यने पुष्करक्षेत्रमें प्रसन्न होकर इसे मनुको दिया था, वही मैं तुम्हें दे रहा हूँ। इसे तुम जिस-किसीको मत दे देना। इस कवचकी कृपासे तुम्हारा रोग नष्ट हो जायगा और तुम नीरोग तथा श्रीसम्पन्न हो जाओगे—इसमें संशय नहीं है। एक लाख वर्षतक हविष्य-भोजनसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वह फल निश्चय ही इस कवचके धारणसे प्राप्त हो जाता है। इस कवचको जाने बिना जो मूर्ख सूर्यकी भक्ति करता है, उसे दस लाख जप करनेपर भी मन्त्रसिद्धि नहीं प्राप्त होती।

ब्रह्माने कहा—वत्स! इस कवचको धारण करके सूर्यका स्तवन करनेपर तुमलोग रोग-मुक्त हो जाओगे—यह निश्चित है। सूर्य-स्तवनका वर्णन सामवेदमें हुआ है। वह व्याधिविनाशक, सर्वपापहारी, परमोत्कृष्ट, साररूप और श्री तथा आरोग्यको देनेवाला है।

भगवन्! जो सनातन ब्रह्म, परमधाम, ज्योतीरूप, भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले, त्रिलोकीके नेत्ररूप, जगन्नाथ, पापनाशक, तपस्याओंके फलदाता, पापियोंको सदा दुःखदायी, कर्मानुरूप फल प्रदान करनेवाले, कर्मके बीजस्वरूप, दयासागर, कर्मरूप, क्रियारूप, रूपरहित, कर्मबीज, ब्रह्मा, विष्णु और महेशके अंशरूप, त्रिगुणात्मक, व्याधिदाता, व्याधिहन्ता, शोक-मोह-भयके विनाशक, सुखदायक, मोक्षदाता, साररूप, भक्तिप्रद, सम्पूर्ण कामनाओंके दाता, सर्वेश्वर, सर्वरूप, सम्पूर्ण कर्मोंके साक्षी, समस्त लोकोंके दृष्टिगोचर, अप्रत्यक्ष, मनोहर, निरन्तर रसको हरनेवाले, तत्पश्चात् रसदाता, सर्वसिद्धिप्रद, सिद्धिस्वरूप, सिद्धेश और सिद्धोंके परम गुरु हैं, उन आपकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ। वत्स! मैंने इस स्तवराजका वर्णन कर दिया। यह गोपनीयसे भी परम गोपनीय है।* जो नित्य

---

* ब्रह्मोवाच—

त्वं ब्रह्म परमं धाम ज्योतीरूपं सनातनम्। त्वामहं स्तोतुमिच्छामि भक्तानुग्रहकारकम्॥

तीनों काल इसका पाठ करता है, वह समस्त व्याधियोंसे मुक्त हो जाता है। उसके अंधापन, कोढ़, दरिद्रता, रोग, शोक, भय और कलह—ये सभी विश्वेश्वर श्रीसूर्यकी कृपासे निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं। जो भयंकर कुष्ठसे दुःखी, गलित अङ्गोंवाला, नेत्रहीन, बड़े-बड़े घावोंसे युक्त, यक्ष्मासे ग्रस्त, महान् शूलरोगसे पीड़ित अथवा नाना प्रकारकी व्याधियोंसे युक्त हो, वह भी यदि एक मासतक हविष्यान्न भोजन करके इस स्तोत्रका श्रवण करे तो निश्चय ही रोगमुक्त हो जाता है और उसे सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान करनेका फल प्राप्त होता है—इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। अतः पुत्रो! तुमलोग शीघ्र ही पुष्करमें जाओ और वहाँ सूर्यका भजन करो। यों कहकर ब्रह्मा आनन्दपूर्वक अपने भवनको चले गये। इधर वे दोनों दैत्य सूर्यकी सेवा करके नीरोग हो गये। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुम्हारे पूछे हुए विघ्नेश्वरके विघ्नका कारण तथा सर्वविघ्नहर सूर्यकवच और सूर्यस्तवादि सुना दिये। अब तुम्हारी और क्या सुननेकी इच्छा है? (अध्याय १९)

भगवान् नारायणके निवेदित पुष्पकी अवहेलनासे इन्द्रका श्रीभ्रष्ट होना, पुनः बृहस्पतिके साथ ब्रह्माके पास जाना, ब्रह्माद्वारा दिये गये नारायणस्तोत्र, कवच और मन्त्रके जपसे पुनः श्री प्राप्त करना

तब श्रीनारायणने कहा—नारद! एक बार देवराज इन्द्र निर्जन वनमें, एक पुष्पोद्यानमें गये थे। वहाँ रम्भा अप्सरासे उनका समागम हुआ। तदनन्तर वे दोनों जलविहार करने लगे। इसी बीच मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा वैकुण्ठसे कैलास जाते हुए शिष्यमण्डलीसहित वहाँ आ पहुँचे। देवराज इन्द्रने उन्हें प्रणाम किया। मुनिने आशीर्वाद दिया। फिर भगवान् नारायणका दिया हुआ पारिजात-पुष्प इन्द्रको देकर मुनिने कहा—'देवराज! भगवान् नारायणके निवेदित यह पुष्प सब विघ्नोंका नाश करनेवाला है। यह जिसके मस्तकपर रहेगा, वह सर्वत्र विजय प्राप्त करेगा और देवताओंमें अग्रगण्य होकर अग्रपूजाका अधिकारी होगा। महालक्ष्मी छायाकी तरह सदा उसके साथ रहेगी। वह ज्ञान, तेज, बुद्धि, बल—सभी बातोंमें सब देवताओंसे श्रेष्ठ और भगवान् हरिके तुल्य पराक्रमी होगा। परंतु जो पामर अहंकारवश भगवान् श्रीहरिके निवेदित इस पुष्पको मस्तकपर धारण नहीं करेगा, वह अपनी जातिवालोंके सहित श्रीभ्रष्ट हो जायगा।' इतना कहकर दुर्वासाजी शंकरालयको चले गये। इन्द्रने उस पुष्पको अपने सिरपर न धारण करके ऐरावत हाथीके मस्तकपर रख दिया। इससे इन्द्र श्रीभ्रष्ट हो गये। इन्द्रको श्रीभ्रष्ट देख रम्भा उन्हें छोड़कर स्वर्ग चली गयी। गजराज इन्द्रको नीचे गिराकर महान् अरण्यमें चला गया और हथिनीके साथ

त्रैलोक्यलोचनं लोकनाथं पापप्रमोचनम्। तपसां फलदातारं दुःखदं पापिनां सदा॥
कर्मानुरूपफलदं कर्मबीजं दयानिधिम्। कर्मरूपं क्रियारूपमरूपं कर्मबीजकम्॥
ब्रह्मविष्णुमहेशानामंशं च त्रिगुणात्मकम्। व्याधिदं व्याधिहन्तारं शोकमोहभयापहम्।
सुखदं मोक्षदं सारं भक्तिदं सर्वकामदम्॥
सर्वेश्वरं सर्वरूपं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्।
प्रत्यक्षं सर्वलोकानामप्रत्यक्षमनूहकम्॥
शश्वद्रसहरं पश्चाद् रसदं सर्वसिद्धिदम्।
सिद्धिस्वरूपं सिद्धेशं सिद्धानां परमं गुरुम्।
स्तवराजमिति प्रोक्तं गुह्याद्गुह्यतरं परम्॥ (गणपतिखण्ड १९। ३६—४२)

विहार करने लगा। उस वनमें उसके बहुत-से बच्चे हुए। इसी समय श्रीहरिने उस हाथीका मस्तक काटकर बालक (गणेश)-के सिरपर लगा दिया। वत्स! गजमुखके लगानेका प्रसङ्ग तुमको सुना दिया। इसके श्रवणसे पाप नष्ट होते हैं। अब और क्या सुनना चाहते हो, सो कहो।

नारदने पूछा—प्रभो! किस ब्रह्मशापके कारण वे सभी देवता श्रीभ्रष्ट हो गये थे। पुनः किस प्रकार उन्होंने उन जगज्जननी कमलाको प्राप्त किया? उस समय महेन्द्रने क्या किया? आप उस परम दुर्लभ गोपनीय रहस्यको बतलानेकी कृपा करें।

नारायणने कहा—नारद! जिसकी बुद्धि अत्यन्त मन्द हो गयी थी, श्रीसे भ्रष्ट होनेके कारण जिसपर दीनता छायी हुई थी और जिसका आनन्द नष्ट हो गया था, वह इन्द्र गजेन्द्र और रम्भासे पराभूत होकर अमरावतीमें गया। मुने! वहाँ उसने देखा कि उस पुरीमें आनन्दका नामनिशान नहीं है। वह दीनतासे ग्रस्त, बन्धुओंसे हीन और शत्रुवर्गोंसे खचाखच भर गयी है। तब दूतके मुखसे सारा वृत्तान्त सुनकर वह गुरु बृहस्पतिके घर गया और फिर गुरु तथा देवगणोंके साथ वह ब्रह्माकी सभामें जा पहुँचा। वहाँ जाकर देवताओंसहित इन्द्रने तथा बृहस्पतिने ब्रह्माको नमस्कार किया और भक्तिभावसहित वेदविधिके अनुसार स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की। तत्पश्चात् बृहस्पतिने प्रजापति ब्रह्मासे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर ब्रह्माने नीचे मुख करके कहना आरम्भ किया।

ब्रह्मा बोले—देवेन्द्र! तुम मेरे प्रपौत्र हो और श्रीसम्पन्न होनेसे सदा प्रज्वलित होते रहते हो। किंतु राजन्! लक्ष्मीके समान सुन्दरी शचीके पति होनेपर भी तुम आचरणभ्रष्ट हो जाते हो। जो आचरणभ्रष्ट होता है, उसे लक्ष्मी अथवा यशकी प्राप्ति कहाँसे हो सकती है? वह पापी तो सदा सभी सभाओंमें निन्दाका विषय बना रहता है। रम्भाने तुम्हें हतबुद्धि बना दिया था। इसी कारण तुमने दुर्वासाद्वारा दिये गये श्रीहरिके नैवेद्यको गजराजके मस्तकपर डाल दिया। इस समय सबके द्वारा भोगी जानेवाली वह रम्भा कहाँ है और श्रीसे भ्रष्ट हुए तुम कहाँ? जिसके कारण तुम्हें लक्ष्मीसे रहित होना पड़ा, वह रम्भा भी तुम्हें क्षणभरमें ही त्यागकर चली गयी; क्योंकि वेश्या चञ्चला होती है। वह धनवानोंको ही पसंद करती है, निर्धनोंको नहीं तथा प्राचीन प्रेमीका तिरस्कार करके नये-नये नायकोंको खोजती रहती है। परंतु वत्स! जो बीत गया, वह तो चला ही गया; क्योंकि बीता हुआ पुनः वापस नहीं आता। अब तुम लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये भक्तिपूर्वक नारायणका भजन करो।

इतना कहकर नारायणपरायण ब्रह्माने इन्द्रको जगत्स्रष्टा नारायणका स्तोत्र, कवच और मन्त्र दिया। तब इन्द्र देवताओं तथा गुरुके साथ पुष्करमें जाकर अपने अभीप्सित मन्त्रका जप करने लगे और कवच ग्रहण करके उसके द्वारा श्रीहरिकी स्तुतिमें तत्पर हो गये। इस प्रकार

पुण्यदायक शुभ भारतवर्षमें एक वर्षतक निराहार रहकर लक्ष्मीकी प्राप्तिके हेतु उन्होंने लक्ष्मीपतिकी सेवा की। तब श्रीहरिने प्रकट होकर इन्द्रको मनोवाञ्छित वर तथा लक्ष्मीका स्तोत्र, कवच और ऐश्वर्यवर्धक मन्त्र प्रदान किया। मुने! यह सब देकर श्रीहरि तो वैकुण्ठको चले गये और इन्द्र क्षीरसागरपर पहुँचे। वहाँ उन्होंने कवच धारणकर स्तोत्रद्वारा स्तवन करके लक्ष्मीको प्राप्त किया। तत्पश्चात् देवराज इन्द्रने शत्रुको जीतकर अमरावतीको अपने अधिकारमें कर लिया। इसी प्रकार सभी देवता एक-एक करके अपने इच्छित स्थानको प्राप्त हुए। (अध्याय २०-२१)

श्रीहरिका इन्द्रको लक्ष्मी-कवच तथा लक्ष्मी-स्तोत्र प्रदान करना

नारदजीने पूछा—तपोधन! लक्ष्मीपति श्रीहरिने प्रकट होकर इन्द्रको महालक्ष्मीका कौन-सा स्तोत्र और कवच प्रदान किया था, वह मुझे बतलाइये।

नारायणने कहा—नारद! जब पुष्करमें तपस्या करके देवराज इन्द्र शान्त हुए, तब उनके क्लेशको देखकर स्वयं श्रीहरि वहाँ प्रकट हुए। उन हृषीकेशने इन्द्रसे कहा—'तुम अपने इच्छानुसार वर माँग लो।' तब इन्द्रने लक्ष्मीको ही वररूपसे वरण किया और श्रीहरिने हर्षपूर्वक उन्हें दे दिया। वर देनेके पश्चात् हृषीकेशने जो हितकारक, सत्य, साररूप और परिणाममें सुखदायक था, ऐसा वचन कहना आरम्भ किया।

श्रीमधुसूदन बोले—इन्द्र! (लक्ष्मी-प्राप्तिके लिये) तुम लक्ष्मी-कवच ग्रहण करो। यह समस्त दुःखोंका विनाशक, परम ऐश्वर्यका उत्पादक और सम्पूर्ण शत्रुओंका मर्दन करनेवाला है। पूर्वकालमें जब सारा संसार जलमग्न हो गया था, उस समय मैंने इसे ब्रह्माको दिया था। जिसे धारण करके ब्रह्मा त्रिलोकोंमें श्रेष्ठ और सम्पूर्ण ऐश्वर्योंसे सम्पन्न हो गये थे। इसीके धारणसे सभी मनुलोग सम्पूर्ण ऐश्वर्योंके भागी हुए थे। देवराज! इस सर्वैश्वर्यप्रद कवचके ब्रह्मा ऋषि हैं, पङ्क्ति छन्द है, स्वयं पद्मालया लक्ष्मी देवी हैं और सिद्धैश्वर्यके जपोंमें इसका विनियोग कहा गया है। इस कवचके धारण करनेसे लोग सर्वत्र विजयी होते हैं। पद्मा मेरे मस्तककी रक्षा करें। हरिप्रिया कण्ठकी रक्षा करें। लक्ष्मी नासिकाकी रक्षा करें। कमला नेत्रकी रक्षा करें। केशवकान्ता केशोंकी, कमलालया कपालकी, जगज्जननी दोनों कपोलोंकी और सम्पत्प्रदा सदा स्कन्धकी रक्षा करें। 'ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे पृष्ठभागका सदा पालन करे। 'ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा' वक्षःस्थलको सदा सुरक्षित रखे। श्री देवीको नमस्कार है, वे मेरे कङ्काल तथा दोनों भुजाओंको बचावें। 'ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः' चिरकालतक निरन्तर मेरे पैरोंका पालन करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा' नितम्बभागकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरे सर्वाङ्गकी सदा रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' सब ओरसे सदा मेरा पालन करे। वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे इस सर्वैश्वर्यप्रद नामक परमोत्कृष्ट कवचका वर्णन कर दिया। यह परम अद्भुत कवच सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला है। जो मनुष्य विधिपूर्वक गुरुकी अर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह सबको जीतनेवाला हो जाता है। महालक्ष्मी कभी उसके घरका त्याग नहीं करतीं; बल्कि प्रत्येक जन्ममें छायाकी भाँति सदा उसके साथ लगी रहती हैं। जो मन्दबुद्धि इस कवचको बिना जाने ही लक्ष्मीकी भक्ति करता है, उसे एक करोड़ जप

करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता*।

नारायण कहते हैं—महामुने! यों जगदीश्वर श्रीहरिने प्रसन्न हो इन्द्रको यह कवच देनेके पश्चात् पुनः जगत्‌की हित-कामनासे कृपापूर्वक उन्हें 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा' यह षोडशाक्षर-मन्त्र भी प्रदान किया। फिर जो गोपनीय, परम दुर्लभ, सिद्धों और मुनिवरोंद्वारा दुष्प्राप्य और निश्चितरूपसे सिद्धिप्रद है, वह सामवेदोक्त शुभ ध्यान भी बतलाया। (वह ध्यान इस प्रकार है—) जिनके शरीरकी आभा श्वेत चम्पाके पुष्पके सदृश तथा कान्ति सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान है, जो अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई साड़ीको धारण किये हुए तथा रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित हैं, जिनके प्रसन्न मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी हुई है, जो भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाली, स्वस्थ और अत्यन्त मनोहर हैं, सहस्रदल-कमल जिनका आसन है, जो परम शान्त तथा श्रीहरिकी प्रियतमा पत्नी हैं, उन जगज्जननीका भजन करना चाहिये। देवेन्द्र! इस प्रकारके ध्यानसे जब तुम मनोहारिणी लक्ष्मीका ध्यान करके भक्तिपूर्वक उन्हें षोडशोपचार समर्पित करोगे और आगे कहे जानेवाले स्तोत्रसे उनकी स्तुति करके सिर झुकाओगे, तब उनसे वरदान पाकर तुम दुःखसे मुक्त हो जाओगे। देवराज! महालक्ष्मीका वह सुखप्रद स्तोत्र, जो परम गोपनीय तथा त्रिलोकीमें दुर्लभ है, बतलाता हूँ। सुनो।

नारायण कहते हैं—देवि! जिनका स्तवन करनेमें बड़े-बड़े देवेश्वर समर्थ नहीं हैं, उन्हीं आपकी मैं स्तुति करना चाहता हूँ। आप बुद्धिके परे, सूक्ष्म, तेजोरूपा, सनातनी और अत्यन्त अनिर्वचनीया हैं। फिर आपका वर्णन कौन कर सकता है? जगदम्बिके! आप स्वेच्छामयी, निराकार, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रहस्वरूप और मन-वाणीसे परे हैं; तब मैं आपकी क्या स्तुति करूँ। आप चारों वेदोंसे परे, भवसागरको पार करनेके लिये उपायस्वरूप, सम्पूर्ण अन्नों तथा सारी सम्पदाओंकी अधिदेवी हैं और योगियों-योगों, ज्ञानियों-ज्ञानों, वेदों-वेदवेत्ताओंकी जननी हैं; फिर मैं आपका क्या वर्णन कर सकता हूँ! जिनके बिना सारा जगत् निश्चय ही उसी प्रकार

---

*श्रीमधुसूदन उवाच—

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम्॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते। यद् धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः॥
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया सुर। सिद्ध्यैश्वर्यजपेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः॥
यद् धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत्॥
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया। नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम्॥
केशान् केशवकान्ता च कपालं कमलालया। जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं सम्पत्प्रदा सदा॥
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदावतु। ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदावतु॥
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च ते नमः॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥
ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसम्पत्करं परम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्॥
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं सुमन्दधीः। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

(गणपतिखण्ड २२। ५—१९)

वस्तुहीन एवं निष्फल हो जाता है, जैसे दूध पीनेवाले बच्चोंको माताके बिना सुख नहीं मिलता। आप तो जगत्‌की माता हैं; अतः प्रसन्न हो जाइये और हम अत्यन्त भयभीतोंकी रक्षा कीजिये। हमलोग आपके चरणकमलका आश्रय लेकर शरणापन्न हुए हैं। आप शक्तिस्वरूपा जगज्जननीको बारंबार नमस्कार है। ज्ञान, बुद्धि तथा सर्वस्व प्रदान करनेवाली आपको पुनः-पुनः प्रणाम है। महालक्ष्मी! आप हरि-भक्ति प्रदान करनेवाली, मुक्तिदायिनी, सर्वज्ञा और सब कुछ देनेवाली हैं। आप बारंबार मेरा प्रणिपात स्वीकार करें। माँ! कुपुत्र तो कहीं-कहीं होते हैं, परंतु कुमाता कहीं नहीं होती। क्या कहीं पुत्रके दुष्ट होनेपर माता उसे छोड़कर चली जाती है? हे मातः! आप कृपासिन्धु श्रीहरिकी प्राणप्रिया हैं और भक्तोंपर अनुग्रह करना आपका स्वभाव है; अतः दुधमुँहे बालकोंकी तरह हमलोगोंपर कृपा करो, हमें दर्शन दो। वत्स! इस प्रकार लक्ष्मीका यह शुभकारक स्तोत्र, जो सुखदायक, मोक्षप्रद, साररूप, शुभद और सम्पत्तिका आश्रयस्थान है, तुम्हें बता दिया। जो मनुष्य पूजाके समय इस महान् पुण्यकारक स्तोत्रका पाठ करता है, उसके गृहका महालक्ष्मी कभी परित्याग नहीं करतीं। इन्द्रसे इतना कहकर श्रीहरि वहीं अन्तर्धान हो गये। तब उनकी आज्ञासे देवताओंके साथ देवराज क्षीरसागरपर गये*। (अध्याय २१)

देवताओंके स्तवन करनेपर महालक्ष्मीका प्रकट होकर देवों और मुनियोंके समक्ष अपने निवास-योग्य स्थानका वर्णन करना

नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर इन्द्र गुरु बृहस्पति तथा अन्यान्य देवोंको साथ लेकर लक्ष्मीकी प्राप्तिके लिये प्रसन्न-मनसे शीघ्र ही क्षीरसागरके तटपर गये। वहाँ उन्होंने अमूल्य रत्नकी गुटिकासे युक्त कवचको गलेमें बाँधकर पुनः-पुनः उस दिव्य स्तोत्रका मन-ही-मन स्मरण

---

* नारायण उवाच—

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न क्षमाः स्तोतुमीश्वराः। बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम्॥
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः। स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम्॥
स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किं वाहं जगदम्बिके। परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे॥
सर्वशस्याधिदेवीं च सर्वासामपि सम्पदाम्।
योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा। वेदानां च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम्॥
यया विना जगत् सर्वमवस्तु निष्फलं ध्रुवम्। यथा स्तनन्धबालानां विना मात्रा सुखं भवेत्॥
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान्। वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः॥
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः। ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः॥
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः। सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः॥
कुपुत्राः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रापि कुमातरः। कुत्र माता पुत्रदोषे तं विहाय च गच्छति॥
हे मातर्दर्शनं देहि स्तनन्धान् बालकानिव। कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान् भक्तवत्सले॥
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम्। सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत्। महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत। देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया॥
(गणपतिखण्ड २२। ६७—७९)

किया। फिर सब लोगोंने भक्तिभावपूर्वक कमल-वासिनी लक्ष्मीका स्तवन किया। उस समय उनके सिर भक्तिके कारण झुके हुए थे और अत्यन्त दीनताभावश नेत्रोंमें आँसू छलक आये थे। उनके द्वारा की गयी स्तुतिको सुनकर सहस्रदल-कमलपर वास करनेवाली तथा सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती महालक्ष्मी तुरंत ही वहाँ प्रकट हो गयीं। मुने! उन जगन्माताकी उत्तम प्रभासे सारा जगत् व्याप्त हो गया। तदनन्तर जगत्का धारण-पोषण करनेवाली लक्ष्मीने देवताओंसे यथोचित हितकारक एवं साररूप वचन कहा।

श्रीमहालक्ष्मी बोलीं—बच्चो! तुमलोग ब्रह्मशापके कारण भ्रष्ट हो गये हो, अतः मेरा तुमलोगोंके घर जानेका विचार नहीं है। इस समय मैं ऐसा करनेमें समर्थ नहीं हूँ; क्योंकि मैं ब्रह्मशापसे डर रही हूँ। ब्राह्मण मेरे प्राण हैं। वे सभी सदा मुझे पुत्रसे भी बढ़कर प्रिय हैं। वे ब्राह्मण जो कुछ देते हैं, वही मेरी जीविकाका साधन होता है। यदि वे विप्र प्रसन्नतापूर्वक मुझसे कहें तो मैं उनकी आज्ञासे चल सकूँगी। वे तपस्वी मेरी पूजा करनेमें समर्थ नहीं हैं। जब अभाग्यका समय आ जाता है, तभी वे गुरु, ब्राह्मण, देव, संन्यासी तथा वैष्णवोंद्वारा शापित होते हैं। जो सबके कारण, ऐश्वर्यशाली, सर्वेश्वर और सनातन हैं, वे भगवान् नारायण भी ब्रह्मशापसे भय मानते हैं।

ब्रह्मन्! इसी बीच अङ्गिरा, प्रचेता, क्रतु, भृगु, पुलह, पुलस्त्य, मरीचि, अत्रि, सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, साक्षात् नारायणस्वरूप भगवान् सनत्कुमार, कपिल, आसुरि, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, कश्यप, अगस्त्य, गौतम, कण्व, और्व, कात्यायन, कणाद, पाणिनि, मार्कण्डेय, लोमश और स्वयं भगवान् वसिष्ठ—ये सभी ब्राह्मण हर्षपूर्ण-चित्तसे वहाँ आये। वे सभी ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे और उनके मुखोंपर मुस्कराहट थी। उन्होंने अनेक प्रकारकी पूजा-सामग्रीसे भगवती लक्ष्मीका पूजन किया और देवताओंने उन्हें वन्य पदार्थोंका नैवेद्य समर्पित किया। फिर उन मुनीश्वरोंने हर्षके साथ उनकी स्तुति करके भक्तिपूर्वक उनका आराधन किया और कहा—'जगदम्बिके! आप देवलोक तथा मर्त्यलोकमें पधारिये।' उनका यह वचन सुनकर जगज्जननी संतुष्ट हो गयीं और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे निर्भय हो चलनेके लिये उद्यत होकर उनसे बोलीं।

श्रीमहालक्ष्मीने कहा—विप्रवरो! मैं आपलोगोंकी आज्ञासे देवताओंके घर जाऊँगी, किंतु भारतवर्षमें जिन-जिनके घर नहीं जाऊँगी, उनका विवरण सुनिये। पुण्यात्मा गृहस्थों और उत्तम नीतिके जानकार नरेशोंके घरमें तो मैं स्थिररूपसे निवास करूँगी और पुत्रकी भाँति उनकी रक्षा करूँगी। जिस-जिसके प्रति उसके गुरु, देवता, माता, पिता, भाई-बन्धु, अतिथि और पितर लोग रुष्ट हो जायँगे, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मिथ्यावादी, पराक्रमहीन और दुष्ट स्वभाववाला है तथा 'मेरे पास कुछ नहीं है' यों सदा कहता रहता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो सत्यहीन, धरोहर हड़प लेनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, विश्वासघाती और कृतघ्न है, उसके गृह मैं नहीं जाऊँगी। जो चिन्ताग्रस्त, भयभीत, शत्रुके चंगुलमें फँसा हुआ, महान् पापी, कर्जदार और अत्यन्त कृपण है—ऐसे पापियोंके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो दीक्षाहीन, शोकार्त, मन्दबुद्धि और सदा स्त्रीके वशमें रहनेवाला है तथा जो कुलटा स्त्रीका पति अथवा पुत्र है, उसके घर मैं कभी नहीं जाऊँगी। जो दुष्ट वचन बोलनेवाला और झगड़ालू है, जिसके घरमें निरन्तर कलह होता रहता है तथा जिसके घरमें स्त्रीका स्वामित्व है—ऐसे लोगोंके घर मैं नहीं जाऊँगी। जहाँ श्रीहरिकी पूजा और उनके गुणोंका

कीर्तन नहीं होता तथा उनकी प्रशंसामें उत्सुकता नहीं है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो कन्या, अन्न और वेदको बेचनेवाला, मनुष्यघाती और हिंसक है, उसका घर नरककुण्डके समान है; अतः मैं उसके घर नहीं जाऊँगी। जो कृपणतावश माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी, गुरु, पुत्र, अनाथ बहिन और आश्रयहीन बान्धवोंका पालन-पोषण नहीं करता; सदा धन-संग्रहमें ही लगा रहता है; उसके नरक-कुण्ड-सदृश घरमें मैं नहीं जाऊँगी। जिसके दाँत और वस्त्र मलिन, मस्तक रूखा और ग्रास तथा हास विकृत रहते हैं, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मन्दबुद्धि मल-मूत्रका परित्याग करके उसपर दृष्टि डालता है और गीले पैरों सोता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो बिना पैर धोये सोता है; गाढ़ निद्राके वशीभूत होकर सोते समय नंगा हो जाता है तथा संध्याकाल और दिनमें शयन करनेवाला है; उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो पहले मस्तकपर तेल लगाकर पीछे उस तेलसे अन्य अङ्गोंका स्पर्श करता है अथवा सारे शरीरमें लगाता है उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मस्तक और शरीरमें तेल लगाकर मल-मूत्रका त्याग करता है, नमस्कार करता है और पुष्प तोड़कर ले आता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो नखोंसे तृण तोड़ता और नखोंसे भूमि कुरेदता है तथा जिसके शरीर और पैरमें मैल जमी रहती है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो अपने द्वारा अथवा पराये द्वारा दी हुई ब्राह्मणकी और देवताकी वृत्तिका अपहरण करता है, वह ज्ञानशील ही क्यों न हो, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मूर्ख कर्म करके दक्षिणा नहीं देता, वह शठ पापी और पुण्यहीन है; उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो मन्त्रविद्या (झाड़-फूँक)-से जीविका चलानेवाला, ग्रामयाजी (पुरोहित), वैद्य, रसोइया और देवल (वेतन लेकर मूर्ति-पूजा करनेवाला) है; उसके घर मैं नहीं जाऊँगी। जो क्रोधवश विवाह अथवा धर्मकार्यको काट देता है तथा जो दिनमें स्त्री-प्रसङ्ग करता है, उसके घर मैं नहीं जाऊँगी।

नारद! इतना कहकर महालक्ष्मी अन्तर्धान हो गयीं। फिर उन्होंने देवताओंके गृह तथा मृत्युलोककी ओर देखा। तब सभी देवता और मुनिगण आनन्दपूर्वक महालक्ष्मीको प्रणाम करके शीघ्र ही अपने-अपने वासस्थानको चले गये। उस समय उनके गृहोंको शत्रुओंने छोड़ दिया था और वे सुहृदोंसे परिपूर्ण थे। मुने! फिर तो स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और फूलोंकी वर्षा होने लगी। इस प्रकार देवताओंने अपना राज्य और स्थिर लक्ष्मीको प्राप्त किया। वत्स! इस प्रकार मैंने लक्ष्मीके उत्तम चरितका, जो सुखदायक, मोक्षप्रद और साररूप है, वर्णन कर दिया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय २३)

गणेशके एकदन्त-वर्णन-प्रसङ्गमें जमदग्निके आश्रमपर कार्तवीर्यका स्वागत-सत्कार, कार्तवीर्यका बलपूर्वक कामधेनुको हरण करनेकी इच्छा प्रकट करना, कामधेनुद्वारा उत्पन्न की हुई सेनाके साथ कार्तवीर्यकी सेनाका युद्ध

नारदजीने पूछा—हरिके अंशसे उत्पन्न हुए महाभाग नारायण! आपकी कृपासे मैंने गणेशका सारा शुभ चरित सुन लिया। किंतु ब्रह्मन्! विष्णुने उस बालकके धड़पर गजराजके दो दाँतोंवाले मुखको जोड़ा था; फिर वह शिशु एकदन्त कैसे हो गया? उसका वह दूसरा दाँत कहाँ चला गया? यह प्रसङ्ग बतलानेकी कृपा कीजिये; क्योंकि आप सर्वेश्वर, सर्वज्ञ, कृपालु और भक्तवत्सल हैं।

तदनन्तर मन्त्रीके कहनेपर वह दुर्बुद्धि राजा मुनिसे उस गौकी याचना करनेके लिये उद्यत हो गया; क्योंकि वह उस समय सर्वथा कालपाशसे बँधा हुआ था। भला, पुण्य अथवा उत्तम बुद्धि क्या कर सकती है; क्योंकि होनहार ही सब तरहसे बली होता है। इसी कारण पुण्यवान् एवं बुद्धिमान् होकर भी राजेन्द्र कार्तवीर्य दैववश ब्राह्मणसे याचना करना चाहता है। पुण्यसे भारतवर्षमें पुण्यरूप कर्म और पापसे भयदायक पापरूप कर्म प्रकट होता है। पुण्यकर्मसे स्वर्गका भोग करके मनुष्य पुण्यस्थलमें जन्म लेते हैं और पापकर्मसे नरकका भोग करनेके पश्चात् प्राणियोंकी निन्दित योनिमें उत्पत्ति होती है। नारद! कर्मके वर्तमान रहते प्राणियोंका उद्धार नहीं होता; इसलिये संतलोग निरन्तर कर्मका क्षय ही करते रहते हैं। वही विद्या, वही तप, वही ज्ञान, वही गुरु, वही भाई-बन्धु, वही माता, वही पिता और वही पुत्र सार्थक है, जो कर्मक्षयमें सहायता करता है*। प्राणियोंके कर्मोंका शुभ-अशुभ भोग दारुण रोगके समान है, जिसे भक्तरूपी वैद्य श्रीकृष्ण-भक्तिरूपी रसायनके द्वारा नष्ट करते हैं। जगत्‌का धारण-पोषण करनेवाली बुद्धिदायिनी माया प्रत्येक जन्ममें सेवा किये जानेपर संतुष्ट होकर भक्तको वह भक्ति प्रदान करती हैं। तदनन्तर मायासे विमुग्ध हुए राजा कार्तवीर्यने यत्नपूर्वक मुनिको अपने पास बुलाया और हर्षके साथ अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उनसे विनयपूर्ण वचन कहा।

राजा बोला—भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत रहनेवाले भक्तेश! आप तो कल्पतरुके समान हैं; अतः मुझ भक्तको कामनापूर्ण करने-वाली इस कामधेनुको भिक्षारूपमें प्रदान कीजिये। तपोधन! आप-जैसे दाताओंके लिये भारतमें कोई वस्तु अदेय नहीं है। मैंने सुना भी है कि पूर्वकालमें दधीचिने देवताओंको अपनी हड्डी दे डाली थी। तपोराशे! आप तो भारतवर्षमें लीलापूर्वक भ्रूभङ्गमात्रसे समूह-की-समूह कामधेनुओंकी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं।

मुनिने कहा—राजन्! आश्चर्य है, तुम तो उलटी बात कह रहे हो। अरे मूर्ख एवं छली नरेश! मैं ब्राह्मण होकर क्षत्रियको दान कैसे दूँगा? इस कामधेनुको परमात्मा श्रीकृष्णने गोलोकमें यज्ञके अवसरपर ब्रह्माको दिया था, अतः प्राणोंसे बढ़कर प्यारी यह गौ देने योग्य नहीं है। भूमिपाल! फिर ब्रह्माने इसे अपने प्रिय पुत्र भृगुको दिया और भृगुने मुझे दिया। इस प्रकार यह कपिला मेरी पैतृक सम्पत्ति है। यह कामधेनु गोलोकमें उत्पन्न हुई है; अतः त्रिलोकीमें दुर्लभ है। तब भला मैं लीलापूर्वक ऐसी कपिलाकी सृष्टि करनेमें कैसे समर्थ हो सकता हूँ। न तो मैं हलवाहा हूँ और न तुम्हारी सहायतासे बुद्धिमान् हुआ हूँ। मैं अतिथिको छोड़कर शेष सबको क्षणमात्रमें भस्मसात् करनेकी शक्ति रखता हूँ। अतः अपने घर जाओ और स्त्री-पुत्रोंको देखो।

मुनिके इस वचनको सुनकर राजाको क्रोध आ गया। तब वह मुनिको नमस्कार करके सेनाके मध्यमें चला गया। उस समय भाग्यने उसे बाधित कर दिया था; अतः क्रोधके कारण उसके होंठ फड़क रहे थे। उसने सेनाके निकट जाकर बलपूर्वक गौको लानेके लिये नौकरोंको भेजा। इधर शोकके कारण, जिनका विवेक नष्ट हो गया था, वे मुनिवर जमदग्नि कपिलाके संनिकट जाकर रोने लगे और उन्होंने सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तब भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये उद्यत रहनेवाली वह गौ, जो साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा थी, ब्राह्मणको रोते देखकर बोली।

* सा विद्या तत्तपो ज्ञानं स गुरुः स च बान्धवः। सा माता स पिता पुत्रस्तत् क्षयं कारयेत् तु यः॥
(गणपतिखण्ड २४। ३५)

सुरभिने कहा—मुने! जो निरन्तर अपनी वस्तुओंका शासक, पालक और दाता है, चाहे वह इन्द्र हो अथवा हलवाहा, वही अपनी वस्तुका दान कर सकता है। तपोधन! यदि आप स्वेच्छानुसार मुझे राजाको देंगे, तभी मैं स्वेच्छासे अथवा आपकी आज्ञासे उसके साथ जाऊँगी। यदि आप नहीं देंगे तो मैं आपके घरसे नहीं जाऊँगी। आप मेरे द्वारा दी गयी सेनाके सहारे राजाको भगा दीजिये। सर्वज्ञ! मायासे विमुग्ध-चित्त होकर आप क्यों रो रहे हैं? अरे! ये संयोग-वियोग तो कालकृत हैं, आत्मकृत नहीं हैं। आप मेरे कौन हैं और मैं आपकी कौन हूँ—यह सम्बन्ध तो कालद्वारा नियोजित है। जबतक यह सम्बन्ध है तभीतक आप मेरे हैं। मन जबतक जिस वस्तुको केवल अपना मानता है और उसपर अपना अधिकार समझता है, तभीतक उसके वियोगसे दुःख होता है।

इतना कहकर कामधेनुने सूर्यके सदृश कान्तिमान् नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र और सेनाएँ उत्पन्न कीं। उस कपिलाके मुख आदि अङ्गोंसे करोड़ों-करोड़ों खड्गधारी, शूलधारी, धनुर्धारी, दण्ड, शक्ति और गदाधारी शूरवीर निकल आये। करोड़ों वीर राजकुमार और म्लेच्छ निकले। इस प्रकार कपिलाने मुनिको सेनाएँ देकर उन्हें निर्भय कर दिया और कहा—'ये सेनाएँ युद्ध करेंगी; आप वहाँ मत जाइये।' उस सामग्रीसे सम्पन्न होनेके कारण मुनिको महान् हर्ष प्राप्त हुआ। इधर राजाद्वारा भेजे गये भृत्यने लौटकर राजाको सारा वृत्तान्त बतलाया। कपिलाकी सेनाका वृत्तान्त और अपने पक्षकी पराजय सुनकर नृपश्रेष्ठ कार्तवीर्य भयभीत हो गया। उसके मनमें कातरता छा गयी। तब उसने दूत भेजकर अपने देशसे और सेनाएँ मँगवायीं।

(अध्याय २४)

जमदग्नि और कार्तवीर्यका युद्ध तथा ब्रह्माद्वारा उसका निवारण

नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर कार्तवीर्यने दुःखी हृदयसे श्रीहरिका स्मरण किया और कुपित हो मुनिके पास दूत भेजकर कहलवाया—'मुनिश्रेष्ठ! युद्ध कीजिये अथवा मुझ अतिथि एवं भृत्यको मेरी वाञ्छित गौ दीजिये। भलीभाँति विचार करके जो उचित समझिये वही कीजिये।' दूतकी यह बात सुनकर मुनिवर जमदग्नि ठहाका मारकर हँस पड़े और जो हितकारक, सत्य, नीतिका सार-तत्त्व था, वह सब दूतसे कहने लगे।

मुनि बोले—दूत! राजाको आहाररहित देखकर मैं उसे अपने घर ले आया और यथोचितरूपसे शक्तिके अनुसार अनेक प्रकारके व्यञ्जन भोजन कराये। अब यह राजा मेरी प्राणोंसे प्यारी कपिलाको बलपूर्वक माँग रहा है। मैं उसे देनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ; अतः युद्ध-दान दूँगा—यह निश्चित है। मुनिका यह वचन सुनकर दूत लौट गया और सभाके मध्यभागमें भयके कारण कवच धारण करके बैठे हुए नरेशसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

इधर मुनिने कपिलासे कहा—'इस समय मैं क्या करूँ; क्योंकि जैसे कर्णधारके बिना नौका अनियन्त्रित रहती है, वही दशा मेरे बिना इस सेनाकी हो रही है।' तब कपिलाने मुनिको अनेक प्रकारके शस्त्र, युद्धशास्त्रकी शिक्षा और उसके उपयोगमें आनेवाले संधान आदिका ज्ञान प्रदान करते हुए कहा—'विप्रवर! आपकी जय हो। आप युद्धमें निश्चय ही शत्रुको जीत लेंगे तथा यह भी ध्रुव है कि अमोघ दिव्यास्त्रके बिना आपकी मृत्यु नहीं होगी। आप ब्राह्मण हैं; अतः आपका दत्तात्रेयके शिष्य एवं अमोघ शक्तिधारी

राजाके साथ युद्ध होना युक्त नहीं है।' ब्रह्मन्! इतना कहकर मनस्विनी कपिला चुप हो गयी। तब मनस्वी मुनिने सेनाको सुसज्जित किया और उस सारी सेनाको साथ लेकर वे युद्धस्थलको प्रस्थित हुए। उधर राजा भी युद्धके लिये आ डटा। उसने मुनिवर जमदग्निको प्रणाम किया। फिर दोनों सेनाओंमें अत्यन्त दुष्कर युद्ध होने लगा। उस युद्धमें कपिलाकी सेनाने बलपूर्वक राजाकी सारी सेनाको जीत लिया और खेल-ही-खेलमें राजाके विचित्र रथको चूर-चूर कर दिया। फिर हँसते-हँसते राजाके कवच और धनुषको भी छिन्न-भिन्न कर डाला। इस प्रकार राजा कार्तवीर्य कपिलाकी सेनाको जीतनेमें असमर्थ हो गया। उन सेनाओंने शस्त्रोंकी वर्षासे राजाको हथियार रख देनेके लिये विवश कर दिया। तत्पश्चात् बाणों तथा अस्त्रोंकी वर्षासे राजा मूर्च्छित हो गया। उस समय राजाकी कुछ सेना तो मर चुकी थी और कुछ भाग खड़ी हुई। मुने! जब कृपासागर मुनिवर जमदग्निने देखा कि मेरा अतिथि बना हुआ राजराजेश्वर कार्तवीर्य मूर्च्छित हो गया है, तब कृपापरवश हो उन्होंने उस सेनाको लौटा लिया। फिर तो वह कृत्रिम सेना जाकर कपिलाके शरीरमें विलीन हो गयी। तदनन्तर कृपालु मुनिने शीघ्र ही राजाको अपनी चरण-धूलि देकर 'तुम्हारी जय हो' ऐसा शुभाशीर्वाद प्रदान किया और अपने कमण्डलुके जलके छींटे देकर उसे चैतन्य कराया। होशमें आनेपर वह राजा युद्धभूमिमें उठकर खड़ा हो गया और भक्तिपूर्वक हाथ जोड़े हुए उसने मुनिवरको सिर झुकाकर प्रणाम किया। तब मुनिने राजाको शुभाशीष देकर हृदयसे लगा लिया और पुनः उसे स्नान कराकर यत्नपूर्वक भोजन कराया; क्योंकि ब्राह्मणोंका हृदय सदा मक्खनके समान कोमल होता है; परंतु दूसरोंका हृदय सदा छुरेकी धारके सदृश तेज, असाध्य और दारुण होता है। तत्पश्चात् मुनिवरने राजासे कहा—'नरेश! अब तुम अपने घर लौट जाओ।'

तब राजाने कहा—महाबाहो! युद्ध कीजिये अथवा मेरी अभीष्ट गौ मुझे समर्पित कीजिये।

नारायण कहते हैं—नारद! भूपालके वचनको सुनकर मुनिवरने श्रीहरिका स्मरण करके जो हितकर, सत्य और नीतिका साररूप था, ऐसा वचन कहना आरम्भ किया।

मुनिने कहा—महाभाग! अपने घर जाओ और सनातनधर्मकी रक्षा करो; क्योंकि धर्मके सुरक्षित रहनेपर सारी सम्पत्तियाँ सदा स्थिररूपसे निवास करती हैं—यह पूर्णतया निश्चित है। राजन्! तुम्हें भोजनसे वञ्चित देखकर मैं अपने घर लाया और विधिपूर्वक यथाशक्ति तुम्हारा आदर-सत्कार किया। इस समय तुम्हें मूर्च्छित देखकर मैंने चरणधूलि और शुभाशीर्वाद दिया, जिससे तुम्हारी मूर्च्छा दूर हुई; अतः तुम्हारा ऐसा कहना उचित नहीं है।

उस वचनको सुनकर राजाने मुनिवरको प्रणाम किया और एक-दूसरे रथपर सवार हो 'युद्ध दीजिये'—ऐसे ललकारा। तब मुनि भी

कवच धारण करके उससे युद्ध करनेके लिये उद्यत हो गये। क्रोधके कारण राजाकी बुद्धि मारी गयी थी; अतः वह मुनिके साथ जूझने लगा। मुनिने कपिलाद्वारा दी गयी शक्ति और शस्त्रके बलसे राजाको शस्त्रहीन करके मूर्च्छित कर दिया। तब कमललोचन राजा कार्तवीर्य पुनः होशमें आकर क्रोधपूर्वक मुनिके साथ लोहा लेने लगा। उस नृपश्रेष्ठने समरभूमिमें आग्नेयास्त्रका प्रयोग किया, तब मुनिने वारुणास्त्रद्वारा उसे हँसते-हँसते शान्त कर दिया। फिर राजाने रणभूमिमें मुनिके ऊपर वारुणास्त्र फेंका, तब मुनिने लीलापूर्वक वायव्यास्त्रद्वारा उसे शान्त कर दिया। तब राजाने युद्धस्थलमें वायव्यास्त्र चलाया; मुनिने उसे उसी क्षण गान्धर्वास्त्रद्वारा निवारण कर दिया। फिर नरेशने रणके मुहानेपर नागास्त्र छोड़ा, मुनिवरने उसे हर्षपूर्वक तत्काल ही गारुड़ास्त्रद्वारा प्रतिहत कर दिया। तब नृपवरने, जो सैकड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् एवं दसों दिशाओंको उद्दीप्त करनेवाला था, उस माहेश्वर नामक महान् अस्त्रका प्रयोग किया। नारद! तब मुनिने बड़े यत्नके साथ त्रिलोकव्यापी दिव्य वैष्णवास्त्रद्वारा उसका निवारण कर दिया और फिर यत्नपूर्वक नारायणास्त्र चलाया। उस अस्त्रको देखकर महाराज कार्तवीर्य उसे नमस्कार करके शरणागत हो गया। तब प्रलयाग्निके समान वह अस्त्र वहाँ ऊपर-ही-ऊपर घूमकर क्षणभरतक दसों दिशाओंको प्रकाशित करके स्वयं अन्तर्धान हो गया। फिर मुनिने रणके मुहानेपर जृम्भणास्त्र छोड़ा। उस अस्त्रके प्रभावसे राजाको निद्राने आ घेरा और वह मृतक-तुल्य होकर सो गया। तब राजाको निद्रित देखकर मुनिने उसी क्षण अर्धचन्द्रद्वारा उस भूपालके सारथि, रथ और धनुषबाणको छिन्न-भिन्न कर दिया। क्षुरप्रसे मुकुट, छत्र और कवच काट डाला तथा भाँति-भाँतिके अस्त्र-प्रयोगसे उसके अस्त्र, तरकस और घोड़ोंकी धज्जियाँ उड़ा दीं। फिर युद्धस्थलमें हँसते हुए मुनिने खेल-ही-खेलमें नागास्त्रद्वारा राजाके सभी मन्त्रियोंको बाँधकर कैद कर लिया; फिर लीलापूर्वक उत्तम मन्त्रका प्रयोग करके उस राजाको जगाया और उन बँधे हुए सभी मन्त्रियोंको उसे दिखाया। राजाको दिखाकर मुनिने तत्काल ही उन्हें बन्धन-मुक्त कर दिया और नरेशको आशीर्वाद देकर कहा—'राजन्! अब अपने घर जाओ।' परंतु राजा क्रोधसे भरा हुआ था। उसने उठकर त्रिशूल उठा लिया और यत्नपूर्वक उसे मुनिवर जमदग्निपर चला दिया। तब मुनिने उसपर शक्तिसे प्रहार किया। इसी बीच उस युद्धस्थलमें ब्रह्माने आकर उत्तम नीतिद्वारा उन दोनोंमें परस्पर प्रेम स्थापित करा दिया। तब मुनिने संतुष्ट होकर रणक्षेत्रमें ब्रह्माके चरणोंमें प्रणिपात किया और राजा ब्रह्मा तथा मुनिको नमस्कार करके अपने घरको प्रस्थान कर गया। फिर मुनि और ब्रह्मा अपने-अपने भवनको चले गये। इस प्रकार इसका वर्णन तो कर दिया, अब आगे तुमसे कुछ और कहूँगा। (अध्याय २५-२६)

जमदग्नि-कार्तवीर्य-युद्ध, कार्तवीर्यद्वारा दत्तात्रेयदत्त शक्तिके प्रहारसे जमदग्निका वध, रेणुकाका विलाप, परशुरामका आना और क्षत्रियवधकी प्रतिज्ञा करना, भृगुका आकर उन्हें सान्त्वना देना

नारायण कहते हैं—नारद! राजा घर लौट तो गया पर उसके मनमें युद्धकी लगी रही; इससे उसने लाखों सेना संग्रह करके फिर जमदग्निके आश्रमपर जाकर आश्रमको घेर लिया। राजाकी विशाल सेनाको देखकर जमदग्निके आश्रमवासी भयसे मूर्च्छित हो गये। महर्षिने मन्त्रोच्चारणपूर्वक

बाणोंका एक ऐसा जाल बिछाया कि उससे आश्रमभूमि पूरी ढक गयी। सारी सेना उसीमें आबद्ध हो गयी। तब राजाने रथसे उतरकर महर्षिको नमस्कार किया। महर्षिने उसे आशीर्वाद दिया। राजाने फिर आक्रमण किया। यों कई बार राजा आक्रमण करता रहा, मूर्च्छित होता रहा, पर क्षमाशील मुनिने उसका वध नहीं किया। बड़ा घोर युद्ध हुआ। अन्तमें राजा कार्तवीर्यने दत्तात्रेय मुनिके द्वारा प्राप्त एक पुरुषका नाश करनेवाली अमोघ शक्तिका प्रयोग किया। वह भगवान् विष्णुकी शक्ति थी। उसने मुनिके हृदयको बींध डाला। मुनिने उसके आघातसे जीवनविसर्जन कर दिया। शक्ति भगवान् विष्णुके पास चली गयी।

जगत्में हाहाकार मच गया। कपिला गौ 'तात-तात' पुकारती हुई गोलोकको प्रस्थान कर गयी। तदनन्तर राजा कार्तवीर्यार्जुन ब्रह्महत्या-जनित पापका प्रायश्चित्त करके अपनी राजधानीको लौट गया।

इधर पतिव्रता महर्षिपत्नी रेणुका पतिके मरणसे अत्यन्त दुःखी होकर रोने लगीं। वे अपने पुत्र परशुरामको पुकारने लगीं। उस समय योगी परशुराम पुष्करमें थे। वे उसी क्षण मानस-गतिसे

चलकर माताके पास आ पहुँचे। उन्होंने माताको प्रणाम किया और पिताकी अन्त्येष्टि-क्रियाकी तैयारी की। सारी बातें सुनकर माताके युद्ध न करनेका अनुरोध करनेपर भी भार्गव परशुरामने इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियहीन करनेकी प्रतिज्ञा कर ली और राजा कार्तवीर्यार्जुनके वध करनेका प्रण कर लिया। फिर विलाप करती हुई पति-शोकपीड़िता माताको समझाते हुए बोले।

परशुरामने कहा—माता! जो पिताकी आज्ञा भङ्ग करनेवाले तथा पिताके हिंसकका वध नहीं करता, वह महान् मूर्ख है। उसे निश्चय ही रौरव नरकमें जाना पड़ता है। आग लगानेवाला, विष देनेवाला, हाथमें हथियार लेकर मारनेके लिये आनेवाला, धनका अपहरण करनेवाला, क्षेत्रका विनाश करनेवाला, स्त्रीको चुरानेवाला, पिताका वध करनेवाला, बन्धुओंकी हिंसा करनेवाला, सदा अपकार करनेवाला, निन्दक और कटु वचन कहनेवाला—ये ग्यारह वेदविहित घोर पापी हैं। ये मार डालने योग्य हैं।

इसी बीच वहाँ स्वयं महर्षि भृगु आ पहुँचे। वे मनस्वी मुनि अत्यन्त भयभीत थे और उनका हृदय दुःखी था। उन्हें देखकर रेणुका और परशुराम उनके चरणोंपर गिर पड़े। तब भृगुमुनि उन दोनोंसे ऐसी वेदोक्त बात कहने लगे जो परलोकके लिये हितकारिणी थी।

भृगुजी बोले—बेटा! तुम तो मेरे वंशमें उत्पन्न और ज्ञानसम्पन्न हो; फिर विलाप कैसे कर रहे हो। इस संसारमें सभी चराचर प्राणी जलके बुलबुलेके समान क्षणभङ्गुर हैं। पुत्र! सत्यके सार तथा सत्यके बीज तो श्रीकृष्ण ही हैं। तुम उन्हींका स्मरण करो। वत्स! जो बीत गया, सो गया; क्योंकि बीती हुई बात पुनः लौटती नहीं। जो होनेवाला है, वह होता ही है और आगे भी जो होनेवाला होगा वह होकर ही रहेगा; क्योंकि

निषेकजन्य (प्रारब्धजन्य) कर्म सत्य (अटल) होता है। भला, कर्मफलभोगको कौन हटा सकता है? वत्स! श्रीकृष्णने जिस प्रकारके भूत, वर्तमान और भविष्यकी रचना की है, उनके द्वारा निरूपित उस कर्मको कौन निवारण कर सकता है? बेटा! मायाका कारण, मायावियोंके पाञ्चभौतिक शरीर और संकेतपूर्वक नाम—ये प्रातःकालके स्वप्नसदृश निरर्थक हैं। परमात्माके अंशभूत आत्माके चले जानेपर भूख, निद्रा, दया, शान्ति, क्षमा, कान्ति, प्राण, मन तथा ज्ञान सभी चले जाते हैं। जैसे राजाधिराजके पीछे नौकर-चाकर चलते हैं, उसी प्रकार बुद्धि तथा सारी शक्तियाँ उसीका अनुगमन करती हैं; अतः तुम यत्नपूर्वक श्रीकृष्णका भजन करो। बेटा! कौन किसके पितर हैं और कौन किसके पुत्र हैं। ये सभी इस दुस्तर भवसागरमें कर्मरूपी लहरियोंसे प्रेरित हो रहे हैं। पुत्र! ज्ञानीलोग विलाप नहीं करते, अतः अब तुम भी रुदन मत करो; क्योंकि रोनेके कारण आँसुओंके गिरनेसे मृतकोंको निश्चय ही नरकमें जाना पड़ता है।* भाई-बन्धु आदि कुटुम्बके लोग जिस सांकेतिक नामका उच्चारण करके रुदन करते हैं, उसे ये सौ वर्षोंतक रोते रहनेपर भी नहीं पा सकते—यह निश्चित है; क्योंकि त्वचा आदि पृथ्वीके अंशको पृथ्वी, जलांशको जल, शून्यांशको आकाश, वायुके अंशको वायु तथा तेजांशको तेज ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार सभी अंश अपने-अपने अंशीमें विलीन हो जाते हैं; फिर रोनेसे कौन वापस आयेगा। मरनेके बाद तो नाम, शास्त्र, ज्ञान, यश और कर्मकी कथामात्र अवशिष्ट रह जाती है। इसलिये जो वेदविहित पारलौकिक कर्म है, इस समय तुम वही करो; क्योंकि जो परलोकके लिये हितकारी हो, वही वास्तवमें पुत्र है और वही बन्धु है। भृगुके उस वचनको सुनकर महासाध्वी रेणुकाने उसी क्षण शोकका परित्याग कर दिया और मुनिसे कहना आरम्भ किया। (अध्याय २७)

रेणुका-भृगु-संवाद, रेणुकाका पतिके साथ सती होना, परशुरामका पिताकी अन्त्येष्टि क्रिया करके ब्रह्माके पास जाना और अपनी प्रतिज्ञा सुनाना, ब्रह्माका उन्हें शिवजीके पास भेजना

रेणुकाने पूछा—ब्रह्मन्! अब मैं अपने प्राणनाथका अनुगमन करना चाहती हूँ। दूसरोंको मान देनेवाले ये मेरे पतिदेव आज मेरे ऋतुकालके चौथे दिन मृत्युको प्राप्त हुए हैं; अतः वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ मुने! बतलाइये, अब इस विषयमें कैसी व्यवस्था करनी चाहिये। मेरे कई जन्मोंका पुण्य उदय हुआ है, जिसके फलस्वरूप आप सहसा उपस्थित हुए हैं।

भृगुने कहा—अहो महासति! तुम अपने पुण्यात्मा पतिका अनुगमन करो; क्योंकि ऋतुका चौथा दिन पतिके सभी कार्योंमें शुद्ध माना जाता है। जो भक्तिदाता है, वही पुत्र है; जो अनुगमन करती है, वही स्त्री है; जो दान देता है, वही बन्धु है; जो गुरुकी अर्चना करता है, वही शिष्य है; जो रक्षा करे, वही अभीष्ट देवता है; जो प्रजाका पालन करे, वही राजा है; जो अपनी पत्नीकी बुद्धिको धर्ममें नियोजित करता है, वही स्वामी है; जो धर्मोपदेशक तथा हरिभक्ति प्रदान करनेवाला

* ज्ञानिनो मा रुदन्त्येव मा रोदीः पुत्र साम्प्रतम्। रोदनाश्रुप्रपतनान्मृतानां नरकं ध्रुवम्॥
(गणपतिखण्ड २७। ६२)

है, वही गुरु है—ये सभी वेदों तथा पुराणोंमें निश्चितरूपसे प्रशंसनीय कहे गये हैं।*

रेणुकाने पूछा—मुने! भारतवर्षमें कैसी नारियाँ अपने पतिके साथ सती हो सकती हैं और कैसी नहीं हो सकतीं? तपोधन! यह मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

भृगुने कहा—रेणुके! जिनके बच्चे छोटे हों, जो गर्भिणी हों, जिन्होंने ऋतुकालको देखा ही न हो, जो रजस्वला, कुलटा, कुष्ठरोगसे ग्रस्त, पतिकी सेवा न करनेवाली, पति-भक्तिरहित और कटुवादिनी हों—ये यदि दैववश सती भी हो जायँ तो ये अपने पतिको नहीं प्राप्त होतीं। पतिव्रताएँ चितामें शयन करनेवाले पतिको पहले संस्कारसे शुद्ध हुई आग देकर पीछे उसका अनुगमन करती हैं। यदि वे सचमुच पतिव्रता होती हैं तो अपने पतिको पा लेती हैं। जो अपने प्रियतमका अनुगमन करती हैं, वे उसीको पतिरूपमें पाती हैं और प्रत्येक जन्ममें उसीके साथ स्वर्गमें पुण्यका उपभोग करती हैं। पतिव्रते! गृहस्थोंकी यह व्यवस्था तो मैंने तुम्हें बतला दी। अब तीर्थमें मरनेवाले ज्ञानियों तथा वैष्णवोंके विषयमें श्रवण करो। जो साध्वी नारी जहाँ-जहाँ अपने वैष्णव पतिका अनुगमन करती है, वहाँ-वहाँ वह स्वामीके साथ वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिकी संनिधि प्राप्त करती है। नारद! कृष्णभक्तिपरायण जीवन्मुक्त भक्तोंके तीर्थमें अथवा अन्यत्र मरनेमें कोई विशेषता नहीं है; क्योंकि उन्हें दोनों जगह समान फल मिलता है। इसलिये यदि स्त्री अथवा पुरुष भगवान् नारायण तथा कमलालया लक्ष्मीका भजन करे तो उस भजनके प्रभावसे महाप्रलय होनेपर भी उन दोनोंका नाश नहीं होता। वहाँ रेणुकासे इतना कहकर भृगुमुनि परशुरामसे समयोचित तथा वेदविहित वचन बोले।

"महाभाग वत्स! यहाँ आओ और इस अवाञ्छनीक शोकको त्याग दो। भृगुनन्दन! अपने पिताको दक्षिण सिर करके उत्तान कर दो, नया वस्त्र और यज्ञोपवीत पहनाओ और आँसू रोककर दक्षिणाभिमुख हो बैठ जाओ। फिर भक्तिपूर्वक अरणीसे उत्पन्न हुई अग्नि हाथमें लो और पृथ्वीपर जो-जो तीर्थ हैं, उन सबका स्मरण करो। गया आदि तीर्थ, पुण्यमय पर्वत, कुरुक्षेत्र, सरिताओंमें श्रेष्ठ गङ्गा, यमुना, कौशिकी, सम्पूर्ण पापोंका विनाश करनेवाली चन्द्रभागा, गण्डकी, काशी, पनसा, सरयू, पुष्पभद्रा, भद्रा, नर्मदा, सरस्वती, गोदावरी, कावेरी, स्वर्णरेखा, पुष्कर, रैवत, वराह, श्रीशैल, गन्धमादन, हिमालय, कैलास, सुमेरु, रत्नपर्वत, वाराणसी, प्रयाग, पुण्यमय वन वृन्दावन, हरिद्वार और बदरी—इनका बारंबार स्मरण करो। फिर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुगन्धित पुष्प देकर और वस्त्रसे आच्छादित करके पिताके शवको चिताके ऊपर स्थापित करो। तात! फिर सोनेकी सलाईसे कान, आँख, नाक और मुखमें निर्मन्थन करके उसे आदरसहित ब्राह्मणको दान कर दो। तत्पश्चात्, तिलसहित ताँबेका पात्र, गौ, चाँदी और सोना दक्षिणासहित दान करके स्वस्थचित्त हो दाह-कर्म करो। 'ॐ जो जानकारीमें अथवा अनजानमें पाप-कर्म करके मृत्यु-कालके वशीभूत हो पञ्चत्वको प्राप्त हुआ। ॐ धर्म-अधर्मसे युक्त तथा लोभ-मोहसे समावृत उस मनुष्यके सारे शरीरको जलाता हूँ; वह दिव्य लोकोंमें जाय।' इस मन्त्रको पढ़कर पिताकी प्रदक्षिणा करो और फिर 'ॐ तुम हमारे कुलमें उत्पन्न हुए हो, मैं

* स पुत्रो भक्तिदाता यः सा च स्त्री यानुगच्छति। स बन्धुर्ज्ञानदाता यः स शिष्यो गुरुमर्चयेत्॥
सोऽभीष्टदेवो यो रक्षेत् स राजा पालयेत् प्रजाः। स च स्वामी प्रियो धर्मे मतिं दातुमिहेश्वरः॥
स गुरुर्धर्मदाता यो हरिभक्तिप्रदायकः। एते प्रशंस्या वेदेषु पुराणेषु च निश्चितम्॥
(गणपतिखण्ड २८। ७—९)

पुन: तुम्हारा होकर उत्पन्न होऊँ, तुम्हें स्वर्गलोककी प्राप्ति हो स्वाहा' इस प्रकार उच्चारण करो तथा श्रीहरिका स्मरण करते हुए इसी मन्त्रसे पिताका दाह करो।* हे भृगुनन्दन! पहले तुम भाइयोंके साथ सिरमें आग लगाओ।" तब भृगुमुनिके आज्ञानुसार परशुरामने अपने गोत्रवालोंके साथ वह सारा कार्य सम्पन्न किया।

तदनन्तर रेणुकाने वहाँ अपने पुत्र परशुरामको छातीसे लगा लिया और परिणाममें सुखदायक कुछ वचन कहे—'बेटा! इस भवसागरमें विरोध न करना सम्पूर्ण मङ्गलोंका मङ्गल है और विरोध नाशका कारण तथा समस्त उपद्रवोंका हेतु है। अत: भयंकर क्षत्रियोंके साथ विरोध न करना ही उचित है; किंतु मेरे सुनते-सुनते तुमने जो प्रतिज्ञा की है उसे पूर्ण करना चाहिये। इसके लिये तुम दिव्य मन्त्रोंके ज्ञाता भृगु और ब्रह्माके साथ विचार करके जैसा उचित हो वैसा करना। सज्जनोंद्वारा आलोचित कर्म शुभकारक होता है।' यों कहकर रेणुका परशुरामको छोड़कर अपने पतिका आलिङ्गन करके श्रीहरिका स्मरण करते हुए परशुरामकी ओर निहारती हुई चितामें सो गयी। तब भाइयोंके साथ परशुरामने चितामें आग लगा दी। फिर भाइयों और पिताके शिष्योंके साथ वे विलाप करने लगे। इतनेमें ही सती रेणुका 'राम, राम, राम' यों उच्चारण करके परशुरामके देखते-देखते जलकर राख हो गयी। तब अपने स्वामीका नाम सुनकर वहाँ श्रीहरिके दूत आ पहुँचे। वे सभी रथपर सवार थे। उनके शरीरका रंग श्याम था। सुन्दर चार भुजाएँ थीं, जिनमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुए थे। उनके गलेमें वनमाला लटक रही थी और वे किरीट, कुण्डल तथा रेशमी पीताम्बरसे विभूषित थे। वे उस रेणुकाको रथमें बिठाकर ब्रह्मलोकमें गये और जमदग्निको लेकर श्रीहरिके संन्निकट जा पहुँचे। वहाँ वैकुण्ठमें वे दोनों पति-पत्नी निरन्तर श्रीहरिकी परिचर्या, जो मङ्गलोंकी मङ्गल है, करते हुए श्रीहरिके संनिकट रहने लगे।

नारद! इधर परशुरामने ब्राह्मणों तथा भृगुजीके सहयोगसे माता-पिताकी शेष क्रिया समाप्त करके ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दान दिया। फिर गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र, सुवर्णनिर्मित पलंगसहित मनोरम दिव्य शय्या, जल, अन्न, चन्दन, रत्नदीप, चाँदीका पहाड़, सुवर्णके आधारसहित स्वर्णनिर्मित उत्तम आसन, सुवासित ताम्बूल, छत्र, पादुका, फल, मनोहर माला, फल-मूल-जल और मनोहर मिष्टान्न तथा धन ब्राह्मणोंको देकर वे ब्रह्मलोकको चल पड़े। ब्रह्मलोकमें पहुँचकर परशुरामने भक्तिभावसे अव्ययात्मा ब्रह्माजीको नमस्कार करके रोते हुए सारी घटना कह सुनायी। कृपामय ब्रह्माजीने सारी बातें सुनकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिया और अपने हृदयसे लगा लिया। भृगुवंशी परशुरामकी बहुत-से जीवोंका विनाश करनेवाली, दुष्कर एवं भयंकर प्रतिज्ञाको सुनकर चतुर्मुख ब्रह्माको महान् विस्मय हुआ। वे 'प्रारब्धवश सब कुछ घटित हो सकता है' ऐसा मनमें विचारकर परशुरामसे परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

ब्रह्माने कहा—वत्स! बहुसंख्यक जीवोंका विनाश करनेवाली तुम्हारी प्रतिज्ञा दुष्कर है; क्योंकि यह सृष्टि भगवान् श्रीहरिकी इच्छासे उत्पन्न होती है। बेटा! उन्हीं परमेश्वरकी आज्ञासे

* ॐ कृत्वा तु दुष्कृतं कर्म जानता वाप्यजानता। मृत्युकालवशं प्राप्य नरं पञ्चत्वमागतम्॥
ॐ धर्माधर्मसमायुक्तं लोभमोहसमावृतम्। दहेयं सर्वगात्राणि दिव्यान् लोकान् स गच्छतु॥
इमं मन्त्रं पठित्वा तु तातं कृत्वा प्रदक्षिणम्। मन्त्रेणानेन देयाग्निं जनकाय हरिं स्मरन्॥
ॐ अस्मत्कुले त्वं जातोऽसि त्वदीयो जायतां पुनः। असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति वद साम्प्रतम्॥
(गणपतिखण्ड २८। ३२—३५)

मैंने बड़े कष्टसे इस सृष्टिकी रचना की है; किंतु तुम्हारी निर्दयतापूर्ण घोर प्रतिज्ञा सृष्टिका लोप कर देनेवाली है। तुम एक क्षत्रियके अपराधसे पृथ्वीको इक्कीस बार भूपरहित कर देना चाहते हो और क्षत्रिय-जातिको समूल नष्ट करनेकी तुमने ठान ली है। किंतु ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—यह चार प्रकारकी सृष्टि नित्य है, जो श्रीहरिकी ही आज्ञासे पुनः-पुनः आविर्भूत और तिरोहित होती रहती है। अन्यथा किसी प्राक्तन कर्मानुसार तुम्हारी प्रतिज्ञा पूर्ण होगी। तुम्हें अपनी कार्यसिद्धिके लिये बड़ा परिश्रम करना पड़ेगा। अतः वत्स! तुम शिवलोकमें जाओ और शंकरकी शरण ग्रहण करो; क्योंकि भूतलपर बहुत-से नरेश शंकरके भक्त हैं। जब वे शक्तिस्वरूपा पार्वती और शंकरके दिव्य कवचको धारण करके खड़े होंगे, तब महेश्वरकी आज्ञाके बिना उन्हें मारनेमें कौन समर्थ हो सकता है? अतः जो विजयका कारण एवं शुभकारक है, उस उपायको तुम यत्नपूर्वक करो; क्योंकि उपायपूर्वक आरम्भ किये गये कार्य ही सिद्ध होते हैं। इसलिये तुम शंकरसे श्रीकृष्णके मन्त्र और कवचको ग्रहण करो। वह वैष्णव तेज परम दुर्लभ है। उसके प्रभावसे तुम शैव और शाक्त दोनों तेजोंपर विजय पा सकोगे। जगदीश्वर शिव तुम्हारे जन्म-जन्मान्तरके गुरु हैं। अतः मुझसे मन्त्र ग्रहण करना तुम्हारे लिये युक्त नहीं है; क्योंकि जो उपयुक्त होता है, वही विधि है। कर्मभोगसे ही मन्त्र, स्वामी, स्त्री, गुरु और देवता प्राप्त होते हैं। जो जिनके हैं, वे उनके पास स्वयं ही उपस्थित होते हैं, यह ध्रुव है। भृगुनन्दन! तुम त्रैलोक्यविजय नामक श्रेष्ठ कवच ग्रहण करके इक्कीस बार पृथ्वीको भूपरहित कर डालोगे। दानी शंकर तुम्हें दिव्य पाशुपतास्त्र प्रदान करेंगे। उस दिये हुए मन्त्रके बलसे तुम क्षत्रियसमुदायको जीत लोगे। (अध्याय २८)

परशुरामका शिवलोकमें जाकर शिवजीके दर्शन करके उनकी स्तुति करना

नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर परशुरामने ब्रह्माकी बात सुनकर उन जगद्गुरुको प्रणाम किया और उनसे वरदान पाकर वे सफलमनोरथ हो शिवलोकको चले। वायुके आधारपर टिका हुआ वह मनोहर लोक एक लाख योजन ऊँचा तथा ब्रह्मलोकसे विलक्षण है। उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। उसके दक्षिणभागमें वैकुण्ठ और वामभागमें गौरीलोक है। नीचेकी ओर ध्रुवलोक है, जो सम्पूर्ण लोकोंसे परे कहा जाता है। उन सबके ऊपर पचास करोड़ योजनके विस्तारवाला गोलोक है। उससे ऊपर दूसरा लोक नहीं है। वही सर्वोपरि कहा जाता है। मनके समान वेगशाली योगीन्द्र परशुरामने उस शिवलोकको देखा। वह महान् अद्भुत लोक उपमान और उपमेयसे रहित अर्थात् अनुपम, श्रेष्ठ योगीन्द्रों, सिद्धों, विद्याविशारदों, करोड़ों कल्पोंकी तपस्यासे पवित्र शरीरवाले पुण्यात्माओंसे निषेवित, मनोरथ पूर्ण करनेवाले कल्पवृक्षोंके समूहोंसे परिवेष्टित, असंख्य कामधेनुओंके समुदायोंसे सुशोभित, पारिजात-वृक्षोंकी वनावलीसे विशेष शोभायमान, दस हजार पुष्पोद्यानोंसे युक्त, सदा उत्कृष्ट शोभासे सम्पन्न, बहुमूल्य मणियोंद्वारा रचित सुन्दर मणिवेदियों तथा सैकड़ों दिव्य राजमार्गोंद्वारा बाहर-भीतर विभूषित और नाना प्रकारकी पच्चीकारीसे युक्त उत्तम मणियोंके कलशोंसे उज्ज्वल दीखनेवाले अमूल्य मणियोंद्वारा निर्मित सौ करोड़ भवनोंसे युक्त था।

उसके रमणीय मध्यभागमें उन्हें शंकरजीका भवन दीख पड़ा। उस परम मनोहर भवनके चारों ओर बहुमूल्य मणियोंकी चहारदीवारीका निर्माण

हुआ था। वह इतना ऊँचा था कि आकाशका स्पर्श कर रहा था। उसका रंग दूध और जलके समान उज्ज्वल था। उसमें सोलह दरवाजे थे तथा वह सैकड़ों ऐसे मन्दिरोंसे सुशोभित था, जो अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित तथा रत्नोंकी सीढ़ियोंसे विभूषित थे। उनमें हीरे जड़े हुए रत्नोंके खंभे और किवाड़ लगे थे। वे मणियोंकी जालियोंसे सुशोभित, उत्तम रत्नोंके कलशोंसे प्रकाशित, नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंसे चित्रित अतएव परम मनोहर थे। वहाँ उस भवनके आगे परशुरामने सिंहद्वारका दर्शन किया, जिसमें बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए किवाड़ लगे थे। उसका भीतरी भाग पद्मराग एवं महामरकत मणियोंद्वारा रचित वेदियोंसे सदा बाहर-भीतर सुशोभित रहता था। नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित होनेके कारण वह अत्यन्त सुहावना लग रहा था। उसके द्वारपर दो भयंकर द्वारपाल नियुक्त थे, जिन्हें परशुरामने देखा। उनकी आकृति बेडौल थी, दाँत और मुख बड़े विकराल थे। तीन बड़े-बड़े नेत्र थे, जिनमें कुछ पीलिमा और ललाई छायी हुई थी। वे जले हुए पर्वतके समान काले और महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। शरीर उत्तम बाघम्बर तथा विभूतिसे विभूषित थे। त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए वे दोनों ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें देखकर परशुरामका मन भयग्रस्त हो गया। फिर भी वे डरते-डरते कुछ कहनेको उद्यत हुए। उन्होंने विनीत होकर बड़ी नम्रताके साथ उन दोनों महाबली उच्छृंखलोंके सामने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। ब्राह्मणकी बात सुनकर उन दोनोंके मनमें दयाका संचार हो आया, तब उन श्रेष्ठ अनुचरोंने दूतद्वारा महात्मा शंकरकी आज्ञा लेकर परशुरामको भीतर प्रवेश करनेका आदेश दिया। परशुराम उनकी आज्ञा पाकर श्रीहरिका स्मरण करते हुए भवनके अंदर प्रविष्ट हुए। वहाँ उन्होंने एक-एक करके सोलह दरवाजोंको देखा, जो नाना प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित होनेके कारण अत्यन्त सुन्दर थे तथा उनपर द्वारपाल नियुक्त थे। उन्हें देखकर परशुरामको महान् आश्चर्य हुआ। आगे बढ़नेपर उन्हें शंकरजीकी सभा दिखायी पड़ी, जो बहुत-से सिद्धगणोंसे व्याप्त, महर्षियोंद्वारा सेवित तथा पारिजात-पुष्पोंकी गन्धसे युक्त वायुद्वारा सुवासित थी। उस सभामें उन्होंने देवेश्वर शंकरके दर्शन किये। वे रत्नाभरणोंसे सुसज्जित हो रत्नसिंहासनपर विराजमान थे। उनके ललाटपर चन्द्रमा सुशोभित हो रहा था। वे बाघाम्बर पहने तथा त्रिशूल और पट्टिश धारण किये हुए थे। उनका शरीर विभूतिसे सुशोभित था। वे सर्पका यज्ञोपवीत पहने थे तथा महान् कल्याणस्वरूप, कल्याण करनेवाले, कल्याणके कारण, कल्याणके आश्रयस्थान, आत्मामें रमण करनेवाले, पूर्णकाम और करोड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली थे। उनका मुख प्रसन्न था, जिसपर मन्द मुस्कानकी अद्भुत छटा बिखर रही थी, वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये अधीर हो रहे थे। वे सनातन ज्योतिःस्वरूप, लोकोंके लिये अनुग्रहके मूर्त रूप, जटाधारी, सतीकी हड्डियोंसे शोभित, तपस्याओंके फल देनेवाले तथा सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता थे। उनका वर्ण शुद्ध स्फटिकके सदृश उज्ज्वल था। उनके पाँच मुख और तीन नेत्र थे। वे तत्त्वमुद्राद्वारा शिष्योंको गुह्य ब्रह्मका उपदेश कर रहे थे। योगीन्द्र उनके स्तवनमें तथा बड़े-बड़े सिद्ध उनकी सेवामें नियुक्त थे। श्रेष्ठ पार्षद श्वेत चँवरोंद्वारा निरन्तर उनकी सेवा कर रहे थे। वे बुढ़ापा और मृत्युका हरण करनेवाले, गुणातीत, स्वेच्छामय, परिपूर्णतम परब्रह्मके ध्यानमें निमग्न थे, जो ज्योतीरूप सबके आदि, प्रकृतिसे परे और परमानन्दमय हैं। उन श्रीकृष्णका ध्यान करते समय उनके शरीरमें रोमाञ्च हो रहा था तथा वे आँखोंमें आँसू भरे उत्तम स्वरसे उनकी गुणावलीका गान कर रहे थे और भूतेश्वर, रुद्रगण तथा क्षेत्रपाल उन्हें घेरे हुए थे। उन्हें देखकर परशुरामने

बड़े आदरके साथ सिर झुकाकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् शिवजीके वामभागमें कार्तिकेय, दाहिनी ओर गणेश्वर, सामने नन्दीश्वर, महाकाल और वीरभद्र तथा उनकी गोदमें उनकी प्रियतमा पत्नी गिरिराजनन्दिनी गौरीको देखा। उन सबको भी परशुरामने बड़े हर्षके साथ भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर नमस्कार किया। उस समय शिवजीका दर्शन करके परशुराम परम संतुष्ट हुए। शोकसे पीड़ित तो वे थे ही; अतः आँखोंमें आँसू भरकर अत्यन्त कातर हो हाथ जोड़कर शान्तभावसे दीन एवं गद्गदवाणीके द्वारा शिवजीकी स्तुति करने लगे।

परशुराम बोले—ईश! मैं आपकी स्तुति करना चाहता हूँ, परंतु स्तवन करनेमें सर्वथा असमर्थ हूँ। आप अक्षर और अक्षरके कारण तथा इच्छारहित हैं, तब मैं आपकी क्या स्तुति करूँ? मैं मन्दबुद्धि हूँ; मुझमें शब्दोंकी योजना करनेका ज्ञान तो है नहीं और चला हूँ देवेश्वरकी स्तुति करने। भला, जिनका स्तवन करनेकी शक्ति वेदोंमें नहीं है, उन आपकी स्तुति करके कौन पार पा सकता है? आप मन, बुद्धि और वाणीके अगोचर, सारसे भी साररूप, परात्पर, ज्ञान और बुद्धिसे असाध्य, सिद्ध, सिद्धोंद्वारा सेवित, आकाशकी तरह आदि, मध्य और अन्तसे हीन तथा अविनाशी, विश्वपर शासन करनेवाले, तन्त्ररहित, स्वतन्त्र, तन्त्रके कारण, ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य, साधन करनेमें अत्यन्त सुगम और दयाके सागर हैं। दीनबन्धो! मैं अत्यन्त दीन हूँ। करुणासिन्धो! मेरी रक्षा कीजिये। आज मेरा जन्म सफल तथा जीवन सुजीवन हो गया; क्योंकि भक्तगण जिन्हें स्वप्नमें भी नहीं देख पाते, उन्हींको इस समय मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। जिनकी कलासे इन्द्र आदि देवगण तथा जिनके कलांशसे चराचर प्राणी उत्पन्न हुए हैं, उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, जल और वायुके रूपमें विराजमान हैं, उन महेश्वरको मैं अभिवादन करता हूँ। जो स्त्रीरूप, नपुंसकरूप और पुरुषरूप धारण करके जगत्का विस्तार करते हैं, जो सबके आधार और सर्वरूप हैं, उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। हिमालयकन्या देवी पार्वतीने कठोर तपस्या करके जिनको प्राप्त किया है। दीर्घ तपस्याके द्वारा भी जिनका प्राप्त होना दुर्लभ है; उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सबके लिये कल्पवृक्षरूप हैं और अभिलाषासे भी अधिक फल प्रदान करते हैं, जो बहुत शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं और जो भक्तोंके बन्धु हैं; उन महेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो लीलापूर्वक क्षणभरमें अनन्त विश्व-सृष्टियोंका संहार करनेवाले हैं; उन भयंकर रूपधारी महेश्वरको मेरा प्रणाम है। जो कालरूप, कालके काल, कालके कारण और कालसे उत्पन्न होनेवाले हैं तथा जो अजन्मा एवं बारंबार जन्म धारण करनेवाले आदि सब कुछ हैं; उन महेश्वरको मैं मस्तक झुकाता हूँ। यों कहकर भृगुवंशी परशुराम शंकरजीके चरण-कमलोंपर गिर पड़े। तब शिवजीने परम प्रसन्न होकर उन्हें शुभाशीर्वाद दिये। नारद! जो भक्तिभावसहित इस परशुरामकृत स्तोत्रका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण पापोंसे पूर्णतया मुक्त होकर शिवलोकमें जाता है।*

(अध्याय २९)

---

* परशुराम उवाच—

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि सर्वथा स्तोतुमक्षमम्। अक्षराक्षरबीजं च किं वा स्तौमि निरीहकम्॥
न योजनां कर्तुमीशो देवेशं स्तौमि मूढधीः। वेदा न शक्ता यं स्तोतुं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥
बुद्धेर्वाङ्मनसोः पारं सारात्सारं परात्परम्। ज्ञानबुद्धेरसाध्यं च सिद्धं सिद्धैर्निषेवितम्॥

परशुरामका शिवजीसे अपना अभिप्राय प्रकट करना, उसे सुनकर भद्रकालीका कुपित होना, परशुरामका रोने लगना, शिवजीका कृपा करके उन्हें नानाप्रकारके दिव्यास्त्र एवं शस्त्रास्त्र प्रदान करना

तदनन्तर महादेवजीके पूछनेपर परशुरामने कहा—'दयानिधान! मैं भृगुवंशी जमदग्निका पुत्र परशुराम हूँ। आपका दास हूँ। आपके शरणागत हूँ। आप मेरी रक्षा करें।' इसके बाद सारी

घटना विस्तारसे सुनाकर परशुरामने कहा कि मैंने पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियशून्य करने तथा मेरे पिताका वध करनेवाले कार्तवीर्यको मारनेकी प्रतिज्ञा की है। आप मेरी प्रतिज्ञाको पूर्ण करें।

इस बातको सुनकर भगवती पार्वती और भद्रकालीने क्रुद्ध होकर परशुरामकी भर्त्सना की। तब परशुराम भगवती गौरी और कालिकाके क्रोधभरे वचन सुनकर उच्चस्वरसे रोने लगे और प्राण-विसर्जनके लिये तैयार हो गये। तब दयासागर भक्तानुग्रहकारी प्रभु महादेवने ब्राह्मण-बालकको रोते देखकर स्नेहार्द्रचित्तसे अत्यन्त विनयपूर्ण वचनोंके द्वारा गौरी और कालिकाका क्रोध शान्त किया और उन दोनोंकी तथा अन्यान्य सबकी अनुमति लेकर परशुरामसे कहना आरम्भ किया।

शंकरजीने कहा—हे वत्स! आजसे तुम मेरे लिये एक श्रेष्ठ पुत्रके समान हुए; अतः मैं तुम्हें ऐसा गुह्य मन्त्र प्रदान करूँगा, जो त्रिलोकीमें दुर्लभ है। इसी प्रकार एक ऐसा परम अद्भुत कवच बतलाऊँगा, जिसे धारण करके तुम मेरी कृपासे अनायास ही कार्तवीर्यका वध कर डालोगे। विप्रवर! तुम इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे शून्य भी कर दोगे और सारे जगत्‌में तुम्हारी कीर्ति

यमाकाशमिवाद्यन्तमध्यहीनं तथाव्ययम्। विश्वतन्त्रमतन्त्रं च स्वतन्त्रं तन्त्रबीजकम्॥
ध्यानासाध्यं दुराराध्यमतिसाध्यं कृपानिधिम्। त्राहि मां करुणासिन्धो दीनबन्धोऽतिदीनकम्॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। स्वप्नादृष्टं च भक्तानां पश्यामि चक्षुषाधुना॥
शक्रादयः सुरगणाः कलया यस्य सम्भवाः। चराचराः कलांशेन तं नमामि महेश्वरम्॥
यं भास्करस्वरूपं च शशिरूपं हुताशनम्। जलरूपं वायुरूपं तं नमामि महेश्वरम्॥
स्त्रीरूपं क्लीबरूपं च पुंरूपं च बिभर्ति यः। सर्वाधारं सर्वरूपं तं नमामि महेश्वरम्॥
देव्या कठोरतपसा यो लब्धो गिरिकन्यया। दुर्लभस्तपसां यो हि तं नमामि महेश्वरम्॥
सर्वेषां कल्पवृक्षं च वाञ्छाधिकफलप्रदम्। आशुतोषं भक्तबन्धुं तं नमामि महेश्वरम्॥
अनन्तविश्वसृष्टीनां संहर्तारं भयंकरम्। क्षणेन लीलामात्रेण तं नमामि महेश्वरम्॥
यः कालः कालकालश्च कालबीजं च कालजः। अजः प्रजश्च यः सर्वस्तं नमामि महेश्वरम्॥
इत्येवमुक्त्वा स भृगुः पपात चरणाम्बुजे। आशिषं च ददौ तस्मै सुप्रसन्नो बभूव सः॥
जामदग्न्यकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिसंयुतः। सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवलोकं स गच्छति॥

(गणपतिखण्ड २९। ४३—५७)

व्याप्त हो जायगी—इसमें संशय नहीं है।

नारद! इतना कहकर शंकरजीने परशुरामको परम दुर्लभ मन्त्र और 'त्रैलोक्यविजय' नामक परम अद्भुत कवच प्रदान किया। फिर स्तोत्र, पूजाका विधान, पुरश्चरणपूर्वक मन्त्रसिद्धिका अनुष्ठान, नियमका ठीक-ठीक क्रम, सिद्धिस्थान और कालकी संख्या आदि बतलायी। उसी समय उन्हें सम्पूर्ण वेद-वेदाङ्ग भी पढ़ा दिये। तत्पश्चात् शिवजीने परशुरामको नागपाश, पाशुपतास्त्र, अत्यन्त दुर्लभ ब्रह्मास्त्र, आग्नेयास्त्र, नारायणास्त्र, वायव्यास्त्र, वारुणास्त्र, गान्धर्वास्त्र, गारुड़ास्त्र, जृम्भणास्त्र, गदा, शक्ति, परशु, अमोघ उत्तम त्रिशूल, विधिपूर्वक नाना प्रकारके शस्त्रास्त्रोंके मन्त्र, शस्त्रास्त्रोंके संहार और संधान, अक्षय धनुष, आत्मरक्षाका उपाय, संग्राममें विजय पानेका क्रम, अनेक प्रकारके मायायुद्ध, मन्त्रपूर्वक हुंकार, अपनी सेनाकी रक्षा तथा शत्रुसेनाके विनाशका ढंग, युद्धसंकटके समय नाना प्रकारके अनुपम उपाय, संसारको मोहित करनेवाली तथा बुढ़ापा और मृत्युका हरण करनेवाली विद्या भी सिखायी। परशुरामने चिरकालतक गुरुकुलमें ठहरकर सम्पूर्ण विद्याओंको सीखा। फिर तीर्थमें जाकर मन्त्रसिद्धि प्राप्त की। इसके बाद शिव आदिको नमस्कार करके वे अपने आश्रमको लौट आये।

(अध्याय ३०)

शिवजीका प्रसन्न होकर परशुरामको त्रैलोक्यविजय नामक कवच प्रदान करना

नारदने पूछा—भगवन्! अब मेरी यह सुननेकी इच्छा है कि भगवान् शंकरने दयावश परशुरामको कौन-सा मन्त्र तथा कौन-सा स्तोत्र और कवच दिया था? उस मन्त्रके आराध्य देवता कौन हैं? कवच धारण करनेका क्या फल है? तथा स्तोत्रपाठसे किस फलकी प्राप्ति होती है? यह सब आप बतलाइये।

नारायण बोले—नारद! उस मन्त्रके आराध्य देव गोलोकनाथ गोपगोपीश्वर सर्वसमर्थ परिपूर्णतम स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। शंकरने रत्नपर्वतके निकट स्वयंप्रभा नदीके तटपर पारिजात वनके मध्य स्थित आश्रममें लोकोंके देवता माधवके समक्ष परशुरामको 'त्रैलोक्यविजय' नामक परम अद्भुत कवच, विभूतियोगसे सम्भूत महान् पुण्यमय 'स्तवराज' नामवाला स्तोत्र और सम्पूर्ण कामनाओंका फल प्रदान करनेवाला 'मन्त्रकल्पतरु' नामक मन्त्र प्रदान किया था।

महादेवजीने कहा—भृगुवंशी महाभाग वत्स! तुम प्रेमके कारण मुझे पुत्रसे भी अधिक प्रिय हो; अतः आओ कवच ग्रहण करो। राम! जो ब्रह्माण्डमें परम अद्भुत तथा विजयप्रद है, श्रीकृष्णके उस 'त्रैलोक्यविजय' नामक कवचका वर्णन करता हूँ, सुनो। पूर्वकालमें श्रीकृष्णने गोलोकमें स्थित वृन्दावन नामक वनमें राधिकाश्रममें रासमण्डलके मध्य यह कवच मुझे दिया था। यह अत्यन्त गोपनीय तत्त्व, सम्पूर्ण मन्त्रसमुदायका विग्रहस्वरूप, पुण्यसे भी बढ़कर पुण्यतर परमोत्कृष्ट है और इसे स्नेहवश मैं तुम्हें बता रहा हूँ। जिसे पढ़कर एवं धारण करके मूलप्रकृति भगवती आद्याशक्तिने शुम्भ, निशुम्भ, महिषासुर और रक्तबीजका वध किया था। जिसे धारण करके मैं लोकोंका संहारक और सम्पूर्ण तत्त्वोंका जानकार हुआ हूँ तथा पूर्वकालमें जो दुरन्त और अवध्य थे, उन त्रिपुरोंको खेल-ही-खेलमें दग्ध कर सका हूँ। जिसे पढ़कर और धारण करके ब्रह्माने इस उत्तम सृष्टिकी रचना की है। जिसे धारण करके भगवान् शेष सारे विश्वको धारण करते हैं। जिसे धारण करके कूर्मराज शेषको

लीलापूर्वक धारण किये रहते हैं। जिसे धारण करके स्वयं सर्वव्यापक भगवान् वायु विश्वके आधार हैं। जिसे धारण करके वरुण सिद्ध और कुबेर धनके स्वामी हुए हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके स्वयं इन्द्र देवताओंके राजा बने हैं। जिसे धारण करके तेजोराशि स्वयं सूर्य भुवनमें प्रकाशित होते हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके चन्द्रमा महान् बल और पराक्रमसे सम्पन्न हुए हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके महर्षि अगस्त्य सातों समुद्रोंको पी गये और उसके तेजसे वातापि नामक दैत्यको पचा गये। जिसे पढ़कर एवं धारण करके पृथ्वीदेवी सबको धारण करनेमें समर्थ हुई हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके गङ्गा स्वयं पवित्र होकर भुवनोंको पावन करनेवाली बनी हैं। जिसे धारण करके धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ धर्म लोकोंके साक्षी बने हैं। जिसे धारण करके सरस्वतीदेवी सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिष्ठात्रीदेवी हुई हैं। जिसे धारण करके परात्परा लक्ष्मी लोकोंको अन्न प्रदान करनेवाली हुई हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके सावित्रीने वेदोंको जन्म दिया है। भृगुनन्दन! जिसे पढ़ एवं धारणकर वेद धर्मके वक्ता हुए हैं। जिसे पढ़कर एवं धारण करके अग्नि शुद्ध एवं तेजस्वी हुए हैं और जिसे धारण करके भगवान् सनत्कुमारको ज्ञानियोंमें सर्वश्रेष्ठ स्थान मिला है। जो महात्मा, साधु एवं श्रीकृष्णभक्त हो, उसीको यह कवच देना चाहिये; क्योंकि शठ एवं दूसरेके शिष्यको देनेसे दाता मृत्युको प्राप्त हो जाता है।

इस त्रैलोक्यविजय कवचके प्रजापति ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। स्वयं रासेश्वर देवता हैं और त्रैलोक्यकी विजयप्राप्तिमें इसका विनियोग कहा गया है। यह परात्पर कवच तीनों लोकोंमें दुर्लभ है। 'ॐ श्रीकृष्णाय नमः' सदा मेरे सिरकी रक्षा करे। 'कृष्णाय स्वाहा' यह पञ्चाक्षर सदा कपालको सुरक्षित रखे। 'कृष्ण' नेत्रोंकी तथा 'कृष्णाय स्वाहा' पुतलियोंकी रक्षा करे। 'हरये नमः' सदा मेरी भृकुटियोंको बचावे। 'ॐ गोविन्दाय स्वाहा' मेरी नासिकाकी सदा रक्षा करे। 'गोपालाय नमः' मेरे गण्डस्थलोंकी सदा सब ओरसे रक्षा करे। 'ॐ गोपाङ्गनेशाय नमः' सदा मेरे कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ कृष्णाय नमः' निरन्तर मेरे दोनों ओठोंकी रक्षा करे। 'ॐ गोविन्दाय स्वाहा' सदा मेरी दन्तपङ्क्तिकी रक्षा करे। 'ॐ कृष्णाय नमः' दाँतोंके छिद्रोंकी तथा 'क्लीं' दाँतोंके ऊर्ध्वभागकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहा' सदा मेरी जिह्वाकी रक्षा करे। 'रासेश्वराय स्वाहा' सदा मेरे तालुकी रक्षा करे। 'राधिकेशाय स्वाहा' सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। 'गोपाङ्गनेशाय नमः' सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। 'ॐ गोपेशाय स्वाहा' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। 'नमः किशोरवेशाय स्वाहा' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। 'मुकुन्दाय नमः' सदा मेरे उदरकी तथा 'ॐ ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरे हाथ-पैरोंकी रक्षा करे। 'ॐ विष्णवे नमः' सदा मेरी दोनों भुजाओंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा' सदा मेरे नखोंकी रक्षा करे। 'ॐ नमो नारायणाय' सदा नख-छिद्रोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नमः' सदा मेरी नाभिकी रक्षा करे। 'ॐ सर्वेशाय स्वाहा' सदा मेरे कङ्कालकी रक्षा करे। 'ॐ गोपीरमणाय स्वाहा' सदा मेरे नितम्बकी रक्षा करे। 'ॐ गोपीरमणनाथाय स्वाहा' सदा मेरे पैरोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा' सदा मेरे सर्वाङ्गोंकी रक्षा करे। 'ॐ केशवाय स्वाहा' सदा मेरे केशोंकी रक्षा करे। 'नमः कृष्णाय स्वाहा' सदा मेरे ब्रह्मरन्ध्रकी रक्षा करे। 'ॐ माधवाय स्वाहा' सदा मेरे रोमोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा' मेरे सर्वस्वकी सदा रक्षा करे। परिपूर्णतम श्रीकृष्ण पूर्व दिशामें सर्वदा मेरी रक्षा करें। स्वयं गोलोकनाथ अग्निकोणमें मेरी रक्षा करें। पूर्णब्रह्मस्वरूप दक्षिण दिशामें सदा

मेरी रक्षा करें। श्रीकृष्ण नैर्ऋत्यकोणमें मेरी रक्षा करें। श्रीहरि पश्चिम दिशामें मेरी रक्षा करें। गोविन्द वायव्यकोणमें नित्य-निरन्तर मेरी रक्षा करें। रसिकशिरोमणि उत्तर दिशामें सदा मेरी रक्षा करें। वृन्दावनविहारकृत् सदा ईशानकोणमें मेरी रक्षा करें। वृन्दावनीके प्राणनाथ ऊर्ध्वभागमें मेरी रक्षा करें। महाबली बलिहारी माधव सदैव मेरी रक्षा करें। नृसिंह जल, स्थल तथा अन्तरिक्षमें सदा मुझे सुरक्षित रखें। माधव सोते समय तथा जाग्रत्-कालमें सदा मेरा पालन करें तथा जो सबके अन्तरात्मा, निर्लेप और सर्वव्यापक हैं, वे भगवान् सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

वत्स! इस प्रकार मैंने 'त्रैलोक्यविजय' नामक कवच, जो परम अनोखा तथा समस्त मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है, तुम्हें बतला दिया। मैंने इसे श्रीकृष्णके मुखसे श्रवण किया था। इसे जिस-किसीको नहीं बतलाना चाहिये। जो विधिपूर्वक गुरुका पूजन करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह भी विष्णुतुल्य हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। वह भक्त जहाँ रहता है, वहाँ लक्ष्मी और सरस्वती निवास करती हैं। यदि उसे कवच सिद्ध हो जाता है तो वह जीवन्मुक्त हो जाता है और उसे करोड़ों वर्षोंकी पूजाका फल प्राप्त हो जाता है। हजारों राजसूय, सैकड़ों वाजपेय, दस हजार अश्वमेध, सम्पूर्ण महादान तथा पृथ्वीकी प्रदक्षिणा—ये सभी इस त्रैलोक्यविजयकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकते। व्रत-उपवासका नियम, स्वाध्याय, अध्ययन, तपस्या और समस्त तीर्थोंमें स्नान—ये सभी इसकी एक कलाको भी नहीं पा सकते। यदि मनुष्य इस कवचको सिद्ध कर ले तो निश्चय ही उसे सिद्धि, अमरता और श्रीहरिकी दासता आदि सब कुछ मिल जाता है। जो इसका दस लाख जप करता है, उसे यह कवच सिद्ध हो जाता है और जो सिद्धकवच होता है, वह निश्चय ही सर्वज्ञ हो जाता है। परंतु जो इस कवचको जाने बिना श्रीकृष्णका भजन करता है, उसकी बुद्धि अत्यन्त मन्द है; उसे करोड़ों कल्पोंतक जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता। वत्स! इस कवचको धारण करके तुम आनन्दपूर्वक निःशङ्क होकर अनायास ही इक्कीस बार पृथ्वीको क्षत्रियोंसे शून्य कर डालो। बेटा! प्राणसंकटके समय राज्य दिया जा सकता है, सिर कटाया जा सकता है और प्राणोंका परित्याग भी किया जा सकता है; परंतु ऐसे कवचका दान नहीं करना चाहिये*। (अध्याय ३१)

---

* महादेव उवाच—

वत्सागच्छ महाभाग भृगुवंशसमुद्भव। पुत्राधिकोऽसि प्रेम्णा मे कवचं ग्रहणं कुरु॥
शृणु राम प्रवक्ष्यामि ब्रह्माण्डे परमाद्भुतम्। त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णस्य जयावहम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके राधिकाश्रमे। रासमण्डलमध्ये च मह्यं वृन्दावने वने॥
अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। पुण्यात् पुण्यतरं चैव परं स्नेहाद् वदामि ते॥
यद् धृत्वा पठनाद् देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी। शुम्भं निशुम्भं महिषं रक्तबीजं जघान ह॥
यद् धृत्वाहं च जगतां संहर्ता सर्वतत्त्ववित्। अवध्यं त्रिपुरं पूर्वं दुरन्तमवलीलया॥
यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ससृजे सृष्टिमुत्तमाम्। यद् धृत्वा भगवान् शेषो विधत्ते विश्वमेव च॥
यद् धृत्वा कूर्मराजश्च शेषं धत्तेऽवलीलया। यद् धृत्वा भगवान् वायुर्विश्वाधारो विभुः स्वयम्॥
यद् धृत्वा वरुणः सिद्धः कुबेरश्च धनेश्वरः। यद् धृत्वा पठनादिन्द्रो देवानामधिपः स्वयम्॥
यद् धृत्वा भाति भुवने तेजोराशिः स्वयं रविः। यद् धृत्वा पठनाच्चन्द्रो महाबलपराक्रमः॥
अगस्त्यः सागरान् सप्त यद् धृत्वा पठनात् पपौ। चकार तेजसा जीर्णं दैत्यं वातापिसंज्ञकम्॥
यद् धृत्वा पठनाद् देवी सर्वाधारा वसुन्धरा। यद् धृत्वा पठनात् पूता गङ्गा भुवनपावनी॥

शिवजीका परशुरामको मन्त्र, ध्यान, पूजाविधि और स्तोत्र प्रदान करना

परशुरामने कहा—नाथ! जो सम्पूर्ण अङ्गोंकी रक्षा करनेवाला, सुखदायक, मोक्षप्रद, सारसर्वस्व तथा शत्रुओंके संहारका कारण है, वह कवच तो मुझे प्राप्त हो गया। सामर्थ्यशाली भगवन्! अब मुझ अनाथको मन्त्र, स्तोत्र और पूजाविधि प्रदान कीजिये; क्योंकि आप शरणागतके पालक हैं।

महादेवजी बोले—भृगुनन्दन! 'ॐ श्री नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय स्वाहा' यह सप्तदशाक्षर महामन्त्र सभी मन्त्रोंमें मन्त्रराज है। मुनिवर! पाँच लाख जप करनेसे यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। उस समय जपका दशांश हवन, हवनका दशांश अभिषेक, अभिषेकका दशांश तर्पण और तर्पणका दशांश मार्जन करनेका विधान है तथा सौ मोहरें इस पुरश्चरणकी दक्षिणा बतायी गयी हैं। मुने!

यद् धृत्वा जगतां साक्षी धर्मो धर्मभृतां वरः । सर्वविद्याधिदेवी सा यच्च धृत्वा सरस्वती ॥
यद् धृत्वा जगतां लक्ष्मीरन्नदात्री परात्परा । यद् धृत्वा पठनाद् वेदान् सावित्री प्रसुषाव च ॥
वेदाश्च धर्मवक्तारो यद् धृत्वा पठनाद् भृगो । यद् धृत्वा पठनाच्छुद्धस्तेजस्वी हव्यवाहनः ॥
सनत्कुमारो भगवान् यद् धृत्वा ज्ञानिनां वरः । दातव्यं कृष्णभक्ताय साधवे च महात्मने ॥
शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात् । त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो रासेश्वरः स्वयम् । त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् । प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा ॥
सदा पायात् कपालं कृष्णाय स्वाहेति पञ्चाक्षरः । कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्वाहेति तारकम् ॥
हरये नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा । ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम् ॥
गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा । ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम ॥
ॐ कृष्णाय नमः शश्वत् पातु मेऽधरयुग्मकम् । ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तावलिं मे सदावतु ॥
ॐ कृष्णाय दन्तरन्ध्रं दन्तोर्ध्वं क्लीं सदावतु । ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा ॥
रासेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा । राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम ॥
नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम । ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम ॥
नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं सदावतु । उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमः सदा ॥
ॐ ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पादौ सदा मम । ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम ॥
ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा । ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदावतु ॥
ॐ ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम । ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा ॥
ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा । ॐ गोपीरमणनाथाय पादौ पातु सदा मम ॥
ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदावतु । ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान् सदावतु ॥
नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदावतु । ॐ माधवाय स्वाहेति लोमानि मे सदावतु ॥
ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदावतु ॥
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदावतु । स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु ॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदावतु । नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः ॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद् वायव्यां दिशि नित्यशः । उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः ॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत् । वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः ॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः । जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा ॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् पातु मां माधवः सदा । सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तो रक्ष मां सर्वतो विभुः ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात् प्रवक्तव्यं न कस्यचित् । गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत् तु यः ॥

जिस पुरुषको यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है, उसके लिये विश्व करतलगत हो जाता है। वह समुद्रोंको पी सकता है, विश्वका संहार करनेमें समर्थ हो जाता है और इसी पाञ्चभौतिक शरीरसे वैकुण्ठमें जा सकता है। उसके चरणकमलकी धूलिके स्पर्शमात्रसे सारे तीर्थ पवित्र हो जाते हैं और पृथ्वी तत्काल पावन हो जाती है। मुने! जो भोग और मोक्षका प्रदाता है, सर्वेश्वर श्रीकृष्णका वह सामवेदोक्त ध्यान मेरे मुखसे श्रवण करो। जो रत्ननिर्मित सिंहासनपर आसीन हैं; जिनका वर्ण नूतन जलधरके समान श्याम है; नेत्र नीले कमलकी शोभा छीने लेते हैं; मुख शारदीय पूर्णिमाके चन्द्रमाको मात कर रहा है, उसपर मन्द मुस्कानकी मनोहर छटा छायी हुई है। जो करोड़ों कामदेवोंकी भाँति सुन्दर, लीलाके धाम, मनोहर और रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित हैं। जिनके सम्पूर्ण अङ्गोंमें चन्दनकी खौर लगी है। जो श्रेष्ठ पीताम्बर धारण किये हुए हैं। मुस्कराती हुई गोपियाँ सदा जिनकी ओर निहार रही हैं। जो प्रफुल्ल मालती-पुष्पोंकी माला तथा वनमालासे विभूषित हैं। जो सिरपर ऐसी कलँगी धारण किये हुए हैं, जिसमें कुन्द-पुष्पोंकी बहुतायत है, जो कर्पूरसे सुवासित है और चन्द्रमा एवं ताराओंसे युक्त आकाशकी प्रभाका उपहास कर रही है। जिनके सर्वाङ्गमें रत्नोंके भूषण सुशोभित हैं। जो राधाके वक्षःस्थलमें विराजमान रहते हैं। सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र और देवेन्द्र जिनकी सेवामें लगे रहते हैं तथा ब्रह्मा, विष्णु, महेश और श्रुतियाँ जिनका स्तवन करती रहती हैं; उन श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।

जो मनुष्य इस ध्यानसे श्रीकृष्णका ध्यान करके उन्हें षोडशोपचार समर्पित कर भक्तिपूर्वक उनका भलीभाँति पूजन करता है, वह सर्वज्ञत्व प्राप्त कर लेता है। (पूजनकी विधि यों है—) पहले भगवान्‌को भक्तिपूर्वक अर्घ्य, पाद्य, आसन, वस्त्र, भूषण, गौ, अर्घ्य, मधुपर्क, परमोत्तम यज्ञसूत्र, धूप, दीप, नैवेद्य, पुनः आचमन, अनेक प्रकारके पुष्प, सुवासित ताम्बूल, चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, मनोहर दिव्य शय्या, माला और तीन पुष्पाञ्जलि निवेदित करना चाहिये। तदनन्तर षडङ्गकी पूजा करके फिर गणकी विधिवत् पूजा करे। तत्पश्चात् श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, हरिभानु, चन्द्रभानु, सूर्यभानु और सुभानु—इन सातों श्रेष्ठ पार्षदोंका भक्तिभावसहित पूजन करे। फिर जो गोपीश्वरी, मूलप्रकृति, आद्याशक्ति, कृष्णशक्ति और कृष्णद्वारा पूज्य हैं, उन राधिकाकी भक्तिपूर्वक पूजा करे। विद्वान्‌को चाहिये कि वह गोप और गोपियोंके समुदाय, मुझ शान्तस्वरूप महादेव, ब्रह्मा, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी, विग्रहधारी सम्पूर्ण देवता और देवषट्‌ककी पञ्चोपचारद्वारा

कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः । स च भक्तो वसेद् यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः । निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात् ॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च । अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च ॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा । त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
व्रतोपवासनियमं स्वाध्यायाध्ययनं तपः । स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हन्ति कलामपि ॥
सिद्धत्वममरत्वं च दास्यत्वं श्रीहरेरपि । यदि स्यात् सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम् ॥
स भवेत् सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः । यो भवेत् सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद् ध्रुवम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कृष्णं सुमन्दधीः । कोटिकल्पप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्रियां कुरु । त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दोऽवलीलया ॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक । एवंभूतं च कवचं न देयं प्राणसंकटे ॥

(गणपतिखण्ड ३१ । ७—५७)

सम्यक्-रूपसे पूजा करे। तत्पश्चात् इसी क्रमसे श्रीकृष्णका पूजन करे। फिर गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छः देवोंकी भलीभाँति अर्चना करके इष्टदेवकी पूजा करे। विघ्ननाशके लिये गणेशका, व्याधिनाशके लिये सूर्यका, आत्मशुद्धिके लिये अग्निका, मुक्तिके लिये श्रीविष्णुका, ज्ञानके लिये शंकरका और परमैश्वर्यकी प्राप्तिके लिये दुर्गाका पूजन करनेपर यह फल मिलता है। यदि इनका पूजन न किया जाय तो विपरीत फल प्राप्त होता है। तदनन्तर भक्तिभावसहित इष्टदेवका परिहार करके भक्तिपूर्वक सामवेदोक्त स्तोत्रका पाठ करना चाहिये। (वह स्तोत्र बतलाता हूँ) उसे श्रवण करो।

महादेवजीने कहा—जो परब्रह्म, परम धाम, परम ज्योति, सनातन, निर्लिप्त और सबके कारण हैं, उन परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो स्थूलसे स्थूलतम, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम, सबके देखनेयोग्य, अदृश्य और स्वेच्छाचारी हैं, उन उत्कृष्ट देवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो साकार, निराकार, सगुण, निर्गुण, सबके आधार, सर्वस्वरूप और स्वेच्छानुसार रूप धारण करनेवाले हैं; उन प्रभुको मेरा अभिवादन है। जिनका रूप अत्यन्त सुन्दर है, जो उपमारहित हैं और अत्यन्त कराल रूप धारण करते हैं; उन सर्वव्यापी भगवान्‌को मैं सिर झुकाता हूँ। जो कर्मके कर्मरूप, समस्त कर्मोंके साक्षी, फल और फलदाता हैं; उन सर्वरूपको मेरा नमस्कार है। जो पुरुष अपनी कलासे विभिन्न मूर्ति धारण करके सृष्टिका रचयिता, पालक और संहारक हैं तथा जो कलांशसे नाना प्रकारकी मूर्ति धारण करते हैं; उनके चरणोंमें मैं प्रणिपात करता हूँ। जो मायाके वशीभूत होकर स्वयं प्रकृतिरूप हैं और स्वयं पुरुष हैं तथा स्वयं इन दोनोंसे परे हैं; उन परात्परको मैं सदा नमस्कार करता हूँ। जो अपनी मायासे स्त्री, पुरुष और नपुंसकका रूप धारण करते हैं तथा जो देव स्वयं माया और स्वयं मायेश्वर हैं; उन्हें मेरा प्रणाम है। जो सम्पूर्ण दुःखोंसे उबारनेवाले, सभी कारणोंके कारण और समस्त विश्वोंको धारण करनेवाले हैं, सबके कारणस्वरूप हैं; उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो तेजस्वियोंमें सूर्य, सम्पूर्ण जातियोंमें ब्राह्मण और नक्षत्रोंमें चन्द्रमा हैं; उन जगदीश्वरको मेरा अभिवादन है। जो रुद्रों, वैष्णवों और ज्ञानियोंमें शंकर हैं तथा जो नागोंमें शेषनाग हैं; उन जगत्पतिको मैं मस्तक झुकाता हूँ। जो प्रजापतियोंमें ब्रह्मा, सिद्धोंमें स्वयं कपिल और मुनियोंमें सनत्कुमार हैं; उन जगद्गुरुको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। जो देवताओंमें विष्णु, देवियोंमें स्वयं प्रकृति, मनुओंमें स्वायम्भुव मनु, मनुष्योंमें वैष्णव और नारियोंमें शतरूपा हैं; उन बहुरूपियेको मैं नमस्कार करता हूँ। जो ऋतुओंमें वसन्त, महीनोंमें मार्गशीर्ष और तिथियोंमें एकादशी हैं; उन सर्वरूपको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सरिताओंमें सागर, पर्वतोंमें हिमालय और सहनशीलोंमें पृथ्वीरूप हैं; उन सर्वरूपको मेरा प्रणाम है। जो पत्रोंमें तुलसीपत्र, लकड़ियोंमें चन्दन और वृक्षोंमें कल्पवृक्ष हैं; उन जगत्पतिको मेरा अभिवादन है। जो पुष्पोंमें पारिजात, अन्नोंमें धान और भक्ष्य पदार्थोंमें अमृत हैं; उन अनेक रूपधारीको मैं सिर झुकाता हूँ। जो गजराजोंमें ऐरावत, पक्षियोंमें गरुड और गौओंमें कामधेनु हैं; उन सर्वरूपको मैं नमन करता हूँ। जो तैजस पदार्थोंमें सुवर्ण, धान्योंमें यव और पशुओंमें सिंह हैं; उन श्रेष्ठ रूपधारीके समक्ष मैं नत होता हूँ। जो यक्षोंमें कुबेर, ग्रहोंमें बृहस्पति और दिक्पालोंमें महेन्द्र हैं; उन श्रेष्ठ परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो शास्त्रोंमें वेदसमुदाय, सदसद्विवेकशील बुद्धिमानोंमें सरस्वती और अक्षरोंमें अकार हैं; उन प्रधान देवको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मन्त्रोंमें विष्णुमन्त्र, तीर्थोंमें स्वयं गङ्गा और इन्द्रियोंमें मन

हैं; उन सर्वश्रेष्ठको मेरा नमस्कार है। जो शस्त्रोंमें सुदर्शनचक्र, व्याधियोंमें वैष्णव-ज्वर और तेजोंमें ब्रह्मतेज हैं; उन वरणीय प्रभुको मेरा प्रणाम है। जो बलवानोंमें निषेक-कर्मफलभोग, शीघ्र चलनेवालोंमें मन और गणना करनेवालोंमें काल हैं; उन विलक्षण देवको मैं अभिवादन करता हूँ। जो गुरुओंमें ज्ञानदाता, बन्धुओंमें मातृरूप और मित्रोंमें जन्मदाता—पितृरूप हैं; उन साररूप परमेश्वरको मैं मस्तक झुकाता हूँ। जो शिल्पियोंमें विश्वकर्मा, रूपवानोंमें कामदेव और पत्नियोंमें पतिव्रता हैं; उन नमनीय प्रभुको मेरा अभिवादन है। जो प्रिय प्राणियोंमें पुत्ररूप, मनुष्योंमें नरेश्वर और यन्त्रोंमें शालग्राम हैं; उन विशिष्टको मैं नमस्कार करता हूँ। जो कल्याणबीजोंमें धर्म, वेदोंमें सामवेद और धर्मोंमें सत्यरूप हैं; उन विशिष्टको मैं प्रणाम करता हूँ। जो जलमें शीतलता, पृथ्वीमें गन्ध और आकाशमें शब्दरूपसे विद्यमान हैं; उन वन्दनीयको मैं अभिवादन करता हूँ। जो यज्ञोंमें राजसूययज्ञ और छन्दोंमें गायत्री छन्द हैं तथा जो गन्धर्वोंमें चित्ररथ हैं; उन परम महनीयको मैं सिर झुकाता हूँ। जो गव्य पदार्थोंमें दूधस्वरूप, पवित्रोंमें अग्नि और पुण्य प्रदान करनेवालोंमें स्तोत्र हैं; उन शुभदायकको मैं प्रणिपात करता हूँ। जो तृणोंमें कुशरूप और शत्रुओंमें रोगरूप हैं तथा जो गुणोंमें शान्तरूप हैं; उन विचित्र रूपधारीको मैं नमन करता हूँ। जो तेजोरूप, ज्ञानरूप, सर्वरूप और महान् हैं; उन सबके द्वारा अनिर्वचनीय सर्वव्यापी स्वयं प्रभुको मेरा नमस्कार है। जो सर्वाधारस्वरूपोंमें वायु और नित्यरूपधारियोंमें आत्माके समान हैं तथा जो आकाशकी भाँति व्याप्त हैं; उन सर्वव्यापकको मेरा प्रणाम है। जो वेदोंद्वारा अवर्णनीय हैं, अतः विद्वान् जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं तथा जिनका गुणगान वाक्-शक्तिके बाहर है; भला, उनका स्तवन करके कौन पार पा सकता है? जिनकी स्तुति करनेमें वेद समर्थ नहीं हैं तथा सरस्वती जड-सी हो जाती हैं, मन-वाणीसे परे उन भगवान्‌का कौन विद्वान् स्तवन कर सकता है? जो शुद्ध तेजःस्वरूप, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रह और अत्यन्त सुन्दर हैं; उन श्याम-रूपधारी प्रभुको मेरा अभिवादन है। जिनके दो भुजाएँ हैं, मुखपर मुरली सुशोभित है, किशोर-अवस्था है, जो आनन्दपूर्वक मुस्करा रहे हैं, गोपाङ्गनाएँ निरन्तर जिनकी ओर निहारा करती हैं; उन्हें मेरा प्रणाम स्वीकार हो। जो रत्ननिर्मित सिंहासनपर विराजमान हैं और राधाद्वारा दिये गये पानको चबा रहे हैं; उन मनोहर रूपधारी ईश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो रत्नोंके आभूषणोंसे भलीभाँति सुसज्जित हैं तथा जिनपर पार्षदप्रवर गोपकुमार श्वेत चँवर डुला रहे हैं; उन्हें मैं नमस्कार करता हूँ। जो रमणीय वृन्दावनके भीतर रासमण्डलके मध्य स्थित होकर रासक्रीडाके उल्लाससे समुत्सुक हैं; उन रसिकेश्वरको मेरा प्रणाम है। जो शतशृङ्गकी चोटियोंपर, महाशैलपर, गोलोकमें रत्नपर्वतपर तथा विरजा नदीके रमणीय तटपर विहार करनेवाले हैं; उन्हें मेरा नमस्कार है। जो परिपूर्णतम, शान्त, राधाके प्रियतम, मनको हरण करनेवाले, सत्यरूप और ब्रह्मस्वरूप हैं, उन अविनाशी श्रीकृष्णको मैं अभिवादन करता हूँ।

जो मनुष्य भारतवर्षमें श्रीकृष्णके इस स्तोत्रका तीनों काल पाठ करता है, वह धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका दाता हो जाता है। इस स्तोत्रकी कृपासे श्रीहरिमें उसकी भक्ति सुदृढ़ हो जाती है। उसे श्रीहरिकी दासता मिल जाती है और वह इस लोकमें निश्चय ही विष्णु-तुल्य जगत्पूज्य हो जाता है। वह शान्तिलाभ करके समस्त सिद्धोंका ईश्वर हो जाता है और अन्तमें श्रीहरिके परमपदको प्राप्त कर लेता है तथा भूतलपर अपने तेज और यशसे सूर्यकी तरह प्रकाशित होता है। वह जीवन्मुक्त,

श्रीकृष्णभक्त, सदा नीरोग, गुणवान्, विद्वान्, पुत्रवान् और धनी हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। वह निश्चय ही छहों विषयोंका जानकार, दसों बलोंसे सम्पन्न, मनके सदृश वेगशाली, सर्वज्ञ, सर्वस्व दान करनेवाला और सम्पूर्ण सम्पदाओंका दाता हो जाता है तथा श्रीकृष्णकी कृपासे वह निरन्तर कल्पवृक्षके समान बना रहता है। वत्स! इस प्रकार मैंने इस स्तोत्रका वर्णन कर दिया। अब तुम पुष्करमें जाओ और वहाँ मन्त्र सिद्ध करो। तत्पश्चात् तुम्हें अभीष्ट फलकी प्राप्ति होगी। मुनिश्रेष्ठ! यों श्रीकृष्णकी कृपासे तथा मेरे आशीर्वादसे तुम सुखपूर्वक पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रियोंसे शून्य करो*।

(अध्याय ३२)

---

* महादेव उवाच—

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम्। निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम्॥
स्थूलात् स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम्। सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम्॥
साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम्। सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम्॥
अतीवकमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम्। करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम्॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणाम्। फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम्॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः। नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम्॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान्। तयोः परं स्वयं शश्वत् तं नमामि परात्परम्॥
स्त्रीपुंनपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया। स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम्॥
तारणं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम्। धारणं सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम्॥
तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु ब्राह्मणः। नक्षत्राणां च यश्चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम्॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शंकरः। नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम्॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम्। सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम्॥
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम्।
स्वायम्भुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः। नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम्॥
ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः। एकादशी तिथीनां च नमामि सर्वरूपिणम्॥
सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः। वसुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम्॥
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम्। वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम्॥
पुष्पाणां पारिजातश्च शस्यानां धान्यमेव च। अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम्॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम्। कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम्॥
तैजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च। यः केशरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम्॥
यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः। दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम्॥
वेदसंघश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती। अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम्॥
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम्। इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम्॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः। तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम्॥
निषेकश्च बलवतां मनश्च शीघ्रगामिनाम्। कालः कलयतां यो हि तं नमामि विलक्षणम्॥
ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु। मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम्॥
शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम्। पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम्॥
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च। शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम्॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः। धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम्॥
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु। शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम्॥

पुष्करमें जाकर परशुरामका तपस्या करना, श्रीकृष्णद्वारा वर-प्राप्ति, आश्रमपर मित्रोंके साथ उनका विजय-यात्रा करना और शुभ शकुनोंका प्रकट होना, नर्मदातटपर रात्रिमें परशुरामको स्वप्नमें शुभ शकुनोंका दिखलायी देना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर भृगुवंशी परशुराम हर्षपूर्वक शिव, दुर्गा तथा भद्रकालीको प्रणाम करके पुष्करतीर्थमें गये और वहाँ मन्त्र सिद्ध करने लगे। उन्होंने एक महीनेतक अन्न-जलका परित्याग कर दिया और भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान करते हुए वायुको अवरुद्ध कर दिया। फिर आँखें खोलकर देखा तो उनको आकाश एक अद्भुत तेजसे व्याप्त दिखायी पड़ा। उस तेजसे दसों दिशाएँ उद्दीप्त हो रही थीं और सूर्यका तेज प्रतिहत हो गया था। उस तेजोमण्डलके मध्य उन्हें एक रत्ननिर्मित विमान दीख पड़ा, जिसपर एक अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ पुरुष दृष्टिगोचर हो रहे थे। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेवाले थे तथा उनका मुख मन्द मुस्कानसे खिल रहा था। परशुरामने उन ईश्वरको दण्डकी भाँति लेटकर सिरसे प्रणाम किया और वर माँगा—'भगवन्! मैं इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे रहित कर दूँ, आपके चरणकमलोंमें मेरी अनपायिनी सुदृढ़ भक्ति हो और मैं निरन्तर आपके पादारविन्दका दास बना रहूँ—यह वर मुझे प्रदान कीजिये।' तब श्रीकृष्ण उन्हें वह वर देकर वहीं अन्तर्धान हो गये और परशुराम उन

क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः। गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम्॥
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः। पुण्यदानां च यः स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम्॥
तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम्। गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्॥
तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान्। सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम्॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यथात्मा नित्यरूपिणाम्। आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम्॥
वेदानिर्वचनीयं यन्न स्तोतुं पण्डितः क्षमः। यदनिर्वचनीयं च को वा तत्स्तोतुमीश्वरः॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती। तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान् स्तोतुमीश्वरः॥
शुद्धतेजःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्। अतीवकमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम्॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा। शश्वद् गोपाङ्गनाभिश्च वीक्ष्यमाणं नमाम्यहम्॥
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम्॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः। पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम्॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम्। रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते। विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम्॥
परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्॥
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत्॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत् स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्। तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः। अरोगी गुणवान् विद्वान् पुत्रवान् धनवान् सदा॥
षडभिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद् ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसम्पदाम्॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद् भवेत् कृष्णप्रसादतः॥
इत्येवं कथितं स्तोत्रं त्वं वत्स गच्छ पुष्करम्। तत्र कृत्वा मन्त्रसिद्धिं पश्चात् प्राप्स्यसि वाञ्छितम्॥
त्रिःसप्तकृत्वो निर्भूपां कुरु पृथ्वीं यथासुखम्। ममाशिषा मुनिश्रेष्ठ श्रीकृष्णस्य प्रसादतः॥

(गणपतिखण्ड ३२। २७—७६)

परात्परको नमस्कार करके अपने आश्रमको लौट आये। उस समय उनका दाहिना अङ्ग फड़कने लगा, जो शुभ मङ्गलोंका सूचक था। रातमें उन्हें वाञ्छासिद्धिको प्रकट करनेवाला उत्तम स्वप्न भी दीख पड़ा। इससे उनका मन रात-दिन प्रसन्न और संतुष्ट रहने लगा। वे स्वजनोंसे सारा वृत्तान्त पूर्णतया बतलाकर आनन्दपूर्वक आश्रममें निवास करने लगे। तदनन्तर महाबली परशुरामने अपने शिष्योंको, पिताके शिष्योंको, भाइयोंको तथा बन्धु-बान्धवोंको बुला-बुलाकर उनके साथ तरह-तरहकी सलाह की और उनसे अपना पूर्वापरका वृत्तान्त कहकर शुभ मुहूर्तमें वे उन्हींके साथ विजययात्राके लिये उद्यत हुए।

उस समय परशुरामको मङ्गल शकुन दिखायी पड़ने लगे और जयकी सूचना देनेवाले शब्द सुनायी दिये। तब उन्होंने मन-ही-मन सबका विचार करके निश्चय कर लिया कि मेरी विजय होगी और शत्रुओंका संहार होगा। यात्राके अवसरपर सहसा मुनिको अपने सामने मयूरकी बोली, सिंहकी गर्जना, घण्टा और दुन्दुभिकी ध्वनि, संगीत, कल्याणकारी नवीन सांकेतिक शब्द और विजयसूचक बादलोंकी गड़गड़ाहट सुनायी पड़ी। उसी समय आकाशवाणी भी हुई कि 'तुम्हारी विजय होगी।' इस तरह अनेक प्रकारके शुभ शब्दोंको सुनते हुए भगवान् परशुरामने यात्रा आरम्भ की। चलते ही उन्होंने अपने आगे ब्राह्मण, बन्दी, ज्योतिषी और भिक्षुकको देखा। फिर नाना प्रकारके आभूषणोंसे सजी हुई एक पति-पुत्रसम्पन्ना सती नारी हाथमें प्रज्वलित दीपक लिये हुए मुस्कराती हुई सामने आयी। चलते-चलते परशुरामने अपने दाहिनी ओर यात्राके समय मङ्गलकी सूचना देनेवाले शव, शृगाली, जलसे पूर्ण घट, नीलकण्ठ, नेवला, कृष्णसार मृग, हाथी, सिंह, घोड़ा, गैंडा, द्विप, चमरी गाय, राजहंस, चक्रवाक, शुक, कोयल, मोर, खंजन, सफेद चील, चकोर, कबूतर, बगुलोंकी पंक्ति, बतख, चातक, गौरैया, बिजली, इन्द्रधनुष, सूर्य, सूर्यकी प्रभा, पुरंदरका कटा हुआ मांस, जीवित मछली, शङ्ख, सुवर्ण, माणिक्य, चाँदी, मोती, हीरा, मूँगा, दही, लावा, सफेद धान, सफेद फूल, कुंकुम, पानका पत्ता, पताका, छत्र, दर्पण, श्वेत चँवर, सवत्सा गौ, रथारूढ़ भूपाल, दूध, घी, राशि-राशि अमृत, खीर, शालग्राम, पका हुआ फल, स्वस्तिक, शक्कर, मधु, बिलाव, साँड़, भेड़ा, पर्वतीय चूहा, मेघाच्छन्न सूर्यका उदय, चन्द्रमण्डल, कस्तूरी, पंखा, जल, हल्दी, तीर्थकी मिट्टी, पीली या सफेद सरसों, दूब, ब्राह्मणका बालक और कन्या, मृग, वेश्या, भौंरा, कपूर, पीला वस्त्र, गोमूत्र, गोबर, गौके खुरकी धूलि, गोपदसे चिह्नित गोष्ठ, गौओंका मार्ग (डहर), रमणीय गोशाला, सुन्दर गोगति, भूषण, देवप्रतिमा, प्रज्वलित अग्नि, महोत्सव, ताँबा, स्फटिक, वैद्य, सिंदूर, माला, चन्दन, सुगन्ध, हीरा और रत्न देखा। उन्हें सुगन्धित वायुका आघ्राण और ब्राह्मणोंका शुभाशीर्वाद प्राप्त हुआ। इस प्रकार माङ्गलिक अवसर जानकर वे हर्षपूर्वक आगे

बढ़े और सूर्यास्त होते-होते नर्मदाके तटपर पहुँच गये।

वहाँ उन्हें एक अत्यन्त मनोहर दिव्य अक्षयवट दिखायी दिया। वह अत्यन्त ऊँचा, विस्तारवाला और उत्तम एवं पावन आश्रम-स्थान था। वहाँ सुगन्धित वायु बह रही थी। वहीं पुलस्त्य-नन्दनने तपस्या की थी। वहीं कार्तवीर्यार्जुनके आश्रमके निकट परशुराम अपने गणोंके साथ ठहर गये। वहाँ उन्होंने रातमें पुष्प-शय्यापर शयन किया। थके तो वे थे ही, अतः किंकरोंद्वारा भलीभाँति सेवा किये जानेपर परमानन्दमें निमग्न हो निद्राके वशीभूत हो गये। रात व्यतीत होते-होते भार्गव परशुरामको एक सुन्दर स्वप्न दिखायी दिया, जो वायु, पित्त और कफके प्रकोपसे रहित था और जिसका पहले मनमें विचार भी नहीं किया गया था।

उन्होंने देखा कि मैं हाथी, घोड़ा, पर्वत, अट्टालिका, गौ और फलयुक्त वृक्षपर चढ़ा हुआ हूँ। मुझे कीड़े काट रहे हैं जिससे मैं रो रहा हूँ। मेरे शरीरमें चन्दन लगा है। मैं पीले वस्त्रसे शोभित तथा पुष्पमाला धारण किये हुए हूँ। मेरा सारा शरीर मल-मूत्रसे सराबोर है और उसमें मज्जा और पीब चुपड़ा हुआ है, ऐसी दशामें मैं नौकापर सवार हूँ और उत्तम वीणा बजा रहा हूँ। फिर देखा कि मैं नदीतटपर बड़े-बड़े कमल-पत्रोंपर रखकर दही, घी और मधु-मिश्रित खीर खा रहा हूँ। पुनः देखा कि मैं पान चबा रहा हूँ। मेरे सामने फल, पुष्प और दीपक रखे हुए हैं तथा ब्राह्मण मुझे आशीर्वाद दे रहे हैं। फिर अपनेको बारंबार पके हुए फल, दूध, शक्करमिश्रित गरमा-गरम अन्न, स्वस्तिकके आकारकी बनी हुई मिठाई खाते देखा। पुनः उन्होंने देखा कि मुझे जल-जन्तु, बिच्छू, मछली तथा सर्प काट रहे हैं और मैं भयभीत होकर भाग रहा हूँ। फिर देखा कि मैं चन्द्रमा और सूर्यका मण्डल, पति और पुत्रसे सम्पन्न नारी और मुस्कराते हुए ब्राह्मणको देख रहा हूँ। पुनः अपनेको सुन्दर वेषवाली परम संतुष्ट कन्या तथा संतुष्ट एवं मुस्कानयुक्त ब्राह्मणद्वारा आलिङ्गित होते हुए देखा। फिर देखा कि मैं फल-पुष्पसमन्वित वृक्ष, देवताकी मूर्ति तथा हाथीपर एवं रथपर सवार हुए राजाको देख रहा हूँ। पुनः उन्होंने देखा कि मैं एक ऐसी ब्राह्मणीको देख रहा हूँ, जो पीला वस्त्र धारण किये हुए है, रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित है और घरमें प्रवेश कर रही है। फिर अपनेको शङ्ख, स्फटिक, श्वेत माला, मोती, चन्दन, सोना, चाँदी और रत्न देखते हुए पाया। पुनः भार्गवको हाथी, बैल, श्वेत सर्प, श्वेत चँवर, नीला कमल और दर्पण दिखायी पड़ा। परशुरामने स्वप्नमें अपनेको रथारूढ़, नये रत्नोंसे संयुक्त, मालतीकी मालाओंसे शोभित और रत्नसिंहासनपर स्थित देखा। परशुरामने स्वप्नमें कमलोंकी पंक्ति, भरा हुआ घट, दही, लावा, घी, मधु, पत्तेका छत्र और नाई देखा। भृगुनन्दनने स्वप्नमें बगुलोंकी कतार, हंसोंकी पाँति और मङ्गल-कलशकी पूजा करती हुई व्रती कन्याओंकी पंक्ति देखी। परशुरामने स्वप्नमें उन ब्राह्मणोंको देखा, जो मण्डपमें स्थित होकर शिव और विष्णुकी पूजा कर रहे थे तथा 'जय हो' ऐसा उच्चारण कर रहे थे। फिर परशुरामने स्वप्नमें सुधावृष्टि, पत्तोंकी वर्षा, फलोंकी वृष्टि, लगातार होती हुई पुष्प और चन्दनकी वर्षा, तुरंतका काटा हुआ मांस, जीवित मछली, मोर, श्वेत खंजन, सरोवर, तीर्थ, कबूतर, शुक, नीलकण्ठ, सफेद चील, चातक, बाघ, सिंह, सुरभी, गोरोचन, हल्दी, सफेद धानका विशाल पर्वत, प्रज्वलित अग्नि, दूब, समूह-के-समूह देव-मन्दिर, पूजित शिवलिङ्ग और पूजा की हुई शिवकी मृण्मयी मूर्तिको देखा। परशुरामने स्वप्नमें जौ और गेहूँके आटेकी पूड़ी और लड्डू देखा और उन्हें बारंबार खाया। फिर अकस्मात्

अपनेको शस्त्रसे घायल और जंजीरसे बंधा हुआ देखकर उनकी नींद टूट गयी और वे प्रातःकाल श्रीहरिका स्मरण करते हुए उठ बैठे। इस स्वप्नसे उन्हें अत्यन्त हर्ष हुआ। तत्पश्चात् उन्होंने अपना प्रातःकालिक नित्य कर्म सम्पन्न किया और मनमें ऐसा समझ लिया कि निश्चय ही सारे शत्रुओंको जीत लूँगा।

(अध्याय ३३)

परशुरामका कार्तवीर्यके पास दूत भेजना, दूतकी बात सुनकर राजाका युद्धके लिये उद्यत होना और रानी मनोरमासे स्वप्नदृष्ट अपशकुनका वर्णन करना, रानीका उन्हें परशुरामकी शरण ग्रहण करनेको कहना, परंतु राजाका मनोरमाको समझाकर युद्धयात्राके लिये उद्यत होना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर भृगुवंशी परशुरामने प्रातःकालिक नित्यकर्म समाप्त करके भाई-बन्धुओंके साथ परामर्श किया और कार्तवीर्यके आश्रमपर दूत भेजा। उस दूतने शीघ्र ही जाकर राजाधिराज कार्तवीर्यसे कहा। उस समय राजा मन्त्रियोंसे घिरे हुए राजसभामें बैठे थे।

परशुरामका दूत बोला—महाराज! नर्मदातटके निकट अक्षयवटके नीचे भृगुवंशी परशुराम भाइयोंसहित पधारे हुए हैं। वे इक्कीस बार पृथ्वीको राजाओंसे शून्य करेंगे। अतः आप वहाँ चलिये अथवा भाई-बन्धुओंके साथ युद्ध कीजिये। इतना कहकर परशुरामका दूत उनके पास लौट गया। इधर राजा कवच धारण करके रण-यात्राके लिये उद्यत हुआ। तब महारानी मनोरमाने अपने प्राणपतिको युद्धमें जानेके लिये उद्यत देख उसे रोक दिया और अपने पास ही बैठा लिया। मुने! मनोरमाको देखकर राजाके नेत्र और मुख प्रसन्नतासे खिल उठे। फिर तो उसने सभाके बीच रानीसे अपने मनकी बात कही।

कार्तवीर्यार्जुन कहने लगा— प्रिये! जमदग्निके महान् पराक्रमी पुत्र परशुराम भाइयोंके साथ नर्मदा-तटपर ठहरे हुए हैं। वे मुझे युद्धके लिये ललकार रहे हैं। उन्हें शंकरजीसे शस्त्र और श्रीहरिका मन्त्र तथा कवच प्राप्त हो गया है; अतः वे इक्कीस बार भूमिको भूपालोंसे हीन कर देना चाहते हैं। इस समाचारसे मेरे प्राण काँप उठे हैं, मन बारंबार क्षुब्ध हो रहा है और मेरा बायाँ अङ्ग निरन्तर फड़क रहा है। प्रिये! मैंने एक स्वप्न भी देखा है, सुनो।

मैंने देखा है—मैं तेलसे सराबोर हूँ, लाल वस्त्र धारण किये हुए हूँ, शरीरपर लाल चन्दन लगा है, लोहेके आभूषणोंसे भूषित हूँ, अड़हुलके फूलोंकी माला पहने हूँ और गधेपर चढ़कर हँस रहा हूँ तथा बुझे हुए अंगारोंकी राशिसे क्रीडा कर रहा हूँ। पतिव्रते! पृथ्वीपर अड़हुलके पुष्प बिखरे हुए हैं और वह राखसे आच्छादित हो गयी है। आकाश चन्द्रमा और सूर्यसे रहित होकर संध्याकालीन लालिमासे व्याप्त हो गया है। मैंने एक विधवा स्त्रीको देखा, जो लाल वस्त्र पहने थी, केश खुले थे, नाक कट गयी थी और वह अट्टहास करती हुई नाच रही थी। महारानी! मैंने एक चिता देखी, जिसपर बाण बिछे थे और वह अग्निसे रहित एवं भस्मसे संयुक्त थी। फिर राखकी वर्षा, रक्तकी वर्षा और अंगारोंकी वर्षा होते हुए देखा। पृथ्वी पके हुए ताड़के फलोंसे आच्छादित और हड्डियोंसे संयुक्त थी। फिर खोपड़ियोंकी ढेरी दीख पड़ी, जो कटे हुए बालों और नखोंसे युक्त थी। फिर रातके समय नमकका पहाड़, कौड़ियोंकी ढेरी और धूल तथा तेलकी कन्दरा दृष्टिगोचर हुई। फिर फूलोंसे लदे हुए

अशोक और करवीरके वृक्ष दीख पड़े। वहीं ताड़के वृक्ष भी थे, जिनमें फल लगे थे और पटापट गिर रहे थे। यह भी देखा कि मेरे हाथसे भरा हुआ कलश गिर पड़ा और चकनाचूर हो गया तथा आकाशसे चन्द्रमण्डल गिर रहा है। पुनः आकाशसे भूतलपर गिरते हुए सूर्यमण्डलको तथा उल्कापात, धूमकेतु और सूर्य एवं चन्द्रमाके ग्रहणको देखा। फिर एक ऐसे भयानक पुरुषको सामनेसे आते हुए देखा, जिसका आकार बेडौल था, मुख विकराल था और जिसके शरीरपर वस्त्र नहीं था। रातमें मैंने यह भी देखा कि एक बारह वर्षकी अवस्थावाली युवती, जो वस्त्र और आभूषणोंसे सुशोभित थी, रुष्ट होकर मेरे घरसे बाहर जा रही है। (जाते समय उसने कहा—) 'राजेन्द्र! आप शोकपूर्ण चित्तसे बोलते हैं; अतः मैं आपके घरसे वनको चली जाऊँगी; इसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये।' मैंने देखा कि क्रुद्ध ब्राह्मण, संन्यासी और गुरु मुझे शाप दे रहे हैं और दीवालपर चित्रित पुत्तलिकाएँ नाच रही हैं। रातमें मैंने देखा कि चञ्चल गीधों, कौओं और भैंसोंका समूह मुझे पीड़ा पहुँचा रहा है। महारानी! मैंने तेल, तेलीद्वारा घुमाया जाता हुआ कोल्हू और पाशधारी दिगम्बरोंको देखा। मैंने रातमें देखा कि मेरे घरमें परमानन्ददायक विवाहोत्सव मनाया जा रहा है, जिसमें सभी गायक गीत गा रहे हैं और नाच रहे हैं। रातमें देखा कि लोग रमण कर रहे हैं, परस्पर खींचातानी कर रहे हैं और कौवे तथा कुत्ते लड़ रहे हैं। कामिनि! रातमें मोदक, पिण्ड, शवसंयुक्त श्मशान, लाल वस्त्र और सफेद वस्त्र भी दीखे हैं। शोभने! मैंने देखा कि एक विधवा स्त्री, जो काले रंगकी थी और काला वस्त्र पहने हुए थी तथा जिसके बाल खुले हुए थे, नंगी होकर मेरा आलिङ्गन कर रही है। प्रिये! नाई मेरे सिर तथा दाढ़ीके बाल छील रहा है और वक्षःस्थलपर नखोंकी खरोंच लगी है; रातमें मैंने ऐसा भी देखा है। सुन्दरि! पादुका, चमड़ेकी रस्सियोंकी बहुत बड़ी राशि और कुम्हारके चाकको भूमिपर घूमते हुए देखा। सुव्रते! रातमें देखा कि आँधीने एक सूखे पेड़को झकझोरकर उखाड़ दिया है और वह वृक्ष पुनः उठकर खड़ा हो गया है तथा बिना सिरका धड़ चक्कर काट रहा है। श्रेष्ठे! एक गुँथी हुई मुण्डोंकी माला, जिसमें अत्यन्त भयंकर दाँत दीख रहे थे तथा जिसे आँधीने चूर-चूर कर दिया था, मुझे दीख पड़ी। रातमें मैंने यह भी देखा कि झुंड-के-झुंड भूत-प्रेत, जिनके बाल खुले हुए थे और जो मुखसे आग उगल रहे थे—मुझे लगातार भयभीत कर रहे हैं। रातमें मैंने जला हुआ जोव, झुलसा हुआ वृक्ष, व्याधिग्रस्त मनुष्य और अङ्गहीन शूद्रको भी देखा है। रातमें मैंने यह भी देखा कि सहसा घर, पर्वत और वृक्ष गिर रहे हैं तथा बारंबार वज्रपात हो रहा है। रातमें घर-घरमें कुत्ते और सियार निश्चितरूपसे बारंबार रो रहे थे, मुझे यह भी दिखायी पड़ा है। मैंने एक पुरुषको देखा—जो दिगम्बर था, जिसके बाल बिखरे थे और जो नीचे मस्तक तथा पैर ऊपर करके पृथ्वीपर घूम रहा था। उसकी आकृति और बोली विकृत थी। फिर प्रातःकाल ग्रामके अधिदेवताका रुदन सुनकर मैं जाग पड़ा। अब बतलाओ, इसका क्या उपाय है। राजाकी बात सुनकर मनोरमाका हृदय दुःखी हो गया। वह रोती हुई राजाधिराज कार्तवीर्यसे गद्गद वाणीमें बोली।

मनोरमाने कहा—हे नाथ! आप रमण करनेवालोंमें उत्तम, समस्त महीपालोंमें श्रेष्ठ और मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। प्राणेश्वर! मेरा शुभकारक वचन सुनिये। जमदग्निनन्दन महाबली भगवान् परशुराम नारायणके अंश हैं। ये सृष्टिका संहार करनेवाले जगदीश्वर शिवके शिष्य हैं। जिनकी ऐसी प्रतिज्ञा है कि मैं इक्कीस बार

पृथ्वीको भूपालोंसे शून्य कर दूँगा, उनके साथ आप युद्ध न छेड़िये। पापी रावणको जीतकर जो आप अपनेको शूरवीर मानते हैं, (यह आपका भ्रम है; क्योंकि) उसे आपने नहीं जीता है, बल्कि वह अपने पापसे पराजित हुआ है; क्योंकि जो धर्मकी रक्षा नहीं करता, उसका भूतलपर कौन रक्षक हो सकता है? वह मूर्ख स्वयं नष्ट हो जाता है और वह जीते हुए भी मृतकके समान है। जो धर्मके तथा शुभाशुभ कर्मके साक्षी और आत्माराम हैं, वे निरन्तर अपने अंदर वर्तमान हैं; परंतु आपकी बुद्धि मोहाच्छन्न हो गयी है; अतः आप उन्हें नहीं देखते हैं। नरेश! उत्तम धर्मात्माओंकि जो-जो स्त्री-पुत्र आदि तथा समस्त ऐश्वर्यकी वस्तुएँ हैं, वे सभी जलके बुलबुलेके सदृश अनित्य और विनाशशील हैं। इसीलिये इस भारतमें संतलोग संसारको स्वप्न-सदृश मानकर निरन्तर धर्मका ध्यान करते हैं और भक्तिपूर्वक तपस्यामें रत रहते हैं। राजन्! मालूम होता है, दत्तात्रेयजीने जो ज्ञान दिया था, वह सब आप भूल गये। यदि है तो फिर आपका मन ब्राह्मणकी हत्या करनेमें कैसे प्रवृत्त हुआ? आप तो मनोविनोदके लिये शिकार खेलने गये थे। वहाँ ब्राह्मणके आश्रममें ठहरकर आपने अपूर्व मिष्टान्नका भोजन किया और व्यर्थ ही ब्राह्मणको मार डाला। जो गुरु, ब्राह्मण और देवताका अपमान करता है, उसके इष्टदेव उसपर रुष्ट हो जाते हैं और विपत्ति उसे आ घेरती है। अतः राजेन्द्र! आप दत्तात्रेयजीके चरणकमलोंका स्मरण कीजिये; क्योंकि गुरु-भक्ति सबके सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाश करनेवाली है। अब आप गुरुदेवकी भलीभाँति अर्चना करके उन भृगुनन्दनकी शरण ग्रहण कीजिये। परम बुद्धिमान् राजा कार्तवीर्यने मनोरमाकी बात सुनकर उसे समझाया और पुनः रानीको उत्तर दिया।

कार्तवीर्यार्जुनने कहा—कान्ते! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब मैंने सुन लिया। अब मैं जो कहता हूँ, उसे श्रवण करो। शोकपीड़ित लोगोंके वचन सभाओंमें प्रशंसनीय नहीं माने जाते। सुन्दरी! कर्मभोगके योग्य काल आनेपर सुख, दुःख, भय, शोक, कलह और प्रेम—ये सभी होते रहते हैं; क्योंकि काल राज्य देता है; काल मृत्यु और पुनर्जन्मका कारण होता है, काल संसारकी सृष्टि करता है, काल ही पुनः उसका संहार करता है और काल ही पालन करता है। काल भगवान् जनार्दनका स्वरूप है; परंतु श्रीकृष्ण उस कालके भी काल और विधाताके भी ब्रह्मा हैं। सृष्टिका आविर्भाव और तिरोधान उन्हींकी आज्ञासे होता है। मनुष्यके सारे कार्य उन्हींकी आज्ञासे होते हैं, अपनी इच्छासे कुछ भी नहीं होता। महाबली भगवान् परशुराम नारायणके अंश हैं। यदि उन्होंने ऐसी प्रतिज्ञा कर ली है कि मैं इक्कीस बार पृथ्वीको राजाओंसे शून्य कर दूँगा तो उनकी वह प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हो सकती। सुव्रते! साथ ही मैं यह निश्चित रूपसे जानता हूँ कि मैं उनका वध्य हूँ। तब भला, भविष्यकी सारी बातें जानकर भी मैं उनकी शरणमें कैसे जा सकता हूँ? क्योंकि प्रतिष्ठित पुरुषोंकी अपकीर्ति मृत्युसे भी बढ़कर दुःखदायिनी होती है। इतना कहकर सम्राट् कार्तवीर्यने समरभूमिमें जानेके लिये उद्यत हो बाजा बजवाया और माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करवाये। वह असंख्य राजाओंको, तीन लाख राजाधिराजोंको, महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न एक सौ अक्षौहिणी सेनाओंको तथा असंख्यों घोड़े, हाथी, पैदल सिपाही और रथोंको साथ लेकर रण-यात्राके लिये तैयार हुआ। उसे कवच और बाणसहित अक्षय धनुष धारण करके यात्राके लिये समुत्सुक देख साध्वी मनोरमा स्तब्ध हो गयी। (अध्याय ३४)

राजाको युद्धके लिये उद्यत देख मनोरमाका योगद्वारा शरीर-त्याग, राजाका विलाप और आकाशवाणी सुनकर उसकी अन्त्येष्टि-क्रिया करना, युद्धयात्राके समय नाना प्रकारके अपशकुन देखना, कार्तवीर्य और परशुरामका युद्ध तथा कार्तवीर्यका वध, नारायणद्वारा शिव-कवचका वर्णन

नारायण कहते हैं—मुने! मनोरमाने अपने स्वामीके मुखसे भविष्यकी जो-जो बातें सुनीं, उन्हें मनमें धारण कर लिया और यह समझ लिया कि ये बातें अवश्य सत्य होंगी; अतः उसने उसी क्षण अपने प्राणनाथको अपनी छातीसे लगा लिया और पुत्रों, बान्धवों तथा अपने भृत्योंको आगे करके वह भगवच्चरणोंका ध्यान करने लगी। फिर उसने योगद्वारा षट्चक्रका भेदन करके वायुको मूर्धामें स्थापित किया और चञ्चल मनको जलके बुलबुलेके सदृश क्षणभङ्गुर विषयोंसे खींचकर, ब्रह्मरन्ध्रमें स्थित सहस्रदलसंयुक्त कमलपर स्थापित करके उसे ज्ञानद्वारा निष्कल ब्रह्ममें बाँध दिया। तत्पश्चात् निर्मूल एवं पुनर्जन्मरहित द्विविध कर्मका परित्याग करके उसने वहीं प्राण त्याग दिये; परंतु प्राणोंसे अधिक प्रिय राजाको नहीं छोड़ा।

तदनन्तर राजा विविध भाँतिसे करुण विलाप करके फूट-फूटकर रोने लगे। राजाके विलापको सुनकर इस प्रकार आकाशवाणी हुई—'महाराज! शान्त हो जाओ, क्यों रो रहे हो? तुम तो दत्तात्रेयकी कृपासे बड़े-बड़े ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो; अतः सारे संसारको, जो रमणीय दीख रहा है, जलके बुलबुलेके सदृश क्षणभङ्गुर समझो। वह साध्वी मनोरमा तो लक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न हुई थी, अतः वह लक्ष्मीके वासस्थानको चली गयी। अब तुम भी रणभूमिमें युद्ध करके वैकुण्ठमें जाओ।' आकाशवाणीके इस वचनको सुनकर नरेशने शोकका परित्याग कर दिया। तत्पश्चात् चन्दनकी लकड़ीसे दिव्य चिता तैयार की और पुत्रद्वारा अग्निसंस्कार कराकर उसका दाह कराया। फिर मनोरमाके पुण्यके निमित्त हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको नाना प्रकारके रत्न, भाँति-भाँतिके वस्त्र और अनेक तरहके अन्यान्य दान दिये। मुने! उस अवसरपर कार्तवीर्यके आश्रममें सर्वत्र निरन्तर यही शब्द होता था कि 'दान दो, दान दो और खाओ, खाओ'। उस समय राजाद्वारा अधिकृत कोषोंमें जो-जो धन मौजूद था, उसे उसने मनोरमाके पुण्यके निमित्त हर्षपूर्वक ब्राह्मणोंको दान कर दिया। तदनन्तर असंख्य वाद्यों तथा सैन्यसमूहोंको साथ लेकर राजा दुःखी हृदयसे समरभूमिके लिये प्रस्थित हुआ। आगे बढ़नेपर यद्यपि राजाको प्रत्येक मार्गमें अमङ्गलके ही दर्शन हुए तथापि वह रणक्षेत्रकी ओर ही बढ़ता गया; पुनः राजधानीको नहीं लौटा। राजाको मार्गमें एक नग्न स्त्री मिली, जिसके बाल बिखरे थे, नाक कटी थी और वह रो रही थी। दूसरी विधवा भी मिली, जो काला वस्त्र पहने थी। आगे मुखदुष्टा, योनिदुष्टा, रोगिणी, कुट्टनी, पति-पुत्रसे विहीन, डाकिनी, कुलटा, कुम्हार, तेली, व्याध, सर्पद्वारा जीविका चलानेवाला (सँपेरा), कुत्सित वस्त्र, अत्यन्त रूखा शरीर, नंगा, काषाय-वस्त्रधारी, चरबी बेचनेवाला, कन्या-विक्रयी, चितामें जलता हुआ शव, बुझे हुए अङ्गारोंवाली राख, सर्पसे डँसा हुआ मनुष्य, साँप, गोह, खरगोश, विष, श्राद्धके लिये पकाया हुआ पाक, पिण्ड, मोदक, तिल, देवमूर्तियोंपर चढ़े हुए धनसे जीवन-निर्वाह करनेवाला ब्राह्मण, वृषवाह (बैलपर सवारी करनेवाला अथवा बैलको जोतनेवाला), शूद्रके श्राद्धान्नका भोजी, शूद्रका रसोइया, शूद्रका पुरोहित, गाँवका पुरोहित, कुशकी पुत्तलिका, मुर्दा जलानेवाला, खाली घड़ा, फूटा घड़ा, तेल, नमक,

हड्डी, रुई, कछुआ, धूल, भूँकता हुआ कुत्ता, दाहिनी ओर भयंकर शब्द करता हुआ सियार, जटा, हजामत, कटा हुआ बाल, नख, मल, कलह, विलाप करता हुआ मनुष्य, अमङ्गलसूचक विलाप करनेवाला तथा शोककारक रुदन करनेवाला, झूठी गवाही देनेवाला, चोर मनुष्य, हत्यारा, कुलटाका पति और पुत्र, कुलटाका अन्न खानेवाला, देवता, गुरु और ब्राह्मणोंकी वस्तुओं तथा धनका अपहरण करनेवाला, दान देकर छीन लेनेवाला, डाकू, हिंसक, चुगलखोर, दुष्ट, पिता-मातासे विरक्त, ब्राह्मण और पीपलका विघातक, सत्यका हनन करनेवाला, कृतघ्न, धरोहर हड़प लेनेवाला मनुष्य, विप्रद्रोही, मित्रद्रोही, घायल, विश्वासघातक, गुरु, देवता और ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला, अपने अङ्गोंको काटनेवाला, जीवहिंसक, अपने अङ्गसे हीन, निर्दयी, व्रत-उपवाससे रहित, दीक्षाहीन, नपुंसक, कुष्ठरोगी, काना, बहरा, पुक्कस (जातिविशेष), कटे हुए लिङ्गवाला (नागा), मदिरासे मतवाला, मदिरा, पागल, खून उगलनेवाला, भैंसा, गदहा, मूत्र, विष्ठा, कफ, मनुष्यकी सूखी खोपड़ी, प्रचण्ड आँधी, रक्तकी वृष्टि, बाधा, वृक्षका गिराया जाना, भेड़िया, सूअर, गीध, बाज, कङ्क (एक मांसाहारी पक्षी), भालू, पाश, सूखी लकड़ी, कौआ, गन्धक, पहले-पहल दान लेनेवाला ब्राह्मण (महापात्र), तन्त्र-मन्त्रसे जीविका चलानेवाला, वैद्य, रक्त-पुष्प, औषध, भूसी, दूषित समाचार, मृतककी बातचीत, ब्राह्मणका दारुण शाप, दुर्गन्धयुक्त वायु और दुःशब्द आदि राजाके सामने आये। राजाका मन दूषित हो गया, प्राण निरन्तर क्षुब्ध रहने लगे, बायाँ अङ्ग फड़कने लगा और शरीरमें जड़ता आ गयी तथापि राजाको युद्धमें ही अपना मङ्गल दीख रहा था; अतः वह निःशङ्क हो सारी सेनाओंको साथ लेकर युद्धक्षेत्रमें प्रविष्ट हुआ। वहाँ भृगुवंशी परशुरामको सामने देखकर वह तुरंत रथसे उतर पड़ा और भक्तिपूर्वक बड़े-बड़े राजाओंके साथ दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया। तब परशुरामने 'तुम स्वर्गमें जाओ' ऐसा राजाको उसका अभीष्ट आशीर्वाद दिया। यह उनके मनोऽनुकूल ही हुआ; क्योंकि ब्राह्मणके आशीर्वचन दुर्लङ्घ्य होते हैं। तदनन्तर राजराजेश्वर कार्तवीर्य उसी क्षण राजाओंसहित परशुरामको नमस्कार करके तुरंत ही रथपर, जो नाना प्रकारकी युद्ध-सामग्रीसे सम्पन्न था, सवार हुआ। फिर उसने सहसा दुन्दुभि, मुरज आदि

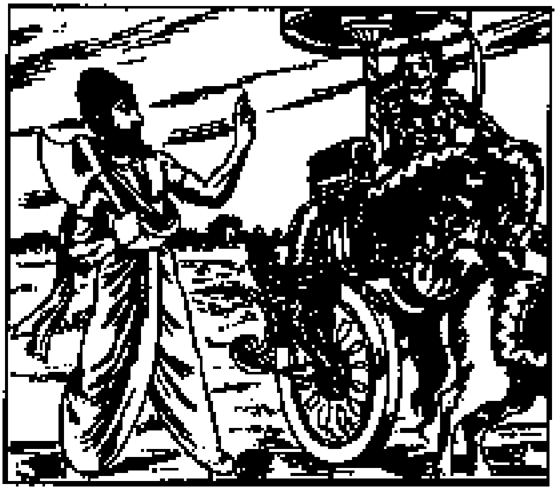

तरह-तरहके बाजे बजवाये और ब्राह्मणोंको धन दान किया। तब वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ परशुराम राजाओंकी उस सभामें राजाधिराज कार्तवीर्यसे हितकारक, सत्य एवं नीतियुक्त वचन बोले।

परशुरामने कहा—अये धर्मिष्ठ राजेन्द्र! तुम तो चन्द्रवंशमें उत्पन्न हुए हो और विष्णुके अंशभूत बुद्धिमान् दत्तात्रेयके शिष्य हो। तुम स्वयं विद्वान् हो और वेदज्ञोंके मुखसे तुमने वेदोंका श्रवण भी किया है; फिर भी तुम्हें इस समय सज्जनोंको विडम्बित करनेवाली दुर्बुद्धि कैसे उत्पन्न हो गयी? तुमने पहले लोभवश निरीह ब्राह्मणकी हत्या कैसे कर डाली? जिसके कारण सती-साध्वी ब्राह्मणी शोक-संतप्त होकर पतिके

साथ सती हो गयी। भूपाल! इन दोनोंके वधसे परलोकमें तुम्हारी क्या गति होगी? यह सारा संसार तो कमलके पत्तेपर पड़े हुए जलकी बूँदकी तरह मिथ्या ही है। सुयश हो अथवा अपयश, इसकी तो कथामात्र अवशिष्ट रह जाती है। अहो! सत्पुरुषोंकी दुष्कीर्ति हो, इससे बढ़कर और क्या विडम्बना होगी? कपिला कहाँ गयी, तुम कहाँ गये, विवाद कहाँ गया और मुनि कहाँ चले गये; परंतु एक विद्वान् राजाने जो कर्म कर डाला, वह हलवाहा भी नहीं कर सकता। मेरे धर्मात्मा पिताने तो तुम-जैसे नरेशको उपवास करते देखकर भोजन कराया और तुमने उन्हें वैसा फल दिया! राजन्? तुमने शास्त्रोंका अध्ययन किया है, तुम प्रतिदिन ब्राह्मणोंको विधिपूर्वक दान देते हो और तुम्हारे यशसे सारा जगत् व्याप्त है। फिर बुढ़ापेमें तुम्हारी अपकीर्ति कैसे हुई? प्राचीन कालके बन्दीगण ऐसा कहते हैं कि भूतलपर कार्तवीर्यार्जुनके समान दाता, सर्वश्रेष्ठ, धर्मात्मा, यशस्वी, पुण्यशाली और उत्तम बुद्धिसम्पन्न न कोई हुआ है और न आगे होगा। जो पुराणोंमें विख्यात है, उसकी ऐसी अपकीर्ति! आश्चर्य है। राजन्! प्राणियोंके लिये दुर्वाक्य तीखे अस्त्रसे भी बढ़कर दुस्सह होता है; इसीलिये संकट-कालमें भी सत्पुरुषोंके मुखसे दुर्वचन नहीं निकलते। राजेन्द्र! मैं तुमपर दोषारोपण नहीं कर रहा हूँ, बल्कि सच्ची बात कह रहा हूँ; अतः इस राजसभामें तुम मुझे उत्तर दो। इस सभामें सूर्य, चन्द्र और मनुके वंशज विद्यमान हैं; अतः सभामें तुम ठीक-ठीक बतलाओ, जिसे तुम्हारे पितर और देवगण भी सुनें। साथ ही सत्-असत्को कहनेमें समर्थ ये सारे नरेश भी श्रवण करें; क्योंकि समदृष्टि रखनेवाले सत्पुरुष लोग पक्षपातकी बात नहीं कहते। युद्धस्थलमें इतना कहकर परशुराम चुप हो गये। तब बृहस्पतिके समान बुद्धिमान् राजाने कहना आरम्भ किया।

कार्तवीर्यार्जुनने कहा—हे राम! आप श्रीहरिके अंश, हरिके भक्त और जितेन्द्रिय हैं। मैंने जिनके मुखसे धर्म श्रवण किया है, आप उनके गुरुके भी गुरु हैं। जो कर्मवश ब्राह्मण-कुलमें उत्पन्न हुआ है, ब्रह्म-चिन्तन करता है और अपने धर्ममें तत्पर एवं शुद्ध है, इसीलिये वह ब्राह्मण कहलाता है। जो मनन करनेके कारण नित्य बाहर-भीतर कर्म करता रहता है, सदा मौन धारण किये रहता है और समय आनेपर बोलता है, वह मुनि कहलाता है। जिसकी सुवर्ण और मिट्टीके ढेलेमें, घर और जंगलमें तथा कीचड़ और अत्यन्त चिकने चन्दनमें समताकी भावना है, वह योगी कहा जाता है। जो सम्पूर्ण जीवोंमें समत्व-बुद्धिसे विष्णुकी भावना करता है और श्रीहरिकी भक्ति करता है, वह हरिभक्त कहा जाता है*। ब्राह्मणोंका धन तप है। चूँकि तपस्या कल्पतरु और कामधेनुके समान है, इसीलिये उनकी निरन्तर तपमें इच्छा लगी रहती है। रजोगुणी पुरुष कर्मोंके रागवश राजसिक कार्य करता है और रागान्ध होकर रजोगुणी कार्योंमें लगा रहता है; इसी कारण वह राजा कहा जाता है। मुने! रागवश मैंने कामधेनुकी याचना की थी; अतः मुझ अनुरागी क्षत्रियका इसमें कौन-सा अपराध हुआ? फिर भी, आपके पिताने महान्

---

* कर्मणा ब्राह्मणो जातः करोति ब्रह्मभावनम्। स्वधर्मनिरतः शुद्धस्तस्माद् ब्राह्मण उच्यते॥
अन्तर्बहिश्च मननात् कुरुते कर्म नित्यशः। मौनी शश्वद् वदेत् काले यो हि स मुनिरुच्यते॥
स्वर्णे लोष्टे गृहेऽरण्ये पङ्के सुस्निग्धचन्दने। समता भावना यस्य स योगी परिकीर्तितः॥
सर्वजीवेषु यो विष्णुं भावयेत् समताधिया। हरौ करोति भक्तिं च हरिभक्तः स च स्मृतः॥
(गणपतिखण्ड ३५। ७०—७३)

बल-पराक्रमसे सम्पन्न बहुत-से भूपालोंका वध कर डाला। इस समय यहाँ शिशु-अवस्थावाले राजकुमार ही आये हैं। आपने सम्पूर्ण पृथ्वीको इक्कीस बार भूपालोंसे शून्य कर देनेके लिये जो प्रतिज्ञा की है, उसका पालन कीजिये। युद्ध करना तो क्षत्रियोंका धर्म ही है। युद्धमें मृत्युको प्राप्त हो जाना उनके लिये निन्दित नहीं है; परंतु ब्राह्मणोंकी रण-स्पृहा लोक और वेद—दोनोंमें विडम्बनाकी पात्र है। सात्त्विकी ही जिनका बल और तप ही जिनका धन है, उन ब्राह्मणोंकी शान्ति ही प्रत्येक युगमें स्वस्तिकारक कर्म है। युद्ध करना ब्राह्मणका धर्म नहीं है। शान्तिपरायण ब्राह्मण युद्धके लिये उद्योगशील हो, ऐसा तो न देखनेमें ही आया है और न सुना ही गया है। भगवान् नारायणके विद्यमान रहते यह दूसरी तरहका उलट-फेर कैसे हो गया?

रणाङ्गणमें यों कहकर राजेन्द्र कार्तवीर्य शान्त हो गया। उसके उस वचनको सुनकर सभी लोग मौन हो गये। तदनन्तर परशुरामके सभी भाई, जो बड़े शूरवीर तथा हाथोंमें अत्यन्त तीखे शस्त्र धारण किये हुए थे, उनकी आज्ञासे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। तब जो स्वयं मङ्गलस्वरूप तथा मङ्गलोंका आश्रयस्थान था, उस महाबली मत्स्यराजने भी उन सबको युद्धोन्मुख देखकर युद्ध करना आरम्भ किया। उस राजेन्द्रने बाणोंका जाल बिछाकर उन सभीको रोक दिया। तब जमदग्निके पुत्रोंने उस बाण-समूहको छिन्न-भिन्न कर दिया। मुने! राजाने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान दिव्यास्त्र चलाया; परंतु मुनियोंने माहेश्वर-अस्त्रके द्वारा खेल-ही-खेलमें उसे काट दिया। पुनः मुनियोंने दिव्यास्त्रद्वारा राजाके बाणसहित धनुष, रथ, सारथि और कवचकी धज्जियाँ उड़ा दीं। इस प्रकार राजाको शस्त्रहीन देखकर मुनियोंको महान् हर्ष हुआ। तब उन्होंने मत्स्यराजका वध करनेकी इच्छासे शिवजीका त्रिशूल हाथमें उठाया। त्रिशूल चलाते समय आकाशवाणी हुई—'विप्रवरो! शिवजीका यह त्रिशूल अमोघ है, इसे मत चलाओ; क्योंकि मत्स्यराजके गलेमें सर्वाङ्गोंकी रक्षा करनेवाला शिवजीका दिव्य कवच बँधा है, जिसे पूर्वकालमें दुर्वासाने दिया था। अतः पहले राजासे उस प्राण-प्रदान करनेवाले कवचको माँग लो।' मुने! तदनन्तर परशुरामने त्रिशूल चलाकर राजापर चोट की, परंतु राजाके शरीरसे टकराकर उस त्रिशूलके सौ टुकड़े हो गये। तब आकाशवाणी सुनकर महान् पराक्रमी जमदग्निनन्दन परशुरामने शूलधारी संन्यासीका वेष धारण करके राजासे कवचकी याचना की। राजाने 'ब्रह्माण्ड-विजय' नामक वह उत्तम कवच उन्हें दे दिया। उस कवचको लेकर परशुरामने पुनः त्रिशूलसे ही प्रहार किया। उसके आघातसे मत्स्यराज, जो चन्द्रवंशमें उत्पन्न, गुणवान् और महाबली था, जिसके मुखकी कान्ति सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान थी, भूतलपर गिर पड़ा।

नारदने कहा—महाभाग नारायण! मत्स्यराजने शिवजीके जिस कवचको धारण किया था, उसका वर्णन कीजिये; क्योंकि उसे सुननेके लिये मुझे कौतूहल हो रहा है।

नारायण बोले—विप्रवर! महात्मा शंकरके उस 'ब्रह्माण्डविजय' नामक कवचका, जो सर्वाङ्गकी रक्षा करनेवाला है, वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालमें दुर्वासाने बुद्धिमान् मत्स्यराजको सम्पूर्ण पापोंका समूल नाश करनेवाला षडक्षर-मन्त्र बतलाकर इसे प्रदान किया था। यदि सिद्धि प्राप्त हो जाय तो इस कवचके शरीरपर स्थित रहते अस्त्र-शस्त्रके प्रहारके समय, जलमें तथा अग्निमें प्राणियोंकी मृत्यु नहीं होती—इसमें संशय नहीं है। जिसे पढ़कर एवं धारण करके दुर्वासा सिद्ध होकर लोकपूजित हो गये, जिसके पढ़ने और धारण करनेसे जैगीषव्य महायोगी कहलाने लगे। जिसे धारण करके वामदेव, देवल, स्वयं च्यवन,

अगस्त्य और पुलस्त्य विश्ववन्द्य हो गये। 'ॐ नमः शिवाय' यह सदा मेरे मस्तककी रक्षा करे। 'ॐ नमः शिवाय स्वाहा' यह सदा ललाटकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवाय स्वाहा' सदा नेत्रोंकी रक्षा करे। ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवाय नमः' मेरी नासिकाकी रक्षा करे। 'ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा' सदा कण्ठकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा' सदा कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा' सदा दाँतकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा' सदा मेरे ओठकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा' सदा केशोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा' सदा छातीकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं रुद्राय स्वाहा' सदा नाभिकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा' सदा पृष्ठभागकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा भौंहोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा' सदा पार्श्वभागकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं ईश्वराय स्वाहा' सदा मेरे उदरकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा' सदा भुजाओंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा' मेरे हाथोंकी रक्षा करे। 'ॐ महेश्वराय रुद्राय नमः' सदा मेरे नितम्बकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा' सदा पैरोंकी रक्षा करे। 'ॐ सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा' सदा सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्वमें 'भूतेश' मेरी रक्षा करें। अग्निकोणमें 'शंकर' रक्षा करें। दक्षिणमें 'रुद्र' तथा नैर्ऋत्यकोणमें स्थाणु मेरी रक्षा करें। पश्चिममें 'खण्डपरशु', वायव्यकोणमें 'चन्द्रशेखर', उत्तरमें 'गिरिश' और ईशानकोणमें स्वयं 'ईश्वर' रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें 'मृड' और अधोभागमें स्वयं 'मृत्युञ्जय' सदा रक्षा करें। जलमें, स्थलमें, आकाशमें, सोते समय अथवा जागते रहनेपर भक्तवत्सल 'पिनाकी' सदा मुझ भक्तकी स्नेहपूर्वक रक्षा करें।

वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे इस परम अद्भुत कवचका वर्णन कर दिया। इसके दस लाख जपसे ही सिद्धि हो जाती है, यह निश्चित है। यदि यह कवच सिद्ध हो जाय तो वह निश्चय ही रुद्र-तुल्य हो जाता है। वत्स! तुम्हारे स्नेहके कारण मैंने वर्णन कर दिया है, तुम्हें इसे किसीको नहीं बतलाना चाहिये; क्योंकि यह काण्वशाखोक्त कवच अत्यन्त गोपनीय तथा परम दुर्लभ है। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों राजसूय—ये सभी इस कवचकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। इस कवचकी कृपासे मनुष्य निश्चय ही जीवन्मुक्त, सर्वज्ञ, सम्पूर्ण सिद्धियोंका स्वामी और मनके समान वेगशाली हो जाता है। इस कवचको बिना जाने जो भगवान् शंकरका भजन करता है, उसके लिये एक करोड़ जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।* (अध्याय ३५)

---

* नारायण उवाच—

कवचं शृणु विप्रेन्द्र शंकरस्य महात्मनः । ब्रह्माण्डविजयं नाम सर्वावयवरक्षणम् ॥
पुरा दुर्वाससा दत्तं मत्स्यराजाय धीमते । दत्त्वा षडक्षरं मन्त्रं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
स्थिते च कवचे देहे नास्ति मृत्युश्च जीविनाम् । अस्त्रे शस्त्रे जले वह्नौ सिद्धिश्चेन्नास्ति संशयः ॥
यद् धृत्वा पठनात् सिद्धो दुर्वासा विश्वपूजितः । जैगीषव्यो महायोगी पठनाद् धारणाद् यतः ॥
यद् धृत्वा वामदेवश्च देवलश्च्यवनः स्वयम् । अगस्त्यश्च पुलस्त्यश्च बभूव विश्वपूजितः ॥
ॐ नमः शिवायेति च मस्तकं मे सदाऽवतु । ॐ नमः शिवायेति च स्वाहा भालं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं शिवायेति स्वाहा नेत्रे सदाऽवतु । ॐ ह्रीं क्लीं हूं शिवायेति नमो मे पातु नासिकाम् ॥
ॐ नमः शिवाय शान्ताय स्वाहा कण्ठं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं श्रीं हूं संहारकर्त्रे स्वाहा कर्णौ सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं श्रीं पञ्चवक्त्राय स्वाहा दन्तं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं महेशाय स्वाहा चाधरं पातु मे सदा ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं त्रिनेत्राय स्वाहा केशान् सदाऽवतु । ॐ ह्रीं ऐं महादेवाय स्वाहा वक्षः सदाऽवतु ॥

मत्स्यराजके वधके पश्चात् अनेकों राजाओंका आना और परशुरामद्वारा मारा जाना, पुनः राजा सुचन्द्र और परशुरामका युद्ध, परशुरामद्वारा कालीस्तवन, ब्रह्माका आकर परशुरामको युक्ति बताना, परशुरामका राजा सुचन्द्रसे मन्त्र और कवच माँगकर उसका वध करना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! युद्धमें मत्स्यराजके गिर जानेपर महाराज कार्तवीर्यके भेजे हुए बृहद्बल, सोमदत्त, विदर्भ, मिथिलेश्वर, निषधराज, मगधाधिपति एवं कान्यकुब्ज, सौराष्ट्र, राढीय, वारेन्द्र, सौम्य वंगीय, महाराष्ट्र, गुर्जरजातीय और कलिंग आदिके सैकड़ों-सैकड़ों राजा बारह अक्षौहिणी सेनाके साथ आये; परंतु परशुरामजीने सबको रणभूमिमें सुला दिया। यह देखकर एक लाख नरपतियोंके साथ बारह अक्षौहिणी सेना लेकर राजा सुचन्द्र रणस्थलमें आये। सुचन्द्रके साथ भयानक युद्ध हुआ, पर वे परास्त न हो सके। तब परशुरामने देखा कि मुण्डमाला धारण किये हुए विकटानना भयंकरी जगज्जननी भद्रकाली उनकी रक्षा कर रही हैं। यह देखकर परशुरामने शस्त्रास्त्रका त्याग करके महामायाकी स्तुति आरम्भ की।

परशुराम बोले—आप शंकरजीकी प्रियतमा पत्नी हैं, आपको नमस्कार है। सारस्वरूपा आपको बारंबार प्रणाम है। दुर्गतिनाशिनीको मेरा अभिवादन है। मायारूपा आपको मैं बारंबार सिर झुकाता हूँ। जगद्धात्रीको नमस्कार-नमस्कार। जगत्कर्त्रीको पुनः-पुनः प्रणाम। जगज्जननीको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। कारणरूपा आपको बारंबार अभिवादन है। सृष्टिका संहार करनेवाली जगन्माता! प्रसन्न होइये। मैं आपके चरणोंकी शरण ग्रहण करता हूँ, मेरी प्रतिज्ञा सफल कीजिये। मेरे प्रति आपके विमुख हो जानेपर कौन मेरी रक्षा कर सकता है? भक्तवत्सले! शुभे! आप मुझ भक्तपर कृपा कीजिये। सुमुखि! पहले शिवलोकमें आपलोगोंने मुझे जो वरदान दिया था, उस वरको आपको सफल करना चाहिये।

परशुरामद्वारा किये गये इस स्तवनको सुनकर

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं शिवाय स्वाहा नाभिं सदाऽवतु । ॐ ह्रीं ऐं श्रीं ईश्वराय स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा पुरः सदाऽवतु । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईशानाय स्वाहा पार्श्वं सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं ईश्वराय स्वाहा उदरं पातु मे सदा । ॐ श्रीं क्लीं मृत्युञ्जयाय स्वाहा बाहू सदाऽवतु ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईश्वराय स्वाहा पातु करौ मम । ॐ महेश्वराय रुद्राय नितम्बं पातु मे सदा ॥
ॐ ह्रीं श्रीं भूतनाथाय स्वाहा पादौ सदाऽवतु । ॐ सर्वेश्वराय सर्वाय स्वाहा सर्वं सदाऽवतु ॥
प्राच्यां मां पातु भूतेश आग्नेय्यां पातु शंकरः । दक्षिणे पातु मां रुद्रो नैर्ऋत्यां स्थाणुरेव च ॥
पश्चिमे खण्डपरशुर्वायव्यां चन्द्रशेखरः । उत्तरे गिरिशः पातु ऐशान्यामीश्वरः स्वयम् ॥
ऊर्ध्वे मृडः सदा पातु अधो मृत्युञ्जयः स्वयम् । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे सदा ॥
पिनाकी पातु मां प्रीत्या भक्तं च भक्तवत्सलः ॥

इति ते कथितं वत्स कवचं परमाद्भुतम् । दशलक्षजपेनैव सिद्धिर्भवति निश्चितम् ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो रुद्रतुल्यो भवेद् ध्रुवम् । तव स्नेहान्मयाऽऽख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥
कवचं काण्वशाखोक्तमतिगोप्यं सुदुर्लभम् ॥

अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च । सर्वाणि कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । सर्वज्ञः सर्वसिद्धीशो मनोयायी भवेद् ध्रुवम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् यः शंकरं प्रभुम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
(गणपतिखण्ड ३५ । ११४-१२९)

अम्बिकाका मन प्रसन्न हो गया और 'भय मत करो' यों कहकर वे वहीं अन्तर्धान हो गयीं। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस परशुरामकृत स्तोत्रका पाठ करता है, वह अनायास ही महान् भयसे छूट जाता है। वह त्रिलोकीमें पूजित, त्रैलोक्यविजयी, ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और शत्रुपक्षका विमर्दन करनेवाला हो जाता है*। इसी बीच ब्रह्माजी धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ भृगुवंशी परशुरामके पास आकर उनसे उस रहस्यका वर्णन करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—महाभाग राम! अपनी प्रतिज्ञा सफल करनेके लिये पहले तुम सुचन्द्रकी विजयके हेतुभूत रहस्यका मुझसे श्रवण करो। पूर्वकालमें दुर्वासाने सुचन्द्रको दशाक्षरी महाविद्या तथा भद्रकालीका परम दुर्लभ कवच प्रदान किया था। भद्रकालीका कवच देवताओंके लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है। वह कवच सम्पूर्ण शत्रुओंका विनाश करनेवाला, अत्यन्त पूजनीय, प्रशंसनीय और त्रिलोकीपर विजय पानेका कारण है। वह कवच जिसके गलेमें वर्तमान है, उसे जीतनेके लिये भूतलपर तुम कैसे समर्थ हो सकते हो? अतः भार्गव! तुम भिक्षाके लिये जाओ और राजासे प्रार्थना करो। सूर्यवंशमें उत्पन्न हुआ वह राजा परम धर्मात्मा एवं दानी है। माँगनेपर वह निश्चय ही प्राण, कवच, मन्त्र आदि सब कुछ दे डालेगा।

मुने! तब परशुराम संन्यासीका वेष धारण करके राजाके पास गये और उससे उन्होंने मन्त्र तथा परम अद्भुत कवचकी याचना की। तब राजाने अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें मन्त्र और कवच दे दिया। तदनन्तर परशुरामने शंकरजीके त्रिशूलसे उस राजाका काम तमाम कर दिया।

(अध्याय ३६)

दशाक्षरी विद्या तथा काली-कवचका वर्णन

नारदजीने कहा—सर्वज्ञ नाथ! अब मैं आपके मुखसे भद्रकाली-कवच तथा उस दशाक्षरी विद्याको सुनना चाहता हूँ।

श्रीनारायण बोले—नारद! मैं दशाक्षरी महाविद्या तथा तीनों लोकोंमें दुर्लभ उस गोपनीय कवचका वर्णन करता हूँ, सुनो। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा' यही दशाक्षरी विद्या है। इसे पुष्करतीर्थमें सूर्य-ग्रहणके अवसरपर दुर्वासाने राजाको दिया था। उस समय राजाने दस लाख जप करके मन्त्र सिद्ध किया और

---

* परशुराम उवाच—

नमः शंकरकान्तायै सारायै ते नमो नमः। नमो दुर्गतिनाशिन्यै मायायै ते नमो नमः॥
नमो नमो जगद्धात्र्यै जगत्कर्त्र्यै नमो नमः। नमोऽस्तु ते जगन्मात्रे कारणायै नमो नमः॥
प्रसीद जगतां मातः सृष्टिसंहारकारिणि। त्वत्पादे शरणं यामि प्रतिज्ञां सार्थिकां कुरु॥
त्वयि मे विमुखायां च को मां रक्षितुमीश्वरः। त्वं प्रसन्ना भव शुभे मां भक्तं भक्तवत्सले॥
युष्माभिः शिवलोके च मह्यं दत्तो वरः पुरा। तं वरं सफलं कर्तुं त्वमर्हसि वरानने॥
जामदग्न्यस्तवं श्रुत्वा प्रसन्नाभवदम्बिका। मा भैरित्येवमुक्त्वा तु तत्रैवान्तरधीयत॥
एतद् भृगुकृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। महाभयात् समुत्तीर्णः स भवेदवलीलया॥
स पूजितश्च त्रैलोक्ये त्रैलोक्यविजयी भवेत्। ज्ञानिश्रेष्ठो भवेच्चैव वैरिपक्षविमर्दकः॥

(गणपतिखण्ड ३६। २१—३५)

इस उत्तम कवचके पाँच लाख जपसे ही वे सिद्धकवच हो गये। तत्पश्चात् वे अयोध्यामें लौट आये और इसी कवचकी कृपासे उन्होंने सारी पृथ्वीको जीत लिया।

नारदजीने कहा—प्रभो! जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ है, उस दशाक्षरी विद्याको तो मैंने सुन लिया। अब मैं कवच सुनना चाहता हूँ, वह मुझसे वर्णन कीजिये।

श्रीनारायण बोले—विप्रेन्द्र! पूर्वकालमें त्रिपुर-वधके भयंकर अवसरपर शिवकी विजयके लिये नारायणने कृपा करके शिवको जो परम अद्भुत कवच प्रदान किया था, उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। मुने! वह कवच अत्यन्त गोपनीयोंसे भी गोपनीय, तत्त्वस्वरूप तथा सम्पूर्ण मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। उसीको पूर्वकालमें शिवजीने दुर्वासाको दिया था और दुर्वासाने महामनस्वी राजा सुचन्द्रको प्रदान किया था।

'**ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**' मेरे मस्तककी रक्षा करे। '**क्लीं**' कपालकी तथा '**ह्रीं ह्रीं ह्रीं**' नेत्रोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा**' सदा मेरी नासिकाकी रक्षा करे। '**क्रीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा**' सदा दाँतोंकी रक्षा करे। '**ह्रीं भद्रकालिके स्वाहा**' मेरे दोनों ओठोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा**' सदा कण्ठकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा**' सदा दोनों कानोंकी रक्षा करे। '**ॐ क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा**' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। '**ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा**' सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। '**ॐ क्रीं कालिकायै स्वाहा**' सदा मेरी नाभिकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा**' सदा मेरे पृष्ठभागकी रक्षा करे। '**रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा**' सदा हाथोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा**' सदा पैरोंकी रक्षा करे। '**ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा**' सदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्वमें '**महाकाली**' और अग्निकोणमें '**रक्तदन्तिका**' रक्षा करें। दक्षिणमें चामुण्डा रक्षा करें। नैर्ऋत्यकोणमें '**कालिका**' रक्षा करें। पश्चिममें '**श्यामा**' रक्षा करें। वायव्यकोणमें '**चण्डिका**', उत्तरमें '**विकटास्या**' और ईशानकोणमें '**अट्टहासिनी**' रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें '**लोलजिह्वा**' रक्षा करें। अधोभागमें सदा '**आद्यामाया**' रक्षा करें। जल, स्थल और अन्तरिक्षमें सदा '**विश्वप्रसू**' रक्षा करें।

वत्स! यह कवच समस्त मन्त्रसमूहका मूर्तरूप, सम्पूर्ण कवचोंका सारभूत और उत्कृष्टसे भी उत्कृष्टतर है; इसे मैंने तुम्हें बतला दिया। इसी कवचकी कृपासे राजा सुचन्द्र सातों द्वीपोंके अधिपति हो गये थे। इसी कवचके प्रभावसे पृथ्वीपति मान्धाता सप्तद्वीपवती पृथ्वीके अधिपति हुए थे। इसीके बलसे प्रचेता और लोमश सिद्ध हुए थे तथा इसीके बलसे सौभरि और पिप्पलायन योगियोंमें श्रेष्ठ कहलाये। जिसे यह कवच सिद्ध हो जाता है, वह समस्त सिद्धियोंका स्वामी बन जाता है। सभी महादान, तपस्या और व्रत इस कवचकी सोलहवीं कलाकी भी बराबरी नहीं कर सकते, यह निश्चित है। जो इस कवचको जाने बिना जगज्जननी कालीका भजन करता है, उसके लिये एक करोड़ जप करनेपर भी यह मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।

(अध्याय ३७)

सुचन्द्र-पुत्र पुष्कराक्षके साथ परशुरामका युद्ध, पाशुपतास्त्र छोड़नेके लिये उद्यत परशुरामके पास विष्णुका आना और उन्हें समझाना, विष्णुका विप्रवेषसे पुत्रसहित पुष्कराक्षसे लक्ष्मीकवच तथा दुर्गाकवचको माँग लेना, लक्ष्मी-कवचका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं— ब्रह्मन्! रणक्षेत्रमें राजाधिराजोंके शिरोमणि सुचन्द्रके गिर जानेपर तीन अक्षौहिणी सेनाके साथ पुष्कराक्ष आ धमका। महान् पराक्रमी राजा पुष्कराक्ष सूर्यवंशमें उत्पन्न, महालक्ष्मीका सेवक, लक्ष्मीवान् और सूर्यके समान प्रभाशाली था। यह सुचन्द्रका पुत्र था। उसके गलेमें महालक्ष्मीका मनोहर कवच बँधा था, जिसके प्रभावसे वह परमैश्वर्यसम्पन्न और त्रिलोकविजयी हो गया था। उसे देखकर बुद्धिमान् परशुरामके सभी भाई हाथोंमें नाना प्रकारके शस्त्रास्त्र धारण करके युद्ध करनेके लिये आ डटे। राजाने लीलापूर्वक बाणसमूहकी वर्षा करके उन्हें छेद डाला। तब उन वीरोंने भी हँसते-हँसते उन बाणोंके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। फिर तो पुष्कराक्षके साथ घोर युद्ध आरम्भ हुआ। परशुरामने पाशुपतास्त्रके सिवा सभी अस्त्र-शस्त्रोंका प्रयोग किया, पर पुष्कराक्षने सबको काट गिराया। तब अपने समस्त शस्त्रास्त्रोंको विफल देखकर परशुरामने स्नान करके शिवजीको प्रणाम किया और पाशुपतास्त्रका प्रयोग करना चाहा; इतनेमें भगवान् नारायण ब्राह्मणका वेष धारण करके वहाँ प्रकट हो गये और बोले।

ब्राह्मणवेषधारी नारायणने कहा— वत्स भार्गव! यह क्या कर रहे हो? तुम तो ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो; फिर भ्रमवश क्रोधावेशमें आकर मनुष्यका वध करनेके लिये पाशुपतका प्रयोग क्यों कर रहे हो? इस पाशुपतसे तो तत्काल ही सारा विश्व भस्म हो सकता है; क्योंकि यह शस्त्र परमेश्वर श्रीकृष्णके अतिरिक्त और सबका विनाशक है। अहो! पाशुपतको जीतनेकी शक्ति तो सुदर्शनमें ही है; क्योंकि श्रीहरिका सुदर्शनचक्र समस्त अस्त्रोंका मान मर्दन करनेवाला है। शिवजीका पाशुपतास्त्र और श्रीहरिका सुदर्शनचक्र—ये ही दोनों तीनों लोकोंमें समस्त अस्त्रोंमें प्रधान हैं। इसलिये ब्रह्मन्! तुम पाशुपतास्त्रको रख दो और मेरी बात सुनो। इस समय तुम जिस प्रकार महाबली राजा पुष्कराक्षको जीत सकोगे तथा जिस प्रकार अजेय कार्तवीर्यपर विजय पा सकोगे, वह सारा उपाय तुम्हें बतलाता हूँ; सावधानतया श्रवण करो। महालक्ष्मीका कवच, जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ है, पुष्कराक्षने भक्तिपूर्वक विधि-विधानके साथ अपने गलेमें धारण कर रखा है और पुष्कराक्षका पुत्र दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका परम अद्भुत एवं उत्तम कवच अपनी दाहिनी भुजापर बाँधे हुए है। इन कवचोंकी कृपासे ये दोनों विश्वपर विजय पा लेनेमें समर्थ हैं। उनके शरीरपर कवचोंके वर्तमान रहते त्रिभुवनमें उन्हें कौन जीत सकता है। मुने! मैं तुम्हारी प्रतिज्ञा सफल करनेके निमित्त उन दोनोंके संनिकट माँगनेके लिये जाऊँगा और उनसे कवचकी याचना करूँगा। ब्राह्मणकी बात सुनकर परशुरामका मन भयभीत हो गया, तब वे दुःखी हृदयसे उस वृद्ध ब्राह्मणसे बोले।

परशुरामने कहा— 'महाप्राज्ञ! ब्राह्मणरूपधारी आप कौन हैं, मैं यह नहीं जान पा रहा हूँ; अतः मुझ अनजानको शीघ्र ही अपना परिचय दीजिये, तत्पश्चात् राजाके पास जाइये।' परशुरामका वचन सुनकर ब्राह्मणको हँसी आ गयी, वे 'मैं विष्णु हूँ' यों कहकर राजाके पास याचना करनेके लिये चले गये। उन दोनोंके संनिकट जाकर विष्णुने उनसे कवचकी याचना की। तब विष्णुकी

मायासे मोहित होकर उन्होंने विष्णुको दोनों कवच दान कर दिये। भगवान् विष्णु उन कवचोंको लेकर वैकुण्ठको चले गये।

नारदजीने पूछा—महामुने! भूपाल पुष्कराक्षको महालक्ष्मीका कवच किसने दिया था? तथा पुष्कराक्षके पुत्रको दुर्गाका दुर्लभ कवच किसने बताया था? आप इसे बतलानेकी कृपा करें; क्योंकि इसे सुननेकी मेरी प्रबल उत्कण्ठा है। जगद्गुरो! साथ ही मुझे यह भी बताइये कि उन दोनोंके कवच कैसे थे, उनका क्या फल है और वे दोनों मन्त्र किस तरहके थे?

श्रीनारायणने कहा—नारद! बुद्धिमान् पुष्कराक्षको महालक्ष्मीका कवच और दशाक्षर-मन्त्र सनत्कुमारने दिया था। उन्होंने ही गोपनीय स्तोत्र, उसका चरित, पूजाकी विधि और सामवेदोक्त मनोहर ध्यान भी बतलाया था। दुर्गाका कवच, गुह्य स्तोत्र और दशाक्षर-मन्त्र पूर्वकालमें दुर्वासाने पुष्कराक्ष-पुत्रको प्रदान किया था। इसके पश्चात् देवीके उस परम अद्भुत सम्पूर्ण चरितको सुनोगे, जिसे उन्होंने महायुद्धके आरम्भमें प्रार्थना करनेपर बतलाया था। अब मैं तुम्हें महालक्ष्मीका मन्त्र बतलाता हूँ; उसे श्रवण करो। 'ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' यही वह परम अद्भुत मन्त्र है। मुने! सनत्कुमारने बुद्धिमान् पुष्कराक्षको जो पूजाविधि और सामवेदोक्त ध्यान बतलाया था, उसे सुनो। सहस्रदलकमल जिनका आसन है, जो भगवान् पद्मनाभकी सती-साध्वी प्रियतमा हैं, कमल जिनका घर है, जिनका मुख कमलके सदृश और नेत्र कमलपत्रकी-सी आभावाले हैं, कमलका फूल जिन्हें अधिक प्रिय है, जो कमल-पुष्पकी शय्यापर शयन करती हैं, जिनके हाथमें कमल शोभा पाता है, जो कमल-पुष्पोंकी मालासे विभूषित हैं, कमलोंके आभूषण जिनकी शोभा बढ़ाते हैं, जो स्वयं कमलोंकी शोभाकी वृद्धि करनेवाली हैं और मुस्कराती हुई जो कमल-वनकी ओर निहार रही हैं; उन पद्मिनी देवीका मैं आनन्दपूर्वक भजन करता हूँ।

साधकको चाहिये कि चन्दनका अष्टदल-कमल बनाकर उसपर कमल-पुष्पोंद्वारा महालक्ष्मीकी पूजा करे। फिर 'गण' का भलीभाँति पूजन करके उन्हें षोडशोपचार समर्पित करे। तदनन्तर स्तुति करके भक्तिपूर्वक उनके सामने सिर झुकावे। ब्रह्मन्! अब सबका साररूप कवच तुम्हें बतलाता हूँ; सुनो।

श्रीनारायण आगे कहते हैं—विप्रवर! भगवान् पद्मनाभने अपने नाभिकमलपर स्थित ब्रह्माको लक्ष्मीका जो परम शुभकारक कवच प्रदान किया था, उसे सुनो। उस कवचको पाकर ब्रह्माने कमलपर बैठे-बैठे जगत्‌की सृष्टि की और महालक्ष्मीकी कृपासे वे लक्ष्मीवान् हो गये। फिर पद्मालयासे वरदान प्राप्त करके ब्रह्मा लोकोंके अधीश्वर हो गये। उन्हीं ब्रह्माने पद्मकल्पमें अपने प्रिय पुत्र बुद्धिमान् सनत्कुमारको यह परम अद्भुत कवच दिया था। नारद! सनत्कुमारने यह कवच पुष्कराक्षको प्रदान किया था, जिसके पढ़ने एवं धारण करनेसे ब्रह्मा समस्त सिद्धोंके स्वामी, महान् परमैश्वर्यसे सम्पन्न और सम्पूर्ण सम्पदाओंसे युक्त हो गये।

सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके प्रदाता इस कवचके प्रजापति ऋषि हैं, बृहती छन्द है, स्वयं पद्मालया देवी हैं और धर्म-अर्थ-काम-मोक्षमें इसका विनियोग किया जाता है। यह परम अद्भुत कवच महापुरुषोंके पुण्यका कारण है। 'ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तककी रक्षा करे। 'श्रीं' मेरे कपालकी और 'श्रीं श्रियै नमः' नेत्रोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा दोनों कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा' मेरी नासिकाकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा'

सदा दाँतोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै स्वाहा' सदा दाँतोंके छिद्रोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं नारायणेशायै स्वाहा' सदा मेरे कण्ठकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं केशवकान्तायै स्वाहा' सदा मेरे कंधोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा' सदा नाभिकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे स्वाहा' सदा मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा' सदा पीठकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा' सदा मेरे हाथोंकी रक्षा करे। 'ॐ श्रीं निवासकान्तायै स्वाहा' सदा मेरे पैरोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा' मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्व दिशामें 'महालक्ष्मी' और अग्निकोणमें 'कमलालया' मेरी रक्षा करें। दक्षिणमें 'पद्मा' और नैर्ऋत्यकोणमें 'श्रीहरिप्रिया' मेरी रक्षा करें। पश्चिममें 'पद्मालया' और वायव्यकोणमें स्वयं 'श्री' मेरी रक्षा करें। उत्तरमें 'कमला' और ईशानकोणमें 'सिन्धुकन्यका' रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें 'नारायणेशी' रक्षा करें। अधोभागमें 'विष्णुप्रिया' रक्षा करें। 'विष्णुप्राणाधिका' सदा सब ओरसे मेरी रक्षा करें।

वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे इस सर्वैश्वर्यप्रद नामक परम अद्भुत कवचका वर्णन कर दिया। यह समस्त मन्त्रसमुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। धर्मात्मा पुरुष ब्राह्मणको मेरुके समान सुवर्णका पहाड़ दान करके जो फल पाता है, उससे कहीं अधिक फल इस कवचसे मिलता है। जो मनुष्य विधिवत् गुरुकी अर्चना करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह प्रत्येक जन्ममें श्रीसम्पन्न होता है और उसके घरमें लक्ष्मी सौ पीढ़ियोंतक निश्चलरूपसे निवास करती हैं। वह देवेन्द्रों तथा राक्षसराजोंद्वारा निश्चय ही अवध्य हो जाता है। जिसके गलेमें यह कवच विद्यमान रहता है, उस बुद्धिमान्‌ने सभी प्रकारके पुण्य कर लिये, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली और समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। लोभ, मोह और भयसे भी इसे जिस-किसीको नहीं देना चाहिये; अपितु शरणागत एवं गुरुभक्त शिष्यके सामने ही प्रकट करना चाहिये। इस कवचका ज्ञान प्राप्त किये बिना जो जगज्जननी लक्ष्मीका जप करता है, उसके लिये करोड़ोंकी संख्यामें जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता।*

(अध्याय ३८)

---

* नारायण उवाच

सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम्॥
ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः॥
ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदाऽवतु। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम्॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदाऽवतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदाऽवतु। ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदाऽवतु॥
ॐ श्रीं निवासकान्तायै मम पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया। पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु श्रीः स्वयम्। उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका॥
नारायणेशी पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियाऽवतु। सततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम॥

दुर्गा-कवचका वर्णन

नारदजीने कहा—प्रभो! महालक्ष्मीके मनोहर कवचका वर्णन तो आपने कर दिया। ब्रह्मन्! अब दुर्गतिनाशिनी दुर्गाके उस उत्तम कवचको बतलाइये, जो पद्माक्षके प्राणतुल्य, जीवनदाता, बलका हेतु, कवचोंका सार-तत्त्व और दुर्गाकी सेवाका मूल कारण है।

श्रीनारायण बोले—नारद! प्राचीन कालमें श्रीकृष्णने गोलोकमें ब्रह्माको दुर्गाका जो शुभप्रद कवच दिया था, उसका वर्णन करता हूँ; सुनो। पूर्वकालमें त्रिपुर-संग्रामके अवसरपर ब्रह्माजीने इसे शंकरको दिया, जिसे भक्तिपूर्वक धारण करके रुद्रने त्रिपुरका संहार किया था। फिर शंकरने इसे गौतमको और गौतमने पद्माक्षको दिया, जिसके प्रभावसे विजयी पद्माक्ष सातों द्वीपोंका अधिपति हो गया। जिसके पढ़ने एवं धारण करनेसे ब्रह्मा भूतलपर ज्ञानवान् और शक्तिसम्पन्न हो गये। जिसके प्रभावसे शिव सर्वज्ञ और योगियोंके गुरु हुए और मुनिश्रेष्ठ गौतम शिव-तुल्य माने गये। इस 'ब्रह्माण्डविजय' नामक कवचके प्रजापति ऋषि हैं। गायत्री छन्द है। दुर्गतिनाशिनी दुर्गा देवी हैं और ब्रह्माण्डविजयके लिये इसका विनियोग किया जाता है। यह परम अद्भुत कवच महापुरुषोंका पुण्यतीर्थ है।

'ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा' मेरे मस्तककी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं' मेरे कपालकी और 'ॐ ह्रीं श्रीं' नेत्रोंकी रक्षा करे। 'ॐ दुर्गायै नमः' सदा मेरे दोनों कानोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं श्रीं' सदा सब ओरसे मेरी नासिकाकी रक्षा करे। 'ह्रीं श्रीं हूं' दाँतोंकी और 'क्लीं' दोनों ओठोंकी रक्षा करे। 'क्रीं क्रीं क्रीं' कण्ठकी रक्षा करे। 'दुर्गे' कपोलोंकी रक्षा करे। 'दुर्गविनाशिन्यै स्वाहा' निरन्तर कंधोंकी रक्षा करे। 'विपद्विनाशिन्यै स्वाहा' सब ओरसे मेरे वक्षःस्थलकी रक्षा करे। 'दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा' सदा नाभिकी रक्षा करे। 'दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष' सब ओरसे मेरी पीठकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा हाथ-पैरोंकी रक्षा करे। 'ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा' सदा मेरे सर्वाङ्गकी रक्षा करे। पूर्वमें 'महामाया' रक्षा करे। अग्निकोणमें 'कालिका', दक्षिणमें 'दक्षकन्या' और नैर्ऋत्यकोणमें 'शिवसुन्दरी' रक्षा करे। पश्चिममें 'पार्वती', वायव्यकोणमें 'वाराही', उत्तरमें 'कुबेरमाता' और ईशानकोणमें 'ईश्वरी' सदा-सर्वदा रक्षा करे। ऊर्ध्वभागमें 'नारायणी' रक्षा करें और अधोभागमें सदा 'अम्बिका' रक्षा करें। जाग्रत्कालमें ज्ञानप्रदा रक्षा करें और सोते समय निद्रा सदा रक्षा करें।

इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये। यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि॥
अस्ति लक्ष्मीर्गृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम्। देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत्॥
स सर्वपुण्यवान् धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि। गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत्॥
इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम्। कोटिसंख्यप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

(गणपतिखण्ड ३८। ५७—८२)

वत्स! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह 'ब्रह्माण्डविजय' नामक कवच बतला दिया। यह परम अद्भुत तथा सम्पूर्ण मन्त्र-समुदायका मूर्तिमान् स्वरूप है। समस्त तीर्थोंमें भलीभाँति गोता लगानेसे, सम्पूर्ण यज्ञोंका अनुष्ठान करनेसे तथा सभी प्रकारके व्रतोपवास करनेसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल मनुष्य इस कवचके धारण करनेसे पा लेता है। जो विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार और चन्दनसे गुरुकी पूजा करके इस कवचको गलेमें अथवा दाहिनी भुजापर धारण करता है, वह सम्पूर्ण शत्रुओंका मर्दन करनेवाला तथा त्रिलोकविजयी होता है। जो इस कवचको न जानकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका भजन करता है, उसके लिये एक करोड़ जप करनेपर भी मन्त्र सिद्धिदायक नहीं होता। नारद! यह काण्वशाखोक्त सुन्दर कवच, जिसका मैंने वर्णन किया है, परम गोपनीय तथा अत्यन्त दुर्लभ है। इसे जिस किसीको नहीं देना चाहिये।* (अध्याय ३९)

---

* नारायण उवाच—

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम्। श्रीकृष्णेनैव यद्दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शंकराय ददौ पुरा। जघान त्रिपुरं रुद्रो यद् धृत्वा भक्तिपूर्वकम्॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः। यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी॥
यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ज्ञानवान् शक्तिमान् भुवि। शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः।
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः॥
ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम्॥
ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। ॐ ह्रीं मे पातु कपालं च ॐ ह्रीं श्रीमिति लोचने॥
पातु मे कर्णयुग्मं च ॐ दुर्गायै नमः सदा। ॐ ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः॥
ह्रीं श्रीं ह्रूमिति दन्तानि पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम्। क्रीं क्रीं क्रीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डकम्॥
स्कन्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वाहा पातु निरन्तरम्। वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः॥
दुर्गे दुर्गे रक्षणीति स्वाहा नाभिं सदाऽवतु। दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः॥
ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदाऽवतु। ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदाऽवतु॥
प्राच्यां पातु महामाया आग्नेय्यां पातु कालिका। दक्षिणे दक्षकन्या च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा। कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा॥
ऊर्ध्वे नारायणी पातु अम्बिकाधः सदाऽवतु। ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदाऽवतु॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत् फलम्। सर्वव्रतोपवासे च तत् फलं लभते नरः॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः।
इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् दुर्गतिनाशिनीम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥
कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सुन्दरम्। यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्॥
(गणपतिखण्ड ३९। ३—२३)

परशुरामद्वारा पुत्रसहित राजा सहस्राक्षका वध, कार्तवीर्य-परशुराम-युद्ध, परशुरामकी मूर्च्छा, शिवद्वारा उन्हें पुनर्जीवन-दान, कार्तवीर्य-परशुराम-संवाद, आकाशवाणी सुनकर शिवका विप्रवेष धारण करके कार्तवीर्यसे कवच माँग लेना, परशुद्वारा कार्तवीर्य तथा अन्यान्य क्षत्रियोंका संहार, ब्रह्माका आगमन और परशुरामको गुरुस्वरूप शिवकी शरणमें जानेका उपदेश देकर स्वस्थानको लौट जाना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! जब भगवान् विष्णु महालक्ष्मी-कवच तथा दुर्गा-कवचको लेकर वैकुण्ठको चले गये, तब भृगुनन्दन परशुरामने पुत्रसहित राजा *सहस्राक्षपर प्रहार किया। यद्यपि राजा कवचहीन था तथापि वह प्रयत्नपूर्वक ब्रह्मास्त्रद्वारा एक सप्ताहतक युद्ध करता रहा। अन्ततोगत्वा पुत्रसहित धराशायी हो गया। सहस्राक्षके गिर जानेपर महाबली कार्तवीर्यार्जुन दो लाख अक्षौहिणी सेनाके साथ स्वयं युद्ध करनेके लिये आया। वह रत्ननिर्मित खोलसे आच्छादित स्वर्णमय रथपर सवार हो अपने चारों ओर नाना प्रकारके अस्त्रोंको सुसज्जित करके रणके मुहानेपर डटकर खड़ा हो गया। परशुरामने राजराजेश्वर कार्तवीर्यको समरभूमिमें उपस्थित देखा। वह रत्ननिर्मित आभूषणोंसे सुशोभित करोड़ों राजाओंसे घिरा हुआ था। रत्ननिर्मित छत्र उसकी शोभा बढ़ा रहा था। वह रत्नोंके गहनोंसे विभूषित था। उसके सर्वाङ्गमें चन्दनकी खौर लगी हुई थी। उसका रूप अत्यन्त मनोहर था और वह मन्द-मन्द मुस्करा रहा था। राजा मुनिवर परशुरामको देखकर रथसे उतर पड़ा और उन्हें प्रणाम करके पुनः रथपर सवार हो राज-समुदायके साथ सामने खड़ा हुआ। तब परशुरामने राजाको समयोचित शुभाशीर्वाद दिया और पुनः यों कहा—'अनुयायियोंसहित तुम स्वर्गमें जाओ।' नारद! इसके बाद वहाँ दोनों सेनाओंमें युद्ध होने लगा। तब परशुरामके शिष्य तथा उनके महाबली भाई कार्तवीर्यसे पीड़ित होकर भाग खड़े हुए। उस समय उनके सारे अङ्ग घायल हो गये थे। राजाके बाणसमूहसे आच्छादित होनेके कारण शस्त्रधारियोंमें श्रेष्ठ परशुरामको अपनी तथा राजाकी सेना ही नहीं दीख रही थी। फिर तो परस्पर घोर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग होने लगा। अन्तमें राजाने दत्तात्रेयके दिये हुए अमोघ शूलको यथाविधि मन्त्रोंका पाठ करके परशुरामपर छोड़ दिया। उस सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली एवं प्रलयाग्निकी शिखाके सदृश शूलके लगते ही परशुराम धराशायी हो गये। तदनन्तर भगवान् शिवने वहाँ आकर परशुरामको पुनर्जीवन दान दिया। इसी समय वहाँ युद्धस्थलमें भक्तवत्सल कृपालु भगवान् दत्तात्रेय शिष्यकी रक्षा करनेके लिये आ पहुँचे। फिर परशुरामने क्रुद्ध होकर पाशुपतास्त्र हाथमें लिया; परंतु दत्तात्रेयकी दृष्टि पड़नेसे वे रणभूमिमें स्तम्भित हो गये। तब रणके मुहानेपर स्तम्भित हुए परशुरामने देखा कि जिनके शरीरकी कान्ति नूतन जलधरके सदृश है; जो हाथमें बंशी लिये बजा रहे हैं; सैकड़ों गोप जिनके साथ हैं; जो मुस्कराते हुए प्रज्वलित सुदर्शन चक्रको निरन्तर घुमा रहे हैं और अनेकों पार्षदोंसे घिरे हुए हैं एवं ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर जिनका स्तवन कर रहे हैं; वे गोपवेषधारी श्रीकृष्ण युद्धक्षेत्रमें राजाकी रक्षा कर रहे हैं। इसी समय वहाँ यों आकाशवाणी हुई—'दत्तात्रेयद्वारा दिया हुआ परमात्मा श्रीकृष्णका कवच उत्तम

* पुष्कराक्षका दूसरा नाम प्रतीत होता है।

रत्नकी गुटिकाके साथ राजाकी दाहिनी भुजापर बँधा हुआ है, अतः योगियोंके गुरु शंकर भिक्षारूपसे जब उस कवचको माँग लेंगे, तभी परशुराम राजाका वध करनेमें समर्थ हो सकेंगे।' नारद! उस आकाशवाणीको सुनकर शंकर ब्राह्मणका रूप धारण करके गये और राजासे याचना करके उसका कवच माँग लाये। फिर शम्भुने श्रीकृष्णका वह कवच परशुरामको दे दिया। इसके बाद देवगण अपने-अपने उत्तम स्थानको चले गये। तब परशुरामने राजाको युद्धके लिये प्रेरित करते हुए कहा।

परशुरामजी बोले—राजेन्द्र! उठो और साहसपूर्वक युद्ध करो; क्योंकि मनुष्योंकी जय-पराजयमें काल ही कारण है। तुमने विधिपूर्वक शास्त्रोंका अध्ययन किया है, दान दिया है, सारी पृथ्वीपर उत्तम रीतिसे शासन किया है, संग्राममें यशोवर्धक कार्य किया है, इस समय मुझे मूर्च्छित कर दिया है, सभी राजाओंको जीत लिया है, लीलापूर्वक रावणको काबूमें कर लिया है और दत्तात्रेयद्वारा दिये गये त्रिशूलसे मुझे पराजित कर दिया है; परंतु शंकरजीने मुझे पुनः जीवित कर दिया है। परशुरामकी बात सुनकर परम धर्मात्मा राजा कार्तवीर्यने सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और यथार्थ बात कहना आरम्भ किया।

राजाने कहा—प्रभो! मैंने क्या अध्ययन किया, क्या दान दिया अथवा पृथ्वीका क्या उत्तम शासन किया? भूतलपर मेरे समान कितने भूपाल इस लोकसे चले गये। मेरी बुद्धि, तेज, पराक्रम, विविध प्रकारकी युद्ध-निपुणता, लक्ष्मी, ऐश्वर्य, ज्ञान, दानशक्ति, लौकिक गुण, आचार, विनय, विद्या, प्रतिष्ठा, परम तप—ये सभी मनोरमाके साथ ही नष्ट हो गये। समय आनेपर इन्द्र मानव हो जायँगे। समय आनेपर ब्रह्मा भी मरेंगे। समय आनेपर प्रकृति श्रीकृष्णके शरीरमें तिरोहित हो जायगी। समय आनेपर सभी देवता मर जायँगे। और समय आनेपर त्रिलोकीमें स्थित समस्त चर-अचर प्राणी नष्ट हो जाते हैं। कालका अतिक्रमण करना दुष्कर है। परात्पर श्रीकृष्ण उस काल-के-काल हैं और स्वेच्छानुसार सृष्टिरचयिताके स्रष्टा, संहारकर्ताके संहारक और पालन करनेवालेके पालक हैं। जो महान्, स्थूलसे स्थूलतम, सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम, कृश, परमाणुपरक काल, कालभेदक काल है। सारे विश्व जिसके रोयें हैं; वह महाविराट् पुरुष तेजमें परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंशके बराबर है, जिससे क्षुद्र विराट् उत्पन्न हुआ है, जो सबका उत्कृष्ट कारण है। जो स्वयं स्रष्टा है और ब्रह्मा जिसके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं। उस समय ब्रह्मा यत्नपूर्वक लाखों वर्षोंतक भ्रमण करनेपर भी जब नाभिकमलके दण्डका अन्त न पा सके, तब अपने स्थानपर स्थित हो गये। वहाँ उन्होंने वायुका आहार करके एक लाख वर्षतक तप किया। तदनन्तर उन्हें गोलोक तथा पार्षदसहित श्रीकृष्णके दर्शन हुए।

उस समय श्रीकृष्ण गोप और गोपियोंसे घिरे हुए थे, उनके दो भुजाएँ थीं, हाथमें मुरली लिये हुए थे, रत्न-सिंहासनपर आसीन थे और राधाको वक्षःस्थलसे लगाये हुए थे। उन्हें देखकर ब्रह्माने बारंबार प्रणाम किया और ईश्वरेच्छा जानकर उनकी आज्ञा ले सृष्टिकी रचना करनेमें मन लगाया। शिव, जो सृष्टिके संहारक हैं, वे सृष्टि-कर्ताके ललाटसे उत्पन्न हुए हैं। श्वेतद्वीपनिवासी क्षुद्र विराट् विष्णु पालनकर्ता हैं। सृष्टिके कारणभूत ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर सभी विश्वोंमें श्रीकृष्णकी कलासे उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति सबको जन्म देनेवाली है और श्रीकृष्ण प्रकृतिसे परे हैं। मायापति परमेश्वर भी उस प्रकृतिरूपिणी शक्तिके बिना सृष्टिका विधान करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि माया बिना सृष्टिकी रचना नहीं हो सकती। वह महेश्वरी माया नित्य है। वह सृष्टि, संहार और पालनकर्ता श्रीकृष्णमें छिपी रहती है

और सृष्टि-रचनाके समय प्रकट हो जाती है। जैसे मिट्टीके बिना कुम्हार घड़ा नहीं बना सकता और स्वर्णके बिना सोनार कुण्डलका निर्माण करनेमें असमर्थ है (उसी तरह स्रष्टा मायाके बिना सृष्टि-रचना नहीं कर सकते)। वह शक्ति ईश्वरकी इच्छासे सृष्टिकालमें राधा, पद्मा, सावित्री, दुर्गादेवी और सरस्वती नामसे पाँच प्रकारकी हो जाती हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी जो प्राणाधिष्ठात्री देवी हैं, वह प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतमा 'राधा' कही जाती हैं। जो सम्पूर्ण मङ्गलोंको सम्पन्न करनेवाली, परमानन्दरूपा तथा ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री देवी हैं; वे 'लक्ष्मी' नामसे पुकारी जाती हैं। जो वेद, शास्त्र और योगकी जननी, परम दुर्लभ और परमेश्वरकी विद्याकी अधिष्ठात्री देवी हैं; उनका नाम 'सावित्री' है। जो सर्वशक्तिस्वरूपिणी, सर्वज्ञानात्मिका, सर्वस्वरूपा और बुद्धिकी अधिष्ठात्री देवी हैं; वे दुर्गनाशिनी 'दुर्गा' कहलाती हैं। जो वाणीकी अधिष्ठात्री देवी और सदा शास्त्र-ज्ञान प्रदान करनेवाली हैं तथा जो श्रीकृष्णके कण्ठसे उत्पन्न हुई हैं; वे देवी 'सरस्वती' कही जाती हैं। आदिमें स्वयं मूलप्रकृति परमेश्वरीदेवी पाँच प्रकारकी थीं। परंतु वे ही पीछे सृष्टि-क्रमसे बहुत-सी कलाओंवाली हो गयीं। सृष्टि-कालमें मायाद्वारा स्त्रियाँ प्रकृतिके और पुरुषगण पुरुषके अंशसे उत्पन्न हुए; क्योंकि माया-शक्ति बिना सृष्टि नहीं हो सकती। ब्रह्मन्! प्रत्येक विश्वमें सृष्टि सदा ब्रह्मासे ही प्रकट होती है। विष्णु उसके पालक और निरन्तर मङ्गल प्रदान करनेवाले शिव संहारक हैं। परशुराम! यह ज्ञान दत्तात्रेयजीका दिया हुआ है, उन्होंने पुष्करतीर्थमें माघी पूर्णिमाके दिन दीक्षाके अवसरपर मुनिवरोंके संनिकट मुझे दिया था। इतना कहकर कार्तवीर्यने मुस्कराते हुए परशुरामको नमस्कार किया और शीघ्र ही बाणसहित धनुष हाथमें लेकर वह रथपर जा बैठा।

तत्पश्चात् परशुरामने श्रीहरिका स्मरण करते हुए ब्रह्मास्त्रद्वारा राजाकी सेनाका सफाया कर दिया। फिर लीलापूर्वक पाशुपतास्त्रका प्रयोग करके राजाकी जीवनलीला समाप्त कर दी। इसी प्रकार परशुरामने शिवजीका स्मरण करते हुए खेल-ही-खेलमें क्रमशः इक्कीस बार पृथ्वीको राजाओंसे शून्य कर दिया। परशुरामने अपनी प्रतिज्ञाकी रक्षा करनेके लिये क्षत्रियोंके गर्भमें स्थित तथा माताकी गोदमें खेलनेवाले शिशुओंका, नौजवानोंका तथा वृद्धोंका संहार कर डाला। इस प्रकार कार्तवीर्य गोलोकमें श्रीकृष्णके संनिकट चला गया और परशुराम श्रीहरिका स्मरण करते हुए अपने आश्रमको लौट गये। महेश्वरने इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे हीन देख और रामको फरसेद्वारा क्रीड़ा करते देखकर उनका नाम परशुराम रख दिया। नारद! तब देवता, मुनि, देवियाँ, सिद्ध, गन्धर्व, किंनर—ये सभी लोग परशुरामके मस्तकपर पुष्पोंकी वृष्टि करने लगे। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और हरिनाम-संकीर्तन होने लगा। इस प्रकार परशुरामके उज्ज्वल यशसे सारा जगत् व्याप्त हो गया। फिर ब्रह्मा, भृगु, शुक्र, च्यवन, वाल्मीकि तथा परम प्रसन्न हुए जमदग्नि ब्रह्मलोकसे वहाँ पधारे। उनके सारे अङ्ग पुलकायमान थे और नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये थे। वे सभी हाथमें दूब और पुष्प लेकर मङ्गलाशासन कर रहे थे। तब परशुरामने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन सबको प्रणाम किया। तब क्रमशः 'तात' यों कहते हुए पहले ब्रह्माने उन्हें अपनी गोदमें बैठा लिया। फिर जगद्गुरु स्वयं ब्रह्मा परशुरामसे हितकारक, नीतियुक्त, वेदका सारतत्त्व और परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

ब्रह्माने कहा—राम! जो सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको देनेवाला परमोत्कृष्ट, सर्वसम्मत और सत्य है, वह काण्वशाखोक्त वचन कहता हूँ, सुनो। जो सभी पूजनीयोंमें इष्ट, पूज्यतम और प्रधान है, वह जन्म देनेके कारण जनक और पालन करनेके कारण पिता कहा जाता है। किंतु मुने! जो

अन्नदाता पिता है, वह जन्मदाता पितासे बड़ा है; क्योंकि पितासे उत्पन्न हुआ शरीर अन्नके बिना नित्य क्षीण होता जाता है। माता उन दोनोंसे सौ गुनी पूज्या, मान्या और वन्दनीया है; क्योंकि गर्भमें धारण करने और पालन-पोषण करनेसे वह उन दोनोंसे बड़ी है। श्रुतिमें ऐसा सुना गया है कि अपना अभीष्टदेव उन सबसे सौगुना बढ़कर पूज्य है और ज्ञान, विद्या तथा मन्त्र देनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे भी बढ़कर है। गुरुपुत्र गुरुकी भाँति ही मान्य है; किंतु गुरुपत्नी उससे भी अधिक पूज्या है। देवताके रुष्ट होनेपर गुरु रक्षा कर लेते हैं, परंतु गुरुके क्रुद्ध होनेपर कोई भी रक्षा नहीं कर सकता। इसलिये गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही महेश्वरदेव, गुरु ही परब्रह्म और ब्राह्मणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। गुरु ही ज्ञान देते हैं और वह ज्ञान हरि-भक्ति उत्पन्न करता है। इस प्रकार जो हरि-भक्ति प्रदान करनेवाला है, उससे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित हुए मनुष्यको जहाँसे ज्ञानरूपी दीपक प्राप्त होता है, जिसे पाकर सब कुछ निर्मल दीखने लगता है, उससे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? गुरुके दिये हुए मन्त्रका जप करनेसे ज्ञानकी प्राप्ति होती है और उस ज्ञानसे सर्वज्ञता तथा सिद्धि मिलती है; अतः गुरुसे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? गुरुद्वारा दी गयी जिस विद्याके बलसे मनुष्य सर्वत्र सुखपूर्वक विजयी होता है और जगत्में पूज्य भी हो जाता है, उस गुरुसे बढ़कर बन्धु दूसरा कौन है? हे पुत्र! श्रीकृष्ण तुम्हारे अभीष्टदेव हैं और स्वयं शंकर गुरु हैं; अतः तुम अभीष्टदेवसे भी बढ़कर पूजनीय गुरुकी शरण ग्रहण करो। जिनके आश्रयसे तुमने इक्कीस बार पृथ्वीको भूपालोंसे रहित कर दिया है और श्रीहरिकी भक्ति प्राप्त की है; उन शिवकी शरणमें जाओ। जो मङ्गलस्वरूप, कल्याणकी मूर्ति, कल्याणदाता, कल्याणके कारण, पार्वतीके आराध्य और शान्तरूप हैं; अपने गुरुदेव उन शिवकी शरणमें जाओ। तुम्हारे इष्टदेव जो गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्ण हैं, वे ही अपने अंशसे शिवका रूप धारण करके तुम्हारे गुरु हुए हैं, अतः उन्हींकी शरण ग्रहण करो। बेटा! समस्त प्राणियोंमें श्रीकृष्ण आत्मा हैं, शिव ज्ञान हैं, मैं मन हूँ और विष्णुकी सारी शक्तियोंसे सम्पन्न प्रकृति प्राण है। जो ज्ञानदाता, ज्ञानस्वरूप, ज्ञानके कारण, सनातन मृत्युको जीतनेवाले तथा कालके भी काल हैं; उन गुरुकी शरणमें जाओ। जो ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तोंके लिये मूर्तिमान् अनुग्रह, सर्वज्ञ, ऐश्वर्यशाली और सनातन हैं; उन गुरुदेवकी शरणका आश्रय लो। प्रकृतिस्वरूपिणी पार्वतीने लाखों वर्षोंतक तपस्या करके जिन परमेश्वरको अपने मनोनीत प्रियतम पतिके रूपमें प्राप्त किया है; उन गुरुदेवकी शरण ग्रहण करो। नारद! इतना कहकर कमलजन्मा ब्रह्मा मुनियोंके साथ चले गये। तब परशुरामने भी कैलास जानेका विचार किया। (अध्याय ४०)

परशुरामका कैलास-गमन, वहाँ शिव-भवनमें पार्षदोंसहित गणेशको प्रणाम करके आगे बढ़नेको उद्यत होना, गणेशद्वारा रोके जानेपर उनके साथ वार्तालाप

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! श्रीहरिका कवच धारण करके जब परशुरामने पृथ्वीको क्षत्रियोंसे रहित कर दिया, तब वे अपने गुरुदेव शिवको नमस्कार करने और गुरुपत्नी अम्बा शिवाको तथा दोनों गुरुपुत्र कार्तिकेय और गणेश्वरको, जो गुणोंमें नारायणके समान थे, देखनेके लिये कैलासको चले। वे भृगुवंशी महात्मा मनके समान वेगशाली थे; अतः उसी

क्षण कैलासपर आ पहुँचे। वहाँ उन्होंने अत्यन्त रमणीय परम मनोहर नगर देखा। वह नगर ऐसी बड़ी-बड़ी सड़कोंसे सुशोभित था, जो अत्यन्त भली लगती थीं। उनकी भूमि सोनेकी भूमिकी-सी थी, जिनपर शुद्ध स्फटिकके सदृश मणियाँ जड़ी हुई थीं। उस नगरमें चारों ओर सिंदूरकी-सी रंगवाली मणियोंकी वेदिकाएँ बनी थीं। वह राशि-की-राशि मुक्ताओंसे संयुक्त और मणियोंके मण्डपोंसे परिपूर्ण था। उसमें यक्षोंके एक अरब दिव्य भवन थे, जो रत्नों और काञ्चनोंसे परिपूर्ण, यक्षेन्द्रगणोंसे परिवेष्टित और मणिनिर्मित किवाड़, खम्भे और सीढ़ियोंसे शोभायमान थे। वह नगर दिव्य सुवर्ण-कलशों, चाँदीके बने हुए श्वेत चँवरों, रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित था। वह उद्दीप्त होती हुई सुन्दरियों, हाथोंमें चित्रलिखित पुत्तलिकाएँ लिये हुए निरन्तर स्वच्छन्दतापूर्वक हँसते और खेलते हुए सुन्दर-सुन्दर बालकों एवं बालिकाओं तथा स्वर्गगङ्गाके तटपर उगे हुए पारिजातके वृक्षसमूहोंसे खचाखच भरा था। सुगन्धित एवं खिले हुए पुष्पसमूहोंसे सम्पन्न, कल्पवृक्षोंका आश्रय लेनेवाले कामधेनुसे पुरस्कृत, सिद्धविद्यामें अत्यन्त निपुण पुण्यवान् सिद्धोंद्वारा सेवित था। जो तीन लाख योजन ऊँचे और सौ योजनके विस्तारवाले थे। जिनमें सैकड़ों मोटी-मोटी डालियाँ थीं, जो असंख्य शाखासमूहों और असंख्य फलोंसे संयुक्त थे। परम मनोहर शब्द करनेवाले विभिन्न प्रकारके पक्षिसमूहोंसे व्याप्त थे। शीतल-सुगन्ध वायु जिन्हें कम्पायमान कर रही थी, ऐसे अविनाशी वटवृक्षोंसे, सहस्रों पुष्पोद्यानोंसे, सैकड़ों सरोवरोंसे तथा मणियों एवं रत्नोंसे बने हुए सिद्धेन्द्रोंके लाखों भवनोंसे वह नगर सुशोभित था। उसे देखकर परशुरामका मन अत्यन्त प्रसन्नतासे खिल उठा। फिर सामने ही उन्हें शंकरजीका शोभाशाली रमणीय आश्रम दीख पड़ा। विश्वकर्माने बहुमूल्य सुनहली मणियोंद्वारा उसकी रचना की थी। उसमें हीरे जड़े हुए थे। वह पंद्रह योजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत था। उसके चारों ओर अत्यन्त सुन्दर सुडौल चौकोर परकोटा बना हुआ था। दरवाजोंपर नाना प्रकारकी चित्रकारियोंसे युक्त रत्नोंके किवाड़ लगे थे। वह उत्तम मणियोंकी वेदियोंसे युक्त तथा मणियोंके खंभोंसे सुशोभित था।

नारद! परशुरामने उस आश्रमके प्रधानद्वारके दाहिनी ओर वृषेन्द्रको और बायीं ओर सिंह तथा नन्दीश्वर, महाकाल, भयंकर पिंगलाक्ष, विशालाक्ष, बाण, महाबली विरूपाक्ष, विकटाक्ष, भास्कराक्ष, रक्ताक्ष, विकटोदर, संहारभैरव, भयंकर कालभैरव, रुरुभैरव, ईशकी-सी आभावाले महाभैरव, कृष्णाङ्गभैरव, दृढपराक्रमी क्रोधभैरव, कपालभैरव, रुद्रभैरव तथा सिद्धेन्द्रों, रुद्रगणों, विद्याधरों, गुह्यकों, भूतों, प्रेतों, पिशाचों, कूष्माण्डों, ब्रह्मराक्षसों, वेतालों, दानवों, जटाधारी योगीन्द्रों, यक्षों, किंपुरुषों और किन्नरोंको देखा। उन्हें देखकर भृगुनन्दनने उनके साथ वार्तालाप किया। फिर नन्दिकेश्वरकी आज्ञा ले वे प्रसन्न मनसे भीतर घुसे। आगे बढ़नेपर उन्हें बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए सैकड़ों मन्दिर दीख पड़े, जो अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित चमचमाते हुए कलशोंसे सुशोभित थे। अमूल्य रत्नोंके बने हुए किवाड़, जिनमें हीरे जड़े हुए थे और मोतियाँ एवं निर्मल शीशे लगे हुए थे, उन मन्दिरोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनमें गोरोचना नामक मणियोंके हजारों खंभे लगे थे और वे मणियोंकी सीढ़ियोंसे सम्पन्न थे। परशुरामने उनके भीतरी द्वारको देखा, जो नाना प्रकारकी चित्रकारीसे चित्रित तथा हीरे-मोतियोंकी गुँथी हुई मालाओंसे सुशोभित था। उसकी बायीं ओर कार्तिकेय और दाहिनी ओर गणेश तथा शिव-तुल्य पराक्रमी विशालकाय वीरभद्र दीख पड़े। नारद! वहाँ प्रधान-प्रधान पार्षद और क्षेत्रपाल भी रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्ननिर्मित सिंहासनोंपर बैठे हुए थे। महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न भृगुवंशी

परशुराम उन सबसे सम्भाषण करके हाथमें फरसा लिये हुए शीघ्र ही आगे बढ़नेको उद्यत हुए। उन्हें आगे बढ़ते देखकर गणेशने कहा—'भाई! क्षणभर ठहर जाओ। इस समय महादेव निद्राके वशीभूत होकर शयन कर रहे हैं। मैं उन ईश्वरकी आज्ञा लेकर यहाँ आता हूँ और तुम्हें साथ लिया ले चलूँगा। इस समय रुक जाओ।' गणेशकी बात सुनकर महाबली परशुराम, जो बृहस्पतिके समान वक्ता थे, कहनेके लिये उद्यत हुए।

(अध्याय ४१)

परशुरामका शिवके अन्तःपुरमें जानेके लिये गणेशसे अनुरोध, गणेशका उन्हें समझाना, न माननेपर उन्हें स्तम्भित करके अपनी सूँड़में लपेटकर सभी लोकोंमें घुमाते हुए गोलोकमें श्रीकृष्णका दर्शन कराकर भूतलपर छोड़ देना, होशमें आनेपर परशुरामका कुपित होकर गणेशपर फरसेका प्रहार करना, गणेशका एक दाँत टूट जाना, देवलोकमें हाहाकार, पार्वतीका रुदन और शिवसे प्रार्थना

परशुरामने कहा—भाई! मैं ईश्वरको प्रणाम करनेके लिये अन्तःपुरमें जाऊँगा और भक्तिपूर्वक माता पार्वतीको नमस्कार करके तुरंत ही घरको लौट जाऊँगा। जो सगुण-निर्गुण, भक्तोंके लिये अनुग्रहके मूर्तरूप, सत्य, सत्यस्वरूप, ब्रह्मज्योति, सनातन, स्वेच्छामय, दयासिन्धु, दीनबन्धु, मुनियोंके ईश्वर, आत्मामें रमण करनेवाले, पूर्णकाम, व्यक्त-अव्यक्त, परात्पर, पर-अपरके रचयिता, इन्द्रस्वरूप, सम्मानित, पुरातन, परमात्मा, ईशान, सबके आदि, अविनाशी, समस्त मङ्गलोंके मङ्गलस्वरूप, सम्पूर्ण मङ्गलोंके कारण, सभी मङ्गलोंके दाता, शान्त, समस्त ऐश्वर्योंको प्रदान करनेवाले, परमोत्कृष्ट, शीघ्र ही संतुष्ट होनेवाले, प्रसन्न मुखवाले, शरणमें आये हुएकी रक्षा करनेवाले, भक्तोंके लिये अभयप्रद, भक्तवत्सल और समदर्शी हैं, जिनसे मैंने नाना प्रकारकी विद्याओं और अनेक प्रकारके परम दुर्लभ शस्त्रोंको प्राप्त किया है; उन जगदीश्वर गुरुके इस समय मैं दर्शन करना चाहता हूँ। यों कहकर परशुराम गणपतिके आगे खड़े हो गये।

इसपर श्रीगणेशजीने उनको बहुत तरहसे समझाया कि इस समय भगवान् शंकर और माताजी अन्तःपुरमें हैं। आपको वहाँ नहीं जाना चाहिये, पर परशुरामजी हठ करते ही रहे। उन्होंने अनेकों युक्तियोंद्वारा अपना अंदर जाना निर्दोष बतलाया। यों परस्पर दोनोंमें वाद-विवाद होता रहा। गणेशजी विनयपूर्वक ही परशुरामको रोकते रहे, पर जब परशुरामने बलपूर्वक जाना चाहा तो गणेशजीने रोक दिया। तब परस्परमें वाग्युद्ध और करताडन होने लगा। अन्तमें परशुरामने गणेशजीपर अपना फरसा उठा लिया। तब कार्तिकेयने बीचमें आकर उन्हें समझाया। परशुरामने गणेशजीको धक्का दे दिया, वे गिर पड़े। फिर उठकर उन्होंने परशुरामको फटकारा। इसपर परशुरामने पुनः कुठार उठा लिया। तब गणेशजीने अपनी सूँड़को बहुत लंबा कर लिया और उसमें परशुरामको लपेटकर वे घुमाने लगे। जैसे छोटेसे साँपको गरुड़ ऊपर उठा लेता है, वैसे ही अपने योगबलसे शिवपुत्र गणेशने उनको उठाकर स्तम्भित कर दिया और सप्तद्वीप, सप्तपर्वत, सप्तसागर, भूर्लोक, भुवर्लोक, स्वर्लोक, जनलोक, तपोलोक, ध्रुवलोक, गौरीलोक, शम्भुलोक उनको दिखा दिये। तदनन्तर उन्हें गम्भीर समुद्रमें फेंक दिया। जब वे तैरने लगे तो पुनः पकड़कर उठा लिया और घुमाते हुए वैकुण्ठ दिखलाकर फिर

गोलोकधाममें भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन कराये। उस समय भगवान् रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्ननिर्मित सिंहासनपर आसीन थे। राधाजी उनके वक्षःस्थलसे सटी हुई थीं। तेजमें वे करोड़ों सूर्योंके समान प्रभशाली थे। उनके दो भुजाएँ थीं, हाथमें मुरली शोभा पा रही थी, परम मनोहर रूप था और वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। इस प्रकार श्रीकृष्णके दर्शन कराकर उनसे बारंबार प्रणाम कराया। यों सम्पूर्ण पापोंका पूर्णतया नाश कर देनेवाले इष्टदेव श्रीकृष्णके दर्शन कराकर गणेशजीने परशुरामके भ्रूणहत्याजनित पापको दूर कर दिया। यों तो पापजनित यातना भोगे बिना नष्ट नहीं होती, किंतु परशुरामको थोड़ी ही भोगनी पड़ी और सब श्रीकृष्णके दर्शनसे नष्ट हो गयी। क्षणभरके बाद परशुरामकी चेतना लौट आयी और वे वेगपूर्वक भूतलपर गिर पड़े। उस समय उनका गणेशद्वारा किया गया स्तम्भन भी दूर हो गया। तब उन्होंने अपने अभीष्टदेव श्रीकृष्ण, अपने गुरु जगद्गुरु शम्भु तथा गुरुद्वारा दिये गये परम दुर्लभ स्तोत्र और कवचका स्मरण किया। मुने! तदनन्तर परशुरामने अपने अमोघ फरसेको, जिसकी प्रभा ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्यकी प्रभासे सौगुनी थी और जो तेजमें शिव-तुल्य था, गणेशपर चला दिया। पिताके उस अमोघ अस्त्रको आते देखकर स्वयं गणपतिने उसे अपने बायें दाँतसे पकड़ लिया; उस अस्त्रको व्यर्थ नहीं होने दिया। तब महादेवजीके बलसे वह फरसा वेगपूर्वक गिरकर मूलसहित गणेशके दाँतको काटकर पुनः परशुरामके हाथमें लौट आया। यह देखकर वीरभद्र, कार्तिकेय और क्षेत्रपाल आदि पार्षद तथा आकाशमें देवगण महान् भयसे भीत होकर हाहाकार करने लगे। इधर वह दाँत खूनसे सनकर शब्द करता हुआ भूमिपर गिर पड़ा, मानो गेरूसे युक्त स्फटिकका

पर्वत धराशायी हो गया हो। विप्रवर! उस महान् शब्दसे भयभीत होकर पृथ्वी काँप उठी। सभी कैलासवासी प्राणी उसी क्षण डरके मारे मूर्च्छित हो गये। उस समय निद्राके स्वामी जगदीश्वर शिवकी निद्रा भंग हो गयी। वे घबराये हुए पार्वतीके साथ अन्तःपुरसे बाहर आये। मुने! उस समय गणेश घायल हो गये थे, उनका दाँत टूट गया था और मुख रक्तसे सराबोर था। उनका क्रोध शान्त हो गया था और वे लज्जित होकर मुस्कराते हुए सिर झुकाये हुए थे। उन्हें इस दशामें सामने देखकर पार्वतीने शीघ्र ही स्कन्दसे पूछा—'बेटा! यह क्या बात है?' तब स्कन्दने भयपूर्वक पूर्वापरका सारा वृत्तान्त उनसे कह सुनाया। उसे सुनकर दुर्गाको क्रोध आ गया। वे कृपापरवश हो रोने लगीं और शम्भुके सामने अपने पुत्र गणेशको छातीसे लगाकर बोलीं। सती-साध्वी पार्वतीने शोकके कारण डरकर विनयपूर्वक शम्भुको समझाया और फिर प्रणत होकर प्रणतकी पीड़ा हरनेवाले पतिदेवसे कहने लगीं। (अध्याय ४२-४५)

पार्वतीकी शिवसे प्रार्थना, परशुरामको देखकर उन्हें मारनेके लिये उद्यत होना, परशुरामद्वारा इष्टदेवका ध्यान, भगवान्‌का वामनरूपसे पधारना, शिव-पार्वतीको समझाना और गणेशस्तोत्रको प्रकट करना

पार्वतीने कहा—प्रभो! जगत्‌में सभी लोग शंकरकी किंकरी मुझ दुर्गाको जानते हैं कि यह अपेक्षारहित दासी है, उसका जीवन व्यर्थ है। परंतु ईश्वरके लिये तृणसे लेकर पर्वतपर्यन्त सभी जातियाँ समान हैं; अतः दासीपुत्र गणेश और आपके शिष्य परशुराम—इन दोनोंमें किसका दोष है, इसपर विचार करना उचित है; क्योंकि आप धर्मज्ञोंमें श्रेष्ठ हैं। वीरभद्र, कार्तिकेय और पार्षदगण इसके साक्षी हैं। भला, गवाहीके काममें झूठ कौन कहेगा। साथ ही ये दोनों भाई इन लोगोंके लिये समान हैं। यों तो धर्म-निर्णयके अवसरपर गवाही देते समय सत्पुरुषोंके लिये शत्रु और मित्र समान हो जाते हैं (अर्थात् उनकी पक्षपातकी भावना नहीं रहती); क्योंकि जो गवाह गवाहीके विषयको ठीक-ठीक जानते हुए भी सभामें काम, क्रोध, लोभ अथवा भयके कारण झूठी गवाही देता है, वह अपनी सौ पीढ़ियोंको नरकमें गिराकर स्वयं भी कुम्भीपाक नरकमें जाता है। यद्यपि मैं इन दोनोंको समझाने तथा इसका निर्णय करनेमें समर्थ हूँ, तथापि आपके समक्ष मेरा आज्ञा देना श्रुतिमें निन्दित कहा गया है। प्रभो! सभामें राजाके वर्तमान रहते भृत्योंकी प्रभाका उसी प्रकार मूल्य नहीं होता, जैसे सूर्यके उदय होनेपर पृथ्वीपर जुगनूकी कोई गणना नहीं होती। सदा परित्यागके भयसे डरी हुई मैंने चिरकालतक तपस्या करके आपके चरणकमलोंको पाया है; अतः जगन्नाथ! दारुण पुत्र-स्नेहके कारण क्रोध, शोक और मोहके वशीभूत होकर मैंने जो कुछ कहा है, उसे क्षमा कीजिये। यदि आपने मेरा परित्याग कर दिया तो उस पुत्रसे क्या लाभ? क्योंकि उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई पतिव्रता नारीके लिये पति सौ पुत्रोंसे बढ़कर है। जो नारी नीच कुलमें उत्पन्न, दुष्टस्वभाववाली, ज्ञानहीन और माता-पिताके दोषसे निन्दित होती है, वह अपने पतिको नहीं मानती। उत्तम कुलमें पैदा हुई स्त्री अपने निन्दित, पतित, मूर्ख, दरिद्र, रोगी और जड़ पतिको भी सदा विष्णुके समान समझती है। समस्त तेजस्वियोंमें श्रेष्ठ अग्नि अथवा सूर्य पतिव्रताके तेजकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते। महादान, पुण्यप्रद व्रतोपवास और तप—ये सभी पति-सेवाके सोलहवें अंशकी समता करनेके योग्य नहीं हैं।* उत्तम कुलमें जन्म लेनेवाली स्त्रियोंके लिये चाहे पुत्र हो, पिता हो अथवा सहोदर भाई हो, कोई भी पतिके समान नहीं होता। स्वामीसे इतना कहकर दुर्गाने अपने सामने परशुरामको देखा, जो निर्भय होकर शम्भुके चरणकमलोंकी सेवा कर रहे थे। तब पार्वती उनसे बोलीं।

पार्वतीने कहा—हे महाभाग राम! तुम ब्रह्मवंशमें उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी बुद्धि सदसत्‌का विवेचन करनेवाली है। तुम जमदग्निके पुत्र और योगियोंके गुरु इन महादेवके शिष्य हो। सती-साध्वी रेणुका, जो लक्ष्मीके अंशसे उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई हैं, तुम्हारी माता हैं। तुम्हारे नाना विष्णुभक्त और मामा इनसे भी बढ़कर वैष्णव हैं। तुम मनुके वंशमें उत्पन्न हुए राजा रेणुकके दौहित्र

---

* कुत्सितं पतितं मूढं दरिद्रं रोगिणं जडम्। कुलजा विष्णुतुल्यं च कान्तं पश्यति संततम्॥
हुताशनो वा सूर्यो वा सर्वतेजस्विनां परः। पतिव्रतातेजसश्च कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
महादानानि पुण्यानि व्रतान्यनशनानि च। तपांसि पतिसेवायाः कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(गणपतिखण्ड ४४। १३—१५)

हो। साधुस्वभाववाले शूरवीर राजा विष्णुयशा तुम्हारे मामा हैं। तुम किसके दोषसे ऐसे दुर्धर्ष हो गये हो? इस अशुद्धिका कारण मुझे ज्ञात नहीं हो रहा है; क्योंकि जिनके दोषसे मनुष्य दूषित हो जाता है, तुम्हारे वे सभी सम्बन्धी शुद्ध मनवाले हैं। तुमने करुणासागर गुरु और अमोघ फरसा पाकर पहले क्षत्रिय-जातिपर परीक्षा करके पुनः गुरु-पुत्रपर परीक्षा की है। कहाँ तो श्रुतिमें 'गुरुको दक्षिणा देना उचित है'—यों सुना जाता है और कहाँ तुमने गुरुपुत्रके दाँतको ही तोड़ दिया, अब उसका मस्तक भी काट डालो। शंकरके वरदान तथा अमोघवीर्य फरसेसे तो चूहोंको खानेवाला सियार सिंह और शार्दूलको भी मार सकता है। जितेन्द्रिय पुरुषोंमें श्रेष्ठ गणेश तुम्हारे-जैसे लाखों-करोड़ों जन्तुओंको मार डालनेकी शक्ति रखता है, परंतु वह मक्खीपर हाथ नहीं उठाता। श्रीकृष्णके अंशसे उत्पन्न हुआ वह गणेश तेजमें श्रीकृष्णके ही समान है। अन्य देवता श्रीकृष्णकी कलाएँ हैं। इसीसे इसकी अग्रपूजा होती है।

यों कहकर पार्वती क्रोधवश उन परशुरामको मारनेके लिये उद्यत हो गयीं। तब परशुरामने मन-ही-मन गुरुको प्रणाम करके अपने इष्टदेव श्रीकृष्णका स्मरण किया। इतनेमें ही दुर्गाने अपने सामने एक अत्यन्त बौने ब्राह्मण-बालकको उपस्थित देखा। उसकी कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। उसके दाँत स्वच्छ थे। वह शुक्ल वस्त्र, शुक्ल यज्ञोपवीत, दण्ड, छत्र और ललाटपर उज्ज्वल तिलक धारण किये हुए था। उसके गलेमें तुलसीकी माला पड़ी थी। उसका रूप परम मनोहर था, मुखपर मन्द मुसकान थी और वह रत्नोंके बाजूबंद, कङ्कण और रत्नमालासे विभूषित था। पैरोंमें रत्नोंके नूपुर थे। मस्तकपर बहुमूल्य रत्नोंके मुकुटकी उज्ज्वल छटा थी और कपोलोंपर रत्ननिर्मित दो कुण्डल झलमला रहे थे, जिससे उसकी विशेष शोभा हो रही थी। वह भक्तोंका ईश और भक्तवत्सल था तथा भक्तोंको बायें हाथसे स्थिरमुद्रा और दाहिने हाथसे अभयमुद्रा दिखा रहा था। उसके साथ नगरके हँसते हुए बालक और बालिकाओंका समूह था और कैलासवासी आबालवृद्ध सभी उसकी ओर हर्षपूर्वक देख रहे थे। उस बालकको देखकर पुत्रों तथा भृत्योंसहित शम्भुने घबराकर भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् दुर्गाने भी दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर नमस्कार किया। तब बालकने सबको अभीष्टप्रद आशीर्वाद दिया। उसे देखकर सभी बालक भयके कारण महान् आश्चर्यमें पड़ गये। तदनन्तर शिवजीने भक्तिपूर्वक उसे षोडशोपचार समर्पित करके उस परिपूर्णतमकी वेदोक्त-विधिसे पूजा की और फिर सिर झुकाकर काण्वशाखामें कहे हुए स्तोत्रद्वारा उन सनातन भगवान्‌की स्तुति की। उस समय उनके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया था। पुनः जो रत्नसिंहासनपर आसीन थे और अपने उत्कृष्ट तेजसे जिन्होंने सबको आच्छादित कर रखा था, उन वामन भगवान्‌से स्वयं शंकरजी कहने लगे।

शंकरजीने कहा—ब्रह्मन्! जो आत्माराम हैं, उनके विषयमें कुशलप्रश्न करना अत्यन्त विडम्बनाकी बात है; क्योंकि वे स्वयं कुशलके आधार और कुशल-अकुशलके प्रदाता हैं। श्रीकृष्णकी सेवाके फलोदयसे आज आप जो मुझे अतिथिरूपसे प्राप्त हुए हैं, इससे मेरा जन्म सफल और जीवन धन्य हो गया। कृपासागर परिपूर्णतम श्रीकृष्ण लोगोंके उद्धारके लिये पुण्यक्षेत्र भारतमें अपनी कलासे अवतीर्ण हुए हैं। जिसने अतिथिका आदर-सत्कार किया है, उसने मानो सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा कर ली; क्योंकि जिसपर अतिथि प्रसन्न हो जाता है, उसपर स्वयं श्रीहरि प्रसन्न हो जाते हैं। समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे, सर्वस्व दान करनेसे, सभी प्रकारके व्रतोपवाससे, सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण करनेसे, सभी प्रकारकी

तपस्याओंसे और नित्य-नैमित्तिकादि विविध कर्मानुष्ठानोंसे जो फल प्राप्त होता है—वह अतिथिसेवाकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकता। अतिथि जिसके गृहसे निराश एवं रुष्ट होकर चला जाता है, उसका पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! शंकरके वचन सुनकर जगत्पति स्वयं श्रीहरि संतुष्ट हो गये और मेघके समान गम्भीर वाणीद्वारा उनसे बोले।

विष्णुने कहा—शिवजी! आप लोगोंके कोलाहलको जानकर कृष्णभक्त परशुरामकी रक्षा करनेके लिये इस समय मैं श्वेतद्वीपसे आ रहा हूँ; क्योंकि इन कृष्णभक्तोंका कहीं अमङ्गल नहीं होता। गुरुके कोपके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओंमें मैं हाथमें चक्र लेकर उनकी रक्षा करता रहता हूँ। गुरुके रुष्ट होनेपर मैं रक्षा नहीं करता; क्योंकि गुरुकी अवहेलना बलवती होती है। जो गुरुकी सेवासे हीन है, उससे बढ़कर पापी दूसरा नहीं है। अहो! जिसकी कृपासे मानव सब कुछ देखता है, वह पिता सबके लिये सबसे बढ़कर माननीय और पूजनीय होता है। वह मनुष्योंके जन्म देनेके कारण जनक, रक्षा करनेके कारण पिता और विस्तीर्ण करनेके कारण कलारूपसे प्रजापति है। उस पितासे माता गर्भमें धारण करने एवं पालन-पोषण करनेसे सौगुनी बढ़कर वन्दनीया, पूज्या और मान्या है। वह प्रसव करनेवाली वसुन्धराके समान है। अन्नदाता मातासे भी सौगुना वन्दनीय, पूज्य और मान्य है; क्योंकि अन्नके बिना शरीर नष्ट हो जाता है और विष्णु ही कलारूपसे अन्नदाता होते हैं। अभीष्टदेव अन्नदातासे भी सौगुना श्रेष्ठ कहा जाता है। किंतु विद्या और मन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु अभीष्टदेवसे भी सौगुना बढ़कर है। जो अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छादित हुए समस्त पदार्थोंको ज्ञानदीपकरूपी नेत्रसे दिखलाता है, उससे बढ़कर बान्धव कौन है? गुरुद्वारा दिये गये मन्त्र और तपसे अभीष्ट सुख, सर्वज्ञता और समस्त सिद्धियोंकी प्राप्ति होती है; अतः गुरुसे बढ़कर बान्धव दूसरा कौन है? गुरुद्वारा दी गयी विद्याके बलसे मनुष्य सर्वत्र समयपर विजयी होता है, इसलिये जगत्में गुरुसे बढ़कर पूज्य और उनसे अधिक प्रिय बन्धु कौन हो सकता है? जो मूर्ख विद्यामद अथवा धनमदसे अंधा होकर गुरुकी सेवा नहीं करता, वह ब्रह्महत्या आदि पापोंसे लिपायमान होता है; इसमें संशय नहीं है। जो दरिद्र, पतित एवं क्षुद्र गुरुके साथ साधारण मानवकी भाँति आचरण करता है, वह तीर्थस्नायी होनेपर भी अपवित्र है और उसका कर्मोंके करनेमें अधिकार नहीं है। शिव! जो छल-कपट करके माता, पिता, भार्या, गुरुपत्नी और गुरुका पालन-पोषण नहीं करता, वह महान् पापी है। गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु, गुरु ही महेश्वरदेव, गुरु ही परब्रह्म, गुरु ही सूर्यरूप, गुरु ही चन्द्र, इन्द्र, वायु, वरुण और अग्निरूप हैं। यहाँतक कि गुरु स्वयं सर्वरूपी ऐश्वर्यशाली परमात्मा हैं। वेदसे उत्तम दूसरा शास्त्र नहीं है, श्रीकृष्णसे बढ़कर दूसरा देवता नहीं है, गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ नहीं है और तुलसीसे उत्तम दूसरा पुष्प नहीं है*। पृथ्वीसे बढ़कर दूसरा क्षमावान् नहीं है, पुत्रसे अधिक दूसरा कोई प्रिय नहीं है, दैवसे बढ़कर शक्ति नहीं है और एकादशीसे उत्तम व्रत नहीं है। शालग्रामसे बढ़कर मन्त्र, भारतसे उत्तम क्षेत्र और पुण्यस्थलोंमें वृन्दावनके समान पुण्यस्थान नहीं है। मोक्षदायिनी पुरियोंमें काशी और वैष्णवोंमें शिवके समान दूसरा नहीं है। न तो पार्वतीसे अधिक कोई पतिव्रता है और न गणेशसे उत्तम कोई जितेन्द्रिय है। न तो विद्याके समान कोई

* नास्ति वेदात् परं शास्त्रं न हि कृष्णात् परः सुरः। नास्ति गङ्गासमं तीर्थं न पुष्पं तुलसीपरम्॥
(गणपतिखण्ड ४४। ७२)

बन्धु है और न गुरुसे बढ़कर कोई अन्य पुरुष है। विद्या प्रदान करनेवालेके पुत्र और पत्नी भी निस्संदेह उसीके समान होते हैं। गुरुकी स्त्री और पुत्रकी परशुरामने अवहेलना कर दी है, उसीका सम्मार्जन करनेके लिये मैं तुम्हारे घर आया हूँ।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! वहाँ भगवान् विष्णु शिवजीसे ऐसा कहकर दुर्गाको समझाते हुए सत्यके साररूप उत्तम वचन बोले।

विष्णुने कहा—देवि! मैं नीतियुक्त, वेदका तत्त्वरूप तथा परिणाममें सुखदायक वचन कहता हूँ, मेरे उस शुभ वचनको सुनो। गिरिराजकिशोरी! तुम्हारे लिये जैसे गणेश और कार्तिकेय हैं, निस्संदेह उसी प्रकार भृगुवंशी परशुराम भी हैं। सर्वज्ञे! इनके प्रति तुम्हारे अथवा शंकरजीके स्नेहमें भेदभाव नहीं है। अतः मातः! सबपर विचार करके जैसा उचित हो, वैसा करो। पुत्रके साथ पुत्रका यह विवाद तो दैवदोषसे घटित हुआ है। भला, दैवको मिटानेमें कौन समर्थ हो सकता है? क्योंकि दैव महाबली है। वत्से! देखो, तुम्हारे पुत्रका 'एकदन्त' नाम वेदोंमें विख्यात है। वरानने! सभी देव उसे नमस्कार करते हैं। ईश्वरि! सामवेदमें कहे हुए अपने पुत्रके नामाष्टक स्तोत्रको ध्यान देकर श्रवण करो। मातः! यह उत्तम स्तोत्र सम्पूर्ण विघ्नोंका नाशक है।

मातः! तुम्हारे पुत्रके गणेश, एकदन्त, हेरम्ब, विघ्ननायक, लम्बोदर, शूर्पकर्ण, गजवक्त्र और गुहाग्रज—ये आठ नाम हैं। इन आठों नामोंका अर्थ सुनो। शिवप्रिये! यह उत्तम स्तोत्र सभी स्तोत्रोंका सारभूत और सम्पूर्ण विघ्नोंका निवारण करनेवाला है। 'ग' ज्ञानार्थवाचक और 'ण' निर्वाणवाचक है। इन दोनों (ग+ण)-के जो ईश हैं; उन परब्रह्म 'गणेश' को मैं प्रणाम करता हूँ। 'एक' शब्द प्रधानार्थक है और 'दन्त' बलवाचक है; अतः जिनका बल सबसे बढ़कर है; उन 'एकदन्त' को मैं नमस्कार करता हूँ। 'हे' दीनार्थवाचक और 'रम्ब' पालकका वाचक है; अतः दीनोंका पालन करनेवाले 'हेरम्ब' को मैं शीश नवाता हूँ। 'विघ्न' विपत्तिवाचक और 'नायक' खण्डनार्थक है, इस प्रकार जो विपत्तिके विनाशक हैं; उन 'विघ्ननायक' को मैं अभिवादन करता हूँ। पूर्वकालमें विष्णुद्वारा दिये गये नैवेद्यों तथा पिताद्वारा समर्पित अनेक प्रकारके मिष्टान्नोंके खानेसे जिनका उदर लम्बा हो गया है; उन 'लम्बोदर' की मैं वन्दना करता हूँ। जिनके कर्ण शूर्पाकार, विघ्न-निवारणके हेतु, सम्पदाके दाता और ज्ञानरूप हैं; उन 'शूर्पकर्ण' को मैं सिर झुकाता हूँ। जिनके मस्तकपर मुनिद्वारा दिया गया विष्णुका प्रसादरूप पुष्प वर्तमान है और जो गजेन्द्रके मुखसे युक्त हैं; उन 'गजवक्त्र' को मैं नमस्कार करता हूँ। जो गुह (स्कन्द)-से पहले जन्म लेकर शिव-भवनमें आविर्भूत हुए हैं तथा समस्त देवगणोंमें जिनकी अग्रपूजा होती है; उन 'गुहाग्रज' देवकी मैं वन्दना करता हूँ। दुर्गे! अपने पुत्रके नामोंसे संयुक्त इस उत्तम नामाष्टक स्तोत्रको पहले वेदमें देख लो, तब ऐसा क्रोध करो। जो इस नामाष्टक स्तोत्रका, जो नाना अर्थोंसे संयुक्त एवं शुभकारक है, नित्य तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह सुखी और सर्वत्र विजयी होता है। उसके पाससे विघ्न उसी प्रकार दूर भाग जाते हैं, जैसे गरुड़के निकटसे साँप। गणेश्वरकी कृपासे वह निश्चय ही महान् ज्ञानी हो जाता है, पुत्रार्थीको पुत्र और भार्याकी कामनावालेको उत्तम स्त्री मिल जाती है तथा महामूर्ख निश्चय ही विद्वान् और श्रेष्ठ कवि हो जाता है*।

(अध्याय ४४)

---

*विष्णुरुवाच—

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम्। लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम्॥

परशुरामको गौरीका स्तवन करनेके लिये कहकर विष्णुका वैकुण्ठ-गमन, परशुरामका पार्वतीकी स्तुति करना

श्रीनारायण कहते हैं— नारद! इस प्रकार पार्वतीको समझा-बुझाकर भगवान् विष्णु परशुरामसे हितकारक, तत्त्वस्वरूप, नीतिका साररूप और परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

विष्णुने कहा—राम! तुमने अकल्याणकर मार्गपर स्थित हो क्रोधवश जो गणेशका दाँत तोड़ डाला है, इससे तुम श्रुतिके मतानुसार इस समय सचमुच ही अपराधी हो। अतएव मेरेद्वारा बतलाये हुए स्तोत्रसे देवश्रेष्ठ गणपतिका स्तवन करके पुनः काण्वशाखामें कहे हुए स्तोत्रद्वारा जगज्जननी दुर्गाकी स्तुति करो। ये जगदीश्वर श्रीकृष्णकी परा शक्ति एवं बुद्धिस्वरूपा हैं। इनके रुष्ट हो जानेपर तुम्हारी बुद्धि नष्ट हो जायगी। ये सर्वशक्तिस्वरूपा हैं। जगत् इन्हींसे शक्तिमान् हुआ है। यहाँतक कि जो प्रकृतिसे परे और निर्गुण हैं, वे श्रीकृष्ण भी इन्हींसे शक्तिशाली हुए हैं। इस शक्तिके बिना ब्रह्मा भी सृष्टिरचनामें समर्थ नहीं हैं। हम—ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर इन्हींसे उत्पन्न हुए हैं। द्विजवर! पूर्वकालमें जब असुरोंने देवसमुदायको अपने अधीन कर लिया था, उस भयंकर समयमें ये सती सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे आविर्भूत हुई थीं। तत्पश्चात् श्रीकृष्णकी आज्ञासे इन्होंने असुरोंका वध करके देवताओंका पद उन्हें प्रदान किया। फिर दक्षकी तपस्याके कारण दक्षपत्नीके गर्भसे जन्म लिया। उस जन्ममें सती शंकरकी भार्या हुईं। पुनः पतिकी निन्दाके कारण उस शरीरको त्यागकर इन्होंने शैलराजकी पत्नीके गर्भसे जन्म धारण किया। फिर तपस्या करके योगीन्द्रोंके गुरुके गुरु शंकरको पाया और श्रीकृष्णकी सेवासे श्रीकृष्णके अंशभूत गणपतिको पुत्ररूपमें प्राप्त किया। बालक! जिनका तुम नित्य ध्यान करते हो, क्या उन्हें नहीं जानते? ये भगवान् श्रीकृष्ण ही अपने अंशसे पार्वती-पुत्र होकर प्रकट हुए हैं। इसलिये जो मङ्गलस्वरूपा, कल्याणदायिनी, शिवपरायणा, मङ्गलकी कारण और मङ्गलकी अधीश्वरी हैं; उन शिवप्रिया दुर्गाकी तुम हाथ जोड़ सिर झुकाकर शिवाके स्तोत्रराजद्वारा, जिसे पूर्वकालमें त्रिपुरोंके भयंकर वधके अवसरपर ब्रह्माकी प्रेरणासे शंकरजीने स्तवन किया था, उससे स्तुति करो।

नामाष्टार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरिप्रिये । स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः । तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः । बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः । परिपालकं दीनानां हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम् ॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम् ॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम् ॥
विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम् । तद् गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं तथा कुरु ॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम् । त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी ॥
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम् ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी विपुलां स्त्रियम् । महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद् ध्रुवम् ॥

(गणपतिखण्ड ४४। ८५—९८)

नारद! यों कहकर भगवान् विष्णु शीघ्र ही वैकुण्ठको चले गये। श्रीहरिके चले जानेपर परशुराम हरिका स्मरण करके विष्णुप्रदत्त स्तोत्रद्वारा, जो सम्पूर्ण विघ्नोंका नाशक तथा धर्म-अर्थ-काम-मोक्षका कारण है; उन दुर्गाकी स्तुति करनेको उद्यत हुए। उन्होंने गङ्गाके शुभजलमें स्नान करके धुले हुए वस्त्र धारण किये। फिर अञ्जलि बाँधकर भक्तेश्वर गुरुको प्रणाम किया। फिर आचमन करके दुर्गाको सिर झुकाकर नमस्कार किया। उस समय भक्तिके कारण उनके कंधे झुके हुए थे, आँखोंमें आनन्दाश्रु छलक आये थे और सारा अङ्ग पुलकायमान हो गया था।

परशुरामने कहा—प्राचीन कालकी बात है; गोलोकमें जब परिपूर्णतम श्रीकृष्ण सृष्टि-रचनाके लिये उद्यत हुए, उस समय उनके शरीरसे तुम्हारा प्राकट्य हुआ था। तुम्हारी कान्ति करोड़ों सूर्योंके समान थी। तुम वस्त्र और अलंकारोंसे विभूषित थीं। शरीरपर अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई साड़ीका परिधान था। नव तरुण अवस्था थी। ललाटपर सिंदूरकी बेंदी शोभित हो रही थी। मालतीकी मालाओंसे मण्डित गुँथी हुई सुन्दर चोटी थी। बड़ा ही मनोहर रूप था। मुखपर मन्द मुस्कान थी। अहो! तुम्हारी मूर्ति बड़ी सुन्दर थी, उसका वर्णन करना कठिन है। तुम मुमुक्षुओंको मोक्ष प्रदान करनेवाली तथा स्वयं महाविष्णुकी विधि हो। बाले! तुम सबको मोहित कर लेनेवाली हो। तुम्हें देखकर श्रीकृष्ण उसी क्षण मोहित हो गये। तब तुम उनसे सम्भावित होकर सहसा मुस्कराती हुई भाग चलीं। इसी कारण सत्पुरुष तुम्हें 'मूलप्रकृति' ईश्वरी राधा कहते हैं। उस समय सहसा श्रीकृष्णने तुम्हें बुलाकर वीर्यका आधान किया। उससे एक महान् डिम्ब उत्पन्न हुआ। उस डिम्बसे महाविराट्की उत्पत्ति हुई, जिसके रोमकूपोंमें समस्त ब्रह्माण्ड स्थित हैं। फिर राधाके शृङ्गारक्रमसे तुम्हारा निःश्वास प्रकट हुआ। वह निःश्वास महावायु हुआ और वही विश्वको धारण करनेवाला विराट् कहलाया। तुम्हारे पसीनेसे विश्वगोलक पिघल गया। तब विश्वका निवासस्थान वह विराट् जलकी राशि हो गया। तब तुमने अपनेको पाँच भागोंमें विभक्त करके पाँच मूर्ति धारण कर ली। उनमें परमात्मा श्रीकृष्णकी जो प्राणाधिष्ठात्री मूर्ति है, उसे भविष्यवेत्ता लोग कृष्णप्राणाधिका 'राधा' कहते हैं। जो मूर्ति वेद-शास्त्रोंकी जननी तथा वेदाधिष्ठात्री है, उस शुद्धरूपा मूर्तिको मनीषीगण 'सावित्री' नामसे पुकारते हैं। जो शान्ति तथा शान्तरूपिणी ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री मूर्ति है, उस सत्त्वस्वरूपिणी शुद्ध मूर्तिको संतलोग 'लक्ष्मी' नामसे अभिहित करते हैं। अहो! जो रागकी अधिष्ठात्री देवी तथा सत्पुरुषोंको पैदा करनेवाली है, जिसकी मूर्ति शुक्ल वर्णकी है, उस शास्त्रकी ज्ञाता मूर्तिको शास्त्रज्ञ 'सरस्वती' कहते हैं। जो मूर्ति बुद्धि, विद्या, समस्त शक्तिकी अधिदेवता, सम्पूर्ण मङ्गलोंकी मङ्गलस्थान, सर्वमङ्गलरूपिणी और सम्पूर्ण मङ्गलोंकी कारण है, वही तुम इस समय शिवके भवनमें विराजमान हो।

तुम्हीं शिवके समीप शिवा (पार्वती), नारायणके निकट लक्ष्मी और ब्रह्माकी प्रिया वेदजननी सावित्री और सरस्वती हो। जो परिपूर्णतम एवं परमानन्दस्वरूप हैं, उन रासेश्वर श्रीकृष्णकी तुम परमानन्दरूपिणी राधा हो। देवाङ्गनाएँ भी तुम्हारे कलांशकी अंशकलासे प्रादुर्भूत हुई हैं। सारी नारियाँ तुम्हारी विद्यास्वरूपा हैं और तुम सबकी कारणरूपा हो। अम्बिके! सूर्यकी पत्नी छाया, चन्द्रमाकी भार्या सर्वमोहिनी रोहिणी, इन्द्रकी पत्नी शची, कामदेवकी पत्नी ऐश्वर्यशालिनी रति, वरुणकी पत्नी वरुणानी, वायुकी प्राणप्रिया स्त्री, अग्निकी प्रिया स्वाहा, कुबेरकी सुन्दरी भार्या, यमकी पत्नी सुशीला, नैर्ऋतकी जाया कैटभी, ईशानकी पत्नी शशिकला,

मनुकी प्रिया शतरूपा, कर्दमकी भार्या देवहूति, वसिष्ठकी पत्नी अरुन्धती, देवमाता अदिति, अगस्त्य मुनिकी प्रिया लोपामुद्रा, गौतमकी पत्नी अहल्या, सबकी आधाररूपा वसुन्धरा, गङ्गा, तुलसी तथा भूतलकी सारी श्रेष्ठ सरिताएँ—ये सभी तथा इनके अतिरिक्त जो अन्य स्त्रियाँ हैं, वे सभी तुम्हारी कलासे उत्पन्न हुई हैं।

तुम मनुष्योंके घरमें गृहलक्ष्मी, राजाओंके भवनोंमें राजलक्ष्मी, तपस्वियोंकी तपस्या और ब्राह्मणोंकी गायत्री हो। तुम सत्पुरुषोंके लिये सत्त्वस्वरूप और दुष्टोंके लिये कलहकी अङ्कुर हो। निर्गुणकी ज्योति और सगुणकी शक्ति तुम्हीं हो। तुम सूर्यमें प्रभा, अग्निमें दाहिका-शक्ति, जलमें शीतलता और चन्द्रमामें शोभा हो। भूमिमें गन्ध और आकाशमें शब्द तुम्हारा ही रूप है। तुम भूख-प्यास आदि तथा प्राणियोंकी समस्त शक्ति हो। संसारमें सबकी उत्पत्तिकी कारण, साररूपा, स्मृति, मेधा, बुद्धि अथवा विद्वानोंकी ज्ञानशक्ति तुम्हीं हो। श्रीकृष्णने शिवजीको कृपापूर्वक सम्पूर्ण ज्ञानकी प्रसविनी जो शुभ विद्या प्रदान की थी, वह तुम्हीं हो; उसीसे शिवजी मृत्युञ्जय हुए हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली जो त्रिविध शक्तियाँ हैं, उनके रूपमें तुम्हीं विद्यमान हो; अतः तुम्हें नमस्कार है। जब मधु-कैटभके भयसे डरकर ब्रह्मा काँप उठे थे, उस समय जिनकी स्तुति करके वे भयमुक्त हुए थे; उन देवीको मैं सिर झुकाकर प्रणाम करता हूँ। मधु-कैटभके युद्धमें जगत्‌के रक्षक ये भगवान् विष्णु जिन परमेश्वरीका स्तवन करके शक्तिमान् हुए थे; उन दुर्गाको मैं नमस्कार करता हूँ। त्रिपुरके महायुद्धमें रथसहित शिवजीके गिर जानेपर सभी देवताओंने जिनकी स्तुति की थी; उन दुर्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनका स्तवन करके वृषरूपधारी विष्णुद्वारा उठाये गये स्वयं शम्भुने त्रिपुरका संहार किया था; उन दुर्गाको मैं अभिवादन करता हूँ। जिनकी आज्ञासे निरन्तर वायु बहती है, सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं और अग्नि जलाती है; उन दुर्गाको मैं सिर झुकाता हूँ। जिनकी आज्ञासे काल सदा वेगपूर्वक चक्कर काटता रहता है और मृत्यु जीव-समुदायमें विचरती रहती है; उन दुर्गाको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनके आदेशसे सृष्टिकर्ता सृष्टिकी रचना करते हैं, पालनकर्ता रक्षा करते हैं और संहर्ता समय आनेपर संहार करते हैं; उन दुर्गाको मैं प्रणाम करता हूँ। जिनके बिना स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण, जो ज्योतिःस्वरूप एवं निर्गुण हैं, सृष्टि-रचना करनेमें समर्थ नहीं होते; उन देवीको मेरा नमस्कार है। जगज्जननी! रक्षा करो, रक्षा करो; मेरे अपराधको क्षमा कर दो। भला, कहीं बच्चेके अपराध करनेसे माता कुपित होती है।

इतना कहकर परशुराम उन्हें प्रणाम करके रोने लगे। तब दुर्गा प्रसन्न हो गयीं और शीघ्र ही

उन्हें अभयका वरदान देती हुई बोलीं—'हे वत्स! तुम अमर हो जाओ। बेटा! अब शान्ति धारण करो। शिवजीकी कृपासे सदा सर्वत्र तुम्हारी विजय हो। सर्वान्तरात्मा भगवान् श्रीहरि सदा

तुमपर प्रसन्न रहें। श्रीकृष्णमें तथा कल्याणदाता गुरुदेव शिवमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति बनी रहे; क्योंकि जिसकी इष्टदेव तथा गुरुमें शाश्वती भक्ति होती है, उसपर यदि सभी देवता कुपित हो जायँ तो भी उसे मार नहीं सकते। तुम तो श्रीकृष्णके भक्त और शंकरके शिष्य हो तथा मुझ गुरुपत्नीकी स्तुति कर रहे हो; इसलिये किसकी शक्ति है जो तुम्हें मार सके। अहो! जो अन्यान्य देवताओंके भक्त हैं अथवा उनकी भक्ति न करके निरंकुश ही हैं, परंतु श्रीकृष्णके भक्त हैं तो उनका कहीं भी अमङ्गल नहीं होता। भार्गव! भला, जिन भाग्यवानोंपर बलवान् चन्द्रमा प्रसन्न हैं तो दुर्बल तारागण रुष्ट होकर उनका क्या बिगाड़ सकते हैं। सभामें महान् आत्मबलसे सम्पन्न सुखी नरेश जिसपर संतुष्ट है, उसका दुर्बल भृत्यवर्ग कुपित होकर क्या कर लेगा? यों कहकर पार्वती हर्षित हो परशुरामको शुभाशीर्वाद देकर अन्तःपुरमें चली गयीं। तब तुरंत हरि-नामका घोष गूँज उठा।

जो मनुष्य इस काण्वशाखोक्त स्तोत्रका पूजाके समय, यात्राके अवसरपर अथवा प्रातःकाल पाठ करता है, वह अवश्य ही अपनी अभीष्ट वस्तु प्राप्त कर लेता है। इसके पाठसे पुत्रार्थीको पुत्र, कन्यार्थीको कन्या, विद्यार्थीको विद्या, प्रजार्थीको प्रजा, राज्यभ्रष्टको राज्य और धनहीनको धनकी प्राप्ति होती है। जिसपर गुरु, देवता, राजा अथवा बन्धु-बान्धव क्रुद्ध हो गये हों, उसके लिये ये सभी इस स्तोत्रराजकी कृपासे प्रसन्न होकर वरदाता हो जाते हैं। जिसे चोर-डाकुओंने घेर लिया हो, साँपने डस लिया हो, जो भयानक शत्रुके चंगुलमें फँस गया हो अथवा व्याधिग्रस्त हो; वह इस स्तोत्रके स्मरणमात्रसे मुक्त हो जाता है। राजद्वारपर, श्मशानमें, कारागारमें और बन्धनमें पड़ा हुआ तथा अगाध जलराशिमें डूबता हुआ मनुष्य इस स्तोत्रके प्रभावसे मुक्त हो जाता है। स्वामिभेद, पुत्रभेद तथा भयंकर मित्रभेदके अवसरपर इस स्तोत्रके स्मरणमात्रसे निश्चय ही अभीष्टार्थकी प्राप्ति होती है। जो स्त्री वर्षपर्यन्त भक्तिपूर्वक दुर्गाका भलीभाँति पूजन करके हविष्यान्न खाकर इस स्तोत्रराजको सुनती है, वह महावन्ध्या हो तो भी प्रसववाली हो जाती है। उसे ज्ञानी एवं चिरजीवी दिव्य पुत्र प्राप्त होता है। छः महीनेतक इसका श्रवण करनेसे दुर्भगा सौभाग्यवती हो जाती है। जो काकवन्ध्या और मृतवत्सा नारी भक्तिपूर्वक नौ मासतक इस स्तोत्रराजको सुनती है, वह निश्चय ही पुत्र पाती है। जो कन्याकी माता तो है परंतु पुत्रसे हीन है, वह यदि पाँच महीनेतक कलशपर दुर्गाकी सम्यक् पूजा करके इस स्तोत्रको श्रवण करती है तो उसे अवश्य ही पुत्रकी प्राप्ति होती है। (अध्याय ४५)

सबका स्तवन-पूजन और नमस्कार करके परशुरामका जानेके लिये उद्यत होना, गणेश-पूजामें तुलसी-निषेधके प्रसङ्गमें गणेश-तुलसीके संवादका वर्णन तथा गणपतिखण्डका श्रवण-माहात्म्य

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार परशुरामने हर्षमग्न-चित्तसे दुर्गाकी स्तुति करके पुनः श्रीहरिद्वारा बतलाये गये स्तोत्रसे गणेशका स्तवन किया। तत्पश्चात् नाना प्रकारके नैवेद्यों, धूपों, दीपों, गन्धों और तुलसीके अतिरिक्त अन्य पुष्पोंसे भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की। इस प्रकार परशुरामने भक्तिभावसहित भाई गणेशका भलीभाँति पूजन करके गुरुपत्नी पार्वती और गुरुदेव शिवको नमस्कार किया तथा शंकरकी आज्ञा ले वे वहाँसे जानेको उद्यत हुए।

नारदजीने पूछा—प्रभो! परशुरामने जब विविध नैवेद्यों तथा पुष्पोंद्वारा भगवान् गणेशकी पूजा की थी, उस समय उन्होंने तुलसीको छोड़ क्यों दिया? मनोहारिणी तुलसी तो समस्त पुष्पोंमें मान्य एवं धन्यवादकी पात्र हैं; फिर गणेश उस सारभूत पूजाको क्यों नहीं ग्रहण करते?

श्रीनारायण बोले—नारद! ब्रह्मकल्पमें एक ऐसी घटना घटित हुई थी, जो परम गुह्य एवं मनोहारिणी है। उस प्राचीन इतिहासको मैं कहता हूँ, सुनो। एक समयकी बात है। नवयौवन-सम्पन्ना तुलसीदेवी नारायणपरायण हो तपस्याके निमित्तसे तीर्थोंमें भ्रमण करती हुई गङ्गा-तटपर जा पहुँचीं। वहाँ उन्होंने गणेशको देखा, जिनकी नयी जवानी थी; जो अत्यन्त सुन्दर, शुद्ध और पीताम्बर धारण किये हुए थे; जिनके सारे शरीरमें चन्दनकी खौर लगी थी; जो रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित थे; सुन्दरता जिनके मनका अपहरण नहीं कर सकती; जो कामनारहित, जितेन्द्रियोंमें सर्वश्रेष्ठ और योगीन्द्रोंके गुरु-के-गुरु हैं तथा मन्द-मन्द मुस्कराते हुए जन्म, मृत्यु और बुढ़ापाका नाश करनेवाले श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान कर रहे थे; उन्हें देखते ही तुलसीका मन गणेशकी ओर आकर्षित हो गया। तब तुलसी उनसे लम्बोदर तथा गजमुख होनेका कारण पूछकर उनका उपहास करने लगी। ध्यान-भङ्ग होनेपर गणेशजीने पूछा—'वत्से! तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? यहाँ तुम्हारे आनेका क्या कारण है? माता! यह मुझे बतलाओ; क्योंकि शुभे! तपस्वियोंका ध्यान भङ्ग करना सदा पापजनक तथा अमङ्गलकारी होता है। शुभे! श्रीकृष्ण कल्याण करें, कृपानिधि विघ्नका विनाश करें और मेरे ध्यान-भङ्गसे उत्पन्न हुआ दोष तुम्हारे लिये अमङ्गलकारक न हो।'

इसपर तुलसीने कहा—प्रभो! मैं धर्मात्मजकी नवयुवती कन्या हूँ और तपस्यामें संलग्न हूँ। मेरी यह तपस्या पति-प्राप्तिके लिये है; अतः आप मेरे स्वामी हो जाइये। तुलसीकी बात सुनकर अगाध बुद्धिसम्पन्न गणेश श्रीहरिका स्मरण करते हुए विदुषी तुलसीसे मधुरवाणीमें बोले।

गणेशने कहा—हे माता! विवाह करना बड़ा भयंकर होता है; अतः इस विषयमें मेरी बिलकुल इच्छा नहीं है; क्योंकि विवाह दुःखका कारण होता है, उससे सुख कभी नहीं मिलता। यह हरि-भक्तिका व्यवधान, तपस्याके नाशका कारण, मोक्षद्वारका किवाड़, भव-बन्धनकी रस्सी, गर्भवासकारक, सदा तत्त्वज्ञानका छेदक और संशयोंका उद्गमस्थान है। इसलिये महाभागे! मेरी ओरसे मन लौटा लो और किसी अन्य पतिकी तलाश करो। गणेशके ऐसे वचन सुनकर तुलसीको क्रोध आ गया। तब वह साध्वी गणेशको शाप देते हुए बोली—'तुम्हारा विवाह होगा।' यह सुनकर शिव-तनय सुरश्रेष्ठ गणेशने भी तुलसीको शाप दिया—'देवि! तुम निस्संदेह असुरद्वारा ग्रस्त होओगी। तत्पश्चात् महापुरुषोंके शापसे तुम वृक्ष हो जाओगी।' नारद! महातपस्वी गणेश इतना कहकर चुप हो गये। उस शापको सुनकर तुलसीने फिर उस सुरश्रेष्ठ गणेशकी स्तुति की। तब प्रसन्न होकर गणेशने तुलसीसे कहा।

गणेश बोले—मनोरमे! तुम पुष्पोंकी सारभूता होओगी और कलांशसे स्वयं नारायणकी प्रिया बनोगी। महाभागे! यों तो सभी देवता तुमसे प्रेम करेंगे, परंतु श्रीकृष्णके लिये तुम विशेष प्रिय होओगी। तुम्हारे द्वारा की गयी पूजा मनुष्योंके लिये मुक्तिदायिनी होगी और मेरे लिये तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी। तुलसीसे यों कहकर सुरश्रेष्ठ गणेश पुनः तप करने चले गये। वे श्रीहरिकी आराधनामें व्यग्र होकर बदरीनाथके संनिकट गये। इधर तुलसीदेवी दुःखित हृदयसे पुष्करमें जा पहुँची

और निराहार रहकर वहाँ दीर्घकालिक तपस्यामें संलग्न हो गयी। नारद! तत्पश्चात् मुनिवरके तथा गणेशके शापसे वह चिरकालतक शङ्खचूडकी प्रिय पत्नी बनी रही। मुने! तदनन्तर असुरराज शङ्खचूड शंकरजीके त्रिशूलसे मृत्युको प्राप्त हो गया, तब नारायणप्रिया तुलसी कलांशसे वृक्षभावको प्राप्त हो गयी। यह इतिहास, जिसका मैंने तुमसे वर्णन किया है, पूर्वकालमें धर्मके मुखसे सुना था। इसका वर्णन अन्य पुराणोंमें नहीं मिलता। यह तत्त्वरूप तथा मोक्ष प्रदान करनेवाला है। तदनन्तर महाभाग परशुराम गणेशका पूजन करके तथा शंकर और पार्वतीको नमस्कार कर तपस्याके लिये वनको चले गये। इधर गणेश समस्त सुरश्रेष्ठों तथा मुनिवरोंसे वन्दित एवं पूजित होकर शिव-पार्वतीके निकट स्थित हुए।

जो मनुष्य इस गणपति-खण्डको दत्तचित्त होकर सुनता है, उसे निश्चय ही राजसूययज्ञके फलकी प्राप्ति होती है। पुत्रहीन मनुष्य श्रीगणेशकी कृपासे धीर, वीर, धनी, गुणी, चिरजीवी, यशस्वी, पुत्रवान्, विद्वान्, श्रेष्ठ कवि, जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ, समस्त सम्पदाओंका दाता, परम पवित्र, सदाचारी, प्रशंसनीय, विष्णुभक्त, अहिंसक, दयालु और तत्त्वज्ञानविशारद पुत्र पाता है। महावन्ध्या स्त्री वस्त्र, अलंकार और चन्दनद्वारा भक्तिपूर्वक गणेशकी पूजा करके और इस गणपतिखण्डको सुनकर पुत्रको जन्म देती है। जो मनुष्य नियमपरायण हो मनमें किसी कामनाको लेकर इसे सुनता है, सुरश्रेष्ठ गणेश उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर देते हैं। विघ्ननाशके लिये यत्नपूर्वक इस गणपतिखण्डको सुनकर वाचकको सोनेका यज्ञोपवीत, श्वेत छत्र, श्वेत अश्व, श्वेतपुष्पोंकी माला, स्वस्तिक मिष्टान्न, तिलके लड्डू और देशकालोद्भव पके हुए फल प्रदान करना चाहिये। (अध्याय ४६)

॥ गणपतिखण्ड सम्पूर्ण॥

श्रीकृष्णजन्मखण्ड

नारदजीके प्रश्न तथा मुनिवर नारायणद्वारा भगवान् विष्णु एवं वैष्णवके माहात्म्यका वर्णन, श्रीराधा और श्रीकृष्णके गोकुलमें अवतार लेनेका एक कारण श्रीदाम और राधाका परस्पर शाप

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम्।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्॥

भगवान् नारायण, नरश्रेष्ठ नर तथा देवी सरस्वतीको नमस्कार करके जय (इतिहास-पुराण आदि)-का पाठ करना चाहिये।

नारदजीने कहा—ब्रह्मन्! मैंने सबसे पहले पूज्यपाद पिता ब्रह्माजीके मुखारविन्दसे ब्रह्मखण्डकी मनोहर कथा सुनी है, जो अत्यन्त अद्भुत है। तदनन्तर उन्हींकी आज्ञासे मैं तुरंत आपके निकट चला आया और यहाँ अमृतखण्डसे भी अधिक मधुर प्रकृतिखण्ड सुननेको मिला। तत्पश्चात् मैंने गणपतिखण्ड श्रवण किया, जो अखण्ड जन्मोंका खण्डन करनेवाला है। परंतु मेरा लोलुप मन अभी तृप्त नहीं हुआ। यह और भी विशिष्ट प्रसङ्गको सुनना चाहता है। अतः अब श्रीकृष्णजन्मखण्डका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये, जो मनुष्योंके जन्म-मरण आदिका खण्डन करनेवाला है। यह समस्त तत्त्वोंका प्रकाशक, कर्मबन्धनका नाशक, हरिभक्ति प्रदान करनेवाला, तत्काल वैराग्यजनक, संसारविषयक आसक्तिका निवारक, मुक्तिबीजका कारण तथा भवसागरसे पार उतारनेवाला उत्तम साधन है। वह कर्मभोगरूपी रोगोंका नाश करनेके लिये रसायनका काम देता है। श्रीकृष्णचरणारविन्दोंकी प्राप्तिके लिये सोपानका निर्माण करता है। वैष्णवोंका तो यह जीवन ही है। तीनों लोकोंको परम पवित्र करनेवाला है। मैं आपका शरणागत भक्त एवं शिष्य हूँ। अतः आप मुझे श्रीकृष्णजन्मखण्डकी कथाको विस्तारपूर्वक सुनाइये। किसकी प्रार्थनासे एकमात्र परिपूर्णतम परमेश्वर श्रीकृष्ण अपने सम्पूर्ण अंशोंसे इस भूतलपर अवतीर्ण हुए? किस युगमें, किस हेतुसे और कहाँ उनका आविर्भाव हुआ? उनके पिता वसुदेव कौन थे अथवा माता देवकी भी कौन थीं? बताइये। किसके कुलमें भगवान्‌ने मायाद्वारा जन्म-ग्रहणकी लीला की? श्रीहरिने किस रूपसे यहाँ आकर क्या किया? मुने! सुना जाता है कि श्रीकृष्ण कंसके भयसे सूतिकागृहसे गोकुलको चले गये थे। जो स्वयं भयके स्वामी हैं, उन्हें कीटतुल्य कंससे क्यों भय हुआ? उन श्रीहरिने गोप-वेष धारण करके गोकुलमें कौन-सी लीला की? वे तो जगदीश्वर हैं। फिर उन्होंने गोपाङ्गनाओंके साथ क्यों विहार किया? गोपाङ्गनाएँ कौन थीं? अथवा वे ग्वाल-बाल भी कौन थे? यशोदा कौन थीं? नन्दरायजी कौन थे? उन्होंने कौन-सा पुण्य किया था? श्रीहरिकी प्रेयसी गोलोकवासिनी पुण्यवती देवी श्रीराधा क्यों व्रजमें व्रजकन्या होकर प्रकट हुईं? गोपियोंने किस प्रकार दुराराध्य परमेश्वरको प्राप्त किया? श्रीहरि उन सबको छोड़कर मथुरा क्यों चले गये? महाभाग! पृथ्वीका भार उतारकर कौन-सी लीला करनेके पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण पुनः परमधामको पधारे? आप उनकी लीला-कथा सुनाइये; क्योंकि उसका श्रवण और कीर्तन पुण्यदायक है। श्रीहरिकी कथा अत्यन्त दुर्लभ है। यह भवसागरसे पार उतारनेके लिये नौकाके तुल्य है। प्रारब्धभोगरूपी बेड़ी तथा क्लेशोंका उच्छेद करनेके लिये कटार है। पापरूपी ईंधन-राशिका दाह करनेके लिये प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान है। इसे सुननेवाले पुरुषोंके करोड़ों जन्मोंकी पापराशिका यह नाश

कर देती है। भगवान्‌की कथा शोक-सागरका नाश करनेवाली मुक्ति है। वह कानोंमें अमृतके समान मधुर प्रतीत होती है। कृपानिधे! मैं आपका भक्त एवं शिष्य हूँ। आप मुझे श्रीहरिकथाका ज्ञान प्रदान कीजिये। तप, जप, बड़े-बड़े दान, पृथ्वीके तीर्थोंके दर्शन, श्रुतिपाठ, अनशन, व्रत, देवार्चन तथा सम्पूर्ण यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण करनेसे मनुष्यको जो फल मिलता है, वह सब ज्ञानदानकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। पिताजीने मुझे आपके पास ज्ञान प्राप्त करनेके लिये भेजा है। सुधा-समुद्रके पास पहुँचकर कौन दूसरी वस्तु (जल आदि) पीनेकी इच्छा करेगा?

भगवान् नारायण बोले—कुलको पवित्र करनेवाले नारद! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। तुम धन्य हो। पुण्यकी मूर्तिमती राशि हो। लोकोंको पवित्र करनेके लिये ही तुम इनमें भ्रमण करते हो। वाणीसे मनुष्योंके हृदयकी तत्काल पहचान हो जाती है। शिष्य, कलत्र, कन्या, दौहित्र, बन्धु-बान्धव, पुत्र-पौत्र, प्रवचन, प्रताप, यश, श्री, बुद्धि, मैत्री और विद्या—इनके विषयमें मनुष्योंके हार्दिक अभिप्रायका पता चल जाता है। तुम जीवन्मुक्त और पवित्र हो। भगवान् गदाधरके शुद्ध भक्त हो। अपने चरणोंकी धूलसे सबकी आधारभूता वसुधाको पवित्र करते फिरते हो। समस्त लोकोंको अपने स्वरूपका दर्शन देकर पवित्र बनाते हो। भगवान् श्रीहरिकी कथा परम मङ्गलमयी है, इसीलिये तुम उसे सुनना चाहते हो। जहाँ श्रीकृष्णकी कथाएँ होती हैं, वहीं सब देवता निवास करते हैं। ऋषि, मुनि और सम्पूर्ण तीर्थ भी वहीं रहते हैं। वे कथा सुनकर अन्तमें अपने निरापद स्थानको जाते हैं। जिन स्थानोंमें श्रीकृष्णकी शुभ कथाएँ होती हैं, वे तीर्थ बन जाते हैं। सैकड़ों जन्मोंतक तपस्या करके जो पवित्र हो गया है, वही इस भारतवर्षमें जन्म पाता है। वह यदि श्रीहरिकी अमृतमयी कथाका श्रवण करे, तभी अपने जन्मको सफल कर सकता है। भगवान्‌की पूजा, वन्दना, मन्त्र-जप, सेवा, स्मरण, कीर्तन, निरन्तर उनके गुणोंका श्रवण, उनके प्रति आत्मनिवेदन तथा उनका दास्यभाव—ये भक्तिके नौ लक्षण हैं*। नारद! इन सबका अनुष्ठान करके मनुष्य अपने जन्मको सफल बनाता है। उसके मार्गमें विघ्न नहीं आता और उसकी पूरी आयु नष्ट नहीं होती। उसके सामने काल उसी तरह नहीं जाता है, जैसे गरुड़के सामने सर्प। भगवान् श्रीहरि उस भक्तका सामीप्य एक क्षणके लिये भी नहीं छोड़ते हैं। अणिमा आदि सिद्धियाँ तुरंत उसकी सेवामें उपस्थित हो जाती हैं। भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे उसकी रक्षाके लिये सुदर्शन चक्र दिन-रात उसके पास घूमता रहता है। फिर कौन उसका क्या कर सकता है? यमराजके दूत स्वप्नमें भी उसके निकट वैसे ही नहीं जाते हैं, जैसे शलभ जलती हुई आगको देखकर उससे दूर भागते हैं। उसके ऊपर ऋषि, मुनि, सिद्ध तथा सम्पूर्ण देवता संतुष्ट रहते हैं। वह भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे सर्वत्र सुखी एवं निःशंक रहता है। श्रीकृष्णकी कथामें सदा तुम्हारा आत्यन्तिक अनुराग है। क्यों न हो? पिताका स्वभाव पुत्रमें अवश्य ही प्रकट होता है। विप्रवर! तुम्हारी यह प्रशंसा क्या है? तुम्हारा जन्म ब्रह्माजीके मानससे हुआ है। जिसका जिस कुलमें जन्म होता है, उसकी बुद्धि उसके अनुसार ही होती है। तुम्हारे पिता श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंकी सेवासे ही विधाताके पदपर प्रतिष्ठित हैं। वे नित्य-निरन्तर नवधा भक्तिका पालन करते हैं।

जिसका श्रीकृष्णकी कथामें अनुराग हो,

---

* अर्चनं वन्दनं मन्त्रजपं सेवनमेव च। स्मरणं कीर्तनं शश्वद् गुणश्रवणमीप्सितम्॥
निवेदनं तस्य दास्यं नवधा भक्तिलक्षणम्। (श्रीकृष्णजन्मखण्ड १। ३३-३४)

कथा सुनकर जिसके नेत्रोंमें आँसू छलक आते हों और शरीरमें रोमाञ्च हो जाता हो तथा मन उसीमें डूब जाता हो; उसीको विद्वान् पुरुषोंने सच्चा भक्त कहा है। जो मन, वाणी और शरीरसे स्त्री-पुत्र आदि सबको श्रीहरिका ही स्वरूप समझता है, उसे विद्वानोंने भक्त कहा है। जिसकी सब जीवोंपर दया है तथा जो सम्पूर्ण जगत्को श्रीकृष्ण जानता है, वह महाज्ञानी पुरुष ही वैष्णव भक्त माना गया है। जो निर्जन स्थानमें अथवा तीर्थोंके सम्पर्कमें रहकर आसक्तिशून्य हो बड़े आनन्दके साथ श्रीहरिके चरणारविन्दका चिन्तन करते हैं, वे वैष्णव माने गये हैं। जो सदा भगवान्के नाम और गुणका गान करते, मन्त्र जपते तथा कथा-वार्ता कहते-सुनते हैं, वे अत्यन्त वैष्णव हैं। मीठी वस्तुएँ पाकर श्रीहरिको प्रसन्नतापूर्वक भोग लगानेके लिये जिसका मन हर्षसे खिल उठता है, वह ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ भक्त है। जिसका मन सोते, जागते, दिन-रात श्रीहरिके चरणारविन्दमें ही लगा रहता है और जो बाह्य शरीरसे पूर्व कर्मोंका फल भोगता है, वह वैष्णव है। तीर्थ सदा वैष्णवोंके दर्शन और स्पर्शकी अभिलाषा करते हैं; क्योंकि उनके सङ्गसे उन तीर्थोंके वे सारे पाप नष्ट हो जाते हैं, जो उन्हें पापियोंके संसर्गसे मिले होते हैं। जितनी देरमें गाय दुही जाती है, उतनी देर भी जहाँ वैष्णव पुरुष ठहर जाता है, वहाँकी धरतीपर उतने समयके लिये सम्पूर्ण तीर्थ निवास करते हैं। वहाँ मरा हुआ पापी मनुष्य निश्चय ही पापमुक्त हो श्रीहरिके धाममें वैसे ही चला जाता है, जैसे अन्तकालमें श्रीकृष्णकी स्मृति होनेपर अथवा ज्ञानगङ्गामें अवगाहन करनेपर मनुष्य परम पदको प्राप्त हो जाता है। तथा जैसे तुलसीवनमें, गोशालामें, श्रीकृष्ण-मन्दिरमें, वृन्दावनमें, हरिद्वारमें एवं अन्य तीर्थोंमें भी मृत्यु होनेपर मनुष्यको परम धामकी प्राप्ति होती है। तीर्थोंमें स्नान करने या गोता लगानेसे पापियोंके पाप धुल जाते हैं। फिर उन तीर्थोंके पाप वैष्णवोंको छूकर बहनेवाली वायुके स्पर्शसे नष्ट होते हैं। जो भगवान् हृषीकेशकी और उनके पुण्यात्मा भक्तकी निन्दा करते हैं, उनके सौ जन्मोंका पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है। वैष्णवोंके स्पर्शमात्रसे पातकी मनुष्य पातकसे मुक्त हो जाता है। पातकीके स्पर्शसे उस भक्तमें जो पाप आता है, उसका नाश उसके अन्तः-करणमें बैठे हुए भगवान् मधुसूदन अवश्य कर देते हैं। ब्रह्मन्! इस प्रकार मैंने भगवान् विष्णु और वैष्णव भक्तके गुणोंका वर्णन किया है। अब मैं तुम्हें श्रीहरिके जन्मका प्रसङ्ग सुनाता हूँ, सुनो।

श्रीनारायणने कहा—एक बार गोलोकमें श्रीकृष्ण विरजादेवीके समीप थे। श्रीराधाको यह ठीक नहीं लगा। श्रीराधा सखियोंसहित वहाँ जाने लगीं। तब श्रीदामने उन्हें रोका। इसपर श्रीराधाने श्रीदामको शाप दे दिया कि 'तुम असुरयोनिको प्राप्त हो जाओ।' तब श्रीदामने भी श्रीराधाको यह शाप दिया कि 'आप भी मानवी-योनिमें जायँ। वहाँ गोकुलमें श्रीहरिके ही अंश महायोगी रायाण नामक एक वैश्य होंगे। आपका छायारूप उनके साथ रहेगा। अतएव भूतलपर मूढ़ लोग आपको रायाणकी पत्नी समझेंगे, श्रीहरिके साथ कुछ समय आपका विछोह रहेगा।'

इससे श्रीदाम और श्रीराधा दोनोंको ही क्षोभ हुआ। तब श्रीकृष्णने श्रीदामको सान्त्वना देकर कहा कि 'तुम त्रिभुवनविजेता सर्वश्रेष्ठ शङ्खचूड नामक असुर होओगे और अन्तमें श्रीशंकरके त्रिशूलसे भिन्न-देह होकर यहाँ मेरे पास लौट आओगे।'

श्रीराधाको बड़े ही प्रेमके साथ हृदयसे लगाकर भगवान्ने कहा—'वाराहकल्पमें मैं पृथ्वीपर जाऊँगा और व्रजमें जाकर वहाँके पवित्र काननोंमें तुम्हारे साथ विहार करूँगा। मेरे रहते तुमको क्या भय है?'

उधर विरजादेवी नदी हो गयीं और उनके

श्रीकृष्णके द्वारा जो सात सुन्दर पुत्र हुए थे—वे लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जलरूप सात समुद्र हो गये (यह सब श्रीराधा और श्रीकृष्णकी लीला ही है, जो व्रजमें परम दिव्य पवित्रतम विलक्षण प्रेमरसधारा बहानेके लिये निमित्तरूपसे की गयी थी)। इसी निमित्तसे लीलामय श्रीराधा और श्रीकृष्ण वाराहकल्पमें पृथ्वीपर अवतीर्ण हुए। श्रीराधाजी गोकुलमें श्रीवृषभानुके घर प्रकट हुईं। यह कथा प्रसङ्गानुसार पहले भी आ चुकी है। (भगवान् श्रीराधा-कृष्णके अवतार तथा व्रजकी मधुरतम लीलाका यह एक निमित्त कारणमात्र है।)(अध्याय १—३)

पृथ्वीका देवताओंके साथ ब्रह्मलोकमें जाकर अपनी व्यथा-कथा सुनाना, ब्रह्माजीका उन सबके साथ कैलासगमन, कैलाससे ब्रह्मा, शिव तथा धर्मका वैकुण्ठमें जाकर श्रीहरिकी आज्ञासे गोलोकमें जाना और वहाँ विरजातट, शतशृङ्गपर्वत, रासमण्डल एवं वृन्दावन आदिके प्रदेशोंका अवलोकन करना, गोलोकका विस्तृत वर्णन

नारदजीने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारायण! किसकी प्रार्थनासे और किस कारण जगदीश्वर श्रीकृष्णने इस भूतलपर अवतार लिया था?

श्रीनारायणने कहा—प्राचीन कालकी बात है। वाराह-कल्पमें पृथ्वी असुरोंके अधिक भारसे आक्रान्त हो गयी थी; अतः शोकसे अत्यन्त पीड़ित हो वह ब्रह्माजीकी शरणमें गयी। उसके साथ असुरोंद्वारा सताये गये देवता भी थे, जिनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो रहा था। पृथ्वी उन देवताओंके साथ ब्रह्माजीकी दुर्गम सभामें गयी। वहाँ उसने देखा, देवेश्वर ब्रह्मा ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान हो रहे हैं तथा बड़े-बड़े ऋषि, मुनीन्द्र तथा सिद्धेन्द्रगण सानन्द उनकी सेवामें उपस्थित हैं। ब्रह्माजी 'कृष्ण' इस दो अक्षरके परब्रह्मस्वरूप मन्त्रका जप कर रहे थे। उनके नेत्र भक्तिजनित आनन्दके आँसुओंसे भरे थे तथा सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था। मुने! देवताओंसहित पृथ्वीने भक्तिभावसे चतुराननको प्रणाम किया और दैत्योंके भार आदिका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। आँसूभरे नेत्रों और पुलकित शरीरसे वह ब्रह्माजीकी स्तुति तथा रोदन करने लगी।

तब जगद्धाता ब्रह्माने उससे पूछा—भद्रे! तुम क्यों स्तुति करती और रोती हो? बताओ, किस उद्देश्यसे तुम्हारा आगमन हुआ है? विश्वास करो, तुम्हारा भला होगा। कल्याणि! सुस्थिर हो जाओ, मेरे रहते तुम्हें क्या भय है?

इस प्रकार पृथ्वीको आश्वासन देकर ब्रह्माजीने देवताओंसे आदरपूर्वक पूछा—'देवगण! किसलिये तुम्हारा मेरे समीप आगमन हुआ है?'

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर देवतालोग उन प्रजापतिसे बोले—प्रभो! पृथ्वी दैत्योंके भारसे दबी हुई है तथा हम भी उनके कारण संकटमें पड़ गये हैं। दैत्योंने हमें ग्रस लिया। आप ही जगत्के स्रष्टा हैं, शीघ्र ही हमारा उद्धार कीजिये। ब्रह्मन्! आप ही इस पृथ्वीकी गति हैं; इसे शान्ति प्रदान करें। पितामह! यह पृथ्वी जिस भारसे पीड़ित है, उसीसे हम भी दुःखी हैं, अतः आप उस भारका हरण कीजिये।'

देवताओंकी बात सुनकर जगत्स्रष्टा ब्रह्माने पृथ्वीसे पूछा—'बेटी! तुम भय छोड़कर मेरे पास सुखपूर्वक रहो। पद्मलोचने! बताओ, किनका ऐसा भार आ गया है, जिसे सहन करनेमें तुम असमर्थ हो गयी हो। भद्रे! मैं उस भारको दूर करूँगा। निश्चय ही तुम्हारा भला होगा। ब्रह्माजीका यह वचन सुनकर पृथ्वीके मुखपर और नेत्रोंमें प्रसन्नता छा गयी। वह जिस-जिस

कारणसे इस तरह पीड़ित थी, अपनी पीड़ाकी उस कथाको कहने लगी—'तात! सुनिये, मैं अपने मनकी व्यथा बता रही हूँ। विश्वासी बन्धु-बान्धवके सिवा दूसरे किसीको मैं यह बात नहीं बता सकती; क्योंकि स्त्री-जाति अबला होती है। अपने सगे बन्धु, पिता, पति और पुत्र सदा उसकी रक्षा करते हैं; परंतु दूसरे लोग निश्चय ही उसकी निन्दा करने लगते हैं। जगत्पिता आपने मेरी सृष्टि की है; अतः आपसे अपने मनकी बात कहनेमें मुझे कोई संकोच नहीं है। मैं जिनके भारसे पीड़ित हूँ, उनका परिचय देती हूँ, सुनिये।

'जो श्रीकृष्णभक्तिसे हीन हैं और जो श्रीकृष्ण-भक्तकी निन्दा करते हैं, उन महापातकी मनुष्योंका भार वहन करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ। जो अपने धर्मके आचरणसे शून्य तथा नित्यकर्मसे रहित हैं, जिनकी वेदोंमें श्रद्धा नहीं है; उनके भारसे मैं पीड़ित हूँ। जो पिता, माता, गुरु, स्त्री, पुत्र तथा पोष्य-वर्गका पालन-पोषण नहीं करते हैं; उनका भार वहन करनेमें मैं असमर्थ हूँ। पिताजी! जो मिथ्यावादी हैं, जिनमें दया और सत्यका अभाव है तथा जो गुरुजनों और देवताओंकी निन्दा करते हैं; उनके भारसे मुझे बड़ी पीड़ा होती है। जो मित्रद्रोही, कृतघ्न, झूठी गवाही देनेवाले, विश्वासघाती तथा धरोहर हड़प लेनेवाले हैं; उनके भारसे भी मैं पीड़ित रहती हूँ। जो कल्याणमय सूक्तों, साम-मन्त्रों तथा एकमात्र मङ्गलकारी श्रीहरिके नामोंका विक्रय करते हैं; उनके भारसे मुझे बड़ा कष्ट होता है। जो जीवघाती, गुरुद्रोही, ग्रामपुरोहित, लोभी, मुर्दा जलानेवाले तथा ब्राह्मण होकर शूद्रान्न भोजन करनेवाले हैं; उनके भारसे मुझे बड़ा कष्ट होता है। जो मूढ़ पूजा, यज्ञ, उपवास-व्रत और नियमको तोड़नेवाले हैं; उनके भारसे भी मुझे बड़ी पीड़ा होती है। जो पापी सदा गौ, ब्राह्मण, देवता, वैष्णव, श्रीहरि, हरिकथा और हरिभक्तिसे द्वेष करते हैं; उनके भारसे मैं पीड़ित रहती हूँ। विधे! शङ्खचूड़के भारसे जिस तरह मैं पीड़ित थी, उससे भी अधिक दैत्योंके भारसे पीड़ित हूँ। प्रभो! यह सब कष्ट मैंने कह सुनाया। यही मुझ अनाथाका निवेदन है। यदि आपसे मैं सनाथ हूँ तो आप मेरे कष्टके निवारणका उपाय कीजिये।'

यों कहकर वसुधा बार-बार रोने लगी। उसका रोदन सुनकर कृपानिधान ब्रह्माने उससे कहा—'वसुधे! तुम्हारे ऊपर जो दस्युभूत राजाओंका भार आ गया है, मैं किसी उपायसे अवश्य ही उसे हटाऊँगा।'

पृथ्वीको इस प्रकार आश्वासन देकर देवताओंसहित जगद्धाता ब्रह्मा भगवान् शंकरके निवासस्थान कैलास पर्वतपर गये। वहाँ पहुँचकर विधाताने कैलासके रमणीय आश्रम तथा भगवान् शंकरको देखा। वे गङ्गाजीके तटपर अक्षयवटके नीचे बैठे हुए थे। उन्होंने व्याघ्रचर्म पहन रखा था। दक्षकन्याकी हड्डियोंके आभूषणसे वे विभूषित थे। उन्होंने हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश धारण कर रखे थे। उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। अनेकानेक सिद्धोंने उन्हें घेर रखा था। वे योगीन्द्रगणसे सेवित थे और कौतूहलपूर्वक गन्धर्वोंका संगीत सुन रहे थे। साथ ही अपनी ओर देखती हुई पार्वतीको और प्रेमपूर्वक तिरछी नजरसे देख लेते थे। अपने पाँच मुखोंद्वारा श्रीहरिके एकमात्र मङ्गल नामका जप करते थे। गङ्गाजीमें उत्पन्न कमलोंके बीजोंकी मालासे जप करते समय उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आता था। इसी समय ब्रह्माजी पृथ्वी तथा नतमस्तक देवसमूहोंके साथ महादेवजीके सामने जा खड़े हुए। जगद्गुरुको आया देख भगवान् शंकर शीघ्र ही भक्तिभावसे उठकर खड़े हो गये। उन्होंने प्रेमपूर्वक मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और उनका आशीर्वाद प्राप्त किया। तत्पश्चात् सब देवताओंने तथा पृथ्वीने भी

भक्तिभावसे चन्द्रशेखर शिवको प्रणाम किया और शिवने उन सबको आशीर्वाद दिया। प्रजापति ब्रह्माने पार्वतीनाथ शिवसे सारा वृत्तान्त कहा। यह सब सुनकर भक्तवत्सल शंकरने तुरंत ही मुँह नीचा कर लिया। भक्तोंपर कष्ट आया सुनकर पार्वती और परमेश्वर शिवको बड़ा दुःख हुआ। तदनन्तर ब्रह्मा और शिवने देवसमूहों तथा वसुधाको यत्नपूर्वक सान्त्वना देकर घरको लौटा दिया। फिर वे दोनों देवेश्वर तुरंत धर्मके घर आये और उनके साथ विचार-विमर्श करके वे तीनों श्रीहरिके धामको चल दिये। भगवान्‌के उस परम धामका नाम वैकुण्ठ है। वह जरा और मृत्युको दूर भगानेवाला है। ब्रह्माण्डसे ऊपर उसकी स्थिति है। वह उत्तम लोक मानो वायुके आधारपर स्थित है। (वास्तवमें वह चिन्मय लोक श्रीहरिसे भिन्न न होनेके कारण अपने-आपमें ही स्थित है। उसका दूसरा कोई आधार नहीं है।) उस सनातन धामकी स्थिति ब्रह्मलोकसे एक करोड़ योजन ऊपर है। दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित विचित्र वैकुण्ठधामका वर्णन कर पाना कवियोंके लिये असम्भव है। पद्मराग और नीलमणिके बने हुए राजमार्ग उस धामकी शोभा बढ़ाते हैं। मनके समान तीव्र गतिसे जानेवाले वे ब्रह्मा, शिव और धर्म सब-के-सब उस मनोहर वैकुण्ठधाममें जा पहुँचे। श्रीहरिके अन्तःपुरमें पहुँचकर उन सबने वहाँ उनके दर्शन किये। वे श्रीहरि दिव्य रत्नमय अलङ्कारोंसे विभूषित हो रत्नसिंहासनपर बैठे थे। रत्नोंके बाजूबंद, कंगन और नूपुर उनके हाथ-पैरोंकी शोभा बढ़ाते थे। दिव्य रत्नोंके बने हुए दो कुण्डल उनके दोनों गालोंपर झलमला रहे थे। उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था तथा आजानुलम्बिनी वनमाला उनके अग्रभागको विभूषित कर रही थी। सरस्वतीके प्राणवल्लभ श्रीहरि शान्तभावसे बैठे थे। लक्ष्मीजी उनके चरणारविन्दोंकी सेवा कर रही थीं। करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्यलीलासे वे प्रकाशित हो रहे थे। उनके चार भुजाएँ थीं और मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षद उनकी सेवामें जुटे थे। उनका सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित था तथा उनका मस्तक रत्नमय मुकुटसे जगमगा रहा था। वे परमानन्द-स्वरूप भगवान् भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल दिखायी देते थे। मुने! ब्रह्मा आदि देवेश्वरोंने भक्तिभावसे उनके चरणोंमें प्रणाम किया और श्रद्धापूर्वक मस्तक झुकाकर बड़ी भक्तिके साथ उनकी स्तुति की। उस समय वे परमानन्दके भारसे दबे हुए थे। उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था।

ब्रह्माजी बोले—मैं शान्त, सर्वेश्वर तथा अच्युत उन कमलाकान्तको प्रणाम करता हूँ, जिनकी हम तीनों विभिन्न कलाएँ हैं तथा समस्त देवता जिनकी कलाकी भी अंशकलासे उत्पन्न हुए हैं। निरञ्जन! मनु, मुनीन्द्र, मानव तथा चराचर प्राणी आपसे ही आपके कलाकी अंशकलाद्वारा प्रकट हुए हैं।

भगवान् शंकरने कहा—आप अविनाशी तथा अविकारी हैं। योगीजन आपमें रमण करते हैं। आप अव्यक्त ईश्वर हैं। आपका आदि नहीं है; परंतु आप सबके आदि हैं। आपका स्वरूप आनन्दमय है। आप सर्वरूप हैं। अणिमा आदि सिद्धियोंके कारण तथा सबके कारण हैं। सिद्धिके ज्ञाता, सिद्धिदाता और सिद्धिरूप हैं। आपकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है?

धर्म बोले—जिस वस्तुका वेदमें निरूपण किया गया है, उसीका विद्वान् लोग वर्णन कर सकते हैं। जिनको वेदमें ही अनिर्वचनीय कहा गया है, उनके स्वरूपका निरूपण कौन कर सकता है? जिसके लिये जिस वस्तुकी सम्भावना की जाती है, वह गुणरूप होती है। वही उसका स्तवन है। जो निरञ्जन (निर्मल) तथा गुणोंसे पृथक्—निर्गुण हैं; उन परमात्माकी मैं क्या स्तुति करूँ?

महामुने! ब्रह्मा आदिका किया हुआ यह स्तोत्र जो छः श्लोकोंमें वर्णित है, पढ़कर मनुष्य दुर्गम संकटसे मुक्त होता और मनोवाञ्छित फलको पाता है।*

देवताओंकी स्तुति सुनकर साक्षात् श्रीहरिने उनसे कहा—तुम सब लोग गोलोकको जाओ। पीछेसे मैं भी लक्ष्मीके साथ आऊँगा। श्वेतद्वीपनिवासी ये नर और नारायण मुनि तथा सरस्वतीदेवी—ये गोलोकमें जायँगे। अनन्तशेषनाग, मेरी माया, कार्तिकेय, गणेश तथा वेदमाता सावित्री—ये सब पीछेसे निश्चित ही वहाँ जायँगे। वहाँ मैं गोपियों तथा राधाके साथ द्विभुज श्रीकृष्णरूपसे निवास करता हूँ। यहाँ सुनन्द आदि पार्षदों तथा लक्ष्मीके साथ रहता हूँ। नारायण, श्रीकृष्ण तथा श्वेतद्वीपनिवासी विष्णु मैं ही हूँ। ब्रह्मा आदि अन्य सम्पूर्ण देवता मेरी ही कलाएँ हैं। देव, असुर और मनुष्य आदि प्राणी मेरी कलाकी कलाको अंशकलासे उत्पन्न हुए हैं। तुमलोग गोलोकको जाओ। वहाँ तुम्हारे अभीष्ट कार्यकी सिद्धि होगी। फिर हमलोग भी सबकी इष्टसिद्धिके लिये वहाँ आ जायँगे।

इतना कहकर श्रीहरि उस सभामें चुप हो गये। तब उन सब देवताओंने उन्हें प्रणाम किया और वहाँसे अद्भुत गोलोककी यात्रा की। वह उत्कृष्ट एवं विचित्र परम धाम जरा एवं मृत्युको हर लेनेवाला है। वह अगम्य लोक वैकुण्ठसे पचास करोड़ योजन ऊपर है और भगवान् श्रीकृष्णकी इच्छासे निर्मित है। उसका कोई बाह्य आधार नहीं है। श्रीकृष्ण ही वायुरूपसे उसे धारण करते हैं। वे ब्रह्मा आदि देवता उस अनिर्वचनीय लोककी ओर जानेके लिये उन्मुख हो चल दिये। उन सबकी गति मनके समान तीव्र थी। अतः वे सब-के-सब विरजाके तटपर जा पहुँचे। सरिताके तटका दर्शन करके उन देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। विरजा नदीका वह तटप्रान्त शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल, अत्यन्त विस्तृत और मनोहर था, मोती-माणिक्य तथा उत्कृष्ट मणिरत्नोंकी खानोंसे सुशोभित था। काले, उज्ज्वल, हरे तथा लाल रत्नोंकी श्रेणियोंसे उद्भासित होता था। उस तटपर कहीं तो मूँगेके अङ्कुर प्रकट हुए हैं, जो अत्यन्त मनोहर दिखायी देते हैं। कहीं बहुमूल्य उत्तम रत्नोंकी अनेक खानें उसकी शोभा बढ़ाती हैं। कहीं श्रेष्ठ निधियोंके आकर उपलब्ध होते हैं, जिनसे वहाँकी छटा आश्चर्यमें डाल देती है। वह दृश्य विधाताके भी दृष्टिपथमें आनेवाला नहीं है। मुने! विरजाके किनारे कहीं तो पद्मराग और इन्द्रनील मणियोंकी खानें हैं, कहीं मरकतमणिकी खानें श्रेणीबद्ध दिखायी देती हैं, कहीं स्यमन्तकमणिकी तथा कहीं स्वर्णमुद्राओंकी खानें शोभा पाती हैं। कहीं बहुमूल्य पीले रंगकी मणिश्रेणियोंके आकर विरजातटको अलंकृत करते

---

* ब्रह्मोवाच

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम्। वयं यस्य कलाभेदाः कलांशकलया सुराः॥
मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानवाश्च चराचराः। कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन॥

शंकर उवाच

त्वामक्षयमक्षरं वा व्यक्तमव्यक्तमीश्वरम्। अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम्॥
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम्। सिद्धिज्ञं सिद्धिदं सिद्धिरूपं कः स्तोतुमीश्वरः॥

धर्म उवाच

वेदे निरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः। वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः॥
यस्य सम्भावनीयं यद् गुणरूपं निरञ्जनम्। तदतिरिक्तं स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम्॥
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने। पठित्वा मुच्यते दुर्गाद्वाञ्छितं च लभेन्नरः॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४। ६३—६८)

हैं। कहीं रत्नोंके, कहीं कौस्तुभमणिके और कहीं अनिर्वचनीय मणियोंके उत्तम आकर हैं। विरजाके उस तट-प्रान्तमें कहीं-कहीं उत्तम रमणीय विहारस्थल उपलब्ध होते हैं।

उस परम आश्चर्यजनक तटको देखकर वे देवेश्वर नदीके उस पार गये। वहाँ जानेपर उन्हें पर्वतोंमें श्रेष्ठ शतशृंग दिखायी दिया, जो अपनी शोभासे मनको मोहे लेता था। दिव्य पारिजात-वृक्षोंकी वनमालाएँ उसकी शोभा बढ़ा रही थीं। वह पर्वत कल्पवृक्षों तथा कामधेनुओंद्वारा सब ओरसे घिरा था। उसकी ऊँचाई एक करोड़ योजन थी और लंबाई दस करोड़ योजन। उसके ऊपरकी चौरस भूमि पचास करोड़ योजन विस्तृत थी। वह पर्वत चहारदीवारीकी भाँति गोलोकके चारों ओर फैला हुआ था। उसीके शिखरपर उत्तम गोलाकार रासमण्डल है, जिसका विस्तार दस योजन है। वह रासमण्डल सुगन्धित पुष्पोंसे भरे हुए सहस्रों उद्यानोंसे सुशोभित है और उन उद्यानोंमें भ्रमर-समूह छाये रहते हैं। सुन्दर रत्नों और द्रव्योंसे सम्पन्न अगणित क्रीडाभवन तथा कोटि सहस्र रत्नमण्डप उसकी शोभा बढ़ाते हैं। रत्नमयी सीढ़ियों, श्रेष्ठ रत्ननिर्मित कलशों तथा इन्द्रनीलमणिके शोभाशाली खम्भोंसे उस मण्डलकी शोभा और बढ़ गयी है। उन खम्भोंमें सिन्दूरके समान रंगवाली मणियाँ सब ओर जड़ी गयी हैं तथा बीच-बीचमें लगे हुए मनोहर इन्द्रनील नामक रत्नोंसे वे मण्डित हैं। रत्नमय परकोटोंमें जटित भाँति-भाँतिके मणिरत्न उस रासमण्डलकी श्रीवृद्धि करते हैं। उसमें चारों दिशाओंकी ओर चार दरवाजे हैं, जिनमें सुन्दर किंवाड़ लगे हुए हैं। उन दरवाजोंपर रस्सियोंमें गुँथे हुए आम्रपल्लव बन्दनवारके रूपमें शोभा दे रहे हैं। वहाँ दोनों ओर झुंड-के-झुंड केलेके खम्भे आरोपित हुए हैं। श्वेतधान्य, पल्लवसमूह, फल तथा दूर्वादल आदि मङ्गलद्रव्य उस मण्डलकी शोभा बढ़ाते हैं। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमयुक्त जलका वहाँ सब ओर छिड़काव हुआ है।

मुने! रत्नमय अलंकारों तथा रत्नोंकी मालाओंसे अलंकृत करोड़ों गोपकिशोरियोंके समूहसे रासमण्डल घिरा हुआ है। वे गोपकुमारियाँ रत्नोंके बने हुए कंगन, बाजूबंद और नूपुरोंसे विभूषित हैं। रत्ननिर्मित युगल कुण्डल उनके गण्डस्थलकी शोभा बढ़ाते हैं। उनके हाथोंकी अंगुलियाँ रत्नोंकी बनी हुई अँगूठियोंसे विभूषित हो बड़ी सुन्दर दिखायी देती हैं। रत्नमय पाशकसमूहों (बिछुओं)-से उनके पैरोंकी अंगुलियाँ उद्भासित होती हैं। वे गोपकिशोरियाँ रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके मस्तक उत्तम रत्नमय मुकुटोंसे जगमगा रहे हैं। नासिकाके मध्यभागमें गजमुक्ताकी बुलाकें बड़ी शोभा दे रही हैं। उनके भालदेशमें सिन्दूरकी बेंदी लगी हुई है। साथ ही आभूषण पहननेके स्थानोंमें दिव्य आभूषण धारण करनेके कारण उनकी दिव्य प्रभा और भी उद्दीप्त हो उठी है। उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान जान पड़ती है। वे सब-की-सब चन्दन-द्रवसे चर्चित हैं। उनके अङ्गोंपर पीले रंगकी रेशमी साड़ी शोभा देती है। बिम्बफलके समान अरुण अधर उनकी मनोहरता बढ़ा रहे हैं। शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाओंकी चमकीली चाँदनी-जैसी प्रभासे सेवित मुख उनके उद्दीप्त सौन्दर्यको और भी उज्ज्वल बना रहे हैं। उनके नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको छीने लेते हैं। उनमें कस्तूरी-पत्रिकासे युक्त काजलकी रेखा शोभा-वृद्धि कर रही है। उनके केशपाश प्रफुल्ल मालती-पुष्पकी मालाओंसे सुशोभित हैं, जिनपर मधुलोलुप भ्रमरोंके समूह मँडरा रहे हैं। उनकी मनोहर मन्दगति गजराजके गर्वका गंजन करनेवाली है। बाँकी भौंहोंके साथ मन्द मुस्कानकी शोभासे वे मनको मोह लेती हैं। पके हुए अनारके दानोंकी भाँति चमकीली दन्तपंक्ति उनके मुखकी शोभाको

बढ़ा देती है। पक्षिराज गरुड़की चोंचकी शोभासे सम्पन्न उन्नत नासिकासे वे सब-की-सब विभूषित हैं। गजराजके युगल गण्डस्थलकी भाँति उन्नत उरोजोंके भारसे वे झुकी-सी जान पड़ती हैं। उनका हृदय श्रीकृष्णविषयक अनुरागके देवता कन्दर्पके बाण-प्रहारसे जर्जर हुआ रहता है। वे दर्पणोंमें पूर्ण चन्द्रमाके समान अपने मनोहर मुखके सौन्दर्यको देखनेके लिये उत्सुक रहती हैं। श्रीराधिकाके चरणारविन्दोंकी सेवामें निरन्तर संलग्न रहनेका सौभाग्य सुलभ हो, यही उनका मनोरथ है। ऐसी गोपकिशोरियोंसे भरा-पूरा वह रासमण्डल श्रीराधिकाकी आज्ञासे सुन्दरियोंके समुदायद्वारा रक्षित है—असंख्य सुन्दरियाँ उसकी रक्षामें नियुक्त रहती हैं।

श्वेत, रक्त एवं लोहित वर्णवाले कमलोंसे व्याप्त एवं सुशोभित लाखों क्रीड़ा-सरोवर रासमण्डलको सब ओरसे घेरे हुए हैं, जिनमें असंख्य भ्रमरोंके समुदाय गूँजते रहते हैं। सहस्रों पुष्पित उद्यान तथा फूलोंकी शय्याओंसे संयुक्त असंख्य कुञ्ज-कुटीर रासमण्डलकी सीमामें यत्र-तत्र शोभा पा रहे हैं। उन कुटीरोंमें भोगोपयोगी द्रव्य, कर्पूर, ताम्बूल, वस्त्र, रत्नमय प्रदीप, श्वेत चँवर, दर्पण तथा विचित्र पुष्पमालाएँ सब ओर सजाकर रखी गयी हैं। इन समस्त उपकरणोंसे रासमण्डलकी शोभा बहुत बढ़ गयी है। उस रासमण्डलको देखकर जब वे पर्वतकी सीमासे बाहर हुए तो उन्हें विलक्षण, रमणीय और सुन्दर वृन्दावनके दर्शन हुए। वृन्दावन राधा-माधवको बहुत प्रिय है। वह उन्हीं दोनोंका क्रीडास्थल है। उसमें कल्पवृक्षोंके समूह शोभा पाते हैं। विरजा-तीरके नीरसे भीगे हुए मन्द समीर उस वनके वृक्षोंको शनैः-शनैः आन्दोलित करते रहते हैं। कस्तूरीयुक्त पल्लवोंका स्पर्श करके चलनेवाली मन्द वायुका सम्पर्क पाकर वह सारा वन सुगन्धित बना रहता है। वहाँके वृक्षोंमें नये-नये पल्लव निकले रहते हैं। वहाँ सर्वत्र कोकिलोंकी काकली सुनायी देती है। वह वनप्रान्त कहीं तो केलिकदम्बोंके समूहसे कमनीय और कहीं मन्दार, चन्दन, चम्पा तथा अन्यान्य सुगन्धित पुष्पोंकी सुगन्धसे सुवासित देखा जाता है। आम, नारंगी, कटहल, ताड़, नारियल, जामुन, बेर, खजूर, सुपारी, आमड़ा, नीबू, केला, बेल और अनार आदि मनोहर वृक्ष-समूहों तथा सुपक्व फलोंसे लदे हुए दूसरे-दूसरे वृक्षोंद्वारा उस वृन्दावनकी अपूर्व शोभा हो रही है। प्रियाल, शाल, पीपल, नीम, सेमल, इमली तथा अन्य वृक्षोंके शोभाशाली समुदाय उस वनमें सब ओर सदा भरे रहते हैं। कल्पवृक्षोंके समूह उस वनकी शोभा बढ़ाते हैं। मल्लिका (मोतिया या बेला), मालती, कुन्द, केतकी, माधवी लता और जूही इत्यादि लताओंके समूह वहाँ सब ओर फैले हैं। मुने! वहाँ रत्नमय दीपोंसे प्रकाशित तथा धूपकी गन्धसे सुवासित असंख्य कुञ्ज-कुटीर उस वनमें शोभा पाते हैं। उनके भीतर शृङ्गारोपयोगी द्रव्य संगृहीत हैं। सुगन्धित वायु उन्हें सुवासित करती रहती है। वहाँ चन्दनका छिड़काव हुआ है। उन कुटीरोंके भीतर फूलोंकी शय्याएँ बिछी हैं, जो पुष्पमालाओंकी जालीसे सुशोभित हैं। मधु-लोलुप मधुपोंके मधुर गुञ्जारवसे वृन्दावन मुखरित रहता है। रत्नमय अलंकारोंकी शोभासे सम्पन्न गोपाङ्गनाओंके समूहसे वह वन आवेष्टित है। करोड़ों गोपियाँ श्रीराधाकी आज्ञासे उसकी रक्षा करती हैं। उस वनके भीतर सुन्दर-सुन्दर और मनोहर बत्तीस कानन हैं। वे सभी उत्तम एवं निर्जन स्थान हैं। मुने! वृन्दावन सुपक्व, मधुर एवं स्वादिष्ट फलोंसे सम्पन्न तथा गोष्ठों और गौओंके समूहोंसे परिपूर्ण है। वहाँ सहस्रों पुष्पोद्यान सदा खिले और सुगन्धसे भरे रहते हैं, उनमें मधुलोभी भ्रमरोंके समुदाय मधुर गुञ्जन करते फिरते हैं।

श्रीकृष्णके तुल्य रूपवाले तथा उत्तम रत्न-

शृङ्गारसे विभूषित पचास करोड़ गोपोंके विविध विलासोंसे विलसित रमणीय वृन्दावनको देखते हुए वे देवेश्वरगण गोलोकधाममें जा पहुँचे, जो चारों ओरसे गोलाकार तथा कोटि योजन विस्तृत है। वह सब ओरसे रत्नमय परकोटोंद्वारा घिरा हुआ है। मुने! उसमें चार दरवाजे हैं। उन दरवाजोंपर द्वारपालोंके रूपमें विराजमान गोप-समूह उनकी रक्षा करते हैं। श्रीकृष्णकी सेवामें लगे रहनेवाले गोपोंके आश्रम भी रत्नोंसे जटित तथा नाना प्रकारके भोगोंसे सम्पन्न हैं। उन आश्रमोंकी संख्या भी पचास करोड़ है। इनके सिवा भक्त गोप-समूहोंके सौ करोड़ आश्रम हैं, जिनका निर्माण पूर्वोक्त आश्रमोंसे भी अधिक सुन्दर है। वे सब-के-सब उत्तम रत्नोंसे गठित हैं। उनसे भी अधिक विलक्षण तथा बहुमूल्य रत्नोंद्वारा रचित आश्रम पार्षदोंके हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है। पार्षदोंमें भी जो प्रमुख लोग हैं, वे श्रीकृष्णके समान रूप धारण करके रहते हैं। उनके लिये उत्तम रत्नोंसे निर्मित एक करोड़ आश्रम हैं। राधिकाजीमें विशुद्ध भक्ति रखनेवाली गोपाङ्गनाओंके बत्तीस करोड़ दिव्य एवं श्रेष्ठ आश्रम हैं, जिनकी रचना उत्तम श्रेणीके रत्नोंद्वारा हुई है। उनकी जो किंकरियाँ हैं, उनके लिये भी मणिरत्न आदिके द्वारा बड़े सुन्दर और मनोहर भवन बनाये गये हैं, जिनकी संख्या दस करोड़ है। ये सभी दिव्य आश्रम और भवन वृन्दावनकी शोभाका विस्तार करते हैं।

सैकड़ों जन्मोंकी तपस्याओंसे पवित्र हुए जो भक्तजन भारतवर्षकी भूमिपर श्रीहरिकी भक्तिमें तत्पर रहते हैं, वे कर्मोंके शान्त कर देनेवाले हैं—उनके कर्मबन्धन नष्ट हो जाते हैं। मुने! जो सोते, जागते हर समय अपने मनको श्रीहरिके ही ध्यानमें लगाये रहते हैं तथा दिन-रात 'राधाकृष्ण', 'श्रीकृष्ण' इत्यादि नामोंका जप किया करते हैं; उन श्रीकृष्ण-भक्तोंके लिये भी वहाँ गोलोकमें बड़े मनोहर निवासस्थान बने हुए हैं। उत्तम मणिरत्नोंद्वारा निर्मित वे भव्य भवन भाँति-भाँतिके भोगोंसे सम्पन्न हैं। पुष्प-शय्या, पुष्पमाला तथा श्वेत चामरसे सुशोभित हैं। रत्नमय दर्पणोंकी शोभासे पूर्ण हैं। उनमें इन्द्रनील मणियाँ जड़ी गयी हैं। उन भवनोंके शिखरोंपर बहुमूल्य रत्नमय कलशसमूह शोभा देते हैं। उनकी दीवारोंपर महीन वस्त्रोंके आवरण पड़े हुए हैं। ऐसे भवनोंकी संख्या भी सौ करोड़ है।

उस अद्भुत धामका दर्शन करके वे देवता बड़ी प्रसन्नताके साथ जब कुछ दूर और आगे गये, तब वहाँ उन्हें रमणीय अक्षयवट दिखायी दिया। मुने! उस वृक्षका विस्तार पाँच योजन और ऊँचाई दस योजन है। उसमें सहस्रों तनें और असंख्य शाखाएँ शोभा पाती हैं। वह वृक्ष लाल-लाल पके फलोंसे व्याप्त है। रत्नमयी वेदिकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती हैं। उस वृक्षके नीचे बहुत-से गोप-शिशु दृष्टिगोचर हुए, जिनका रूप श्रीकृष्णके ही समान था। वे सब-के-सब पीतवस्त्रधारी और मनोहर थे तथा खेल-कूदमें लगे हुए थे। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे और वे सभी रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। देवेश्वरोंने वहाँ उन सबके दर्शन किये। वे सभी श्रीहरिके श्रेष्ठ पार्षद थे।

मुने! वहाँसे थोड़ी ही दूरपर उन्हें एक मनोहर राजमार्ग दिखायी दिया, जिसके दोनों पार्श्वमें लाल मणियोंसे अद्भुत रचना की गयी थी। इन्द्रनील, पद्मराग, हीरे और सुवर्णकी बनी हुई वेदियाँ उस राजमार्गके उभय पार्श्वको सुशोभित कर रही थीं। दोनों ओर रत्नमय विश्राम-मण्डप शोभा पाते थे। उस मार्गपर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमके द्रवसे मिश्रित जलका छिड़काव किया गया था। पल्लव, लाजा, फल, पुष्प, दूर्वा तथा सूक्ष्म सूत्रमें गुँथे हुए चन्दन-पल्लवोंकी वन्दनवारसे युक्त सहस्रों कदली-स्तम्भोंके समूह

उस राजमार्गके तटप्रान्तकी शोभा बढ़ाते थे। उन सबपर कुंकुम-केसर छिड़के गये थे। जगह-जगह उत्तम रत्नोंके बने हुए मङ्गलघट स्थापित थे, उनमें फल और शाखाओंसहित पल्लव शोभा पाते थे। सिन्दूर, कुंकुम, गन्ध और चन्दनसे उनकी अर्चना की गयी थी। पुष्पमालाओंसे विभूषित हुए वे मङ्गलकलश उभयपार्श्वमें उस राजमार्गकी शोभावृद्धि करते थे। क्रीडामें तत्पर हुई झुंड-की-झुंड गोपिकाएँ उस मार्गको घेरे खड़ी थीं।

उपर्युक्त मनोरम प्रदेश चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमके द्रवसे चर्चित थे। बहुमूल्य रत्नोंसे वहाँ मणिमय सोपानोंका निर्माण किया गया था। कुल मिलाकर सोलह द्वार थे, जो अग्निशुद्ध रमणीय चिन्मय वस्त्रों, श्वेत चामरों, दर्पणों, रत्नमयी शय्याओं तथा विचित्र पुष्पमालाओंसे शोभायमान थे। बहुत-से द्वारपाल उन प्रदेशोंकी रक्षा करते थे। उनके चारों ओर खाइयाँ थीं और लाल रंगके परकोटोंसे वे घिरे हुए थे। इन मनोरम प्रदेशोंका दर्शन करके देवता वहाँसे आगे बढ़नेको उद्यत हुए। वे जल्दी-जल्दी कुछ दूरतक गये। तब वहाँ उन्हें रासेश्वरी श्रीराधाका आश्रम दिखायी दिया। नारद! देवताओंकी आदिदेवी गोपीशिरोमणि श्रीकृष्णप्राणाधिका राधिकाका वह निवासस्थान बड़ा ही सुन्दर बनाया गया था। रमणीय द्रव्योंके कारण उसकी मनोहरता बहुत बढ़ गयी थी। वहाँका सब कुछ सबके लिये अनिर्वचनीय था। बड़े-से-बड़े विद्वान् भी उस स्थानका सम्यक् वर्णन नहीं कर सके हैं। वह मनोहर आश्रम गोलाकार बना है तथा उसका विस्तार बारह कोसका है। उसमें सौ मन्दिर बने हुए हैं। वह अद्भुत आश्रम दिव्य रत्नोंके तेजसे जगमगाता रहता है। बहुमूल्य रत्नोंके सार-समूहसे उसकी रचना हुई है। वह दुर्लङ्घ्य एवं गहरी खाइयोंसे सुशोभित है। कल्पवृक्ष उस आश्रमको सब ओरसे घेरे हुए हैं। उसके भीतर सैकड़ों पुष्पोद्यान शोभा पाते हैं। बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित परकोटोंसे वह आश्रममण्डल घिरा हुआ है। उसमें सात दरवाजे हैं, जो सभी उत्तम रत्नोंकी बनी हुई वेदिकाओंसे युक्त हैं। उन दरवाजोंमें विचित्र रत्न जड़े गये हैं और नाना प्रकारके चित्र बने हैं। क्रमशः बने हुए इन सातों द्वारोंको पार करनेपर वह आश्रम सोलह द्वारोंसे युक्त है। देवताओंने देखा—उसकी चहारदीवारी सहस्र धनुष ऊँची है। उत्तम रत्नोंके बने हुए अत्यन्त मनोहर छोटे-छोटे कलशोंके समुदाय अपने तेजसे उस परकोटेको उद्भासित कर रहे हैं। उसे देखकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। वे उसकी परिक्रमा करते हुए बड़ी प्रसन्नताके साथ कुछ दूर और आगे गये। सामने चलते हुए वे इतने आगे बढ़ गये कि वह आश्रम उनसे पीछे हो गया। मुने! तदनन्तर उन्होंने गोपों और गोपिकाओंके उत्तम आश्रम देखे, जिनमें बहुमूल्य रत्न जड़े हुए हैं। उनकी संख्या सौ करोड़ है। इस प्रकार सब ओर गोपों और गोपिकाओंके सम्पूर्ण आश्रमको तथा अन्य नये-नये रमणीय स्थलोंको देखते-देखते उन देवेश्वरोंने समस्त गोलोकका निरीक्षण किया। वह सब देखकर उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। तदनन्तर फिर वही गोलाकार रम्य वृन्दावन, शतशृंग पर्वत तथा उसके बाहर विरजा नदी दिखायी दी। विरजा नदीके बाद देवताओंने सब कुछ सूना ही देखा। वह अद्भुत गोलोक उत्तम रत्नोंसे निर्मित तथा वायुके आधारपर स्थित था। श्रीराधिकाकी आज्ञाका अनुसरण करते हुए परमेश्वर श्रीकृष्णकी इच्छासे उसका निर्माण हुआ है। वह केवल मङ्गलका धाम है और सहस्रों सरोवरोंसे सुशोभित है।

मुने! देवताओंने वहाँ अत्यन्त मनोहर नृत्य तथा सुन्दर तालसे युक्त रमणीय संगीत देखा, जहाँ श्रीराधा-कृष्णके गुणोंका अनुवाद हो रहा था। उस अमृतोपम गीतको सुनते ही वे देवता मूर्च्छित हो गये। फिर क्षणभरमें सचेत हो मन-

ही-मन श्रीकृष्णका चिन्तन करते हुए उन्होंने स्थान-स्थानपर परम आश्चर्यमय मनोहर दृश्य देखे। नाना प्रकारके वेश धारण किये समस्त गोपिकाएँ उनके दृष्टिपथमें आयीं। कोई अपने हाथोंसे मृदंग बजा रही थीं तो किन्हींके हाथोंसे वीणा-वादन हो रहा था। किन्हींके हाथमें चँवर थे तो किन्हींके करताल। किन्हींके हाथोंमें यन्त्रवाद्य शोभा पा रहे थे। कितनी ही रत्नमय नूपुरोंकी झनकार फैला रही थीं। बहुतोंकी रत्नमयी काञ्ची बज रही थी, जिसमें क्षुद्रघंटिकाओंके शब्द गूँज रहे थे। किन्हींके माथेपर जलसे भरे घड़े थे, जो भाँति-भाँतिके नृत्यके प्रदर्शनका मनोरथ लिये खड़ी थीं। नारद! कुछ दूर और आगे जानेपर उन्होंने बहुत-से आश्रम देखे, जो राधाकी प्रधान सखियोंके आवासस्थान थे। वे रूप, गुण, वेष, यौवन, सौभाग्य और अवस्थामें एक-दूसरीके समान थीं। श्रीराधाकी समवयस्का सखियाँ तैंतीस गोपियाँ हैं, जिनकी वेशभूषा अनिर्वचनीय है। उनके नाम सुनो—सुशीला, शशिकला, यमुना, माधवी, रति, कदम्बमाला, कुन्ती, जाह्नवी, स्वयंप्रभा, चन्द्रमुखी, पद्ममुखी, सावित्री, सुधामुखी, शुभा, पद्मा, पारिजाता, गौरी, सर्वमङ्गला, कालिका, कमला, दुर्गा, भारती, सरस्वती, गङ्गा, अम्बिका, मधुमती, चम्पा, अपर्णा, सुन्दरी, कृष्णप्रिया, सती, नन्दिनी और नन्दना—ये सब-की-सब समान रूपवाली हैं। इनके शुभ्र आश्रम रत्नों और धातुओंसे चित्रित हैं। नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित होनेके कारण वे अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। उनके शिखर बहुमूल्य रत्नमय कलश-समूहोंसे जाज्वल्यमान हैं। उत्तम रत्नोंद्वारा उनकी रचना हुई है। गोलोक ब्रह्माण्डसे बाहर और ऊपर है। उससे ऊपर दूसरा कोई लोक नहीं है। ऊपर सब कुछ शून्य ही है। यहींतक सृष्टिकी अन्तिम सीमा है। सात रसातलोंसे भी नीचे सृष्टि नहीं है, रसातलोंसे नीचे जल और अन्धकार है, जो अगम्य और अदृश्य है। (अध्याय ४)

श्रीराधाके विशाल भवन एवं अन्तःपुरकी शोभाका वर्णन, ब्रह्मा आदिको दिव्य तेजःपुञ्जके दर्शन तथा उनके द्वारा उन तेजोमय परमेश्वरकी स्तुति

भगवान् नारायण कहते हैं—सम्पूर्ण गोलोकका दर्शन करके उन तीनों देवताओंके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। वे फिर श्रीराधाके प्रधान द्वारपर आये। उस द्वारका निर्माण उत्तम रत्नों और मणियोंसे हुआ था। वहाँ दो वेदिकाएँ थीं। हल्दीके रंगकी उत्तम मणिसे, जिसमें हीरेका भी सम्मिश्रण था, बनाये गये श्रेष्ठ रत्न-मणिनिर्मित किवाड़ उस द्वारकी शोभा बढ़ाते थे। देवताओंने देखा, उस द्वारपर रक्षाके लिये परम उत्तम वीरभानुकी नियुक्ति हुई है। वे रत्नोंके बने हुए सिंहासनपर बैठे हैं, पीताम्बर पहने हैं तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। उनके मस्तकपर रत्नमय मुकुट उद्भासित हो रहा है। विचित्र चित्रोंसे अलंकृत उस अद्भुत एवं विचित्र द्वारकी रक्षा करते हुए द्वारपाल वीरभानुके पास जा देवताओंने प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा अभिप्राय निवेदन किया। तब द्वारपालने निःशंक होकर उन देवेश्वरोंसे कहा—'देवगण! मैं इस समय आज्ञा लिये बिना आपलोगोंको भीतर नहीं जाने दूँगा'।

मुने! यह कहकर द्वारपालने श्रीकृष्णके स्थानपर सेवकोंको भेजा और उनकी आज्ञा पाकर देवताओंको अंदर जानेकी अनुमति दी। उससे पूछकर वे तीनों देवता दूसरे उत्तम द्वारपर गये, जो पहलेसे अधिक विचित्र, सुन्दर और मनोहर था। नारद! उस द्वारपर नियुक्त हुए चन्द्रभानु नामक द्वारपाल दिखायी दिये, जिनकी अवस्था

किशोर थी। शरीरकी कान्ति सुन्दर एवं श्याम थी। वे सोनेका बेंत हाथमें लिये रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे। पाँच लाख गोपोंका समूह उनकी शोभा बढ़ा रहा था। उनसे पूछकर देवतालोग तीसरे उत्तम द्वारपर गये, जो दूसरेसे भी अधिक सुन्दर, विचित्र तथा मणियोंके तेजसे प्रकाशित था। नारद! वहाँ द्वारकी रक्षामें नियुक्त सूर्यभानु नामक द्वारपाल दिखायी दिये, जो दो भुजाओंसे युक्त, मुरलीधारी, किशोर, श्याम एवं सुन्दर थे। उनके दोनों गालोंपर दो मणिमय कुण्डल झलमला रहे थे। रत्नकुण्डलधारी सूर्यभानु श्रीराधा और श्रीकृष्णके परम प्रिय एवं श्रेष्ठ सेवक थे। वे सम्राट्की भाँति नौ लाख गोपोंसे घिरे रहते थे। उनसे पूछकर देवतालोग चौथे द्वारपर गये, जो उन सभी द्वारोंसे विलक्षण, रमणीय तथा मणियोंकी दिव्य दीप्तिसे उद्दीप्त दिखायी देता था। अद्भुत एवं विचित्र रत्नसमूहसे जटित होनेके कारण उस द्वारकी मनोहरता और बढ़ गयी थी। उसकी रक्षाके लिये व्रजराज वसुभानु नियुक्त थे। देवतालोग उनसे मिले। वे किशोर-अवस्थाके सुन्दर एवं श्रेष्ठ पुरुष थे। हाथमें मणिमय दण्ड लिये हुए थे। रमणीय आभूषणोंसे विभूषित हो रत्नसिंहासनपर बैठे थे। पके बिम्बफलके समान लाल ओठ और मन्द-मन्द मुस्कानसे वे अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे।

देवतालोग उनसे पूछकर पाँचवें द्वारपर गये। वह हीरेकी दीवारोंपर अङ्कित विचित्र चित्रोंसे अत्यन्त प्रकाशमान दिखायी देता था। वहाँ देवभानु नामक द्वारपाल मिले, जो रत्नमय आभूषण धारण करके मनोहर सिंहासनपर आसीन थे। उनके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा था और वे रत्नोंके हारसे अलंकृत थे। कदम्बोंके पुष्पसे सुशोभित, उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे प्रकाशित तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमके द्रवसे चर्चित थे। सम्राटोंके समान दस लाख प्रजा उनके साथ थी। हाथमें बेंत धारण करनेवाले द्वारपाल देवभानुसे पूछकर देवतालोग प्रसन्नतापूर्वक आगे बढ़े। सामने छठा द्वार था। उसकी विलक्षण शोभा थी। चित्रोंकी श्रेणियोंसे वह द्वार उद्भासित हो रहा था। उसकी दोनों दीवारें वज्रमणि (हीरे)-की बनी थीं और फूलोंकी मालाओंसे सजायी गयी थीं। उस द्वारपर व्रजराज शक्रभानु नियुक्त थे। देवतालोग उनसे मिले। वे नाना प्रकारके अलंकारोंकी शोभासे सम्पन्न थे। उनके साथ दस लाख प्रजाएँ थीं। चन्दन-पल्लवसे युक्त उनके कपोल कुण्डलोंकी प्रभासे उद्भासित थे। उनसे आज्ञा लेकर देवतालोग तुरंत ही सातवें द्वारपर जा पहुँचे। उसमें नाना प्रकारके चित्र अङ्कित थे। वह पिछले छहों द्वारोंसे अत्यन्त विलक्षण था। वहाँ द्वारपालके पदपर श्रीहरिके परम प्रिय रत्नभानु नियुक्त थे, जिनका सारा अङ्ग चन्दनसे अभिषिक्त था। वे पुष्पोंकी मालासे विभूषित थे। मणि-रत्ननिर्मित मनोहर एवं रमणीय भूषण उनकी शोभा बढ़ाते थे। बारह लाख गोप आज्ञाके अधीन रहकर राजाधिराजकी भाँति उनकी शोभा बढ़ाते थे। उनका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिला था। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे। उनके हाथमें बेंतकी छड़ी शोभा पाती थी।

वे तीनों देवेश्वर उनसे बातचीत करके प्रसन्नतापूर्वक आठवें द्वारपर गये। वह पूर्वोक्त सातों द्वारोंसे विलक्षण एवं विचित्र शोभाशाली था। वहाँ उन्होंने सुपार्श्व नामक मनोहर द्वारपालको देखा, जो मन्द मुस्कराहटके साथ बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। वे भालदेशमें धारित चन्दनके तिलकसे अत्यन्त उद्भासित दिखायी देते थे। उनके ओठ बन्धुजीवपुष्प (दुपहरिया)-के समान लाल थे। रत्नोंके कुण्डल उनके गण्डस्थलको अलंकृत किये हुए थे। वे समस्त अलंकारोंकी शोभासे सम्पन्न थे। रत्नमय दण्ड धारण करते थे और उनके साथ बारह लाख गोप थे। वहाँसे

अनुमति मिलनेपर वे देवता शीघ्र ही नवें अभीष्ट द्वारपर गये। वहाँ हीरे आदि उत्तम रत्नोंकी चार वेदियाँ बनी थीं। वह द्वार अपूर्व चित्रोंसे सज्जित तथा मालाओंकी जालीसे विभूषित था। वहाँ सुन्दर आकारवाले सुबल नामक द्वारपाल दृष्टिगोचर हुए, जो भाँति-भाँतिके आभूषणोंसे भूषित, भूषणके योग्य तथा मनोहर थे। उनके साथ बारह लाख व्रजवासी थे। दण्डधारी सुबलसे पूछकर देवताओंने तत्काल दूसरे द्वारको प्रस्थान किया। उस विलक्षण दसवें द्वारको देखकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। मुने! वहाँका सब कुछ अनिर्वचनीय, अदृष्ट और अश्रुत था—वैसा दृश्य कभी देखने और सुननेमें भी नहीं आया था। वहाँ सुन्दर सुदामा नामक गोप द्वारपालके-पदपर प्रतिष्ठित थे। सुदामाका रूप श्रीकृष्णके समान ही मनोहर तथा अवर्णनीय था। उनके साथ बीस लाख गोपोंका समूह रहता था। दण्डधारी सुदामाका दर्शनमात्र करके देवतालोग दूसरे द्वारपर चले गये।

वह ग्यारहवाँ द्वार अत्यन्त विचित्र और अद्भुत था। वहाँ सुन्दर चित्र अङ्कित थे। वहाँके द्वारपाल व्रजराज श्रीदामा थे, जिन्हें राधिकाजी अपने पुत्रके समान मानती थीं। वे पीताम्बरसे विभूषित थे, बहुमूल्य रत्नोंद्वारा रचित रम्य सिंहासनपर आसीन थे और अमूल्य रत्नाभरण उनकी शोभा बढ़ाते थे। उनका रूप बड़ा ही मनोहर था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे उनका शृङ्गार हुआ था। वे अपने कपोलोंके योग्य कानोंमें उत्तम रत्नमय कुण्डल धारण करके प्रकाशित हो रहे थे। श्रेष्ठ रत्नोंद्वारा रचित विचित्र मुकुट उनके मस्तककी शोभा बढ़ा रहा था। प्रफुल्ल मालती-पुष्पकी मालाओंसे उनके सारे अङ्ग विभूषित थे। करोड़ों गोपोंसे घिरे होनेके कारण राजाधिराजसे भी अधिक उनकी शोभा होती थी। उनकी अनुमति ले देवतालोग प्रसन्नतापूर्वक बारहवें द्वारपर गये, जहाँ बहुमूल्य रत्नोंकी बनी हुई बहुत-सी वेदिकाएँ प्रकाशित हो रही थीं। वह विचित्र द्वार सबके लिये दुर्लभ, अदृश्य और अश्रुत था। वज्रमयी भीतोंपर अङ्कित चित्रोंके कारण उस द्वारकी सुन्दरता और मनोहरता बहुत बढ़ गयी थी। देवताओंने देखा बारहवें द्वारकी रक्षामें सुन्दरी गोपाङ्गनाएँ नियुक्त हुई हैं। वे सब-की-सब रूप-यौवनसे सम्पन्न, रत्नाभरणोंसे विभूषित, पीताम्बरधारिणी तथा बँधे हुए केश-कलापके भारसे सुशोभित थीं। उनके सारे अङ्ग सुस्निग्ध मालतीकी मालाओंसे अलंकृत थे। रत्नोंके बने हुए कंगन, बाजूबंद तथा नूपुर उन-उन अङ्गोंकी शोभा बढ़ाते थे। उनके दोनों कपोल दिव्य रत्नमय कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहे थे। वे चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमके द्रवसे अपना शृङ्गार किये हुए थीं। वहाँ सौ कोटि गोपियोंमें एक श्रेष्ठ गोपी थी, जो श्रीहरिको भी परम प्रिय थी। उन करोड़ों गोपिकाओंको देखकर देवताओंको बड़ा विस्मय हुआ। मुने! उन सब गोपियोंसे अनुमति ले वे देवता प्रसन्नतापूर्वक दूसरे द्वारपर गये। इस तरह क्रमशः तीन द्वारोंपर उन्होंने देखा—श्रेष्ठ और अत्यन्त मनोहर गोपाङ्गनाएँ उनकी रक्षा कर रही हैं। वे सुन्दरियोंमें भी सुन्दरी, रमणीया, धन्या, मान्या और सौभाग्यशालिनी हैं। सब-की-सब सौभाग्यमें बढ़ी-चढ़ी तथा श्रीराधिकाकी प्रिया हैं। सुरम्य भूषणोंसे भूषित हुई उन गोपसुन्दरियोंके अङ्गोंमें नूतन यौवनका अंकुर प्रकट हुआ है।

इस प्रकार वे तीनों द्वार स्वप्नकालिक अनुभवके समान अद्भुत, अश्रुत, अदृष्टपूर्व, अतिरमणीय और विद्वानोंके द्वारा भी अवर्णनीय थे। उन सबको देखकर और उन-उन गोपाङ्गनाओंसे बातचीत करके आश्चर्यचकित हुए वे तीनों देवेश्वर सोलहवें मनोहर द्वारपर गये, जो श्रीराधिकाके अन्तःपुरका द्वार था। वह सब द्वारोंमें प्रधान तथा केवल गोपाङ्गनागणोंद्वारा ही रक्षणीय था। श्रीराधाकी जो तैंतीस समवयस्का सखियाँ थीं, वे ही इस

द्वारका संरक्षण करती थीं। उन सबकी वेश-भूषा अवर्णनीय थी। वे नाना प्रकारके सद्गुणोंसे युक्त, रूप-यौवनसे सम्पन्न तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थीं। रत्ननिर्मित कङ्कण, केयूर तथा नूपुर धारण किये हुए थीं। उनके कटिप्रदेश श्रेष्ठ रत्नोंकी बनी हुई क्षुद्र घण्टिकाओंसे अलंकृत थे। रत्ननिर्मित युगल कुण्डलोंसे उनके गण्डस्थलोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। प्रफुल्ल मालतीकी मालाओंसे उनके वक्षःस्थलका मध्यभाग उद्भासित हो रहा था। उनके मुख-चन्द्र शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाओंकी प्रभाको छीने लेते थे। पारिजातके पुष्पोंकी मालाओंसे उनके सुरम्य केशपाश आवेष्टित थे। वे भाँति-भाँतिके सुन्दर आभूषणोंसे विभूषित थीं। पके बिम्बफलके समान उनके लाल-लाल ओठ थे। मुखारविन्दोंपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। पके अनारके दानोंकी भाँति दन्तपंक्तियाँ उनकी शोभा बढ़ा रही थीं। मनोहर चम्पाके समान गौरवर्णवाली उन गोपकिशोरियोंके कटिभाग अत्यन्त कृश थे। उनकी नासिकाओंमें गजमुक्ताकी बुलाकें शोभा दे रही थीं। वे नासिकाएँ पक्षिराज गरुड़की सुन्दर चोंचको शोभा धारण करती थीं। उनका चित्त नित्य मुकुन्दके चरणारविन्दोंमें लगा था। द्वारपर खड़े हुए निमेषरहित देवताओंने उन सबको देखा। वह द्वार श्रेष्ठ मणिरत्नोंकी वेदिकाओंसे सुशोभित था। इन्द्रनीलमणिके बहुत-से खम्भे उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके बीच-बीचमें सिन्दूरी रंगकी लाल मणियाँ जड़ी थीं। उस द्वारको पारिजात-पुष्पोंकी मालाओंसे सजाया गया था। उन्हें छूकर बहनेवाली वायु वहाँ सर्वत्र सुगन्ध फैला रही थी। राधिकाके उस परम आश्चर्यमय अन्तःपुरके द्वारका अवलोकन करके देवताओंके मनमें श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके दर्शनकी उत्कण्ठा जाग उठी। उन्होंने उन सखियोंसे पूछकर शीघ्र ही द्वारके भीतर प्रवेश किया। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। भक्तिके उद्रेकसे उनकी आँखें भर आयी थीं। उनके मुख और कंधे कुछ-कुछ झुक गये थे।

अब देवताओंने श्रीराधिकाके उस श्रेष्ठ अन्तःपुरको अत्यन्त निकटसे देखा। समस्त मन्दिरोंके मध्यभागमें एक मनोहर चतुःशाला थी, जिसकी रचना बहुमूल्य रत्नोंके सारभागसे की गयी थी। भाँति-भाँतिके हीरक-जटित मणिमय स्तम्भ उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। पारिजात-पुष्पोंकी मालाओंकी झालरोंसे उसे सजाया गया था। मोती, माणिक्य, श्वेत चँवर, दर्पण तथा बहुमूल्य रत्नोंके सारतत्त्वसे बने हुए कलश उस चतुःशालाको विभूषित कर रहे थे। रेशमी सूतमें गुँथे हुए चन्दन-पल्लवोंकी बन्दनवारसे विभूषित मणिमय स्तम्भ-समूह उसके प्राङ्गणको रमणीय बना रहे थे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुमके द्रवका वहाँ छिड़काव हुआ था। श्वेत धान्य, श्वेत पुष्प, पूँगा, फल, अक्षत, दूर्वादल और लाजा आदिके निर्मञ्छन (निछावर)-से उसकी अपूर्व शोभा हो रही थी। फल, रत्न, रत्नकलश, सिन्दूर, कुंकुम और पारिजातकी मालाओंसे उसको सजाया गया था। फूलोंकी सुगन्धसे सुवासित वायु उस स्थानको सब ओरसे सौरभयुक्त बना रही थी। जो सर्वथा अनिर्वचनीय, अनिरूपित और ब्रह्माण्डमात्रमें दुर्लभ द्रव्य एवं वस्तुएँ थीं, उन्हींसे उस भव्य भवनको विभूषित किया गया था। वहाँ अत्यन्त सुन्दर रत्नमयी शय्या बिछी थी, जिसपर महीन एवं कोमल वस्त्रोंका बिछावन था। नारद! करोड़ों रत्नमय कलश तथा रत्ननिर्मित पात्र वहाँ सजाकर रखे गये थे, जो बहुमूल्य होनेके साथ ही बहुत सुन्दर थे। उनसे उस चतुःशालाकी बड़ी शोभा हो रही थी। नाना प्रकारके वाद्योंकी मधुर ध्वनि वहाँ गूँज रही थी। वीणा आदिके स्वर-यन्त्रोंके साथ गोपियोंका सुमधुर गीत सुनायी पड़ता था। मृदंग तथा अन्यान्य वाद्योंकी ध्वनिसे वह स्थान बड़ा मोहक जान पड़ता था। श्रीकृष्ण-तुल्य रूप, रंग और

वेश-भूषावाले गोपसमूहोंसे घिरे हुए उस अन्तः-पुरको झुंड-की-झुंड गोपाङ्गनाएँ, जो श्रीराधाकी सखियाँ थीं, सुशोभित कर रही थीं। श्रीराधा और श्रीकृष्णके गुणगानसम्बन्धी पदोंका संगीत वहाँ सब ओर सुनायी पड़ता था। ऐसे अन्तःपुरको देखकर वे देवता विस्मयसे विमुग्ध हो उठे। उन्होंने वहाँ मधुर गीत सुना और उत्तम नृत्य देखा। वे सब देवता वहाँ स्थिरभावसे खड़े हो गये। उन सबका चित्त ध्यानमें एकतान हो रहा था। उन देवेश्वरोंको वहाँ रमणीय रत्नसिंहासन दिखायी दिया, जो सौ धनुषके बराबर विस्तृत था। वह सब ओरसे मण्डलाकार दिखायी देता था। श्रेष्ठ रत्नोंके बने हुए छोटे-छोटे कलश-समूह उसमें जुड़े हुए थे। विचित्र पुतलियों, फूलों तथा चित्रमय काननोंसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। ब्रह्मन्! वहाँ उनको एक अत्यन्त अद्भुत और आश्चर्यमय तेजःपुञ्ज दिखायी दिया, जो करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान था। वह दिव्य ज्योतिसे जाज्वल्यमान हो रहा था। ऊपर चारों ओर सात ताड़की दूरीमें उसका प्रकाश फैला हुआ था। सबके तेजको छीन लेनेवाला वह प्रकाशपुञ्ज सम्पूर्ण आश्रमको व्याप्त करके देदीप्यमान था। वह सर्वत्र व्यापक, सबका बीज तथा सबके नेत्रोंको अवरुद्ध कर देनेवाला था। उस तेजःस्वरूपको देखकर वे देवता ध्यानमग्न हो गये तथा भक्तिभावसे मस्तक एवं कंधे झुकाकर बड़ी श्रद्धाके साथ उसको प्रणाम करने लगे। उस समय परमानन्दकी प्राप्तिसे उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये थे और सारे अङ्ग पुलकित हो गये थे। वे ऐसे जान पड़ते थे मानो उनके अभीष्ट मनोरथ पूर्ण हो गये हों। उन तेजःस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार करके वे तीनों देवेश्वर उठकर खड़े हो गये और उन्हींका ध्यान करते हुए उस तेजके सामने गये। ध्यान करते-करते जगत्स्रष्टा ब्रह्माके दोनों हाथ जुड़ गये। नारद! उन्होंने शिवको दाहिने और धर्मको बायें कर लिया तथा वे भक्तिके उद्रेकसे चित्तको ध्यानमग्न करके उन परात्पर, गुणातीत, परमात्मा जगदीश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—जो वर, वरेण्य, वरद, वरदायकोंके कारण तथा सम्पूर्ण प्राणियोंकी उत्पत्तिके हेतु हैं; उन तेजःस्वरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। जो मङ्गलकारी, मङ्गलके योग्य, मङ्गलरूप, मङ्गलदायक तथा समस्त मङ्गलोंके आधार हैं; उन तेजोमय परमात्माको मैं प्रणाम करता हूँ। जो सर्वत्र विद्यमान, निर्लिप्त, आत्मस्वरूप, परात्पर, निरीह और अवितर्क्य हैं; उन तेजःस्वरूप परमेश्वरको नमस्कार है। जो सगुण, निर्गुण, सनातन, ब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, साकार एवं निराकार हैं; उन तेजोरूप परमात्माको मैं नमस्कार करता हूँ। प्रभो! आप अनिर्वचनीय, व्यक्त, अव्यक्त, अद्वितीय, स्वेच्छामय तथा सर्वरूप हैं। आप तेजःस्वरूप परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। तीनों गुणोंका विभाग करनेके लिये आप तीन रूप धारण करते हैं; परंतु हैं तीनों गुणोंसे अतीत। समस्त देवता आपकी कलासे प्रकट हुए हैं। आप श्रुतियोंकी पहुँचसे भी परे हैं; फिर आपको देवता कैसे जान सकते हैं? आप सबके आधार, सर्वस्वरूप, सबके आदिकारण, स्वयं कारणरहित, सबका संहार करनेवाले तथा अन्तरहित हैं। आप तेजःस्वरूप परमात्माको नमस्कार है। जो सगुण रूप है, वही लक्ष्य होता है और विद्वान् पुरुष उसीका वर्णन कर सकते हैं। परंतु आपका रूप अलक्ष्य है; अतः मैं उसका वर्णन कैसे कर सकता हूँ? आप तेजोरूप परमात्माको मेरा प्रणाम है। आप निराकार होकर भी दिव्य आकार धारण करते हैं। इन्द्रियातीत होकर भी इन्द्रिययुक्त होते हैं। आप सबके साक्षी हैं; परंतु आपका साक्षी कोई नहीं है। आप तेजोमय परमेश्वरको मेरा नमस्कार

है। आपके पैर नहीं हैं तो भी आप चलनेकी योग्यता रखते हैं। नेत्रहीन होकर भी सबको देखते हैं। हाथ और मुखसे रहित होकर भी भोजन करते हैं। आप तेजोमय परमात्माको-मेरा नमस्कार है। वेदमें जिस वस्तुका निरूपण है, विद्वान् पुरुष उसीका वर्णन कर सकते हैं। जिसका वेदमें भी निरूपण नहीं हो सका है, आपके उस तेजोमय स्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ।

जो सर्वेश्वर हैं, किंतु जिसका ईश्वर कोई नहीं है; जो सबका आदि है, परंतु स्वयं आदिसे रहित है तथा जो सबका आत्मा है, किंतु जिसका आत्मा दूसरा कोई नहीं है; आपके उस तेजोमय स्वरूपको मैं नमस्कार करता हूँ। मैं स्वयं जगत्का स्रष्टा और वेदोंको प्रकट करनेवाला हूँ। धर्मदेव जगत्के पालक हैं तथा महादेवजी संहारकारी हैं; तथापि हममेंसे कोई भी आपके उस तेजोमय स्वरूपका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं है। आपकी सेवाके प्रभावसे वे धर्मदेव अपने रक्षककी रक्षा करते हैं। आपकी ही आज्ञासे आपके द्वारा निश्चित किये हुए समयपर महादेवजी जगत्का संहार करते हैं। आपके चरणारविन्दोंकी सेवासे ही सामर्थ्य पाकर मैं प्राणियोंके प्रारब्ध या भाग्यकी लिपिका लेखक तथा कर्म करनेवालोंके फलका दाता बना हुआ हूँ। प्रभो! हम तीनों आपके भक्त हैं और आप हमारे स्वामी हैं। ब्रह्माण्डमें बिम्बसदृश होकर हम विषयी हो रहे हैं। ब्रह्माण्ड अनन्त हैं और उनमें हम-जैसे सेवक कितने ही हैं। जैसे रेणु तथा उनके परमाणुओंकी गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार ब्रह्माण्डों और उनमें रहनेवाले ब्रह्मा आदिकी गणना असम्भव है। आप सबके उत्पादक परमेश्वर हैं। आपकी स्तुति करनेमें कौन समर्थ है? जिन महाविष्णुके एक-एक रोम-कूपमें एक-एक ब्रह्माण्ड है, वे भी आपके ही सोलहवें अंश हैं। समस्त योगीजन आपके इस मनोवाञ्छित ज्योतिर्मय स्वरूपका ध्यान करते हैं। परंतु जो आपके भक्त हैं, वे आपकी दासतामें अनुरक्त रहकर सदा आपके चरणकमलोंकी सेवा करते हैं। परमेश्वर! आपका जो परम सुन्दर और कमनीय किशोर-रूप है, जो मन्त्रोक्त ध्यानके अनुरूप है, आप उसीका हमें दर्शन कराइये। जिसकी अङ्गकान्ति नूतन जलधरके समान श्याम है, जो पीताम्बरधारी तथा परम सुन्दर है, जिसके दो भुजाएँ, हाथमें मुरली और मुखपर मन्द-मन्द मुसकान है, जो अत्यन्त मनोहर है, माथेपर मोरपंखका मुकुट धारण करता है, मालतीके पुष्पसमूहोंसे जिसका शृङ्गार किया गया है, जो चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरके अङ्गरागसे चर्चित है, अमूल्य रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित आभूषणोंसे विभूषित है, बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए किरीट-मुकुट जिसके मस्तकको उद्भासित कर रहे हैं, जिसका मुखचन्द्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको चुराये लेता है, जो पके बिम्बफलके समान लाल ओठोंसे सुशोभित है, परिपक्व अनारके बीजकी भाँति चमकीली दन्तपंक्ति जिसके मुखकी मनोरमताको बढ़ाती है, जो रास-रसके लिये उत्सुक हो केलि-कदम्बके नीचे खड़ा है, गोपियोंके मुखोंकी ओर देखता है तथा श्रीराधाके वक्षःस्थलपर विराजित है; आपके उसी केलि-रसोत्सुक रूपको देखनेकी हम सबकी इच्छा है। ऐसा कहकर विश्वविधाता ब्रह्मा उन्हें बारंबार प्रणाम करने लगे। धर्म और शंकरने भी इसी स्तोत्रसे उनका स्तवन किया तथा नेत्रोंमें आँसू भरकर बारंबार वन्दना की*।

---

* त्वं वरेण्यं वरदं वरदानां च कारणम्। कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
मङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्। समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम्॥

मुने! उन त्रिदशेश्वरोंने खड़े-खड़े पुनः स्तवन किया। वे सब-के-सब वहाँ भगवान् श्रीकृष्णके तेजसे व्याप्त हो रहे थे। धर्म, शिव और ब्रह्माजीके द्वारा किये गये इस 'स्तवराज'को जो प्रतिदिन श्रीहरिके पूजाकालमें भक्तिपूर्वक पढ़ता है, वह उनकी अत्यन्त दुर्लभ और दृढ़ भक्ति प्राप्त कर लेता है। देवता, असुर और मुनीन्द्रोंको श्रीहरिका दास्य दुर्लभ है; परंतु इस स्तोत्रका पाठ करनेवाला उसे पा लेता है। साथ ही अणिमा आदि सिद्धियों तथा सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तियोंको भी प्राप्त कर लेता है। इस लोकमें भी वह भगवान् विष्णुके समान ही विख्यात एवं पूजित होता है; इसमें संशय नहीं है। निश्चय ही उसे वाक्सिद्धि और मन्त्रसिद्धि भी सुलभ हो जाती है। वह सम्पूर्ण सौभाग्य और आरोग्य लाभ करता है। उसके यशसे सारा जगत् पूर्ण हो जाता है। वह इस लोकमें पुत्र, विद्या, कविता, स्थिर लक्ष्मी, साध्वी सुशीला पतिव्रता पत्नी, सुस्थिर संतान तथा चिरकालस्थायिनी कीर्ति प्राप्त कर लेता है और अन्तमें उसे श्रीकृष्णके निकट स्थान प्राप्त होता है।

(अध्याय ५)

स्थितं सर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम् । निरीहमवितर्क्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम् । साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
स्वमनिर्वचनीयं च व्यक्तमव्यक्तमेककम् । स्वेच्छामयं सर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम् । कलया ते सुताः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम् ॥
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबीजमबीजकम् । सर्वान्तकमनन्तं च तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
लक्ष्यं यद् गुणरूपं च वर्णनीयं विचक्षणैः । किं वर्णयाम्यलक्ष्यं ते तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियवदतीन्द्रियम् । यत्साक्षि सर्वसाक्षि तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनं यद् भोक्तुं तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम् । वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
सर्वेशं यदनीशं यत् सर्वादि यदनादि यत् । सर्वात्मकमनात्मं यत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
अहं विधाता जगतां वेदानां जनकः स्वयम् । पाता धर्मो हरो हर्ता स्तोतुं शक्तो न कोऽपि यत् ॥
सेवया तव धर्मोऽयं रक्षितारं च रक्षति । तवाज्ञया च संहर्ता त्वया काले निरूपिते ॥
निषेकलिपिकर्ताहं त्वत्पादाम्भोजसेवया । कर्मिणां फलदाता च त्वं भक्तानां च नः प्रभुः ॥
ब्रह्माण्डे बिम्बसदृशा भूत्वा विषयिणो वयम् । एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः ॥
यथा न संख्या रेणूनां तथा तेषामपीयसाम् । सर्वेषां जनकश्चेशो यस्त्वां स्तोतुं च कः क्षमः ॥
एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम् । यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैष सः ॥
ध्यायन्ति योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमीप्सितम् । त्वद्भक्ता दास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजम् ॥
किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम् । मन्त्रध्यानानुरूपं च दर्शयास्माकमीश्वर ॥
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं परम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ॥
मयूरपुच्छचूडं च मालतीमालमण्डितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥
अमूल्यरत्नसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥
शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोष्यास्यचन्द्रकम् । पक्वबिम्बसमानेन ह्यधरोष्ठेन राजितम् ॥
पक्वदाडिम्बबीजाभदन्तपंक्तिमनोरमम् । केलिकदम्बमूले च स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥
गोपीवक्त्राणि पश्यन्तं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवं वाञ्छास्ति रूपं ते द्रष्टुं केलिरसोत्सुकम् ॥
इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनः पुनः । एवं स्तोत्रेण तुष्टाव धर्मोऽपि शंकरः स्वयम् ।
ननाम भूयो भूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः ॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ५ । ९४—१२०)

देवताओंद्वारा तेजःपुञ्जमें श्रीकृष्ण और राधाके दर्शन तथा स्तवन, श्रीकृष्णद्वारा देवताओंका स्वागत तथा उन्हें आश्वासन-दान, भगवद्भक्तके महत्त्वका वर्णन, श्रीराधासहित गोप-गोपियोंको व्रजमें अवतीर्ण होनेके लिये श्रीहरिका आदेश, सरस्वती और लक्ष्मीसहित वैकुण्ठवासी नारायणका तथा क्षीरशायी विष्णुका शुभागमन, नारायण और विष्णुका श्रीकृष्णके स्वरूपमें लीन होना, संकर्षण तथा पुत्रोंसहित पार्वतीका आगमन, देवताओं और देवियोंको पृथ्वीपर जन्म ग्रहण करनेके लिये प्रभुका आदेश, किस देवताका कहाँ और किस रूपमें जन्म होगा—इसका विवरण, श्रीराधाकी चिन्ता तथा श्रीकृष्णका उन्हें सान्त्वना देते हुए अपनी और उनकी एकताका प्रतिपादन करना, फिर श्रीहरिकी आज्ञासे राधा और गोप-गोपियोंका नन्द-गोकुलमें गमन

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! उस तेजः-पुञ्जके सामने ध्यान और स्तुति करके खड़े हुए उन देवताओंने उस तेजोराशिके मध्यभागमें एक कमनीय शरीरको देखा, जो सजल जलधरके समान श्याम-कान्तिसे युक्त एवं परम मनोहर था। उसके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। उसका रूप परमानन्दजनक तथा त्रिलोकीके चित्तको मोह लेनेवाला था। उसके दोनों गालोंपर मकराकार कुण्डल जगमगा रहे थे। उत्तम रत्नोंके बने हुए नूपुरोंसे उसके चरणारविन्दोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। अग्निशुद्ध दिव्य पीताम्बरसे उस श्रीविग्रहकी अपूर्व शोभा हो रही थी। वह ऐसा जान पड़ता था, मानो स्वेच्छा और कौतूहलवश श्रेष्ठ मणियों और रत्नोंके सारतत्त्वसे रचा गया हो। मनोरञ्जनकी सामग्री मुरलीसे संलग्न बिम्बसदृश अरुण अधरोंके कारण उसके मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। वह शुभ दृष्टिसे देखता और भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर जान पड़ता था। उत्तम रत्नोंकी गुटिकासे युक्त किवाड़-जैसा विशाल वक्षःस्थल प्रकाशित हो रहा था। कौस्तुभमणिके कारण बढ़े हुए तेजसे वह देदीप्यमान दिखायी देता था।

उसी तेजःपुञ्जमें देवताओंने मनोहर अङ्गवाली श्रीराधाको भी देखा। वे मन्द मुस्कराहटके साथ अपनी ओर देखते हुए प्रियतमको तिरछी चितवनसे निहार रही थीं। मोतियोंकी पाँतको तिरस्कृत करनेवाली दन्तावली उनके मुखकी शोभा बढ़ा रही थी। उनका प्रसन्न मुखारविन्द मन्द हास्यकी छटासे सुशोभित था। नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी छविको लज्जित कर रहे थे। शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी आभाको निन्दित करनेवाले मुखके कारण वे बड़ी मनोहारिणी जान पड़ती थीं। दुपहरियाके फूलकी शोभाको चुरानेवाले उनके लाल-लाल अधर और ओष्ठ बड़े मनोहर थे तथा वे बहुत सुन्दर वस्त्र धारण किये हुए थीं। उनके युगल चरणारविन्दोंमें झनकारते हुए मञ्जीर शोभा दे रहे थे। नखोंकी पंक्ति श्रेष्ठ मणिरत्नोंकी प्रभाको छीने लेती थी। कुंकुमकी आभाको तिरस्कृत कर देनेवाले चरणतलके स्वाभाविक रागसे वे सुशोभित थीं। बहुमूल्य रत्नोंके सारतत्त्वसे बने हुए पाशकोंकी श्रेणी उन्हें विभूषित कर रही थी। अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र धारण करके वे अत्यन्त उद्भासित हो रही थीं। श्रेष्ठ महामणियोंके सारतत्त्वसे बनी हुई काञ्चीसे

उनका मध्यभाग अलंकृत था। उत्तम रत्नोंके हार, बाजूबंद और कंगनसे वे विभूषित थीं। उत्तम रत्नोंके द्वारा रचित कुण्डलोंसे उनके कपोल उद्दीप्त हो रहे थे। कानोंमें श्रेष्ठ मणियोंके कर्णभूषण उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। पक्षिराज गरुड़की चोंचके समान नुकीली नासिकामें गजमुक्ताकी बुलाक शोभा दे रही थी। उनके घुँघराले बालोंकी वेणीमें मालतीकी माला लपेटी हुई थी। वक्षःस्थलमें अनेक कौस्तुभमणियोंकी प्रभा फैली हुई थी। पारिजातके फूलोंकी माला धारण करनेसे उनकी रूपराशि परम उज्ज्वल जान पड़ती थी। उनके हाथकी अंगुलियाँ रत्नोंकी अँगूठियोंसे विभूषित थीं। दिव्य शङ्खके बने हुए विचित्र रागविभूषित रमणीय भूषण उन्हें विभूषित कर रहे थे। वे शङ्खभूषण महीन रेशमी डोरेमें गुँथे हुए थे। उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वकी बनी हुई गुटिकाको लाल डोरेमें गूँथकर उसके द्वारा उन्होंने अपने-आपको सज्जित किया था। तपाये हुए सुवर्णके समान अङ्गकान्तिको सुन्दर वस्त्रसे आच्छादित करके वे बड़ी शोभा पा रही थीं। उनका शरीर अत्यन्त मनोहर था। नितम्बदेश और श्रोणिभागके सौन्दर्यसे वे और भी सुन्दरी दिखायी देती थीं। वे समस्त आभूषणोंसे विभूषित थीं और समस्त आभूषण उनके सौन्दर्यसे विभूषित थे। उन श्रेष्ठ परमेश्वर और सुन्दरी परमेश्वरीका दर्शन करके सब देवताओंको बड़ा आश्चर्य हुआ। उनके सम्पूर्ण मनोरथ पूरे हो गये थे। अतः उन सब देवताओंने पुनः भगवान्‌की स्तुति आरम्भ की—

ब्रह्मोवाच

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको
भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे।
भवनमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन
सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम्॥

ब्रह्माजी बोले—परमेश्वर! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक (भ्रमर) आपके चरणारविन्दमें निरन्तर प्रेम-भक्तिपूर्वक भ्रमण करता रहे। शान्तिरूपी औषध देकर मेरी जन्म-मरणके रोगसे रक्षा कीजिये तथा मुझे सुदृढ़ एवं अत्यन्त परिपक्व भक्ति और दास्यभाव दीजिये।

शङ्कर उवाच

भवजलधिनिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो
भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे।
विषयमतिविनिन्द्यं सृष्टिसंहाररूप-
मपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

भगवान् शंकरने कहा—प्रभो! भवसागरमें डूबा हुआ मेरा चित्तरूपी मत्स्य सदा ही इस घोर संसाररूपी कूपमें चक्कर लगाता रहता है। सृष्टि और संहार यही इसका अत्यन्त निन्दनीय विषय है। आप इस विषयको दूर कीजिये और अपने चरणारविन्दोंकी भक्ति दीजिये।

धर्म उवाच

तव निजजनसार्द्धं संगमो मे मदीश
भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजे स्थानदानैकहेतु-
र्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

धर्म बोले—मेरे ईश्वर! आपके आत्मीयजनों (भक्तों)-के साथ मेरा सदा समागम होता रहे, जो विषयरूपी बन्धनको काटनेके लिये तीखी तलवारका काम देता है तथा आपके चरणारविन्दोंमें स्थान दिलानेका एकमात्र हेतु है। आप जन्म-जन्ममें मुझे अपने चरणारविन्दोंकी भक्ति प्रदान कीजिये।

भगवान् नारायण कहते हैं—इस प्रकार स्तुति करके पूर्णमनोरथ हुए वे तीनों देवता कामनाओंकी पूर्ति करनेवाले श्रीराधावल्लभके सामने खड़े हो गये। देवताओंकी यह स्तुति सुनकर कृपानिधान श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर मन्द मुस्कान खिल उठी। वे उनसे हितकर एवं सत्य वचन बोले।

श्रीकृष्णने कहा—तुम सब लोग इस समय मेरे धाममें पधारे हो। यहाँ तुम्हारा स्वागत है, स्वागत है। शिवके आश्रयमें रहनेवाले लोगोंका तो कुशल पूछना उचित नहीं है। यहाँ आकर तुम निश्चिन्त हो जाओ। मेरे रहते तुम्हें क्या चिन्ता है? मैं समस्त जीवोंके भीतर विराजमान हूँ; परंतु स्तुतिसे ही प्रत्यक्ष होता हूँ। तुम्हारा जो अभिप्राय है, वह सब मैं निश्चितरूपसे जानता हूँ। देवताओ! शुभ-अशुभ जो भी कर्म है, वह समयपर ही होगा। बड़ा और छोटा—सब कार्य कालसे ही सम्पन्न होता है। वृक्ष अपने-अपने समयपर ही सदा फूलते और फलते हैं। समयपर ही उनके फल पकते हैं और समयपर ही वे कच्चे फलोंसे युक्त होते हैं। सुख-दुःख, सम्पत्ति-विपत्ति, शोक-चिन्ता तथा शुभ-अशुभ—सब अपने-अपने कर्मोंके फल हैं और सभी समयपर ही उपस्थित होते हैं। तीनों लोकोंमें न तो कोई किसीका प्रिय है और न अप्रिय ही है। समय आनेपर कार्यवश सभी लोग अप्रिय अथवा प्रिय होते हैं। तुमलोगोंने देखा है, पृथ्वीपर बहुत-से राजा और मनु हुए और वे सभी अपने-अपने कर्मोंके फलके परिपाकसे कालके अधीन हो गये। तुमलोगोंका यहाँ गोलोकमें जो एक क्षण व्यतीत हुआ है, उतनेमें ही पृथ्वीपर सात मन्वन्तर बीत गये। सात इन्द्र समाप्त हो गये। इस समय आठवें इन्द्र चल रहे हैं। इस प्रकार मेरा कालचक्र दिन-रात भ्रमण करता रहता है। इन्द्र, मनु तथा राजा सभी लोग कालके वशीभूत हो गये। उनकी कीर्ति, पृथ्वी, पुण्य और पापकी कथामात्र शेष रह गयी है। इस समय भी भूमिपर बहुत-से राजा दुष्ट और भगवन्निन्दक हैं। उनके बल और पराक्रम महान् हैं। परंतु समयानुसार वे सब-के-सब कालान्तक यमके ग्रास हो जायँगे। यह काल इस समय भी मेरी आज्ञासे उपस्थित है। वायु मेरी आज्ञा मानकर ही निरन्तर बहती रहती है। मेरी आज्ञासे ही आग जलती और सूर्य तपते हैं। देवताओ! मेरी आज्ञासे ही सब शरीरोंमें रोग निवास करते हैं। समस्त प्राणियोंमें मृत्युका संचार होता है तथा ये समस्त जलधर वर्षा करते हैं। मेरे शासनसे ही ब्राह्मण ब्राह्मणत्वमें, तपोधन तपस्यामें, ब्रह्मर्षि ब्रह्ममें और योगी योगमें निष्ठा रखते हैं। ये सब-के-सब मेरे भयसे भीत होकर ही स्वधर्म-कर्मके पालनमें तत्पर हैं। जो मेरे भक्त हैं वे सदा निःशङ्क रहते हैं; क्योंकि वे कर्मका निर्मूलन करनेमें समर्थ हैं।

देवताओ! मैं कालका भी काल हूँ। विधाताका भी विधाता हूँ। संहारकारीका भी संहारक तथा पालकका भी पालक परात्पर परमेश्वर हूँ। मेरी आज्ञासे ये शिव संहार करते हैं; इसलिये इनका नाम 'हर' है। तुम मेरे आदेशसे सृष्टिके लिये उद्यत रहते हो; इसलिये 'विश्वस्रष्टा' कहलाते हो और धर्मदेव रक्षाके कारण ही 'पालक' कहलाते हैं। ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सबका ईश्वर मैं ही हूँ। मैं ही कर्मफलका दाता तथा कर्मोंका निर्मूलन करनेवाला हूँ। मैं जिनका संहार करना चाहूँ, उनकी रक्षा कौन कर सकता है? तथा मैं जिनका पालन करूँ, उनको मारनेवाला भी कोई नहीं है। मैं सबका सृजन, पालन और संहार करता हूँ। परंतु मेरे भक्त नित्यदेही हैं। उनके संहारमें मैं भी समर्थ नहीं हूँ। भक्त सदा मेरे पीछे चलते हैं और मेरे चरणोंकी आराधनामें तत्पर रहते हैं; अतः मैं भी सदा भक्तोंके निकट उनकी रक्षाके लिये मौजूद रहता हूँ। ब्रह्माण्डमें सभी नष्ट होते और बारंबार जन्म लेते हैं; परंतु मेरे भक्तोंका नाश नहीं होता है। वे सदा निःशङ्क और निरापद रहते हैं। इसीलिये समस्त विद्वान् पुरुष मेरे दास्यभावकी अभिलाषा रखते हैं; दूसरे किसी वरको नहीं। जो मुझसे दास्यभावकी याचना करते हैं; वे धन्य हैं। दूसरे सब-के-सब वञ्चित हैं। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि, भय और यमयातना—ये सारे कष्ट दूसरे-

दूसरे कर्मपरायण लोगोंको प्राप्त होते हैं; मेरे भक्तोंको नहीं। मेरे भक्त पाप या पुण्य किसी भी कर्ममें लिप्त नहीं होते हैं। मैं उनके कर्मभोगोंका निश्चय ही नाश कर देता हूँ। मैं भक्तोंका प्राण हूँ और भक्त भी मेरे लिये प्राणोंके समान हैं। जो नित्य मेरा ध्यान करते हैं, उनका मैं दिन-रात स्मरण करता हूँ*। सोलह अरोंसे युक्त अत्यन्त तीखा सुदर्शन नामक चक्र महान् तेजस्वी है। सम्पूर्ण जीवधारियोंमें जितना भी तेज है, वह सब उस चक्रके तेजके सोलहवें अंशके बराबर भी नहीं है। उस अभीष्ट चक्रको भक्तोंके निकट उनकी रक्षाके लिये नियुक्त करके भी मुझे प्रतीति नहीं होती; इसलिये मैं स्वयं भी उनके पास जाता हूँ। तुम सब देवता और प्राणाधिका लक्ष्मी भी मुझे भक्तसे बढ़कर प्यारी नहीं हैं। देवेश्वरो! भक्तोंका भक्तिपूर्वक दिया हुआ जो द्रव्य है, उसको मैं बड़े प्रेमसे ग्रहण करता हूँ, परंतु अभक्तोंकी दी हुई कोई भी वस्तु मैं नहीं खाता। निश्चय ही उसे राजा बलि ही भोगते हैं। जो अपने स्त्री-पुत्र आदि स्वजनोंको त्यागकर दिन-रात मुझे ही याद करते हैं, उनका स्मरण मैं भी तुमलोगोंको त्यागकर अहर्निश किया करता हूँ। जो लोग भक्तों, ब्राह्मणों तथा गौओंसे द्वेष रखते हैं, यज्ञों और देवताओंकी हिंसा करते हैं, वे शीघ्र ही उसी तरह नष्ट हो जाते हैं, जैसे प्रज्वलित अग्निमें तिनके। जब मैं उनका घातक बनकर उपस्थित होता हूँ, तब कोई भी उनकी रक्षा नहीं कर पाता†। देवताओ! मैं पृथ्वीपर जाऊँगा। अब तुमलोग भी अपने स्थानको पधारो और शीघ्र ही अपने अंशरूपसे भूतलपर अवतार लो।

ऐसा कहकर जगदीश्वर श्रीकृष्णने गोपों और गोपियोंको बुलाकर मधुर, सत्य एवं समयोचित बातें कहीं—'गोपो और गोपियो! सुनो। तुम सब-के-सब नन्दरायजीका जो उत्कृष्ट व्रज है, वहाँ जाओ (उस व्रजमें अवतार ग्रहण करो)। राधिके! तुम भी शीघ्र ही वृषभानुके घर पधारो। वृषभानुकी प्यारी स्त्री बड़ी साध्वी हैं। उनका नाम कलावती है। वे सुबलकी पुत्री हैं और लक्ष्मीके अंशसे प्रकट हुई हैं। वास्तवमें वे पितरोंकी मानसी कन्या हैं तथा नारियोंमें धन्या और मान्या समझी जाती हैं। पूर्वकालमें दुर्वासाके शापसे उनका व्रजमण्डलमें गोपके घरमें जन्म हुआ है। तुम उन्हीं कलावतीकी पुत्री होकर जन्म ग्रहण करो। अब शीघ्र नन्दव्रजमें जाओ। कमलानने! मैं बालकरूपसे वहाँ आकर तुम्हें प्राप्त करूँगा। राधे! तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो और मैं भी तुम्हें प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारा हूँ। हम दोनोंका कुछ भी एक-दूसरेसे भिन्न नहीं है। हम सदैव एक-रूप हैं।'

मुने! यह सुनकर श्रीराधा प्रेमसे विह्वल होकर वहाँ रो पड़ीं और अपने नेत्र-चकोरोंद्वारा श्रीहरिके मुखचन्द्रकी सौन्दर्य-सुधाका पान करने लगीं। 'गोपो और गोपियो! तुम भूतलपर श्रेष्ठ गोपोंके शुभ घर-घरमें जन्म लो।' श्रीकृष्णकी यह बात पूरी होते ही वहाँ सब लोगोंने देखा, एक उत्तम रथ (विमान) आ गया। वह श्रेष्ठ मणिरत्नोंके सारतत्त्व तथा हीरकसे विभूषित था। लाखों श्वेत चँवर तथा दर्पण उसकी शोभा बढ़ा

* अहं प्राणाश्च भक्तानां भक्ताः प्राणा ममापि च। ध्यायन्ति ये च मां नित्यं तां स्मरामि दिवानिशम्॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। ५२)

† स्त्रीपुत्रस्वजनांस्त्यक्त्वा ध्यायन्ते मामहर्निशम्। युष्मान् विहाय तान् नित्यं स्मराम्यहमहर्निशम्॥
द्वेष्टारः सदा मे भक्तानां ब्राह्मणानां गवामपि। क्रतूनां देवतानां च हिंसां कुर्वन्ति निश्चितम्॥
तदाऽचिरं ते नश्यन्ति यथा वह्नौ तृणानि च। न कोऽपि रक्षिता तेषां मयि हन्तर्युपस्थिते॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। ५८—६०)

रहे थे। वह अग्निशुद्ध सूक्ष्म गेरुए वस्त्रोंसे सजाया गया था। श्रेष्ठ रत्नोंके बने हुए सहस्रों कलश उसकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। पारिजातपुष्पोंके हारोंसे उस विमानको सुसज्जित किया गया था। सोनेका बना हुआ वह सुन्दर विमान अनुपम तेज:पुञ्जमय दिखायी देता था। उससे सैकड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था तथा उस विमानपर बहुत-से श्रेष्ठ पार्षद बैठे हुए थे। उस विमानमें एक श्यामसुन्दर कमनीय पुरुष दृष्टिगोचर हुए, जिनके चार हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। उन श्रेष्ठ पुरुषने पीताम्बर पहन रखा था। उनके मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल और वक्ष:स्थलपर वनमाला शोभा दे रही थी। उनके श्रीअङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा केसरके अङ्गरागसे अलंकृत थे। चार भुजाएँ और मुस्कराता हुआ मनोहर मुख देखने ही योग्य थे। भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये वे आकुल दिखायी देते थे। श्रेष्ठ मणिरत्नोंके सारातिसार तत्त्वसे बने हुए आभूषण उनके अङ्गोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। उनके वामभागमें सुरम्य शरीरवाली शुक्लवर्णा, मनोहरा, ज्ञानरूपा एवं विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती दिखायी दीं, जिनके हाथोंमें वेणु, वीणा और पुस्तकें थीं। वे भी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ती थीं। उन महानारायणके दाहिने भागमें शरत्कालके चन्द्रमाकी-सी प्रभा तथा तपाये हुए सुवर्णकी भाँति कान्तिसे प्रकाशमान परम मनोहरा और रमणीया देवी लक्ष्मी दृष्टिगोचर हुईं, जिनके मुखारविन्दपर मन्द मुस्कान खेल रही थी। उनके सुन्दर कपोल उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे जगमगा रहे थे। बहुमूल्य रत्न, महामूल्यवान् वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते थे। अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित बाजूबंद और कंगन उनकी भुजाओंकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वके बने हुए मञ्जीर अपनी मधुर झनकार फैला रहे थे। पारिजातके फूलोंकी मालाओंसे वक्ष:स्थल उज्ज्वल दिखायी देता था। उनकी वेणी प्रफुल्ल मालतीकी मालाओंसे अलंकृत थी। सुन्दरी रमाका मनोहर मुख शरत्कालके चन्द्रमाकी प्रभाको छीने लेता था। उनके भालदेशमें कस्तूरीबिन्दुसे युक्त सिन्दूरका तिलक शोभा दे रहा था। शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंके समान नेत्रोंमें मनोहर काजलकी रेखा शोभायमान थी। उनके हाथमें सहस्र दलोंसे संयुक्त लीलाकमल सुशोभित होता था। वे अपनी ओर देखनेवाले नारायणदेवको तिरछी चितवनसे निहार रही थीं। पत्नियों और पार्षदोंके साथ शीघ्र ही विमानसे उतरकर वे नारायणदेव गोप-गोपियोंसे भरी हुई उस रमणीय सभामें आ पहुँचे। उन्हें देखते ही ब्रह्मा आदि देवता, गोप और गोपी सब-के-सब सानन्द उठकर खड़े हो गये। सबके हाथ जुड़े हुए थे। देवर्षिगण सामवेदोक्त स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति करने लगे। उनकी स्तुति समाप्त होनेपर नारायणदेव आगे जाकर श्रीकृष्णविग्रहमें विलीन हो गये। यह परम आश्चर्यकी बात देखकर सबको बड़ा विस्मय हुआ।

इसी समय वहाँ एक दूसरा सुवर्णमय रथ आ पहुँचा। उससे जगत्का पालन करनेवाले त्रिलोकीनाथ विष्णु स्वयं उतरकर उस सभामें आये। उनके चार भुजाएँ थीं। वनमालासे विभूषित पीताम्बरधारी सम्पूर्ण अलंकारोंकी शोभासे सम्पन्न तथा करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान श्रीमान् विष्णु बड़े मनोहर दिखायी देते थे। वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। मुने! उन्हें देखते ही सब लोग उठकर खड़े हो गये। सबने प्रणाम करके उनका स्तवन किया। तत्पश्चात् वे भी वहीं श्रीराधिकावल्लभ श्रीकृष्णके शरीरमें लीन हो गये। यह दूसरा महान् आश्चर्य देखकर उन सबको बड़ा विस्मय हुआ।

श्वेतद्वीपनिवासी श्रीविष्णुके श्रीकृष्णविग्रहमें विलीन हो जानेके बाद वहाँ तुरंत ही शुद्ध

स्फटिकमणिके समान गौरवर्णवाले संकर्षण नामक पुरुष पधारे। वे बड़ी उतावलीमें थे। उनके सहस्रों मस्तक थे तथा वे सौ सूर्योंके समान देदीप्यमान हो रहे थे। उनको आया देख सबने उन विष्णुस्वरूप संकर्षणका स्तवन किया। नारद! उन्होंने भी वहाँ आकर मस्तक झुकाकर राधिकेश्वरकी स्तुति की तथा सहस्रों मस्तकोंद्वारा भक्तिभावसे उनको प्रणाम किया। तत्पश्चात् धर्मके पुत्र-स्वरूप हम दोनों भाई नर और नारायण वहाँ गये। मैं तो श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें लीन हो गया। किंतु नर अर्जुनके रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। फिर ब्रह्मा, शिव, शेष और धर्म—ये चारों वहाँ एक स्थानपर खड़े हो गये।

इस बीचमें देवताओंने वहाँ दूसरा उत्तम रथ देखा, जो सुवर्णके सारतत्त्वका बना हुआ था और नाना प्रकारके रत्ननिर्मित उपकरणोंसे अलंकृत था। वह श्रेष्ठ मणियोंके सारतत्त्वसे संयुक्त, अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्रसे सुसज्जित, श्वेत चँवर तथा दर्पणोंसे अलंकृत, सद्रत्न-सारनिर्मित कलश-समूहसे विराजमान, पारिजात-पुष्पोंके मालाजालसे सुशोभित, सहस्र पहियोंसे युक्त, मनके समान शीघ्रगामी और मनोहर था। ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक मार्तण्डकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाला वह श्रेष्ठ विमान मोती, माणिक्य और हीरोंके समूहसे जाज्वल्यमान जान पड़ता था। उसमें विचित्र पुतलियों, पुष्प, सरोवरों और काननोंसे उसकी अद्भुत शोभा हो रही थी। मुने! वह देवताओं और दानवोंके रथोंसे बहुत बड़ा था। भगवान् शंकरकी प्रसन्नताके लिये विश्वकर्माने यत्नपूर्वक उस दिव्य रथका निर्माण किया था। वह पचास योजन ऊँचा और चार योजन विस्तृत था। रतिशय्यासे युक्त सैकड़ों प्रासाद उसकी शोभा बढ़ाते थे। उस विमानमें बैठी हुई मूलप्रकृति ईश्वरी देवी दुर्गाको भी देवताओंने देखा, जो रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थीं और अपनी दिव्य दीप्तिसे तपाये हुए सुवर्णके सारभागकी प्रभाका अपहरण कर रही थीं। उन अनुपम तेजःस्वरूपा देवीके सहस्रों भुजाएँ थीं और उनमें भाँति-भाँतिके आयुध शोभा पा रहे थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हासकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये कातर दिखायी देती थीं। उनके गण्डस्थल और कपोल उत्तम रत्नमय कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहे थे। रत्नेन्द्रसाररचित तथा मधुर झनकारसे युक्त मञ्जीरोंके कारण उनके चरणोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ मणिनिर्मित मेखलासे मण्डित मध्यदेश अत्यन्त मनोहर दिखायी देता था। हाथोंमें श्रेष्ठ रत्नसारके बने हुए केयूर और कङ्कण शोभा दे रहे थे। मन्दार-पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत वक्षःस्थल अत्यन्त उज्ज्वल जान पड़ता था। शरत्कालके सुधाकरकी आभाको तिरस्कृत करनेवाले सुन्दर मुखसे उनकी मनोहरता और बढ़ गयी थी। काजलकी काली रेखासे युक्त नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल नील कमलोंकी शोभाको लज्जित कर रहे थे। चन्दन, अगुरु तथा कस्तूरीद्वारा रचित चित्रपत्रक उनके भाल और कपोलको विभूषित कर रहे थे। नूतन बन्धुजीव-पुष्पके समान आभावाले लाल-लाल ओठोंके कारण उनके मुखकी शोभा और भी बढ़ गयी थी। उनकी दन्तावली मोतियोंकी पाँतकी प्रभाको लूटे लेती थी। प्रफुल्ल मालतीकी मालासे अलंकृत वेणी धारण करनेवाली वे देवी बड़ी ही सुन्दर थीं। गरुड़की चोंचके समान नुकीली नासिकाके अग्रभागमें लटकती हुई गजमुक्ताकी बुलाक अपूर्व छटा बिखेर रही थी। अग्निशुद्ध एवं अत्यन्त दीप्तिमान् वस्त्रसे वे उद्भासित हो रही थीं और दोनों पुत्रोंके साथ सिंहकी पीठपर बैठी थीं। उस रथसे उतरकर पुत्रोंसहित देवीने शीघ्रतापूर्वक श्रीकृष्णको प्रणाम किया। फिर वे एक श्रेष्ठ आसनपर बैठ गयीं। इसके बाद गणेश और कार्तिकेयने परात्पर श्रीकृष्ण, शंकर, धर्म, संकर्षण तथा ब्रह्माजीको नमस्कार किया।

उन दोनों देवेश्वरोंको निकट आया देख वे सब देवता उठकर खड़े हो गये। उन्होंने आशीर्वाद दिया और दोनोंको अपने पास बिठा लिया। देवता बड़ी प्रसन्नताके साथ गणेश और कार्तिकेयके साथ उत्तम वार्तालाप करने लगे। उस समय देवता और देवी उस सभामें श्रीहरिके सामने बैठ गये। उन्हें देख बहुसंख्यक गोप और गोपियाँ आश्चर्यसे चकित हो रही थीं। तदनन्तर श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर मुस्कराहट खेलने लगी। वे लक्ष्मीसे बोले—'सनातनी देवि! तुम नाना रत्नोंसे सम्पन्न भीष्मकके राजभवनमें जाओ और वहाँ विदर्भदेशकी महारानीके उदरसे जन्म धारण करो। साध्वी देवि! मैं स्वयं कुण्डिनपुरमें जाकर तुम्हारा पाणिग्रहण करूँगा।'

वे रमा आदि देवियाँ पार्वतीको देखकर शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने ईश्वरीको रमणीय रत्न-सिंहासनपर बिठाया। विप्रवर नारद! पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वती—ये तीनों देवियाँ परस्पर यथोचित कुशल-प्रश्न करके वहाँ एक आसनपर बैठीं। वे प्रेमपूर्वक गोप-कन्याओंसे वार्तालाप करने लगीं। कुछ गोपियाँ बड़ी प्रसन्नताके साथ उनके निकट बैठ गयीं। इसी समय जगदीश्वर श्रीकृष्णने वहाँ पार्वतीसे कहा—'सृष्टि और संहार करनेवाली कल्याणमयी महामायास्वरूपिणी देवि! शुभे! तुम अंशरूपसे नन्दके व्रजमें जाओ और वहाँ नन्दके घर यशोदाके गर्भमें जन्म धारण करो। मैं भूतलपर गाँव-गाँवमें तुम्हारी पूजा करवाऊँगा। समस्त भूमण्डलमें, नगरों और वनोंमें मनुष्य वहाँकी अधिष्ठात्री देवीके रूपमें भक्तिभावसे तुम्हारी पूजा करेंगे और आनन्दपूर्वक नाना प्रकारके द्रव्य तथा दिव्य उपहार तुम्हें अर्पित करेंगे। शिवे! तुम ज्यों ही भूतलका स्पर्श करोगी, त्यों ही मेरे पिता वसुदेव यशोदाके सूतिकागारमें जाकर मुझे वहाँ स्थापित कर देंगे और तुम्हें लेकर चले जायँगे। कंसका साक्षात्कार होनेमात्रसे तुम पुनः शिवके समीप चली आओगी और मैं भूतलका भार उतारकर अपने धाममें आ जाऊँगा।'

ऐसा कहकर श्रीकृष्ण तुरंत ही छः मुखवाले स्कन्दसे बोले—वत्स सुरेश्वर! तुम अंशरूपसे भूतलपर जाओ और जाम्बवतीके गर्भसे जन्म ग्रहण करो। सब देवता अपने अंशसे पृथ्वीपर जायँ और जन्म लें। मैं निश्चय ही पृथ्वीका भार हरण करूँगा।

नारद! ऐसा कहकर राधिकानाथ श्रेष्ठ सिंहासनपर बैठे। फिर देवता, देवियाँ, गोप और गोपियाँ भी बैठ गयीं। इसी बीचमें ब्रह्माजी श्रीहरिके सामने उठकर खड़े हो गये और हाथ जोड़कर विनयपूर्वक उन जगदीश्वरसे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—प्रभो! इस सेवकके निवेदनपर ध्यान दीजिये। महाभाग! आज्ञा कीजिये कि भूतलपर किसके लिये कहाँ स्थान होगा। स्वामी ही सदा सेवकोंका भरण-पोषण और उद्धार करनेवाला है। सेवक वही है जो सदा भक्तिभावसे प्रभुकी आज्ञाका पालन करता है। कौन देवता किस रूपसे अवतार लेंगे? देवियाँ भी किस कलासे अवतीर्ण होंगी? भूतलपर कहाँ किसका निवास-स्थान होगा? और वह किस नामसे ख्याति प्राप्त करेगा?

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर जगदीश्वर श्रीकृष्णने इस प्रकार उत्तर दिया।

श्रीकृष्ण बोले—ब्रह्मन्! जिसके लिये जहाँ स्थान होगा, वह विधिवत् बता रहा हूँ, सुनो। कामदेव रुक्मिणीके पुत्र होंगे तथा शम्बरासुरके घरमें जो छायारूपसे स्थित है, वह सती मायावतीके नामसे प्रसिद्ध रति उनकी पत्नी होगी। तुम उन्हीं रुक्मिणीनन्दन प्रद्युम्नके पुत्र होओगे और तुम्हारा नाम अनिरुद्ध होगा। भारती शोणितपुरमें जाकर बाणासुरकी पुत्री होगी। जगदीश्वर अनन्त देवकीके गर्भसे आकृष्ट हो

रोहिणीके गर्भसे जन्म लेंगे। मायाद्वारा उस गर्भका संकर्षण होनेसे उनका नाम 'संकर्षण' होगा। सूर्यतनया यमुना गङ्गाके अंशके साथ भूतलपर कालिन्दी नामवाली पटरानी होंगी। तुलसी आधे अंशसे राजकन्या लक्ष्मणाके रूपमें अवतीर्ण होंगी। वेदमाता सावित्री नग्नजित्‌की पुत्री सती सत्याके नामसे प्रसिद्ध होंगी। वसुधा सत्यभामा और देवी सरस्वती शैव्या होंगी। रोहिणी राजकन्या मित्रविन्दा होंगी। सूर्यपत्नी संज्ञा अपनी कलासे जगद्‌गुरुकी पत्नी रत्नमाला होंगी। स्वाहा एक अंशसे सुशीलाके रूपमें अवतीर्ण होंगी। ये रुक्मिणी आदि नौ स्त्रियाँ हुईं। इसके अतिरिक्त पार्वती अपने आधे अंशसे जाम्बवती होंगी। ये दस पटरानियाँ बतायी गयी हैं।

समस्त देवताओंके अंश भूतलपर जायँ। ब्रह्मन्! वे राजकुमार होकर युद्धमें मेरे सहायक बनेंगे। कमलाकी कलासे सोलह हजार राजकन्याएँ प्रकट होंगी, वे सब-की-सब मेरी रानियाँ बनेंगी। वे धर्मदेव अंशरूपसे पाण्डुपुत्र युधिष्ठिर होंगे। वायुके अंशसे भीमसेनका और इन्द्रके अंशसे साक्षात् अर्जुनका प्रादुर्भाव होगा। अश्विनीकुमारोंके अंशसे नकुल और सहदेव प्रकट होंगे। सूर्यका अंश वीरवर कर्ण होगा और साक्षात् यमराज विदुर होंगे। कलिका अंश दुर्योधन, समुद्रका अंश शान्तनु, शंकरका अंश अश्वत्थामा और अग्निका अंश द्रोण होगा। चन्द्रमाका अंश अभिमन्युके रूपमें प्रकट होगा। स्वयं वसु देवता भीष्म होंगे। कश्यपके अंशसे वसुदेव और अदितिके अंशसे देवकी होंगी। वसुके अंशसे नन्द-गोपका प्रादुर्भाव होगा। वसुकी पत्नी यशोदा होंगी। कमलाके अंशसे द्रौपदी होंगी, जिनका प्रादुर्भाव यज्ञकुण्डसे होगा। अग्निके अंशसे महाबली धृष्टद्युम्नका जन्म होगा। शतरूपाके अंशसे सुभद्रा होंगी, जिनका जन्म देवकीके गर्भसे होगा। देवतालोग भारहारी होकर अपने अंशसे पृथ्वीपर अवतीर्ण हों। इसी प्रकार देवपत्नियाँ भी अपनी कलासे भूतलपर पधारें।

नारद! ऐसा कहकर भगवान् श्रीकृष्ण चुप हो गये। यह सारा विवरण सुनकर प्रजापति ब्रह्मा वहाँ अपने स्थानपर जा बैठे। देवर्षे! श्रीकृष्णके वामभागमें वाग्देवी सरस्वती थीं। दाहिने भागमें लक्ष्मी थीं। अन्य सब देवता और पार्वतीदेवी सामने थीं। गोप और गोपियाँ भी उनके सम्मुख ही बैठी थीं। श्रीराधा श्यामसुन्दरके वक्षःस्थलमें विराजमान थीं। इसी समय व्रजेश्वरी राधा अपने प्रियतमसे बोलीं।

राधिकाने कहा—नाथ! मैं कुछ कहना चाहती हूँ। प्रभो! इस दासीकी बात सुनो। मेरे प्राण चिन्तासे निरन्तर जल रहे हैं, चित्त चञ्चल हो रहा है। तुम्हारी ओर देखते समय मैं पलभरके लिये आँख बंद करने या पलक मारनेमें भी असमर्थ हो जाती हूँ। फिर प्राणनाथ! तुम्हारे बिना भूतलपर अकेली कैसे जाऊँगी? प्राणेश्वर! जीवनबन्धो! सच बताओ, वहाँ गोकुलमें कितने कालके पश्चात् तुम्हारे साथ मेरा अवश्य मिलन होगा। तुम्हें देखे बिना एक निमेष भी मेरे लिये सौ युगोंके समान प्रतीत होगा। वहाँ मैं किसे देखूँगी? कहाँ जाऊँगी? और कौन मेरी रक्षा करेगा? प्राणेश! तुम्हारे सिवा दूसरे किसी पिता, माता, भाई, बन्धु, बहिन अथवा पुत्रका मैं क्षणभर भी चिन्तन नहीं करती हूँ। मायापते! यदि तुम भूतलपर मुझे भेजकर मायासे आच्छन्न कर देना चाहते हो, वैभव देकर भुलाना चाहते हो तो मेरे समक्ष सच्ची प्रतिज्ञा करो। मधुसूदन! मेरा मनरूपी मधुप तुम्हारे मकरन्दयुक्त चरणारविन्दमें ही नित्य-निरन्तर भ्रमण करता रहे। जहाँ-जहाँ जिस योनिमें भी मेरा यह जन्म हो, वहाँ-वहाँ तुम मुझे अपना स्मरण एवं मनोवाञ्छित दास्यभाव प्रदान करोगे। मैं भूतलपर कभी भी इस बातको न भूलूँ कि तुम मेरे प्रियतम श्रीकृष्ण हो, मैं

तुम्हारी प्रेयसी राधिका हूँ तथा हम दोनोंका प्रेमसौभाग्य शाश्वत है। प्रभो! यह उत्तम वर मुझे अवश्य दो। जैसे शरीर छायाके साथ और प्राण शरीरके साथ रहते हैं, उसी प्रकार हम दोनोंका जन्म एवं जीवन एक-दूसरेके साथ बीते। विभो! यह श्रेष्ठ वर मुझे दे दो। भगवन्! भूतलपर पहुँचकर भी कहीं हम दोनोंका पलभरके लिये भी वियोग न हो। यह वर मुझे दो। हरे! मेरे प्राणोंसे ही तुम्हारा शरीर निर्मित हुआ है—मेरे प्राण तुम्हारे श्रीअङ्गोंसे विलग नहीं हैं। मेरी इस धारणाका कौन निवारण कर सकता है? मेरे शरीरसे ही तुम्हारी मुरली बनी है और मेरे मनसे ही तुम्हारे चरणोंका निर्माण हुआ है। तात्पर्य यह है कि मैं तुम्हारी मुरलीको अपना शरीर मानती हूँ और मेरा मन तुम्हारे चरणोंसे कभी विलग नहीं होता है। संसारमें कितने ही ऐसे स्त्री-पुरुष हैं, जो सामने एक-दूसरेकी स्तुति करते हैं; परंतु कहीं भी अपने प्रियतममें निरन्तर आसक्त रहनेवाली मुझ-जैसी प्रेयसी नहीं है। तुम्हारे शरीरके आधे भागसे किसने मेरा निर्माण किया है? हम दोनोंमें भेद है ही नहीं। अतः मेरा मन निरन्तर तुम्हींमें लगा रहता है। मेरी आत्मा, मेरा मन और मेरे प्राण जिस तरह तुममें स्थापित हैं, उसी तरह तुम्हारे मन, प्राण और आत्मा भी मुझमें ही स्थापित हैं। अतः विरहकी बात कानमें पड़ते ही आँखोंका पलक गिरना बंद हो गया है और हम दोनों आत्माओंके मन, प्राण निरन्तर दग्ध हो रहे हैं।

श्रीकृष्ण बोले—देवि! उत्तम आध्यात्मिक योग शोकका उच्छेद करनेवाला होता है। अतः उसे बताता हूँ, सुनो। यह योग योगीन्द्रोंके लिये भी दुर्लभ है। सुन्दरि! देखो, सारा ब्रह्माण्ड आधार और आधेयके रूपमें विभक्त है। इनमें भी आधारसे पृथक् आधेयकी सत्ता सम्भव नहीं है। फलका आधार है फूल, फूलका आधार है पल्लव, पल्लवका आधार है तना या डाली तथा उसका भी आधार स्वयं वृक्ष है। वृक्षका आधार अंकुर है, जो बीजकी शक्तिसे सम्पन्न होता है। उस अंकुरका आधार बीज है, बीजका आधार पृथ्वी है, पृथ्वीके आधार शेषनाग हैं। शेषके आधार कच्छप हैं, कच्छपका आधार वायु है और वायुका आधार मैं हूँ। मेरी आधारस्वरूपा तुम हो; क्योंकि मैं सदा तुममें ही स्थित रहता हूँ। तुम शक्तियोंका समूह और मूलप्रकृति ईश्वरी हो। शरीररूपिणी तथा त्रिगुणाधार-स्वरूपिणी भी तुम्हीं हो। मैं तुम्हारा आत्मा निरीह हूँ। तुम्हारा संयोग प्राप्त करके ही चेष्टावान् होता हूँ। शरीरके बिना आत्मा कहाँ? और आत्माके बिना शरीर कहाँ? देवि! शरीर और आत्मा दोनोंकी प्रधानता है। बिना दोके संसार कैसे चल सकता है? राधे! हम दोनोंमें कहीं भेद नहीं है; जहाँ आत्मा है, वहाँ शरीर है। वे दोनों एक-दूसरेसे अलग नहीं हैं।

जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिका शक्ति, पृथ्वीमें गन्ध और जलमें शीतलता है, उसी तरह तुममें मेरी स्थिति है। धवलता और दूधमें, दाहिका शक्ति और अग्निमें, पृथ्वी और गन्धमें तथा जल और शीतलतामें जैसे ऐक्य (भेदाभाव) है, उसी तरह हम दोनोंमें भेद नहीं है। मेरे बिना तुम निर्जीव हो और तुम्हारे बिना मैं अदृश्य हूँ। सुन्दरि! तुम्हारे बिना मैं संसारकी सृष्टि नहीं कर सकता, यह निश्चित बात है। ठीक उसी तरह, जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता और सुनार सोनेके बिना आभूषणोंका निर्माण नहीं कर सकता। स्वयं आत्मा जैसे नित्य है, उसी प्रकार साक्षात् प्रकृतिस्वरूपा तुम नित्य हो। तुममें सम्पूर्ण शक्तियोंका समाहार संचित है। तुम सबकी आधारभूता और सनातनी हो*।

---

*यथा क्षीरे च धावल्यं दाहिका च हुताशने। भूमौ गन्धो जले शैत्यं तथा त्वयि मम स्थितिः॥
धावल्यदुग्धयोरैक्यं दाहिकानलयोर्यथा। भूगन्धजलशैत्यानां नास्ति भेदस्तथाऽऽवयोः॥

लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म—ये सब मेरे प्राणोंके समान हैं; परंतु तुम मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी हो। राधिके! ये सब देवता और देवियाँ मेरे निकट हैं; परंतु तुम यदि इनसे अधिक न होतीं तो मेरे वक्षःस्थलमें कैसे विराजमान हो सकती थीं? सुशीले राधे! आँसू बहाना छोड़ो। साथ ही इस निष्फल भ्रमका परित्याग करो। शङ्का छोड़कर निर्भीक-भावसे वृषभानुके घरमें पधारो। सुन्दरि! नौ मासतक कलावतीके पेटमें स्थित गर्भको मायाद्वारा वायुसे भरकर रोके रहो। दसवाँ महीना आनेपर तुम भूतलपर प्रकट हो जाना। अपने दिव्य रूपका परित्याग करके शिशुरूप धारण कर लेना। जब गर्भसे वायुके निकलनेका समय हो, तब कलावतीके समीप पृथ्वीपर नग्न शिशुके रूपमें गिरकर निश्चय ही रोना। साध्वि! तुम गोकुलमें अयोनिजा-रूपसे प्रकट होओगी। मैं भी अयोनिज-रूपसे ही अपने आपको प्रकट करूँगा; क्योंकि हम दोनोंका गर्भमें निवास होना सम्भव नहीं है। मेरे भूमिपर स्थित होते ही पिताजी मुझे गोकुलमें पहुँचा देंगे। वास्तवमें कंसके भयका बहाना लेकर मैं तुम्हारे लिये ही गोकुलमें जाऊँगा। कल्याणि! तुम वहाँ यशोदाके मन्दिरमें मुझ नन्दनन्दनको प्रतिदिन आनन्दपूर्वक देखोगी और हृदयसे लगाओगी। राधिके! मेरे वरदानसे तुम्हें समयपर मेरी स्मृति होगी और मैं तुम्हारे साथ वृन्दावनमें नित्य स्वच्छन्द विहार करूँगा। सुशीला आदि जो तैंतीस तुम्हारी सखियाँ हैं, उनके तथा अन्यान्य बहुसंख्यक गोपियोंके साथ तुम गोकुलको पधारो। असंख्य गोपियोंको अपने अमृतोपम एवं परिमित वाणीद्वारा समझा-बुझाकर आश्वासन दे गोलोकमें ही रखकर तुम्हें गोकुलमें जाना है। राधिके! मैं भी इन असंख्य गोपोंको यहाँ स्थापित करके पीछेसे वसुदेवके निवासस्थान मथुरापुरीमें पदार्पण करूँगा। मेरे प्रिय-से-प्रिय गोप बहुत बड़ी संख्यामें मेरे साथ क्रीडाके लिये व्रजमें चलें और वहाँ गोपोंके घरमें जन्म लें।

नारद! यों कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। देवता, देवियाँ, गोप और गोपियाँ वहीं ठहर गयीं। ब्रह्मा, शिव, धर्म, शेषनाग, पार्वती, लक्ष्मी और सरस्वतीने बड़ी प्रसन्नताके साथ परात्पर श्रीकृष्णका स्तवन किया। उस समय उनके विरहज्वरसे व्याकुल तथा प्रेम-विह्वल गोपों और गोपियोंने भी भक्तिभावसे वहाँ श्रीकृष्णकी स्तुति करके उनके चरणोंमें मस्तक झुकाया। विरह-ज्वरसे कातर हुई पूर्णमनोरथा राधाने भी अपने प्राणाधिक प्रियतम हृदयवल्लभ श्रीकृष्णका भक्तिभावसे स्तवन किया। उस समय श्रीराधाके नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। वे अत्यन्त दीन और भयसे व्याकुल दिखायी देती थीं। उन्हें इस अवस्थामें देख स्वयं श्रीहरिने सान्त्वना देनेके लिये यह सच्ची बात कही।

श्रीकृष्ण बोले—प्राणाधिके महादेवि! सुस्थिर होओ। भयका त्याग करो। जैसी तुम हो वैसा ही मैं हूँ। मेरे रहते तुम्हें क्या चिन्ता है? श्रीदामके शापकी सत्यताके लिये कुछ समयतक (बाह्यरूपमें) मेरे साथ तुम्हारा वियोग रहेगा। तदनन्तर मैं मथुरामें आ जाऊँगा। वहाँ भूतलका भार उतारना, माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाना, माली, दर्जी और कुब्जाका उद्धार करना, कालयवनको मरवाकर मुचुकुन्दको मोक्ष देना, द्वारकाका निर्माण, राजसूय-यज्ञका दर्शन, सोलह हजार एक सौ दस राजकन्याओंके साथ विवाह करना, शत्रुओंका दमन, मित्रोंका

मया विना त्वं निर्जीवा चादृश्योऽहं त्वया विना। त्वया विना भवं कर्तुं नालं सुन्दरि निश्चितम्॥
विना मृदा घटं कर्तुं यथा नालं कुलालकः। विना स्वर्णं स्वर्णकारोऽलंकारं कर्तुमक्षमः॥
स्वयमात्मा यथा नित्यस्तथा त्वं प्रकृतिः स्वयम्। सर्वशक्तिसमायुक्ता सर्वाधारा सनातनी॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। २१४—२१८)

उपकार, वाराणसीपुरीका दहन, महादेवजीको जृम्भणास्त्रसे बाँधना, बाणासुरकी भुजाओंको काटना, पारिजातका अपहरण, अन्यान्य कर्मोंका सम्पादन, प्रभासतीर्थकी यात्रामें जाना, वहाँ मुनिमण्डलीका दर्शन करना, व्रजके बन्धुजनोंसे वार्तालाप, पिताके यज्ञका सम्पादन, वहीं शुभ वेलामें पुनः तुम्हारे साथ मिलन तथा गोपियोंका साक्षात्कार आदि कार्य मुझे करने हैं। फिर तुम्हें अध्यात्मज्ञानका उपदेश देकर वास्तवमें तुम्हारे साथ नित्य मिलनका सौभाग्य प्राप्त करूँगा। इसके बाद मेरे साथ दिन-रात तुम्हारा संयोग बना रहेगा। कभी क्षणभरके लिये भी वियोग न होगा। इतना ही नहीं, वहाँसे तुम्हारे साथ मेरा पुनः व्रजमें आगमन होगा। प्राणवल्लभे! वियोगकालमें भी स्वप्नमें तुम्हारे साथ मेरा सदैव मिलन होता रहेगा। तुमसे बिछुड़कर द्वारकामें जानेपर मेरे और मेरे नारायणांशके द्वारा उपर्युक्त कार्य सम्पादित होंगे। फिर वृन्दावनमें तुम्हारे साथ मेरा निवास होगा। फिर माता-पिता तथा गोपियोंके शोकका पूर्णतः निवारण होगा। भूतलका भार उतारकर तुम्हारे और गोप-गोपियोंके साथ मेरा पुनः गोलोकमें आगमन होगा। राधे! मेरे अंशभूत जो नित्य परमात्मा नारायण हैं, वे लक्ष्मी और सरस्वतीके साथ वैकुण्ठलोकको पधारेंगे। धर्म और मेरे अंशोंका निवासस्थान श्वेतद्वीपमें होगा। देवताओं और देवियोंके अंश भी अक्षय धामको पधारेंगे। फिर इसी गोलोकमें तुम्हारे साथ मेरा निवास होगा। कान्ते! इस प्रकार समस्त भावी शुभाशुभका वर्णन मैंने कर दिया। मेरे द्वारा जो निश्चय हो चुका है, उसका कौन निवारण कर सकता है?

तदनन्तर श्रीहरिने देवताओं और देवियोंसे समयोचित बात कही—देवताओ! अब तुमलोग भावी कार्यकी सिद्धिके लिये अपने-अपने स्थानको जाओ। पार्वति! तुम अपने दोनों पुत्रों तथा स्वामीके साथ कैलासको जाओ। मैंने जो कार्य तुम्हारे जिम्मे लगाया है, वह सब यथासमय पूरा होगा। व्रजेश्वरि! राधे! गणेशजीको छोड़कर शेष छोटे-बड़े सभी देवताओं और देवियोंका कलाद्वारा भूतलपर अवतरण होगा।

तदनन्तर लक्ष्मी, सरस्वती तथा श्रीराधासहित पुरुषोत्तम श्रीहरिको भक्तिभावसे प्रणाम करके सब देवता आनन्दपूर्वक अपने-अपने स्थानको चले गये। श्रीहरिने जिस कार्यका आयोजन किया था, उसे सफल बनानेके लिये वे व्यग्रतापूर्वक भूतलपर पधारे; क्योंकि स्वामीका बताया हुआ स्थान देवताओंके लिये भी दुर्लभ था।

श्रीकृष्णने राधासे कहा—प्रिये! तुम पूर्वनिश्चित गोप-गोपियोंके समुदायके साथ वृषभानुके निवासगृहको पधारो। मैं मथुरापुरीमें वसुदेवके घर जाऊँगा। फिर कंसके भयका बहाना बनाकर गोकुलमें तुम्हारे समीप आ जाऊँगा।

लाल कमलके समान नेत्रोंवाली श्रीराधा श्रीकृष्णको प्रणाम करके प्रेमविच्छेदके भयसे कातर हो उनके सामने फूट-फूटकर रोने लगीं। वे ठहर-ठहरकर कभी कुछ दूरतक जातीं और जा-जाकर बार-बार लौट आती थीं। लौटकर पुनः श्रीहरिका मुँह निहारने लगती थीं। सती राधा शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी कान्तिसुधासे पूर्ण प्रभुके मुखचन्द्रकी सौन्दर्य-माधुरीका अपने निमेषरहित नेत्र-चकोरोंद्वारा पान करती थीं। तदनन्तर परमेश्वरी राधा प्रभुकी सात बार परिक्रमा करके सात बार प्रणाम करनेके अनन्तर पुनः श्रीहरिके सामने खड़ी हुईं। इतनेमें ही करोड़ों गोप-गोपियोंका समूह वहाँ आ पहुँचा। उन सबके साथ श्रीराधाने पुनः श्रीकृष्णको प्रणाम किया। तत्पश्चात् तैंतीस सखीस्वरूपा गोपकिशोरियों और गोपसमूहोंके साथ सुन्दरी राधा श्रीहरिको मस्तक झुकाकर भूतलके लिये प्रस्थित हुईं। वे सब-के-सब श्रीहरिके बताये हुए स्थान नन्द-गोकुलको गये। फिर राधा वृषभानुके घरमें और

गोपियाँ अन्यान्य गोपोंके घरोंमें गयीं। गोप-गोपियोंसहित श्रीराधाके भूतलपर चले जानेपर श्रीहरि भी शीघ्र ही वहाँ पहुँचनेके लिये उत्सुक हुए। गोलोकके गोपों और गोपियोंसे बात करके उन्हें अपने-अपने कामोंमें लगाकर मनकी गतिसे चलनेवाले जगदीश्वर श्रीहरि मथुरामें जा पहुँचे। पहले देवकी और वसुदेवके जो-जो पुत्र हुए, उन्हें कंसने तत्काल मार डाला। इस तरह उनके छः पुत्रोंको उसने कालके गालमें डाल दिया। देवकीका सातवाँ गर्भ शेषनागका अंश था, जिसे योगमायाने खींचकर गोकुलमें निवास करनेवाली रोहिणीजीके गर्भमें स्थापित कर दिया। फिर वह श्रीहरिकी आज्ञासे चली गयी।

(अध्याय ६)

श्रीकृष्णजन्म-वृत्तान्त—आकाशवाणीसे प्रभावित हो देवकीके वधके लिये उद्यत हुए कंसको वसुदेवजीका समझाना, कंसद्वारा उसके छः पुत्रोंका वध, सातवें गर्भका संकर्षण, आठवें गर्भमें भगवान्‌का आविर्भाव—देवताओंद्वारा स्तुति, भगवान्‌का दिव्य रूपमें प्राकट्य, वसुदेवद्वारा उनकी स्तुति, भगवान्‌का पूर्वजन्मके वरदानका प्रसङ्ग बताकर अपनेको व्रजमें ले जानेकी बात बता शिशुरूपमें प्रकट होना, वसुदेवजीका व्रजमें यशोदाके शयनगृहमें शिशुको सुलाकर नन्द-कन्याको ले आना, कंसका उसे मारनेको उद्यत होना, परंतु वसुदेवजी तथा आकाशवाणीके कथनपर विश्वास करके कन्याको दे देना, वसुदेव-देवकीका सानन्द घरको लौटना

नारदजीने पूछा—महाभाग! श्रीकृष्णका जन्म-वृत्तान्त महान् पुण्यप्रद और उत्तम है। वह जन्म, मृत्यु और जराका नाश करनेवाला है। अतः आप इस प्रसङ्गको कुछ विस्तारके साथ बतलाइये। वसुदेव किसके पुत्र थे और देवकी किसकी कन्या थीं? देवकी और वसुदेव पूर्वजन्ममें कौन थे? उनके विवाहका वृत्तान्त भी बताइये। अत्यन्त क्रूर-स्वभाववाले कंसने देवकीके छः पुत्रोंका वध क्यों किया? तथा श्रीहरिका जन्म किस दिन हुआ? यह सब मैं सुनना चाहता हूँ। आप कृपापूर्वक कहिये।

श्रीनारायणने कहा—महर्षि कश्यप ही वसुदेव हुए थे और देवमाता अदिति देवकीके रूपमें अवतीर्ण हुई थीं। पूर्वजन्मके पुण्यके फलरूपसे ही उन्होंने श्रीहरिको पुत्ररूपसे प्राप्त किया था। देवमीढ़द्वारा मारिषाके गर्भसे महान् पुरुष वसुदेवका जन्म हुआ। उनके जन्मकालमें अत्यन्त हर्षसे भरे हुए देवसमुदायने आनक और दुन्दुभि नामक बाजे बजाये थे। इसलिये श्रीहरिके जनक वसुदेवको प्राचीन संत-महात्मा 'आनकदुन्दुभि' कहते हैं। यदुकुलमें आहुकके पुत्र श्रीमान् देवक हुए थे, जो ज्ञानके समुद्र कहे जाते हैं। उन्हींकी पुत्री देवकी थीं। यदुकुलके आचार्य गर्गने वसुदेवके साथ देवकीका विधिपूर्वक यथोचित विवाहसम्बन्ध कराया था। देवकने विवाहके लिये बहुत सामान एकत्र किये थे। उन्होंने उत्तम लग्नमें अपनी पुत्री देवकीको वसुदेवके हाथमें समर्पण कर दिया। नारद! देवकने दहेजमें सहस्रों घोड़े,

सहस्रों स्वर्णपात्र, वस्त्राभूषणोंसे विभूषित सैकड़ों सुन्दरी दासियाँ, नाना प्रकारके द्रव्य, भाँति-भाँतिके रत्न, उत्तम मणि, हीरे तथा रत्नमय पात्र दिये थे। देवककी कन्या श्रेष्ठ रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित, सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान कान्तिमती, त्रिभुवनमोहिनी, धन्य, मान्य तथा श्रेष्ठ युवती थी। रूप और गुणकी निधि थी। उसके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी रहती थी। उसे रथपर बिठाकर वसुदेव जब प्रस्थान करने लगे, तब बहिनके विवाहमें हर्षसे भरा हुआ कंस भी उसके साथ चला। वह तत्काल देवकीके रथके निकट आ गया। इसी समय कंसको सम्बोधित करके आकाशवाणी हुई—'राजेन्द्र! क्यों हर्षसे फूल उठे हो? यह सच्ची बात सुनो। देवकीका आठवाँ गर्भ तुम्हारी मृत्युका कारण होगा।'

यह सुनकर महाबली कंसने हाथमें तलवार ले ली। दैवी वाणीपर विश्वास करके भयभीत और कुपित हो वह महापापी नरेश देवकीका वध करनेके लिये उद्यत हो गया। वसुदेवजी बड़े भारी पण्डित, नीतिज्ञ तथा नीतिशास्त्रके ज्ञानमें निपुण थे। उन्होंने कंसको देवकीका वध करनेके लिये उद्यत देख उसे समझाना आरम्भ किया।

वसुदेवजी बोले—राजन्! जान पड़ता है तुम राजनीति नहीं जानते हो। मेरी बात सुनो। यह तुम्हारे लिये हितकर और यशस्कर है। सा[illegible] ही कलङ्कको दूर करनेवाली, शास्त्रोंद्वारा प्रतिपादित तथा समयके अनुरूप भी है। भूपाल! यदि इसके आठवें गर्भसे ही तुम्हारी मृत्यु होनेवाली है तो इस बेचारीका वध करके क्यों अपयश लेते और अपने लिये नरकका मार्ग प्रशस्त करते हो? जीवमात्रके वधसे ही न्यूनाधिक पाप होता है; परंतु ब्रह्महत्या बहुत बड़ा पातक है। स्त्रीका वध करनेसे मनुष्यको ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। विशेषतः, यह तुम्हारी बहिन है। तुमसे पालित और पोषित होने योग्य है तथा तुम्हारी शरणमें आयी है। नरेश्वर! इसका वध करनेपर तुम्हें सौ स्त्रियोंकी हत्याका पाप लगेगा। मनुष्य जप, तप, दान, पूजा, तीर्थदर्शन, ब्राह्मणभोजन और होमयज्ञ आदिका अनुष्ठान स्वर्ग (दिव्य सुख)-की प्राप्तिके लिये ही करता है। साधुपुरुष समस्त संसारको पानीके बुलबुले और स्वप्नकी भाँति निस्सार एवं मिथ्या मानते और भयदायक समझते हैं। इसीलिये वे सदैव यत्नपूर्वक धर्मका अनुष्ठान करते हैं। यदुकुल-कमल-दिवाकर धर्मिष्ठ नरेश्वर! अपनी इस बहिनको छोड़ दो; मारो मत। तुम्हारी राजसभामें कई प्रकारके विद्वान् हैं। तुम उन सबसे पूछो कि इसके विषयमें क्या करना चाहिये? भाई! इसके आठवें गर्भमें जो संतान होगी, उसे मैं तुम्हारे हाथमें दे दूँगा। उससे मेरा क्या प्रयोजन है? अथवा ज्ञानिशिरोमणे! जितनी भी संतानें होंगी, उन सबको मैं तुम्हारे हवाले कर दूँगा; क्योंकि उनमेंसे एक भी मुझे तुमसे अधिक प्रिय नहीं है। राजेन्द्र! बहिनको जीवित छोड़ दो। यह तुम्हें बेटीके समान प्यारी है। तुमने इस छोटी बहिनको सदा मीठे अन्न-पान देकर पाल-पोसकर बड़ा किया है।

वसुदेवजीकी यह बात सुनकर राजा कंसने बहिनको छोड़ दिया। वसुदेवजी प्यारी पत्नीको साथ लेकर अपने घर गये। नारद! देवकीके गर्भसे क्रमशः जो छः संतानें हुईं, उन्हें वसुदेवजीने कंसको दे दिया; क्योंकि वे सत्यसे बँधे हुए थे। कंसने क्रमशः उन सबको मार डाला। देवकीके सातवें गर्भके आनेपर कंसने भयके कारण उसकी रक्षाकी ओर विशेष ध्यान दिया। परंतु योगमायाने उस गर्भको खींचकर रोहिणीके पेटमें रख दिया। रक्षकोंने राजाको यह सूचना दी कि देवकीका सातवाँ गर्भ गिर गया। उसी गर्भसे भगवान् अनन्त प्रकट हुए, जो 'संकर्षण' नामसे प्रसिद्ध हुए।

तदनन्तर देवकीका आठवाँ गर्भ प्रकट हुआ जो वायुसे भरा हुआ था। नवाँ मास व्यतीत होनेके पश्चात् दसवाँ मास उपस्थित होनेपर सर्वदर्शी भगवान्‌ने उस गर्भपर दृष्टिपात किया। समस्त नारियोंमें श्रेष्ठ देवी देवकी स्वयं तो रूपवती थीं ही, भगवान्‌के दृष्टिपात करनेपर तत्काल ही उनका सौन्दर्य चौगुना बढ़ गया। कंसने देखा, देवकीके मुख और नेत्र खिल उठे हैं। वह तेजसे प्रज्वलित हो योगमायाके समान दसों दिशाओंको प्रकाशित कर रही है; मूर्तिमान् ज्योतिःपुञ्ज-सी दिखायी देती है। उसे देख असुरराज कंसको बड़ा विस्मय हुआ। उसने मन-ही-मन कहा—'इस गर्भसे जो संतान होगी, वही मेरी मृत्युका कारण है'—ऐसा कहकर कंस यत्नपूर्वक देवकी और वसुदेवकी रखवाली करने लगा। उसने सात द्वारवाले भवनमें उन दोनोंको रख छोड़ा था। दसवें मासके पूर्ण होनेपर जब वह गर्भ वायुसे पूर्ण हो गया। तब सबसे निर्लिप्त रहनेवाले साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णने देवकीके हृदय-कमलमें निवास किया। उस समय महामनस्वी वसुदेवने देवकीपर दृष्टिपात करके समझ लिया कि प्रसवकाल संनिकट आ गया है। फिर तो वे भगवान् श्रीहरिका स्मरण करने लगे। रत्नमय प्रदीपसे युक्त उस परम मनोहर भवनमें उन्होंने तलवार, लोहा, जल और अग्निको लाकर रखा। मन्त्रज्ञ मनुष्य तथा भाई-बन्धुओंकी स्त्रियोंको भी बुला लिया। भयसे व्याकुल वसुदेवने विद्वान् ब्राह्मण तथा बन्धुओंको भी सादर बुला भेजा। इसी समय जब रातके दो पहर बीत गये, आकाशमें बादल घिर आये, बिजलियाँ चमकने लगीं, अनुकूल वायु चलने लगी तथा रक्षक निद्रित हो शय्यापर इस तरह निश्चेष्ट सो गये, मानो मरकर अचेत हो गये हों; तब धर्म, ब्रह्मा तथा शिव आदि देवेश्वरगण वहाँ

आये तथा गर्भस्थ परमेश्वरकी स्तुति करने लगे।

देवता बोले—भगवन्! आप समस्त संसारकी उत्पत्तिके स्थान हैं, किंतु आपकी उत्पत्तिका स्थान कोई नहीं है। आप अनन्त, अविनाशी, निष्पाप, सगुण, निर्गुण तथा महान् ज्योतिःस्वरूप हैं। आप निराकार होते हुए भी भक्तोंके अनुरोधसे साकार बन जाते हैं। आपपर किसीका अंकुश या नियन्त्रण नहीं है। आप सर्वथा स्वच्छन्द, सर्वेश्वर, सर्वरूप तथा समस्त गुणोंके आश्रय हैं। आप संतोंको सुख देनेवाले, दुष्टोंको दुःख प्रदान करनेवाले, दुर्गमस्वरूप एवं दुर्जनोंके नाशक हैं। आपतक

तर्ककी पहुँच नहीं होती है। आप सबके आधार हैं। शङ्का और उपद्रवसे शून्य हैं। उपाधिशून्य, निर्लिप्त और निरीह हैं। मृत्युकी भी मृत्यु हैं। अपनी आत्मामें रमण करनेवाले पूर्णकाम, निर्दोष और नित्य हैं। आप सौभाग्यशाली और दुर्भाग्यरहित हैं तथा प्रवचनकुशल हैं। आपको रिझाना या लाँघना कठिन ही नहीं, असम्भव है। आपके निःश्वाससे वेदोंका प्राकट्य हुआ है; इसलिये आप उनके प्रादुर्भावमें हेतु हैं। सम्पूर्ण वेद आपके स्वरूप हैं। छन्द आदि वेदाङ्ग भी आपसे भिन्न नहीं हैं। आप वेदवेत्ता और सर्वव्यापी हैं।

ऐसा कहकर देवताओंने बारंबार उनको प्रणाम किया। उन सबके नेत्रोंमें हर्षके आँसू छलक रहे थे। उन सबने फूलोंकी वर्षा की। जो पुरुष प्रातःकाल उठकर (मूल श्लोकमें कहे गये) बयालीस नामोंका पाठ करता है, वह श्रीहरिकी दृढ़भक्ति, दास्यभाव तथा मनोवाञ्छित फल पाता है*।

भगवान् नारायण कहते हैं—इस प्रकार स्तुति सुनाकर देवतालोग अपने-अपने धामको चले गये। फिर जलकी वृष्टि होने लगी। सारी मथुरा नगरी निश्चेष्ट होकर सो रही थी। मुने! वह रात्रि घोर अन्धकारसे व्याप्त थी। जब रातके सात मुहूर्त निकल गये और आठवाँ उपस्थित हुआ, तब आधी रातके समय सर्वोत्कृष्ट शुभ लग्न आया। वह वेदोंसे अतिरिक्त तथा दूसरोंके लिये दुर्ज्ञेय लग्न था। उस लग्नपर केवल शुभ ग्रहोंकी दृष्टि थी। अशुभ ग्रहोंकी नहीं थी। रोहिणी नक्षत्र और अष्टमी तिथिके संयोगसे जयन्ती नामक योग सम्पन्न हो गया था। मुने! जब अर्धचन्द्रमाका उदय हुआ, उस समय लग्नको ओर देख-देखकर भयभीत हुए सूर्य आदि सभी ग्रह आकाशमें अपनी गतिके क्रमको लाँघकर मीन लग्नमें जा पहुँचे। शुभ और अशुभ सभी वहाँ एकत्र हो गये। विधाताकी आज्ञासे एक मुहूर्तके लिये वे सभी ग्रह प्रसन्नतापूर्वक ग्यारहवें स्थानमें जाकर वहाँ सानन्द स्थित हो गये। मेघ वर्षा करने लगे। ठंडी-ठंडी हवा चलने लगी। पृथ्वी अत्यन्त प्रसन्न थी। दसों दिशाएँ स्वच्छ हो गयी थीं। ऋषि, मनु, यक्ष, गन्धर्व, किंनर, देवता और देवियाँ सभी प्रसन्न थे। अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। गन्धर्वराज और विद्याधरियाँ गीत गाने लगीं। नदियाँ सुखपूर्वक बहने लगीं। अग्निहोत्रकी अग्नियाँ प्रसन्नतापूर्वक प्रज्वलित हो उठीं। स्वर्गमें दुन्दुभियों और आनकोंकी मनोहर ध्वनि होने लगी। खिले हुए पारिजातके पुष्पोंकी झड़ी लग गयी। पृथ्वी नारीका रूप धारण करके स्वयं सूतिकागारमें गयी। वहाँ जय-जयकार, शङ्खनाद तथा हरिकीर्तनका शब्द गूँज रहा था। इसी समय सती देवकी वहाँ गिर पड़ीं। उनके पेटसे वायु निकल गयी और वहीं भगवान् श्रीकृष्ण दिव्यरूप धारण करके देवकीके हृदयकमलके कोशसे प्रकट हो गये। उनका शरीर अत्यन्त कमनीय और परम मनोहर था। दो भुजाएँ थीं। हाथमें मुरली शोभा पा रही थी। कानोंमें

---

* देवा ऊचुः—

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च। ज्योतिःस्वरूपो ह्यनघः सगुणो निर्गुणो महान्॥
भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरंकुशः। स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः॥
सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जननाशक एव च। निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः॥
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः। आत्मारामः पूर्णकामो निर्दोषो नित्य एव च॥
सुभगो दुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः। वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद् विभुः॥
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः। हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च॥
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम्॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७। ५५—६१)

मकराकृति कुण्डल झलमला रहे थे। मुख मन्द

हास्यकी छटासे प्रसन्न जान पड़ता था। वे भक्तोंपर कृपा करनेके लिये कातर-से दिखायी पड़ते थे। श्रेष्ठ मणि-रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित आभूषण उनके शरीरकी शोभा बढ़ा रहे थे। पीताम्बरसे सुशोभित श्रीविग्रहकी कान्ति नूतन जलधरके समान श्याम थी। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमके द्रवसे निर्मित अङ्गराग सब अङ्गोंमें लगा हुआ था। उनका मुखचन्द्र शरत्पूर्णिमाके शशधरकी शुभ्र ज्योत्स्नाको तिरस्कृत कर रहा था। बिम्बफलके सदृश लाल अधरके कारण उसकी मनोहरता और बढ़ गयी थी। माथेपर मोरपंखके मुकुट तथा उत्तम रत्नमय किरीटसे श्रीहरिकी दिव्य ज्योति और भी जाज्वल्यमान हो उठी थी। टेढ़ी कमर, त्रिभङ्गी झाँकी, वनमालाका शृङ्गार, वक्षमें श्रीवत्सकी स्वर्णमयी रेखा और उसपर मनोहर कौस्तुभमणिकी भव्य प्रभा अद्भुत शोभा दे रही थी। उनकी किशोर अवस्था थी। वे शान्तस्वरूप भगवान् श्रीहरि ब्रह्मा और महादेवजीके भी परम कान्त (प्राणवल्लभ) हैं। मुने! वसुदेव और देवकीने उन्हें अपने समक्ष देखा। उन्हें बड़ा विस्मय हुआ। वसुदेवजीने अपनी पत्नी देवकीके साथ अश्रुपूर्णनयन, पुलकितशरीर तथा नतमस्तक हो हाथ जोड़ भक्तिभावसे उनकी स्तुति की।

वसुदेवजी बोले—भगवन्! आप श्रीमान् (सहज शोभासे सम्पन्न), इन्द्रियातीत, अविनाशी, निर्गुण, सर्वव्यापी, ध्यानसे भी किसीके वशमें न होनेवाले, सबके ईश्वर और परमात्मा हैं। स्वेच्छामय, सर्वस्वरूप, स्वच्छन्द रूपधारी, अत्यन्त निर्लिप्त, परब्रह्म तथा सनातन बीजरूप हैं। आप स्थूलसे भी अत्यन्त स्थूल, सर्वत्र व्याप्त, अतिशय सूक्ष्म, दृष्टिपथमें न आनेवाले, समस्त शरीरोंमें साक्षीरूपसे स्थित तथा अदृश्य हैं। साकार, निराकार; सगुण, गुणोंके समूह; प्रकृति, प्रकृतिके शासक तथा प्राकृत पदार्थोंमें व्याप्त होते हुए भी प्रकृतिसे परे विद्यमान हैं। विभो! आप सर्वेश्वर, सर्वरूप, सर्वान्तक, अविनाशी, सर्वाधार, निराधार और निर्व्यूह (तर्कके अविषय) हैं; मैं आपकी क्या स्तुति करूँ? भगवान् अनन्त (सहस्रों जिह्वावाले शेषनाग) भी आपका स्तवन करनेमें असमर्थ हैं। सरस्वतीदेवीमें भी वह शक्ति नहीं कि आपकी स्तुति कर सकें। पञ्चमुख महादेव और छः मुखवाले स्कन्द भी जिनकी स्तुति नहीं कर सकते, वेदोंको प्रकट करनेवाले चतुर्मुख ब्रह्मा भी जिनके स्तवनमें सर्वदा अक्षम हैं तथा योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु गणेश भी जिनकी स्तुतिमें असमर्थ हैं; उन आपका स्तवन ऋषि, देवता, मुनीन्द्र, मनु और मानव कैसे कर सकते हैं? उनकी दृष्टिमें तो आप कभी आये ही नहीं हैं। जब श्रुतियाँ आपकी स्तुति नहीं कर सकतीं तो विद्वान् लोग क्या कर सकते हैं? मेरी आपसे इतनी ही प्रार्थना है कि आप ऐसे दिव्य शरीरको त्यागकर बालकका रूप धारण कर लें।

जो मनुष्य वसुदेवजीके द्वारा किये गये इस स्तोत्रका तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह श्रीकृष्णचरणारविन्दोंकी दास्य-भक्ति प्राप्त कर

लेता है। उसे विशिष्ट एवं हरिभक्त पुत्रकी प्राप्ति होती है। वह सारे संकटोंसे शीघ्र पार हो जाता और शत्रुके भयसे छूट जाता है*।

भगवान् नारायण कहते हैं—वसुदेवजीकी बात सुनकर भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर रहनेवाले प्रसन्नवदन श्रीहरिने स्वयं इस प्रकार कहा।

श्रीकृष्ण बोले—मैं तपस्याओंके फलसे ही इस समय तुम्हारा पुत्र हुआ हूँ। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं। पूर्वकालमें तुम तपस्वीजनोंमें श्रेष्ठ प्रजापति कश्यप थे और ये सुतपा माता अदिति तुम्हारे साथ थीं। तुमने अपनी इन तपस्विनी पत्नी अदितिके साथ तपस्याद्वारा मेरी आराधना की थी। वहाँ मुझे देखकर तुमने मेरे समान पुत्र होनेका वर माँगा और मैंने भी तुम्हें यह वर दिया कि मेरे समान पुत्रकी प्राप्ति होगी। तात! तुम्हें वर देकर मैंने मन-ही-मन विचार किया। फिर यह बात ध्यानमें आयी कि मेरे समान तो कोई त्रिभुवनमें है ही नहीं। इसलिये मैं स्वयं ही तुम्हारे पुत्रभावको प्राप्त हुआ। आप स्वयं कश्यपजी हैं और तपस्याके प्रभावसे इस समय मेरे पिता वसुदेव हुए हैं। ये उत्तम तपस्यावाली पतिव्रता देवमाता अदिति ही इस समय अपने अंशसे मेरी माता देवकीके रूपमें प्रकट हुई हैं। आप और माता अदितिसे ही मैं अंशतः वामनरूपमें अवतीर्ण हुआ था; किंतु इस समय आपके तपके फलसे मैं परिपूर्णतम परमात्मा ही पुत्ररूपमें प्रकट हुआ हूँ। महामते! तुम पुत्रभावसे या ब्रह्मभावसे जब मुझे पा गये हो तो अब निश्चय ही जीवन्मुक्त हो जाओगे। तात! अब तुम मुझे लेकर शीघ्र ही व्रजमें चलो और यशोदाके घरमें मुझे रखकर वहाँ उत्पन्न हुई मायाको ले आओ तथा यहाँ अपने पास उसे रख लो। ऐसा कहकर श्रीहरि वहाँ तुरंत शिशुरूप हो गये।

श्यामल पुत्रको पृथ्वीपर नग्नभावसे सोया देख विष्णुकी मायासे मोहित हो वसुदेवजी सूतिकागारमें अपनी स्त्रीसे तन्द्रामें बोले—'प्रिये! यह कैसा तेजःपुञ्ज है?' ऐसा कह वसुदेवने पत्नीके साथ कुछ विचार करके बालकको गोदमें उठा लिया और उसे लेकर वे नन्द-गोकुलमें जा पहुँचे। वहाँ नन्दगाँवमें यशोदा नींदसे अचेत हो रही थीं। उन्होंने शय्यापर उन्हें निद्रित अवस्थामें देखा। साथ ही नन्दजी भी वहाँ नींदमें बेसुध हो रहे थे। वहाँ घरमें जो कोई भी प्राणी थे, सब सो गये थे। वसुदेवजीने देखा, तपाये हुए सुवर्णके समान गौर कान्तिवाली एक नग्न बालिका पड़ी-पड़ी घरकी छतकी ओर दृष्टिपात

---

* श्रीमन्त्वमिन्द्रियातीतमक्षरं निर्गुणं विभुम्। ध्यानासाध्यं च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम्॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम्। निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम्॥
स्थूलात् स्थूलतरं व्याप्तमतिसूक्ष्ममदर्शनम्। स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम्॥
शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम्। प्रकृतिं प्रकृतीशं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वान्तकरमव्ययम्। सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभो॥
अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती। यं स्तोतुमसमर्थश्च पञ्चवक्त्रः षडाननः॥
चतुर्मुखो वेदकर्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा। गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥
ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः। स्वप्ने तेषामदृश्यं च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते॥
श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः। विहायैवं शरीरं च बालो भवितुमर्हसि॥
वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। भक्तिदास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे॥
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम्। संकटं निस्तरेत् तूर्णं शत्रुभीत्या प्रमुच्यते॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७। ८०—९०)

कर रही है। उसके प्रसन्न मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। उसे देखकर वसुदेवजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे तुरंत ही पुत्रको वहाँ सुलाकर कन्याको गोदमें ले डरते-डरते मथुराकी ओर गये

और अपनी पत्नीके सूतिकागारमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने उस महामायास्वरूपिणी बालिकाको सुला दिया। बालिका जोर-जोरसे रोने लगी। उसे देखकर देवकी थर्रा उठी। उस बालिकाने अपने रोनेकी आवाजसे ही रक्षकोंको जगा दिया। रक्षक शीघ्र उठकर खड़े हो गये और उस बालिकाको छीनकर कंसके निकट जा पहुँचे। देवकी और वसुदेव भी शोकसे विह्वल हो पीछे-पीछे गये। महामुने! बालिकाको देखकर कंसको अधिक प्रसन्नता नहीं हुई। उस रोती हुई बच्चीपर भी उसे दया नहीं आयी। वह क्रूरकर्मा असुर उस बालिकाको लेकर पत्थरपर दे मारनेके लिये आगे बढ़ा। उस समय वसुदेव और देवकीने बड़े आदरके साथ उससे कहा—'नृपश्रेष्ठ कंस! तुम नीतिशास्त्रमें निपुण विद्वान् हो; अतः हमारी सच्ची, नीतियुक्त तथा मनोहर बात सुनो। भैया! तुमने हमारे भाई-बन्धु होकर भी हम दोनोंके छः पुत्रोंका वध कर डाला, फिर भी तुम्हें दया नहीं आती! अब इस आठवें गर्भमें यह अबला बालिका प्राप्त हुई है। हमारी इस बच्चीको मारकर तुम्हें भूतलपर कौन-सा महान् ऐश्वर्य प्राप्त हो जायगा? क्या एक अबला युद्धके मुहानेपर तुम्हारी राज्यलक्ष्मीका हनन करनेमें समर्थ हो सकती है?' ऐसा कहकर वसुदेव और देवकी दोनों दुरात्मा कंसके सामने वहाँ फूट-फूटकर रोने लगे। कंस बड़ा ही निर्दय था। उसने उन दोनोंकी बातें सुनकर इस प्रकार उत्तर दिया।

कंस बोला—बहिन! मेरी बात सुनो। मैं तुम्हें समझाता हूँ। विधाता दैववश एक तिनकेके द्वारा पर्वतको धराशायी करनेमें समर्थ हैं। एक कीड़ेके द्वारा सिंह और व्याघ्रको तथा एक मच्छरके द्वारा विशालकाय हाथीको नष्ट कर सकते हैं। शिशुके द्वारा महान् वीरका, क्षुद्र जन्तुओंद्वारा विशालकाय प्राणीका, चूहेके द्वारा बिल्लीका और मेढकके द्वारा सर्पका वध करा सकते हैं। इस प्रकार विधाता जन्यके द्वारा जनकका, भक्ष्यके द्वारा भक्षकका, अग्निके द्वारा जलका और सूखे तिनकेके द्वारा अग्निका नाश करनेमें समर्थ हैं। एकमात्र द्विज जह्नुने सात

समुद्रोंको पी लिया था; अत: तीनों लोकोंमें विधाताकी विचित्र गतिको समझ पाना अत्यन्त कठिन है। दैवयोगसे यह बालिका ही मेरा नाश करनेमें समर्थ हो जायगी, अत: मैं बालिकाका भी वध कर डालूँगा। इस विषयमें विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

ऐसा कहकर कंस उस बालिकाको मारना ही चाहता था कि वसुदेवजीने पुनः उससे कहा—'राजन्! तुमने अबतक व्यर्थ ही हिंसा की है। कृपानिधे! अब इस बालिकाको मुझे दे दो।' महामुने! उनकी बात सुनकर विचारज्ञ कंस संतुष्ट हो गया। इसी समय उसे बोध कराती हुई आकाशवाणी प्रकट हुई। 'ओ मूढ़ कंस! तू विधाताकी गतिको न जानकर किसे मारने जा रहा है? तेरा वध करनेवाला बालक कहीं उत्पन्न हो गया है। समय आनेपर प्रकट होगा।' यह देववाणी सुनकर राजा कंसने बालिकाको त्याग दिया। वसुदेव और देवकी उसे पाकर बड़े प्रसन्न हुए। वे उस बालिकाको छातीसे लगाये घरको लौट आये। मरी हुई कन्या मानो पुनः जी गयी हो, इस प्रकार उसे पाकर वसुदेवजीने ब्राह्मणोंको बहुत धन दिया। विप्रवर! यह कन्या परमात्मा श्रीकृष्णकी बड़ी बहिन हुई। पार्वतीके अंशसे उसका आविर्भाव हुआ था। लोकमें यह 'एकानंशा' नामसे विख्यात हुई। द्वारकामें रुक्मिणीके विवाहके अवसरपर वसुदेवजीने उस कन्याको भगवान् शंकरके अंशावतार महर्षि दुर्वासाके हाथमें भक्तिपूर्वक दे दिया था। मुने! इस प्रकार श्रीकृष्ण-जन्मके विषयमें सारी बातें बतायी गयीं। इसका बारंबार कीर्तन जन्म, मृत्यु और जराके कष्टको नष्ट करनेवाला, सुखदायक और पुण्यदायक है*।

(अध्याय ७)

जन्माष्टमी-व्रतके पूजन, उपवास तथा महत्त्व आदिका निरूपण

नारदजी बोले—भगवन्! जन्माष्टमी-व्रत समस्त व्रतोंमें उत्तम कहा गया है। अत: आप उसका वर्णन कीजिये। जिस जन्माष्टमी-व्रतमें जयन्ती नामक योग प्राप्त होता है, उसका फल क्या है? तथा सामान्यतः जन्माष्टमी-व्रतका अनुष्ठान करनेसे किस फलकी प्राप्ति होती है? इस समय इन्हीं बातोंपर प्रकाश डालिये। महामुने! यदि व्रत न किया जाय अथवा व्रतके दिन भोजन कर लिया जाय तो क्या दोष होता है? जयन्ती अथवा सामान्य जन्माष्टमीमें उपवास करनेसे कौन-सा अभीष्ट फल प्राप्त होता है? प्रभो! उक्त व्रतमें पूजनका विधान क्या है? कैसे संयम करना चाहिये? उपवास अथवा पारणामें पूजन एवं संयमका नियम क्या है? इस विषयमें भलीभाँति विचार करके कहिये।

भगवान् नारायणने कहा—मुने! सप्तमी तिथिको तथा पारणाके दिन व्रती पुरुषको हविष्यान्न भोजन करके संयमपूर्वक रहना चाहिये। सप्तमीकी रात्रि व्यतीत होनेपर अरुणोदयकी वेलामें उठकर व्रती पुरुष प्रातःकालिक कृत्य पूर्ण करनेके अनन्तर स्नानपूर्वक संकल्प करे। ब्रह्मन्! उस संकल्पमें यह उद्देश्य रखना चाहिये कि आज मैं श्रीकृष्णप्रीतिके लिये व्रत एवं उपवास करूँगा। मन्वादि तिथि प्राप्त होनेपर स्नान और पूजन करनेसे जो फल मिलता

* श्रीमद्भागवतके वर्णनके साथ इसका मेल नहीं खाता। उसमें चतुर्भुजरूपसे भगवान् प्रकट होते हैं। कन्याको कंस पृथ्वीपर पटक देता है और वह आकाशमें जाकर कंसको सावधान करती है। कल्पभेदसे दोनों ही वर्णन सत्य हो सकते हैं।

है, भाद्रपदमासकी अष्टमी तिथिको स्नान और पूजन करनेसे वही फल कोटिगुना अधिक होता है। उस तिथिको जो पितरोंके लिये जलमात्र अर्पण करता है, वह मानो लगातार सौ वर्षोंतक पितरोंकी तृप्तिके लिये गयाश्राद्धका सम्पादन कर लेता है; इसमें संशय नहीं है।

स्नान और नित्यकर्म करके सूतिकागृहका निर्माण करे। वहाँ लोहेका खड्ग, प्रज्वलित अग्नि तथा रक्षकोंका समूह प्रस्तुत करे। अन्यान्य अनेक प्रकारकी आवश्यक सामग्री तथा नाल काटनेके लिये कैंची लाकर रखे। विद्वान् पुरुष यत्नपूर्वक एक ऐसी स्त्रीको भी उपस्थित करे, जो धायका काम करे। सुन्दर षोडशोपचार पूजनकी सामग्री, आठ प्रकारके फल, मिठाइयाँ और द्रव्य—इन सबका संग्रह कर ले। नारदजी! जायफल, कङ्कोल, अनार, श्रीफल, नारियल, नीबू और मनोहर कूष्माण्ड आदि फल संग्रहणीय हैं। आसन, वसन, पाद्य, मधुपर्क, अर्घ्य, आचमनीय, स्नानीय, शय्या, गन्ध, पुष्प, नैवेद्य, ताम्बूल, अनुलेपन, धूप, दीप और आभूषण—ये सोलह उपचार हैं।

पैर धोकर स्नानके पश्चात् दो धुले हुए वस्त्र धारण करके आसनपर बैठे और आचमन करके स्वस्तिवाचनपूर्वक कलश-स्थापन करे। कलशके समीप पाँच देवताओंकी पूजा करे। कलशपर परमेश्वर श्रीकृष्णका आवाहन करके वसुदेव-देवकी, नन्द-यशोदा, बलदेव-रोहिणी, षष्ठीदेवी, पृथ्वी, ग्रहनक्षत्र—रोहिणी, अष्टमी तिथिकी अधिष्ठात्री देवी, स्थानदेवता, अश्वत्थामा, बलि, हनुमान्, विभीषण, कृपाचार्य, परशुराम, व्यासदेव तथा मार्कण्डेय मुनि—इन सबका आवाहन करके श्रीहरिका ध्यान करे। मस्तकपर फूल चढ़ाकर विद्वान् पुरुष फिर ध्यान करे। नारद! मैं सामवेदोक्त ध्यान बता रहा हूँ, सुनो। इसे ब्रह्माजीने सबसे पहले महात्मा सनत्कुमारको बताया था।

ध्यान

मैं श्याम-मेघके समान अभिराम आभावाले साक्षिस्वरूप बालमुकुन्दका भजन करता हूँ, जो अत्यन्त सुन्दर हैं तथा जिनके मुखारविन्दपर मन्द-मुस्कानकी छटा छा रही है। ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और धर्म—ये कई-कई दिनोंतक उन परमेश्वरकी स्तुति करते रहते हैं। बड़े-बड़े मुनीश्वर भी ध्यानके द्वारा उन्हें अपने वशमें नहीं कर पाते हैं। मनु, मनुष्यगण तथा सिद्धोंके समुदाय भी उन्हें रिझा नहीं पाते हैं। योगीश्वरोंके चिन्तनमें भी उनका आना सम्भव नहीं हो पाता है। वे सभी बातोंमें सबसे बढ़कर हैं; उनकी कहीं तुलना नहीं है।

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोच्चारणपूर्वक पुष्प चढ़ावे और समस्त उपचारोंको क्रमशः अर्पित करके व्रती पुरुष व्रतका पालन करे। अब प्रत्येक उपचारका क्रमशः मन्त्र सुनो।

आसन

हरे! उत्तम रत्नों एवं मणियोंद्वारा निर्मित, सम्पूर्ण शोभासे सम्पन्न तथा विचित्र बेलबूटोंसे चित्रित यह सुन्दर आसन सेवामें अर्पित है। इसे ग्रहण कीजिये।

वसन

श्रीकृष्ण! यह विश्वकर्माद्वारा निर्मित वस्त्र अग्निमें तपाकर शुद्ध किया गया है। इसमें तपे हुए सुवर्णके तार जड़े गये हैं। आप इसे स्वीकार करें।

पाद्य

गोविन्द! आपके चरणोंको पखारनेके लिये सोनेके पात्रमें रखा हुआ यह जल परम पवित्र और निर्मल है। इसमें सुन्दर पुष्प डाले गये हैं। आप इस पाद्यको ग्रहण करें।

मधुपर्क या पञ्चामृत

भगवन्! मधु, घी, दही, दूध और शक्कर—इन सबको मिलाकर तैयार किया गया मधुपर्क या

पञ्चामृत सुवर्णके पात्रमें रखा गया है। इसे आपकी सेवामें निवेदन करता हूँ। आप स्नानके लिये इसका उपयोग करें।

अर्घ्य

हरे! दूर्वा, अक्षत, श्वेत पुष्प और स्वच्छ जलसे युक्त यह अर्घ्य सेवामें समर्पित है। इसमें चन्दन, अगुरु और कस्तूरीका भी मेल है। आप इसे ग्रहण करें।

आचमनीय

परमेश्वर! सुगन्धित वस्तुसे वासित यह शुद्ध, सुस्वादु एवं स्वच्छ जल आचमनके योग्य है। आप इसे ग्रहण करें।

स्नानीय

श्रीकृष्ण! सुगन्धित द्रव्यसे युक्त एवं सुवासित विष्णुतैल तथा आँवलेका चूर्ण स्नानोपयोगी द्रव्यके रूपमें प्रस्तुत है। इसे स्वीकार करें।

शय्या

श्रीहरे! उत्तम रत्न एवं मणियोंके सारभागसे रचित, अत्यन्त मनोहर तथा सूक्ष्म वस्त्रसे आच्छादित यह शय्या सेवामें समर्पित है। इसे ग्रहण कीजिये।

गन्ध

गोविन्द! विभिन्न वृक्षोंके चूर्णसे युक्त, नाना प्रकारके वृक्षोंकी जड़ोंके द्रवसे पूर्ण तथा कस्तूरीरससे मिश्रित यह गन्ध सेवामें समर्पित है। इसे स्वीकार करें।

पुष्प

परमेश्वर! वृक्षोंके सुगन्धित तथा सम्पूर्ण देवताओंको अत्यन्त प्रिय लगनेवाले पुष्प आपकी सेवामें अर्पित हैं। इन्हें ग्रहण कीजिये।

नैवेद्य

गोविन्द! शर्करा, स्वस्तिक नामवाली मिठाई तथा अन्य मीठे पदार्थोंसे युक्त यह नैवेद्य सेवामें समर्पित है। यह सुन्दर पके फलोंसे संयुक्त है। आप इसे स्वीकार करें। हरे! शक्कर मिलाया हुआ ठंढा और स्वादिष्ट दूध, सुन्दर पकवान, लड्डू, मोदक, घी मिलायी हुई खीर, गुड़, मधु, ताजा दही और तक्र—यह सब सामग्री नैवेद्यके रूपमें आपके सामने प्रस्तुत है। आप इसे आरोगें।

ताम्बूल

परमेश्वर! यह भोगोंका सारभूत ताम्बूल कर्पूर आदिसे युक्त है। मैंने भक्तिभावसे मुखशुद्धिके लिये निवेदन किया है। आप कृपापूर्वक इसे ग्रहण करें।

अनुलेपन

परमेश्वर! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमके द्रवसे संयुक्त सुन्दर अबीर-चूर्ण अनुलेपनके रूपमें प्रस्तुत है। कृपया ग्रहण कीजिये।

धूप

हरे! विभिन्न वृक्षोंके उत्कृष्ट गोंद तथा अन्य सुगन्धित पदार्थोंके संयोगसे बना हुआ यह धूप अग्निका साहचर्य पाकर सम्पूर्ण देवताओंके लिये अत्यन्त प्रिय हो जाता है। आप इसे स्वीकार करें।

दीप

गोविन्द! अत्यन्त प्रकाशमान एवं उत्तम प्रभाका प्रसार करनेवाला यह सुन्दर दीप घोर अन्धकारके नाशका एकमात्र हेतु है। आप इसे ग्रहण करें।

जलपान

हरे! कर्पूर आदिसे सुवासित यह पवित्र और निर्मल जल सम्पूर्ण जीवोंका जीवन है। आप पीनेके लिये इसे ग्रहण करें।

आभूषण

गोविन्द! नाना प्रकारके फूलोंसे युक्त तथा महीन डोरेमें गुँथा हुआ यह हार शरीरके लिये श्रेष्ठ आभूषण है। इसे स्वीकार कीजिये।

पूजोपयोगी दातव्य द्रव्योंका दान करके व्रतके स्थानमें रखा हुआ द्रव्य श्रीहरिको ही

समर्पित कर देना चाहिये। उस समय इस प्रकार कहे—'परमेश्वर! वृक्षोंके बीजस्वरूप ये स्वादिष्ट और सुन्दर फल वंशकी वृद्धि करनेवाले हैं। आप इन्हें ग्रहण कीजिये।' आवाहित देवताओंमेंसे प्रत्येकका व्रती पुरुष पूजन करे। पूजनके पश्चात् भक्तिभावसे उन सबको तीन-तीन बार पुष्पाञ्जलि दे। सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि गोप, गोपी, राधिका, गणेश, कार्तिकेय, ब्रह्मा, शिव, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, दिक्पाल, ग्रह, शेषनाग, सुदर्शनचक्र तथा श्रेष्ठ पार्षदगण—इन सबका पूजन करके समस्त देवताओंको पृथ्वीपर दण्डवत् प्रणाम करे। तदनन्तर ब्राह्मणोंको नैवेद्य देकर दक्षिणा दे तथा जन्माध्यायमें बतायी गयी कथाका भक्तिभावसे श्रवण करे। उस समय व्रती पुरुष रातमें कुशासनपर बैठकर जागता रहे। प्रातःकाल नित्यकर्म सम्पन्न करके श्रीहरिका सानन्द पूजन करे तथा ब्राह्मणोंको भोजन कराकर भगवन्नामोंका कीर्तन करे।

नारदजीने पूछा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ नारायण-देव! व्रतकालकी सर्वसम्मत वेदोक्त व्यवस्था क्या है? यह बताइये। साथ ही वेदार्थ तथा प्राचीन संहिताका विचार करके यह भी बतानेकी कृपा कीजिये कि व्रतमें उपवास एवं जागरण करनेसे क्या फल मिलता है अथवा उसमें भोजन कर लिया जाय तो कौन-सा पाप लगता है?

भगवान् नारायणने कहा—यदि आधी रातके समय अष्टमी तिथिका एक चौथाई अंश भी दृष्टिगोचर होता हो तो वही व्रतका मुख्य काल है। उसीमें साक्षात् श्रीहरिने अवतार ग्रहण किया है। वह जय और पुण्य प्रदान करती है; इसलिये 'जयन्ती' कही गयी है। उसमें उपवास-व्रत करके विद्वान् पुरुष जागरण करे। यह समय सबका अपवाद, मुख्य एवं सर्वसम्मत है, ऐसा वेदवेत्ताओंका कथन है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने भी ऐसा ही कहा था। जो अष्टमीको उपवास एवं जागरणपूर्वक व्रत करता है, वह करोड़ों जन्मोंमें उपार्जित पापोंसे छुटकारा पा जाता है; इसमें संशय नहीं है। सप्तमीविद्धा अष्टमीका यत्नपूर्वक त्याग करना चाहिये। रोहिणी नक्षत्रका योग मिलनेपर भी सप्तमीविद्धा अष्टमीको व्रत नहीं करना चाहिये; क्योंकि भगवान् देवकीनन्दन अविद्ध-तिथि एवं नक्षत्रमें अवतीर्ण हुए थे। वह विशिष्ट मङ्गलमय क्षण वेदों और वेदाङ्गोंके लिये भी गुप्त है। रोहिणी नक्षत्र बीत जानेपर ही व्रती पुरुषको पारणा करनी चाहिये। तिथिके अन्तमें श्रीहरिका स्मरण तथा देवताओंका पूजन करके की हुई पारणा पवित्र मानी गयी है। वह मनुष्योंके समस्त पापोंका नाश करनेवाली होती है। सम्पूर्ण उपवास-व्रतोंमें दिनको ही पारणा करनेका विधान है। वह उपवास-व्रतका अङ्गभूत, अभीष्ट फलदायक तथा शुद्धिका कारण है। पारणा न करनेपर फलमें कमी आती है। रोहिणीव्रतके सिवा दूसरे किसी व्रतमें रातको पारणा नहीं करनी चाहिये। महारात्रिको छोड़कर दूसरी रात्रिमें पारणा की जा सकती है। ब्राह्मणों और देवताओंकी पूजा करके पूर्वाह्णकालमें पारणा उत्तम मानी गयी है।

रोहिणी-व्रत सबको सम्मत है। उसका अनुष्ठान अवश्य करना चाहिये। यदि बुध अथवा सोमवारसे युक्त जयन्ती मिल जाय तो उसमें व्रत करके व्रती पुरुष गर्भमें वास नहीं करता है। यदि उदयकालमें किञ्चिन्मात्र कुछ अष्टमी हो और सम्पूर्ण दिन-रातमें नवमी हो तथा बुध, सोम एवं रोहिणी नक्षत्रका योग प्राप्त हो तो वह सबसे उत्तम व्रतका समय है। सैकड़ों वर्षोंमें भी ऐसा योग मिले या न मिले, कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसे उत्तम व्रतका अनुष्ठान करके व्रती पुरुष अपनी करोड़ों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो सम्पत्तिसे रहित भक्त मनुष्य हैं, वे व्रतसम्बन्धी उत्सवके बिना भी यदि केवल उपवासमात्र कर लें तो भगवान् माधव उनपर उतनेसे ही प्रसन्न हो जाते हैं। भक्तिभावसे भाँति-भाँतिके उपचार

चढ़ाने तथा रातमें जागरण करनेसे दैत्यशत्रु श्रीहरि जयन्ती-व्रतका फल प्रदान करते हैं। जो अष्टमी-व्रतके उत्सवमें धनका उपयोग करनेमें कंजूसी नहीं करता, उसे उत्तम फलकी प्राप्ति होती है। जो कंजूसी करता है, वह उसके अनुरूप ही फल पाता है। विद्वान् पुरुष अष्टमी और रोहिणीमें पारणा न करे; अन्यथा वह पारणा पूर्वकृत पुण्योंको तथा उपवाससे प्राप्त होनेवाले फलको भी नष्ट कर देती है, तिथि आठ गुने फलका नाश करती है और नक्षत्र चौगुने फलका। अतः प्रयत्नपूर्वक तिथि और नक्षत्रके अन्तमें पारणा करे। यदि महानिशा प्राप्त होनेपर तिथि और नक्षत्रका अन्त होता हो तो व्रती पुरुषको तीसरे दिन पारणा करनी चाहिये। आदि और अन्तके चार-चार दण्डको छोड़कर बीचकी तीन पहरवाली रात्रिको त्रियामा रजनी कहते हैं। उस रजनीके आदि और अन्तमें दो संध्याएँ होती हैं। जिनमेंसे एकको दिनादि या प्रातःसंध्या कहते हैं और दूसरीको दिनान्त या सायंसंध्या। शुद्धा जन्माष्टमी तिथिको जागरणपूर्वक व्रतका अनुष्ठान करके मनुष्य सौ जन्मोंके किये हुए पापोंसे छुटकारा पा जाता है। इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य शुद्धा जन्माष्टमीमें केवल उपवासमात्र करके रह जाता है, व्रतोत्सव या जागरण नहीं करता, वह अश्वमेध-यज्ञके फलका भागी होता है। श्रीकृष्णजन्माष्टमीके दिन भोजन करनेवाले नराधम घोर पापों और उनके भयानक फलोंके भागी होते हैं। जो उपवास करनेमें असमर्थ हो, वह एक ब्राह्मणको भोजन करावे अथवा उतना धन दे दे, जितनेसे वह दो बार भोजन कर ले। अथवा प्राणायाम-मन्त्रपूर्वक एक सहस्र गायत्रीका जप करे। मनुष्य उस व्रतमें बारह हजार मन्त्रोंका यथार्थरूपसे जप करे तो और उत्तम है। वत्स नारद! मैंने धर्मदेवके मुखसे जो कुछ सुना था, वह सब तुम्हें कह सुनाया। व्रत, उपवास और पूजाका जो कुछ विधान है और उसके न करनेपर जो कुछ दोष होता है; वह सब यहाँ बता दिया गया। (अध्याय ८)

श्रीकृष्णकी अनिर्वचनीय महिमा, धरा और द्रोणकी तपस्या, अदिति और कद्रूका पारस्परिक शापसे देवकी तथा रोहिणीके रूपमें भूतलपर जन्म, हलधर और श्रीकृष्णके जन्मका उत्सव

नारदजीने पूछा—भगवन्! गोकुलमें यशोदाभवनके भीतर श्रीकृष्णको रखकर जब वसुदेवजीने अपने गृहको प्रस्थान किया, तब नन्दरायजीने किस प्रकार पुत्रोत्सव मनाया? श्रीहरिने वहाँ रहकर क्या किया? वे कितने वर्षोंतक वहाँ रहे? प्रभो! आप उनकी बालक्रीड़ाका क्रमशः वर्णन कीजिये। पूर्वकालमें गोलोकमें श्रीराधाके साथ भगवान्ने जो प्रतिज्ञा की थी, वृन्दावनमें उस प्रतिज्ञाका निर्वाह उन्होंने किस प्रकार किया? प्रभो! उस समय भूतलपर वृन्दावनका स्वरूप कैसा था? उनका रासमण्डल कैसा था? यह सब बताइये। रासक्रीड़ा और जलक्रीड़ाका विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये। नन्दने कौन-सी तपस्या की थी? यशोदा और रोहिणीने कौन-सा तप किया था? श्रीहरिसे पहले हलधरका जन्म कहाँ हुआ था? श्रीहरिका अपूर्व आख्यान अमृतखण्डके समान माना गया है। विशेषतः कविके मुखमें श्रीहरिचरित्रमय काव्य पद-पदपर नूतन प्रतीत होता है। आप अपने रासमण्डलकी क्रीड़ाका स्वयं ही वर्णन कीजिये। काव्यमें परोक्ष वस्तुका वर्णन होता है। परंतु जहाँ प्रत्यक्ष देखी हुई वस्तुका वर्णन हो, उसे उत्तम कहा गया

है। साक्षात् भगवान् श्रीकृष्ण योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु हैं। जो जिसका अंश होता है, वह उस अंशीके सुखसे सुखी होता है। प्रभो! आपने ही यह वर्णन किया है कि आप दोनों नर और नारायण श्रीहरिके चरणोंमें विलीन हो गये थे। उनमें भी आप ही साक्षात् गोलोकके अंश हैं; अतः उनके समान ही महान् हैं (इसीलिये श्रीकृष्णलीलाएँ आपके प्रत्यक्ष अनुभवमें आयी हुई हैं; अतः आप उनका वर्णन कीजिये)।

भगवान् नारायण बोले—नारद! ब्रह्मा, शिव, शेष, गणेश, कूर्म, धर्म, मैं, नर तथा कार्तिकेय—ये नौ श्रीकृष्णके अंश हैं। अहो! उन गोलोकनाथकी महिमाका कौन वर्णन कर सकता है? जिन्हें स्वयं हम भी नहीं जानते और न वेद ही जानते हैं। फिर दूसरे विद्वान् क्या जान सकते हैं? शूकर, वामन, कल्कि, बुद्ध, कपिल और मत्स्य—ये भी श्रीकृष्णके अंश हैं तथा अन्य कितने ही अवतार हैं, जो श्रीकृष्णकी कलामात्र हैं। नृसिंह, राम तथा श्वेतद्वीपके स्वामी विराट् विष्णु पूर्ण अंशसे सम्पन्न हैं। श्रीकृष्ण परिपूर्णतम परमात्मा हैं। वे स्वयं ही वैकुण्ठ और गोकुलमें निवास करते हैं। वैकुण्ठमें वे कमलाकान्त कहे गये हैं और रूप-भेदसे चतुर्भुज हैं। गोलोक और गोकुलमें ये द्विभुज श्रीकृष्ण स्वयं ही राधाकान्त कहलाते हैं। योगी पुरुष इन्हींके तेजको सदा अपने चित्तमें धारण करते हैं। भक्त पुरुष इन्हीं भगवान्के तेजोमय चरणारविन्दका चिन्तन करते हैं। भला, तेजस्वीके बिना तेज कहाँ रह सकता है? ब्रह्मन्! सुनो। मैं तुमसे यशोदा, नन्द और रोहिणीके तपका वर्णन करता हूँ, जिसके कारण उन्होंने श्रीहरिका मुँह देखा था। वसुओंमें श्रेष्ठ तपोधन द्रोण नन्द नामसे इस धरातलपर अवतीर्ण हुए थे। उनकी पत्नी जो तपस्विनी धरा थीं, वे ही सती-साध्वी यशोदा हुई थीं। सर्पोंको जन्म देनेवाली नागमाता कद्रू ही रोहिणी बनकर भूतलपर प्रकट हुई थीं। इनके जन्म और चरित्रका वर्णन करता हूँ, सुनो।

एक समयकी बात है, पुण्यदायक भारतवर्षमें गौतम-आश्रमके समीप गन्धमादन पर्वतपर धरा और द्रोणने तपस्या आरम्भ की। मुने! उनकी तपस्याका उद्देश्य था—भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन। सुप्रभाके निर्जन तटपर दस हजार वर्षोंतक वे वसु-दम्पति तपस्यामें लगे रहे, परंतु उन्हें श्रीहरिके दर्शन नहीं हुए। तब वे दोनों वैराग्यवश अग्निकुण्डका निर्माण करके उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हो गये। उन दोनोंको मरनेके लिये उत्सुक देख वहाँ आकाशवाणी हुई—'वसुश्रेष्ठ! तुम दोनों दूसरे जन्ममें भूतलपर अवतीर्ण हो गोकुलमें अपने पुत्रके रूपमें श्रीहरिके दर्शन करोगे; योगियोंको भी उन भगवान्का दर्शन होना अत्यन्त कठिन है। बड़े-बड़े विद्वानोंके लिये भी ध्यानके द्वारा उन्हें वशमें कर पाना असम्भव है। वे ब्रह्मा आदि देवताओंके भी वन्दनीय हैं।' यह सुनकर धरा और द्रोण सुखपूर्वक अपने घरको चले गये और भारतवर्षमें जन्म लेकर उन्होंने श्रीहरिके मुखारविन्दके दर्शन किये। इस प्रकार यशोदा और नन्दका चरित तुमसे कहा गया; अब देवताओंके लिये भी परम गोपनीय रोहिणीका चरित्र सुनो।

एक समय देवमाता अदितिने ऋतुमती होनेपर समस्त शृङ्गारोंसे सुसज्जित हो अपने पतिदेव श्रीकश्यपजीसे मिलना चाहा। उस समय कश्यपजी अपनी दूसरी पत्नी सर्पमाता कद्रूके पास थे। कश्यपजीके आनेमें विलम्ब होनेपर अदितिको बहुत क्षोभ हुआ और उन्होंने कद्रूको शाप दे दिया कि 'वे स्वर्गलोकको त्यागकर मानव-योनिको प्राप्त हों।' इस बातको सुनकर कद्रूने भी अदितिको शाप दिया कि 'वे जरायुक्त होकर मर्त्यलोकमें मानव-योनिमें जायँ।'

इस प्रकार दोनोंके शापग्रस्त होनेपर कश्यपजीने कद्रूको सान्त्वना देकर समझाया कि 'तुम मेरे

साथ मर्त्यलोकमें जाकर श्रीहरिके मुखकमलका दर्शन प्राप्त करोगी।' तदनन्तर कश्यपजीने अदितिके घर जाकर उनकी इच्छा पूर्ण की। उसी ऋतुसे देवराजका जन्म हुआ। इसके बाद अदितिने देवकीके रूपमें, कद्रूने रोहिणीके रूपमें और कश्यपजीने श्रीकृष्णके पिता श्रीवसुदेवजीके रूपमें जन्म ग्रहण किया।

मुने! यह सारा गोपनीय रहस्य बताया गया। अब अनन्त, अप्रमेय तथा सहस्रों मस्तकवाले भगवान् बलदेवजीके जन्मका वृत्तान्त सुनो। साध्वि! रोहिणी वसुदेवजीकी प्रेयसी भार्या थीं। मुने! वे वसुदेवजीकी आज्ञासे संकर्षणकी रक्षाके लिये गोकुलमें चली गयीं। कंससे भयभीत होनेके कारण उन्हें वहाँसे पलायन करना पड़ा था। उन दिनों योगमायाने श्रीकृष्णकी आज्ञासे देवकीके सातवें गर्भको रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया था। उस गर्भको स्थापित करके वे देवी तत्काल कैलासपर्वतको चली गयीं। कुछ दिनोंके बाद रोहिणी नन्दभवनमें श्रीकृष्णके अंशस्वरूप पुत्रको जन्म दिया। उसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान गौर थी। वह बालक साक्षात् ईश्वर था। उसके मुखपर मन्द हास्यकी मनोहर छटा एवं प्रसन्नता छा रही थी। वह ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहा था। उसके जन्ममात्रसे देवताओंमें आनन्द छा गया। स्वर्गलोकमें दुन्दुभि, आनक और मुरज आदि दिव्य वाद्य बज उठे। आनन्दमग्न हुए देवता शङ्खध्वनिके साथ जय-जयकार करने लगे। नन्दका हृदय हर्षसे उल्लसित हो उठा। उन्होंने ब्राह्मणोंको बहुत-सा धन दिया। धायने आकर बालककी नाल काटी और उसे नहलाया। समस्त आभूषणोंसे विभूषित गोपियाँ जय-जयकार करने लगीं। उस पराये पुत्रके लिये भी नन्दने बड़े आदरके साथ महान् उत्सव मनाया। यशोदाजीने गोपियों तथा ब्राह्मणियोंको प्रसन्नतापूर्वक धन दान किया। नाना प्रकारके द्रव्य, सिन्दूर एवं तैल प्रदान किये।

वत्स! इस प्रकार मैंने तुमसे नन्द और यशोदाके तपका प्रसङ्ग कहा, हलधरके जन्मकी कथा कही तथा रोहिणीजीके चरित्रको सुनाया है। अब तुम्हें जो अभीष्ट है, वह नन्दपुत्रोत्सवका प्रसङ्ग सुनो। वह सुखदायक, मोक्षदायक तथा जन्म, मृत्यु और जरावस्थाका निवारण करनेवाला सारतत्त्व है। श्रीकृष्णका मङ्गलमय चरित्र वैष्णवोंका जीवन है। वह समस्त अशुभोंका विनाशक तथा श्रीहरिके दास्यभावको देनेवाला है।

वसुदेवजीने श्रीकृष्णको नन्दभवनमें रख दिया और उनकी कन्याको गोदमें लेकर वे हर्षपूर्वक अपने घरको लौट आये। यह प्रसङ्ग तथा उस कन्याका श्रवणसुखद चरित्र पहले कहा जा चुका है। अब गोकुलमें जो श्रीकृष्णकी मङ्गलमयी लीला प्रकट हुई, उसे बताता हूँ, सुनो। जब वसुदेवजी अपने घरको लौट गये, तब जया तिथि अष्टमीसे युक्त उस विजयपूर्ण मङ्गलमय सूतिकागारमें नन्द और यशोदाने देखा—उनका पुत्र धरतीपर पड़ा हुआ है। उसके श्रीअङ्गोंसे नवीन मेघमालाके समान तेजःपुञ्जमयी श्यामकान्ति प्रस्फुटित हो रही है। वह नग्न बालक बड़ा सुन्दर दिखायी देता था। उसकी दृष्टि गृहके शिखरभागकी ओर लगी हुई थी। उसका मुख शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। दोनों नेत्र नील कमलकी शोभाको छीने लेते थे। वह कभी रोता था और कभी हँसने लगता था। उसके श्रीअङ्गोंमें धूलिके कण लगे हुए थे। उसके दोनों हाथ धरतीपर टिके हुए थे और युगल चरणारविन्द प्रेमके पुञ्ज-से जान पड़ते थे। उस दिव्य बालक श्रीहरिको देखकर पत्नीसहित नन्दको बड़ी प्रसन्नता हुई। धायने ठंडे जलसे बालकको नहलाया और उसकी नाल काट दी। उस समय गोपियाँ हर्षसे जय-जयकार करने लगीं। व्रजकी सारी गोपिकाएँ, बालिका और युवतियाँ भी ब्राह्मणपत्नियोंके साथ सूतिकागारमें आयीं। उन सबने आकर बालकको

देखा और प्रसन्नतापूर्वक उसे आशीर्वाद दिया। नन्दनन्दनकी भूरि-भूरि प्रशंसा करती हुई वे उन्हें अपनी गोदमें ले लेती थीं। उनमेंसे कितनी ही

गोपियाँ रातमें वहीं रह गयीं।

नन्दने वस्त्रसहित स्नान करके धुली हुई धोती और चादर धारण की। फिर प्रसन्नचित्त हो वहाँ परम्परागत विधिका पालन किया। ब्राह्मणोंको भोजन कराया, उनसे मङ्गलपाठ करवाया, नाना प्रकारके बाजे बजवाये और बन्दीजनोंको धन-दान किया। तत्पश्चात् नन्दने आनन्दपूर्वक ब्राह्मणोंको धन दिया तथा उत्तम रत्न, मूँगे और हीरे भी आदरपूर्वक उन्हें दिये। मुने! तिलोंके सात पर्वत, सुवर्णके सौ ढेर, चाँदी, धान्यकी पर्वतोपम राशि, वस्त्र, सहस्रों मनोरम गौएँ, दही, दूध, शक्कर, माखन, घी, मधु, मिठाई, लड्डू, स्वादिष्ट मोदक, सब प्रकारकी खेतीसे भरी-पूरी भूमि, वायुके समान वेगशाली घोड़े, पान और तेल—इन सबका दान करके नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सूतिकागारकी रक्षाके लिये ब्राह्मणोंको नियुक्त किया। मन्त्रज्ञ मनुष्यों तथा बड़ी-बूढ़ी गोपियोंको लगाया। उन्होंने ब्राह्मणोंद्वारा वेदोंका पाठ कराया। एकमात्र मङ्गलमय हरिनामका कीर्तन कराया तथा देवताओंकी पूजा करवायी। युवती तथा बड़ी-बूढ़ी ब्राह्मणपत्नियाँ बालक-बालिकाओंको साथ ले मुस्कराती हुई नन्दभवनमें आयीं। नन्दरायजीने उनको भी नाना प्रकारके धन और रत्न दिये। रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित बड़ी-बूढ़ी गोपियाँ भी मुस्कराती हुई तीव्र गतिसे नन्द-मन्दिरमें आयीं। उन्हें बहुत-से वस्त्र, चाँदी और सहस्रों गौएँ सादर अर्पित कीं। ज्यौतिष-शास्त्रके विशेषज्ञ विविध ज्यौतिषी, जिनकी वाणी सिद्ध थी, हाथमें पुस्तकें लिये नन्दमन्दिरमें पधारे। नन्दजीने उन्हें नमस्कार करके प्रसन्नतापूर्वक उनके सामने विनय प्रकट की। उन सबने आशीर्वाद दिये और उत्तम बालकको देखा। इस प्रकार व्रजराज नन्दने सामग्री एकत्र करके पुत्रोत्सव मनाया और ज्यौतिषियोंद्वारा शुभाशुभ भविष्यका प्रकाशन कराया। तदनन्तर वह बालक नन्दभवनमें शुक्ल पक्षके चन्द्रमाकी भाँति दिनोंदिन बढ़ने लगा। श्रीकृष्ण और हलधर दोनों ही माताका स्तन-पान करते थे। मुने! वहाँ नन्दके पुत्रोत्सवमें प्रसन्न हुई रोहिणी देवीने आयी हुई स्त्रियोंको प्रसन्नतापूर्वक तैल, सिन्दूर और ताम्बूल प्रदान किये। वे सब बालकके सिरपर आशीर्वाद दे अपने-अपने घरको चली गयीं। केवल यशोदा, रोहिणी और नन्द—ये ही उस घरमें हर्षपूर्वक रहे।

(अध्याय ९)

आकाशवाणी सुनकर कंसका पूतनाको गोकुलमें भेजना, पूतनाका श्रीकृष्णके मुखमें विषमिश्रित स्तन देना और प्राणोंसे हाथ धोकर श्रीकृष्णकी कृपासे माताकी गतिको प्राप्त हो गोलोकमें जाना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन राजसभामें स्वर्णसिंहासनपर बैठे हुए कंसको बड़ी मधुर आकाशवाणी सुनायी दी—'ओ महामूढ़ नरेश! क्या कर रहा है? अपने कल्याणका उपाय सोच। तेरा काल धरतीपर उत्पन्न हो चुका है। वसुदेवने मायासे तेरे शत्रुभूत बालकको नन्दके हाथमें दे दिया और उनकी कन्या लाकर तुझे सौंप दी। यह कन्या मायाका अंश है और वसुदेवके पुत्रके रूपमें साक्षात् श्रीहरि अवतीर्ण हुए हैं। वे ही तेरे प्राणहन्ता हैं। इस समय गोकुलके नन्द-मन्दिरमें उनका पालन-पोषण हो रहा है। देवकीका सातवाँ गर्भ भी स्खलित या मृत नहीं हुआ है। योगमायाने उस गर्भको रोहिणीके उदरमें स्थापित कर दिया था। उस गर्भसे शेषके अंशभूत महाबली बलदेवजी प्रकट हुए हैं। श्रीकृष्ण और बलभद्र—दोनों तेरे काल हैं और इस समय गोकुलके नन्दभवनमें पल रहे हैं।'

यह आकाशवाणी सुनकर राजा कंसका मस्तक झुक गया। उसे सहसा बड़ी भारी चिन्ता प्राप्त हुई। उसने अनमने होकर आहारको भी त्याग दिया और प्राणोंसे भी बढ़कर प्रेयसी बहिन सती-साध्वी पूतनाको बुलाकर उस नीतिज्ञ नरेशने भरी सभामें इस प्रकार कहा।

कंस बोला—पूतने! मेरे कार्यकी सिद्धिके लिये गोकुलके नन्द-मन्दिरमें जाओ और अपने एक स्तनको विषसे ओतप्रोत करके शीघ्र ही नन्दके नवजात शिशुके मुखमें दे दो। वत्से! तुम मनके समान वेगसे चलनेवाली मायाशास्त्रमें निपुण और योगिनी हो। अतः मायासे मानवी रूप धारण करके तुम वहाँ जाओ। सुप्रतिष्ठे! तुम दुर्वासासे महामन्त्रकी दीक्षा लेकर सर्वत्र जाने और सब प्रकारका रूप धारण करनेमें समर्थ हो।

नारद! ऐसा कहकर महाराज कंस उस राजसभामें चुप हो रहा। इधर स्वेच्छाचारिणी पूतना कंसको प्रणाम करके वहाँसे चल दी। उसने परम सुन्दरी नारीका रूप धारण कर लिया। उसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान प्रकाशित हो रही थी। वह अनेक प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थी और मस्तकपर मालतीकी मालासे अलंकृत केशपाश धारण किये हुए थी। उसके ललाटमें कस्तूरीकी बेंदीसे युक्त सिन्दूरकी रेखा शोभा पा रही थी। पैरोंमें मञ्जीर और कटिभागमें करधनीकी मधुर झनकार फैल रही थी। व्रजमें पहुँचकर पूतनाने मनोहर नन्द-भवनपर दृष्टिपात किया। वह दुर्लङ्घ्य एवं गहरी खाइयोंसे घिरा हुआ था। साक्षात् विश्वकर्माने दिव्य प्रस्तरोंद्वारा उसका निर्माण किया था। इन्द्रनील, मरकत और पद्मराग मणियोंसे उस भव्य भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। सोनेके दिव्य कलश और चित्रित शुभ्र शिखर उस नन्द-मन्दिरकी शोभा बढ़ाते थे। चार द्वारोंसे समलंकृत गगनचुम्बी परकोटे उस भवनके आभूषण थे। उसमें लोहेके किवाड़ लगे हुए थे। द्वारोंपर द्वारपाल पहरा दे रहे थे। वह परम सुन्दर एवं रमणीय भवन सुन्दरी गोपाङ्गनाओंसे आवेष्टित था। मोती, माणिक्य, पारसमणि तथा रत्नादि वैभवोंसे भरे हुए उस भव्य भवनमें सुवर्णमय पात्र और घट भारी संख्यामें दिखायी दे रहे थे। करोड़ों गौएँ उस भवनके द्वारकी शोभा बढ़ा रही थीं। लाखों ऐसे गोपकिङ्कर वहाँ विद्यमान थे, जिनका भरण-पोषण नन्दभवनसे ही होता था। विभिन्न कार्योंमें लगी हुई सहस्रों दासियाँ उस भवनकी शोभा बढ़ा रही थीं। सुन्दरी

पूतनाने अत्यन्त मनोहर वेष धारण करके मन्द मुस्कानकी छटा बिखेरते हुए नन्द-मन्दिरमें प्रवेश किया। उसे महलमें प्रवेश करती देख यहाँकी गोपियोंने उसका बहुत आदर किया। वे सोचने लगीं—'ये कमलालया लक्ष्मी अथवा साक्षात् दुर्गा ही तो नहीं हैं, जो साक्षात् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये यहाँ पधारी हैं।' गोपियों और गोपोंने उसे प्रणाम किया और कुशल-समाचार पूछा। उसे बैठनेके लिये सिंहासन दिया और पैर धोनेके लिये जल अर्पित किया। पूतनाने भी गोपबालकोंका कुशल-मङ्गल पूछा। वह सुन्दरी वहाँ मुस्कराती हुई सिंहासनपर बैठ गयी। उसने बड़े आदरके साथ गोपियोंका दिया हुआ पाद्य-जल ग्रहण किया। तब सब गोपियोंने पूछा—'स्वामिनि! तुम कौन हो? इस समय तुम्हारा निवास कहाँ है? तुम्हारा नाम क्या है? और यहाँ पधारनेका प्रयोजन क्या है? यह बताओ।'

उन गोपियोंका यह वचन सुनकर वह भी मनोहर वाणीमें बोली—"मैं मथुराकी रहनेवाली गोपी हूँ। इस समय एक ब्राह्मणकी भार्या हूँ। मैंने संदेशवाहकके मुखसे यह मङ्गलसूचक संवाद सुना है कि 'वृद्धावस्थामें नन्दरायजीके यहाँ महान् पुत्रका जन्म हुआ है।' यह सुनकर मैं उस पुत्रको देखने और उसे अभीष्ट आशीर्वाद देनेके लिये यहाँ आयी हूँ। अब तुमलोग नन्द-नन्दनको यहाँ ले आओ। मैं उसे देखूँगी और आशीर्वाद देकर चली जाऊँगी?"

ब्राह्मणीका यह वचन सुनकर यशोदाजीका हृदय हर्षसे खिल उठा। उन्होंने बेटेसे प्रणाम करवाकर उसे उस ब्राह्मणीकी गोदमें दे दिया। बालकको गोदमें लेकर उस सतीसाध्वी पुण्यवती पूतनाने बारंबार उसका मुँह चूमा और सुखपूर्वक बैठकर श्रीहरिके मुखमें उसने अपना स्तन दे दिया। साथ ही वह बोली—'गोपसुन्दरि! तुम्हारा यह सुन्दर बालक अत्यन्त अद्भुत है। यह गुणोंमें

साक्षात् भगवान् नारायणके समान है।' श्रीकृष्ण उस विषैले स्तनको पीकर उसकी छातीपर बैठे-बैठे हँसने लगे। उन्होंने उस विषमिश्रित दूधको सुधाके समान मानकर पूतनाके प्राणोंके साथ ही पी लिया। साध्वी पूतनाने अपने प्राणोंके साथ ही बालकको त्याग दिया। मुने! वह प्राणोंका त्याग करके पृथ्वीपर गिर पड़ी। उसका आकार और मुख विकराल दिखायी देने लगे। वह उत्तान मुँह होकर पड़ी थी। उसने स्थूल शरीरको त्यागकर सूक्ष्म शरीरमें प्रवेश किया। फिर वह शीघ्र ही रत्नसारनिर्मित दिव्य रथपर आरूढ़ हो गयी। उस विमानको लाखों मनोहर दिव्य एवं श्रेष्ठ पार्षद सब ओरसे घेरकर बैठे थे। उनके हाथोंमें लाखों चँवर डुल रहे थे। लाखों दिव्य दर्पण उस दिव्य रथकी शोभा बढ़ा रहे थे। अग्निशुद्ध सूक्ष्म दिव्य वस्त्रसे उस श्रेष्ठ विमानको सजाया गया था। उसमें नाना प्रकारके चित्र-विचित्र मनोहर रत्नमय कलश शोभा दे रहे थे। उस रथमें सौ पहिये लगे थे। वह सुन्दर विमान रत्नोंके तेजसे प्रकाशित हो रहा था। पूर्वोक्त पार्षद पूतनाको उस रथपर बिठाकर उसे उत्तम गोलोकधाममें

ले गये। उस अद्भुत दृश्यको देखकर गोप और गोपिकाएँ चकित हो गयीं। कंस भी यह सारा समाचार सुनकर बड़ा विस्मित हुआ। मुने! यशोदा मैया बालकको गोदमें उठाकर उसे स्तन पिलाने लगीं। उन्होंने ब्राह्मणोंके द्वारा बालकके कल्याणके लिये मङ्गल-पाठ करवाया। नन्दरायने बड़े आनन्दसे पूतनाके देहका दाह-संस्कार किया। उस समय उसकी चितासे चन्दन, अगुरु और कस्तूरीके समान सुगन्ध निकल रही थी।

नारदजीने पूछा—भगवन्! राक्षसी पूतनाके रूपमें यह कौन ऐसी पुण्यवती सती थी, जिसने श्रीहरिको अपना स्तन पिलाया? किस पुण्यसे भगवान्‌के दर्शन करके यह उनके परम धाममें गयी?

नारायण बोले—देवर्षे! बलिके यज्ञमें वामनका मनोहर रूप देखकर बलिकी कन्या रत्नमालाने उनके प्रति पुत्र-स्नेह प्रकट किया था। उसने मन-ही-मन यह संकल्प किया कि यदि इस पुत्रके समान मेरे पुत्र होता तो मैं उसके मुखमें अपना स्तन देकर उसे वक्षःस्थलपर बिठाती। भगवान्‌से उसका यह मनोरथ छिपा न रहा। उन्होंने इस प्रकार जन्मान्तरमें उसका स्तन-पान किया। भक्तोंकी वाञ्छा पूर्ण करनेवाले उन कृपानिधानने पूतनाको माताकी गति प्रदान की। मुने! राक्षसी पूतनाने श्रीकृष्णको विष लिपटा हुआ स्तन देकर उस द्वेष-भक्तिके द्वारा भी माताके समान गति प्राप्त कर ली। ऐसे परम दयालु भगवान् श्रीकृष्णको छोड़कर मैं और किसका भजन करूँ?* विप्रवर! इस प्रकार मैंने तुमसे श्रीकृष्णके गुणोंका वर्णन किया, जो पद-पदपर अत्यन्त मधुर हैं। इसके अतिरिक्त भी जो श्रीकृष्णकी मधुर लीलाएँ हैं, उनका तुम्हारे समक्ष वर्णन आरम्भ करता हूँ।

(अध्याय १०)

तृणावर्तका उद्धार तथा उसके पूर्वजन्मका परिचय

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन गोकुलमें सती साध्वी नन्दरानी यशोदा बालकको गोदमें लिये घरके कामकाजमें लगी हुई थीं। उस समय गोकुलमें बवंडरका रूप धारण करनेवाला तृणावर्त आ रहा था। मन-ही-मन उसके आगमनकी बात जानकर श्रीहरिने अपने शरीरका भार बढ़ा लिया। उस भारसे पीड़ित होकर मैया यशोदाने लालाको गोदसे उतार दिया और खाटपर सुलाकर वे यमुनाजीके किनारे चली गयीं। इसी बीचमें वह बवंडररूपधारी असुर वहाँ आ पहुँचा और उस बालकको लेकर घुमाता हुआ सौ योजन ऊपर जा पहुँचा। उसने वृक्षोंकी डालियाँ तोड़ दीं तथा इतनी धूल उड़ायी कि गोकुलमें अँधेरा छा गया। उस मायावी असुरने तत्काल यह सब उत्पात किया। फिर वह स्वयं भी श्रीहरिके भारसे आक्रान्त हो वहीं पृथ्वीपर गिर पड़ा। श्रीहरिका स्पर्श प्राप्त करके वह असुर भी भगवद्धामको चला गया। अपने कर्मोंका नाश करके सुन्दर दिव्य रथपर आरूढ़ हो गोलोकमें जा पहुँचा। वह पाण्ड्यदेशका राजा था और दुर्वासाके शापसे असुर हो गया था। श्रीकृष्णके चरणोंका स्पर्श पाकर उसने गोलोकधाममें स्थान प्राप्त कर लिया।

मुने! बवंडरका रूप समाप्त होनेपर भयसे विह्वल गोप-गोपियोंने जब खोज की, तब बालकको शय्यापर न देखकर सब लोग शोकसे व्याकुल हो

* दत्त्वा विषस्तनं कृष्णं पूतना राक्षसी मुने। मुक्तिं मातृगतिं प्राप कं भजामि विना हरिम्॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १० । ५४)

भयसे अपनी-अपनी छाती पीटने लगे। कुछ लोग मूर्च्छित हो गये और कितने ही फूट-फूटकर रोने लगे। खोजते-खोजते उन्हें वह बालक व्रजके भीतर एक फुलवाड़ीमें पड़ा दिखायी दिया। उसके सारे अङ्ग धूलसे धूसर हो रहे थे। एक सरोवरके बाहरी तटपर जो पानीसे भीगा हुआ था, पड़ा हुआ वह बालक आकाशकी ओर एकटक देखता और भयसे कातर होकर बोलता था। नन्दजीने तत्काल बच्चेको उठाकर छातीसे लगा लिया और उसका मुँह देख-देखकर वे शोकसे व्याकुल हो रोने लगे। माता यशोदा और रोहिणी भी शीघ्र ही बालकको देखकर रो पड़ीं तथा उसे गोदमें लेकर बार-बार उसका मुँह चूमने लगीं। उन्होंने बालकको नहलाया और उसकी रक्षाके लिये मङ्गलपाठ करवाया। इसके बाद यशोदाजीने अपने लालाको स्तन पिलाया। उस समय उनके मुख और नेत्रोंमें प्रसन्नता छा रही थी।

नारदजीने पूछा—भगवन्! पाण्ड्यदेशके राजाको दुर्वासाजीने क्यों शाप दिया? आप इस प्राचीन इतिहासको भलीभाँति विचार करके कहिये।

भगवान् नारायण बोले—एक बार पाण्ड्यदेशके प्रतापी राजा अपनी एक हजार पत्नियोंको साथ लेकर मनोहर निर्जन प्रदेशमें गन्धमादन पर्वतकी नदी-तीरस्थ पुष्पवाटिकामें जाकर सुखसे विहार करने लगे। एक दिन वे नदीमें अपनी पत्नियोंके साथ जलक्रीडा कर रहे थे। उस समय उन लोगोंके वस्त्र अस्तव्यस्त थे। इसी बीच अपने हजारों शिष्योंको साथ लिये महामुनि दुर्वासा उधरसे निकले। मतवाले सहस्राक्षने उनको देख लिया, पर वे न जलसे निकले, न प्रणाम किया, न वाणीसे या हाथके संकेतसे ही कुछ कहा। इस निर्लज्जता और उद्दण्डताको देखकर दुर्वासाने उनको योगभ्रष्ट होकर भारतमें लाख वर्षोंतक असुरयोनिमें रहनेका शाप दे दिया और कहा कि 'इसके अनन्तर श्रीहरिके चरण-कमलका स्पर्श प्राप्त होनेपर असुरयोनिसे उद्धार होकर तुम्हें गोलोककी प्राप्ति होगी।' और उनकी पत्नियोंसे कहा कि 'तुमलोग भारतमें जाकर विभिन्न स्थानोंमें राजाओंके घरोंमें जन्म धारण करके राजकन्या होओगी।'

मुनीन्द्रके शापको सुनकर सब लोग हाहाकार कर उठे। राजा सहस्राक्षकी पत्नियाँ करुण विलाप करने लगीं। अन्तमें राजाने एक बड़े अग्निकुण्डका निर्माण किया और श्रीहरिके चरणकमलोंका हृदयमें चिन्तन करते हुए वे पत्नियोंसहित उसमें प्रविष्ट हो गये।

इस प्रकार वे राजा सहस्राक्ष तृणावर्त नामक असुर होनेके पश्चात् श्रीहरिका स्पर्श पाकर उनके परमधाममें चले गये और उनकी रानियोंने भारतवर्षमें मनोवाञ्छित जन्म ग्रहण किया। इस तरह श्रीहरिका यह सारा उत्तम माहात्म्य कहा गया। साथ ही मुनिवर दुर्वासाके शापवश असुरयोनिमें पड़े हुए पाण्ड्यनरेशके उद्धारका प्रसङ्ग भी सुनाया गया। (अध्याय ११)

यशोदाके घर गोपियोंका आगमन और उनके द्वारा उन सबका सत्कार, शिशु श्रीकृष्णके पैरोंके आघातसे शकटका चूर-चूर होना तथा श्रीकृष्ण-कवचका प्रयोग एवं माहात्म्य

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन नन्दपत्नी यशोदा अपने घरमें भूखे बालक गोविन्दको गोदमें लेकर उन्हें प्रसन्नतापूर्वक स्तन पिला रही थीं। इसी समय नन्द-मन्दिरमें बहुत-सी गोपियाँ आयीं, जिनमें कुछ बड़ी-बूढ़ी थीं और कुछ यशोदाजीकी सखियाँ थीं। इनके साथ

और भी बालक-बालिकाएँ थीं। उस दिन नन्दजीके यहाँ आभ्युदयिक कर्मका सम्पादन हुआ था। उस अवसरपर गोपियोंको आती देख सती यशोदाने अतृप्त बालक श्रीकृष्णको शीघ्र ही शय्यापर सुला दिया और स्वयं उठकर प्रसन्नतापूर्वक उनको प्रणाम किया। इतना ही नहीं, आनन्दित हुई गोपी यशोदाने उन सबको तेल, सिन्दूर, पान, मिष्टान्न, वस्त्र और आभूषण भी दिये। इस बीचमें मायाके स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण मायासे भूखे बनकर दोनों चरण ऊपर फेंक-फेंककर रोने लगे। मुने! उनके पास ही गोरसके मटकोंसे भरा हुआ छकड़ा खड़ा था। श्रीकृष्णका एक पैर उससे जा लगा। विश्वम्भरके पैरका आघात लगनेसे वह छकड़ा चूर-चूर हो गया। उस छकड़ेके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उसके टूटे काठ वहाँ बिखर गये। उसपर लदा हुआ दही, दूध, माखन, घी और मधु धरतीपर गिरकर बह चला। यह आश्चर्य देख भयसे व्याकुल हुई गोपियाँ बालकके पास दौड़ी हुई आयीं। उन्होंने देखा छकड़ा टूट चुका है और बालक उसकी बिखरी हुई लकड़ियोंके भीतर दबा है। टूटे-फूटे मटकोंका समूह तथा बहुत-सा गोरस भी वहाँ गिरा दिखायी दिया। लकड़ियोंको

दूर फेंककर भयसे व्याकुल हुई यशोदाने बालकको गोदमें उठा लिया। योगमायाकी कृपासे उसके सारे अङ्ग सुरक्षित थे। वह भूखसे व्याकुल हो रो रहा था। यशोदाजीने उसके मुखमें स्तन दे दिया और स्वयं शोकसे व्याकुल हो फूट-फूटकर रोती रहीं। गोपोंने वहाँ खेलते हुए बालकोंसे पूछा 'छकड़ा कैसे टूटा है? इसके टूटनेका कोई कारण तो नहीं दिखायी देता है। सहसा यह अद्भुत काण्ड कैसे घटित हुआ?' उनकी बात सुनकर सब बालक बोले—'गोपगण! सुनो। अवश्य ही श्रीकृष्णके चरणोंका धक्का लगनेसे यह छकड़ा टूटा है।' बालकोंकी यह बात सुनकर गोप और गोपियाँ हँसने लगीं। उन्हें उनकी बातपर विश्वास नहीं हुआ। वे बोलीं—'बच्चोंकी बातें सत्य नहीं हैं।' तुरंत ही श्रेष्ठ ब्राह्मण आये और उन्होंने शिशुकी रक्षाके लिये स्वस्तिवाचन किया। एक ब्राह्मणने शिशुके शरीरपर हाथ रखकर कवच पढ़ा। विप्रवर! वह समस्त शुभ लक्षणोंसे युक्त कवच मैं तुम्हें बता रहा हूँ। यह वही कवच है, जिसे पूर्वकालमें श्रीविष्णुके नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माजीको भगवती योगमायाने दिया था। उस समय जलमें शयन करनेवाले त्रिलोकीनाथ विष्णु जलके भीतर नींद ले रहे थे और ब्रह्माजी मधु-कैटभके भयसे डरकर योगनिद्राकी स्तुति कर रहे थे। उसी अवसरपर योगनिद्राने उन्हें कवचका उपदेश दिया था।

योगनिद्रा बोली—ब्रह्मन्! तुम अपना भय दूर करो। जगत्पते! जहाँ श्रीहरि विराजमान हैं और मैं मौजूद हूँ, वहाँ तुम्हें भय किस बातका है? तुम यहाँ सुखपूर्वक रहो। श्रीहरि तुम्हारे मुखकी रक्षा करें। मधुसूदन मस्तककी, श्रीकृष्ण दोनों नेत्रोंकी तथा राधिकापति नासिकाकी रक्षा करें। माधव दोनों कानोंकी, कण्ठकी और कपालकी रक्षा करें। कपोलकी गोविन्द और केशोंकी स्वयं

केशव रक्षा करें। हृषीकेश अधरोष्ठकी, गदाग्रज दन्तपंक्तिकी, रासेश्वर रसनाकी और भगवान् वामन तालुकी रक्षा करें। मुकुन्द तुम्हारे वक्षःस्थलकी रक्षा करें। दैत्यसूदन उदरका पालन करें। जनार्दन नाभिकी और विष्णु तुम्हारी ठोढ़ीकी रक्षा करें। पुरुषोत्तम तुम्हारे दोनों नितम्बों और गुह्य भागकी रक्षा करें। भगवान् जानकीश्वर तुम्हारे युगल जानुओं (घुटनों)– की सर्वदा रक्षा करें। नृसिंह सर्वत्र संकटमें दोनों हाथोंकी और कमलोद्भव वराह तुम्हारे दोनों चरणोंकी रक्षा करें। ऊपर नारायण और नीचे कमलापति तुम्हारी रक्षा करें। पूर्व दिशामें गोपाल तुम्हारा पालन करें। अग्निकोणमें दशमुखहन्ता श्रीराम तुम्हारी रक्षा करें। दक्षिण दिशामें वनमाली, नैर्ऋत्यकोणमें वैकुण्ठ तथा पश्चिम दिशामें सत्पुरुषोंकी रक्षा करनेवाले स्वयं वासुदेव तुम्हारा पालन करें। वायव्यकोणमें अजन्मा विष्टरश्रवा श्रीहरि सदा तुम्हारी रक्षा करें। उत्तर दिशामें कमलासन ब्रह्मा अपने तेजसे सदा तुम्हारी रक्षा करें। ईशानकोणमें ईश्वर रक्षा करें। शत्रुजित् सर्वत्र पालन करें। जल, थल और आकाशमें तथा निद्रावस्थामें श्रीरघुनाथजी रक्षा करें।

ब्रह्मन्! इस प्रकार परम अद्भुत कवचका वर्णन किया गया। पूर्वकालमें मेरे स्मरण करनेपर भगवान् श्रीकृष्णने कृपापूर्वक मुझे इसका उपदेश दिया था। शुम्भके साथ जब निर्लक्ष्य, घोर एवं दारुण संग्राम चल रहा था, उस समय आकाशमें खड़ी हो मैंने इस कवचकी प्राप्तिमात्रसे तत्काल उसे पराजित कर दिया था। इस कवचके प्रभावसे शुम्भ धरतीपर गिरा और मर गया। पहले सैकड़ों वर्षोंतक भयंकर युद्ध करके जब शुम्भ मर गया, तब कृपालु गोविन्द आकाशमें स्थित हो कवच और माल्य देकर गोलोकको चले गये।

मुने! इस प्रकार कल्पान्तरका वृत्तान्त कहा गया है। इस कवचके प्रभावसे कभी मनमें भय नहीं होता है। मैंने प्रत्येक कल्पमें श्रीहरिके साथ रहकर करोड़ों ब्रह्माओंको नष्ट होते देखा है। ऐसा कह कवच देकर देवी योगनिद्रा अन्तर्धान हो गयी और कमलोद्भव ब्रह्मा भगवान् विष्णुके नाभिकमलमें निःशंकभावसे बैठे रहे। जो इस उत्तम कवचको सोनेके यन्त्रमें मढ़ाकर कण्ठ या दाहिनी बाँहमें बाँधता है, उसकी बुद्धि सदा शुद्ध रहती है तथा उसे विष, अग्नि, सर्प और शत्रुओंसे कभी भय नहीं होता। जल, थल और अन्तरिक्षमें तथा निद्रावस्थामें भगवान् सदा उसकी रक्षा करते हैं*।

---

* हस्तं दत्त्वा शिरोमध्ये पपाठ कवचं द्विजः। वदामि तत्ते विप्रेन्द्र कवचं सर्वलक्षणम्॥
यद्दत्तं मायया पूर्वं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे।
निद्रिते जगतीनाथे जले च जलशायिनि। भीताय स्तुतिकर्त्रे च मधुकैटभयोर्भयात्॥

योगनिद्रोवाच

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किं ते हरौ स्थिते। स्थितायां मयि च ब्रह्मन् सुखं तिष्ठ जगत्पते॥
श्रीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः। श्रीकृष्णश्चक्षुषी पातु नासिकां राधिकापतिः॥
कर्णयुग्मं च कण्ठं च कपालं पातु माधवः। कपोलं पातु गोविन्दः केशांश्च केशवः स्वयम्॥
अधरोष्ठं हृषीकेशो दन्तपंक्तिं गदाग्रजः। रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः॥
वक्षः पातु मुकुन्दस्ते जठरं पातु दैत्यहा। जनार्दनः पातु नाभिं पातु विष्णुश्च ते हनुम्॥
नितम्बयुग्मं गुह्यं च पातु ते पुरुषोत्तमः। जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः॥
हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र सङ्कटे। पादयुग्मं वराहश्च पातु ते कमलोद्भवः॥
ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात् कमलापतिः। पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु वह्नौ दशास्यहा॥
वनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋते। वारुण्यां वासुदेवश्च सतो रक्षाकरः स्वयम्॥
पातु ते सन्ततमजो वायव्यां विष्टरश्रवाः। उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः॥

ब्राह्मणने नन्दशिशुके कण्ठमें वह कवच बाँध दिया। इस प्रकार साक्षात् श्रीहरिने अपना ही कवच अपने कण्ठमें धारण किया। मुने! श्रीहरिके इस कवचका सम्पूर्ण प्रभाव बताया गया। भगवान् अनन्त हैं। वे अपनी महिमासे कभी च्युत नहीं होते। उनके प्रभावकी कहीं तुलना नहीं है।

(अध्याय १२)

मुनि गर्गजीका आगमन, यशोदाद्वारा उनका सत्कार और परिचय-प्रश्न, गर्गजीका उत्तर, नन्दका आगमन, नन्द-यशोदाको एकान्तमें ले जाकर गर्गजीका श्रीराधा-कृष्णके नाम-माहात्म्यका परिचय देना और उनकी भावी लीलाओंका क्रमशः वर्णन करना, श्रीकृष्णके नामकरण एवं अन्नप्राशन-संस्कारका वृहद् आयोजन, ब्राह्मणोंको दान-मान, गर्गद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा गर्ग आदिकी विदाई

भगवान् नारायण कहते हैं—महामुने! अब श्रीकृष्णका कुछ और माहात्म्य सुनो, जो विघ्नविनाशक, पापहारी, महान् पुण्य प्रदान करनेवाला तथा परम उत्तम है। एक दिनकी बात है। सोनेके सिंहासनपर बैठी हुई नन्दपत्नी यशोदा भूखे हुए श्रीकृष्णको गोदमें लेकर उन्हें स्तन पिला रही थीं। उसी समय एक श्रेष्ठ ब्राह्मण शिष्यसमूहसे घिरे हुए वहाँ आये। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे और शुद्ध स्फटिकको मालापर परब्रह्मका जप कर रहे थे। दण्ड और छत्र धारण किये श्वेत वस्त्र पहने वे महर्षि अपनी धवल दन्तपंक्तियोंके कारण बड़ी शोभा पा रहे थे। वेद और वेदाङ्गोंके पारंगत तो वे थे ही, ज्योतिर्विद्याके मूर्तिमान् स्वरूप थे। उन्होंने अपने मस्तकपर तपाये हुए सुवर्णके समान पिङ्गल जटाभार धारण कर रखा था। उनका मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रदेवकी कान्तिको लज्जित कर रहा था। गोरे-गोरे अङ्ग और कमल-जैसे नेत्रवाले वे योगिराज भगवान् शंकरके शिष्य थे तथा गदाधारी श्रीविष्णुके प्रति विशुद्ध भक्ति रखते थे। वे श्रीमान् महर्षि प्रसन्नतापूर्वक शिष्योंको पढ़ाते थे। उनके एक हाथमें व्याख्याकी मुद्रा सुस्पष्ट दिखायी देती थी। वे वेदोंकी अनेक प्रकारकी व्याख्या लीलापूर्वक करते थे। उन्हें देखकर ऐसा जान पड़ता था

ऐशान्यामीश्वरः पातु सर्वत्र पातु शत्रुजित्। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां पातु राघवः॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम्। कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया॥
शुम्भेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे। गगने स्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण सो जितः॥
कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः। पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम्॥
मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः। माल्यं च कवचं दत्त्वा गोलोकं स जगाम ह॥
कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने। अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः॥
कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः। अहं च हरिणा सार्द्धं कल्पे कल्पे स्थिरा सदा॥
इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तर्धानं चकार ह। निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः॥
सुवर्णगुटिकायां तु कृत्वेदं कवचं परम्। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ बध्नीयाद् यः सुधीः सदा॥
विषाग्निसर्पशत्रुभ्यो भयं तस्य न विद्यते। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः॥

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२। १५—३६)

मानो चारों वेदोंका तेज मूर्तिमान् हो गया हो। उनके कण्ठमें साक्षात् सरस्वतीका वास था। वे शास्त्रीय सिद्धान्तके एकमात्र विशेषज्ञ थे और दिन-रात श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके ध्यानमें तत्पर रहते थे। उन्हें जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त थी। वे सिद्धोंके स्वामी, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे।

उन्हें देखकर यशोदाजी खड़ी हो गयीं। उन्होंने मस्तक झुकाकर मुनिके चरणोंमें प्रणाम किया और उन्हें बैठनेके लिये सोनेका सिंहासन देकर आतिथ्यके लिये पाद्य, अर्घ्य, गौ तथा मधुपर्क निवेदन किया। मुस्कराती हुई नन्दरानीने अपने बालकसे मुनीन्द्रकी वन्दना करवायी। मुनिने भी मन-ही-मन श्रीहरिको सौ-सौ प्रणाम किये और प्रसन्नतापूर्वक वेदमन्त्रोंके अनुकूल आशीर्वाद दिया। यशोदाजीने मुनिके शिष्योंको भी प्रणाम किया तथा भक्तिभावसे उन सबके लिये पृथक्-पृथक् पाद्य आदि अर्पित किये। उन शिष्योंने यशोदाजीको आशीर्वाद दिया। मुनि अपने शिष्योंके साथ पैर धोकर जब सिंहासनपर बैठे, तब सती-साध्वी यशोदा बालकको गोदमें ले भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर दोनों हाथ जोड़ मुनिके आगमनका कारण पूछनेको उद्यत हुईं। वे बोलीं—'मुने! आप स्वात्माराम महर्षि हैं, आपसे कुशल-मङ्गल पूछना यद्यपि उचित नहीं है, तथापि इस समय मैं आपका कुशल-समाचार पूछ रही हूँ। अबला बुद्धिहीना होती है। अतः आप मेरे इस दोषको क्षमा कर देंगे। साधुपुरुष सदा ही मूढ़ मनुष्योंके दोषोंको क्षमा करते रहते हैं।'

तदनन्तर अङ्गिरा, अत्रि, मरीचि और गौतम आदि बहुत-से ऋषि-मुनियोंके नाम लेकर यशोदाने पूछा—'प्रभो! इन पुण्यश्लोक महात्माओंमेंसे आप कौन हैं। कृपया मुझे बताइये। यद्यपि आपसे उत्तर पानेके योग्य मैं नहीं हूँ, तथापि आप मुझे मेरी पूछी हुई बात बताइये। आप-जैसे महात्मा पुरुष प्रसन्नमनसे शिशुको आशीर्वाद देने योग्य हैं। निश्चय ही ब्राह्मणोंका आशीर्वाद तत्काल पूर्ण मङ्गलकारी होता है।'

ऐसा कहकर नन्दरानी भक्तिभावसे मुनिके सामने खड़ी हो गयीं। उस सतीने नन्दरायजीको बुलानेके लिये चर भेजा। यशोदाजीकी पूर्वोक्त बातें सुनकर मुनिवर गर्ग हँसने लगे। उनके शिष्य-समूह भी हास्यकी छटासे दसों दिशाओंको प्रकाशित करते हुए जोर-जोरसे हँस पड़े। तब उन शुद्धबुद्धि महामुनि गर्गने यथार्थ हितकर, नीतियुक्त एवं अत्यन्त आनन्ददायक बात कही।

श्रीगर्गजी बोले—देवि! तुम्हारा यह समयोचित वचन अमृतके समान मधुर है। जिसका जिस कुलमें जन्म होता है, उसका स्वभाव भी वैसा ही होता है। समस्त गोपरूपी कमलवनोंके विकासके लिये गोपराज गिरिभानु सूर्यके समान हैं। उनकी पत्नीका नाम सती पद्मावती है, जो साक्षात् पद्मा (लक्ष्मी)-के समान हैं। उन्हींकी कन्या तुम यशोदा हो, जो अपने यशकी वृद्धि करनेवाली हो। भद्रे! नन्द और तुम जो कुछ भी हो, यह मुझे ज्ञात है। यह बालक जिस प्रयोजनसे भूतलपर अवतीर्ण हुआ है, वह सब मैं जानता हूँ। निर्जन स्थानमें नन्दके समीप मैं सब बातें बताऊँगा। मेरा नाम गर्ग है। मैं

चिरकालसे यदुकुलका पुरोहित हूँ। वसुदेवजीने मुझे यहाँ ऐसे कार्यके लिये भेजा है, जिसे दूसरा कोई नहीं कर सकता।

इसी बीचमें गर्गजीका आगमन सुनते ही नन्दजी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर माथा टेक उन मुनीश्वरको प्रणाम किया। साथ ही उनके शिष्योंको भी मस्तक झुकाया। उन सबने उन्हें आशीर्वाद दिये। इसके बाद गर्गजी आसनसे उठे और नन्द-यशोदाको साथ ले सुरम्य अन्तःपुरमें गये। उस निर्जन स्थानमें गर्ग, नन्द और पुत्रसहित यशोदा इतने ही लोग रह गये थे। उस समय गर्गजीने यह गूढ़ बात कही।

श्रीगर्गजी बोले—नन्द! मैं तुम्हें मङ्गलकारी वचन सुनाता हूँ। वसुदेवजीने जिस प्रयोजनसे मुझे यहाँ भेजा है, उसे सुनो। वसुदेवने सूतिकागारमें आकर अपना पुत्र तुम्हारे यहाँ रख दिया है और तुम्हारी कन्या वे मथुरा ले गये हैं। ऐसा उन्होंने कंसके भयसे किया है। यह पुत्र वसुदेवका है और जो इससे ज्येष्ठ है, वह भी उन्हींका है। यह निश्चित बात है। इस बालकका अन्नप्राशन और नामकरण-संस्कार करनेके लिये वसुदेवने गुप्तरूपसे मुझे यहाँ भेजा है। अतः तुम व्रजमें इन बालकोंके संस्कारकी तैयारी करो। तुम्हारा यह शिशु पूर्ण ब्रह्मस्वरूप है और मायासे इस भूतलपर अवतीर्ण हो पृथ्वीका भार उतारनेके लिये उद्यमशील है। ब्रह्माजीने इसकी आराधना की थी। अतः उनकी प्रार्थनासे यह भूतलका भार हरण करेगा। इस शिशुके रूपमें साक्षात् राधिकावल्लभ गोलोकनाथ भगवान् श्रीकृष्ण पधारे हैं। वैकुण्ठमें जो कमलाकान्त नारायण हैं तथा श्वेतद्वीपमें जो जगत्पालक विष्णु निवास करते हैं, वे भी इन्हींमें अन्तर्भूत हैं। महर्षि कपिल तथा इनके अन्यान्य अंश ऋषि नर-नारायण भी इनसे भिन्न नहीं हैं। ये सबके तेजोंकी राशि हैं। यह तेजोराशि ही मूर्तिमान् होकर उनके यहाँ अवतीर्ण हुई है। भगवान् श्रीकृष्ण वसुदेवको अपना रूप दिखाकर शिशुरूप हो गये और सूतिकागारसे इस समय तुम्हारे घरमें आ गये हैं। ये किसी योनिसे प्रकट नहीं हुए हैं; अयोनिज रूपमें ही भूतलपर प्रकट हुए हैं। इन श्रीहरिने मायासे अपनी माताके गर्भको वायुसे पूर्ण कर रखा था। फिर स्वयं प्रकट हो अपने उस दिव्य रूपका वसुदेवजीको दर्शन कराया और फिर शिशुरूप हो वे यहाँ आ गये।

गोपराज! युग-युगमें इनका भिन्न-भिन्न वर्ण और नाम है; ये पहले श्वेत, रक्त और पीतवर्णके थे। इस समय कृष्णवर्ण होकर प्रकट हुए हैं। सत्ययुगमें इनका वर्ण श्वेत था। ये तेजःपुञ्जसे आवृत होनेके कारण अत्यन्त प्रसन्न जान पड़ते थे। त्रेतामें इनका वर्ण लाल हुआ और द्वापरमें ये भगवान् पीतवर्णके हो गये। कलियुगके आरम्भमें इनका वर्ण कृष्ण हो गया। ये श्रीमान् तेजकी राशि हैं, परिपूर्णतम ब्रह्म हैं; इसलिये 'कृष्ण' कहे गये हैं। 'कृष्णः' पदमें जो 'ककार' है, वह ब्रह्माका वाचक है। 'ऋकार' अनन्त (शेषनाग)-का वाचक है। मूर्धन्य 'षकार' शिवका और 'णकार' धर्मका बोधक है। अन्तमें जो 'अकार' है, वह श्वेतद्वीपनिवासी विष्णुका वाचक है तथा विसर्ग नर-नारायण-अर्थका बोधक माना गया है। ये श्रीहरि उपर्युक्त सब देवताओंके तेजकी राशि हैं। सर्वस्वरूप, सर्वाधार तथा सर्वबीज हैं; इसलिये 'कृष्ण' कहे गये हैं। 'कृष्' शब्द निर्वाणका वाचक है, 'णकार' मोक्षका बोधक है और 'अकार' का अर्थ दाता है। ये श्रीहरि निर्वाण मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं; इसलिये 'कृष्ण' कहे गये हैं। 'कृष्' का अर्थ है निश्चेष्ट, 'ण' का अर्थ है भक्ति और 'अकार' का अर्थ है दाता। भगवान् निष्कर्म भक्तिके दाता हैं; इसलिये उनका नाम 'कृष्ण' है। 'कृष्' का

अर्थ है कर्मोंका निर्मूलन, 'ण' का अर्थ है दास्यभाव और 'अकार' प्राप्तिका बोधक है। वे कर्मोंका समूल नाश करके भक्तिकी प्राप्ति कराते हैं; इसलिये 'कृष्ण' कहे गये हैं। नन्द! भगवान्‌के अन्य करोड़ों नामोंका स्मरण करनेपर जिस फलकी प्राप्ति होती है, वह सब केवल 'कृष्ण' नामका स्मरण करनेसे मनुष्य अवश्य प्राप्त कर लेता है। 'कृष्ण' नामके स्मरणका जैसा पुण्य है, उसके कीर्तन और श्रवणसे भी वैसा ही पुण्य होता है। श्रीकृष्णके कीर्तन, श्रवण और स्मरण आदिसे मनुष्यके करोड़ों जन्मोंके पापका नाश हो जाता है। भगवान् विष्णुके सब नामोंमें 'कृष्ण' नाम ही सबकी अपेक्षा सारतम वस्तु और परात्पर तत्त्व है। 'कृष्ण' नाम अत्यन्त मङ्गलमय, सुन्दर तथा भक्तिदायक है*।

'ककार' के उच्चारणसे भक्त पुरुष जन्म-मृत्युका नाश करनेवाले कैवल्य मोक्षको प्राप्त कर लेता है। 'ऋकार' के उच्चारणसे भगवान्‌का अनुपम दास्यभाव प्राप्त होता है। 'षकार' के उच्चारणसे उनकी मनोवाञ्छित भक्ति सुलभ होती है। 'णकार' के उच्चारणसे तत्काल ही उनके साथ निवासका सौभाग्य प्राप्त होता है और विसर्गके उच्चारणसे उनके सारूप्यकी उपलब्धि होती है, इसमें संशय नहीं है। 'ककार' का उच्चारण होते ही यमदूत काँपने लगते हैं। 'ऋकार' का उच्चारण होनेपर वे ठहर जाते हैं, आगे नहीं बढ़ते। 'षकार' के उच्चारणसे पातक, 'णकार' के उच्चारणसे रोग तथा 'अकार' के उच्चारणसे मृत्यु—ये सब निश्चय ही भाग खड़े होते हैं; क्योंकि वे नामोच्चारणसे डरते हैं। व्रजेश्वर! श्रीकृष्ण-नामके स्मरण, कीर्तन और श्रवणके लिये उद्योग करते ही श्रीकृष्णके किंकर गोलोकसे विमान लेकर दौड़ पड़ते हैं। विद्वान् लोग शायद भूतलके धूलिकणोंकी गणना कर सकें; परंतु नामके प्रभावकी गणना करनेमें संतपुरुष भी समर्थ नहीं हैं। पूर्वकालमें भगवान् शंकरके मुखसे मैंने इस 'कृष्ण' नामकी महिमा सुनी थी। मेरे गुरु भगवान् शंकर ही श्रीकृष्णके गुणों और नामोंका प्रभाव कुछ-कुछ जानते हैं। ब्रह्मा, अनन्त, धर्म, देवता, ऋषि, मनु, मानव, वेद और संतपुरुष श्रीकृष्ण-नाम-महिमाकी सोलहवीं कलाको भी नहीं जानते हैं।

नन्द! इस प्रकार मैंने तुम्हारे पुत्रकी महिमाका अपनी बुद्धि और ज्ञानके अनुसार वर्णन किया है। इसे मैंने गुरुजीके मुखसे सुना था। कृष्ण, पीताम्बर, कंसध्वंसी, विष्टरश्रवा, देवकीनन्दन, श्रीश, यशोदानन्दन, हरि, सनातन, अच्युत, विष्णु, सर्वेश, सर्वरूपधृक्, सर्वाधार, सर्वगति, सर्वकारणकारण, राधाबन्धु, राधिकात्मा, राधिकाजीवन, राधिकासहचारी, राधामानसपूरक, राधाधन, राधिकाङ्ग, राधिकासक्तमानस, राधाप्राण, राधिकेश, राधिकारमण, राधिकाचित्तचोर, राधाप्राणाधिक, प्रभु, परिपूर्णतम, ब्रह्म, गोविन्द और गरुडध्वज—नन्द! ये श्रीकृष्णके नाम जो तुमने मेरे मुखसे सुने हैं, हृदयमें धारण करो। शुभेक्षण! ये नाम जन्म तथा मृत्युके कष्टको हर लेनेवाले हैं। तुम्हारे कनिष्ठ पुत्रके नामोंका महत्त्व जैसा मैंने सुना था, वैसा यहाँ बताया है†। अब ज्येष्ठ पुत्र हलधरके नामका संकेत

---

* नाम्नां भगवतो नन्द कोटीनां स्मरणे च यत्। तत्फलं लभते नूनं कृष्णेति स्मरणान्नरः॥
यद्विधं स्मरणे पुण्यं वचनाच्छ्रवणात् तथा। कोटिजन्मांहसां नाशो भवेद् यत्स्मरणादिकात्॥
विष्णोर्नाम्नां च सर्वेषां सर्वात् सारं परात्परम्। कृष्णेति मङ्गलं नाम सुन्दरं भक्तिदास्यदम्॥
(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३। ६३—६५)

† कृष्णः पीताम्बरः कंसध्वंसी च विष्टरश्रवाः। देवकीनन्दनः श्रीशो यशोदानन्दनो हरिः॥
सनातनोऽच्युतो विष्णुः सर्वेशः सर्वरूपधृक्। सर्वाधारः सर्वगतिः सर्वकारणकारणः॥

मेरे मुँहसे सुनो। ये जब गर्भमें थे, उस समय उस गर्भका संकर्षण किया गया था; इसलिये इनका नाम 'संकर्षण' हुआ। वेदोंमें यह कहा गया है कि इनका कभी अन्त नहीं होता; इसलिये ये 'अनन्त' कहे गये हैं। इनमें बलकी अधिकता है; इसलिये इनको 'बलदेव' कहते हैं। हल धारण करनेसे इनका नाम 'हली' हुआ है। नील रंगका वस्त्र धारण करनेसे इन्हें 'शितिवासा' (नीलाम्बर) कहा गया है। ये मूसलको आयुध बनाकर रखते हैं; इसलिये 'मुसली' कहे गये हैं। रेवतीके साथ इनका विवाह होगा; इसलिये ये साक्षात् 'रेवतीरमण' हैं। रोहिणीके गर्भमें वास करनेसे इन महाबुद्धिमान् संकर्षणको 'रौहिणेय' कहा गया है। इस प्रकार ज्येष्ठ पुत्रका नाम जैसा मैंने सुना था, वैसा बताया है। नन्द! अब मैं अपने घरको जाऊँगा। तुम अपने भवनमें सुखपूर्वक रहो।

ब्राह्मणकी यह बात सुनकर नन्दजी स्तब्ध रह गये। नन्दपत्नी भी निश्चेष्ट हो गयीं और वह बालक स्वयं हँसने लगा। तब नन्दने गर्गजीको प्रणाम करके दोनों हाथ जोड़ लिये और भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर विनयपूर्वक कहा।

नन्द बोले—ब्रह्मन्! यदि आप चले गये तो कौन महात्मा इस कर्मको करायेंगे; अतः आप स्वयं ही शुभ-दृष्टि करके इन बालकोंका नामकरण एवं अन्नप्राशन-संस्कार कराइये। राधा-बन्धुसे लेकर राधाप्राणाधिकतक जो नाम-समूह बताये गये हैं, उनमें जो राधा नाम आया है, वह राधा कौन है और किसकी पुत्री है?

नन्दकी यह बात सुनकर मुनिवर गर्ग हँसने लगे और बोले—'यह परम निगूढ़ तत्त्व एवं रहस्यकी बात है, जिसे तुम्हें बताऊँगा।'

श्रीगर्गजी बोले—नन्द! सुनो। मैं पुरातन इतिहास बता रहा हूँ। यह वृत्तान्त पहले गोलोकमें घटित हुआ था। उसे मैंने भगवान् शंकरके मुखसे सुना है। किसी समय गोलोकमें श्रीदामाका राधाके साथ लीलाप्रेरित कलह हो गया। उस कलहके कारण श्रीदामाके शापसे लीलावश गोपी राधाको गोकुलमें आना पड़ा है। इस समय वे वृषभानु गोपकी बेटी हैं और कलावती उनकी माता हैं। राधा श्रीकृष्णके अर्धाङ्गसे प्रकट हुई हैं और वे अपने स्वामीके अनुरूप ही परम सुन्दरी सती हैं। ये राधा गोलोकवासिनी हैं; परंतु इस समय श्रीकृष्णकी आज्ञासे यहाँ अयोनिसम्भवा होकर प्रकट हुई हैं। ये ही देवी मूल-प्रकृति ईश्वरी हैं। इन सती-साध्वी राधाने मायासे माताके गर्भको वायुपूर्ण करके वायुके निकलनेके समय स्वयं शिशु-विग्रह धारण कर लिया। ये साक्षात् कृष्ण-माया हैं और श्रीकृष्णके आदेशसे पृथ्वीपर प्रकट हुई हैं। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कला बढ़ती है, उसी प्रकार व्रजमें राधा बढ़ रही हैं। श्रीकृष्णके तेजके आधे भागसे वे मूर्तिमती हुई हैं। एक ही मूर्ति दो रूपोंमें विभक्त हो गयी है। इस भेदका निरूपण वेदमें किया गया है। ये स्त्री हैं, वे पुरुष हैं, किंवा ये ही स्त्री हैं और ये पुरुष हैं। इसका स्पष्टीकरण नहीं हो पाता। दो रूप हैं और दोनों ही स्वरूप, गुण एवं तेजकी दृष्टिसे समान हैं। पराक्रम, बुद्धि, ज्ञान और सम्पत्तिकी दृष्टिसे भी उनमें न्यूनता अथवा अधिकता नहीं है। किंतु वे गोलोकसे यहाँ पहले आयी हैं; इसलिये अवस्थामें श्रीकृष्णसे

राधाबन्धू राधिकात्मा राधिकाजीवनः स्वयम्। राधिकासहचारी च राधामानसपूरकः॥
राधाधनो राधिकाङ्गो राधिकासक्तमानसः। राधाप्राणो राधिकेशो राधिकारमणः स्वयम्॥
राधिकाचित्तचौरश्च राधाप्राणाधिकः प्रभुः। परिपूर्णतमं ब्रह्म गोविन्दो गरुडध्वजः॥
नामान्येतानि कृष्णस्य श्रुतानि साम्प्रतं व्रज। जन्ममृत्युजराव्याधेर्भ रक्ष नन्द शुभक्षणे॥
(१३। ७५—८०)

इन्द्रयागकी परम्पराका भंजन, इन्द्रके कोपसे गोकुलकी रक्षा, गोपियोंके वस्त्रोंका अपहरण, उनके व्रतका सम्पादन, पुनः उन्हें वस्त्र अर्पण तथा मनोवाञ्छित वरदान देनेका कार्य करके ये श्यामसुन्दर अपनी लीलाओंसे उनके चित्तको चुरा लेंगे और उन्हें सर्वथा अपने अधीन कर लेंगे। तदनन्तर इनके द्वारा अत्यन्त रमणीय रासोत्सवका आयोजन होगा, जो सबका आनन्दवर्धन करेगा। शरद् और वसन्त ऋतुमें रातके समय पूर्ण चन्द्रमाका उदय होनेपर रासमण्डलमें गोपियोंको नूतन प्रेम-मिलनका सुख प्रदान करके ये श्यामसुन्दर उनका मनोरथ पूर्ण करेंगे। फिर कौतूहलवश उनके साथ जल-विहार भी करेंगे। तत्पश्चात् श्रीदामाके शापके कारण इनका गोप-गोपियों तथा श्रीराधाके साथ (पार्थिव) सौ वर्षोंके लिये वियोग हो जायगा। उस समय ये मथुरा चले जायँगे और वहाँ इनका जाना गोपियोंके लिये शोकवर्द्धक होगा। उस समय पुनः ये उनके पास आकर उन्हें समझा-बुझाकर धैर्य बँधायेंगे और आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान करेंगे। उस प्रबोधन और आध्यात्मिक ज्ञानके द्वारा ये रथ तथा सारथि अक्रूरकी रक्षा करेंगे। फिर रथपर आरूढ़ हो पिता, भाई एवं व्रजवासियोंके साथ यमुनाजीको लाँघकर व्रजसे मथुराको पधारेंगे। मार्गमें यमुनाजीके जलके भीतर अक्रूरको अपने स्वरूपका दर्शन कराकर उन्हें ज्ञान देंगे। फिर सायंकाल मथुरामें पहुँचकर कौतूहलवश नगरमें घूम-घूमकर सबको दर्शन देंगे। माली, दर्जी और कुब्जाको भवबन्धनसे मुक्त करेंगे। शंकरजीके धनुषको तोड़कर यज्ञभूमिका दर्शन करेंगे। फिर कुवलयापीड़ हाथी और मल्लोंका वध करनेके पश्चात् अपने सामने राजा कंसको देखेंगे और तत्काल उसका विध्वंस करके माता-पिताको बन्धनसे छुड़ायेंगे। तदनन्तर तुम सब गोपोंको समझा-बुझाकर लौटायेंगे। कंसके राज्यपर उग्रसेनका अभिषेक करेंगे। कंसके बन्धु-बान्धवोंको ज्ञानोपदेश देकर उनका शोक दूर करेंगे। इसके बाद अपने भाईका और अपना उपनयन-संस्कार कराकर गुरुके मुखसे विद्या ग्रहण करेंगे। गुरुजीको उनका मरा हुआ पुत्र लाकर देंगे और फिर घर लौट आयेंगे। इसके बाद राजा जरासंधके सैनिकोंको चकमा देकर दुरात्मा कालयवनका वध, द्वारकापुरीका निर्माण, मुचुकुन्दका उद्धार तथा यादवोंसहित द्वारकापुरीको प्रस्थान करेंगे। वहाँ कौतूहलवश स्त्रीसमूहोंके साथ विवाह करके उनके साथ क्रीडा-विहार करेंगे। उनका तथा उनके पुत्र-पौत्रादिका सौभाग्यवर्धन करेंगे। मणिसम्बन्धी मिथ्या कलङ्कका मार्जन, पाण्डवोंकी सहायता, भूभार-हरण, धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिरके राजसूययज्ञका लीलापूर्वक सम्पादन, पारिजातका अपहरण, इन्द्रके गर्वका गञ्जन, सत्यभामाके व्रतकी पूर्ति, बाणासुरकी भुजाओंका खण्डन, शिवके सैनिकोंका मर्दन, महादेवजीको जृम्भणास्त्रसे बाँधना, बाणपुत्री उषाका अपहरण, अनिरुद्धको बाणासुरके बन्धनसे छुटकारा दिलाना, वाराणसीपुरीका दहन, ब्राह्मणकी दरिद्रताका दूरीकरण, एक ब्राह्मणके मरे हुए पुत्रोंको लाकर उसे देना, दुष्टोंका दमन आदि करना तथा तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे तुम व्रजवासियोंके साथ पुनः मिलना इत्यादि कार्य करके ये श्रीकृष्ण श्रीराधाके साथ फिर व्रजमें आयेंगे। तदनन्तर अपने नारायण-अंशको द्वारकापुरीमें भेजकर ये जगदीश्वर गोलोकनाथ यहाँ राधाके साथ समस्त आवश्यक कार्य पूर्ण करेंगे तथा व्रजवासियों एवं राधाको साथ लेकर शीघ्र ही गोलोकधाममें पधारेंगे। नारायणदेव तुम्हें साथ लेकर वैकुण्ठ पधारेंगे। नर-नारायण नामक जो दोनों ऋषि हैं, वे धर्मके घरको चले जायँगे तथा श्वेतद्वीपनिवासी विष्णु क्षीरसागरको पधारेंगे।

नन्द! इस प्रकार भविष्यमें होनेवाली लीलाओंका वर्णन मैंने किया है। यह वेदका निश्चित मत है। अब इस समय जिस उद्देश्यसे मेरा आना

हुआ है, उसे बताता हूँ; सुनो। माघ शुक्ल चतुर्दशीकी शुभ वेलामें इन बालकोंका संस्कार करो। उस दिन गुरुवार है। रेवती नक्षत्र है। चन्द्र और तारा शुद्ध हैं। मीनके चन्द्रमा हैं। उसपर लग्नेशकी पूर्ण दृष्टि है। उत्तम वणिज नामक करण है और मनोहर शुभ योग है। वह दिन परम दुर्लभ है। उसमें सभी उत्कृष्ट एवं उपयोगी योगोंका उदय हुआ है। अतः पण्डितोंके साथ विचार करके उसी दिन प्रसन्नतापूर्वक संस्कार-कर्मका सम्पादन करो।

ऐसा कह मुनीश्वर गर्ग बाहर आकर बैठ गये। नन्द और यशोदाको बड़ा हर्ष हुआ और वे संस्कार-कर्मके लिये तैयारी करने लगे। इसी समय गर्गजीको देखनेके लिये गोप-गोपियाँ और बालक-बालिकाएँ नन्दभवनमें आयीं। उन्होंने देखा—मुनिश्रेष्ठ गर्ग मध्याह्नकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित हो रहे हैं। शिष्यसमूहोंसे घिरकर ब्रह्मतेजसे उद्भासित हो रहे हैं और प्रश्न पूछनेवाले किसी सिद्धपुरुषको वे प्रसन्नतापूर्वक गूढ़योगका रहस्य समझा रहे हैं। नन्दभवनकी एक-एक सामग्रीको मुस्कराते हुए देख रहे हैं और योगमुद्रा धारण किये स्वर्णसिंहासनपर बैठे हैं। ज्ञानमयी दृष्टिसे भूत, वर्तमान और भविष्यको भी देख रहे हैं। वे मन्त्रके प्रभावसे अपने हृदयमें परमात्माके जिस सिद्ध स्वरूपको देखते हैं, उसीको मुस्कराते हुए शिशुके रूपमें बाहर यशोदाकी गोदमें देख रहे हैं। महेश्वरके बताये हुए ध्यानके अनुसार जिस रूपका उन्हें साक्षात्कार हुआ था, उसी पूर्णकाम परमात्मस्वरूपका अत्यन्त प्रीतिपूर्वक दर्शन करके नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए वे पुलकित शरीरसे भक्तिके सागरमें निमग्न दिखायी देते थे। योगचर्याके अनुसार मन-ही-मन भगवान्‌की पूजा और प्रणाम करते थे। गोप-गोपियोंने मस्तक झुकाकर उन्हें प्रणाम किया और गर्गजीने भी उन सबको आशीर्वाद दिया। तदनन्तर मुनि अपने आसनपर विराजमान हुए और वे समागत स्त्री-पुरुष अपने-अपने घरको गये।

नन्दने आनन्दित होकर निकटवर्ती तथा दूरवर्ती बन्धुजनोंके पास शीघ्र ही मङ्गलपत्रिका पठायी। इसके बाद उन्होंने दूध, दही, घी, गुड़, तेल, मधु, माखन, तक्र और चीनीके शर्बतसे भरी हुई बहुत-सी नहरें लीलापूर्वक तैयार करायीं। इसके बाद उन्होंने अगहनीके चावलोंके सौ ऊँचे-ऊँचे पर्वताकार ढेर लगवाये। चिउरोंके सौ पर्वत, नमकके सात, शर्कराके भी सात, लड्डुओंके सात तथा पके फलोंके सोलह पर्वत खड़े कराये। जौ, गेहूँके आटेके पके हुए लड्डुक, पिण्ड, मोदक तथा स्वस्तिक (मिष्टान्न-विशेष)-के अनेक पर्वत खड़े किये गये थे। कपर्दकोंके बहुत ही ऊँचे-ऊँचे सात पर्वत खड़े दिखायी देते थे। कर्पूर आदिसे युक्त ताम्बूलके बीड़ोंसे घर भरा हुआ था। सुवासित जलके चौड़े-चौड़े कुण्ड भरे गये थे, जिनमें चन्दन, अगुरु और केसर मिलाये गये थे। नन्दजीने कौतूहलवश नाना प्रकारके रत्न, भाँति-भाँतिके सुवर्ण, रमणीय मोती-मूँगे, अनेक प्रकारके मनोहर वस्त्र और आभूषण भी पुत्रके अन्न-प्राशन-संस्कारके लिये संचित किये थे। आँगनको झाड़-बुहारकर सुन्दर बनाया गया। उसमें चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया। केलेके खंभों, आमके नये पल्लवोंकी बन्दनवारों और महीन वस्त्रोंसे उस आँगनको कौतुकपूर्वक सब ओरसे घेर दिया गया। यथास्थान मङ्गल-कलश स्थापित किये गये। उन्हें फलों और पल्लवोंसे सजाया गया तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी एवं फूलोंके गजरोंसे सुशोभित किया गया। सुन्दर पुष्पहारों और मनोहर वस्त्रोंकी राशियोंसे नन्द-भवनके आँगनको सजाया गया था। उसमें गौओं, मधुपर्कों, आसनों, फलों और सजल कलशोंके

समूह यथास्थान रखे गये थे। वहाँ नाना प्रकारके अत्यन्त दुर्लभ और मनोहर वाद्य बज रहे थे। ढक्का, दुन्दुभि, पटह, मृदङ्ग, मुरज, आनकसमूह, वंशी, ढोल और झाँझ आदिके शब्द हो रहे थे। विद्याधरियोंके नृत्य, भाव-भंगी तथा भ्रमणसे नन्दप्राङ्गणकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उसके साथ ही गन्धर्वराजोंके मूर्छनायुक्त संगीत तथा स्वर्ण-सिंहासनों एवं रथोंके सम्मिलित शब्द वहाँ गूँज रहे थे।

इसी समय संदेशवाहकने प्रसन्नतापूर्वक आकर नन्दरायजीसे कहा—'प्रभो! आपके भाई-बन्धु गोपराज एवं गोपगण पधारे हैं। उनमेंसे कुछ लोग घोड़ोंपर चढ़कर आये हैं, कुछ हाथियोंपर सवार हैं और कितने ही रथोंपर आरूढ़ हो शीघ्रतापूर्वक पधारे हैं। रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित कितने ही राजपुत्रोंका भी यहाँ शुभागमन हुआ है। पत्नी और सेवकोंसहित गिरिभानुजी पधारे हैं। उनके साथ चार-चार लाख रथ और हाथी हैं। घोड़े और शिबिकाओंकी संख्या एक-एक करोड़ है। ऋषीन्द्र, मुनीन्द्र, विद्वान्, ब्राह्मण, बन्दीजन और भिक्षुकोंके समूह भी निकट आ गये हैं। गोप और गोपियोंकी गणना करनेमें कौन समर्थ हो सकता है? आप स्वयं बाहर चलकर देखें।'

आँगनमें खड़े हुए दूतने जब ऐसी बात कही, तब उसे सुनकर व्रजराज नन्दजी स्वयं उन समागत अतिथियोंके पास आये। उन सबको साथ ले आकर उन्होंने आँगनमें बिठाया और तत्काल ही उनका पूजन किया। ऋषि आदिके समुदायको उन्होंने धरतीपर माथा टेककर प्रणाम किया और एकाग्रचित्त हो उन सबके लिये पाद्य आदि समर्पित किये। उस समय नन्दगोकुल विभिन्न प्रकारकी वस्तुओं तथा गोपबन्धुओंसे परिपूर्ण हो रहा था। वहाँ कोई किसीके शब्दको नहीं सुन सकता था। साक्षात् कुबेरने श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये वहाँ तीन मुहूर्ततक सुवर्णकी वर्षा करके गोकुलको सोनेसे भर दिया। नन्दकी यह सम्पत्ति देखकर उनके सभी भाई-बन्धु लज्जासे नतमस्तक हो गये। उन्होंने अपने कौतूहलको छिपा लिया। नन्दजीने नित्यकर्म करके पवित्र हो दो धुले वस्त्र धारण किये। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे अपने ललाट आदि अङ्गोंमें तिलक किया। इसके बाद गर्गजी तथा मुनीश्वरोंकी आज्ञा ले व्रजेश्वर नन्द दोनों पैर धोकर सोनेके मनोहर पीढ़ेपर बैठे। उन्होंने श्रीविष्णुका स्मरण करके आचमन किया। फिर ब्राह्मणोंसे स्वस्तिवाचन कराकर वेदोक्त कर्मका सम्पादन करनेके अनन्तर बालकको भोजन कराया। आनन्दमग्न हुए नन्दजीने मुनिवर गर्गके कथनानुसार शुभ वेलामें बालकका मङ्गलमय नाम रखा—'कृष्ण'। इस प्रकार जगदीश्वरको सघृत भोजन कराकर उनका नामकरण करनेके अनन्तर नन्दरायने बाजे बजवाये और मङ्गल-कृत्य करवाये। उन्होंने ब्राह्मणोंको प्रसन्नतापूर्वक नाना प्रकारके सुवर्ण, भाँति-भाँतिके धन, भक्ष्य पदार्थ और वस्त्र दिये। बन्दीजनों और भिक्षुकोंको इतनी अधिक मात्रामें उन्होंने सुवर्ण बाँटा कि सुवर्णके भारी भारसे आक्रान्त होनेके कारण वे सब-के-सब चल नहीं पाते थे। ब्राह्मणों, बन्धुजनों और विशेषतः भिक्षुकोंको भी उन्होंने पूर्णतया मनोहर मिष्टान्नका भोजन कराया। उस समय नन्दगोकुलमें बड़े जोर-जोरसे निरन्तर यही शब्द सुनायी देता था कि 'दो और दो।' 'खाओ-खाओ'। परिपूर्ण रत्न, वस्त्र, आभूषण, मूँगे, सुवर्ण, मणिसार तथा विश्वकर्माके बनाये हुए मनोहर सुवर्णपात्र वहाँ ब्राह्मणोंको बाँटे गये। व्रजराज नन्दने गर्गजीके पास जाकर विनयपूर्वक अपनी इच्छा प्रकट की और नम्रतापूर्वक उनके शिष्योंको तथा शेष द्विजोंको सुवर्णके अनेक भार पूर्ण मात्रामें प्रदान किये।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! श्रीहरिको

गोदमें लेकर गर्गजी एकान्त स्थानमें गये और बड़ी भक्ति एवं प्रसन्नतासे उन परमेश्वरको प्रणाम करके उनका स्तवन करने लगे। उस समय उनके नेत्रोंसे आँसू बह रहे थे। शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। मस्तक भक्तिभावसे झुक गया था और श्रीकृष्णचरणारविन्दोंमें दोनों हाथ जोड़कर वे इस प्रकार बोल रहे थे।

गर्गजीने कहा—हे श्रीकृष्ण! हे जगन्नाथ! हे भक्तभयभञ्जन! आप मुझपर प्रसन्न होइये। परमेश्वर! मुझे अपने चरणकमलोंकी दास्य-भक्ति दीजिये। भक्तोंको अभय देनेवाले गोविन्द! आपके पिताजीने मुझे बहुत धन दिया है; किंतु उस धनसे मेरा क्या प्रयोजन है? आप मुझे अपनी अविचल भक्ति प्रदान कीजिये। प्रभो! अणिमादि सिद्धियोंमें, योगसाधनोंमें, अनेक प्रकारकी मुक्तियोंमें, ज्ञानतत्त्वमें अथवा अमरत्वमें मेरी तनिक भी रुचि नहीं है। इन्द्रपद, मनुपद तथा चिरकालतक स्वर्गलोकरूपी फलके लिये भी मेरे मनमें कोई इच्छा नहीं है। मैं आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर कुछ नहीं चाहता। सालोक्य, सार्ष्टि, सारूप्य, सामीप्य और एकत्व—ये पाँच प्रकारकी मुक्तियाँ सभीको अभीष्ट हैं। परंतु परमात्मन्! मैं आपके चरणोंकी सेवा छोड़कर इनमेंसे किसीको भी ग्रहण करना नहीं चाहता। मैं गोलोकमें अथवा पातालमें निवास करूँ, ऐसा भी मेरा मनोरथ नहीं है; परंतु मुझे आपके चरणारविन्दोंका निरन्तर चिन्तन होता रहे, यही मेरी अभिलाषा है। कितने ही जन्मोंके पुण्यके फलका उदय हुआ, जिससे भगवान् शंकरके मुखसे मुझे आपके मन्त्रका उपदेश प्राप्त हुआ। उस मन्त्रको पाकर मैं सर्वज्ञ और समदर्शी हो गया हूँ। सर्वत्र मेरी अबाध गति है। कृपासिन्धो! दीनबन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। मुझे अभय देकर अपने चरणकमलोंमें रख लीजिये। फिर मृत्यु मेरा क्या करेगी? आपके चरणारविन्दोंकी सेवासे ही भगवान् शंकर सबके ईश्वर, मृत्युञ्जय, जगत्‌का अन्त करनेवाले तथा योगियोंके गुरु हुए हैं। ब्रह्मन्! जिनके एक दिनमें चौदह इन्द्रोंका पतन होता है, वे जगत्-विधाता ब्रह्मा आपके चरणकमलोंकी सेवासे ही उस पदपर प्रतिष्ठित हुए हैं। आपके चरणोंकी सेवा करके ही धर्मदेव समस्त कर्मोंके साक्षी हुए हैं; सुदुर्जय कालको जीतकर सबके पालक और फलदाता हुए हैं। आपके चरणारविन्दोंकी सेवाके प्रभावसे ही सहस्र मुखोंवाले शेषनाग सम्पूर्ण विश्वको सरसोंके एक दानेकी भाँति सिरपर धारण करते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे भगवान् शिव कण्ठमें विष धारण करते हैं। जो सम्पूर्ण सम्पदाओंकी सृष्टि करनेवाली तथा देवियोंमें परात्परा हैं, वे लक्ष्मीदेवी अपने केश-कलापोंसे आपके चरणोंका मार्जन करती हैं। जो सबकी बीजरूपा हैं, वे शक्तिरूपिणी प्रकृति आपके चरणकमलोंका चिन्तन करते-करते उन्हींमें तत्पर हो जाती हैं। सबकी बुद्धिरूपिणी एवं सर्वरूपा पार्वतीने आपके चरणोंकी सेवासे ही महेश्वर शिवको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त किया है। विद्याकी अधिष्ठात्री देवी जो ज्ञानमाता सरस्वती हैं, वे आपके चरणारविन्दोंकी आराधना करके ही सबकी पूजनीया हुई हैं। जो ब्रह्माजी तथा ब्राह्मणोंकी गति हैं, वे वेदजननी सावित्री आपकी चरणसेवासे ही तीनों लोकोंको पवित्र करती हैं। पृथ्वी आपके चरणकमलोंकी सेवाके प्रभावसे ही जगत्‌को धारण करनेमें समर्थ, रत्नगर्भा तथा सम्पूर्ण शस्योंको उत्पन्न करनेवाली हुई है। आपकी अंशभूता तथा आपके ही तुल्य तेजस्विनी राधा आपके वक्षःस्थलमें स्थान पाकर भी आपके चरणोंकी सेवा करती हैं; फिर दूसरेकी क्या बात है? ईश! जैसे शिव आदि देवता और लक्ष्मी आदि देवियाँ आपसे सनाथ हैं, उसी तरह मुझे भी सनाथ कीजिये; क्योंकि ईश्वरकी सबपर समान कृपा होती है। नाथ! मैं घरको नहीं जाऊँगा।

आपका दिया हुआ यह धन भी नहीं लूँगा। मुझ अनुरागी सेवकको अपने चरणकमलोंकी सेवामें रख लीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके गर्गजी नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए श्रीहरिके चरणोंमें गिर पड़े और जोर-जोरसे रोने लगे। उस समय भक्तिके उद्रेकसे उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया था। गर्गजीकी बात सुनकर भक्तवत्सल श्रीकृष्ण हँस पड़े और बोले—'मुझमें तुम्हारी अविचल भक्ति हो।'

जो मनुष्य गर्गजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति, दास्यभाव और उनकी स्मृतिका सौभाग्य अवश्य प्राप्त कर लेता है। इतना ही नहीं, वह श्रीकृष्णभक्तोंकी सेवामें तत्पर हो जन्म, मृत्यु, जरा, रोग, शोक और मोह आदिके संकटसे पार हो जाता है। श्रीकृष्णके साथ रहकर सदा आनन्द भोगता है और श्रीहरिसे कभी उसका वियोग नहीं होता।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! श्रीहरिकी इस प्रकार स्तुति करके गर्गमुनिने उन्हें नन्दजीको दे दिया और प्रशंसापूर्वक कहा—'गोपराज! अब मैं घर जाता हूँ, आज्ञा दो। अहो! कैसी विचित्र बात है कि संसार मोहजालसे जकड़ा हुआ है। जैसे समुद्रमें फेन उठता और मिटता रहता है, उसी प्रकार इस भवसागरमें मनुष्योंको संयोग और वियोगका अनुभव होता रहता है।'

गर्गकी यह बात सुनकर नन्दजी उदास हो गये; क्योंकि साधु पुरुषोंके लिये सत्पुरुषोंका वियोग मरणसे भी अधिक कष्टदायक होता है। सम्पूर्ण शिष्योंसे घिरे हुए मुनिवर गर्ग जब जानेको उद्यत हुए, तब रोते हुए नन्द आदि सब गोप-गोपियोंने अत्यन्त प्रीतिपूर्वक विनीतभावसे उन्हें प्रणाम किया। उन सबको आशीर्वाद देकर मुनिश्रेष्ठ गर्ग सानन्द मथुराको पधारे। ऋषि-मुनि तथा प्रिय बन्धुवर्ग सभी धनसे सम्पन्न हो प्रसन्न-मनसे अपने-अपने घरोंको गये। समस्त बन्दीजन भी पूर्णमनोरथ होकर अपने घरको लौट गये। उन सबको मीठे पदार्थ, वस्त्र, उत्तम श्रेणीके अश्व तथा सोनेके आभूषण प्राप्त हुए थे। आकण्ठ भोजन करके तृप्त हुए भिक्षुकगण बड़ी प्रसन्नताके साथ अपने घरको लौटे। वे सुवर्ण और वस्त्रोंके भारी भारसे थककर चलनेमें असमर्थ हो गये थे। कोई धीरे-धीरे चलते, कोई विश्रामके लिये धरतीपर सो जाते और कुछ लोग मार्गमें उठते-बैठते जाते थे। कोई वहाँ सानन्द हँसते हुए टिक जाते थे। कपर्दकों तथा अन्य वस्तुओंके जो बहुत-से शेष भाग बच गये थे, उन्हें कुछ लोग ले लेते थे। कुछ लोग खड़े हो दूसरोंको वे वस्तुएँ दिखाते थे। कुछ लोग नृत्य करते थे और कितने ही लोग वहाँ गीत गाते थे। कोई नाना प्रकारकी प्राचीन गाथाएँ कहते थे। राजा मरुत्त, श्वेत, सगर, मान्धाता, उत्तानपाद, नहुष और नल आदिकी जो कथाएँ हैं, उन्हें सुनाते थे। श्रीरामके अश्वमेधयज्ञकी तथा राजा रन्तिदेवके दान-कर्मकी भी गाथाएँ गाते थे। कोई ठहर-ठहरकर और कोई सो-सोकर यात्रा करते थे। इस प्रकार सब लोग प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने घरोंको गये। हर्षसे भरे हुए नन्द और यशोदा दोनों दम्पति बालकृष्णको गोदमें लेकर कुबेरभवनके समान रमणीय अपने भव्य भवनमें रहने लगे। इस प्रकार वे दोनों बालक शुक्लपक्षके चन्द्रमाकी कलाकी भाँति बढ़ने लगे। अब वे गौओंकी पूँछ और दीवाल पकड़कर खड़े होने लगे। प्रतिदिन आधा शब्द या चौथाई शब्द बोल पाते थे। मुने! आँगनमें चलते हुए वे दोनों भाई माता-पिताका हर्ष बढ़ाने लगे। अब बालक श्रीहरि दो-एक पग चलनेमें समर्थ हो गये। घरमें और आँगनमें वे घुटनोंके बलसे चलने-फिरने लगे। संकर्षणकी अवस्था बालक श्रीकृष्णसे एक साल अधिक थी। वे दोनों भाई माता-पिताका आनन्दवर्धन करते हुए दिन-दिन बड़े होने लगे।

मायासे शिशुरूपधारी वे दोनों बालक गोकुलमें विचरते हुए अच्छी तरह चलनेमें समर्थ हो गये। अब वे स्फुट वाक्य बोल लेते थे।

मुने! गर्गजी मथुरामें वसुदेवजीके घर गये। उन्होंने पुरोहितजीको प्रणाम किया और अपने दोनों पुत्रोंका कुशल-समाचार पूछा। गर्गजीने उनका कुशल-मङ्गल सुनाया और नामकरण-संस्कारके महान् उत्सवकी चर्चा की। यह सब सुननेमात्रसे वसुदेवजी आनन्दके आँसुओंमें निमग्न हो गये। देवकीजी बड़े प्रेमसे बारंबार बच्चोंका समाचार पूछने लगीं। वे आनन्दके आँसू बहाती हुई बार-बार रोने लगती थीं। गर्गजी उन दोनों दम्पतिको आशीर्वाद दे सानन्द अपने घरको गये तथा वे दोनों पति-पत्नी अपने कुबेरभवनोपम गृहमें निवास करने लगे। नारद! जिस कल्पमें यह कथा घटित हुई थी, उस समय तुम पचास कामिनियोंके पति गन्धर्वराज उपबर्हणके नामसे प्रसिद्ध थे। वे सब सुन्दरियाँ तुम्हें प्राणोंसे बढ़कर प्रिय मानती थीं और तुम शृङ्गारमें निपुण नवयुवक थे। तदनन्तर ब्रह्माजीके शापसे एक द्विजकी दासीके पुत्र हुए। उसके बाद वैष्णवोंकी जूठन खानेसे अब तुम ब्रह्माजीके पुत्र हुए हो। श्रीहरिकी सेवासे सर्वदर्शी और सर्वज्ञ हो गये हो तथा पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेमें समर्थ हो। श्रीकृष्णका यह चरित्र—उनके नामकरण और अन्नप्राशन आदिका वृत्तान्त कहा गया। यह जन्म, मृत्यु और जराका नाश करनेवाला है। अब उनकी अन्य लीलाएँ बता रहा हूँ, सुनो। (अध्याय १३)

यशोदाके यमुनास्नानके लिये जानेपर श्रीकृष्णद्वारा दही-दूध-माखन आदिका भक्षण तथा बर्तनोंको फोड़ना, यशोदाका उन्हें पकड़कर वृक्षसे बाँधना, वृक्षका गिरना, गोप-गोपियों तथा नन्दजीका यशोदाको उपालम्भ देना, नल-कूबर और रम्भाको शापप्राप्त होने तथा उससे मुक्त होनेकी कथा

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन नन्दरानी यशोदा स्नान करनेके लिये यमुनातटपर गयीं। इधर मधुसूदन श्रीकृष्ण दही-माखन आदिसे भरे-पूरे घरको देखकर बड़े प्रसन्न हुए। घरमें जो दही, दूध, घी, तक्र और मनोहर मक्खन रखा हुआ था, वह सब आप भोग लगा गये। छकड़ेपर जो मधु, मक्खन और स्वस्तिक (मिष्टान्नविशेष) लदा था, उसे भी खा-पीकर आप कपड़ोंसे मुँह पोंछनेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें ही गोपी यशोदा नहाकर अपने घर लौट आयीं। उन्होंने बालकृष्णको देखा। घरमें दही, दूध आदिके जितने मटके थे, वे सब फूटे और खाली दिखायी दिये। मधु आदिके जो बर्तन थे, वे भी एकदम खाली हो गये थे। यह सब देखकर यशोदामैयाने बालकोंसे पूछा—'अरे! यह तो बड़ा अद्भुत कर्म है। बच्चो! तुम सच-सच बताओ, किसने यह अत्यन्त दारुण कर्म किया है?' यशोदाकी बात सुनकर सब बालक एक साथ बोल उठे—'मैया! हम सच कहते हैं, तुम्हारा लाला ही सब खा गया, हम लोगोंको तनिक भी नहीं दिया है।' बालकोंका यह वचन सुनकर नन्दरानी कुपित हो उठीं और लाल-लाल आँखें किये बेंत लेकर दौड़ीं। इधर गोविन्द भाग निकले। मैया उन्हें पकड़ न सकीं। भला, जो शिव आदिके ध्यानमें भी नहीं आते, योगियोंके लिये भी जिन्हें पकड़ पाना अत्यन्त कठिन है; उन्हें यशोदाजी कैसे पकड़ पातीं? यशोदाजी पीछा करके थक गयीं। शरीर पसीनेसे लथपथ हो गया। वे मनमें ही क्रोध भरकर खड़ी हो गयीं। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे।

माताको यों थकी हुई देख कृपालु पुरुषोत्तम जगदीश्वर श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए उनके सामने खड़े हो गये। नन्दरानी उनका हाथ पकड़कर अपने घर ले आयीं। उन्होंने मधुसूदनको वस्त्रसे वृक्षमें बाँध दिया। श्रीकृष्णको बाँधकर यशोदा अपने घरमें चली गयीं तथा जगत्पति परमेश्वर श्रीहरि वृक्षकी जड़के पास खड़े रहे। नारद! श्रीकृष्णके स्पर्शमात्रसे वह पर्वताकार वृक्ष सहसा भयानक शब्द करके वहीं गिर पड़ा। उस वृक्षसे सुन्दर वेषधारी एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। वह रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित, गौरवर्ण तथा किशोर-अवस्थाका था। सुवर्णमय शृङ्गारसे विभूषित जगदीश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम करके वह दिव्य पुरुष मुस्कराता हुआ दिव्य रथपर आरूढ़ हुआ और अपने घरको चला गया। वृक्षको गिरते देख व्रजेश्वरी यशोदा भयसे त्रस्त हो उठीं। उन्होंने रोते हुए बालक श्यामसुन्दरको उठाकर छातीसे लगा लिया। इतनेमें ही गोकुलके गोप और गोपियाँ उनके घरमें आ पहुँचीं। वे सब-की-सब यशोदाको फटकारने लगीं। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शिशुकी रक्षाके लिये शान्तिकर्म किया।

सब गोपियाँ यशोदासे कहने लगीं—नन्दरानी! अत्यन्त वृद्धावस्थामें तुम्हें यह पुत्र प्राप्त हुआ है। संसारमें जो भी धन, धान्य तथा रत्न है, वह सब पुत्रके लिये ही है। आज हमने सचमुच यह जान लिया कि तुम्हारे भीतर सुबुद्धि नहीं है। जो खाद्यपदार्थ पुत्रने नहीं खाया, वह सब इस भूतलपर निष्फल ही है। ओ निठुरे! तुमने दही-दूधके लिये अपने लालाको वृक्षकी जड़में बाँध दिया और स्वयं घरके काम-काजमें लग गयीं। दैववश वृक्ष गिर पड़ा; किंतु हम गोपियोंके सौभाग्यसे वृक्षके गिरनेपर भी बालक जीवित बच गया। अरी मूढ़े! यदि बालक नष्ट हो जाता तो इन वस्तुओंका क्या प्रयोजन था? श्रीनन्दजीने भी यशोदाको उलाहना दिया। ब्राह्मणों और बन्दीजनोंने बालकको शुभ आशीर्वाद दिये। सबने मिलकर ब्राह्मणोंसे श्रीहरिका नाम-कीर्तन करवाया।

नारदजीने पूछा—भगवन्! वह सुन्दर वेषधारी पुरुष कौन था, जो गोकुलमें वृक्ष होकर रहता था? किस कारणसे उसे वृक्ष होना पड़ा था?

भगवान् नारायण बोले—एक बार कुबेरपुत्र नलकूबर अप्सरा रम्भाके साथ नन्दनवनमें चला गया। वहाँ उसने भाँति-भाँतिसे विहार किये। इसी समय महर्षि देवल उधरसे निकले। उनकी दृष्टि नलकूबर और रम्भापर पड़ गयी। इधर मुनिको देखकर भी नलकूबर-रम्भाने उठकर उनका सम्मान नहीं किया। मुनिवर देवल उन दोनोंकी ऐसी दुर्वृत्ति देखकर कुपित हो गये और उन्हें शाप देते हुए बोले—'नलकूबर! तुम गोकुलमें जाकर वृक्षरूप धारण करो। फिर श्रीकृष्णका स्पर्श पानेपर अपने भवनमें लौट आओगे और रम्भा! तुम भी मनुष्ययोनिमें जन्म लेकर राजा जनमेजयकी सौभाग्यशालिनी पत्नी बनो। अश्वमेधयज्ञमें इन्द्रका स्पर्श पाकर तुम पुनः स्वर्गमें चली जाओगी।'

वह नलकूबर ही यह वृक्ष बना और रम्भाने भारतमें राजा सुचन्द्रको कन्यारूपसे जन्म लेकर जनमेजयकी महारानी बननेका सौभाग्य प्राप्त किया। जनमेजयके अश्वमेधयज्ञमें इन्द्रने महारानीको स्पर्श कर लिया। इससे उसने योगावलम्बन करके देहको त्याग दिया और वह स्वर्गधामको चली गयी। महामुने! इस प्रकार मैंने अर्जुन-वृक्षके भङ्ग होने तथा नलकूबर एवं रम्भाके शापमुक्त होनेका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। श्रीकृष्णका पुण्यदायक चरित्र जन्म, मृत्यु एवं जराका नाश करनेवाला है। उसका इस रूपमें वर्णन किया गया। अब उनकी दूसरी लीलाओंका वर्णन करता हूँ। (अध्याय १४)

नन्दका शिशु श्रीकृष्णको लेकर वनमें गो-चारणके लिये जाना, श्रीराधाका आगमन, नन्दसे उनकी वार्ता, शिशु कृष्णको लेकर राधाका एकान्त वनमें जाना, वहाँ रत्नमण्डपमें नवतरुण श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव, श्रीराधा-कृष्णकी परस्पर प्रेमवार्ता, ब्रह्माजीका आगमन, उनके द्वारा श्रीकृष्ण और राधाकी स्तुति, वर-प्राप्ति तथा उनका विवाह कराना, नवदम्पतिका प्रेम-मिलन तथा आकाशवाणीके आश्वासन देनेपर शिशुरूपधारी श्रीकृष्णको लेकर राधाका यशोदाजीके पास पहुँचाना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन नन्दजी श्रीकृष्णको साथ लेकर वृन्दावनमें गये और वहाँ भाण्डीर उपवनमें गौओंको चराने लगे। उस भूभागमें स्वच्छ तथा स्वादिष्ट जलसे भरा हुआ एक सरोवर था। नन्दजीने गौओंको उसका जल पिलाया और स्वयं भी पीया। इसके बाद वे बालकको गोदमें लेकर एक वृक्षकी जड़के पास बैठ गये। मुने! इसी समय मायासे मानव-शरीर धारण करनेवाले श्रीकृष्णने अपनी मायाद्वारा अकस्मात् आकाशको मेघमालासे आच्छादित कर दिया। नन्दजीने देखा—आकाश बादलोंसे ढक गया है। वनका भीतरी भाग और भी श्यामल हो गया है। वर्षाके साथ जोर-जोरसे हवा चलने लगी है। बड़े जोरकी गड़गड़ाहट हो रही है। वज्रकी दारुण गर्जना सुनायी देती है। मूसलधार पानी बरस रहा है और वृक्ष काँप रहे हैं। उनकी डालियाँ टूट-टूटकर गिर रही हैं। यह सब देखकर नन्दको बड़ा भय हुआ। वे सोचने लगे—'मैं गौओं तथा बछड़ोंको छोड़कर अपने घरको कैसे जाऊँगा और यदि घरको नहीं जाऊँगा तो इस बालकका क्या होगा?' नन्दजी इस प्रकार कह ही रहे थे कि श्रीहरि उस समय जलकी वर्षाके भयसे रोने लगे। उन्होंने पिताके कण्ठको जोरसे पकड़ लिया।

इसी समय राधा श्रीकृष्णके समीप आयीं। वे अपनी गतिसे राजहंस तथा खञ्जनके गर्वका गञ्जन कर रही थीं। उनकी आकृति बड़ी मनोहर थी। उनका मुख शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी आभाको छीने लेता था। नेत्र शरत्कालके मध्याह्नमें खिले हुए कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे थे। दोनों आँखोंमें तारा, बरौनी तथा अञ्जनसे विचित्र शोभाका विस्तार हो रहा था। उनकी नासिका पक्षिराज गरुड़की चोंचकी मनोहर सुषमाको लज्जित कर रही थी। उस नासिकाके मध्यभागमें शोभनीय मोतीकी बुलाक उज्ज्वल आभाकी सृष्टि कर रही थी। केश-कलापोंकी वेणीमें मालतीकी माला लिपटी हुई थी। दोनों कानोंमें ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्यकी प्रभाको तिरस्कृत करनेवाले कान्तिमान् कुण्डल झलमला रहे थे। दोनों ओठ पके बिम्बाफलकी शोभाको चुराये लेते थे। मुक्तापंक्तिकी प्रभाको फीकी करनेवाली दाँतोंकी पंक्ति उनके मुखकी उज्ज्वलताको बढ़ा रही थी। मन्द मुस्कान कुछ-कुछ खिले हुए कुन्द-कुसुमोंकी सुन्दर प्रभाका तिरस्कार कर रही थी। कस्तूरीकी बिन्दुसे युक्त सिन्दूरकी बेंदी भालदेशको विभूषित कर रही थी। शोभाशाली कपालपर मल्लिका-पुष्प धारण करके सती राधा बड़ी सुन्दरी दिखायी देती थीं। सुन्दर, मनोहर एवं गोलाकार कपोलपर रोमाञ्च हो आया था। उनका वक्षःस्थल मणिरत्नेन्द्रके सारतत्त्वसे निर्मित हारसे विभूषित था। उनका उदर गोलाकार, सुन्दर और अत्यन्त मनोहर था। विचित्र त्रिवलीकी शोभासे सम्पन्न दिखायी देता था। उनकी नाभि कुछ गहरी थी। कटिप्रदेश उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे रचित मेखला-

जालसे विभूषित था। टेढ़ी भौंहें कामदेवके अस्त्रोंको सारभूता जान पड़ती थीं, जिनसे वे योगिराजोंके चित्तको भी मोह लेनेमें समर्थ थीं। वे स्थलकमलोंकी कान्तिको चुरानेवाले दो सुन्दर चरण धारण करती थीं। वे चरण रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। उनमें महावर लगा हुआ था। श्रेष्ठ मणियोंकी शोभा छीन लेनेवाले लाक्षारागरञ्जित नखोंसे उन चरणोंकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उत्तम रत्नोंके सारभागसे रचित मञ्जीरकी झनकारसे वे अनुरञ्जित जान पड़ते थे। उनकी भुजाएँ रत्नमय कङ्कण, केयूर और शङ्खकी मनोहर चूड़ियोंसे विभूषित थीं। रत्नमयी मुद्रिकाओंसे अंगुलियोंकी शोभा बढ़ी हुई थी। वे अग्निशुद्ध दिव्य एवं कोमल वस्त्र धारण किये हुए थीं। उनकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके फूलोंकी प्रभाको चुराये लेती थी। उनके एक हाथमें सहस्र दलोंसे युक्त उज्ज्वल क्रीडाकमल सुशोभित था और वे अपने श्रीमुखकी शोभा देखनेके लिये हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए थीं।

उस निर्जन वनमें उन्हें देखकर नन्दजीको बड़ा विस्मय हुआ। वे करोड़ों चन्द्रमालाओंकी प्रभासे सम्पन्न हो दसों दिशाओंको उद्भासित कर रही थीं। नन्दरायजीने उन्हें प्रणाम किया। उनके नेत्रोंसे अश्रु झरने लगे और मस्तक भक्तिभावसे झुक गया। वे बोले—'देवि! गर्गजीके मुखसे तुम्हारे विषयमें सुनकर मैं यह जानता हूँ कि तुम श्रीहरिकी लक्ष्मीसे भी बढ़कर प्रेयसी हो। साथ ही यह भी जान चुका हूँ कि ये श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण महाविष्णुसे भी श्रेष्ठ, निर्गुण एवं अच्युत हैं; तथापि मानव होनेके कारण मैं भगवान् विष्णुकी मायासे मोहित हूँ। भद्रे! अपने इन प्राणनाथको ग्रहण करो और जहाँ तुम्हारी मौज हो, चली जाओ। अपना मनोरथ पूर्ण कर लेनेके पश्चात् मेरा यह पुत्र मुझे लौटा देना।'

यों कहकर नन्दने भयसे रोते हुए बालकको राधाके हाथमें दे दिया। राधाने बालकको ले लिया और मुखसे मधुर हास प्रकट किया। वे नन्दसे बोलीं—बाबा। यह रहस्य दूसरे किसीपर प्रकट न हो, इसके लिये यत्नशील रहना। नन्द! अनेक जन्मोंके पुण्यफलका उदय होनेसे तुमने आज मेरा दर्शन प्राप्त किया है। गर्गजीके वचनसे तुम इस विषयके ज्ञाता हो गये हो। हमारे अवतारका सारा कारण जानते हो। हम दोनोंके गोपनीय चरित्रको कहीं कहना नहीं चाहिये। अब तुम गोकुलमें जाओ। व्रजेश्वर! तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह मुझसे माँग लो। उस देवदुर्लभ वरको भी मैं तुम्हें अनायास ही दे सकती हूँ।'

श्रीराधिकाका यह वचन सुनकर व्रजेश्वरने उनसे कहा—देवि! तुम प्रियतमसहित अपने चरणोंकी भक्ति मुझे प्रदान करो। दूसरी किसी वस्तुकी इच्छा मेरे मनमें नहीं है। जगदम्बिके! परमेश्वरि! तुम दोनोंके संनिधानमें रहनेका सौभाग्य हम दोनों पति-पत्नीको कृपापूर्वक दो। नन्दजीका यह वचन सुनकर परमेश्वरी श्रीराधा बोलीं—'व्रजेश्वर! मैं भविष्यमें तुम्हें अनुपम दास्यभाव प्रदान करूँगी। इस समय हमारी भक्ति तुम्हें प्राप्त हो। हम दोनों (प्रिया-प्रियतम)-के चरणकमलोंमें तुम दोनोंकी दिन-रात भक्ति बनी रहे। तुम दोनोंके प्रसन्नहृदयमें हमारी परम दुर्लभ स्मृति निरन्तर होती रहे। मेरे वरके प्रभावसे माया तुम दोनोंपर अपना आवरण नहीं डाल सकेगी। अन्तमें मानवशरीरका त्याग करके तुम दोनों ही गोलोकमें पधारोगे।'

ऐसा कह श्रीकृष्णको दोनों बाँहोंसे सानन्द गोदमें लेकर श्रीराधा अपनी रुचिके अनुसार वहाँसे दूर ले गयीं। उन्हें प्रेमातिरेकसे वक्षः-स्थलपर रखकर वे बार-बार उनका आलिङ्गन और चुम्बन करने लगीं। उस समय उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा और उन्होंने रासमण्डलका स्मरण किया। इसी बीचमें राधाने मायाद्वारा निर्मित उत्तम रत्नमय मण्डप देखा, जो सैकड़ों

रत्नमय कलशोंसे सुशोभित था। भाँति-भाँतिके विचित्र चित्र उस मण्डपकी शोभा बढ़ा रहे थे। विचित्र काननोंसे वह सुशोभित था। सिन्दूरकी-सी कान्तिवाली मणियोंद्वारा निर्मित सहस्रों खम्भे उस मण्डपकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। उसके भीतर चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरके द्रवसे युक्त मालती-मालाओंके समूहसे पुष्पशय्या तैयार की गयी थी। वहाँ नाना प्रकारकी भोगसामग्री संचित थी। दीवारोंमें दिव्य दर्पण लगे हुए थे। श्रेष्ठ मणियों, मुक्ताओं और माणिक्योंकी मालाओंके जालसे उस मण्डपको सजाया गया था। उसमें मणीन्द्रसाररचित किवाड़ लगे हुए थे। वह भवन बेल-बूटोंसे विभूषित वस्त्रों और श्रेष्ठ पताका-समूहोंसे सुसज्जित था। कुंकुमके समान रंगवाली मणियोंद्वारा उसमें सात सीढ़ियाँ बनायी गयी थीं। उस भवनके सामने एक पुष्पोद्यान था, जो भ्रमरोंके गुञ्जारवसे युक्त पुष्पसमूहोंद्वारा शोभा पा रहा था। देवी राधा उस मण्डपको देखकर प्रसन्नतापूर्वक उसके भीतर चली गयीं। वहाँ उन्होंने कर्पूर आदिसे युक्त ताम्बूल तथा रत्नमय कलशमें रखा हुआ स्वच्छ, शीतल एवं मनोहर जल देखा। नारद! वहाँ सुधा और मधुसे भरे हुए अनेक रत्नमय कलश शोभा पा रहे थे। उस भवनके भीतर पुष्पमयी शय्यापर एक किशोर अवस्थावाले श्यामसुन्दर कमनीय पुरुष सो रहे थे, जो अत्यन्त मनोहर थे। उनके मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे चन्दनसे चर्चित तथा करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्यलीलासे अलंकृत थे। उन्होंने पीताम्बर पहन रखा था। उनके मुख और नेत्रोंमें प्रसन्नता छा रही थी। उनके दोनों चरण मणीन्द्रसारनिर्मित मञ्जीरकी झनकारसे अनुरञ्जित थे। हाथोंमें उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे बने हुए केयूर और कंगन शोभा दे रहे थे। उत्तम मणियोंद्वारा रचित कान्तिमान् कुण्डलोंसे उनके गण्डस्थलकी अपूर्व शोभा हो रही थी। मणिराज कौस्तुभ उनके वक्षःस्थलमें अपनी उज्ज्वल आभा बिखेर रहा था। दोनों नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको छीने लेते थे। मालतीकी मालाओंसे संयुक्त मोरपंखका मुकुट उनके मस्तकको सुशोभित कर रहा था। त्रिभङ्ग चूड़ा (चोटी) धारण किये वे उस रत्नमण्डपको निहार रहे थे। राधाने देखा मेरी गोदमें बालक नहीं है और इधर वे नूतन यौवनशाली पुरुष दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह देखकर सर्वस्मृतिस्वरूपा होनेपर भी राधाको बड़ा विस्मय हुआ। रासेश्वरी उस परम मनोहर रूपको देखकर मोहित हो गयीं। वे प्रेम और प्रसन्नताके साथ अपने लोचन-चकोरोंके द्वारा उनके मुखचन्द्रकी सुधाका पान करने लगीं। उनकी पलकें नहीं गिरती थीं। मनमें प्रेमविहारकी लालसा जाग उठी। उस समय राधाका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा। वे मन्द-मन्द मुस्कराती हुई प्रेम-वेदनासे व्यथित हो उठीं। तब तिरछी चितवनसे अपनी ओर देखती हुई, मुस्कराते मुखारविन्दवाली श्रीराधासे वहाँ श्रीहरिने इस प्रकार कहा।

श्रीकृष्ण बोले—राधे! गोलोकमें देवमण्डलीके भीतर जो वृत्तान्त घटित हुआ था, उसका तुम्हें स्मरण तो है न? प्रिये! पूर्वकालमें मैंने जो कुछ स्वीकार किया है, उसे आज पूर्ण करूँगा। सुमुखि राधे! तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतमा हो। जैसी तुम हो, वैसा मैं हूँ; निश्चय ही हम दोनोंमें भेद नहीं है। जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिका शक्ति और पृथ्वीमें गन्ध होती है; इसी प्रकार तुममें मैं व्याप्त हूँ। जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता तथा जैसे स्वर्णकार सुवर्णके बिना कदापि कुण्डल नहीं तैयार कर सकता; उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना सृष्टि करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तुम सृष्टिकी आधारभूता हो और मैं अच्युत बीजरूप हूँ। साध्वि! जैसे आभूषण शरीरकी शोभाका हेतु है, उसी प्रकार तुम मेरी शोभा हो। जब मैं तुमसे अलग रहता

हूँ, तब लोग मुझे कृष्ण (काला-कलूटा) कहते हैं और जब तुम साथ हो जाती हो तो वे ही लोग मुझे श्रीकृष्ण (शोभाशाली श्रीकृष्ण)-की संज्ञा देते हैं। तुम्हीं श्री हो, तुम्हीं सम्पत्ति हो और तुम्हीं आधारस्वरूपिणी हो। तुम सर्वशक्तिस्वरूपा हो और मैं अविनाशी सर्वरूप हूँ। जब मैं तेजःस्वरूप होता हूँ, तब तुम तेजोरूपिणी होती हो। जब मैं शरीररहित होता हूँ, तब तुम भी अशरीरिणी हो जाती हो। सुन्दरि! मैं तुम्हारे संयोगसे ही सदा सर्व-बीजस्वरूप होता हूँ। तुम शक्तिस्वरूपा तथा सम्पूर्ण स्त्रियोंका स्वरूप धारण करनेवाली हो। मेरा अङ्ग और अंश ही तुम्हारा स्वरूप है। तुम मूलप्रकृति ईश्वरी हो। वरानने! शक्ति, बुद्धि और ज्ञानमें तुम मेरे ही तुल्य हो। जो नराधम हम दोनोंमें भेदबुद्धि करता है, उसका कालसूत्र नामक नरकमें तबतक निवास होता है, जबतक जगत्‌में चन्द्रमा और सूर्य विद्यमान हैं। वह अपने पहले और बादकी सात-सात पीढ़ियोंको नरकमें गिरा देता है। उसका करोड़ों जन्मोंका पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है। जो नराधम अज्ञानवश हम दोनोंकी निन्दा करते हैं, वे जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतक घोर नरकमें पकाये जाते हैं।

'रा' शब्दका उच्चारण करनेवाले मनुष्यको मैं भयभीत-सा होकर उत्तम भक्ति प्रदान करता हूँ और 'धा' शब्दका उच्चारण करनेवालेके पीछे-पीछे इस लोभसे डोलता फिरता हूँ कि पुनः 'राधा' शब्दका श्रवण हो जाय। जो जीवनपर्यन्त सोलह उपचार अर्पण करके मेरी सेवा करते हैं, उनपर मेरी जो प्रीति होती है, वही प्रीति 'राधा' शब्दके उच्चारणसे होती है। बल्कि उससे भी अधिक प्रीति 'राधा' नामके उच्चारणसे होती है। राधे! मुझे तुम उतनी प्रिया नहीं हो, जितना तुम्हारा नाम लेनेवाला प्रिय है। 'राधा' नामका उच्चारण करनेवाला पुरुष मुझे 'राधा' से भी अधिक प्रिय है। ब्रह्मा, अनन्त, शिव, धर्म, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश और कार्तिकेय भी मेरे प्रिय हैं। लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, प्रकृति—ये देवियाँ तथा देवता भी मुझे प्रिय हैं; तथापि वे राधा नामका उच्चारण करनेवाले प्राणियोंके समान प्रिय नहीं हैं। उपर्युक्त सब देवता मेरे लिये प्राणके समान हैं; परंतु सती राधे! तुम तो मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हो। वे सब लोग भिन्न-भिन्न स्थानोंमें स्थित हैं; किंतु तुम तो मेरे वक्षःस्थलमें विराजमान हो। जो मेरी चतुर्भुज मूर्ति अपनी प्रियाको वक्षःस्थलमें धारण करती है, वही मैं श्रीकृष्णस्वरूप होकर सदा स्वयं तुम्हारा भार वहन करता हूँ।

यों कहकर श्रीकृष्ण उस मनोरम शय्यापर विराजमान हुए, तब राधिका भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर अपने प्राणनाथसे बोलीं।

राधिकाने कहा—'प्रभो! मुझे गोलोककी सारी बातें याद हैं। मैं सब जानती हूँ। मैं उन बातोंको भूल कैसे सकती हूँ? तुम जो मुझे सर्वरूपिणी बता रहे हो, यह सब तुम्हारे चरण-कमलोंकी कृपासे ही सम्भव है। ईश्वरको कुछ लोग अप्रिय होते हैं और कहीं कुछ लोग प्रिय भी होते हैं। जैसे जो मेरा स्मरण नहीं करते हैं, उसी तरह उनपर तुम्हारी कृपा भी नहीं होती है। तुम तृणको पर्वत और पर्वतको तृण बनानेमें समर्थ हो; तथापि योग्य-अयोग्यमें तथा सम्पत्ति और विपत्तिमें भी तुम्हारी समान कृपा होती है। मैं खड़ी हूँ और तुम सोये हो। इस समय बातचीतमें जो समय निकल गया, वह एक-एक क्षण मेरे लिये एक-एक युगके समान है। मैं उसकी गणना करनेमें असमर्थ हूँ। तुम मेरे वक्षःस्थल और मस्तकपर अपना चरण-कमल रख दो। तुम्हारे विरहकी आगसे मेरा हृदय शीघ्र ही दग्ध होना चाहता है। सामने तुम्हारे चरण-कमलपर जब मेरी दृष्टि पड़ी तो वह वहीं रम

गयी। फिर मैं क्लेश उठाकर भी उसे दूसरे अङ्गोंको देखनेके लिये वहाँसे अन्यत्र न ले जा सकी; तथापि धीरे-धीरे प्रत्येक अङ्गका दर्शन करके ही मैंने तुम्हारे शान्त मुखारविन्दपर दृष्टि डाली है। इस मुखारविन्दको देखकर अब मेरी दृष्टि अन्यत्र जानेमें असमर्थ है।

राधिकाका यह वचन सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण हँसने लगे। फिर वे श्रुतियों और स्मृतियोंके मतानुसार तथ्य एवं हितकर वचन बोले।

श्रीकृष्णने कहा—भद्रे! मैंने पूर्वकालमें वहाँ गोलोकमें जो निश्चय किया था, उसका खण्डन नहीं होना चाहिये। प्रिये! तुम क्षणभर ठहरो। मैं तुम्हारा मङ्गल करूँगा। तुम्हारे मनोरथकी पूर्तिका समय स्वयं आ पहुँचा है। राधे! पहले मैंने जिसके लिये जो कुछ लिख दिया है और जिस समय उस मनोरथकी प्राप्तिका निश्चय कर दिया है; उस पूर्व-निश्चयका खण्डन मैं स्वयं ही नहीं कर सकता। फिर विधाताकी क्या बिसात है, जो उसे मिटा सके? मैं विधाताका भी विधाता हूँ। मैंने जिनके लिये जो कुछ विधान कर दिया है, उसका ब्रह्मा आदि देवता भी कदापि खण्डन नहीं कर सकते।

इसी बीचमें ब्रह्मा श्रीहरिके सामने आये। उनके हाथोंमें माला और कमण्डलु शोभा पा रहे थे। चारों मुखोंपर मन्द मुस्कान खेल रही थी। निकट जाकर उन्होंने श्रीकृष्णको नमस्कार किया और आगमके अनुसार उनकी स्तुति की। उस समय उनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था और भक्तिभावसे उनका मस्तक झुका हुआ था। स्तुति और नमस्कार करके जगद्धाता ब्रह्मा श्रीहरिके और निकट गये। उन्होंने अपने प्रभुको भक्तिभावसे पुनः प्रणाम किया। फिर वे श्रीराधिकाके समीप गये और माताके चरण-कमलमें मस्तक रखकर उन्होंने भक्तिभावसे नमस्कार किया। शीघ्रतापूर्वक माता राधिकाके चरणारविन्दोंको अपने जटाजालसे वेष्टित करके ब्रह्माजीने कमण्डलुके जलसे प्रसन्नतापूर्वक उनका प्रक्षालन किया। फिर दोनों हाथ जोड़कर वे आगमके अनुसार श्रीराधाकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—हे माता! भगवान् श्रीकृष्णकी कृपासे मुझे तुम्हारे चरणकमलोंके दर्शनका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। ये चरण सर्वत्र और विशेषतः भारतवर्षमें सभीके लिये परम दुर्लभ हैं। मैंने पूर्वकालमें पुष्करतीर्थमें सूर्यके प्रकाशमें बैठकर परमात्मा श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की। तब वरदाता श्रीहरि मुझे वर देनेके लिये स्वयं पधारे। उनके 'वर माँगो' ऐसा कहनेपर मैंने प्रसन्नतापूर्वक अभीष्ट वर माँगते हुए कहा—'हे गुणातीत परमेश्वर! जो सबके लिये परम दुर्लभ है, उन राधिकाके चरण-कमलका मुझे इसी समय शीघ्र दर्शन कराइये।' मेरी यह बात सुनकर ये श्रीहरि मुझ तपस्वीसे बोले—'वत्स! इस समय क्षमा करो। उपयुक्त समय आनेपर मैं तुम्हें श्रीराधाके चरणारविन्दोंके दर्शन कराऊँगा।' ईश्वरकी आज्ञा निष्फल नहीं होती; इसीलिये मुझे तुम्हारे चरणकमलोंके दर्शन प्राप्त हुए हैं। माता! तुम्हारे ये चरण गोलोकमें तथा इस समय भारतमें भी सबकी मनोवाञ्छाके विषय हैं। सब देवियाँ प्रकृतिकी अंशभूता हैं; अतः वे निश्चय ही जन्य और प्राकृतिक हैं। तुम श्रीकृष्णके आधे अङ्गसे प्रकट हुई हो; अतः सभी दृष्टियोंसे श्रीकृष्णके समान हो। तुम स्वयं श्रीकृष्ण हो और ये श्रीकृष्ण राधा हैं, अथवा तुम राधा हो और ये स्वयं श्रीकृष्ण हैं। इस बातका किसीने निरूपण किया हो, ऐसा मैंने वेदोंमें नहीं देखा है। अम्बिके! जैसे गोलोक ब्रह्माण्डसे बाहर और ऊपर है, उसी तरह वैकुण्ठ भी है। माँ! जैसे वैकुण्ठ और गोलोक अजन्य हैं; उसी प्रकार तुम भी अजन्या हो। जैसे समस्त ब्रह्माण्डमें सभी

जीवधारी श्रीकृष्णके ही अंशांश हैं; उसी प्रकार उन सबमें तुम्हीं शक्तिरूपिणी होकर विराजमान हो। समस्त पुरुष श्रीकृष्णके अंश हैं और सारी स्त्रियाँ तुम्हारी अंशभूता हैं। परमात्मा श्रीकृष्णकी तुम देहरूपा हो; अतः तुम्हीं इनकी आधारभूता हो। माँ! इनके प्राणोंसे तुम प्राणवती हो और तुम्हारे प्राणोंसे ये परमेश्वर श्रीहरि प्राणवान् हैं। अहो! क्या किसी शिल्पीने किसी हेतुसे इनका निर्माण किया है? कदापि नहीं। अम्बिके! ये श्रीकृष्ण नित्य हैं और तुम भी नित्या हो। तुम इनकी अंशस्वरूपा हो या ये ही तुम्हारे अंश हैं; इसका निरूपण किसने किया है? मैं जगत्स्रष्टा ब्रह्मा स्वयं वेदोंका प्राकट्य करनेवाला हूँ। उस वेदको गुरुके मुखसे पढ़कर लोग विद्वान् हो जाते हैं; परंतु वेद अथवा पण्डित तुम्हारे गुणों या स्तोत्रोंका शतांश भी वर्णन करनेमें असमर्थ हैं। फिर दूसरा कौन तुम्हारी स्तुति कर सकता है? स्तोत्रोंका जनक है ज्ञान और सदा ज्ञानकी जननी है बुद्धि। माँ राधे! उस बुद्धिकी भी जननी तुम हो। फिर कौन तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ होगा? जिस वस्तुका सबको प्रत्यक्ष दर्शन हुआ है; उसका वर्णन करनेमें तो कोई भी विद्वान् समर्थ हो सकता है। परंतु जो वस्तु कभी देखने और सुननेमें भी नहीं आयी, उसका निर्वचन (निरूपण) कौन कर सकता है? मैं, महेश्वर और अनन्त कोई भी तुम्हारी स्तुति करनेकी क्षमता नहीं रखते। सरस्वती और वेद भी अपनेको असमर्थ पाते हैं। परमेश्वरि! फिर कौन तुम्हारी स्तुति कर सकता है? मैंने आगमोंका अनुसरण करके तुम्हारे विषयमें जैसा कुछ कहा है, उसके लिये तुम मेरी निन्दा न करना। जो ईश्वरोंके भी ईश्वर परमात्मा हैं, उनकी योग्य और अयोग्यपर भी समान कृपा होती है। जो पालनके योग्य संतान है, उसका क्षण-क्षणमें गुण-दोष प्रकट होता रहता है; परंतु माता और पिता उसके सारे दोषोंको स्नेहपूर्वक क्षमा करते हैं।

यों कहकर जगत्स्रष्टा ब्रह्मा उन दोनोंके सर्ववन्द्य एवं सर्ववाञ्छित चरणकमलोंको प्रणाम करके उनके सामने खड़े हो गये। जो मनुष्य ब्रह्माजीके द्वारा किये गये इस स्तोत्रका तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह निश्चय ही राधा-माधवके चरणोंकी भक्ति एवं दास्य प्राप्त कर लेता है। अपने कर्मोंका मूलोच्छेद करके सुदुर्जय मृत्युको भी जीतकर समस्त लोकोंको लाँघता हुआ वह उत्तम गोलोकधाममें चला जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—ब्रह्माजीकी स्तुति सुनकर श्रीराधाने उनसे कहा—'विधातः! तुम्हारे मनमें जो अभीष्ट हो, वह वर माँग लो।' राधिकाकी बात सुनकर जगत्स्रष्टा ब्रह्माने उनसे कहा—'माँ! तुम दोनोंके चरणकमलोंकी भक्ति ही मेरा अभीष्ट वर है, उसे ही मुझे दे दो।' विधाताके इतना कहते ही श्रीराधाने तत्काल 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तब लोकनाथ ब्रह्माने पुनः भक्ति-भावसे श्रीराधाको प्रणाम किया। उस समय उन्होंने श्रीराधा और श्रीकृष्णके बीचमें अग्निकी स्थापना करके उसे प्रज्वलित किया। फिर श्रीहरिके स्मरणपूर्वक विधाताने विधिसे उस अग्निमें आहुति डाली। इसके बाद श्रीकृष्ण पुष्पशय्यासे उठकर अग्निके समीप बैठे। फिर ब्रह्माजीकी बतायी हुई विधिसे उन्होंने स्वयं हवन किया। तत्पश्चात् श्रीकृष्ण और राधाको प्रणाम करके ब्रह्माजीने स्वयं पिताके कर्तव्यका पालन करते हुए उन दोनोंसे कौतुक (वैवाहिक मङ्गल-कृत्य) कराये और सात बार अग्निदेवकी परिक्रमा करवायी। इसके बाद राधासे अग्निकी परिक्रमा करवाकर श्रीकृष्णको प्रणाम कराके राधाको उनके पास बैठाया। फिर श्रीकृष्णसे राधाका हाथ ग्रहण कराया और माधवसे सात वैदिक मन्त्र पढ़वाये। तत्पश्चात् वेदज्ञ विधाताने श्रीहरिके वक्षःस्थलपर

राधिकाका हाथ रखवाकर राधाके पृष्ठदेशमें श्रीकृष्णका हाथ रखवाया और राधासे तीन वैदिक मन्त्रोंका पाठ करवाया। तदनन्तर ब्रह्माने पारिजातके पुष्पोंकी आजानुलम्बिनी माला श्रीराधाके हाथसे श्रीकृष्णके गलेमें डलवायी। तत्पश्चात् कमलजन्मा विधाताने पुनः श्रीराधा और श्रीकृष्णको प्रणाम करके श्रीहरिके हाथसे श्रीराधाके कण्ठमें मनोहर माला डलवायी। फिर श्रीकृष्णको बैठाया और उनके वामपार्श्वमें मन्द-मन्द मुस्करावी हुई श्रीकृष्णहृदया राधाको भी बैठाया। इसके बाद उन दोनोंसे हाथ जुड़वाकर पाँच वैदिक मन्त्र पढ़वाये। तत्पश्चात् विधाताने पुनः श्रीकृष्णको प्रणाम करके, जैसे पिता अपनी पुत्रीका दान करता है, उसी प्रकार राधिकाको उनके हाथमें सौंप दिया और भक्ति-भावसे वे श्रीकृष्णके सामने खड़े हो गये।

इसी बीचमें आनन्दित और पुलकित हुए देवगण दुन्दुभि, आनक और मुरज आदि बाजे बजाने लगे। विवाहमण्डपके पास पारिजातके फूलोंकी वर्षा होने लगी। श्रेष्ठ गन्धर्वोंने गीत गाये और झुंड-की-झुंड अप्सराएँ नृत्य करने लगीं। ब्रह्माजीने श्रीहरिकी स्तुति की और मुस्कराते हुए उनसे कहा—'आप दोनोंके चरणकमलोंमें मेरी भक्ति बढ़े, यही मुझे दक्षिणा दीजिये।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर स्वयं श्रीहरिने उनसे कहा—ब्रह्मन्! मेरे चरणकमलोंमें तुम्हारी सुदृढ़ भक्ति हो। अब तुम अपने स्थानको जाओ। तुम्हारा कल्याण होगा, इसमें संशय नहीं है। वत्स! मैंने जो कार्य तुम्हारे जिम्मे लगाया है, उसका मेरी आज्ञाके अनुसार पालन करो।

मुने! श्रीकृष्णका यह आदेश सुनकर जगत्-विधाता ब्रह्मा श्रीराधा-कृष्णको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक अपने लोकको चले गये। ब्रह्माजीके चले जानेपर मुस्कराती हुई देवी राधिकाने बाँकी चितवनसे श्रीहरिके मुँहकी ओर देखा और लज्जासे अपना मुँह ढँक लिया। उस समय उनका सर्वाङ्ग पुलकित हो उठा था। वे प्रेमवेदनाका अनुभव कर रही थीं। श्रीहरिको भक्तिभावसे प्रणाम करके श्रीराधा उनकी शय्यापर गयीं। वहाँ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरका अङ्गराग रखा हुआ था। श्रीराधाने श्रीकृष्णके ललाटमें तिलक करके उनके वक्षःस्थलमें चन्दन लगाया। फिर सुधा और मधुसे भरा हुआ मनोहर रत्नपात्र भक्तिपूर्वक श्रीहरिके हाथमें दिया। जगदीश्वर श्रीकृष्णने उस सुधाका पान किया। इसके बाद श्रीराधाने कर्पूर आदिसे सुवासित सुरम्य ताम्बूल श्रीकृष्णको दिया। श्रीहरिने उसे सादर भोग लगाया। फिर श्रीहरिके दिये हुए सुधारसका मुस्कराती हुई श्रीराधाने आस्वादन किया। साथ ही उनके दिये हुए ताम्बूलको भी श्रीहरिके सामने ही खाया। श्रीकृष्णने प्रसन्नतापूर्वक अपना चबाया हुआ पान श्रीराधाको दिया। राधाने बड़ी भक्तिसे उसे खाया और उनके मुखारविन्दमकरन्दका पान किया। इसके बाद मधुसूदनने भी श्रीराधासे उनका चबाया हुआ पान माँगा, परंतु राधाने नहीं दिया। वे हँसने लगीं और बोलीं—'क्षमा कीजिये।' माधवने राधाके हाथसे रत्नमय दर्पण ले लिया और राधिकाने भी माधवके हाथसे बलपूर्वक उनकी मुरली छीन ली। राधाने माधवका और माधवने राधाका मन मोह लिया। प्रेम-मिलनके पश्चात् राधाने प्रसन्नतापूर्वक परमात्मा श्रीकृष्णको उनकी मुरली लौटा दी। श्रीकृष्णने भी राधाको उनका दर्पण और उज्ज्वल क्रीड़ा-कमल दे दिया। उनके केशोंकी सुन्दर वेणी बाँध दी और भालदेशमें सिन्दूरका तिलक लगाया। विचित्र पत्र-रचनासे युक्त सुन्दर वेष सँवारा। उन्होंने जैसी वेष-रचना की, उसे विश्वकर्मा भी नहीं जानते हैं; फिर सखियोंकी तो बात ही क्या है?

जब राधा श्रीकृष्णकी वेष-रचना करनेको उद्यत हुईं, तब वे किशोरावस्थाका रूप त्यागकर पुनः शिशुरूप हो गये। राधाने देखा, बालरूप

श्रीकृष्ण क्षुधासे पीड़ित हो रहे हैं। नन्दने जैसे भयभीत अच्युतको दिया था, उसी रूपमें वे इस समय दिखायी दिये। राधा व्यथित-हृदयसे लंबी साँस खींचकर इधर-उधर उस नव-तरुण श्रीकृष्णको देखने और ढूँढ़ने लगीं। वे शोकसे पीड़ित और विरहसे व्याकुल हो उठीं। उन्होंने कातरभावसे श्रीकृष्णके उद्देश्यसे यह दीनतापूर्ण बात कही—'मायेश्वर! आप अपनी इस दासीके प्रति ऐसी माया क्यों करते हैं?' इतना कहकर राधा पृथ्वीपर गिर पड़ीं और रोने लगीं। उधर बालकृष्ण भी वहीं रो रहे थे। इसी समय आकाशवाणी हुई—'राधे! तुम क्यों रोती हो? श्रीकृष्णके चरणकमलका चिन्तन करो। जबतक रासमण्डलकी आयोजना नहीं होती, तबतक प्रतिदिन रातमें तुम यहाँ आओगी। अपने घरमें अपनी छाया छोड़कर स्वयं यहाँ उपस्थित हो तुम श्रीहरिके साथ नित्य मनोवाञ्छित क्रीड़ा करोगी। अतः रोओ मत। शोक छोड़ो और अपने इन बालरूपधारी प्राणेश्वर मायापतिको गोदमें लेकर घरको जाओ।'[1]

जब आकाशवाणीने सुन्दरी राधाको इस प्रकार आश्वासन दिया, तब उसकी बात सुनकर राधाने बालकको गोदमें उठा लिया और पूर्वोक्त पुष्पोद्यान, वन तथा उत्तम रत्नमण्डपकी ओर पुनः दृष्टिपात किया। इसके बाद राधा वृन्दावनसे तुरंत नन्द-मन्दिरकी ओर चल दीं। नारद! वे देवी मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाली थीं। अतः आधे निमेषमें वहाँ जा पहुँचीं। उनकी वाणी स्निग्ध एवं मधुर थी। आँखें लाल हो गयी थीं। वे यशोदाजीकी गोदमें उस बालकको देनेके लिये उद्यत हो इस प्रकार बोलीं—'मैया! व्रजमें आपके स्वामीने मुझे यह बालक घर पहुँचानेके लिये दिया था। भूखसे आतुर होकर रोते हुए इस स्थूलकाय शिशुको लेकर मैं रास्तेभर यातना भोग रही हूँ। मेरा भीगा हुआ वस्त्र इस बच्चेके शरीरमें सट गया है। आकाश बादलोंसे घिरा हुआ है। अत्यन्त दुर्दिन हो रहा है, मार्गमें फिसलन हो रही है। कीच-काच बढ़ गयी है। यशोदाजी! अब मैं इस बालकका बोझ ढोनेमें असमर्थ हो गयी हूँ। भद्रे! इसे गोदमें ले लो और स्तन देकर शान्त करो। मैंने बड़ी देरसे घर छोड़ रखा है; अतः जाती हूँ। सती यशोदे! तुम सुखी रहो।' ऐसा कह बालक देकर राधा अपने घरको चली गयीं। यशोदाने बालकको घरमें ले जाकर चूमा और स्तन पिलाया। राधा अपने घरमें रहकर बाह्यरूपसे गृहकर्ममें तत्पर दिखायी देती थीं; परंतु प्रतिदिन रातमें वहाँ वृन्दावनमें जाकर श्रीहरिके साथ क्रीड़ा करती थीं। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे शुभद, सुखद तथा मोक्षदायक पुण्यमय श्रीकृष्णचरित्र कहा। अब अन्य लीलाओंका वर्णन करता हूँ, सुनो। (अध्याय १५)

वनमें श्रीकृष्णद्वारा बकासुर, प्रलम्बासुर और केशीका वध, उन सबका गोलोकधाममें गमन, उनके पूर्वजीवनका परिचय, पार्वतीके त्रैमासिक व्रतका सविधि वर्णन तथा नन्दकी आज्ञाके अनुसार समस्त व्रजवासियोंका वृन्दावनमें गमन

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! एक समयकी बात है। माधव—श्रीकृष्ण अन्यान्य बालकों और हलधरके साथ खा-पीकर खेलनेके लिये श्रीवनमें गये। वहाँ मधुसूदनने नाना प्रकारकी बालोचित क्रीड़ाएँ कीं। वह क्रीड़ा समाप्त करके गोपबालकोंके साथ उन्होंने गोधनको आगे बढ़ाया। वहाँ वनमें स्वादिष्ट जल पीकर वे महाबली श्रीकृष्ण उस स्थानसे गोधनसहित

मधुवनमें गये। उस वनमें एक बलवान् और भयंकर दैत्य था, जिसकी आकृति और मुख बड़े विकराल थे। उसका रंग सफेद था। वह पर्वताकार दैत्य बगुलेके आकारमें दिखायी देता था। उसने देखा, गोष्ठमें गौओंका समुदाय है और ग्वालबालोंके साथ केशव और बलराम भी विद्यमान हैं। फिर तो जैसे अगस्त्यने वातापिको उदरस्थ कर लिया था, उसी प्रकार वह दैत्य वहाँ सबको लीलापूर्वक लील गया। श्रीहरि बकासुरके ग्रास बन गये हैं, यह देख सब देवता भयसे काँप उठे। वे संत्रस्त हो हाहाकार करने लगे और हाथोंमें शस्त्र लेकर दौड़े। इन्द्रने दधीचिमुनिकी हड्डियोंका बना हुआ वज्र चलाया; किंतु उसके प्रहारसे बकासुर मर न सका। केवल उसकी एक पाँख जल गयी। चन्द्रमाने हिमपात किया; किंतु उससे उस दानवको केवल सर्दीके कष्टका अनुभव हुआ। सूर्यपुत्र यमने उसपर यमदण्ड मारा; उससे वह कुण्ठित हो गया—हिल-डुल न सका। वायुने वायव्यास्त्र चलाया, उससे वह एक स्थानसे उठकर दूसरे स्थानपर चला गया। वरुणने शिलाओंकी वर्षा की; उससे उसको बहुत पीड़ा हुई। अग्निदेवने आग्नेयास्त्र चलाकर उसकी सभी पाँखें जला दीं। कुबेरके अर्धचन्द्रसे उसके पैर कट गये। ईशानके शूलसे वह असुर मूर्च्छित हो गया। यह देख ऋषि और मुनि भयभीत हो श्रीकृष्णको आशीर्वाद देने लगे। इसी बीचमें श्रीकृष्ण ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो उठे। उन परमेश्वरने बाहर और भीतरसे दैत्यके सारे अङ्गोंमें दाह उत्पन्न कर दिया। तब उन सबका वमन करके उस दानवने प्राण त्याग दिये।

इस प्रकार बकासुरका वध करके बलवान् श्रीकृष्ण ग्वालबालों और गौओंके साथ अत्यन्त मनोहर केलि-कदम्ब-काननमें जा पहुँचे। इसी समय वहाँ वृषरूपधारी प्रलम्ब नामक असुर आ पहुँचा, जो बड़ा बलवान्, महान् धूर्त तथा पर्वतके समान विशालकाय था। उसने दोनों सींगोंसे श्रीहरिको उठाकर वहाँ घुमाना आरम्भ किया। यह देख सब ग्वालबाल इधर-उधर भागने और रोने लगे। परंतु बलवान् बलराम जोर-जोरसे हँसने लगे; क्योंकि वे जानते थे कि मेरा भाई साक्षात् परमेश्वर है। उन्होंने बालकोंको समझाया और कहा—'भय किस बातका है?' इधर मधुसूदनने स्वयं उसके दोनों

सींग पकड़ लिये और उसे आकाशमें घुमाकर भूतलपर दे मारा। दैत्यराज प्रलम्ब पृथ्वीपर गिरकर अपने प्राणोंसे हाथ धो बैठा। यह देख सब गोपबालक हँसने, नाचने और खुशीसे गीत गाने लगे। प्रलम्बासुरका वध करके बलरामसहित परमेश्वर श्रीकृष्ण शीघ्र ही गोचारणके कार्यमें जुट गये। वे गौएँ चराते हुए भाण्डीरवनके पास जा पहुँचे।

उस समय माधवको जाते देख बलवान् दैत्यराज केशीने अपनी टापसे धरतीको खोदते हुए शीघ्र ही इन्हें घेर लिया। उसने श्रीहरिको मस्तकपर चढ़ाकर संतुष्ट हो आकाशमें सौ योजनतक उन्हें उछाल-उछालकर घुमाया और अन्तमें पृथ्वीपर गिर पड़ा। उस पापीने श्रीहरिके

हाथको दाँतसे पकड़ लिया और क्रोधपूर्वक चबाना आरम्भ किया। परंतु श्रीहरिके अङ्ग वज्रके समान कठोर थे। उनके अङ्गका चर्वण करते ही दैत्यके सारे दाँत टूट गये। श्रीकृष्णके तेजसे दग्ध होकर उसने भूतलपर प्राणोंका परित्याग कर दिया। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बजने लगीं और वहाँ फूलोंकी वर्षा आरम्भ हो गयी। इसी बीचमें

दिव्यरूपधारी पार्षद विमानपर बैठे हुए वहाँ आ पहुँचे। उन सबके दो भुजाएँ थीं। वे पीताम्बरधारी, किरीट और कुण्डलसे अलंकृत तथा वनमालासे विभूषित थे। उन्होंने विनोदके लिये हाथमें मुरली ले रखी थी। उनके पैरोंमें मञ्जीरकी मधुर ध्वनि हो रही थी। उन पार्षदोंके सभी अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। वे गोपवेष धारण किये बड़े सुन्दर दिखायी देते थे। उनके प्रसन्नमुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। वे श्रीकृष्णभक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। रत्नोंके सार-तत्त्वसे निर्मित दीप्तिशाली दिव्य रथपर आरूढ़ हो वे भाण्डीरवनमें उस स्थानपर आये, जहाँ श्रीहरि विराजमान थे। उसी समय दिव्य वस्त्र पहने तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित हुए तीन पुरुष आये, जो श्रीहरिको प्रणाम करके उनकी स्तुति करते हुए उसी विमानसे उत्तम गोलोकको चले गये। ये तीनों पहलेके वैष्णव पुरुष थे, जो देह त्यागकर दानवी योनिको प्राप्त हुए थे। वे ही इस समय श्रीकृष्णके हाथों मारे जाकर उनके पार्षद हो गये।

नारदजीने पूछा—महाभाग! ये दिव्य वैष्णव पुरुष कौन थे, जो दैत्यरूप हो गये थे? इस बातको बताइये। यह कैसी परम अद्भुत बात सुननेको मिली है?

भगवान् नारायण बोले—ब्रह्मन्! सुनो। मैं इसका प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ। मैंने पुष्करतीर्थमें सूर्यग्रहणके अवसरपर साक्षात् महेश्वरके मुखसे इस विषयको सुना था। श्रीहरिके गुण-कीर्तनके प्रसङ्गमें भगवान् शंकरने यह कथा कही थी। गन्धमादन पर्वतपर गन्धर्वराज गन्धवाह रहा करते थे। वे श्रीहरिकी सेवामें तत्पर रहनेवाले महान् तपस्वी और श्रेष्ठ संत थे। मुने! उनके चार पुत्र हुए, जो गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ समझे जाते थे। वे सोते और जागते समय दिन-रात श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ही चिन्तन करते रहते थे। वे सभी दुर्वासाके शिष्य थे और श्रीकृष्णकी आराधनामें लगे रहते थे। प्रतिदिन कमल चढ़ाकर श्रीहरिकी पूजा करनेके पश्चात् ही जल पीते थे। उन चारोंके नाम इस प्रकार हैं—वसुदेव, सुहोत्र, सुदर्शन और सुपार्श्व। वे चारों श्रेष्ठ वैष्णव थे और पुष्करमें तपस्या करते थे। चिरकालतक तपस्या करनेके पश्चात् उन्होंने मन्त्रको सिद्ध कर लिया था। उन चारोंमें जो ज्येष्ठ वसुदेव था, वह दुर्वासासे योग्य शिक्षा पाकर योगियोंमें श्रेष्ठ और सिद्ध हो गया। उसने विवाह नहीं किया। वह ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो तत्काल देह त्यागकर श्रीकृष्णका पार्षद हो गया। एक दिन वे तीनों भाई चित्रसरोवरके तटपर गये। वे सूर्योदयकालमें श्रीहरिकी पूजाके लिये कमल लेना चाहते थे। मुने! कमलोंका संग्रह

करके जाते हुए उन वैष्णवोंको जब भगवान् शंकरके सेवकोंने देखा, तब वे सब उन्हें बाँधकर अपने साथ ले गये। शंकरके सेवक शरीरसे बलिष्ठ थे; अतः उन दुर्बल वैष्णवोंको पकड़कर उन्हें शंकरजीके पास ले गये। भगवान् शंकरको देखकर उन सब वैष्णवोंने भूतलपर माथा टेक उन्हें प्रणाम किया। शिवजी उन्हें उत्तम आशीर्वाद दे शीघ्र ही उनसे वार्तालापके लिये उद्यत हुए। उस समय उनके प्रसन्नमुखपर मुस्कराहट खेल रही थी और वे उन भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर हो चुके थे।

भगवान् शिवने पूछा—पार्वतीके सरोवरमें प्रवेश करके कमल लेनेवाले तुमलोग कौन हो? पार्वतीके व्रतकी पूर्तिके लिये एक लाख यक्ष उस सरोवरकी रक्षा करते हैं। पार्वती पतिविषयक सौभाग्यकी वृद्धिके लिये जब त्रैमासिक व्रत आरम्भ करती हैं, तब वे लगातार तीन महीनेतक श्रीहरिको भक्तिभावसे प्रतिदिन एक सहस्र कमल चढ़ाती हैं।

भगवान् शिवका यह वचन सुनकर वे तीनों वैष्णव भयभीत हो भक्तिसे मस्तक झुका हाथ जोड़कर बोले।

गन्धर्वोंने कहा—प्रभो! हमलोग गन्धर्वराज गन्धवाहके पुत्र गन्धर्वोंमें श्रेष्ठ हैं। महेश्वर! हम लोग प्रतिदिन श्रीहरिको कमल चढ़ाकर ही जल पीते हैं। हे नाथ! हम यह नहीं जानते थे कि पार्वतीके द्वारा इस सरोवरकी रक्षा की जाती है। आप यह सारे कमल ले लीजिये और अपने व्रतको सफल बनाइये। महादेव! हम आज कमल नहीं चढ़ायेंगे और जल भी नहीं पीयेंगे। हमने आपको ही वे कमल अर्पित कर दिये। जिनके चरण-कमलका प्रतिदिन चिन्तन करके हम कमलसे पूजा करते हैं, आज साक्षात् उन्हींको कमल अर्पण करके हम सब-के-सब पवित्र हो गये। प्रभो! ब्रह्म एक ही है, दूसरा नहीं है। उनके कहाँ देह और कहाँ रूप? भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही भगवान् शरीर धारण करते हैं। रूप-भेद मायासे ही प्रतीत होता है। प्रभो! आप ये कमल ले लीजिये; क्योंकि आप ही हमारे प्रभु हैं। अच्युत! हमारा हृदय जिसके ध्यानसे परिपूर्ण है; आप अपने उसी रूपका हमें दर्शन कराइये। जिसकी दो भुजाएँ हैं; कमनीय किशोर अवस्था है; श्यामसुन्दर रूप है; हाथमें विनोदकी साधनभूता मुरली है; जो पीताम्बरधारी है; जिसके एक मुख और दो नेत्र हैं, वे चन्दन और अगुरुसे चर्चित हैं; जिसके प्रसन्नमुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही है; जो रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित है। जिसका वक्षःस्थल मणिराज कौस्तुभकी कान्तिसे अत्यन्त उज्ज्वल दिखायी देता है; जिसकी चूड़ामें मोरका पंख लगा है; जो मालतीकी मालासे विभूषित है; पारिजातके फूलोंके हारोंसे अलंकृत है; करोड़ों कन्दर्पोंके लावण्यका मनोहर लीलाधाम है; समूह-की-समूह गोपियाँ मन्द मुस्कान और बाँकी चितवनसे जिसकी ओर देखा करती हैं; जो नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा राधाके वक्षःस्थलपर विराजमान है; ब्रह्मा आदि जिसकी स्तुति करते हैं; जो सबके लिये वन्दनीय, चिन्तनीय और वाञ्छनीय है और जो स्वात्माराम, पूर्णकाम तथा भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर रहनेवाला है;—आपके उसी रूपका हम दर्शन करना चाहते हैं। ऐसा कहकर वे श्रेष्ठ गन्धर्व भगवान् शंकरके सामने खड़े हो गये।

श्रीकृष्णके रूपका वर्णन सुनकर भगवान् शंकरके श्रीअङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे गन्धर्वोंकी उक्त बातें सुनकर उनसे इस प्रकार बोले—'मैंने यह जान लिया था कि तुम लोग श्रेष्ठ वैष्णव हो और अपने चरणकमलोंकी धूलसे पृथ्वीको पवित्र करनेके लिये भ्रमण कर रहे हो। मैं श्रीकृष्णभक्तके दर्शनकी सदा ही इच्छा करता रहता हूँ; क्योंकि साधु-संत तीनों लोकोंमें

दुर्लभ हैं। तुम लोग मुझे पार्वती और देवताओंसे भी बढ़कर सदा प्रिय हो। मुझे वैष्णवजन अपने तथा अपने भक्तोंसे भी अधिक प्रिय हैं। परंतु मैंने पूर्वकालमें जो प्रतिज्ञा कर रखी है, वह भी व्यर्थ नहीं होनी चाहिये। महाभाग वैष्णवो! सुनो। मैंने कह रखा है कि पार्वतीके व्रतके समय जो लोग किसी अन्य व्रतके निमित्त इस सरोवरसे कमल ले जायँगे वे शीघ्र ही आसुरी योनिको प्राप्त होंगे, इसमें संशय नहीं है। श्रीकृष्णके भक्तोंका कहीं भी अशुभ नहीं होता है। तुम लोग पहले दानवी योनिमें पड़कर फिर निश्चय ही गोलोकमें पधारोगे। तुम्हारे मनमें श्रीकृष्णके रूपका प्रत्यक्ष दर्शन करनेके लिये उत्कण्ठा है। अतः बच्चो! तुम्हें भारतवर्षके वृन्दावनमें उस रूपका अवश्य दर्शन होगा। श्रीकृष्णको देखकर उन्हींके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो तुम वैष्णवशिरोमणि बन जाओगे और दिव्य विमानपर आरूढ़ हो हरिधामको पधारोगे। तुम लोग अभी यहाँ उस वाञ्छनीय रूपको देखनेके लिये उत्सुक हो। अतः यह सब देखो।'

ऐसा कहकर भगवान् शिवने उन्हें उस रूपके दर्शन कराये। उस रूपके दर्शन करके उन वैष्णवोंके नेत्रोंमें आँसू भर आये। वे सर्वरूपी श्रीहरिको प्रणाम करके दानवी योनिमें चले गये। इसलिये वे दानवेश्वर हुए। वसुदेव तो पहले ही मुक्त हो चुका था। सुहोत्र बकासुर, सुदर्शन प्रलम्ब और स्वयं सुपार्श्व केशी हुआ था। भगवान् शंकरके वरदानसे श्रीहरिके परम उत्तम रूपके दर्शन करके उन्हींके हाथसे मृत्युको प्राप्त हो वे उनके परम धाममें चले गये। विप्रवर! श्रीहरिका यह अद्भुत चरित्र कहा गया। बक, केशी और प्रलम्बके उद्धारका यह प्रसङ्ग वाचकों और श्रोताओंको मोक्ष प्रदान करनेवाला है।

नारदजीने पूछा—महाभाग! आपके कृपा-प्रसादसे यह सारी अद्भुत बात मैंने सुनी। अब मैं यह सुनना चाहता हूँ कि पार्वतीने कौन-सा व्रत किया था? उस व्रतके आराध्यदेव कौन हैं? उसका फल क्या है और उसमें पालन करनेयोग्य नियम क्या है? भगवन्! उस व्रतके लिये उपयोगी द्रव्य कौन-कौन-से हैं? कितने समयतक वह व्रत किया जाता है और उसकी प्रतिष्ठामें क्या-क्या करना आवश्यक होता है? प्रभो! भलीभाँति विचारकर बताइये। इसे सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।

श्रीनारायण बोले—मुने! यह 'त्रैमासिक' नामक व्रत है, जो नारीके पतिविषयक सौभाग्यको बढ़ानेवाला है। इस व्रतके आराध्य देवता हैं—राधिकासहित भगवान् श्रीकृष्ण। उत्तरायणके विषुव[1] योगमें इसका आरम्भ होता है और दक्षिणायन आरम्भ होनेतक इसकी समाप्ति हो जाती है। वैशाखकी संक्रान्तिसे एक दिन पहले संयमपूर्वक रहकर निश्चय ही हविष्यका सेवन करे। फिर वैशाखकी संक्रान्तिके दिन स्नान करके गङ्गातटपर व्रतका संकल्प ले। तदनन्तर व्रती पुरुष कलशपर, मणिमें, शालग्राम-शिलामें अथवा जलमें राधासहित श्रीकृष्णका पूजन करे। पहले पाँच देवताओंकी पूजा करके भक्तिभावसे राधावल्लभ श्रीकृष्णका ध्यान करे। उनके सामवेदोक्त ध्यानका वर्णन करता हूँ, सुनो। भगवान् श्रीकृष्णकी अङ्गकान्ति सजल जलधरके समान श्याम है। वे रेशमी पीताम्बर धारण करते हैं। उनका मुख शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान मनोहर है। उसपर मन्द हासकी प्रभा फैल रही है। नेत्र शरद् ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत कर रहे हैं। उनमें सुन्दर अञ्जन लगा हुआ है। वे गोपियोंके मनको बारंबार मोहते रहते हैं। राधा उनकी ओर देख रही हैं। वे राधाके वक्षःस्थलमें विराजमान हैं। ब्रह्मा, अनन्त, शिव और धर्म आदि देवता उनकी स्तुति करते हैं।

१-ज्योतिषके अनुसार वह समय जब कि सूर्य विषुव रेखापर पहुँचता है और दिन-रात दोनों बराबर होते हैं।

इस प्रकार श्रीकृष्णका ध्यान करके व्रती पुरुष उस ध्यानके द्वारा ही उनका सानन्द आवाहन करे। इसके बाद वह राधाका ध्यान करे। यह ध्यान यजुर्वेदकी माध्यन्दिनशाखामें वर्णित है। राधा रासेश्वरी हैं, रमणीया हैं और रासोल्लास-रसके लिये उत्सुक रहती हैं। रासमण्डलके मध्यभागमें उनका स्थान है। वे रासकी अधिष्ठात्री देवी हैं। रासेश्वरके वक्षःस्थलमें वास करती हैं। रासकी रसिका हैं। रसिकशेखर श्यामसुन्दरकी प्रिया हैं। रसिकाओंमें श्रेष्ठ हैं। सुरम्य रमारूपिणी हैं। प्रियतमके साथ रमणके लिये उत्सुक रहती हैं। उनके नेत्र शरत्कालके प्रफुल्ल कमलोंकी शोभाको तिरस्कृत करते हैं। वे बाँकी भौंहोंसे सुशोभित होती हैं। उनके नेत्रोंमें सुरमा शोभा पा रहा है। शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति सुन्दर मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभाके कारण उनकी मनोहरता बहुत बढ़ गयी है। मनोहर चम्पाके समान उनकी अङ्गकान्ति सुनहरी दिखायी देती है। चन्दन, कस्तूरीकी बेंदी तथा सिन्दूर-बिन्दुसे उनका शृङ्गार किया गया है। कपोलोंपर मनोहर पत्रावलीकी रचना शोभा देती है। अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्रसे उनकी उज्ज्वलता बढ़ गयी है। उत्तम रत्नोंद्वारा निर्मित कुण्डलोंकी कान्तिसे उनके सुन्दर कपोल प्रकाशित हो रहे हैं। रत्नेन्द्रसाररचित हारसे वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा है। रत्ननिर्मित कङ्कण, केयूर तथा किङ्किणी रत्नसे उनके अङ्गोंकी अपूर्व शोभा हो रही है। उत्तम रत्नोंकि सारतत्त्वसे रचित मञ्जीरोंकी झनकारसे उनके दोनों चरण सुशोभित होते हैं। ब्रह्मा आदिके भी सेवनीय श्रीकृष्ण स्वयं ही उनकी सेवा करते हैं। सर्वेश्वरके द्वारा उनकी स्तुति की जाती है तथा वे सबकी कारणस्वरूपा हैं। ऐसी श्रीराधाका मैं भजन करता हूँ। इस प्रकार ध्यान करके श्रीकृष्णके साथ उनका पूजन करे*।

प्रतिदिन भक्तिभावसे सोलह उपचार चढ़ाकर पूजा करे। व्रती पुरुष प्रत्येक उपचारको पृथक्-पृथक् करके सबको बारी-बारीसे प्रसन्नतापूर्वक अर्पित करे। मुने! नित्यप्रति एक सौ आठ दिव्य सहस्रदल कमल लेकर उनकी एक सौ आठ आहुतियाँ दे। भक्तिभावसे 'कृष्णाय स्वाहा' इस मन्त्रका उच्चारण करके यत्नपूर्वक वे आहुतियाँ देनी चाहिये। आम और केलेके कच्चे या पके फलको लेकर उसकी एक सौ आठ आहुतियाँ भक्तिभावसे दे। फल अखण्ड होने चाहिये। मुने! प्रतिदिन सौ ब्राह्मणोंको भक्तिपूर्वक भोजन करावे। व्रतीको नित्य एक सौ आठ आहुतियोंका हवन करना चाहिये। वे आहुतियाँ भक्तिपूर्वक शर्करासहित श्रीकृष्णको देनी चाहिये। नारद! घृतमिश्रित तिलसे भी हवन करे। नित्य बाजे बजावे और श्रीहरिका कीर्तन करावे।

तीन मासतक इस नियमका पालन करके उसके बाद व्रतकी प्रतिष्ठा करे। नारद! प्रतिष्ठाके

---

* ध्यायेत् तदा राधिकां च ध्यानं माध्यन्दिनेरितम्। राधां रासेश्वरीं रम्यां रासोल्लासरसोत्सुकाम्॥
रासमण्डलमध्यस्थां रासाधिष्ठातृदेवताम्। रासेशवक्षःस्थलस्थां रसिकां रसिकप्रियाम्॥
रसिकप्रवरां रम्यां रमां च रमणोत्सुकाम्। शरत्पङ्कजराजीनां प्रभामोचनलोचनाम्॥
वक्रभ्रूभङ्गसंयुक्तामञ्जनेनैव रञ्जिताम्। शरत्पार्वणचन्द्रास्यामीषद्धास्यमनोहराम्॥
चारुचम्पकवर्णाभां चन्दनेन विभूषिताम्। कस्तूरीबिन्दुना सार्द्धं सिन्दूरबिन्दुना युताम्॥
चारुपत्रावलीयुक्तां वह्निशुद्धांशुकोज्ज्वलाम्। सद्रत्नकुण्डलाभ्यां च सुकपोलस्थलोज्ज्वलाम्॥
रत्नेन्द्रसारहारेण वक्षःस्थलविराजिताम्। रत्नकङ्कणकेयूरकिङ्किणीरत्नरञ्जिताम्॥
सद्रत्नसाररचितक्वणन्मञ्जीररञ्जिताम्। ब्रह्मादिभिश्च सेव्येन श्रीकृष्णेनैव सेविताम्॥
सर्वेशेन स्तूयमानां सर्वबीजां भजाम्यहम्। इति ध्यात्वा च कृष्णेन सहितां तां च पूजयेत्॥
(२६। ८८—९३)

दिन जो विधान आवश्यक है, उसे सुनो। विप्रवर! नब्बे हजार अक्षत कमलकी आहुति दे और यत्नपूर्वक नौ हजार ब्राह्मणोंको उत्तम, स्वादिष्ट एवं मीठे अन्न भोजन करावे। नौ हजार सात सौ बीस फल तथा नाना प्रकारके मनोहर द्रव्यका नैवेद्य अर्पण करे। इसके बाद संस्कारयुक्त अग्निकी स्थापना करके विद्वान् पुरुष होम करे। घृतयुक्त तिलकी नब्बे हजार आहुतियाँ देकर ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे वस्त्र, भोजन, यज्ञोपवीत और फलसहित अन्न और तिलके लड्डू दे। उन लड्डुओंको गन्ध-पुष्पसे अर्चित करके देना चाहिये। साथ ही शीतल जलसे भरे हुए नब्बे कलशोंका भी दान करना चाहिये। इस प्रकार व्रत करके ब्राह्मणको दक्षिणा देनी चाहिये। दक्षिणाका परिमाण वही है, जो वेदोंमें बताया गया है। एक हजार बैल हों और उनके सींगोंमें सोना मढ़ा गया हो। ब्रह्मन्! इस प्रकार 'त्रैमासिक' व्रत बताया गया। इस व्रतका अनुष्ठान कर लिया जाय तो यह विशिष्ट संतति देनेवाला और पतिसौभाग्यकी वृद्धि करनेवाला होता है। इस व्रतके प्रभावसे सौ जन्मोंतक नारीका अखण्ड सौभाग्य बना रहता है और निश्चय ही वह सौ जन्मोंतक सत्पुत्रकी जननी होती है। उसका कभी पति और पुत्रसे वियोग नहीं होता। पुत्र दासकी भाँति उसकी आज्ञाका पालक होता है तथा पति भी उसकी बातको माननेवाला होता है। वह सती नारी प्रतिक्षण श्रीराधा-कृष्णकी भक्तिसे सम्पन्न होती है। व्रतके प्रभावसे उसको ज्ञान तथा श्रीहरिकी स्मृति प्राप्त होती है। इस सामवेदोक्त व्रतका पूर्वकालमें हम दोनोंने भी पालन किया था। ब्रह्मन्! दूसरी स्त्रियोंद्वारा इस व्रतका अनुष्ठान होता देख पार्वतीदेवीने प्रसन्नतापूर्वक दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे सिर झुकाकर भगवान् शंकरसे कहा।

पार्वती बोलीं—जगन्नाथ! आज्ञा कीजिये। मैं उत्तम व्रतका पालन करूँगी। हम दोनोंके इष्टदेव श्रीहरिके व्रतोंमें यह श्रेष्ठ व्रत है। नाथ! श्रीहरिकी आराधना समस्त मङ्गलोंकी कारणरूपा है। यज्ञ, दान, वेदाध्ययन, तीर्थसेवन और पृथ्वीकी परिक्रमा—ये सब श्रीहरिकी आराधनाकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। जिसके बाहर और भीतर प्रतिक्षण श्रीहरिकी स्मृति बनी रहती है, उस जीवन्मुक्त पुरुषके दर्शनसे ही मुक्ति प्राप्त हो जाती है। उसके चरणकमलोंकी धूल पड़नेसे वसुधा उसी क्षण शुद्ध हो जाती है तथा उसके दर्शनमात्रसे तीनों लोक पवित्र हो जाते हैं। ब्रह्मा, विष्णु, धर्म, शेषनाग, आप महेश्वर और गणेश—ये सब लोग जिनके चरणकमलोंका चिन्तन करते-करते उन्हींके समान महातेजस्वी हो गये हैं। जो जिसका सदा ध्यान करता है, वह निश्चय ही उसे प्राप्त कर लेता है। इतना ही नहीं—ध्याता पुरुष गुण, तेज, बुद्धि और ज्ञानकी दृष्टिसे अपने ध्येयके समान ही हो जाता है। श्रीकृष्णके चिन्तन, तप, ध्यान और सेवासे मैंने आप-जैसा स्वामी और पुत्र भी प्राप्त किया है। मुझे अनायास ही सब कुछ मिल गया। मेरा मनोरथ पूर्ण हो गया। मुझे आप-जैसे स्वामी मिले। कार्तिकेय और गणेश-जैसे पुत्र प्राप्त हुए तथा श्रीकृष्णके अंशस्वरूप हिमवान्-जैसे पिता मिले। प्रभो! मेरे लिये कौन-सी वस्तु दुर्लभ है?

पार्वतीकी यह बात सुनकर भगवान् शंकर बहुत प्रसन्न हुए। उनका शरीर पुलकित हो उठा और वे हँसकर मधुर वाणीमें बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—ईश्वरि! तुम महालक्ष्मीस्वरूपा हो। तुम्हारे लिये क्या असाध्य है? तुम सर्वसम्पत्स्वरूपा और अनन्तशक्तिरूपिणी हो। देवि! तुम जिसके घरमें हो, वह सम्पूर्ण ऐश्वर्यका भाजन है। शुभप्रदे! मैं, ब्रह्मा और विष्णु तुममें भक्ति रखकर तुम्हारे कृपाप्रसादसे ही संसारकी सृष्टि, पालन और संहारमें समर्थ हुए हैं। हिमालय कौन है? मेरी क्या बिसात है

और कार्तिकेय तथा गणेश क्या हैं? तुम्हारे बिना हम सब लोग असमर्थ हैं और तुम्हारा सहयोग पाकर हम सभी सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। जो पतिव्रताके योग्य है और जो प्राचीनकालसे श्रुतिमें सुनी गयी है, वह आज्ञा परमेश्वरकी आज्ञा है। पतिव्रते! उस ईश्वरीय आज्ञाको स्वीकार करके तुम व्रतका पालन करो। अबतक जिन स्त्रियोंने इस व्रतका पालन किया है, उन सबकी अपेक्षा विलक्षण ढंगसे तुम इस त्रैमासिक व्रतका अनुष्ठान करो। इस व्रतमें भगवान् सनत्कुमार तुम्हारे पुरोहित हों। सुन्दरि! इसमें जितने कमलों, ब्राह्मणों और द्रव्योंकी आवश्यकता हो, उन सबको देनेके लिये मैं उद्यत हूँ। तुम कुबेरको द्रव्यकोशका संरक्षक नियत करो। इस व्रतमें दानाध्यक्ष मैं रहूँगा और स्वयं भगवती लक्ष्मी धन देनेवाली होंगी। अग्निदेव वेदका पाठ करेंगे, वरुण-देवता जल देंगे, यक्षलोग वस्तुओंको ढोकर लानेका काम करेंगे और स्कन्द उनके अध्यक्ष रहेंगे। इस व्रतमें स्थानको झाड़-बुहारकर शुद्ध करनेका काम स्वयं वायुदेव करेंगे। इन्द्र रसोई परोसेंगे। चन्द्रमा व्रतके अधिष्ठापक होंगे। प्रिये! सूर्यदेव दानका निर्वचन करेंगे; योग्यायोग्यकी यथोचित व्याख्या करेंगे। सुन्दरि! व्रतके लिये जो उपयोगी और नियमित द्रव्य हो, उसे देकर उससे भी अधिक फल-फूल तुम श्रीहरिकी सेवामें समर्पित करो। व्रतमें जितने ब्राह्मणोंको भोजन करानेका नियम है, उतनोंको भोजन कराकर तुम उससे भी अधिक असंख्य ब्राह्मणोंको भक्तिभावसे भोजनके लिये निमन्त्रित करो। समाप्तिके दिन सुवर्ण, रत्न, मोती और मूँगा आदि व्रतोक्त दक्षिणा देकर सारा धन ब्राह्मणोंको बाँट दो।

ऐसा कहकर भगवान् शंकरने पार्वतीसे उस व्रतका अनुष्ठान करवाया। पार्वतीने सब स्त्रियोंकी अपेक्षा विलक्षण रूपसे उस व्रतका सम्पादन किया। नारद! इस प्रकार पार्वतीजीने जो व्रत किया था, वह सब मैंने कह सुनाया। पार्वतीके व्रतमें ब्राह्मणलोग रत्न ढोकर ले जानेमें असमर्थ हो गये। नारद! यह सारा इतिहास तो तुमने सुन लिया, अब जिसका प्रकरण चल रहा है, वह श्रीकृष्णका बालचरित्र सुनो।

यह श्रीकृष्णकी बाललीला पद-पदमें नयी-नयी प्रतीत होगी। पूर्वोक्त दानवेन्द्रोंका वध करके श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ गोकुलमें अपने घरको गये, जो कुबेरभवनके समान समृद्धिशाली था। वहाँ बालकोंने प्रसन्नतापूर्वक सब लोगोंसे मनमें घटित घटनाओंकी बातें बतायीं। यह सुनकर सब लोग चकित रह गये, किंतु नन्दजीको बड़ा भय हुआ। उन्होंने वृद्ध गोपों तथा बड़ी-बूढ़ी गोपियोंको घरपर बुलवाया और उन सबके साथ समयोचित कर्तव्यका विचार करके उक्त संकटसे बचनेके लिये युक्ति ढूँढ़ निकाली। युक्ति निश्चित करके गोपराज उस स्थानका त्याग कर देनेको उद्यत हो गये। मुने! उन्होंने उसी क्षण सबको वृन्दावनमें चलनेकी आज्ञा दी। नन्दजीकी आज्ञा सुनकर सब लोग वहाँ जानेको उद्यत हो गये। गोप, गोपियाँ, बालक, बालिकाएँ—सब इस नयी यात्राके लिये तैयार हो गये। समस्त ग्वाल-बाल श्रीकृष्ण और हलधरके साथ प्रसन्नतापूर्वक चल दिये। अनेक प्रकारकी वेशभूषावाले वे बालक गीत गाते हुए जा रहे थे। कोई बंशीकी तान छेड़ते थे तो कोई सींग बजाते थे। किन्हींके हाथोंमें करताल थे। कुछ लोगोंने अपने हाथोंमें वीणा ले रखी थी। किन्हींके हाथोंमें शरयन्त्र थे तो किन्हींके सिंगे। कुछ गोपबालकोंने अपने कानोंमें नये पल्लव पहन रखे थे। कितनोंने अधखिले कमल और दूसरे-दूसरे फूल धारण कर रखे थे। किन्हींके हाथोंमें फूलोंके नये-नये गजरे थे। कुछ लोगोंने आजानुलम्बिनी वनमाला गलेमें डाल रखी थी। कुछ बालकोंने पल्लवों तथा फूलोंसे अपनी

चोटियाँ सजा रखी थीं। विप्रवर! सब ग्वाल-बाल, तरुण अवस्थावाली गोपियोंके यूथ और बड़ी-बूढ़ी गोपियोंकी अपार संख्या थी।

मुने! श्रीराधाकी जो सुशीला आदि सहेली गोपियाँ थीं, वे नाना प्रकारके अलंकारोंसे विभूषित हो बड़ी भव्य दिखायी देती थीं। दिव्य वस्त्र धारण कर हर्षसे मुस्कराती हुई वे सब-की-सब वृन्दावनकी ओर चलीं। कोई शिबिकापर सवार थीं तो कोई रथपर। राधिकादेवी रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित हो सुवर्णमय उपकरणोंसे युक्त रथपर बैठकर उन सब सहेलियोंके साथ यात्रा कर रही थीं। यशोदा और रोहिणीजी भी रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत हो सुवर्णमय उपकरणोंसे सुसज्जित रथपर चढ़कर आ रही थीं। नन्द, सुनन्द, श्रीदामा, गिरिभानु, विभाकर, वीरभानु और चन्द्रभानु—ये प्रमुख गोपगण हाथीपर बैठकर सानन्द यात्रा कर रहे थे। श्रीकृष्ण और बलदेव दोनों भाई रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित हो सुवर्णमय रथपर बैठकर बड़े हर्षके साथ वृन्दावनकी ओर जा रहे थे। कोटि-कोटि

बूढ़े और जवान गोप उस यात्रामें सम्मिलित थे। कोई घोड़ेपर सवार थे, कोई हाथियोंपर बैठे थे और कितने ही रथपर चढ़कर यात्रा करते थे। नन्दके सेवक उद्धत गोपगण बड़े हर्षके साथ चल रहे थे। उनमेंसे कुछ लोग बैलोंपर सवार थे। वे सब-के-सब संगीतकी तानमें तत्पर थे। राधिकाकी दूसरी-दूसरी दासियाँ बहुत बड़ी संख्यामें यात्रा कर रही थीं, उनके मनमें बड़ा उल्लास था। मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी और वे सब-की-सब सोनेके गहनोंसे सजी थीं। उनमेंसे कितनोंके हाथमें सिन्दूर थे, कितनी ही काजल लेकर चल रही थीं। किन्हींके हाथोंमें कन्दुक थे तो किन्हींके पुतलियाँ। कुछ सुन्दरी दासियाँ अपने हाथोंमें भोग-द्रव्य और क्रीड़ा-द्रव्य लेकर चल रही थीं। किन्हींके हाथोंमें वेषरचनाकी सामग्री थी तो किन्हींके हाथोंमें फूलोंकी मालाएँ। कुछ गोपियाँ हाथोंमें वीणा आदि वाद्य लिये सानन्द यात्रा कर रही थीं। कुछ अपने साथ अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्रोंका भार लिये चल रही थीं। कितनी ही चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरका द्रव ले आ रही थीं। कोई संगीतमें मग्न थीं तो कोई विचित्र कथाएँ कह रही थीं। उस समय कोटि-कोटि शिबिकाएँ, रथ, घोड़े, गाड़ियाँ, बैल और लाखों हाथी आदि चल रहे थे। मुने! वृन्दावनमें पहुँचकर सबने उसे गृहशून्य देखा। तब वे सभी लोग वृक्षोंके नीचे यथास्थान ठहर गये। उस समय श्रीकृष्णने गोपोंको अभीष्ट गृह और गौओंके ठहरनेके स्थान बताते हुए कहा—'आज इसी तरह ठहरो। कल सब व्यवस्था हो जायगी।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर गोपोंने पूछा—'कन्हैया! यहाँ कहाँ घर हैं?' उनका यह प्रश्न सुनकर श्रीकृष्ण बोले—'इस स्थानपर बहुत-से स्वच्छ गृह हैं, जिन्हें देवताओंने बनाया है; परंतु उन देवताओंको प्रसन्न किये बिना कोई भी गृह हमारी दृष्टिमें नहीं आ सकते। अतः गोपगण! आज वनदेवताओंकी पूजा करके बाहर ही ठहरो। प्रातःकाल तुम्हें यहाँ निश्चय ही बहुत-से रमणीय गृह दिखायी देंगे। धूप, दीप, नैवेद्य, भेंट, पुष्प और चन्दन आदिके

द्वारा वटके मूलभागमें स्थित चण्डिकादेवीकी पूजा करो।'

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर गोपोंने दिनमें देवताओंकी पूजा करके भोजन आदि किये और रातमें वहीं प्रसन्नतापूर्वक शयन किया।

(अध्याय १६)

विश्वकर्माका आगमन, उनके द्वारा पाँच योजन विस्तृत नूतन नगरका निर्माण, वृषभानु गोपके लिये पृथक् भवन, कलावती और वृषभानुके पूर्वजन्मका चरित्र, राजा सुचन्द्रकी तपस्या, ब्रह्माद्वारा वरदान, भनन्दनके यहाँ कलावतीका जन्म और वृषभानुके साथ उसका विवाह, विश्वकर्माद्वारा नन्द-भवनका, वृन्दावनके भीतर रासमण्डलका तथा मधुवनके पास रत्नमण्डपका निर्माण, 'वृन्दावन' नामका कारण, राजा केदारका इतिहास, तुलसीसे वृन्दावन नामका सम्बन्ध तथा राधाके सोलह नामोंमें 'वृन्दा' नाम, राधा नामकी व्याख्या, नींद टूटनेपर नूतन नगर देख व्रजवासियोंका आश्चर्य तथा उन सबका उन भवनोंमें प्रवेश

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! रातमें वृन्दावनके भीतर सब व्रजवासी और नन्दरायजी सो गये। निद्राके स्वामी श्रीकृष्ण भी माता यशोदाके वक्षःस्थलपर प्रगाढ़ निद्राके वशीभूत हो गये। रमणीय शय्याओंपर सोयी हुई गोपियाँ भी निद्रित हो गयीं। कोई शिशुओंको गोदमें लेकर, कोई सखियोंके साथ सटकर, कोई छकड़ोंपर और कोई रथोंपर ही स्थित होकर निद्रासे अचेत हो गयीं। पूर्णचन्द्रमाकी चाँदनी फैल जानेसे अब वृन्दावन स्वर्गसे भी अधिक मनोहर प्रतीत होने लगा, नाना प्रकारके कुसुमोंका स्पर्श करके बहनेवाली मन्द-मन्द वायुसे सारा वन-प्रान्त सुवासित हो उठा तथा समस्त प्राणी निश्चेष्ट होकर सो गये, तब रात्रिकालिक पञ्चम मुहूर्तके बीत जानेपर शिल्पियोंके गुरुके भी गुरु भगवान् विश्वकर्मा वहाँ आये। उन्होंने दिव्य एवं महीन वस्त्र पहन रखा था। उनके गलेमें मनोहर रत्नमाला शोभा दे रही थी। वे अनुपम रत्ननिर्मित अलंकारोंसे अलंकृत थे। उनके कानोंमें कान्तिमान् मकराकृत कुण्डल झलमला रहे थे। वे ज्ञान और अवस्थामें वृद्ध होनेपर भी किशोरकी भाँति दर्शनीय थे। अत्यन्त सुन्दर, तेजस्वी तथा कामदेवके समान कान्तिमान् थे।

उनके साथ विशिष्ट शिल्पकलामें निपुण तीन करोड़ शिल्पी थे। उन सबके हाथोंमें मणिरत्न, हेमरत्न तथा लोहनिर्मित अस्त्र थे। कुबेर-वनके किङ्कर यक्षसमुदाय भी वहाँ आ पहुँचे। वे स्फटिकमणि तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थे। किन्हीं-किन्हींके कंधे बहुत बड़े थे। किन्हींके हाथोंमें पद्मरागमणिके ढेर थे तो किन्हींके हाथोंमें इन्द्रनीलमणिके। कुछ यक्षोंने अपने हाथोंमें स्यमन्तकमणि ले रखी थी और कुछ यक्षोंने चन्द्रकान्तमणि। अन्य बहुत-से यक्षोंके हाथोंमें सूर्यकान्तमणि और प्रभाकरमणिके ढेर प्रकाशित

हो रहे थे। किन्हींके हाथोंमें फरसे थे तो किन्हींके लोहसार। कोई-कोई गन्धसार तथा श्रेष्ठ मणि लेकर आये थे। किन्हींके हाथमें चँवर थे और कुछ लोग दर्पण, स्वर्णपात्र और स्वर्ण-कलश आदिके बोझ लेकर आये थे।

विश्वकर्माने वह अत्यन्त मनोहर सामग्री देखकर सुन्दर नेत्रोंवाले श्रीकृष्णका ध्यान करके वहाँ नगर-निर्माणका कार्य आरम्भ किया। भारतवर्षका यह श्रेष्ठ और सुन्दर नगर पाँच योजन विस्तृत था। तीर्थोंका सारभूत वह पुण्यक्षेत्र श्रीहरिको अत्यन्त प्रिय है। जो वहाँ मुमुक्षु होकर निवास करते हैं, उन्हें वह परम निर्वाणकी प्राप्ति करानेवाला है। गोलोकमें पहुँचनेके लिये तो वह सोपानरूप है। सबको मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करनेवाला है। वहाँ चार-चार कमरेवाले चार करोड़ भवन बनाये गये थे, जिससे वह नगर अत्यन्त मनोरम प्रतीत होता था। श्रेष्ठ प्रस्तरोंसे निर्मित वह विशाल नगर किवाड़ों, खम्भों और सोपानोंसे सुशोभित था। चित्रमयी पुत्तलिकाओं, पुष्पों और कलशोंसे वहाँके भवनोंके शिखरभाग अत्यन्त प्रकाशमान जान पड़ते थे। पर्वतीय प्रस्तर-खण्डोंसे निर्मित वेदिकाएँ और प्राङ्गण उस नगरके भवनोंकी शोभा बढ़ा रहे थे। प्रस्तर-खण्डोंके परकोटोंसे सारा नगर घिरा हुआ था। विश्वकर्माने खेल-खेलमें ही सारे नगरकी रचना कर डाली। प्रत्येक गृहमें यथायोग्य बड़े-छोटे दो दरवाजे थे। हर्ष और उत्साहसे भरे हुए देवशिल्पीने स्फटिक-जैसी मणियोंसे उस नगरके भवनोंका निर्माण किया था। गन्धसार-निर्मित सोपानों, शंकु-रचित खम्भों, लोहसारकी बनी हुई किवाड़ों, चाँदीके समुज्ज्वल कलशों तथा वज्रसारनिर्मित प्राकारोंसे उस नगरकी अपूर्व शोभा हो रही थी। उसमें गोपोंके लिये यथास्थान और यथायोग्य निवासस्थान बनाकर विश्वकर्माने वृषभानु गोपके लिये पुनः रमणीय भवनका निर्माण आरम्भ किया। उसके चारों ओर परकोटे और खाइयाँ बनी थीं। चारों दिशाओंमें चार दरवाजे थे। चार-चार कमरोंसे युक्त बीस भव्य भवन बनाये गये थे। उस सम्पूर्ण भवनका निर्माण महामूल्य मणियोंसे किया गया था। रत्नसार-रचित सुरम्य तूलिकाओं, सुवर्णाकार मणियोंद्वारा निर्मित अत्यन्त सुन्दर सोपानों, लोहसारकी बनी हुई किवाड़ों तथा कृत्रिम चित्रोंसे वृषभानु-भवनकी बड़ी शोभा हो रही थी। वहाँका प्रत्येक सुरम्य मन्दिर सोनेके कलशोंसे देदीप्यमान था। उस आश्रमके एक अत्यन्त मनोहर निर्जन प्रदेशमें, जो मनोहर चम्पा-वृक्षोंके उद्यानके भीतर था, पतिसहित कलावतीके उपभोगके लिये विश्वकर्माने कौतूहलवश एक ऐसी अट्टालिका बनायी थी, जिसका निर्माण विशिष्ट श्रेणीकी श्रेष्ठ मणियोंद्वारा हुआ था। उसमें इन्द्रनीलमणिके बने हुए नौ सोपान थे। गन्धसारनिर्मित खम्भों और कपाटोंसे वह अत्यन्त ऊँचा मनोरम भवन सब ओरसे विलक्षण था।

नारदजीने पूछा—भगवन्! मनोहर रूपवाली कलावती कौन थी और किसकी पत्नी थी, जिसके लिये देवशिल्पीने यत्नपूर्वक सुरम्य गृहका निर्माण किया?

भगवान् नारायणने कहा—सुन्दरी कलावती कमलाके अंशसे प्रकट हुई पितरोंकी मानसी कन्या है और वृषभानुकी पतिव्रता पत्नी है। उसीकी पुत्री राधा हुई जो श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। वे श्रीकृष्णके आधे अंशसे प्रकट हुई हैं; इसलिये उन्हींके समान तेजस्विनी हैं। उनके चरणकमलोंकी रजके स्पर्शसे वसुन्धरा पवित्र हो गयी है। सभी संत-महात्मा सदा ही श्रीराधाके प्रति अविचल भक्तिकी कामना करते हैं।

नारदजीने पूछा—मुने! व्रजमें रहनेवाले एक मानवने कैसे, किस पुण्यसे और किस प्रकार

पितरोंकी परम दुर्लभ मानसी कन्याको पत्नीरूपमें प्राप्त किया? व्रजके महान् अधिपति वृषभानु पूर्व-जन्ममें कौन थे, किसके पुत्र थे और किस तपस्यासे राधा उनकी कन्या हुई?

सूतजी कहते हैं—नारदजीकी यह बात सुनकर ज्ञानिशिरोमणि महर्षि नारायण हँसे और प्रसन्नतापूर्वक उस प्राचीन इतिहासको बताने लगे।

भगवान् नारायण बोले—नारद! पूर्वकालमें पितरोंके मानससे तीन कन्याएँ प्रकट हुईं—कलावती, रत्नमाला और मेनका। ये तीनों ही अत्यन्त दुर्लभ थीं। इनमेंसे रत्नमालाने कामनापूर्वक राजा जनकको पतिरूपमें वरण किया और मेनकाने श्रीहरिके अंशभूत गिरिराज हिमालयको अपना पति बनाया। रत्नमालाकी पुत्री अयोनिजा सती सत्यपरायणा सीता हुईं, जो साक्षात् लक्ष्मी तथा श्रीरामकी पत्नी थीं। मेनकाकी पुत्री पार्वती हुईं, जो पूर्व-जन्ममें सती नामसे प्रसिद्ध थीं। वे भी अयोनिजा ही कही गयी हैं। पार्वती श्रीहरिकी सनातनी माया हैं। उन्होंने तपस्यासे नारायणस्वरूप महादेवजीको पतिरूपमें प्राप्त किया है। कलावतीने मनुवंशी राजा सुचन्द्रका वरण किया। वे राजा साक्षात् श्रीहरिके अंश थे। उन्होंने कलावतीको पाकर अपनेको गुणवानोंमें श्रेष्ठ और अत्यन्त सुन्दर माना। वे उसके सौन्दर्यकी प्रशंसा करते हुए मन-ही-मन कहते थे—'इसका रूप अद्भुत है। वेष भी आश्चर्यजनक है और इसकी नयी अवस्था कैसी विलक्षण है। सुकोमल अङ्ग, शरत्कालके चन्द्रमासे भी बढ़कर परम सुन्दर मुख तथा गज और खञ्जनके भी गर्वका गञ्जन करनेवाली दुर्लभ गति—सभी अद्भुत हैं।' इस अपनी परम सुन्दरी पत्नी कलावतीके साथ विभिन्न रमणीय स्थानोंमें रहकर सुदीर्घकालतक विहार करनेके पश्चात् राजा भोगोंसे विरक्त हो गये और कलावतीको साथ लेकर विन्ध्यपर्वतकी तीर्थभूमिमें तपस्याके लिये चले गये। भारतमें अत्यन्त प्रशंसाके योग्य वह उत्तम स्थान पुलहाश्रमके नामसे प्रसिद्ध है। वहाँ राजाने मोक्षकी इच्छा मनमें लेकर सहस्र दिव्य वर्षोंतक तप किया। उनके मनमें कोई लौकिक कामना नहीं थी। वे आहार छोड़ देनेके कारण कृशोदर हो गये। श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करते-करते मुनिश्रेष्ठ सुचन्द्रको मूर्च्छा आ गयी। उनके शरीरपर जो बाँबी छा गयी थी, उसे उनकी साध्वी पत्नीने दूर किया। पतिको निश्चेष्ट, प्राणशून्य, मांस और रक्तसे रहित तथा अस्थि-चर्मावशिष्टमात्र देख उस निर्जन वनमें कलावती शोकातुर हो उच्च स्वरसे रोने लगी। मूर्च्छित पतिको वक्षःस्थलसे लगाकर वह महादीना पतिव्रता 'हे नाथ! हा नाथ!' का उच्चारण करती हुई विलाप करने लगी। राजा आहार छोड़ देनेके कारण सूख गये हैं; उनके शरीरकी नस-नाड़ियाँ दिखायी देती हैं—यह देख और कलावतीका विलाप सुनकर कृपानिधान कमलजन्मा जगत्स्रष्टा ब्रह्माजी कृपापूर्वक वहाँ प्रकट हो गये। उन्होंने तुरंत ही राजाके शरीरको अपनी गोदमें लेकर कमण्डलुके जलसे सींचा। फिर ब्रह्मज्ञ ब्रह्माने ब्रह्मज्ञानके द्वारा उसमें जीवका संचार किया। इससे चेतनाको प्राप्त हो नृपवर सुचन्द्रने अपने सामने प्रजापतिको देखकर प्रणाम किया। प्रजापतिने कामके समान कान्तिमान् नरेशसे संतुष्ट होकर कहा—'राजन्! तुम इच्छानुसार वर माँगो।' विधाताकी यह बात सुनकर श्रीमान् सुचन्द्रके मुखारविन्दपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल गयी। वे प्रसन्नवदन हो बोले—'दयानिधे! यदि आप वर देनेको उद्यत हैं तो कृपापूर्वक मुझे मनोवाञ्छित निर्वाण प्रदान करें।' इस वरदानके मिल जानेपर मेरी क्या दशा होगी, इसका मन-ही-मन अनुमान करके कलावतीके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये। वह सती संत्रस्त हो वर देनेको उद्यत हुए विधातासे बोली।

कलावतीने कहा—कमलोद्भव ब्रह्मन्! यदि

आप महाराजको मुक्ति दे रहे हैं तो मुझ अबलाकी क्या गति होगी, यह आप ही बताइये? चतुरानन! कान्तके बिना कान्ताकी क्या शोभा है? श्रुतिमें सुना गया है कि पतिव्रता नारीके लिये पति ही व्रत है, पति ही गुरु, इष्टदेव, तपस्या और धर्म है। ब्रह्मन्! सभी स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर परम प्रिय बन्धु कोई नहीं है। पतिसेवा परम दुर्लभ है। वह सब धर्मोंसे बढ़कर है। पतिसेवासे दूर रहनेवाली स्त्रीका सारा शुभ कर्म निष्फल होता है*। व्रत, दान, तप, पूजन, जप, होम, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, पृथ्वीकी परिक्रमा, समस्त यज्ञोंकी दीक्षा, बड़े-बड़े दान, सब वेदोंका पाठ, सब प्रकारकी तपस्या, वेदज्ञ ब्राह्मणोंको भोजन-दान तथा देवाराधन—ये सब मिलकर पति-सेवाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। जो स्त्रियाँ पतिकी सेवा नहीं करतीं और पतिसे कटुवचन बोलती हैं, वे चन्द्रमा और सूर्यकी सत्तापर्यन्त कालसूत्र नरकमें गिरकर यातना भोगती हैं। वहाँ सर्पोंके बराबर बड़े-बड़े कीड़े दिन-रात उन्हें डँसते रहते हैं और सदा विपरीत एवं भयंकर शब्द किया करते हैं। उस नरकमें स्त्रियोंको मल, मूत्र तथा कफका भोजन करना पड़ता है। यमराजके दूत उनके मुखमें जलती लुआठी डालते हैं। नरकका भोग पूरा करके वे नारियाँ कृमियोनिमें जन्म लेती हैं और सौ जन्मोंतक रक्त, मांस तथा विष्ठा खाती हैं। वेदवाक्योंमें यह निश्चित सिद्धान्त बताया गया है। मैं अबला हूँ। विद्वानोंके मुखसे सुनकर उपर्युक्त बातोंको कुछ-कुछ जानती हूँ। आप तो वेदोंका भी प्राकट्य करनेवाले हैं। प्रभु हैं। विद्वानों, योगियों, ज्ञानियों तथा गुरुके भी गुरु हैं। अच्युत! आप सर्वज्ञ हैं। मैं आपको क्या समझा सकूँगी? ये मेरे पति मुझे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। यदि इन्हें मुक्ति प्राप्त हो गयी तो मेरा रक्षक कौन होगा? मेरे धन और यौवनकी रक्षा कौन करेगा? कुमारावस्थामें नारीकी रक्षा पिता करता है। फिर वह कन्याका सुपात्रको दान देकर कृतकृत्य हो जाता है। तबसे पति ही नारीकी रक्षा करता है। पतिके अभावमें उसका पुत्र रक्षक होता है। इस प्रकार तीन अवस्थाओंमें नारीके तीन रक्षक माने गये हैं। जो स्त्रियाँ स्वतन्त्र हैं, वे नष्ट मानी गयी हैं। उनका सभी धर्मोंसे बहिष्कार किया गया है। वे नीच कुलमें उत्पन्न, कुलटा और दुष्टहृदया कही गयी हैं। ब्रह्मन्! उनके सौ जन्मोंका पुण्य नष्ट हो जाता है। पतिव्रताका अपने पतिके प्रति सर्वदा समान स्नेह होता है। दूध पीते बच्चेपर माताओंका अधिक स्नेह देखा जाता है, परंतु वह पतिव्रताके पतिविषयक स्नेहकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। पतिसे बढ़कर कोई बन्धु, प्रिय देवता तथा गुरु नहीं है। स्त्रीके लिये पतिसे बढ़कर धर्म, धन, प्राण तथा दूसरा कोई पुरुष नहीं है। जैसे वैष्णवोंका मन श्रीकृष्णचरणारविन्दमें ही निमग्न रहता है, उसी प्रकार साध्वी स्त्रियोंका चित्त अपने प्रियतम पतिमें ही संलग्न रहता है। ब्रह्मन्! पतिके बिना पतिव्रता स्त्री एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकती। पतिके बिना साध्वी स्त्रियोंके लिये मरण ही जीवन है और जीवन मृत्युसे भी अधिक कष्ट देनेवाला है। ब्रह्मन्! यदि मेरे बिना ही आप इन्हें मुक्त कर देंगे तो प्रभो! मैं आपको शाप देकर स्त्री-हत्याका दारुण पाप प्रदान करूँगी।

---

* व्रतं पतिव्रतायाश्च पतिरेव श्रुतौ श्रुतम्। गुरुश्चाभीष्टदेवश्च तपोधर्ममयः पतिः॥
सर्वेषां च प्रियतमो न बन्धुः स्वामिनः परः। सर्वधर्मात्परा ब्रह्मन् पतिसेवा सुदुर्लभा॥
स्वामिसेवाविहीनायाः सर्वं तन्निष्फलं भवेत्। (१७। ६७—६९)

कलावतीकी बात सुनकर विधाता विस्मित हो मन-ही-मन भय मानते हुए अमृतके समान मधुर एवं हितकर वचन बोले।

ब्रह्माजीने कहा—बेटी! मैं तुम्हारे स्वामीको तुम्हारे बिना ही मुक्ति नहीं दूँगा। पतिव्रते! तुम अपने पतिके साथ कुछ वर्षोंतक स्वर्गमें रहकर सुख भोगो। फिर तुम दोनोंका भारतवर्षमें जन्म होगा। वहाँ जब साक्षात् सती राधिका तुम्हारी पुत्री होंगी तब तुम दोनों जीवन्मुक्त हो जाओगे और श्रीराधाके साथ ही गोलोकमें पधारोगे। नृपश्रेष्ठ! तुम कुछ कालतक अपनी स्त्रीके साथ स्वर्गीय सुखका उपभोग करो। यह स्त्री साध्वी एवं सत्त्वगुणसे युक्त है। तुम मुझे शाप न देना; क्योंकि श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंमें चित्त लगाये रखनेवाले जीवन्मुक्त संत समदर्शी होते हैं। उनके मनमें श्रीहरिके दुर्लभ दास्यभावको पानेकी इच्छा रहती है। वे निर्वाण नहीं चाहते।

ऐसा कहकर उन दोनोंको वर दे विधाता उनके सामने खड़े रहे। वे दोनों उन्हें प्रणाम करके स्वर्गकी ओर चल दिये। फिर ब्रह्माजी भी अपने धामको चले गये। तदनन्तर वे दोनों दम्पति समयानुसार स्वर्गीय भोगोंका उपभोग करके भारतवर्षमें आये, जो परम पुण्यदायक तथा दिव्य स्थान है। ब्रह्मा आदि देवता भी यहाँ जन्म लेनेकी इच्छा करते हैं। सुचन्द्रने गोकुलमें जन्म लिया और वहाँ उनका नाम वृषभानु हुआ। वे सुरभानुके वीर्य और पद्मावतीके गर्भसे उत्पन्न हुए। उन्हें पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण था। वे श्रीहरिके अंश थे और जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमा बढ़ते हैं, उसी प्रकार व्रजधाममें प्रतिदिन बढ़ने लगे। धीरे-धीरे वे व्रजके अधिपति हुए। उन्हें सर्वज्ञ और महायोगी माना गया है। उनका चित्त सदा श्रीहरिके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें ही लगा रहता था। वे उदार, रूपवान्, गुणवान् और श्रेष्ठ बुद्धिवाले थे।

कलावती कान्यकुब्ज देशमें उत्पन्न हुई। वह भी अयोनिजा, पूर्व-जन्मकी बातोंको याद रखनेवाली महासाध्वी, सुन्दरी एवं कमलाकी कला थी। कान्यकुब्ज देशमें महापराक्रमी नृपश्रेष्ठ भनन्दन राज्य करते थे। उन्होंने यज्ञके अन्तमें यज्ञकुण्डसे प्रकट हुई दूध पीती नंगी बालिकाके रूपमें उसे पाया था। वह सुन्दरी बालिका उस कुण्डसे हँसती हुई निकली थी। उसकी अङ्ग-कान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान थी। वह तेजसे उद्भासित हो रही थी। राजेन्द्र भनन्दनने उसे गोदमें लेकर अपनी प्यारी रानी मालावतीको प्रसन्नतापूर्वक दे दिया। मालावतीके हर्षकी सीमा न रही। वह उस बालिकाको अपना स्तन पिलाकर पालने लगी। उसके अन्नप्राशन और नामकरणके दिन शुभ वेलामें जब राजा सत्पुरुषोंके बीच बैठे हुए थे, आकाशवाणी हुई—'नरेश्वर! इस कन्याका नाम कलावती रखो।' यह सुनकर राजाने वही नाम रख दिया। उन्होंने ब्राह्मणों, याचकों और वन्दीजनोंको प्रचुर धन दान किया। सबको भोजन कराया और बड़ा भारी उत्सव मनाया। समयानुसार उस रूपवती कन्याने युवावस्थामें प्रवेश किया। सोलह वर्षकी अवस्थामें वह अत्यन्त सुन्दरी दिखायी देने लगी। वह राजकन्या मुनियोंके मनको भी मोह लेनेमें समर्थ थी। मनोहर चम्पाके समान उसकी अङ्गकान्ति थी तथा मुख शरत्कालके पूर्णचन्द्रकी भाँति परम मनोहर था। एक दिन गजराजकी-सी मन्दगतिसे चलनेवाली राजकुमारी राजमार्गसे कहीं जा रही थी। नन्दजीने उसे मार्गमें देखा। देखकर वे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस मार्गसे आने-जानेवाले लोगोंसे आदरपूर्वक पूछा—'यह किसकी कन्या जा रही थी।' लोगोंने बताया—'यह महाराज भनन्दनकी कन्या है। इसका नाम कलावती है। यह धन्या बाला लक्ष्मीजीके अंशसे राजमन्दिरमें प्रकट हुई है और कौतुकवश खेलनेके लिये अपनी सहेलीके घर जा रही है।

व्रजराज! आप व्रजको पधारिये।' ऐसा उत्तर देकर लोग चले गये। नन्दके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। वे राजभवनको गये। रथसे उतरकर उन्होंने तत्काल ही राजसभामें प्रवेश किया। राजा उठकर खड़े हो गये। उन्होंने नन्दरायजीसे बातचीत की और उन्हें बैठनेके लिये सोनेका सिंहासन दिया। उन दोनोंमें परस्पर बहुत प्रेमालाप हुआ। फिर नन्दने विनीत होकर राजासे सम्बन्धकी बात चलायी।

नन्दजीने कहा—राजेन्द्र! सुनिये। मैं एक शुभ एवं विशेष बात कह रहा हूँ। आप इस समय अपनी कन्याका सम्बन्ध एक विशिष्ट पुरुषके साथ स्थापित कीजिये। व्रजमें सुरभानुके पुत्र श्रीमान् वृषभानु निवास करते हैं, जो व्रजके राजा हैं। वे भगवान् नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए हैं और उत्तम गुणोंके भण्डार, सुन्दर, सुविद्वान्, सुस्थिर यौवनसे युक्त, योगी, पूर्वजन्मकी बातोंको स्मरण करनेवाले और नवयुवक हैं। आपकी कन्या भी यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुई है; अतः अयोनिजा है। त्रिभुवनमोहिनी कन्या कलावती भगवती कमलाकी अंश है और स्वभावतः शान्त जान पड़ती है। वृषभानु आपकी पुत्रीके योग्य हैं तथा आपकी पुत्री भी उन्हींके योग्य है।

मुने! राजसभामें ऐसा कहकर नन्दजी चुप हो गये। तब नृपश्रेष्ठ भनन्दनने विनयसे नम्र हो उन्हें इस प्रकार उत्तर दिया।

भनन्दन बोले—व्रजेश्वर! सम्बन्ध तो विधाताके वशकी बात है। वह मेरे द्वारा साध्य नहीं है। ब्रह्माजी ही सम्बन्ध करनेवाले हैं। मैं तो केवल जन्मदाता हूँ। कौन किसकी पत्नी या कन्या है तथा कौन किसका साधन-सम्पन्न पति है? इसे विधाताके सिवा और कौन जानता है? कर्मोंके अनुरूप फल देनेवाले विधाता ही सबके कारण हैं। किया हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं होता, उसका फल मिलकर ही रहेगा—ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। अन्यथा असमर्थ पुरुषके उद्यमकी भाँति सारा कर्म निष्फल हो जाता है। यदि विधाताने मेरी पुत्रीको ही वृषभानुकी पत्नी होनेकी बात लिखी है तो वह पहलेसे ही उनकी पत्नी है। मैं फिर कौन हूँ, जो उसमें बाधा डाल सकूँ तथा दूसरा भी कौन उस सम्बन्धका निवारण कर सकता है?

नारद! यों कहकर राजेन्द्र भनन्दनने विनयसे सिर झुकाकर नन्दरायजीको आदरपूर्वक मिष्टान्न भोजन कराया। तत्पश्चात् राजाकी अनुमति ले व्रजराज व्रजको लौट गये। जाकर उन्होंने सुरभानुकी सभामें सब बातें बतायीं। सुरभानुने भी यत्नपूर्वक नन्द और गर्गजीके सहयोगसे सादर इस सम्बन्धको जोड़ा। विवाहकालमें महाराज भनन्दनने गजरत्न, अश्वरत्न, अन्यान्य रत्न तथा मणियोंके आभूषण आदि बहुत दहेज दिये। वृषभानु कलावतीको पाकर बड़ी प्रसन्नताके साथ निर्जन एवं रमणीय स्थानमें उसके साथ विहार करने लगे। कलावती एक पलका भी विरह होनेपर स्वामीके बिना व्याकुल हो उठती थी और वृषभानु भी एक क्षणके लिये भी कलावतीके दूर होनेपर उसके बिना विकल हो जाते थे। वह राजकन्या पूर्वजन्मकी बातोंको याद रखनेवाली देवी थी। मायासे मनुष्यरूपमें प्रकट हुई थी। वृषभानु भी श्रीहरिके अंश और जातिस्मर थे तथा कलावतीको पाकर बड़े प्रसन्न थे। उन दोनोंका प्रेम प्रतिदिन नया-नया होकर बढ़ने लगा। लीलावश पूर्वकालमें सुदामाके शाप और श्रीकृष्णकी आज्ञासे श्रीकृष्णप्राणाधिका सती राधिका उन दोनोंकी अयोनिजा पुत्री हुईं। उसके दर्शनमात्रसे वे दोनों दम्पति भवबन्धनसे मुक्त हो गये। नारद! इस प्रकार इतिहास कहा गया। अब जिसका प्रकरण चल रहा है, वह प्रसङ्ग सुनो। उक्त इतिहास पापरूपी ईंधनको जलानेके लिये प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान है।

शिल्पिशिरोमणि विश्वकर्मा वृषभानुके आश्रमपर जाकर वहाँसे अपने सेवकगणोंके साथ दूसरे स्थानपर गये। वे तत्त्वज्ञ थे। उन्होंने मन-ही-मन एक कोस लंबे-चौड़े एक मनोहर स्थानका विचार करके वहाँ महात्मा नन्दके लिये आश्रम बनाना आरम्भ किया। बुद्धिसे अनुमान करके उनके लिये सबसे विलक्षण भवन बनाया। वह श्रेष्ठ भवन चार गहरी खाइयोंसे घिरा हुआ था, शत्रुओंके लिये उन्हें लाँघना बहुत कठिन था। उन चारों खाइयोंमें प्रस्तर जुड़े हुए थे। उन खाइयोंके दोनों तटोंपर फूलोंके उद्यान थे, जिनके कारण वे पुष्पोंसे सजी हुई-सी जान पड़ती थीं और सुन्दर एवं मनोहर चम्पाके वृक्ष तटोंपर खिले हुए थे। उन्हें छूकर बहनेवाली सुगन्धित वायु उन परिखाओंको सब ओरसे सुवासित कर रही थी। तटवर्ती आम, सुपारी, कटहल, नारियल, अनार, श्रीफल (बेल), भृङ्ग (इलायची), नीबू, नारंगी, ऊँचे आम्रातक (आमड़ा), जामुन, केले, केवड़े और कदम्बसमूह आदि फूले-फले वृक्षोंसे उन खाइयोंकी सब ओरसे शोभा हो रही थी। वे सारी परिखाएँ सदा वृक्षोंसे ढकी होनेके कारण जल-क्रीडाके योग्य थीं। अतएव सबको प्रिय थीं। परिखाओंके एकान्त स्थानमें जानेके लिये विश्वकर्माने उत्तम मार्ग बनाया, जो स्वजनोंके लिये सुगम और शत्रुवर्गके लिये दुर्गम था। थोड़े-थोड़े जलसे ढके हुए मणिमय खम्भोंद्वारा संकेतसे उस मार्गपर खम्भोंकी सीमा बनायी गयी थी। वह मार्ग न तो अधिक संकीर्ण था और न अधिक विस्तृत ही था। परिखाके ऊपरी भागमें देवशिल्पीने मनोहर परकोटा बनाया था, जिसकी ऊँचाई बहुत अधिक थी। वह सौ धनुषके बराबर ऊँचा था। उसमें लगा हुआ एक-एक पत्थर पचीस-पचीस हाथ लंबा था। सिन्दूरी रंगकी मणियोंसे निर्मित वह प्राकार बड़ा ही सुन्दर दिखायी देता था। उसमें बाहरसे दो और भीतरसे सात दरवाजे थे। दरवाजे मणिसारनिर्मित किवाड़ोंसे बंद रहते थे। वह नन्दभवन इन्द्रनीलमणिके चिह्नित कलशोंद्वारा विशेष शोभा पा रहा था। मणिसाररचित कपाट भी उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। स्वर्णसारनिर्मित कलशोंसे उसका शिखरभाग बहुत ही उद्दीप्त जान पड़ता था। नन्दभवनका निर्माण करके विश्वकर्मा नगरमें घूमने लगे। उन्होंने नाना प्रकारके मनोहर राजमार्ग बनाये। रक्तभानुमणिकी बनी हुई वेदियों तथा सुन्दर पत्तनोंसे वे मार्ग सुशोभित होते थे। उन्हें आर-पार दोनों ओरसे बाँधकर पक्का बनाया गया था, जिससे वे बड़े मनोहर लगते थे। राजमार्गके दोनों ओर मणिमय मण्डप बने हुए थे, जो वैश्योंके वाणिज्य-व्यवसायके उपयोगमें आने योग्य थे। वे मण्डप दायें-बायें सब ओरसे प्रकाशित हो उन राजमार्गोंको भी प्रकाश पहुँचाते थे।

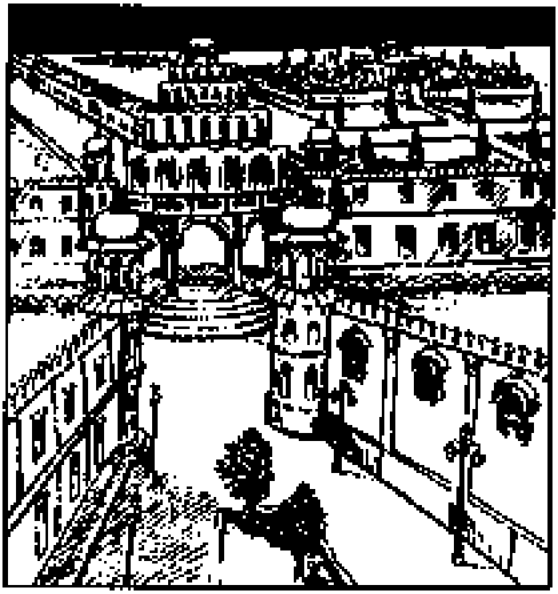

तदनन्तर वृन्दावनमें आकर विश्वकर्माने सुन्दर, गोलाकार और मणिमय परकोटोंसे युक्त रासमण्डलका निर्माण किया, जो सब ओरसे एक-एक योजन

विस्तृत था। उसमें स्थान-स्थानपर मणिमय वेदिकाएँ बनी हुई थीं। मणिसाररचित नौ करोड़ मण्डप उस रासमण्डलकी शोभा बढ़ाते थे। वे शृङ्गारके योग्य, चित्रोंसे सुसज्जित और शय्याओंसे सम्पन्न थे। नाना जातिके फूलोंकी सुगन्ध लेकर बहती हुई वायु उन मण्डपोंको सुवासित करती थी। उनमें रत्नमय प्रदीप जलते थे। सुवर्णमय कलश उनकी उज्ज्वलता बढ़ा रहे थे। पुष्पोंसे भरे हुए उद्यानों तथा सरोवरोंसे सुशोभित रासस्थलका निर्माण करके विश्वकर्मा दूसरे स्थानको गये। वे उस रमणीय वृन्दावनको देखकर बहुत संतुष्ट हुए। वनके भीतर जगह-जगह एकान्त स्थानमें मन-बुद्धिसे विचार और निश्चय करके उन्होंने वहाँ तीस रमणीय एवं विलक्षण वनोंका निर्माण किया। वे केवल श्रीराधा-माधवकी ही क्रीड़ाके लिये बनाये गये थे।

तदनन्तर मधुवनके निकट अत्यन्त मनोहर निर्जन स्थानमें वटवृक्षके मूलभागके निकट सरोवरके पश्चिम किनारे केतकीवनके बीच और चम्पाके उद्यानके पूर्व विश्वकर्माने राधा-माधवकी क्रीड़ाके लिये पुनः एक रत्नमय मण्डपका निर्माण किया, जो चार वेदिकाओंसे घिरा हुआ और अत्यन्त सुन्दर था। रत्नसाररचित सौ तूलिकाएँ उसकी शोभा बढ़ाती थीं। अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित तथा नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित नौ जोड़े कपाटों और नौ मनोहर द्वारोंसे उस रत्नमण्डपकी बड़ी शोभा हो रही थी। उस मण्डपकी दीवारोंके दोनों बगलमें और ऊपर भी श्रेष्ठ रत्नोंद्वारा रचित कृत्रिम चित्रमय कलश उसकी श्रीवृद्धि कर रहे थे। उन कलशोंकी तीन कोटियाँ थीं। उक्त रत्नमण्डपमें महामूल्यवान् श्रेष्ठ मणिरत्नोंद्वारा निर्मित नौ सोपान शोभा दे रहे थे। उत्तम रत्नोंके सारभागसे बने हुए कलशोंसे मण्डपका शिखर-भाग जगमगा रहा था। पताका, तोरण तथा श्वेत चामर उस भवनकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसमें सब ओर अमूल्य रत्नमय दर्पण लगे थे, जिनके कारण सबको अपने सामनेकी ओरसे ही वह मण्डप दीप्तिमान् दिखायी देता था। वह सौ धनुष ऊपरतक अग्नि-शिखाके समान प्रकाशपुञ्ज फैला रहा था। उसका विस्तार सौ हाथका था। वह रत्नमण्डप गोलाकार बना था। उसके भीतर रत्ननिर्मित शय्याएँ बिछी थीं, जिनसे उस उत्तम भवनके भीतरी भागकी बड़ी शोभा हो रही थी। उक्त शय्याओंपर अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र बिछे थे। मालाओंके समूहसे सुसज्जित होकर वे विचित्र शोभा धारण करते थे। पारिजातके फूलोंकी मालाओंके बने हुए तकिये उनपर यथास्थान रखे गये थे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे वह सारा भवन सुवासित हो रहा था। उसमें मालती और चम्पाके फूलोंकी मालाएँ रखी थीं। नूतन शृङ्गारके योग्य तथा पारस्परिक प्रेमकी वृद्धि करनेवाले कपूरयुक्त ताम्बूलके बीड़े उत्तम रत्नमय पात्रोंमें सजाकर रखे गये थे। उस भवनमें रत्नोंकी बनी हुई बहुत-सी चौकियाँ थीं, जिनमें हीरे जड़े थे और मोतियोंकी झालरें लटक रही थीं। रत्नसारजटित कितने ही घट यथास्थान रखे हुए थे। रत्नमय चित्रोंसे चित्रित अनेक रत्नसिंहासन उस मण्डपकी शोभा बढ़ाते थे, जिनमें जड़ी हुई चन्द्रकान्त मणियाँ पिघलकर जलकी बूँदोंसे उस भवनको सींच रही थीं। शीतल एवं सुवासित जल तथा भोग्य वस्तुओंसे युक्त उस रमणीय मिलन-मन्दिर (रत्नमण्डप)-का निर्माण करके विश्वकर्मा फिर नगरमें गये।

जिनके लिये जो भवन बने थे, उनपर उनके नाम उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक लिखे। इस कार्यमें उनके शिष्य तथा यक्षगण उनकी सहायता करते थे। मुने! निद्राके स्वामी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण उस समय निद्राके वशीभूत थे। उनको नमस्कार करके विश्वकर्मा अपने घरको चले गये। परमेश्वर श्रीकृष्णको

इच्छासे ही भूतलपर ऐसा आश्चर्यमय नगर निर्मित हुआ। इस प्रकार मैंने श्रीहरिका सारा मङ्गलमय चरित्र कह सुनाया, जो सुखद और पापहारी है। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—भगवन्! भारतवर्षमें इस काननका नाम 'वृन्दावन' क्यों हुआ? इसकी व्युत्पत्ति अथवा संज्ञा क्या है? आप उत्तम तत्त्वज्ञ हैं, अतः इस तत्त्वको बताइये।

सूतजी कहते हैं—नारदजीका प्रश्न सुनकर नारायण ऋषिने सानन्द हँसकर सारा ही पुरातन तत्त्व कहना आरम्भ किया।

भगवान् नारायण बोले—नारद! पहले सत्ययुगकी बात है। राजा केदार सातों द्वीपोंके अधिपति थे। ब्रह्मन्! वे सदा सत्य धर्ममें तत्पर रहते थे और अपनी स्त्रियों तथा पुत्र-पौत्रवर्गके साथ सानन्द जीवन बिताते थे। उन धार्मिक नरेशने समस्त प्रजाओंका पुत्रोंकी भाँति पालन किया। सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके भी राजा केदारने इन्द्रपद पानेकी इच्छा नहीं की। वे नाना प्रकारके पुण्यकर्म करके भी स्वयं उनका फल नहीं चाहते थे। उनका सारा नित्यनैमित्तिक कर्म श्रीकृष्णकी प्रीतिके लिये ही होता था। केदारके समान राजाधिराज न तो कोई पहले हुआ है और न पुनः होगा ही। उन्होंने अपनी त्रिभुवनमोहिनी पत्नी तथा राज्यकी रक्षाका भार पुत्रोंपर रखकर जैगीषव्य मुनिके उपदेशसे तपस्याके लिये वनको प्रस्थान किया। वे श्रीहरिके अनन्य भक्त थे और निरन्तर उन्हींका चिन्तन करते थे। मुने! भगवान्का सुदर्शनचक्र राजाकी रक्षाके लिये सदा उन्हींके पास रहता था। वे मुनिश्रेष्ठ नरेश चिरकालतक तपस्या करके अन्तमें गोलोकको चले गये। उनके नामसे केदारतीर्थ प्रसिद्ध हुआ। अवश्य ही आज भी वहाँ मरे हुए प्राणीको तत्काल मुक्तिलाभ होता है।

उनकी कन्याका नाम वृन्दा था, जो लक्ष्मीकी अंश थी। उसने योगशास्त्रमें निपुण होनेके कारण किसीको अपना पुरुष नहीं बनाया। दुर्वासाने उसे परम दुर्लभ श्रीहरिका मन्त्र दिया। वह घर छोड़कर तपस्याके लिये वनमें चली गयी। उसने साठ हजार वर्षोंतक निर्जन वनमें तपस्या की। तब उसके सामने भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण प्रकट हुए। उन्होंने प्रसन्नमुखसे कहा—'देवि! तुम कोई वर माँगो।' वह सुन्दर विग्रहवाले शान्तस्वरूप राधिका-कान्तको देखकर सहसा बोल उठी—'तुम मेरे पति हो जाओ।' उन्होंने 'तथास्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। वह कौतूहलवश श्रीकृष्णके साथ गोलोकमें गयी और वहाँ राधाके समान श्रेष्ठ सौभाग्यशालिनी गोपी हुई। वृन्दाने जहाँ तप किया था, उस स्थानका नाम 'वृन्दावन' हुआ। अथवा वृन्दाने जहाँ क्रीड़ा की थी, इसलिये वह स्थान 'वृन्दावन' कहलाया।

वत्स! अब दूसरा पुण्यदायक इतिहास सुनो—जिससे इस काननका नाम 'वृन्दावन' पड़ा। वह प्रसङ्ग मैं तुमसे कहता हूँ, ध्यान दो। राजा कुशध्वजके दो कन्याएँ थीं। दोनों ही धर्मशास्त्रके ज्ञानमें निपुण थीं। उनके नाम थे—तुलसी और वेदवती। संसार चलानेका जो कार्य है, उससे उन दोनों बहिनोंको वैराग्य था। उनमेंसे वेदवतीने तपस्या करके परम पुरुष नारायणको प्राप्त किया। वह जनककन्या सीताके नामसे सर्वत्र विख्यात है। तुलसीने तपस्या करके श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करनेकी इच्छा की, किंतु दैववश दुर्वासाके शापसे उसने शङ्खचूड़को प्राप्त किया। फिर परम मनोहर कमलाकान्त भगवान् नारायण उसे प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त हुए। भगवान् श्रीहरिके शापसे देवेश्वरी तुलसी वृक्षरूपमें प्रकट हुई और तुलसीके शापसे श्रीहरि शालग्रामशिला हो गये। उस शिलाके वक्षः-

स्थलपर उस अवस्थामें भी सुन्दरी तुलसी निरन्तर स्थित रहने लगी। मुने! तुलसीका सारा चरित्र तुमसे विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है, तथापि यहाँ प्रसङ्गवश पुनः उसकी कुछ चर्चा की गयी। तपोधन! उस तुलसीकी तपस्याका एक यह भी स्थान है; इसलिये इसे मनीषी पुरुष 'वृन्दावन' कहते हैं। (तुलसी और वृन्दा समानार्थक शब्द है) अथवा मैं तुमसे दूसरा उत्कृष्ट हेतु बता रहा हूँ, जिससे भारतवर्षका यह पुण्यक्षेत्र वृन्दावनके नामसे प्रसिद्ध हुआ। राधाके सोलह नामोंमें एक वृन्दा नाम भी है, जो श्रुतिमें सुना गया है। उन वृन्दा नामधारिणी राधाका यह रमणीय क्रीडा-वन है; इसलिये इसे 'वृन्दावन' कहा गया है। पूर्वकालमें श्रीकृष्णने श्रीराधाकी प्रीतिके लिये गोलोकमें वृन्दावनका निर्माण किया था। फिर भूतलपर उनकी क्रीडाके लिये प्रकट हुआ वह वन उस प्राचीन नामसे ही 'वृन्दावन' कहलाने लगा।

नारदजीने पूछा—जगद्गुरो! श्रीराधिकाके सोलह नाम कौन-कौन-से हैं? मुझ शिष्यसे उन्हें बताइये; उन्हें सुननेके लिये मेरे मनमें उत्कण्ठा है। मैंने सामवेदमें वर्णित श्रीराधाके सहस्र नाम सुने हैं; तथापि इस समय आपके मुखसे उनके सोलह नामोंको सुनना चाहता हूँ। विभो! वे सोलह नाम उन सहस्र नामोंके ही अन्तर्गत हैं या उनसे भिन्न हैं? अहो! उन भक्तवाञ्छित पुण्यस्वरूप नामोंका मुझसे वर्णन कीजिये। साथ ही उन सबकी व्युत्पत्ति भी बताइये। जगत्के आदिकारण! जगन्माता श्रीराधाके उन सर्वदुर्लभ पावन नामोंको मैं सुनना चाहता हूँ।

श्रीनारायणने कहा—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामाङ्गसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी, वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शरच्चन्द्रप्रभानना—ये सारभूत सोलह नाम उन सहस्र नामोंके ही अन्तर्गत हैं। राधा शब्दमें 'धा' का अर्थ है संसिद्धि (निर्वाण) तथा 'रा' दानवाचक है। जो स्वयं निर्वाण (मोक्ष) प्रदान करनेवाली हैं; वे 'राधा' कही गयी हैं। रासेश्वरकी ये पत्नी हैं; इसलिये इनका नाम 'रासेश्वरी' है। उनका रासमण्डलमें निवास है; इससे वे 'रासवासिनी' कहलाती हैं। वे समस्त रसिक देवियोंकी परमेश्वरी हैं; अतः पुरातन संत-महात्मा उन्हें 'रसिकेश्वरी' कहते हैं। परमात्मा श्रीकृष्णके लिये वे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतमा हैं; अतः साक्षात् श्रीकृष्णने ही उन्हें 'कृष्णप्राणाधिका' नाम दिया है। वे श्रीकृष्णकी अत्यन्त प्रिया कान्ता हैं अथवा श्रीकृष्ण ही सदा उन्हें प्रिय हैं; इसलिये समस्त देवताओंने उन्हें 'कृष्णप्रिया' कहा है। वे श्रीकृष्णरूपको लीलापूर्वक निकट लानेमें समर्थ हैं तथा सभी अंशोंमें श्रीकृष्णके सदृश हैं; अतः 'कृष्णस्वरूपिणी' कही गयी हैं। परम सती श्रीराधा श्रीकृष्णके आधे वामाङ्गभागसे प्रकट हुई हैं; अतः श्रीकृष्णने स्वयं ही उन्हें 'कृष्णवामाङ्गसम्भूता' कहा है। सती श्रीराधा स्वयं परमानन्दकी मूर्तिमती राशि हैं; अतः श्रुतियोंने उन्हें 'परमानन्दरूपिणी' की संज्ञा दी है। 'कृष्' शब्द मोक्षका वाचक है, 'ण' उत्कृष्टताका बोधक है और 'आकार' दाताके अर्थमें आता है। वे उत्कृष्ट मोक्षकी दात्री हैं; इसलिये 'कृष्णा' कही गयी हैं। वृन्दावन उन्हींका है; इसलिये वे 'वृन्दावनी' कही गयी हैं। अथवा वृन्दावनकी अधिदेवी होनेके कारण उन्हें यह नाम प्राप्त हुआ है। सखियोंके समुदायको 'वृन्द' कहते हैं और 'अकार' सत्ताका वाचक है। उनके समूह-की-समूह सखियाँ हैं; इसलिये वे 'वृन्दा' कही गयी हैं। उन्हें सदा वृन्दावनमें विनोद प्राप्त होता है; अतः वेद उनको 'वृन्दावनविनोदिनी' कहते हैं।

वे सदा मुखचन्द्र तथा नखचन्द्रकी अवली (पंक्ति)-से युक्त हैं; इस कारण श्रीकृष्णने उन्हें 'चन्द्रावली' नाम दिया है। उनकी कान्ति दिन-रात सदा ही चन्द्रमाके तुल्य बनी रहती है; अतः श्रीहरि हर्षोल्लासके कारण उन्हें 'चन्द्रकान्ता' कहते हैं। उनके मुखपर दिन-रात शरत्कालके चन्द्रमाकी-सी प्रभा फैली रहती है; इसलिये मुनिमण्डलीने उन्हें 'शरच्चन्द्रप्रभानना' कहा है।

यह अर्थ और व्याख्याओंसहित षोडश-नामावली कही गयी; जिसे नारायणने अपने नाभिकमलपर विराजमान ब्रह्माको दिया था। फिर ब्रह्माजीने पूर्वकालमें मेरे पिता धर्मदेवको इन नामावलीका उपदेश दिया और श्रीधर्मदेवने महातीर्थ पुष्करमें सूर्य-ग्रहणके पुण्य पर्वपर देवसभाके बीच मुझे कृपापूर्वक इन सोलह नामोंका उपदेश दिया था। श्रीराधाके प्रभावकी प्रस्तावना होनेपर बड़े प्रसन्नचित्तसे उन्होंने इन नामोंकी व्याख्या की थी। मुने! यह राधाका परम पुण्यमय स्तोत्र है, जिसे मैंने तुमको दिया। महामुने! जो वैष्णव न हो तथा वैष्णवोंका निन्दक हो, उसे इसका उपदेश नहीं देना चाहिये। जो मनुष्य जीवनभर तीनों संध्याओंके समय इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसकी यहाँ राधा-माधवके चरणकमलोंमें भक्ति होती है। अन्तमें वह उन दोनोंका दास्यभाव प्राप्त कर लेता है और दिव्य शरीर एवं अणिमा आदि सिद्धिको पाकर सदा उन प्रिया-प्रियतमके साथ विचरता है। नियमपूर्वक किये गये सम्पूर्ण व्रत, दान और उपवाससे, चारों वेदोंके अर्थसहित पाठसे, समस्त यज्ञों और तीर्थोंके विधिबोधित अनुष्ठान तथा सेवनसे, सम्पूर्ण भूमिकी सात बार की गयी परिक्रमासे, शरणागतकी रक्षासे, अज्ञानीको ज्ञान देनेसे तथा देवताओं और वैष्णवोंका दर्शन करनेसे भी जो फल प्राप्त होता है, वह इस स्तोत्रपाठकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है। इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है*।

* राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी । कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी ॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी । कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी ॥
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शरच्चन्द्रप्रभानना । नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च ॥
राधेत्येवं च संसिद्धौ राकारो दानवाचकः । स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता ॥
रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता । रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी ॥
सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा । प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम् ॥
प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः । कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ॥
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा । सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता ॥
कृष्णरूपं संनिधातुं या शक्ता चावलीलया । सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी ॥
वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या सम्भूता परा सती । कृष्णवामाङ्गसम्भूता तेन कृष्णेन कीर्तिता ॥
परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती । श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी ॥
कृषिर्मोक्षार्थवचनो ण एवोत्कृष्टवाचकः । आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता ॥
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता । वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाथ प्रकीर्तिता ॥
सङ्घः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः । सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्तिता ॥
वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै । वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम् ॥
नखचन्द्रावलीवक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम् । तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता ॥
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम् । मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना ॥
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम् । नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे । धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि ॥

भरद्वाजीने कहा—प्रभो! यह सर्वदुर्लभ परम आश्चर्यमय स्तोत्र मुझे प्राप्त हुआ। देवी श्रीराधाका 'संसारविजय' नामक कवच भी उपलब्ध हुआ। सुयज्ञने जिसका प्रयोग किया था, वह दुर्लभ स्तोत्र भी मुझे सुलभ हो गया। भगवान् श्रीकृष्णकी विचित्र कथा सुनकर आपके चरणकमलोंके प्रसादसे मैंने बहुत कुछ पा लिया। अब मैं जिस रहस्यको सुनना चाहता हूँ, उसका वर्णन कीजिये। मुने! वृन्दावनमें प्रातःकाल उस अद्भुत नगरको देखकर गोपोंने क्या कहा?

भगवान् श्रीनारायण बोले—नारद! जब वहाँ रात बीत गयी, विश्वकर्मा चले गये और अरुणोदयकी वेला आयी, तब सब लोग जाग उठे। उठते ही सबसे विलक्षण उस नगरको देख व्रजवासी आपसमें कहने लगे—'यह क्या आश्चर्य है? यह क्या आश्चर्य है?' किन्हीं गोपोंने कुछ अन्य गोपोंसे पूछा—'यह कैसे सम्भव हुआ? न जाने भूतलपर किस रूपसे कौन प्रकट हो सकता है?' परंतु नन्दरायजी गर्गके वाक्योंका स्मरण करके मन-ही-मन सब कुछ जान गये। उन्होंने भीतर-ही-भीतर विचार किया—'यह समस्त चराचर जगत् श्रीहरिकी इच्छासे ही उत्पन्न हुआ है। जिनके भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सारा जगत् आविर्भूत और तिरोभूत होता रहता है, उनके लिये क्या और कैसे असाध्य है? अहो! जिनके रोमकूपोंमें ही सारे ब्रह्माण्ड स्थित हैं, उन परमेश्वर महाविष्णु श्रीहरिके लिये क्या असाध्य हो सकता है? ब्रह्मा, शेषनाग, शिव और धर्म जिनके चरणारविन्दोंका दर्शन करते रहते हैं, उन माया-मानव-रूपधारी परमेश्वरके लिये कौन-सा ऐसा कार्य है, जो असाध्य हो?' नन्दजीने उस नगरमें घूम-घूमकर, एक-एक घरको देख-देखकर और वहाँ लिखे हुए नामोंको पढ़कर सबके लिये घरोंका वितरण किया। नन्द और वृषभानुने शुभ मुहूर्त देखकर प्रवेशकालिक मङ्गलकृत्यका सम्पादन करके अपने सेवकगणोंके साथ अपने-अपने आश्रममें प्रवेश किया। वृन्दावनमें रहकर उन सबके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उन सब गोपोंने बड़े आनन्दके साथ अपने-अपने उत्तम आश्रममें पदार्पण किया। अपने-अपने मनोहर स्थानपर सब गोपोंको बड़ा आनन्द मिला। वहाँके बालक और बालिकाएँ हर्षपूर्वक खेलने-कूदने लगीं। श्रीकृष्ण और बलदेव भी कौतूहलवश गोपशिशुओंके साथ वहाँ प्रत्येक मनोहर स्थानपर बालोचित क्रीड़ा करने लगे। नारद! इस प्रकार मैंने नगर-निर्माणका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। वनमें गोपबालाओंके लिये जो रासमण्डल बना था, उसकी भी बात बतायी। (अध्याय १७)

पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि॥
राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा। इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने॥
निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने। यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः॥
राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह। अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत्॥
अणिमादिकसिद्धिं च संप्राप्य नित्यविग्रहम्। व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः॥
चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः। सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः॥
प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा। शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः॥
देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत् फलम्। तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः। (१७। २२०—२२६)

श्रीवनके समीप यज्ञ करनेवाले ब्राह्मणोंकी पत्नियोंका ग्वालबालोंसहित श्रीकृष्णको भोजन देना तथा उनकी कृपासे गोलोकधामको जाना, श्रीकृष्णकी मायासे निर्मित उनकी छायामयी स्त्रियोंका ब्राह्मणोंके घरोंमें जाना तथा विप्रपत्नियोंके पूर्वजन्मका परिचय

नारदजी बोले—मुनिश्रेष्ठ! ज्ञानसिन्धो! मैं आपका शरणागत शिष्य हूँ। आप मुझे श्रीकृष्ण-लीलामृतका पान कराइये।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—एक दिन बलरामसहित श्रीकृष्ण ग्वालबालोंको साथ ले श्रीमधुवनमें गये, जहाँ यमुनाके किनारे कमल खिले हुए थे। उस समय सब बालक सहस्रों गौओंके साथ वहाँ विचरने और खेलने लगे। खेलते-खेलते वे थक गये और उन्हें भूख-प्यास सताने लगी। तब सब गोपशिशु बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रीकृष्णके पास आये और बोले—'कन्हैया! हमें बड़ी भूख लगी है। हम सेवकोंको आज्ञा दो, क्या करें?' ग्वालबालोंकी बात सुनकर प्रसन्नमुख और नेत्रवाले दयानिधान श्रीहरिने उनसे यह हितकर तथा सच्ची बात कही।

श्रीकृष्ण बोले—बालको! जहाँ ब्राह्मणोंका सुखदायक यज्ञस्थान है, वहाँ जाओ। जाकर उन यज्ञतत्पर ब्राह्मणोंसे शीघ्र ही भोजनके लिये अन्न माँगो। वे सभी आङ्गिरस गोत्रवाले ब्राह्मण हैं और श्रीवनके निकट अपने आश्रममें यज्ञ करते हैं। उन्होंने श्रुतियों और स्मृतियोंका विशेष ज्ञान प्राप्त किया है। वे सब निःस्पृह वैष्णव हैं और मोक्षकी कामनासे मेरा ही यजन कर रहे हैं। परंतु मायासे आच्छादित होनेके कारण उन्हें इस बातका पता नहीं है कि योगमायासे मनुष्यरूप धारण करके प्रकट हुआ मैं ही उनका आराध्य देव हूँ। केवल यज्ञकी ओर ही उन्मुख रहनेवाले वे ब्राह्मण यदि तुम्हें अन्न न दें तो शीघ्र ही जाकर उनकी पत्नियोंसे माँगना; क्योंकि वे बालकोंके प्रति दयासे भरी हुई हैं।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर वे श्रेष्ठ गोपबालक ब्राह्मणोंके सामने जा मस्तक झुकाकर खड़े हो गये और बोले—'विप्रवरो! हमें शीघ्र भोजन दीजिये।' परंतु उनमेंसे कुछ द्विजोंने तो उनकी बात सुनी ही नहीं और कुछ लोग सुनकर भी ज्यों-के-त्यों खड़े रह गये। तब वे पाकशालामें गये, जहाँ ब्राह्मणियाँ भोजन बना रही थीं। उन बालकोंने ब्राह्मणपत्नियोंको सिर झुकाकर प्रणाम किया। प्रणाम करके वे सब बालक उन पतिव्रता ब्राह्मणियोंसे बोले—'माताओ! हम सब बालक भूखसे पीड़ित हैं। हमें भोजन दो।'

उन बालकोंकी बात सुनकर और उनकी मनोहर आकृति देखकर उन सती-साध्वी ब्राह्मणियोंने मुस्कराते हुए मुखारविन्दसे आदरपूर्वक पूछा।

ब्राह्मणपत्नियाँ बोलीं—समझदार बालको! तुम लोग कौन हो? किसने तुम्हें भेजा है? और तुम्हारे नाम क्या हैं? हम तुम्हें व्यञ्जनसहित नाना प्रकारका श्रेष्ठ भोजन प्रदान करेंगी।

ब्राह्मणियोंकी बात सुनकर वे सभी स्निग्ध एवं हृष्ट-पुष्ट गोपबालक प्रसन्नतापूर्वक हँसते हुए बोले।

बालकोंने कहा—माताओ! हमें बलराम और श्रीकृष्णने भेजा है। हमलोग भूखसे बहुत पीड़ित हैं। हमें भोजन दो। हम शीघ्र ही उनके पास लौट जायँगे। यहाँसे थोड़ी दूरपर वनके भीतर भाण्डीर-वटके निकट मधुवनमें बलराम और केशव बैठे हैं। वे दोनों भाई भी थके-माँदे और भूखे हैं तथा भोजन माँग रहे हैं।

महात्माओ! आपको अन्न देना है या नहीं देना है, यह शीघ्र हमें इसी समय बता दो।

गोपोंकी बात सुनकर ब्राह्मणियाँ हर्षसे खिल उठीं। उनके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। उनके मनमें बड़ी इच्छा थी कि हमें श्रीकृष्ण-चरणोंके दर्शन हों। उन्होंने सोने, चाँदी और फूलकी थालियोंमें प्रसन्नतापूर्वक भाँति-भाँतिके व्यञ्जनोंसे युक्त अत्यन्त मनोहर अगहनीके चावलका भात, खीर, स्वादिष्ट पीठा, दही, दूध, घी और मधु रखकर श्रीकृष्णके निकट प्रस्थान किया। वे मन-ही-मन नाना प्रकारके मनोरथ लेकर जानेको उत्सुक हुईं। ब्राह्मणपत्नियाँ धन्य और पतिव्रतपरायणा थीं। इसीलिये उनके मनमें श्रीकृष्णदर्शनकी उत्कण्ठा जाग उठी। उन्होंने वहाँ पहुँचकर बालकोंसहित श्रीकृष्ण और बलरामके दर्शन किये। श्रीकृष्ण वटके मूलभागके निकट बालकोंके बीचमें बैठे थे; अतः तारोंके बीच विराजमान चन्द्रमाके समान शोभा पा रहे थे। श्याम अङ्ग, किशोर अवस्था और शरीरपर रेशमी पीताम्बरसे वे बड़े सुन्दर लगते थे। मुखपर मन्द मुस्कान खेल रही थी। शान्तस्वरूप राधाकान्त बड़े मनोहर प्रतीत होते थे। उनका मुख शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। वे रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थे तथा रत्ननिर्मित दो कुण्डलोंसे उनके गण्डस्थलकी बड़ी शोभा हो रही थी। हाथोंमें रत्नमय केयूर और कङ्कन तथा पैरोंमें रत्ननिर्मित नूपुर उनके आभूषण थे। उन्होंने गलेमें आजानुलम्बिनी शुभ्र रत्नमाला धारण कर रखी थी। मालतीकी मालासे उनके कण्ठ और वक्षःस्थल दोनों सुशोभित थे। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे उनके श्रीअङ्ग चर्चित थे। नखों और कपोलोंका सौन्दर्य देखने ही योग्य था। सुन्दर लाल रंगके ओठ पके बिम्बफलको लज्जित कर रहे थे। वे परिपक्व अनारके दानोंकी भाँति सुन्दर दन्तपङ्क्ति धारण किये थे। सिरपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा था। कानोंके मूलभागमें दो कदम्बके फूल उनकी शोभा बढ़ा रहे थे। वे परात्पर परमात्मा योगियोंके भी ध्यानमें नहीं आनेवाले हैं। तथापि भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये व्याकुल रहते हैं। ब्रह्मा, शिव, धर्म, शेषनाग तथा बड़े-बड़े मुनीश्वर उनकी स्तुति करते हैं। ऐसे परमेश्वरके दर्शन करके ब्राह्मणपत्नियोंने भक्तिभावसे उन्हें प्रणाम किया और अपने ज्ञानके अनुरूप उन मधुसूदनकी स्तुति की।

विप्रपत्नियाँ बोलीं—भगवन्! आप स्वयं ही परब्रह्म, परमधाम, निरीह, अहङ्काररहित, निर्गुण-निराकार तथा सगुण-साकार हैं। आप ही सबके साक्षी, निर्लेप एवं आकाररहित परमात्मा हैं। आप ही प्रकृति-पुरुष तथा उन दोनोंके परम कारण हैं। सृष्टि, पालन और संहारके विषयमें नियुक्त जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव—ये तीन देवता कहे गये हैं, वे भी आपके ही सर्वबीजमय अंश हैं। परमेश्वर! जिनके रोमकूपमें सम्पूर्ण विश्व निवास करता है, वे महाविराट् महाविष्णु हैं और प्रभो! आप उनके जनक हैं। आप ही तेज और

तेजस्वी हैं, ज्ञान और ज्ञानी हैं तथा इन सबसे परे हैं। वेदमें आपको अनिर्वचनीय कहा गया है; फिर कौन आपकी स्तुति करनेमें समर्थ है? सृष्टिके सूत्रभूत जो महत्तत्त्व आदि एवं पञ्च-तन्मात्राएँ हैं, वे भी आपसे भिन्न नहीं हैं। आप सम्पूर्ण शक्तियोंके बीज तथा सर्वशक्तिस्वरूप हैं। समस्त शक्तियोंके ईश्वर हैं, सर्वरूप हैं तथा सब शक्तियोंके आश्रय हैं। आप निरीह, स्वयंप्रकाश, सर्वानन्दमय तथा सनातन हैं। अहो! आकारहीन होते हुए भी आप सम्पूर्ण आकारोंसे युक्त हैं—सब आकार आपके ही हैं। आप सम्पूर्ण इन्द्रियोंके विषयोंको जानते हैं तो भी इन्द्रियवान् नहीं हैं। जिनकी स्तुति करने तथा जिनके तत्त्वका निरूपण करनेमें सरस्वती जडवत् हो जाती हैं; महेश्वर, शेषनाग, धर्म और स्वयं विधाता भी जडतुल्य हो जाते हैं; पार्वती, लक्ष्मी, राधा एवं वेदजननी सावित्री भी जडताको प्राप्त हो जाती हैं; फिर दूसरे कौन विद्वान् आपकी स्तुति कर सकते हैं? प्राणेश्वरेश्वर! हम स्त्रियाँ आपकी क्या स्तुति कर सकती हैं? देव! हमपर प्रसन्न होइये। दीनबन्धो! कृपा कीजिये।

यों कह सब ब्राह्मणपत्नियाँ उनके चरणारविन्दोंमें पड़ गयीं। तब श्रीकृष्णने प्रसन्नमुख एवं नेत्रोंसे उन सबको अभयदान दिया।

जो पूजाकालमें विप्रपत्नियोंद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह ब्राह्मणपत्नियोंको मिली हुई गतिको प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! उन ब्राह्मणपत्नियोंको अपने चरणारविन्दोंमें पड़ी देख श्रीमधुसूदनने कहा—'देवियो! वर माँगो। तुम्हारा कल्याण होगा।' श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर विप्रपत्नियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई, श्रद्धासे उनका मस्तक झुक गया और वे भक्तिभावसे इस प्रकार बोलीं।

द्विजपत्नियोंने कहा—श्रीकृष्ण! हम आपसे वर नहीं लेंगी। हमारी अभिलाषा यह है कि आपके चरणकमलोंकी सेवा प्राप्त हो; अतः आप हमें अपना दास्यभाव तथा परम दुर्लभ सुदृढ़ भक्ति प्रदान करें। केशव! हम प्रतिक्षण आपके मुखारविन्दको देखती रहें, यही कृपा कीजिये। प्रभो! अब हम पुनः घरको नहीं जायँगी।

द्विजपत्नियोंकी यह बात सुनकर करुणानिधान त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णने 'बहुत अच्छा' कहकर उनकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। फिर वे बालकोंकी मण्डलीमें बैठ गये। तदनन्तर ब्राह्मणपत्नियोंने उन्हें सुधाके समान मधुर अन्न प्रदान किया। भगवान्‌ने उस अन्नको लेकर गोप-बालकोंको भोजन कराया और स्वयं भी भोजन किया। इसी समय विप्रपत्नियोंने देखा कि आकाशसे एक सोनेका बना हुआ श्रेष्ठ विमान उतर रहा है। उसमें रत्नमय दर्पण लगे हैं। उसके सभी उपकरण रत्नोंके सारतत्त्वसे बने हुए हैं। वह रत्नोंके ही खम्भोंसे आबद्ध है तथा उत्तम रत्नमय कलशोंसे वह और भी उज्ज्वल जान पड़ता है। उसमें श्वेत चँवर लगे हुए हैं। अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र उसकी शोभा बढ़ाते हैं। उस विमानको पारिजातके फूलोंकी मालाओंके जालसे सजाया गया है। उसमें सौ पहिये हैं। मनके समान वेगसे चलनेवाला वह विमान बड़ा मनोहर है। वनमालासे विभूषित दिव्य पार्षद उसे सब ओरसे घेरे खड़े हैं। उन पार्षदोंने पीताम्बर पहन रखा है। वे रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत, नूतन यौवनसे सम्पन्न, श्यामकान्तिवाले, परम मनोहर, दो भुजाओंसे युक्त तथा गोपवेशधारी थे। उनके हाथोंमें मुरली थी। उन्होंने मोरपङ्ख और गुञ्जाकी

मालासे आबद्ध टेढ़े मुकुट धारण कर रखे थे।

वे रथसे तुरंत ही उतरकर श्रीहरिके चरणोंमें प्रणाम करके ब्राह्मणपत्नियोंसे बोले—'आप लोग इस विमानपर चढ़ जायँ।' ब्राह्मणपत्नियाँ श्रीहरिको नमस्कार करके मनोवाञ्छित गोलोकमें जा पहुँचीं। वे मानव-देहका त्याग करके तत्काल दिव्य गोपी हो गयीं। तत्पश्चात् श्रीहरिने वैष्णवी मायाके द्वारा उनकी छायाका निर्माण करके स्वयं ही उन्हें ब्राह्मणोंके घरोंमें भेज दिया। ब्राह्मण लोग अपनी पत्नियोंके लिये मन-ही-मन बहुत उद्विग्न थे और सब ओर उनकी खोज कर रहे थे। इसी समय रास्तेमें उन्हें अपनी पत्नियाँ दिखायी दीं। उन्हें देखकर सब ब्राह्मणोंके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। सम्पूर्ण अङ्ग पुलकित हो गये और वे विनयपूर्वक उनसे बोले।

ब्राह्मणोंने कहा—अहो! तुम सब लोग परम धन्य हो; क्योंकि तुमने साक्षात् परमेश्वरके दर्शन किये हैं। हमारा जीवन व्यर्थ है। हम लोगोंका वेदपाठ भी निरर्थक है। वेद और पुराणमें सर्वत्र विद्वानोंद्वारा श्रीहरिकी ही समस्त विभूतियोंका वर्णन किया गया है। सबके जनक श्रीहरि ही हैं। जप, तप, व्रत, ज्ञान, वेदाध्ययन, पूजन, तीर्थ-स्नान और उपवास—सबके फलदाता श्रीकृष्ण ही हैं। जिसने श्रीकृष्णकी सेवा कर ली, उसे तपस्याओंके फलोंसे क्या प्रयोजन है? जिसे कल्पवृक्षकी प्राप्ति हो गयी, वह दूसरे किसी वृक्षको लेकर क्या करेगा? जिसके हृदयमें श्रीकृष्ण विराजमान हैं, उसे यज्ञादि कर्मोंके अनुष्ठानकी क्या आवश्यकता है? जिसने समुद्रको पी लिया, उसके लिये कुआँ लाँघनेमें क्या पुरुषार्थ है?*

ऐसा कहकर ब्राह्मणलोग उन श्रेष्ठ कामिनियोंको साथ ले हर्षपूर्वक अपने घरको लौटे और उनके साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। उन सबका क्रीड़ामें तथा अन्य सब कर्मोंमें पहलेवाली स्त्रियोंकी अपेक्षा अधिक प्रेम तथा उदारभाव प्रकट होता था; परंतु मायाशक्तिसे प्रभावित होनेके कारण ब्राह्मणलोग उसका अनुमान नहीं कर पाते थे। उधर सनातन पूर्णब्रह्म नारायणस्वरूप श्रीकृष्ण बलराम तथा ग्वालबालोंके साथ शीघ्र ही अपने घरको चले गये। इस प्रकार मैंने श्रीहरिका सम्पूर्ण उत्तम माहात्म्य कह सुनाया। इसे मैंने पूर्वकालमें अपने पिता धर्मके मुखसे सुना था। नारद! अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—ऋषीन्द्र! किस पुण्यके प्रभावसे उन ब्राह्मणपत्नियोंको ऐसी गति प्राप्त हुई, जो बड़े-बड़े मुनीश्वरों तथा योगसिद्ध पुरुषोंके लिये भी दुर्लभ है। पूर्वकालमें ये पुण्यवती स्त्रियाँ कौन थीं और किस दोषसे इस भूतलपर आयी थीं। मेरे इस संदेहका निवारण करनेवाली बात कहिये।

भगवान् श्रीनारायण बोले—नारद! ये देवियाँ सप्तर्षियोंकी सुन्दर रूप-गुण-सम्पन्ना पतिव्रता पत्नियाँ थीं। एक बार अनलदेवने इनका अङ्ग

---

* अहोऽतिधन्या यूयं च दृष्टो युष्माभिरीश्वरः। अस्माकं जीवनं व्यर्थं वेदपाठोऽप्यनर्थकः॥
वेदे पुराणे सर्वत्र विद्वद्भिः परिकीर्तितम्। हरेर्विभूतयः सर्वाः सर्वेषां जनको हरिः॥
तपो जपो व्रतं ज्ञानं वेदाध्ययनमर्चनम्। तीर्थस्नानमनशनं सर्वेषां फलदो हरिः॥
श्रीकृष्णः सेवितो येन किं तस्य तपसां फलैः। प्राप्तः कल्पतरुर्येन किं तस्यान्येन शाखिना॥
श्रीकृष्णो हृदये यस्य किं तस्य कर्मभिः कृतैः। किं पीतसागरस्यैव पौरुषं कूपलङ्घने॥
(१८। ६६—७०)

स्पर्श कर लिया। इससे सप्तर्षियोंमें अङ्गिराको बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने अग्निको 'सर्वभक्ष्य' होनेका तथा इन पत्नियोंको मानुषी योनिमें जानेका शाप दे दिया। ये सब रोती हुई बोलीं—'हम लोग निर्दोष हैं, पतिव्रता हैं। हमारा त्याग न करें। आप हम डरी हुई अबलाओंको अभय प्रदान करें।'

इनके करुण-क्रन्दनसे मुनिको दया आ गयी। वे भी दुःखी हो गये। अन्तमें उन्होंने कहा कि तुम्हें मानुषी योनिमें जाना तो होगा; परंतु तुम्हें वहाँ साक्षात् भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त होंगे। उनके दर्शन होते ही तुम गोलोकमें चली जाओगी। फिर श्रीहरि अपनी योगमायासे तुम लोगोंकी छायामूर्तिका निर्माण करेंगे। वे तुम्हारी छायामूर्तियाँ कुछ समयतक उन ब्राह्मणोंके घरोंमें रहकर फिर हमारे यहाँ लौट आयेंगी। इस प्रकार तुम अपने छायांशसे पुनः हमारी पत्नियाँ हो जाओगी। अतएव यह मेरा शाप तुम्हारे लिये वरदानसे भी उत्कृष्ट है।

ऐसा कहकर वे मुनि चुप हो गये। उनके मनमें इसके लिये बड़ा दुःख था। वे स्त्रियाँ शापवश भूतलपर आकर उन ब्राह्मणोंकी पत्नियाँ हुईं और श्रीहरिको भक्तिभावसे अन्न समर्पित करके वे उनके धामको चली गयीं। निश्चय ही उनका शाप उनके लिये श्रेष्ठ सम्पत्तिसे भी अधिक महत्त्वशाली हुआ। नीच पुरुषसे मिली हुई सम्पत्ति भी निन्दनीय है; किंतु महात्मा पुरुषसे प्राप्त हुई विपत्ति भी श्रेष्ठ है। अहो! साधुपुरुषोंका कोप तत्काल ही उपकारमें बदल जाता है। विपत्तिके बिना भूतलपर किसीकी महिमा कैसे प्रकट हो सकती है? पतियोंके परित्यागसे भूमिपर उत्पन्न हुई ब्राह्मणपत्नियाँ श्रीहरिके दर्शनसे सदाके लिये भवबन्धनसे मुक्त हो गयीं*। इस प्रकार मैंने श्रीहरिके इस उत्तम चरित्रको पूर्णरूपेण कह सुनाया। उन पुण्यवती ब्राह्मणियोंके मोक्षकी यह मनोरम कथा अद्भुत है। विप्रवर! श्रीकृष्णकी लीला-कथा पद-पदमें नयी-नयी जान पड़ती है। इसे सुननेवालोंको कभी तृप्ति नहीं होती है। भला, श्रेय (कल्याणमयी कथाके श्रवण)-से कौन तृप्त होता है? मैंने पूज्य पिताजीके मुखसे जितना रमणीय भगवच्चरित्र सुना था, उसका वर्णन किया। अब तुम अपनी इच्छा बताओ। फिर क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने कहा—कृपानिधान! जगद्गुरो! आपने पूर्वकालमें पिताके मुखसे श्रीकृष्णकी जो-जो मङ्गलमयी लीलाएँ सुनी हैं, वे सब मुझे सुनाइये।

सूतजी कहते हैं—शौनक! देवर्षिका यह वचन सुनकर भगवान् नारायणने स्वयं ही श्रीकृष्णमहिमाके अन्यान्य प्रसङ्गोंका वर्णन आरम्भ किया। (अध्याय १८)

---

* निन्दनीयाच्च सम्पत्तेर्विपत्तिर्महतो वरा। अहो सद्यः सतां कोपश्चोपकाराय कल्पते॥
विना विपत्तेर्महिमा कुतः कस्य भवेद्भुवि। भूताः कान्तपरित्यागान्मुक्ता ब्राह्मणयोषितः॥
(१८। १२५-१२६)

श्रीकृष्णका कालियदहमें प्रवेश, नागराजका उनपर आक्रमण, श्रीकृष्णद्वारा उसका दमन, नागपत्नी सुरसाद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णकी उसपर कृपा, सुरसाका गोलोक-गमन, छायामयी सुरसाकी सृष्टि, कालियको वरदान, कालियद्वारा भगवान्‌की स्तुति, उस स्तुतिकी महिमा, नागका रमणक द्वीपको प्रस्थान, कालियका यमुनाजलमें निवासका कारण, गरुडका भय, सौभरिके शापसे कालियदहतक जानेमें गरुडकी असमर्थता, श्रीकृष्णके कालियदहमें प्रवेश करनेसे ग्वालबालों तथा नन्द आदिकी व्याकुलता, बलरामका समझाना, श्रीकृष्णके निकल आनेसे सबको प्रसन्नता, दावानलसे व्रजवासियोंकी रक्षा तथा नन्दभवनमें उत्सव

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन बलदेवको साथ लिये बिना ही श्रीकृष्ण अन्यान्य ग्वालबालोंके साथ यमुनाके उस तटपर चले गये, जहाँ कालियनागका निवासस्थान था। स्वेच्छामय शरीर धारण करनेवाले भगवान् नन्दनन्दन यमुना-तटवर्ती वनमें पके हुए फलोंको खाकर जब प्यास लगती, तब वहाँका निर्मल जल पी लेते थे। उन्होंने गोप-शिशुओंके साथ कुछ कालतक गौएँ चरायीं। तत्पश्चात् उन्हें तो एक जगह विश्रामके लिये खड़ी कर दिया और स्वयं साथियोंके साथ खेल-कूदमें लग गये; खेलमें इनका मन लग गया। ग्वालबाल भी बड़े हर्षके साथ उसमें भाग लेने लगे। उधर गौएँ नयी-नयी घास चरती हुई आगे बढ़ गयीं और यमुनाका विषमिश्रित जल पीने लगीं। मुने! दारुण कालकी चेष्टासे वह विषाक्त जल पीकर कालकूटकी ज्वालाओंसे संतप्त हो उन गौओंने तत्काल प्राण त्याग दिये। झुंड-की-झुंड गौओंको मरी हुई देख गोपबालक चिन्तासे व्याकुल और भयभीत हो उठे। उनके मुखपर विषाद छा गया और उन सबने आकर मधुसूदन श्रीकृष्णसे यह बात कही। सारा रहस्य जानकर जगन्नाथ श्रीहरिने उन सब गौओंको जीवित कर दिया। वे गौएँ तत्काल उठकर खड़ी हो गयीं और श्रीहरिका मुँह देखने लगीं। इधर श्रीकृष्ण यमुनातटवर्ती जलके निकट

उत्पन्न हुए कदम्बपर चढ़कर उस सर्पके भवनमें बहुत-से नागोंके बीच कूद पड़े। उनके जलमें पड़ते ही उस कुण्डका पानी सौ हाथ ऊपर उठ गया। नारद! यह देख ग्वालबालोंको पहले तो हर्ष हुआ, फिर वे बड़े दुःखका अनुभव करने लगे। कालियसर्प मनुष्यकी आकृतिमें आये हुए श्रीहरिको देखकर क्रोधसे विह्वल हो उठा और तुरंत ही उन्हें निगल गया। जैसे किसी मनुष्यने जल्दबाजीमें तपे हुए लोहेको थाम लिया हो वैसे ही ब्रह्मतेजसे उसका कण्ठ और पेट जलने लगा।

वह नाग उद्विग्न हो गया और 'हाय! हाय! मेरे प्राण निकले जा रहे हैं'—यों कहकर उसने पुनः उन्हें उगल दिया। श्रीकृष्णके वज्रोपम अङ्गोंको चबानेसे उसके सारे दाँत टूट गये और मुँह लहूलुहान हो गया। भगवान् उस समय रक्तरञ्जित मुखवाले कालिय नागके मस्तकपर चढ़ गये। विश्वम्भरके भारसे आक्रान्त हो कालिय नाग प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गया। मुने! उसने रक्त वमन किया और मूर्च्छित होकर वह गिर पड़ा। उसे मूर्च्छित देख सब नाग प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे। कोई भाग गये और कोई डरके मारे बिलमें घुस गये। अपने प्रियतमको मरणोन्मुख हुआ देख नागपत्नी सती सुरसा दूसरी नागिनियोंके साथ श्रीहरिके सामने आयी और पति-प्रेमसे रोने लगी। उसने दोनों हाथ जोड़कर शीघ्र ही भयसे श्रीहरिको प्रणाम किया और उनके दोनों चरणारविन्द पकड़कर व्याकुल हो उनसे कहा।

सुरसा बोली—हे जगदीश्वर! आप मुझे मेरे स्वामीको लौटा दीजिये। दूसरोंको मान देनेवाले प्रभो! मुझे भी मान दीजिये। स्त्रियोंको पति प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय होता है। उनके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई बन्धु नहीं है। नाथ! आप देवेश्वरोंके भी स्वामी, अनन्त प्रेमके सागर,

उत्तम बन्धु, सम्पूर्ण भुवनोंके बान्धव तथा श्रीराधिकाजीके लिये प्रेमके समुद्र हैं। अतः मेरे प्राणनाथका वध न कीजिये। आप विधाताके भी विधाता हैं। इसलिये यहाँ मुझे पतिदान दीजिये। त्रिनेत्रधारी महादेवके पाँच मुख हैं; ब्रह्माजीके चार और शेषनागके सहस्र मुख हैं; कार्तिकेयके भी छः मुख हैं; परंतु ये लोग भी अपने मुख-समूहोंद्वारा आपकी स्तुति करनेमें जड़वत् हो जाते हैं। साक्षात् सरस्वती भी आपका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं हैं। सम्पूर्ण वेद, अन्यान्य देवता तथा संत-महात्मा भी आपकी स्तुतिके विषयमें शक्तिहीनताका ही परिचय देते हैं। कहाँ तो मैं कुबुद्धि, अज्ञ एवं नारियोंमें अधम सर्पिणी और कहाँ सम्पूर्ण भुवनोंके परम आश्रय तथा किसीके भी दृष्टिपथमें न आनेवाले आप परमेश्वर! जिनकी स्तुति ब्रह्मा, विष्णु और शेषनाग करते हैं, उन मानव-वेषधारी आप नराकार परमेश्वरकी स्तुति मैं करना चाहती हूँ, यह कैसी विडम्बना है? पार्वती, लक्ष्मी तथा वेदजननी सावित्री जिनके स्तवनसे डरती हैं और स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हो पातीं; उन्हीं आप परमेश्वरका स्तवन कलिकलुषमें निमग्न तथा वेद-वेदाङ्ग एवं शास्त्रोंके श्रवणमें मूढ़ स्त्री मैं क्यों करना चाहती हूँ, यह समझमें नहीं आता। आप रत्नमय पर्यङ्कपर रत्ननिर्मित भूषणोंसे भूषित हो शयन करते हैं। रत्नालंकारोंसे अलंकृत अङ्गवाली राधिकाके वक्षःस्थलपर विराजमान होते हैं। आपके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित रहते हैं, मुखारविन्दपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैली होती है। आप उमड़ते हुए प्रेमरसके महासागरमें सदा सुखसे निमग्न रहते हैं। आपका मस्तक मल्लिका और मालतीकी मालाओंसे सुशोभित होता है। आपका मानस नित्य निरन्तर पारिजात पुष्पोंकी सुगन्धसे आमोदित रहा करता है। कोकिलके कलरव तथा भ्रमरोंके गुञ्जारवसे उद्दीपित प्रेमके कारण आपके अङ्ग उठी हुई पुलकावलियोंसे अलंकृत रहते हैं। जो सदा प्रियतमाके दिये हुए ताम्बूलका सानन्द

पर्वण करते हैं; वेद भी जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं तथा बड़े-बड़े विद्वान् भी जिनके स्तवनमें जडवत् हो जाते हैं; उन्हीं अनिर्वचनीय परमेश्वरका स्तवन मुझ-जैसी नागिन क्या कर सकती है? मैं तो आपके उन चरणकमलोंकी वन्दना करती हूँ, जिनका सेवन ब्रह्मा, शिव और शेष करते हैं तथा जिनकी सेवा सदा लक्ष्मी, सरस्वती, पार्वती, गङ्गा, वेदमाता सावित्री, सिद्धोंके समुदाय, मुनीन्द्र और मनु करते हैं। आप स्वयं कारणरहित हैं, किंतु सबके कारण आप ही हैं। सर्वेश्वर होते हुए भी परात्पर हैं स्वयंप्रकाश, कार्य-कारणस्वरूप तथा उन कार्य-कारणोंके भी अधिपति हैं। आपको मेरा नमस्कार है। हे श्रीकृष्ण! हे सच्चिदानन्दघन! हे सुरासुरेश्वर! आप ब्रह्मा, शिव, शेषनाग, प्रजापति, मुनि, मनु, चराचर प्राणी, अणिमा आदि सिद्धि, सिद्ध तथा गुणोंके भी स्वामी हैं। मेरे पतिकी रक्षा कीजिये, आप धर्म और धर्मोंके तथा शुभ और अशुभके भी स्वामी हैं। सम्पूर्ण वेदोंके स्वामी होते हुए भी उन वेदोंमें आपका अच्छी तरह निरूपण नहीं हो सका है। सर्वेश्वर! आप सर्वस्वरूप तथा सबके बन्धु हैं। जीवधारियों तथा जीवोंके भी स्वामी हैं। अतः मेरे पतिकी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके नागराजवल्लभा सुरसा भक्तिभावसे मस्तक झुका श्रीकृष्णके चरणकमलोंको पकड़कर बैठ गयी। नागपत्नीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो त्रिकाल संध्याके समय पाठ करता है, वह सब पापोंसे मुक्त हो अन्ततोगत्वा श्रीहरिके धाममें चला जाता है। उसे इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति प्राप्त होती है और अन्तमें वह निश्चय ही श्रीकृष्णका दास्य-सुख पा जाता है। वह श्रीहरिका पार्षद हो सालोक्य आदि चतुर्विध मुक्तियोंको करतलगत कर लेता है।

नारदजीने पूछा—नागपत्नीकी बात सुनकर हर्षसे उत्फुल्ल नेत्रोंवाले सर्वनन्दन भगवान् गोविन्दने स्वयं उससे क्या कहा? महाभाग! यह अत्यन्त अद्भुत रहस्य मुझसे बताइये।

भगवान् नारायणने कहा—मुने! नागपत्नी भयसे व्याकुल हो हाथ जोड़कर भगवान्‌के चरणोंमें पड़ी थी। उसकी उपर्युक्त बातें सुनकर श्रीकृष्णने उससे इस प्रकार कहा—

श्रीकृष्ण बोले—नागेश्वरि! उठो, उठो! भय छोड़ो और वर माँगो। मातः! मेरे वरके प्रभावसे अजर-अमर हुए अपने पतिको ग्रहण करो और यमुनाका ह्रद छोड़कर अपने घरको चली जाओ। वत्से! अपने पति और परिवारके साथ अभीष्ट स्थानको पधारो। नागेशि! आजसे तुम मेरी कन्या हुई और तुम्हारे प्राणोंसे भी अधिक प्रियतम यह नागराज मेरे जामाता हुए; इसमें संशय नहीं है। शुभे! मेरे चरणकमलोंके चिह्नसे युक्त होनेके कारण तुम्हारे पतिको अब गरुड कष्ट नहीं देंगे, अपितु भक्तिभावसे स्तुति करके मेरे चरणचिह्नको प्रणाम करेंगे। अब तुम गरुडका भय छोड़ो और शीघ्र रमणक द्वीपको चली जाओ। बेटी! इस ह्रदसे निकलो और इच्छानुसार वर माँगो।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर सुरसाके नेत्र और मुख हर्षसे खिल उठे। उसकी आँखोंमें आँसू भर आये तथा उसने भक्ति-भावसे मस्तक झुकाकर कहा।

सुरसा बोली—वरदाता परमेश्वर! पिताजी! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं तो अपने चरणकमलोंकी सुदृढ़ एवं अविचल भक्ति प्रदान कीजिये। मेरा मन भ्रमरकी भाँति सदा आपके चरणारविन्दपर ही मँडराता रहे। मुझे आपके स्मरणकी कभी विस्मृति न हो, मेरा कान्तविषयक सौभाग्य सदा बना रहे और ये मेरे प्राणवल्लभ ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ हो जायँ। प्रभो! यही मेरी प्रार्थना है; इसे पूर्ण कीजिये।

ऐसा कहकर नागपत्नी श्रीहरिके सामने नत हुई खड़ी हो गयी। उसने शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित करनेवाले श्रीहरिके मुखचन्द्रका दर्शन किये। उस सतीने अपने दोनों नेत्रोंसे निमेषरहित होकर गोविन्दके मुखकी सौन्दर्यमाधुरीका पान किया। उसके सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। वह आनन्दके आँसुओंमें डूब गयी। श्रीहरिको सुन्दर बालकके रूपमें देखकर वह उनके प्रति पुत्रोचित स्नेह करने लगी और भक्तिके उद्रेकसे आप्लावित हो पुनः इस प्रकार बोली—'गोविन्द! मैं रमणक-द्वीपमें नहीं जाऊँगी। वहाँ मेरा कोई प्रयोजन नहीं है। यह सर्प वहाँ जाकर संसार चलावे, मुझे तो आप अपनी किङ्करी बना लीजिये! हे श्रीकृष्ण! मेरे मनमें सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तिके लिये भी इच्छा नहीं है; क्योंकि वह मुक्ति आपके चरणारविन्दोंकी सेवाकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं है। जो भारतवर्षमें दुर्लभ जन्म पाकर आपसे आपकी चरणसेवाके अतिरिक्त दूसरे वरकी इच्छा करता है, वह स्वयं ठगा गया*।'

नागपत्नीकी यह बात सुनकर श्रीकृष्णके मुखारविन्दपर मुस्कराहट फैल गयी। उनका मन प्रसन्न हो गया और उन श्रीमान् माधवने 'एवमस्तु' कहकर उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसी बीचमें उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित दिव्य विमान वहाँ तत्काल उतर आया। मुने! वह अपने तेजसे उद्दीप्त हो रहा था। उसपर अनेक श्रेष्ठ पार्षद बैठे थे तथा उसे दिव्य वस्त्रों एवं मालाओंसे सजाया गया था। उसमें सौ पहिये लगे थे। वह वायुके समान वेगशाली तथा मनकी गतिसे चलनेवाला था। देखनेमें बड़ा ही मनोहर था। श्यामसुन्दरके श्याम कान्तिवाले सेवक तुरंत ही उस रथसे उतरे और श्रीकृष्णको प्रणाम करके सुरसाको साथ ले उत्तम गोलोकधामको चले गये।

तत्पश्चात् श्रीहरिने अपने तेजसे छायारूपिणी सुरसाकी सृष्टि करके उसे सर्पको दे दिया। कालियनाग यह सब कुछ न जान सका; क्योंकि वह वैष्णवी मायासे विमोहित था। सर्पके मस्तकसे उतरकर करुणानिधान श्रीकृष्णने कृपापूर्वक शीघ्र ही कालियके सिरपर अपना हाथ रखा। हाथ रखते ही उसके शरीरमें चेतना लौट आयी और उसने श्रीहरिको अपने सामने देखा तथा इस बातकी ओर भी लक्ष्य किया कि सती सुरसा दोनों हाथ जोड़े खड़ी है और उसके नेत्रोंसे आँसू बह रहे हैं। यह देख उसने भी गोविन्दको प्रणाम किया और तत्काल प्रेमसे विह्वल होकर वह रोने लगा। कृपानिधान भगवान्ने देखा नागराज रो रहा है और सुरसा भक्तिके उद्रेकसे पुलकित हो नेत्रोंसे आँसू बहा रही है; किंतु कुछ बोल नहीं रही है। तब वे दयानिधि स्वयं बोले; क्योंकि योग्य और अयोग्य प्राणीपर भी ईश्वरकी कृपा सदा समान रूपसे ही रहती है।

श्रीकृष्णने कहा—कालिय! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो। वत्स! तुम मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हो। भय छोड़ो और सुखसे रहो। जो मेरा अत्यन्त भक्त हो और मेरे अंशसे उत्पन्न हुआ हो, उसपर मैं विशेष अनुग्रह करता हूँ। उसके अभिमानको मिटानेके लिये उसका किञ्चित् दमन करके मैं पुनः उसपर कृपा करता हूँ। जो लोग तुम्हारे वंशमें उत्पन्न हुए सर्पोंका विनाश करेंगे, उनको महान् पाप लगेगा और वे दुःखोंके भागी होंगे। परंतु जो लोग तुम्हारे कुलमें उत्पन्न हुए सर्पोंको देखकर उनके मस्तकपर उभरे हुए मेरे सुन्दर चरणचिह्नोंको भक्तिभावसे प्रणाम करेंगे, वे समस्त पातकोंसे मुक्त हो जायँगे। तुम शीघ्र रमणक द्वीपको जाओ

* विना त्वत्पादसेवां च यो वाञ्छति वरान्तरम्। भारते दुर्लभं जन्म लब्ध्वासौ वञ्चितः स्वयम्॥ (११। ५२)

और गरुड़का भय छोड़ दो। तुम्हारे मस्तकपर मेरे चरणचिह्नको देखकर गरुड़ भक्तिभावसे तुम्हें नमस्कार करेंगे। तुमको और तुम्हारे वंशजोंको गरुड़से कभी भय नहीं होगा। आजसे मेरा वर पाकर अपनी जातिके सर्पोंमें तुम सर्वश्रेष्ठ हो जाओ। वत्स! तुमको और कौन-सा उत्तम वर अभीष्ट है? उसे इस समय माँगो। मैं तुम्हारा दुःख दूर करनेवाला हूँ; अतः भय छोड़कर मुझसे मनकी बात कहो।

श्रीकृष्णकी बात सुनकर कालियनाग, जो भयसे काँप रहा था, दोनों हाथ जोड़कर उनसे बोला।

कालियने कहा—वरदायक प्रभो! दूसरे किसी वरके लिये मेरी इच्छा नहीं है। प्रत्येक जन्ममें मेरी आपके चरणकमलोंमें भक्ति बनी रहे और मैं सदा आपके उन चरणारविन्दोंका चिन्तन करता रहूँ; यही वर मुझे दीजिये। जन्म ब्राह्मणके कुलमें हो या पशु-पक्षियोंकी योनियोंमें, सब समान है। वही जन्म सफल है, जिसमें आपके चरणकमलोंकी स्मृति बनी रहे। यदि आपके चरणोंका स्मरण न हो तो देवता होकर स्वर्गमें रहना भी निष्फल है। जो आपके चरणोंके चिन्तनमें तत्पर है, उसे जो भी स्थान प्राप्त हो, वही सबसे उत्तम है। उस पुरुषकी आयु एक क्षणकी हो या करोड़ों कल्पोंकी, अथवा उसकी आयु तत्काल ही क्षीण होनेवाली क्यों न हो; यदि वह आपकी आराधनामें बीत रही है तो सफल है, अन्यथा उसका कोई फल नहीं है—वह व्यर्थ है। जो आपके चरणारविन्दोंके सेवक हैं, उनकी आयु व्यर्थ नहीं जाती, सार्थक होती है। उन्हें जन्म-मरण, रोग-शोक और पीड़ाका कुछ भी भय नहीं रहता—वे इनकी कुछ भी परवाह नहीं करते। भक्तोंके मनमें आपके चरणोंकी सेवाको छोड़कर इन्द्रपद, अमरत्व अथवा परम दुर्लभ ब्रह्मपदको भी पानेकी इच्छा नहीं होती। आपके भक्तजन सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तियोंको अत्यन्त फटे पुराने वस्त्रके चिथड़ेके समान तुच्छ देखते हैं*। ब्रह्मन्! मैंने भगवान् अनन्तके मुखसे ज्यों ही आपके मन्त्रका उपदेश प्राप्त किया, त्यों ही आपकी भावना करते-करते आपके अनुग्रहसे मैं आपके समान वर्णवाला हो गया। मैं अपक्व भक्त था अर्थात् मेरी भक्ति परिपक्व नहीं हुई थी। यह जानकर ही स्वयं सुदृढ़ भक्ति धारण करनेवाले गरुड़ने मुझे देशसे दूर कर दिया और धिक्कारा था। परंतु वरदेश्वर! अब आपने मुझे अविचल भक्ति दे दी है। गरुड़ भी भक्त हैं, मैं भी भक्त हो गया हूँ; अतः अब वे मेरा त्याग नहीं कर सकते हैं। आपके चरणारविन्दोंके चिह्नसे अलंकृत मेरे श्रीयुत मस्तकको देखकर गरुड़ मुझे सदोष होनेपर भी गुणवान् मानेंगे; अतः इस समय मेरा त्याग नहीं कर सकेंगे। अब तो वे यह मानकर कि नागेन्द्रगण हमारे आराध्य हैं, मुझे कष्ट नहीं देंगे। परमेश्वर! अब मैं उनका वध्य नहीं रहा। उन गुरुदेव अनन्तके सिवा मुझे कहीं किसीसे भी भय नहीं है। देवेन्द्रगण, देवता, मुनि, मनु और मानव—जिन्हें स्वप्नमें तथा ध्यानमें भी नहीं देख पाते हैं—वे ही परमात्मा इस समय मेरे

---

* तन्निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति यस्य स्मृतिस्तव । त्वत्पदध्यानयुक्तस्य यत्तत् स्थानं च तत्परम् ॥
क्षणं वा कोटिकल्पं वा पुंसामायुश्च यत्तथा । यदि त्वत्सेवया याति सफलो निष्फलोऽन्यथा ॥
तेषां चायुः क्षयो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः । न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्तिभीतयः ॥
इन्द्रत्वे चामरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे । वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना ॥
सुजीर्णपटखण्डस्य समं तन्तूनमेव वा । पश्यन्ति भक्ताः किं चान्यत् सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥
(१९ । ७६—८०)

नेत्रोंके विषय हो रहे हैं। प्रभो! आप तो भक्तोंके अनुरोधसे साकार रूपमें प्रकट हुए हैं; अन्यथा आपको शरीरकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? सगुण-साकार तथा निर्गुण-निराकार भी आप ही हैं। आप स्वेच्छामय, सबके आवासस्थान तथा समस्त चराचर जगत्‌के सनातन बीज हैं। सबके ईश्वर, साक्षी, आत्मा और सर्वरूपधारी हैं। ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म और इन्द्र आदि देवता तथा वेदों और वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् भी जिन परमेश्वरकी स्तुति करनेमें जडवत् हो जाते हैं, उन्हीं सर्वव्यापी प्रभुका स्तवन क्या एक सर्प कर सकेगा? हे नाथ! हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! आप मुझ अधमको क्षमा कीजिये। श्रीकृष्ण! मैंने अपने खल स्वभाव और अज्ञानके कारण आपको चबा डालनेका प्रयत्न किया; परंतु आप तो आकाशकी भाँति सर्वत्र व्यापक तथा अमूर्त हैं; अतः किसी भी अस्त्रके लक्ष्य नहीं हैं। न तो आपका अन्त देखा जा सकता है और न लाँघा ही जा सकता है। न तो कोई आपका स्पर्श कर सकता है और न आपपर आवरण ही डाल सकता है। आप स्वयं प्रकाशरूप हैं।

ऐसा कहकर नागराज कालिय भगवान्‌के चरणकमलोंमें गिर पड़ा। भगवान् उसपर संतुष्ट हो गये। उन्होंने 'एवमस्तु' कहकर उसे सम्पूर्ण अभीष्ट वर दे दिया। जो नागराजद्वारा किये गये स्तोत्रका प्रातःकाल उठकर पाठ करता है, उसे तथा उसके वंशजोंको कभी नागोंसे भय नहीं होता। वह भूतलपर नागोंकी शय्या बनाकर सदा उसपर शयन कर सकता है। उसके भोजनमें विष और अमृतका भेद नहीं रह जाता। जिसको नागने ग्रस लिया हो, काट खाया हो, अथवा विषैला भोजन करनेसे जिसके प्राणान्तकी सम्भावना हो गयी हो, वह मनुष्य भी इस स्तोत्रको सुननेमात्रसे स्वस्थ हो जाता है। जो इस स्तोत्रको भोजपत्रपर लिखकर भक्तिभावसे युक्त हो कण्ठमें या दाहिने हाथमें धारण करता है, उसे भी नागोंसे भय नहीं होता। जिस घरमें यह स्तोत्र पढ़ा जाता है, वहाँ कोई नाग नहीं ठहरता। निश्चय ही उस घरमें विष, अग्नि तथा वज्रका भय नहीं प्राप्त होता। इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति और स्मृति उसे सदा सुलभ होती है तथा अन्तमें अपने कुलको पवित्र करके निश्चय ही वह श्रीकृष्णका दास्यभाव प्राप्त कर लेता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! नागराजको अभीष्ट वर देकर जगदीश्वर श्रीहरिने पुनः उससे मधुर वचन कहे, जो परिणाममें सुख देनेवाले थे।

श्रीकृष्ण बोले—नागराज! तुम यमुना-जलके मार्गसे ही परिवारसहित रमणकद्वीपमें चले जाओ। वह स्थान इन्द्रनगरके समान श्रेष्ठ एवं सुन्दर है।

श्रीहरिकी यह आज्ञा सुनकर नाग प्रेमविह्वल होकर रोने लगा और बोला—'नाथ मैं आपके चरणकमलोंका कब दर्शन करूँगा?' यह महेश्वर श्रीकृष्णको सैकड़ों बार प्रणाम करके स्त्री और परिवारके साथ जलके ही मार्गसे चला गया। जाते समय नागराज भगवद्-विरहसे व्याकुल हो रहा था। उसके चले जानेके बाद यमुनाके उस कुण्डका जल अमृतके समान हो गया। इससे समस्त जन्तुओंको बड़ी प्रसन्नता हुई। नारद! रमणकमें पहुँचकर कालियने इन्द्रनगरके समान सुन्दर भवन देखा। कृपासिन्धु श्रीकृष्णकी आज्ञासे साक्षात् विश्वकर्माने उसका निर्माण किया था। वहाँ नागराज कालिय अपनी पत्नी और पुत्रोंके साथ श्रीहरिके चिन्तनमें तत्पर हो भय छोड़कर बड़े हर्षके साथ रहने लगा। इस प्रकार श्रीहरिका सारा अद्भुत, सुखदायक, मोक्षप्रद तथा सारभूत चरित्र मैंने कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

सूतजी कहते हैं—महर्षि नारायणका उपर्युक्त

वचन सुनकर नारदजी हर्षविभोर हो गये। उन्होंने समस्त संदेहोंका निवारण करनेवाले उन महर्षिसे अपना संदेह इस प्रकार पूछा।

नारदजी बोले—जगद्गुरो! अपने पहलेके उत्तम भवनको छोड़कर कालिय यमुनातटको क्यों चला गया था? इसका रहस्य मुझे बताइये।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—नारद! सुनो। मैं उस प्राचीन इतिहासका वर्णन कर रहा हूँ, जिसे मैंने सूर्यग्रहणके समय मलयाचलपर सुप्रभा नदीके पश्चिम किनारे श्रीकृष्ण-कथाके प्रसङ्गमें पिता धर्मके मुखसे सुना था। पुलहने धर्मसे अपना संदेह पूछा था, तब कृपानिधान धर्मने मुनियोंकी सभामें इस आश्चर्यमय आख्यानको सुनाया था। नारद! वहाँ मैंने इसे सुना था, अतः कहता हूँ, सुनो।

भगवान् शेषकी आज्ञासे नागगण प्रतिवर्ष कार्तिककी पूर्णिमाको भयके कारण गरुड़देवकी पूजा करते हैं। पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य और विविध उपहार-सामग्री अर्पित करके प्रसन्नतापूर्वक उनकी आराधना करते हैं। महातीर्थ पुष्करमें भक्तिपूर्वक भलीभाँति स्नान करके कालियने अहंकारवश उक्त तिथिको गरुड़की पूजा नहीं की। नागोंद्वारा जो पूजाकी सामग्री एकत्र की गयी थी, उसे कालियनाग बलपूर्वक खानेको उद्यत हो गया। तब सभी नाग उस मदमत्त कालियको रोकने तथा उसे नीतिकी बात बताने लगे। जब किसी तरह भी वे कालियको रोकनेमें समर्थ न हो सके, तब सहसा वहाँ पक्षिराज गरुड़ प्रकट हो गये। मुने! गरुड़को आया देख नागगण कालियके प्राणोंकी रक्षा करनेके लिये जबतक सूर्योदय नहीं हुआ, तबतक पूरी शक्ति लगाकर उनके साथ युद्ध करते रहे। अन्तमें पक्षिराजके तेजसे उद्विग्न हो वे सब-के-सब भाग खड़े हुए और सबके अभयदाता भगवान् अनन्तकी शरणमें गये। नागोंको भागते देख करुणानिधान कालिय वहाँ निःशङ्कभावसे खड़ा रहा। उसने गरुड़की ओर देखा और श्रीहरिके चरणारविन्दोंका चिन्तन करके गरुड़के साथ युद्ध आरम्भ कर दिया। एक मुहूर्ततक उन दोनोंमें अत्यन्त भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें गरुड़के तेजसे नागराज कालियको पराजित होना पड़ा। फिर तो वह भागा और यमुनाजीके उसी कुण्डमें चला गया, जहाँ सौभरिके शापसे पक्षिराज गरुड़ नहीं जा सकते थे। गरुड़के भयसे नाग वहीं रहने लगा। पीछेसे उसके परिवारके लोग भी वहीं चले गये।

नारदजीने पूछा—भगवन्! गरुड़को सौभरिका शाप कैसे प्राप्त हुआ? परमेश्वरके वाहन होकर भी गरुड़ उस ह्रदमें क्यों नहीं जा सकते थे?

भगवान् श्रीनारायण बोले—उस कुण्डमें सौभरि मुनि एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक तपस्या करके महासिद्ध हो श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करते थे। उन ध्यानपरायण मुनिके समीप पक्षिराज गरुड़ यमुनाजीके जलमें तथा किनारे भी अपने गणोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक निःशङ्क विचरा करते थे। वे अपनी उत्कृष्ट इच्छासे प्रेरित हो बहुधा पूँछ (अथवा पंख) ऊपरको उठाकर मुनिके अगल-बगलमें उनकी सानन्द परिक्रमा करते हुए जाते-आते थे। एक दिन उन्होंने परिवारसहित विशालकाय मीनको देखा। देखते-ही-देखते गरुड़ने मुनीन्द्रके निकटसे ही उस मीनको चोंचसे पकड़ लिया। मछलीको मुँहमें दबाये जाते हुए गरुड़को मुनिने रोषभरी दृष्टिसे देखा। मुनिकी उस दृष्टिसे गरुड़ काँप उठे और वह महामत्स्य उनकी चोंचसे छूटकर पानीमें गिर पड़ा। गरुड़के डरसे वह मीन मुनिके पास ठहर गया—उनके शरणागत हो गया। जब गरुड़ पुनः उसे लेनेको उद्यत हुए, तब मुनीन्द्रने उनसे कहा।

सौभरि बोले—पक्षिराज! मेरे पाससे दूर हटो, दूर हटो। मेरे सामनेसे इस विशाल जीवको पकड़ लेनेकी तुममें क्या योग्यता है? तुम

अपनेको श्रीकृष्णका वाहन समझकर बहुत बड़ा मानते हो। श्रीकृष्ण तुम्हारे-जैसे करोड़ों वाहन रख लेनेकी शक्ति रखते हैं। मैं अपनी भौंहें टेढ़ी करनेमात्रसे तुम्हें शीघ्र और अनायास ही भस्म कर सकता हूँ। तुम परमेश्वरके वाहन हो तो क्या हुआ? हम लोग तुम्हारे दास नहीं हैं। पक्षिराज! यदि आजसे कभी भी मेरे इस कुण्डमें आओगे तो मेरे शापसे तत्काल भस्म हो जाओगे। यह ध्रुव सत्य है।

मुनीन्द्रकी बात सुनकर पक्षिराज विचलित हो गये। वे श्रीकृष्णके चरणोंका स्मरण करते-करते उन्हें प्रणाम करके चल दिये। विप्रवर नारद! तभीसे अबतक सदा ही उस कुण्डका नाम सुननेमात्रसे पक्षिराजको कँपकँपी आ जाती है। यह इतिहास, जो धर्मके मुखसे सुना गया था, तुमसे कहा गया। अब जिसका प्रकरण चल रहा है, श्रीहरिके उस श्रवणसुखद, रहस्ययुक्त तथा मङ्गलमय लीलाचरित्रको सुनो।

श्रीकृष्ण बहुत देरतक यमुना-जलसे ऊपर नहीं उठे। यह जानकर ग्वालबाल दुःखी हो गये। वे मोहवश यमुनाके तटपर रोने लगे। कुछ बालक शोकसे व्याकुल हो अपनी छाती पीटने लगे। कोई श्रीहरिके बिना पृथ्वीपर पछाड़ खाकर गिरे और मूर्च्छित हो गये। कितने ही बालक श्रीकृष्णविरहसे व्यथित हो कालियदहमें प्रवेश करनेको उद्यत हो गये और कुछ ग्वालबाल उनको उसमें जानेसे रोकने लगे। कोई-कोई विलाप करके प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गये और उनमें जो समझदार थे, ऐसे कुछ बालक उन मरणोन्मुख बालकोंकी प्रयत्नपूर्वक रक्षा करने लगे। कोई 'हाय-हाय' कहकर रोने-बिलखने लगे। कोई 'कृष्ण-कृष्ण' की रट लगाने लगे और कोई इस समाचारको बतानेके लिये नन्दरायजीके समीप दौड़े गये। कुछ बालक वहाँ शोक, भय और मोहसे आतुर हो परस्पर मिलकर यों कहने लगे—'हम क्या करें? हमारे श्रीहरि कहाँ चले गये? हे नन्दनन्दन! हे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतम श्रीकृष्ण! हे बन्धो! हमें दर्शन दो। हमारे प्राण निकले जा रहे हैं।'

इसी बीचमें कुछ बालक नन्दरायजीके निकट जा पहुँचे। वे अत्यन्त चञ्चल थे और शोकसे व्याकुल होकर रो रहे थे। उन्होंने शीघ्र ही यशोदाको, उनके पास बैठे हुए बलरामको तथा अन्यान्य गोपों और लाल कमलके समान नेत्रोंवाली गोपाङ्गनाओंको यह समाचार बताया। यह समाचार सुनकर वे सब-के-सब शोकसे व्याकुल हो दौड़ते हुए यमुनातटपर जा पहुँचे और बालकोंके साथ रोने लगे। सारे व्रजवासी एकत्र हो रोते-रोते शोकसे मूर्च्छित हो गये। माता यशोदा कालियदहमें प्रवेश करने लगीं। यह देख कुछ लोगोंने उन्हें रोका। गोप और गोपियाँ शोकसे अपने ही अङ्गोंको पीटने लगीं। कुछ लोग विलाप करने लगे और कितने ही व्रजवासी अपनी सुध-बुध खो बैठे। राधा भी यमुनाजीके उस कुण्डमें घुसने लगीं। यह देख कुछ स्त्रियोंने दौड़कर उन्हें रोका। वे शोकसे मूर्च्छित हो गयीं

और उस नदीके तटपर मरी हुईके समान पड़

गयीं। नन्दरायजी अत्यन्त विलाप करके बार-बार मूर्च्छित होने लगे। वे चेत होनेपर पुनः रोते तथा रो-रोकर फिर मूर्च्छित हो जाते थे। उस समय ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ बलरामजीने अत्यन्त विलाप करते हुए नन्दको, शोकसे कातर हुई यशोदाको, गोपों और गोपाङ्गनाओंको, अत्यन्त मूर्च्छित राधिकाको, रोते हुए समस्त बालकोंको तथा शोकग्रस्त हुई सम्पूर्ण गोप-बालिकाओंको धीरज बँधाते हुए समझाना आरम्भ किया।

श्रीबलदेव बोले—हे गोपो! गोपियो! और बालको! सब लोग मेरी बात सुनो। हे नन्दबाबा! ज्ञानिशिरोमणि गर्गजीकी बातोंको याद करो। जो जगत्‌का भार उठानेवाले शेषके भी आधारभूत हैं, संहारकारी शंकरके भी संहारक हैं; तथा विधाताके भी विधाता हैं; उनकी इस भूतलपर किससे पराजय हो सकती है? श्रीकृष्ण अणुसे भी अणु तथा परम महान् हैं। वे स्थूलसे भी स्थूल तथा परात्पर हैं। उनकी सत्ता सदा और सर्वत्र विद्यमान है; तथापि वे किसीके दृष्टिपथमें नहीं आते। वे ही योगियोंके भी सम्यक् योग हैं। श्रुतियोंने स्पष्ट कहा है कि सम्पूर्ण दिशाएँ कभी एकत्र नहीं हो सकतीं, आकाशको कोई छू नहीं सकता तथा सर्वेश्वरको कोई बाधा नहीं पहुँचा सकता। श्रीकृष्ण सबके आत्मा हैं। आत्मा किसीकी दृष्टिमें नहीं आता। उसे अस्त्रोंका निशाना नहीं बनाया जा सकता। वह न तो वधके योग्य है और न दृश्य ही है। उसे आग नहीं जला सकती और न उसकी हिंसा ही की जा सकती है। अध्यात्मतत्त्वके विज्ञाता विद्वानोंने आत्माको ऐसा ही जाना और माना है। इन श्रीकृष्णका विग्रह भक्तोंके ध्यानके लिये ही है। ये ज्योतिःस्वरूप और सर्वव्यापी हैं। इन परमात्माका आदि, मध्य और अन्त नहीं है। जब सारा ब्रह्माण्ड एकार्णवके जलमें मग्न हो जाता है तब ये श्रीकृष्ण जलमें शयन करते हैं। उस समय इनकी नाभिसे जो कमल पैदा होता है, उसीसे ब्रह्माजीका प्राकट्य होता है। जिन्हें एकार्णवके जलमें भी भय नहीं है, उन्हीं परमेश्वरके लिये इस कालियदहमें विपत्तिकी सम्भावना कितना महान् अज्ञान है? पिताजी! यदि एक मच्छर सारे ब्रह्माण्डको निगल जानेमें समर्थ हो जाय तो भी उन ब्रह्माण्डनायकको यह सर्प अपना ग्रास नहीं बना सकता। यह मैंने परम उत्तम सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञानकी बात कही है। यह गूढ़ ज्ञान योगियोंके लिये सार वस्तु है। इससे समस्त संशयोंका उच्छेद हो जाता है।

बलदेवजीकी बात सुनकर और गर्गजीके वचनोंको याद करके नन्दजीने शोक त्याग दिया। व्रजवासियों और व्रजाङ्गनाओंका भी शोक जाता रहा। सबने बलदेवजीके इस प्रबोधनको मान लिया; परंतु यशोदा और राधिकाको इससे संतोष न हुआ। प्रियजनके विरहके विषयमें मन किसी प्रकारके प्रबोधको नहीं ग्रहण करता—जबतक प्रियजनका मिलन न हो जाय, तबतक केवल समझाने-बुझानेसे मनको शान्ति नहीं मिल सकती।

मुने! इसी समय व्रजवासियों और व्रजाङ्गनाओंने

श्रीकृष्णको जलसे ऊपरको उछलते देखा। इससे उनके हर्षकी सीमा न रही। उनका शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति परम मनोहर मुख और उनकी मन्द-मन्द मुस्कराहट मनको बरबस अपनी ओर खींचे लेती थी। पानीसे निकलनेपर भी वस्त्र भीगे नहीं थे। शरीर भी आर्द्र नहीं था। भाल-देशमें चन्दन और नेत्रोंमें अञ्जनका शृङ्गार भी लुप्त नहीं हुआ था। समस्त आभूषणोंसे अलंकृत, सिरपर मोरपंखका मुकुट धारण किये और अधरोंसे मुरली लगाये अच्युत श्रीकृष्ण ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे। यशोदा अपने लालाको देखते ही छातीसे लगाकर मुस्करा उठीं और उनके मुखारविन्दको चूमने लगीं। उस समय उनके नेत्र और मुख प्रसन्नतासे खिल उठे थे। नन्द, बलराम तथा रोहिणीजीने बारी-बारीसे श्यामसुन्दरको हर्षपूर्वक हृदयसे लगाया। सब लोग एकटक हो गोविन्दके श्रीमुखका दर्शन करने लगे। प्रेमसे बँधे हुए सम्पूर्ण ग्वालबालोंने श्रीहरिका आलिङ्गन किया। गोपाङ्गनाएँ नेत्र-चकोरोंद्वारा उनके मुखचन्द्रकी मधुर सुधाका पान करने लगीं।

इतनेमें ही वहाँ सहसा वनके भीतरी भागको दावानलने आवेष्टित कर लिया। उन सबके साथ गौओंका समुदाय भी उस दावाग्निसे घिर गया। वनके भीतर चारों ओर पर्वतोंके समान आगकी ऊँची-ऊँची लपटें उठने लगीं। यह देख सबने अपना नाश निकट ही समझा। उस संकटसे सब भयभीत हो उठे। उस समय सारे व्रजवासी, गोपीजन और ग्वालबाल संत्रस्त हो भक्तिसे सिर झुका दोनों हाथ जोड़कर श्रीकृष्णकी स्तुति करने लगे।

ग्वालबाल बोले—ब्रह्मन्! मधुसूदन! आपने सब आपत्तियोंमें जैसे हमारे कुलकी रक्षा की है, उसी प्रकार फिर इस दावानलसे हमें बचाइये। जगत्पते! आप ही हमारे इष्टदेवता हैं और आप ही कुलदेवता। संसारकी सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले भी आप ही हैं। अग्नि, वरुण, चन्द्रमा, सूर्य, यम, कुबेर, वायु, ईशानादि देवता, ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, इन्द्र, मुनीन्द्र, मनु, मानव, दैत्य, यक्ष, राक्षस, किन्नर तथा अन्य जो-जो चराचर प्राणी हैं, वे सब-के-सब आपकी ही विभूतियाँ हैं। उन सबके आविर्भाव और लय आपकी इच्छासे ही होते हैं। गोविन्द! हमें अभय दीजिये और इस अग्निका संहार कीजिये। हम आपकी शरणमें आये हैं। आप हम शरणागतोंको बचाइये।

यों कहकर वे सब लोग श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करते हुए खड़े हो गये। श्रीकृष्णकी अमृतमयी दृष्टि पड़ते ही दावानल दूर हो गया। फिर तो वे ग्वालबाल मोदमग्न होकर नाचने लगे। क्यों न हो, श्रीहरिके स्मरणमात्रसे सब विपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। जो प्रातःकाल उठकर इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, उसे जन्म-जन्ममें कभी अग्निसे भय नहीं होता। शत्रुओंसे घिर जानेपर, दावानलमें आ जानेपर, भारी विपत्तिमें पड़नेपर तथा प्राणसंकटके समय इस स्तोत्रका पाठ करके मनुष्य सब दुःखोंसे छुटकारा पा जाता है। इसमें संशय नहीं है। शत्रुओंकी सेना क्षीण हो जाती है और वह मनुष्य युद्धमें सर्वत्र विजयी होता है। वह इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति और अन्तमें उनके दास्य-सुखको अवश्य पा लेता है*।

---

* यथा संरक्षितं ब्रह्मन् सर्वापत्स्वेव नः कुलम्। तथा रक्षां कुरु पुनर्दावाग्नेर्मधुसूदन॥
त्वमिष्टदेवतास्माकं त्वमेव कुलदेवता। वह्निर्वा वरुणो वापि चन्द्रो वा सूर्य एव वा॥
यमः कुबेरः पवन ईशानाद्याश्च देवताः। ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा मुनीन्द्रा मनवः स्मृताः॥
मानवाश्च तथा दैत्या यक्षराक्षसकिंनराः। ये ये चराचराश्चैव सर्वे तव विभूतयः॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता जगतां च जगत्पते। आविर्भावस्तिरोभावः सर्वेषां च तवेच्छया॥

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! सुनो। दावानलसे उनका उद्धार करके श्रीहरि उन सबके साथ अपने कुबेरभवनोपम गृहमें गये। वहाँ नन्दने आनन्दपूर्वक ब्राह्मणोंको प्रचुर धनका दान किया और ज्ञातिवर्गके लोगों तथा भाई-बन्धुओंको भोजन कराया। नाना प्रकारका मङ्गलकृत्य तथा श्रीहरिनाम-कीर्तन कराया। ब्राह्मणोंद्वारा प्रसन्नतापूर्वक वेदपाठ करवाया। इस प्रकार वृन्दावनके घर-घरमें वे सब गोप श्रीकृष्णचरणारविन्दोंके चिन्तनमें चित्तको एकाग्र करके आनन्दपूर्वक रहने लगे। श्रीहरिका यह सारा मङ्गलमय चरित्र कहा गया, जो कलिकल्मषरूपी काष्ठको दग्ध करनेके लिये अग्निके समान है। (अध्याय १९)

मोहवश श्रीहरिके प्रभावको जाननेके लिये ब्रह्माजीके द्वारा गौओं, बछड़ों और बालकोंका अपहरण, श्रीकृष्णद्वारा उन सबकी नूतन सृष्टि, ब्रह्माजीका श्रीहरिके पास आना, सबको श्रीकृष्णमय देख उनकी स्तुति करके पहलेके गौओं आदिको वापस देकर अपने लोकको जाना तथा श्रीकृष्णका घरको पधारना

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! एक दिन बलरामसहित माधव खा-पीकर चन्दन आदिसे चर्चित हो ग्वालबालोंके साथ वृन्दावनमें गये। वहाँ भगवान् कौतूहलवश उन ग्वाल-बालोंके साथ क्रीडा करने लगे। इधर ग्वाल-बालोंका मन खेलमें लगा हुआ था, उधर उन सबकी गौएँ बहुत दूर निकल गयीं। उस समय लोकनाथ ब्रह्मा श्रीकृष्णका प्रभाव जाननेके लिये समस्त गौओं, बछड़ों और ग्वालबालोंको भी चुरा ले गये। उनका अभिप्राय जान सर्वज्ञ एवं सर्वस्रष्टा योगीन्द्र श्रीहरिने योगमायासे पुनः उन सबकी सृष्टि कर ली। दिनभर गौएँ चराकर क्रीडाकौतुकमें मन लगानेवाले श्रीहरि संध्याको बलराम और ग्वालबालोंके साथ घर गये। इस प्रकार एक वर्षतक भगवान्ने ऐसा ही किया। वे प्रतिदिन गौओं, ग्वालबालों तथा बलरामजीके साथ यमुनातटपर जाते और संध्याके समय घरको लौट जाते थे। भगवान्के इस प्रभावको जानकर ब्रह्माजीका मस्तक लज्जासे झुक गया। वे भाण्डीर वटके नीचे जहाँ श्रीहरि बैठे हुए थे, आये। उन्होंने ग्वालबालोंसे घिरे हुए श्रीकृष्णको वहाँ देखा, मानो नक्षत्रोंके साथ पूर्णिमाके चन्द्रदेव प्रकाशित हो रहे हों। गोविन्द रत्नमय सिंहासनपर बैठे थे और सानन्द मन्द-मन्द हँस रहे थे। उनके श्रीअङ्गोंमें पीताम्बरका परिधान शोभा पा रहा था। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान थे। उनकी बाँहोंमें रत्नोंके बने हुए बाजूबंद, कलाईमें रत्नोंके कंगन तथा पैरोंमें रत्नमय मञ्जीर शोभा दे रहे थे। दो रत्ननिर्मित कुण्डलोंकी प्रभासे उनके गण्डस्थल अत्यन्त उद्दीप्त हो रहे थे। श्यामसुन्दरका श्रीविग्रह करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्यलीलाका धाम था। वे मनको मोहे लेते थे। उनके श्रीअङ्ग चन्दन, अगुरु,

---

अभयं देहि गोविन्द वह्निसंहरणं कुरु । वयं त्वां शरणं यामो रक्ष नः शरणागतान् ॥
इत्येवमुक्त्वा ते सर्वे तस्थुर्ध्यात्वा पदाम्बुजम् । दूरीकृतश्च दावाग्निः श्रीकृष्णामृतदृष्टितः ॥
दूरीभूतेऽत्र दावाग्नौ विपत्तौ प्राणसंकटे । स्तोत्रमेतत् पठित्वा च मुच्यते नात्र संशयः ॥
शत्रुसैन्यं क्षयं याति सर्वत्र विजयी भवेत् । इहलोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम् ॥
(१९। १७३—१८१)

कस्तूरी और कुङ्कुमसे चर्चित थे। वे पारिजातपुष्पोंकी मालाओंसे विभूषित थे। उनकी अङ्गकान्ति नूतन जलधरकी श्याम शोभाको लज्जित कर रही थी। शरीरमें नूतन यौवनका अङ्कुर प्रस्फुटित हो रहा था। मस्तकपर मोरपंखका मुकुट और उसमें मालतीकी मालाओंका संयोग बड़ा मनोहर जान पड़ता था। अपने अङ्गोंकी सौन्दर्यमयी दीप्तिसे वे आभूषणोंको भी भूषित कर रहे थे। शरत्कालकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी प्रभाको लूट लेनेवाले मुखकी कान्तिसे वे परम सुन्दर प्रतीत होते थे। ओठ पके बिम्बाफलकी लालीको लजा रहे थे। नुकीली नासिका पक्षिराज गरुड़की चोंचको तिरस्कृत करती थी। नेत्र शरत्कालके मध्याह्नमें खिले हुए कमलोंकी शोभाको छीने लेते थे। मुक्तापङ्क्तियोंकी शोभाको निन्दित करनेवाली दन्तपङ्क्तिसे उनके मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। मणिराज कौस्तुभकी दिव्य दीप्तिसे वक्षःस्थल उद्भासित हो रहा था। उन परिपूर्णतम शान्तस्वरूप परमेश्वर राधाकान्तको देखकर ब्रह्माजीने अत्यन्त विस्मित होकर प्रणाम किया। वे बार-बार उन्हें

देखने और प्रणाम करने लगे। उन्होंने अपने हृदयकमलमें जिस रूपको देखा था, वही उन्हें बाहर भी दिखायी दिया। जो मूर्ति सामने थी, वही पीछे और अगल-बगलमें भी दृष्टिगोचर हुई। मुने! वहाँ वृन्दावनमें सब कुछ श्रीकृष्णके ही तुल्य देख जगद्गुरु ब्रह्मा उसी रूपका ध्यान करते हुए वहाँ बैठ गये। गौएँ, बछड़े, बालक, लता, गुल्म और वीरुध आदि सारा वृन्दावन ब्रह्माजीको श्यामसुन्दरके ही रूपमें दिखायी दिया। यह परम आश्चर्य देखकर ब्रह्माजीने फिर ध्यान लगाया। अब उन्हें सारी त्रिलोकी श्रीकृष्णके सिवा और कुछ भी नहीं दिखायी दी। कहाँ गये वृक्ष? कहाँ हैं पर्वत? कहाँ गयी पृथ्वी? कहाँ हैं समुद्र? कहाँ देवता? कहाँ गन्धर्व? कहाँ मुनीन्द्र और मानव? कहाँ आत्मा? कहाँ जगत्‌का बीज तथा कहाँ स्वर्ग और गौएँ हैं? श्रीहरिकी मायासे ब्रह्माजीने सब कुछ अपनी आँखोंसे देखा और सबको कृष्णमय पाया। कहाँ जगदीश्वर श्रीकृष्ण और कहाँ मायाकी विभूतियाँ? सबको श्रीकृष्णमय देखकर ब्रह्माजी कुछ भी बोलनेमें असमर्थ हो गये—किस तरह स्तुति करूँ? क्या करूँ? इस प्रकार मन-ही-मन विचार करके जगद्धाता ब्रह्मा वहीं बैठकर जप करनेको उद्यत हुए। उन्होंने सुखपूर्वक योगासन लगाकर दोनों हाथ जोड़ लिये। उनके सारे अङ्ग पुलकित हो गये। नेत्रोंसे अश्रुधारा बहने लगी और वे अत्यन्त दीनके समान हो गये।

तदनन्तर उन्होंने इडा, सुषुम्ना, मध्या, पिङ्गला, नलिनी और धुरा—इन छः नाड़ियोंको प्रयत्नपूर्वक योगद्वारा निबद्ध किया। तत्पश्चात् मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा—इन छः चक्रोंको निबद्ध किया। फिर कुण्डलिनीद्वारा एक-एक चक्रका लङ्घन कराते हुए क्रमशः छहों चक्रोंका भेदन करके विधाता उसे ब्रह्मरन्ध्रमें ले आये। तदनन्तर उन्होंने ब्रह्मरन्ध्रको वायुसे पूर्ण किया। प्राणवायुको वहीं निबद्ध करके पुनः उसे क्रमशः हृदयकमलमें

मध्या नाड़ीके पास ले आये। उस वायुको घुमाकर विधाताने मध्या नाड़ीके साथ संयुक्त कर दिया। ऐसा करके वे निष्पन्द (निश्चल) हो गये और पूर्वकालमें श्रीहरिने जिसका उपदेश दिया था, उस परम उत्तम दशाक्षर-मन्त्रका जप करने लगे। मुने! श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका ध्यान करते हुए एक मुहूर्ततक जप करनेके पश्चात् ब्रह्माने अपने हृदयकमलमें उनके सर्वतेजोमय स्वरूपको देखा। उस तेजके भीतर अत्यन्त मनोरम रूप था, दो भुजाएँ, हाथमें मुरली और पीताम्बरभूषित श्रीअङ्ग। कानोंके मूलभागमें पहने गये मकराकृति कुण्डल अपनी उज्ज्वल आभा बिखेर रहे थे। प्रसन्न मुखारविन्दपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। भगवान् भक्तपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। ब्रह्माजीने ब्रह्मरन्ध्रमें जिस रूपको देखा और हृदयकमलमें जिसकी झाँकी की, वही रूप बाहर भी दृष्टिगोचर हुआ। यह परम आश्चर्य देखकर उन्होंने उन परमेश्वरकी स्तुति की। मुने! पूर्वकालमें एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले श्रीहरिने ब्रह्माजीको जिस स्तोत्रका उपदेश दिया था, उसीके द्वारा विधाताने भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर उन परमेश्वरका विधिवत् स्तवन किया।

ब्रह्माजी बोले—जो सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, समस्त कारणोंके भी कारण तथा सबके लिये अनिर्वचनीय हैं; उन कल्याणस्वरूप श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका श्रीविग्रह नवीन मेघमालाके समान श्याम एवं सुन्दर है, जो सम्पूर्ण जीवोंमें स्थित रहकर भी उनसे लिप्त नहीं होते, जो साक्षीस्वरूप हैं, स्वात्माराम, पूर्णकाम, विश्वव्यापी, विश्वसे परे, सर्वस्वरूप, सबके बीजरूप और सनातन हैं; जो सर्वाधार, सबमें विचरनेवाले, सर्वशक्तिसम्पन्न, सर्वाराध्य, सर्वगुरु तथा सर्वमङ्गलकारण हैं। सम्पूर्ण मन्त्र जिनके स्वरूप हैं, जो समस्त सम्पदाओंकी प्राप्ति करानेवाले और श्रेष्ठ हैं; जिनमें शक्तिका संयोग और वियोग भी है; उन स्वेच्छामय प्रभुकी मैं स्तुति करता हूँ। जो शक्तिके स्वामी, शक्तिके बीज, शक्तिरूपधारी तथा घोर संसारसागरमें शक्तिमयी नौकासे युक्त हैं; उन भक्तवत्सल कृपालु कर्णधारको मैं नमस्कार करता हूँ। जो आत्मस्वरूप, एकान्तमय, लिप्त, निर्लिप्त, सगुण और निर्गुण ब्रह्म हैं; उन स्वेच्छामय परमात्माकी मैं स्तुति करता हूँ। जो सम्पूर्ण इन्द्रियोंके अधिदेवता, आवासस्थान और सर्वेन्द्रिय-स्वरूप हैं; उन विराट् परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो वेद, वेदोंके जनक तथा सर्ववेदाङ्गस्वरूप हैं; उन सर्वमन्त्रमय परमेश्वरको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सारसे सारतर द्रव्य, अपूर्व, अनिर्वचनीय, स्वतन्त्र और अस्वतन्त्र हैं; उन यशोदानन्दनका मैं भजन करता हूँ। जो सम्पूर्ण शरीरोंमें शान्तरूपसे विद्यमान हैं, किसीके दृष्टिपथमें नहीं आते, तर्कके अविषय हैं, ध्यानसे वशमें होनेवाले नहीं हैं तथा नित्य विद्यमान हैं; उन योगीन्द्रोंके भी गुरु गोविन्दका मैं भजन करता हूँ। जो रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान होते हैं, रासोल्लासके लिये सदा उत्सुक रहते हैं तथा गोपाङ्गनाएँ सदा जिनकी सेवा करती हैं; उन राधावल्लभको मैं नमस्कार करता हूँ। जो साधु पुरुषोंकी दृष्टिमें सदैव सत् और असाधु पुरुषोंके मतमें सदा ही असत् हैं, भगवान् शिव जिनकी सेवा करते हैं; उन योगसाध्य योगीश्वर श्रीहरिको मैं प्रणाम करता हूँ। जो मन्त्रबीज, मन्त्रराज, मन्त्रदाता, फलदाता, फलरूप, मन्त्रसिद्धिस्वरूप तथा परात्पर हैं; उन श्रीकृष्णको मैं नमस्कार करता हूँ। जो सुख-दुःख, सुखद-दुःखद, पुण्य, पुण्यदायक, शुभद और शुभ बीज हैं; उन परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस प्रकार स्तुति करके ब्रह्माजीने गौओं और बालकोंको लौटा दिया तथा पृथ्वीपर दण्डकी भाँति पड़कर रोते हुए प्रणाम किया। मुने! तदनन्तर जगत्स्रष्टाने आँखें खोलकर श्रीहरिके दर्शन किये। जो ब्रह्माजीके द्वारा किये गये इस

स्तोत्रका प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता है, वह इहलोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके धाममें जाता है। वहाँ उसे अनुपम दास्यसुख तथा उन परमेश्वरके निकट स्थान प्राप्त होता है। श्रीकृष्णका सांनिध्य पाकर वह पार्षदशिरोमणि बन जाता है।

भगवान् नारायण कहते हैं—तदनन्तर जगत्-विधाता ब्रह्मा जब ब्रह्मलोकमें चले गये, तब भगवान् श्रीकृष्ण ग्वालबालोंके साथ अपने घरको गये। उस दिन गौओं, बछड़ों और ग्वालबालोंने एक वर्षके बाद अपने घरपर पदार्पण किया था; किंतु श्रीकृष्णकी मायासे उन सबने उस एक वर्षके अन्तरको एक दिनका ही अन्तर समझा। गोप और गोपियाँ उस समय कुछ भी अनुमान न लगा सकीं। (पहलेके मायारचित बालकोंमें और आजके वास्तविक बालकोंमें उन्हें कोई अन्तर नहीं जान पड़ा।) योगीके लिये तो क्या नया और क्या पुराना, सारा जगत् कृत्रिम ही है। इस प्रकार श्रीकृष्णका यह सारा शुभ चरित्र कहा गया—जो सुखद, मोक्षप्रद, पुण्यमय तथा सर्वकालमें सुख देनेवाला है। (अध्याय २०)

नन्दद्वारा इन्द्रयागकी तैयारी, श्रीकृष्णद्वारा इसके विषयमें जिज्ञासा, नन्दजीका उत्तर और श्रीकृष्णद्वारा प्रतिवाद, श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार इन्द्रका यजन न करके गोपोंद्वारा ब्राह्मणों और गिरिराजका पूजन, उत्सवकी समाप्तिपर इन्द्रका कोप, नन्दद्वारा इन्द्रकी स्तुति, श्रीकृष्णका नन्दको इन्द्रकी स्तुतिसे रोककर सब व्रजवासियोंको गौओंसहित गोवर्धनकी गुफामें स्थापित करके पर्वतको दण्डकी भाँति उठा लेना; इन्द्र, देवताओं तथा मेघोंका स्तम्भन कर देना, पराजित इन्द्रद्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति, श्रीकृष्णका उन्हें विदा करके पर्वतको स्थापित कर देना तथा नन्दद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन

भगवान् नारायण कहते हैं—मुने! एक दिन आनन्दयुक्त नन्दने व्रजमें इन्द्रयज्ञकी तैयारी करके सब ओर ढिंढोरा पिटवाया। उस समय सबको यह संदेश दिया गया कि जो-जो इस नगरमें गोप, गोपी, बालक, बालिका, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र निवास करते हैं; वे सब लोग भक्तिपूर्वक दही, दूध, घी, तक्र, माखन, गुड़ और मधु आदि सामग्री लेकर इन्द्रकी पूजा करें। इस प्रकार घोषणा कराकर उन्होंने स्वयं ही प्रसन्नतापूर्वक सुविस्तृत रमणीय स्थानमें यष्टिका-आरोपण किया (ध्वजाके लिये बाँस गड़वाया)। उसमें रेशमी वस्त्र और मनोहर मालाएँ लगवायीं। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुङ्कुमके द्रवसे उस यष्टिको चर्चित किया गया। नन्दजीने स्नान और नित्यकर्म करके भक्तिभावसे दो धुले हुए वस्त्र धारण किये तथा पैर धोकर वे सोनेके पीढ़ेपर बैठे। उस समय नाना प्रकारके पात्रोंके साथ ब्राह्मण, पुरोहित, गोप, गोपी, बालिका तथा बालक उपस्थित हुए। इसी बीचमें वहाँ नगरनिवासी भी बहुत सामान एकत्र करके अनेक प्रकारकी भेंट-पूजा लिये आ पहुँचे। तदनन्तर ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान, वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् एवं शान्त-स्वभाव—गर्ग, जैमिनि, कृष्णद्वैपायन आदि बहुत-से मुनिगण शिष्योंसहित वहाँ पधारे। और भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, बन्दी, भिक्षुक आदि आये। गोपराज नन्दने उठकर सभीका यथायोग्य प्रणामादिद्वारा स्वागत-सत्कार किया। तत्पश्चात् यष्टिके समीप ही निपुण रसोइया ब्राह्मण

पाक करने लगे। रत्नदीपोंकी तथा धूपकी जगमगाहट और सुगन्धि चारों ओर फैल गयी। पुष्पमालाओंसे स्थान सुसज्जित हो गये। भाँति-भाँतिकी मिठाई, पकवान, मीठे फल, हजारों-लाखों घड़े दूध, दही, घृत, मधु, मक्खन आदि इकट्ठे हो गये। सुरीले बाजे बजने लगे। नाना प्रकारके सोने-चाँदीके पात्र, श्रेष्ठ वस्त्र, आभूषण, स्वर्णपीठ आदि लाये गये। सभी चीजें अगणित थीं। नृत्यगीत होने लगे।

इसी बीच बलशाली बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ साक्षात् श्रीहरि शीघ्रतापूर्वक वहाँ आये। उन्हें देखकर सब लोग हर्षसे खिल उठे और उठकर खड़े हो गये। श्रीकृष्ण क्रीडास्थानसे लौटकर आ रहे थे। उनका शान्त सुन्दर विग्रह बड़ा मनोहर था। विनोदकी साधनभूत मुरली, वेणु और शृङ्ग नामक बाजोंकी ध्वनि उनके साथ सुनायी देती थी। रत्नोंके सार-तत्त्वसे निर्मित आभूषणों तथा कौस्तुभमणिसे वे विभूषित थे। उनका श्याम मनोहर शरीर अगुरु एवं चन्दनपङ्कसे चर्चित था। वे रत्नमय दर्पणमें शरद्ऋतुके मध्याह्नकालमें प्रफुल्ल कमलके समान अपने मनोहर मुखको देख रहे थे। भालदेशमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर चन्दन लगा था। इससे उनका ललाट चन्द्रदेवसे अलंकृत आकाशकी भाँति शोभा पा रहा था। श्याम कण्ठ और वक्षःस्थल मालतीकी मालासे उज्ज्वल कान्ति धारण कर रहा था, मानो अत्यन्त निर्मल शरत्कालिक आकाश बगुलोंकी पंक्तिसे अलंकृत हुआ हो। मनोहर पीताम्बरसे उनके श्याम विग्रहकी अनुपम शोभा हो रही थी, मानो नवीन मेघ विद्युत्की कान्तिसे निरन्तर उद्भासित हो रहा हो। मस्तकपर एक ओर झुका हुआ टेढ़ा मोरमुकुट कुन्दके फूलों और गुञ्जाओंकी मालासे आबद्ध था, मानो आकाश नक्षत्रों तथा इन्द्र-धनुषसे सुशोभित हो रहा हो। उनका मुस्कराता हुआ मुख रत्नमय कुण्डलोंकी दीप्तिसे ऐसा दमक रहा था, मानो शरद्ऋतुका प्रफुल्ल कमल सूर्यदेवकी किरणोंसे उद्दीप्त हो रहा हो। जगदीश्वर श्रीकृष्ण उनके बीचमें रत्नमय सिंहासनपर बैठे, मानो शरत्कालके चन्द्रमा तारामण्डलके बीचमें भासमान हो रहे हों। वह महोत्सव देखकर नीतिशास्त्रविशारद श्रीहरिने पितासे तत्काल ऐसी नीतिपूर्ण बात कही, जो अन्य सब लोगोंके लिये दुर्लभ थी।

श्रीकृष्ण बोले—उत्तम व्रतका पालन करनेवाले गोपसम्राट्! आप यहाँ क्या कर रहे हैं? आपके आराध्य देवता कौन हैं? इस पूजाका क्या स्वरूप है और इस प्रकार पूजन करनेपर कौन-सा फल

प्राप्त होता है? इस फलसे कौन-सा साधन सुलभ होता है और उस साधनसे भी कौन-सा मनोरथ सिद्ध होता है? यदि पूजामें भी विघ्न पड़ जाय और देवता रुष्ट हो जायँ तो क्या होता है? अथवा यदि देवता संतुष्ट हों तो वे इहलोक और परलोकमें कौन-सा फल देते हैं?

विप्ररूपधारी श्रीहरि नैवेद्यको साक्षात् ग्रहण करते हैं; अतः ब्राह्मणके संतुष्ट होनेपर सब देवता संतुष्ट हो जाते हैं। जो ब्राह्मणके पूजनमें लगा

हुआ है, उसके लिये देवपूजाकी क्या आवश्यकता है? जिसने ब्राह्मणोंकी पूजा की है, उसने सम्पूर्ण देवताओंकी पूजा सम्पन्न कर ली। देवताको नैवेद्य देकर जो ब्राह्मणको नहीं देता है, उसका वह नैवेद्य भस्मीभूत होता है और पूजन निष्फल हो जाता है। देवताका नैवेद्य यदि ब्राह्मणको दिया जाय तो उस दानसे वह निश्चय ही अक्षय हो जाता है और उस अवस्थामें देवता संतुष्ट होकर दाताको अभीष्ट वरदान दे अपने धामको जाते हैं। जो मूढ़ देवताको नैवेद्य अर्पित करके ब्राह्मणके दिये बिना स्वयं खा लेता है, वह दत्तापहारी (देकर छीन लेनेवाला) है और देवताकी वस्तु खाकर नरकमें पड़ता है। जो भगवान् विष्णुको अर्पित न किया गया हो, वह अन्न विष्ठा और जल मूत्रके समान है। यह क्रम सभीके लिये है; परंतु ब्राह्मणोंके लिये विशेषरूपसे इसपर ध्यान देना उचित है। यदि नैवेद्य अथवा भोज्य वस्तु देवताको न देकर ब्राह्मणको दे दी गयी तो देवता ब्राह्मणके मुखमें ही उसे खाकर संतुष्ट हो स्वर्गलोकको लौट जाते हैं; अतः पिताजी! आप सारी शक्ति लगाकर ब्राह्मणोंका पूजन कीजिये; क्योंकि वे इहलोक और परलोकमें भी उत्तम फलके दाता हैं। जो श्रीहरिकी आराधना करनेवाले ब्राह्मण हैं, वे उन्हें प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। हरिभक्त ब्राह्मणोंका प्रभाव श्रुतिमें दुर्लभ है। उनके चरणकमलोंकी धूलिसे पृथ्वी तत्काल पवित्र हो जाती है। उनका जो चरणचिह्न है, उसीको तीर्थ कहा गया है। उनके स्पर्शमात्रसे तीर्थोंका पाप नष्ट हो जाता है। उनके आलिङ्गन, श्रेष्ठ वार्तालाप, दर्शन और स्पर्शसे भी मनुष्य समस्त पापोंसे छुटकारा पा जाता है। सम्पूर्ण तीर्थोंमें भ्रमण और स्नान करनेसे जो पुण्य प्राप्त होता है, वह हरिभक्त ब्राह्मणके दर्शनमात्रसे सुलभ हो जाता है। मनुष्यको चाहिये कि वह पुण्यके लिये समस्त जीवोंको अन्न दे; परंतु विशिष्ट जीवोंको अन्न-दान करनेसे विशिष्ट फलकी प्राप्ति होती है। भगवान् विष्णु ब्राह्मणोंके भक्त हैं। उन्हें उत्तम वस्तुका दान करनेसे दाताको जो फल मिलता है, वह निश्चय ही भक्त ब्राह्मणको भोजन करानेमात्रसे मिल जाता है। भक्तके संतुष्ट होनेपर श्रीहरि संतुष्ट होते हैं और श्रीहरिके संतुष्ट होनेपर सब देवता सिद्ध हो जाते हैं। ठीक उसी तरह जैसे वृक्षकी जड़ सींचनेसे उसकी शाखाएँ भी पुष्ट होती हैं। यदि ये सब संचित द्रव्य आप किसी एक देवताको देते हैं तो अन्य सब देवता रुष्ट हो जायँगे। उस दशामें एक देवता क्या करेगा? मेरी सम्मति तो यह है कि यहाँ जितनी वस्तुएँ प्रस्तुत हैं, उनका आधा भाग आप श्रीगोवर्धनदेवको दे दीजिये। ये गौओंकी सदा वृद्धि करते हैं; इसलिये उनका नाम 'गोवर्धन' हुआ है। पिताजी! इस भूतलपर गोवर्धनके समान पुण्यवान् दूसरा कोई नहीं है; क्योंकि वे नित्यप्रति गौओंको नयी-नयी घास देते हैं। तीर्थस्थानोंमें जाकर स्नान-दानसे जो पुण्य प्राप्त होता है; ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे जिस पुण्यकी प्राप्ति होती है, सम्पूर्ण व्रत-उपवास, सब तपस्या, महादान तथा श्रीहरिकी आराधना करनेपर जो पुण्य सुलभ होता है, सम्पूर्ण पृथ्वीकी परिक्रमा, सम्पूर्ण वेदवाक्योंके स्वाध्याय तथा समस्त यज्ञोंकी दीक्षा ग्रहण करनेपर मनुष्य जिस पुण्यको पाता है; वही पुण्य बुद्धिमान् मानव गौओंको घास देकर पा लेता है*।

जो घास चरती हुई गायको स्वेच्छापूर्वक

*तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने। सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने। भुवः पर्यटने यत्तु वेदवाक्येषु यद्भवेत्॥
यत्पुण्यं सर्वयज्ञेषु दीक्षायां च लभेन्नरः। तत्पुण्यं लभते प्राज्ञो गोभ्यो दत्त्वा तृणानि च॥
(२१। ८७—८९)

चरनेसे रोकता है, उसे ब्रह्महत्याका पाप लगता है तथा वह प्रायश्चित्त करनेपर ही शुद्ध होता है। पिताजी! सब देवता गौओंके अङ्गोंमें, सम्पूर्ण तीर्थ गौओंके पैरोंमें तथा स्वयं लक्ष्मी उनके गुह्य स्थानों (मल-मूत्रके स्थानों)-में सदा वास करती हैं। जो मनुष्य गायके पद-चिह्नसे युक्त मिट्टीद्वारा तिलक करता है, उसे तत्काल तीर्थस्नानका फल मिलता है और पग-पगपर उसकी विजय होती है। गौएँ जहाँ भी रहती हैं, उस स्थानको तीर्थ कहा गया है। वहाँ प्राणोंका त्याग करके मनुष्य तत्काल मुक्त हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। जो नराधम ब्राह्मणों तथा गौओंके शरीरपर प्रहार करता है; निःसंदेह उसे ब्रह्महत्याके समान पाप लगता है। जो नारायणके अंशभूत ब्राह्मणों तथा गौओंका वध करते हैं, वे मनुष्य जबतक चन्द्रमा और सूर्यकी सत्ता है, तबतकके लिये कालसूत्र नामक नरकमें जाते हैं*।

नारद! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। तब आनन्दयुक्त नन्दने मुस्कराते हुए उनसे कहा।

नन्द बोले—वत्स! यह महात्मा महेन्द्रकी पूजा है, जो पूर्वपरम्परासे चली आ रही है। यह सुवृष्टिका साधन है और इससे सब प्रकारके मनोहर शस्योंकी उत्पत्ति ही साध्य है। शस्य ही प्राणियोंके प्राण हैं। शस्यसे ही जीवधारी जीवन-निर्वाह करते हैं। इसलिये व्रजवासी लोग पूर्व पीढ़ियोंके क्रमसे महेन्द्रकी पूजा करते चले आ रहे हैं। यह महान् उत्सव वर्षके अन्तमें होता है। विघ्न-बाधाओंकी निवृत्ति और कल्याणकी प्राप्ति ही इसका उद्देश्य है।

नन्दजीकी यह बात सुनकर बलरामसहित श्रीकृष्ण जोर-जोरसे हँसने लगे और पुनः प्रसन्नतापूर्वक पितासे बोले।

श्रीकृष्णने कहा—तात! आज मैंने आपके मुखसे बड़ी विचित्र और अद्भुत बात सुनी है। इसका कहीं भी निरूपण नहीं किया गया है कि इन्द्रसे वृष्टि होती है। आज आपके मुखसे अपूर्व नीतिवचन सुननेको मिला है। सूर्यसे जल उत्पन्न होता है और जलसे शस्य एवं वृक्ष उत्पन्न होते और बढ़ते हैं। उनसे अन्न और फल पैदा होते हैं तथा उन अन्नों और फलोंसे जीवधारी जीवननिर्वाह करते हैं। सूर्य अपनी किरणोंद्वारा जो धरतीका जल सोख लेते हैं, वर्षाकालमें उसी जलका उनसे प्रादुर्भाव होता है। सूर्य और मेघ आदि सबका विधाताद्वारा निरूपण होता है। पञ्चाङ्गोंके अनुसार जिस वर्षमें जो मेघ, गज और समुद्र माने गये हैं, जो शस्याधिपति राजा और मन्त्री निश्चित किये गये हैं; उन सबका विधाताद्वारा ही निरूपण हुआ है। प्रत्येक वर्षमें जल, शस्य तथा तृणोंकी आढक-संख्या निश्चित की जाती है, उस निश्चयके अनुसार वर्ष-वर्षमें, युग-युगमें और कल्प-कल्पमें वे सारी बातें घटित होती हैं। ईश्वरकी इच्छासे ही जल आदिका आविर्भाव होता है। उसमें कोई बाधा नहीं पड़ती। तात! भूत, वर्तमान और भविष्य तथा महान्, क्षुद्र और मध्यम—जिस कर्मका विधाताने निरूपण किया है, उसका कौन निवारण कर सकता है? ईश्वरकी आज्ञासे ही ब्रह्माजीने सम्पूर्ण चराचर जगत्‌का निर्माण किया है। पहले भोजनकी

---

* भुञ्जन्तीं तृणं यश्च गां वारयति कामतः। ब्रह्महत्या भवेत् तस्य प्रायश्चित्ताद् विशुध्यति॥
सर्वे देवा गवामङ्गे तीर्थानि तत्पदेषु च। तद्गुह्येषु स्वयं लक्ष्मीस्तिष्ठत्येव सदा पितः॥
गोष्पदाक्तमृदा यो हि तिलकं कुरुते नरः। तीर्थस्नातो भवेत् सद्यो जयस्तस्य पदे पदे॥
गावस्तिष्ठन्ति यत्रैव तत्तीर्थं परिकीर्तितम्। प्राणांस्त्यक्त्वा नरस्तत्र सद्यो मुक्तो भवेद् ध्रुवम्॥
ब्राह्मणानां गवामङ्गं यो हन्ति मानवाधमः। ब्रह्महत्यासमं पापं भवेत् तस्य न संशयः॥
नारायणांशान् विप्रांश्च गाश्च ये घ्नन्ति मानवाः। कालसूत्रं च ते यान्ति यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
(२१। ९०—९५)

व्यवस्था होती है, उसके बाद जीव प्रकट होता है। बारंबार ऐसा होनेसे ही इस नियत व्यवस्थाको स्वभाव कहते हैं। स्वभावसे कर्म होता है और कर्मके अनुसार जीवधारियोंको सुख-दुःखका भोग प्राप्त होता है। यातना, जन्म-मरण, रोग-शोक, भय, उत्पत्ति, विपत्ति, विद्या, कविता, यश, अपयश, पुण्य, स्वर्गवास, पाप, नरकनिवास, भोग, मोक्ष और श्रीहरिका दास्य—ये सब मनुष्योंको कर्मके अनुसार उपलब्ध होते हैं। ईश्वर सबके जनक हैं। शील और कर्मोंका अभ्यास विधाताके लिये भी फलदाता होता है। सब कुछ ईश्वरकी इच्छासे ही सम्भव होता है। विराट् पुरुषसे प्रकृति, पञ्चतत्त्व, जगत्, कूर्म, शेष, धरणी तथा ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सम्पूर्ण चराचर पदार्थोंका निर्माण हुआ है। जिनकी आज्ञासे वायु कूर्मको, कूर्म शेषको, शेष अपने मस्तकपर वसुधाको और वसुधा सम्पूर्ण चराचर जगत्को धारण करती है; जिनके आदेशसे जगत्के प्राणस्वरूप समीरण सदा तीनों लोकोंमें बहते रहते हैं, उत्तम प्रभाके धाम सूर्य समस्त भूगोलका भ्रमण करते हुए तपा करते हैं, अग्नि जलाती है, मृत्यु समस्त जन्तुओंमें संचरित होती है और वृक्ष समयानुसार फूल एवं फल धारण करते हैं; जिनकी आज्ञासे समुद्र अपने स्थानपर विद्यमान रहते और तत्काल ही नीचे-नीचे निमग्न हो जाते हैं; उन परमेश्वरका ही आप भक्तिभावसे भजन कीजिये। इन्द्र क्या कर सकता है? जिनके भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे आजतक कितने ही ब्रह्माण्ड पैदा हुए और कालके गालमें चले गये तथा कितने ही विधाता उत्पन्न होकर नष्ट हो गये। वे परमेश्वर ही मृत्युकी भी मृत्यु, कालके भी काल तथा विधाताके भी विधाता हैं। तात! आप उन्हींकी शरण लीजिये। वे ही आपकी रक्षा करेंगे। अहो! जिनके एक दिन-रातमें अट्ठाईस इन्द्रोंका पतन होता है, ऐसे एक सौ आठ ब्रह्माओंका उन निर्गुण परमात्मा श्रीहरिके एक निमेषमें ही पतन हो जाता है; ऐसे परमात्माके रहते हुए इन्द्रकी पूजा विडम्बनामात्र है।

नारद! यों कहकर श्रीकृष्ण चुप हो गये। उस समय सभामें बैठे हुए महर्षियोंने भगवान्‌की भूरि-भूरि प्रशंसा की। नन्दके शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे हर्षसे उत्फुल्ल हो सभामें बैठे-बैठे नेत्रोंसे अश्रु बहाने लगे। मनुष्य यदि अपने पुत्रोंसे पराजित हों तो वे आनन्दित ही होते हैं। श्रीकृष्णकी आज्ञा मान नन्दजीने स्वस्तिवाचन किया और क्रमशः सब ब्राह्मणों एवं मुनियोंका वरण किया। उन्होंने आदरपूर्वक गिरिराज गोवर्धनकी, समागत मुनीश्वरोंकी, विद्वान् ब्राह्मणोंकी तथा गौओं और अग्निकी सानन्द पूजा की। पूजाकी समाप्ति होनेपर उस यज्ञ-महोत्सवमें नाना प्रकारके बाजोंका तुमुल नाद होने लगा। जय-जयकारके शब्द, शङ्खध्वनि तथा हरिनामकीर्तन होने लगे। मुनिवर गर्गने वेदोंके मङ्गलकाण्डका पाठ किया। बन्दीजनोंमें श्रेष्ठ डिंडी जो कंसका प्रिय सचिव था, सामने खड़े हो उच्चस्वरसे मङ्गलाष्टकका पाठ करने लगा। श्रीकृष्ण गिरिराजके निकट जा दूसरी मूर्ति धारण करके बोले—'मैं साक्षात् गोवर्धन

पर्वत हूँ और तुम लोगोंकी दी हुई भोज्य वस्तुएँ खा रहा हूँ। तुम मुझसे वर माँगो।'

उस समय श्रीकृष्णने नन्दसे कहा—'पिताजी! सामने देखिये, गिरिराज प्रकट हुए हैं। इनसे वर माँगिये। आपका कल्याण होगा।' तब गोपराजने हरिदास्य और हरिभक्तिका वर माँगा। परोसी हुई सामग्री खाकर और वर देकर गिरिराज अदृश्य हो गये। मुनीन्द्रों और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर गोपराजने बन्दीजनों, ब्राह्मणों और मुनियोंको धन दिया। तत्पश्चात् आनन्दयुक्त नन्द बलराम और श्रीकृष्णको आगे करके सपरिवार अपने घरको गये। उन्होंने बन्दी डिंडीको वस्त्र, चाँदी, सोना, श्रेष्ठ घोड़ा, मणि तथा नाना प्रकारके भक्ष्य पदार्थ दिये। मुनि और ब्राह्मण बलराम तथा श्रीकृष्णकी स्तुति एवं नमस्कार करके चले गये। समस्त अप्सराएँ, गन्धर्व और किन्नर भी अपने-अपने स्थानको पधारे। उस महोत्सवमें आये हुए राजा और सम्पूर्ण गोप भी श्रीकृष्णको सादर नमस्कार करके वहाँसे विदा हो गये।

इसी समय यज्ञभङ्ग हो जानेसे अपनी अनेक प्रकारकी निन्दा सुनकर इन्द्र कुपित हो उठे। उनके ओठ फड़कने लगे। उन्होंने मरुद्गणों और मेघोंके साथ तत्काल रथपर आरूढ़ हो मनोहर नन्दनगर वृन्दावनपर आक्रमण किया। फिर युद्ध-शास्त्रमें निपुण समस्त देवता भी हाथोंमें अस्त्र-शस्त्र लिये रोषपूर्वक रथपर आरूढ़ हो उनके पीछे-पीछे गये। वायुकी सनसनाहट, मेघोंकी गड़गड़ाहट और सेनाकी भयानक गर्जनासे सारा नगर काँप उठा। नन्दको भी बड़ा भय हुआ; परंतु वे नीतिमें निपुण थे। अतः अपनी पत्नी तथा सेवकगणोंको पुकारकर निर्जन स्थानमें ले जाकर शोकसे कातर हो बोले।

नन्दजीने कहा—हे यशोदे! हे रोहिणि! इधर आओ और मेरी बात सुनो। तुम लोग राम और कृष्णको व्रजसे दूर ले जाओ। भयसे व्याकुल बालक-बालिकाएँ और स्त्रियाँ भी दूर चली जायँ। केवल बलवान् गोप मेरे पास ठहरें। फिर हम लोग इस प्राण-संकटसे निकलनेका प्रयास करेंगे।

यों कहकर गोपप्रवर नन्दने भयभीत हुए श्रीहरिका स्मरण किया। उनके दोनों हाथ जुड़ गये। भक्तिसे मस्तक झुक गया और वे काण्वशाखामें कहे गये स्तोत्रद्वारा श्रीशचीपतिकी स्तुति करने लगे।

नन्द बोले—इन्द्र, सुरपति, शक्र, अदितिज, पवनाग्रज, सहस्राक्ष, भगाङ्ग, कश्यपात्मज, बिडौजा, शुनासीर, मरुत्वान्, पाकशासन, जयन्त-जनक, श्रीमान्, शचीश, दैत्यसूदन, वज्रहस्त, कामसखा, गौतमीव्रतनाशन, वृत्रहा, वासव, दधीचि-देह-भिक्षुक, जिष्णु, वामनभ्राता, पुरुहूत, पुरन्दर, दिवस्पति, शतमख, सुत्रामा, गोत्रभिद्, विभु, लेखर्षभ, बलाराति, जम्भभेदी, सुराश्रय, संक्रन्दन, दुश्च्यवन, तुराषाट्, मेघवाहन, आखण्डल, हरि, हय, नमुचिप्राणनाशन, वृद्धश्रवा, वृष तथा दैत्यदर्पनिषूदन—ये छियालीस नाम निश्चय ही समस्त पापोंका नाश करनेवाले हैं। जो मनुष्य कौथुमीशाखामें कहे गये इस स्तोत्रका प्रतिदिन पाठ करता है, उसकी बड़ी-से-बड़ी विपत्तिमें इन्द्र वज्र हाथमें लिये रक्षा करते हैं। उसे अतिवृष्टि, शिलावृष्टि तथा भयंकर वज्रपातसे भी कभी भय नहीं होता; क्योंकि स्वयं इन्द्र उसकी रक्षा करते हैं। नारद! जिस घरमें यह स्तोत्र पढ़ा जाता है और जो पुण्यवान् पुरुष इसे जानता है; उसके उस घरपर न कभी वज्रपात होता है और न ओले या पत्थर ही बरसते हैं।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नन्दके मुखसे इस स्तोत्रको सुनकर मधुसूदन श्रीकृष्ण कुपित हो गये। वे ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्होंने पितासे यह नीतिकी बात कही। तात! आप बड़े डरपोक हैं। किसकी स्तुति करते हैं? कौन है इन्द्र? मेरे निकट रहकर आप इन्द्रका भय छोड़

दीजिये, मैं आधे ही क्षणमें लीलापूर्वक उसे भस्म कर डालनेमें समर्थ हूँ। आप गौओं, बछड़ों, बालकों और भयातुर स्त्रियोंको गोवर्धनकी कन्दरामें रखकर निर्भय हो जाइये। अपने बच्चेकी यह बात सुनकर नन्दने प्रसन्नतापूर्वक वैसा ही किया। तब श्रीहरिने उस पर्वतको बायें हाथमें छातेके डंडेकी

भाँति धारण कर लिया। इसी समय उस नगरमें रत्नमय तेजसे प्रकाश होनेपर भी सहसा अन्धकार छा गया। सारा नगर धूलसे ढक गया। मुने! हवाके साथ बादलोंके समूहने आकर आकाशको घेर लिया और वृन्दावनमें निरन्तर अतिवृष्टि होने लगी। शिलावृष्टि, वज्रकी वृष्टि और अत्यन्त भयानक उल्कापात—ये सब-के-सब गोवर्धन पर्वतका स्पर्श होते ही दूर जा पड़ते थे। मुने! असमर्थ पुरुषके उद्यमकी भाँति इन्द्रका वह सारा उद्योग विफल हो गया। वह सब कुछ व्यर्थ होता देख इन्द्र उसी क्षण रोषसे भर गये और उन्होंने दधीचिकी हड्डियोंसे बने हुए अपने अमोघ वज्रास्त्रको हाथमें ले लिया। इन्द्रको वज्र हाथमें लिये देख मधुसूदन हँसने लगे। उन्होंने इन्द्रके हाथसहित अत्यन्त दारुण वज्रको ही स्तम्भित कर दिया। इतना ही नहीं, उन सर्वव्यापी परमात्माने देवगणोंसहित मेघको भी स्तब्ध कर दिया। वे सब-के-सब दीवारमें चित्रित पुतलियोंकी भाँति निश्चलभावसे खड़े हो गये। तदनन्तर श्रीहरिने इन्द्रको जृम्भा (जँभाई)-के वशीभूत कर दिया। फिर तो उन्हें तत्काल तन्द्रा आ गयी। उस तन्द्रामें ही उन्होंने देखा, वहाँका सारा जगत् श्रीकृष्णमय है। सभी द्विभुज हैं। सबके हाथोंमें मुरली है और सभी रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित हैं। सबके अङ्गोंपर पीताम्बरका परिधान है। सभी रत्नमय सिंहासनपर आसीन हैं। सबके प्रसन्नमुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही है और सभी भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर दिखायी देते हैं। उन सबके सभी अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं। समस्त चराचर जगत्को इस परम अद्भुत रूपमें देखकर वहाँ इन्द्र तत्काल मूर्च्छित हो गये। पूर्वकालमें गुरुने उन्हें जिस मन्त्रका उपदेश दिया था, उसका वे वहीं जप करने लगे। उस समय उन्होंने हृदयमें सहस्रदल-कमलपर विराजमान उग्र ज्योतिःपुञ्ज देखा। उस तेजोराशिके भीतर दिव्य रूपधारी, अत्यन्त मनोहर तथा नूतन जलधरके समान उत्कृष्ट श्यामसुन्दर विग्रहवाले श्रीकृष्ण दिखायी दिये। वे उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित एवं प्रकाशमान मकराकृति कुण्डलोंसे अलंकृत थे, अत्यन्त उद्दीप्त एवं श्रेष्ठ मणियोंके बने हुए मुकुटसे उनका मस्तक उद्भासित हो रहा था। प्रकाशमान उत्तम कौस्तुभरत्नसे कण्ठ और वक्षःस्थल जगमगा रहे थे। मणिनिर्मित केयूर, कंगन और मञ्जीरसे उनके हाथ-पैरोंकी बड़ी शोभा हो रही थी। भीतर और बाहर समान रूपमें ही देखकर परमेश्वर श्रीकृष्णका उन्होंने स्तवन किया।

इन्द्र बोले—जो अविनाशी, परब्रह्म, ज्योतिःस्वरूप, सनातन, गुणातीत, निराकार, स्वेच्छामय और अनन्त हैं; जो भक्तोंके ध्यान तथा आराधनाके लिये नाना रूप धारण करते हैं; युगके

अनुसार जिनके श्वेत, रक्त, पीत और श्याम वर्ण हैं; सत्ययुगमें जिनका स्वरूप शुक्ल तेजोमय है तथा उस युगमें जो सत्यस्वरूप हैं; त्रेतामें जिनकी अङ्गकान्ति कुंकुमके समान लाल है और जो ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान रहते

हैं, द्वापरमें जो पीत कान्ति धारण करके पीताम्बरसे सुशोभित होते हैं; कलियुगमें कृष्णवर्ण होकर 'कृष्ण' नाम धारण करते हैं; इन सब रूपोंमें जो एक ही परिपूर्णतम परमात्मा हैं; जिनका श्रीविग्रह नूतन जलधरके समान अत्यन्त श्याम एवं सुन्दर है; उन नन्दनन्दन यशोदाकुमार भगवान् गोविन्दकी मैं वन्दना करता हूँ। जो गोपियोंका चित्त चुराते हैं तथा राधाके लिये प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, जो कौतूहलवश विनोदके लिये मुरलीकी ध्वनिका विस्तार करते रहते हैं, जिनके रूपकी कहीं तुलना नहीं है, जो रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो कोटि-कोटि कन्दर्पोंका सौन्दर्य धारण करते हैं; उन शान्त-स्वरूप परमेश्वरको मैं प्रणाम करता हूँ। जो वृन्दावनमें कहीं राधाके पास क्रीडा करते हैं, कहीं निर्जन स्थलमें राधाके वक्षः-स्थलपर विराजमान होते हैं, कहीं राधाके साथ जलक्रीड़ा करते हैं, कहीं वनमें राधिकाके केश-कलापोंकी चोटी गूँथते हैं, कहीं राधिकाके चरणोंमें महावर लगाते हैं, कहीं राधिकाके चबाये हुए ताम्बूलको सानन्द ग्रहण करते हैं, कहीं बाँकि नेत्रोंसे देखती हुई राधाको स्वयं निहारते हैं, कहीं फूलोंकी माला तैयार करके राधिकाको अर्पित करते हैं, कहीं राधाके साथ रासमण्डलमें जाते हैं, कहीं राधाकी दी हुई मालाको अपने कण्ठमें धारण करते हैं, कहीं गोपाङ्गनाओंके साथ विहार करते हैं, कहीं राधाको साथ लेकर चल देते हैं और कहीं उन्हें भी छोड़कर चले जाते हैं। जिन्होंने कहीं ब्राह्मणपत्नियोंके दिये हुए अन्नका भोजन किया है और कहीं बालकोंके साथ ताड़का फल खाया है; जो कहीं आनन्दपूर्वक गोप-किशोरियोंके चित्त चुराते हैं, कहीं ग्वालबालोंके साथ दूर गयी हुई गौओंको आवाज देकर बुलाते हैं, जिन्होंने कहीं कालियनागके मस्तकपर अपने चरणकमलोंको रखा है और जो कहीं मौजमें आकर आनन्द- विनोदके लिये मुरलीकी तान छेड़ते हैं तथा कहीं ग्वालबालोंके साथ मधुर गीत गाते हैं; उन परमात्मा श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।

इस स्तवराजसे स्तुति करके इन्द्रने श्रीहरिको भयसे प्रणाम किया। पूर्वकालमें वृत्रासुरके साथ युद्धके समय गुरु बृहस्पतिने इन्द्रको यह स्तोत्र दिया था। सबसे पहले श्रीकृष्णने तपस्वी ब्रह्माको कृपापूर्वक एकादशाक्षर-मन्त्र, सब लक्षणोंसे युक्त कवच और यह स्तोत्र दिया था। फिर ब्रह्माने पुष्करमें कुमारको, कुमारने अङ्गिराको और अङ्गिराने बृहस्पतिको इसका उपदेश दिया था। इन्द्रद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक पाठ करता है, वह इहलोकमें श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति और अन्तमें निश्चय ही उनका दास्य-सुख प्राप्त कर लेता है। जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि और

शोकसे छुटकारा पा जाता है और स्वप्नमें भी कभी यमदूत तथा यमलोकको नहीं देखता।*

भगवान् नारायण कहते हैं—इन्द्रका वचन सुनकर भगवान् लक्ष्मीनिवास प्रसन्न हो गये और उन्होंने प्रेमपूर्वक उन्हें वर देकर उस पर्वतको वहाँ स्थापित कर दिया। श्रीहरिको प्रणाम करके इन्द्र अपने गणोंके साथ चले गये; तदनन्तर गुफामें छिपे हुए लोग वहाँसे निकलकर अपने घरको गये। उन सबने श्रीकृष्णको परिपूर्णतम परमात्मा माना। व्रजवासियोंको आगे करके श्रीकृष्ण अपने घरको गये। नन्दके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। उनके नेत्रोंमें भक्तिके आँसू भर आये और उन्होंने सनातन पूर्णब्रह्मस्वरूप अपने उस पुत्रका स्तवन किया।

नन्द बोले—जो ब्राह्मणोंके हितकारी, गौओं तथा ब्राह्मणोंके हितैषी तथा समस्त संसारका भला चाहनेवाले हैं; उन सच्चिदानन्दमय गोविन्ददेवको बारंबार नमस्कार है। प्रभो! आप ब्राह्मणोंका प्रिय करनेवाले देवता हैं; स्वयं ही ब्रह्म और परमात्मा हैं; आपको नमस्कार है। आप अनन्तकोटि ब्रह्माण्डधामोंके भी धाम हैं; आपको सादर नमस्कार है। आप मत्स्य आदि रूपोंके जीवन तथा साक्षी हैं; आप निर्लिप्त, निर्गुण और निराकार परमात्माको नमस्कार है। आपका स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म है। आप स्थूलसे भी अत्यन्त स्थूल हैं। सर्वेश्वर, सर्वरूप तथा तेजोमय हैं; आपको नमस्कार है। अत्यन्त सूक्ष्म-स्वरूपधारी होनेके कारण आप योगियोंके भी ध्यानमें नहीं आते हैं; ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी आपकी वन्दना करते हैं; आप नित्य-स्वरूप परमात्माको नमस्कार है। आप चार युगोंमें चार वर्णोंका आश्रय लेते हैं; इसलिये युग-क्रमसे शुक्ल, रक्त, पीत और श्याम नामक गुणसे

---

* अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम्॥
भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम्। शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणम्। त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा। कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम्॥
नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम्। नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम्॥
गोपिकाचेतोहरं राधाप्राणाधिकं परम्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम्। कन्दर्पकोटिसौन्दर्यं बिभ्रन्तं शान्तमीश्वरम्॥
क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित्। कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम्॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित्। राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद् वने॥
कुत्रचिद्राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम्। राधाचर्विततांबूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा॥
पश्यन्तं कुत्रचिद्राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित्॥
कुत्रचिद्राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम्। राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित्॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित्। राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय तां च कुत्रचित्॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तं च कुत्रचित्। भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित्॥
वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा। गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद् बालकैः सह॥
कालीयमूर्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा॥
गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद् बालकैः सह। स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया॥
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च। कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम्। दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा॥
कुमारोऽङ्गिरसे दत्तो गुरवेऽङ्गिरसा मुने। इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्॥
इह प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्यो मुच्यते नरः॥
न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम्॥ (२१। १७६—१९६)

सुशोभित होते हैं; आपको नमस्कार है। आप योगी, योगरूप और योगियोंके भी गुरु हैं। सिद्धेश्वर, सिद्ध एवं सिद्धोंके गुरु हैं; आपको नमस्कार है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, शेषनाग, धर्म, सूर्य, गणेश, षडानन, सनकादि समस्त मुनि, सिद्धेश्वरोंके गुरुके भी गुरु कपिल तथा नर-नारायण ऋषि भी जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं; उन परात्पर प्रभुका स्तवन दूसरे कौन-से जडबुद्धि प्राणी कर सकते हैं? वेद, वाणी, लक्ष्मी, सरस्वती तथा राधा भी जिनकी स्तुति नहीं कर सकतीं; उन्हींका स्तवन दूसरे विद्वान् पुरुष क्या कर सकते हैं? ब्रह्मन्! मुझसे क्षण-क्षणमें जो अपराध बन रहा है, वह सब आप क्षमा करें। करुणासिन्धो! दीनबन्धो! भवसागरमें पड़े हुए मुझ शरणागतकी रक्षा कीजिये। प्रभो! पूर्वकालमें तीर्थस्थानमें तपस्या करके मैंने आप सनातनपुरुषको पुत्ररूपमें प्राप्त किया है। अब आप मुझे अपने चरण-कमलोंकी भक्ति और दास्य प्रदान कीजिये। ब्रह्मत्व, अमरत्व अथवा सालोक्य आदि चार प्रकारके मोक्ष आपके चरणकमलोंकी दास्य-भक्तिकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं; फिर इन्द्रपद, देवपद, सिद्धि-प्राप्ति, स्वर्गप्राप्ति, राजपद तथा चिरंजीवित्वको विद्वान् पुरुष किस गिनतीमें रखते हैं? (क्या समझते हैं?) ईश्वर! यह सब जो पूर्वकथित ब्रह्मत्व आदि पद हैं, वे आपके भक्तके आधे क्षणके लिये प्राप्त हुए सङ्गकी क्या समानता कर सकते हैं। कदापि नहीं। जो आपका भक्त है, वह भी आपके समान हो जाता है। फिर आपके महत्त्वका अनुमान कौन लगा सकता है? आपका भक्त आधे क्षणके वार्तालापमात्रसे किसीको भी भवसागरसे पार कर सकता है। आपके भक्तोंके सङ्गसे भक्तिका विविध अङ्कुर अवश्य उत्पन्न होता है। उन हरिभक्तरूप मेघोंके द्वारा की गयी वार्तालापरूपी जलकी वर्षासे सींचा जाकर भक्तिका वह अङ्कुर बढ़ता है। जो भगवान्‌के भक्त नहीं हैं, उनके आलापरूपी तापसे वह अङ्कुर तत्काल सूख जाता है और भक्त एवं भगवान्‌के गुणोंकी स्मृतिरूपी जलसे सींचनेपर वह उसी क्षण स्पष्टरूपसे बढ़ने लगता है। उनमें उत्पन्न आपकी भक्तिका अङ्कुर जब प्रकट होकर भलीभाँति बढ़ जाता है, तब वह नष्ट नहीं होता। उसे प्रतिदिन और प्रतिक्षण बढ़ाते रहना चाहिये। तदनन्तर उस भक्तको ब्रह्मपदकी प्राप्ति कराकर भी उसके जीवनके लिये भगवान् उसे अवश्य ही परम उत्तम दास्यरूप फल प्रदान करते हैं। यदि कोई दुर्लभ दास्यभावको पाकर भगवान्‌का दास हो गया तो निश्चय ही उसीने समस्त भय आदिको जीता है।

यों कहकर नन्द श्रीहरिके सामने भक्तिभावसे खड़े हो गये। तब प्रसन्न हुए श्रीकृष्णने उन्हें मनोवाञ्छित वर दिया। इस प्रकार नन्दद्वारा किये गये स्तोत्रका जो भक्तिभावसे प्रतिदिन पाठ करता है, वह शीघ्र ही श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति और दास्यभाव प्राप्त कर लेता है। जब द्रोण नामक वसुने अपनी पत्नी धराके साथ तीर्थमें तपस्या की, तब ब्रह्माजीने उन्हें यह परम दुर्लभ स्तोत्र प्रदान किया था। सौभरिमुनिने पुष्करमें संतुष्ट होकर ब्रह्माजीको श्रीहरिका षडक्षर-मन्त्र तथा सर्वरक्षणकवच प्रदान किया था। वही कवच, वही स्तोत्र और वही परम दुर्लभ मन्त्र ब्रह्माके अंशभूत गर्गमुनिने तपस्यामें लगे हुए नन्दको दिया था। पूर्वकालमें जिसके लिये जो मन्त्र, स्तोत्र, कवच, इष्टदेव, गुरु और विद्या प्राप्त होती है, वह पुरुष उस मन्त्र आदि तथा विद्याको निश्चय ही नहीं छोड़ता है। इस प्रकार यह श्रीकृष्णका अद्भुत आख्यान और स्तोत्र कहा गया, जो सुखद, मोक्षप्रद, सब साधनोंका सारभूत तथा भवबन्धनको छुटकारा दिलानेवाला है। (अध्याय २१)

ग्वाल-बालोंका श्रीकृष्णकी आज्ञासे तालवनके फल तोड़ना, धेनुकासुरका आक्रमण, श्रीकृष्णके स्पर्शसे उसे पूर्वजन्मकी स्मृति और उसके द्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, वैष्णवी मायासे पुनः उसे स्वरूपकी विस्मृति, फिर श्रीहरिके साथ उसका युद्ध और वध, बालकों-द्वारा सानन्द फल-भक्षण तथा सबका घरको प्रस्थान

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! एक दिन राधिकानाथ श्रीकृष्ण बलराम तथा ग्वाल-बालोंके साथ उस तालवनमें गये, जो पके फलोंसे भरा हुआ था। उन तालवृक्षोंकी रक्षा गर्दभरूपधारी एक दैत्य करता था, जिसका नाम धेनुक था। उसमें करोड़ों सिंहोंके समान बल था। वह देवताओंके दर्पका दलन करनेवाला था। उसका शरीर पर्वतके समान और दोनों नेत्र कूपके तुल्य थे। उसके दाँत हरिसकी पाँतके समान और मुँह पर्वतकी कन्दराके सदृश था। उसकी चञ्चल एवं भयानक जीभ सौ हाथ लंबी थी। नाभि तालाबके समान जान पड़ती थी। उसका शब्द बड़ा भयंकर होता था। तालवनको सामने देख उन श्रेष्ठ ग्वाल-बालोंको बड़ा हर्ष हुआ। उनके मुखारविन्दपर मुस्कराहट छा गयी। वे कौतुकवश श्रीकृष्णसे बोले।

बालकोंने कहा—हे श्रीकृष्ण! हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! आप सम्पूर्ण जगत्के पालक हैं। महाबली बलरामजीके भाई हैं तथा समस्त बलवानोंमें श्रेष्ठ हैं। प्रभो! आधे क्षणके लिये हमारे निवेदनपर ध्यान दीजिये। भक्तवत्सल! हम आपके भक्त-बालकोंको बड़ी भूख लगी है। इधर सामने ही स्वादिष्ट फल और सुन्दर ताल-फल हैं, उनकी ओर दृष्टिपात कीजिये। हम इन फलोंको तोड़नेके लिये वृक्षोंको हिलाना और नाना रंगोंके फूलों तथा दुर्लभ पके फलोंको गिराना चाहते हैं। श्रीकृष्ण! यदि आप आज्ञा दें तो हम ऐसी चेष्टा कर सकते हैं; परंतु इस वनमें गर्दभरूपधारी बलवान् दैत्य धेनुक रहता है, जिसपर सम्पूर्ण देवता भी विजय नहीं पा सके हैं। वह महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है। सब देवता मिलकर भी उसे रोकनेमें सफल नहीं हो पाते। वह राजा कंसका महान् सहायक है। समस्त प्राणियोंका हिंसक तथा ताल-वनोंका रक्षक है। जगत्पते! वक्ताओंमें श्रेष्ठ! आप भलीभाँति सोचकर हमसे कहिये। हम जो काम करना चाहते हैं वह उचित है या अनुचित? हम इसे करें या न करें। बालकोंकी यह बात सुनकर भगवान् मधुसूदन उनसे मधुर वाणीमें सुखदायक वचन बोले।

श्रीकृष्णने कहा—ग्वाल-बालो! तुम लोग तो मेरे साथी हो, तुम्हें दैत्योंसे क्या भय है? वृक्षोंको तोड़कर हिलाकर जैसे चाहो, बेखटके इन फलोंको खाओ।

श्रीकृष्णकी आज्ञा पाकर बलशाली गोपबालक उछले और वृक्षोंके शिरोंपर चढ़ गये। वे भूखे थे; इसलिये फल लेना चाहते थे। नारद! उन्होंने अनेक रंगके स्वादिष्ट, सुन्दर और पके हुए फल गिराये। कितने ही बालकोंने वृक्ष तोड़ डाले, कितनोंने उन्हें बारंबार हिलाया। कई बालक वहाँ कोलाहल करने लगे और कितने ही नाचने लगे। वृक्षोंसे उतरकर वे बलशाली बालक जब फल लेकर आने लगे, तब उन्होंने उस गर्दभरूपधारी महाबली, महाकाय, घोर दैत्यशिरोमणि धेनुकको बड़े वेगसे आते देखा। वह भयंकर शब्द कर रहा था। उसे देखकर सब बालक रोने लगे। उन्होंने भयके कारण फल त्याग दिये और बारंबार जोर-जोरसे 'कृष्ण-कृष्ण' का कीर्तन आरम्भ कर

दिया। वे बोले—'हे करुणानिधान कृष्ण! आओ हमारी रक्षा करो। हे संकर्षण! हमें बचाओ, नहीं तो इस दानवके हाथसे अब हमारे प्राण जा रहे हैं। हे कृष्ण! हे कृष्ण! हरे! मुरारे! गोविन्द! दामोदर! दीनबन्धो! गोपीश! गोपेश! अनन्त! नारायण! भवसागरमें डूबते हुए हम लोगोंकी रक्षा करो, रक्षा करो। दीननाथ! भय-अभयमें, शुभ-अशुभ अथवा सुख और दुःखमें तुम्हारे सिवा दूसरा कोई हमें शरण देनेवाला नहीं है। हे माधव! भवसागरमें हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। गुणसागर श्रीकृष्ण! तुम्हीं भक्तोंके एकमात्र बन्धु हो। हम बालक बहुत भयभीत हैं। हमारी रक्षा करो, रक्षा करो। यह दानव-कुलका स्वामी हमारा काल बनकर आ पहुँचा है। आप इसका वध कीजिये और इसे मारकर देवताओंके बल-दर्पको बढ़ाइये।'

बालकोंकी व्याकुलता देखकर भयहन्ता भक्तवत्सल माधव बलरामजीके साथ उस स्थानपर आये, जहाँ वे बालक खड़े थे। 'कोई भय नहीं है, कोई भय नहीं है'—यों कहकर वे शीघ्रतापूर्वक उनके पास दौड़े आये और मन्द मुस्कानसे युक्त प्रसन्नमुखद्वारा उन्होंने उन बालकोंको अभय दान दिया। श्रीकृष्ण और बलरामको देखकर बालक हर्षसे नाचने लगे। उनका भय दूर हो गया। क्यों न हो, भगवान्‌की स्मृति ही अभयदायिनी तथा सब प्रकारसे मङ्गल प्रदान करनेवाली है। बालकोंको निगल जानेको उद्यत हुए उस दानवको देख मधुसूदन श्रीकृष्णने महाबली बलरामको सम्बोधित करके कहा।

श्रीकृष्ण बोले—भैया! यह दानव राजा बलिका बलवान् पुत्र है। इसका नाम साहसिक है। पूर्वकालमें दुर्वासाने इसे शाप दिया था। उस ब्रह्मशापसे ही यह गदहा हुआ है। यह बड़ा पापी तथा महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न है; अतः मेरे ही हाथसे वधके योग्य है। मैं इसका वध करूँगा। तुम बालकोंकी रक्षा करो। सब बालकोंको लेकर दूर चले जाओ।

तब बलराम उन बालकोंको लेकर श्रीकृष्णकी आज्ञाके अनुसार शीघ्र ही दूर चले गये। इधर इस महाबली एवं महापराक्रमी दानवराजने श्रीकृष्णपर दृष्टि पड़ते ही उन्हें रोषपूर्वक अनायास ही निगल लिया। श्रीकृष्ण प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान थे। उन्हें निगल लेनेपर उस दानवके भीतर बड़ी जलन होने लगी। उनके अतिशय तेजसे वह मरणासन्न हो गया। तब उस दैत्यने भयभीत हो उन तेजस्वी प्रभुको फिर उगल दिया। परित्यक्त होनेपर उन परमेश्वरकी ओर एकटक दृष्टिसे देखता हुआ वह दैत्य मोहित हो गया। भगवान्‌का श्रीविग्रह अत्यन्त सुन्दर, शान्त तथा ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान था। श्रीकृष्णके दर्शनमात्रसे उस दानवको पूर्वजन्मकी स्मृति हो आयी। उसने अपने-आपको तथा जगत्‌के परम कारण श्रीकृष्णको भी पहचान लिया। उन तेजःस्वरूप ईश्वरको देखकर वह दानव शास्त्रके अनुसार श्रुतिसे परे गुणातीत प्रभुका जिस प्रकार जन्म हुआ, उसे दृष्टिमें लाकर उनकी स्तुति करने लगा।

दानव बोला—प्रभो! आप ही अपने अंशसे वामन हुए थे और मेरे पिताके यज्ञमें याचक बने थे। आपने पहले तो हमारे राज्य और लक्ष्मीको हर लिया। पर पुनः बलिकी भक्तिके वशीभूत होकर हम सब लोगोंको सुतललोकमें स्थान दिया। आप महान् वीर, सर्वेश्वर और भक्तवत्सल हैं। मैं पापी हूँ और शापसे गर्दभ हुआ हूँ। आप शीघ्र ही मेरा वध कर डालिये। दुर्वासा मुनिके शापसे मुझे ऐसा घृणित जन्म मिला है। जगत्पते! मुनिने मेरी मृत्यु आपके हाथसे बतायी थी। आप अत्यन्त तीखे और अतिशय तेजस्वी षोडशार चक्रसे मेरा वध

कीजिये। मुक्तिदाता जगन्नाथ! ऐसा करके मुझे उत्तम गति दीजिये। आप ही वसुधाका उद्धार करनेके लिये अंशतः वाराहरूपमें अवतीर्ण हुए थे। नाथ! आप ही वेदोंके रक्षक तथा हिरण्याक्षके नाशक हैं। आप पूर्ण परमात्मा स्वयं ही हिरण्यकशिपुके वधके लिये नृसिंहरूपमें प्रकट हुए थे। प्रह्लादपर अनुग्रह और वेदोंकी रक्षा करनेके लिये ही आपने यह अवतार ग्रहण किया था। दयानिधे! आपने ही राजा मनुको ज्ञान देने, देवता और ब्राह्मणोंकी रक्षा करने तथा वेदोंके उद्धारके लिये अंशतः मत्स्यावतार धारण किया था। आप ही अपने अंशसे सृष्टिके लिये शेषके आधारभूत कच्छप हुए थे। सहस्रलोचन! आप ही अंशतः शेषके रूपमें प्रकट हुए हैं और सम्पूर्ण विश्वका भार वहन करते हैं। आप ही जनकनन्दिनी सीताका उद्धार करनेके लिये दशरथनन्दन श्रीराम हुए थे। उस समय आपने समुद्रपर सेतु बाँधा और दशमुख रावणका वध किया। पृथ्वीनाथ! आप ही अपनी कलासे जमदग्निनन्दन महात्मा परशुराम हुए; जिन्होंने इक्कीस बार क्षत्रिय नरेशोंका संहार किया था। सिद्धोंके गुरुके भी गुरु महर्षि कपिल अंशतः आपके ही स्वरूप हैं, जिन्होंने माताको ज्ञान दिया और योग (एवं सांख्य)-शास्त्रकी रचना की। ज्ञानिशिरोमणि नर-नारायण ऋषि आपके ही अंशसे उत्पन्न हुए हैं। आप ही धर्मपुत्र होकर लोकोंका विस्तार कर रहे हैं। इस समय आप स्वयं परिपूर्णतम परमात्मा ही श्रीकृष्णरूपमें प्रकट हैं और सभी अवतारोंके सनातन बीजरूप हैं। आप यशोदाके जीवन, नन्दरायजीके एकमात्र आनन्दवर्धन, नित्यस्वरूप, गोपियोंके प्राणाधिदेव तथा श्रीराधाके प्राणाधिक प्रियतम हैं। वसुदेवके पुत्र, शान्तस्वरूप तथा देवकीके दुःखका निवारण करनेवाले हैं। आपका स्वरूप अयोनिज है। आप पृथ्वीका भार उतारनेके लिये यहाँ पधारे हैं। आपने पूतनाको माताके समान गति प्रदान की है; क्योंकि आप कृपानिधान हैं। आप बक, केशी तथा प्रलम्बासुरको और मुझे भी मोक्ष देनेवाले हैं। स्वेच्छामय! गुणातीत! भक्तभयभञ्जन! राधिकानाथ! प्रसन्न होइये, प्रसन्न होइये और मेरा उद्धार कीजिये। हे नाथ! इस गर्दभ-योनि और भवसागरसे मुझे उबारिये। मैं मूर्ख हूँ तो भी आपके भक्तका पुत्र हूँ; इसलिये आपको मेरा उद्धार करना चाहिये। वेद, ब्रह्मा आदि देवता तथा मुनीन्द्र भी जिनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं, उन्हीं गुणातीत परमेश्वरकी स्तुति मुझ-जैसा पुरुष क्या करेगा? जो पहले दैत्य था और अब गदहा है। करुणासागर! आप ऐसा कीजिये, जिससे मेरा जन्म न हो। आपके चरणारविन्दके दर्शन पाकर कौन फिर जन्म अथवा घर-गृहस्थीके चक्करमें पड़ेगा? ब्रह्मा जिनकी स्तुति करते हैं, उन्हींका स्तवन आज एक गदहा कर रहा है। इस बातको लेकर आपको उपहास नहीं करना चाहिये; क्योंकि सच्चिदानन्दस्वरूप एवं विज्ञ परमेश्वरकी योग्य और अयोग्यपर भी समानरूपसे कृपा होती है।

यों कहकर दैत्यराज धेनुक श्रीहरिके सामने खड़ा हो गया। उसके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी, वह श्रीसम्पन्न एवं अत्यन्त संतुष्ट जान पड़ता था। दैत्यद्वारा किये गये इस स्तोत्रका जो प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता है, वह अनायास ही श्रीहरिका लोक, ऐश्वर्य और सामीप्य प्राप्त कर लेता है। इतना ही नहीं, वह इहलोकमें श्रीहरिकी भक्ति, अन्तमें उनका परम दुर्लभ दास्यभाव, विद्या, श्री, उत्तम कवित्व, पुत्र-पौत्र तथा यश भी पाता है।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—दैत्यराजकी यह स्तुति सुनकर करुणानिधान श्रीकृष्णने मन-ही-मन विचार किया कि 'अहो! ऐसे भक्तका

संहार मैं कैसे करूँ?' ऐसा सोचकर भगवान्‌ने स्वयं ही उसकी पूर्वजन्मकी स्मृति हर ली; क्योंकि स्तुति करनेवालेका वध उचित नहीं है। दुर्वचन बोलनेवालेके ही वधका विधान है। तब दानव वैष्णवी मायाके प्रभावसे पुनः अपने-आपको भूल गया। उसके कण्ठदेशमें दुर्वचनने स्थान जमा लिया। मुने! वह शीघ्र ही मरना चाहता था, इसलिये दुर्दैवसे ग्रस्त हो विवेक खो बैठा। क्रोधसे उसके ओठ फड़कने लगे और वह दैत्य श्रीहरिसे इस प्रकार बोला।

दैत्यने कहा—दुर्मते! तू निश्चय ही मरना चाहता है। मनुष्यके बच्चे! मैं आज तुम्हें यमलोक भेज दूँगा।

इस प्रकार बहुत-से दुर्वचन कहकर उस गदहेने श्रीकृष्णपर आक्रमण कर दिया। भयानक युद्ध हुआ। अन्तमें श्रीहरिने प्रसन्नतापूर्वक हँसकर उस दानवराजकी प्रशंसा करते हुए कहा—'मेरे भक्त बलिके पुत्र! दानवेन्द्र! तुम्हारा उत्तम जीवन धन्य है। वत्स! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम मोक्ष प्राप्त करो। मेरा दर्शन कल्याणका बीज तथा मोक्षका परम कारण है। तुम सबसे अधिक और सबसे उत्कृष्ट मनोहर स्थान प्राप्त करो।'

यों कहकर श्रीकृष्णने अपने उत्तम चक्रका स्मरण किया, जो अपनी दीप्तिसे करोड़ों सूर्योंके समान उद्दीप्त होता है। स्मरण करते ही वह आ गया और श्रीकृष्णने उस सुदर्शनचक्रको अपने हाथमें ले लिया। उसमें सोलह अरे थे। उस उत्तम अस्त्रको घुमाकर श्रीकृष्णने उसकी ओर फेंका तथा जिसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव भी नहीं मार सकते थे, उसे लीलासे ही काट डाला। उस महात्मा दानवका मस्तक पृथ्वीपर गिर पड़ा। उसके शरीरसे सैकड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान्

तेज:पुञ्ज उठा, जो श्रीहरिकी ओर देखकर उन्हींके चरणकमलोंमें लीन हो गया। अहो! उस दानवराजने परम मोक्ष प्राप्त कर लिया। उस समय आकाशमें खड़े हुए समस्त देवता और मुनि अत्यन्त हर्षसे उत्फुल्ल हो वहाँ पारिजातके फूलोंकी वर्षा करने लगे। स्वर्गमें दुन्दुभियाँ बज उठीं। अप्सराएँ नाचने लगीं। गन्धर्व-समूह गीत गाने लगे और मुनिलोग सानन्द स्तुति करने लगे। स्तुति करके हर्षसे विह्वल हुए समस्त देवता और मुनि चले गये। 'धेनुकासुर मारा गया'—यह देख ग्वाल-बाल वहाँ आ गये। बलवानोंमें श्रेष्ठ बलरामने पुरुषोत्तमका स्तवन किया। समस्त ग्वाल-बालोंने भी उनके गुण गाये। वे खुशीके मारे नाचने लगे। श्रीकृष्ण और बलरामको कुछ पके हुए फल देकर शेष सभी फलोंको उन बालकोंने प्रसन्न-चित्त होकर खाया। खा-पीकर बलराम और बालकोंके साथ श्रीहरि शीघ्र अपने घरको गये। (अध्याय २२)

धेनुकके पूर्वजन्मका परिचय, बलि-पुत्र साहसिक तथा तिलोत्तमाका स्वच्छन्द विहार, दुर्वासाका शाप और वर, साहसिकका गदहेकी योनिमें जन्म लेना तथा तिलोत्तमाका बाणपुत्री 'उषा' होना

नारदजीने पूछा—भगवन्! किस पापसे बलि-पुत्र साहसिकको गदहेकी योनि प्राप्त हुई? दुर्वासाजीने किस अपराधसे दानवराजको शाप दिया? नाथ! फिर किस पुण्यसे दानवेश्वरने सहसा महात्मा श्रीहरिका धाम एवं उनके साथ एकत्व (सायुज्य) मोक्ष प्राप्त कर लिया? संदेह-भंजन करनेवाले महर्षे! इन सब बातोंको आप विस्तारपूर्वक बताइये। अहो! कविके मुखमें काव्य पद-पदपर नया-नया प्रतीत होता है।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—वत्स! नारद! सुनो। मैं इस विषयमें प्राचीन इतिहास कहूँगा। मैंने इसे पिता धर्मके मुखसे गन्धमादन पर्वतपर सुना था। यह विचित्र एवं अत्यन्त मनोहर वृत्तान्त पाद्म-कल्पका है और श्रीनारायणदेवकी कथासे युक्त होनेके कारण कानोंके लिये उत्तम अमृत है। जिस कल्पकी यह कथा है, उसमें तुम उपबर्हण नामक गन्धर्वके रूपमें थे। तुम्हारी आयु एक कल्पकी थी। तुम शोभायमान, सुन्दर और सुस्थिर यौवनसे सम्पन्न थे। पचास कामिनियोंके पति होकर सदा शृङ्गारमें ही तत्पर रहते थे। ब्रह्माजीके वरदानसे तुम्हें सुमधुर कण्ठ प्राप्त हुआ था और तुम सम्पूर्ण गायकोंके राजा समझे जाते थे। उन्हीं दिनों दैववश ब्रह्माका शाप प्राप्त होनेसे तुम दासीपुत्र हुए और वैष्णवोंके अवशिष्ट भोजनजनित पुण्यसे इस समय साक्षात् ब्रह्माजीके पुत्र हो। अब तो तुम असंख्य कल्पोंतक जीवित रहनेवाले महान् वैष्णवशिरोमणि हो। ज्ञानमयी दृष्टिसे सब कुछ देखते और जानते हो तथा महादेवजीके प्रिय शिष्य हो। मुने! उस पाद्म-कल्पका वृत्तान्त मुझसे सुनो। दैत्यके इस सुधा-तुल्य मधुर वृत्तान्तको मैं तुम्हें सुना रहा हूँ।

एक दिनकी बात है। बलिका बलवान् पुत्र साहसिक अपने तेजसे देवताओंको परास्त करके गन्धमादनकी ओर प्रस्थित हुआ। उसके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। वह रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो रत्नके ही सिंहासनपर विराजमान था। उसके साथ बहुत बड़ी सेना थी। इसी समय स्वर्गकी परम सुन्दरी अप्सरा तिलोत्तमा उस मार्गसे आ निकली। उसने साहसिकको देखा और साहसिकने उसको। पुंश्चली स्त्रियोंका आचरण दोषपूर्ण होता ही है। वहीं दोनों एक-दूसरेके प्रति आकर्षित हो गये। चन्द्रमाके समीप जाती हुई तिलोत्तमा वहाँ बीचमें ही ठहर गयी। कुलटा स्त्रियाँ कैसी दुष्टहृदया होती हैं और वे किसी भी पापका विचार न करके सदा पापरत ही रहा करती हैं—यह सब बतलाकर भी तिलोत्तमाने अपने बाह्य रूप-सौन्दर्यसे साहसिकको मोहित कर लिया। तदनन्तर वे दोनों गन्धमादनके एकान्त रमणीय स्थानमें जाकर यथेच्छ विहार करने लगे। वहीं मुनिवर दुर्वासा योगासनसे विराजमान होकर श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका चिन्तन कर रहे थे। तिलोत्तमा और साहसिक उस समय कामवश चेतनाशून्य थे। उन्होंने अत्यन्त निकट ध्यान लगाये बैठे हुए मुनिको नहीं देखा। उनके उच्छृङ्खल अभिसारसे मुनिका ध्यान सहसा भङ्ग हो गया। उन्होंने उन दोनोंकी कुत्सित चेष्टाएँ देख क्रोधमें भरकर कहा।

दुर्वासा बोले—ओ गदहेके समान आकार-

वाले निर्लज्ज नराधम! उठ। भक्तशिरोमणि बलिका पुत्र होकर भी तू इस तरह पशुवत् आचरण कर रहा है। देवता, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व तथा राक्षस—ये सभी सदा अपनी जातिमें लज्जाका अनुभव करते हैं। पशुओंके सिवा सभी मैथुन-कर्ममें लज्जा करते हैं। विशेषत: गदहेकी जाति ज्ञान तथा लज्जासे हीन होती है; अत: दानवश्रेष्ठ! अब तू गदहेकी योनिमें जा। तिलोत्तमे! तू भी उठ। पुंश्चली स्त्री तो निर्लज्ज होती ही है। दैत्यके प्रति तेरी ऐसी आसक्ति है तो अब तू दानवयोनिमें ही जन्म ग्रहण कर।

ऐसा कहकर रोषसे जलते हुए दुर्वासामुनि वहाँ चुप हो गये। फिर वे दोनों लज्जित और भयभीत होकर उठे तथा मुनिकी स्तुति करने लगे।

साहसिक बोला—मुने! आप ब्रह्मा, विष्णु और साक्षात् महेश्वर हैं। अग्नि और सूर्य हैं। आप संसारकी सृष्टि, पालन तथा संहार करनेमें समर्थ हैं। भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा करें। कृपानिधे! कृपा करें। जो सदा मूढ़ोंके अपराधको क्षमा करे, वही संत-महात्मा एवं ईश्वर है।

यों कहकर वह दैत्यराज मुनिके आगे उच्चस्वरसे फूट-फूटकर रोने लगा और दाँतोंमें तिनके दबाकर उनके चरणकमलोंमें गिर पड़ा।

तिलोत्तमा बोली—हे नाथ! हे करुणासिन्धो! हे दीनबन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। विधाताकी सृष्टिमें सबसे अधिक मूढ़ स्त्रीजाति ही है। सामान्य स्त्रीकी अपेक्षा अधिक मतवाली एवं मूढ़ कुलटा होती है, जो सदा अत्यन्त कामातुर रहती है। प्रभो! कामुक प्राणीमें लज्जा, भय और चेतना नहीं रह जाती है।

नारद! ऐसा कहकर तिलोत्तमा रोती हुई दुर्वासाजीकी शरणमें गयी। भूतलपर विपत्तिमें पड़े बिना भला किन्हें ज्ञान होता है? उन दोनोंकी व्याकुलता देखकर मुनिको दया आ गयी। उस समय उन मुनिवरने उन्हें अभय देकर कहा।

दुर्वासा बोले—दानव! तू विष्णुभक्त बलिका पुत्र है। उत्तम कुलमें तेरा जन्म हुआ है। तू पैतृक परम्परासे विष्णुभक्त है। मैं तुझे निश्चितरूपसे जानता हूँ। पिताका स्वभाव पुत्रमें अवश्य रहता है। जैसे कालियके सिरपर अङ्कित हुआ श्रीकृष्णका चरणचिह्न उसके वंशमें उत्पन्न हुए सभी सर्पोंके मस्तकपर रहता है। वत्स! एक बार गदहेकी योनिमें जन्म लेकर तू निर्वाण (मोक्ष)-को प्राप्त हो जा। सत्पुरुषोंद्वारा पहले जो चिरकालतक श्रीकृष्णकी आराधना की गयी होती है, इसके पुण्य-प्रभावका कभी लोप नहीं होता। अब तू शीघ्र ही व्रजके निकट वृन्दावनके ताल-वनमें जा। वहाँ श्रीहरिके चक्रसे प्राणोंका परित्याग करके तू निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेगा। तिलोत्तमे! तू भारतवर्षमें बाणासुरकी पुत्री होगी; फिर श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धका आलिङ्गन प्राप्त करके शुद्ध हो जायगी।

महामुने! यों कहकर दुर्वासामुनि चुप हो गये। तत्पश्चात् वे दोनों भी उन मुनिश्रेष्ठको प्रणाम करके यथास्थान चले गये। इस प्रकार दैत्य साहसिकके गर्दभ-योनिमें जन्म लेनेका सारा वृत्तान्त मैंने कह सुनाया। तिलोत्तमा बाणासुरकी पुत्री उषा होकर अनिरुद्धकी पत्नी हुई।

(अध्याय २३)

दुर्वासाका और्वकन्या कन्दलीसे विवाह, उसकी कटूक्तियोंसे कुपित हो मुनिका उसे भस्म कर देना, फिर शोकसे देह-त्यागके लिये उद्यत मुनिको विप्ररूपधारी श्रीहरिका समझाना, उन्हें एकानंशाको पत्नी बनानेके लिये कहना, कन्दलीका भविष्य बताना और मुनिको ज्ञान देकर अन्तर्धान होना तथा मुनिकी तपस्यामें प्रवृत्ति

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—मुने! दुर्वासा मुनिका गूढ़ वृत्तान्त सुनो। सबसे अद्भुत बात यह है कि उन ऊर्ध्वरेता मुनीश्वरको भी स्त्रीका संयोग प्राप्त हुआ। यह कैसे? सो बता रहा हूँ। साहसिक तथा तिलोत्तमाका शृङ्गार (मिलन-प्रसंग) देखकर उन जितेन्द्रिय मुनिके मनमें भी कामभावका संचार हो गया। असत्-पुरुषोंका सङ्ग प्राप्त होनेसे उनका सांसर्गिक दोष अपनेमें आ जाता है। इसी समय उस मार्गसे मुनिवर और्व अपनी पुत्रीके साथ आ पहुँचे। उनकी पुत्री पतिका वरण करना चाहती थी। पूर्वकालमें तप:परायण ब्रह्माजीके ऊरुसे उन ऊर्ध्वरेता योगीन्द्रका जन्म हुआ था, इसलिये वे 'और्व' कहलाये। उनके जानुसे एक कन्या उत्पन्न हुई, जिसका नाम 'कन्दली' था। वह दुर्वासाको ही अपना पति बनाना चाहती थी, दूसरा कोई पुरुष उसके मनको नहीं भाता था। पुत्रीसहित मुनिवर और्व दुर्वासामुनिके आगे आकर खड़े हो गये। वे बड़े प्रसन्न थे और अपने तेजसे प्रज्वलित अग्निशिखाके समान उद्भासित होते थे।

मुनिवर और्वको सामने आया देख मुनीश्वर दुर्वासा भी बड़े वेगसे उठे और सानन्द उनके प्रति नत-मस्तक हो गये। प्रसन्नतासे भरे हुए और्वने दुर्वासाको हृदयसे लगा लिया और उनसे अपनी कन्याका मनोरथ प्रकट किया।

और्व बोले—मुने! यह मेरी मनोहर कन्या 'कन्दली' नामसे विख्यात है। अब यह सयानी हो गयी है और संदेशवाहकोंके मुखसे आपकी प्रशंसा सुनकर केवल आपका ही 'पति'-रूपसे चिन्तन करने लगी है। यह कन्या अयोनिजा है और अपने सौन्दर्यसे तीनों लोकोंका मन मोह लेनेमें समर्थ है। वैसे तो यह समस्त गुणोंकी खान है; किंतु इसमें एक दोष भी है। दोष यह है कि कन्दली अत्यन्त कलहकारिणी है। यह क्रोधपूर्वक कटु भाषण करती है; परंतु अनेक गुणोंसे युक्त वस्तुको केवल एक ही दोषके कारण त्यागना नहीं चाहिये।

और्वका वचन सुनकर दुर्वासाको हर्ष और शोक दोनों प्राप्त हुए। उसके गुणोंसे हर्ष हुआ और दोषसे दु:ख। उन्होंने गुण तथा रूपसे सम्पन्न मुनि-कन्याको सामने देखा और व्यथित-हृदयसे मुनिवर और्वको इस प्रकार उत्तर दिया।

दुर्वासाने कहा—नारीका रूप त्रिभुवनमें मुक्तिमार्गका निरोधक, तपस्यामें व्यवधान डालनेवाला तथा सदा ही मोहका कारण होता है। यह संसाररूपी कारागारमें बड़ी भारी बेड़ी है, जिसका भार वहन करना अत्यन्त दुष्कर है। शंकर आदि महापुरुष भी ज्ञानमय खड्गसे उस बेड़ीको काट नहीं सकते। नारी सदा साथ देनेवाली छायासे भी अधिक सहगामिनी है। वह कर्मभोग, इन्द्रिय, इन्द्रियाधार, विद्या और बुद्धिसे भी अधिक बाँधनेवाली है। छाया शरीरके रहनेतक ही साथ देती है; भोग तभीतक साथ रहते हैं जबतक उनकी समाप्ति न हो जाय; देह और इन्द्रियाँ जीवनपर्यन्त ही साथ रहती हैं; विद्या जबतक उसका अनुशीलन होता है तभीतक साथ देती है; यही दशा बुद्धिकी भी है; परंतु सुन्दरी स्त्री जन्म-जन्ममें मनुष्यको बन्धनमें डाले रहती है। सुन्दरी स्त्रीवाला पुरुष जबतक जीता है, तबतक अपने जन्म-मरणरूपी बन्धनका निवारण नहीं

कर सकता। जबतक जीवधारीका जन्म होता है, तबतक उसे भोग सुखदायक जान पड़ते हैं। परंतु मुनीन्द्र! सबसे अधिक सुखदायिनी है श्रीहरिके चरणकमलोंकी सेवा। मैं यहाँ श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंके चिन्तनमें लगा था, परंतु मेरे इस शुभ अनुष्ठानमें भारी विघ्न उपस्थित हो गया। न जाने पूर्व-जन्मके किस कर्म-दोषसे यह विघ्न आया है। किंतु मुने! मैं आपकी कन्याके सौ कटु वचनोंको अवश्य क्षमा करूँगा। इससे अधिक होनेपर उसका फल उसे दूँगा। स्त्रीके कटु वचनोंको सुनते रहना—यह पुरुषके लिये सबसे बड़ी निन्दाकी बात है। जिसे स्त्रीने जीत लिया हो, वह तीनों लोकोंके सत्पुरुषोंमें अत्यन्त निन्दित है। मैं आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके इस समय आपकी पुत्रीको ग्रहण करूँगा।

ऐसा कहकर दुर्वासा चुप हो गये। और्वमुनिने वेदोक्त-विधिसे अपनी पुत्री उनको ब्याह दी। दुर्वासाने 'स्वस्ति' कहकर कन्याका पाणिग्रहण किया। और्वमुनिने उन्हें दहेज दिया और अपनी कन्या उन्हें सौंपकर वे मोहवश रोने लगे। संतानके वियोगसे होनेवाला शोक आत्माराम मुनिको भी नहीं छोड़ता।

और्व बोले—बेटी! सुनो। मैं तुम्हें नीतिका परम दुर्लभ सार-तत्त्व बता रहा हूँ। यह हितकारक, सत्य, वेदप्रतिपादित तथा परिणाममें सुखद है। नारीके लिये अपना पति ही इहलोक और परलोकमें सबसे बड़ा बन्धु है। कुलवधुओंके लिये पतिसे बढ़कर दूसरा कोई प्रियतम नहीं है। पति ही उनका महान् गुरु है। देवपूजा, व्रत, दान, तप, उपवास, जप, सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान, समस्त यज्ञोंकी दीक्षा, पृथ्वीकी परिक्रमा तथा ब्राह्मणों और अतिथियोंका सेवन—ये सब पतिसेवाकी सोलहवीं कलाके समान भी नहीं हैं। पतिव्रताको इन सबसे क्या प्रयोजन है? समस्त शास्त्रोंमें पतिसेवाको परम धर्म कहा गया है। अपनी बुद्धिसे पतिको सदा नारायणसे भी अधिक समझकर तुम उनके चरणकमलोंकी प्रतिदिन सेवा करना। परिहास, क्रोध, भ्रम अथवा अवहेलनासे भी अपने स्वामी मुनिके लिये उनके सामने या परोक्षमें भी कभी कटु वचन न बोलना। भारतवर्षकी भूमिपर जो स्त्रियाँ स्वेच्छानुसार कटु वचन बोलती अथवा दुराचारमें प्रवृत्त होती हैं, उनकी शुद्धिके लिये श्रुतिमें कोई प्रायश्चित्त नहीं है। उन्हें सौ कल्पोंतक नरकमें रहना पड़ता है। जो स्त्री समस्त धर्मोंसे सम्पन्न होनेपर भी पतिके प्रति कटु वचन बोलती है, उसका सौ जन्मोंका किया हुआ पुण्य निश्चय ही नष्ट हो जाता है।

इस प्रकार अपनी कन्याको देकर और उसे समझा-बुझाकर मुनिवर और्व चले गये तथा स्वात्माराम मुनि दुर्वासा स्त्रीके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रममें रहने लगे। चतुर पुरुषका चतुर स्त्रीके साथ योग्य समागम हुआ। मुनीश्वर दुर्वासा तपस्या छोड़कर घर-गृहस्थीमें आसक्त हो गये। कन्दली स्वामीके साथ प्रतिदिन कलह करती थी और मुनीन्द्र दुर्वासा नीतियुक्त वचन कहकर अपनी पत्नीको समझाते थे; परंतु उनकी बातको वह कुछ नहीं समझती थी। वह सदा कलहमें ही रुचि रखती थी। पिताके दिये हुए ज्ञानसे भी वह शान्त नहीं हुई। समझानेसे भी उसने अपनी आदत नहीं छोड़ी। स्वभावको लाँघना बहुत कठिन होता है। वह बिना कारण ही पतिको प्रतिदिन जली-कटी सुनाती थी। जिनके डरसे सारा जगत् काँपता था, वे ही मुनि उस कन्दलीके कोपसे थर-थर काँपते थे और उसकी की हुई कटूक्तिको चुपचाप सह लेते थे। दयानिधान मुनि मोहवश उसे तत्काल समझाने लगते थे। कुछ ही कालमें उसकी सौ कटूक्तियाँ पूरी हो गयीं तो भी मुनिने कृपापूर्वक उसकी सौसे भी अधिक कटूक्तियोंको क्षमा किया। पत्नीकी जली-कटी बातोंसे मुनिका हृदय दग्ध

होता रहता था। दिये हुए वचनके अनुसार उस कटूक्तिकारिणी स्त्रीके अपराध पूरे हो गये। दुर्वासामुनि यद्यपि स्वात्माराम और दयालु थे तथापि क्रोधको नहीं छोड़ सके थे। उन्होंने मोहवश पत्नीको शाप दे दिया—'अरी तू राखका ढेर बन जा।' मुनिके संकेतमात्रसे वह जलकर भस्म हो गयी। जो ऐसी उच्छृङ्खला स्त्रियाँ हैं, उनका तीनों लोकोंमें कल्याण नहीं होता। शरीरके भस्म हो जानेपर आत्माका प्रतिबिम्बरूप जीव आकाशमें स्थित हो पतिसे विनयपूर्वक बोला।

जीवने कहा—हे नाथ! आप अपनी ज्ञान-दृष्टिसे सदा सब कुछ देखते हैं। सर्वज्ञ होनेके कारण आपको सब कुछका ज्ञान है। फिर मैं आपको क्या समझाऊँ! उत्तम वचन, कटु वचन, क्रोध, संताप, लोभ, मोह, काम, क्षुधा, पिपासा, स्थूलता, कृशता, नाश, दृश्य, अदृश्य तथा उत्पन्न होना—ये सब शरीरके धर्म हैं। न तो जीवके धर्म हैं और न आत्माके ही। सत्त्व, रज और तम—इन तीन गुणोंसे शरीर बना है। वह भी नाना प्रकारका है। सुनिये, मैं आपको बताती हूँ। किसी शरीरमें सत्त्वगुणकी अधिकता होती है, किसीमें रजोगुणकी और किसीमें तमोगुणकी। मुने! कहीं भी सम गुणोंवाला शरीर नहीं है। जब सत्त्वगुणका उद्रेक होता है तब मोक्षकी इच्छा जाग्रत् होती है, रजोगुणकी वृद्धिसे कर्म करनेकी इच्छा प्रबल होती है और तमोगुणसे जीव-हिंसा, क्रोध एवं अहंकार आदि दोष प्रकट होते हैं। क्रोधसे निश्चय ही कटु वचन बोला जाता है। कटु वचनसे शत्रुता होती है और शत्रुतासे मनुष्यमें तत्काल अप्रियता आ जाती है। अन्यथा इस भूतलपर कौन किसका शत्रु है? कौन प्रिय है और कौन अप्रिय? कौन मित्र है और कौन वैरी? सर्वत्र शत्रु और मित्रकी भावनामें इन्द्रियाँ ही बीज हैं। स्त्रियोंके लिये पति प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है और पतिके लिये स्त्री प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारी है। फिर भी दुर्वचनके कारण एक क्षणमें हम दोनोंके बीच तत्काल शत्रुता पैदा हो गयी। प्रभो! जो बीत गया सो गया। वह सब काम-दोषसे हुआ था। अब आप मेरा सारा अपराध क्षमा कर दें और बतावें इस समय मुझे क्या करना चाहिये। मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? कहाँ मेरा जन्म होगा? मैं तीनों लोकोंमें आपके सिवा किसीकी भार्या नहीं होऊँगी।

यों कहकर कन्दलीका जीवात्मा मौन हो गया। इधर शोकसे अचेत हो दुर्वासामुनि मूर्च्छित हो गये। वे स्वात्माराम और महाज्ञानी होकर भी अपनी चेतना खो बैठे। चतुर पुरुषोंके लिये नारीका वियोग सब शोकोंसे बढ़कर होता है। एक ही क्षणमें उन्हें चेत हुआ और वे अपने प्राण त्याग देनेको उद्यत हो गये। उन्होंने वहीं योगासन लगाकर वायुधारणा आरम्भ की। इतनेहीमें एक ब्राह्मण-बालक वहाँ आ पहुँचा। उसके हाथमें दण्ड और चक्र था। उसने लाल वस्त्र धारण किया था और ललाटमें उत्तम चन्दन लगा रखा था। उसकी अङ्गकान्ति श्याम थी। वह ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान था। उसकी अवस्था बहुत छोटी थी; परंतु वह शान्त, ज्ञानवान् तथा वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ जान पड़ता था। उसे देख दुर्वासाने वेगपूर्वक प्रणाम किया, वहाँ बैठाया और भक्तिभावसे उसका पूजन किया। ब्राह्मण बटुकने मुनिको शुभाशीर्वाद दे वार्तालाप आरम्भ किया। उसके दर्शन और आशीर्वादसे मुनिका सारा दुःख दूर हो गया। वह नीतिविशारद विचक्षण बालक क्षणभर चुप रहकर अमृतमयी वाणीमें बोला।

शिशुने कहा—सर्वज्ञ विप्र! आप गुरुमन्त्रके प्रसादसे सब कुछ जानते हैं; फिर भी शोकसे कातर हो रहे हैं; अतः मैं पूछता हूँ, इसका यथार्थ रहस्य क्या है? ब्राह्मणोंका धर्म तप है। तपस्यासे तीनों लोकोंको वशमें किया जा सकता है। मुने! इस

समय अपने धर्म—तपस्याको छोड़कर आप क्या करने जा रहे हो? त्रिभुवनमें कौन किसकी पत्नी है और कौन किसका पति? भगवान् श्रीहरि मूर्खोंको बहलानेके लिये मायासे इन सम्बन्धोंकी सृष्टि करते हैं। यह कन्दली आपकी मिथ्या पत्नी थी; इसीलिये अभी क्षणभरमें चली गयी। जो सत्य है, वह कभी तिरोहित नहीं होता। मिथ्या वही है, जिसकी चिरकालतक स्थिति न रहे। वसुदेव-पुत्री एकानंशा, जो श्रीकृष्णकी बहिन है; पार्वतीके अंशसे उत्पन्न हुई है। वह सुशीला और चिरजीविनी है। वह सुन्दरी प्रत्येक कल्पमें आपकी पत्नी होगी; अतः आप कुछ दिनोंतक प्रसन्नतापूर्वक तपस्यामें मन लगाइये। कन्दली इस भूतलपर 'कन्दली' जाति होगी। वह कल्पान्तरमें शुभदा, फलदायिनी, कमनीया, एक संतान देनेवाली, परम दुर्लभा तथा शान्तरूपा स्त्री होकर आपकी पत्नी होगी। जो अत्यन्त उच्छृङ्खल हो, उसका दमन करना उचित ही है; ऐसा श्रुतिमें सुना गया है (अतः उसके भस्म होनेसे आपको शोक नहीं करना चाहिये)।

यों कहकर ब्राह्मणरूपधारी श्रीहरि ब्रह्मर्षि दुर्वासाको ज्ञान दे शीघ्र ही वहाँसे अन्तर्धान हो गये। तब मुनिने सारा भ्रम छोड़कर तपस्यामें मन लगाया। कन्दली इस धरातलपर कन्दली जाति हो गयी। मुने! दैत्य साहसिक तालवनमें जाकर गदहा हो गया और तिलोत्तमा यथासमय बाणासुरकी पुत्री हुई। फिर श्रीहरिके चक्रसे मारा जाकर अपने प्राणोंका परित्याग करके दैत्यराज साहसिकने गोविन्दके उस परम अभीष्ट चरणारविन्दको प्राप्त कर लिया जो मुनिके लिये भी परम दुर्लभ है। तिलोत्तमा भी बाण-पुत्री उषाके रूपमें जन्म ले श्रीकृष्ण-पौत्र अनिरुद्धके आलिङ्गनसे सफलमनोरथ होकर समयानुसार पुनः अपने निवासस्थान—स्वर्गलोकको चली गयी। इस प्रकार श्रीकृष्णके इस उत्तम लीलोपाख्यानको पितासे सुनकर मैंने तुमसे कहा है। यह पद-पदमें सुन्दर है। अब और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय २४)

महर्षि और्वद्वारा दुर्वासाको शाप, दुर्वासाका अम्बरीषके यहाँ द्वादशीके दिन पारणाके समय पहुँचकर भोजन माँगना, वसिष्ठजीकी आज्ञासे अम्बरीषका पारणाकी पूर्तिके लिये भगवान्‌का चरणोदक पीना, दुर्वासाका राजाको मारनेके लिये कृत्या-पुरुष उत्पन्न करना, सुदर्शनचक्रका कृत्याको मारकर मुनिका पीछा करना, मुनिका कहीं भी आश्रय न पाकर वैकुण्ठमें जाना, वहाँसे भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार अम्बरीषके घर आकर भोजन करना तथा आशीर्वाद देकर अपने आश्रमको जाना

नारदजीके पूछनेपर भगवान् श्रीनारायणने कहा—मुने! महर्षि और्व सरस्वती नदीके तटपर तपस्या कर रहे थे; उन्हें ध्यानसे अपनी पुत्रीके मरणका वृत्तान्त ज्ञात हो गया। तब वे शोकाकुल होकर दुर्वासाके पास आये। दुर्वासाने श्वशुरको प्रणाम करके सब बातें बतायीं और उस घटित घटनाके लिये महान् दुःख प्रकट किया। मुनिवर और्वने दुर्वासाको उलाहना दिया और कहा—'तुमने बहुत थोड़े अपराधपर उसको भारी दण्ड दे दिया। यदि उसे भस्म न करके त्याग ही दिया होता तो वह मेरे ही पास रह जाती।' फिर रोषसे भरकर शाप दे दिया कि 'तुम्हारा पराभव होगा।' इतना कहकर मुनि और्व लौट गये। यह कथा सुनकर नारदजीने दुर्वासाके पराभवका इतिहास पूछा।

नारद बोले—भगवन्! दुर्वासा साक्षात्

भगवान् शंकरके अंश हैं तथा तेजमें भी उन्हींके समान हैं। फिर कौन ऐसा महातेजस्वी पुरुष था, जिसने उनका भी पराभव कर दिया?

भगवान् श्रीनारायणने कहा—मुने! सूर्यवंशमें अम्बरीष नामसे प्रसिद्ध एक राजाधिराज (सम्राट्) हो गये हैं। उनका मन सदा श्रीकृष्णके चरणकमलोंके चिन्तनमें ही लगा रहता था। राज्यमें, रानियोंमें, पुत्रोंमें, प्रजाओंमें तथा पुण्य कर्मोंद्वारा अर्जित की हुई सम्पत्तियोंमें भी उनका चित्त क्षणभरके लिये भी नहीं लगता था। वे धर्मात्मा नरेश दिन-रात सोते-जागते हर समय प्रसन्नतापूर्वक श्रीहरिका ध्यान किया करते थे। राजा अम्बरीष बड़े भारी जितेन्द्रिय, शान्तस्वरूप तथा विष्णुसम्बन्धी व्रतोंके पालनमें तत्पर रहते थे। वे एकादशीका व्रत रखते और श्रीकृष्णकी आराधनामें संलग्न रहते थे। उनके सारे कर्म श्रीकृष्णको समर्पित थे और वे उनमें कभी लिप्त नहीं होते थे।

भगवान्‌का सोलह अरोंसे युक्त और अत्यन्त तीक्ष्ण जो सुदर्शन नामक चक्र है, वह करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा श्रीहरिके ही तुल्य तेजस्वी है। ब्रह्मा आदि भी उसकी स्तुति करते हैं। वह अस्त्र देवताओं और असुरोंसे भी पूजित है। भगवान्‌ने अपने उस चक्रको राजाकी निरन्तर रक्षाके लिये उनके पास ही रख दिया था।

एक समयकी बात है। राजा अम्बरीष एकादशी-व्रतका अनुष्ठान करके द्वादशीके दिन समयानुसार विधिपूर्वक स्नान और पूजन करके ब्राह्मणोंको भोजन करा स्वयं भी भोजनके लिये बैठे। इसी समय तपस्वी ब्राह्मण दुर्वासा भूखसे व्याकुल हो वहाँ राजाके समक्ष आ गये। उन्होंने दण्ड और छत्र ले रखा था, उनके शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहे थे। ललाटमें उज्ज्वल तिलक चमक रहा था। सिरपर जटाएँ थीं और शरीर अत्यन्त कृश हो रहा था। वे त्रस्त-से जान पड़ते थे। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। मुनीन्द्रपर दृष्टि पड़ते ही राजाने उठकर उन्हें प्रणाम किया और प्रसन्नतापूर्वक पैर धोनेके लिये जल प्रस्तुत करके बैठनेको स्वर्णका सिंहासन दिया। विप्रवर दुर्वासा उन्हें आशीर्वाद देकर उस सुखद आसनपर बैठे। तब राजाने भयभीत होकर उनसे पूछा—'मुने! मेरे लिये आपकी क्या आज्ञा है? यह मुझे बताइये।' राजाकी बात सुनकर मुनिवर दुर्वासाने कहा—'नृपश्रेष्ठ! मैं भूखसे पीड़ित होकर यहाँ आया हूँ। अतः मुझे भोजन कराओ; परंतु मैं अघमर्षण-मन्त्रका जप करके शीघ्र ही आ रहा हूँ, क्षणभर प्रतीक्षा करो।' ऐसा कहकर मुनि चले गये।

ब्राह्मण दुर्वासाके चले जानेपर राजर्षि अम्बरीषको बड़ी भारी चिन्ता हुई। द्वादशी तिथि प्रायः बीत चली है; यह देख वे डर गये। इसी समय गुरु वसिष्ठ वहाँ आ गये। तब प्रसन्नतापूर्वक उन्हें नमस्कार करके राजाने सारी बातें उन्हें बतायीं और पूछा—'गुरुदेव! मुनिवर दुर्वासा अभीतक आ नहीं रहे हैं और पारणाके लिये विहित द्वादशी तिथि बीती जा रही है। ऐसे संकटके समय मुझे क्या करना चाहिये? इसपर भलीभाँति विचार करके मुझे शीघ्र बताइये कि क्या करना शुभ है और क्या अशुभ?'

वसिष्ठजीने कहा—द्वादशीको बिताकर त्रयोदशीमें पारण करना पाप है और अतिथिसे पहले भोजन कर लेना भी पाप है। ऐसी दशामें तुम भोजन न करके भगवान्‌का चरणोदक ले लो। इससे पारणा भी हो जायगी और अतिथिकी अवहेलना भी नहीं होगी।

महामुने! ऐसा कहकर ब्रह्मपुत्र वसिष्ठजी चुप हो गये। राजाने श्रीकृष्ण-चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए थोड़ा-सा चरणोदक पी लिया। ब्रह्मन्! इतनेमें ही मुनीश्वर दुर्वासा आ पहुँचे। वे सर्वज्ञ तो थे ही, अपना अपमान समझकर

कुपित हो उठे। उन्होंने राजाके सामने ही अपनी एक जटा तोड़ डाली। उस जटासे शीघ्र ही एक पुरुष प्रकट हुआ, जो अग्निशिखाके समान तेजस्वी था। उसके हाथमें तलवार थी। वह महाभयंकर पुरुष महाराज अम्बरीषको मार डालनेके लिये उद्यत हो गया। यह देख करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान श्रीहरिके सुदर्शनचक्रने उस कृत्या-पुरुषको काट डाला। अब वह बाबा दुर्वासाको भी काटनेके लिये उद्यत हुआ। यह देख विप्रवर दुर्वासा भयसे व्याकुल हो भाग चले। उन्होंने अपने पीछे-पीछे प्रज्वलित अग्निशिखाके समान तेजस्वी चक्रको आते देखा। वे अत्यन्त व्याकुल हो सारे ब्रह्माण्डका चक्कर लगाते-लगाते थक गये, खिन्न हो गये और ब्रह्माजीको सम्पूर्ण जगत्‌का रक्षक मान उनकी शरणमें गये। 'बचाइये-बचाइये'—पुकारते हुए उन्होंने ब्रह्माजीकी सभामें प्रवेश किया। ब्रह्माजीने उठकर विप्रवर दुर्वासाका कुशल-मङ्गल पूछा। तब उन्होंने आदिसे ही सारा वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया। सुनकर ब्रह्माजीने लम्बी साँस ली और भयसे व्याकुल होकर कहा।

ब्रह्माजीने कहा—बेटा! तुम किसके बलपर श्रीहरिके दासको शाप देने गये थे? जिसके रक्षक भगवान् हैं, उसको तीनों लोकोंमें कौन मार सकता है? भक्तवत्सल श्रीहरिने छोटे-बड़े सभी भक्तोंकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्रको सदा नियुक्त कर रखा है। जो मूढ़ श्रीविष्णुके लिये प्राणोंके समान प्रिय वैष्णव भक्तसे द्वेष रखता है, उसका संहार भगवान् विष्णु स्वयं करते हैं। वे श्रीहरि संहारकर्ताका भी संहार करनेमें समर्थ हैं। अतः बेटा! तुम शीघ्र किसी दूसरे स्थानमें जाओ। अब यहाँ तुम्हारी रक्षा नहीं हो सकती। यदि नहीं हटे तो सुदर्शनचक्र मेरे साथ ही तुम्हारा वध कर डालेगा।

ब्रह्माजीकी बात सुनकर ब्राह्मणदेवता दुर्वासा वहाँसे भयभीत होकर भागे। अब वे उड़कर कैलास पर्वतपर भगवान् शंकरकी शरणमें गये और बोले—'कृपानिधान! हमारी रक्षा कीजिये।' भगवान् शिव सर्वज्ञ हैं। उन्होंने ब्राह्मण दुर्वासाका कुशल-समाचारतक नहीं पूछा। जो क्षणभरमें जगत्‌का संहार करनेमें समर्थ तथा दीन-दुःखियोंके स्वामी हैं, वे महादेवजी मुनिसे बोले।

शंकरजीने कहा—द्विजश्रेष्ठ! सुस्थिर होकर मेरी बात सुनो। मुने! तुम महर्षि अत्रिके पुत्र तथा जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीके पौत्र हो। वेदोंके विद्वान् तथा सर्वज्ञ हो, परंतु तुम्हारा कर्म मूर्खोंके समान है। वेदों, पुराणों और इतिहासोंमें सर्वत्र जिन सर्वेश्वरका निरूपण हुआ है; उन्हींको तुम मूढ़ मनुष्यकी भाँति नहीं जानते हो। जिनके भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे मैं, ब्रह्मा, रुद्र, आदित्य, वसु, धर्म, इन्द्र, सम्पूर्ण देवता, मुनीन्द्र और मनु उत्पन्न और विलीन होते रहते हैं; उन्हीं श्रीहरिके प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय भक्तको तुम किसकी शक्तिसे मारने चले थे? उनका चक्र उन्हींके तुल्य तेजस्वी है। उसे रोकना सर्वथा कठिन है। उस चक्रको यद्यपि उन्होंने भक्तोंकी रक्षामें लगा रखा है, तथापि उन्हें उसपर पूरा भरोसा नहीं होता। इसलिये वे स्वयं उनकी रक्षा करनेके लिये जाते हैं। उनके मुँहसे अपने गुणों और नामोंका श्रवण करके उन्हें बड़ा आनन्द मिलता है। इसलिये भगवान् भक्तके साथ सदा छायाकी तरह घूमते रहते हैं। अतः ब्राह्मणदेव! गोविन्दका भजन करो। उनके चरणकमलोंका चिन्तन करो। श्रीहरिके स्मरणमात्रसे भी सारी आपत्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। अब शीघ्र ही वैकुण्ठधाममें जाओ। उस धामके अधिपति श्रीहरि ही तुम्हारे शरणदाता हैं। वे प्रभु दयाके सागर हैं; अतः तुम्हें अवश्य ही अभयदान देंगे।

ये बातें हो ही रही थीं कि सारा कैलास चक्रके तेजसे व्याप्त हो उठा, जैसे समस्त

भूमण्डल सूर्यकी किरणोंसे उद्दीप्त हो उठा हो। उस समय सम्पूर्ण कैलासवासी उस चक्रकी विकराल ज्वालासे संत्रस्त हो 'त्राहि-त्राहि' पुकारते हुए भगवान् शंकरकी शरणमें गये। उस दुःसह चक्रको देख पार्वतीसहित करुणानिधान भगवान् शंकरने ब्राह्मणको प्रेमपूर्वक आशीर्वाद देते हुए कहा—'यदि तेज सत्य है और चिरकालसे संचित तप सत्य है तो अपराध करके भयभीत हुआ यह ब्राह्मण संतापसे मुक्त हो जाय।'

पार्वती बोलीं—यह ब्राह्मण मेरे स्वामीके पुण्यकर्मोंके अवसरपर शरणमें आया है; अतः मेरे आशीर्वादसे इसका महान् भय दूर हो जाय और यह शीघ्र ही संतापसे छूट जाय।

कृपापूर्वक ऐसा कहकर पार्वती और शिव चुप हो गये। मुनिने उन्हें प्रणाम करके देवेश्वर वैकुण्ठनाथकी शरण ली। मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले मुनीश्वर दुर्वासा वैकुण्ठभवनमें जाकर सुदर्शनको अपने पीछे-पीछे आते देख श्रीहरिके अन्तःपुरमें घुस गये। वहाँ ब्राह्मणने श्रीनारायणदेवके दर्शन किये। वे रत्नमय सिंहासनपर विराजमान थे। उनके हाथोंमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पाते थे। उन परम प्रभुने पीताम्बर धारण कर रखा था। उनके चार भुजाएँ थीं। अङ्गकान्ति श्याम थी। वे शान्त-स्वरूप लक्ष्मी-कान्त अपने दिव्य सौन्दर्यसे मनको मोह लेते थे। रत्नमय अलंकारोंकी शोभा उन्हें और भी श्री-सम्पन्न बना रही थी। गलेमें रत्नमयी मालासे वे विभूषित थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर दिखायी देते थे। उत्तम रत्नोंके सार-तत्त्वसे निर्मित मुकुट धारण करके उनका मस्तक अनुपम ज्योतिसे जगमगा रहा था। श्रेष्ठ पार्षदगण हाथोंमें श्वेत चँवर लिये प्रभुकी सेवा कर रहे थे। कमला उनके चरणकमलोंकी सेवामें लगी थीं। सरस्वती सामने खड़ी हो स्तुति करती थीं। सुनन्द, नन्द, कुमुद और प्रचण्ड आदि पार्षद उन्हें घेरकर खड़े थे। ऐसे प्रभुको देख दुर्वासाने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर प्रणाम किया और सामवेदवर्णित स्तुतिके द्वारा उन परमेश्वरका स्तवन किया।

दुर्वासा बोले—कमलाकान्त! मेरी रक्षा कीजिये। करुणानिधे! मुझे बचाइये। प्रभो! आप दीनोंके बन्धु और अत्यन्त दुःखियोंके स्वामी हैं। दयाके सागर हैं। वेद-वेदाङ्गोंके स्रष्टा विधाताके भी विधाता हैं। मृत्युकी भी मृत्यु और कालके भी काल हैं। मैं संकटके समुद्रमें पड़ा हूँ। मेरी रक्षा कीजिये। आप संहारकर्ताके भी संहारक, सर्वेश्वर और सर्वकारण हैं। महाविष्णुरूपी वृक्षके बीज हैं। प्रभो! इस भवसागरसे मेरी रक्षा कीजिये। शरणागत एवं शोकाकुल जनोंका भय दूर करके उनकी रक्षामें लगे रहनेवाले भगवन्! मुझ भयभीतका उद्धार कीजिये। नारायण! आपको नमस्कार है। वेदोंमें जिन्हें आदिसत्ता कहा गया है, वेद भी जिनकी स्तुति नहीं कर सकते और सरस्वती भी जिनके स्तवनमें जड़वत् हो जाती हैं; उन्हीं प्रभुकी दूसरे विद्वान् क्या स्तुति कर सकते हैं? शेष सहस्र मुखोंसे जिनकी स्तुति करनेमें जड़भावको प्राप्त होते हैं, पञ्चमुख महादेव और चतुर्मुख ब्रह्मा भी जड़ीभूत हो जाते हैं, श्रुतियाँ, स्मृतिकार और वाणी भी जिनकी स्तुतिमें अपनेको असमर्थ पाती हैं; उन्हींका स्तवन मुझ-जैसा ब्राह्मण कैसे कर सकता है? मानद! मैं वेदोंका ज्ञाता क्या हूँ, वेदवेत्ता विद्वानोंका शिष्य हूँ। मुझमें आपकी स्तुति करनेकी क्या योग्यता है? अट्ठाईसवें मनु और महेन्द्रके समाप्त हो जानेपर जिनका एक दिन-रातका समय पूरा होता है, वे विधाता अपने वर्षसे एक सौ आठ वर्षतक जीवित रहते हैं। परंतु जब उनका भी पतन होता है, तब आपके नेत्रोंकी एक पलक गिरती है; ऐसे अनिर्वचनीय परमेश्वरकी मैं क्या स्तुति कर सकूँगा? प्रभो! मेरी रक्षा कीजिये।

इस प्रकार स्तुति करके भयसे विह्वल हुए दुर्वासा श्रीहरिके चरणकमलोंमें गिर पड़े और अपने अश्रुजलसे उन्हें सींचने लगे। दुर्वासाद्वारा किये गये परमात्मा श्रीहरिके इस सामवेदोक्त जगन्मङ्गल नामक पुण्यदायक स्तोत्रका जो संकटमें पड़ा हुआ मनुष्य भक्तिभावसे पाठ करता है, नारायणदेव कृपया शीघ्र आकर उसकी रक्षा करते हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! मुनिकी की हुई स्तुति सुनकर भक्तवत्सल भगवान् वैकुण्ठनाथ हँसकर अमृतकी वर्षा-सी करती हुई मधुर वाणीमें बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—मुने! उठो, उठो। मेरे वरसे तुम्हारा कल्याण होगा; परंतु मेरा नित्य सत्य एवं सुखदायक वचन सुनो। ब्राह्मणदेव! वेदों, पुराणों और इतिहासोंमें वैष्णवोंकी जो महिमा गायी गयी है, उसे सबने और सर्वत्र सुना है। मैं वैष्णवोंके प्राण हूँ और वैष्णव मेरे प्राण हैं। जो मूढ़ उन्हींसे द्वेष करता है, वह मेरे प्राणोंका हिंसक है। जो अपने पुत्रों, पौत्रों और पत्नियों तथा राज्य और लक्ष्मीको भी त्यागकर सदा मेरा ही ध्यान करते हैं, उनसे बढ़कर मेरा प्रिय और कौन हो सकता है? भक्तसे बढ़कर न मेरे प्राण हैं, न लक्ष्मी हैं, न शिव हैं, न सरस्वती हैं, न ब्रह्मा हैं, न पार्वती हैं और न गणेश ही हैं। ब्राह्मण, वेद और वेदमाता सरस्वती भी मेरी दृष्टिमें भक्तोंसे बढ़कर नहीं हैं। इस प्रकार मैंने सब सच्ची बात कही है। यह वास्तविक सार तत्त्व है। मैंने भक्तोंकी प्रशंसाके लिये कोई बात बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कही है। वे वास्तवमें मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। जो मेरे प्राणाधिक प्रिय भक्तोंसे द्वेष करते हैं, उनको मैं शीघ्र ही दण्ड देता हूँ और परलोकमें भी चिरकालतक उन्हें नरकयातना भोगनी पड़ती है। मैं सबकी उत्पत्तिका कारण तथा सबका ईश्वर और परिपालक हूँ। सर्वव्यापी एवं स्वतन्त्र हूँ, तथापि दिन-रात भक्तोंके अधीन रहता हूँ। गोलोकमें मेरा द्विभुज रूप है और वैकुण्ठमें चतुर्भुज। यह रूपमात्र ही उन-उन लोकोंमें रहता है; किंतु मेरे प्राण तो सदा भक्तोंके समीप ही रहते हैं। भक्तका दिया हुआ अन्न साधारण हो तो भी मेरे लिये सादर भक्षण करनेयोग्य है; परंतु अभक्तका दिया हुआ अमृतके समान मधुर द्रव्य भी मेरे लिये अभक्ष्य है। ब्रह्मन्! राजाओंमें श्रेष्ठ अम्बरीष निरीह हैं—सब प्रकारकी इच्छाएँ छोड़ चुके हैं। कभी किसीकी हिंसा नहीं करते हैं। स्वभावसे दयालु हैं और समस्त प्राणियोंके हितमें लगे रहते हैं। ऐसे महात्मा पुरुषका वध तुम क्यों करना चाहते हो? जो संत महापुरुष सदा समस्त प्राणियोंपर दया करते हैं; उनसे द्वेष रखनेवाले मूढ़जनोंका वध मैं स्वयं करता हूँ। जो भक्तोंका हिंसक है, शत्रु है, उसकी रक्षा करनेमें मैं असमर्थ हूँ। अतः तुम अम्बरीषके घर जाओ। वे ही तुम्हारी रक्षा कर सकते हैं।

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! भगवान् श्रीहरिका यह वचन सुनकर ब्राह्मण दुर्वासा भयसे व्याकुल हो गये। उनके मनमें बड़ा खेद हुआ और वे श्रीकृष्णचरणारविन्दोंका चिन्तन करते हुए

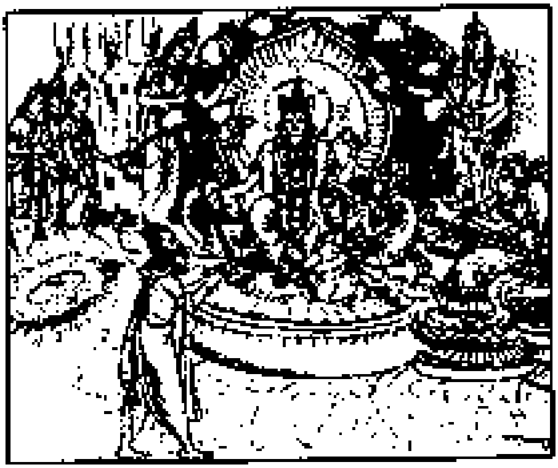

वहीं खड़े रहे। इसी समय वहाँ ब्रह्मा, शिव,

पार्वती, धर्म, इन्द्र, रुद्र, दिक्पाल, ग्रह, मुनिगण, अग्नि, लक्ष्मी, सरस्वती, पार्षद तथा नर्तकगण आये और सबने दुर्वासाके अपराधको क्षमा करके उनकी रक्षा करनेके लिये भगवान् विष्णुसे करुण-प्रार्थना की।

तब श्रीभगवान् बोले—आप सब लोग मेरा नीतियुक्त और सुखदायक वचन सुनें। मैं आपकी आज्ञासे ब्राह्मणकी रक्षा अवश्य करूँगा; किंतु ये मुनि वैकुण्ठलोकसे पुनः राजा अम्बरीषके घर जायँ और उनकी प्रसन्नताके लिये वहीं पारणा करें। ये ब्रह्मर्षि अम्बरीषके अतिथि होकर भी बिना किसी अपराधके उन्हें शाप देनेको उद्यत हो गये। इसलिये अपने रक्षणीय राजाकी रक्षाके लिये सुदर्शनचक्र इन ब्राह्मणदेवताको ही मार डालनेके लिये उद्यत हो गया। इन्हें भयभीत होकर भागते हुए आज पूरा एक वर्ष हो गया। तभीसे इनके लिये शोकग्रस्त हुए महाराज अम्बरीष अपनी पत्नीसहित उपवास कर रहे हैं। भक्तके उपवास करनेके कारण मैं भी उपवास करता हूँ। जैसे माता दूध-पीते बच्चेको उपवास करते देख स्वयं भी भोजन नहीं करती, वही दशा मेरी है। मेरे आशीर्वादसे मुनिश्रेष्ठ दुर्वासा शीघ्र ही संतापमुक्त हो जायँगे। मार्गमें मेरा चक्र इनकी हिंसा नहीं करेगा। इनके भोजन करनेसे मेरा भक्त भोजन करेगा और तभी मैं भी आज निश्चिन्त होकर सुखसे भोजन करूँगा; यह निश्चित बात है। भक्तके द्वारा प्रीतिपूर्वक जो वस्तु मुझे दी जाती है, उसे मैं अमृतके समान मधुर मानकर ग्रहण करता हूँ। लक्ष्मीके हाथसे परोसे गये पदार्थको भी भक्तके दिये बिना मैं नहीं खा सकता। जिस पदार्थको भक्तने नहीं दिया, वह मुझे तृप्ति नहीं दे सकता। वत्स! महाप्राज्ञ मुनीन्द्र! तुम राजा अम्बरीषके घर जाओ तथा ये सब देवता, देवियाँ और मुनि अपने-अपने घरको पधारें।

ऐसा कहकर श्रीहरि तुरंत ही अपने अन्तःपुरमें चले गये तथा अन्य सब लोग उन जगदीश्वरको प्रणाम करके प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट गये। मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाले ब्राह्मण दुर्वासा राजा अम्बरीषके घरको गये। साथ ही करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान सुदर्शनचक्र भी गया। एक वर्षतक उपवास करनेके बाद राजाके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। वे सिंहासनपर बैठे हुए थे। उसी समय उन्होंने मुनिवर दुर्वासाको सामने देखा। देखते ही वे बड़े वेगसे उठे और तत्काल उनके चरणोंमें प्रणाम करके सादर भोजनके लिये ले गये। राजाने मुनिको स्वादिष्ट अन्न भोजन

कराकर फिर स्वयं भी अन्न ग्रहण किया। भोजन करके संतुष्ट हुए द्विजश्रेष्ठ दुर्वासाने उन्हें उत्तम आशीर्वाद दिया। बारंबार उनकी प्रशंसा की। तदनन्तर उन्होंने शीघ्र ही अपने आश्रमको प्रस्थान किया। मार्गमें वे विप्रवर आश्चर्यचकित हो मन-ही-मन कहने लगे—'अहो! वैष्णवोंका माहात्म्य दुर्लभ है।' (अध्याय २५)

एकादशीव्रतका माहात्म्य, इसे न करनेसे हानि, व्रतके सम्बन्धमें आवश्यक निर्णय, व्रतका विधान—छः देवताओंका पूजन, श्रीकृष्णका ध्यान और षोडशोपचार-पूजन तथा कर्ममें न्यूनताकी पूर्तिके लिये भगवान्‌से प्रार्थना

तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर एकादशीका माहात्म्य बताते हुए श्रीनारायणने कहा—मुने! यह एकादशीव्रत देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। यह श्रीकृष्णप्रीतिका जनक तथा तपस्वियोंका श्रेष्ठ तप है। जैसे देवताओंमें श्रीकृष्ण, देवियोंमें प्रकृति, वर्णोंमें ब्राह्मण तथा वैष्णवोंमें भगवान् शिव श्रेष्ठ हैं, उसी प्रकार व्रतोंमें यह एकादशीव्रत श्रेष्ठ है। यह चारों वर्णोंके लिये सदा ही पालनीय व्रत है। यतियों, वैष्णवों तथा विशेषतः ब्राह्मणोंको तो इस व्रतका पालन अवश्य करना चाहिये। सचमुच ही ब्रह्महत्या आदि सारे पाप एकादशीके दिन चावल (भात)-का आश्रय लेकर रहते हैं। जो मन्द-बुद्धि मानव इतने पापोंका भक्षण करते हुए चावल खाता है, वह इस लोकमें अत्यन्त पातकी है और अन्तमें निश्चय ही नरकगामी होता है। दशमीके लङ्घनमें जो दोष है, उसे बताता हूँ; सुनो। पूर्वकालमें धर्मके मुखसे मैंने इसका श्रवण किया था। जो मूढ़ जान-बूझकर कलामात्र दशमीका लङ्घन करता है, उसे तुरंत ही दारुण शाप देकर लक्ष्मी उसके घरसे निकल जाती हैं। इस लोकमें निश्चय ही उसके वंशकी और यशकी भी हानि होती है। जिस दिन दशमी, एकादशी और द्वादशी तीनों तिथियाँ हों, उस दिन भोजन करके दूसरे दिन उपवास-व्रत करना चाहिये। द्वादशीको व्रत करके त्रयोदशीको पारण करना चाहिये। उस दशामें व्रतधारियोंको द्वादशी-लङ्घनसे दोष नहीं होता। जब पूरे दिन और रातमें एकादशी हो तथा उसका कुछ भाग दूसरे दिन प्रातःकालतक चला गया हो, तब दूसरे दिन ही उपवास करना चाहिये। यदि परा तिथि बढ़कर साठ दण्डकी हो गयी हो और प्रातःकाल तीन तिथियोंका स्पर्श हो तो गृहस्थ पूर्व दिनमें ही व्रत करते हैं; यति आदि नहीं। उन्हें दूसरे दिन उपवास करके नित्य-कृत्य करना चाहिये। दो दिन एकादशी हो तो भी व्रतमें सारा जागरण-सम्बन्धी कार्य पहली ही रातमें करे। पहले दिनमें व्रत करके दूसरे दिन एकादशी बीतनेपर पारण करे। वैष्णवों, यतियों, विधवाओं, भिक्षुओं एवं ब्रह्मचारियोंको सभी एकादशियोंमें उपवास करना चाहिये। वैष्णवेतर गृहस्थ शुक्लपक्षकी एकादशीको ही उपवास-व्रत करते हैं। अतः नारद! उनके लिये कृष्णा एकादशीका लङ्घन करनेपर भी वेदोंमें दोष नहीं बताया गया है। हरिशयनी और हरिबोधिनी—इन दो एकादशियोंके बीचमें जो कृष्णा एकादशियाँ आती हैं, उन्हींमें गृहस्थ पुरुषको उपवास करना चाहिये। इनके सिवा दूसरी किसी कृष्णपक्षकी एकादशीमें गृहस्थ पुरुषको उपवास नहीं करना चाहिये। ब्रह्मन्! इस प्रकार एकादशीके विषयमें निर्णय कहा गया, जो श्रुतिमें प्रसिद्ध है। अब इस व्रतका विधान बताता हूँ, सुनो।

दशमीके दिन पूर्वाह्णमें एक बार हविष्यान्न भोजन करे। उसके बाद उस दिन फिर जल भी न ले। रातमें कुशकी चटाईपर अकेला शयन करे और एकादशीके दिन ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर प्रातःकालिक कार्य करके नित्य-कृत्य पूर्ण करनेके पश्चात् स्नान करे। फिर श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके उद्देश्यसे व्रतोपवासका संकल्प लेकर संध्या-तर्पण करनेके अनन्तर नैत्यिक पूजन आदि करे। दिनमें नैत्यिक पूजन करके व्रतसम्बन्धी आवश्यक सामग्रीका संग्रह करे। षोडशोपचार-सामग्रीका सानन्द संग्रह करके शास्त्रीय विधिसे प्रेरित हो आवश्यक कार्य करे। षोडश उपचारोंके

नाम ये हैं—आसन, वसन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्प, अनुलेपन, धूप, दीप, नैवेद्य, यज्ञोपवीत, आभूषण, गन्ध, स्नानीय पदार्थ, ताम्बूल, मधुपर्क और पुनराचमनीय जल—इन सब सामानोंको दिनमें जुटाकर रातमें व्रत-सम्बन्धी पूजनादि कार्य करे।

स्नान आदिसे पवित्र हो धुले हुए धौत और उत्तरीय वस्त्र धारण करके आसनपर बैठे। फिर आचमन-प्राणायामके पश्चात् श्रीहरिको नमस्कार करके स्वस्तिवाचन करे। तदनन्तर शुभ वेलामें सप्तधान्यके ऊपर मङ्गल-कलशकी स्थापना करके उसके ऊपर फल-शाखासहित आम्रपल्लव रखे। कलशमें चन्दनका अनुलेप करे और मुनियोंने वेदोंमें कलशके स्थापन और पूजनकी जो विधि बतायी है, उसका प्रसन्नतापूर्वक सम्पादन करे। फिर अलग-अलग धान्यपुञ्जपर छः देवताओंका आवाहन करके विद्वान् पुरुष उत्कृष्ट पञ्चोपचार-सामग्रीद्वारा उनका पूजन करे। वे छः देवता हैं—गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव तथा पार्वती। इन सबकी पूजा और वन्दना करके श्रीहरिका स्मरण करते हुए व्रत करे। व्रती पुरुष यदि इन छः देवताओंकी आराधना किये बिना नित्य और नैमित्तिक कर्मका अनुष्ठान करता है तो उसका वह सारा कर्म निष्फल हो जाता है। इस प्रकार व्रतकी अङ्गभूत सभी आवश्यक विधि बतायी गयी। इसका काण्वशाखामें वर्णन है। महामुने! अब तुम अभीष्ट व्रतके विषयमें सुनो।

सामवेदमें बताये हुए ध्यानके अनुसार परात्पर भगवान् श्रीकृष्णका ध्यान करके मस्तकपर फूल रखकर फिर ध्यान करे। नारद! मैं गूढ़ ध्यान बता रहा हूँ, जो सबके लिये वाञ्छनीय है। इसे अभक्त पुरुषके सामने नहीं प्रकाशित करना चाहिये। भक्तोंके लिये तो यह ध्यान प्राणोंसे भी अधिक प्रिय है। भगवान् श्रीकृष्णका शरीर-विग्रह नवीन मेघमालाके समान श्याम तथा सुन्दर है। उनका मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी आभाको तिरस्कृत करता है। वे सर्वश्रेष्ठ एवं परम मनोहर हैं। उनके नेत्र शरत्कालके सूर्योदयकी वेलामें विकसित होनेवाले कमलोंकी प्रभाको छीन लेते हैं। विभिन्न अङ्गोंमें धारित रत्नमय आभूषण उनके अपने ही अङ्गोंकी सौन्दर्य-शोभासे विभूषित होते हैं। गोपियोंके प्रसन्नतापूर्ण एवं अनुरागसूचक नेत्रकोण उन्हें सतत निहारते रहते हैं, मानो भगवान्‌का शरीर-विग्रह उनके प्राणोंसे ही निर्मित हुआ है। वे रासमण्डलके मध्यभागमें विराजमान तथा रासोल्लासके लिये अत्यन्त उत्सुक हैं। राधाके मुखरूपी शरच्चन्द्रकी सुधाका पान करनेके लिये चकोररूप हो रहे हैं। मणिराज कौस्तुभकी प्रभासे उनका वक्षःस्थल अत्यन्त उद्भासित हो रहा है और पारिजात-पुष्पोंकी विविध मालाओंसे वे अत्यन्त शोभायमान हैं। उनका मस्तक उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित दिव्य मुकुटकी ज्योतिसे जगमगा रहा है। मनोविनोदकी साधनभूता मुरलीको उन्होंने अपने हाथमें ले रखा है। देवता और असुर सभी उनकी पूजा करते हैं। वे ध्यानके द्वारा भी किसीके वशमें आनेवाले नहीं हैं। उन्हें आराधनाद्वारा रिझा लेना भी बहुत कठिन है। ब्रह्मा आदि देवता भी उनकी वन्दना करते हैं और वे समस्त कारणोंके भी कारण हैं; उन परमेश्वर श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।

इस विधिसे ध्यान और आवाहन करके पूर्वोक्त सोलह प्रकारकी उपहार-सामग्री अर्पित करते हुए भक्तिभावसे उनका पूजन करे। नारद! निम्नाङ्कित मन्त्रोंसे उन्हें पूजनोपचार अर्पित करने चाहिये।

आसन

परमेश्वर! यह रत्नसारजटित सुवर्णनिर्मित सिंहासन भाँति-भाँतिके विचित्र चित्रोंसे अलंकृत है। इसे ग्रहण कीजिये।

वस्त्र

राधावल्लभ! विश्वकर्माद्वारा निर्मित इस दिव्य वस्त्रको प्रज्वलित आगमें धोकर शुद्ध किया गया

है। इसका मूल्य वर्णनातीत है। इसे धारण कीजिये।

पाद्य

करुणानिधान! आपके चरणोंको पखारनेके लिये सुवर्णमय पात्रमें रखा हुआ यह सुवासित शीतल जल स्वीकार कीजिये।

अर्घ्य

भक्तवत्सल! शङ्ख-पात्रमें रखे गये जल, पुष्प, दूर्वा तथा चन्दनसे युक्त यह पवित्र अर्घ्य आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इसे ग्रहण कीजिये।

पुष्प

सर्वकारण! चन्दन और अगुरुसे युक्त यह सुवासित श्वेत पुष्प शीघ्र ही आपके मनमें आनन्दका संचार करनेवाला है। इसे स्वीकार कीजिये।

अनुलेपन

श्रीकृष्ण! चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम और खससे तैयार किया गया यह उत्तम अनुलेपन सबको प्रिय है। इसे ग्रहण कीजिये।

धूप

भगवन्! नाना द्रव्योंसे मिश्रित यह सुगन्धयुक्त सुखद धूप वृक्षविशेषका रस है। इसे स्वीकार कीजिये।

दीप

प्रभो! रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित तथा दिन-रात भलीभाँति प्रकाशित होनेवाला यह दिव्य दीप अन्धकार-नाशका हेतु है। इसे ग्रहण कीजिये।

नैवेद्य

स्वात्माराम! ये नाना प्रकारके स्वादिष्ट, सुगन्धित और पवित्र भक्ष्य, भोज्य तथा चोष्य आदि द्रव्य आपकी सेवामें प्रस्तुत है। इन्हें अङ्गीकार कीजिये।

यज्ञोपवीत

देवदेवेश्वर! गायत्री-मन्त्रसे दी गयी ग्रन्थिसे युक्त तथा सुवर्णमय तन्तुओंसे निर्मित यह चतुर शिल्पीद्वारा रचित यज्ञोपवीत ग्रहण कीजिये।

भूषण

नन्दनन्दन! बहुमूल्य रत्नोंद्वारा रचित दिव्य प्रभासे प्रकाशमान तथा समस्त अवयवोंको विभूषित करनेवाला यह भूषण स्वीकार कीजिये।

गन्ध

दीनबन्धो! समस्त मङ्गल-कर्ममें वर्णनीय तथा मङ्गलदायक यह प्रमुख गन्ध सेवामें समर्पित है। इसे स्वीकार कीजिये।

स्नानीय

भगवन्! आँवला तथा बिल्वपत्रसे तैयार किया गया यह मनोहर विष्णु-तैल समस्त लोकोंको अभीष्ट है। इसे ग्रहण कीजिये।

ताम्बूल

नाथ! जिसे सब चाहते हैं, वह कर्पूर आदिसे सुवासित ताम्बूल मैंने आपकी सेवामें अर्पित किया है। इसे अङ्गीकार कीजिये।

मधुपर्क

गोपीकान्त! उत्तम रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित पात्रमें रखा हुआ यह मधुर मधु बहुत ही मीठा और स्वादिष्ट है। इसके सेवनसे सबको प्रसन्नता होती है। अतः कृपापूर्वक इसे ग्रहण कीजिये।

पुनराचमनीय जल

मधुसूदन! यह परम पवित्र, सुवासित और निर्मल गङ्गा-जल पुनः आचमनके लिये अङ्गीकार कीजिये।

इस प्रकार भक्तपुरुष प्रसन्नतापूर्वक सोलह उपचार अर्पित करके निम्नाङ्कित मन्त्रसे यत्नपूर्वक फूल और माला चढ़ावे।

प्रभो! श्वेत डोरेमें नाना प्रकारके फूलोंसे गुँथा हुआ यह पुष्पहार समस्त आभूषणोंमें श्रेष्ठ है। इसे स्वीकार कीजिये।

इस प्रकार पुष्पमाला अर्पित करके व्रती पुरुष मूल-मन्त्रसे पुष्पाञ्जलि दे और भक्तिभावसे दोनों हाथ जोड़कर भगवान्‌की स्तुति करे।

हे श्रीकृष्ण! हे राधाकान्त! हे करुणासागर! हे प्रभो! घोर एवं भयानक संसार-सागरसे मेरा उद्धार कीजिये। प्रभो! सैकड़ों जन्मोंसे सांसारिक क्लेश भोगनेके कारण मैं उद्विग्न हो उठा हूँ और अपने कर्मपाशरूपी बेड़ियोंसे बँधा हूँ। आप इस बन्धनसे मुझे छुड़ाइये। नाथ! आपके चरणोंमें पड़ा हूँ। मुझ शरणागतकी ओर कृपापूर्वक देखिये। भवपाशके भयसे डरे हुए मुझ शरणापन्नकी रक्षा कीजिये। प्रभो! जो वस्तु भक्तिहीन, क्रियाहीन, विधिहीन तथा वेदमन्त्रोंसे रहित हो और इस प्रकार जिसके समर्पणमें त्रुटि आ गयी हो; उसे आप स्वयं ही पूर्ण कीजिये। हरे! वेदोक्त विधिको न जाननेके कारण अङ्गहीन हुए कर्ममें आपके नामोच्चारणसे ही समस्त न्यूनताओंकी पूर्ति होती है।

इस प्रकार स्तुति और प्रणाम करके ब्राह्मणको दक्षिणा दे और महोत्सवपूर्वक व्रती पुरुष रातमें जागरण करे। यदि व्रत और उपवास करके कोई नींद ले ले अथवा पुनः जल पी ले तो उसे उस व्रतका आधा ही फल मिलता है; अतः विप्रवर! यत्नपूर्वक एक ही बार हविष्यान्न ग्रहण करे। उस समय श्रीकृष्णके चरणोंका स्मरण करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्रको पढ़े।

विष्णुरूप अन्न! ब्रह्माद्वारा प्राणियोंके प्राणके रूपमें तुम्हारा निर्माण हुआ है; अतः तुम मुझे व्रत और उपवासका फल दो। जो इस प्रकार भारतवर्षमें भक्तिपूर्वक इस उत्तम व्रतका अनुष्ठान करता है, वह पहले और बादकी सात-सात पीढ़ियोंका तथा अपना भी अवश्य ही उद्धार करता है। व्रती मनुष्य निश्चय ही माता, पिता, भाई, सास, ससुर, पुत्री, दामाद तथा भृत्य-वर्गका भी उद्धार कर देता है। ब्रह्मन्! इस तरह श्रीकृष्णका चरित्र और व्रत कहा गया। यह सुख और मोक्ष प्रदान करनेवाला सारभूत साधन है। अब मैं तुमसे श्रीकृष्णकी दूसरी लीलाएँ कहता हूँ। (अध्याय २६)

गोपकिशोरियोंद्वारा गौरी-व्रतका पालन, दुर्गा-स्तोत्र और उसकी महिमा, समाप्तिके दिन गोपियोंको नग्न-स्नान करती जान श्रीकृष्णद्वारा उनके वस्त्र आदिका अपहरण, श्रीराधाकी प्रार्थनासे भगवान्‌का सब वस्तुएँ लौटा देना, व्रतका विधान, दुर्गाका ध्यान, गौरी-व्रतकी कथा, लक्ष्मीस्वरूपा वेदवतीका सीता होकर इस व्रतके प्रभावसे श्रीरामको पतिरूपमें पाना, सीताद्वारा की हुई पार्वतीकी स्तुति, श्रीराधा आदिके द्वारा व्रतान्तमें दान, देवीका उन सबको दर्शन देकर राधाको स्वरूपकी स्मृति कराना, उन्हें अभीष्ट वर देना तथा श्रीकृष्णका राधा आदिको पुनः दर्शन-सम्बन्धी मनोवाञ्छित वर देना

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—नारद! सुनो। अब मैं पुनः श्रीकृष्ण-लीलाका वर्णन करता हूँ। यह वह लीला है, जिसमें गोपियोंके चीरका अपहरण हुआ और उन्हें मनोवाञ्छित वरदान दिया गया। हेमन्तके प्रथम मास—मार्गशीर्षमें गोपाङ्गनाएँ प्रेमके वशीभूत हो प्रतिदिन केवल एक बार हविष्यान्न ग्रहण करके पूर्णतः संयमशील हो पूरे महीनेभर भक्तिभावसे व्रत करती रहीं। वे नहाकर यमुनाके तटपर पार्वतीकी बालुकामयी मूर्ति बना उसमें देवीका आवाहन करके

मन्त्रोच्चारणपूर्वक नित्यप्रति पूजा किया करती थीं। मुने! गोपियाँ चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम, नाना प्रकारके मनोहर पुष्प, भाँति-भाँतिके पुष्पहार, धूप, दीप, नैवेद्य, वस्त्र, अनेकानेक फल, मणि, मोती और मूँगे चढ़ाकर तथा अनेक प्रकारके बाजे बजाकर प्रतिदिन देवीकी पूजा सम्पन्न करती थीं।

हे देवि जगतां मातः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणि।
नन्दगोपसुतं कान्तमस्मभ्यं देहि सुव्रते॥

'उत्तम व्रतका पालन करनेवाली हे देवि! हे जगदम्ब! तुम्हीं जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली हो; तुम हमें नन्दगोप-नन्दन श्यामसुन्दरको ही प्राणवल्लभ पतिके रूपमें प्रदान करो।'

इस मन्त्रसे देवेश्वरी दुर्गाकी मूर्ति बनाकर संकल्प करके मूलमन्त्रसे उनका पूजन करे। सामवेदोक्त मूलमन्त्र बीजमन्त्रसहित इस प्रकार है—

ॐ श्रीदुर्गायै सर्वविघ्नविनाशिन्यै नमः।—

इसी मन्त्रसे सब गोपकुमारियाँ भक्तिभाव और प्रसन्नताके साथ देवीको फूल, माला, नैवेद्य, धूप, दीप और वस्त्र चढ़ाती थीं। मूँगेकी मालासे भक्तिपूर्वक इस मन्त्रका एक सहस्र जप और स्तुति करके वे धरतीपर माथा टेककर देवीको प्रणाम करती थीं। उस समय कहतीं कि 'समस्त मङ्गलोंका भी मङ्गल करनेवाली और सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाली शंकरप्रिये देवि शिवे! तुम्हें नमस्कार है। तुम मुझे मनोवाञ्छित वस्तु दो।' यों कह नमस्कार करके दक्षिणा दे सारे नैवेद्य ब्राह्मणोंको अर्पित करके वे घरको चली जाती थीं।

भगवान् श्रीनारायण कहते हैं—मुने! अब तुम देवीका वह स्तवराज सुनो, जिससे सब गोपकिशोरियाँ भक्तिपूर्वक पार्वतीजीका स्तवन करती थीं, जो सम्पूर्ण अभीष्ट फलोंको देनेवाली है।

जब सारा जगत् घोर एकार्णवमें डूब गया था; चन्द्रमा और सूर्यकी भी सत्ता नहीं रह गयी थी; कज्जलके समान जलराशिने समस्त चराचर विश्वको आत्मसात् कर लिया था; उस पुरातन कालमें जलशायी श्रीहरिने ब्रह्माजीको इस स्तोत्रका उपदेश दिया। उपदेश देकर उन जगदीश्वरने योगनिद्राका आश्रय लिया। तदनन्तर उनके नाभिकमलमें विराजमान ब्रह्माजी जब मधु और कैटभसे पीड़ित हुए, तब उन्होंने इसी स्तोत्रसे मूलप्रकृति ईश्वरीका स्तवन किया।

'ॐ नमो जय दुर्गायै'

ब्रह्मा बोले—दुर्गे! शिवे! अभये! माये! नारायणि! सनातनि! जये! मुझे मङ्गल प्रदान करो। सर्वमङ्गले! तुम्हें मेरा नमस्कार है। दुर्गाका 'दकार' दैत्यनाशरूपी अर्थका वाचक कहा गया है। 'उकार' विघ्ननाशरूपी अर्थका बोधक है। उसका यह अर्थ वेदसम्मत है। 'रेफ' रोगनाशक अर्थको प्रकट करता है। 'गकार' पापनाशक अर्थका वाचक है। और 'आकार' भय तथा शत्रुओंके नाशका प्रतिपादक कहा गया है। जिनके चिन्तन, स्मरण और कीर्तनसे ये दैत्य आदि निश्चय ही नष्ट हो जाते हैं; वे भगवती दुर्गा श्रीहरिकी शक्ति कही गयी हैं। यह बात किसी औरने नहीं, साक्षात् श्रीहरिने ही कही है। 'दुर्ग' शब्द विपत्तिका वाचक है और 'आकार' नाशका। जो दुर्ग अर्थात् विपत्तिका नाश करनेवाली हैं; वे देवी ही सदा 'दुर्गा' कही गयी हैं। 'दुर्ग' शब्द दैत्यराज दुर्गमासुरका वाचक है और 'आकार' नाश अर्थका बोधक है। पूर्वकालमें देवीने उस दुर्गमासुरका नाश किया था; इसलिये विद्वानोंने उनका नाम 'दुर्गा' रखा। शिवा शब्दका 'शकार' कल्याण अर्थका, 'इकार' उत्कृष्ट एवं समूह अर्थका तथा 'वाकार' दाता अर्थका वाचक है। वे देवी कल्याणसमूह तथा उत्कृष्ट वस्तुको देनेवाली हैं; इसलिये 'शिवा' कही गयी हैं। वे शिव अर्थात् कल्याणकी मूर्तिमती राशि हैं;

इसलिये भी उन्हें 'शिवा' कहा गया है। 'शिव' शब्द मोक्षका बोधक है तथा 'आकार' दाताका। ये देवी स्वयं ही मोक्ष देनेवाली हैं; इसलिये 'शिवा' कही गयी हैं। 'अभय' का अर्थ है भयनाश और 'आकार' का अर्थ है दाता। ये तत्काल अभय-दान करती हैं; इसलिये 'अभया' कहलाती हैं। 'मा' का अर्थ है राजलक्ष्मी और 'या' का अर्थ है प्राप्ति करानेवाला। जो शीघ्र ही राजलक्ष्मीकी प्राप्ति कराती हैं; उन्हें 'माया' कहा गया है। 'मा' मोक्ष अर्थका और 'या' प्राप्ति अर्थका वाचक है। जो सदा मोक्षकी प्राप्ति कराती हैं, उनका नाम 'माया' है। ये देवी भगवान् नारायणका आधा अङ्ग हैं। उन्हींके समान तेजस्विनी हैं और उनके शरीरके भीतर निवास करती हैं; इसलिये उन्हें 'नारायणी' कहते हैं। 'सनातन' शब्द नित्य और निर्गुणका वाचक है। जो देवी सदा निर्गुणा और नित्या हैं; उन्हें 'सनातनी' कहा गया है। 'जय' शब्द कल्याणका वाचक है और 'आकार' दाताका। जो देवी सदा जयदेती हैं, उनका नाम 'जया' है। 'सर्वमङ्गल' शब्द सम्पूर्ण ऐश्वर्यका बोधक है और 'आकार' का अर्थ है देनेवाला। ये देवी सम्पूर्ण ऐश्वर्यको देनेवाली हैं; इसलिये 'सर्वमङ्गला' कही गयी हैं। ये देवीके आठ नाम सारभूत हैं और यह स्तोत्र उन नामोंके अर्थसे युक्त है।

भगवान् नारायणने नाभिकमलपर बैठे हुए ब्रह्माको इसका उपदेश दिया था। उपदेश देकर वे जगदीश्वर योगनिद्राका आश्रय ले सो गये। तदनन्तर जब मधु और कैटभ नामक दैत्य ब्रह्माजीको मारनेके लिये उद्यत हुए, तब ब्रह्माजीने इस स्तोत्रके द्वारा दुर्गाजीका स्तवन एवं नमन किया। उनके द्वारा स्तुति की जानेपर साक्षात् दुर्गाने उन्हें 'सर्वरक्षण' नामक दिव्य श्रीकृष्ण-कवचका उपदेश दिया। कवच देकर महामाया अदृश्य हो गयीं। उस स्तोत्रके ही प्रभावसे विधाताको दिव्य कवचकी प्राप्ति हुई। उस श्रेष्ठ कवचको पाकर निश्चय ही वे निर्भय हो गये। फिर ब्रह्माने महेश्वरको उस समय स्तोत्र और कवचका उपदेश दिया, जब कि त्रिपुरासुरके साथ युद्ध करते समय रथसहित भगवान् शंकर नीचे गिर गये थे। उस कवचके द्वारा आत्मरक्षा करके उन्होंने निद्राकी स्तुति की। फिर योगनिद्राके अनुग्रह और स्तोत्रके प्रभावसे वहाँ शीघ्र ही वृषभरूपधारी भगवान् जनार्दन आये। उनके साथ शक्तिस्वरूपा दुर्गा भी थीं। वे भगवान् शंकरको विजय देनेके लिये आये थे। उन्होंने रथसहित शंकरको मस्तकपर बिठाकर अभय दान दिया और उन्हें आकाशमें बहुत ऊँचाईतक पहुँचा दिया। फिर ब्रह्माने शिवको विजय दी। उस समय ब्रह्मास्त्र हाथमें ले योगनिद्रासहित श्रीहरिका स्मरण करते हुए भगवान् शंकरने स्तोत्र और कवच पाकर त्रिपुरासुरका वध किया था।

इसी स्तोत्रसे दुर्गाका स्तवन करके गोपकुमारियोंने श्रीहरिको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त कर लिया। इस स्तोत्रका ऐसा ही प्रभाव है। गोपकन्याओंद्वारा किया गया 'सर्वमङ्गल' नामक स्तोत्र शीघ्र ही समस्त विघ्नोंका विनाश करनेवाला और मनोवाञ्छित वस्तुको देनेवाला है। शैव, वैष्णव अथवा शाक्त कोई भी क्यों न हो, जो मानव तीनों संध्याओंके समय प्रतिदिन भक्तिभावसे इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह संकटसे मुक्त हो जाता है। स्तोत्रके स्मरणमात्रसे मनुष्य तत्काल ही संकटमुक्त एवं निर्भय हो जाता है। साथ ही सम्पूर्ण उत्तम ऐश्वर्य एवं मनोवाञ्छित वस्तुको शीघ्र प्राप्त कर लेता है। पार्वतीकी कृपासे इहलोकमें श्रीहरिकी सुदृढ़ भक्ति और निरन्तर स्मृति पाता है एवं अन्तमें भगवान्के दास्यसुखको उपलब्ध करता है।

इस स्तवराजके द्वारा व्रजाङ्गनाओंने एक मासतक प्रतिदिन बड़ी भक्तिके साथ ईश्वरीका स्तवन एवं नमन किया। जब मास पूरा हुआ

तो व्रतकी समाप्तिके दिन वे गोपियाँ अपने वस्त्रोंको तटपर रखकर यमुनाजीमें स्नानके लिये उतरीं। नारद! रत्नोंके मोलपर मिलनेवाले नाना प्रकारके द्रव्य, लाल, पीले, सफेद और मिश्रित रंगवाले मनोहर वस्त्र यमुनाजीके तटपर छा रहे थे। उनकी गणना नहीं की जा सकती थी। उन सबके द्वारा यमुनाजीके उस तटकी बड़ी शोभा हो रही थी। चन्दन, अगुरु और कस्तूरीकी वायुसे सारा तट-प्रान्त सुवासित था। भाँति-भाँतिके नैवेद्य, देश-कालके अनुसार प्राप्त होनेवाले फल, धूप, दीप, सिन्दूर और कुंकुम यमुनाके उस तटको सुशोभित कर रहे थे। जलमें उतरनेपर गोपियाँ कौतूहलवश क्रीडाके लिये उन्मुख हुईं। उनका मन श्रीकृष्णको समर्पित था। वे अपने नग्न शरीरसे जल-क्रीड़ामें आसक्त हो गयीं। श्रीकृष्णने तटपर रखे हुए भाँति-भाँतिके द्रव्यों और वस्त्रोंको देखा। देखकर वे ग्वाल-बालोंके साथ वहाँ गये और सारे वस्त्र लेकर वहाँ रखी हुई खाद्य वस्तुओंको सखाओंके साथ खाने लगे। फिर कुछ वस्त्र लेकर बड़े हर्षके साथ उनका गट्ठर बाँधा और कदम्बकी ऊँची डालपर चढ़कर गोविन्दने गोपिकाओंसे इस प्रकार कहा।

श्रीकृष्ण बोले—गोपियो! तुम सब-की-सब इस व्रतकर्ममें असफल हो गयीं। पहले मेरी बात सुनकर विधि-विधानका पालन करो। उसके बाद इच्छानुसार जलक्रीड़ा करना। जो मास व्रत करनेके योग्य है; जिसमें मङ्गलकर्मके अनुष्ठानका संकल्प किया गया है; उसी मासमें तुम लोग जलके भीतर घुसकर नंगी नहा रही हो; ऐसा क्यों किया? इस कर्मके द्वारा तुम अपने व्रतको अङ्गहीन करके उसमें हानि पहुँचा रही हो। तुम्हारे पहननेके वस्त्र, पुष्पहार तथा व्रतके योग्य वस्तुएँ, जो यहाँ रखी गयी थीं, किसने चुरा लीं? जो स्त्री व्रतकालमें नंगी स्नान करती है, उसके ऊपर स्वयं वरुणदेव रुष्ट हो जाते हैं। जान पड़ता है, वरुणके अनुचर तुम्हारे वस्त्र उठा ले गये। अब तुम नंगी होकर घरको कैसे जाओगी? तुम्हारे इस व्रतका क्या होगा? व्रतके द्वारा जिस देवीकी आराधना की जा रही थी, वह कैसी है? तुम्हारी वस्तुओंकी रक्षा क्यों नहीं कर रही है?

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर व्रजाङ्गनाओंको बड़ी चिन्ता हुई। उन्होंने देखा, यमुनाजीके तटपर न तो हमारे वस्त्र हैं और न वस्तुएँ ही। वे जलमें नंगी खड़ी हो विषाद करने लगीं। जोर-जोरसे रोने लगीं और बोलीं—'यहाँ रखे हुए हमारे वस्त्र कहाँ गये और पूजाकी वस्तुएँ भी कहाँ हैं? इस प्रकार विषाद करके वे सब गोपकन्याएँ दोनों हाथ जोड़ भक्ति और विनयके साथ हाथ जोड़कर वहीं श्यामसुन्दरसे बोलीं।'

गोपिकाओंने कहा—गोविन्द! तुम्हीं हम दासियोंके श्रेष्ठ स्वामी हो; अतः हमारे पहनने योग्य वस्त्रोंको तुम अपनी ही वस्तु समझो। उन्हें लेने या स्पर्श करनेका तुम्हें पूरा अधिकार है; परंतु व्रतके उपयोगमें आनेवाली जो दूसरी वस्तुएँ हैं, वे इस समय आराध्य देवताकी सम्पत्ति हैं; उन्हें दिये बिना उन वस्तुओंको ले लेना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। हमारी साड़ियाँ दे दो; उन्हें पहनकर हम व्रतकी पूर्ति करेंगी। श्यामसुन्दर! इस समय उनके अतिरिक्त अन्य वस्तुओंको ही अपना आहार बनाओ।

यह सुनकर श्रीकृष्णने कहा—तुम लोग आकर अपने-अपने वस्त्र ले जाओ।

यह सुनकर श्रीराधाके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया। वे श्रीहरिके निकट वस्त्र लेनेके लिये नहीं गयीं। उन्होंने जलमें योगासन लगाकर श्रीहरिके उन चरणकमलोंका चिन्तन किया, जो ब्रह्मा, शिव अनन्त (शेषनाग) तथा धर्मके भी वन्दनीय एवं मनोवाञ्छित वस्तु देनेवाले हैं। उन चरणकमलोंका चिन्तन करते-करते उनके नेत्रोंमें

प्रेमके आँसू उमड़ आये और वे भावातिरेकसे उन गुणातीत प्राणेश्वरकी स्तुति करने लगीं।

राधिका बोलीं—गोलोकनाथ! गोपीश्वर! मेरे स्वामिन्! प्राणवल्लभ! दीनबन्धो! दीनेश्वर! सर्वेश्वर! आपको नमस्कार है। गोपेश्वर! गोसमुदायके ईश्वर! यशोदानन्दवर्धन! नन्दनन्दन! सदानन्द! नित्यानन्द! आपको नमस्कार है। इन्द्रके क्रोधको भङ्ग (व्यर्थ) करनेवाले गोविन्द! आपने ब्रह्माजीके दर्पका भी दलन किया है। कालियदमन! प्राणनाथ! श्रीकृष्ण! आपको नमस्कार है। शिव और अनन्तके भी ईश्वर! ब्रह्मा और ब्राह्मणोंके ईश्वर! परात्पर! ब्रह्मस्वरूप! ब्रह्मज्ञ! ब्रह्मबीज! आपको नमस्कार है। चराचर जगत्‌रूपी वृक्षके बीज! गुणातीत! गुणस्वरूप! गुणबीज! गुणाधार! गुणेश्वर! आपको नमस्कार है। प्रभो! आप अणिमा आदि सिद्धियोंके स्वामी हैं। सिद्धिकी भी सिद्धिरूप हैं। तपस्विन्! आप ही तप हैं और आप ही तपस्याके बीज; आपको नमस्कार है। जो अनिर्वचनीय अथवा निर्वचनीय वस्तु है, वह सब आपका ही स्वरूप है। आप ही उन दोनोंके बीज हैं। सर्वबीजरूप प्रभो! आपको नमस्कार है। मैं, सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, गङ्गा और वेदमाता सावित्री—ये सब देवियाँ जिनके चरणारविन्दोंकी अर्चनासे नित्य पूजनीया हुई हैं; उन आप परमेश्वरको बारंबार नमस्कार है। जिनके सेवकोंके स्पर्श और निरन्तर ध्यानसे तीर्थ पवित्र होते हैं; उन भगवान्‌को मेरा नमस्कार है।

यों कहकर सती देवी राधिका अपने शरीरको जलमें और मन-प्राणोंको श्रीकृष्णमें स्थापित करके ठूँठे काठके समान अविचल-भावसे स्थित हो गयीं। श्रीराधाद्वारा किये गये श्रीहरिके इस स्तोत्रका जो मनुष्य तीनों संध्याओंके समय पाठ करता है, वह श्रीहरिकी भक्ति और दास्यभाव प्राप्त कर लेता है तथा उसे निश्चय ही श्रीराधाकी गति सुलभ होती है।* जो विपत्तिमें भक्तिभावसे इसका पाठ करता है, उसे शीघ्र ही सम्पत्ति प्राप्त होती है और चिरकालका खोया हुआ नष्ट द्रव्य भी उपलब्ध हो जाता है। यदि कुमारी कन्या भक्तिभावसे एक वर्षतक प्रतिदिन इस स्तोत्रको सुने तो निश्चय ही उसे श्रीकृष्णके समान कमनीय कान्तिवाला गुणवान् पति प्राप्त होता है।

जलमें स्थित हुई राधिकाने श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका ध्यान एवं स्तुति करनेके पश्चात् जब आँखें खोलकर देखा तो उन्हें सारा जगत् श्रीकृष्णमय दिखायी दिया। मुने! तदनन्तर उन्होंने यमुनातटको वस्त्रों और द्रव्योंसे सम्पन्न देखा। देखकर राधाने इसे तन्द्रा अथवा स्वप्नका विकार

* गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ। हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन। नन्दनन्दन सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते॥
शतमन्योर्मन्युभग्न ब्रह्मदर्पविनाशक। कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तु ते॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर। ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते॥
चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक। गुणबीज गुणाधार गुणेश्वर नमोऽस्तु ते॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेः सिद्धिस्वरूपक। तपस्तपस्विंस्तपसां बीजरूप नमोऽस्तु ते॥
यदनिर्वचनीयं च वस्तु निर्वचनीयकम्। तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वबीज नमोऽस्तु ते॥
अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः। यस्य पादार्चनान्नित्यं पूज्या तस्मै नमो नमः॥
स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्यानेन च दिवानिशम्। पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः॥
इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम्। मनः प्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती॥
राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। हरिभक्तिं च दास्यं च लभेद्राधागतिं ध्रुवम्॥
(२७। १००—११०)

माना। जिस स्थानपर और जिस आधारमें जो द्रव्य पहले रखा गया था, वस्त्रोंसहित वह सब द्रव्य गोपकन्याओंको उसी रूपमें प्राप्त हुआ। फिर तो वे सब-की-सब देवियाँ जलसे निकलकर व्रत पूर्ण करके मनोवाञ्छित वर पाकर अपने-अपने घरको चली गयीं।

नारदजीने पूछा—प्रभो! उस व्रतका क्या विधान है? क्या नाम है और क्या फल है? उसमें कौन-कौन-सी वस्तुएँ और कितनी दक्षिणा देनी चाहिये। व्रतके अन्तमें कौन-सा मनोहर रहस्य प्रकट हुआ? महाभाग! इस नारायण-कथाको विस्तारपूर्वक कहिये।

भगवान् नारायण बोले—वत्स! उस व्रतका सारा विधान मुझसे सुनो। उसका नाम गौरीव्रत है। मार्गशीर्ष मासमें सबसे पहले स्त्रियोंने इसे किया था। यह पुरुषोंको भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष देनेवाला तथा श्रीकृष्णकी भक्ति प्रदान करनेवाला है। भिन्न-भिन्न देशोंमें इसकी प्रसिद्धि है। यह व्रत पूर्वपरम्परासे पालित होनेवाला माना गया है। पतिकी कामना रखनेवाली स्त्रियोंको उनकी इच्छाके अनुसार फल देनेवाला है। इससे प्रियतम पति-निमित्तक फलकी प्राप्ति होती है। कुमारी कन्याको चाहिये कि वह पहले दिन उपवास करके अपने वस्त्रको धो डाले और संयमपूर्वक रहे। फिर मार्गशीर्ष मासकी संक्रान्तिके दिन प्रातःकाल श्रद्धापूर्वक नदीके तटपर जाकर स्नान करके वह दो धुले हुए वस्त्र (साड़ी और चोली) धारण करे। तत्पश्चात् कलशमें गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और दुर्गा (पार्वती)—इन छः देवताओंका आवाहन करके नाना द्रव्योंद्वारा उनका पूजन करे। इन सबका पञ्चोपचार पूजन करके वह व्रत आरम्भ करे। कलशके सामने नीचे भूमिपर एक सुविस्तृत वेदी बनावे। वह वेदी चौकोर होनी चाहिये। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे उस वेदीका संस्कार करे (इन द्रव्योंसे चौक पूरकर उसे सजा दे)। इसके बाद बालूकी दशभुजा दुर्गामूर्ति बनावे। देवीके ललाटमें सिन्दूर लगावे और नीचेके अङ्गोंमें चन्दन एवं कपूर अर्पित करे। तदनन्तर ध्यानपूर्वक देवीका आवाहन करे। उस समय हाथ जोड़कर निम्नाङ्कित मन्त्रका पाठ करे। उसके बाद पूजा आरम्भ करनी चाहिये।

हे गौरि शंकरार्धाङ्गि यथा त्वं शंकरप्रिया।
तथा मां कुरु कल्याणि कान्तकान्तां सुदुर्लभाम्॥

'भगवान् शंकरकी अर्धाङ्गिनी कल्याणमयी गौरीदेवि! जैसे तुम शंकरजीको बहुत ही प्रिय हो, उसी प्रकार मुझे भी अपने प्रियतम पतिकी परम दुर्लभा प्राणवल्लभा बना दो।'

इस मन्त्रको पढ़कर देवी जगदम्बाका ध्यान करे। उनका गूढ़ ध्यान सामवेदमें वर्णित है, जो सम्पूर्ण कामनाओंको देनेवाला है। नारद! वह ध्यान मुनीन्द्रोंके लिये भी दुर्लभ है, तथापि मैं तुम्हें बता रहा हूँ। इसके अनुसार सिद्ध पुरुष दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका ध्यान करते हैं।

दुर्गाका ध्यान

भगवती दुर्गा शिवा (कल्याणस्वरूपा), शिवप्रिया, शैवी (शिवसे प्रगाढ़ सम्बन्ध रखनेवाली) तथा शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान होनेवाली हैं। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैली रहती है। उनकी बड़ी प्रतिष्ठा है। उनके नेत्र मनोहर हैं। वे नित्य नूतन यौवनसे सम्पन्न हैं और रत्नमय आभूषण धारण करती हैं। उनकी भुजाएँ रत्नमय केयूर तथा कङ्कणोंसे और दोनों चरण रत्ननिर्मित नूपुरोंसे विभूषित हैं। रत्नोंके बने हुए दो कुण्डल उनके दोनों कपोलोंकी शोभा बढ़ाते हैं। उनकी वेणीमें मालतीकी माला लगी हुई है, जिसपर भ्रमर मँडराते रहते हैं। भालदेशमें कस्तूरीकी बेंदीके साथ सिन्दूरका सुन्दर तिलक शोभा पाता है। उनके दिव्य वस्त्र अग्निकी ज्वालासे शुद्ध किये गये हैं। वे मस्तकपर रत्नमय

मुकुट धारण करती हैं। उनकी आकृति बड़ी मनोहर है। श्रेष्ठ मणियोंके सारतत्त्वसे जटित रत्नमयी माला उनके कण्ठ एवं वक्षःस्थलको उद्भासित किये रहती है। पारिजातके फूलोंकी मालाएँ गलेसे लेकर घुटनोंतक लटकी रहती हैं। उनकी कटिका निम्नभाग अत्यन्त स्थूल और कठोर है। वे स्तनों और नूतन यौवनके भारसे कुछ-कुछ झुकी-सी रहती हैं। उनकी झाँकी मनको मोह लेनेवाली है। ब्रह्मा आदि देवता निरन्तर उनकी स्तुति करते हैं। उनके श्रीअङ्गोंकी प्रभा करोड़ों सूर्योंको लज्जित करती है। नीचे-ऊपरके ओठ पके बिम्बफलके सदृश लाल हैं। अङ्गकान्ति सुन्दर चम्पाके समान है। मोतीकी लड़ियोंको भी लजानेवाली दन्तावली उनके मुखकी शोभा बढ़ाती है। वे मोक्ष और मनोवाञ्छित कामनाओंको देनेवाली हैं। शरत्कालके पूर्ण चन्द्रको भी तिरस्कृत करनेवाली चन्द्रमुखी देवी पार्वतीका मैं भजन करता हूँ।

इस प्रकार ध्यान करके मस्तकपर फूल रखकर व्रती पुरुष प्रसन्नतापूर्वक हाथमें पुष्प ले पुनः भक्तिभावसे ध्यान करके पूजन आरम्भ करे। पूर्वोक्त मन्त्रसे ही प्रतिदिन हर्षपूर्वक षोडशोपचार चढ़ावे। फिर व्रती भक्ति और प्रसन्नताके साथ पूर्वकथित स्तोत्रद्वारा ही देवीकी स्तुति करके उन्हें प्रणाम करे। प्रणामके पश्चात् भक्तिभावसे मनको एकाग्र करके गौरीव्रतकी कथा सुने।

नारदजीने पूछा—भगवन्! आपने व्रतके विधान, फल और गौरीके अद्भुत स्तोत्रका वर्णन कर दिया। अब मैं गौरी-व्रतकी शुभ कथा सुनना चाहता हूँ। पहले किसने इस व्रतको किया था? और किसने भूतलपर इसे प्रकाशित किया था? इन सब बातोंको आप विस्तारपूर्वक बताइये; क्योंकि आप संदेहका निवारण करनेवाले हैं।

भगवान् श्रीनारायणने कहा—नारद! कुशध्वजकी पुत्री सती वेदवतीने महान् तीर्थ पुष्करमें पहले-पहल इस व्रतका अनुष्ठान किया था। व्रतकी समाप्तिके दिन कोटि सूर्योंके समान प्रकाशमान भगवती जगदम्बाने उसे साक्षात् दर्शन दिया। देवीके साथ लाख योगिनियाँ भी थीं। वे परमेश्वरी सुवर्णनिर्मित रथपर बैठी थीं और उनके प्रसन्नमुखपर मुस्कराहट फैल रही थी। उन्होंने संयमशीला वेदवतीसे कहा।

पार्वती बोलीं—वेदवती! तुम्हारा कल्याण हो। तुम इच्छानुसार वर माँगो। तुम्हारे इस व्रतसे मैं संतुष्ट हूँ; अतः तुम्हें मनोवाञ्छित वर दूँगी।

नारद! पार्वतीकी बात सुनकर साध्वी वेदवतीने उन प्रसन्नहृदया देवीकी ओर देखा और दोनों हाथ जोड़ उन्हें प्रणाम करके यह बोली।

वेदवतीने कहा—देवि! मैंने नारायणको मनसे चाहा है; अतः वे ही मेरे प्राणवल्लभ पति हों—यह वर मुझे दीजिये। दूसरे किसी वरको लेनेकी मुझे इच्छा नहीं है। आप उनके चरणोंमें सुदृढ़ भक्ति प्रदान कीजिये।

वेदवतीकी बात सुनकर जगदम्बा पार्वती हँस पड़ीं और तुरंत रथसे उतरकर उस हरिवल्लभासे बोलीं।

पार्वतीने कहा—जगदम्ब! मैंने सब जान लिया। तुम साक्षात् सती लक्ष्मी हो और भारतवर्षको अपनी पदधूलिसे पवित्र करनेके लिये यहाँ आयी हो। साध्वि! परमेश्वरि! तुम्हारी चरणरजसे यह पृथ्वी तथा यहाँके सम्पूर्ण तीर्थ तत्काल पवित्र हो गये हैं। तपस्विनि! तुम्हारा यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है। तुम तपस्या करो। देवि! तुम साक्षात् नारायणकी वल्लभा हो और जन्म-जन्ममें उनकी प्रिया रहोगी। भविष्यमें भूतलका भार उतारनेके लिये तथा यहाँके दस्युभूत राक्षसोंका नाश करनेके लिये पूर्ण परमात्मा विष्णु दशरथनन्दन श्रीरामके रूपमें वसुधापर पधारेंगे। उनके दो भक्त जय और विजय ब्राह्मणोंके शापके कारण वैकुण्ठधामसे

नीचे गिर गये हैं। उनका उद्धार करनेके लिये त्रेतायुगमें अयोध्यापुरीके भीतर श्रीहरिका आविर्भाव होगा। तुम भी शिशुरूप धारण करके मिथिलाको जाओ। वहाँ राजा जनक अयोनिजा कन्याके रूपमें तुम्हें पाकर यत्नपूर्वक तुम्हारा लालन-पालन करेंगे। वहाँ तुम्हारा नाम सीता होगा। श्रीराम भी मिथिलामें जाकर तुम्हारे साथ विवाह करेंगे। तुम प्रत्येक कल्पमें नारायणकी ही प्राणवल्लभा होओगी।

यों कह पार्वती वेदवतीको हृदयसे लगाकर अपने निवास-स्थानको लौट गयीं। साध्वी वेदवती मिथिलामें जाकर मायासे हलद्वारा भूमिपर की गयी रेखा (हराई)-में सुखपूर्वक स्थित हो गयीं। उस समय राजा जनकने देखा, एक नग्न बालिका आँख बंद किये भूमिपर पड़ी है। उसकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान उद्दीप्त है तथा वह तेजस्विनी बालिका रो रही है। उसे देखते ही राजाने उठाकर गोदमें चिपका लिया। जब वे घरको लौटने लगे, उस समय वहीं उनके प्रति आकाशवाणी हुई—'राजन्! यह अयोनिजा कन्या साक्षात् लक्ष्मी है; इसे ग्रहण करो। स्वयं भगवान् नारायण तुम्हारे दामाद होंगे।' यह आकाशवाणी सुन कन्याको गोदमें लिये राजर्षि जनक घरको गये और प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने लालन-पालनके लिये उसे अपनी प्यारी रानीके हाथमें दे दिया। युवती होनेपर सती सीताने इस व्रतके प्रभावसे त्रिलोकीनाथ विष्णुके अवताररूप दशरथनन्दन श्रीरामको प्रियतम पतिके रूपमें प्राप्त कर लिया। महर्षि वसिष्ठने इस व्रतको पृथ्वीपर प्रकाशित किया तथा श्रीराधाने इस व्रतका अनुष्ठान करके श्रीकृष्णको प्राणवल्लभके रूपमें प्राप्त किया। अन्यान्य गोपकुमारियोंने इस व्रतके प्रभावसे उनको पाया। नारद! इस प्रकार मैंने गौरी-व्रतकी कथा कही। जो कुमारी भारतवर्षमें इस व्रतका पालन करती है, उसे श्रीकृष्ण-तुल्य पतिकी प्राप्ति होती है, इसमें संशय नहीं है।

भगवान् नारायण कहते हैं—इस प्रकार उन गोपकुमारियोंने एक मासतक व्रत किया। वे पूर्वोक्त स्तोत्रसे प्रतिदिन देवीकी स्तुति करती थीं। समाप्तिके दिन व्रत पूर्ण करके गोपियोंको बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने काण्व-शाखामें वर्णित उस स्तोत्रद्वारा परमेश्वरी पार्वतीका स्तवन किया, जिसके द्वारा स्तुति करके सत्यपरायणा सीताने शीघ्र ही कमल-नयन श्रीरामको प्रियतम पतिके रूपमें प्राप्त किया था। वह स्तोत्र यह है।

जानकी बोलीं—सबकी शक्तिस्वरूपे! शिवे! आप सम्पूर्ण जगत्की आधारभूता हैं। समस्त सद्गुणोंकी निधि हैं तथा सदा भगवान् शंकरके संयोग-सुखका अनुभव करनेवाली हैं; आपको नमस्कार है। आप मुझे सर्वश्रेष्ठ पति दीजिये। सृष्टि, पालन और संहार आपका रूप है। आप सृष्टि, पालन और संहाररूपिणी हैं। सृष्टि, पालन और संहारके जो बीज हैं, उनकी भी बीजरूपिणी हैं; आपको नमस्कार है। पतिके मर्मको जाननेवाली पतिव्रतपरायणे गौरि! पतिव्रते! पत्यनुरागिणि! मुझे पति दीजिये; आपको नमस्कार है। आप समस्त मङ्गलोंके लिये भी मङ्गलकारिणी हैं। सम्पूर्ण मङ्गलोंसे सम्पन्न हैं, सब प्रकारके मङ्गलोंकी बीजरूपा हैं; सर्वमङ्गले! आपको नमस्कार है। आप सबको प्रिय हैं, सबकी बीजरूपिणी हैं, समस्त अशुभोंका विनाश करनेवाली हैं, सबकी ईश्वरी तथा सर्वजननी हैं; शंकरप्रिये! आपको नमस्कार है। परमात्मस्वरूपे! नित्यरूपिणि! सनातनि! आप साकार और निराकार भी हैं; सर्वरूपे! आपको नमस्कार है। क्षुधा, तृष्णा, इच्छा, दया, श्रद्धा, निद्रा, तन्द्रा, स्मृति और क्षमा—ये सब आपकी कलाएँ हैं; नारायणि! आपको नमस्कार है। लज्जा, मेधा, तुष्टि, पुष्टि, शान्ति, सम्पत्ति और वृद्धि—ये सब भी आपकी ही कलाएँ हैं; सर्वरूपिणि! आपको नमस्कार है। दृष्ट और अदृष्ट दोनों आपके ही स्वरूप

हैं, आप उन्हें बीज और फल दोनों प्रदान करती हैं, कोई भी आपका निर्वचन (निरूपण) नहीं कर सकता है, महामाये! आपको नमस्कार है। शिवे! आप शंकरसम्बन्धी सौभाग्यसे सम्पन्न हैं तथा सबको सौभाग्य देनेवाली हैं। देवि! श्रीहरि ही मेरे प्राणवल्लभ और सौभाग्य हैं; उन्हें मुझे दीजिये। आपको नमस्कार है। जो स्त्रियाँ व्रतकी समाप्तिके दिन इस स्तोत्रसे शिवादेवीकी स्तुति करके बड़ी भक्तिसे उन्हें मस्तक झुकाती हैं; वे साक्षात् श्रीहरिको पतिरूपमें प्राप्त करती हैं। इस लोकमें परात्पर परमेश्वरको पतिरूपमें पाकर कान्त-सुखका उपभोग करके अन्तमें दिव्य विमानपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीकृष्णके समीप चली जाती हैं*।

समाप्तिके दिन गोपियोंसहित श्रीराधाने देवीकी वन्दना और स्तुति करके गौरीव्रतको पूर्ण किया। एक ब्राह्मणको प्रसन्नतापूर्वक एक सहस्र गौएँ तथा सौ सुवर्णमुद्राएँ दक्षिणाके रूपमें देकर वे घर जानेको उद्यत हुईं। उन्होंने आदरपूर्वक एक हजार ब्राह्मणोंको भोजन कराया, बाजे बजवाये और भिखमंगोंको धन बाँटा। इसी समय दुर्गतिनाशिनी दुर्गा वहाँ आकाशसे प्रकट हुईं, जो ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रही थीं। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी प्रभा फैल रही थी। वे सौ योगिनियोंके साथ थीं। सिंहसे जुते हुए रथपर बैठी तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित थीं। उनके दस भुजाएँ थीं। उन्होंने रत्नसारमय उपकरणोंसे युक्त सुवर्णनिर्मित दिव्य रथसे उतरकर तुरंत ही श्रीराधाको हृदयसे लगा लिया। देवी दुर्गाको देखकर अन्य गोपकुमारियोंने भी प्रसन्नतापूर्वक प्रणाम किया। दुर्गाने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा—'तुम सबका मनोरथ सिद्ध होगा।' इस प्रकार गोपिकाओंको वर दे उनसे सादर सम्भाषण कर देवीने मुस्कराते हुए

*[illegible] —

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये। सदा शंकरयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते॥
सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि। सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते॥
हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे। पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते॥
सर्वमङ्गलमङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते। सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले॥
सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि। सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शंकरप्रिये॥
परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि। साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते॥
क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा। एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते॥
लज्जा मेधा तुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः। एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते॥
दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्बीजफलप्रदे। सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते॥
शिवे शंकरसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि। हरिं कान्तं च सौभाग्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते॥
स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम्। नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम्॥
इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम्। दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यान्त्यन्ते कृष्णसंनिधिम्॥

(२७। १७२—१८४)

मुखारविन्दसे राधिकाको सम्बोधित करके कहा।

पार्वती बोलीं—राधे! तुम सर्वेश्वर श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हो। जगदम्बिके! तुम्हारा यह व्रत लोकशिक्षाके लिये है। तुम मायासे मानवरूपमें प्रकट हुई हो। सुन्दरि! क्या तुम गोलोकनाथ, गोलोक, श्रीशैल, विरजाके तटप्रान्त, श्रीरासमण्डल तथा दिव्य मनोहर वृन्दावनको कुछ याद करती हो? क्या तुम्हें प्रेमशास्त्रके विद्वान् तथा रतिचोर श्यामसुन्दरके उस चरित्रका किञ्चित् भी स्मरण होता है, जो नारियोंके चित्तको बरबस अपनी ओर खींच लेता है? तुम श्रीकृष्णके अर्धाङ्गसे प्रकट हुई हो; अतः उन्हींके समान तेजस्विनी हो। समस्त देवाङ्गनाएँ तुम्हारी अंशकलासे प्रकट हुई हैं; फिर तुम मानवी कैसे हो? तुम श्रीहरिके लिये प्राणस्वरूपा हो और स्वयं श्रीहरि तुम्हारे प्राण हैं। वेदमें तुम दोनोंका भेद नहीं बताया गया है; फिर तुम मानवी कैसे हो? पूर्वकालमें ब्रह्माजी साठ हजार वर्षोंतक तप करके भी तुम्हारे चरणकमलोंका दर्शन न पा सके; फिर तुम मानुषी कैसे हो? तुम तो साक्षात् देवी हो। श्रीकृष्णकी आज्ञासे गोपीका रूप धारण करके पृथ्वीपर पधारी हो; शान्ते! तुम मानवी स्त्री कैसे हो? मनुवंशमें उत्पन्न नृपश्रेष्ठ सुयज्ञ तुम्हारी ही कृपासे गोलोकमें गये थे; फिर तुम मानुषी कैसे हो? तुम्हारे मन्त्र और कवचके प्रभावसे ही भृगुवंशी परशुरामजीने इस पृथ्वीको इक्कीस बार क्षत्रिय-नरेशोंसे शून्य कर दिया था। ऐसी दशामें तुम्हें मानवी स्त्री कैसे कहा जा सकता है? परशुरामजीने भगवान् शंकरसे तुम्हारे मन्त्रको प्राप्त कर पुष्करतीर्थमें उसे सिद्ध किया और उसीके प्रभावसे वे कार्तवीर्य अर्जुनका संहार कर सके; फिर तुम मानुषी कैसे हो? उन्होंने अभिमानपूर्वक महात्मा गणेशका एक दाँत तोड़ दिया। वे केवल तुमसे ही भय मानते थे; फिर तुम मानवी स्त्री कैसे हो? जब मैं क्रोधसे उन्हें भस्म करनेको उद्यत हुई, तब हे ईश्वरि! मेरी प्रसन्नताके लिये तुमने स्वयं आकर उनकी रक्षा की; फिर तुम मानुषी कैसे हो? श्रीकृष्ण प्रत्येक कल्पमें तथा जन्म-जन्ममें तुम्हारे पति हैं। जगन्मातः! तुमने लोकहितके लिये ही यह व्रत किया है। अहो! श्रीदामके शापसे और भूमिका भार उतारनेके लिये पृथ्वीपर तुम्हारा निवास हुआ है; फिर तुम मानवी स्त्री कैसे हो? तुम जन्म, मृत्यु और जराका नाश करनेवाली देवी हो। कलावतीकी अयोनिजा पुत्री एवं पुण्यमयी हो; फिर तुम्हें साधारण मानुषी कैसे माना जा सकता है? तीन मास व्यतीत होनेपर जब मनोहर मधुमास (चैत्र) उपस्थित होगा, तब रात्रिके समय निर्जन, निर्मल एवं सुन्दर रासमण्डलमें वृन्दावनके भीतर श्रीहरिके साथ समस्त गोपिकाओंसहित तुम्हारी रासक्रीड़ा सानन्द सम्पन्न होगी। सती राधे! प्रत्येक कल्पमें भूतलपर श्रीहरिके साथ तुम्हारी रसमयी लीला होगी, यह विधाताने ही लिख दिया है। इसे कौन रोक सकता है? सुन्दरी! श्रीहरिप्रिये! जैसे मैं महादेवजीकी सौभाग्यवती पत्नी हूँ, उसी प्रकार तुम श्रीकृष्णकी सौभाग्यशालिनी वल्लभा हो। जैसे दूधमें धवलता, अग्निमें दाहिका शक्ति, भूमिमें गन्ध और जलमें शीतलता है; उसी प्रकार श्रीकृष्णमें तुम्हारी स्थिति है। देवाङ्गना, मानवकन्या, गन्धर्वजातिकी स्त्री तथा राक्षसी—इनमेंसे कोई भी तुमसे बढ़कर सौभाग्यशालिनी न तो हुई है और न होगी ही। मेरे वरसे ब्रह्मा आदिके भी वन्दनीय, परात्पर एवं गुणातीत भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं तुम्हारे अधीन होंगे। पतिव्रते! ब्रह्मा, शेषनाग तथा शिव भी जिनकी आराधना करते हैं, जो ध्यानसे भी वशमें होनेवाले नहीं हैं तथा जिन्हें आराधनाद्वारा रिझा लेना समस्त योगियोंके लिये भी अत्यन्त कठिन है; वे ही भगवान् तुम्हारे अधीन रहेंगे। राधे! स्त्रीजातिमें तुम विशेष सौभाग्यशालिनी हो। तुमसे बढ़कर दूसरी कोई

स्त्री नहीं है। तुम दीर्घकालतक यहाँ रहनेके पश्चात् श्रीकृष्णके साथ ही गोलोकमें चली जाओगी।

मुने! ऐसा कहकर पार्वतीदेवी तत्काल वहीं अन्तर्हित हो गयीं। फिर गोपकुमारियोंके साथ श्रीराधिका भी घर आनेको उद्यत हुईं। इतनेमें ही श्रीकृष्ण राधिकाके सामने उपस्थित हो गये। राधाने किशोर-अवस्थावाले श्यामसुन्दर श्रीकृष्णको देखा। उनके श्रीअङ्गोंपर पीताम्बर शोभा पा रहा था। वे नाना प्रकारके आभूषणोंसे विभूषित थे। घुटनोंतक लटकती हुई मालती-माला एवं वनमाला उनकी शोभा बढ़ा रही थी। उनका प्रसन्न मुख मन्द हास्यसे शोभायमान था। वे भक्तजनोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। उनके सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। नेत्र शरद् ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंको लज्जित कर रहे थे। मुख शरद् ऋतुकी पूर्णिमाके चन्द्रमाकी भाँति मनोहर था, मस्तकपर श्रेष्ठ रत्नमय मुकुट अपनी उज्ज्वल आभा बिखेर रहा था। दाँत पके हुए अनारके दाने-जैसे स्वच्छ दिखायी देते थे। आकृति बड़ी मनोहर थी। उन्होंने विनोदके लिये एक हाथमें मुरली और दूसरे हाथमें लीलाकमल ले रखा था। वे करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्य-लीलाके मनोहर धाम थे। उन गुणातीत परमेश्वरकी ब्रह्मा, शेषनाग और शिव आदि निरन्तर स्तुति करते हैं। वे ब्रह्मस्वरूप तथा ब्राह्मणहितैषी हैं। श्रुतियोंने उनके ब्रह्मरूपका निरूपण किया है। वे अव्यक्त और व्यक्त हैं। अविनाशी एवं सनातन ज्योतिः-स्वरूप हैं। मङ्गलकारी, मङ्गलके आधार, मङ्गलमय तथा मङ्गलदाता हैं।

श्यामसुन्दरके उस अद्भुत रूपको देखकर राधाने वेगपूर्वक आगे बढ़कर उन्हें प्रणाम किया। उन्हें अच्छी तरह देखकर प्रेमके वशीभूत हो वे सुध-बुध खो बैठीं। प्रियतमके मुखारविन्दकी बाँकी चितवनसे देखते-देखते उनके अधरोंपर मुस्कराहट दौड़ गयी और उन्होंने लज्जावश अञ्चलसे अपना मुख ढँक लिया। उनकी बारंबार ऐसी अवस्था हुई। श्रीराधाको देखकर श्यामसुन्दरके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। समस्त गोपिकाओंके सामने खड़े हुए वे भगवान् श्रीराधासे बोले।

श्रीकृष्णने कहा—प्राणाधिके राधिके! तुम मनोवाञ्छित वर माँगो। हे गोपकिशोरियो! तुम सब लोग भी अपनी इच्छाके अनुसार वर माँगो।

श्रीकृष्णकी यह बात सुनकर श्रीराधिका तथा अन्य सब गोपकन्याओंने बड़े हर्षके साथ उन भक्तवाञ्छाकल्पतरु प्रभुसे वर माँगा।

राधिका बोलीं—प्रभो! मेरा चित्तरूपी चञ्चरीक आपके चरणकमलोंमें सदा रमता रहे। जैसे मधुप कमलमें स्थित हो उसके मकरन्दका पान करता है; उसी प्रकार मेरा मनरूपी भ्रमर भी आपके चरणारविन्दोंमें स्थित हो भक्तिरसका निरन्तर आस्वादन करता रहे। आप जन्म-जन्ममें मेरे प्राणनाथ हों और अपने चरणकमलोंकी परम दुर्लभ भक्ति मुझे दें। मेरा चित्त सोते-जागते, दिन-रात आपके स्वरूप तथा गुणोंके चिन्तनमें सतत निमग्न रहे। यही मेरी मनोवाञ्छा है।

गोपियाँ बोलीं—प्राणवल्लभ! आप जन्म-जन्ममें हमारे प्राणनाथ हों और श्रीराधाकी ही भाँति हम सबको भी सदा अपने साथ रखें।

गोपियोंका यह वचन सुनकर प्रसन्नमुखवाले श्रीमान् यशोदानन्दनने कहा—'तथास्तु' (ऐसा ही हो)। तत्पश्चात् उन जगदीश्वरने श्रीराधिकाको प्रेमपूर्वक सहस्रदलोंसे युक्त क्रीडाकमल तथा मालतीकी मनोहर माला दी। साथ ही अन्य गोपियोंको भी उन गोपीवल्लभने हँसकर प्रसादस्वरूप पुष्प तथा मालाएँ भेंट कीं। तदनन्तर वे बड़े प्रेमसे बोले।

श्रीकृष्णने कहा—व्रजदेवियो! तीन मास व्यतीत होनेपर वृन्दावनके सुरम्य रासमण्डलमें तुम सब लोग मेरे साथ रासक्रीडा करोगी। जैसा

मैं हूँ, वैसी ही तुम हो। हममें तुममें भेद नहीं है। मैं तुम्हारे प्राण हूँ और तुम भी मेरे लिये प्राणस्वरूपा हो। प्यारी गोपियो! तुमलोगोंका यह व्रत लोकरक्षाके लिये है, स्वार्थसिद्धिके लिये नहीं; क्योंकि तुमलोग गोलोकसे मेरे साथ आयी हो और फिर मेरे साथ ही तुम्हें वहाँ चलना है। (तुम मेरी नित्यसिद्धा प्रेयसी हो। तुमने साधन करके मुझे पाया है, ऐसी बात नहीं है।) अब शीघ्र अपने घर जाओ। मैं जन्म-जन्ममें तुम्हारा ही हूँ। तुम मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हो; इसमें संशय नहीं है।

ऐसा कहकर श्रीहरि वहाँ यमुनाजीके किनारे बैठ गये। फिर सारी गोपियाँ भी बारंबार उन्हें निहारती हुई बैठ गयीं। उन सबके मुखपर प्रसन्नता छा रही थी; मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी। वे प्रेमपूर्वक बाँकी चितवनसे देखती हुई अपने नेत्र-चकोरोंद्वारा श्रीहरिके मुखचन्द्रकी सुधाका पान कर रही थीं। तत्पश्चात् वे बारंबार जय बोलकर शीघ्र ही अपने-अपने घर गयीं और श्रीकृष्ण भी ग्वाल-बालोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक अपने घरको लौटे। इस प्रकार मैंने श्रीहरिका यह सारा मङ्गलमय चरित्र कह सुनाया, गोपीचीर-हरणकी यह लीला सब लोगोंके लिये सुखदायिनी है। (अध्याय २७)

श्रीकृष्णके रास-विलासका वर्णन

नारदजीने पूछा—भगवन्! तीन मास व्यतीत होनेपर उन गोपाङ्गनाओंका श्रीहरिके साथ किस प्रकार मिलन हुआ? वृन्दावन कैसा है? रासमण्डलका क्या स्वरूप है? श्रीकृष्ण तो एक थे और गोपियाँ बहुत। ऐसी दशामें किस तरह वह क्रीड़ा सम्भव हुई? मेरे मनमें इस नयी-नयी लीलाको सुननेके लिये बड़ी उत्सुकता हो रही है। महाभाग! आपके नाम और यशका श्रवण एवं कीर्तन बड़ा पवित्र है। कृपया आप उस रासक्रीड़ाका वर्णन कीजिये। अहो! श्रीहरिकी रासयात्रा, पुराणोंके सारकी भी सारभूता कथा है। इस भूतलपर उनके द्वारा की गयी सारी लीलाएँ ही सुननेमें अत्यन्त मनोहर जान पड़ती हैं।

सूतजी कहते हैं—शौनक! नारदजीकी यह बात सुनकर साक्षात् नारायण ऋषि हँसे और प्रसन्न मुखसे उन्होंने कथा सुनाना आरम्भ किया।

श्रीनारायण बोले—मुने! एक दिन श्रीकृष्ण चैत्रमासके शुक्लपक्षकी त्रयोदशी तिथिको चन्द्रोदय होनेके पश्चात् वृन्दावनमें गये। उस समय जूही, मालती, कुन्द और माधवीके पुष्पोंका स्पर्श करके बहनेवाली शीतल, मन्द एवं सुगन्धित मलयवायुसे सारा वनप्रान्त सुवासित हो रहा था। भ्रमरोंके मधुर गुञ्जारवसे उसकी मनोहरता बढ़ गयी थी। वृक्षोंमें नये-नये पल्लव निकल आये थे और कोकिलकी कुहू-कुहू-ध्वनिसे वह वन मुखरित हो रहा था। नौ लाख रासगृहोंसे संयुक्त वह वृन्दावन बड़ा ही मनोहर जान पड़ता था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमकी सुगन्ध सब ओर फैल रही थी। कर्पूरयुक्त ताम्बूल तथा भोग-द्रव्य सजाकर रखे गये थे। कस्तूरी और चन्दनयुक्त चम्पाके फूलोंसे रचित नाना प्रकारकी शय्याएँ उस स्थानकी शोभा बढ़ा रही थीं। रत्नमय प्रदीपोंका प्रकाश सब ओर फैला था। धूपकी सुगन्धसे वह वनप्रान्त महमह महक रहा था। वहाँ सब ओरसे गोलाकार रासमण्डल बनाया गया था, जो नाना प्रकारके फूलों और मालाओंसे सुसज्जित था। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और केसरसे वहाँकी भूमिका संस्कार किया गया था। रासमण्डलके चारों ओर फूलोंसे भरे उद्यान तथा क्रीड़ासरोवर थे। उन सरोवरोंमें हंस, कारण्डव तथा जलकुक्कुट

आदि पक्षी कलरव कर रहे थे। वे जलक्रीड़ाके योग्य सुन्दर तथा सुरत-श्रमका निवारण करनेवाले थे। उनमें शुद्ध स्फटिकमणिके समान स्वच्छ तथा निर्मल जल भरा था। उस रासमण्डलमें दही, अक्षत और जल छिड़के गये थे। केलेके सुन्दर खम्भोंद्वारा वह चारों ओरसे सुशोभित था। सूतमें बँधे हुए आमके पल्लवोंके मनोहर बन्दनवारों तथा सिन्दूर, चन्दनयुक्त मङ्गल-कलशोंसे उसको सजाया गया था। मङ्गलकलशोंके साथ मालतीकी मालाएँ और नारियलके फल भी थे। उस शोभासम्पन्न रासमण्डलको देखकर मधुसूदन हँसे। उन्होंने कौतूहलवश वहाँ विनोदकी साधनभूता मुरलीको

बजाया। वह वंशीकी ध्वनि उनकी प्रेयसी गोपाङ्गनाओंके प्रेमको बढ़ानेवाली थी।

राधिकाने जब वंशीकी मधुर ध्वनि सुनी तो तत्काल ही वे प्रेमाकुल हो अपनी सुध-बुध खो बैठीं। उनका शरीर ठूँठे काठकी तरह स्थिर और चित्त ध्यानमें एकतान हो गया। क्षणभरमें चेत होनेपर पुनः मुरलीकी ध्वनि उनके कानोंमें पड़ी। वे बैठी थीं, फिर उठकर खड़ी हो गयीं। अब उन्हें बार-बार उद्वेग होने लगा, वे आवश्यक कर्म छोड़कर घरसे निकल पड़ीं। यह एक अद्भुत बात थी। चारों ओर देखकर वंशीध्वनिका अनुसरण करती हुई आगे बढ़ीं। मन-ही-मन महात्मा श्रीकृष्णके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती जाती थीं। वे अपने सहज तेज तथा श्रेष्ठ रत्नसारमय भूषणोंकी कान्तिसे वनप्रान्तको प्रकाशित कर रही थीं। राधिकाकी सुशीला आदि जो अत्यन्त प्यारी तैंतीस सखियाँ थीं और समस्त गोपियोंमें श्रेष्ठ समझी जाती थीं; वे भी श्रीकृष्णके दिये हुए वरसे आकृष्ट-चित्त हो डरी हुई-सी घरसे बाहर निकलीं। कुलधर्मका त्याग करके निःशङ्क हो वनकी ओर चलीं। वे सब-की-सब प्रेमातिरेकसे मोहित थीं। फिर उन प्रधान गोपियोंके पीछे-पीछे दूसरी गोपियाँ भी जो जैसे थीं, वैसे ही—लाखोंकी संख्यामें निकल पड़ीं। वे सब वनमें एक स्थानपर इकट्ठी हुईं और कुछ देरतक प्रसन्नतापूर्वक वहीं खड़ी रहीं। वहाँ कुछ गोपियाँ अपने हाथोंमें माला लिये आयी थीं। कुछ गोपाङ्गनाएँ बड़े मनोहर चन्दन हाथमें लेकर वहाँ पहुँची थीं। कई गोपियोंके हाथोंमें श्वेत चँवर शोभा पा रहे थे। वे सब बड़े हर्षके

साथ वहाँ आयी थीं। कुछ गोपकन्याएँ कुंकुम, ताम्बूल-पात्र तथा काञ्चन, वस्त्र लिये आयी थीं।

कुछ शीघ्रतापूर्वक उस स्थानपर आयीं, जहाँ चन्द्रावली (राधा) सानन्द खड़ी थीं। वे सब एकत्र हो प्रसन्नतापूर्वक मुस्कराती हुई वहाँ राधिकाकी वेशभूषा सँवारकर बड़े हर्षके साथ आगे बढ़ीं। मार्गमें बारंबार वे हरि-नामका जप करती थीं। वृन्दावनमें पहुँचकर उन्होंने रमणीय रासमण्डल देखा, जहाँका दृश्य स्वर्गसे भी अधिक सुन्दर था। चन्द्रमाकी किरणें उस वनप्रान्तको अनुरञ्जित कर रही थीं। अत्यन्त निर्जन, विकसित कुसुमोंसे अलंकृत तथा फूलोंको छूकर प्रवाहित होनेवाली मलयवायुसे सुवासित वह रम्य रासमण्डल नारियोंके प्रेमभावको जगानेवाला और मुनियोंके भी मनको मोह लेनेवाला था। उन सबको वहाँ कोकिलोंकी मधुर काकली सुनायी दी। भ्रमरोंका अत्यन्त सूक्ष्म मधुर गुञ्जारव भी बड़ा मनोहर जान पड़ता था। वे भ्रमर भ्रमरियोंके साथ रह फूलोंका मकरन्द पान करके मतवाले हो गये थे।

तदनन्तर शुभ वेलामें सम्पूर्ण सखियोंके साथ श्रीकृष्णके चरणकमलोंका चिन्तन करके श्रीराधिकाने रासमण्डलमें प्रवेश किया। राधाको अपने समीप देखकर श्रीकृष्ण वहाँ बड़े प्रसन्न हुए। वे बड़े प्रेमसे मुस्कराते हुए उनके निकट गये। उस समय प्रेमसे आकुल हो रहे थे। राधा अपनी सखियोंके बीचमें रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित होकर खड़ी थीं। उनके श्रीअङ्गोंपर दिव्य वस्त्रोंके परिधान शोभा पा रहे थे। वे मुस्कराती हुई बाँकी चितवनसे श्यामसुन्दरकी ओर देखती हुई गजराजकी भाँति मन्द गतिसे चल रही थीं। रमणीय राधा नवीन वेशभूषा, नयी अवस्था तथा रूपसे अत्यन्त मनोहर जान पड़ती थीं। वे मुनियोंके मनको भी मोह लेनेमें समर्थ थीं। उनकी अङ्गकान्ति सुन्दर चम्पाके समान गौर थी। मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। वे सिरपर मालतीकी मालासे युक्त वेणीका भार वहन करती थीं।

श्रीराधाने भी किशोर अवस्थासे युक्त श्यामसुन्दरकी ओर दृष्टिपात किया। वे नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा रत्नमय आभरणोंसे विभूषित थे। करोड़ों कामदेवोंकी लावण्यलीलाके मनोहर धाम प्रतीत होते थे और बाँके नयनोंसे उनकी ओर निहारती हुई उन प्राणाधिका राधिकाको देख रहे थे। उनके परम अद्भुत रूपकी कहीं उपमा नहीं थी। वे विचित्र वेशभूषा तथा मुकुट धारण किये सानन्द मुस्करा रहे थे। बाँके नेत्रोंके कोणसे बार-बार प्रीतमकी ओर देख-देखकर सती राधाने लज्जावश मुखको आँचलसे ढक लिया और वे मुस्कराती हुई अपनी सुध-बुध खो बैठीं। प्रेमभावका उद्दीपन होनेसे उनके सारे अङ्ग पुलकित हो उठे। तदनन्तर श्रीकृष्ण एवं राधिकाका परस्पर प्रेम-शृङ्गार हुआ।

मुने! नौ लाख गोपियाँ और उतने ही गोप-विग्रहधारी श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण—ये अठारह लाख गोपी-कृष्ण रासमण्डलमें परस्पर मिले। नारद! वहाँ कङ्कणों, किङ्किणियों, वलयों और श्रेष्ठ रत्न-निर्मित नूपुरोंकी सम्मिलित झनकार कुछ कालतक निरन्तर होती रही। इस प्रकार स्थलमें रासक्रीड़ा करके वे सब प्रसन्नतापूर्वक जलमें उतरे और वहाँ जल-क्रीड़ा करते-करते थक गये। फिर वहाँसे निकलकर नवीन वस्त्र धारण करके कौतूहलपूर्वक कर्पूरयुक्त ताम्बूल ग्रहण करके सबने रत्नमय दर्पणमें अपना-अपना मुँह देखा। तदनन्तर श्रीकृष्ण राधिका तथा गोपियोंके साथ नाना प्रकारकी मधुर-मनोहर क्रीड़ाएँ करने लगे।

फिर पवित्र उद्यानके निर्जन प्रदेशमें सरोवरके रमणीय तटपर जहाँ भास्कर चन्द्रमाका प्रकाश फैल रहा था, जहाँकी भूमि पुष्प और चन्दनसे चर्चित थी, जहाँ सब ओर अगुरु तथा चन्दनसे सम्पृक्त मलय-समीरद्वारा सुगन्ध फैलायी जा रही थी और भ्रमरोंके गुञ्जारवके साथ नर-कोकिलोंकी मधुर काकली कानोंमें पड़ रही थी; योगियोंके परम गुरु

श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने अनेक रूप धारण करके स्थल-प्रदेशमें मधुर लीला-विलास किये। इसके बाद राधाके साथ सनातन पूर्णब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णने यमुनाजीके जलमें प्रवेश किया। श्रीकृष्णके जो अन्य मायामय स्वरूप थे, वे भी गोपियोंके साथ जलमें उतरे। यमुनाजीमें परम रसमयी क्रीड़ा करनेके पश्चात् सबने बाहर निकलकर सूखे वस्त्र पहने और माला आदि धारण कीं।

तदनन्तर सब गोप-किशोरियाँ पुनः रासमण्डलमें गयीं। वहाँके उद्यानमें सब ओर तरह-तरहके फूल खिले हुए थे। उन्हें देखकर परमेश्वरी राधाने कौतुकपूर्वक गोपियोंको पुष्पचयनके लिये आज्ञा दी। कुछ गोपियोंको उन्होंने माला गूँथनेके काममें लगाया। किन्हींको पानके बीड़े सुसज्जित करनेमें तथा किन्हींको चन्दन घिसनेमें लगा दिया। गोपियोंके दिये हुए पुष्पहार, चन्दन तथा पानको लेकर बाँके नेत्रोंसे देखती हुई सुन्दरी राधाने मन्द हास्यके साथ श्यामसुन्दरको प्रेमपूर्वक वे सब वस्तुएँ अर्पित कीं। फिर कुछ गोपियोंको श्रीकृष्णकी लीलाओंके गानमें और कुछको मृदङ्ग, मुरज आदि बाजे बजानेमें उन्होंने लगाया। इस प्रकार रासमें लीला-विलास करके राधा निर्जन वनमें श्रीहरिके साथ सर्वत्र मनोहर विहार करने लगीं। रमणीय पुष्पोद्यान, सरोवरोंके तट, सुरम्य गुफा, नदों और नदियोंके समीप, अत्यन्त निर्जन प्रदेश, पर्वतीय कन्दरा, नारियोंके मनोवाञ्छित स्थान, तैंतीस वन—वन, रमणीय श्रीवन, कदम्बवन, तुलसीवन, कुन्दवन, चम्पकवन, निम्बवन, मधुवन, जम्बीरवन, नारिकेलवन, पूगवन, कदलीवन, बदरीवन, बिल्ववन, नारंगवन, अश्वत्थवन, वंशवन, दाडिमवन, मन्दारवन, तालवन, आम्रवन, केतकीवन, अशोकवन, खर्जूरवन, आम्रातकवन, जम्बूवन, शालवन, कटकीवन, पद्मवन, जातिवन, न्यग्रोधवन, श्रीखण्डवन और विलक्षण केसरवन—इन सभी स्थानोंमें तीस दिन-राततक कौतूहलपूर्वक शृङ्गार किया, तथापि उनका मन तनिक भी तृप्त नहीं हुआ। अधिकाधिक इच्छा बढ़ती गयी, ठीक उसी तरह, जैसे घीकी धारा पड़नेसे अग्नि प्रज्वलित होती है। देवता, देवियाँ और मुनि, जो रास-दर्शनके लिये पधारे थे, अपने-अपने घरको लौट गये। उन सबने रास-रसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की और आश्चर्यचकित हो हर्षका अनुभव करते हुए वे वहाँसे विदा हुए। बहुत-सी देवाङ्गनाओंने श्रीहरिके साथ प्रेम-मिलनकी लालसा लेकर भारतवर्षके श्रेष्ठ नरेशोंके घर-घरमें जन्म लिया। (अध्याय २८)

श्रीराधाके साथ श्रीकृष्णका वन-विहार, वहाँ अष्टावक्र मुनिके द्वारा उनकी स्तुति तथा मुनिका शरीर त्यागकर भगवच्चरणोंमें लीन होना

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर प्रेम-विह्वला गोपियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णने विविध भाँतिसे रास-क्रीड़ा की। गोपियाँ उन्मत्ता-सी हो गयीं। तब श्रीकृष्ण राधिकाको लेकर वहाँसे अन्तर्धान हो गये तथा अनेक सुरम्य वनों, पर्वतों, सरोवरों एवं नदी-तटोंपर ले जाकर राधिकाको आनन्द प्रदान करते रहे। श्रीराधाके साथ भ्रमण करते हुए श्यामसुन्दरने अपने सामने एक वट-वृक्ष देखा, जिसकी शाखाओंका अग्रभाग बहुत ही ऊँचा था। उस वृक्षका विस्तार भी बहुत अधिक था। उसके नीचे एक योजनतकका भूभाग छायासे घिरा हुआ था। केतकीवन भी वहाँसे निकट ही था। श्रीकृष्ण राधाके साथ वहीं बैठे थे। शीतल-मन्द-सुगन्ध वायु उस स्थानको सुवासित कर रही थी। हर्षसे भरे हुए श्रीकृष्णने वहाँ राधासे चिरकालतक पुरातन एवं विचित्र रहस्यको

बतानेवाली कथाएँ कहीं। इसी समय उन्होंने वहाँ आते हुए एक श्रेष्ठ मुनिको देखा, जिनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिले हुए थे। परमात्मा श्रीहरिके जिस रूपका वे ध्यान करते थे, उसे हृदयमें न देखकर उनका ध्यान टूट गया था। अब वे अपने सामने बाहर ही उस रूपका प्रत्यक्ष दर्शन करने लगे थे। उनका शरीर काला था। सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े थे और वे नाटे तथा दिगम्बर थे। उनका नाम था—अष्टावक्र। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे। उनका मस्तक जटाओंसे भरा था और वे अपने मुँहसे आग उगल रहे थे, मानो मुखद्वारसे उनकी तपस्याजनित तेजोराशि ही प्रकट हो रही हो। अथवा वे ऐसे लगते थे, मानो उनके रूपमें स्वयं ब्रह्मतेज ही मूर्तिमान्-सा हो गया हो। उनके नख और मूँछ-दाढ़ीके बाल बढ़े हुए थे। वे तेजस्वी और परम शान्त थे तथा भयभीत हो भक्तिभावसे दोनों हाथ जोड़ मस्तक झुकाये हुए थे। उन्हें देख राधा हँसने लगीं; परंतु माधवने उन्हें ऐसा करनेसे रोका और उन महात्मा मुनीन्द्रके प्रभावका वर्णन किया। मुनिवर अष्टावक्रने गोविन्दको प्रणाम करके उनकी स्तुति की। पूर्वकालमें महात्मा भगवान् शंकरने उन्हें जिस

स्तोत्रका उपदेश दिया था, उसीको उन्होंने सुनाया।

अष्टावक्र बोले—प्रभो! आप तीनों गुणोंसे परे होकर भी समस्त गुणोंके आधार हैं। गुणोंके कारण और गुणस्वरूप हैं। गुणियोंके स्वामी तथा उनके आदिकारण हैं। गुणनिधे! आपको नमस्कार है। आप सिद्धिस्वरूप हैं। समस्त सिद्धियाँ आपकी अंशस्वरूपा हैं। आप सिद्धिके बीज और परात्पर हैं। सिद्धि और सिद्धगणोंके अधीश्वर हैं तथा समस्त सिद्धोंके गुरु हैं; आपको नमस्कार है। वेदोंके बीजस्वरूप परमात्मन्! आप वेदोंके ज्ञाता, वेदवान् और वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हैं। वेद भी आपको पूर्णतः नहीं जान सके हैं। रूपेश्वर! आप वेदज्ञोंके भी स्वामी हैं; आपको नमस्कार है। आप ब्रह्मा, अनन्त, शिव, शेष, इन्द्र और धर्म आदिके अधिपति हैं। सर्वस्वरूप सर्वेश्वर। आप शर्व (महादेवजी)-के भी स्वामी हैं; सबके बीजरूप गोविन्द! आपको नमस्कार है। आप ही प्रकृति और प्राकृत पदार्थ हैं। प्राज्ञ, प्रकृतिके स्वामी तथा परात्पर हैं। संसार-वृक्ष तथा उसके बीज और फलरूप हैं। आपको नमस्कार है। सृष्टि, पालन और संहारके बीजस्वरूप ब्रह्मा आदिके भी ईश्वर! आप ही सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं। महाविराट् (नारायण)-रूपी वृक्षके बीज राधावल्लभ! आपको नमस्कार है। अहो! आप जिसके बीज हैं, उस महाविराट्रूपी वृक्षके तीन स्कन्ध (तने) हैं—ब्रह्मा, विष्णु और शिव। वेदादि शास्त्र उसकी शाखा-प्रशाखाएँ हैं और तपस्या पुष्प है। जिसका फल संसार है, वह वृक्ष प्रकृतिका कार्य है। आप ही उसके भी आधार हैं, पर आपका आधार कोई नहीं है। सर्वाधार! आपको नमस्कार है। तेजःस्वरूप! निराकार! आपतक प्रत्यक्ष प्रमाणकी पहुँच नहीं है। सर्वरूप! प्रत्यक्षके अविषय। स्वेच्छामय परमेश्वर। आपको नमस्कार है।

यों कहकर मुनिश्रेष्ठ अष्टावक्र श्रीकृष्णके

चरणकमलोंमें पड़ गये और श्रीराधा तथा गोविन्द दोनोंके सामने ही उन्होंने अपने प्राण त्याग दिये। उनका शरीर भगवान्‌के पाद-पद्मोंके समीप गिर पड़ा और उससे प्रज्वलित अग्नि-शिखाके समान उनका तेज ऊपरको उठा। वह सात ताड़के बराबर ऊँचा उठकर भगवान्‌के चारों तरफ घूमकर पुनः उनके चरणोंमें गिरा और वहीं विलीन हो गया।

जो प्रातःकाल उठकर अष्टावक्रद्वारा किये गये स्तोत्रका पाठ करता है, वह परम निर्वाणरूप मोक्षको प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है। नारद! यह स्तोत्रराज मुमुक्षुजनोंके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर है। श्रीहरिने पहले इसे वैकुण्ठधाममें भगवान् शंकरको दिया था। (अध्याय २९)

भगवान् श्रीकृष्णद्वारा अष्टावक्र (देवल)- के शवका संस्कार तथा उनके गूढ़ चरित्रका परिचय

नारदजीने पूछा—ब्रह्मन्! (नारायणदेव!) उन महामुनिका कौन-सा अद्भुत रहस्य सुना गया? मुनि अष्टावक्रके देह-त्यागके पश्चात् भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्णने क्या किया?

भगवान् श्रीनारायण बोले—मुनिको मरा देख भगवान् श्रीकृष्ण उनके शरीरका दाह-संस्कार करनेको उद्यत हुए। महात्मा अष्टावक्रका वह रक्त, मांस एवं हड्डियोंसे हीन शरीर साठ हजार वर्षोंतक निराहार रहा; अतः प्रज्वलित हुई जठराग्निने उस शरीरके रक्त, मांस तथा हड्डियोंको दग्ध कर दिया था। मुनिका चित्त श्रीहरिके चरणारविन्दोंके चिन्तनमें ही लगा था; अतः उन्हें बाह्य ज्ञान बिलकुल नहीं रह गया था। मधुसूदन श्रीकृष्णने चन्दन-काष्ठकी चिता बनाकर उसमें अग्निसम्बन्धी कार्य (संस्कार) किया और फिर शोक-लीला करते हुए अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे मुनिके शवको उस चितापर स्थापित कर दिया। तदनन्तर शवके ऊपर भी काठ रखकर चितामें आग लगा दी। मुनिका शरीर जलकर भस्म हो गया। आकाशमें देवता दुन्दुभियाँ बजाने लगे और तत्काल ही वहाँसे फूलोंकी वर्षा होने लगी। इसी बीच वहाँ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित, मनके समान तीव्र गतिसे चलनेवाला तथा वस्त्रों और पुष्पहारोंसे अलंकृत एक सुन्दर विमान गोलोकसे उतरा और श्रीहरिके सामने प्रकट हो गया। उसमें श्रीकृष्णके समान ही रूप और वेशभूषावाले श्रेष्ठ पार्षद विराजमान थे। वे उत्तम पार्षद तत्काल ही विमानसे उतर गये। उन सबके आकार श्रीकृष्णसे मिलते-जुलते थे। उन्होंने राधिका और श्यामसुन्दरको प्रणाम करके सूक्ष्म-देहधारी मुनीश्वर अष्टावक्रको भी मस्तक झुकाया और उन्हें उस विमानपर बिठाकर वे उत्तम गोलोकधामको चले गये। मुनीन्द्र अष्टावक्रके गोलोकधामको चले जानेपर वृन्दावनविनोदिनी साध्वी राधाने चकित हो जगदीश्वर श्रीकृष्णसे पूछा।

श्रीराधिका बोलीं—नाथ! ये मुनिश्रेष्ठ कौन थे, जिनके समस्त अङ्ग ही टेढ़े-मेढ़े थे? ये बहुत ही नाटे थे। इनके शरीरका रंग काला था और ये देखनेमें अत्यन्त कुत्सित होनेपर भी बड़े तेजस्वी जान पड़ते थे। उनका जो प्रज्वलित अग्निके समान तेज था, वह साक्षात् आपके चरणारविन्दमें विलीन हो गया। वे कितने पुण्यात्मा थे कि तत्काल विमानमें बैठकर गोलोकधामको चले गये और उन स्वात्माराम मुनिके लिये आपको भी रोना आ गया। प्रभो! आपने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे इनका सत्कार किया है; अतः मैंने जो कुछ पूछा है, वह सारा विवरण शीघ्र ही विस्तारपूर्वक बताइये।

राधिकाका यह वचन सुन भगवान् मधुसूदनने हँसकर युगान्तरकी कथाको कहना आरम्भ किया।

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! सुनो। मैं इस विषयमें एक प्राचीन इतिहास बता रहा हूँ, जिसके सुनने और कहनेसे समस्त पापोंका नाश हो जाता है। प्रलयकालमें जब तीनों लोक एकार्णवके जलमें मग्न थे, तब मेरे ही अंशभूत महाविष्णुके नाभिकमलसे मेरी ही कलाद्वारा जगत्-विधाता ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। ब्रह्माजीके हृदयसे पहले चार पुत्र उत्पन्न हुए, जो सब-के-सब नारायणपरायण तथा ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान थे। वे ज्ञानहीन बालकोंकी भाँति सदा नग्न रहते हैं और पाँच वर्षकी ही अवस्थासे युक्त दिखायी देते हैं। उन्हें आत्मज्ञान नहीं होता; परंतु ब्रह्मतत्त्वकी व्याख्यामें वे बड़े निपुण हैं। सनक, सनन्दन, सनातन और भगवान् सनत्कुमार—ये ही क्रमशः उन चारोंके नाम हैं। एक दिन ब्रह्माजीने उनसे कहा—'पुत्रो! तुम जगत्की सृष्टि करो।' परंतु उन्होंने पिताकी बात नहीं मानी और मेरी प्रसन्नताके लिये वे तपस्या करनेको वनमें चले गये। उन पुत्रोंके चले जानेपर विधाताका मन उदास हो गया। यदि पुत्र आज्ञाका पालन न करे तो पिताको बड़ा दुःख होता है। उन्होंने ज्ञानद्वारा अपने विभिन्न अङ्गोंसे कई पुत्र उत्पन्न किये, जो तपस्याके धनी, वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् तथा ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—अत्रि, पुलस्त्य, पुलह, मरीचि, भृगु, अङ्गिरा, क्रतु, वसिष्ठ, वोढु, कपिल[1], आसुरि, कवि[2], शंकु, शङ्कु, पञ्चशिख और प्रचेता। उन तपोधनोंने ब्रह्माजीकी आज्ञासे दीर्घकालतक तप करके सृष्टिका कार्य सम्पन्न किया। वे सभी सपत्नीक थे और संसारकी सृष्टि करनेके लिये उन्मुख रहते थे। उन सभी तपोधनोंके बहुत-से पुत्र और पौत्र हुए। मुनिवंशकी परम्पराका कीर्तन करनेवाली वह मनोहर एवं पुण्यस्वरूपा कथा बहुत बड़ी है; अतः उसे यहीं समाप्त किया जाता है। सुन्दरि राधिके! अब तुम वह कथा सुनो, जो प्रकृत प्रसङ्गके अनुकूल है। प्रचेता मुनिके पुत्र श्रीमान् मुनिवर असित हुए। असितने पुत्रकी कामनासे पत्नीसहित दीर्घकालतक तप किया; परंतु तब भी जब पुत्र नहीं हुआ तो वे अत्यन्त विषादग्रस्त हो गये। उस समय आकाशवाणी हुई—'मुने! तुम भगवान् शंकरके पास जाओ और उनके मुखसे मन्त्रका उपदेश ग्रहण करके उसे सिद्ध करो। उस मन्त्रकी जो अधिष्ठात्री देवी हैं वे शीघ्र ही तुम्हें साक्षात् दर्शन देंगी। उन अभीष्ट देवीके वरसे निश्चय ही तुम्हें पुत्रकी प्राप्ति होगी।' यह बात सुनकर वे ब्राह्मणदेवता शंकरजीके समीप गये। जो योगियोंके लिये भी अगम्य है, उस निरामय शिवलोकमें पहुँचकर पत्नीसहित असित दोनों हाथ जोड़ भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर एक योगीकी भाँति योगियोंके गुरु महादेवजीकी स्तुति करने लगे।

असित बोले—जगद्गुरो! आपको नमस्कार है। आप शिव हैं और शिव (कल्याण)-के दाता हैं। योगीन्द्रोंके भी योगीन्द्र तथा गुरुओंके भी गुरु हैं; आपको प्रणाम है। मृत्युके लिये भी मृत्युरूप होकर जन्म-मृत्युमय संसारका खण्डन करनेवाले देवता! आपको नमस्कार है। मृत्युके ईश्वर! मृत्युके बीज! मृत्युञ्जय! आपको मेरा प्रणाम है। कालगणना करनेवालोंके लक्ष्यभूत कालरूप परमेश्वर! आप कालके भी काल, ईश्वर और कारण हैं तथा कालके लिये भी कालातीत हैं। कालकाल! आपको नमस्कार है। गुणातीत! गुणाधार! गुणबीज! गुणात्मक! गुणीश! और गुणियोंके आदिकारण! आप समस्त गुणवानोंके गुरु हैं; आपको नमस्कार है। ब्रह्मस्वरूप! ब्रह्मज्ञ!

१-२ अन्य पुराणोंके अनुसार कपिलजी कर्दमके तथा कवि भृगुके पुत्र थे।

ब्रह्मचिन्तनपरायण! आपको नमस्कार है। आप वेदोंके बीजरूप हैं। इसलिये ब्रह्मबीज कहलाते हैं; आपको मेरा प्रणाम है।

इस प्रकार स्तुति करके शिवको प्रणाम करनेके पश्चात् मुनीश्वर असित उनके सामने खड़े हो गये और दीनकी भाँति नेत्रोंसे आँसू बहाने लगे। उनके सम्पूर्ण शरीरमें रोमाञ्च हो आया। जो असितद्वारा किये गये महात्मा शंकरके इस स्तोत्रका प्रतिदिन भक्तिभावसे पाठ करता और एक वर्षतक नित्य हविष्य खाकर रहता है—उसे ज्ञानी, चिरञ्जीवी एवं वैष्णव पुत्रकी प्राप्ति होती है। जो धनाभावसे दुःखी हो, वह धनाढ्य और जो मूर्ख हो, वह पण्डित हो जाता है। पत्नीहीन पुरुषको सुशीला एवं पतिव्रता पत्नी प्राप्त होती है तथा वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें भगवान् शिवके समीप जाता है। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने यह उत्तम स्तोत्र प्रचेताको दिया था और प्रचेताने अपने पुत्र असितको।

श्रीकृष्ण कहते हैं—मुनिका यह स्तोत्र सुनकर भक्तवत्सल भगवान् शंकर स्वयं ही अपने भक्त ब्राह्मणसे बोले।

शंकरजीने कहा—मुनिश्रेष्ठ! धैर्य धारण करो। मैं तुम्हारी इच्छाको जानता हूँ; अतः सत्य कहता हूँ। तुम्हें मेरे अंशसे मेरे ही समान पुत्र प्राप्त होगा। इसके लिये मैं तुम्हें एक ऐसा मन्त्र दूँगा, जिसकी कहीं तुलना नहीं है तथा जो सबके लिये परम दुर्लभ है।

यों कहकर भगवान् शिवने असितमुनिको वहीं षोडशाक्षर मन्त्र, स्तोत्र, पूजाविधि, परम अद्भुत 'संसार-विजय' नामक कवच तथा पुरश्चरणका उपदेश दिया। साथ ही यह भी कहा कि 'इस मन्त्रकी इष्टदेवी तुम्हें वर देनेके लिये प्रत्यक्ष दर्शन देंगी।' यों कहकर रुद्रदेव चुप हो गये और असितमुनि उन्हें नमस्कार करके चले गये। उन्होंने सौ वर्षोंतक उस उत्कृष्ट मन्त्रका जप किया। सती राधिके! तदनन्तर तुमने ही मुनिको प्रत्यक्ष दर्शन देकर उन्हें वर दिया—'वत्स! तुम्हें निश्चय ही महाज्ञानी पुत्रकी प्राप्ति होगी।' यह वर देकर तुम पुनः गोलोकमें मेरे पास चली आयीं। तदनन्तर यथासमय भगवान् शिवके अंशसे असितके एक पुत्र हुआ, जो कामदेवके समान सुन्दर था। उसका नाम हुआ देवल। देवल ब्रह्मनिष्ठ महात्मा हुए। उन्होंने राजा सुयज्ञकी सुन्दरी कन्या रत्नमालावतीको, जो सबका मन मोह लेनेवाली थी, विवाहकी विधिसे सानन्द ग्रहण किया। दीर्घकालतक पत्नीके साथ रहकर कालान्तरमें मुनिवर देवल संसारसे विरक्त हो गये और सारा सुख छोड़कर धर्ममें तत्पर हो श्रीहरिके चिन्तनमें लग गये। एक समय रात्रिमें वे विरक्त तपोधन शय्यासे उठे और कमनीय गन्धमादन पर्वतपर तपस्याके लिये चले गये। उनकी पत्नीकी जब निद्रा टूटी, तब वह सती अपने स्वामीको वहाँ न देख विरहाग्निसे दग्ध हो शोकवश अत्यन्त विलाप करने लगी। वह उठकर कभी खड़ी होती और कभी पछाड़ खाकर गिरती थी। रत्नमालावती बारंबार उच्चस्वरसे रोदन करने लगी। तपे हुए पात्रमें पड़े हुए धान्यकी जो दशा होती है, वही दशा उस समय उसके मनकी थी। उस सुन्दरीने खाना-पीना छोड़कर प्राणोंका परित्याग कर दिया। उसके पुत्रने उसका दाह-संस्कार आदि पारलौकिक कृत्य किया। मुनिवर देवल मेरे भक्त एवं जितेन्द्रिय थे। उन्होंने एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक गन्धमादनकी गुफामें तप किया।

एक दिन रम्भाने उन परम सुन्दर, शान्तस्वभाव एवं कन्दर्पसदृश रूपवान् मुनिको देख उनसे मिलनकी प्रार्थना की। मुनिने उसकी याचना स्वीकार न करके कहा—'रम्भे! सुनो। मैं वेदोंका

सारभूत वचन सुना रहा हूँ, जो तपस्वी ब्राह्मणोंके कुलधर्मके अनुकूल और सत्य है। जो मनुष्य अपनी पत्नीको त्यागकर परायी स्त्रीके साथ सम्बन्ध स्थापित करता है, वह जीते-जी मरा हुआ है। उसके यश, धन और आयुकी हानि होती है। भूतलपर जिसके यशका विस्तार नहीं हुआ, उसका जीवन निष्फल है। एक तपस्वीको उत्तम सम्पत्ति, राज्य और सुखसे क्या लेना है? मैं निष्काम और शुद्ध हूँ। मुझसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? माँ! तुम सुन्दरी हो; अतः किसी उत्तम वेशभूषावाले सुन्दर तरुण पुरुषकी खोज करो।'

देवलजीकी यह बात सुनते ही रम्भाको क्रोध आ गया। उसने पुनः अपनी वही बात दोहरायी। तब मुनि उसे कुछ भी उत्तर न देकर पूर्ववत् ध्यानस्थ हो गये। यह देख रम्भाने रोषपूर्वक शाप देते हुए कहा—'कुटिलहृदय ब्राह्मण! तेरे सारे अवयव टेढ़े-मेढ़े हो जायँ। तेरा शरीर काजलके समान काला तथा रूप-यौवनसे शून्य हो जाय। आकार अत्यन्त विकृत तथा तीनों लोकोंमें निन्दित हो और तेरा पुरातन तप अवश्य ही शीघ्र नष्ट हो जाय।'

यह शाप प्राप्त होनेपर जब मुनिवर देवलने आँख खोलकर देखा तो सारा अङ्ग विकृत तथा पूर्वपुण्यसे वञ्चित दिखायी दिया। तब वे अग्निकुण्ड तैयार करके शोकवश अपने प्राण त्याग देनेको उद्यत हुए। उस समय मैंने उन्हें दर्शन एवं वर दिया तथा दिव्य ज्ञान देकर उन्हें समझाया। प्रेमपूर्वक मेरे आश्वासन देनेपर वे शान्त हुए। उन महामुनिके आठों अङ्गोंको वक्र देख मैंने तत्काल ही कौतूहलवश उनका नाम अष्टावक्र[1] रख दिया। मेरे कहनेसे उन्होंने मलयाचलकी कन्दरामें आकर साठ हजार वर्षोंतक बड़ी भारी तपस्या की। प्रिये! उस तपकी समाप्ति होनेपर मेरा यह भक्त मुझसे आ मिला है। मैंने स्वयं उसे अपनेमें मिला लिया है। प्रलयकालमें सबके नष्ट हो जानेपर भी मेरे भक्तका नाश नहीं होता। इस मुनिने आहार बिलकुल छोड़ दिया था। अतः दीर्घकालकी तपस्या एवं जठराग्निकी ज्वालासे इनके शरीरका भीतरी भाग जलकर भस्मरूप हो गया था। प्रिये! ये मुनि मेरे ही लिये मलयाचलकी कन्दरा छोड़कर यहाँ आये थे। इन अष्टावक्र (देवल)-से बढ़कर दूसरा कोई मेरा भक्त न तो हुआ है और न होगा। ब्रह्माजीके प्रपौत्र मुनिवर देवल ऐसे उत्तम तपस्वी थे; परंतु उस पुंश्चलीके शापसे उसी तरह हीन अवस्थाको पहुँच गये, जैसे पूर्वकालमें ब्रह्माजी अपूजनीय हो गये थे। महात्मा देवलका यह सारा गूढ़ रहस्य मैंने कह सुनाया, जो सुखद और पुण्यप्रद है। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ३०)

१- इस प्रसङ्गसे यह सूचित होता है कि असितपुत्र देवल (भी) कुछ कालतक 'अष्टावक्र' कहलाये। महाभारतके अनुसार 'अष्टावक्र' नामसे प्रसिद्ध एक दूसरे मुनि भी थे, जो जन्मसे ही वक्राङ्ग थे। उद्दालक-कन्या सुजाता उनकी माता थीं और महर्षि कहोड पिता। उन्होंने राजा जनकके दरबारमें शास्त्रार्थी पण्डित बन्दीको पराजित किया था। श्वेतकेतु उनके मामा थे। महर्षि वदान्यकी पुत्री सुप्रभाके साथ उनका विवाह हुआ था। समङ्गा नदीमें स्नान करनेसे इनके सब अङ्ग सीधे हो गये थे। महाभारत वनपर्वके अध्याय १३२ से लेकर १३४ तक उनका प्रसङ्ग है। अनुशासनपर्वके उन्नीसवें और इक्कीसवें अध्यायोंमें भी उनकी कथा आयी है।

ब्रह्माजीका मोहिनीके शापसे अपूज्य होना, इस शापके निवारणके लिये उनका वैकुण्ठधाममें जाना और वहाँ अन्यान्य ब्रह्माओंके दर्शनसे उनके अभिमानका दूर होना

तदनन्तर श्रीराधिकाने पूछा—श्यामसुन्दर! ब्रह्माजीको क्यों और किससे शाप प्राप्त हुआ था?

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! एक बार मोहिनीने ब्रह्माजीसे मिलनकी प्रार्थना की। बहुत समयतक उसका इसके लिये प्रयास चलता रहा; परंतु ब्रह्माजीने उसके उस प्रस्तावको ठुकरा दिया और एक दिन मुनियोंके सामने मोहिनीका उपहास किया। इससे मोहिनी कुपित हो उठी और शाप देती हुई बोली—'ब्रह्मन्! मैं आपकी दासीके समान हूँ, विनयशील हूँ और दैववश आपकी शरणमें आयी हूँ तो भी आप घमंडमें आकर मेरी हँसी उड़ा रहे हैं; अतः सुदीर्घ कालके लिये आप अपूजनीय हो जायँ। स्वयं भगवान् श्रीहरि शीघ्र ही आपके दर्पका दलन करेंगे। अन्य देवताओंकी प्रत्येक युगमें वार्षिक पूजा होगी; किंतु आपकी नहीं होगी। इस कल्पमें या कल्पान्तरमें, इस देहमें अथवा देहान्तरमें फिर आपकी पूजा नहीं होगी। अबतक जो हो गयी, सो हो गयी।'

यों कहकर मोहिनी शीघ्र ही कामलोकमें गयी और पुनः सचेत होनेपर अपने कुकृत्यको याद करके विलाप करने लगी। जगद्विधाता ब्रह्मा मोहिनीका शाप सुनकर काँप उठे। उनका मस्तक झुक गया। उस समय कल्याणकारी मुनियोंने उन्हें एक उपाय बताया—'आप भगवान् वैकुण्ठनाथकी शरणमें जाइये।' ऐसा कहकर वे ऋषि-मुनि अपने-अपने आश्रमोंको चले गये। तत्पश्चात् ब्रह्माजी मेरे ही दूसरे स्वरूप परम शान्त कमलाकान्त श्यामवर्ण भगवान् नारायणकी शरणमें गये। वहाँ जा खिन्नवदन हो चार भुजाधारी श्रीहरिको प्रणाम करके वे जगत्स्रष्टा ब्रह्मा उनके पास ही बैठे। उन्होंने विपत्तिसे उबारनेवाले, दयासिन्धु, दीनबन्धु भगवान्‌से अपने आगमनका रहस्य बताया। वह सारा रहस्य सुनकर भगवान् विष्णु हँसते हुए बोले।

श्रीनारायणने कहा—लोकनाथ! क्षणभर ठहरो। इसी बीचमें कोई शीघ्रगामी द्वारपाल श्रीहरिके सामने आया और उन्हें प्रणाम करके बोला—'भगवन्! दूसरे किसी ब्रह्माण्डके अधिपति दशमुख ब्रह्मा स्वयं पधारकर द्वारपर खड़े हैं। वे आपके महान् भक्त हैं और आपका दर्शन करनेके लिये ही आये हैं।' द्वारपालकी यह बात सुनकर भगवान् नारायणने उक्त ब्रह्माको भीतर बुला लानेके लिये उसे अनुमति दे दी। द्वारपालकी आज्ञासे ब्रह्माने भीतर आकर भक्तिभावसे भगवान्‌की स्तुति की। उन्होंने ऐसे-ऐसे अति विचित्र स्तोत्र सुनाये, जो चतुर्मुख ब्रह्माने कभी नहीं सुने थे। स्तुति करके भगवान् विष्णुकी आज्ञा पाकर वे चतुर्मुख ब्रह्माको पीछे करके बैठे। तदनन्तर भगवान् नारायणने अपने चार भुजाधारी द्वारपालोंसे कहा—'जो कोई भी आगन्तुक सज्जन हों, उन्हें आदरपूर्वक भीतर ले आओ।' वृन्दावनविनोदिनि! इसी समय वहाँ अत्यन्त विनीतभावसे स्वयं शतमुख ब्रह्माका आगमन हुआ। उन्होंने भी अत्यन्त सुन्दर दिव्य स्तोत्रोंद्वारा गूढ़भावसे भगवान्‌का स्तवन किया। उनके मुखसे निकले हुए श्रेष्ठ स्तोत्र सभीके लिये अश्रुतपूर्व (सर्वथा नवीन) थे। वे भी स्तुतिके पश्चात् भगवान्‌की आज्ञा पाकर पहलेके आये हुए दोनों ब्रह्माओंके आगे बैठ गये। इसके बाद दूसरे किसी ब्रह्माण्डके अधिपति सहस्रमुख ब्रह्मा श्रीहरिके सामने उपस्थित हुए। उन्होंने भी भक्तिभावसे मस्तक झुकाकर किसीके द्वारा भी अबतक नहीं सुने गये उत्तम स्तोत्रोंसे भगवान्‌की स्तुति की।

तत्पश्चात् वे भी आज्ञा पाकर सबसे आगे बैठे। उनसे श्रीहरिने समस्त ब्रह्माण्डोंके ब्रह्माओंका और उनके राज्यमें रहनेवाले देवताओंका क्रमशः कुशल-समाचार पूछा। उन सब ब्रह्माओंको देखकर अपनेको विष्णु-तुल्य माननेवाले चतुर्मुख ब्रह्माका घमंड चूर-चूर हो गया। इसके बाद श्रीहरिने विभिन्न ब्रह्माण्डोंमें रहनेवाले अन्यान्य ब्रह्माओंके भी दर्शन कराये। उन्हें देखकर चतुर्मुख ब्रह्मा मृतक-तुल्य हो गये। उस समय भगवान्ने कहा—'मुझ नारायणके शरीरमें जितने रोम हैं, उतने ही ब्रह्माण्ड और उनके उतने ही ब्रह्मा विद्यमान हैं।' यह सुनकर वे सभी आगन्तुक ब्रह्मा नारायणको प्रणाम करके शीघ्र ही अपने-अपने स्थानको चले गये। चतुर्मुख ब्रह्माने अपनेको अत्यन्त छोटा तथा अल्प राज्यका अधिपति माना। लज्जासे उनका सिर झुक गया और वे भगवान् विष्णुके चरणोंमें पड़ गये। तब भगवान्ने उनसे पूछा—'ब्रह्मन्! बोलो, इस समय तुमने स्वप्नकी भाँति यह क्या देखा है?' उनका प्रश्न सुनकर ब्रह्मा बोले—'प्रभो! भूत, वर्तमान और भविष्य—सारा जगत् आपकी मायासे ही उत्पन्न हुआ है।' यों कह चतुर्मुख ब्रह्मा वैकुण्ठकी सभामें लज्जाका अनुभव करते हुए चुप हो गये। तब सर्वान्तर्यामी भगवान् श्रीहरिने उनके शाप-निवारणका उपाय किया।

(अध्याय २१—२३)

गङ्गाकी उत्पत्ति तथा महिमा

श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! इसी बीचमें भगवान् शंकर वहाँ उपस्थित हुए। उनके मुखपर मुस्कराहट थी। वे सारे अङ्गोंमें विभूति लगाये वृषभराज नन्दिकेश्वरकी पीठपर बैठे थे। व्याघ्रचर्मका वस्त्र, सर्पमय यज्ञोपवीत, सिरपर सुनहरे रंगकी जटाका भार, ललाटमें अर्धचन्द्र, हाथोंमें त्रिशूल, पट्टिश तथा उत्तम खट्वाङ्ग धारण किये, श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित स्वर-यन्त्र लिये भगवान् शिव शीघ्र ही वाहनसे उतरे और भक्तिभावसे मस्तक झुका कमलाकान्तको प्रणाम करके उनके वामभागमें बैठे। फिर इन्द्र आदि समस्त देवता, मुनि, आदित्य, वसु, रुद्र, मनु, सिद्ध और चारण वहाँ पधारे। उन सबने पुरुषोत्तमकी स्तुति की। उस समय उनके सारे अङ्ग पुलकित हो रहे थे। फिर समस्त देवताओंने सिर झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया। तदनन्तर स्वर-यन्त्र लिये भगवान् शंकरने सुमधुर तालस्वरके साथ संगीत आरम्भ किया। प्रिये! उसमें हम दोनोंके गुणों तथा राससम्बन्धी सुन्दर पदोंका गान होने लगा।

मनको मोह लेनेवाले सामयिक राग,[1] कण्ठको

१- संगीतमें षड्ज आदि स्वरों, उनके वर्णों और अङ्गोंसे युक्त वह ध्वनि जो किसी विशिष्ट तालमें बैठायी हुई हो और जो मनोरञ्जनके लिये गायी जाती हो। संगीत-शास्त्रके भारतीय आचार्योंने छः राग माने हैं; परंतु इन

एकतानता, एक मनोहर मौन, गुरु-लघुके क्रमसे पद-भेद-विराम, अतिदीर्घ गमक तथा मधुर आनन्दके साथ उन्होंने प्रेमपूर्वक स्वयं-निर्मित ऐसा संगीत छेड़ा, जो संसारमें अत्यन्त दुर्लभ है। उस समय भगवान् शिवके सम्पूर्ण अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था और वे नेत्रोंसे बारंबार आँसू बहाते थे। प्रिये! उस संगीतको सुननेमात्रसे वहाँ बैठे हुए मुनि तथा देवता मूर्च्छित एवं बेसुध हो द्रव (जल)-रूप हो गये। श्रीहरिके पार्षदोंकी तथा ब्रह्माजीकी भी यही दशा हुई। भगवान् नारायण, लक्ष्मी तथा गान करनेवाले स्वयं शिव भी द्रवरूप हो गये। प्राणेश्वरि! उस समय वैकुण्ठधामको जलसे पूर्ण हुआ देख मुझे शङ्का हुई। तब वहाँ जाकर मैंने उन सब देवता आदिकी मूर्तियों (शरीरों)-का पूर्ववत् निर्माण किया। उनके वैसे ही रूप, वैसे ही अस्त्र-शस्त्र तथा वैसे ही वाहन-भूषण बनाये। उनके स्वभाव, मन तथा विषय-वासनाएँ भी पूर्ववत् थीं। तदनन्तर उस जलराशिके लिये वैकुण्ठके चारों ओर स्थान बनाया; फिर उसकी अधिष्ठात्री देवी (गङ्गा) अपने उस वासस्थानमें आयीं।

समस्त देवताओंके शरीरोंसे उत्पन्न हुई यह

रागोंके नामोंके सम्बन्धमें बहुत मतभेद है। भरत और हनुमत्‌के मतसे ये छः राग इस प्रकार हैं—भैरव, कौशिक (मालकोस), हिंडोल, दीपक, श्री और मेघ। सोमेश्वर और ब्रह्माके मतसे इन छः रागोंके नाम इस प्रकार हैं—श्री, वसंत, पञ्चम, भैरव, मेघ और नटनारायण। नारद-संहिताका मत है कि मालव, मल्लार, श्री, वसंत, हिंडोल और कर्णाट—ये छः राग हैं। परंतु आजकल प्रायः ब्रह्मा और सोमेश्वरका मत ही अधिक प्रचलित है। स्वर-भेदसे राग तीन प्रकारके कहे गये हैं—(१) सम्पूर्ण, जिसमें सातों स्वर लगते हों; (२) षाडव, जिसमें केवल छः स्वर लगते हों और कोई एक स्वर वर्जित हो; और (३) औडव, जिसमें केवल पाँच स्वर लगते हों और दो स्वर वर्जित हों। मतङ्गके मतसे रागोंके ये तीन भेद हैं—(१) शुद्ध, जो शास्त्रीय नियम तथा विधानके अनुसार हो और जिसमें किसी दूसरे रागकी छाया न हो; (२) सालंक या छायालग, जिसमें किसी दूसरे रागकी छाया भी दिखायी देती हो, अथवा जो दो रागोंके योगसे बना हो; और (३) संकीर्ण, जो कई रागोंके मेलसे बना हो। संकीर्णको 'संकर राग' भी कहते हैं। ऊपर जिन छः रागोंके नाम बतलाये गये हैं, उनमेंसे प्रत्येक रागका एक निश्चित सरगम या स्वर-क्रम है। उसका एक विशिष्ट स्वरूप माना गया है। उसके लिये एक विशिष्ट ऋतु, समय और पहर आदि निश्चित हैं। उसके लिये कुछ रस नियत हैं तथा अनेक ऐसी बातें भी कही गयी हैं, जिनमेंसे अधिकांश केवल कल्पित ही हैं। जैसे, माना गया है कि अमुक रागका अमुक द्वीप या वर्षपर अधिकार है, उसका अधिपति अमुक ग्रह है, आदि। इसके अतिरिक्त भरत और हनुमत्‌के मतसे प्रत्येक रागकी पाँच-पाँच रागिनियाँ और सोमेश्वर आदिके मतसे छः-छः रागिनियाँ हैं। इस अन्तिम मतके अनुसार प्रत्येक रागके आठ-आठ पुत्र तथा आठ-आठ पुत्रवधुएँ भी हैं। (४) यदि वास्तविक दृष्टिसे देखा जाय तो राग और रागिनीमें कोई अन्तर नहीं है। जो कुछ अन्तर है, वह केवल कल्पित है। हाँ, रागोंमें रागिनियोंकी अपेक्षा कुछ विशेषता और प्रधानता अवश्य होती है और रागिनियाँ उनकी छायासे युक्त जान पड़ती हैं; अतः हम रागिनियोंको रागोंके अवान्तर भेद कह सकते हैं। इसके सिवा और भी बहुत-से राग हैं, जो कई रागोंकी छायापर अथवा मेलसे बनते हैं और 'संकर राग' कहलाते हैं। शुद्ध रागोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें लोगोंका विश्वास है कि जिस प्रकार श्रीकृष्णकी वंशीके सात छेदोंमेंसे सात स्वर निकले हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्णजीकी १६,१०८ गोपिकाओंके गानेसे १६,१०८ प्रकारके राग उत्पन्न हुए थे और उन्हींमेंसे बचते-बचते अन्तमें केवल छः राग और उनकी ३० या ३६ रागिनियाँ रह गयीं। कुछ लोगोंका यह भी मत है कि महादेवजीके पाँच मुखोंसे पाँच राग (श्री, वसंत, भैरव, पञ्चम और मेघ) निकले हैं और पार्वतीके मुखसे छठा 'नटनारायण' राग निकला है।

१- संगीत-शास्त्रके अनुसार तालमेंका विराम जो सम, विषम, अतीत और अनागत—चार प्रकारका होता है।

२- संगीतमें एक श्रुति या स्वरपरसे दूसरी श्रुति या स्वरपर जानेका एक प्रकार। इसके सात भेद हैं—कम्पित, स्फुरित, लीन, भिन्न, स्थविर, आहत और आन्दोलित। पर साधारणतः लोग गानेमें स्वरके कँपानेको ही गमक कहते हैं। तबलेकी गम्भीर आवाजको भी गमक कहते हैं। (हिंदी-शब्दसागरसे संकलित)

दिव्य जलराशि ही देवनदी गङ्गाके नामसे प्रख्यात हुई। यह मुमुक्षुओंको मोक्ष और भक्तोंको हरि-भक्ति प्रदान करनेवाली है। उसका स्पर्श करके आयी हुई वायुके सम्पर्कसे भी पापियोंके करोड़ों जन्मोंके नानाविध पाप तत्काल नष्ट हो जाते हैं। प्राणेश्वरि! देवनदीके साक्षात् दर्शन तथा स्पर्शका क्या फल होगा—यह मैं भी नहीं जानता; फिर उसके जलमें स्नान करनेसे प्राप्त होनेवाले पुण्यके विषयमें तो कहना ही क्या है? उसकी महिमाका सम्यक् निरूपण असम्भव है। पृथ्वीपर 'पुष्कर' को सब तीर्थोंसे उत्तम बताया गया है। वेदोंने उसे सर्वश्रेष्ठ कहा है; परंतु वह भी इस (गङ्गा)-की सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं है। राजा भगीरथ इस देवनदीको भूतलपर लाये थे, इसलिये यह 'भागीरथी' नामसे प्रसिद्ध हुई। सुरधुनी अपने लोकके अंशसे पृथ्वीपर आयी थी; अतः 'गां गता' इस व्युत्पत्तिके अनुसार उसका 'गङ्गा' नाम प्रसिद्ध हुआ। इसके जलपर क्रोध होनेके कारण महात्मा जह्नुने इस नदीको अपने जानुओं (घुटनों)-द्वारा ग्रहण कर लिया था। फिर उनकी कन्यारूपसे इसका प्राकट्य हुआ; अतः इसका दूसरा नाम 'जाह्नवी' है। वसुके अवतार भीष्म इसके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण यह 'भीष्मसू' (भीष्मजननी) कहलाती है। गङ्गा मेरी आज्ञासे तीन धाराओंद्वारा स्वर्ग, पृथ्वी तथा पातालमें गयी है; अतः 'त्रिपथगा' कही जाती है। इसकी प्रमुख धारा स्वर्गमें है। वहाँ इसे 'मन्दाकिनी' कहते हैं। स्वर्गमें इसका पाट एक योजन चौड़ा है और यह दस हजार योजनकी दूरीमें प्रवाहित होती है। इसका जल दूधके समान स्वच्छ एवं स्वादिष्ट है तथा इसमें सदा ऊँची-ऊँची लहरें उठती रहती हैं। वैकुण्ठसे यह ब्रह्मलोकमें और वहाँसे स्वर्गमें आयी है। स्वर्गसे चलकर हिमालयके शिखरपर होती हुई यह प्रसन्नतापूर्वक पृथ्वीपर उतरी है। इसकी उस धाराका नाम 'अलकनन्दा' है। यह क्षार-समुद्रमें जाकर मिली है। इसकी जलराशि शुद्ध स्फटिकके समान स्वच्छ तथा अत्यन्त वेगवती है। यह पापियोंके पापरूपी सूखे काठको जलानेके लिये अग्निरूपिणी है। इसीने राजा सगरके पुत्रोंको निर्वाणमोक्ष प्रदान किया है। यह वैकुण्ठधामतक जानेके लिये श्रेष्ठ सोपान है।

यदि मृत्युकालमें पहले पुण्यात्मा सत्पुरुषोंके चरणोंको धोकर उस चरणोदकको मुमूर्षु मनुष्यके मुखमें दिया जाय तो उसे गङ्गाजल पीनेका पुण्य होता है। ऐसे पुण्यात्मा सत्पुरुष गङ्गारूपी सोपानपर आरूढ़ हो निरामयपद (वैकुण्ठधाम)-को प्राप्त होते हैं। वे ब्रह्मलोकतकको लाँघकर विमानपर बैठे हुए निर्बाध गतिसे ऊपरके लोक (वैकुण्ठ)-में चले जाते हैं। यदि दैववश पूर्वकर्मके प्रभावसे पापी पुरुष गङ्गामें डूब जायँ तो वे शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने दिव्य वर्षोंतक भगवद्धाममें सानन्द निवास करते हैं। तदनन्तर उन्हें निश्चय ही अपने पाप-पुण्यका फल भोगना पड़ता है। परंतु वह भोग स्वल्पकालमें ही पूरा हो जाता है; तत्पश्चात् भारतवर्षमें पुण्यवानोंके घरमें जन्म ले निश्चल भक्ति पाकर वे भगवत्स्वरूप हो जाते हैं। जो शुद्धिके लिये यात्रा करके देवेश्वरी गङ्गामें नहानेके लिये जाता है, वह जितने पग चलता है, उतने वर्षोंतक अवश्य ही वैकुण्ठधाममें आनन्द भोगता है। यदि आनुषङ्गिकरूपसे भी गङ्गाको पाकर कोई पापयुक्त मनुष्य उसमें स्नान करता है तो वह उस समय सब पापोंसे मुक्त हो जाता है। यदि वह फिर पापमें लिप्त न हो तो निष्पाप ही रहता है। कलियुगमें पाँच हजार वर्षोंतक भारतवर्षमें गङ्गाकी साक्षात् स्थिति है। उसके विद्यमान होते हुए कलिका क्या प्रभाव रह सकता है? कलिमें दस हजार वर्षोंतक मेरी प्रतिमाएँ तथा पुराण रहते हैं। उनके होते हुए वहाँ कलिका प्रभाव क्या हो सकता है?

गङ्गाकी जो धारा पातालललोकको जाती है, उसका नाम भोगवती है। वह सदा दुग्ध-फेनके समान स्वच्छ तथा अत्यन्त वेगवती है। अमूल्य रत्नों तथा श्रेष्ठ मणियोंकी वह सदा खान बनी रहती है। सुस्थिर यौवनवाली नागकन्याएँ उसके तटपर सदा ही क्रीड़ा करती हैं। स्वयं देवी गङ्गा वैकुण्ठको चारों ओरसे घेरकर सदा प्रवाहित होती रहती हैं। मेरी इस पुत्रीका विनाश प्रलयकालमें भी नहीं होता। उसका परम मनोहर दिव्य तट नाना रत्नोंकी खान है। इस प्रकार गङ्गाके जन्मका साथ पुण्यदायक प्रसङ्ग मैंने कह सुनाया। अब ब्रह्माजीको मोहिनीके शापसे किस प्रकार छुटकारा मिला, यह सुनो।

(अध्याय ३४)

गङ्गा-स्नानसे ब्रह्माजीको मिले हुए शापकी निवृत्ति, गोलोकमें ब्रह्माजीको भारतीकी प्राप्ति, भारतीसहित ब्रह्माका अपने लोकमें प्रवेश, भगवान् शिवके दर्पभङ्गकी कथा, वृकासुरसे उनकी रक्षा, श्रीराधिकाके पूछनेपर श्रीकृष्णके द्वारा शिवके तत्त्व-रहस्यका निरूपण

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! तदनन्तर सबने गङ्गाको देखकर मेरी माया मानी। उस समय नारायणने कृपापूर्वक ब्रह्माजीसे कहा।

श्रीनारायण बोले—चतुर्मुख! उठो, जाओ, तुम्हारा कल्याण होगा। तुम्हें शाप लगा है; अतः मेरी आज्ञासे इस गङ्गामें स्नान करके पवित्र हो जाओ। यद्यपि तुम स्वयं पवित्र हो और ये समस्त तीर्थ तुम वैष्णवपतिका स्पर्श प्राप्त करना चाहते हैं, तथापि प्रकृतिकी अवहेलना करने (हँसी उड़ाने)- से तुम्हें शाप मिला है। अहंकार सभीके लिये पापोंका बीज और अमङ्गलकारी होता है। तुम शीघ्र मेरे परात्पर धाम गोलोकको जाओ। वहाँ प्रकृतिकी अंशरूपा मङ्गलदायिनी भारतीको पाओगे। कल्याण-सृष्टिकी बीजरूपिणी प्रकृतिको अपनाओ। अहो! तुमने एक कल्पतक तप किया है तो भी इस समय एक अप्सराके शापसे कोई भी तुम्हारे मन्त्रको नहीं ग्रहण करते हैं। अन्य देवताओंकी पूजामें भी तुम्हारी ही पूजा होगी; क्योंकि तुम्हीं जगत्‌के धारण-पोषण करनेवाले, स्वात्माराम, सर्वरूपी तथा सत्य और समस्त देहोंमें पूजास्वरूप हो।

उस समय मेरी आज्ञा मानकर जगद्गुरु ब्रह्माने गङ्गाके जलमें स्नान किया और मुझे प्रणाम करके वे शीघ्र ही गोलोकको चले गये। फिर समस्त देवता और मुनि भी प्रसन्नतापूर्वक अपने-अपने स्थानको लौट गये। वे बारंबार मेरे परम निर्मल यशका गान कर रहे थे। ब्रह्माजीने गोलोकमें जाकर मेरे मुखारविन्दसे निर्गत, सम्पूर्ण विद्याओंकी अधिदेवी सती भारतीको प्राप्त किया। वागीश्वरी भारतीको पाकर उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन त्रिभुवनमोहिनी देवीको प्राप्त करके मुझे प्रणाम करनेके अनन्तर वे लौट आये। ब्रह्मलोकके निवासियोंने उन भारतीदेवीको देखा। वे कौतूहलसे भरी हुई, परम सुन्दरी, रमणीया तथा श्वेतवर्णा थीं। उनके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी। मुख शरद् ऋतुके चन्द्रमाको लज्जित कर रहा था। नेत्र शरद् ऋतुके प्रफुल्ल कमलोंके समान जान पड़ते थे। दीप्तिमान् ओष्ठ और अधरपल्लव पके बिम्बफलकी प्रभाको छीने लेते थे। मुक्तापंक्तिकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाली दन्तपंक्तियोंसे उनके मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। रत्ननिर्मित केयूर-कंगन हाथोंकी और रत्नोंके नूपुर चरणोंकी शोभा बढ़ाते थे। रत्नमय युगल कुण्डलोंसे कानोंके नीचेके भाग झलमला रहे थे।

रत्नेन्द्रसारनिर्मित हारसे उनका वक्षःस्थल अत्यन्त प्रकाशमान दिखायी देता था। वे अग्निशुद्ध सूक्ष्म वस्त्र धारण करके नूतन यौवनसे सम्पन्न एवं अत्यन्त कमनीय दृष्टिगोचर होती थीं। उनके दो हाथोंमें वीणा और पुस्तक तथा अन्य हाथोंमें व्याख्याकी मुद्रा देखी जाती थी। ब्रह्मलोकनिवासियोंने उनपर प्रिय वस्तुएँ निछावर करके परम मङ्गलमय उत्सव मनाया और ब्रह्मा तथा भारतीको वे सानन्द पुरीके भीतर ले गये।

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! ब्रह्माण्डोंमें जिन-जिन लोगोंको अपनी शक्तिपर गर्व होता है, उनके उस गर्व या अभिमानको जानकर मैं ही उनपर शासन करता हूँ—उनके घमंडको चूर कर देता हूँ; क्योंकि मैं सबका आत्मा और परात्पर परमेश्वर हूँ; पहले ब्रह्माके गर्वको जो मैंने चूर्ण किया था, वह प्रसङ्ग तो तुमने सुन लिया। अब शंकर, पार्वती, इन्द्र, सूर्य, अग्नि, दुर्वासा तथा धन्वन्तरिके अभिमान-भञ्जनका प्रसङ्ग क्रमशः सुनाता हूँ, सुनो। प्रिये! छोटे-बड़े जो भी लोग हैं, उनके इस तरहके गर्वको मैं अवश्य चूर्ण कर देता हूँ। स्वयं शिव मेरे अंश हैं, जगत्‌के संहारक हैं और मेरे समान ही तेज, ज्ञान तथा गुणसे परिपूर्ण हैं। प्रिये! योगीलोग उनका ध्यान करते हैं। वे योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु हैं तथा ज्ञानानन्दस्वरूप हैं। उनकी कथा कहता हूँ, सुनो। साठ सहस्र युगोंतक दिन-रात तपस्या करके मेरी कलासे पूर्ण भगवान् शिव तप और तेजमें मेरे समान हो गये। सनातन तेजकी राशि हो गये। उनमें करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश प्रकट हुआ। वे भक्तोंकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षरूप हो गये। योगीन्द्रगण दीर्घकालतक उनके तेजका ध्यान करते-करते उसके भीतर अत्यन्त सुन्दर स्वरूपका साक्षात्कार करने लगते हैं। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल है। वे पाँच मुखोंसे सुशोभित होते हैं और उनके प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते हैं। हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश हैं। कटिभागमें व्याघ्रचर्ममय वस्त्र शोभा पाता है। वे श्वेत कमलके बीजकी मालासे स्वयं ही अपने-आपका—अपने मन्त्रोंका जप करते हैं। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छायी रहती है। वे परात्पर शिव मस्तकपर अर्धचन्द्रका मुकुट तथा सुनहरे रंगकी जटाओंका भार धारण करते हैं। उनका स्वरूप शान्त है। वे तीनों लोकोंके स्वामी तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर रहनेवाले हैं। अपने-आपको परमेश्वर मानकर समस्त सम्पत्तियोंके दाता होकर कल्पवृक्षके समान सबको सारी मनोवाञ्छित वस्तुएँ देते हैं। जो जिस वस्तुकी इच्छा करता है, उसे वही वर देकर वे समस्त वरोंके स्वामी हो गये हैं। इस प्रकार स्वात्माराम शिव अपनी ही लीलासे अभिमानको अपनाकर गर्वयुक्त हो गये।

एक समयकी बात है। वृक नामक दैत्यने शिवके केदारतीर्थमें एक वर्षतक दिन-रात कठोर तपस्या की। कृपानिधान शिव प्रतिदिन कृपापूर्वक अभीष्ट वर देनेके लिये उसके पास जाते थे; परंतु वह असुर किसी दिन भी वर नहीं ग्रहण करता था; वर्ष पूर्ण होनेपर भगवान् शंकर निरन्तर उसके सामने उपस्थित रहने लगे। वे भक्ति-पाशसे बँधकर वर देनेके लिये उद्यत हो क्षणभर भी वहाँसे अन्यत्र न जा सके। सम्पूर्ण ऐश्वर्य, समस्त सिद्धि, भोग, मोक्ष तथा श्रीहरिका पद—यह सब कुछ भगवान् शूलपाणि देना चाहते थे; परंतु उस दैत्यने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। वह केवल उनके चरणकमलोंका ध्यान करता रहा। जब ध्यान टूटा, तब उस दैत्यराजने अपने सामने साक्षात् शिवको देखा, जो सम्पूर्ण सम्पदाओंके दाता हैं। उनकी ही मायासे प्रेरित हो वृकने भक्तिपूर्वक यह वर माँगा कि 'प्रभो! मैं जिसके माथेपर हाथ रख दूँ, वह जलकर भस्म हो

जाय।' तब 'बहुत अच्छा' कहकर जाते हुए भगवान् शिवके पीछे वह दैत्यराज दौड़ा। फिर तो मृत्युञ्जय शंकर मृत्युके भयसे त्रस्त होकर भागे। उनका डमरू गिर पड़ा। मनोहर व्याघ्रचर्मकी भी यही दशा हुई। वे दिगम्बर होकर दानवके भयसे दसों दिशाओंमें भागने लगे। वे चाहते तो उसे मार डालते; परंतु भक्तवत्सल जो ठहरे। अतः भक्तपर कृपा करके उसे मारते नहीं थे। साधु पुरुष दुष्टके अनुसार बर्ताव कदापि नहीं करते हैं। भगवान् शिव उसे समझा भी न सके। उन्होंने कृपापूर्वक उसे अपना स्वरूप ही माना; क्योंकि उनकी सर्वत्र समान दृष्टि थी। शिव उसे अपनी मृत्यु मानकर भयभीत हो उठे। उनका अहंकार गल गया। भद्रे! मुझे याद करते हुए उन्होंने मेरी ही शरण ली। उस समय मुझे अपने आश्रमपर आते देख उन्हें कुछ धैर्य मिला। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे और वे भयसे विह्वल हो 'हे हरे! रक्षा करो, रक्षा करो'—इसका जप कर रहे थे। तब मैंने उस दैत्यको अपने पास बिठाकर समझाया और सब समाचार पूछा। पूछनेपर उसने सब बातें क्रमशः बतायीं। उस समय मेरी आज्ञासे वह असुर तुरंत मायाद्वारा ठगा गया। (मैंने उसको यह कहकर मोहमें डाल दिया कि तुम अपने सिरपर हाथ रखकर परीक्षा तो करो कि यह बात सत्य है या नहीं।) उसने अपने मस्तकपर हाथ रखा और तत्काल जलकर भस्म हो गया। तब सिद्ध, सुरेन्द्र, मुनीन्द्र और मनु प्रसन्नतापूर्वक उत्तम भक्तिभावसे मेरी स्तुति करने लगे और शिवजी लज्जित हो गये। उनका गर्व चूर्ण हो गया। फिर मैंने उन्हें समझाया और वे अपने स्थानको गये।

इसी तरह गर्वमें भरे हुए रुद्र भयानक असुर त्रिपुरका वध करनेके लिये गये। वे मन-ही-मन यह समझकर कि 'मैं तो समस्त लोकोंका संहारक हूँ, फिर मेरे सामने इस पतिंगेके समान दैत्यकी क्या बिसात है?' युद्धक्षेत्रमें गये। उस समय उन्होंने मेरे दिये हुए त्रिशूल तथा श्रेष्ठ कवचको साथ नहीं लिया था। उनका त्रिपुरके साथ एक वर्षतक दिन-रात युद्ध होता रहा; किंतु कोई भी किसीपर विजय नहीं पा सका। समराङ्गणमें दोनों समान सिद्ध हुए। प्रिये! पृथ्वीपर युद्ध करके दैत्यराज मायासे बहुत ऊँचाईपर पचास करोड़ योजन ऊपर उठ गया। साथ ही विश्वनाथ शंकर भी उस दैत्यका वध करनेके लिये तत्काल ऊपरको उठे। वहाँ निराधार स्थानपर एक मासतक युद्ध चलता रहा। भयानक संग्राम हुआ। अन्तमें शिवको उठाकर उस दैत्यने भूतलपर दे मारा। रथसहित रुद्रके धराशायी हो जानेपर देवर्षिगण भयभीत हो मेरी स्तुति करने लगे और बार-बार बोले—'श्रीकृष्ण! रक्षा करो, रक्षा करो।' भयका कारण उपस्थित हुआ जान शिवने निर्भयतापूर्वक मेरा ही स्मरण किया। उन्होंने संकटकालमें मेरे ही दिये हुए स्तोत्रसे भक्तिपूर्वक मेरा स्तवन किया। उस समय अपनी कलाद्वारा शीघ्र ही वृषभरूप धारण करके मैंने सोते शंकरको सींगोंसे उठाया और उन्हें अपना कवच तथा शत्रुमर्दन शूल दिया। उसे पाकर उन्होंने दानवोंके उस अत्यन्त ऊँचे स्थान त्रिपुरको, जो आकाशमें निराधार टिका हुआ था, मेरे दिये हुए शूलसे नष्ट कर दिया। इसके बाद शिवने मुझ दर्पहन्ताको ही बारंबार लज्जापूर्वक स्तवन किया। दैत्यराज त्रिपुर उसी क्षण चूर-चूर होकर पृथ्वीपर गिर पड़ा। यह देख सब देवता और मुनि प्रसन्नतापूर्वक शिवजीकी स्तुति करने लगे। तबसे भगवान् शंकरने विघ्नके बीजस्वरूप दर्पको त्याग दिया। वे ज्ञानानन्दस्वरूपसे स्थित हो सब कर्मोंमें निर्लिप्तभावसे संलग्न रहने लगे। तदनन्तर मैं अपने प्रिय भक्त शंकरको वृषरूपसे पीठपर वहन करने लगा; क्योंकि तीनों लोकोंमें शिवसे बढ़कर प्रियतम मेरे लिये दूसरा

कोई नहीं है*। ब्रह्मा मेरे मनस्स्वरूप, महेश्वर मेरे ज्ञानरूप और मूलप्रकृति ईश्वरी भगवती दुर्गा मेरी बुद्धिरूपा हैं। निद्रा आदि जो-जो शक्तियाँ हैं, वे सब-की-सब प्रकृतिकी कलाएँ हैं। साक्षात् सरस्वती मेरी वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। कल्याणके अधिदेवता गणेशजी मेरे हर्ष हैं। स्वयं धर्म परमार्थ है तथा अग्निदेव मेरे भक्त हैं; गोलोकके सम्पूर्ण निवासी मेरे समस्त ऐश्वर्यके अधिदेवता हैं। तुम सदा मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी एवं प्राणोंसे भी अधिक प्यारी हो। गोपाङ्गनाएँ तुम्हारी कलाएँ हैं; अतएव मुझे प्यारी हैं। गोलोकनिवासी समस्त गोप मेरे रोमकूपसे उत्पन्न हुए हैं†। सूर्य मेरे तेज और वायु मेरे प्राण हैं। वरुण जलके अधिदेवता तथा पृथ्वी मेरे मलसे प्रकट हुई है। मेरे शरीरका शून्यभाग ही महाकाश कहा गया है। कामकी उत्पत्ति मेरे मनसे हुई है। इन्द्र आदि सब देवता मेरी कलाके अंशांशसे प्रकट हुए हैं। सृष्टिके बीजरूप जो महत् आदि तत्त्व हैं, उन सबका बीजरूप आश्रयहीन आत्मा मैं स्वयं ही हूँ। कर्मभोगका अधिकारी जीव मेरा प्रतिबिम्ब है। मैं साक्षी और निरीह हूँ। किसी कर्मका भोगी नहीं हूँ। मुझ स्वेच्छामय परमेश्वरका यह शरीर भक्तोंके ध्यानके लिये है। एकमात्र परात्पर परमेश्वर मैं ही प्रकृति हूँ और मैं ही पुरुष हूँ।

श्रीराधिकाने पूछा—भगवन्! आप सब तत्त्वोंके ज्ञाता, सबके बीज और सनातन पुरुष हैं। समस्त संदेहोंका निवारण करनेवाले प्रभो! मेरे अभीष्ट प्रश्नका समाधान कीजिये। भगवान् शंकर सम्पूर्ण ज्ञानोंके अधिदेवता, समस्त तत्त्वोंके ज्ञाता, मृत्युञ्जय, कालके भी काल तथा आपके ही तुल्य महान् हैं। फिर वे अपने सारे अङ्गोंमें विभूति क्यों लगाते हैं? पञ्चमुख और त्रिलोचन क्यों कहलाते हैं? दिगम्बर और जटाधारी क्यों हैं? सर्प-समुदायसे क्यों विभूषित होते हैं? वे देवेन्द्र श्रेष्ठ वाहन छोड़कर वृषभके द्वारा क्यों भ्रमण करते हैं? रत्नसारनिर्मित आभूषण क्यों नहीं धारण करते हैं? अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्रको त्यागकर व्याघ्रचर्म क्यों पहनते हैं? पारिजात छोड़कर धतूरके फूल क्यों धारण करते हैं? उन्हें मस्तकपर रत्नमय किरीट धारण करनेकी इच्छा क्यों नहीं होती? जटापर ही उनकी अधिक प्रीति क्यों है? दिव्यलोक छोड़कर उन प्रभुको श्मशानमें रहनेकी अभिलाषा क्यों होती है? चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुगन्धित पुष्पोंको छोड़कर वे बिल्वपत्र तथा बिल्व-काष्ठके अनुलेपनकी स्पृहा क्यों रखते हैं? मैं यह सब जानना चाहती हूँ। प्रभो! आप विस्तारके साथ इसका वर्णन करें। नाथ! इसे सुननेके लिये मेरे मनमें कौतूहल बढ़ रहा है। इच्छा जाग उठी है।

राधिकाकी यह बात सुनकर मधुसूदनने हँसते हुए उन्हें अपने समीप बिठा लिया और कथा कहना आरम्भ किया।

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! पूर्णतम महेश्वरने साठ हजार युगोंतक तप करते हुए मनके द्वारा सानन्द मेरा ध्यान किया। तत्पश्चात् वे तपस्यासे विरत हो गये। इसी बीच उन्होंने मुझे अपने सामने खड़ा देखा। अत्यन्त कमनीय अङ्ग, किशोर अवस्था और परम उत्तम श्यामसुन्दर रूप—सब कुछ अनिर्वचनीय था। मेरे उस रूपको देखकर त्रिलोचनके लोचन तृप्त न हो सके। वे एकटक नेत्रोंसे देखते रहे तथा भक्तिके उद्रेकसे

---

* ततोऽहं वृषरूपेण वहामि तेन तं प्रियम्। मम प्रियतमो नास्ति त्रैलोक्येषु शिवात्परः॥ (३६। ५७)

† गोपाङ्गनास्तव कला अतएव मम प्रियाः। मल्लोमकूपजा गोपाः सर्वे गोलोकवासिनः॥ (३६। ६२)

प्रेम-विह्वल हो महाभक्त शिव रोने लगे। उन्होंने सोचा, सहस्रमुख शेषनाग तथा चतुर्मुख ब्रह्मा बड़े भाग्यवान् हैं, जिन्होंने बहुसंख्यक नेत्रोंसे भगवान्‌के मनोहर रूपका दर्शन करके अनेक मुखोंसे उनकी स्तुति की है। मैं ऐसे स्वामीको पाकर दो ही नेत्रोंसे इनके रूपको क्या देखूँ और एक ही मुखसे इनकी क्या स्तुति करूँ? इस बातको उन्होंने चार बार दोहराया। तपस्वी शंकरके मन-ही-मन इस प्रकार संकल्प करनेपर उनके चार मुख और प्रकट हो गये तथा पहलेके मुखको लेकर पञ्चम संख्याकी ही पूर्ति हो गयी। उनका एक-एक मुख तीन-तीन नेत्रोंसे सुशोभित होने लगा; इसलिये वे पञ्चमुख और त्रिलोचन नामसे प्रसिद्ध हुए। शिवकी स्तुतिकी अपेक्षा मेरे रूपके दर्शनमें ही अधिक प्रेम है; इसलिये उनके नेत्र ही अधिक प्रकट हुए। उन ब्रह्मस्वरूप शिवके वे तीन नेत्र सत्त्व, रज तथा तम नामक तीन गुणरूप हैं; इसका कारण सुनो। भगवान् शिव सात्त्विक अंशवाली दृष्टिसे देखते हुए सात्त्विक जनोंकी, राजस दृष्टिसे राजसिक लोगोंकी तथा तामस दृष्टिसे तमोगुणी लोगोंकी रक्षा करते हैं। संहारकर्ता हरके ललाटवर्ती तामस नेत्रसे पीछे चलकर संहारकालमें क्रोधपूर्वक संवर्तक अग्निका आविर्भाव होता है। वे अग्निदेव करोड़ों ताड़ोंके बराबर ऊँचे, करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान तथा विशाल लपटोंसे युक्त हो अपनी जीभ लपलपाते हुए तीनों लोकोंको दग्ध कर देनेमें समर्थ हैं।

भगवान् शंकर सतीके दाह-संस्कारजनित भस्मको लेकर अपने अङ्गोंमें मलते हैं। इसलिये 'विभूतिधारी' कहे जाते हैं। सतीके प्रति प्रेमभावके कारण ही वे उनकी हड्डियोंकी माला और भस्म धारण करते हैं। यद्यपि शिव स्वात्माराम हैं, तथापि उन्होंने पूरे एक सालतक सतीके शवको लेकर चारों ओर घूमते हुए रोदन किया था। सतीका एक-एक अङ्ग जहाँ-जहाँ गिरा, वहाँ-वहाँ सिद्धपीठ हो गया, जो मन्त्रोंकी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। राधिके! तदनन्तर अवशिष्ट शवको छातीसे लगाकर वे मूर्च्छित हो सिद्धिक्षेत्रमें गिर पड़े। तब मैंने महेश्वरके पास जा उन्हें गोदमें ले सचेत किया और शोकको हर लेनेवाले परम उत्तम दिव्य तत्त्वका उपदेश दिया। उस समय शिव संतुष्ट हो अपने लोकको पधारे और अपनी ही दूसरी मूर्ति कालके द्वारा उन्होंने अपनी प्रिया सतीको प्राप्त कर लिया। वे योगस्थ होनेके कारण दिगम्बर हैं। उन नित्य परमेश्वरमें इच्छाका सर्वथा अभाव है। उनके सिरपर जो जटाएँ हैं, वे तपस्या-कालकी हैं, जिन्हें वे आज भी विवेकपूर्वक धारण करते हैं। योगीको केशोंका संस्कार करने (बालोंको सँवारने) तथा शरीरको वेशभूषासे विभूषित करनेकी इच्छा नहीं होती। उसका चन्दन और कीचड़में तथा मिट्टीके ढेले और श्रेष्ठ मणिरत्नमें भी समभाव होता है। गरुड़से द्वेष रखनेवाले सर्प भगवान् शंकरकी शरणमें गये। उन्हीं शरणागतोंको वे कृपापूर्वक अपने शरीरमें धारण करते हैं। उनका वृषभरूप वाहन तो मैं स्वयं हूँ। दूसरा कोई भी उनका भार वहन करनेमें समर्थ नहीं है। पूर्वकालमें त्रिपुरके वधके समय मेरे कलांशसे उस वृषभकी उत्पत्ति हुई। पारिजात आदि पुष्प तथा चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थ वे शिव मुझको अर्पित कर चुके हैं; इसलिये उनमें उनकी कभी प्रीति नहीं होती। धतूर, बिल्वपत्र, बिल्व-काष्ठका अनुलेपन, गन्धहीन पुष्प तथा व्याघ्रचर्म योगियोंको अभीष्ट हैं। इसलिये उनमें उनकी सदा प्रीति रहती है। दिव्य लोकमें, दिव्य शय्यामें और जनसमुदायमें उनका मन नहीं लगता है; इसलिये वे अत्यन्त एकान्त श्मशानमें रहकर दिन-रात मेरा ध्यान किया करते हैं। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त प्रत्येक प्राणीको भगवान् शिव समान समझते हैं। केवल मेरे इस अनिर्वचनीय रूपमें ही उनका मन निरन्तर लगा

रहता है। ब्रह्माजीका पतन हो जानेपर भी शूलपाणि शंकरका क्षय नहीं होता। उनकी आयुका प्रमाण मैं भी नहीं जानता, फिर श्रुति क्या जानेगी? मृत्युञ्जय शिव ज्ञानस्वरूप हैं। वे मेरे तेजके समान शूल धारण करते हैं। मेरे बिना कोई भी शंकरको जीत नहीं सकता। शंकर मेरे परम आत्मा हैं। शिव मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर हैं। उन त्रिलोचनमें मेरा मन सदा लगा रहता है। भगवान् भवसे बढ़कर मेरा प्रिय और कोई नहीं है। राधे! मैं गोलोक और वैकुण्ठमें नहीं रहता। तुम्हारे वक्षमें भी वास नहीं करता। मैं तो सदाशिवके प्रेमपाशमें बँधकर उन्हींके हृदयमें निरन्तर निवास करता हूँ*।

शंकर अपने पाँच मुखोंद्वारा मीठी तानके साथ सदा मेरी गाथाका स्वरसिद्ध गान किया करते हैं। इसलिये मैं उनके समीप रहता हूँ। वे योगद्वारा भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे ब्रह्माण्ड-समुदायकी सृष्टि और संहार करनेमें समर्थ हैं। शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई योगी नहीं है। जो अपने दिव्य ज्ञानसे भ्रूभङ्ग-लीलाद्वारा नष्ट हुए मृत्यु और काल आदिकी पुनः सृष्टि करनेमें समर्थ हैं; उन शंकरसे बढ़कर कोई ज्ञानी नहीं है। वे मेरी भक्ति, दास्यभाव, मुक्ति, समस्त सम्पत्ति तथा सम्पूर्ण सिद्धिको भी देनेमें समर्थ हैं; अतः शंकरसे बढ़कर कोई दाता नहीं है। वे पाँच मुखोंसे दिन-रात मेरे नाम और यशका गान करते हैं और निरन्तर मेरे स्वरूपका ध्यान करते रहते हैं; अतः शंकरसे बढ़कर कोई भक्त नहीं है। मैं, सुदर्शनचक्र तथा शिव—ये तीनों समान तेजस्वी हैं। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा भी योग और तेजमें हम लोगोंकी समानता नहीं करते हैं। प्रिये! इस प्रकार मैंने शंकरके निर्मल यशका पूर्णतः वर्णन किया, तथापि उनका भी दर्प दलित हुआ। अब तुम और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ३५-३६)

देवी सती और पार्वतीके गर्व-मोचनकी कथा, सतीका देहत्याग, पार्वतीका जन्म, गर्ववश उनके द्वारा आकाशवाणीकी अवहेलना, शंकरजीका आगमन, शैलराजद्वारा उनकी स्तुति तथा उस स्तुतिकी महिमा

तदनन्तर शिव-निर्माल्यका प्रसङ्ग सुनाकर श्रीकृष्णने कहा—देवि! जगद्गुरु शंकरके दर्प-भङ्गका वृत्तान्त तो तुमने सुन लिया। अब मुझसे दुर्गाके दर्पविमोचनकी कथा सुनो। सम्पूर्ण देवताओंके तेजसे प्रकट हो जगदम्बाने कामिनीका कमनीय एवं मनोहर रूप धारण किया तथा दानवेन्द्रोंका वध करके देवकुलकी रक्षा की। इसके बाद देवीने दक्षपत्नीके उदरसे जन्म लिया। दक्षकन्या सतीदेवीने पिनाकपाणि शिवको पतिरूपमें ग्रहण किया और बड़ी भक्तिके साथ वे निरन्तर स्वामीकी सेवामें लगी रहीं। दैवयोगसे देवताओंकी सभामें दक्षके साथ शिवकी अकारण शत्रुता हो गयी। दक्षने घर आकर एक यज्ञका आयोजन किया। उसमें उन्होंने समस्त देवताओंको आमन्त्रित किया; किंतु क्रोधके कारण शंकरको नहीं बुलाया। सब देवता अपनी पत्नियोंके साथ दक्षके घर आये; परंतु स्वाभिमानवश शंकर अपने गणोंके साथ वहाँ नहीं गये। उनके मनमें भी

*शंकरः परमात्मा मे प्राणेभ्योऽपि परः शिवः। त्र्यम्बके मन्मनः शश्वत् प्रियो मे भवात्परः॥
न संवसामि गोलोके वैकुण्ठे तव वक्षसि। सदाशिवस्य हृदये निबद्धः प्रेमपाशतः॥
(३६। १०८, ११०)

दक्षके प्रति बड़ा रोष था। सतीके मनमें पिता आदिके प्रति मोह था; इसलिये उन्होंने यत्नपूर्वक पतिदेवको उस यज्ञमें चलनेके लिये समझाया। जब किसी तरह उन्हें वहाँ ले जानेमें वे समर्थ न हो सकीं, तब स्वयं चञ्चल हो उठीं और पतिकी आज्ञा प्राप्त किये बिना ही दर्पवश पिताके घर चली आयीं। पतिके शापसे वहाँ उनका दर्प-भङ्ग हुआ। पिताने उनसे बाततक नहीं की। वाणीमात्रसे भी पुत्रीका सत्कार नहीं किया। इतना ही नहीं, उन्हें वहाँ पतिकी निन्दा भी सुननी पड़ी। उसे सुनकर स्वाभिमानवश सतीने अपने शरीरको त्याग दिया।

प्रिये! इस प्रकार सतीके दर्प-भङ्गका वृत्तान्त कहा गया। अब तुम उनके जन्मान्तर तथा दर्प-दलनकी कथा सुनो। सतीने शीघ्र ही गिरिराज हिमालयकी पत्नी मेनाके गर्भसे जन्म ग्रहण किया। शिवने प्रेमवश सतीकी चिताका भस्म और उनकी अस्थियाँ ग्रहण कीं। अस्थियोंकी तो माला बनायी और भस्मसे अङ्गरागका काम लिया। वे प्रेमवश बार-बार सतीको याद करते और उनके विरहमें इधर-उधर घूमते रहते थे। उधर मेनाने देवीको जन्म दिया। उनकी आकृति बड़ी ही मनोहर थी। विधाताकी सृष्टिमें गिरिराजनन्दिनीके लिये कहीं कोई उपमा नहीं थी। गुणोंकी तो वे जननी ही हैं; अतः सभी और सब प्रकारके सद्गुणोंको धारण करती हैं। समस्त देवपत्नियाँ उनकी सोलहवीं कलाके बराबर भी नहीं हैं। जैसे शुक्लपक्षमें चन्द्रमाकी कला बढ़ती है, उसी तरह हिमालयके घरमें वे देवी दिनोंदिन बढ़ने लगीं। जब उन्होंने युवावस्थामें प्रवेश किया, तब उन जगदम्बाको सम्बोधित करके आकाशवाणीने कहा—'शिवे! तुम कठोर तपस्याद्वारा भगवान् शिवको पति-रूपमें प्राप्त करो; क्योंकि तपस्याके बिना ईश्वरको पाना अथवा उनके अंशसे गर्भ धारण करना असम्भव है।' यह आकाशवाणी सुनकर यौवनके गर्वसे भरी हुई पार्वती हँसकर चुप हो रहीं। वह मन-ही-मन सोचने लगीं कि 'जो मेरे दूसरे जन्मकी अस्थि और भस्मको धारण करते हैं; वे इस जन्ममें मुझे सयानी हुई देख कैसे नहीं ग्रहण करेंगे। जो चतुर होकर भी मेरे शोकसे समूचे ब्रह्माण्डमें भटकते फिरे; वे ही मुझ परम सुन्दरीको अपनी आँखोंसे देख लेनेपर क्यों नहीं ग्रहण करेंगे? जिन कृपानिधानने मेरे लिये दक्षयज्ञका विध्वंस कर डाला था; वे अपनी जन्म-जन्मकी पत्नी मुझ पार्वतीको क्यों नहीं ग्रहण करेंगे? पूर्वजन्मसे ही जो जिसकी पत्नी है और जिसका जो पति है, उन दोनोंमें यहाँ भेद कैसे हो सकता है? क्योंकि प्रारब्धको कोई पलट नहीं सकता।'

अत्यन्त अभिमानके कारण अपनेको समस्त रूप और गुणोंका आधार मानकर साध्वी शिवाने तप नहीं किया। उन्होंने शिवको ईश्वर नहीं समझा। 'समस्त सुन्दरियोंमें मुझसे बढ़कर सुन्दरी दूसरी कोई नहीं है'—यह धारणा हृदयमें लेकर शिवादेवी गर्ववश तपस्यामें नहीं प्रवृत्त हुईं। वे यही सोचती थीं कि पुरुष अपनी स्त्रियोंके रूप, यौवन तथा वेशभूषाका ग्राहक है। शिव मेरा नाम सुनते ही बिना तपस्याके मुझे ग्रहण कर लेंगे। मनमें यह विश्वास लेकर गिरिजा हिमवान्‌के घरमें रहती थीं और दिन-रात सखी-सहेलियोंके बीच खेल-कूदमें मतवाली रहा करती थीं। इसी समय शीघ्रतापूर्वक दूतने गिरिराजके भवनमें आकर दोनों हाथ जोड़ उनके सामने मधुर वाणीमें कहा।

दूत बोला—शैलराज! उठिये, उठिये। अक्षयवटके पास जाइये। वहाँ वृषभवाहन महादेवजी अपने गणोंके साथ पधारे हैं। महाराज! आप भक्तिभावसे मस्तक झुका उन्हें मधुपर्क आदि देकर उन इन्द्रियातीत देवेश्वरका पूजन कीजिये।

महादेवजी सिद्धिस्वरूप, सिद्धोंके स्वामी, योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु, मृत्युञ्जय, कालके भी काल तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं। ये प्रभु परमात्मस्वरूप, सगुण तथा निर्गुण हैं। उन्होंने भक्तोंके ध्यानके लिये निर्मल महेश्वररूप धारण किया है।

दूतकी यह बात सुनकर हिमवान् प्रसन्नता-पूर्वक उठे और मधुपर्क आदि साथ ले भगवान् शंकरके समीप गये। दूतकी पूर्वोक्त बात सुनकर देवी शिवाके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। उन्होंने अपने मनमें यही माना कि महेश्वर मेरे ही लिये आये हैं। यही जानकर उन्होंने विविध दिव्य वस्त्रों तथा दिव्य रत्नालंकारों एवं मालाओंके द्वारा अपने सम्पूर्ण अङ्गोंको सुसज्जित किया। तत्पश्चात् अपने अनुपम रूपको देखकर पार्वतीने मन-ही-मन शंकरजीका ध्यान किया। विशेषतः स्वामीके चरणकमलोंका वे चिन्तन करने लगीं। उस समय शिवको छोड़कर पिता, माता, बन्धु-बान्धव, साध्वी वर्ग तथा सहोदर भाई किसीको भी उन्होंने अपने मनमें स्थान नहीं दिया।

इधर गिरिराज हिमालयने वहाँ जाकर भगवान् चन्द्रशेखरके दर्शन किये। वे गङ्गाजीके रमणीय तटसे ऊपरको आ रहे थे। उनके मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी। वे संस्कारयुक्त माला धारण किये मेरे नामका जप कर रहे थे। उनके सिरपर सुनहरी प्रभासे युक्त जटाराशि विराजमान थी। वे वृषभकी पीठपर बैठकर हाथमें त्रिशूल लिये सब प्रकारके आभूषणोंसे सुशोभित थे। सर्पका ही यज्ञोपवीत पहने सर्पमय आभूषणोंसे विभूषित थे। उनकी अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल थी, वे वस्त्रके स्थानमें व्याघ्रचर्म धारण किये, हड्डियोंकी माला पहने तथा अङ्गोंमें विभूति रमाये बड़ी शोभा पाते थे। दिगम्बर वेष, पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। उनके श्रीअङ्गोंसे करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाश फैल रहा था। हिमवान्ने उनके चारों ओर एकादश रुद्रोंको देखा, जो ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान थे। शिवके वामभागमें महाकाल और दाहिने भागमें नन्दिकेश्वर खड़े थे। भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, बेताल, क्षेत्रपाल, भयानक पराक्रमी भैरव, सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, सनातन, जैगीषव्य, कात्यायन, दुर्वासा और अष्टावक्र आदि ऋषि—सब उनके सामने खड़े थे। हिमालयने इन सबको मस्तक झुकाकर भगवान् शिवको प्रणाम किया और पृथ्वीपर माथा टेक दण्डकी भाँति पड़कर दोनों हाथ जोड़ लिये। इसके बाद बड़ी भक्ति-भावनासे शिवके चरणकमल पकड़कर पर्वतराजने नमस्कार किया और नेत्रोंसे आँसू बहाते पुलकित-शरीर हो धर्मके दिये हुए स्तोत्रसे परमेश्वर शिवकी स्तुति आरम्भ की।

हिमालय बोले—भगवन्! आप ही सृष्टिकर्ता ब्रह्मा हैं। आप ही जगत्पालक विष्णु हैं। आप ही सबका संहार करनेवाले अनन्त हैं और आप ही कल्याणदाता शिव हैं। आप गुणातीत ईश्वर, सनातन ज्योतिःस्वरूप हैं। प्रकृति और उसके ईश्वर हैं। प्राकृत पदार्थरूप होते हुए भी प्रकृतिसे परे हैं। भक्तोंके ध्यान करनेके लिये आप अनेक रूप धारण करते हैं। जिन रूपोंमें जिसकी प्रीति है, उसके लिये आप वे ही रूप धारण करते हैं। आप ही सृष्टिके जन्मदाता सूर्य हैं। समस्त तेजोंके आधार हैं। आप ही शीतल किरणोंसे सदा शस्योंका पालन करनेवाले सोम हैं। आप ही वायु, वरुण और सर्वदाहक अग्नि हैं। आप ही देवराज इन्द्र, काल, मृत्यु तथा यम हैं। मृत्युञ्जय होनेके कारण मृत्युकी भी मृत्यु, कालके भी काल तथा यमके भी यम हैं। वेद, वेदकर्ता तथा वेद-वेदाङ्गोंके पारङ्गत विद्वान् भी आप ही

हैं। आप ही विद्वानोंके जनक, विद्वान् तथा विद्वानोंके गुरु हैं। आप ही मन्त्र, जप, तप और उनके फलदाता हैं। आप ही वाक् और आप ही वाणीकी अधिष्ठात्री देवी हैं। आप ही उसके स्रष्टा और गुरु हैं। अहो! सरस्वतीका बीज अद्भुत है। यहाँ कौन आपकी स्तुति कर सकता है?

ऐसा कहकर गिरिराज हिमालय उनके चरणकमलोंको धारण करके खड़े रहे। भगवान् शिव वृषभपर बैठे हुए शैलराजको प्रबोध देते रहे। जो मनुष्य तीनों संध्याओंके समय इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है, वह भवसागरमें रहकर भी समस्त पापों तथा भयोंसे मुक्त हो जाता है। पुत्रहीन मनुष्य यदि एक मासतक इसका पाठ करे तो पुत्र पाता है। भार्याहीनको सुशीला तथा परम मनोहारिणी भार्या प्राप्त होती है। वह चिरकालसे खोयी हुई वस्तुको सहसा तथा अवश्य पा लेता है। राज्यभ्रष्ट पुरुष भगवान् शंकरके प्रसादसे पुनः राज्यको प्राप्त कर लेता है। कारागार, श्मशान और शत्रु-संकटमें पड़नेपर तथा अत्यन्त जलसे भरे गम्भीर जलाशयमें नाव टूट जानेपर, विष खा लेनेपर, महाभयंकर संग्रामके बीच फँस जानेपर तथा हिंसक जन्तुओंसे घिर जानेपर इस स्तुतिका पाठ करके मनुष्य भगवान् शंकरकी कृपासे समस्त भयोंसे मुक्त हो जाता है।

(अध्याय ३७-३८)

गिरिराज हिमवान्‌द्वारा गणोंसहित शिवका सत्कार, मेनाको शिवके अलौकिक सौन्दर्यके दर्शन, पार्वतीद्वारा शिवकी परिक्रमा, शिवका उन्हें आशीर्वाद, शिवाद्वारा शिवका षोडशोपचार-पूजन, शंकरद्वारा कामदेवका दहन तथा पार्वतीको तपस्याद्वारा शिवकी प्राप्ति

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! इस प्रकार स्तुति करके गिरिराज हिमवान् नगरसे दूर निवास करनेवाले भगवान् शंकरसे कुछ ही दूरीपर उनकी आज्ञा ले स्वयं भी ठहर गये। उन्होंने भक्तिपूर्वक भगवान्‌को मधुपर्क आदि दिया और मुनियों तथा शिवके पार्षदोंका पूजन किया। उस समय मेना स्त्रियोंके साथ वहाँ आयी। उसने वटके नीचे आसन लगाये चन्द्रशेखर शिवको देखा। उनके प्रसन्न मुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। वे व्याघ्रचर्म धारण किये मुनि-मण्डलीके मध्य भागमें ब्रह्मतेजसे प्रकाशित हो रहे थे, मानो आकाशमें तारिकाओंके बीच द्विजराज चन्द्रमा शोभा पा रहे हों। करोड़ों कन्दर्पोंके समान उनका मनोहर रूप अत्यन्त आह्लाद प्रदान करनेवाला था। वे वृद्धावस्था छोड़कर नूतन यौवन धारण करते थे और अत्यन्त सुन्दर रमणीय रूप हो युवतियोंके चित्त चुरा रहे थे। वे कामातुर कामिनियोंको कामदेवके समान जान पड़ते थे। सतियोंको औरस पुत्रके समान प्रतीत होते थे। वैष्णवोंको महाविष्णु तथा शैवोंको सदाशिवके रूपमें दृष्टिगोचर होते थे। शक्तिके उपासकोंको शक्तिस्वरूप, सूर्यभक्तोंको सूर्यरूप, दुष्टोंको कालरूप तथा श्रेष्ठ पुरुषोंको परिपालकके रूपमें दिखायी देते थे। कालको कालके समान, मृत्युको मृत्यु एवं अत्यन्त भयानक जान पड़ते थे। स्त्रियोंके लिये उनका व्याघ्रचर्म मनोहर वस्त्र बन गया। भस्म चन्दन हो गया। सर्प सुन्दर मालाओंके रूपमें परिणत हो गये। कण्ठमें कालकूटकी प्रभा कस्तूरीके समान प्रतीत हुई। जटा सुन्दर सँवारी हुई चूड़ा

जान पड़ी। चन्द्रमा भाल-देशमें चन्दन जान पड़े। मस्तकपर गङ्गाकी मनोहारिणी धारा परम सुन्दर मालती मालाके रूपमें परिणत हो गयी। अस्थियोंकी माला रत्नमाला बन गयी। धतूर मनोहर चम्पाके रूपमें बदल गया। पाँच मुखके स्थानमें उन्हें एक ही मुख दिखायी देने लगा, जो दो नेत्र-कमलोंसे सुशोभित था। मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी आभाको प्रतिहत करके अत्यन्त देदीप्यमान हो रहा था। बन्धुजीव (दुपहरिया)-की लालीको तिरस्कृत करनेवाले उनके ओष्ठ और अधरसे मुखकी मनोहरता बढ़ गयी थी। श्वेत चन्द्रमा ही मानो वृषभराज नन्दी बन गये थे और भूत आदि नर्तकोंका काम करते थे। महेश्वरके स्वरूपमें तत्काल सब कुछ बदल गया। शिवका ऐसा रूप देख मेना बहुत संतुष्ट हुई। कितनी रमणियाँ भगवान् शंकरके रूप-सौन्दर्यको देखकर अत्यन्त मुग्ध हो गयीं और नाना प्रकारकी अभिलाषाएँ करने लगीं। अहो! पार्वती बड़ी पुण्यवती है। भारतवर्षमें इसीका जन्म स्पृहणीय है; क्योंकि ये शिव इसके स्वामी होनेवाले हैं।

इस प्रकारकी बातें कितनी ही स्त्रियाँ कर रही थीं। शिवका दर्शन करके मेना सानन्द अपने घरको लौट गयीं। शिवका पूजन करके उनके चरणोंमें मस्तक नवाकर शैलराज भी अपने घरको गये। गिरिराजने मेनाके साथ एकान्तमें सलाह करके पार्वतीको उसकी मङ्गल-कामनासे शिवके समीप भेजा। पार्वतीका हृदय भगवान् शंकरमें अनुरक्त था। सखियोंके साथ मनोहर वेष धारण करके हर्षपूर्वक वे शिवके निकट गयीं। वहाँ प्रसन्नमुख और नेत्रवाले शान्तस्वरूप शिवका दर्शन करके शिवाने सात बार परिक्रमा की और मुस्कराकर उन्हें प्रणाम किया। उस समय भगवान् शिवने आशीर्वाद देते हुए कहा—'सुन्दरि! तुम्हें अनन्य प्रेमी, गुणवान्, अमर, ज्ञानिशिरोमणि और सुन्दर पति प्राप्त हो। शुभे! तुम्हारा पतिविषयक सौभाग्य सतत बना रहे। साध्वि! तुम्हारा पुत्र नारायणके समान गुणवान् होगा। जगदम्बिके! तीनों लोकोंमें तुम्हारी उत्कृष्ट पूजा होगी। तुम समस्त ब्रह्माण्डोंमें सबसे श्रेष्ठ होओ। सुन्दरि! तुमने सात बार परिक्रमा करके भक्तिभावसे मुझे नमस्कार किया है। अतः मैं सात जन्मोंके लिये संतुष्ट हो गया। तुम उसका फल पाओ। तीर्थ, प्रियतम पति, इष्टदेवता, गुरुमन्त्र तथा औषधमें जिनकी जैसी आस्था होती है, उन्हें वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है।'

ऐसा कहकर योगीश्वर शंकरने व्याघ्रचर्मपर योगासन लगाया और शुद्ध परब्रह्मरूप ज्योतिका तत्काल ध्यान आरम्भ कर दिया। तब देवी पार्वतीने उनके दोनों चरण पखारकर चरणामृत-पान किया और अग्निशुद्ध वस्त्रसे भक्तिपूर्वक उन चरणोंका मार्जन किया। विश्वकर्माद्वारा निर्मित रमणीय रत्नसिंहासन उनकी सेवामें अर्पित किया। फिर कांस्यपात्रमें रखे हुए अपूर्व नैवेद्यका भोग लगाया। तत्पश्चात् उनके चरणोंमें गङ्गाजलसे युक्त अर्घ्य दिया। इसके बाद मनोहर सुगन्धयुक्त चन्दन तथा कस्तूरी और कुंकुम भी सेवामें प्रस्तुत किये। तदनन्तर हालाहल विषके चिह्नसे सुन्दर प्रतीत होनेवाले कण्ठमें मालतीकी माला पहनायी। भक्ति-भावसे पूजा की। शिवकी प्रसन्नताके लिये उनपर पुष्पोंकी वृष्टि की। सुवर्णपात्रमें अमृत और मधुर मधु दिया। सैकड़ों रत्नमय दीप जलाये। सब ओर उत्तम धूपकी सुगन्ध फैलायी। त्रिभुवन-दुर्लभ वस्त्र, सोनेके तारोंका यज्ञोपवीत तथा पीनेके लिये सुगन्धित एवं शीतल जल पार्वतीने अपने प्रियतमकी सेवामें प्रस्तुत किये। फिर रत्नसारेन्द्रनिर्मित अतिशय सुन्दर रमणीय भूषण, सुवर्णमढ़ी सींगवाली दुर्लभ कामधेनु, स्नानोपयोगी द्रव्य, तीर्थजल तथा मनोहर ताम्बूल भी क्रमशः अर्पित किये। इस

प्रकार षोडशोपचार चढ़ाकर पार्वतीने बारंबार प्रणाम किया। यह उनका नित्यका नियम बन गया। वे प्रतिदिन भक्तिभावसे शिवकी पूजा करके पिताके घर लौट जाया करती थीं।

अप्सराओंके मुखसे इन्द्रने यह सुना कि भगवान् महेश्वर पार्वतीदेवीके प्रति अनुरक्त हैं। यह समाचार सुनकर इन्द्र हर्षसे नाचने लगे। उन्होंने बड़ी उतावलीके साथ दूत भेजकर कामदेवको बुलवाया। इन्द्रकी आज्ञासे कामदेव अमरावतीपुरीमें गये। तब इन्द्रने उन्हें शीघ्र ही उस स्थानपर भेजा, जहाँ शिवा और शिव विद्यमान थे। पञ्चबाण कामने अपने पाँचों बाणोंको साथ ले उस स्थानको प्रस्थान किया, जहाँ शक्तिसहित शिव विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर मदनने देखा, भगवान् शिव शिवाके साथ विद्यमान हैं। उनके मुख और नेत्र प्रसन्न दिखायी देते हैं। वे त्रिभुवनकान्त एवं शान्त हैं। उन्हें देखकर कामदेव बाणसहित धनुष हाथमें लिये आकाशमें खड़ा हो गया। उसने बड़े हर्षके साथ अपने अमोघ एवं अनिवार्य अस्त्रका शंकरपर प्रयोग किया; परंतु वह अमोघ अस्त्र भी परमात्मा शंकरपर व्यर्थ हो गया। जैसे आकाश निर्लेप होता है, उसी तरह निर्लिप्त परमात्मा शिवपर जब वह शस्त्र विफल हो गया, तब कामदेवको बड़ा भय हुआ। वह सामने खड़ा हो भगवान् मृत्युञ्जयकी ओर देखता हुआ काँपने लगा। भयसे विह्वल हुए कामने इन्द्र आदि देवताओंका स्मरण किया। तब सब देवता वहाँ आये और शंकरके कोपसे डरकर काँपने लगे। उन्होंने स्तोत्र पढ़कर देवाधिदेव शंकरका स्तवन किया। इतनेमें ही शिवके ललाटवर्ती नेत्रसे कोपाग्नि प्रकट हुई। देवतालोग स्तुति कर ही रहे थे कि शम्भुसे उत्पन्न हुई वह आग ऊँची-ऊँची लपटें उठाती हुई प्रज्वलित हो उठी। वह प्रलयकालिक अग्निकी ज्वालाके समान जान पड़ती थी। आकाशमें ऊपर उठकर चक्कर काटती हुई वह आग पृथ्वीपर उतर आयी और चारों ओर चक्कर देकर कामदेवपर टूट पड़ी। भगवान् शंकरके कोपसे कामदेव एक ही क्षणमें भस्म हो गये। यह देख सब देवता विषादमें डूब गये और पार्वतीने भी सिर नीचा कर लिया। तदनन्तर रति भगवान् शिवके सामने बहुत विलाप करने लगी। भयसे काँपते हुए समस्त देवताओंने शिवका स्तवन किया। इसके बाद वे बार-बार रोते हुए रतिसे बोले—'माँ! पतिके शरीरका थोड़ा-सा भस्म लेकर उसकी रक्षा करो और भय छोड़ो। हम लोग उन्हें जीवित करायेंगे। तुम पुनः अपने प्रियतमको प्राप्त करोगी; परंतु जब भगवान् शंकरका क्रोध दूर हो जायगा और उनकी प्रसन्नताका समय होगा, तभी यह कार्य सम्भव हो सकेगा।'

रतिका विलाप देखकर पार्वती मूर्च्छित हो गयीं और उन अतीन्द्रिय गुणातीत चन्द्रशेखरकी स्तुति करने लगीं। तब भगवान् शिव रोती हुई पार्वतीको वहीं छोड़कर अपने स्थानको चले गये। फिर तो उसी क्षण पार्वतीका सारा अभिमान चूर हो गया। गिरिराजनन्दिनीने अपने रूप और यौवनका गर्व त्याग दिया। अब उन्हें सखियोंको अपना मुँह दिखानेमें भी लज्जाका अनुभव होने लगा। सब देवता रतिको आश्वासन दे रुद्रदेवको दण्डवत् प्रणाम करनेके पश्चात् अपने स्थानको चले गये। उस समय उनका मन शोकसे उद्विग्न हो रहा था। राधिके! कामपत्नी रति रोषसे लाल आँखोंवाले रुद्रदेवका भयसे स्तवन करके शोकसे रोती हुई अपने घरको चली गयी। परंतु पार्वती लज्जावश पिताके घर नहीं गयी। वह सखियोंके मना करनेपर भी तपस्याके लिये वनमें चली गयी। तब शोकसे विह्वल हुई सखियोंने भी उन्हींका अनुगमन किया। माताओंके रोकनेपर भी वे सब-की-सब गङ्गातटवर्ती वनकी ओर चली

गयीं। आगे चलकर पार्वतीने दीर्घकालतक तपस्या करके भगवान् त्रिलोचनको पतिरूपमें प्राप्त किया। रतिने भी शंकरके वरसे यथासमय कामदेवको प्राप्त किया। राधे! इस प्रकार पार्वतीके दर्पमोचनसे सम्बन्ध रखनेवाली सारी बातें कही गयी। पार्वतीका यह चरित्र गूढ़ है। बताओ, तुम और क्या सुनना चाहती हो? (अध्याय ३९)

पार्वतीकी तपस्या, उनके तपके प्रभावसे अग्निका शीतल होना, ब्राह्मण-बालकका रूप धारण करके आये हुए शिवके साथ उनकी बातचीत, पार्वतीका घरको लौटना और माता-पिता आदिके द्वारा उनका सत्कार, भिक्षुवेषधारी शंकरका आगमन, शैलराजको उनके विविध रूपोंके दर्शन, उनकी शिव-भक्तिसे देवताओंको चिन्ता, उनका बृहस्पतिजीको शिव-निन्दाके लिये उकसाना तथा बृहस्पतिका देवताओंको शिव-निन्दाके दोष बताकर तपस्याके लिये जाना

श्रीराधिका बोलीं—प्रभो! यह बहुत ही विचित्र और अपूर्व चरित्र सुननेको मिला है, जो कानोंमें अमृतके समान मधुर, सुन्दर, निगूढ़ एवं ज्ञानका कारण है। भगवन्! यह न तो अधिक संक्षेपसे सुना गया है और न विस्तारसे ही। परंतु अब विस्तारसे ही सुननेकी इच्छा है; अतः आप विस्तारपूर्वक इस विषयका वर्णन कीजिये। पार्वतीने स्वयं कौन-कौन-सा कठोर तप किया था? और किस-किस वरको पाकर किस तरह महेश्वरको प्राप्त किया तथा रतिने फिर किस प्रकार कामदेवको जिलाया? प्यारे कृष्ण! आप पार्वती और शिवके विवाहका वर्णन कीजिये।

श्रीकृष्णने कहा—प्राणाधिके राधिके! प्राणवल्लभे! सुनो। प्राणेश्वरि! तुम प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हो। प्राणाधारे! मनोहरे! जब रुद्रदेव वटवृक्षके नीचेसे चले गये, तब पार्वती माता-पिताके बार-बार रोकनेपर भी तपस्याके लिये चली गयीं। गङ्गाके तटपर जा तीनों काल स्नान करके वह मेरे दिये हुए मन्त्रका प्रसन्नतापूर्वक जप करने लगी। उस जगदम्बाने पूरे एक वर्षतक निराहार रहकर भक्ति-भावसे तपस्या की। तदनन्तर और भी कठोर तप आरम्भ किया। ग्रीष्म-ऋतुमें अपने चारों ओर आग प्रज्वलित करके वह दिन-रात उसे जलाये रखती और उसके बीचमें बैठकर निरन्तर मन्त्र जपती रहती थी। वर्षा-ऋतु आनेपर श्मशानभूमिमें शिवा सदा योगासन लगाकर बैठती और शिलाकी ओर देखती हुई जलकी धारासे भीगती रहती थी। शीतकाल आनेपर वह सदा जलके भीतर प्रवेश कर जाती तथा शरत्की भयंकर बर्फवाली रातोंमें भी निराहार रहकर भक्तिपूर्वक तपस्या करती थी।

इस प्रकार अनेक वर्षोंतक कठोर तप करके भी जब सती-साध्वी पार्वती शंकरको न पा सकी, तब वह शोकसे संतप्त हो अग्निकुण्डका निर्माण करके उसमें प्रवेश करनेको उद्यत हो गयी। तपस्यासे अत्यन्त कृशकाय हुई सती शैल-पुत्रीको अग्निकुण्डमें प्रवेश करनेको उद्यत देख कृपासिन्धु शिव कृपा करके स्वयं उसके पास गये। अत्यन्त नाटे कदके बालक ब्राह्मणका रूप धारण करके अपने तेजसे प्रकाशित होते हुए भगवान् शिव

मन-ही-मन बड़े हर्षका अनुभव कर रहे थे। उनके सिरपर जटा थी। उन्होंने दण्ड और छत्र भी ले रखे थे। श्वेत वस्त्र, श्वेत यज्ञोपवीत, श्वेत कमलके बीजोंकी माला एवं श्वेत तिलक धारण किये वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। निर्जन स्थानमें उस बालकको देखकर पार्वतीके हृदयमें स्नेह उमड़ आया। उसके तेजसे अत्यन्त आच्छादित हो उन्होंने स्वयं तप छोड़ दिया और सामने खड़े हुए शिशुसे पूछा—'तुम कौन हो?' शिवा बड़े आदरके साथ उसे हृदयसे लगा लेना चाहती थी। शैलकुमारीका प्रश्न सुनकर परमेश्वर शिव हँसे और ईश्वरीके कानोंमें अमृत उँड़ेलते हुए-से मधुर वाणीमें बोले।

शंकरने कहा—मैं इच्छानुसार विचरनेवाला ब्रह्मचारी एवं तपस्वी ब्राह्मण-बालक हूँ; परंतु सुन्दरि! तुम कौन हो, जो परम कान्तिमती होकर भी इस दुर्गम वनमें तप कर रही हो? बताओ, किसके कुलमें तुम्हारा जन्म हुआ है? तुम किसकी कन्या हो और तुम्हारा नाम क्या है? तुम तो तपस्याका फल देनेवाली हो; फिर स्वयं किसलिये तपस्या करती हो? कमललोचने! तुम तपस्याकी मूर्तिमती राशि हो। अवश्य ही तुम्हारा यह तप लोकशिक्षाके लिये है। तुम मूलप्रकृति ईश्वरी, लक्ष्मी, सावित्री और सरस्वती—इन देवियोंमेंसे कौन हो? इसका अनुमान करनेमें मैं असमर्थ हूँ। कल्याणि! तुम जो भी हो, मुझपर प्रसन्न हो जाओ; क्योंकि तुम्हारे प्रसन्न होनेपर परमेश्वर प्रसन्न होंगे। पतिव्रता स्त्रीके संतुष्ट होनेपर स्वयं नारायण संतुष्ट होते हैं और नारायणदेवके संतुष्ट होनेपर सदा तीनों लोक संतोषका अनुभव करते हैं; ठीक उसी तरह जैसे वृक्षकी जड़ सींच देनेपर उसकी शाखाएँ स्वतः सिंच जाती हैं।

शिशुकी यह बात सुनकर परमेश्वरी शिवा हँसने लगीं और कानोंमें अमृतकी वर्षा करती हुई मनोहर वाणी बोलीं।

पार्वतीने कहा—ब्रह्मन्! न तो मैं वेदजननी सावित्री हूँ, न लक्ष्मी हूँ और न वाणीकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वती ही हूँ। मेरा जन्म भारतवर्षमें हुआ है। मैं इस समय गिरिराज हिमवान्की पुत्री हूँ। इससे पहले मेरा जन्म

प्रजापति दक्षके घरमें हुआ था। उस समय मैं शंकर-पत्नी सतीके नामसे प्रसिद्ध थी। एक बार पिताने पतिकी निन्दा की। इसलिये मैंने योगके द्वारा अपने शरीरको त्याग दिया। इस जन्ममें भी पुण्यके प्रभावसे भगवान् शंकर मुझे मिल गये थे; परंतु दुर्भाग्यवश वे मुझे छोड़कर और कामदेवको भस्म करके चले गये। शंकरजीके चले जानेपर मैं मानसिक संताप और लज्जासे विवश हो पिताके घरसे तपस्याके लिये निकल पड़ी। अब मेरा मन इस गङ्गाजीके तटपर ही लगता है। दीर्घकालतक कठोर तप करके भी मैं अपने प्राणवल्लभको न पा सकी। इसलिये अग्निमें प्रवेश करने जा रही थी। किंतु तुम्हें देखकर क्षणभरके लिये रुक गयी। अब तुम जाओ। मैं प्रलयाग्निकी शिखाके समान प्रज्वलित अग्निमें प्रवेश करूँगी। ब्रह्मन्! महादेवजीकी प्राप्तिका संकल्प मनमें

लेकर शरीरका त्याग करूँगी और जहाँ-जहाँ भी जन्म लूँगी, परमेश्वर शिवको ही पतिके रूपमें प्राप्त करूँगी। प्रत्येक जन्ममें भगवान् शिव ही मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतम पति होंगे। सब स्त्रियाँ अपने प्रियतमको ही पानेके लिये मनोवाञ्छित जन्म ग्रहण करती हैं। उन सबका यह जन्म अपने अभीष्ट पतिकी उपलब्धिके लिये ही होता है, ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। पूर्व-जन्मका जो पति है, वही स्त्रियोंके प्रत्येक जन्ममें पति होता है। जो स्त्री जिनकी पत्नी नियत है, वही उन्हें प्रत्येक जन्ममें प्राप्त होती है; अतः इस जन्ममें घोरतर तपके पश्चात् भी पतिको न पाकर मैं यहाँ इस शरीरको अग्निकुण्डमें होम दूँगी। मेरा यह कार्य पतिकी कामनाको लेकर होगा; इसलिये परलोकमें मैं उन्हें अवश्य प्राप्त करूँगी।

यों कहकर पार्वती वहाँ ब्राह्मणके बार-बार मना करनेपर भी उसके सामने ही अग्निकुण्डमें समा गयी। परमेश्वरी राधे! पार्वतीके अग्नि-प्रवेश करते ही उसकी तपस्याके प्रभावसे वह अग्नि तत्काल चन्दनके समान शीतल हो गयी। वृन्दावनविनोदिनि! एक क्षणतक अग्निकुण्डमें रहकर जब शिवा ऊपर आने लगी, तब शिवने पुनः सहसा उससे पूछा।

श्रीमहादेवजी बोले—भद्रे! तुम्हारी तपस्या क्या है? (सफल है या असफल?) यह कुछ भी मेरी समझमें नहीं आया। जिस तपके प्रभावसे अग्निने तुम्हारा शरीर नहीं जलाया, उसीसे तुम्हारी मनोवाञ्छित कामना पूर्ण नहीं हुई; यह आश्चर्यकी बात है। तुम कल्याणस्वरूप शिवको पति बनाना चाहती हो; परंतु वे तो निराकार हैं! निराकारको पति बनाकर तुम्हारा कौन-सा मनोरथ सिद्ध होगा? शुचिस्मिते! यदि संहारकर्ता हरको स्वामी बनानेकी इच्छा है तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि कौन ऐसी स्त्री है जो सर्वसंहारकारीको अपना कान्त (प्राणवल्लभ) बनानेकी इच्छा करेगी? देवि! यदि उन्हें अपना स्वामी बनाकर तुम मोक्ष लेना चाहती हो तो इसके लिये तुम्हारी तपस्या व्यर्थ है; क्योंकि सबको मुक्ति प्रदान करनेवाली तो तुम स्वयं ही हो! 'शिव' का अर्थ है—मङ्गल (कल्याण), मोक्ष और संहारकर्ता। इसके अतिरिक्त अन्य अर्थमें इस शब्दका प्रयोग नहीं देखा जाता। शिव शब्दका दूसरा कोई अर्थ वेदमें नहीं निरूपित हुआ है। सुन्दरि! यदि तुम संहारकर्ता शिवको चाहती हो, तब तो सर्वलोकभयंकर रुद्रको अपने प्रति अनुरक्त पाओगी। न तो तुम्हारा मोक्ष होगा और न अपने अभीष्ट देवताकी सेवा ही उपलब्ध होगी। भगवान् श्रीहरिका स्मरण अमोघ है, वह सदा सब प्रकारसे सम्पूर्ण मङ्गलोंका दाता है। अब तुम शीघ्र ही अपने पिताके घर जाओ। वहाँ मेरे आशीर्वादसे और अपने तपके फलसे तुम्हें परम दुर्लभ शिवके दर्शन प्राप्त होंगे।

ऐसा कहकर ब्राह्मण वहीं अन्तर्धान हो गया। दुर्गा 'महादेव! महादेव!' का उच्चारण करती हुई पिताके घरकी ओर चल दी। पार्वतीका आगमन सुनकर मेना और हिमालय दिव्य यानको आगे करके हर्षविह्वल हो अगवानीके लिये चले। सारा नगर सजाया गया। मार्गोंपर चन्दन, कस्तूरी आदिका छिड़काव हुआ। बाजे बजने लगे। शङ्खध्वनि गूँज उठी। सड़कोंपर सिन्दूर तथा चन्दनके जलसे कीच मच गयी। नगरमें प्रवेश करके दुर्गाने माता-पिताके दर्शन किये। वे दोनों अत्यन्त प्रसन्न हो दौड़ते हुए सामने आये। उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू भरे थे और अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो रहा था। देवी शिवाके मुखपर भी प्रसन्नता थी। उसने सखियोंसहित निकट जा माता-पिताको प्रणाम किया। तब उन दोनोंने आशीर्वाद देकर पुत्रीको हृदयसे लगा लिया और 'ओ मेरी बच्ची!' कहकर प्रेमसे विह्वल हो रोने लगे। उस समय दुर्गाको रथपर बिठाकर वे दोनों अपने घर गये। स्त्रियोंने निर्मञ्छन किया और

ब्राह्मणोंने आशीर्वाद दिया। पर्वतराजने ब्राह्मणों और बन्दीजनोंको धन दिया। उनसे वेद-पाठ और मङ्गल-पाठ करवाये। इस प्रकार वे दोनों अपनी पुत्रीके साथ सुखसे घरमें रहने लगे। शिवाके आ जानेसे उनके मनमें बड़ा हर्ष था।

एक दिन हिमवान् तप करनेके लिये गङ्गाजीके तटपर गये। मेना अपनी पुत्रीके साथ प्रसन्नतापूर्वक घरके आँगनमें बैठी थीं। इसी समय एक नाचने-गानेवाला भिक्षुक सहसा मेनाके पास आया। उसके बायें हाथमें सींगका बाजा और दायें हाथमें डमरू था। बहुत ही वृद्ध और जरासे अत्यन्त जर्जर हो चुका था। उसने सारे शरीरमें विभूति लगा रखी थी। पीठपर गुदड़ी लिये और लाल वस्त्र पहने वह भिक्षुक बड़ा मनोहर जान पड़ता था। उसका कण्ठ बड़ा ही मधुर था। वह मनोहर नृत्य करते हुए मेरे गुणोंका गान करने लगा। कभी शृङ्ग बजाता और कभी डमरू। उसके बाजेकी आवाज सुनकर बहुत-से नागरिक हर्षविह्वल हो वहाँ आ गये। दर्शकोंमें बालक, बालिका, वृद्ध, युवक, युवतियाँ तथा वृद्धाएँ भी थीं। मधुर तान और स्वरसे युक्त उस सुन्दर गीतको सुनकर सहसा सब लोग मोहित एवं मूर्च्छित हो गये। दुर्गाको भी मूर्च्छा आ गयी। उसने अपने हृदयमें भगवान् शंकरको देखा। वे त्रिशूल, पट्टिश और व्याघ्रचर्म धारण किये सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूतिसे विभूषित थे। बड़ा ही रम्य रूप था। गलेमें अत्यन्त निर्मल अस्थियोंकी माला शोभा देती थी। प्रसन्नमुखपर मन्द हास्यकी छटा छा रही थी। उनकी आकृतिसे आन्तरिक उल्लास सूचित होता था। पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र शोभा पाते थे। हाथमें माला, कंधेपर नागोंका यज्ञोपवीत और मस्तकपर चन्द्राकार मुकुट—बड़ी सुन्दर झाँकी थी। वे पार्वतीसे कह रहे थे कि वर माँगो। हृदयस्थित हरको देखकर पार्वतीने मन-ही-मन उन्हें प्रणाम किया और वर माँगा, 'आप हमारे पति हो जाइये।' 'एवमस्तु' कहकर शिव अन्तर्धान हो गये। हृदयमें शिवको न देखकर दुर्गाकी मूर्च्छा भङ्ग हुई। उसने आँख खोलकर देखा, सामने वही भिक्षुक गा रहा है।

भिक्षुके नृत्य और संगीतसे संतुष्ट हो मेना सोनेके पात्रमें बहुत-से रत्न ले उसे देनेके लिये गयीं; परंतु भिक्षुने भिक्षामें दुर्गाको ही माँगा; दूसरी कोई वस्तु नहीं ली। वह कौतुकवश पुनः नृत्य करनेको उद्यत हुआ; परंतु मेना उसकी बात सुनकर कुपित हो उठी थीं। उन्हें आश्चर्य भी हुआ था। उन्होंने भिक्षुकको बहुत डाँटा तथा उसे घरसे बाहर निकाल देनेकी आज्ञा दी। इसी बीचमें अपना तप पूरा करके हिमवान् घरपर आये। वहाँ उन्हें आँगनमें खड़ा हुआ एक भिक्षु दिखायी दिया, जो बड़ा मनोहर था। उसके विषयमें मेनाके मुखसे सब बातें सुनकर हिमवान् हँसे और रुष्ट भी हुए। उन्होंने अपने सेवकको आज्ञा दी—'इस भिक्षुकको बाहर निकाल दो।' परंतु वह कोई साधारण भिक्षुक नहीं था। आकाशकी भाँति उसका स्पर्श करना भी कठिन था। वह अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहा था। उसे कोई बाहर न कर सका। उसके निकट जानेकी भी किसीमें क्षमता नहीं थी। हिमवान्ने एक ही क्षणमें देखा—उस भिक्षुकके सुन्दर चार भुजाएँ हैं; मस्तकपर किरीट, कानोंमें कुण्डल तथा शरीरपर पीताम्बर शोभा पाता है; श्याम-सुन्दर रुचिर वेष मनको मोहे लेता है; मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही है। सम्पूर्ण अङ्ग चन्दनसे चर्चित हैं तथा वे श्रीहरि (रूपधारी शिव) भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते हैं।

हिमवान् श्रीहरिके उपासक थे। उन्होंने पूजाकालमें भगवान् गदाधरको जो-जो फूल चढ़ाये थे, वे सब भिक्षुकके अङ्गमें और

मस्तकपर देखे। उनके द्वारा जो धूप-दीप दिये गये थे, अथवा जो मनोरम नैवेद्य निवेदित हुआ था, वह भी भिक्षुकके सामने प्रस्तुत दिखायी दिया। दूसरे ही क्षणमें वह भिक्षुक द्विभुज-रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। अब उसके हाथमें विनोदकी साधनभूता मुरली थी। गोपवेष, किशोर-अवस्था, श्यामसुन्दर वर्ण, मुस्कराता हुआ मुख, मस्तकपर मोरपंखका मुकुट, श्रीअङ्गोंमें रत्नमय आभूषण, चन्दनके अङ्गराग तथा गलेमें वनमाला—मानो साक्षात् श्रीकृष्ण दर्शन दे रहे हों। फिर क्षणभरमें वह उज्ज्वल-कान्ति चन्द्रशेखर शिवके रूपमें दिखायी दिया। उसके हाथोंमें त्रिशूल और पट्टिश शोभा पा रहे थे। वस्त्रकी जगह सुन्दर बाघम्बर था। सम्पूर्ण अङ्गोंमें विभूति लगी थी। धवल वर्ण था। गलेमें अस्थियोंकी माला थी, जो आभूषणका काम देती थी। कंधेपर सर्पमय यज्ञोपवीत तथा सिरपर तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली जटा थी। हाथोंमें शृङ्ग और डमरू थे। सुप्रशस्त एवं मनोहर रूप चित्तको आकृष्ट कर लेता था। भगवान् शिव श्वेत कमलोंके बीजकी मालासे हरिनामका जप करते थे। उनके प्रसन्न मुखपर मन्दहासकी छटा छा रही थी। वे भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर दिखायी देते थे। अपने तेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। फिर दूसरे ही क्षणमें वह भिक्षुक 'जगत्स्रष्टा' चतुर्मुख ब्रह्माके रूपमें दृष्टिगोचर हुआ। ब्रह्माजी स्फटिककी माला लेकर हरिनामका जप कर रहे थे।

हिमवान्ने देखा, क्षणभरमें वह त्रिगुणात्मक सूर्यस्वरूप हो गया। अत्यन्त दुःसह प्रकाशसे युक्त सूर्यदेव ब्रह्मतेजसे जाज्वल्यमान थे। फिर एक क्षणतक वह अत्यन्त तेजसे प्रज्वलित अग्निके रूपमें विद्यमान रहा। तत्पश्चात् क्षणभर आह्लादजनक चन्द्रमाके रूपमें शोभा पाता रहा। तदनन्तर एक ही क्षणमें तेजःस्वरूप, निराकार, निरञ्जन, निर्लिप्त, निरीह परमात्मस्वरूपमें स्थित हो गया। इस प्रकार स्वेच्छामय नाना रूप धारण करनेवाले परमेश्वरका दर्शनकर शैलराजके नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये। उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो गया। उन्होंने साष्टाङ्ग दण्डवत्-प्रणाम किया और भक्तिभावसे परिक्रमा करके बारंबार मस्तक झुकाया। फिर हर्षसे उछलकर हिमवान्ने जब पुनः देखा तो वही भिक्षुक सामने था। वास्तवमें वह भिक्षुक ही है—ऐसा उन्हें दिखायी दिया। भगवान् विष्णुकी मायासे शैलराज उसके नाना रूप-धारण-सम्बन्धी सब बातोंको भूल गये। भिक्षुक उनसे भीख माँगने लगा। उसके पास भिक्षाका पात्र था। उसने रक्त वस्त्र धारण किया था। हाथोंमें शृङ्ग और विचित्र डमरूके बाजे थे। वह भिक्षामें केवल दुर्गाको ग्रहण करनेके लिये उत्सुक था, दूसरी किसी वस्तुको नहीं, परंतु विष्णु-मायासे मोहित हुए शैलराजने उसकी याचना स्वीकार नहीं की। भिक्षुने भी और कुछ नहीं लिया। वह वहीं अन्तर्धान हो गया। प्रिये! उस समय मेना और गिरिराजको ज्ञान हुआ। वे बोले—'अहो! हमने विश्वनाथको दिनमें स्वप्नकी भाँति देखा है। भगवान् शिव हम दोनोंको वञ्चित करके अपने स्थानको चले गये।'

उन दोनों पति-पत्नीकी भगवान् शिवमें भक्ति बढ़ रही है—यह देख सब देवताओंको चिन्ता हो गयी। इन्द्र आदि देवता भारसे सुमेरुकी रक्षाके लिये युक्ति करने लगे। वे आपसमें कहने लगे—'यदि हिमवान् अनन्य भक्तिसे भारतमें भगवान् शिवको कन्यादान करेंगे तो निश्चय ही निर्वाण—मोक्षको प्राप्त होंगे। अनन्त रत्नोंका आधार हिमालय यदि पृथ्वीको छोड़कर चला जायगा तो इसका 'रत्नगर्भा' नाम अवश्य ही मिथ्या हो जायगा। शूलपाणि शिवको अपनी कन्या दे स्थावरत्वका परित्याग और दिव्य रूप

धारण करके वे विष्णुलोकको चले जायँगे। फिर तो अनायास ही उन्हें नारायणका सारूप्य प्राप्त हो जायगा। वे भगवान्‌के पार्षदभावको पाकर हरिदास हो जायँगे।' यह सब सोचकर देवताओंने आपसमें सलाह की और वे गुरु बृहस्पतिको हिमालयके घर भेजनेके लिये गये। उन सबने गुरुको प्रणाम करके निवेदन किया—'गुरुदेव! आप हिमालयके यहाँ जाकर उनके समक्ष भगवान् शिवकी निन्दा कीजिये। यह तो निश्चय है कि दुर्गा शिवके सिवा दूसरे किसी वरका वरण नहीं करेगी। उस दशामें हिमवान् अनिच्छासे ही अपनी पुत्री शिवको देंगे। ऐसा करनेसे कन्यादानका फल कम हो जायगा। कालान्तरमें गिरिराज भले ही मुक्त हो जायँ; परंतु इस समय तो इन्हें पृथ्वीपर रहना ही चाहिये। भगवन्! आप ही अनन्त रत्नोंके आधारभूत हिमालयको भारतवर्षमें रखिये। (इन्हें यहाँसे जाने न दीजिये।)

देवताओंका वचन सुनकर गुरु बृहस्पतिजीने दोनों हाथ कानोंमें लगा लिये और 'नारायण!' 'नारायण!' का स्मरण करते हुए उनकी प्रार्थना अस्वीकार कर दी। वेद-वेदान्तके विद्वान् बृहस्पति हरि और हरके महान् भक्त थे। उन्होंने देवताओंको बारंबार फटकारकर कहा।

बृहस्पति बोले—स्वार्थ-साधनमें तत्पर रहनेवाले देवताओ! मेरी सच्ची बात सुनो। मेरा यह वचन नीतिका सारतत्त्व, वेदोंद्वारा प्रतिपादित तथा परिणाममें सुख देनेवाला है। जो पापी शिव और विष्णुके भक्तकी, भूदेवता ब्राह्मणोंकी, गुरु और पतिव्रताकी, यति, भिक्षु, ब्रह्मचारी तथा सृष्टिके बीजभूत देवताओंकी निन्दा करते हैं; वे चन्द्रमा और सूर्यके रहनेतक कालसूत्र नामक नरकमें पकाये जाते हैं। उन्हें कफ तथा मल-मूत्रमें दिन-रात सोना पड़ता है। उन्हें कीड़े खाते हैं और वे कातर वाणीमें आर्तनाद करते हैं। जो सृष्टिकर्ता जगद्गुरु ब्रह्माकी निन्दा करते हैं; जो सर्वश्रेष्ठ शिव, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, गीता, तुलसी, गङ्गा, वेद, वेदमाता सावित्री, व्रत, तपस्या, पूजा, मन्त्र तथा मन्त्रदाता गुरुमें दोष बताते हैं; वे अन्धकूप नामक नरकमें यातना भोगते हैं और वहाँ उन्हें ब्रह्माकी आधी आयुतक रहना पड़ता है तथा वे सर्प-समूहोंसे भक्षित हो सदा चीखते-चिल्लाते रहते हैं। जो दूसरे देवताओंके साथ तुलना करके भगवान् हृषीकेशकी निन्दा करते हैं; विष्णुभक्ति प्रदान करनेवाले पुराणमें, जो श्रुतिसे भी उत्कृष्ट है, दोष निकालते हैं; राधा तथा उनकी कायव्यूहरूपा गोपियोंकी और सदा पूजित होनेवाले ब्राह्मणोंकी भी निन्दा करते हैं; वे देवता ही क्यों न हों, ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त नरकके गड्ढेमें पकाये जाते हैं। उनके मुँह नीचे लटकाये जाते हैं और उनकी आँखें ऊपरकी ओर होती हैं। विकृताकार सर्पसमूह तथा सर्पकी-सी आकृतिवाले कीट उनके सारे अङ्गोंमें लिपटकर काटते रहते हैं और वे अत्यन्त कातर तथा भयभीत हो सदा आर्तनाद किया करते हैं। निश्चय ही वहाँ उन्हें क्षोभपूर्वक कफ एवं मल-मूत्र खाने पड़ते हैं। रोषसे भरे हुए यमराजके किङ्कर उनके मुँहमें जलती हुई लुआठी डाल देते हैं। तीनों संध्याओंके समय उन्हें डाँट बताते हुए डंडोंसे पीटते हैं। डंडोंके प्रहारसे जब उन्हें प्यास लगती है, तब वे उन यमदूतोंके भयसे मूत्र-पान करते हैं। जब दूसरा कल्प आरम्भ होता है और पहले-पहल सृष्टिका आयोजन किया जाता है, उस समय उन पापियोंके पापोंका निवारण होता है—ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। निश्चय ही शिवकी निन्दा करनेवाले देवता नरकमें पड़ेंगे। मेरे बच्चो! क्या तुमलोग मेरा यही उपकार करना चाहते हो? ब्रह्माजीकी आज्ञासे दक्ष प्रजापतिने शूलपाणि शंकरको अपनी पुत्री दी। उसीके पुण्यसे शिवकी निन्दा करनेपर भी उन्हें पाप नहीं लगा; अपितु परम ऐश्वर्यकी प्राप्ति हुई। उन्होंने अनिच्छासे ही

भगवान् शंकरको कन्यादान किया था। इसलिये उन्हें चौथाई पुण्यकी ही प्राप्ति हुई। अतएव वे सारूप्य मोक्षको न पाकर तुच्छ सृष्टिका ही अधिकार प्राप्त कर सके। देवताओ! तुम्हीं लोगोंमेंसे कोई हिमवान्‌के घर जाकर अपने मतके अनुसार कार्य करे और प्रयत्नपूर्वक शैलराजके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न करे। अनिच्छासे कन्यादान करके गिरिराज हिमवान् सुखपूर्वक भारतवर्षमें स्थित रहें। भक्तिपूर्वक शिवको पुत्री देकर तो वे निश्चय ही मोक्ष प्राप्त कर लेंगे। अश्रद्धा उत्पन्न होनेके बाद अरुन्धतीको साथ ले सब सप्तर्षि अवश्य ही गिरिराजके घर जाकर उन्हें समझायेंगे। दुर्गा शिवके सिवा दूसरे किसी वरका वरण नहीं करेगी। उस दशामें पुत्रीके आग्रहसे वे अनिच्छापूर्वक शिवको अपनी कन्या देंगे। इस प्रकार मैंने अपना सारा विचार व्यक्त कर दिया। अब देवतालोग अपने-अपने घरको पधारें।

यों कहकर बृहस्पतिजी शीघ्र ही तपस्याके लिये आकाशगङ्गाके तटपर चले गये।

(अध्याय ४०)

ब्रह्माजीकी आज्ञासे देवताओंका शिवजीसे शैलराजके घर जानेका अनुरोध करना, शिवका ब्राह्मण-वेषमें जाकर अपनी ही निन्दा करके शैलराजके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न करना, मेनाका पुत्रीको साथ ले कोप-भवनमें प्रवेश और शिवको कन्या न देनेके लिये दृढ़ निश्चय, सप्तर्षियों और अरुन्धतीका आगमन तथा शैलराज एवं मेनाको समझाना, वसिष्ठ और हिमवान्‌की बातचीत, शिवकी महत्ता तथा देवताओंकी प्रबलताका प्रतिपादन, प्रसङ्गवश राजा अनरण्य, उनकी पुत्री पद्मा तथा पिप्पलाद मुनिकी कथा

श्रीकृष्ण कहते हैं—सब देवतालोग आपसमें विचार करके ब्रह्माजीके निकट गये। वहाँ उन्होंने उन लोकनाथ ब्रह्मासे अपना अभिप्राय निवेदन किया।

देवता बोले—संसारकी सृष्टि करनेवाले पितामह! आपकी सृष्टिमें हिमालय सब रत्नोंका आधार है। यह यदि मोक्षको प्राप्त हो जायगा तो पृथ्वी रत्नगर्भा कैसे कहलायेगी? शूलपाणि शंकरको भक्तिपूर्वक अपनी पुत्री देकर शैलराज स्वयं नारायणका सारूप्य प्राप्त कर लेंगे—इसमें संशय नहीं है। अतः आप शिवकी निन्दा करके गिरिराजके मनमें अश्रद्धा उत्पन्न कीजिये। प्रभो! आपके सिवा दूसरा कोई यह कार्य करनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये आप उनके घर जाइये।

देवताओंकी यह बात सुनकर स्वयं ब्रह्माजी उनसे कानोंको अमृतके समान मधुर प्रतीत होनेवाला तथा नीतिका सारभूत उत्तम वचन बोले।

ब्रह्माजीने कहा—बच्चो! मैं शिवकी निन्दा करनेमें समर्थ नहीं हूँ। यह अत्यन्त दुष्कर कार्य है। शिवकी निन्दा सम्पत्तिका नाश करनेवाली और विपत्तिका बीज है। तुमलोग भूतनाथ शिवको ही वहाँ भेजो। वे स्वयं अपनी निन्दा करें। परायी निन्दा विनाशका और अपनी निन्दा यशका कारण होती है*।

प्रिये! ब्रह्माजीका वचन सुनकर उन्हें प्रणाम

* परनिन्दा विनाशाय स्वनिन्दा यशसे परम्। (४१। ७)

करके देवतालोग शीघ्र ही कैलास पर्वतको गये और वहाँ पहुँचकर भगवान् शिवकी स्तुति करने लगे। स्तुति करके उन सबने करुणानिधान शंकरको अपना अभिप्राय बताया। उनकी बात सुनकर भगवान् शंकर हँसे और उन्हें आश्वासन दे स्वयं शैलराजके पास गये; फिर तो सब देवता शीघ्र ही अपने घर लौटकर आनन्दका अनुभव करने लगे। क्यों न हो, इष्टसिद्धि आनन्द देनेवाली और अभीष्ट वस्तुकी असिद्धि सदा दुःख बढ़ानेवाली होती है।

उधर शैलराज अपनी सभामें बन्धुवर्गसे घिरे हुए प्रसन्नतापूर्वक बैठे थे। उनके साथ पार्वती भी थी। इसी बीच स्वयं भगवान् शिव ब्राह्मणका रूप धारण करके सहसा वहाँ आ पहुँचे। उनके मुख और नेत्रोंसे प्रसन्नता प्रकट हो रही थी। ब्राह्मणके हाथमें दण्ड और छत्र था। उनका वस्त्र लंबा था। उन्होंने ललाटमें उत्तम तिलक लगा रखा था। उनके एक हाथमें स्फटिकमणिकी माला थी और उन्होंने गलेमें भगवान् शालग्रामको धारण कर रखा था। उन्हें देखते ही हिमवान् अपने सेवकगणोंसहित उठकर खड़े हो गये। उन्होंने भूमिपर दण्डकी भाँति पड़कर भक्तिभावसे उस अपूर्व अतिथिको प्रणाम किया। पार्वतीने भी विप्ररूपधारी प्राणेश्वरको भक्तिपूर्वक मस्तक झुकाया। फिर ब्राह्मणने सबको प्रसन्नतापूर्वक आशीर्वाद दिये। गिरिराजके दिये हुए आसनपर वे शीघ्रतापूर्वक बैठे और आतिथ्यमें मधुपर्क आदि जो कुछ भी मिला, वह सब उन्होंने प्रेमपूर्वक ग्रहण किया। शैलराजने ब्राह्मणका कुशल-समाचार पूछते हुए कहा—'विप्रवर! आपका परिचय क्या है?' तब उन द्विजराजने गिरिराजको आदरपूर्वक सब कुछ बताया।

ब्राह्मण बोले—गिरिराज! मैं घटक[१]-वृत्तिका आश्रय लेकर भूमण्डलमें घूमता रहता हूँ। मेरी मनके समान तीव्र गति है। गुरुदेवके वरदानसे मैं सर्वत्र पहुँचनेमें समर्थ एवं सर्वज्ञ हूँ। मुझे ज्ञात हुआ है कि तुम अपनी इस लक्ष्मी-सरीखी दिव्य कन्याको शंकरके हाथमें देना चाहते हो, जिसके शील और कुलका कुछ भी पता नहीं है। शंकर निराश्रय हैं—उनका कहीं भी ठौर-ठिकाना नहीं है। वे असङ्ग—सदा अकेले रहनेवाले हैं। उनके न रूप है, न गुण। वे श्मशानमें विचरनेवाले, सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति तथा योगी हैं। शरीरपर वस्त्रतक नहीं है। सदा दिगम्बर—नंग-धड़ंग रहते हैं। उनके शरीरमें सर्पोंका वास है। अङ्गरागके स्थानमें राख—भभूत ही उनके अंगोंको विभूषित करती है। उनका स्वरूप ही व्यालग्राही (दुष्टों अथवा सर्पोंको ग्रहण करनेवाला) है। वे कालका व्यापादन (नाश या अपव्यय) करनेवाले हैं। अज्ञातमृत्यु[२], ज्ञ[३] अथवा अज्ञ, अनाथ[४] और अबन्धु[५] हैं। भव (संसारकी उत्पत्तिके कारण) अथवा अभव (जन्मरहित) हैं। वे सिरपर तपाये हुए सुवर्णकी-सी कान्तिवाली जटाओंका बोझ धारण करनेवाले (विरक्त) तथा निर्धन हैं। उनकी अवस्था कितनी

१- जो वरके लिये योग्य कन्या और कन्याके लिये योग्य वरका पता देकर उन दोनोंमें सगाई या वैवाहिक सम्बन्ध पक्का कराते हैं, उन्हें 'घटक' कहते हैं। उनकी वृत्ति ही घटक या घाटिका-वृत्ति है।

२- निन्दापक्षमें अज्ञातमृत्युका अर्थ है, जिसकी मृत्युका किसीको ज्ञान नहीं है अर्थात् जन्मकुण्डली आदि न होनेसे जिनकी आयुका पता लगाना असम्भव है। कन्या उसको दी जाती है, जिसके दीर्घायु होनेका निश्चय कर लिया गया हो। स्तुतिपक्षमें—जिन्हें मृत्युका कभी अनुभव नहीं हुआ अर्थात् जो अमर एवं मृत्युञ्जय हैं।

३- निन्दापक्षमें 'अज्ञ' पदच्छेद है और स्तुतिपक्षमें 'ज्ञ'।

४- निन्दापक्षमें अनाथका अर्थ असहाय है और स्तुतिपक्षमें जो नाथरहित है—स्वयं ही सबके नाथ हैं।

५- अबन्धु—बन्धुहीन, बेसहारा अथवा अद्वितीय।

है, इसका ज्ञान किसीको नहीं है। वे अत्यन्त वृद्ध हैं। विकारशून्य हैं। सबके आश्रय हैं अथवा सभी उनके आश्रय हैं। व्यर्थ घूमते रहते हैं। सर्पोंका हार धारण किये भीख माँगते हैं। (यही उनका परिचय है, जिन्हें तुम अपनी पुत्री देने जा रहे हो।) भगवान् नारायण ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ तथा कुलीन हैं। (अथवा समस्त कुलोंकी उत्पत्तिके स्थान हैं।) तुम उनके महत्त्वको समझो। पार्वतीका दान करनेके निमित्त वे ही तुम्हारे लिये योग्य पात्र हैं। पार्वतीका विवाह शंकरसे हो रहा है, यह सुनते ही बड़े-बड़े लोगोंके मुखपर उपहाससूचक मुस्कराहट दौड़ जायगी। एक तुम हो, जो लाखों पर्वतोंके राजाधिराज हो और एक शिव हैं, जिनके एक भी भाई-बन्धु नहीं है। तुम अपने बन्धु-बान्धवोंसे तथा धर्मपत्नी मेनासे भी शीघ्र ही पूछो और इन सबकी सम्मति जाननेका प्रयत्न करो। भैया! और सबसे तो यत्नपूर्वक पूछना, किंतु पार्वतीसे इस विषयमें न पूछना; क्योंकि उसे शंकरके अनुरागका रोग लगा हुआ है। रोगीको दवा नहीं अच्छी लगती। उसे सदा कुपथ्य ही रुचिकर जान पड़ता है।

वृन्दावनविनोदिनी राधे! यों कह शान्त स्वभाववाले ब्राह्मणने शीघ्र ही स्नान और भोजन करके प्रसन्नतापूर्वक अपने घरका रास्ता लिया। ब्राह्मणकी पूर्वोक्त बात सुनकर मेना शोकयुक्त हो नेत्रोंसे आँसू बहाने लगीं। उनका हृदय व्यथित हो उठा। वे हिमालयसे बोलीं।

मेनाने कहा—शैलराज! मेरी बात सुनिये, जो परिणाममें सुख देनेवाली है। आप इन श्रेष्ठ पर्वतोंसे पूछिये, इनकी क्या राय है। मैं तो अपनी बेटीको शंकरके हाथमें नहीं दूँगी। देखिये, मैं सारे विषयोंको त्याग दूँगी, विष खा लूँगी और पार्वतीके गलेमें फाँसी लगाकर भयानक वनमें चली जाऊँगी।

ऐसा कह मेना रोषपूर्वक पार्वतीका हाथ पकड़कर कोपभवनमें चली गयीं। खाना-पीना छोड़कर रोने लगीं और भूमिपर ही सो गयीं। इसी समय भाइयोंसहित वसिष्ठ वहाँ आये। उन सबके साथ अरुन्धती भी थीं। शैलराजने उन सब महर्षियोंको प्रणाम करके बैठनेके लिये सोनेका सिंहासन दिया और सोलह उपचार अर्पित करके भक्तिभावसे उनका पूजन किया। ऋषिलोग सभाके बीच उस सुखद सिंहासनपर बैठे और अरुन्धतीदेवी तत्काल वहाँ चली गयीं, जहाँ मेना और पार्वती थीं। जाकर उन्होंने देखा, मेना शोकसे अचेत हो पृथ्वीपर सो रही हैं। तब उन साध्वी देवीने मधुर वाणीमें कहा।

अरुन्धती बोलीं—पतिव्रते मेनके! उठो। मैं अरुन्धती तुम्हारे घर आयी हूँ। मुझे पितरोंकी मानसी कन्या तथा ब्रह्माजीकी पुत्रवधू समझो।

अरुन्धतीका स्वर सुनकर मेना शीघ्र ही उठकर खड़ी हो गयीं। उन्होंने लक्ष्मीके समान तेजस्विनी देवी अरुन्धतीके चरणोंमें मस्तक रखकर उन्हें प्रणाम किया और इस प्रकार कहा।

मेना बोलीं—अहो! हमारा जन्म बड़ा ही पुण्यमय है। हम लोगोंका यह कौन-सा पुण्य आज फलित हुआ है, जिससे ब्रह्माजीकी पुत्रवधू तथा वसिष्ठजीकी धर्मपत्नीने मेरे घरमें पदार्पण किया है। देवि! मैं आपकी किंकरी हूँ। यह घर आपका है। हमारे बड़े पुण्यसे आपका यहाँ शुभागमन हुआ है।

सम्भ्रमपूर्वक इतना ही कहकर मेनाने सती अरुन्धतीको सोनेकी चौकीपर बिठाया और उनके चरण पखारकर उन्हें मिष्टान्न भोजन कराया। फिर स्वयं भी पुत्रीके साथ भोजन किया। तदनन्तर अरुन्धतीने मेनाको शिवके लिये नीतिकी बातें समझायीं और प्रसङ्गवश उनके साथ सम्बन्ध जोड़नेवाले वचन भी कहे। इधर उन महर्षियोंने भी शैलराजको उत्तम वाणीमें नीतिका सारतत्त्व समझाया और प्रसङ्गवश ऐसी बातें कहीं, जो

शिव और पार्वतीके सम्बन्धको जोड़नेवाली थीं।

ऋषि बोले—शैलराज! हमारी बात सुनो। यह तुम्हारे लिये शुभकारक है। तुम पार्वतीका विवाह शिवके साथ कर दो और उन लोकसंहारक महादेवके श्वशुर बनो। देवेश्वर शिव तुमसे याचना नहीं करेंगे। तुम यत्नपूर्वक शीघ्र ही उन्हें समझाओ—विवाहके लिये तैयार करो। तुम्हारी शंकाका निवारण करनेके लिये ब्रह्माजी स्वयं विवाह स्थिर करानेके निमित्त प्रयत्न करें। योगियोंमें श्रेष्ठ शंकर कभी विवाहके लिये इच्छुक नहीं हैं। ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे ही वे तुम्हारी पुत्रीको ग्रहण करेंगे। उसे ग्रहण करनेका दूसरा कारण यह है कि तुम्हारी कन्याकी तपस्याके अन्तमें उन्होंने उसे अपनानेकी प्रतिज्ञा कर ली है। इन दो कारणोंसे ही योगिराज शिव विवाह करेंगे।

ऋषियोंकी यह बात सुनकर हिमवान् हँसे और कुछ भयभीत हो अत्यन्त विनयपूर्वक बोले।

हिमालयने कहा—मैं शिवके पास कोई राजोचित सामग्री नहीं देखता। न रहनेके लिये कोई घर है, न ऐश्वर्य। यहाँतक कि उनके कोई स्वजन-बान्धव भी नहीं हैं। जो अत्यन्त निर्लिप्त योगी हो, उसके हाथ कन्या देना उचित नहीं है। आप लोग ब्रह्माजीके पुत्र हैं। अतः अपना सत्य एवं निश्चित मत प्रकट कीजिये। यदि पिता कामना, लोभ, भय अथवा मोहके वशीभूत हो सुयोग्य पात्रके हाथमें अपनी कन्या नहीं देता है तो सौ वर्षोंतक नरकमें पड़ा रहता है;* अतः मैं स्वेच्छासे शूलपाणिको अपनी कन्या नहीं दूँगा। ऋषियो! इस विषयमें जो उचित कार्य हो, वह आप कीजिये।

हिमवान्‌की बात सुनकर वेद-वेदाङ्गोंके विद्वान् ब्रह्मपुत्र वसिष्ठ वेदोक्त मत प्रकट करनेके लिये उद्यत हुए।

वसिष्ठजीने कहा—शैलराज! लोक और वेदमें तीन प्रकारके वचन कहे गये हैं। शास्त्रज्ञ पुरुष अपनी निर्मल ज्ञानदृष्टिसे उन सभी वचनोंको जानता है। पहला वचन वह है, जो वर्तमान कालमें कानोंको सुन्दर लगे और जल्दी समझमें आ जाय; किंतु पीछे असत्य और अहितकर सिद्ध हो। ऐसी बात केवल शत्रु कहता है। इससे कदापि हित नहीं होता। दूसरे प्रकारका वचन वह है, जो आरम्भमें सहसा दुःखजनक जान पड़े; परंतु परिणाममें सुख देनेवाला हो। ऐसा वचन दयालु और धर्मशील पुरुष ही अपने भाई-बन्धुओंको समझानेके लिये कहता है। तीसरी उत्कृष्ट श्रेणीका वचन वह है जो कानोंमें पड़ते ही अमृतके समान मधुर प्रतीत हो तथा सर्वदा सुखकी प्राप्ति करानेवाला हो। उसमें सारतत्त्व सत्य होता है और उसमें सबका हित होता है। ऐसा वचन सर्वश्रेष्ठ तथा सभीको अभीष्ट होता है। गिरिराज! इस प्रकार नीतिशास्त्रमें तीन प्रकारके वचनोंका निरूपण किया गया है। अब तुम्हीं कहो इन तीनोंमेंसे कौन-सा वचन तुमसे कहूँ? तुम्हें कैसी बात सुननेकी इच्छा है? देवेश्वर शंकर वास्तवमें बाह्य धन-सम्पत्तिसे रहित हैं; क्योंकि उनका मन एकमात्र तत्त्वज्ञानके समुद्रमें निमग्न रहता है। बाह्य धन-सम्पत्ति आपाततः रमणीय जान पड़ती है; परंतु वह बिजलीकी चमककी भाँति शीघ्र ही नष्ट हो जानेवाली है। नित्यानन्दस्वरूप स्वात्माराम परमेश्वरको इस तरहकी सम्पत्तिके लिये क्या इच्छा होगी? गृहस्थ मनुष्य ऐसे पुरुषको अपनी पुत्री देता है, जो राज्य-वैभवसे सम्पन्न हो। जिसके मनमें स्त्रीसे द्वेष हो, ऐसे वरको कन्या देनेवाला पिता कन्याघाती होता है; परंतु कौन कह सकता है कि भगवान् शंकर दुःखी हैं? क्योंकि धनाध्यक्ष कुबेर भी उनके किङ्कर हैं।

---

* नानुरूपाय पात्राय पिता कन्यां ददाति चेत्। कामाल्लोभाद्भयान्मोहाच्छताब्दं नरकं व्रजेत्॥ (४१। ४९)

जो भगवान् भ्रूभङ्गकी लीलामात्रसे सृष्टिका निर्माण एवं संहार करनेमें समर्थ हैं; जो ईश प्रकृतिसे परे, निर्गुण, परमात्मा एवं सर्वेश्वर हैं; जो समस्त जन्तुओंसे निर्लिप्त और उनमें लिप्त भी हैं; जो अकेले ही समस्त सृष्टिके संहारकर्म तथा सृष्टिकर्ममें भी समर्थ हैं एवं सर्वरूप हैं; निराकार, साकार, सर्वव्यापी और स्वेच्छामय हैं; जो ईश्वर स्वयं सृष्टिकार्यका सम्पादन करनेके लिये तीन रूप धारण करते हैं तथा सृष्टिकर्ता 'ब्रह्मा', पालनकर्ता 'विष्णु' एवं संहारकर्ता 'शिव'-नामसे प्रसिद्ध होते हैं; जो 'ब्रह्मा'-रूपसे ब्रह्मलोकमें, 'विष्णु'-रूपसे क्षीरसागरमें तथा 'शिव'-रूपसे कैलासमें वास करते हैं; वे परब्रह्म परमेश्वर ही 'श्रीकृष्ण' कहे गये हैं। ब्रह्मा आदि सब रूप उन्हींकी विभूतियाँ हैं। श्रीकृष्णके दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज-रूपसे तो वे वैकुण्ठमें निवास करते हैं और स्वयं द्विभुज-रूपसे गोलोकमें विराजमान हैं। ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर उन भगवान् श्रीकृष्णके अंश हैं। कोई देवता उनकी कला है और कोई कलांश। श्रीकृष्णने सृष्टिके लिये उन्मुख होकर स्वयं अपनी प्रकृति (शक्तिस्वरूपा श्रीराधा)-को प्रकट किया और उनमें अपने तेजोमय वीर्यकी स्थापना की। उस गर्भसे एक डिम्बका प्रादुर्भाव हुआ, जिसके भीतरसे महाविराट् (नारायण) प्रकट हुए। उन्हींको महाविष्णु जानना चाहिये। वे श्रीकृष्णके सोलहवें अंश हैं। वे ही जब एकार्णवके जलमें शयन करते थे, उस समय उनके नाभिकमलसे ब्रह्माका प्रादुर्भाव हुआ। सृष्टिकर्ता ब्रह्माके भाल-देशसे चन्द्रशेखर शंकर प्रकट हुए हैं। महाविष्णुके वामपार्श्वसे विष्णु (लघु विराट्)-का प्राकट्य हुआ। शैलराज! इस प्रकार प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि प्राकृतिक कहे गये हैं।

श्रीकृष्णसे प्रकट हुई प्रकृतिने मुख्यतः चार प्रकारकी मूर्ति धारण की। इसके सिवा सृष्टि-संचालनके लिये लीलापूर्वक अपने अंश और कलाद्वारा उन्होंने और भी बहुत-से रूप धारण किये। श्रीकृष्णके वामाङ्गसे प्रकट हुई प्रकृतिदेवी स्वयं तो रासेश्वरी राधाके रूपमें प्रतिष्ठित हैं। वे ही स्वयं श्रीकृष्णके मुखसे प्रकट हो वाणी सरस्वती कहलायीं, जो राग-रागिनियोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। श्रीकृष्णके वक्षःस्थलसे प्रकट हुई वे सर्वसम्पत्स्वरूपिणी लक्ष्मीके नामसे प्रसिद्ध हुई तथा सम्पूर्ण देवताओंके तेजमें उन्होंने अपने-आपको ही शिवारूपसे अभिव्यक्त किया और समस्त दानवोंका वध करके उन्होंने देवताओंको राज्यलक्ष्मी प्रदान की। तत्पश्चात् कल्पान्तरमें दक्षपत्नीके गर्भसे जन्म ले वे ही सती नामसे प्रसिद्ध हुई और शिवकी पत्नी बनीं। दक्षने स्वयं ही सतीको शिवके हाथमें दिया; परंतु पिताके यज्ञमें पतिकी निन्दा सुनकर सतीने योगसे अपने शरीरको त्याग दिया। पितरोंकी मानसी कन्या मेनका तुम्हारी पत्नी हैं। उनके गर्भसे उन्हीं जगदम्बिका सतीने जन्म ग्रहण किया है। शैलराज! यह शिवा जन्म-जन्ममें और कल्प-कल्पमें शिवकी पत्नी रही हैं। यह पराशक्ति जगदम्बा ज्ञानियोंकी बुद्धिरूपा है। इसे पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण बना रहता है। यह सर्वज्ञा, सिद्धिदायिनी और सिद्धिरूपिणी है। इसकी अस्थि और चिताभस्मको भगवान् शिव स्वयं भक्तिपूर्वक धारण करते हैं। कल्याणस्वरूप गिरिराज! तुम स्वेच्छासे अपनी कन्या शिवको दे दो, दे दो। नहीं तो, वह स्वयं अपने प्राणवल्लभके स्थानको चली जायगी और तुम देखते रह जाओगे। पूर्वजन्मसे जो जिसकी पत्नी है, दूसरे जन्ममें वह अपने उस प्रियतमको अवश्य पाती है। प्रजापतिके इस नियमका कोई भी खण्डन नहीं कर सकता। भगवान् शिव स्वात्माराम और सत्वश हैं; अतः विवाहके लिये उत्सुक नहीं हैं। तारकासुरसे

पीड़ित हुए समस्त देवताओंने इसके लिये उनका स्तवन किया है। देवताओंकी पीड़ा देखकर ब्रह्माजीके प्रार्थना करनेपर कृपालु भगवान् शिवने कृपापूर्वक उनके इस अनुरोधको स्वीकार किया है। विवाहकी प्रतिज्ञा करके योगीन्द्र शिवने जब शिवाको असंख्य क्लेश उठाते देखा, तब तुम्हारी पुत्रीकी तपस्याके स्थानमें वे स्वयं ब्राह्मणका रूप धारण करके आये और उसे आश्वासन तथा वर देकर पुनः अपने स्थानको लौट गये।

गिरिराज! इस समाचारको सुनकर ही इन्द्र आदि सब देवता प्रसन्नतापूर्वक यहाँ आये थे। भगवान् नारायण, ब्रह्मा, धर्म, ऋषि-मुनि, गन्धर्व, यक्ष और राक्षस सब इस समय एक स्थानपर मिले और इस विषयपर सबने अच्छी तरह विचार किया। उन्हीं लोगोंने हमें शीघ्र यहाँ भेजा है। देवी अरुन्धती अपने कर्तव्यका पालन करके उऋण हो चुकी हैं। तुम्हें समझानेमें हमें सदा ही अधिक प्रसन्नता होती है; तुम्हारे सामने शिवाके विवाहका शुभ कार्य प्राप्त है, जो सब कालमें सुख देनेवाला है। शैलेन्द्र! यदि स्वेच्छापूर्वक शिवाका विवाह शिवके साथ नहीं करोगे तो भी वह होकर ही रहेगा; क्योंकि भवितव्यता प्रबल होती है। वे महादेवजी रत्नसारनिर्मित रथपर योगीन्द्रोंमें श्रेष्ठ, ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु, आदि-मध्य और अन्तसे रहित, निर्विकार एवं अजन्मा परब्रह्मस्वरूप श्रीकृष्णको बिठाकर यहाँ विवाहके लिये पधारेंगे। नारायणको साथ ले तपस्याके स्थानमें शिवने शिवाको वर दिया है। ईश्वरकी दुर्लभ प्रतिज्ञा कभी विफल नहीं हो सकती। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् नश्वर और अस्थिर है; परंतु साधु पुरुषोंकी प्रतिज्ञा दुर्लङ्घ्य और अमिट होती है।

हिमालय! एक ही इन्द्रने लीलापूर्वक समस्त पर्वतोंके पंख काट डाले। पवनदेवने खेल-खेलमें ही मेरु पर्वतके एक शिखरको भंग कर दिया। अतः तुम्हीं बताओ पर्वतोंमें कौन-से ऐसे हैं, जो देवताओंसे युद्ध कर सकें। पवनसे प्रेरित हो समस्त पर्वत एक ही क्षणमें समुद्रोंके भीतर जा गिरेंगे। शैलेन्द्र! यदि एकके लिये सारी सम्पत्तिका विनाश हो रहा हो तो उस एकको देकर शेष सबकी रक्षा कर लेनी चाहिये; परंतु यह नियम शरणागतके लिये लागू नहीं है। शरणागतकी रक्षाके लिये तो अपने प्राणोंका परित्याग कर देना भी उचित है। फिर स्त्री, पुत्र, धन आदि अन्य सब वस्तुओंकी तो बात ही क्या है? ऐसा नीतिवेत्ताओंका मत है। महाराज अनरण्य ब्राह्मणको अपनी पुत्री देकर शापसे मुक्त हुए और अपनी समस्त सम्पदाओंकी रक्षा कर सके। अनरण्य ब्राह्मणोंके हितकारी थे; परंतु उन्हींके शापमें डूबकर अत्यन्त कातर हो गये थे। उस समय नीतिशास्त्रके विद्वानोंने उन्हें शीघ्र ही कर्तव्यका बोध कराया और उसका पालन करके वे संकटसे मुक्त हुए। शैलेन्द्र! तुम भी शिवको अपनी पुत्री देकर समस्त बन्धुजनोंकी रक्षा करो और देवताओंको भी अधीन बना लो।

वसिष्ठजीकी बात सुनकर पर्वतेश्वर हँसे; उन्होंने व्यथित हृदयसे राजा अनरण्यका वृत्तान्त पूछा।

हिमालय बोले—ब्रह्मन्! राजाधिराज अनरण्य किस कुलमें उत्पन्न हुए थे और उन्होंने किस प्रकार अपनी पुत्री देकर समस्त सम्पदाओंकी रक्षा की थी?

वसिष्ठजीने कहा—शैलराज! नृपेश्वर अनरण्य मनुवंशी राजा थे। वे चिरंजीवी, धर्मात्मा, वैष्णव तथा जितेन्द्रिय थे। पहले मनुका नाम स्वायम्भुव है, जो ब्रह्माजीके पुत्र और अत्यन्त धर्मात्मा थे। उन्होंने इकहत्तर चतुर्युगतक धर्मपूर्वक राज्य किया था। तदनन्तर वे शतरूपाके साथ वैकुण्ठधाममें चले गये और श्रीहरिका दास्य एवं सामीप्य पाकर उनके दास हो गये। तत्पश्चात् स्वारोचिष मनु हुए,

जो एक महान् पुरुष थे। उनका काल व्यतीत हो जानेपर उत्तम मनुका राज्य आया। उत्तमके भी चले जानेपर धर्मात्मा तामस मनुके पदपर प्रतिष्ठित हुए। उनके बाद ज्ञानिशिरोमणि रैवतका मन्वन्तर आया। तत्पश्चात् छठे चाक्षुष मनु और सातवें श्राद्धदेव मनु उस पदके अधिकारी हुए हैं। आठवें मनुका नाम सावर्णि समझना चाहिये, जो सूर्यके ज्येष्ठ पुत्र हैं। वे ही पूर्वजन्ममें भूतलपर चैत्रवंशी राजा सुरथके नामसे प्रसिद्ध थे। नवें मनुका नाम दक्षसावर्णि और दसवेंका ब्रह्मसावर्णि है। ग्यारहवें श्रेष्ठ मनुको धर्मसावर्णि कहते हैं। तत्पश्चात् रुद्रसावर्णिका मन्वन्तर आता है। रुद्रसावर्णि भगवान् शिवके भक्त और जितेन्द्रिय थे। उनके बाद क्रमशः देवसावर्णि और इन्द्रसावर्णि तेरहवें तथा चौदहवें मन्वन्तरोंके अधिकारी हुए हैं। भैया! इस प्रकार मैंने तुम्हें चौदह मनुओंका परिचय दिया। इन सबके व्यतीत हो जानेपर ब्रह्माजीका एक दिन पूरा होता है। अब तुम इन्द्रसावर्णिका सारा वृत्तान्त मुझसे सुनो।

इन्द्रसावर्णि सब मनुओंमें श्रेष्ठ, धर्मात्मा तथा गदाधारी भगवान् विष्णुके अनन्य भक्त थे। उन्होंने इकहत्तर युगोंतक धर्मपूर्वक राज्य किया। इसके बाद वे अपने पुत्र सुरेन्द्रको राज्य देकर तपस्याके लिये वनमें चले गये। सुरेन्द्रका पुत्र महाबली श्रीमान् श्रीनिकेत हुआ। उसका पुत्र महायोगी पुरीषतर और उसका पुत्र अत्यन्त तेजस्वी गोकामुख हुआ। गोकामुखके वृद्धश्रवा, वृद्धश्रवाके भानु, भानुके पुण्डरीक, पुण्डरीकके जिह्वल, जिह्वलके भृङ्गी, भृङ्गीके भीम और भीमके पुत्र यशश्चन्द्र हुए; जिन्होंने अपने यशसे चन्द्रमाको जीत लिया था। संतपुरुष तथा देवतालोग सदा ही उनको निर्मल कीर्तिका गान करते हैं। उनका पुत्र वरेण्य और वरेण्यका पुत्र पुरारण्य हुआ। पुरारण्यके धार्मिक पुत्रका नाम धरारण्य था। धरारण्यके पुत्र मङ्गलारण्य हुए, जो ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ और तपस्वी थे। नृपश्रेष्ठ मङ्गलारण्यके कोई पुत्र नहीं था; अतः वे तपस्याके लिये पुष्करमें गये। वहाँ दीर्घकालतक तप करके महेश्वरसे वर पाकर वे घर आये। वहाँ उन्हें अनरण्य नामक पुत्र प्राप्त हुआ, जो भगवान् विष्णुका भक्त और जितेन्द्रिय था। उस पुत्रको राज्य देकर मङ्गलारण्य तपस्याके लिये वनमें चले गये। नृपश्रेष्ठ अनरण्य सातों द्वीपोंसे युक्त पृथ्वीका पालन करने लगे; उन्होंने भृगुजीको पुरोहित बनाकर सौ यज्ञोंका अनुष्ठान किया; परंतु इन्द्रपदको नश्वर और अत्यन्त तुच्छ मानकर उन्होंने उसे ग्रहण नहीं किया। उन शुद्धबुद्धिवाले नरेशने अपने प्रज्वलित तेजसे इन्द्र, बलि तथा समस्त दानवेन्द्रोंको लीलापूर्वक जीत लिया।

हिमालय! उन महाराजके सौ पुत्र और एक सुन्दरी कन्या हुई, जो लक्ष्मीके समान लावण्यमयी थी। उसका नाम पद्मा रखा गया था। वह पिताके घरमें रहकर धीरे-धीरे युवावस्थामें प्रविष्ट हुई। तब महाराजने वरकी खोजके लिये दूत भेजा। एक दिन अपने आश्रमको जानेके लिये उत्सुक हुए पिप्पलाद मुनिने तपस्याके निर्जन स्थानमें एक गन्धर्वको देखा, जो स्त्रियोंसे घिरा था। उसका चित्त शृङ्गाररसके समुद्रमें डूबा हुआ था। कामसे अत्यन्त मतवाले हुए उस गन्धर्वको दिन-रातका भान नहीं होता था। उसे देखकर मुनिवर पिप्पलादके मनमें कामभावका उदय हुआ। उनका चित्त तपस्यासे विचलित हो गया और वे पत्नी-प्राप्तिका उपाय सोचने लगे। एक दिन पुष्पभद्रा नदीमें स्नानके लिये जाते हुए मुनीश्वर पिप्पलादने युवती पद्माको देखा, जो पद्मा (लक्ष्मी)-के समान मनोरम जान पड़ती थी। मुनिने आसपास खड़े हुए लोगोंसे पूछा—'यह कन्या कौन है?' लोगोंने बताया—'ये महाराज अनरण्यकी पुत्री हैं।' मुनिने स्नान करके अपने इष्टदेव राधावल्लभका पूजन किया और कामनापूर्वक भिक्षा माँगनेके लिये वे अनरण्यकी सभामें गये।

मुनिको आया देख राजाने शीघ्र ही उनके चरणोंमें प्रणाम किया और भयसे व्याकुल हो मधुपर्क आदि देकर भक्तिपूर्वक उनकी पूजा की।

वह सब कुछ ग्रहण करके मुनिने कामनापूर्वक राजकन्याको माँगा। उनकी याचना सुनकर राजा चुप हो गये। उनसे कुछ भी उत्तर देते नहीं बना। मुनिने फिर याचना की। नरेश्वर! अपनी कन्या मुझे दीजिये; अन्यथा मैं एक ही क्षणमें सबको भस्म कर डालूँगा। मुनिके तेजसे राजाके समस्त सेवक आच्छन्न हो गये। मुनिको वृद्ध और जरा-जीर्ण हुआ देख भृत्यगणोंसहित राजा रोने लगे। सब रानियाँ भी रोदन करने लगीं। इस समय क्या करना चाहिये, इसका निर्णय करनेकी शक्ति किसीमें नहीं रह गयी। कन्याकी माता महारानी शोकसे व्याकुल हो मूर्च्छित हो गयीं। तब नीतिशास्त्रके ज्ञाता राजपण्डितने राजा, रानी, राजकुमारों और कन्याको उत्तम नीतिका उपदेश देते हुए कहा—'नरेश्वर! आज या दूसरे दिन आप अपनी कन्या किसी-न-किसीको देंगे ही। इस ब्राह्मणको छोड़कर और किसको आप कन्या देना उचित समझते हैं? मैं तो तीनों लोकोंमें इस ब्राह्मणके सिवा दूसरे किसीको कन्यादानका उत्तम पात्र नहीं देखता हूँ। आप मुनिको अपनी पुत्री देकर समस्त सम्पदाओंकी रक्षा कीजिये; अन्यथा राजकन्याके कारण सारी सम्पत्ति नष्ट हो जायगी। शरणागतके सिवा दूसरे किसी भी एक मनुष्यका त्याग करके सर्वस्वकी रक्षा की जा सकती है।'

पण्डितजीकी बात सुनकर राजाने बारंबार विलापके पश्चात् राजकन्याको वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत करके मुनीन्द्रके हाथमें दे दिया। प्राणवल्लभाको पाकर मुनि प्रसन्नतापूर्वक अपने आश्रमको लौट गये। राजा भी शोकके कारण सबका त्याग करके तपस्याके लिये चले गये। पति और पुत्रीके शोकसे सुन्दरी महारानीने अपने प्राणोंको त्याग दिया। राजाके बिना उनके पुत्र, पौत्र और भृत्यगण शोकसे अचेत हो गये। राजा अनरण्य गोलोकनाथ राधावल्लभका चिन्तन और सेवन करते हुए तप करके गोलोकधामको चले गये। उनका ज्येष्ठ पुत्र कीर्तिमान् राजा हुआ। वह भूतलपर समस्त प्रजाका पुत्रकी भाँति पालन करने लगा। (अध्याय ४१)

अनरण्यकी पुत्री पद्माकी धर्मद्वारा परीक्षा, सती पद्माका उनको शाप देना तथा उस शापसे उनकी रक्षाकी भी व्यवस्था करना, वसिष्ठजीका हिमवान्‌को संक्षेपसे सतीके देह-त्यागका प्रसङ्ग सुनाना

वसिष्ठजी कहते हैं—गिरिराज! जैसे लक्ष्मी नारायणकी सेवा करती हैं, उसी प्रकार अनरण्यकी कन्या पद्मा मन, वाणी और क्रियाद्वारा भक्तिभावसे पिप्पलादमुनिकी सेवा करने लगी। एक दिन वह सती राजकुमारी स्नान करनेके लिये गङ्गाजीके तटपर गयी। मार्गमें राजाका वेष धारण किये हुए साक्षात् धर्मने उसके मनके भावोंको जाननेके लिये पवित्र भावनासे ही कामी पुरुषकी भाँति कुछ बातें कहीं। उन्हें सुनकर पद्मा बोली—'ओ पापिष्ठ नृपाधम! दूर चला जा, दूर चला जा। यदि तू मेरी ओर कामदृष्टिसे देखेगा तो तत्काल भस्म हो जायगा। जिनका शरीर तपस्यासे परम पवित्र हो गया है; उन मुनिश्रेष्ठ पिप्पलादको छोड़कर क्या मैं तेरे-जैसे स्त्रीके गुलाम तथा रति-लम्पटकी सेवा स्वीकार करूँगी? मैं तेरे लिये माताके समान हूँ, तो भी तू भोग्या स्त्रीका भाव लेकर मुझसे बात कर रहा है। इसलिये मैं शाप देती हूँ कि कालक्रमसे तेरा क्षय हो जायगा।'

सतीका शाप सुनकर देवेश्वर धर्म काँपने लगे और राजाका रूप छोड़ अपनी मूर्ति धारण करके उससे बोले।

धर्मने कहा—मातः! आप मुझे धर्मज्ञोंकि गुरुका भी गुरु धर्म समझिये। पतिव्रते! मैं सदा परायी स्त्रीके प्रति माताका ही भाव रखता हूँ। मैं आपके आन्तरिक भावको समझनेके लिये ही आया था। यद्यपि आप-जैसी सतियोंका मन कैसा होता है, यह मैं जानता था; तथापि दैवसे प्रेरित होकर परीक्षा करनेके लिये चला आया। साध्वि! आपने जो मेरा दमन किया है, वह नीतिके विरुद्ध नहीं है; सर्वथा उचित ही है; क्योंकि कुमार्गपर चलनेवालोंके लिये दण्डका विधान साक्षात् परमेश्वर श्रीकृष्णने ही किया है। जो धर्मको भी स्वधर्मका ज्ञान कराने और कालकी भी कलना (गणना) तथा स्रष्टाकी भी सृष्टि करनेमें समर्थ हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो समयपर संहर्ताका भी संहार करनेकी शक्ति रखते हैं और अनायास ही स्रष्टाकी भी सृष्टि कर सकते हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो शत्रुको भी मित्र बना सकते हैं, कलहको भी उत्तम प्रेममें परिणत कर सकते हैं तथा सृष्टि और विनाशकी भी क्षमता रखते हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो सबको शाप, सुख, दुःख, वर, सम्पत्ति और विपत्ति भी देनेमें समर्थ हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जिन्होंने प्रकृतिको प्रकट किया है, महाविष्णु तथा ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर आदिको उत्पन्न किया है; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जिन्होंने दूधको श्वेत, जलको शीतल और अग्निको दाहिका शक्तिसे सम्पन्न बनाया है; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है। जो अत्यन्त तेजःपुञ्जसे प्रकट होते हैं, जिनकी मूर्ति तेजोमयी है तथा जो गुणोंसे श्रेष्ठ एवं निर्गुण हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है और जो सर्वरूप, सर्वबीजस्वरूप, सबके अन्तरात्मा तथा समस्त जीवोंके लिये बन्धुस्वरूप हैं; उन भगवान् श्रीकृष्णको नमस्कार है।

यों कहकर जगद्गुरु धर्म पद्माके सामने खड़े हो गये। शैलराज! धर्मका परिचय पाकर वह साध्वी सहसा बोल उठी।

पद्माने कहा—भगवन्! क्या आप ही सबके समस्त कर्मोंके साक्षी, सबके भीतर रहनेवाले, सर्वात्मा, सर्वज्ञ तथा सर्वतत्त्ववेत्ता धर्म हैं? फिर मेरे मनको जाननेके लिये मुझ दासीकी विडम्बना क्यों करते हैं? धर्मदेव! आपके प्रति मैंने जो कुछ किया है, वह मेरा अपराध है। प्रभो! मैंने स्त्री-स्वभाववश आपको न जाननेके कारण क्रोधपूर्वक शाप दे दिया है। उस शापकी क्या व्यवस्था होगी; यही इस समय मेरा चिन्ताका विषय है। आकाश, सम्पूर्ण दिशाएँ और वायु भी यदि नष्ट हो जायँ तो भी पतिव्रताका शाप कभी नष्ट नहीं हो सकता*। मेरे शापसे यदि आप नष्ट हो जाते हैं तो सम्पूर्ण सृष्टिका ही नाश हो जायगा। यह सोचकर मैं किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही हूँ; तथापि आपसे कहती हूँ। देवेश्वर! जैसे पूर्णिमाको चन्द्रमा पूर्ण होते हैं, उसी प्रकार सत्ययुगमें आप चारों चरणोंसे परिपूर्ण रहेंगे। उस युगमें सर्वत्र और सर्वदा दिन-रात आप विराजमान होंगे। किंतु भगवन्! त्रेतायुग आनेपर आपके एक चरणका नाश हो जायगा। प्रभो! द्वापरमें दो पैर क्षीण होंगे और कलियुगमें आपका तीसरा पैर भी नष्ट हो जायगा। कलिके अन्तमें आपका चौथा चरण भी छिप जायगा। फिर सत्ययुग आनेपर आप चारों चरणोंसे परिपूर्ण हो जायँगे। सत्ययुगमें आप सर्वव्यापी होंगे और उससे भिन्न युगोंमें भी कहीं-कहीं पूर्णरूपमें विद्यमान रहेंगे। प्रभो! जहाँ आपका स्थान या

*आकाशोऽसौ दिशः सर्वा यदि नश्यन्ति वायवः। तथापि साध्वीशापस्तु न नश्यति कदाचन॥ (४२। ३४)

आधार होगा, उसे बताती हूँ, सुनिये।

सम्पूर्ण वैष्णव, यति, ब्रह्मचारी, पतिव्रता स्त्री, ज्ञानी पुरुष, वानप्रस्थ, भिक्षु (संन्यासी), धर्मशील राजा, साधु-संत, श्रेष्ठ वैश्यजाति तथा सत्पुरुषोंके संसर्गमें रहनेवाले द्विज, सेवक, शूद्र—इन सबमें आप सदा पूर्णरूपसे विराजमान रहेंगे। युग-युगमें जहाँ भी पुण्यात्मा पुरुष होंगे, वे आपके आधार रहेंगे। पीपल, बट, बिल्व, तुलसी, चन्दन—इन वृक्षोंपर; दीक्षा, परीक्षा, शपथ, गोशाला और गोपद भूमियोंमें; विवाहमें, फूलोंमें, देववृक्षोंमें, देवालयोंमें, तीर्थोंमें तथा साधु पुरुषोंके गृहोंमें आपका सदा निवास होगा। वेद-वेदाङ्गोंके श्रवणकालमें, जलमें, सभाओंमें, श्रीकृष्णके नाम और गुणोंके कीर्तन, श्रवण तथा गानके स्थानोंमें; व्रत, पूजा, तप, न्याय, यज्ञ एवं साक्षीके स्थानोंमें; गोशालाओंमें तथा गौओंमें विद्यमान रहकर आप अपनेको पूर्णरूपसे प्रतिष्ठित देखेंगे। धर्म! उन स्थानोंमें आप क्षीण नहीं होंगे। इनसे भिन्न स्थानोंमें आपकी कृशता देखी जायगी। जो स्थान आपके लिये अगम्य हैं; उनका वर्णन सुनिये। सम्पूर्ण व्यभिचारिणियोंमें, नरघाती मनुष्योंके घरोंमें, नरहत्या करनेवाले नीच पुरुषोंमें, मूर्ख और दुष्टोंमें, देवता, गुरु, ब्राह्मण, इष्टदेव तथा पालनीय मनुष्योंके धनका अपहरण करनेवालोंमें; दुष्टों, धूर्तों और चोरोंमें, रति-स्थानोंमें; जूआ, मदिरापान और कलहके स्थानोंमें; शालग्राम, साधु, तीर्थ और पुराणोंसे रहित स्थलोंमें; डाकुओंके स्नेहमें, वाद-विवादमें, ताड़की छायामें, गर्वीले मनुष्योंमें, तलवारसे जीविका चलानेवाले तथा स्याहीसे जीवन-निर्वाह करनेवाले, देवालयोंमें पूजाकी वृत्तिसे जीनेवाले तथा ग्राम-पुरोहितोंमें; बैल जोतनेवालों, सुनारों और जीव-हिंसासे जीविका चलानेवालोंमें; भर्तृनिन्दित नारियों तथा नारीके वशमें रहनेवाले पुरुषोंमें; दीक्षा, संध्या तथा विष्णुभक्तिसे हीन द्विजोंमें; अपनी पुत्री तथा पत्नी बेचनेवालोंमें; शालग्राम और देवमूर्तियोंका विक्रय करनेवालोंमें; मित्रद्रोही, कृतघ्न, सत्यनाशक तथा विश्वासघातियोंमें; शरणागतकी रक्षासे दूर रहनेवालों तथा शरणमें आये हुए लोगोंका नाश करनेवालोंमें; सदा झूठ बोलनेवाले, सीमाका अपहरण करनेवाले, काम, क्रोध और लोभवश झूठी गवाही देनेवाले, पुण्यकर्महीन तथा पुण्यकर्मके विरोधी मनुष्योंमें आप नहीं रहेंगे। प्रभो! इन निन्दनीय स्थानोंमें रहनेका आपको अधिकार नहीं होगा। ऐसी व्यवस्था होनेसे मेरी बात भी सच्ची हो जायगी। तात! अब मैं पतिसेवाके लिये जाऊँगी। आप भी अपने घरको पधारिये।

ऐसी बातें कहनेवाली पद्माके वचन सुनकर ब्रह्मपुत्र श्रीमान् धर्मका मुखारविन्द प्रसन्नतासे खिल उठा। वे उस पतिव्रतासे अत्यन्त विनयपूर्वक बोले।

धर्मने कहा—मेरी रक्षा करनेवाली देवि! तुम धन्य हो। पतिपरायणा हो। तुम्हारा सदा ही कल्याण हो। मैं तुम्हें वर देता हूँ; ग्रहण करो। बेटी! तुम्हारे पति युवावस्थासे सम्पन्न तथा रतिकर्ममें समर्थ हों। साध्वि! वे रूपवान् और गुणवान् हों। उनका यौवन सदा ही स्थिर रहे। वत्से! तुम भी उत्तम ऐश्वर्यसे युक्त एवं स्थिरयौवना हो जाओ। तुम्हारे पति मार्कण्डेयके बाद दूसरे चिरंजीवी पुरुष हों। वे कुबेरसे भी धनी और इन्द्रसे भी बढ़कर ऐश्वर्यवान् हों। शिवके समान विष्णुभक्त तथा कपिलके बाद उन्हींकी श्रेणीके सिद्ध हों। तुम जीवनभर पतिके सौभाग्यसे सम्पन्न बनी रहो। साध्वि! तुम्हारे घर कुबेरके भवनसे भी अधिक सुन्दर हों। तुम अपने पतिसे भी अधिक गुणवान् और चिरंजीवी दस पुत्रोंकी माता बनोगी; इसमें संशय नहीं है।

शैलराज! यों कहकर धर्मराज चुपचाप खड़े हो गये। पद्मा उनकी परिक्रमा और प्रणाम करके अपने घरको चली गयी। धर्म भी उसे आशीर्वाद दे अपने धामको गये और प्रत्येक सभामें

पतिव्रताकी प्रशंसा करने लगे। पद्मा अपने तरुण पतिके साथ सदा एकान्तमें मिलन-सुखका अनुभव करने लगी। पीछे उसके दस श्रेष्ठ पुत्र हुए जो उसके पतिसे भी अधिक गुणवान् थे। गिरिराज! इस प्रकार मैंने सारा पुरातन इतिहास कह सुनाया। अनरण्यने अपनी पुत्री देकर समस्त सम्पत्तिकी रक्षा कर ली। तुम भी सबके ईश्वर भगवान् शिवको अपनी कन्या देकर अपने समस्त बन्धुओं तथा सम्पूर्ण सम्पत्तिकी रक्षा करो। शैलराज! एक सप्ताह बीतनेपर अत्यन्त दुर्लभ शुभ क्षणमें, जब चन्द्रमा लग्नेश होकर लग्नमें अपने पुत्र बुधके साथ विराजमान होंगे; रोहिणीका संयोग पाकर प्रसन्नताका अनुभव करते होंगे; चन्द्र और तारा सर्वथा शुद्ध होंगे; मार्गशीर्ष मासका सोमवार होगा; लग्न सब प्रकारके दोषोंसे रहित, समस्त शुभग्रहोंकी दृष्टिसे लक्षित और असत् ग्रहोंसे शून्य होगा; उत्तम संतानप्रद, पतिसौभाग्यदायक, वैधव्यनिवारक, जन्म-जन्ममें सुख प्रदान करनेवाला तथा प्रेमका कभी विच्छेद न होने देनेवाला अत्यन्त श्रेष्ठतम योग उपस्थित होगा; उस समय तुम अपनी पुत्री मूलप्रकृति ईश्वरी जगदम्बाको जगत्पिता महादेवजीके हाथमें देकर कृतकृत्य हो जाओ।

गिरिराज! कल्पान्तरकी बात है; वह मूलप्रकृति ईश्वरी भगवान् श्रीकृष्णकी आज्ञासे दक्षकन्या सतीके रूपमें आविर्भूत हुई। दक्षने उस देवीको विधि-विधानके साथ शूलपाणि शिवके हाथमें दे दिया। तदनन्तर मेरे पिताके यज्ञमें, जहाँ समस्त देवताओंकी सभा जुड़ी हुई थी, दक्षका उन शूलपाणि महादेवजीके साथ सहसा महान् कलह हो गया। उस कलहसे रुष्ट हो त्रिनेत्रधारी शिव ब्रह्माजीको नमस्कार करके चले गये। दक्षके मनमें भी रोष था; अतः वे भी अपने गणोंके साथ उसी क्षण अपने घरको चल दिये। घर जाकर दक्षने रोषपूर्वक ही यज्ञकी सामग्री एकत्र की और उसके द्वारा महान् यज्ञका आयोजन किया। उस यज्ञमें उन्होंने द्वेषवश शूलपाणि शंकरको भाग नहीं दिया। यह देख सतीके मनमें पिताके प्रति बड़ा क्रोध हुआ। उसकी आँखें लाल हो गयीं। उसने व्यथित-हृदयसे पिताको बहुत फटकारा और यज्ञस्थानसे उठकर वह माताके पास गयी। उस परात्परा देवीको तीनों कालोंका ज्ञान था; अतः उसने भविष्यमें घटित होनेवाली घटनाका वहाँ वर्णन किया। यज्ञका विध्वंस, पिता दक्षका पराभव, यज्ञस्थानसे देवताओं, मुनियों, ऋत्विजों तथा पर्वतोंका पलायन, शंकरके सैनिकोंकी विजय, अपनी मृत्यु, पत्नीके विरहसे आतुर-चित्त होकर शोकवश पतिका पर्यटन, उनके नेत्रोंके जलसे सरोवरका निर्माण, भगवान् जनार्दनके समझानेसे उनका धैर्य धारण करना, दूसरे शरीरसे पुनः शिवकी प्राप्ति, उनके साथ विहार तथा अन्य सब भावी वृत्तान्त बताकर सती माता और बहनोंके मना करनेपर भी दुःखी हो घरसे चली गयी। वह सिद्धयोगिनी थी। अतः योगबलसे सबकी दृष्टिसे ओझल हो गयी। गङ्गाजीके तटपर जाकर शंकरके ध्यान और पूजनके पश्चात् उनके चरणारविन्दोंका चिन्तन करती हुई सुन्दरी सतीने शरीरको त्याग दिया और गन्धमादन पर्वतकी गुफामें विद्यमान उस दिव्य विग्रहमें प्रवेश किया, जिसके द्वारा उसने पूर्वकालमें दैत्योंके समस्त कुलका संहार किया था। वह घटना देख सब देवता अत्यन्त विस्मित हो हाहाकार कर उठे। शंकरके सैनिक दक्ष-यज्ञका विनाश तथा सबका पराभव करके शोकसे व्याकुल हो लौट गये और शीघ्र ही सारा वृत्तान्त अपने स्वामीसे कह सुनाया। यह समाचार सुनकर समस्त रुद्रगणोंसे घिरे हुए संहारकारी महेश्वर गङ्गाजीके उस तटपर गये, जहाँ देवी सतीका शरीर पड़ा था।

(अध्याय ४२)

शिवका सतीके शवको लेकर शोकवश समस्त लोकोंमें भ्रमण, भगवान् विष्णुका उन्हें समझाना और प्रकृतिकी स्तुतिके लिये कहना, शिवद्वारा की हुई स्तुतिसे संतुष्ट हुई प्रकृतिरूपिणी सतीका शिवको दर्शन एवं सान्त्वना देना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर महादेवजीने गङ्गाजीके तटपर सोयी हुई दुर्गास्वरूपा सतीकी मनोहर मूर्ति देखी, जिसके मुखारविन्दकी कान्ति अभी मलिन नहीं हुई थी। वह शरीरपर श्वेत वस्त्र धारण किये और हाथमें अक्षमाला लिये दिव्य तेजसे प्रकाशित हो रही थी। उसके अङ्गोंसे तपाये हुए सुवर्णकी-सी कमनीय कान्ति फैल रही थी। सतीके उस प्राणहीन शरीरको देखकर भगवान् शिव विरहकी आगसे जलने लगे। वे मूर्तिमान् तत्त्वराशि होनेपर भी सतीके वियोगमें कभी मूर्च्छित, कभी चेतन होते हुए भाँति-भाँतिसे विलाप करने लगे। तदनन्तर उनके स्वर्णप्रतिम मृत देहको वक्षपर धारण करके सप्तद्वीप, लोकालोक पर्वत तथा सप्तसिन्धुमें भ्रमण करते हुए भारतमें शतशृङ्ग-गिरिके पास जम्बूद्वीपमें निर्जन प्रदेशस्थ अक्षयवटके नीचे नदीतीरपर पहुँचे। वहाँसे महायोगी शंकर विरहाकुलचित्त होकर पूरे एक वर्षतक पृथ्वीपर परिभ्रमण करते रहे। सती देवीके उस मृत देहके अङ्ग-प्रत्यङ्ग जिस-जिस स्थानपर गिरे, वे स्थान कामनाप्रद सिद्धपीठ हो गये। तदनन्तर शंकरने सतीके अवशिष्ट अङ्गोंका संस्कार किया। अस्थियोंकी माला गूँथकर उसे अपना कण्ठभूषण बना लिया और प्रतिदिन सतीका शरीर-भस्म अपने शरीरपर लगाने लगे। इसके बाद वे निश्चेष्ट-से होकर एक वटमूलमें पड़ गये। तब लक्ष्मीपूजित भगवान् नारायण अपने पार्षदों, देवताओं और ऋषि-मुनियोंके साथ वहाँ पधारकर श्रीशंकरको गोदमें लेकर उन्हें समझाने लगे।

श्रीभगवान्‌ने कहा—स्वात्माराम शिव! मेरी बात सुनो और उसपर ध्यान दो। वह हितकारक, अध्यात्मज्ञानका सार, दुःख-शोकका नाश करनेवाली तथा सम्पूर्ण अध्यात्मज्ञानका विद्यमान बीज है। यद्यपि तुम स्वयं ज्ञानकी निधि, विधि, सर्वज्ञ तथा स्रष्टाओंके भी स्रष्टा हो, तथापि मैं तुम्हें ज्ञानका उपदेश दे रहा हूँ। प्राण-संकटके समय विद्वान् पुरुष विद्वान्‌को भी समझा सकता है। लोकमें यह व्यवहार है कि सब लोग सबको परस्पर समझाते-बुझाते हैं। शम्भो! महेश्वर! दुर्दिनमें दुःख, शोक और भयकी प्राप्ति होती है। जब दुर्दिन बीत जाता और सुदिन आ जाता है, तब उनकी प्राप्ति कैसे हो सकती है? उस समय तो हर्ष और ऐश्वर्यविषयक दर्पकी ही निरन्तर वृद्धि होती है; परंतु विद्वान् पुरुष इन सबको स्वप्नकी भाँति मिथ्या समझते हैं। महादेव! तुम ज्ञानकी उत्पत्तिके कारण तथा सनातन हो। ज्ञान प्राप्त करो—अपने स्वरूपका स्मरण करो। तुम्हारा कल्याण हो, तुम सचेत होओ—होशमें आओ। निश्चय ही तुम्हें सतीकी प्राप्ति होगी। जैसे शीतलता जलको, दाहिका शक्ति अग्निको, तेज सूर्यको तथा गन्ध पृथ्वीको कभी नहीं छोड़ती है; उसी तरह सती तुम्हें छोड़कर अलग नहीं रह सकती है।

सनातन ज्ञानानन्दस्वरूप ज्ञाननिधे शंकर! मैं जो कहता हूँ, उसे सुनो। तुम परात्पर परमेश्वर हो, परंतु शोकवश अपने-आपको भूल गये हो। प्रत्येक जगत्‌में तथा जन्म-जन्ममें सुदिन और दुर्दिनका चक्र निरन्तर चला करता है। वे सुदिन और दुर्दिन ही समस्त प्राकृत प्राणियोंके लिये सुख-दुःखकी प्राप्तिके मुख्य कारण होते हैं। सुखसे हर्ष, दर्प, शौर्य, प्रमाद, राग, ऐश्वर्यकी अभिलाषा और विद्वेष निरन्तर प्रकट होते रहते

हैं। दुःख, शोक और उद्वेगसे सदा भयकी प्राप्ति होती है। महेश्वर! यदि इनके बीज नष्ट हो जायँ तो ये सब स्वतः नष्ट हो जाते हैं। चञ्चल मन ही पुण्य और पापका बीज है। शम्भो! सम्पूर्ण इन्द्रियोंसहित मन मेरा अंश है। सबका जनक जो अहंकार है, उसके अधिष्ठाता चेतन तुम हो और ये ब्रह्मा बुद्धिके अधिष्ठाता हैं। परब्रह्म परमात्मा एक हैं। गुण-भेदसे ही सदा उसके भिन्न-भिन्न रूप होते हैं। वह ब्रह्मतत्त्व एक होनेपर भी अनेक प्रकारका है। शिव! वह सगुण भी है और निर्गुण भी। जो मायारूप उपाधिका आश्रय लेता है, वह सगुण और जो मायातीत है, वह निर्गुण कहलाता है। भगवान् स्वेच्छामय हैं। वे अपनी इच्छासे ही विविध रूपोंमें प्रकट होते हैं। उनकी इच्छाशक्तिका ही नाम प्रकृति है। वह नित्यस्वरूपा और सदा सबकी जननी है। कुछ लोग ज्योतिःस्वरूप सनातन ब्रह्मको एक ही बताते हैं तथा कुछ दूसरे विद्वान् उसे प्रकृतिसे युक्त होनेके कारण द्विविध कहते हैं। जो एक बताते हैं, उनका मत सुनो। ब्रह्म माया तथा जीवात्मा दोनोंसे परे है। उस ब्रह्मसे ही ये दोनों (माया और जीवात्मा) प्रकट होते हैं; अतः ब्रह्म ही सबका कारण है। वह परब्रह्म एक होकर भी स्वेच्छासे दो हो जाता है। उसकी इच्छाशक्ति ही प्रकृति है, जो सदा सम्पूर्ण शक्तियोंकी जननी होती है। उससे संयुक्त होनेके कारण वे परमात्मा 'सगुण' कहे जाते हैं। वे ही सबके आधार, सनातन, सर्वेश्वर, सर्वसाक्षी तथा सर्वत्र फलदाता होते हैं। शम्भो! शरीर भी दो प्रकारका होता है—एक नित्य और दूसरा प्राकृत। नित्य शरीरका विनाश नहीं होता; परंतु प्राकृत शरीर सदा नश्वर होता है। भगवन्! हम दोनोंके शरीर नित्य हैं। हमारे अंशभूत जो अन्य जीव हैं, उनके शरीर त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे उत्पन्न होनेके कारण प्राकृत कहलाते हैं। प्राकृत शरीर सदा ही विनाशशील हैं। रुद्र आदि तुम्हारे अंश हैं और विष्णुरूपधारी मेरे अंश। मेरे भी दो रूप हैं—द्विभुज और चतुर्भुज। चतुर्भुज मैं हूँ और वैकुण्ठधाममें लक्ष्मी तथा पार्षदोंके साथ रहता हूँ। द्विभुजरूपसे मैं श्रीकृष्ण कहलाता हूँ और गोलोकमें गोपियों तथा राधाके साथ निवास करता हूँ।

जो ब्रह्मको द्विविध बताते हैं, उनके मतमें दो प्रधान तत्त्व हैं—नित्य पुरुष तथा नित्या प्रकृति ईश्वरी। शिव! वे दोनों सदा परस्पर संयुक्त रहते हैं। वे ही सबके माता-पिता हैं। वे दोनों अपनी इच्छाके अनुसार कभी साकार और कभी निराकार होते हैं। दोनों ही सर्वस्वरूप हैं। जैसे पुरुषकी नित्य प्रधानता है, उसी तरह प्रकृतिकी भी है। शम्भो! यदि तुम सतीको पाना चाहते हो तो प्रकृतिका स्तवन करो। तुमने पूर्वकालमें दुर्वासाको प्रसन्नतापूर्वक जिस स्तोत्रका उपदेश दिया था, वह दिव्य है और उसका कण्वशाखामें वर्णन किया गया है। तुम उसीके द्वारा जगदम्बाकी आराधना करो। शिव! मेरे आशीर्वादसे तुम्हारे शोकका नाश हो। तुम्हें कल्याणकी प्राप्ति हो और तुम्हारे लिये विप्लवका कारण बना हुआ पत्नीके वियोगका यह रोग दूर हो जाय।

गिरिराज! ऐसा कहकर लक्ष्मीपति भगवान् विष्णु चुप हो गये। तदनन्तर महेश्वरने प्रकृतिके स्तवनका कार्य आरम्भ किया। उन्होंने स्नान करके श्रीकृष्ण और ब्रह्माको भक्तिपूर्वक हाथ जोड़ नमस्कार किया। उस समय उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा था।

महेश्वर बोले—'ॐ नमः प्रकृत्यै'

ॐ (सच्चिदानन्दमयी) प्रकृतिदेवीको नमस्कार है।

ब्राह्मि! तुम ब्रह्मस्वरूपिणी हो। सनातनि!

परमात्मस्वरूपे! परमानन्दरूपिणि! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ। भद्रे! तुम भद्र अर्थात् कल्याण प्रदान करनेवाली हो। दुर्गे! तुम दुर्गम संकटका निवारण तथा दुर्गतिका नाश करनेवाली हो। भवसागरसे पार उतारनेके लिये नूतन एवं सुदृढ़ नौकास्वरूपिणी देवि! मुझपर कृपा करो। सर्वस्वरूपे! सर्वेश्वरि! सर्वबीजस्वरूपिणि! सर्वाधारे! सर्वविधे! विजयप्रदे! मुझपर प्रसन्न होओ। सर्वमङ्गले! तुम सर्वमङ्गलरूपा, सभी मङ्गलोंको देनेवाली तथा सम्पूर्ण मङ्गलोंकी आधारभूता हो; मेरे ऊपर कृपा करो। भक्तवत्सले! तुम निद्रा, तन्द्रा, क्षमा, श्रद्धा, तुष्टि, पुष्टि, लज्जा, मेधा और बुद्धिरूपा हो; मुझपर प्रसन्न होओ। वेदमातः! तुम वेदस्वरूपा, वेदोंका कारण, वेदोंका ज्ञान देनेवाली और सम्पूर्ण वेदाङ्ग-स्वरूपिणी हो; मेरे ऊपर कृपा करो। जगदम्बिके! तुम दया, जया, महामाया, क्षमाशील, शान्त, सबका अन्त करनेवाली तथा क्षुधा-पिपासारूपिणी हो; मुझपर प्रसन्न होओ। विष्णुमाये! तुम नारायणकी गोदमें लक्ष्मी, ब्रह्माके वक्षः-स्थलमें सरस्वती और मेरी गोदमें महामाया हो; मेरे ऊपर कृपा करो। दीनवत्सले! तुम कला, दिशा, दिन तथा रात्रिस्वरूपा एवं कर्मोंके परिणाम (फल)-को देनेवाली हो; मुझपर प्रसन्न होओ। राधिके! तुम सभी शक्तियोंका कारण, श्रीकृष्णके हृदयमन्दिरमें निवास करनेवाली, श्रीकृष्णको प्राणोंसे भी अधिक प्रिया तथा श्रीकृष्णसे पूजित हो। मेरे ऊपर कृपा करो। देवि! तुम यशःस्वरूपा, सभी यशकी कारणभूता, यश देनेवाली, सम्पूर्ण देवीस्वरूपा और अखिल नारीरूपकी सृष्टि करनेवाली हो। शुभे! तुम अपनी कलाके अंशमात्रसे सम्पूर्ण कामिनियोंका रूप धारण करनेवाली, सर्वसम्पत्स्वरूपा तथा समस्त सम्पत्तिको देनेवाली हो; मुझपर प्रसन्न होओ। देवि! तुम परमानन्दस्वरूपा, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका कारण, यशस्वियोंसे पूजित और यशकी निधि हो; मेरे ऊपर कृपा करो। देवि! तुम समस्त जगत् एवं रत्नोंकी आधारभूता वसुन्धरा हो, चर और अचरस्वरूपा हो; मुझपर शीघ्र ही प्रसन्न होओ। सिद्धयोगिनि! तुम योगस्वरूपा, योगियोंकी स्वामिनी, योगको देनेवाली, योगकी कारणभूता, योगकी अधिष्ठात्री देवी और देवियोंकी ईश्वरी हो; मेरे ऊपर कृपा करो। सिद्धेश्वरि! तुम सम्पूर्ण सिद्धिस्वरूपा, समस्त सिद्धियोंको देनेवाली तथा सभी सिद्धियोंका कारण हो; मुझपर प्रसन्न होओ। महेश्वरि! विभिन्न मतोंके अनुसार जो समस्त शास्त्रोंका व्याख्यान है, उसका तात्पर्य तुम्हीं हो। ज्ञानस्वरूपे परमेश्वरि! मैंने जो कुछ अनुचित कहा हो, वह सब तुम क्षमा करो। कुछ विद्वान् प्रकृतिकी प्रधानता बतलाते हैं और कुछ पुरुषकी। कुछ विद्वान् इन दो प्रकारके मतोंमें व्याख्याभेदको ही कारण मानते हैं। पहले प्रलयकालमें एकार्णवके जलमें शयन करनेवाले महाविष्णुके नाभिदेशसे प्रकट हुए कमलपर, उसीसे उत्पन्न हुए जो ब्रह्माजी बैठे थे, उन्हें महादैत्य मधु और कैटभ खेल-खेलमें ही मारनेको उद्यत हो गये। तब ब्रह्माजी अपनी रक्षाके लिये तुम्हारी स्तुति करने लगे। उन्हें स्तुति करते देख तुमने उन दोनों महादैत्योंके विनाशके लिये जलशायी महाविष्णुको जगा दिया। तब नारायणने तुम शक्तिकी सहायतासे उन दोनों महादैत्योंको मार डाला। ये भगवान् तुम्हारा सहयोग पाकर ही सब कुछ करनेमें समर्थ हैं। तुम्हारे बिना शक्तिहीन होनेके कारण ये कुछ भी नहीं कर सकते। सुरेश्वरि! पूर्वकालमें त्रिपुरोंसे संग्राम करते समय जब मैं आकाशसे नीचे गिर पड़ा, तब तुमने ही विष्णुके साथ आकर मेरी रक्षा की थी। ईश्वरि! इस समय मैं विरहाग्निसे जल रहा हूँ; तुम मेरी रक्षा करो। परमेश्वरि! अपने दर्शनके पुण्यसे मुझे क्रीत दास बना लो।

यह कहकर शम्भु मौन हो गये। तब उन्होंने आकाशमें विराजमान उस देवी प्रकृतिको प्रसन्नतापूर्वक देखा, जो रत्नसारनिर्मित रथपर बैठी थीं। उनके सौ भुजाएँ थीं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए स्वर्णके समान देदीप्यमान थी। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थीं और उनके प्रसन्न-मुखपर मन्द हासकी छटा छा रही थी। उन जगन्माता सतीको देखकर विरहासक्त शंकरने पुनः शीघ्र ही उनकी स्तुति की और रोते हुए अपने विरहजनित दुःखको निवेदन किया। तदनन्तर उन्होंने सतीकी अस्थियोंसे बनी हुई अपनी माला उन्हें दिखायी और उनके शरीरजनित

भस्मको, जो शिवने अपने अङ्गोंका भूषण बना रखा था; उसकी ओर भी उनकी दृष्टि आकर्षित की। फिर अनेक प्रकारसे मनुहार करके उन्होंने सुन्दरी सतीको संतुष्ट किया। उस समय नारायण, ब्रह्मा, धर्म, शेषनाग, देवता और ऋषियोंने भी 'हे ईश्वरि! शिवकी रक्षा करो' ऐसा कहकर उन देवीका स्तवन किया। उन सबके स्तवनसे वे देवी तत्काल प्रसन्न हो गयीं तथा शिवकी उन प्राणवल्लभाने प्राणेश्वर शम्भुसे कृपापूर्वक कहा।

प्रकृति बोलीं—महादेव! आप धैर्य धारण करें। प्रभो! आप मेरे लिये प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय हैं। योगीश्वर! आप ही आत्मा तथा जन्म-जन्ममें मेरे स्वामी हैं। महेश्वर! मैं पर्वतराज हिमालयकी भार्या मेनकाके गर्भसे जन्म लेकर आपकी पत्नी बनूँगी; अतः आप इस विरह-ज्वरको त्याग दीजिये।

यों कह तथा शिवको आश्वासन दे वे अन्तर्धान हो गयीं और देवता भी उन्हें सान्त्वना देकर चले गये। उस समय लज्जासे भगवान् शिवका मस्तक झुका हुआ था। उनका चित्त हर्षसे उत्फुल्ल हो रहा था। वे कैलास पर्वतपर चले गये और शीघ्र ही विरहज्वरको त्यागकर अपने गणोंके साथ प्रसन्नतासे नाचने लगे।

जो मनुष्य शिवद्वारा किये गये इस प्रकृतिके स्तोत्रका पाठ करता है, उसका प्रत्येक जन्ममें अपनी पत्नीसे कभी वियोग नहीं होता। इहलोकमें सुख भोगकर वह शिवलोकमें चला जाता है तथा धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष—चारों पुरुषार्थोंको प्राप्त कर लेता है; इसमें संशय नहीं है। (अध्याय ४३)

पार्वतीके विवाहकी तैयारी, हिमवान्‌के द्वारपर दूलह शिवके साथ बारातमें विष्णु आदि देवताओंका आगमन, हिमालयद्वारा उनका सत्कार, वरको देखनेके लिये स्त्रियोंका आगमन, वरके अलौकिक रूप-सौन्दर्यको देख मेनाका प्रसन्न होना, स्त्रियोंद्वारा दुर्गाके सौभाग्यकी सराहना, दुर्गाका रूप, दम्पतिका एक-दूसरेकी ओर देखना, गिरिराजद्वारा दहेजके साथ शिवके हाथमें कन्याका दान तथा शिवका स्तवन

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—वसिष्ठजीके पूर्वोक्त वचनको सुनकर सेवकगणों तथा पत्नीसहित हिमालयको बड़ा विस्मय हुआ; किंतु स्वयं पार्वती मन-ही-मन हँस रही थी। अरुन्धतीने भी उन मेनादेवीको, जो शोकसे कातर हो खाना-पीना छोड़कर रो रही थीं; समझाया। तब उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक शोकका त्याग कर दिया तथा अरुन्धतीको उत्तम भोजन कराकर स्वयं भी भोजन किया। इसके बाद वे प्रसन्न-चित्तसे समस्त मङ्गलकार्योंका सम्पादन करने लगीं। प्रिये! तदनन्तर वसिष्ठजीकी आज्ञासे हिमालयने वैवाहिक सामग्री एकत्रित की और बड़ी उतावलीके साथ विभिन्न स्थानोंमें निमन्त्रणपत्र भेजवाया। तत्पश्चात् उन्होंने शिवके पास मङ्गलपत्रिका पठवायी। इसके बाद शैलराजने विवाहके लिये भोज्यपदार्थ, मिष्टान्न, दिव्य वस्त्र तथा स्वर्ण-रत्न आदिका अपार संग्रह किया। पार्वतीको स्नान करवाकर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया गया। उसके नेत्रोंमें काजल और पैरोंमें महावर लगाया गया। इधर देवेश्वरगण विविध वाहनोंपर सवार हो रत्नमय रथपर आरूढ़ हुए भगवान् शंकरको साथ लिये हिमालय-भवनके समीप पहुँचे। वहाँ भाँति-भाँतिसे सबका स्वागत-सत्कार किया गया। देवेश्वरोंको सामने देख हिमालयने उन्हें प्रणाम किया और सेवकोंको आज्ञा दी कि 'इन सम्माननीय अतिथियोंके लिये सिंहासन प्रस्तुत किये जायँ।' तत्पश्चात् विनतानन्दन गरुड़की पीठसे तत्काल ही उतरकर चार-भुजाधारी भगवान् नारायण अपने पार्षदोंसहित सिंहासनपर बैठे। रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित चतुर्भुज पार्षद रत्नमयी मुट्ठीमें बँधे हुए श्वेत चामरोंद्वारा उनकी सेवा कर रहे थे। उस समाजमें श्रेष्ठतम ऋषि और बड़े-बड़े देवता उनके गुण गा रहे थे। भगवान्‌का प्रसन्नमुख मन्द मुस्कानसे सुशोभित था और वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर जान पड़ते थे। उनके पास ही देवताओंके साथ ब्रह्माजी भी बैठे। ऋषि और मुनि भी मङ्गलमय स्थानपर विराजमान हुए। इसी समय भगवान् शिव रथसे उतरकर रत्नमय सिंहासनपर बैठे। बैठकर उन्होंने पर्वतराज हिमालयकी ओर देखा। तत्पश्चात् भगवान् शिवको देखनेके लिये वस्त्राभूषणोंसे विभूषित हो शैलेन्द्र-नगरकी स्त्रियाँ आयीं। उनमें बालिकाएँ, युवतियाँ और वृद्धाएँ भी थीं। ऋषियों, देवों, नागों, गन्धर्वों, पर्वतों और राजाओंकी भी मनोहर कन्याएँ वहाँ आ पहुँचीं। मेनाने कुमारी कन्याओंके साथ दूलह शंकरका दर्शन किया। उनके श्रीअङ्गोंकी कान्ति मनोहर चम्पाके समान गौर थी। वे एक मुख तथा तीन नेत्रोंसे सुशोभित थे। उनके प्रसन्न-मुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छा रही थी। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित थे। उनके अङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा सुन्दर कुंकुमसे

अलंकृत थे। उन्होंने मालतीकी माला धारण कर रखी थी। उनका मस्तक श्रेष्ठ रत्नमय मुकुटसे प्रकाशमान था। अग्निशोधित, अनुपम, अत्यन्त सूक्ष्म, सुन्दर, विचित्र और बहुमूल्य दो वस्त्रोंसे उनकी बड़ी शोभा हो रही थी। उन्होंने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था। अञ्जनसे अञ्जित होनेके कारण उनके नेत्रोंकी शोभा बढ़ गयी थी। पूर्ण प्रभासे आच्छादित होनेके कारण वे अत्यन्त मनोहर दिखायी देते थे। उनकी अवस्था अत्यन्त तरुण (नवीन) थी। वे भूषणभूषित रमणीय अङ्गोंसे बड़ी शोभा पा रहे थे। उस समय उन्होंने भगवान् नारायणकी आज्ञासे परम सुन्दर अनुपम रूप धारण कर रखा था। भगवान् शंकर योगस्वरूप, योगेश्वर, योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु, स्वतन्त्र, गुणातीत तथा सनातन ब्रह्मज्योति हैं। वे गुणोंके भेदसे अनन्त भिन्न-भिन्न रूप धारण करते हैं, तथापि रूपरहित हैं। भवसागरमें डूबे हुए प्राणियोंका उद्धार करनेवाले हैं तथा जगत्‌की सृष्टि, पालन एवं संहारके कारण हैं। वे सर्वाधार, सर्वबीज, सर्वेश्वर, सर्वजीवन तथा सबके साक्षी हैं। उनमें किसी प्रकारकी इच्छा या चेष्टा नहीं है। वे परमानन्दस्वरूप, अविनाशी, आदि, अन्त और मध्यसे रहित, सबके आदिकारण तथा सर्वरूप हैं। ऐसे दिव्य जामाताको देखकर आनन्दमग्न हुई मेनाने शोकको त्याग दिया। 'सती धन्य है, धन्य है'—कहकर वहाँ आयी हुई युवतियोंने पार्वतीके सौभाग्यकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। कुछ कन्याएँ कहने लगीं—'अहो! दुर्गा बड़ी भाग्यशालिनी है।' कुछ कामिनियाँ कामभावसे युक्त हो मौन एवं स्तब्ध रह गयीं और कितनी ही बोल उठीं—'अरी सखी! हमने अपने जीवनमें ऐसा वर कभी नहीं देखा था।'

बाजे बजानेवालोंने भाँति-भाँतिकी कलाएँ दिखाते हुए वहाँ अनेक प्रकारके सुन्दर और मधुर वाद्य बजाये। इसी समय हिमवान्‌के अन्तःपुरकी परिचारिकाएँ दुर्गाको बाहर ले आयीं। वह रत्नमय सिंहासनपर बैठी थी। उसके सामने रत्नमयी वेदी शोभा पा रही थी। उसके मुख-मण्डलको कस्तूरी तथा स्निग्ध सिन्दूरके बिन्दुओंसे शृङ्गार किया गया था। चारु चन्दनसे चर्चित चन्द्रसदृश आभावाले आनम्र भालदेशसे उसकी बड़ी शोभा हो रही थी। श्रेष्ठ रत्नोंके सारसे निर्मित हार उसके वक्षःस्थलकी शोभा बढ़ा रहा था। वह त्रिलोचन शिवकी ओर कनखियोंसे देख रही थी। उनके सिवा और कहीं उसकी दृष्टि नहीं जाती थी। उसके मुखपर अत्यन्त मन्द मुस्कानकी आभा बिखरी हुई थी। वह कटाक्षपूर्वक देखनेके कारण बड़ी मनोहर जान पड़ती थी। उसकी भुजाएँ और हाथ रत्ननिर्मित केयूर, कड़े तथा कंगनसे विभूषित थे। उसके कटिप्रदेशमें रत्नोंकी बनी हुई करधनी शोभा दे रही थी। झनकारते हुए मञ्जीर चरणोंका सौन्दर्य बढ़ाते थे। वह बहुमूल्य, तुलनारहित, विचित्र एवं कीमती दो वस्त्रोंसे सुशोभित थी। उसके सुन्दर कपोल श्रेष्ठ रत्नमय कुण्डलोंसे जगमगा रहे थे। दन्तपङ्क्ति मणिके सारभागकी प्रभाको छीने लेती थी। वह एक हाथमें रत्नमय दर्पण लिये हुए थी और दूसरेमें क्रीडाकमल लेकर घुमा रही थी। उसके अङ्ग चन्दन, अगुरु, कस्तूरी और कुंकुमसे चर्चित थे। ऐसी अलौकिक रूपवाली जगत्‌की आदिकारणभूता जगदम्बाको सब लोगोंने प्रसन्नताके साथ देखा। हर्षसे युक्त भगवान् त्रिलोचनने भी नेत्रके कोनेसे पार्वतीकी ओर देखा। देखकर वे आनन्द-विभोर हो उठे। उसकी सम्पूर्ण आकृति सतीसे सर्वथा मिलती-

जुलती थी। उसे देखकर भगवान् शंकरने विरह-ज्वरका परित्याग कर दिया। उन्होंने अपना मन दुर्गाको अर्पित कर दिया और स्वयं सब कुछ भूल गये। उनके सारे अङ्ग पुलकित हो गये तथा नेत्रोंमें आनन्दके आँसू छलक आये।

इसी समय हर्षसे भरे हुए हिमवान्ने पुरोहितके साथ जाकर वस्त्र, चन्दन और आभूषणोंद्वारा उनका वरके रूपमें वरण किया। भक्तिभावसे पाद्य आदि उपचार अर्पित किये तथा दिव्य गन्धवाली मनोहर मालाओंसे दूल्हेको अलंकृत किया। तत्पश्चात् यथासम्भव शीघ्र वेदमन्त्रोंके उच्चारणपूर्वक उनके हाथमें अपनी कन्याका दान कर दिया। राधिके! तदनन्तर हर्षसे भरे हुए हिमालयने उदारतापूर्वक दहेजमें उन्हें अनेक प्रकारके रत्न, सुन्दर रत्नोंके बने हुए मनोहर पात्र, एक लाख गौ, रत्नजटित झूल और अंकुशसे युक्त एक सहस्र गजराज, सजे-सजाये तीन लाख घोड़े, श्रेष्ठ रत्नोंसे अलंकृत लाखों अनुरक्त दासियाँ, पार्वतीके लिये छोटे भाईके समान प्रिय एक सौ ब्राह्मण वटु और श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे निर्मित सौ रमणीय रथ दिये। पूर्वोक्त वस्तुओंके साथ शैलराजद्वारा यत्नपूर्वक दी हुई पार्वतीको भगवान् शंकरने प्रसन्न-मनसे 'स्वस्ति' कहकर ग्रहण किया। हिमालयने कन्यादान करके भगवान् शंकरकी परिहार नामक स्तुति की। उन्होंने दोनों हाथ जोड़ माध्यन्दिन-शाखामें वर्णित स्तोत्रको पढ़ते हुए उनका स्तवन किया।

हिमालय बोले—सर्वेश्वर शिव! आप दक्ष-यज्ञका विध्वंस करनेवाले तथा शरणागतोंको नरकके समुद्रसे उबारनेवाले हैं, सबके आत्मस्वरूप हैं और आपका श्रीविग्रह परमानन्दमय है; आप मुझपर प्रसन्न हों; गुणवानोंमें श्रेष्ठ महाभाग शंकर! आप गुणोंके सागर होते हुए भी गुणातीत हैं; गुणोंसे युक्त, गुणोंके स्वामी और गुणोंके आदि कारण हैं; मेरे ऊपर प्रसन्न होइये। प्रभो! आप योगके आश्रय, योगरूप, योगके ज्ञाता, योगके कारण, योगीश्वर तथा योगियोंके आदिकारण और गुरु हैं; आप मेरे ऊपर कृपा करें। भव! आपमें ही सब प्राणियोंका लय होता है, इसलिये आप 'प्रलय' हैं। प्रलयके एकमात्र आदि तथा उसके कारण हैं। फिर प्रलयके अन्तमें सृष्टिके बीजरूप हैं और उस सृष्टिका पूर्णतः परिपालन करनेवाले हैं; मुझपर प्रसन्न होवें। भयंकर संहार-कालमें सृष्टिका संहार करनेवाले आप ही हैं। आपके वेगको रोकना किसीके लिये भी अत्यन्त कठिन है। आराधनाद्वारा आपको रिझा लेना भी सहज नहीं है तथापि आप भक्तोंपर शीघ्र ही प्रसन्न हो जाते हैं; प्रभो! आप मुझपर कृपा करें। आप कालस्वरूप, कालके स्वामी, कालानुसार फल देनेवाले, कालके एकमात्र आदिकारण तथा कालके नाशक एवं पोषक हैं; मुझपर प्रसन्न हों। आप कल्याणकी मूर्ति, कल्याणदाता तथा कल्याणके बीज और आश्रय हैं। आप ही कल्याणमय तथा कल्याणस्वरूप प्राण हैं; सबके परम आश्रय शिव! मुझपर कृपा करें।

इस प्रकार स्तुति कर हिमालय चुप हो गये, उस समय समस्त देवताओं और मुनियोंने गिरिराजके सौभाग्यकी सराहना की। राधिके! जो मनुष्य सावधान-चित्त होकर हिमालयद्वारा किये गये स्तोत्रका पाठ करता है, उसके लिये शिव निश्चय ही मनोवाञ्छित वस्तु प्रदान करते हैं।

(अध्याय ४४)

शिव-पार्वतीके विवाहका होम, स्त्रियोंका नव-दम्पतिको कौतुकागारमें ले जाना, देवाङ्गनाओंका उनके साथ हास-विनोद, शिवके द्वारा कामदेवको जीवन-दान, वर-वधू और बारातकी विदाई, शिवधाममें पति-पत्नीकी एकान्त वार्ता, कैलासमें अतिथियोंका सत्कार और विदाई, सास-ससुरके बुलानेपर शिव-पार्वतीका वहाँ जाना तथा पार्षदोंसहित शिवका श्वशुर-गृहमें निवास

भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—प्रिये! तदनन्तर महादेवजीने वैदिक विधिसे अग्निकी स्थापना करके पार्वतीको अपने वामभागमें बिठाकर वहाँ यज्ञ (वैवाहिक होम) किया। वृन्दावन-विनोदिनि! उस यज्ञके विधिपूर्वक सम्पन्न हो जानेपर भगवान् शिवने ब्राह्मणको दक्षिणाके रूपमें सौ सुवर्ण दिये। तत्पश्चात् गिरिराजके नगरकी स्त्रियोंने प्रदीप लाकर माङ्गलिक कृत्यका सम्पादन किया। फिर वे नव-दम्पतिको घरमें ले गयीं। उन सबने प्रेमपूर्वक जयध्वनि तथा शुभ निर्मञ्छन आदि करके मन्द मुस्कराहटके साथ कटाक्षपूर्वक शिवकी ओर देखा। उस समय उनके अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया था। वास-भवनमें प्रवेश करके कामिनियोंने देखा—शंकर अत्यन्त सुन्दर रूप और वेशभूषासे सुशोभित हैं। उनका प्रत्येक अङ्ग रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी तथा कुंकुमसे अलंकृत है। उनके प्रसन्नमुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही है। वे कटाक्षपूर्वक देखते और मनको हर लेते हैं। उनकी वेश-भूषा अपूर्व एवं सूक्ष्म है। वे सिन्दूर-बिन्दुओंसे विभूषित हैं। उनकी गौर-कान्ति मनोहर चम्पाकी आभाको तिरस्कृत कर रही है। वे सर्वाङ्गसुन्दर, नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा मुनीन्द्रोंके भी चित्तको मोह लेनेवाले हैं। वहाँ सरस्वती, लक्ष्मी, सावित्री, गङ्गा, रति, अदिति, शची, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या, तुलसी, स्वाहा, रोहिणी, वसुधादेवी, शतरूपा तथा संज्ञा—ये सोलह देवाङ्गनाएँ भी उपस्थित थीं। इनके सिवा और भी बहुत-सी मनोहर रूपवाली देवकन्याएँ, नागकन्याएँ तथा मुनिकन्याएँ वहाँ आयी थीं। उस समय जो देवाङ्गनाएँ गिरिराजके भवनमें विराजमान थीं, उन सबकी संख्या बतानेमें कौन समर्थ है?

उनके दिये हुए रत्नमय सिंहासनपर दूलह शिव प्रसन्नतापूर्वक बैठे। उस समय उन सोलह दिव्य देवियोंने सुधाके समान मधुर वाणीमें भगवान् शंकरको बधाई दी। उनके साथ विनोदभरी बातें कीं और पार्वतीको सुख पहुँचानेके लिये विनम्र अनुरोध किया। इसी समय भगवान् शंकरने रतिपर कृपा की। रतिने गाँठमें बँधी हुई कामदेवके शरीरकी भस्मराशि उनके सामने रख दी और शिवने अपनी अमृतमयी दृष्टिसे देखकर भस्मके उस ढेरसे पुनः कामदेवको प्रकट कर दिया। तत्पश्चात् योगियोंके परम गुरु निर्विकार भगवान् शंकरने उन परिहासपरायणा देवियोंसे कहा—'आप सब-की-सब साध्वी तथा जगन्माताएँ हैं, फिर मुझ पुत्रके प्रति यह चपलता क्यों?' शिवकी यह बात सुनकर वे देवियाँ सम्भ्रमपूर्वक चित्रलिखी-सी खड़ी रह गयीं। इसके बाद शंकरजीने भोजन किया। फिर उन्होंने मनोहर राजसिंहासनपर विराजमान हो उस दिव्य निवासगृहकी अनुपम शोभा एवं चित्रकारी देखी। यह सब देखकर उन्हें आश्चर्य और परम संतोष हुआ। रातको उन्होंने उसी दिव्य भवनमें विश्राम किया। प्राणवल्लभे! जब प्रातःकाल हुआ, तब नाना प्रकारके वाद्योंकी मधुर ध्वनि होने लगी। फिर तो सब देवता वेगपूर्वक उठे और वेशभूषासे

सज्जित हो अपने-अपने वाहनोंपर सवार होकर कैलासकी यात्राके लिये उद्यत हो गये। उस समय नारायणकी आज्ञासे धर्म उस वासभवनमें गये और योगीश्वर शंकरसे समयोचित वचन बोले।

धर्मने कहा—प्रमथेश्वर! आपका कल्याण हो। उठिये, उठिये और श्रीहरिका स्मरण करते हुए माहेन्द्र-योगमें पार्वतीके साथ यात्रा कीजिये।

वृन्दावन-विनोदिनि! धर्मकी बात सुनकर शंकरने पार्वतीके साथ माहेन्द्र-योगमें यात्रा आरम्भ की। पार्वतीके साथ देवेश्वर शंकरके यात्रा करते समय मेना उच्चस्वरसे रो पड़ी और उन कृपानिधानसे बोलीं।

मेनाने कहा—कृपानिधे! कृपा करके मेरी बच्चीका पालन कीजियेगा। आप आशुतोष हैं। इसके सहस्रों दोषोंको क्षमा कीजियेगा। मेरी बेटी जन्म-जन्ममें आपके चरणकमलोंमें अनन्यभक्ति रखती आयी है। सोते-जागते हर समय इसे अपने स्वामी महादेवके सिवा दूसरे किसीकी याद नहीं आती है। आपके प्रति भक्तिकी बातें सुनते ही इसका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठता है और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहने लगते हैं। मृत्युञ्जय! आपकी निन्दा कानमें पड़नेपर यह ऐसी मौन हो जाती है, मानो मर गयी हो।

मेना यह कह ही रही थी कि हिमवान् तत्काल वहाँ आ पहुँचे और अपनी बच्चीको छातीसे लगा फूट-फूटकर रोने लगे—'वत्से! हिमालयको—मेरे इस घरको सूना करके तू कहाँ चली जा रही है? तेरे गुणोंको याद करके मेरा हृदय अवश्य ही विदीर्ण हो जायगा।' यों कहकर शैलराजने अपनी शिवा शिवको सौंप दी और पुत्र तथा बन्धु-बान्धवोंसहित वे बारंबार उच्चस्वरसे रोदन करने लगे। उस समय कृपानिधान साक्षात् भगवान् नारायणने उन सबको कृपापूर्वक अध्यात्मज्ञान देकर धीरज बँधाया। पार्वतीने भक्तिभावसे माता-पिता और गुरुको प्रणाम किया। वे महामायारूपिणी हैं; अतः मायाका आश्रय ले बारंबार जोर-जोरसे रोने लगीं। पार्वतीके रोनेसे ही वहाँ सब स्त्रियाँ रोने लगीं। पत्नियों तथा सेवकगणोंसहित सम्पूर्ण देवता और मुनि भी रो पड़े। फिर वे मानसशायी देवता शीघ्र ही कैलासपर्वतको चल दिये तथा दो ही घड़ीमें शिवके निवासस्थानपर सानन्द जा पहुँचे। यह देखकर वहाँके मङ्गल-कृत्यका सम्पादन करनेके लिये देवताओं और मुनियोंकी पत्नियाँ भी दीप लिये शीघ्रतापूर्वक सहर्ष वहाँ आ गयीं। वायु, कुबेर और शुक्रकी स्त्रियाँ, बृहस्पतिकी पत्नी तारा, दुर्वासाकी स्त्री, अत्रि-भार्या अनसूया, चन्द्रमाकी पत्नियाँ, देवकन्या, नागकन्या तथा सहस्रों मुनिकन्याएँ वहाँ उपस्थित हुईं। वहाँ जिन असंख्य कामिनियोंका समूह आया था, उन सबकी गणना करनेमें कौन समर्थ है? उन सबने मिलकर नवदम्पतिका उनके निवास-मन्दिरमें प्रवेश कराया तथा उन महेश्वरको रमणीय रत्नमय सिंहासनपर बिठाया। वहाँ भगवान् शिवने सतीको उनका पहलेवाला घर दिखाया और प्रसन्नतापूर्वक पूछा—'प्रिये! क्या तुम्हें अपने इस घरकी याद आती है? यहींसे तुम अपने पिताके निवास-स्थानको गयी थीं। अन्तर इतना ही है कि इस समय तुम गिरिराजकुमारी हो और उस समय यहाँ दक्षकन्याके रूपमें निवास करती थीं। तुम्हें पूर्वजन्मकी बातोंका सदा स्मरण रहता है; इसीलिये पिछली बातोंकी याद दिला रहा हूँ। यदि तुम्हें उन बातोंका स्मरण है तो कहो।'

भगवान् शंकरकी बात सुनकर पार्वती मुस्करायीं और बोलीं—'प्राणनाथ! मुझे सब बातोंका स्मरण है; किंतु इस समय आप चुप रहें (उन बीती बातोंकी चर्चा न करें)।' तत्पश्चात् शिवने सामग्री एकत्र करके नारायण आदि देवताओंको नाना प्रकारके मनोहर पदार्थ भोजन कराये। भोजनके पश्चात् भाँति-भाँतिके रत्नोंसे अलंकृत हो अपनी स्त्रियों और सेवकगणोंसहित

सब देवता भगवान् चन्द्रशेखरको प्रणाम करके विदा हुए। भगवान् नारायण और ब्रह्माको शंकरजीने स्वयं ही प्रणाम किया। वे दोनों उन्हें हृदयसे लगाकर आशीर्वाद दे अपने-अपने स्थानको चले गये।

इसके बाद हिमवान् और मेनाने मैनाकको बुलाया और कहा—'बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। तुम शिव और पार्वतीको शीघ्र यहाँ बुला लाओ।' उनकी बात सुनकर मैनाक शीघ्र ही शिवधाममें गया और पार्वती एवं परमेश्वरको लिवाकर आ गया। पार्वतीका आगमन सुनकर बालक-बालिका, वृद्धा तथा युवती स्त्रियाँ भी उन्हें देखनेके लिये दौड़ी आयीं। पर्वतगण भी सानन्द भागे आये। मेना अपने पुत्रों और बहूके साथ मुस्कराती हुई दौड़ीं। हिमालय भी प्रसन्नतापूर्वक पुत्रीकी अगवानीके लिये दौड़े आये। देवी पार्वतीने रथसे उतरकर बड़े हर्षके साथ माता-पिता तथा गुरुजनोंको प्रणाम किया। उस समय वे आनन्दके समुद्रमें गोते लगा रही थीं। हर्ष-विह्वल मेना और मोदमग्न हिमालयने पार्वतीको हृदयसे लगा लिया। उन्हें ऐसा लगा, मानो गये हुए प्राण वापस आ गये हों। पुत्रीको घरमें रखकर गिरिराजने उसके लिये रत्नसिंहासन दिया और शूलपाणि शिव तथा उनके पार्षदगणोंको मधुपर्क आदि दे सहर्ष उनका सत्कार किया। पार्षदोंसहित भगवान् चन्द्रशेखर अपने ससुरके घरमें रहने लगे। वहाँ प्रतिदिन पत्नीसहित उनकी सोलह उपचारोंसे पूजा होने लगी। राधे! इस प्रकार मैंने तुमसे भगवान् शंकरके मङ्गल-परिणयकी कथा कह सुनायी, जो हर्ष बढ़ानेवाली तथा शोकका नाश करनेवाली है। अब और क्या सुनना चाहती हो?

(अध्याय ४५-४६)

इन्द्रके अभिमान-भङ्गका प्रसङ्ग—प्रकृति और गुरुकी अवहेलनासे इन्द्रको शाप, गौतम मुनिके शापसे इन्द्रके शरीरमें सहस्र योनियोंका प्राकट्य, अहल्याका उद्धार, विश्वरूप और वृत्रके वधसे इन्द्रपर ब्रह्महत्याका आक्रमण, इन्द्रका मानसरोवरमें छिपना, बृहस्पतिका उनके पास जाना, इन्द्रद्वारा गुरुकी स्तुति, ब्रह्महत्याका भस्म होना, इन्द्रका विश्वकर्माद्वारा नगरका निर्माण कराना, द्विज-बालकरूपधारी श्रीहरि तथा लोमश मुनिके द्वारा इन्द्रका मान-भंजन, राज्य छोड़नेको उद्यत हुए विरक्त इन्द्रका बृहस्पतिजीके समझानेसे पुनः राज्यपर ही प्रतिष्ठित रहना

श्रीराधिकाने पूछा—जगद्गुरो! मैंने शूलपाणि शिवके यश तथा दैववश उनके दर्प-भङ्गकी बात सुनी। पार्वतीके गर्वभंजनका और शिव-पार्वतीके विवाहका भी वर्णन सुना। अब इन्द्रके तथा अन्य लोगोंके भी अभिमानके चूर्ण होनेके प्रसङ्गोंको क्रमशः सुनना चाहती हूँ; कृपया विस्तारपूर्वक कहें।

श्रीकृष्ण बोले—सुन्दरि! इन्द्रके दर्प-भङ्गकी बात तीनों लोकोंमें प्रसिद्ध है। यह प्रसङ्ग सुन्दर, अनुपम तथा कानोंके लिये अमृतके समान मधुर है। प्राचीन कालकी बात है। इन्द्र सौ यज्ञोंका अनुष्ठान करके समस्त देवताओंके स्वामी तथा महान् ऐश्वर्यसे सम्पन्न हो गये। तपस्याके फलसे प्रतिदिन उनके ऐश्वर्यकी वृद्धि होने लगी। बृहस्पतिजीने उन्हें सिद्ध-मन्त्रकी दीक्षा दी। उन्होंने पुष्करमें सौ वर्षोंतक उस महामन्त्रका जप किया। जपसे वह मन्त्र सिद्ध हो गया और इनका मनोरथ पूरा हुआ। मनुष्य सम्पत्तिसे मोहित हुआ ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिका आदर नहीं करता; अतः

प्रकृतिने इन्द्रको शाप दे दिया। इसीलिये उन्हें अपने गुरुकी ओरसे भी अत्यन्त क्रोधपूर्वक शाप मिला। एक दिन इन्द्र अपनी सभामें बैठे थे। प्रकृतिके शापसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; अतः वे गुरुको आते देखकर भी न तो उठे और न प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम ही किया। यह देख बृहस्पतिजी क्रोधसे युक्त हो उस सभामें नहीं बैठे, उलटे पाँव घर लौट आये। वहाँ भी वे ताराके निकट नहीं ठहरे, तपस्याके लिये वनमें चले गये। उन्होंने मन-ही-मन दुःखी होकर कहा—'इन्द्रकी सम्पत्ति चली जाय।' तदनन्तर इन्द्रको सुबुद्धि प्राप्त हुई और वे बोले—'मेरे स्वामी यहाँसे कहाँ चले गये।'

यों कहकर वे वेगपूर्वक सिंहासनसे उठे और ताराके पास गये। वहाँ उन्होंने भक्तिभावसे मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़कर माता ताराको प्रणाम किया और सारी बातें बतायीं। फिर वे उच्चस्वरसे बारंबार रोदन करने लगे। पुत्रको रोते देख माता तारा भी बहुत रोयीं और बोलीं—'बेटा! तू घर जा। इस समय तुझे गुरुदेवके दर्शन नहीं होंगे। जब दुर्दिनका अन्त होगा, तभी तुझे गुरुजी मिलेंगे और उनकी कृपासे पुनः लक्ष्मीकी प्राप्ति होगी। मूढ़! तेरा अन्तःकरण दूषित है; अतः अब अपने कर्मोंका फल भोग। दुर्दिनमें अपने गुरुपर दोषारोपण करता है और अच्छे दिनोंमें अपने-आपको ही संतुष्ट करनेमें लगा रहता है। (गुरुकी परवा नहीं करता।) इन्द्र! सुदिन और दुर्दिन ही सुख और दुःखके कारण हैं।'

यों कहकर पतिव्रता तारादेवी चुप हो गयीं। तदनन्तर इन्द्र वहाँसे लौट आये और एक दिन मन्दाकिनीके तटपर स्नानके लिये गये। वहाँ उन्होंने स्नान करती हुई गौतमपत्नी अहल्याको देखा। इन्द्रकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी थी। उन्होंने गौतमका रूप धारण करके अहल्याका शील भङ्ग कर दिया। इसी बीच गौतमजी भी वहाँ आ गये। इन्द्रने भयभीत होकर मुनिके चरण पकड़ लिये। तब गौतमजीने कुपित होकर उनसे कहा।

गौतम बोले—इन्द्र! तुझे धिक्कार है। तू देवताओंमें श्रेष्ठ समझा जाता है। कश्यपजीका पुत्र है; ज्ञानी है और जगत्स्रष्टा ब्रह्माजीका प्रपौत्र है तो भी तेरी ऐसी बुद्धि कैसे हो गयी? जिसके नाना साक्षात् प्रजापति दक्ष हैं और माता पतिव्रता अदिति देवी हैं, उसका इतना पतन आश्चर्यकी बात है! तू वेदोंका ज्ञान प्राप्त करके ज्ञानी कहलाता है; किंतु कर्मसे योनि-लम्पट है; अतः तेरे शरीरमें एक सहस्र योनियाँ प्रकट हो जायँ। पूरे एक वर्षतक तुझे सदा योनिकी ही दुर्गन्ध प्राप्त होती रहेगी। तत्पश्चात् सूर्यकी आराधना करनेपर तेरे शरीरकी योनियाँ नेत्रोंके रूपमें परिणत हो जायँगी। मेरे शाप और गुरुके क्रोधसे इस समय तू राजलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो जा। ओ मूढ़! तेरे गुरु बड़े तेजस्वी और मेरे अत्यन्त प्रेमी बन्धु हैं। हम दोनों बन्धुओंमें फूट न पड़ जाय; इस भयसे तेरे गुरुका ही खयाल करके मैंने इस समय तेरे प्राण नहीं लिये हैं।

तदनन्तर पैरोंमें पड़ी हुई अहल्याको लक्ष्य करके मुनिवर गौतमने कहा—'प्रिये! अब तू वनमें जा अपने शरीरको पत्थर बनाकर चिरकाल-तक उसी अवस्थामें रह। इस बातको मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि तेरे मनमें कोई कामना नहीं थी। इन्द्रने स्वयं आसक्त होकर तेरे साथ छल किया है।'

स्वामीकी ऐसी आज्ञा होनेपर अहल्या बहुत डर गयी और 'हा नाथ! हा नाथ!' पुकारती तथा रोती हुई वनमें चली गयी। साठ हजार वर्षोंतक कर्मफलका भोग करनेके बाद मुनिप्रिया अहल्या श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंका स्पर्श पाकर तत्काल शुद्ध हो गयी। फिर वह अत्यन्त सुन्दर रूप धारण करके गौतमजीके पास गयी। मुनिने सुन्दरी अहल्याको पाकर प्रसन्नताका अनुभव किया।

सुन्दरि राधिके! अब इन्द्रका उत्तम वृत्तान्त सुनो, जो पुण्यका बीज तथा पापका नाशक है। मैं विस्तारपूर्वक उसका वर्णन करता हूँ। गुरुके कोप और प्रकृतिकी अवहेलनासे वज्रधारी इन्द्रकी विवेक-शक्ति नष्ट हो गयी थी; अतः उनसे एक दिन ब्रह्महत्याका पाप बन गया। गुरुको तो वे छोड़ ही चुके थे; दैवने भी उन्हें अपना ग्रास बनाया। दैत्योंका आक्रमण हुआ और वे उनसे पीड़ित एवं भयभीत हो जगद्गुरु ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीकी आज्ञासे उन्होंने विश्वरूपको अपना पुरोहित बनाया। दैवसे उनकी बुद्धि मारी गयी थी; इसलिये इन्द्रने विश्वरूपपर पूरा-पूरा विश्वास कर लिया। विश्वरूपकी माता दैत्यवंशकी कन्या थी; अतः उनके मनमें दैत्योंके प्रति भी पक्षपात था। बुद्धिमान् इन्द्र उनके इस मनोभावको ताड़ गये; अतः उन्होंने अनायास ही तीखे बाण मारकर पुरोहित विश्वरूपका सिर काट लिया। विश्वरूपके पिता त्वष्टाने जब यह बात सुनी तो वे तत्क्षण रोषके वशीभूत हो गये और 'इन्द्रशत्रो विवर्द्धस्व' (इन्द्रके शत्रु! तुम बढ़ो) ऐसा कहकर यज्ञका अनुष्ठान करने लगे, उस यज्ञके कुण्डसे वृत्र नामक महान् असुर प्रकट हुआ, जिसने अनायास ही समस्त देवताओंको क्रोधपूर्वक कुचल डाला। तब दैत्यमर्दन इन्द्रने महामुनि दधीचिकी हड्डियोंसे अत्यन्त भयंकर वज्रका निर्माण करके देवकण्टक वृत्रासुरका वध कर डाला। फिर तो इन्द्रपर ब्रह्महत्याने धावा बोल दिया। वे अचेत-से हो रहे थे। ब्रह्महत्या बूढ़ी स्त्रीका वेष धारण करके आयी थी। वह लाल कपड़े पहन रखी थी। उसके शरीरकी ऊँचाई सात ताड़ोंके बराबर थी तथा कण्ठ, ओठ और तालु सूखे हुए थे। उसके दाँत हरिसके समान लंबे थे। उसने इन्द्रको बहुत डरा दिया। वे जब दौड़ते थे तो उनके पीछे-पीछे वह भी दौड़ती थी। ब्रह्महत्या बलिष्ठ थी और इन्द्र अपनी चेतनातक खो बैठे थे। उसका स्वभाव निर्दय था और वह हाथमें तलवार लेकर बड़े वेगसे दौड़ रही थी। उस घोर ब्रह्महत्याको देखकर गुरुके चरणोंका स्मरण करते हुए वे कमलके नालके सूक्ष्म सूत्रके सहारे मानसरोवरमें प्रविष्ट हो गये। ब्रह्महत्या ब्रह्माजीके शापके कारण वहाँ पहुँचनेमें असमर्थ थी; अतः सरोवरके तटके निकट बरगदकी एक शाखापर जा बैठी। उन दिनों राजा नहुष इन्द्रकी जगह त्रिभुवनके स्वामी बनाये गये। नहुष बलिष्ठ थे और देवता दुर्बल। अतः इन्द्रपदपर प्रतिष्ठित हुए नहुषने देवताओंसे यह माँग की कि इन्द्राणी शची मुझ इन्द्रकी सेवाके लिये उपस्थित हों। यह समाचार सुनकर शचीको बड़ा भय हुआ। वे तारादेवीकी शरणमें गयीं। ताराने अपने पतिको बहुत फटकारा और शिष्य-पत्नीकी रक्षा की। तब शचीको आश्वासन दे गुरु बृहस्पति प्रसन्नतापूर्वक मानसरोवरको गये और वहाँ कातर एवं अचेत हुए देवेन्द्रको सम्बोधित करके बोले।

बृहस्पतिने कहा—बेटा! उठो, उठो। मेरे रहते हुए तुम्हें क्या भय हो सकता है? मैं तुम्हारा स्वामी एवं गुरु हूँ। मेरे स्वरसे ही मुझे पहचानो और भय छोड़ो।

बृहस्पतिके स्वरको पहचानकर सम्पूर्ण सिद्धियोंके स्वामी इन्द्रने सूक्ष्म रूपको त्याग अपना रूप धारण कर लिया और तत्काल उठकर वेगपूर्वक उन सूर्यतुल्य तेजस्वी गुरुको देखा और प्रसन्नतापूर्वक उन्हें प्रणाम किया। गुरुजी उस समय प्रसन्न थे और क्रोधका परित्याग कर चुके थे। पैरोंमें पड़कर भयविह्वल हो रोते हुए इन्द्रको खींचकर उन्होंने प्रेमपूर्वक छातीसे लगा लिया और स्वयं भी प्रेमाकुल होकर रो पड़े! बृहस्पतिजीको संतुष्ट तथा रोते देख देवेश्वर इन्द्रका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा। भक्तिभावसे उनका मस्तक झुक गया और वे हाथ जोड़कर उनकी स्तुति करने लगे।

इन्द्र बोले—भगवन्! मेरे अपराधको क्षमा कीजिये। कृपानिधान! कृपा कीजिये। अच्छे स्वामी अपने सेवकके अपराधको हृदयमें स्थान नहीं देते। अपनी पत्नी, अपने शिष्य, अपने भृत्य तथा अपने पुत्रोंको दुर्बल या सबल कौन मनुष्य दण्ड देनेमें असमर्थ होता है? तीन करोड़ देवताओंमें मैं ही एक देवाधम और मूढ़ हूँ। सुरश्रेष्ठ! आपकी कृपासे ही मैं उच्च पदपर प्रतिष्ठित हूँ। आपने ही दया करके मुझे आगे बढ़ाया है। आप सारे जगत्का संहार करनेकी शक्ति रखते हैं। आपके सामने मेरी क्या बिसात है? मैं वैसा ही हूँ, जैसा बावलीका कीट। आप साक्षात् विधाताके पौत्र हैं; अतः स्वयं दूसरी सृष्टि रचनेमें समर्थ हैं।

इन्द्रके मुखसे यह स्तवन सुनकर गुरु बृहस्पति बहुत संतुष्ट हुए। उनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे और वे प्रेमपूर्वक बोले।

बृहस्पतिने कहा—महाभाग! धैर्य धारण करो और पहलेसे भी चौगुना महान् ऐश्वर्य पाकर सुस्थिर लक्ष्मीका लाभ लो। वत्स पुरन्दर! मेरे प्रसादसे तुम्हारे शत्रु मारे गये। अब तुम अमरावतीमें जाकर राज्य करो और पतिव्रता शचीसे मिलो।

यों कहकर ज्यों ही शिष्यसहित गुरु वहाँसे चलनेको उद्यत हुए, त्यों ही उन्होंने अत्यन्त दुःसह एवं भयंकर ब्रह्महत्याको सामने खड़ी देखा। उसपर दृष्टि पड़ते ही इन्द्र अत्यन्त भयभीत हो गुरुकी शरणमें गये। बृहस्पतिको भी बड़ा भय हुआ। उन्होंने मन-ही-मन मधुसूदनका स्मरण किया। इसी बीचमें आकाशवाणी हुई, जिसमें अक्षर तो थोड़े थे, परंतु अर्थ महान् था। बृहस्पतिजीने यह आकाशवाणी सुनी—'संसारविजय नामक जो राधिकाकवच है, वह समस्त अशुभोंका नाश करनेवाला है। इस समय उसीका उपदेश देकर तुम शिष्यकी रक्षा करो।' तब शिष्यवत्सल बृहस्पतिने शिष्यको उस कवचका उपदेश दिया और अनायास ही हुङ्कारमात्रसे ब्रह्महत्याको भस्म कर डाला। तदनन्तर शिष्यको साथ लेकर बृहस्पतिजी अमरावतीपुरीमें गये। इन्द्रने गुरुकी आज्ञासे उस पुरीकी दशा देखी। शत्रुने उस नगरीको तोड़-फोड़ डाला था।

पतिका आगमन सुनकर शचीके मनमें बड़ा हर्ष हुआ। उसने भक्तिभावसे गुरुदेवको प्रणाम करके प्राणवल्लभके चरणोंमें भी मस्तक झुकाया। प्रिये! इन्द्रका शुभागमन सुनकर सब देवता, ऋषि और मुनि वहाँ आये। उनका चित्त हर्षसे गद्गद हो रहा था। इन्द्रने अमरावतीका निर्माण करनेके लिये एक श्रेष्ठ देवशिल्पीको नियुक्त किया। देवशिल्पीने पूरे सौ वर्षोंतक अमरावतीकी रचना की। नाना विचित्र रत्नोंसे सम्पन्न तथा श्रेष्ठ मणिरत्नोंद्वारा निर्मित उस मनोहर पुरीकी कहीं उपमा नहीं थी। फिर भी उससे देवराज इन्द्र संतुष्ट नहीं हुए। विश्वकर्माको आज्ञा नहीं मिली। इसलिये वे घर जा तो नहीं सके; परंतु उनका चित्त अत्यन्त उद्विग्न हो उठा। वे ब्रह्माजीकी शरणमें गये। ब्रह्माजीने उनके अभिप्रायको जानकर कहा—'कल तुम्हारे प्रतिरोधक कर्मका क्षय हो जानेपर ही तुम्हें छुटकारा मिलेगा।' ब्रह्माजीकी बात सुनकर विश्वकर्मा शीघ्र ही अमरावती लौट आये और ब्रह्माजी वैकुण्ठधाममें गये। वहाँ उन्होंने अपने माता-पिता श्रीहरिको प्रणाम करके उनसे सारी बातें कहीं। तब श्रीहरिने ब्रह्माजीको धैर्य देकर अपने घरको लौटाया और स्वयं ब्राह्मणका रूप धारण करके वे अमरावतीपुरीमें आये। ब्राह्मणकी अवस्था बहुत छोटी थी। शरीर भी अधिक नाटा था। उन्होंने दण्ड और छत्र धारण कर रखे थे। शरीरपर श्वेत वस्त्र और ललाटमें उज्ज्वल तिलकसे वे बड़े मनोहर जान पड़ते थे। मुस्कराते समय उनकी श्वेत दन्तावली चमक उठती थी। अवस्थामें छोटे होनेपर भी

थे ज्ञान और बुद्धिमें बढ़े-चढ़े थे। विद्वान् तो थे ही, स्वयं विधाताके भी विधाता तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता थे। इन्द्रके द्वारपर खड़े हो वे द्वारपालसे बोले—'द्वाररक्षक! तुम इन्द्रसे जाकर कहो कि द्वारपर एक ब्राह्मण खड़े हैं, जो आपसे शीघ्र मिलनेके लिये आये हैं।' द्वारपालने उनकी बात सुनकर इन्द्रको सूचना दी और इन्द्र शीघ्र आकर उन ब्राह्मणकुमारसे मिले। हँसते हुए बालक और बालिकाओंके समूह उन्हें घेरकर खड़े थे। वे बड़े उत्साहसे मुस्करा रहे थे और उनका स्वरूप अत्यन्त तेजस्वी जान पड़ता था। इन्द्रने उन शिशुरूपधारी हरिको भक्तिभावसे प्रणाम किया और भक्तवत्सल श्रीहरिने प्रेमपूर्वक उन्हें आशीर्वाद दिया। इन्द्रने मधुपर्क आदि देकर उनकी पूजा की और ब्राह्मणबालकसे पूछा—'कहिये, किसलिये आपका शुभागमन हुआ है?' इन्द्रका वचन सुनकर ब्राह्मणबालकने जो बृहस्पतिके गुरुके भी गुरु थे, मेघके समान गम्भीर वाणीमें कहा।

ब्राह्मण बोले—देवेन्द्र! मैंने सुना है कि तुम बड़े विचित्र और अद्भुत नगरका निर्माण करा रहे हो; अतः इस नगरको देखने तथा इसके विषयमें मनोवाञ्छित बातें पूछनेके लिये मैं यहाँ आया हूँ। कितने वर्षोंतक इसका निर्माण कराते रहनेके लिये तुमने संकल्प किया है? अथवा विश्वकर्मा कितने वर्षोंमें इसका निर्माणकार्य पूर्ण कर देंगे? ऐसा निर्माण तो किसी भी इन्द्रने नहीं किया था। ऐसे सुन्दर नगरके निर्माणमें दूसरा कोई विश्वकर्मा भी समर्थ नहीं है।

ब्राह्मणबालककी यह बात सुनकर देवराज इन्द्र हँसने लगे। वे सम्पत्तिके मदसे अत्यन्त मतवाले हो रहे थे; अतः उन्होंने उस द्विजकुमारसे पुनः पूछा—'ब्रह्मन्! आपने कितने इन्द्रोंका समूह देखा अथवा सुना है? तथा कितने प्रकारके विश्वकर्मा आपके देखने या सुननेमें आये हैं? यह मुझे इस समय बताइये।' इन्द्रका यह प्रश्न सुनकर ब्राह्मणकुमार हँसे और अमृतके समान मधुर एवं श्रवणसुखद वचन बोले।

ब्राह्मणने कहा—तात! मैं तुम्हारे पिता प्रजापति कश्यपको जानता हूँ। उनके पिता तपोनिधि मरीचिमुनिसे भी परिचित हूँ। मरीचिके पिता देवेश्वर ब्रह्माजीको भी, जो भगवान् विष्णुके नाभिकमलसे उत्पन्न हुए हैं, जानता हूँ और उनके रक्षक सत्त्वगुणशाली महाविष्णुका भी परिचय रखता हूँ। मुझे उस एकार्णव प्रलयका भी ज्ञान है, जो सम्पूर्ण प्राणियोंसे शून्य एवं भयानक दिखायी देता है। इन्द्र! निश्चय ही सृष्टि कई प्रकारकी है। कल्प भी अनेक हैं तथा ब्रह्माण्ड भी कितने ही प्रकारके हैं। उन ब्रह्माण्डोंमें अनेकानेक ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा इन्द्र भी बहुतेरे हैं। उन सबकी गणना कौन कर सकता है? सुरेश्वर! भूतलके धूलिकणोंकी गणना कर ली जाय तो भी इन्द्रोंकी गणना नहीं हो सकती है; ऐसा विद्वानोंका मत है। इन्द्रकी आयु और अधिकार इकहत्तर चतुर्युगतक है। अट्ठाईस इन्द्रोंका पतन हो जानेपर विधाताका एक दिन-रात पूरा होता है। इस तरह एक सौ आठ वर्षोंतक ब्रह्माजीकी सम्पूर्ण आयु है। जहाँ विधाताकी भी संख्या नहीं है, वहाँ देवेन्द्रोंकी गणना क्या हो सकती है? जहाँ ब्रह्माण्डोंकी ही संख्या ज्ञात नहीं होती; वहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महेशकी कहाँ गिनती है? महाविष्णुके रोमकूपजनित निर्मल जलमें ब्रह्माण्डकी स्थिति उसी तरह है, जैसे सांसारिक नदी-नद आदिके जलमें कृत्रिम नौका हुआ करती है। इस प्रकार महाविष्णुके शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने ब्रह्माण्ड हैं; अतएव ब्रह्माण्ड असंख्य कहे गये हैं। एक-एक ब्रह्माण्डमें तुम्हारे-जैसे कितने ही देवता निवास करते हैं।

इसी बीचमें पुरुषोत्तम श्रीहरिने वहाँ चींटोंके समूहको देखा, जो सौ धनुषकी दूरीतक फैला

हुआ था। बारी-बारीसे उन सबकी ओर देखकर वे ब्राह्मणबालकका रूप धरकर पधारे हुए भगवान् उच्चस्वरसे हँसने लगे। किंतु कुछ बोले नहीं। मौन रह गये। उनका हृदय समुद्रके समान गम्भीर था। ब्राह्मण-बटुककी गाथा सुनकर और उनका अट्टहास देखकर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। तदनन्तर उनके विनयपूर्वक पूछनेपर ब्राह्मणरूपधारी जनार्दनने भाषण देना आरम्भ किया।

ब्राह्मण बोले—इन्द्र! मैंने क्रमशः एक-एक करके चींटोंके समुदायकी सृष्टि की है। वे सब चींटे अपने कर्मसे देवलोकमें इन्द्रके पदपर प्रतिष्ठित हो चुके थे; परंतु इस समय वे सब अपने कर्मानुसार क्रमशः भिन्न-भिन्न जीवयोनियोंमें जन्म लेते हुए चींटोंकी जातिमें उत्पन्न हुए हैं। कर्मसे ही जीव निरामय वैकुण्ठधाममें जाते हैं, कर्मसे ब्रह्मलोकमें और कर्मसे ही शिवलोकमें पहुँचते हैं। अपने कर्मसे ही वे स्वर्गमें तथा स्वर्गतुल्य स्थान पातालमें भी प्रवेश करते हैं। कर्मसे ही अपने लिये दुःखके एकमात्र कारण घोर नरकमें गिरते हैं। कर्मसूत्रसे ही विधाता जीवधारियोंको फल देते हैं। कर्म स्वभावसाध्य है और स्वभाव अभ्यासजन्य। देवेन्द्र! चराचर प्राणियोंसहित समस्त संसार स्वप्नके समान मिथ्या है। यहाँ कालयोगसे सबकी मौत सदा सिरपर सवार रहती है। जीवधारियोंके शुभ और अशुभ सब कुछ पानीके बुलबुलेके समान हैं। इन्द्र! विद्वान् पुरुष इसमें सदा विचरता है; परंतु कहीं भी आसक्त नहीं होता।

यों कहकर ब्राह्मणदेवता वहाँ मुस्कराते हुए बैठे रहे। उनकी बात सुनकर देवेश्वर इन्द्रको बड़ा विस्मय हुआ। वे अपने-आपको अब अधिक महत्त्व नहीं दे रहे थे। इसी बीच एक मुनीश्वर वहाँ शीघ्रतापूर्वक आये जो ज्ञान और अवस्था दोनोंमें बड़े थे। उनका शरीर अत्यन्त वृद्ध था। वे महान् योगी जान पड़ते थे। वे कटिमें कृष्ण-मृगचर्म, मस्तकपर जटा, ललाटमें उज्ज्वल तिलक, वक्षःस्थलमें रोमचक्र तथा सिरपर चटाई धारण किये हुए थे। उनका सारा रोममण्डल विद्यमान था; केवल बीचमें कुछ रोम उखाड़े गये थे। वे मुनि ब्राह्मणबालक तथा इन्द्रके बीचमें आकर ठूँठे काठकी भाँति खड़े हो गये। महेन्द्रने ब्राह्मणको देखकर सहर्ष प्रणाम किया और मधुपर्क देकर भक्तिभावसे उनकी पूजा की। इसके बाद उन्होंने ब्राह्मणसे कुशल-मङ्गल पूछा और सादर एवं सानन्द आतिथ्य करके उन्हें संतुष्ट किया। तत्पश्चात् ब्राह्मणबालकने उनके साथ बातचीत की और विनयपूर्वक अपना सारा मनोभाव प्रकट किया।

बालकने कहा—विप्रवर! आप कहाँसे आये हैं? और आपका नाम क्या है? यहाँ आनेका उद्देश्य क्या है? तथा आप कहाँके रहनेवाले हैं? आपने मस्तकपर चटाई किसलिये धारण कर रखी है? मुने! आपके वक्षःस्थलमें रोमचक्र कैसा है? यह बहुत बड़ा हुआ है; किंतु बीचमेंसे कुछ रोम क्यों उखाड़ लिये गये हैं? ब्रह्मन्! यदि आपकी मुझपर कृपा हो तो सब विस्तारपूर्वक कहिये। इन सब अद्भुत बातोंको सुननेके लिये मेरे मनमें उत्कण्ठा है।

ब्राह्मणबालककी यह बात सुनकर वे महामुनि इन्द्रके सामने प्रसन्नतापूर्वक अपना सारा वृत्तान्त बताने लगे।

मुनि बोले—ब्रह्मन्! आयु बहुत थोड़ी होनेके कारण मैंने कहीं भी रहनेके लिये घर नहीं बनाया है; विवाह भी नहीं किया है और जीविकाका साधन भी नहीं जुटाया है। आजकल भिक्षासे ही जीवन-निर्वाह करता हूँ। मेरा नाम लोमश है। आप-जैसे ब्राह्मणका दर्शन ही यहाँ मेरे आगमनका प्रयोजन है। मेरे सिरपर जो चटाई है, वह वर्षा और धूपका निवारण करनेके लिये है। मेरे वक्षःस्थलमें जो रोमचक्र है, उसका भी

कारण सुनिये, जो सांसारिक जीवोंको भय देनेवाला और उत्तम विवेकको उत्पन्न करनेवाला है। मेरे वक्षःस्थलका यह रोममण्डल ही मेरी आयुकी संख्याका प्रमाण है। ब्रह्मन्! जब एक इन्द्रका पतन हो जाता है, तब मेरे इस रोमचक्रका एक रोम उखाड़ दिया जाता है। इसी कारणसे बीचके बहुत-से रोएँ उखाड़ दिये गये हैं; तथापि अभी बहुत-से विद्यमान हैं। ब्रह्माका दूसरा परार्द्ध पूर्ण होनेपर मेरी मृत्यु बतायी गयी है। विप्रवर! असंख्य विधाता मर चुके हैं और मरेंगे। फिर इस छोटी-सी आयुके लिये स्त्री, पुत्र और घरकी क्या आवश्यकता है? ब्रह्माजीका पतन हो जानेपर भगवान् श्रीहरिकी एक पलक गिरती है; अतः मैं निरन्तर उन्हींके चरणारविन्दोंका दर्शन करता रहता हूँ। श्रीहरिका दास्यभाव दुर्लभ है। भक्तिका गौरव मुक्तिसे भी बढ़कर है। सारा ऐश्वर्य स्वप्नके समान मिथ्या और भगवान्‌की भक्तिमें व्यवधान डालनेवाला है। यह उत्तम ज्ञान मेरे गुरु भगवान् शंकरने दिया है; अतः मैं भक्तिके बिना सालोक्य आदि चार प्रकारकी मुक्तियोंको भी नहीं ग्रहण करना चाहता हूँ।

ऐसे कहकर वे मुनि भगवान् शंकरके समीप चले गये और बालकरूपधारी श्रीहरि भी वहीं अन्तर्धान हो गये। इन्द्र स्वप्नकी भाँति यह घटना देखकर बड़े विस्मित हुए। अब उन परमेश्वरके मनमें सम्पत्तिके लिये तृष्णा नहीं रह गयी। उन्होंने विश्वकर्माको बुलाकर उनसे मीठी-मीठी बातें कीं तथा रत्न देकर पूजन करनेके पश्चात् उन्हें घर जानेकी आज्ञा दी। फिर सब कुछ अपने पुत्रको सौंपकर वे भगवान्‌की शरणमें जानेको उद्यत हो गये। उनका विवेक जाग उठा था; अतः वे शची तथा राजलक्ष्मीको त्यागकर प्रारब्ध-क्षयकी कामना करने लगे। अपने प्राणवल्लभको विवेक एवं वैराग्यसे युक्त हुआ देख शचीका हृदय व्यथित हो उठा। वे शोकसे व्याकुल एवं भयभीत हो गुरुकी शरणमें गयीं। वहाँ सब कुछ निवेदन करके बृहस्पतिजीको बुलाकर इन्द्रको नीतिके सार-तत्त्वका उपदेश कराया। गुरु बृहस्पतिने दाम्पत्य-प्रेमसे युक्त शास्त्रविशेषकी रचना करके स्वयं प्रेमपूर्वक उन्हें पढ़ाया। बृहस्पतिजीने उस शास्त्र-विशेषका भाव इन्द्रको भलीभाँति समझा दिया। वृन्दावनविनोदिनि! तब इन्द्र पूर्ववत् राज्य करने लगे। सुरेश्वरि! इस प्रकार मैंने इन्द्रके अभिमान-भङ्गका सारा प्रसङ्ग कह सुनाया। पिता नन्दके यज्ञमें जो इन्द्रके दर्पका दलन हुआ था, उसे तो तुमने अपनी आँखों देखा ही था। (अध्याय ४७)

सूर्य और अग्निके दर्प-भङ्गकी कथा

राधिका बोलीं—भगवन्! आपने इन्द्रके दर्प-भङ्गका प्रसङ्ग मुझसे कहा। अब मैं सूर्यदेवके गर्वगञ्जनकी बात यथार्थरूपसे सुनना चाहती हूँ।

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—सुन्दरि! सूर्य एक ही बार उदय लेकर फिर अस्त हो गये, परंतु माली और सुमाली नामक दो दैत्यराज सूर्यास्त हो जानेके बाद भी वैसा ही प्रकाश बनाये रखनेके लिये उद्यत हुए। भगवान् शंकरके वरसे महान् ऐश्वर्य पाकर वे दोनों दैत्य मदसे उन्मत्त हो गये थे। उनकी प्रभासे रात्रि नहीं होने पाती थी। (रातके समय भी दिनका-सा प्रकाश छाया रहता था।) यह देख सूर्यदेव रुष्ट हो गये और उन्होंने अपने शूलसे अवहेलनापूर्वक उन दोनों दैत्योंको मारा। सूर्यके शूलसे आहत हो वे दोनों दैत्य मूर्च्छित होकर पृथ्वीपर गिर पड़े। भक्तोंका विनाश हुआ जान भक्तवत्सल शंकर आये और उन्होंने अपने महान् ज्ञानद्वारा उन दोनोंको जीवन-दान दिया। तब वे दोनों दैत्य भगवान् शिवको

भक्तिपूर्वक प्रणाम करके अपने घरको चले गये। इधर महादेवजी रोषसे आगबबूला हो उठे और सूर्यको मारनेके लिये दौड़े। संहारकर्ता हर मेरा विनाश करनेके लिये चले आ रहे हैं, यह देख सूर्यदेव भयसे भागते हुए तत्काल ब्रह्माजीकी शरणमें गये। तब महादेवजीने रोषसे शूल उठाकर ब्रह्माजीके भवनपर धावा किया। भगवान् शिव कालके भी काल और विधाताके भी विधाता हैं। उन परमेश्वर हरको रुष्ट हुआ देख लोकनाथ ब्रह्मा चारों मुखोंसे वेदोक्त स्तोत्र पढ़ते हुए उनकी स्तुति करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—दक्ष-यज्ञ-विनाशक शिव! सूर्यदेव मेरी शरणमें आये हैं; अतः आप इनपर कृपा कीजिये। जगद्गुरो! सृष्टिके आरम्भमें आपने ही सूर्यकी सृष्टि की है। महाभाग आशुतोष! भक्तवत्सल! प्रसन्न होइये। कृपासिन्धो! कृपापूर्वक दिन और रातकी रक्षा कीजिये। ब्रह्मस्वरूप भगवन्! आप जगत्की सृष्टि, पालन और संहारके कारण हैं। क्या स्वयं ही सूर्यका निर्माण करके स्वयं ही इनका संहार करना चाहते हैं? आप स्वयं ही ब्रह्मा, शेषनाग, धर्म, सूर्य और अग्नि हैं। परात्पर परमेश्वर! चन्द्र और इन्द्र आदि देवता आपसे भयभीत रहते हैं। ऋषि और मुनि आपकी ही आराधना करके तपस्याके धनी हुए हैं। आप ही तप हैं, आप ही तपस्याके फल हैं और आप ही तपस्याओंके फलदाता हैं।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सूर्यको ले आये और भक्ति तथा प्रीतिके साथ दीनवत्सल शंकरको उन्हें सौंप दिया। भगवान् शिवका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। उन जगत्-विधाताने सूर्यको आशीर्वाद देकर ब्रह्माजीको प्रणाम किया और बड़े हर्षके साथ अपने धामको प्रस्थान किया।

जो मनुष्य संकटकालमें ब्रह्माजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रका पाठ करता है, वह भयभीत हो तो भयसे और बँधा हो तो बन्धनसे मुक्त हो जाता है। राजद्वारपर, श्मशान-भूमिमें और महासागरमें जहाज टूट जानेपर इस स्तोत्रके स्मरणमात्रसे मनुष्य संकटमुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है।

श्रीकृष्ण कहते हैं—तदनन्तर सूर्यदेव ब्रह्माजीको प्रणाम करके प्रसन्न हुए और उनकी आज्ञासे अभिमान छोड़ प्रेमपूर्वक विनयपूर्ण बर्ताव करने लगे। अब अग्निके मानभञ्जनका उपाख्यान सुनो। यह उत्तम प्रसङ्ग पुराणोंमें गोपनीय है और कानोंमें अमृतके समान मधुर प्रतीत होता है। एक समयकी बात है। अग्निदेव सौ ताड़ोंके बराबर ऊँची और भयंकर लपटें उठाकर तीनों लोकोंको भस्म कर डालनेके लिये उद्यत हो गये। महर्षि भृगुने उन्हें शाप दिया था; इसलिये वे क्षोभ और क्रोधसे भरे थे। अपनेको तेजस्वी और दूसरोंको तुच्छ मानकर वे त्रिलोकीको भस्म करना चाहते थे। इसी बीचमें मायासे शिशुरूपधारी जनार्दन भगवान् विष्णु लीलापूर्वक वहाँ आ पहुँचे और सामने खड़े हो अग्निकी उस दाहिका शक्तिको उन्होंने हर लिया। तत्पश्चात् मन्द-मन्द मुस्कराते हुए भक्तिसे मस्तक झुका वे विनयपूर्वक बोले।

शिशुने कहा—भगवन्! आप क्यों रुष्ट हैं? इसका कारण मुझे बताइये। व्यर्थ ही आप तीनों लोकोंको भस्म करनेके लिये उद्यत हुए हैं? भृगुजीने आपको शाप दिया है; अतः आप उनका ही दमन कीजिये। एकके अपराधसे तीनों लोकोंको भस्म कर डालना आपके लिये कदापि उचित नहीं है। ब्रह्माजीने इस विश्वकी सृष्टि की है, साक्षात् श्रीहरि इसके पालक हैं और भगवान् रुद्र संहारक। ऐसा ही क्रम है। जगदीश्वर शंकरके रहते हुए आप स्वयं जगत्को भस्म करनेके लिये क्यों उद्यत हुए हैं? पहले जगत्का पालन करनेवाले भगवान् विष्णुको जीतिये। उसके बाद इसका शीघ्रतापूर्वक संहार कीजिये।

ऐसा कहकर ब्राह्मणबालकने सामने पड़े हुए सरकंडेके एक पत्तेको, जो बहुत ही सूखा हुआ था, हाथमें उठा लिया और उसे जलानेके लिये अग्निको दिया। सूखा ईंधन देख अग्निदेव

भयानकरूपसे जीभ लपलपाने लगे। उन्होंने अपनी लपटोंमें ब्राह्मणबालकको उसी तरह लपेट लिया, जैसे मेघोंकी घटासे चन्द्रमा छिप जाता है; परंतु उस समय न तो वह सूखा पत्ता जला और न उस शिशुका एक बाल भी बाँका हुआ। यह देख अग्निदेव उस बालकके सामने लज्जासे ठिठक गये। अग्निदेवका दर्प भङ्ग करके वह शिशु वहीं अन्तर्धान हो गया तथा अग्निदेव अपनी मूर्तिको समेटकर डरे हुएकी भाँति अपने स्थानको चले गये।

इसी तरह राजा अम्बरीषके यहाँ महर्षि दुर्वासाके दर्पका दलन हुआ था। (वह कथा पहले आ चुकी है।)

राधिका बोलीं—जगद्गुरो! अब धन्वन्तरिके दर्पभङ्गकी कथा सुनाइये।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! राधिकाका यह वचन सुनकर भगवान् मधुसूदन हँसे और उन्होंने उस श्रवणसुखद प्राचीन कथाको सुनाना आरम्भ किया।

(अध्याय ४८—५०)

धन्वन्तरिके दर्प-भङ्गकी कथा, उनके द्वारा मनसादेवीका स्तवन

भगवान् श्रीकृष्णने कहा—भगवान् धन्वन्तरि स्वयं महान् पुरुष हैं और साक्षात् नारायणके अंशस्वरूप हैं। पूर्वकालमें जब समुद्रका मन्थन हो रहा था, उस समय महासागरसे उनका प्रादुर्भाव हुआ। वे सम्पूर्ण वेदोंमें निष्णात तथा मन्त्र-तन्त्रविशारद हैं, विनतानन्दन गरुड़के शिष्य और भगवान् शंकरके उपशिष्य हैं। एक दिन वे सहस्रों शिष्योंसे घिरे हुए कैलास पर्वतपर आये। मार्गमें उन्हें भयानक तक्षक दिखायी दिया, जो जीभ लपलपा रहा था। भयानक विषसे भरा हुआ वह पर्वताकार नाग लाखों नागोंसे घिरा हुआ था और धन्वन्तरिको क्रोधपूर्वक काट खानेके लिये आगे बढ़ रहा था। यह देख धन्वन्तरिका शिष्य दम्भी हँसने लगा। उसने भयानक तक्षकको मन्त्रसे जृम्भित करके विषहीन बना दिया और उसके मस्तकमें विद्यमान बहुमूल्य मणिरत्नको हर लिया। इतना ही नहीं, उसने तक्षकको हाथसे घुमाकर दूर फेंक दिया। तक्षक उस मार्गमें मृतककी भाँति निश्चेष्ट पड़ गया। यह देख उसके गणोंने वासुकिके पास जाकर सब समाचार निवेदन किया। उसे सुनकर वासुकि अत्यन्त क्रोधसे जल उठे। उन्होंने भयानक विषवाले असंख्य सर्पोंको वहाँ भेजा। समस्त सेनापतियोंमें पाँच मुख्य थे—द्रोण, कालिय, कर्कोटक, पुण्डरीक और धनञ्जय। ये सब नाग उस स्थानपर आये, जहाँ धन्वन्तरि विराजमान

थे। उन असंख्य नागोंको देखकर धन्वन्तरिके शिष्योंको बड़ा भय हुआ। वे सब शिष्य नागोंके निःश्वास-वायुसे मृतक-तुल्य हो गये और निश्चेष्ट तथा ज्ञानशून्य हो पृथ्वीपर पड़ गये। भगवान् धन्वन्तरिने गुरुका स्मरण करते हुए मन्त्रका पाठ और अमृतकी वर्षा करके सब शिष्योंको जीवित कर दिया। उनमें चेतना उत्पन्न करके जगद्गुरु धन्वन्तरिने मन्त्रोंद्वारा भयानक विषवाले सर्पसमूहको जृम्भित कर दिया। फिर तो वे सब-के-सब ऐसे निश्चेष्ट हुए, मानो मर गये हों। उन नागगणोंमें कोई ऐसा भी नहीं रह गया, जो नागराजको समाचार दे सके; परंतु नागराज वासुकि सर्वज्ञ हैं, उन्होंने सर्पोंके उन समस्त संकटको जान लिया और अपनी ज्ञानरूपिणी बहिन जगदीरी मनसा (या जरत्कारु)-को बुलाया।

वासुकिने उससे कहा—मनसे! तुम जाओ और अत्यन्त संकटसे नागोंकी रक्षा करो। महाभागे! ऐसा करनेपर तुम्हारी तीनों लोकोंमें पूजा होगी।

वासुकिकी बात सुनकर वह नागकन्या हँस पड़ी और विनीत भावसे खड़ी हो अमृतके समान मधुर वचन बोली।

मनसाने कहा—नागराज! मेरी बात सुनिये। मैं युद्धके लिये जाऊँगी। शुभ और अशुभ (जीत और हार) तो दैवके हाथमें है; परंतु मैं यथोचित कर्तव्यका पालन करूँगी। समराङ्गणमें लीलापूर्वक उस शत्रुका संहार कर डालूँगी। जिसे मैं मार दूँगी, उसकी रक्षा कौन कर सकता है? मेरे बड़े भाई और गुरु भगवान् शेषने मुझे जगदीश्वर नारायणका परम अद्भुत सिद्ध मन्त्र प्रदान किया है। मैं अपने कण्ठमें 'त्रैलोक्य-मङ्गल' नामक उत्तम कवच धारण करती हूँ; अतः संसारको भस्म करके पुनः उसकी सृष्टि करनेमें समर्थ हूँ। मन्त्रशास्त्रोंमें मैं भगवान् शंकरकी शिष्या हूँ। पूर्वकालमें भगवान् शिवने कृपापूर्वक मुझे महान् ज्ञान दिया था।

ऐसा कहकर श्रीहरि, शिव तथा शेषनागको प्रणाम करके मनमें हर्ष और उत्साह लिये मनसा अन्य नागोंको वहीं छोड़ अकेली ही रोषपूर्वक उस स्थानको गयी। उस समय मनसादेवीकी आँखें रोषसे लाल हो रही थीं। वह उस स्थानपर आयी, जहाँ प्रसन्नमुख और नेत्रवाले धन्वन्तरिदेव विराजमान थे। सुन्दरी मनसाने दृष्टिमात्रसे ही सम्पूर्ण सर्पोंको जीवित कर दिया और अपनी विषपूर्ण दृष्टि डालकर शत्रुके शिष्योंको चेष्टाशून्य बना दिया। भगवान् धन्वन्तरि मन्त्र-शास्त्रके ज्ञानमें निपुण थे। उन्होंने मन्त्रद्वारा शिष्योंको उठानेका यत्न किया, परंतु वे सफल न हो सके। तब मनसादेवीने धन्वन्तरिकी ओर देख हँसकर अहंकारभरी बात कही।

मनसा बोली—सिद्धपुरुष! बताओ तो सही, क्या तुम मन्त्रका अर्थ, मन्त्रशिल्प, मन्त्रभेद और महान् औषधका ज्ञान रखते हो? गरुड़के शिष्य हो न? मैं और गरुड़ दोनों भगवान् शंकरके विख्यात शिष्य हैं और दीर्घकालतक गुरुके पास शिक्षा लेते रहे हैं।

यों कहकर जगदम्बा मनसा सरोवरसे कमल ले आयी और उसे मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके क्रोधपूर्वक धन्वन्तरिकी ओर चलाया। प्रज्वलित अग्निशिखाके समान जलते हुए उस कमल-पुष्पको आते देख धन्वन्तरिने निःश्वासमात्रसे उसको भस्म कर दिया। तत्पश्चात् मन्त्रसे अभिमन्त्रित एक मुट्ठी धूल लेकर उसके द्वारा उन्होंने उस भस्मको भी निष्फल कर दिया। फिर वे अवहेलनापूर्वक हँसने लगे। तब मनसादेवीने ग्रीष्मकालके सूर्यकी भाँति प्रकाशित होनेवाली शक्ति हाथमें ले ली और उसे मन्त्रसे आवेष्टित करके शत्रुकी ओर चला दिया। उस जाज्वल्यमान शक्तिको आते देख धन्वन्तरिने भगवान् विष्णुके दिये हुए शूलसे अनायास ही उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। शक्तिको भी व्यर्थ हुई देख देवी मनसा

रोषसे जल उठी। अब उसने कभी व्यर्थ न जानेवाले दु:सह एवं भयंकर नागपाशको हाथमें लिया, जो एक लाख नागोंसे युक्त, सिद्धमन्त्रसे अभिमन्त्रित तथा काल और अन्तकके समान तेजस्वी था। उसने क्रोधपूर्वक उस नागपाशको चलाया। नागपाशको देखकर धन्वन्तरि प्रसन्नतासे मुस्करा उठे; उन्होंने तत्काल गरुड़का स्मरण किया और पक्षिराज गरुड़ वहाँ आ पहुँचे। नागास्त्रको आया देख दीर्घकालके भूखे हुए हरिवाहन गरुड़ने चोंचसे मार-मारकर सब नागोंको अपना आहार बना लिया। प्रिये! नागास्त्रको निष्फल हुआ देख मनसाके नेत्र रोषसे लाल हो उठे। उसने एक मुट्ठी भस्म उठाया, जिसे पूर्वकालमें भगवान् शिवने दिया था। मन्त्रसे पवित्र किये गये उस मुट्ठीभर भस्मको चलाया गया देख गरुड़ने शिष्य धन्वन्तरिको पीछे करके अपने पंखकी हवासे वह सारा भस्म बिखेर दिया। यह देख देवी मनसाको बड़ा क्रोध हुआ। उसने धन्वन्तरिका वध करनेके लिये स्वयं अमोघ शूल हाथमें लिया। उस शूलको भी भगवान् शिवने ही दिया था। उससे सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभा फैल रही थी। वह अमोघ शूल तीनों लोकोंमें प्रलयाग्निके समान प्रकाशित होता था। इसी समय ब्रह्मा और शिव धन्वन्तरिकी रक्षा तथा गरुड़के सम्मानके लिये उस समराङ्गणमें आये। भगवान् शम्भु तथा जगदीश्वर ब्रह्माको उपस्थित देख मनसाने भक्तिभावसे उन दोनोंको नमस्कार किया। उस समय भी वह नि:शङ्क-भावसे शूल धारण किये रही। धन्वन्तरि तथा गरुड़ने भी उन दोनों देवेश्वरोंको मस्तक झुकाया और बड़ी भक्तिसे उनकी स्तुति की। उन दोनोंने भी इन दोनोंको आशीर्वाद दिया। तत्पश्चात् लोकहितकी कामनासे मनसादेवीकी पूजाका प्रचार करनेके लिये ब्रह्माजीने धन्वन्तरिसे मधुर एवं हितकर वचन कहा।

ब्रह्माजी बोले—सम्पूर्ण शास्त्रोंके विशिष्ट विद्वान् महाभाग धन्वन्तरे! मनसादेवीके साथ तुम्हारा युद्ध हो, यह मुझे उचित नहीं जान पड़ता। इसके साथ तुम्हारी कोई समता ही नहीं है। यह देवेश्वरी मनसा शिवके दिये हुए अमोघ शूलसे तीनों लोकोंको जलाकर भस्म करनेकी शक्ति रखती है। कौथुम-शाखामें वर्णित ध्यानके अनुसार मनसादेवीका भक्तिभावसे ध्यान करके एकाग्रचित्त हो षोडशोपचार अर्पित करते हुए इसकी पूजा करो। फिर आस्तीकमुनिद्वारा किये गये स्तोत्रसे तुम्हें इसकी स्तुति करनी चाहिये। इससे संतुष्ट हो मनसादेवी तुम्हें वर प्रदान करेगी।

ब्रह्माजीकी यह बात सुनकर शिवजीने भी उसका अनुमोदन किया। फिर गरुड़ने प्रेमसे प्रयत्नपूर्वक उन्हें समझाया। इन सबकी बात सुनकर स्नानसे शुद्ध हो वस्त्र और आभूषण धारण करके धन्वन्तरि ब्रह्माजीको पुरोहित बना मनसाकी पूजा करनेको उद्यत हुए।

धन्वन्तरि बोले—जगद्गौरी मनसे! यहाँ आओ और मेरी पूजा ग्रहण करो। कश्यपनन्दिनि! पहलेसे ही तीनों लोकोंमें तुम्हारी पूजा होती आयी है। देवि! तुम विष्णुस्वरूपा हो। तुमने सम्पूर्ण जगत्को जीत लिया है; इसीलिये रणभूमिमें अस्त्र-प्रयोग नहीं किया है।

ऐसा कहकर संयत हो भक्तिसे मस्तक झुका हाथमें श्वेत पुष्प ले वे ध्यान करनेको उद्यत हुए।

ध्यान

मनसादेवीकी अङ्गकान्ति मनोहर चम्पाके समान गौर है। उनके सभी अङ्ग मनको मोह लेनेवाले हैं। प्रसन्नमुखपर मन्द हासकी छटा छा रही है। महीन वस्त्र उनके श्रीअङ्गोंकी शोभा बढ़ाते हैं। परम सुन्दर केशोंकी वेणी अद्भुत शोभासे सम्पन्न है। वे रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हैं। सबको अभय देनेवाली वे देवी भक्तोंपर अनुग्रहके लिये कातर देखी जाती हैं। सम्पूर्ण विद्याओंकी देनेवाली, शान्तस्वरूपा, सर्वविद्याविशारदा,

नागेन्द्रवाहना और नागोंकी स्वामिनी हैं; उन परा देवी मनसाका मैं भजन करता हूँ।

प्रिये! इस प्रकार ध्यानकर पुष्प दे नाना द्रव्योंसे युक्त षोडशोपचार चढ़ाकर धन्वन्तरिने उनका पूजन किया। तत्पश्चात् पुलकित-शरीर हो भक्तिसे मस्तक झुका दोनों हाथ जोड़ उन्होंने यत्नपूर्वक मनसादेवीकी स्तुति की।

धन्वन्तरि बोले—सिद्धिस्वरूपा मनसादेवीको नमस्कार है। उन सिद्धिदायिनी देवीको बारंबार मेरा प्रणाम है। वरदायिनी कश्यपकन्याको नमस्कार, नमस्कार और पुनः नमस्कार। कल्याणकारिणी शंकर-कन्याको बारंबार नमस्कार। तुम नागोंपर सवार होनेवाली नागेश्वरी हो। तुम्हें नमस्कार, नमस्कार, नमस्कार। तुम आस्तीककी माता और जगज्जननी हो; तुम्हें मेरा नमस्कार है। जगत्‌की कारणभूता जरत्कारुको नमस्कार है। जरत्कारु मुनिकी पत्नीको नमस्कार है। नागभगिनीको नमस्कार है। योगिनीको बारंबार नमस्कार है। चिरकालतक तपस्या करनेवाली सुखदायिनी मनसादेवीको बारंबार नमस्कार है। तपस्यारूपा देवीको नमस्कार है। फलदायिनी मनसादेवीको नमस्कार है। साध्वी, सुशीला एवं शान्तस्वरूपा देवीको बारंबार नमस्कार है।

ऐसा कहकर धन्वन्तरिने भक्तिभावसे यत्नपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। उस स्तुतिसे संतुष्ट हुई देवी मनसा धन्वन्तरिको वर देकर शीघ्र ही अपने घरको चली गयी। ब्रह्मा, रुद्र और गरुड़ भी अपने-अपने धामको चले गये। भगवान् धन्वन्तरि भी अपने भवनको पधारे। फणोंसे सुशोभित नागगण प्रसन्नतापूर्वक पातालको चले गये। प्रिये! इस प्रकार मैंने सम्पूर्ण स्तवराज तुमसे कहा है। आस्तीकने विधिपूर्वक माताकी भक्ति की। इससे वह जगदीश्वरी अपने पुत्र मुनिवर आस्तीकपर बहुत संतुष्ट हुई। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस परम पुण्यमय स्तोत्रका पाठ करता है; उसके वंशजोंको नागोंसे भय नहीं होता, इसमें संशय नहीं है।

(अध्याय ५१)

श्रीकृष्णके अन्तर्धान होनेसे श्रीराधा और गोपियोंका दुःखसे रोदन, चन्दनवनमें श्रीकृष्णका उन्हें दर्शन देना, गोपियोंके प्रणय-कोपजनित उद्गार, श्रीकृष्णका उनके साथ विहार, श्रीराधा नामके प्रथम उच्चारणका कारण, श्रीकृष्णद्वारा श्रीराधाका शृङ्गार, गोपियोंद्वारा उनकी सेवा और श्रीकृष्णके मथुरागमनसे लेकर परमधाम-गमनतककी लीलाओंका संक्षिप्त परिचय

श्रीकृष्णने कहा—प्रिये! मैंने छोटे-बड़े सभी लोगोंके दर्प-भङ्गकी कहानी कही और तुमने सुनी। इसमें संदेह नहीं कि उन सबका अभिमान भङ्ग किया ही गया था। अब उठो और वृन्दावनमें चलो। सुन्दरि! अब मैं विरहसे पीड़ित हुई गोपिकाओंको शीघ्र देखना चाहता हूँ।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! श्यामसुन्दरकी यह बात सुनकर मानिनी रसिकेश्वरी राधाने उनसे कहा—'प्राणेश्वर! मैं चलनेमें असमर्थ हो गयी हूँ; अतः तुम्हीं मुझे ले चलो।' राधाकी यह बात सुन मधुसूदन हँसकर बोले—'तब मुझपर ही सवार हो जाओ।' ऐसा कह वे तत्काल अदृश्य हो गये। राधा मनकी गतिसे चलनेवाली थीं। वे क्षणभर वहाँ रोती रहीं; फिर इधर-उधर श्यामसुन्दरको ढूँढ़ती हुई वृन्दावनमें जा पहुँचीं। शोकसे कातर हुई राधाने रोते-रोते चन्दनवनमें प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने शोकाकुल गोपियोंको देखा, जो भयसे विह्वल थीं। उनके मुँह लाल हो गये थे।

आँखें इधर-उधर घूरती थीं। वे सम्पूर्ण वनमें भ्रमण करतीं और 'हा नाथ! हा नाथ!' पुकारती हुई बिना खाये-पीये रह रही थीं। उनके मनमें बड़ा रोष था। प्रेमविच्छेदसे कातर राधिकाने उन सबको देखकर उनसे मलयवनमें भ्रमण आदिका अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। फिर वे उन सबके साथ रोदन करने लगीं। विरहसे आतुर हो 'हा नाथ! हा नाथ!' का उच्चारण करके बारंबार विलाप करती हुई सब गोपियाँ कुपित हो अपने शरीरका त्याग कर देनेको उद्यत हो गयीं। इसी समय वहाँ चन्दनवनमें पधारकर श्रीकृष्णने राधा तथा गोपियोंको दर्शन दिये। प्राणेश्वरको आया देख गोपाङ्गनाओंसहित राधा आनन्दसे मुस्करायीं और पुलकित-शरीर हो उनकी ओर दौड़ीं। पास जाकर वे सब गोपाङ्गनाएँ प्रेमसे विह्वल हो रोने लगीं। फिर उन सबने श्रीकृष्णसे विरहजनित अपने सारे दुःखको निवेदन किया। दिन-रात स्नान और खाना-पीना छोड़कर वन-वनमें निरन्तर भटकते रहना तथा अन्तमें शरीरको त्याग देनेका विचार करना आदि सब बातें बताकर उन सबने क्षणभर उन्हें बहुत फटकारा। फिर वे एक क्षणतक प्रसन्नतासे उनके गुण गाती रहीं। इसके बाद कुछ देर उन्हें आभूषण पहनाती तथा चन्दन लगाती रहीं। कोई-कोई गोपियाँ बोलीं—'अरी सखि! देखो, श्यामसुन्दर हमारे प्राणोंके चोर हैं। इनकी निरन्तर रखवाली करो। ये कहीं जाने न पावें।' यह सुनकर दूसरी बोल उठी—'नहीं सखी! अब ये फिर ऐसा अपराध कभी नहीं करेंगे।' कोई कहने लगी—'अरी सखियो! इन्हें शीघ्र ही चारों ओरसे घेरकर बाँचमें कर लो।' दूसरी बोली—'नहीं, नहीं सखी! इन्हें प्रेमपाशसे बाँधकर हृदय-मन्दिरमें कैद कर लो।' कोई बोली—'ये पुरुष हैं; इनपर कभी विश्वास नहीं किया जा सकता।' अन्य बोल उठी—'इन चित्तचोरकी यत्नपूर्वक देखभाल करो।' कोई-कोई कुपित होकर कहने लगीं—'ये निष्ठुर हैं, नरघाती हैं।' कोई बोली—'अब फिर इनसे बात न करो।'

तदनन्तर जो-जो रमणीय और निर्जन वन थे, उन सबमें गोपियाँ श्रीकृष्णके साथ कौतूहलपूर्वक घूमती रहीं। इस तरह उन परमेश्वरको बीचमें करके वे सब गोपियाँ दूसरे वनमें गयीं, जहाँ सुरम्य रासमण्डल विद्यमान था। रासमण्डलमें जाकर रसिकशेखर श्रीकृष्ण स्वर्णसिंहासनपर विराजमान हुए। जैसे रातके समय आकाशमें तारागणोंके साथ चन्द्रमा शोभा पाते हैं; उसी प्रकार वे गोपियोंके साथ सुशोभित हो रहे थे। जनार्दनने अपनी अनेक मूर्तियाँ प्रकट करके गोपियोंके साथ पुनः रासक्रीड़ा की।

नारदजीने पूछा—भक्तजनोंके प्रियतम नारायण! विद्वान् पुरुष पहले 'राधा' शब्दका उच्चारण करके पीछे 'कृष्ण' का नाम लेते हैं, इसका क्या कारण है? यह मुझ भक्तको बताइये।

श्रीनारायण बोले—नारद! इसके तीन कारण हैं; बताता हूँ, सुनो। प्रकृति जगत्की माता हैं और पुरुष जगत्के पिता। त्रिभुवनजननी प्रकृतिका गौरव पितृस्वरूप पुरुषकी अपेक्षा सौगुना अधिक है। श्रुतिमें 'राधाकृष्ण', 'गौरीशंकर' इत्यादि शब्द ही सुना गया है। 'कृष्ण-राधा' 'शंकर-गौरी' इत्यादिका प्रयोग कभी लोकमें भी नहीं सुना गया है। 'हे रोहिणीचन्द्र! प्रसन्न होइये और इस अर्घ्यको ग्रहण कीजिये। संज्ञासहित सूर्यदेव! मेरे दिये हुए इस अर्घ्यको स्वीकार कीजिये। कमलाकान्त! प्रसन्न होइये और मेरी पूजा ग्रहण कीजिये।' इत्यादि मन्त्र सामवेदकी

कौथुमीशाखामें देखे गये हैं। मुनिश्रेष्ठ नारद! 'रा' शब्दके उच्चारणमात्रसे ही माधव हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं और 'धा' शब्दका उच्चारण होनेपर तो अवश्य ही भक्तके पीछे वेगपूर्वक दौड़ पड़ते हैं। जो पहले पुरुषवाची शब्दका उच्चारण करके पीछे प्रकृतिका उच्चारण करता है, वह वेदकी मर्यादाका उल्लङ्घन करनेके कारण मातृहत्याके पापका भागी होता है। तीनों लोकोंमें पुण्यदायक कर्मक्षेत्र होनेके कारण भारतवर्ष धन्य है। उसमें भी श्रीराधाचरणारविन्दोंकी रेणुसे पवित्र हुआ वृन्दावन अतिशय धन्य है। राधाके चरणकमलोंकी पवित्र धूल प्राप्त करनेके लिये ब्रह्माजीने साठ हजार वर्षोंतक तपस्या की थी।

नारदजीने पूछा—पूर्णमासी बीत जानेपर जगदीश्वर श्रीकृष्णने क्या किया? उस समय उनकी कौन-सी रहस्यलीला हुई? यह बतानेकी कृपा करें।

श्रीनारायणने कहा—रासमण्डलमें रासलीला सम्पन्न करके स्वयं रासेश्वर श्यामसुन्दर रासेश्वरी राधाके साथ यमुनातटपर गये, वहाँ स्नान एवं निर्मल जलका पान करके उन्होंने कालिन्दीके स्वच्छ सलिलमें गोपाङ्गनाओंके साथ जलक्रीड़ा की। तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्ण राधिकाजीके साथ भाण्डीर वनमें चले गये। इधर प्रेमविह्वला गोपियाँ अपने-अपने घरोंको लौट गयीं। उस समय श्यामसुन्दर श्रीराधाके साथ मालतीकानन, वासन्तीकानन, चन्दनकानन तथा चम्पककानन आदि मनोहर वनोंमें क्रीड़ा करते रहे। फिर पद्मासनमें रातको शयन किया। प्रातःकाल उन्होंने देखा, प्रियाजी फूलोंकी शय्यापर सो रही हैं। शरत्कालिक चन्द्रमाकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले उनके सुन्दर मुखपर पसीनेकी बूँदें दिखायी दे रही हैं। सिन्दूर लुप्त हो गया है, कज्जल मिट गया है, अधरोंकी लाली भी लुप्तप्राय हो गयी है और कपोलोंकी पत्र-रचना मिट गयी है। उनकी वेणी खुल गयी है, नेत्रकमल बंद हैं और रत्नोंके बने हुए दो बहुमूल्य कुण्डलोंसे उनके मुखमण्डलकी अपूर्व शोभा हो रही है। दन्तपंक्तिसे सुशोभित मुख मानो गजमुक्तासे अलंकृत एवं उद्दीप्त है। प्रियाजीको इस अवस्थामें देख भक्तवत्सल माधवने अग्निशुद्ध महीन वस्त्रसे उनके मुखको बड़े प्रेम और भक्तिभावसे पोंछा। फिर केशोंको सँवारकर उनकी चोटी बाँध दी। उस चोटीमें माधवी और मालतीके फूलोंकी माला लगा दी, जिससे उसकी शोभा बहुत बढ़ गयी। वह चोटी रत्नयुक्त रेशमी डोरोंसे बँधी थी। उसकी आकृति सुन्दर, वक्र, मनोहर और अत्यन्त गोल थी। कुन्दके फूलोंसे भी उसका शृङ्गार किया गया था। वेणी बाँधनेके पश्चात् श्यामसुन्दरने प्रियाजीके भाल-देशमें सिन्दूरका तिलक लगाया। उसके नीचे उज्ज्वल चन्दनका शृङ्गार किया। फिर कस्तूरीकी बेंदीसे उनके ललाटकी शोभा बढ़ायी। तत्पश्चात् दोनों कपोलोंपर चित्र-विचित्र पत्र-रचना की। नेत्रकमलोंमें भक्तिभावसे काजल लगाया, जिससे उनका सौन्दर्य खिल उठा। फिर बड़े अनुरागसे राधाके अधरोंमें लाली लगायी। कानमें दो अत्यन्त निर्मल आभूषण पहनाये। गलेमें बहुमूल्य रत्नोंका हार पहनाया, जो उनके वक्षःस्थलको उद्भासित कर रहा था। वह हार मणियोंकी लड़ियोंसे प्रकाशित हो रहा था। तदनन्तर बहुमूल्य, दिव्य, अग्निशुद्ध तथा सब प्रकारके रत्नोंसे अलंकृत वस्त्र पहनाया, जो कस्तूरी और कुंकुमसे अभिषिक्त था। दोनों चरणोंमें रत्ननिर्मित मञ्जीर पहनाये और पैरोंकी अँगुलियों एवं नखोंमें भक्तिभावसे महावर लगाया।

जो तीनों लोकोंके सत्पुरुषोंद्वारा सेव्य हैं; उन श्यामसुन्दरने अपनी सेव्यरूपा प्राणवल्लभाकी सेवा की। तदनन्तर सेवकोचित भक्तिसे श्वेत चँवर डुलाया। यह कैसी अद्भुत बात है। इसके बाद समस्त भावोंके जानकारोंमें श्रेष्ठ बोधकलाके ज्ञाता एवं विलास-शास्त्रके मर्मज्ञ श्रीहरिने अपनी प्राणवल्लभाको जगाया और अपने वक्षःस्थलमें उनके लिये स्थान दिया।

इस प्रकार श्रीराधाको जगाकर श्रीकृष्णने उन्हें भाँति-भाँतिके पुष्पमाला, आभूषण तथा कौस्तुभमणि आदिके द्वारा सुसज्जित किया। रत्नपात्रमें भोजन और जल प्रस्तुत किये। इसी समय चरण-चिह्नोंको पहचानती हुई श्रीराधाकी सुप्रतिष्ठित सहचरी सुशीला आदि छत्तीस गोपियाँ अन्यान्य बहुसंख्यक गोपाङ्गनाओंके साथ वहाँ आ पहुँचीं। किन्हींके हाथमें चन्दन था और किन्हींके हाथमें कस्तूरी। कोई चँवर लिये आयी थी और कोई माला। कोई सिन्दूर, कोई कंघी, कोई आलता (महावर) और कोई वस्त्र लिये हुए थी। कोई अपने हाथमें दर्पण, कोई पुष्पपात्र, कोई क्रीड़ाकमल, कोई फूलोंके गजरे, कोई मधुपात्र, कोई आभूषण, कोई करताल, कोई मृदंग, कोई स्वर-यन्त्र और कोई वीणा लिये आयी थीं। जो छत्तीस राग-रागिनियाँ गोपीका रूप धारण करके गोलोकसे राधाके साथ भारतवर्षमें आयी थीं, वे सब वहाँ उपस्थित हुईं। कई गोपियाँ वहाँ आकर नाचने और गाने लगीं तथा कोई श्वेत चँवर डुलाकर राधाकी सेवा करने लगीं। महामुने! कुछ गोपियाँ प्रसन्नतापूर्वक देवी राधाके पैर दबाने लगीं। एकने उन्हें चबानेके लिये पानका बीड़ा दिया। इस प्रकार पवित्र वृन्दावनमें श्रीराधाके वक्षःस्थलमें विराजमान भगवान् श्यामसुन्दर कौतूहलपूर्वक गोपियोंके साथ वहाँसे प्रस्थित हुए। वत्स! इस प्रकार मैंने श्रीहरिकी रासक्रीड़ाका वर्णन किया। वे भगवान् श्रीकृष्ण स्वेच्छामय रूपधारी, परिपूर्णतम परमात्मा, निर्गुण, स्वतन्त्र, प्रकृतिसे भी परे, सर्वसमर्थ और ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव आदिके भी परमेश्वर हैं। इस प्रकार श्रीकृष्णजन्मका रहस्य, मनको प्रिय लगनेवाली उनकी बाललीला तथा किशोर-लीलाका भी वर्णन किया गया। अब तुम और क्या सुनना चाहते हो?

नारदजीने पूछा—मुनिश्रेष्ठ! इसके बाद कौन-सी रहस्य-लीला हुई? भगवान् श्रीकृष्ण किस प्रकार नन्दभवनसे मथुराको गये? श्रीहरिके वियोगसे पीड़ित हुए नन्दने कैसे अपने प्राण धारण किये? जिनका चित्त सदा श्रीकृष्णके चिन्तनमें ही लगा रहता था, वे गोपाङ्गनाएँ और यशोदाजी भी कैसे जीवन धारण कर सकीं? जो आँखोंकी पलक गिरनेतकका भी वियोग होनेपर जीवित नहीं रह सकती थीं; वे ही देवी श्रीराधा अपने प्राणेश्वरके बिना किस तरह प्राणोंको रख सकीं? जो-जो गोप शयन, भोजन तथा अन्यान्य सुखोंके उपभोग-कालमें सदा श्रीकृष्णके साथ रहे; वे अपने वैसे प्रेमी बान्धवको व्रजमें रहते हुए कैसे भूल सके? श्रीकृष्णने मथुरामें जाकर कौन-कौन-सी लीलाएँ कीं? परमधाम-गमनपर्यन्त उन्होंने जो कुछ किया हो, उसे आप बतानेकी कृपा करें।

श्रीनारायणने कहा—महामुने! कंसने धनुर्यज्ञ नामक यज्ञका आयोजन किया था। उसमें उस राजाका निमन्त्रण पाकर भगवान् श्रीकृष्ण भी गये थे। राजा कंसने श्रीकृष्णको बुलानेके लिये भगवद्भक्त अक्रूरको उनके पास भेजा था।

अक्रूरजी राजा कंसकी आज्ञा पाकर नन्दभवनमें गये और श्रीकृष्णको उनके साथियोंसहित साथ ले मथुरामें लौट आये। मुने! मथुरा जाकर श्रीकृष्णने राजा कंसको मार डाला। एक धोबीको, चाणूर और मुष्टिक नामक मल्लको तथा कुवलयापीड़ नामक हाथीको वे पहले ही कालके गालमें भेज चुके थे। कंस-वधके अनन्तर बान्धव श्रीकृष्णने माता-पिता तथा भाई-बन्धुओंका उद्धार किया। श्रीहरिने कृपापूर्वक एक मालीको भी मोक्ष प्रदान किया। फिर गोपियोंपर दया आनेसे उद्धवको व्रजमें भेजकर उन्हींके द्वारा उन्हें समझाया-बुझाया और धीरज बँधाया। तदनन्तर उपनयन-संस्कारके पश्चात् भगवान् अवन्तीनगर (उज्जैन)-में गये और वहाँ गुरु सान्दीपनि मुनिसे विद्या ग्रहण की। उसके बाद जरासंधको जीतकर यवनराजका वध किया और विधिपूर्वक उग्रसेनको राजाके पदपर बिठाया। समुद्रके निकट जा वहाँ द्वारकापुरीका निर्माण कराया और राजाओंके समूहको जीतकर वे रुक्मिणी देवीको हर लाये। फिर कालिन्दी, लक्ष्मणा, शैब्या, सत्या, सती जाम्बवती, मित्रविन्दा तथा नाग्नजितीके साथ विवाह किया। तत्पश्चात् भयानक संग्रामके द्वारा प्राग्ज्योतिषपुरके नरेश नरकका वध करके उन्होंने सोलह हजार राजकुमारियोंका उद्धार किया और उन्हें पत्नीरूपमें अपनाकर उनके साथ विहार किया। इन्द्रदेवको लीलापूर्वक परास्त करके पारिजातका अपहरण किया और भगवान् शंकरको जीतकर बाणासुरके हाथ काट दिये तथा अपने पौत्र अनिरुद्धको छुड़ाया और फिर द्वारकामें आकर अपने-आपको अपनी प्रत्येक रानीके महलमें उपस्थित दिखाया। वसुदेवजीके यज्ञमें तीर्थयात्राके प्रसङ्गसे आयी हुई अपने प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी श्रीराधाके दर्शन किये। फिर वे उनके साथ पुण्यमय वृन्दावनमें गये। भारतके उस पुण्यक्षेत्रमें उन जगदीश्वरने श्रीराधाके साथ पुनः चौदह वर्षोंतक रासमण्डलमें रास किया। उन्होंने नन्द-भवनमें पूरे ग्यारह वर्षकी अवस्थातक निवास किया था। फिर मथुरा और द्वारकामें उन भगवान्‌के पूरे सौ वर्ष व्यतीत हुए। उन दिनों महापराक्रमी श्रीहरिने वहाँ रहकर भूतलका भार उतारा था। मुने! इस तरह वे एक सौ पचीस वर्षोंतक भूतलपर रहकर गोलोकमें गये। वहाँ उन्होंने मैया यशोदा और नन्दबाबाको तथा बुद्धिमान् वृषभानु एवं राधा-माता कलावतीको सामीप्य-मुक्ति प्रदान की। श्रीकृष्ण और गोपियोंके साथ राधाने कौतूहलवश प्रत्येक युगमें वेदवर्णित धर्मका सेतु बाँधा। महामुने! इस प्रकार मैंने थोड़ेमें श्रीकृष्णका सारा रम्य चरित्र कह सुनाया जो धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला है। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त सारा जगत् नश्वर ही है; अतः तुम परमानन्दमय नन्दनन्दनका सानन्द भजन करो। वे स्वेच्छामय परब्रह्म परमात्मा परमेश्वर, अविनाशी, अव्यक्त, भक्तोंपर कृपा करनेके लिये ही शरीर धारण करनेवाले, सत्य, नित्य, स्वतन्त्र, सर्वेश्वर, प्रकृतिसे परे, निर्गुण, निरीह, निराकार और निरञ्जन हैं। (अध्याय ५२—५४)

(उत्तरार्द्ध)

श्रीकृष्णकी महत्ता एवं प्रभावका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! वे ही भगवान् श्रीकृष्ण सर्वात्मा परम पुरुष हैं। वे दुराराध्य होते हुए भी अत्यन्त साध्य हैं अर्थात् आराधनाके बलसे उन्हें रिझा पाना अत्यन्त कठिन है तो भी वे भक्तपर कृपा करके स्वयं ही उसके अधीन हो जाते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण सबके आराध्य और सुखदायक हैं। अपने भक्तोंके लिये तो वे अत्यन्त सुलभ हैं। भक्त ही उन्हें आराधनाद्वारा वशमें कर सकता है। वे अपने भक्तको सदा ही दर्शन देते हैं और दे सकते हैं; किंतु अभक्तके लिये उनका दर्शन पाना सर्वथा असम्भव है। उनके लीलाचरित्रोंका रहस्य समझ पाना अत्यन्त कठिन है। केवल उन चरित्रोंका अपने हृदयमें चिन्तन करना चाहिये। संसारके सब लोग श्रीकृष्णकी दुरन्त मायासे बद्ध एवं मोहित हैं। उन्हींके भयसे यह वायु निरन्तर बहती रहती है, कच्छप बिना आधारके ही स्थिर रहता है। और यही कच्छप उन्हींके भयसे सदा अनन्त (शेषनाग)-को अपनी पीठपर धारण किये रहता है तथा शेषनाग अपने मस्तकपर अखिल विश्वका भार उठाये रहते हैं। शेषनागके सहस्र सिर हैं। उनके सिरके एक देशमें सात समुद्रों, सात द्वीपों, पर्वतों और काननोंसे युक्त पृथ्वी विद्यमान है। सात पाताल, भूर्भुवः स्वः आदि विभिन्न सात स्वर्ग, जिनमें ब्रह्मलोक भी शामिल हैं, विश्व कहे गये हैं। इस विश्वको 'त्रिभुवन' कहते हैं। इसीको कृत्रिम[1] जगत् कहा गया है। विधाता प्रत्येक कल्पमें श्रीकृष्णके भयसे ही इस कृत्रिम जगत्की सृष्टि करते हैं। इस तरहके असंख्य विश्व हैं, जिन्हें महाविराट् (महाविष्णु) अपने रोम-कूपोंमें धारण करते हैं। ये श्रीकृष्णके ही अंश हैं। उन्हींके भयसे समस्त ब्रह्माण्डोंको धारण करते हैं और उन्हींका निरन्तर ध्यान किया करते हैं। कृपानिधान विष्णु (लघु विराट्) भी श्रीकृष्णके ही भयसे संसारका पालन करते हैं। उन्हींका भय मानकर कालाग्नि रुद्रस्वरूप काल प्रजाका संहार करता है तथा छहों गुणों और ऐश्वर्योंसे युक्त विरागी एवं विरक्त मृत्युञ्जय महादेव उन्हींके भयसे अनुरागपूर्वक उनका निरन्तर ध्यान करते रहते हैं। उन्हींके भयसे आग जलती और सूर्य तपते हैं। उनका ही भय मानकर इन्द्र वर्षा करते और मृत्यु समस्त प्राणियोंपर धावा बोलती है। उन्हींके भयसे यम एवं धर्म पापियोंको दण्ड देते हैं। उनका ही भय मानकर पृथ्वी चराचर लोकोंको धारण करती और प्रकृति सृष्टिकालमें महत्तत्त्व आदिको जन्म देती है। बेटा! उन भगवान् श्रीकृष्णका अभिप्राय क्या है? इसे जानना बहुत कठिन है। कौन ऐसा पुरुष है, जो उसे जाननेका दावा कर सके। वत्स! ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी जिनके प्रभावको नहीं जानते हैं; उन्हीं भगवान्‌की लीलाका रहस्य मुझ-जैसा मन्दबुद्धि कैसे जान सकता है?

वे नन्दनन्दन वृन्दावनको छोड़कर मथुरा क्यों चले गये? उन्होंने गोपियों तथा प्राणाधिका प्रिया राधाको क्यों त्याग दिया? माता यशोदा और नन्दको तथा अन्यान्य बान्धव आदिको क्यों छोड़ा? इस बातको उनके सिवा दूसरा कौन जान सकता है? वे ही दर्प देते हैं और वे ही उस दर्पका दलन करते हैं। सबको सदा सब कुछ

१-अनित्य।

देनेवाले श्रीकृष्ण ही हैं। सबके दर्पका नाश करके उन्होंने उन सबपर कृपा ही की। वे ही जगत्‌की सृष्टि, पालन और संहार करनेवाले हैं। वे स्रष्टाके भी स्रष्टा हैं। भगवान् शंकर अपने पाँच मुखोंद्वारा भी उनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं। चार मुखोंवाले जगत्-विधाता ब्रह्माजी भी उनका स्तवन नहीं कर सकते। शेषनाग सहस्र मुखोंसे भी उनकी स्तुति करनेकी शक्ति नहीं रखते। साक्षात् विश्वव्यापी जनार्दन विष्णु भी उनकी स्तुति करनेमें असमर्थ हैं। महाविराट् नारायण भी उन परमेश्वरकी स्तुति नहीं कर सके। प्रकृति उन परमात्माके सामने काँप उठती है। सरस्वती उन परमेश्वरका स्तवन करनेमें जड़वत् हो जाती हैं। नारद! सम्पूर्ण वेद भी उनकी महिमाको नहीं जानते। ब्रह्मन्! इस प्रकार निर्गुण परमात्मा श्रीकृष्णके प्रभावका वर्णन किया गया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

(अध्याय ५५)

इन्द्रके दर्प-भङ्गकी कथा, नहुषकी शचीपर कुदृष्टि, शचीका धर्मकी बातें बताकर नहुषको समझाना और उसके न माननेपर बृहस्पतिजीकी शरणमें जाकर उनका स्तवन करना

सूतजी कहते हैं—तदनन्तर नारदजीके पूछनेपर श्रीनारायणने संक्षेपसे कुछ लोगोंके दर्प-भङ्गकी घटनाएँ सुनायीं। फिर इन्द्रके दर्प-भङ्गका वृत्तान्त बताते हुए बोले।

श्रीनारायणने कहा—नारद! इस प्रकार सबके दर्प-भङ्गका प्रसङ्ग कहा गया। अब इन्द्रके दर्प-भञ्जनकी घटना विस्तारपूर्वक सुनो। एक समय इन्द्र अपने ब्रह्मनिष्ठ गुरु बृहस्पतिको आते देखकर भी सभामें दर्पवश अपने श्रेष्ठ रत्नमय सिंहासनसे नहीं उठे। इसे गुरुने अपना अपमान समझा और वे अत्यन्त रुष्ट हो वहाँसे लौट गये। यद्यपि उनके मनमें इन्द्रके प्रति द्वेषभावका उदय हुआ था, तथापि धर्मात्मा गुरुने स्नेहवश कृपा करके उन्हें शाप नहीं दिया; परंतु शाप न मिलनेपर भी इन्द्रका घमंड चूर हो गया। यदि दूसरा कोई धर्म अथवा प्रेमका विचार करके किसीके भारी अपराध करनेपर भी शाप न दे तो भी उसका वह अपराध अवश्य फल देता है। नारद! धर्मदेव ही उस पापीका नाश कर देते हैं। जो धर्मात्मा पुरुष जिस हिंसक या अपराधीको क्रोधपूर्वक शाप दे देता है, उसके उस शापसे अपराधीका अवश्य विनाश होता है; परंतु उस धर्मात्मा पुरुषका धर्म भी उसी मात्रामें क्षीण हो जाता है। इन्द्रने जो गुरुका अपमानरूप अधर्म किया था, उसके कारण वे ब्रह्महत्याके भागी हुए। ब्रह्महत्यासे डरे हुए इन्द्र अपना राज्य छोड़कर एक पवित्र सरोवरको चले गये और उस सरोवरके कमल-नालमें निवास करने लगे। भारतवर्षमें भगवान् विष्णुका वह सरोवर पुण्यमय तीर्थ और तपस्वीजनोंके तपका श्रेष्ठ स्थान है। वहाँ ब्रह्महत्या नहीं जा सकती। उसीको पुराणवेत्ता पुरुष 'पुष्कर' तीर्थ कहते हैं। इन्द्रको राज्यभ्रष्ट हुआ देख धर्मात्मा हरिभक्त नरेश नहुषने उनके राज्यपर बलपूर्वक अधिकार कर लिया। एक दिन मनोहर अङ्गवाली सुन्दरी शची, जिनके कोई संतान नहीं थी, पतिवियोगके कारण व्यथित-

१-४७वें अध्यायमें भी यह प्रसङ्ग आया है। वहाँ ५६वें श्लोकमें कहा गया है कि इन्द्रने मानसरोवरमें प्रवेश किया था—'विवेश मानससरः।' यहाँ पुष्करतीर्थमें इन्द्रका प्रवेश कहा गया है। यदि वहाँके 'मानससरः' का अर्थ केवल सरोवरमात्र हो तो दोनों स्थानोंके वर्णनमें एकता आ सकती है।

हृदयसे आकाशगङ्गाके तटपर जा रही थीं। उस समय नूतन यौवनसे सम्पन्न तथा रत्नमय अलंकारोंसे विभूषित उन सुन्दर दाँतवाली, परम कोमलाङ्गी महासती शचीपर नहुषकी दृष्टि पड़ी। उन्हें देखते ही नहुषके मनमें दूषित वृत्ति जाग उठी। उसने शचीके समक्ष विनयपूर्वक अपनी कुत्सित वासनाकी पूर्तिके लिये प्रस्ताव रखा।

इसपर शचीने कहा—बेटा! मेरी बात सुनो। महाराज! तुम प्रजाके भयका भञ्जन करनेवाले हो। राजा समस्त प्रजाका पालक पिता होता है और वह सबकी भयसे रक्षा करता है। इन दिनों महेन्द्र राज्यलक्ष्मीसे भ्रष्ट हो गये हैं और तुम स्वर्गमें राजाके पदपर प्रतिष्ठित हुए हो। जो राजा होता है, वह निश्चय ही प्रजाजनोंका पालक पिता है। गुरुपत्नी, राजपत्नी, देवपत्नी, पुत्रवधू, माताकी बहिन (मौसी), पिताकी बहिन (बूआ), शिष्यपत्नी, भृत्यपत्नी, मामी, पिताकी पत्नी (माता और विमाता), भाईकी पत्नी, सास, बहिन, बेटी, गर्भमें धारण करनेवाली (जन्मदात्री) तथा इष्टदेवी—ये पुरुषकी सोलह माताएँ हैं*। तुम मनुष्य हो और मैं देवताकी पत्नी हूँ; अतः तुम्हारी वेदसम्मत माता हुई। बेटा! यदि माँके साथ रमण करना चाहते हो तो माता अदितिके पास जाओ। वत्स! सब पापियोंके उद्धारका उपाय है; परंतु मातृगामियोंके लिये कोई उपाय नहीं है। वे ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त कुम्भीपाक नरकमें पकाये जाते हैं। तत्पश्चात् सात कल्पोंतक कीड़े होते हैं। फिर सात जन्मोंतक कोढ़ी और म्लेच्छ होते हैं। उनका कदापि उद्धार नहीं होता; ऐसा ब्रह्माजीका कथन है। आङ्गिरस स्मृति कहती है कि वेदोंमें उनके लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं है। निश्चय ही संसारी जीवोंके लिये स्वर्गकी सम्पत्तिका भोग ही सुख है; परंतु मुमुक्षुओंके लिये मोक्ष, तपस्वीजनोंके लिये तप, ब्राह्मणोंके लिये ब्राह्मणत्व, मुनियोंके लिये मौन, वैदिकोंके लिये वेदाभ्यास, कवियोंके लिये काव्य-वर्णन तथा वैष्णवोंके लिये भगवान् विष्णुका दास्य ही परम सुख है। वे विष्णु-भक्तिके रसास्वादनको ही परम सुख मानते हैं। वैष्णवजन तो विष्णु-भक्तिको छोड़कर मुक्तिको भी लेनेकी इच्छा नहीं करते। राजेन्द्र! तुम चक्रवर्ती राजाओंके प्रकाशमान कुलमें उत्पन्न हुए हो। अनेक जन्मोंके पुण्यसे तुमने भारतवर्षमें जन्म पाया है। चन्द्रवंशी नरेशरूपी कमलोंके विकासके लिये तुम ग्रीष्मकालकी दोपहरीके तेजस्वी सूर्यकी भाँति प्रकट हुए हो। समस्त आश्रमोंमें स्वधर्मका पालन ही उत्तम यशका कारण होता है। स्वधर्महीन मूढ़ मानव नरकमें गिरते हैं।

तीनों संध्याओंके समय श्रीहरिकी पूजा ब्राह्मणका अपना धर्म है। भगवच्चरणोदकका पान तथा भगवान्‌के नैवेद्यका भक्षण उनके लिये अमृतसे भी बढ़कर है। नरेश्वर! जो अन्न और जल भगवान्‌को समर्पित नहीं किया गया, वह मल-मूत्रके समान है। यदि ब्राह्मण उसे खाते हैं तो वे सब-के-सब सूअर होते हैं। ब्राह्मण आजीवन भगवान्‌के नैवेद्यका भोजन करें; परंतु एकादशीको भोजन न करें। पूर्णतः उपवास करें। इसी तरह कृष्ण-जन्माष्टमी, शिवरात्रि तथा रामनवमी आदि पुण्य वासरोंको भी उन्हें निश्चय ही यत्नपूर्वक उपवास करना चाहिये। ब्रह्माजीने जो ब्राह्मणोंका स्वधर्म बताया है; वह कहा गया।

नरेश्वर! पतिव्रताओंका व्रत पतिसेवा है।

* यो राजा स पिता पाता प्रजानामेव निश्चितम्॥

गुरुपत्नी राजपत्नी देवपत्नी तथा वधूः। पित्रोः स्वसा शिष्यपत्नी भृत्यपत्नी च मातुली॥
पितृपत्नी भ्रातृपत्नी श्वश्रूश्च भगिनी सुता। गर्भधात्रीष्टदेवी च पुंसः षोडश मातरः॥
(५९। ५४—५६)

वही उनके लिये उत्तम तप है। पर-पुरुष पतिव्रताओंके लिये पुत्रतुल्य है; यही नारियोंका धर्म है। राजालोग जैसे प्रजाका औरस पुत्रोंकी भाँति पालन करते हैं, उसी प्रकार वे प्रजावर्गकी स्त्रियोंको भी माताके समान देखते हैं। विष्णुकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ करते और देवताओं एवं ब्राह्मणोंकी सेवामें लगे रहते हैं। दुष्टोंका निवारण और सत्पुरुषोंका पालन करते हैं। पूर्वकालमें ब्रह्माजीने क्षत्रियोंका यही धर्म बताया था। वाणिज्य और धर्मसंग्रह यह वैश्योंका अपना धर्म है। ब्राह्मणोंकी सेवा शूद्रोंका परम धर्म निश्चित किया गया है। राजन्! सब कुछ भगवान् श्रीहरिको समर्पण कर देना संन्यासियोंका धर्म है। संन्यासी एकमात्र गेरुआ वस्त्र, दण्ड और मिट्टीका कमण्डलु धारण करता है। सर्वत्र समान दृष्टि रखता और सदा श्रीनारायणका स्मरण करता है। नित्य भ्रमण करता है। किसीके घरमें नहीं टिकता और लोभवश किसीको विद्या और मन्त्रका उपदेश नहीं देता। संन्यासी अपने लिये आश्रम नहीं बनाता। दूसरी किसी वासनाको मनमें स्थान नहीं देता; दूसरे किसीका साथ नहीं करता और आसक्ति एवं मोहसे दूर रहता है। वह लोभवश स्वादिष्ट भोजन नहीं करता, स्त्रीका मुख नहीं देखता तथा व्रतमें अटल रहकर किसी गृहस्थ पुरुषसे मनचाही भोज्य वस्तुके लिये याचना भी नहीं करता। ब्रह्माजीने यही संन्यासियोंका धर्म बताया है। बेटा! यह तुम्हें धर्मकी बात बतायी है। अब तुम सुखपूर्वक अपने स्थानको जाओ। ऐसा कहकर मार्गमें मिली हुई इन्द्राणी चुप हो रहीं और राजा नहुष गर्दन टेढ़ी करके उनसे बोला।

नहुषने कहा—देवि! तुमने जो कुछ कहा है, वह सब उलटी बात है। यथार्थ वैदिक धर्म क्या है? यह मैं बताता हूँ, सुनो। सुरसुन्दरि! इसमें संदेह नहीं कि सबको अपने कर्मोंका फल भोगना पड़ता है; परंतु स्वर्ग, पाताल तथा दूसरे किसी द्वीपमें जो कर्म किये जाते हैं, उनका फल नहीं भोगना पड़ता। पुण्य क्षेत्र भारतमें शुभाशुभ कर्म करके कर्मी मनुष्य उस कर्मके बन्धनमें बँधकर परलोकमें उसके फलको भोगता है। हिमालयसे लेकर दक्षिण समुद्रतकका पवित्र देश 'भारत' कहा गया है। यह सब स्थानोंमें श्रेष्ठ तथा मुनियोंकी तपोभूमि है। वहाँ जन्म लेकर जीव भगवान् विष्णुकी मायासे वञ्चित हो सदा विषय-सेवन करता है और श्रीहरिकी सेवाको भुला देता है। जो भारतवर्षमें महान् पुण्य करता है, वह पुण्यात्मा पुरुष स्वर्गको जाता है। वहाँ स्वर्गीय कन्याओंको अपनाकर चिरकालतक उनके साथ आनन्द भोगता है। मनुष्य मानव-शरीरका त्याग करके स्वर्गमें आता है; किंतु सुन्दरि! मैं अपने शरीरके साथ यहाँ आया हूँ। देखो, मेरा कैसा पुण्य है? अनेक जन्मोंके पुण्यसे मैं अभीष्ट स्वर्गमें आया हूँ। तदनन्तर न जाने किस पुण्यसे तुमसे मेरा साक्षात्कार हुआ है। यह कर्मका स्थान नहीं, अपने कर्मोंके भोगका स्थान है। यों कहकर कामासक्त नहुषने फिर बहुत-सी युक्तियोंके द्वारा पुनः अपने उसी पापपूर्ण प्रस्तावको दुहराया।

तब शची बोलीं—हाय! इस विवेकशून्य, कर्तव्याकर्तव्यको न जाननेवाले, मूढ़, कामातुर पुरुषकी कितनी बातें आज मुझे सुननी पड़ेंगी! कामने जिनके चित्तको चुरा लिया है, वे विवेकशून्य काममत्त कामी तथा मधुमत्त एवं सुरामत्त मनुष्य अपनी मौतको भी नहीं गिनते। ओ मतवाले नरेश! आज मुझे छोड़ दे। मैं तेरे लिये माताके समान और रजस्वला हूँ। आज मेरी ऋतुका प्रथम दिन है। पहले दिन रजस्वला स्त्री चाण्डालीके समान मानी जाती है। दूसरे दिन म्लेच्छा और तीसरे दिन धोबिनके समान होती है। चौथे दिन वह अपने पतिके लिये शुद्ध होती है; परंतु देवकार्य और पितृकार्यके लिये

वह उस दिन भी शुद्ध नहीं मानी जाती। दूसरेके लिये वह उस दिन असत् शूद्राके समान होती है। जो पहले दिन अपनी रजस्वला पत्नीके साथ समागम करता है, वह ब्रह्महत्याके चौथे अंशका भागी होता है, इसमें संशय नहीं है। वह पुरुष देवकर्म तथा पितृकर्ममें सम्मिलित होने योग्य नहीं रह जाता। वह लोगोंमें अधम, निन्दित और अपयशका भागी समझा जाता है। जो दूसरे दिन रजस्वला स्त्रीके साथ कामभावसे समागम करता है, उसे अवश्य ही गो-हत्याका पाप लगता है। वह आजीवन देवता, पितर और ब्राह्मणकी पूजाके लिये अपना अधिकार खो बैठता है, मनुष्यतासे गिर जाता है तथा कलङ्कित हो जाता है। जो तीसरे दिन रजस्वला पत्नीके साथ समागम करता है, वह मूढ़ भ्रूण-हत्याका भागी होता है; इसमें संशय नहीं है। पहले बताये हुए लोगोंकी भाँति वह भी पतित होकर सम्पूर्ण कर्मोंका अनधिकारी हो जाता है। चौथे दिन रजस्वला असत् शूद्रा कही जाती है; अतः विद्वान् पुरुष उस दिन भी उसके पास न जाय। मूढ़! मैं तेरी माता हूँ! यदि तू माताको भी बलपूर्वक ग्रहण करना चाहता है तो आज छोड़ दे। ऋतुकाल बीत जानेपर जैसी तेरी मर्जी हो, करना।

इतनेपर भी नहुष नहीं माना और बोला—'देवरमणी सदा ही शुद्ध होती है। तुम अपने घर चलो। मैं अभी आता हूँ'—यों कहकर राजा नहुष प्रसन्नतापूर्वक रत्नमय रथपर आरूढ़ हो नन्दनवनमें शचीके भवनकी ओर गया; परंतु शची अपने घरमें नहीं लौटी। वह सीधे गुरु बृहस्पतिके घर चली गयी। वहाँ जाकर उसने देखा गुरुदेव कुशासनपर विराजमान हैं। तारादेवी उनके चरणारविन्दोंकी सेवा कर रही हैं। वे ब्रह्मतेजसे प्रकाशमान हैं और हाथमें जपमाला लिये अपने अभीष्ट देव श्रीकृष्णके नामका निरन्तर जप कर रहे हैं। वे श्रीकृष्ण सबसे उत्कृष्ट, परमानन्दमय, परमात्मा एवं ईश्वर हैं। निर्गुण, निरीह, स्वतन्त्र, प्रकृतिसे परे, स्वेच्छामय परब्रह्म हैं तथा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही शरीर धारण करते हैं। उनके चिन्तनमें लगे और नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए गुरुदेवको शचीने धरतीपर माथा टेककर प्रणाम किया। उस समय भक्तिके समुद्रमें मग्न हुई शची रोती और आँखोंसे आँसू बहाती थी। साथ ही वह शोक-सागरमें भी डूब रही थी। भयभीत शची व्यथित-हृदयसे अपने ब्रह्मनिष्ठ गुरु कृपानिधान बृहस्पतिकी स्तुति करने लगी।

शची बोली—महाभाग! मैं भयभीत हो आपकी शरणमें आयी हूँ। आप ईश्वर हैं और मैं शोकसागरमें डूबी हुई आपकी दासी हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। गुरु असमर्थ हो या समर्थ, बलवान् हो या निर्बल, वह अपने शिष्यों, पत्नी तथा पुत्रोंपर सदा शासन करनेमें समर्थ है। प्रभो! आपने अपने शिष्यको उसके राज्यसे दूर कर दिया। बहुत दिन हुए, अब तो उसके दोषकी शान्ति हो गयी होगी। अतः कृपा कीजिये। कृपानिधे! मैं अनाथ हूँ। मेरे लिये सब दिशाएँ सूनी हो गयी हैं। अमरावतीपुरी भी सूनी है तथा मेरा निवासस्थान भी सब प्रकारकी सम्पत्तियोंसे शून्य है। मेरी इस अवस्थापर दृष्टिपात कीजिये और मुझे संकटसे बचाइये। मुझे एक डाकू अपना ग्रास बनाना चाहता है। आप मेरी रक्षा कीजिये। अपने किङ्कर देवराजको यहाँ ले आइये। चरणोंकी धूल देकर उन्हें शुभाशीर्वादसे अनुगृहीत कीजिये।

समस्त गुरुओंमें जन्मदाता पिता श्रेष्ठ गुरु माने गये हैं। पिताकी अपेक्षा माता सौगुनी अधिक पूजनीया, वन्दनीया तथा वरिष्ठ है; परंतु जो विद्यादाता, मन्त्रदाता, ज्ञानदाता और हरिभक्ति प्रदान करनेवाले गुरु हैं, वे मातासे भी सौगुने पूजनीय, वन्दनीय और सेव्य हैं। जिन्होंने

अज्ञानरूपी तिमिर (रतौंधी)-रोगसे अन्धे हुए मनुष्यकी दृष्टिको ज्ञानाञ्जनकी शलाकासे खोल दिया है; उन श्रीगुरुदेवको नमस्कार है। जन्मदाता, अन्नदाता, माता, पिता, अन्य गुरु जीवको घोर संसारसागरसे पार करनेमें समर्थ नहीं हैं। गुरु विष्णु हैं, गुरु ब्रह्मा हैं, गुरु महेश्वरदेव हैं, गुरु धर्म हैं, गुरु शेषनाग हैं और गुरु सर्वात्मा निर्गुण श्रीकृष्ण हैं; गुरु सम्पूर्ण तीर्थ, आश्रम तथा देवालय हैं। गुरु सम्पूर्ण देवस्वरूप तथा साक्षात् श्रीहरि हैं। इष्टदेवके रुष्ट हो जानेपर गुरुदेव अपने शिष्यकी रक्षा कर सकते हैं; किंतु गुरुके रुष्ट हो जानेपर इष्टदेव उसकी रक्षा नहीं कर सकते। जिसपर सम्पूर्ण ग्रह, देवता और ब्राह्मण रुष्ट हो जाते हैं, उसीपर गुरुदेव रुष्ट होते हैं; क्योंकि गुरु ही देवता हैं। आत्मा (शरीर), पुत्र, धन और पत्नी भी गुरुसे बढ़कर प्रिय नहीं हैं। धर्म, तप, सत्य और पुण्य भी गुरुसे अधिक प्रिय नहीं हैं। गुरुसे बढ़कर शासक और बन्धु दूसरा कोई नहीं है। शिष्योंके लिये सदा गुरु ही शासक, राजा और देवता हैं। अन्नदाता जबतक अन्न देनेमें समर्थ है, तभीतक वह शासक होता है; परंतु गुरु जन्म-जन्ममें शिष्योंके शासक होते हैं। मन्त्र, विद्या, गुरु और देवता—ये पतिकी भाँति पूर्वजन्मके अनुसार ही प्राप्त होते हैं। प्रत्येक जन्ममें गुरुका सम्बन्ध होनेसे उनका स्थान सबसे ऊपर है। पितारूप गुरु जिस जन्ममें जन्म देते हैं, उसी जन्ममें वन्दनीय होते हैं। माता तथा अन्य गुरुओंकी भी यही स्थिति है; परंतु ज्ञानदाता गुरु प्रत्येक जन्ममें वन्दनीय हैं। ब्रह्मन्! आप ब्राह्मणोंमें वरिष्ठ, तपस्वी जनोंमें गरिष्ठ तथा समस्त धर्मात्माओंमें उत्तम धर्मिष्ठ एवं ब्रह्मनिष्ठ ब्रह्मवेत्ता हैं। मुनिश्रेष्ठ! अब आप मुझपर और इन्द्रपर संतुष्ट हों। आपके संतुष्ट होनेपर ही ग्रह और देवता सदा संतुष्ट रहते हैं।

ब्रह्मन्! ऐसा कहकर शची फिर उच्चस्वरसे रोने लगी। उसका रोना देखकर तारादेवी भी फूट-फूटकर रोने लगीं। तारा अपने पतिके चरणोंपर गिर पड़ीं और बार-बार यह कहकर रोने लगीं कि आप इन्द्रके अपराधको क्षमा करें। तब बृहस्पतिजी संतुष्ट हो तारासे बोले।

गुरुने कहा—तारे! उठो। शचीका सब कुछ मङ्गलमय होगा, मेरे आशीर्वादसे यह अपने पति महेन्द्रको शीघ्र ही प्राप्त कर लेगी।

ऐसा कहकर बृहस्पतिजी चुप हो गये। तारा पुनः उनके चरणोंमें गिरीं और बार-बार रोयीं। फिर ताराने शचीको पकड़कर अपने हृदयसे लगा लिया और उसे नाना प्रकारके आध्यात्मिक—ज्ञानसम्बन्धी उत्तम वचन सुनाकर समझाया एवं धीरज बँधाया।

(अध्याय ५६—५९)

बृहस्पतिका शचीको आश्वासन एवं आशीर्वाद देना, नहुषका सप्तर्षियोंको वाहन बनाना और दुर्वासाके शापसे अजगर होना, बृहस्पतिका इन्द्रको बुलाकर पुनः सिंहासनपर बिठाना तथा गौतमसे इन्द्र और अहल्याको शापकी प्राप्ति

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! शचीद्वारा किये गये स्तोत्रको सुनकर बृहस्पति बहुत संतुष्ट हुए और शान्तभावसे इन्द्रपत्नी शचीके प्रति मधुर वाणीमें बोले।

बृहस्पतिने कहा—बेटी! सारा भय छोड़ दो। मेरे रहते तुम्हें भय किस बातका है? शोभने! मेरे लिये जैसे कचकी पत्नी (पुत्रवधू) रक्षणीय है, उसी प्रकार तुम भी हो। जो स्थान पुत्रका

है, वही शिष्यका भी है। तर्पण, पिण्डदान, पालन और परितोषण—इन सभी कर्मोंके लिये पुत्र और शिष्यमें कोई भेद नहीं है। जैसे पुत्र पिताके मरनेपर उसके लिये अग्निदाता होता है, अवश्य उसी तरह शिष्य गुरुके लिये अग्निप्रदाता कहा गया है। यह बात कण्वशाखामें ब्रह्माजीने कही है। पिता, माता, गुरु, पत्नी, छोटा बालक, अनाथ एवं कुटुम्बीजन—ये पुरुषमात्रसे नित्य पोषण पानेके योग्य हैं, ऐसा ब्रह्माजीका कथन है*। जो इनका पोषण नहीं करता उसके शरीरके भस्म होनेतक उसे सूतक (अशौच)-का भागी होना पड़ता है। वह जीते-जी देवयज्ञ तथा पितृयज्ञमें कर्म करनेका अधिकारी नहीं रहता है—ऐसा महेश्वरका कथन है। जो माता, पिता और गुरुके प्रति मानव-बुद्धि रखता है, उसको सर्वत्र अयश प्राप्त होता है और उसे पग-पगपर विघ्नका ही सामना करना पड़ता है। जो सम्पत्तिसे मतवाला होकर अपने गुरुका अपमान करता है, उसका शीघ्र ही सर्वनाश हो जाता है; यह सुनिश्चित बात है। अपनी सभामें मुझे देखकर इन्द्र आसनसे नहीं उठे थे, उसीका फल इस समय भोग रहे हैं। गुरुके अपमानका शीघ्र ही जो कटु फल प्राप्त हुआ, उसे तुम अपनी आँखों देख लो। अब मैं इन्द्रको शापसे छुड़ाऊँगा और निश्चय ही तुम्हारी रक्षा करूँगा। जो शासन और संरक्षण दोनों ही कर सकता हो, वही गुरु कहलाता है। जो हृदयसे शुद्ध है अर्थात् जिसके हृदयमें कलुषित भाव नहीं पैदा हुआ है, उस नारीका सतीत्व नष्ट नहीं होता। परंतु जिसके मनमें विकल्प है, उसका धर्म नष्ट हो जाता है। पतिव्रते! तुम्हारा दुर्गाजीके समान प्रभाव बढ़ेगा। तुम्हारी प्रतिष्ठा और यश लक्ष्मीजीके समान होंगे। सौभाग्य और पतिविषयक प्रेम श्रीराधिकाके समान होगा। स्वामीके प्रति गौरव, मान, प्रीति तथा प्रधानताका भाव भी तुममें श्रीराधाके ही सदृश होगा। रोहिणीके समान तुममें पतिकी अपेक्षा-बुद्धि होगी। तुम भारतीके समान पूजनीया तथा सावित्रीके तुल्य सदा शुद्धा एवं उपमारहित होओगी।

बृहस्पतिजी ऐसा कह ही रहे थे कि नहुषके दूतने वहाँ आकर शचीसे नन्दनवनमें चलनेके लिये कहा। यह सुनते ही बृहस्पतिजीका सारा शरीर क्रोधसे काँपने लगा और उनकी आँखें लाल हो गयीं। वे उस दूतसे बोले।

गुरुने कहा—दूत! तू जाकर नहुषसे कह दे कि 'महाराज! यदि तुम शचीका उपभोग करना चाहते हो तो एक ऐसी सवारीपर चढ़कर रातमें आना, जिसका आजसे पहले किसीने उपयोग न किया हो। सप्तर्षियोंके कंधोंपर अपनी सुन्दर शिविका (पालकी) रख उत्तम वेशभूषासे सज-धजकर उसीपर आरूढ़ हो तुम्हें यहाँतक यात्रा करनी चाहिये।'

बृहस्पतिजीकी बात सुनकर दूतने नहुषके पास जा उनका संदेश कह सुनाया। सुनकर नहुष हँस पड़ा और अपने सेवकसे बोला—'जाओ, जाओ, जल्दी जाओ और सप्तर्षियोंको यहाँ बुला लाओ। उन सबके साथ मिलकर कोई उपाय करूँगा। तुम अभी जाओ।'

राजाका आदेश पाकर दूत सप्तर्षियोंके समीप गया और नहुषने जो कुछ कहा था, वह सब उसने उन सबसे कह सुनाया। दूतकी बात सुनकर सप्तर्षि प्रसन्नतापूर्वक नहुषके पास गये। उन

---

* पिता माता गुरुर्भार्या शिशुश्चानाथबान्धवाः। एते पुंसां नित्यपोष्या इत्याह कमलोद्भवः॥ (६०।५)

सबको आया देख राजाने प्रणाम किया और आदरपूर्वक कहा।

नहुष बोला—आप लोग ब्रह्माजीके पुत्र हैं, ब्रह्मतेजसे प्रकाशित होते हैं और सदा ब्रह्माजीके समान ही भक्तवत्सल हैं। निरन्तर भगवान् नारायणकी उपासनामें लगे रहते हैं। शुद्ध सत्त्व ही आपका स्वरूप है। आप मोह और मात्सर्यसे रहित हैं। दर्प और अहंकार आपको छू नहीं सके हैं। आप सब लोग सदा भगवान् नारायणके समान तेजस्वी और यशस्वी हैं। गुण, कृपा, प्रेम और वरदान सभी दृष्टियोंसे निश्चय ही आप श्रीहरिके तुल्य हैं।

ऐसा कहकर राजा उनके चरणोंमें प्रणाम और स्तुति करने लगा। राजाको कातर हुआ देख वे परम हितैषी ऋषि उससे बोले।

ऋषियोंने कहा—बेटा! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, उसके अनुसार वर माँगो; हम सब कुछ देनेमें समर्थ हैं। हमारे लिये कुछ भी असाध्य नहीं है। इन्द्रपद, मनुका पद, दीर्घायु, सातों द्वीपोंका प्रभुत्व, चिरकालतक बना रहनेवाला अतिशय सुख, सम्पूर्ण सिद्धियाँ, परम दुर्लभ समस्त ऐश्वर्य तथा जो तपस्यासे भी नहीं मिल सकती, वह हरिभक्ति अथवा मुक्ति भी हम तुम्हें दे सकते हैं। वत्स! बोलो, इस समय तुम्हें किस वस्तुकी इच्छा है? यह सब तुम्हें देकर ही हम तपस्याके लिये जायँगे। जो क्षण श्रीकृष्णकी आराधनाके बिना व्यतीत होता है, वह लाख युगोंके समान है अर्थात् श्रीकृष्ण-भजनके बिना यदि एक क्षण भी व्यर्थ बीता तो समझना चाहिये कि हमारे एक लाख युग व्यर्थ बीत गये। जो दिन श्रीहरिके ध्यान और सेवनसे शून्य रह गया, वही सबसे बड़ा दुर्दिन है। जो मनुष्य श्रीहरिकी सेवा छोड़कर किसी दूसरे विषयको पानेकी इच्छा रखता है, वह मनोवाञ्छित अमृतको त्यागकर अपने ही विनाशके लिये मानो विष खाता है*। ब्रह्म, शिव, धर्म, विष्णु, महाविष्णु (महानारायण), गणेश, सूर्य, शेष और सनकादि मुनि—ये दिन-रात प्रसन्नतापूर्वक जिनके चरणकमलोंका चिन्तन करते रहते हैं, उन जन्म, मृत्यु और जरारूप व्याधिको हर लेनेवाले श्रीकृष्णमें हम लोग सदा अनुरक्त रहते हैं।

सप्तर्षियोंकी यह बात सुनकर राजेश्वर नहुष लज्जित हो गया। उसका सिर झुक गया, तथापि मायासे मोहितचित्त होनेके कारण वह बोला।

नहुषने कहा—महर्षियो! आप लोग भक्तवत्सल हैं और सब कुछ देनेकी शक्ति रखते हैं। इस समय मैं शचीको पाना चाहता हूँ; अतः शीघ्र ही मुझे शचीका दान दीजिये। महासती शची ऐसे पतिको पाना चाहती है, जिसके वाहन सप्तर्षि हों। यही मेरा वर है। आप लोग शीघ्र ही मेरे अभीष्ट कार्यको सम्पन्न करें।

नारद! नहुषकी बात सुनकर सब मुनि कौतूहलवश एक-दूसरेको देखते हुए जोर-जोरसे हँसने लगे। राजाको भगवान् विष्णुकी मायासे वेष्टित एवं मोहित मानकर उन दीनवत्सल सप्तर्षियोंने कृपापूर्वक राजाका वाहन बननेकी प्रतिज्ञा कर ली। उसकी शिबिका मुक्ता और माणिक्यसे सुशोभित थी। ऋषियोंने उसे कंधेपर उठा लिया और राजा नहुष सुन्दर वेष एवं रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित हो उस शिबिकासे चला। उस वाहनद्वारा अभीष्ट स्थानपर पहुँचनेमें अधिक विलम्ब होता देख राजा सप्तर्षियोंको डाँटने-

---

* युगलक्षसमं यच्च क्षणं कृष्णार्चनं विना। तद्दिनं दुर्दिनं यत्तद्ध्यानसेवनवर्जितम्॥
विना तत्सेवनं यो हि विषयान्यं च वाञ्छति। विषमत्ति प्रणाशाय विहायामृतमीप्सितम्॥
(६०। ३२-३३)

फटकारने लगा। शिविकाके उस मार्गपर सबसे आगे चलते थे दुर्वासा। उन्हें राजाकी फटकारपर क्रोध आ गया और वे शाप देते हुए बोले—'मूढ़चित्त महाराज! तुम महान् अजगर होकर नीचे गिर पड़ो। धर्मपुत्र युधिष्ठिरके दर्शन होनेसे तुम अजगरकी योनिसे छूट जाओगे। तत्पश्चात् रत्नमय विमानसे वैकुण्ठमें जाकर भगवान् विष्णुका सेवन करोगे। किया हुआ कर्म कभी निष्फल नहीं होता। तुमने श्रीहरिकी आराधना की है; अतः शापसे छूटनेपर तुम्हें उसका फल अवश्य मिलेगा।'

महामुने! यों कहकर वे सब श्रेष्ठ मुनि हँसते हुए चले गये और राजा उनके शापसे सर्प होकर गिर पड़ा। यह समाचार सुनकर शची गुरुदेवको नमस्कार करके अमरावतीमें चली गयी और बृहस्पतिजी शीघ्र उस स्थानपर गये, जहाँ इन्द्र कमल-नालमें निवास करते थे। सरोवरके निकट जाकर कृपानिधान गुरुने अत्यन्त प्रसन्नवदन हो कृपापूर्वक देवराजको पुकारा।

बृहस्पति बोले—वत्स! आओ। मेरे रहते तुम्हें क्या भय हो सकता है? भय छोड़ो और यहाँ आओ। मैं तुम्हारा गुरु बृहस्पति हूँ।

अपने गुरुका स्वर सुनकर महेन्द्रका मन प्रसन्नतासे खिल उठा। वे सूक्ष्मरूपको छोड़कर अपने ही रूपसे उनके निकट आये। उन्होंने भक्तिभावसे गुरुके चरणोंमें दण्डकी भाँति पड़कर सिरसे उन्हें प्रणाम किया और रोने लगे। उस समय महाभयभीत एवं रोते हुए इन्द्रको गुरुने सानन्द हृदयसे लगा लिया। फिर उनसे प्रायश्चित्तके लिये सोमयाग करवाकर उन्हें रमणीय रत्नमय सिंहासनपर बिठाया और पहलेसे चौगुना उत्तम ऐश्वर्य प्रदान किया। तदनन्तर सब देवता आकर उनकी सेवा करने लगे। शचीने पुनः अपने पति देवराज इन्द्रको प्राप्त कर लिया और निवासमन्दिरमें फूलोंकी सेजपर वह उनके साथ आनन्दपूर्वक सुखका अनुभव करने लगी। वत्स! इस प्रकार मैंने इन्द्रके दर्पके भञ्जन तथा शचीके सतीत्वकी रक्षाका प्रसङ्ग कह सुनाया। अब और क्या सुनना चाहते हो?

तदनन्तर नारदके पूछनेपर श्रीनारायणने इन्द्रदर्प-भङ्गके ही प्रसङ्गमें गौतमके द्वारा इन्द्रको शाप प्राप्त होनेकी बात बतायी। साथ ही यह भी कहा कि अहल्या पतिके शापसे पाषाण-शिला हो गयी। गौतमने शाप देकर अहल्यासे कहा—'जाओ, जाओ। तुम विशाल वनमें पाषाणरूपिणी हो जाओ। श्रीरामचन्द्रजीके चरणोंकी अंगुलिका स्पर्श पाकर तत्काल पवित्र हो जाओगी। उसी पुण्यसे फिर मुझे पाओगी और मेरे पास चली आओगी। प्रिये! इस समय तो विशाल वनमें ही जाओ।' ऐसा कहकर वे मुनि तपस्याके लिये चले गये।

(अध्याय ६०-६१)

अहल्याके उद्धार एवं श्रीराम-चरित्रका संक्षेपसे वर्णन

नारदजीने पूछा—महन्! दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामने किस युगमें और किस प्रकार गौतमपत्नी अहल्याको शापसे मुक्त किया? महाभाग! आप रामावतारकी मनोहर एवं सुखदायिनी कथा संक्षेपसे कहिये; मेरे मनमें उसे सुननेके लिये उत्कण्ठा हो रही है।

श्रीनारायणने कहा—नारद! त्रेतायुगमें ब्रह्माजीकी प्रार्थनासे साक्षात् भगवान् विष्णुने दशरथसे उनकी पत्नी कौसल्याके गर्भसे सानन्द जन्म ग्रहण किया। कैकेयीसे भरत हुए, जो रामके समान ही गुणवान् थे और सुमित्राके गर्भसे लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नका जन्म हुआ। वे दोनों ही

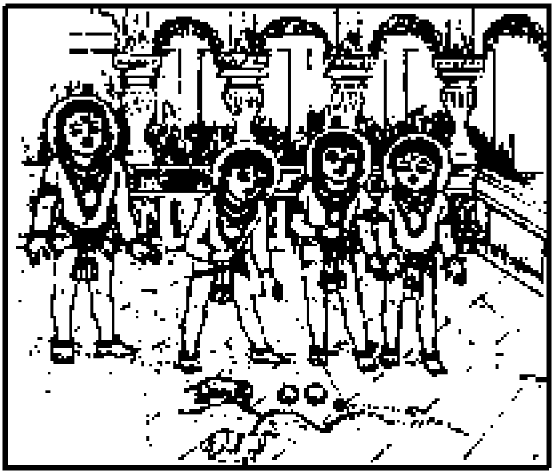

गुणोंके सागर थे। पिताद्वारा विश्वामित्रके साथ भेजे गये लक्ष्मणसहित श्रीराम सीताको प्राप्त करनेके उद्देश्यसे रमणीया मिथिलापुरीमें गये। उसी मार्गमें पाषाणमयी स्त्रीको देखकर जगदीश्वर श्रीरामने विश्वामित्रसे उसके शिला होनेका कारण पूछा। श्रीरामका प्रश्न सुनकर महातपस्वी धर्मात्मा मुनि विश्वामित्रने वहाँ सारा रहस्य उन्हें बताया। उनके मुँहसे अहल्याके शिला होनेका कारण सुनकर अखिल भुवन-पालन श्रीरामने अपने चरणकी एक अंगुलिसे उस शिलाका स्पर्श किया। उनका स्पर्श पाते ही अहल्या पद्मगन्धा सुन्दरी नारीके रूपमें परिणत हो गयी और श्रीरामको आशीर्वाद देकर वह पतिके घरमें चली गयी। पत्नीको पाकर गौतमने भी श्रीरामचन्द्रजीको शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तदनन्तर श्रीरामने मिथिलामें जाकर शिवका धनुष तोड़ा और सीताका पाणिग्रहण किया। सीतासे विवाह करके राजेन्द्र श्रीरामने परशुरामजीका दर्प चूर्ण किया और क्रीड़ा-कौतुक एवं मङ्गलाचारपूर्वक रमणीय अयोध्यापुरीको प्रस्थान किया। राजा दशरथने आदरपूर्वक सात तीर्थोंका जल मँगवाया और तत्काल ही मुनीश्वरोंको बुलाकर अपने पुत्र श्रीरामको राजा बनानेकी इच्छा की। श्रीराम सम्पूर्ण मङ्गलाचारसे सम्पन्न हो जब अधिवास-कर्म पूर्ण कर चुके, तब भरतकी माता कैकेयी ईर्ष्याजनित शोकसे विह्वल हो गयी। उसने राजा दशरथसे दो वर माँगे, जिन्हें देनेके लिये वे पहले प्रतिज्ञा कर चुके थे। उसने एक वरसे रामका वनवास माँगा और दूसरेके द्वारा भरतका राज्याभिषेक। महाराज दशरथ प्रेमसे मोहित होनेके कारण वर देना नहीं चाहते थे। यह देख श्रेष्ठ बुद्धिवाले श्रीराम धर्म और सत्यके भङ्ग होनेके भयसे महाराजसे बोले।

श्रीरामने कहा—तात! सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और झूठसे बड़ा कोई पातक नहीं है। गङ्गाके समान दूसरा तीर्थ नहीं है; श्रीकेशवसे बढ़कर कोई देवता नहीं है; धर्मसे श्रेष्ठ बन्धु नहीं है और धर्मसे बढ़कर धन नहीं है। धर्मसे अधिक प्रिय और उत्तम कौन है? अतः आप यत्नपूर्वक अपने धर्मकी रक्षा कीजिये। स्वधर्मकी रक्षा करनेपर सदा और सर्वत्र मङ्गल होता है।

यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और परम आदरकी प्राप्ति होती है*। मैं चौदह वर्षोंतक गृह-सुखका परित्याग करके धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा। जो इच्छा या अनिच्छासे सत्य प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह अशौचका भागी होता है और वह अशौच उसके शरीरके भस्म होनेतक बना रहता है। जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है। तदनन्तर मानव-योनिमें उत्पन्न हो वह सात जन्मोंतक गूँगा और कोढ़ी होता है।

ऐसा कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मणके साथ विशाल वनमें चले गये। मुने! इधर महाराज दशरथने पुत्रशोकसे अपने शरीरको त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वन-वनमें भ्रमण करने लगे। कालान्तरमें उस विशाल एवं घोर वनमें घूमती हुई रावणकी बहिन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने बड़े कौतूहलसे श्रीरामको देखा। उन्हें देखते ही वह कुलटा राक्षसी काम-वेदनासे पीड़ित हो गयी। उसके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वह मूर्च्छित हो गयी। फिर वह श्रीरामके पास गयी। शूर्पणखा सदा बने रहनेवाले यौवनसे युक्त, अत्यन्त प्रौढ़ और कामोन्मत्त थी। वह मनमें कामभाव ले श्रीरामसे मुस्कराती हुई बोली।

शूर्पणखाने कहा—हे राम! हे घनश्याम! हे रूपधाम! हे गुणसागर! मेरा हृदय आपमें अनुरक्त हो गया है। आप एकान्त स्थानमें मुझे स्वीकार कीजिये।

तदनन्तर श्रीराम तथा लक्ष्मणसे शूर्पणखाकी बातचीत हुई। अन्तमें लक्ष्मणने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी नाक काट ली। उसका भाई खर-दूषण बड़ा बलवान् था। उसने आकर युद्ध किया और लक्ष्मणके अस्त्रसे सेनासहित मारा जाकर यमलोकको चला गया। चौदह हजार राक्षसों तथा खर-दूषणको मारा गया देख शूर्पणखाने रावणको फटकारा और सारा समाचार बताकर वह तत्काल पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दुष्कर तपस्या करके उसने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किया। उस निराहार-तपस्विनी राक्षसीको दर्शन देकर सर्वज्ञ कृपासिन्धु ब्रह्माजीने उसके मनकी बात जान ली और इस प्रकार कहा।

ब्रह्माजी बोले—वरानने! श्रीराम दुर्लभ हैं। उन्हें तुम प्राप्त नहीं कर सकी हो। इसीलिये यह दुष्कर तपस्या कर रही हो। इसी तरह जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणको भी प्राप्त करनेमें तुम्हें सफलता नहीं मिली है; अतः उधरसे निराश होकर तुम तपस्यामें लगी हो। तुम्हारी इस तपस्याका फल तुम्हें दूसरे जन्ममें मिलेगा। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके भी ईश्वर तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सानन्द अपने धामको चले गये और शूर्पणखाने अपने शरीरको अग्निमें विसर्जित कर दिया। वही दूसरे जन्ममें कुब्जा हुई। शूर्पणखाके उकसानेसे मायावी राक्षसराज रावण क्रोधसे काँपने लगा। उसने मायाद्वारा सीताको हर लिया। सीताको आश्रममें न देख श्रीराम मूर्च्छित हो गये। तब उनके भाई लक्ष्मणने आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करके उन्हें सचेत किया। मुने! तत्पश्चात् वे

---

* न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम्। धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम्। यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
(६२। २१—२३)

यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और परम आदरकी प्राप्ति होती है*। मैं चौदह वर्षोंतक गृह-सुखका परित्याग करके धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा। जो इच्छा या अनिच्छासे सत्य प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह अशौचका भागी होता है और वह अशौच उसके शरीरके भस्म होनेतक बना रहता है। जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है। तदनन्तर मानव-योनिमें उत्पन्न हो वह सात जन्मोंतक गूँगा और कोढ़ी होता है।

ऐसा कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मणके साथ विशाल वनमें चले गये। मुने! इधर महाराज दशरथने पुत्रशोकसे अपने शरीरको त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वन-वनमें भ्रमण करने लगे। कालान्तरमें उस विशाल एवं घोर वनमें घूमती हुई रावणकी बहिन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने बड़े कौतूहलसे श्रीरामको देखा। उन्हें देखते ही वह कुलटा राक्षसी काम-वेदनासे पीड़ित हो गयी। उसके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वह मूर्च्छित हो गयी। फिर वह श्रीरामके पास गयी। शूर्पणखा सदा बने रहनेवाले यौवनसे युक्त, अत्यन्त प्रौढ़ और कामोन्मत्त थी। वह मनमें कामभाव ले श्रीरामसे मुस्कराती हुई बोली।

शूर्पणखाने कहा—हे राम! हे घनश्याम! हे रूपधाम! हे गुणसागर! मेरा हृदय आपमें अनुरक्त हो गया है। आप एकान्त स्थानमें मुझे स्वीकार कीजिये।

तदनन्तर श्रीराम तथा लक्ष्मणसे शूर्पणखाकी बातचीत हुई। अन्तमें लक्ष्मणने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी नाक काट ली। उसका भाई खर-दूषण बड़ा बलवान् था। उसने आकर युद्ध किया और लक्ष्मणके अस्त्रसे सेनासहित मारा जाकर यमलोकको चला गया। चौदह हजार राक्षसों तथा खर-दूषणको मारा गया देख शूर्पणखाने रावणको फटकारा और सारा समाचार बताकर वह तत्काल पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दुष्कर तपस्या करके उसने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किया। उस निराहार-तपस्विनी राक्षसीको दर्शन देकर सर्वज्ञ कृपासिन्धु ब्रह्माजीने उसके मनकी बात जान ली और इस प्रकार कहा।

ब्रह्माजी बोले—वरानने! श्रीराम दुर्लभ हैं। उन्हें तुम प्राप्त नहीं कर सकी हो। इसीलिये यह दुष्कर तपस्या कर रही हो। इसी तरह जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणको भी प्राप्त करनेमें तुम्हें सफलता नहीं मिली है; अतः उधरसे निराश होकर तुम तपस्यामें लगी हो। तुम्हारी इस तपस्याका फल तुम्हें दूसरे जन्ममें मिलेगा। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके भी ईश्वर तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सानन्द अपने धामको चले गये और शूर्पणखाने अपने शरीरको अग्निमें विसर्जित कर दिया। वही दूसरे जन्ममें कुब्जा हुई। शूर्पणखाके उकसानेसे मायावी राक्षसराज रावण क्रोधसे काँपने लगा। उसने मायाद्वारा सीताको हर लिया। सीताको आश्रममें न देख श्रीराम मूर्च्छित हो गये। तब उनके भाई लक्ष्मणने आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करके उन्हें सचेत किया। मुने! तत्पश्चात् वे

* न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम्। धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम्। यशस्तस्य सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
(६१। २१—२३)

यश, प्रतिष्ठा, प्रताप और परम आदरकी प्राप्ति होती है*। मैं चौदह वर्षोंतक गृह-सुखका परित्याग करके धर्मपूर्वक विचरता हुआ आपके सत्यकी रक्षाके लिये वनमें वास करूँगा। जो इच्छा या अनिच्छासे सत्य प्रतिज्ञा करके उसका पालन नहीं करता, वह अशौचका भागी होता है और वह अशौच उसके शरीरके भस्म होनेतक बना रहता है। जबतक चन्द्रमा और सूर्य रहते हैं, तबतक वह कुम्भीपाक नरकमें यातना भोगता है। तदनन्तर मानव-योनिमें उत्पन्न हो वह सात जन्मोंतक गूँगा और कोढ़ी होता है।

ऐसा कहकर श्रीराम वल्कल और जटा धारण करके सीता और लक्ष्मणके साथ विशाल वनमें चले गये। मुने! इधर महाराज दशरथने पुत्रशोकसे अपने शरीरको त्याग दिया। श्रीरामचन्द्रजी पिताके सत्यकी रक्षाके लिये वन-वनमें भ्रमण करने लगे। कालान्तरमें उस विशाल एवं घोर वनमें घूमती हुई रावणकी बहिन शूर्पणखा उधर आ निकली। उसने बड़े कौतूहलसे श्रीरामको देखा। उन्हें देखते ही वह कुलटा राक्षसी काम-वेदनासे पीड़ित हो गयी। उसके सारे अङ्गोंमें रोमाञ्च हो आया और वह मूर्च्छित हो गयी। फिर वह श्रीरामके पास गयी। शूर्पणखा सदा बने रहनेवाले यौवनसे युक्त, अत्यन्त प्रौढ़ और कामोन्मत्त थी। वह मनमें कामभाव ले श्रीरामसे मुस्कराती हुई बोली।

शूर्पणखाने कहा—हे राम! हे घनश्याम! हे रूपधाम! हे गुणसागर! मेरा हृदय आपमें अनुरक्त हो गया है। आप एकान्त स्थानमें मुझे स्वीकार कीजिये।

तदनन्तर श्रीराम तथा लक्ष्मणसे शूर्पणखाकी बातचीत हुई। अन्तमें लक्ष्मणने तीक्ष्ण धारवाले अर्धचन्द्राकार बाणसे उसकी नाक काट ली। उसका भाई खर-दूषण बड़ा बलवान् था। उसने आकर युद्ध किया और लक्ष्मणके अस्त्रसे सेनासहित मारा जाकर यमलोकको चला गया। चौदह हजार राक्षसों तथा खर-दूषणको मारा गया देख शूर्पणखाने रावणको फटकारा और सारा समाचार बताकर वह तत्काल पुष्करतीर्थमें चली गयी। वहाँ दुष्कर तपस्या करके उसने ब्रह्माजीसे वर प्राप्त किया। उस निराहार-तपस्विनी राक्षसीको दर्शन देकर सर्वज्ञ कृपासिन्धु ब्रह्माजीने उसके मनकी बात जान ली और इस प्रकार कहा।

ब्रह्माजी बोले—वरानने! श्रीराम दुर्लभ हैं। उन्हें तुम प्राप्त नहीं कर सकी हो। इसीलिये यह दुष्कर तपस्या कर रही हो। इसी तरह जितेन्द्रियोंमें श्रेष्ठ धर्मात्मा लक्ष्मणको भी प्राप्त करनेमें तुम्हें सफलता नहीं मिली है; अतः उधरसे निराश होकर तुम तपस्यामें लगी हो। तुम्हारी इस तपस्याका फल तुम्हें दूसरे जन्ममें मिलेगा। जो ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके भी ईश्वर तथा प्रकृतिसे भी परे हैं, उन भगवान् श्रीकृष्णको तुम पतिरूपमें प्राप्त करोगी।

ऐसा कहकर ब्रह्माजी सानन्द अपने धामको चले गये और शूर्पणखाने अपने शरीरको अग्निमें विसर्जित कर दिया। वही दूसरे जन्ममें कुब्जा हुई। शूर्पणखाके उकसानेसे मायावी राक्षसराज रावण क्रोधसे काँपने लगा। उसने मायाद्वारा सीताको हर लिया। सीताको आश्रममें न देख श्रीराम मूर्च्छित हो गये। तब उनके भाई लक्ष्मणने आध्यात्मिक ज्ञानकी चर्चा करके उन्हें सचेत किया। मुने! तत्पश्चात् वे

---

* न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्। न हि गङ्गासमं तीर्थं न देवः केशवात् परः॥
नास्ति धर्मात् परो बन्धुर्नास्ति धर्मात् परं धनम्। धर्मात् प्रियः परः को वा स्वधर्मं रक्ष यत्नतः॥
स्वधर्मे रक्षिते तात शश्वत् सर्वत्र मङ्गलम्। यशस्यं सुप्रतिष्ठा च प्रतापः पूजनं परम्॥
(६२। २१—२३)

जानकीकी खोजके लिये दिन-रात शोकार्त हो गहन वन, पर्वत, कन्दरा, नद, नदी और मुनियोंके आश्रमोंमें घूमने लगे। सुदीर्घ कालतक अन्वेषण करनेपर भी जब उन्हें जानकीका पता न चला, तब भगवान् श्रीरामने स्वयं ही जाकर वानरराज सुग्रीवके साथ मित्रता की और वालीको बाणोंसे मारकर उनका राज्य सुग्रीवको दे दिया। यह सब उन्होंने अपने मित्रके प्रति की गयी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये किया था। वानरराजने सीताका पता लगानेके लिये समस्त दिशाओंमें दूत भेजे और लक्ष्मणसहित श्रीराम सुग्रीवके यहाँ रहने लगे। श्रीरामने हनुमान्‌जीको प्रेमपूर्वक हृदयसे लगाकर उन्हें अपनी परम दुर्लभ पदधूलि प्रदान की और सीताके लिये पहचानके रूपमें श्रेष्ठ एवं सुन्दर रत्नमयी मुद्रिका उनके हाथमें देकर अपना शुभ संदेश भी प्रदान किया, जो सीताको जीवन-रक्षाका कारण बना। यह सब करनेके पश्चात् उन्होंने हनुमान्‌जीको उत्तम दक्षिण दिशामें भेजा। हनुमान्‌जी रुद्रकी कलासे प्रकट हुए थे। वे श्रीरामका संदेश ले सीताकी खोजके लिये लंकाको गये। वहाँ उन्होंने अशोकवाटिकामें सीताजीको देखा, जो शोकसे अत्यन्त कृश दिखायी देती थीं। अमावास्याको अत्यन्त क्षीण हुई चन्द्रकलाके समान वे उपवासके कारण बहुत ही दुबली-पतली हो गयी थीं और निरन्तर भक्तिपूर्वक 'राम-राम' का जप कर रही थीं। उनके सिरके बाल जटाओंका बोझ बन गये थे। अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति दमक रही थी। वे दिन-रात श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान किया करती थीं। शुद्ध भूमिपर सोती थीं। शुद्ध आचार-विचार तथा उत्तम व्रतका पालन करनेवाली पतिव्रता थीं। उनमें महालक्ष्मीके चिह्न विद्यमान थे। वे अपने तेजसे प्रकाशमान थीं। सम्पूर्ण तीर्थोंको पुण्य प्रदान करनेवाली थीं। उनमें दृष्टिमात्रसे समस्त भुवनोंको पवित्र करनेकी क्षमता थी। उस समय रोती हुई माता जानकीको देखकर पवननन्दन हनुमान्‌ने प्रसन्नतापूर्वक उनके हाथमें वह रत्नमयी मुद्रिका दे दी। धर्मात्मा वायुपुत्र सीताकी दशा देखकर उनके चरणकमलोंको पकड़कर रोने लगे। उन्होंने श्रीरामका वह संदेश सुनाया, जो सीताजीके जीवनकी रक्षा करनेवाला था।

हनुमान्‌जी बोले—मातः! समुद्रके उस पार श्रीराम और लक्ष्मण इस राक्षसपुरीपर चढ़ाई करनेके लिये तैयार खड़े हैं। बलवान् वानरराज सुग्रीव श्रीरामके मित्र हो गये हैं। श्रीरामने वालीका वध करके अपने मित्र सुग्रीवको निष्कण्टक राज्य दिया है। साथ ही उन्हें उनकी पत्नी भी प्राप्त करा दी है, जिसे पहले वालीने हर लिया था। सुग्रीवने भी धर्मतः तुम्हारे उद्धारकी प्रतिज्ञा की है। उनके समस्त वानर तुम्हें खोजनेके लिये सब ओर गये हैं। मुझसे तुम्हारा मङ्गलमय समाचार पा कमलनयन श्रीराम गहरे सागरपर सेतु बाँधकर शीघ्र यहाँ आ पहुँचेंगे और पापी रावणको उसके पुत्र तथा बान्धवोंसहित मारकर अविलम्ब तुम्हारा उद्धार करेंगे। आज तुम्हारे प्रसादसे इस रत्नमयी लंकाको मैं बेखटके जलाकर भस्म कर दूँगा। तुम मुस्कराती हुई मेरे इस पराक्रमको देखो। सुव्रते! मैं लंकाको वानरीके बच्चेकी भाँति समझता हूँ। समुद्रको मूत्रके समान और भूतलको पर्ईकी भाँति देखता हूँ। सेनासहित रावण मेरी दृष्टिमें चींटियोंके समूह-जैसा है। मैं आधे मुहूर्तमें अनायास ही उसका संहार कर सकता हूँ; परंतु इस समय श्रीरामकी प्रतिज्ञाकी रक्षाके लिये उसे नहीं मारूँगा। महाभागे! तुम स्वस्थ एवं निश्चिन्त हो जाओ। मेरी स्वामिनि! भयको त्याग दो।

वानरकी बात सुनकर सीता बारंबार फूट-फूटकर रोने लगीं। रामकी उन पतिव्रता पत्नीने भयभीत-सी होकर पूछा।

सीता बोलीं—वत्स! क्या मेरे दारुण शोकसागरसे पीड़ित श्रीराम अभी जीवित हैं? मेरे प्राणनाथ कौसल्यानन्दन सकुशल हैं? जानकीके जीवनबन्धु इस समय शोकसे कृशकाय होकर कैसे हो गये हैं? मेरे प्राणोंसे भी बढ़कर प्रियतम कैसे आहार करते हैं? वे क्या खाते हैं? क्या सचमुच समुद्रके उस पार स्वयं सीतापति विद्यमान हैं? मेरे प्रभु शोकसे नष्ट न होकर क्या सचमुच लंकापर चढ़ाईके लिये तैयार खड़े हैं? जो स्वामीके लिये सदा दु:खरूप ही रही है, उसी मुझ पापिनी सीताको क्या वे स्मरण करते हैं? मेरे स्वामीने मेरे लिये कितना दु:ख सहन किया है? जो पहले मिलनमें व्यवधान मानकर अपने कण्ठमें हार नहीं धारण करते थे, वे ही श्रीराम आज इतने दूर हैं! इस समय हम दोनोंके बीचमें सौ योजन विशाल समुद्र व्यवधान बनकर खड़ा है। क्या मैं कभी धर्म-कर्ममें संलग्न, धर्मिष्ठ, नितान्त शान्त करुणासागर प्रियतम भगवान् श्रीरामको देखूँगी? क्या पुन: प्रभुके चरणकमलोंकी सेवा कर सकूँगी? जो मूढ़ नारी पति-सेवासे वञ्चित है, उसका जीवन व्यर्थ है। जो मेरे धर्मपुत्र हैं और मेरे बिना शोकसागरमें मग्न हैं, मेरा अपहरण होनेसे जिनके अभिमानको गहरा आघात पहुँचा है, जो वीरोंमें श्रेष्ठ, धर्मात्मा और देवताके समान हैं; वे मेरे स्वामीके छोटे भाई देवर लक्ष्मण क्या सचमुच जीवित हैं? क्या यह सच है कि वे सदा मेरे उद्धारके लिये संनद्ध रहते हैं? क्या सचमुच प्राणोंसे भी अधिक प्रिय, धर्मात्मा, पुण्यात्मा तथा धन्यातिधन्य वत्स लक्ष्मणको मैं पुन: देखूँगी?

मुने! सीताका यह वचन सुन उन्हें शुभ प्रत्युत्तर दे हनुमान्‌ने खेल-खेलमें ही लंकाको जलाकर भस्म कर दिया। तदनन्तर वायुपुत्र कपिवर हनुमान् पुन: जनकनन्दिनीको धीरज दे वेगपूर्वक बिना किसी परिश्रमके उस स्थानपर जा पहुँचे, जहाँ कमलनयन श्रीरामचन्द्रजी विराजमान थे। वहाँ उन्होंने माता मिथिलेशकुमारीका सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सीताका मङ्गलमय समाचार सुनकर श्रीरामचन्द्रजी रो पड़े। लक्ष्मण और सुग्रीव भी फूट-फूटकर रोने लगे। नारद! उस समय महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न समस्त वानर भी रोदन करने लगे। देवर्षे! तदनन्तर समुद्रमें सेतु बाँधकर छोटे भाई और वानर-सेनासहित रघुकुलनन्दन श्रीरामने शीघ्र ही युद्धके लिये तैयार हो लंकापर चढ़ाई कर दी। ब्रह्मन्! वहाँ युद्ध करके श्रीरामने बन्धु-बान्धवोंसहित रावणको मार डाला और शुभ वेलामें सीताका वहाँसे उद्धार किया। फिर सत्यपरायणा सीताको पुष्पक विमानपर बिठाकर वे क्रीड़ाकौतुक एवं मङ्गलाचारके साथ शीघ्रतापूर्वक अयोध्याकी ओर प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर भगवान् रामने सीताको हृदयसे लगा क्रीड़ा की। फिर सीता और रामने तत्काल विरह-ज्वालाको त्याग दिया। भूमण्डलपर श्रीराम सातों द्वीपोंके स्वामी हुए। उनके शासनकालमें सारी पृथ्वी आधि-व्याधिसे रहित हो गयी। श्रीरामके दो धर्मात्मा पुत्र हुए—कुश और लव। उन दोनोंके पुत्रों और पौत्रोंसे सूर्यवंशी क्षत्रियोंका विस्तार हुआ। वत्स नारद! इस प्रकार मैंने तुमसे मङ्गलमय श्रीरामचरित्रका वर्णन किया है। यह सुख देनेवाला, मोक्ष प्रदान करनेवाला, सारतत्त्व तथा भवसागरसे पार होनेके लिये जहाज है। (अध्याय ६२)

कंसके द्वारा रातमें देखे हुए दुःस्वप्नोंका वर्णन और उससे अनिष्टकी आशङ्का, पुरोहित सत्यकका अरिष्ट-शान्तिके लिये धनुर्यज्ञका अनुष्ठान बताना, कंसका नन्दनन्दनको शत्रु बताना और उन्हें व्रजसे बुलानेके लिये वसुदेवजीको प्रेरित करना, वसुदेवजीके अस्वीकार करनेपर अक्रूरको वहाँ जानेकी आज्ञा देना, ऋषिगण तथा राजाओंका आगमन

भगवान् नारायण कहते हैं— नारद! इधर मथुरामें राजा कंस बुरे सपने देख विशेष चिन्तामें पड़कर अत्यन्त भयभीत हो उद्विग्न हो उठा। उसकी खाने-पीनेको रुचि जाती रही। उसके मनमें किसी प्रकारकी उत्सुकता नहीं रह गयी। वह अत्यन्त दुःखी हो पुत्र, मित्र, बन्धु-बान्धव तथा पुरोहितको सभामें बुलाकर उनसे इस प्रकार बोला।

कंसने कहा— मैंने आधी रातके समय जो बुरा सपना देखा है, वह बड़ा भयदायक है; इस सभामें बैठे हुए समस्त विद्वान्, बन्धु-बान्धव और पुरोहित उसे सुनें। मेरे नगरमें एक अत्यन्त वृद्धा और काले शरीरवाली स्त्री नाच कर रही है। वह लाल फूलोंकी माला पहने, लाल चन्दन लगाये तथा लाल वस्त्र धारण किये स्वभावतः अट्टहास

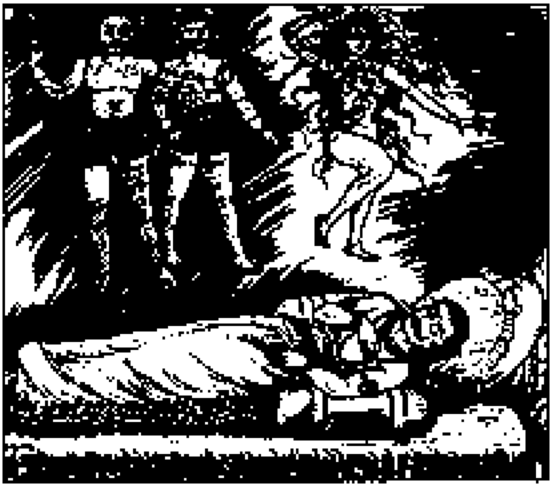

कर रही है। उसके एक हाथमें तीखी तलवार है और दूसरेमें भयानक खप्पर। वह जीभ लपलपाती हुई बड़ी भयंकर दिखायी देती है। इसी तरह एक दूसरी काली स्त्री है, जो काले कपड़े पहने हुई है। देखनेमें महाशूद्री विधवा जान पड़ती है। उसके केश खुले हैं और नाक कटी हुई है। वह मेरा आलिङ्गन करना चाहती है। उसने मलिन वस्त्रखण्ड, रूखे केश तथा चूर्ण तिलक धारण कर रखे हैं। पुरोहित सत्यकजी! मैंने देखा है कि मेरे कपाल और छातीपर ताड़के पके हुए काले रंगके छिन्न-भिन्न फल बड़ी भारी आवाजके साथ गिर रहे हैं। एक मैला-कुचैला विकृत आकार तथा रूखे केशवाला म्लेच्छ मुझे आभूषण बनानेके निमित्त टूटी-फूटी कौड़ियाँ दे रहा है। एक पति-पुत्रवाली दिव्य सती स्त्रीने अत्यन्त रोषसे भरकर बारंबार अभिशाप दे भरे हुए घड़ेको फोड़ डाला है। यह भी देखा कि महान् रोषसे भरा हुआ एक ब्राह्मण अत्यन्त शाप दे मुझे अपनी पहनी हुई माला, जो कुम्हलाई नहीं थी और रक्त चन्दनसे चर्चित थी, दे रहा है। यह भी देखनेमें आया कि मेरे नगरमें एक-एक क्षण अङ्गार, भस्म तथा रक्तकी वर्षा हो रही है। मुझे दिखायी दिया कि वानर, कौए, कुत्ते, भालू, सूअर और गदहे विकट आकारमें भयानक शब्द कर रहे हैं। सूखे काष्ठोंकी राशि जमा है, जिसकी कालिमा मिटी नहीं है। अरुणोदयकी वेलामें मुझे बंदर और कटे हुए नख दृष्टिगोचर हुए। मेरे महलसे एक सती स्त्री निकली, जो पीताम्बर धारण किये, श्वेत चन्दनका अङ्गराग लगाये, मालतीकी माला धारण किये रत्नमय

आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके हाथमें क्रीड़ा-कमल शोभा पा रहा था और भालदेश सिन्दूर-बिन्दुसे सुशोभित था। वह रुष्ट हो मुझे शाप देकर चली गयी। मुझे अपने नगरमें कुछ ऐसे पुरुष प्रवेश करते दिखायी दिये, जिनके हाथोंमें फंदा था। उनके केश खुले हुए थे। वे अत्यन्त रूखे और भयंकर जान पड़ते थे। घर-घरमें एक नंगी स्त्री मन्द मुसकानके साथ नाचती दिखायी देती है, जिसके केश खुले हैं और आकार बड़ा विकट है। एक नंगी विधवा महाशूद्री, जिसकी नाक कटी हुई है और जो अत्यन्त भयंकर है, मेरे अङ्गोंमें तेल लगा रही है। अतिशय प्रातःकालमें मैंने कुछ ऐसी विचित्र स्त्रियाँ देखीं, जो मुझे हुए अङ्गार (कोयले) लिये हुए थीं। उनके शरीरपर कोई वस्त्र नहीं था तथा वे सम्पूर्ण अङ्गोंमें भस्म लगाये हुए मुस्करा रही थीं। सपनेमें मुझे नृत्य-गीतसे मनोहर लगनेवाला विवाहोत्सव दिखायी दिया। कुछ ऐसे पुरुष भी दृष्टिगोचर हुए, जिनके कपड़े और केश भी लाल थे। एक नंगा पुरुष दीखा, जो देखनेमें भयंकर था, जो कभी रक्त-वमन करता, कभी नाचता, कभी दौड़ता और कभी सो जाता था। उसके मुखपर सदा मुस्कराहट दिखायी देती थी। बन्धुओ! एक ही समय आकाशमें चन्द्रमा और सूर्य दोनोंके मण्डलपर सर्वग्रास ग्रहण लगा दृष्टिगोचर हुआ है। पुरोहितजी! मैंने स्वप्नमें उल्कापात, धूमकेतु, भूकम्प, राष्ट्र-विप्लव, झंझावात और महान् उत्पात देखा है। वायुके वेगसे वृक्ष झोंके खा रहे थे। उनकी डालियाँ टूट-टूटकर गिर रही थीं। पर्वत भी भूमिपर ढहे दिखायी देते थे। घर-घरमें ऊँचे कदका एक नंगा पुरुष नाच रहा था, जिसका सिर कटा हुआ था। उस भयानक पुरुषके हाथमें नरमुण्डोंकी माला दिखायी देती थी। सारे आश्रम जलकर अङ्गारके भस्मसे भर गये थे और सब लोग चारों ओर हाहाकार करते दिखायी देते थे।

नारद! यों कहकर राजा कंस सभामें चुप हो गया। वह स्वप्न सुनकर सब भाई-बन्धु सिर नीचा किये लंबी साँस खींचने लगे। अपने यजमान कंसके शीघ्र होनेवाले विनाशको जानकर पुरोहित सत्यक तत्काल अचेत-से हो गये। राजभवनकी स्त्रियाँ तथा कंसके माता-पिता शोकसे रोने लगे। सबको यह विश्वास हो गया कि अब शीघ्र ही कंसका विनाशकाल स्वयं उपस्थित होनेवाला है।

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! बुद्धिमान् पुरोहित सत्यक शुक्राचार्यके शिष्य थे। उन्होंने सब बातोंपर विचार करके कंसके लिये हितकी बात बतायी।

सत्यक बोले—महाभाग! भय छोड़ो। मेरे रहते तुम्हें भय किस बातका है? महेश्वरका यज्ञ करो, जो समस्त अरिष्टोंका विनाश करनेवाला है। इस महेश्वर-यागका नाम है—धनुर्यज्ञ, जिसमें बहुत-सा अन्न खर्च होता है और बहुत दक्षिणा बाँटी जाती है। वह यज्ञ दुःस्वप्नोंका विनाश तथा शत्रुभयका निवारण करनेवाला है। उस यज्ञसे आध्यात्मिक, आधिदैविक और उत्कट आधिभौतिक—इन तीन तरहके उत्पातोंका खण्डन होता है। साथ ही वह ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाला है। यज्ञ समाप्त होनेपर समस्त सम्पदाओंके दाता भगवान् शंकर प्रत्यक्ष दर्शन देते और ऐसा वर प्रदान करते हैं, जिससे जरा और मृत्युका निवारण हो जाता है। पूर्वकालमें महाबली बाण, नन्दी, परशुराम तथा बलवानोंमें श्रेष्ठ भल्लने इस यज्ञका अनुष्ठान किया था। पहले भगवान् शिवने इस यज्ञसे संतुष्ट होकर यह दिव्य धनुष नन्दीश्वरको दिया था। धर्मात्मा नन्दीश्वरने बाणासुरको दिया। फिर यज्ञ करके महासिद्ध हुए बाणासुरने पुष्करतीर्थमें यह धनुष परशुरामजीको अर्पित कर दिया। कृपानिधान परशुरामजीने कृपापूर्वक अब तुमको यह धनुष दे दिया है। नरेश्वर! यह धनुष

बड़ा ही कठोर (मजबूत) है। इसकी लंबाई एक सहस्र हाथकी है। खींचनेपर यह दस हाथतक फैलता है। इसका भगवान् शंकरकी इच्छासे निर्माण हुआ है। पशुपतिका यह पाशुपत धनुष जुते हुए रथके द्वारा भी कठिनाईसे ही ढोया जाता है। भगवान् नारायणदेवको छोड़कर अन्य सब लोग कभी इसे तोड़ नहीं सकते। भगवान् शंकरके इस कल्याणकारी यज्ञमें तुम शीघ्र ही इस धनुषकी पूजा करो और शुभ कर्ममें भेजनेयोग्य निमन्त्रण सबके पास भेज दो। नरेश्वर! इस यज्ञमें यदि धनुष टूट जायगा तो यजमानका नाश होगा, इसमें संशय नहीं है। धनुष टूटनेपर निश्चय ही यज्ञ भी भङ्ग हो जाता है। जब यज्ञ-कर्म सम्पन्न ही नहीं होगा तो उसका फल कौन देगा? महामते! इस धनुषके मूलभागमें ब्रह्मा, मध्यभागमें स्वयं नारायण और अग्रभागमें उग्र प्रतापशाली महादेवजी प्रतिष्ठित हैं। इस धनुषमें तीन विकार हैं तथा यह श्रेष्ठ रत्नोंद्वारा जटित है। ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक प्रचण्ड मार्तण्डकी प्रभाको यह धनुष अपनी दिव्य दीप्तिसे दबा देता है। राजन्! महाबली अनन्त, सूर्य तथा कार्तिकेय भी इस धनुषको झुकानेमें समर्थ नहीं हैं; फिर दूसरेकी तो बात ही क्या है? पूर्वकालमें त्रिपुरारि शिवने इसीके द्वारा त्रिपुरासुरका वध किया था। तुम इस महोत्सवके लिये बिना किसी भयके स्वेच्छापूर्वक माङ्गलिक कार्य आरम्भ करो।

सत्यककी यह बात सुनकर चन्द्रवंशकी वृद्धि करनेवाले कंसने सभी कार्योंमें सदा यजमानका हित चाहनेवाले पुरोहितजीसे कहा।

कंस बोला—पुरोहितजी! वसुदेवके घरमें मेरा वध करनेवाला एक कुलनाशक पुत्र उत्पन्न हुआ है, जो नन्दके भवनमें नन्दनन्दन होकर स्वच्छन्दतापूर्वक पालित-पोषित हो रहा है। उस बलवान् बालकने मेरे बुद्धिमान् मन्त्रियों, शूरवीर बान्धवों तथा पवित्र बहिन पूतनाको मार डाला है। वह इच्छानुसार अपने बलको बढ़ा लेता है। उसने गोवर्द्धन पर्वतको एक हाथपर ही धारण कर लिया था और शूरवीर महेन्द्रको भी पराजित कर दिया था। उसने ब्रह्माजीको समस्त चराचर जगत्‌का ब्रह्मरूपमें दर्शन कराया था तथा बालकों और बछड़ोंके कृत्रिम समुदायकी रचना कर ली थी। सत्यकजी! उस बलवान् बालकका वध करनेके लिये ही कोई सलाह दीजिये। निश्चय ही इस भूतलपर, स्वर्ग और पातालमें एवं तीनों लोकोंमें उसके सिवा दूसरा कोई मेरा शत्रु नहीं है। सर्वत्र जो श्रेष्ठ राजा हैं, वे मेरे प्रति बान्धवभाव रखते हैं। ब्रह्माजी और भगवान् शंकर तो तपस्वी हैं। उन्हें तपस्यासे ही छुट्टी नहीं है। रह गये सनातन भगवान् विष्णु; परंतु वे भी सबके आत्मा हैं और सबपर समान दृष्टि रखते हैं। यदि नन्दपुत्रको मार डालूँ तो तीनों लोकोंमें मेरा सम्मान बढ़ जायगा। मैं सार्वभौम सम्राट् एवं सातों द्वीपोंका महाराज हो जाऊँगा। स्वर्गमें जो इन्द्र हैं, वे भी दैत्योंसे परास्त होनेके कारण दुर्बल ही रहते हैं; अतः उनका वध करके मैं महेन्द्र हो जाऊँगा। इन्द्रलोकमें प्रतिष्ठित होकर मैं सूर्यको, राजयक्ष्मासे ग्रस्त हुए अपने ही पूर्वपुरुष चन्द्रमाको तथा वायु, कुबेर और यमको भी निश्चय ही जीत लूँगा; अतः आप शीघ्र ही नन्द-व्रजमें जाइये और नन्द, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा उसके बलवान् भाई बलरामको भी अभी बुला लाइये।

कंसकी बात सुनकर सत्यकने हितकर, सत्य, नीतिका सारभूत, उत्तम एवं समयोचित वचन कहा।

सत्यक बोले—महाभाग! तुम नन्द-व्रजके अभीष्ट स्थानमें अक्रूर, उद्धव अथवा वसुदेवजीको भेजो।

सत्यककी बात सुनकर उसी सभामें स्वर्णसिंहासनपर बैठे हुए वसुदेवजीसे उसने कहा।

राजेन्द्र कंस बोला—मेरे प्रिय बन्धु

वसुदेवजी! आप नीतिशास्त्रके तत्त्वज्ञ और उपाय ढूँढ़ निकालनेमें चतुर हैं; अतः नन्द-व्रजमें अपने पुत्रके घर आप ही जाइये। वृषभानु, नन्दराय, बलराम, नन्दनन्दन श्रीकृष्ण तथा समस्त गोकुल-वासियोंको यज्ञमें यहाँ शीघ्र बुला लाइये। मेरे दूत समस्त राजाओं तथा मुनियोंको इसकी सूचना देनेके लिये चिट्ठी लेकर चारों दिशाओंमें जायँ।

ब्रह्मन्! राजाकी बात सुनकर वसुदेवजीके ओठ, तालु और कण्ठ सूख गये; वे व्यथित-हृदयसे बोले।

वसुदेवजीने कहा—राजेन्द्र! इस कार्यके लिये इस समय नन्द-व्रजमें मेरा जाना उचित नहीं होगा। मुझ वसुदेवके पुत्र अथवा नन्दनन्दनको इस यज्ञका समाचार मैं दूँ और अपने साथ बुलाकर लाऊँ—यह किसी दृष्टिसे उचित नहीं कहा जा सकता। यदि तुम्हारे यज्ञ-महोत्सवमें नन्दपुत्रका आगमन हुआ तो अवश्य ही तुम्हारे साथ उसका विरोध होगा; अतः मैं उस बालकको बुलाकर यहाँ युद्ध करवाऊँ—यह मेरी दृष्टिमें श्रेयस्कर नहीं है। इसमें उस बालकको और तुम्हारी भी हानि हो सकती है। यदि वह बालक मारा गया तो सब लोग यही कहेंगे कि पिताने ही साथ ले जाकर कृष्णको मरवा दिया और यदि तुम्हें कुछ हो गया, तब लोग कहने लगेंगे कि वसुदेवने अपने पुत्रके द्वारा राजाको ही मौतके घाट उतार दिया। दोमेंसे एककी तत्काल मृत्यु होगी; यह निश्चित है। इसके सिवा और भी बहुत-से शूरवीर धराशायी होंगे; क्योंकि युद्ध कभी निरापद नहीं होता।

मुने! वसुदेवजीकी यह बात सुनकर राजेन्द्र कंसके नेत्र रोषसे लाल हो गये। वह तलवार लेकर उन्हें मार डालनेके लिये आगे बढ़ा। यह देख अत्यन्त बलवान् उग्रसेनने 'हाय! हाय!' करके अपने पुत्र महाराज कंसको तत्काल रोक दिया। रोषसे भरे हुए वसुदेव अपने आसनसे उठकर घरको चले गये। तब राजा कंसने अक्रूरको नन्द-व्रजमें जानेके लिये कहा और शीघ्र ही प्रत्येक दिशामें दूत भेजे। कंसका निमन्त्रण पाकर समस्त मुनि और नरेश आवश्यक सामानोंके साथ वहाँ आये। समस्त दिक्पाल, देवता, तपस्वी ब्राह्मण, सनकादि मुनि, पुलस्त्य, भृगु, प्रचेता, जाबालि और मार्कण्डेय आदि बहुत-से महान् ऋषिगण अपने शिष्योंसहित पधारे। हम दोनों भाई (नर और नारायण) भी

वहाँ पहुँचे थे। राजाओंमें जरासंध, दन्तवक्त्र, द्रविड-नरेश दाम्भिक, शिशुपाल, भीष्मक, भगदत्त, मुद्गल, धृतराष्ट्र, धूम्रकेश, धूमकेतु, शंबर, शल्य, सत्राजित, शंकु तथा अन्यान्य महाबली नरेश आये थे। इनके सिवा भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य, महाबली अश्वत्थामा, भूरिश्रवा, शाल्व, कैकेय तथा कौशल भी पधारे थे। महाराज कंसने सबके साथ यथोचित सम्भाषण किया और पुरोहित सत्यकने यज्ञके दिन शुभ कृत्यका सम्पादन किया।

(अध्याय ६३-६४)

भगवद्दर्शनकी सम्भावनासे अक्रूरके हर्षोल्लास एवं प्रेमावेशका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! कंसकी बात सुनकर धर्मात्माओंमें श्रेष्ठ शान्तस्वरूप अक्रूरके मनमें बड़ी प्रसन्नता हुई; वे शान्तस्वभाव उद्धवसे बोले।

अक्रूरने कहा—उद्धव! आजकी रातका बड़ा सुन्दर प्रभात हुआ। आज मेरे लिये शुभ दिन प्राप्त हुआ है। निश्चय ही देवता, ब्राह्मण और गुरु मुझपर संतुष्ट हैं। करोड़ों जन्मोंके पुण्य आज स्वयं मुझे फल देनेको उपस्थित हैं। मेरा जो-जो शुभाशुभ कर्म था, वह सब मेरे लिये सुखद हो गया। कर्मसे बँधे हुए मुझ अक्रूरका बन्धन आज कर्मने ही काट दिया। मैं संसाररूपी कारागारसे मुक्त होकर श्रीहरिके धामको जा रहा हूँ। विद्वान् कंसने आज रोषवश मुझे मित्रार्थी बना दिया। इस नरदेवका क्रोध मेरे लिये वरदान-तुल्य हो गया। इस समय व्रजराजको लानेके लिये मैं व्रजमें जाऊँगा और वहाँ भोग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाले परमपूज्य परमात्मा श्रीकृष्णके दर्शन करूँगा। नूतन जलधरके समान श्यामकान्ति, नीलकमलके सदृश नेत्र तथा कटिप्रदेशमें पीताम्बर धारण करनेवाले वे भगवान् या तो व्रजकी धूलिसे धूसरित होंगे या चन्दनसे चर्चित होंगे अथवा उनके अङ्गोंमें नवनीत लगा होगा और वे मुस्करा रहे होंगे। इस झाँकीमें मैं उनके दर्शन करूँगा। विनोदके लिये मुरली बजाते अथवा इधर-उधर झुंड-की-झुंड गौएँ चराते हुए या कहीं बैठे, चलते-फिरते अथवा सोते हुए उन मनोहर नन्दनन्दनको मैं देखूँगा; यह पूर्णतः निश्चित है। शुभ बेलामें आज भगवान्का भलीभाँति दर्शन करके जो सुख मिलेगा, उसके सामने राजाका आदेश क्या महत्त्व रखता है? ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि जिनके चरणकमलोंका निरन्तर ध्यान करते हैं तथा अनन्तविग्रह भगवान् अनन्त भी जिनका अन्त नहीं जानते हैं, देवता और संत भी जिनके प्रभावको सदा नहीं समझ पाते हैं, जिनकी स्तुति करनेमें देवी सरस्वती भी भयभीत एवं जडवत् हो जाती हैं, जिनकी सेवाके लिये महालक्ष्मी भी दासी नियुक्त की गयी हैं तथा जिनके चरणकमलोंसे उन सत्स्वरूपिणी गङ्गाका प्रादुर्भाव हुआ है, जो तीनों लोकोंसे उत्कृष्ट, जन्म-मृत्यु एवं जरारूप व्याधिको हर लेनेवाली और दर्शन एवं स्पर्शमात्रसे मनुष्योंके समस्त पातकोंको नष्ट कर देनेवाली हैं, त्रैलोक्यजननी, मूलप्रकृति ईश्वरी दुर्गतिनाशिनी देवी दुर्गा भी जिनके चरणकमलोंका ध्यान करती हैं, जिन स्थूलसे भी स्थूलतर महाविष्णुके रोमकूपोंमें असंख्य विचित्र ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं, वे भी जिन सर्वेश्वरके सोलहवें अंशरूप हैं, उन माया-मानवरूपधारी श्रीकृष्णको देखनेके लिये मैं व्रजमें जाता हूँ। बन्धु उद्धव! वे नन्दनन्दन सर्वरूप, सबके अन्तरात्मा, सर्वज्ञ, प्रकृतिसे परे, ब्रह्मज्योतिःस्वरूप, भक्तजनोंपर अनुग्रहके लिये दिव्य विग्रह धारण करनेवाले, निर्गुण, निरीह, निरानन्द, सानन्द, निराश्रय एवं परम परमानन्दस्वरूप हैं। उन्हीं स्वेच्छामय, सबसे परे विराजमान, सबके सनातन बीजरूप बालमुकुन्दका योगीजन नित्य-निरन्तर अहर्निश ध्यान करते रहते हैं।

पहले पाद्मकल्पमें कमलजन्मा ब्रह्माजीने कमलपर बैठकर एक सहस्र मन्वन्तरोंतक श्रीकृष्ण-दर्शनके लिये तपस्या की थी। उन दिनों सर्वथा उपवासके कारण उनका पेट पीठमें सट गया था। सहस्र मन्वन्तर पूर्ण होनेपर उन्हें आदेश मिला कि 'फिर तपस्या करो, तब मुझे देखोगे।' उन्हें एक बार यह शब्दमात्र सुनायी दिया। इतनी बड़ी तपस्या करनेपर भी वे भगवान्का प्रत्यक्ष दर्शन न पा सके। तब उन्होंने पुनः उतने ही समयतक तपस्या करके श्रीहरिका दर्शन और वरदान पाया। उद्धव! ऐसे परमेश्वरको

मैं आज अपनी आँखोंसे देखूँगा। पूर्वकालमें भगवान् शंकरने ब्रह्माजीकी आयुपर्यन्त तप किया। तब ज्योतिर्मण्डलके बीच गोलोकमें परमात्मा श्रीकृष्णके उन्हें दर्शन हुए। वे श्रीकृष्ण सर्वतत्त्व-स्वरूप और सम्पूर्ण सिद्धियोंसे सम्पन्न हैं। वे सबके अपने तथा सर्वश्रेष्ठ परमतत्त्व हैं। भगवान् शिवने उनके चरणारविन्दोंकी परम निर्मल भक्ति पायी। उद्धव! जिन भक्तवत्सलने अपने भक्त शिवको अपने समान ही बना दिया, ऐसे प्रभावशाली उन परमेश्वरके आज मैं दर्शन करूँगा। जितने समयमें सहस्र इन्द्रोंका पतन हो जाता है, उतने कालतक निराहार रहकर कृशोदर हुए भगवान् अनन्तने उन परमात्माकी प्रसन्नताके लिये भक्तिभावसे तपस्या की। तब उन्होंने उन अनन्त देवको अपने समान ज्ञान प्रदान किया। उद्धव! उन्हीं परमेश्वरके आज मैं दर्शन करूँगा। उद्धवजी! अट्ठाईस इन्द्रोंका पतन हो जानेपर ब्रह्माजीका एक दिन-रात होता है। इसी क्रमसे तीस दिनोंका मास और बारह मासोंका वर्ष मानकर सौ वर्ष पूर्ण होनेपर ब्रह्माजीकी आयु पूरी होती है। अहो! ऐसे ब्रह्माका पतन जिनके एक निमेषमें हो जाता है, उन परमात्माको आज मैं प्रत्यक्ष देखूँगा। भाई उद्धव! जैसे भूतलके धूलि-कणोंकी गणना नहीं हो सकती, उसी प्रकार ब्रह्माओं तथा ब्रह्माण्डोंकी गणना भी असम्भव है। उन अखिल ब्रह्माण्डोंके आधार हैं महाविराट्, जो श्रीकृष्णके षोडशांशमात्र हैं। प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता, मुनि, मनु, सिद्ध तथा मानव आदि चराचर प्राणी वास करते हैं। ब्रह्माण्डोंके आधारभूत वे महाविराट् भी, जिनका सोलहवाँ अंश हैं और जिनकी लीलामात्रसे आविर्भूत एवं तिरोभूत होते हैं; ऐसे सर्वशासक परमेश्वरके आज मैं दर्शन करूँगा।

ऐसा कहकर अक्रूरजी प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गये। उनका अङ्ग-अङ्ग पुलकित हो उठा और वे नेत्रोंसे आँसू बहाते हुए भगवच्चरणारविन्दोंका ध्यान करने लगे। उनका हृदय भक्तिसे भर गया। वे परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका स्मरण करते हुए भावनासे ही उनकी परिक्रमा करने लगे। उद्धवने अक्रूरको हृदयसे लगा लिया और बारंबार उनकी प्रशंसा की। तत्पश्चात् अक्रूरजी भी शीघ्र ही अपने घरको चले गये। (अध्याय ६५)

श्रीराधाका श्रीकृष्णको अपने दुःस्वप्न सुनाना और उनके बिना अपनी दयनीय स्थितिका चित्रण करना, श्रीकृष्णका उन्हें सान्त्वना देना और आध्यात्मिक योगका श्रवण कराना

श्रीनारायण कहते हैं—उसी दिन राधाने रात्रिमें बड़े बुरे सपने देखे। उन्होंने उठकर श्रीकृष्णसे कहा।

राधिका बोलीं—प्रभो! मैं रत्नसिंहासनपर रत्नमय छत्र धारण किये बैठी थी। उसी समय रोषसे भरे हुए एक ब्राह्मणने आकर मेरा वह छत्र ले लिया और मुझ अबलाको ही महाघोर कज्जलाकार दुस्तर गम्भीर सागरमें फेंक दिया। मैं शोकसे पीड़ित हो वहाँ जलके प्रवाहमें बारंबार चक्कर काटने लगी। घड़ियालोंसे भरे उस समुद्रमें बड़ी-बड़ी लहरोंके वेगसे टकराकर मैं व्याकुल हो गयी और बारंबार तुम्हें पुकारने लगी—'हे नाथ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।' तुम्हें न देखकर मैं महान् भयमें पड़ गयी और देवतासे प्रार्थना करने लगी। श्रीकृष्ण! समुद्रमें डूबती हुई मैंने देखा, चन्द्रमण्डलके सैकड़ों टुकड़े हो गये हैं और वह आकाशसे भूतलपर गिर रहा है। दूसरे ही क्षण मुझे दिखायी दिया कि सूर्यमण्डल भी आकाशसे पृथ्वीपर गिर

पड़ा और उसके चार टुकड़े हो गये। फिर एक ही समयमें आकाशके भीतर चन्द्रमा और सूर्यके मण्डलको मैंने पूर्णत: राहुसे ग्रस्त और अत्यन्त काला देखा। एक ही क्षणके बाद देखती हूँ कि एक तेजस्वी ब्राह्मणने रोषपूर्वक आकर मेरी गोदमें रखे हुए अमृत-कलशको फोड़ डाला। क्षणभर बाद यह दिखायी दिया कि वह महारुष्ट ब्राह्मण मेरे नेत्रगत पुरुषको पकड़कर लिये जा रहा है। प्रभो! मेरे हाथसे क्रीड़ा-कमल-दण्ड सहसा गिर पड़ा और उसके टुकड़े-टुकड़े हो गये। उत्तम रत्नोंके सारभागसे बना हुआ दर्पण भी सहसा हाथसे गिरकर टूक-टूक हो गया। जो पहले निर्मल था, वह पीछे काला दिखायी देने लगा था। मेरा रत्नसारनिर्मित हार और कमल छिन्न-भिन्न हो वक्ष:स्थलसे खिसककर पृथ्वीपर गिर पड़ा। कमल अत्यन्त मलिन पड़ गया था। मेरी अट्टालिकामें जो पुतलियाँ बनी हैं, वे सब-की-सब क्षण-क्षणमें नाचती, हँसती, ताल ठोकती, गाती और रोती दिखायी दीं। आकाशमें काले रंगका एक विशाल चक्र बारंबार घूमता दिखायी दिया, जो बड़ा भयंकर था। वह कभी नीचेको गिरता और फिर ऊपरको उठ जाता था। मेरे प्राणोंका अधिष्ठाता देवता पुरुषरूपमें भीतरसे बाहर निकला और मुझसे बोला—'राधे! विदा होकर अब मैं यहाँसे जा रहा हूँ।' काले वस्त्र पहने हुए एक काली प्रतिमा दिखायी दी, जो मेरा आलिङ्गन और चुम्बन करने लगी। प्राणवल्लभ! यह विपरीत लक्षण देखकर मेरे दायें अङ्ग फड़क रहे हैं और प्राण आन्दोलित हो रहे हैं। वे शोकसे रोते और क्षीण होते हैं। मेरा चित्त उद्विग्न हो उठा है। नाथ! तुम वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ हो। बताओ, यह सब क्या है? क्या है?

यों कहकर राधिकादेवी शोकसे विह्वल और भयभीत हो श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें गिर पड़ीं। उनके कण्ठ, ओठ और तालु सूख गये थे। भगवान् श्रीकृष्णने राधाको उठाकर सान्त्वना दी और उनके प्रति अपना महान् स्नेह प्रकट किया।

तब राधा बोलीं—श्यामसुन्दर! जब मैं आपके साथ रहती हूँ, तब हर्षसे खिल उठती हूँ और आपके बिना मलिन हो मृतक-तुल्य हो जाती हूँ। आपके साथ रहनेपर मैं उसी प्रकार चमक उठती हूँ, जैसे प्रात:काल सूर्योदय होनेपर विशिष्ट ओषधियाँ तथा रजनीमें दीपशिखा। आपके बिना मैं दिन-दिन उसी तरह क्षीण होने लगती हूँ, जैसे कृष्णपक्षमें चन्द्रमाकी कला। आपके वक्षमें विराजमान होनेपर मेरी दीप्ति पूर्ण चन्द्रमाकी प्रभाके समान प्रकाशित होती है और जब आप मुझे त्यागकर अन्यत्र चले जाते हैं, तब मैं तत्काल ऐसी हो जाती हूँ, मानो मर गयी। मैं अमावास्याके चन्द्रमाकी कलाके समान विलीन-सी हो जाती हूँ। घीकी आहुति पाकर जैसे अग्निशिखा प्रज्वलित हो उठती है, उसी प्रकार आपका साथ पाकर मैं दीप्तिसे दमक उठती हूँ और आपके बिना शिशिर-ऋतुमें कमलिनीकी भाँति बुझ-सी जाती हूँ। जब मेरे पाससे तुम चले जाते हो, तब मैं चिन्तारूपी ज्वर या जरासे ग्रस्त हो जाती हूँ। जैसे सूर्य और चन्द्रमाके अस्त होनेपर सारी भूमि अन्धकारसे आच्छन्न हो जाती है, उसी तरह जब तुम दृष्टिसे ओझल होते हो, तब मैं शोक और दु:खमें डूब जाती हूँ। तुम्हीं सबके आत्मा हो; विशेषत: मेरे प्राणनाथ हो। जैसे जीवात्माके त्याग देनेपर शरीर मुर्दा हो जाता है, उसी प्रकार मैं तुम्हारे बिना मरी-सी हो जाती हूँ। तुम मेरे पाँचों प्राण हो। तुम्हारे बिना मैं मृतक हूँ, ठीक उसी तरह जैसे नेत्रगोलक आँखकी पुतलीके बिना अंधे होते हैं। जैसे चित्रोंसे युक्त स्थानकी शोभा बढ़ जाती है, उसी तरह तुम्हारे साथ मेरी शोभा अधिक हो जाती है और जब तुम मेरे साथ नहीं रहते हो तब मैं तिनकोंसे आच्छादित और झाड़-बुहार या सजावटसे रहित भूमिकी भाँति शोभाहीन हो जाती

हूँ। श्रीकृष्ण! तुम्हारे साथ मैं चित्रयुक्त मिट्टीकी प्रतिमाकी भाँति सुशोभित होती हूँ और तुम्हारे बिना जलसे धोयी हुई मिट्टीकी मूर्तिकी तरह कुरूप दिखायी देती हूँ। तुम रासेश्वर हो। तुमसे ही गोपाङ्गनाओंकी शोभा होती है, जैसे सोनेकी माला श्वेत मणिका संयोग पाकर अधिक सुशोभित होने लगती है। व्रजराज! तुम्हारे साथ राजाओंकी श्रेणियाँ उसी तरह शोभा पाती हैं, जैसे आकाशमें चन्द्रमाके साथ तारावलियाँ। नन्दनन्दन! जैसे शाखा, फल और पत्तोंसे वृक्षावलियाँ सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार तुमसे नन्द और यशोदाकी शोभा है। गोकुलेश्वर! जैसे समस्त लोकोंकी श्रेणियाँ राजेन्द्रसे सुशोभित होती हैं, उसी प्रकार समस्त गोकुलवासियोंकी शोभा तुम्हारे साथ रहनेसे ही है। रासेश्वर! जैसे स्वर्गमें देवराज इन्द्रसे ही अमरावतीपुरी शोभित होती है, उसी प्रकार रासमण्डलको भी तुमसे ही मनोहर शोभा प्राप्त होती है। जैसे बलवान् सिंह अन्यान्य वनोंकी शोभा, स्वामी और सहारा है, उसी प्रकार तुम्हीं वृन्दावनके वृक्षोंकी शोभा, संरक्षक और आश्रयदाता हो। जैसे गाय अपने बछड़ेको न पाकर व्याकुल हो डकराने लगती है, उसी प्रकार माता यशोदा तुम्हारे बिना शोकसागरमें निमग्न हो जाती हैं। जैसे तपे हुए पात्रमें धान्यराशि जल जाती है, उसी प्रकार तुम्हारे बिना नन्दजीका हृदय दग्ध होने लगता है और प्राण आन्दोलित हो उठते हैं।

यों कहकर अत्यन्त प्रेमके कारण राधा श्रीहरिके चरणोंमें गिर पड़ीं। श्रीहरिने पुनः अध्यात्म-ज्ञानकी बातें कहकर उन्हें समझाया-बुझाया। नारद! आध्यात्मिक महायोग उसी तरह मोहके उच्छेदका कारण कहा गया है, जैसे तीखी धारवाला कुठार वृक्षोंके काटनेमें हेतु होता है।

नारदने कहा—वेदवेत्ताओंमें श्रेष्ठ भगवन्! लोकोंके शोकका उच्छेद करनेवाले आध्यात्मिक महायोगका वर्णन कीजिये। मेरे मनमें उसे सुननेके लिये उत्कण्ठा है।

श्रीनारायणने कहा—आध्यात्मिक महायोग योगियोंकी भी समझमें नहीं आता। उसके अनेक प्रकार हैं। उन सबको सम्यक्-रूपसे स्वयं श्रीहरि ही जानते हैं। रमणीय क्रीडासरोवरके तटपर कृपानिधान श्रीकृष्णने शोकाकुल राधिकाको जो आध्यात्मिक योग सुनाया था, उसीका वर्णन करता हूँ, सुनो।

श्रीकृष्ण बोले—प्रिये! तुम्हें तो पूर्वजन्मकी बातोंका स्मरण है। अपने-आपको याद करो। क्यों भूली जा रही हो? गोलोकका सारा वृत्तान्त और सुदामाका शाप क्या तुम्हें याद नहीं है? महाभागे! उस शापके कारण कुछ दिनोंतक मुझसे तुम्हारा वियोग रहेगा। शापकी अवधि समाप्त होनेपर फिर हम दोनोंका मिलन होगा। फिर मैं गोलोकवासी गोपों और गोपाङ्गनाओंके साथ अपने परमधाम गोलोकको चलूँगा। इस समय मैं तुमसे कुछ आध्यात्मिक ज्ञानकी बातें कहता हूँ, सुनो। यह सारभूत ज्ञान शोकका नाशक, आनन्दवर्धक तथा मनको सुख देनेवाला है। मैं सबका अन्तरात्मा और समस्त कर्मोंसे निर्लिप्त हूँ। सबमें सर्वत्र विद्यमान रहकर भी कभी किसीके दृष्टिपथमें नहीं आता हूँ। जैसे वायु सर्वत्र सभी वस्तुओंमें विचरती है, किंतु किसीसे लिप्त नहीं होती; उसी प्रकार मैं समस्त कर्मोंका साक्षी हूँ। उन कर्मोंसे लिप्त नहीं होता हूँ। सर्वत्र समस्त जीवधारियोंमें जो जीवात्मा हैं, वे सब मेरे ही प्रतिबिम्ब हैं। जीवात्मा सदा समस्त कर्मोंका कर्ता और उनके शुभाशुभ फलोंका भोक्ता है। जैसे जलके घड़ोंमें चन्द्रमा और सूर्यके मण्डलका पृथक्-पृथक् प्रतिबिम्ब दिखायी देता है, किंतु उन घड़ोंके फूट जानेपर वे सारे प्रतिबिम्ब चन्द्रमा और सूर्यमें ही विलीन हो जाते हैं; उसी प्रकार अन्तःकरणरूपी उपाधिके मिट जानेपर समस्त चित् प्रतिबिम्ब—जीव मुझमें ही अन्तर्हित हो जाते हैं। प्रिये! समयानुसार

समस्त जीवधारियोंकी मृत्यु हो जानेपर जीव मुझसे ही संयुक्त होता है। हम दोनों सदा समस्त जन्तुओंमें विद्यमान हैं। सम्पूर्ण जगत् आधेय है और मैं इसका आधार हूँ। आधारके बिना आधेय उसी तरह नहीं रह सकता, जैसे कारणके बिना कार्य। सुन्दरि! संसारके समस्त द्रव्य नश्वर हैं। कहीं किन्हीं पदार्थोंका आविर्भाव अधिक होता है और कहीं कम। कुछ देवता मेरे अंश हैं, कुछ कला हैं, कुछ कलाकी कलाके भी अंश हैं और कुछ उस अंशके भी अंशांश हैं। मेरी अंशस्वरूपा प्रकृति सूक्ष्मरूपिणी है। उसकी पाँच मूर्तियाँ हैं—सरस्वती, लक्ष्मी, दुर्गा, तुम (राधा) और वेदजननी सावित्री। जितने भी मूर्तिधारी देवता हैं, वे सब प्राकृतिक हैं। मैं सबका आत्मा हूँ और भक्तोंके ध्यानके लिये नित्य देह धारण करके स्थित हूँ। राधे! जो-जो प्राकृतिक देहधारी हैं, वे प्राकृत प्रलयमें नष्ट हो जाते हैं। सबसे पहले मैं ही था और सबके अन्तमें भी मैं ही रहूँगा। जैसा मैं हूँ, वैसी ही तुम भी हो। जैसे दूध और उसकी धवलतामें कभी भेद नहीं होता, उसी प्रकार निश्चय ही हम दोनोंमें भेद नहीं है। प्रारम्भिक सृष्टिमें मैं ही वह महान् विराट् हूँ, जिसकी रोमावलियोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड विद्यमान हैं। वह महाविराट् मेरा अंश है और तुम अपने अंशसे उसकी पत्नी हो। बादकी सृष्टिमें मैं ही वह क्षुद्र विराट् हूँ, जिसके नाभिकमलसे इस विश्व-ब्रह्माण्डका प्राकट्य हुआ है। विष्णुके रोमकूपमें मेरा आंशिक निवास है। तुम्हीं अपने अंशसे उस विष्णुकी सुन्दरी स्त्री हो। उसके प्रत्येक विश्वमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवता विद्यमान हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव तथा अन्य ब्रह्माण्डोंके ब्रह्मा आदि देवता भी मेरी ही कलाएँ हैं। देवि! समस्त चराचर प्राणी मेरी कलाकी अंशांशकलासे प्रकट हुए हैं। तुम वैकुण्ठमें महालक्ष्मी हो और मैं वहाँ चतुर्भुज नारायण हूँ। वैकुण्ठ भी उसी तरह विश्वब्रह्माण्डसे बाहर है, जैसे गोलोक। सत्यलोकमें तुम्हीं सरस्वती तथा ब्रह्मप्रिया सावित्री हो। शिवलोकमें जो मूलप्रकृति ईश्वरी शिवा हैं, वे भी तुमसे भिन्न नहीं हैं, वे दुर्गम संकटका नाश करनेके कारण सर्वदुर्गतिनाशिनी 'दुर्गा' कहलाती हैं। वे ही दक्षकन्या सती हैं और वे ही हैं गिरिराजकुमारी पार्वती। कैलासमें सौभाग्यशालिनी पार्वती शिवके वक्षःस्थलपर विराजमान होती हैं। तुम्हीं अपने अंशसे सिन्धुकन्या होकर क्षीरसागरमें श्रीविष्णुके वक्षःस्थलपर विराजमान होती हो। सृष्टिकालमें मैं ही अपने अंशसे ब्रह्मा, विष्णु और शिवरूप धारण करता हूँ तथा तुम लक्ष्मी, शिवा, धात्री एवं सावित्री आदि पृथक्-पृथक् रूप धारण करती हो। गोलोकके रासमण्डलमें तुम स्वयं ही सदा रासेश्वरीके पदपर प्रतिष्ठित हो। रमणीय वृन्दावनमें वृन्दा तथा विरजा-तटपर विरजाके रूपमें तुम्हीं शोभा पाती हो। वही तुम इस समय सुदामाके शापसे पुण्यभूमि भारतवर्षमें आयी हो। सुन्दरि! भारतवर्ष और वृन्दावनको पवित्र करना ही तुम्हारे शुभागमनका उद्देश्य है। समस्त लोकोंमें जो सम्पूर्ण स्त्रियाँ हैं, वे तुम्हारी ही कलांश-कलासे प्रकट हुई हैं। जो स्त्री है, वह तुम हो; जो पुरुष है, वह मैं हूँ। मैं ही अपनी कलासे अग्निरूपमें प्रकट हुआ हूँ और तुम अग्निकी दाहिका शक्ति एवं प्रियपत्नी स्वाहा हो। तुम्हारे साथ रहनेपर ही मैं जलानेमें समर्थ हूँ, तुम्हारे बिना नहीं। मैं दीप्तिमानोंमें सूर्य हूँ और तुम्हीं अपनी कलासे संज्ञा होकर प्रभाका विस्तार करती हो। तुम्हारे सहयोगसे ही मैं प्रकाशित होता हूँ। तुम्हारे बिना मैं दीप्तिमान् नहीं हो सकता। मैं कलासे चन्द्रमा हूँ और तुम शोभा तथा रोहिणी हो। तुम्हारे साथ रहकर ही मैं मनोहर बना हूँ; तुम्हारे न होनेपर तो मुझमें कोई सौन्दर्य नहीं है। मैं ही अपनी कलासे इन्द्र हुआ हूँ और तुम्हीं स्वर्गकी मूर्तिमती लक्ष्मी शची हो। तुम्हारे साथ

होनेसे ही मैं देवताओंका राजा इन्द्र हूँ; तुम्हारे बिना तो मैं श्रीहीन हो जाऊँगा। मैं ही अपनी कलासे धर्म हूँ और तुम धर्मकी पत्नी मूर्ति हो। यदि धर्म-क्रियारूपिणी तुम साथ न दो तो मैं धर्मकृत्यके सम्पादनमें असमर्थ हो जाऊँ। मैं ही कलासे यज्ञरूप हूँ और तुम अपने अंशसे दक्षिणा हो। तुम्हारे साथ ही मैं यज्ञफलका दाता हूँ; तुम न हो तो मैं फल देनेमें कदापि समर्थ न होऊँ। मैं ही अपनी कलासे पितृलोक हूँ और तुम अपने अंशसे सती स्वधा हो। तुम्हारे सहयोगसे ही मैं कव्य (श्राद्ध)-दानमें समर्थ होता हूँ; तुम न हो तो मैं उसमें कदापि समर्थ न हो सकूँगा। मैं पुरुष हूँ और तुम प्रकृति हो; तुम्हारे बिना मैं सृष्टि नहीं कर सकता। ठीक वैसे ही, जैसे कुम्हार मिट्टीके बिना घड़ा नहीं बना सकता। तुम सम्पत्तिरूपिणी हो और मैं तुम्हारे साथ उस सम्पत्तिका ईश्वर हूँ। लक्ष्मीस्वरूपा तुमसे संयुक्त होकर ही मैं लक्ष्मीवान् बना हूँ; तुम्हारे न होनेसे तो मैं सर्वथा लक्ष्मीहीन ही हूँ। मैं कलासे शेषनाग हुआ हूँ और तुम अपने अंशसे वसुधा हो। सुन्दरि! शस्य तथा रत्नोंकी आधारभूता तुमको मैं अपने मस्तकपर धारण करता हूँ। तुम कान्ति, शान्ति, मूर्तिमती, सद्विभूति, तुष्टि, पुष्टि, क्षमा, लज्जा, क्षुधा, तृष्णा, परा, दया, निद्रा, शुद्धा, तन्द्रा, मूर्च्छा, संनति और क्रिया हो। मूर्ति और भक्ति तुम्हारे ही स्वरूपभूता हैं। तुम्हीं देहधारियोंकी देह हो; सदा मेरी आधारभूता हो और मैं तुम्हारा आत्मा हूँ। इस प्रकार हम दोनों एक-दूसरेके शरीर और आत्मा हैं। जैसी तुम, वैसा मैं; दोनों सम—प्रकृति-पुरुषरूप हैं। देवि! हममेंसे एकके बिना भी सृष्टि नहीं हो सकती।

नारद! इस प्रकार परमप्रसन्न परमात्मा श्रीकृष्णने प्राणाधिका प्रिया श्रीराधाको हृदयसे लगाकर बहुत समझाया-बुझाया। फिर वे पुष्प-शय्यापर सो गये। (अध्याय ६६-६७)

श्रीकृष्णको व्रजमें जाते देख राधाका विलाप एवं मूर्च्छा, श्रीहरिका उन्हें समझाना, श्रीराधाके सो जानेपर ब्रह्मा आदि देवताओंका आना और स्तुति करके श्रीकृष्णको मथुरा जानेके लिये प्रेरित करना, श्रीकृष्णका जाना, श्रीराधाका उठना और प्रियतमके लिये विलाप करके मूर्च्छित होना, श्रीकृष्णका लौटकर आना, रत्नमालाका श्रीकृष्णको राधाकी अवस्था बताना, श्रीकृष्णका राधाके लिये स्वप्नमें मिलनेका वरदान देकर व्रजमें आना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! पुरातन परमेश्वर श्यामसुन्दर श्रीकृष्णने पुष्पशय्यासे उठकर निद्रामें निमग्न हुई अपनी प्राणोपमा प्रियतमा श्रीराधाको तत्काल ही जगाया। वस्त्रके अञ्चलसे उनके मुँहको पोंछ निर्मल करके मधुसूदनने मधुर एवं शान्त वाणीमें उनसे कहा।

श्रीकृष्ण बोले—पवित्र मुस्कानवाली रासेश्वरि! व्रजस्वामिनि! क्षणभर रासमण्डलमें ही ठहरो अथवा वृन्दावनमें घूमो या गोष्ठमें ही चली जाओ। अथवा तुम रासकी अधिष्ठात्री देवी हो; इसलिये क्षणभर इस रासमण्डलमें ही रासरसका आस्वादन करो। जैसे ग्राम-ग्राममें सर्वत्र ग्रामदेवता रहते हैं, उसी तरह रासेश्वरीको रासमें सदा रहना चाहिये। अथवा सुन्दरि! तुम अपनी प्यारी सखियोंके साथ क्षणभरके लिये चन्दनवन या चम्पकवनमें घूम आओ, या यहीं रहो; मैं कुछ क्षणके लिये घरको जाऊँगा, वहाँ मुझे एक विशेष कार्य करना है; अतः प्राणवल्लभे! थोड़ी देरके लिये प्रसन्नतापूर्वक

मुझको छुट्टी दे दो। तुम मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हो। तुममें ही मेरे प्राण बसते हैं। प्रिये! प्राणी अपने प्राणोंको छोड़कर कहाँ ठहर सकता है? तुममें ही सदा मेरा मन लगा रहता है, तुमसे बढ़कर प्यारी मेरे लिये दूसरी कोई नहीं है। केवल तुम्हीं मुझे शंकरसे अधिक प्रिय हो। यह सत्य है शंकर मेरे प्राण हैं; परंतु सती राधे! तुम तो प्राणोंसे भी बढ़कर हो।

यों कहकर भगवान् वहाँसे जानेको उद्यत हुए। वे सर्वज्ञ और सब कुछ सिद्ध करनेवाले हैं। सबके आत्मा, पालक और उपकारक हैं। उन्होंने अक्रूरका आगमन जानकर व्रजमें जानेका विचार किया। श्रीकृष्णका मन बँट गया है; वे अन्यत्र जानेको उत्सुक हैं; यह देख राधिका देवी व्यथित-हृदयसे बोलीं।

राधिकाने कहा—हे नाथ! हे रमणश्रेष्ठ! प्रिय लगनेवाले मेरे समस्त सम्बन्धियोंमें तुम्हीं श्रेष्ठ हो। प्राणनाथ! मैं देखती हूँ, इस समय तुम्हारा मन बँटा हुआ है। तुम्हारे चले जानेपर मेरा प्रेम और सौभाग्य सब कुछ लुट जायगा। मुझे शोकके गहरे समुद्रमें डालकर तुम कहाँ चले जा रहे हो? मैं विरहसे व्याकुल हूँ, दीन हूँ और तुम्हारी ही शरणमें आयी हूँ। अब मैं फिर घरको नहीं लौटूँगी; दूसरे वनमें चली जाऊँगी और दिन-रात 'कृष्ण! कृष्ण! कृष्ण!' का गान करती रहूँगी। अथवा किसी वनमें भी नहीं जाऊँगी, प्रेमके समुद्रमें प्रवेश करूँगी और मनमें केवल तुम्हारी कामना लेकर शरीरको त्याग दूँगी। जैसे आकाश, आत्मा, चन्द्रमा और सूर्य सदा साथ रहते हैं; उसी तरह तुम मेरे आँचलमें बँधकर सदा पास ही रहते और साथ-साथ घूमते हो; किंतु दीनवत्सल! इस समय तुम मुझे निराश करके जा रहे हो! मुझ दीन एवं शरणागत अबलाको त्याग देना तुम्हारे लिये कदापि उचित नहीं है। ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव आदि देवता जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते हैं; वे परमात्मा तुम हो। तुमने मायासे गोपवेष धारण कर रखा है। मैं ईर्ष्यालु नारी तुम्हें कैसे जान सकती हूँ? देव! मैंने तुम्हें पति समझकर अथवा अभिमानके कारण तुम्हारे प्रति जो दुर्नीतिपूर्ण बर्ताव तथा सहस्रों अपराध किये हैं; उन्हें क्षमा कर दो। मेरा गर्व चूर्ण हो गया और मेरे सारे मनसूबे दूर चले गये। अपने सौभाग्यको आज मैं अच्छी तरह समझ चुकी हूँ। नाथ! इसके सिवा, तुमसे और क्या कह सकती हूँ? गर्गके मुखसे तुम्हारे विषयमें सुनकर, जानकर भी मैं तुम्हारी मायासे मोहित हो गयी। इस समय प्रेमातिरेक अथवा भक्तिपाशसे बँधकर मैं तुमसे कुछ कह नहीं सकती। प्राणवल्लभ! प्रभो! तुम्हारे बिना मुझे एक-एक क्षण सौ युगोंके समान जान पड़ता है; फिर सौ वर्षोंतक मैं किस तरह जीवन धारण कर सकूँगी?

मुने! ऐसा कहकर राधिका भूमिपर गिर पड़ीं और सहसा मूर्च्छित हो चेतना खो बैठीं। उन्हें मूर्च्छित देख कृपानिधान श्रीकृष्णने कृपापूर्वक सचेत किया और हृदयसे लगा लिया। फिर शोकहारी योगीश्वरने उन्हें अनेक प्रकारसे समझाया तथापि शुचिस्मिता श्रीराधा शोकको त्याग न सकीं। सामान्य वस्तुका बिछोह भी मनुष्योंके लिये शोकप्रद हो जाता है, फिर जहाँ देह और आत्माका बिछोह होता हो, वहाँ सुख कैसे हो सकता है? उस दिन व्रजराज श्यामसुन्दर व्रजमें नहीं लौट सके। श्रीराधाके साथ क्रीड़ा-सरोवरके तटपर गये। वहाँ उनके साथ भगवान्ने पुनः रास-क्रीड़ा की। तदनन्तर आनन्दमग्न राधिकाजी सो गयीं।

इसी समय लोकपितामह ब्रह्माजी शिव, शेष आदि देवताओं तथा मुनीन्द्रोंके साथ वहाँ आये। आकर उन्होंने धरतीपर माथा टेक प्रणाम किया और हाथ जोड़ वे उन परिपूर्णतम परमेश्वरकी सामवेदोक्त स्तोत्रसे स्तवन करने लगे।

ब्रह्माजी बोले—जगदीश्वर! आपकी जय हो, जय हो। आपके चरणोंकी सभी वन्दना करते हैं। आप निर्गुण, निराकार और स्वेच्छामय हैं। सदा भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये ही दिव्य विग्रह धारण करते हैं और वह श्रीविग्रह नित्य है। मायासे गोपवेष धारण करनेवाले मायापते! आपकी वेश-भूषा तथा शील-स्वभाव सभी सुन्दर एवं मनोहर हैं। आप शान्त तथा सबके प्राणवल्लभ हैं। स्वभावतः इन्द्रिय-संयम और मनोनिग्रहसे सम्पन्न हैं। नितान्त ज्ञानानन्दस्वरूप, परात्परतर, प्रकृतिसे परे, सबके अन्तरात्मा, निर्लिप्त, साक्षिस्वरूप, व्यक्ताव्यक्तरूप, निरञ्जन, भूतलका भार उतारनेवाले, करुणासागर, शोक-संतापनाशन, जरा-मृत्यु और भय आदिको हर लेनेवाले, शरणागतरक्षक, भक्तोंपर दया करनेके लिये व्याकुल रहनेवाले, भक्तवत्सल, भक्तोंके संचित धन तथा सच्चिदानन्दस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। सबके अधिष्ठाता देवता तथा प्रीति प्रदान करनेवाले प्रभुको सादर नमस्कार है।

इस तरह बारंबार कहते हुए ब्रह्माजी प्रेमावेशसे मूर्च्छित हो गये। जो ब्रह्माजीद्वारा किये गये इस स्तोत्रको एकाग्रचित्त होकर सुनता है, उसके सम्पूर्ण अभीष्ट पदार्थोंकी सिद्धि होती है; इसमें संशय नहीं है।

इस प्रकार स्तुति और बारंबार प्रणाम करके जगद्विधाता ब्रह्माजी सचेत हो धीरे-धीरे उठे और पुनः भक्तिभावसे बोले।

ब्रह्माजीने कहा—देवदेवेश्वर! उठिये। परमानन्दकारण! सानन्द, नित्यानन्दमय नन्दनन्दन! आपको नमस्कार है। नाथ! नन्दभवनमें पधारिये और वृन्दावनको छोड़िये। सौ वर्षोंके लिये जो सुदामका शाप प्राप्त हुआ है, उसको स्मरण कीजिये। भक्तके शापको सफल बनानेके लिये प्रियाजीको उतने समयके लिये त्याग दीजिये। फिर इन्हें पाकर आप गोलोकमें पधारियेगा। देव! आप पिताके घर आकर वहाँ आये हुए अक्रूरजीसे मिलिये। वे आपके पितृव्य (चाचा), माननीय अतिथि तथा धन्यवादके योग्य सर्वसमर्थ वैष्णव हैं। भगवन्! अब उनके साथ मधुपुरीकी यात्रा कीजिये। हरे! वहाँ शिवके धनुषको तोड़िये और शत्रुगणोंको हतोत्साह कीजिये—मार भगाइये। दुरात्मा कंसका वध कीजिये और पिता-माताको सान्त्वना दीजिये। द्वारकापुरीका निर्माण कीजिये, भूतलका भार उतारिये, भगवान् शंकरकी वाराणसीपुरीको दग्ध कीजिये और इन्द्रके भवनपर भी धावा बोलिये। युद्धमें शिवजीको जृम्भास्त्रसे जृम्भित करके बाणासुरकी भुजाओंको काटिये। नाथ! इससे पहले आपको रुक्मिणीका हरण, नरकासुरका वध तथा सोलह हजार राजकुमारियोंका पाणिग्रहण करना है। व्रजेश्वर! अब इन प्राणतुल्या प्रियतमाको छोड़िये और व्रजमें चलिये। उठिये, उठिये, आपका कल्याण हो। जबतक राधाकी नींद नहीं टूटती है; तभीतक चल दीजिये।

इतना कहकर ब्रह्माजी इन्द्र आदि देवताओंके साथ ब्रह्मलोकको चले गये। साथ ही शेषनाग तथा शंकरजी भी अपने स्थानको पधारे। देवताओंने श्रीकृष्णके ऊपर प्रेम और भक्तिसे पुष्प और चन्दनकी वर्षा की। फिर आकाशवाणी हुई—'प्रभो! कंस वधके योग्य है; अतः उसका वध कीजिये; अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ाइये और पृथ्वीके भारका निवारण कीजिये।' नारद! इस प्रकार आकाशवाणी सुनकर भूतभावन भगवान् श्रीकृष्ण भगवती राधाको छोड़कर धीरे-धीरे वहाँसे उठे। बारंबार पीछेकी ओर देखते हुए श्रीहरि कुछ दूरतक गये; फिर चन्दनवनमें वासस्थानके पास ही थोड़ी देरके लिये ठहर गये। उधर राधा निद्रा त्यागकर अपनी शय्यासे उठ बैठीं और शान्त, कान्त, प्राणवल्लभ श्रीहरिको वहाँ न देख विलाप करती हुई बोलीं—'हा नाथ! हा रमणश्रेष्ठ! हा प्राणेश्वर! हा

प्राणवल्लभ! हे प्राणचोर प्रियतम! तुम कहाँ गये?' फिर एक क्षणतक अन्वेषण करती हुई वे मालतीवनमें घूमती फिरीं। कभी क्षणभरके लिये बैठ जातीं, कभी उठ जातीं और कभी भूतलपर सो जाती थीं। कुछ क्षणोंतक अत्यन्त उच्चस्वरसे बारंबार रोदन और विलाप करती रहीं। 'हे नाथ! आओ-आओ' ऐसा बारंबार कहकर वे संतापसे मूर्च्छित हो गयीं। विरहानलसे संतप्त हो घास-फूससे ढके हुए भूतलपर इस तरह गिरीं, मानो प्राणान्त हो गया हो।

ब्रह्मन्! उस समय वहाँ अगणित गोपियाँ आ पहुँचीं। किन्हींके हाथोंमें चँवर थे और कोई चन्दनका अनुलेपन लिये आयी थीं। उन सबके बीच जो प्रियाली (प्यारी सखी) थी, उसने श्रीराधाको अपनी छातीसे लगा लिया। वह प्रियाजीको मरणासन्न-सी देख प्रेमसे विह्वल हो रोने लगी। उसने पङ्कके ऊपर सजल कमलदल बिछाकर उसपर श्रीराधाको सुलाया। वे चेष्टाहीन और मृतक-सी जान पड़ती थीं। गोपियाँ सुन्दर श्वेत चँवर डुलाती हुई उनकी सेवामें लग गयीं। उनके अङ्गोंमें चन्दनका लेप किया। उस अवस्थामें सती राधाके वस्त्र गीले हो गये थे। इतनेमें ही श्रीकृष्ण वहाँ लौट आये और अपनी उन प्राणवल्लभाको पूर्वोक्त अवस्थामें देखा। नारद! जब वे पास आने लगे तो बलवती गोपियोंने उन्हें रोक दिया और उन्हें इस तरह पकड़कर ले आयीं, जैसे राजभय आदिसे प्रेरित हो किसी दण्डनीय अपराधीको बाँधकर लाया गया हो। निकट आकर कृपानिधान श्रीकृष्णने राधाको गोदमें बिठा लिया, उन्हें सचेत किया और प्रबोधक वचनोंद्वारा समझाया। होशमें आकर देवी राधाने जब प्राणवल्लभको देखा, तब वे सुस्थिर हो गयीं और उन्होंने विरह-ज्वरको त्याग दिया। उस समय राधाकी चतुर सखी रत्नमालाने जो सबके द्वारा सम्मानित थी, श्रीकृष्णसे नीतिका सारभूत परम उत्तम मधुर वचन कहा।

रत्नमाला बोली—श्रीकृष्ण! सुनो। मैं ऐसी बात बताती हूँ, जो परिणाममें सुख देनेवाली, हितकारक, सत्य, नीतिका सारभूत तथा पति-पत्नीमें प्रीति बढ़ानेवाली है। यह नीतिसम्मत, वेदों और पुराणोंद्वारा अनुमोदित, लोक-व्यवहारमें प्रशंसनीय तथा उत्तम यशकी प्राप्ति करानेवाली है। नारियोंको जैसे माता प्यारी होती है, उसी तरह बन्धुजनोंमें भाई प्रिय होता है। भाईसे प्रिय पुत्र और पुत्रसे प्रिय पति होता है। साध्वी स्त्रियोंके लिये सत्पुरुषोंद्वारा समादृत स्वामी सौ पुत्रोंसे भी अधिक प्रिय होता है। रसिका और चतुरा स्त्रियोंके लिये पतिसे बढ़कर प्यारा दूसरा कोई नहीं है। इस मिथ्या संसारमें पति-पत्नीकी परस्पर प्रीति, समता तथा प्रेम-सौभाग्य परम अभीष्ट है। जिस-जिस घरमें पति-पत्नी एक-दूसरेके प्रति समभाव नहीं रखते, वहीं दरिद्रताका निवास है। वहाँ उन दोनोंका जीवन निष्फल है*। स्त्रीके लिये स्वामीसे मतभेद या फूट होना महान् दु:खकी बात है। वैसा जीवन शोक और संतापका बीज तथा मरणसे भी अधिक कष्टदायक है। सोते और जागते समय भी स्त्रियोंके प्राण पतिमें ही बसते हैं। पति ही इहलोक और परलोकमें स्त्रीका गुरु है। नाथ! ज्यों ही आप यहाँसे गये त्यों ही राधाको मूर्च्छा आ गयी। ये सहसा घाससे ढकी हुई भूमिपर गिर पड़ीं। उस समय मैंने इनके मुँहपर उत्तम शीतल जलका छींटा दिया, तब इनकी साँस चलने लगी और कुछ-कुछ चेतना आयी। मेरी सखी क्षण-क्षणमें पुकार उठती

* दम्पत्योः समता नास्ति यत्र यत्र हि मन्दिरे। अलक्ष्मीस्तत्र तत्रैव विफलं जीवनं तयोः॥ (६१।६४)

थीं—'हे नाथ! हे कृष्ण!' फिर दूसरे ही क्षण संतप्त हो रोने लगतीं और तत्काल मूर्च्छित हो जाती थीं। राधिकाका शरीर विरहाग्निसे संतप्त हो तपायी हुई लोहेकी छड़ीके समान अग्नितुल्य हो गया था; इसे छूआ नहीं जाता था। राधाके लिये सोने और जागनेमें, दिन और रातमें, घर और वनमें, जल, थल और आकाशमें तथा चन्द्रोदय और सूर्योदयमें कोई भेद नहीं रह गया है। इनकी आकृति मृतकतुल्य एवं जड़वत् हो गयी है। ये एक ही स्थानपर रहकर सदा सम्पूर्ण जगत्को विष्णुमय देखती हैं: चिकने पङ्कपर कमलोंके सजल पत्र बिछाकर जो शय्या तैयार की गयी थी; उसपर ये आपके लिये विरहातुर होकर सोयी थीं। प्यारी सखियाँ निरन्तर श्वेत चँवर डुलाकर सेवा करने लगीं। इनके अङ्गोंपर चन्दनमिश्रित जल छिड़का गया। इनके सारे वस्त्र गीले हो गये, तथापि राधाके अङ्गोंका स्पर्श होनेमात्रसे वहाँका सारा पङ्क सूख गया। स्निग्ध कमलदल तत्क्षण जलकर भस्म हो गये। चन्दन सूख गया। राधाका चम्पाके समान कान्तिमान् सुनहरा वर्ण केशके रंगकी भाँति काला पड़ गया। सिन्दूरके सुन्दर बिन्दु तत्काल श्याम हो गये। वेशभूषा, विलास, लीला एवं क्रीड़ा छूट गयी। कमलाकान्त कृष्ण! यदि आप शीघ्र लौटकर नहीं आयेंगे तो आपके वियोगमें मेरी सखी निश्चय ही अपने प्राणोंका परित्याग कर देगी। अतः नीतिविशारद श्रीकृष्ण! आप मन-ही-मन विचारकर जो उचित हो वह करें, जिससे आपके प्रति अनुरक्त अबलाकी हत्या न हो।

रत्नमालाकी यह बात सुनकर माधव हँस पड़े और हितकर, सत्य, नीतिसार एवं परिणाममें सुखद वचन बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—प्रिये रत्ने! यद्यपि मैं ईश्वर हूँ और मिलनमें बाधा डालनेवाले शापका खण्डन कर सकता हूँ, तथापि ऐसा करना मेरे लिये उचित नहीं है। मैं नियतिके नियमको बदला नहीं करता हूँ। समस्त ब्रह्माण्डोंमें मैंने जो मर्यादा स्थापित की है, उसीका सहारा लेकर देवता, मुनि और मनुष्य कर्म करते हैं (फिर उसको मैं ही कैसे तोड़ दूँ)। सुन्दरि! सुदामके शापसे हम दोनों दम्पतिको परस्पर जो कुछ समयके लिये वियोग प्राप्त होनेवाला है, वह यद्यपि हमें अभीष्ट नहीं है, तथापि होकर ही रहेगा। सुमध्यमे! मैं राधाको वर देता हूँ। उस वरके अनुसार जाग्रत्-अवस्थामें ही इन्हें मुझसे वियोगका अनुभव होगा; परंतु स्वप्नमें राधाको निरन्तर मेरा आलिङ्गन प्राप्त होता रहेगा। मैंने प्रियाजीको अध्यात्मकी बुद्धि प्रदान की है। उससे इनका शोक मिट जायगा। रत्नमाले! तुम्हारा कल्याण हो। तुम राधाको समझाओ। अब मैं नन्दभवनको जा रहा हूँ।

नारद! यों कहकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण नन्दभवनकी ओर चल दिये और सखियाँ राधाको समझाने लगीं। घर जाकर श्यामसुन्दरने माता-पिताको प्रणाम किया। माताने उन्हें गोदमें बिठा लिया और तुरंतका तैयार किया हुआ माखन खिलाया। फिर शीतल जल पीकर उन्होंने माताका दिया हुआ पान खाया और वहीं माँके समीप बैठे रहे। समस्त गोपसमूह श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगे। उन्होंने भी श्यामसुन्दरको प्रसन्नतापूर्वक हार, चन्दन और ताम्बूल दिये।

(अध्याय ६८-६९)

अक्रूरजीके शुभ स्वप्न तथा मङ्गलसूचक शकुनका वर्णन, उनका रासमण्डल और वृन्दावनका दर्शन करते हुए नन्दभवनमें जाना, नन्दद्वारा उनका स्वागत-सत्कार, उन्हें श्रीकृष्णके विविध रूपोंमें दर्शन, उनके द्वारा श्रीकृष्णकी स्तुति तथा श्रीकृष्णको मथुरा चलनेकी सलाह देना, गोपियोंद्वारा अक्रूरका विरोध और उनके रथका भञ्जन, श्रीकृष्णका उन्हें समझाना और आकाशसे दिव्य रथका आगमन

भगवान् नारायण कहते हैं—नारद! कंससे व्रजमें जानेकी आज्ञा पाकर अक्रूरजी अपने घर गये और उत्तम मिष्टान्न खाकर शय्यापर सोये। उन्होंने सुवासित जल पीकर कपूर मिला हुआ पान खाया और सुखपूर्वक निद्रा ली। तदनन्तर रातके पिछले पहरमें जब कि बाजे आदिकी ध्वनि नहीं होती थी; उन्होंने एक सुन्दर सपना देखा। ऐसा सपना, जिसकी पुराणों और श्रुतियोंमें प्रशंसा की गयी है। अक्रूरजी नीरोग थे। उनकी शिखा बँधी हुई थी। उन्होंने दो वस्त्र धारण कर रखे थे। वे सुन्दर शय्यापर सोये थे। उनके मनमें उत्तम स्नेह उमड़ रहा था और वे चिन्ता तथा शोकसे रहित थे।

मुने! उन्होंने स्वप्नमें पहले एक ब्राह्मण-बालकको देखा, जिसकी किशोर अवस्था और अङ्गकान्ति श्याम थी। वह दो भुजाओंसे विभूषित था। उसके हाथोंमें मुरली थी। वह पीत वस्त्र धारण करके वनमालासे सुशोभित था। उसके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। मालतीकी माला उसकी शोभा बढ़ाती थी। वह भूषणके योग्य और उत्तम मणिरत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित था। उसके मस्तकपर मोरपंखका मुकुट शोभा दे रहा था। मुखपर मन्द मुस्कानकी प्रभा फैल रही थी और नेत्र कमलोंकी शोभाको लज्जित कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने पति और पुत्रोंसे युक्त, पीताम्बरधारिणी तथा रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित एक सुन्दरी सतीको देखा, जिसके एक हाथमें जलता दीपक था और दूसरेमें श्वेत धान्य। उसका मुख शरद् ऋतुके चन्द्रमाको तिरस्कृत कर रहा था। वह सुन्दरी सती मुस्कराती हुई वर देनेको उद्यत थी। इसके बाद उन्हें शुभाशीर्वाद देते हुए एक ब्राह्मण, श्वेत कमल, राजहंस, अश्व तथा सरोवरके दर्शन हुए। उन्होंने फल और फूलोंसे लदे हुए आम, नीम, नारियल, विशाल आक और केलेके वृक्षका सुन्दर एवं मनोहर चित्र भी देखा। उन्हें यह भी दिखायी दिया कि सफेद साँप मुझे काट रहा है और मैं पर्वतपर खड़ा हूँ। उन्होंने कभी अपनेको वृक्षपर, कभी हाथीपर, कभी नावपर और कभी घोड़ेकी पीठपर बैठे देखा। कभी देखा कि मैं वीणा बजा रहा हूँ और खीर खा रहा हूँ। कमलके पत्तेपर परोसा हुआ प्रिय अन्न दही, दूधके साथ ले रहा हूँ। कभी देखा कि मेरे अङ्गोंमें कीड़े और विष्ठा लग गये हैं और मैं रोता-रोता मोहित हो रहा हूँ। कभी उन्हें अपने हाथोंमें श्वेत धान्य और श्वेत पुष्प दिखायी दिया तथा कभी उन्होंने अपने-आपको चन्दनसे चर्चित देखा। कभी अपने-आपको अट्टालिकापर और कभी समुद्रमें देखा। शरीरमें रक्त लगा है; अङ्ग-अङ्ग छिन्न-भिन्न एवं क्षत-विक्षत हो रहा है और उसमें मेद तथा पीब लिपटे हुए हैं—यह बात देखनेमें आयी। तदनन्तर चाँदी, सोना, उज्ज्वल मणिरत्न, मुक्ता, माणिक्य, भरे हुए कलशका जल, बछड़ासहित गौ, साँड़, मोर, तोता, सारस, हंस, चील, खंजरीट, ताम्बूल, पुष्पमाला, प्रज्वलित अग्नि, देवपूजा, पार्वतीकी प्रतिमा, श्रीकृष्णकी प्रतिमा, शिवलिङ्ग, ब्राह्मण-

बालिका, सामान्य बालिका, फली और पकी हुई खेती, देवस्थान, सिंह, बाघ, गुरु और देवताके दर्शन हुए।

ऐसा स्वप्न देख प्रातःकाल उठकर उन्होंने इच्छानुसार आह्निक कृत्योंका सम्पादन किया। इसके बाद उद्धवसे स्वप्नका सारा वृत्तान्त कहा और उनकी आज्ञा ले गुरु एवं देवताकी पूजा करके मन-ही-मन श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए वहाँसे यात्रा की। नारद! रास्तेमें भी उन्हें ऐसे ही मङ्गलयोग्य, शुभदायक, मनोवाञ्छित फल देनेवाले, रमणीय तथा मङ्गलसूचक शकुन अपने सामने दृष्टिगोचर हुए। बायीं तरफ उन्हें मुर्दा, सियारिन, भरा घड़ा, नेवला, नीलकण्ठ, दिव्याभूषणोंसे विभूषित पति-पुत्रवती साध्वी स्त्री, श्वेत पुष्प, श्वेत माला, श्वेत धान्य तथा खञ्जरीटके शुभ दर्शन हुए। दाहिनी ओर उन्होंने जलती आग, ब्राह्मण, वृषभ, हाथी, बछड़ेसहित गाय, श्वेत अश्व, राजहंस, वेश्या, पुष्पमाला, पताका, दही, खीर, मणि, सुवर्ण, चाँदी, मुक्ता, माणिक्य, तुरंतका कटा हुआ मांस, चन्दन, मधु, घी, कृष्णसार मृग, फल, लावा, सरसों, दर्पण, विचित्र विमान, सुन्दर दीप्तिमती प्रतिमा, श्वेत कमल, कमलवन, शङ्ख, चील, चकोर, बिलाव, पर्वत, बादल, मोर, तोता और सारसके दर्शन किये तथा शङ्ख, कोयल एवं बाजोंकी मङ्गलमयी ध्वनि सुनी। श्रीकृष्ण-महिमाके विचित्र गान, हरिकीर्तन और जय-जयकारके शब्द भी उनके कानोंमें पड़े।

ऐसे शुभ-शकुन देख-सुनकर अक्रूरका हृदय हर्षसे खिल उठा। उन्होंने श्रीहरिका स्मरण करके पुण्यमय वृन्दावनमें प्रवेश किया। सामने देखा—रमणीय रासमण्डल शोभा पाता है, जो मनको अभीष्ट है। चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, पुष्प तथा चन्दनका स्पर्श करके बहनेवाली वायु उस स्थानको सुवासित कर रही है। केलेके खम्भे तथा मङ्गल-कलश रासमण्डलकी शोभा बढ़ा रहे हैं। रेशमी सूतमें गुँथे हुए आम्रपल्लवोंकी सुन्दर बन्दनवारें भी इस रम्य प्रदेशकी श्रीवृद्धि कर रही हैं। सारा शोभनीय रासमण्डल सब ओरसे पद्मरागमणिद्वारा निर्मित है तथा तीन करोड़ रत्नमय मन्दिर एवं लाखों रमणीय कुञ्ज-कुटीर उसकी शोभा बढ़ाते हैं।

रासमण्डल तथा वृन्दावनकी शोभा देखकर जब अक्रूर कुछ दूर आगे गये तो उन्हें अपने समक्ष नन्दरायजीका परम उत्तम सुरम्य व्रज दिखायी दिया, जो विष्णुके निवास-स्थान—वैकुण्ठधामके समान सुशोभित था। उसमें रत्नोंकी सीढ़ियाँ लगी थीं। रत्नोंके बने हुए खम्भोंसे वह बड़ा दीप्तिमान् दिखायी देता था। भाँति-भाँतिके विचित्र चित्र उसका सौन्दर्य बढ़ा रहे थे। श्रेष्ठ रत्नोंके मण्डलाकार घेरेसे वह घिरा हुआ था। विश्वकर्माद्वारा रचित वह नन्दभवन मणियोंके सारभागसे खचित (जड़ा हुआ) था। दरवाजेपर जो मार्ग दिखायी दिया, उसके द्वारा अक्रूरने राजद्वारके भीतर प्रवेश किया। वह द्वार पताकाओं तथा रत्नोंकी झालरोंसे सजा था। मुक्ता और माणिक्यसे विभूषित था। रत्नोंके दर्पण उसकी शोभा बढ़ा रहे थे तथा रत्नोंसे जटित होनेके कारण उस द्वारकी विचित्र शोभा होती थी। वहाँ रत्नमयी वीथियोंकी रचना की गयी थी तथा मङ्गल-कलशोंसे सुसज्जित वह द्वार मङ्गलमय दिखायी देता था।

अक्रूरका आगमन सुनकर नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बलराम तथा श्रीकृष्णको साथ ले उनकी अगवानीके लिये गये। नन्दजीके साथ वृषभानु आदि गोप भी थे। नर्तकी, भरा हुआ घड़ा, गजराज तथा श्वेत धान्यको आगे करके काली गौ, मधुपर्क, पाद्य तथा रत्नमय आसन आदि साथ ले नन्दजी विनीत एवं शान्तभावसे मुस्कराते हुए आगे बढ़े। वे गोपगणों तथा बालकोंसहित आनन्दमग्न हो रहे थे। महाभाग अक्रूरको देख

नन्दजीने तत्काल ही उन्हें हृदयसे लगा लिया। सब गोपोंने मस्तक झुकाकर अक्रूरको प्रणाम किया और आशीर्वाद लिये। मुने! उन सबका परस्पर संयोग बड़ा ही गुणवान् हुआ। अक्रूरने बारी-बारीसे श्रीकृष्ण और बलरामको गोदमें उठा लिया तथा उनके गाल चूमे। उस समय उनका सारा अङ्ग पुलकित था। नेत्रोंसे अश्रुधारा झर रही थी। हृदयमें आह्लाद उमड़ा आ रहा था। अक्रूर कृतार्थ हो गये। उनका मनोरथ सिद्ध हो गया। उन्होंने दो भुजाओंसे सुशोभित श्यामसुन्दर श्रीकृष्णकी ओर एक क्षणतक देखा, जो पीताम्बर धारण किये मालतीकी मालासे विभूषित थे। उनके सारे अङ्ग चन्दनसे चर्चित थे। उन्होंने हाथमें बंशी ले रखी थी। ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवता तथा सनकादि मुनीन्द्र जिनकी स्तुति करते हैं और गोप-कन्याएँ जिनकी ओर सदा निहारती रहती हैं; उन परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णको अक्रूरने एक क्षणतक अपनी गोदमें देखा। वे मुस्करा रहे थे। तत्पश्चात् उन्होंने चतुर्भुज विष्णुके रूपमें उनको सामने खड़े देखा। लक्ष्मी और सरस्वती—ये दो देवियाँ उनके अगल-बगलमें खड़ी थीं। वे वनमालासे विभूषित थे। सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षद उनकी सेवामें उपस्थित थे। सिद्धोंके समुदाय भक्तिभावसे नम्र हो उन परात्पर प्रभुकी सेवा कर रहे थे।

फिर, दूसरे ही क्षण अक्रूरने श्रीकृष्णको महादेवजीके रूपमें देखा। उनके पाँच मुख और प्रत्येक मुखमें तीन-तीन नेत्र थे। अङ्गकान्ति शुद्ध स्फटिक-मणिके समान उज्ज्वल थी। नागराजके आभूषण उनकी शोभा बढ़ाते थे। दिशाएँ ही उनके लिये वस्त्रका काम देती थीं। योगियोंमें श्रेष्ठ वे परब्रह्म शिव अपने अङ्गोंमें भस्म रमाये, सिरपर जटा धारण किये और हाथमें जप-माला लिये ध्यानमें स्थित थे।

तदनन्तर एक ही क्षणमें श्रीकृष्ण उन्हें ध्यानपरायण एवं मनीषियोंमें श्रेष्ठ चतुर्भुज ब्रह्माके रूपमें दृष्टिगोचर हुए। फिर कभी धर्म, कभी शेष, कभी सूर्य, कभी सनातन ज्योतिःस्वरूप और कभी कोटि-कोटि कन्दर्पनिन्दक, परम शोभासम्पन्न एवं कामिनियोंके लिये कमनीय प्रेमास्पदके रूपमें दिखायी दिये। इस रूपमें नन्दनन्दनका दर्शन करके अक्रूरने उन्हें छातीसे लगा लिया। नारद! नन्दजीके दिये हुए रमणीय रत्नसिंहासनपर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णको बिठाकर भक्तिभावसे उनकी परिक्रमा करके पुलकित-शरीर हो अक्रूरने पृथ्वीपर माथा टेक उन्हें प्रणाम किया और स्तुति प्रारम्भ की।

अक्रूर बोले—जो सबके कारण, परमात्मस्वरूप तथा सम्पूर्ण विश्वके ईश्वर हैं, उन श्रीकृष्णको बारंबार नमस्कार है। सर्वेश्वर! आप प्रकृतिसे परे, परात्पर, निर्गुण, निरीह, निराकार, साकार, सर्वदेवस्वरूप, सर्वदेवेश्वर, सम्पूर्ण देवताओंके भी अधिदेवता तथा विश्वके आदिकारण हैं; आपको नमस्कार है। असंख्य ब्रह्माण्डोंमें आप ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव-रूपमें निवास करते हैं। आप ही सबके आदिकारण हैं। विश्वेश्वर और विश्व दोनों आपके ही स्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। गोपाङ्गनाओंके प्राणवल्लभ! आपको नमस्कार है। गणेश और ईश्वर आपके ही रूप हैं। आपको नमस्कार है। आप देवगणोंके स्वामी तथा श्रीराधाके प्राणवल्लभ हैं; आपको बारंबार नमस्कार है। आप ही राधारमण तथा राधाका रूप धारण करते हैं। राधाके आराध्य देवता तथा राधिकाके प्राणाधिक प्रियतम भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। राधाके वशमें रहनेवाले, राधाके अधिदेवता और राधाके प्रियतम! आपको नमस्कार है। आप राधाके प्राणोंके अधिष्ठाता देवता हैं तथा सम्पूर्ण विश्व आपका ही रूप है; आपको नमस्कार है। वेदोंने जिनकी स्तुति की है, वे परमात्मा तथा वेदज्ञ विद्वान् भी आप ही हैं। वेदोंके ज्ञानसे सम्पन्न होनेके कारण आप

वेदी कहे गये हैं; आपको नमस्कार है। वेदोंके अधिष्ठाता देवता और बीज भी आप ही हैं; आपको नमस्कार है। जिनके रोमकूपोंमें असंख्य ब्रह्माण्ड नित्य निवास करते हैं, उन महाविष्णुके ईश्वर आप विश्वेश्वरको बारंबार नमस्कार है। आप स्वयं ही प्रकृतिरूप और प्राकृत पदार्थ हैं। प्रकृतिके ईश्वर तथा प्रधान पुरुष भी आप ही हैं। आपको बारंबार नमस्कार है*।

इस प्रकार स्तुति करके अक्रूरजी नन्दरायजीके सभाभवनमें मूर्च्छित हो गये और सहसा भूमिपर गिर पड़े। उसी अवस्थामें पुनः उन्होंने अपने हृदयमें और बाहर भी सब ओर उन श्यामसुन्दर सर्वेश्वर परमात्माको देखा। वे ही विश्वमें व्याप्त थे और वे ही विश्वरूपमें प्रकट हुए थे। नारद! अक्रूरजीको मूर्च्छित हुआ देख नन्दजीने आदरपूर्वक उठाया और रमणीय रत्नसिंहासनपर बिठा दिया। तत्पश्चात् उन्होंने अक्रूरसे सारा वृत्तान्त पूछा और बारंबार कुशलप्रश्न करते हुए उन्हें मिष्टान्न भोजन कराया। अक्रूरने कंसका सारा वृत्तान्त कह सुनाया और यह भी कहा कि अपने माता-पिताको बन्धनसे छुड़ानेके लिये बलराम और श्रीकृष्णको वहाँ अवश्य चलना चाहिये।

जो अक्रूरद्वारा किये गये इस स्तोत्रका एकाग्रचित्त होकर पाठ करता है, वह पुत्रहीन हो तो पुत्र पाता है और भार्याहीन हो तो उसे प्रिय भार्याकी उपलब्धि होती है। निर्धनको धन, भूमिहीनको उर्वरा भूमि, संतानहीनको संतान और प्रतिष्ठारहितको प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है और जो यशस्वी नहीं है, वह भी अनायास ही महान् यश प्राप्त कर लेता है।

तदनन्तर अक्रूरजी रातके समय अत्यन्त प्रसन्नचित्त हो रमणीय चम्पाकी शय्यापर श्रीकृष्णको छातीसे लगाकर सोये। प्रातःकाल सहसा उठकर परम उत्तम आह्निक कृत्यका सम्पादन करके उन्होंने जगदीश्वर श्रीकृष्ण तथा बलरामको अपने रथपर बिठाया। पाँच प्रकारके गव्य (दूध, दही, माखन, घी और छाँछ) तथा नाना प्रकारके परम दुर्लभ द्रव्य रखवाये। वृषभानु, नन्द, सुनन्द तथा चन्द्रभानु गोपको भी साथ ले लिया। उस समय व्रजराज नन्द गोपने आनन्दमग्न हो नाना प्रकारके वाद्य—मृदङ्ग, मुरज (ढोल), पटह, पणव, डंका, दुन्दुभि, आनक, सज्जा, संनहनी, कांस्य-पट्ट (झाँझ), मर्दल और मण्डवी आदि बजवाये। बाजोंकी ध्वनि और बलराम तथा श्रीकृष्णके जानेका समाचार सुन श्रीकृष्णको रथपर बैठे देख गोपियाँ प्रणय-कोपसे पीड़ित हो उनके पास आ पहुँचीं। ब्रह्मन्! श्रीकृष्णके मना करनेपर भी श्रीराधाकी प्रेरणासे उन गोपकिशोरियोंने पैरोंके आघातसे राजा कंसके उस रथको अनायास ही तोड़ डाला। उसपर बैठे हुए सब गोप हाहाकार

* नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे। सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः॥
पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च। निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे॥
सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च। सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे॥
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। स्वरूपायादिबीजाय तदीशविश्वरूपिणे॥
नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे। नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः॥
राधारमणरूपाय राधारूपधराय च। राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च॥
राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च। राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः॥
वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः। वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः। महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः॥
स्वयं प्रकृतिरूपाय प्राकृताय नमो नमः। प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च॥
(७०। ५६—६५)

करने लगे और बलवती गोपियाँ श्रीकृष्णको गोदमें लेकर चली गयीं। किसी गोपीने क्रोधपूर्वक क्रूर अक्रूरको बहुत फटकारा। कुछ गोपियाँ अक्रूरको वस्त्रसे बाँधकर वहाँसे चल दीं। बेचारे अक्रूरको बड़ा कष्ट प्राप्त हुआ। यह देख माधव राधाके निकट गये और पुनः उन्हें समझाने लगे। उन्होंने आध्यात्मिक योगद्वारा विनय और आदरके साथ अक्रूरको भी समझाया और श्रीराधाको आश्वासन दिया। इसी समय आकाशसे एक दिव्य रथ भूतलपर आया, जो मन्त्रसे प्रेरित होकर चलता था। वह विचित्र वस्त्रोंसे सुशोभित था। श्रीहरिने अपने सामने खड़े हुए उस रथको देखा। उसमें श्रेष्ठ मणिरत्न जड़े हुए थे। वह रथ विश्वकर्माद्वारा बनाया गया था। उसे देखकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण माताके घरमें आये। वहाँ भाईसहित भगवान् माधव, जिनके चरणोंकी वन्दना मुनीन्द्र, देवेन्द्र, ब्रह्मा, शिव और शेष आदि करते हैं, खा-पीकर सुखसे सोये। (अध्याय ७०)

शुभ लग्नमें यात्रासम्बन्धी मङ्गलकृत्य करके श्रीकृष्णका मथुरापुरीको प्रस्थान, पुरीकी शोभाका वर्णन, कुब्जापर कृपा, मालीको वरदान, धोबीका उद्धार, कुब्जाका गोलोकगमन, कंसका दुःस्वप्न, रङ्गभूमिमें कंसका पधारना, धनुर्भङ्ग, हाथीका वध, कंसका उद्धार, उग्रसेनको राज्यदान, माता-पिताके बन्धन काटना, वसुदेवजीद्वारा नन्द आदिका सत्कार और ब्राह्मणोंको दान

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! जब वायुसे सुवासित, चन्दननिर्मित और फूलोंसे बिछी हुई शय्यापर राधिकाजी सो गयीं तथा गोपिकाएँ भी गाढ़ निद्रामें निमग्न हो गयीं, तब रातमें तीसरे पहरके बीत जानेपर शुभ वेलामें शुभ नक्षत्रसे चन्द्रमाका संयोग होनेपर अमृतयोगसे युक्त लग्न आया। लग्नके स्वामी शुभ ग्रहोंमेंसे कोई एक अथवा बुध थे। उस लग्नपर शुभ ग्रहोंकी दृष्टि थी। पापग्रहोंके संयोगसे जो दुर्योग या दोष आदि प्राप्त होते हैं, उनका उस लग्नमें सर्वथा अभाव था। ऐसे समयमें श्रीहरिने स्वयं उठकर माता यशोदाको जगाया, मङ्गल-कृत्य करवाया और बन्धुजनोंको आश्वासन दिया। जो विश्व-ब्रह्माण्डके स्वतन्त्र कर्ता और स्वतन्त्र पालक हैं, उन्हीं भगवान्‌ने राधिकाजीके भयसे भीत-से होकर बाजा बजानेकी मनाही कर दी। वे दोनों पैर धोकर दो शुद्ध वस्त्र धारण करके चन्दन आदिसे लिपे हुए शुद्ध स्थानमें बैठे। उनके वामभागमें चन्दन आदिसे सुसज्जित तथा फल और पल्लवसे युक्त भरा हुआ कलश रखा गया। दाहिने भागमें प्रज्वलित अग्नि तथा ब्राह्मणदेवता उपस्थित हुए। सामने पति-पुत्रवती सती साध्वी स्त्री, प्रज्वलित दीपक और दर्पण प्रस्तुत किये गये। पुरोहितजीने सुस्निग्ध दूर्वाकाण्ड, श्वेत पुष्प तथा शुभसूचक श्वेत धान्य श्यामसुन्दरके हाथमें दिये। उन सबको लेकर उन्होंने मस्तकपर रख लिया। तत्पश्चात् श्रीहरिने घी, मधु, चाँदी, सोना और दहीके दर्शन किये। ललाटमें चन्दनका लेप करके गलेमें पुष्पमाला धारण की। गुरुजनों तथा ब्राह्मणके चरणोंमें भक्तिभावसे मस्तक झुकाया और शङ्खध्वनि, वेदपाठ, संगीत, मङ्गलाष्टक एवं ब्राह्मणके मनोहर आशीर्वाद बड़े आदरके साथ सुने। सर्वत्र मङ्गल प्रदान करनेवाले अपने ही मङ्गलमय स्वरूपका ध्यान करके उन्होंने परम सुन्दर दाहिने पैरको आगे बढ़ाया। नासिकाके वामभागसे वायुको भीतर भरकर भगवान्‌ने मध्यमा अंगुलिसे वामरन्ध्रको दबाया और नाकके दाहिने छिद्रसे उस वायुको

बाहर निकाल दिया। तत्पश्चात् नन्दनन्दन नन्दके श्रेष्ठ प्राङ्गणमें सानन्द आये। वे परमानन्दमय, नित्यानन्दस्वरूप तथा सनातन हैं। नित्य-अनित्य सब उन्हींके रूप हैं। वे नित्यबीजस्वरूप, नित्यविग्रह, नित्याङ्गभूत, नित्येश तथा नित्यकृत्यविशारद हैं। उनके रूप, यौवन, वेश-भूषा तथा किशोर-अवस्था—सभी नित्य नूतन हैं। उनके सम्भाषण, प्रेम-प्राप्ति, सौभाग्य, सुधा-रससे सराबोर मीठे वचन, भोजन तथा पद भी नित्य नवीन हैं। इस अत्यन्त रमणीय प्राङ्गणमें खड़े-खड़े मायायुक्त मायेश्वर अत्यन्त स्नेहमें डूब गये। तत्पश्चात् वे वहाँसे जानेको उद्यत हुए। केलेके सुन्दर खम्भों और रेशमी डोरेमें गुँथे हुए आम्र-पल्लवोंकी बन्दनवारोंसे उस आँगनको सजाया गया था। विश्वकर्माने उसकी फर्शमें पद्मराग मणि जड़ दी थी। कस्तूरी, केसर और चन्दनसे उसका संस्कार किया गया था। अक्रूर तथा बान्धवजनोंसहित श्रीकृष्ण स्वयं वहाँ थोड़ी देर खड़े रहे। यशोदाने बायीं ओरसे और आनन्दयुक्त नन्दने दाहिनी ओरसे आकर अपने लालाको हृदयसे लगा लिया। बन्धु-बान्धवोंने उनसे प्रेमभरी बातें कीं तथा मैया और बाबाने लालाका मुँह चूमा।

मुने! तदनन्तर श्रीकृष्ण गुरुजनोंको नमस्कार करके आँगनसे बाहर निकले और स्वर्गीय रथपर आरूढ़ हो सुन्दर मथुरापुरीकी ओर चल दिये। मथुरा अपनी शोभासे इन्द्रकी अमरावतीपुरीको परास्त करके अत्यन्त मनोहर दिखायी देती थी। श्रीकृष्णने अक्रूर तथा सखाओंके साथ उस रमणीय नगरीमें प्रवेश किया। श्रेष्ठ रत्नोंसे खचित और विश्वकर्माद्वारा रचित मथुरापुरी सुन्दर बहुमूल्य रत्ननिर्मित कलशोंसे सुशोभित थी। सैकड़ों सुन्दर, श्रेष्ठ और अभीष्ट राजमार्गोंसे वह नगरी घिरी हुई थी। वे राजमार्ग चन्द्रकान्त मणियोंके सारभागसे जटित होनेके कारण चन्द्रमाके समान ही प्रकाशित होते थे। वहाँ विचित्र मणियोंके सारतत्त्वसे शत-शत वीथियोंका निर्माण किया गया था। पुण्य वस्तुओंके संचयसे सम्पन्न श्रेष्ठ व्यवसायी अपनी दूकानोंसे उन राजमार्गोंकी शोभा बढ़ाते थे। पुरीके चारों ओर सहस्रों सरोवर शोभा दे रहे थे, जो शुद्ध स्फटिकमणिके समान उज्ज्वल तथा पद्मरागमणियोंकी दीप्तिसे देदीप्यमान थे। रत्नमय अलंकारों एवं आभूषणोंसे विभूषित पद्मिनी जातिकी श्रेष्ठ सुन्दरियोंसे वह नगरी शोभायमान थी। वे सब सुन्दरियाँ सुस्थिर यौवनसे युक्त थीं और श्रीकृष्ण-दर्शनकी लालसासे मुँह ऊपर उठाये अपलक नेत्रोंसे राजमार्गकी ओर देख रही थीं। उनके हाथोंमें अक्षतपुञ्ज थे। असंख्य रत्ननिर्मित रथ पुरीकी शोभा बढ़ाते थे। अनेक प्रकारके विचित्र भूषणोंसे उन रथोंको विभूषित एवं चित्रित किया गया था। बहुत-से पुष्पोद्यान, जो भाँति-भाँतिके पुष्पोंसे भरे थे और जिनमें भ्रमर रसास्वादन करते थे, मथुरापुरीकी श्रेयोवृद्धि कर रहे थे। माधुर्य मधुसे युक्त, मधुलोभी तथा मधुमत्त मधुकर मधुकरियोंके समूहसे संयुक्त हो उन उद्यानोंमें आनन्दका अनुभव कर रहे थे। नगरके चारों ओर अनेक प्रकारके दुर्ग थे, जिनके कारण शत्रुओंका वहाँ पहुँचना अत्यन्त कठिन था। रक्षाशास्त्र-विशारद रक्षकोंसे वह पुरी सदा सुरक्षित थी। विश्वकर्माद्वारा श्रेष्ठ एवं विचित्र रत्नोंसे रचित अगणित अट्टालिकाओंसे संयुक्त मथुरानगरी बड़ी मनोहर जान पड़ती थी।

इस प्रकार मथुरापुरीकी शोभा देख आगे बढ़ते हुए कमलनयन श्रीकृष्णने मार्गमें कुब्जाको देखा, जो अत्यन्त जराजीर्ण एवं वृद्धा-सी थी। डंडेके सहारे चलती थी। अत्यन्त झुकी हुई थी और झुर्रियाँ लटक रही थीं। उसकी आकृति रूखी और विकृत थी। वह कस्तूरी और केसर मिला हुआ चन्दनका अनुलेपन लिये आ रही थी, जिसके स्पर्शमात्रसे शरीर सुगन्धित, सुस्निग्ध तथा अत्यन्त मनोहर हो जाता था। उस वृद्धाने शान्त,

ऐश्वर्ययुक्त, श्रीसम्पन्न, श्रीनिवास, श्रीबीज एवं श्रीनिकेतन श्यामसुन्दर श्रीवल्लभको मन्द मुस्कानके साथ देखा। देखते ही उसके दोनों हाथ जुड़ गये। वह भक्तिसे विनीत हो गयी और सहसा चरणोंमें सिर रखकर उसने प्रणाम किया। साथ ही उनके श्याम मनोहर अङ्गमें चन्दन लगाया। श्रीकृष्णके जो सखा थे, उनके अङ्गोंमें भी चन्दनका

अनुलेपन किया। फिर चन्दनका सुवर्णमय पात्र हाथमें लिये श्रेष्ठ दासीने बारंबार परिक्रमा करके श्रीकृष्णको प्रणाम किया। श्रीकृष्णकी दृष्टि पड़ते ही वह सहसा अनुपम शोभासे सम्पन्न तथा रूप और यौवनसे लक्ष्मीके समान रमणीय हो गयी। आगमें तपाकर शुद्ध की हुई स्वर्णप्रतिमाके समान दीप्तिमती हो उठी। सुन्दर वस्त्र और रत्नोंके आभूषण उसके अङ्गोंकी शोभा बढ़ाने लगे। वह बारह वर्षकी अवस्थावाली कुमारी कन्याके समान धन्या और मनोहारिणी प्रतीत होने लगी। बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित श्रेष्ठतम हारसे उसका वक्षःस्थल उद्भासित हो उठा। वह गजराजकी भाँति मन्द गतिसे चलने लगी। रत्नोंके मञ्जीर उसके चरणोंकी शोभा बढ़ाने लगे। सिरपर केशोंकी बँधी हुई वेणी मालतीकी मालासे आवेष्टित थी, जो सुन्दर और गोलाकार दिखायी देती थी। उसने ललाटमें सिन्दूरकी बेंदी लगा रखी थी, जो अनारके फूलकी भाँति लाल थी। उस बेंदीके ऊपर कस्तूरी और चन्दनके भी बिन्दु थे। उस सुन्दरीने अपने हाथमें रत्नमय दर्पण ले रखा था। श्रीनिवास हरि उसे आश्वासन देकर आगे बढ़ गये। वह कृतार्थ हो प्रसन्नतापूर्वक अपने घर गयी, मानो लक्ष्मी अपने धामको जा रही हो। उसने अपने घरको देखा। वह लक्ष्मीके निवास-मन्दिरकी भाँति मनोहर हो गया था। उसमें रत्नमयी शय्या बिछी थी तथा उस भवनका निर्माण श्रेष्ठ रत्नोंके सारतत्त्वसे हुआ था। रत्नोंकी दीपमालाएँ अपनी प्रभासे उस गृहको उद्भासित कर रही थीं। उस भवनमें सब ओर रत्नमय दर्पण लगे थे, जो उसकी भव्यताको बढ़ा रहे थे। सिन्दूर, वस्त्र, ताम्बूल, श्वेत चँवर और माला लिये दास-दासियोंके समुदाय उस दिव्य भवनको घेरकर खड़े थे। मुने! सुन्दरी कुब्जा मन, वाणी और शरीरसे श्रीहरिके चरणोंके ही चिन्तन और समाराधनमें लगी थी। वह निरन्तर यही सोचती रहती थी कि कब श्रीहरिका शुभागमन होगा और कब मैं उनके मनोहर मुखचन्द्रके दर्शन पाऊँगी। उसे सारा जगत् सदा श्रीकृष्णमय दिखायी देता था। करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्य-लीलासे सुशोभित श्यामसुन्दर पलभरके लिये भी उसे भूलते नहीं थे।

कुब्जाको विदा करनेके पश्चात् श्रीकृष्णने एक मनोहर मालीको देखा, जो मालाओंका समूह लिये राजभवनकी ओर जा रहा था। उसने भी श्रीकान्तको देख पृथ्वीपर माथा टेककर उन्हें प्रणाम किया और अपनी सारी मालाएँ परमात्मा श्रीकृष्णको अर्पित कर दीं। श्रीकृष्ण उसे अत्यन्त दुर्लभ दास्यभावका वरदान दे मालाएँ पहनकर उस सुन्दर राजमार्गपर आगे बढ़ गये। तदनन्तर उन्हें एक धोबी दिखायी दिया, जो वस्त्रोंका गट्ठर लिये

जा रहा था। वह बड़ा बलवान् और अहंकारी था तथा यौवनके मदसे उन्मत्त हो सदा उद्दण्डतापूर्ण बर्ताव किया करता था। महामुने! श्रीकृष्णने उससे विनयपूर्वक वस्त्र माँगा। उसने वस्त्र तो उन्हें दिया नहीं, उलटे कठोर बातें सुनायीं।

धोबी बोला—ओ मूढ़! तू गोप-जनोंका लाड़ला है। यह वस्त्र गायके चरवाहोंके योग्य नहीं है; अत्यन्त दुर्लभ और राजाओंके ही उपयोगमें आने योग्य है।

धोबीकी यह बात सुनकर मधुसूदन हँसे। बलदेव, अक्रूर और गोपगण भी हँसने लगे। श्रीकृष्णने एक ही तमाचेमें उस धोबीका काम तमाम करके कपड़ोंका वह गट्ठर ले लिया और सखाओंसहित उन्होंने अपनी रुचिके अनुसार वस्त्र धारण किये। वह रजकराज (धोबियोंका सरदार) दिव्य देह धारण करके श्रीकृष्ण-पार्षदोंसे वेष्टित रत्नमय विमानद्वारा गोलोकको चला गया। उसका वह दिव्य शरीर अक्षय यौवनसे युक्त, जरा और मृत्युका निवारक, श्रेष्ठ पीताम्बरसे सुशोभित, मन्द मुस्कानसे विलसित, श्यामकान्तिसे कमनीय और मनोहर था। गोलोकमें पहुँचकर वह भी वहाँके पार्षदोंमें एक पार्षद हो गया। वहाँ अपने मनको वशमें रखकर वह नित्य-निरन्तर श्रीकृष्णके शुभागमनका चिन्तन करता रहा। इधर मथुरामें सूर्यदेव अस्ताचलको चले गये। तब श्रीकृष्णकी आज्ञा लेकर अक्रूर अपने घरको गये और श्रीकृष्ण भी नन्द एवं बलदेव आदिके साथ आनन्दपूर्वक किसी वैष्णवके घर गये, जो कपड़ा बुननेका व्यवसाय करता था। उसने अपना सर्वस्व भगवान्‌को समर्पित कर रखा था। उस भक्तने श्रीनिवासको प्रणाम करके उनका पूजन किया और भगवान्‌ने उसको अपना वह दास्यभाव प्रदान किया जो ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी दुर्लभ है। वहाँ उत्तम मिष्टान्न भोजन करके सब लोग पलंगपर सो गये। तदनन्तर श्रीकृष्ण कुब्जाके घर पधारे। उसने स्वागत किया। भगवान्‌ने उसको बताया—'प्रिये! श्रीरामावतारके समय तुमने मेरे लिये तप किया था; अतः अब मुझसे मिलकर जरा-मृत्युरहित और अत्यन्त दुर्लभ मेरे परमधाम गोलोकको जाओ।' इसी समय गोलोकसे एक रत्ननिर्मित रथ वहाँ आया और कुब्जा दिव्य देह धारण करके उसीके द्वारा गोलोकको चली गयी। मुने! वह वहाँ चन्द्रमुखी गोपी हो गयी और कितनी ही गोपियाँ उसकी परिचारिका हुईं।

भगवान् नन्दनन्दन भी क्षणभर कुब्जाके यहाँ ठहरकर पुनः अपने निवास-मन्दिरमें लौट आये, जहाँ नन्दजी सानन्द विराजमान थे। उधर भयविह्वल कंसने रातको नींद आ जानेपर दुःखद दुःस्वप्न देखा, जो उसकी मृत्युका सूचक था। उसने देखा, सूरज आकाशसे गिरकर पृथ्वीपर पड़ा है और उसके चार खण्ड हो गये हैं। मुने! इसी तरह चन्द्रमण्डल भी आकाशसे भूमिपर गिरकर दस खण्डोंमें विभक्त दिखायी दिया। उसने कुछ ऐसे पुरुष देखे, जिनकी आकृति विकृत थी। वे हाथोंमें रस्सी लिये नंग-धड़ंग दिखायी देते थे। एक विधवा शूद्री दृष्टिगोचर हुई, जो नंगी थी और

जिसकी नाक कटी हुई थी। वह हँसती थी। उसने चूनेका तिलक लगा रखा था और उसके सफेद और काले केश ऊपरकी ओर उठे थे। वह एक हाथमें तलवार और दूसरेमें खप्पर लिये हुए थी। उसकी जीभ लपलपा रही थी और उसके गलेमें मुण्डमाला पड़ी थी। उसके सिवा कंसने गदहा, भैंस, बैल, सूअर, भालू, कौआ, गीध, कङ्क, वानर, सफेद कुत्ता, घड़ियाल, सियार, भस्मपुञ्ज, हड्डियोंका ढेर, ताड़का फल, केश, कपास, बुझे अङ्गार (कोयले), उल्का, चितापर चढ़ा हुआ मुर्दा, कुम्हार और तेलीके चक्र, टेढ़ी-मेढ़ी कौड़ी, मरघट, अधजला काठ, सूखा काठ, कुश, तृण, चलता हुआ धड़, मुर्देका चिल्लाता हुआ मस्तक, आगसे जला हुआ स्थान, भस्म-युक्त सूखा तालाब, जली मछली, लोहा, दावानलसे जलकर बुझे हुए वन, गलित कोढ़से युक्त नंगा शूद्र, शिखा खोले और अत्यन्त रोषसे भरकर शाप देते हुए ब्राह्मण एवं गुरु, अधिक कुपित हुए संन्यासी, योगी एवं वैष्णव मनुष्य देखे। ऐसा दुःस्वप्न देख कंसकी नींद खुल गयी और उसने माता, पिता, भाई तथा पत्नीसे वह सब कह सुनाया। पत्नी प्रेमसे विह्वल होकर रोने लगी।

कंसने रङ्गभूमिमें दर्शकोंके बैठनेके लिये मञ्च बनवाये और सभाके द्वारपर हाथीको खड़ा कर दिया। हाथीके साथ ही पहलवान और जुझारू सेना भी स्थापित कर दी। तत्पश्चात् धनुर्यज्ञका मङ्गल-कृत्य आरम्भ किया। सभा बनवायी। पुण्यदायक स्वस्तिवाचन एवं मङ्गलपाठ कराया तथा योगयुक्त पुरोहितको यत्नपूर्वक आवश्यक कार्यके अनुष्ठानमें नियुक्त किया। राजा कंस हाथमें विलक्षण तलवार ले रमणीय मञ्चपर जा बैठा। मल्लयुद्धके लिये उस कलामें निपुण योद्धाको नियुक्त किया। आमन्त्रित श्रेष्ठ राजाओं, ब्राह्मणों, मुनीश्वरों, सुहृद्वर्गके लोगों, धर्मात्मा पुरुषों तथा युद्धकुशल पुरुषोंको यथास्थान बैठाया।

नारद! इसी समय बलरामके साथ भगवान् श्रीकृष्ण रङ्गभूमिमें आये और महादेवजीके धनुषको लीलापूर्वक बीचसे ही तोड़ डाला। धनुष टूटनेकी भयंकर आवाजसे सारी मथुरापुरी बहरी-सी हो गयी। कंसको बड़ा दुःख हुआ और देवकीनन्दन श्रीकृष्ण हर्षसे खिल उठे। द्वारवर्ती मल्लसहित हाथीका वध करके वे सभामें उपस्थित हुए। योगीजनोंने उन्हें साक्षात् परमात्मदेव परमेश्वरके रूपमें देखा। वे अपने हृदयकमलमें जिस स्वरूपका ध्यान करते थे, वही उन्हें बाहर दृष्टिगोचर हुआ। राजाओंकी दृष्टिमें वे सर्वशासक दण्डधारी राजेन्द्र थे। माता-पिताने उनको स्तनपान करनेवाले दुधमुँहे बालकके रूपमें देखा। कामिनियोंकी दृष्टिमें वे करोड़ों कन्दर्पोंकी लावण्य-लीला धारण करनेवाले रसिकशेखर थे। कंसने कालपुरुष समझा और उसके भाइयोंने शत्रु। मल्लोंने अपनी मृत्युका स्थान माना और यादवोंने उनको प्राणोंके समान प्रिय देखा।

श्रीकृष्णने सभामें बैठे हुए मुनियों, ब्राह्मणों तथा माता, पिता एवं गुरुजनोंको नमस्कार किया। फिर वे हाथमें सुदर्शनचक्र लिये राजमञ्चके निकट गये। मुने! उन्होंने कंसको भक्तके रूपमें देखा।

भक्तोंके तो वे जीवनबन्धु ही हैं। कृपानिधान श्रीकृष्णने कृपापूर्वक कंसको मञ्चसे खींच लिया और लीलासे ही उसको मार डाला। उस समय राजा कंसको सम्पूर्ण जगत् श्रीकृष्णमय दिखायी दे रहा था। मृत्युके पश्चात् उसके निकट हीरेके हारोंसे विभूषित रत्नमय विमान आ पहुँचा और वह दिव्य रूप धारण करके समृद्धिशाली हो उस विमानसे विष्णुधाममें जा पहुँचा। मुने! कंसका उत्कृष्ट तेज श्रीकृष्णके चरणारविन्दमें प्रविष्ट हो गया। उसका और्ध्वदैहिक संस्कार एवं सत्कार करके श्रीहरिने ब्राह्मणोंको धनका दान किया। इसके बाद राज्य एवं राजाका छत्र बुद्धिमान् उग्रसेनको सौंप दिया। चन्द्रवंशी उग्रसेन पुनः यादवोंके 'राजेन्द्र' हो गये।

कंसकी माता, पत्नियाँ, पिता, बन्धु-बान्धव, मातृवर्गकी स्त्रियाँ, बहिन तथा भाइयोंकी स्त्रियाँ भी विलाप करने लगीं। वे बोलीं—'राजेन्द्र! उठो, राजसिंहासनपर बैठकर हमें दर्शन दो। ब्रह्मासे लेकर कीटपर्यन्त चराचर प्राणियोंका आधारभूत जो असंख्य विश्व हैं, उन सबकी जो स्वयं ही लीलापूर्वक सृष्टि करते हैं; ब्रह्मा, शिव, शेष, धर्म, सूर्य तथा गणेश आदि देवता, मुनीन्द्रवर्ग और देवेन्द्रगण जिनका दिन-रात ध्यान करते हैं; वेद और सरस्वती भयभीत हो जिनका स्तवन करती हैं; प्रकृतिदेवी भी हर्षसे उल्लसित हो जिनके गुण गाती हैं; जो प्रकृतिसे परे, प्राकृतस्वरूप, स्वेच्छामय, निरीह, निर्गुण, निरञ्जन, परात्परतर ब्रह्म, परमात्मा, ईश्वर, नित्यज्योतिःस्वरूप, भक्तोंपर अनुग्रहके लिये ही दिव्य देह धारण करनेवाले, नित्यानन्दमय, नित्यरूप तथा नित्य अविनाशी शरीर धारण करनेवाले हैं; वे ही मायापति भगवान् गोविन्द भूतलका भार उतारनेके लिये मायासे गोपबालकके वेषमें अवतीर्ण हुए हैं। वे सर्वेश्वर प्रभु जिसे मारते हैं, उसकी रक्षा कौन पुरुष कर सकता है? इसी प्रकार वे सर्वात्मा श्रीहरि जिसकी रक्षा करते हों उसे मारनेवाला भी कोई नहीं है*।'

महामुने! ऐसा कहकर सब लोग चुप हो गये। परिवारके लोगोंने ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उन्हें सब प्रकारका धन दिया। सर्वात्मा भगवान् श्रीकृष्ण भी पिताके निकट गये और उनकी बेड़ी-हथकड़ी काटकर उन्होंने माता और पिता दोनोंको बन्धनसे मुक्त किया। तत्पश्चात् उन देवेश्वरने दण्डकी भाँति पृथ्वीपर पड़कर माता-पिताको साष्टाङ्ग प्रणाम किया और भक्तिसे मस्तक झुकाकर उनकी स्तुति की।

श्रीभगवान् बोले—जो पुरुष पिता और माताका तथा विद्यादाता एवं मन्त्रदाता गुरुका पोषण नहीं करता, वह जीवनभर पापसे शुद्ध नहीं होता। समस्त पूजनीयोंमें पिता वन्दनीय महान् गुरु हैं। परंतु माता गर्भमें धारण एवं पोषण करती है; इसलिये पितासे भी सौगुनी श्रेष्ठ है। माता पृथ्वीके समान क्षमाशीला और सबका समानरूपसे हित चाहनेवाली है; अतः भूतलपर सबके लिये मातासे बढ़कर बन्धु दूसरा कोई नहीं है। साथ ही यह भी सच है कि विद्यादाता और मन्त्रदाता गुरु मातासे भी बहुत बढ़-चढ़कर आदरके योग्य हैं। वेदके अनुसार गुरुसे बढ़कर वन्दनीय और पूजनीय दूसरा कोई नहीं है।

मुने! ऐसा कहकर श्रीकृष्ण और बलरामने माताको प्रणाम किया। फिर माता-पिताने भी उन दोनोंको आदरपूर्वक गोदमें बिठा लिया और उन्हें उत्तम मिष्टान्न भोजन कराया। नन्द और ग्वालबालोंको भी बड़े आदरसे खिलाया। बच्चोंका मङ्गल-कृत्य कराया और उसके उपलक्ष्यमें भी बहुत-से ब्राह्मणोंको जिमाया। उस समय वसुदेवने प्रसन्नतापूर्वक ब्राह्मणोंको बहुत धन दिया। (अध्याय ७१-७२)

---

* स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान्। स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च॥ (७२। १०५)

श्रीकृष्णका नन्दको अपना स्वरूप और प्रभाव बताना; गोलोक, रासमण्डल और राधा-सदनका वर्णन; श्रीराधाके महत्त्वका प्रतिपादन तथा उनके साथ अपने नित्य सम्बन्धका कथन और दिव्य विभूतियोंका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर शोकसे आतुर और पुत्रवियोगसे कातर हो फूट-फूटकर रोते हुए चेष्टाशून्य पिता नन्दको श्रीकृष्ण

और बलरामने आध्यात्मिक आदि दिव्य योगोंद्वारा सानन्द समझाना आरम्भ किया।

श्रीभगवान् बोले—बाबा! प्रसन्नतापूर्वक मेरी बात सुनो। शोक छोड़ो और हर्षको हृदयमें स्थान दो। मैं जो ज्ञान देता हूँ, इसे ग्रहण करो। यह वही ज्ञान है, जिसे पूर्वकालमें मैंने पुष्करमें ब्रह्मा, शेष, गणेश, महेश (शिव), दिनेश (सूर्य), मुनीश और योगीशको प्रदान किया था। यहाँ कौन किसका पुत्र, कौन किसका पिता और कौन किसकी माता है? यह पुत्र आदिका सम्बन्ध किस कारणसे है? जीव अपने पूर्वकृत कर्मसे प्रेरित हो इस संसारमें आते और परलोकमें जाते हैं। कर्मके अनुसार ही उनका विभिन्न स्थानोंमें जन्म होता है। कोई जीव अपने शुभकर्मसे प्रेरित हो योगीन्द्रोंके कुलमें जन्म लेता है और कोई राज-रानियोंके पेटसे उत्पन्न होता है। कोई ब्राह्मणी, क्षत्रिया, वैश्या अथवा शूद्राओंके गर्भसे जन्म ग्रहण करता है; किसी-किसीकी उत्पत्ति पशु, पक्षी आदि तिर्यक् योनियोंमें होती है। सब लोग मेरी ही मायासे विषयोंमें आनन्द लेते हैं और देहत्यागकालमें विषाद करते हैं। बान्धवोंके साथ बिछोह होनेपर भी लोगोंको बड़ा कष्ट होता है। संतान, भूमि और धन आदिका विच्छेद मरणसे भी अधिक कष्टदायक प्रतीत होता है। मूढ़ मनुष्य ही सदा इस तरहके शोकसे ग्रस्त होता है; विद्वान् पुरुष नहीं। जो मेरा भक्त है, मेरे भजनमें लगा है, मेरा यजन करता है, इन्द्रियोंको वशमें रखता है, मेरे मन्त्रका उपासक है और निरन्तर मेरी सेवामें संलग्न रहता है; वह परम पवित्र माना गया है। मेरे भयसे ही यह वायु चलती है, सूर्य और चन्द्रमा प्रतिदिन प्रकाशित होते हैं, इन्द्र भिन्न-भिन्न समयोंमें वर्षा करते हैं, आग जलाती है और मृत्यु सब जीवोंमें विचरती है। मेरा भय मानकर ही वृक्ष समयानुसार पुष्प और फल धारण करता है। वायु बिना किसी आधारके चलती है। वायुके आधारपर कच्छप, कच्छपके आधारपर शेष और शेषके आधारपर पर्वत टिके हुए हैं। पंक्तिबद्ध विद्यमान सात पाताल पर्वतोंके सहारे स्थित हैं। पातालोंसे जल सुस्थिर है और जलके ऊपर पृथ्वी टिकी हुई है। पृथ्वी सात स्वर्गोंकी आधारभूमि है। ज्योतिश्चक्र अथवा नक्षत्रमण्डल ग्रहोंके आधारपर स्थित हैं; परंतु वैकुण्ठ बिना किसी आधारके ही प्रतिष्ठित है। वह समस्त ब्रह्माण्डोंसे परे तथा श्रेष्ठ है। उससे भी परे गोलोकधाम है। वह वैकुण्ठधामसे पचास

करोड़ योजन ऊपर बिना आधारके ही स्थित है। उसका निर्माण दिव्य चिन्मय रत्नोंके सारतत्त्वसे हुआ है। उसके सात दरवाजे हैं। सात सार हैं। वह सात खाइयोंसे घिरा हुआ है। उसके चारों ओर लाखों परकोटे हैं। वहाँ विरजा नदी बहती है। वह लोक मनोहर रत्नमय पर्वत शतशृङ्गसे आवेष्टित है। शतशृङ्गका एक-एक उज्ज्वल शिखर दस-दस हजार योजन लंबा-चौड़ा है। वह पर्वत करोड़ों योजन ऊँचा है। उसकी लंबाई उससे सौगुनी है और चौड़ाई एक लाख योजन है। उसी धाममें बहुमूल्य दिव्य रत्नोंद्वारा निर्मित चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार रासमण्डल है; जिसका विस्तार दस हजार योजन है। वह फूलोंसे लदे हुए पारिजात-वनसे, एक सहस्र कल्पवृक्षोंसे और सैकड़ों पुष्पोद्यानोंसे घिरा हुआ है। वे पुष्पोद्यान नाना प्रकारके पुष्पसम्बन्धी वृक्षोंसे युक्त होनेके कारण फूलोंसे भरे रहते हैं; अतएव अत्यन्त मनोहर प्रतीत होते हैं। उस रासमण्डलमें तीन करोड़ रत्ननिर्मित भवन हैं, जिनकी रक्षामें कई लाख गोपियाँ नियुक्त हैं। वहाँ रत्नमय प्रदीप प्रकाश देते हैं। प्रत्येक भवनमें रत्ननिर्मित शय्या बिछी हुई है। नाना प्रकारकी भोगसामग्री संचित है। रासमण्डलके सब ओर मधुकी सैकड़ों बावलियाँ हैं। वहाँ अमृतकी भी बावलियाँ हैं और इच्छानुसार भोगके सभी साधन उपलब्ध हैं। गोलोकमें कितने गृह हैं, यह कौन बता सकता है? वहाँ केवल राधाका जो सुन्दर, रमणीय एवं उत्तम निवास-मन्दिर है, वह बहुमूल्य रत्ननिर्मित तीन करोड़ भव्य भवनोंसे शोभित है। जिनकी कीमत नहीं आँकी जा सकती, ऐसे रत्नोंद्वारा निर्मित चमकीले खम्भोंकी पंक्तियाँ उस राधाभवनको प्रकाशित करती हैं। वह भवन नाना प्रकारके विचित्र चित्रोंद्वारा चित्रित है। अनेक श्वेत चामर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। माणिक्य और मोतियोंसे जटित, हीरेके हारोंसे अलंकृत तथा रत्नमय प्रदीपोंसे प्रकाशित राधामन्दिर रत्नोंकी बनी हुई सीढ़ियोंसे अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है। बहुमूल्य रत्नोंके पात्र और शय्याओंकी श्रेणियाँ उस भवनकी शोभा बढ़ाती हैं। तीन खाइयों, तीन दुर्गम द्वारों और सोलह कक्षाओंसे युक्त राधाभवनके प्रत्येक द्वारपर और भीतर नियुक्त हुई सोलह लाख गोपियाँ इधर-उधर घूमती रहती हैं। उन सबके शरीरपर अग्निशुद्ध दिव्य वस्त्र शोभा पाते हैं। वे रत्नमय अलंकारोंसे अलंकृत हैं। उनकी अङ्गकान्ति तपाये हुए सुवर्णके समान उद्भासित होती है। वे शत-शत चन्द्रमाओंकी मनोरम आभासे सम्पन्न हैं। राधिकाके किंकर भी ऐसे ही और इतने ही हैं। इन सबसे भरा हुआ उस भवनका अन्तःपुर बड़ा सुन्दर लगता है। उस भवनका आँगन बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित है। वह राधाभवन अत्यन्त मनोहर, अमूल्य रत्नमय खम्भोंके समुदायसे सुशोभित, फल-पल्लवसंयुक्त, रत्ननिर्मित मङ्गल-कलशोंसे अलंकृत और रत्नमयी वेदिकाओंसे विभूषित है। सुन्दर एवं बहुमूल्य रत्नमय दर्पण उसकी शोभा बढ़ाते हैं। अमूल्य रत्नोंसे निर्मित वह सुन्दर सदन सब भवनोंमें श्रेष्ठ है।

वहाँ श्रीराधारानी रत्नमय सिंहासनपर विराजमान होती हैं। लाखों गोपियाँ उनकी सेवामें रहती हैं। वे करोड़ों पूर्ण चन्द्रमाओंकी शोभासे सम्पन्न हैं। श्वेत चम्पाके समान उनकी गौर कान्ति है। वे बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित आभूषणोंसे विभूषित हैं। अमूल्य रत्नजटित वस्त्र पहने, बायें हाथमें रत्नमय दर्पण तथा दाहिनेमें सुन्दर रत्नमय कमल धारण करती हैं। उनके ललाटमें अनारके फूलकी भाँति लाल और अत्यन्त मनोहर सिन्दूर शोभित होता है। उसके साथ ही कस्तूरी और चन्दनके सुन्दर बिन्दु भी भालदेशका सौन्दर्य बढ़ाते हैं। वे सिरपर बालोंका जूड़ा धारण करती हैं, जो मालतीकी मालासे अलंकृत होता है। ऐसी राधा गोलोकमें गोपियोंद्वारा सेवित होती हैं। उनकी सेवामें

रहनेवाली गोपियाँ भी उन्हींके समान हैं। वे हाथमें श्वेत चँवर लिये रहती हैं और बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित आभूषणोंसे विभूषित होती हैं। समस्त देवियोंमें श्रेष्ठ वे राधा ही मेरे प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी हैं। वे सुदामाके शापसे इस समय भूतलपर वृषभानुनन्दिनीके रूपमें अवतीर्ण हुई हैं। मेरे साथ उनका अब सौ वर्षोंतक वियोग रहेगा। पिताजी! इन्हीं सौ वर्षोंकी अवधिमें मैं भूतलका भार उतारूँगा। तदनन्तर निश्चय ही श्रीराधा, तुम, माता यशोदा, गोप, गोपीगण, वृषभानुजी, उनकी पत्नी कलावती तथा अन्य बान्धवजनोंके साथ मैं गोलोकको चलूँगा। बाबा! यही बात तुम प्रसन्नतापूर्वक मैया यशोदासे भी कह देना। महाभाग! शोक छोड़ो और व्रजवासियोंके साथ व्रजको लौट जाओ। मैं सबका आत्मा और साक्षी हूँ। सम्पूर्ण जीवधारियोंके भीतर रहकर भी उनसे निर्लिप्त हूँ। जीव मेरा प्रतिबिम्ब है; यही सर्वसम्मत सिद्धान्त है। प्रकृति मेरा ही विकार है अर्थात् वह प्रकृति भी मैं ही हूँ। जैसे दूधमें धवलता होती है। दूध और धवलतामें कभी भेद नहीं होता। जैसे जलमें शीतलता, अग्निमें दाहिका शक्ति, आकाशमें शब्द, भूमिमें गन्ध, चन्द्रमामें शोभा, सूर्यमें प्रभा और जीवमें आत्मा है; उसी प्रकार राधाके साथ मुझको अभिन्न समझो। तुम राधाको साधारण गोपी और मुझे अपना पुत्र न मानो। मैं सबका उत्पादक परमेश्वर हूँ और राधा ईश्वरी प्रकृति है*।

बाबा! मेरी सुखदायिनी विभूतिका वर्णन सुनो, जिसे पहले मैंने अव्यक्तजन्मा ब्रह्माजीको बताया था। मैं देवताओंमें श्रीकृष्ण हूँ। गोलोकमें स्वयं ही द्विभुजरूपसे निवास करता हूँ और वैकुण्ठमें चतुर्भुज विष्णुरूपसे। शिवलोकमें मैं ही शिव हूँ। ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा हूँ। तेजस्वियोंमें सूर्य हूँ। पवित्रोंमें अग्नि हूँ। द्रव-पदार्थोंमें जल हूँ। इन्द्रियोंमें मन हूँ। शीघ्रगामियोंमें समीर (वायु) हूँ। दण्ड प्रदान करनेवालोंमें मैं यम हूँ। कालगणना करनेवालोंमें काल हूँ। अक्षरोंमें अकार हूँ। सामोंमें साम हूँ, चौदह इन्द्रोंमें इन्द्र हूँ। धनियोंमें कुबेर हूँ। दिक्पालोंमें ईशान हूँ। व्यापक तत्त्वोंमें आकाश हूँ। जीवोंमें सबका अन्तरात्मा हूँ। आश्रमोंमें ब्रह्मतत्त्वज्ञ संन्यास आश्रम हूँ। धनोंमें मैं सर्वदुर्लभ बहुमूल्य रत्न हूँ। तैजस पदार्थोंमें सुवर्ण हूँ। मणियोंमें कौस्तुभ हूँ। पूज्य प्रतिमाओंमें शालग्राम तथा पत्तोंमें तुलसीदल हूँ। फूलोंमें पारिजात, तीर्थोंमें पुष्कर, वैष्णवोंमें कुमार, योगीन्द्रोंमें गणेश, सेनापतियोंमें स्कन्द, धनुर्धरोंमें लक्ष्मण, राजेन्द्रोंमें राम, नक्षत्रोंमें चन्द्रमा, मासोंमें मार्गशीर्ष, ऋतुओंमें वसन्त, दिनोंमें रविवार, तिथियोंमें एकादशी, सहनशीलोंमें पृथ्वी, बान्धवोंमें माता, भक्ष्य वस्तुओंमें अमृत, गौसे प्रकट होनेवाले खाद्यपदार्थोंमें घी, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, कामधेनुओंमें सुरभि, नदियोंमें पापनाशिनी गङ्गा, पण्डितोंमें पाण्डित्यपूर्ण वाणी, मन्त्रोंमें प्रणव, विद्याओंमें उनका बीजरूप तथा खेतसे पैदा होनेवाली वस्तुओंमें धान्य हूँ। फलवान् वृक्षोंमें पीपल, गुरुओंमें मन्त्रदाता गुरु, प्रजापतियोंमें कश्यप, पक्षियोंमें गरुड़, नागोंमें अनन्त (शेषनाग), नरोंमें नरेश, ब्रह्मर्षियोंमें भृगु, देवर्षियोंमें नारद, राजर्षियोंमें जनक, महर्षियोंमें शुक, गन्धर्वोंमें चित्ररथ, सिद्धोंमें कपिलमुनि, बुद्धिमानोंमें बृहस्पति, कवियोंमें शुक्राचार्य, ग्रहोंमें शनि, शिल्पियोंमें विश्वकर्मा, मृगोंमें मृगेन्द्र, वृषभोंमें शिववाहन नन्दी, गजराजोंमें ऐरावत, छन्दोंमें गायत्री, सम्पूर्ण शास्त्रोंमें वेद, जलचरोंमें उनका राजा वरुण, अप्सराओंमें उर्वशी, समुद्रोंमें जलनिधि, पर्वतोंमें सुमेरु, रत्नवान् शैलोंमें हिमालय, प्रकृतियोंमें देवी पार्वती तथा देवियोंमें लक्ष्मी हूँ।

मैं नारियोंमें शतरूपा, अपनी प्रियतमाओंमें

---

* यथा जीवस्तथात्मा च तथैव राधया सह। त्यज त्वं गोपिकाबुद्धिं राधायां मयि पुत्रताम्॥
अहं सर्वस्य प्रभवः सा च प्रकृतिरीश्वरी। (७३। ५०½)

राधिका तथा साध्वी स्त्रियोंमें निश्चय ही वेदमाता सावित्री हूँ। दैत्योंमें प्रह्लाद, बलिष्ठोंमें बलि, ज्ञानियोंमें भगवान् नारायण ऋषि, वानरोंमें हनुमान्, पाण्डवोंमें अर्जुन, नागकन्याओंमें मनसा, वसुओंमें द्रोण, बादलोंमें द्रोण, जम्बूद्वीपके नौ खण्डोंमें भारतवर्ष, कामियोंमें कामदेव, कामुकी स्त्रियोंमें रम्भा और लोकोंमें गोलोक हूँ, जो समस्त लोकोंमें उत्तम और सबसे परे है। मातृकाओंमें शान्ति, सुन्दरियोंमें रति, साक्षियोंमें धर्म, दिनके क्षणोंमें संध्या, देवताओंमें इन्द्र, राक्षसोंमें विभीषण, रुद्रोंमें कालाग्निरुद्र, भैरवोंमें संहारभैरव, शङ्खोंमें पाञ्चजन्य, अङ्गोंमें मस्तक, पुराणोंमें भागवत, इतिहासोंमें महाभारत, पाञ्चरात्रोंमें कापिल, मनुओंमें स्वायम्भुव, मुनियोंमें व्यासदेव, पितृपत्नियोंमें स्वधा, अग्निप्रियाओंमें स्वाहा, यज्ञोंमें राजसूय, यज्ञपत्नियोंमें दक्षिणा, अस्त्र-शस्त्रज्ञोंमें जमदग्निनन्दन महात्मा परशुराम, पौराणिकोंमें सूत, नीतिज्ञोंमें अङ्गिरा, व्रतोंमें विष्णुव्रत, बलोंमें दैवबल, ओषधियोंमें दूर्वा, तृणोंमें कुश, धर्मकर्मोंमें सत्य, स्नेहपात्रोंमें पुत्र, शत्रुओंमें व्याधि, व्याधियोंमें ज्वर, मेरी भक्तियोंमें दास्य-भक्ति, वरोंमें वर, आश्रमोंमें गृहस्थ, विवेकियोंमें संन्यासी, शस्त्रोंमें सुदर्शन और शुभाशीर्वादोंमें कुशल हूँ।

ऐश्वर्योंमें महाज्ञान, सुखोंमें वैराग्य, प्रसन्नता प्रदान करनेवालोंमें मधुर वचन, दानोंमें आत्मदान, संचयोंमें धर्मकर्मका संचय, कर्मोंमें मेरा पूजन, कठोर कर्मोंमें तप, फलोंमें मोक्ष, अष्ट सिद्धियोंमें प्राकाम्य, पुरियोंमें काशी, नगरोंमें काञ्ची, देशोंमें वैष्णवोंका देश और समस्त स्थूल आधारोंमें मैं ही महान् विराट् हूँ। जगत्‌में जो अत्यन्त सूक्ष्म पदार्थ हैं; उनमें मैं परमाणु हूँ। वैद्योंमें अश्विनीकुमार, भेषजोंमें रसायन, मन्त्रवेत्ताओंमें धन्वन्तरि, विनाशकारी दुर्गुणोंमें विषाद, रागोंमें मेघ-मलार, रागिनियोंमें कामोद, मेरे पार्षदोंमें श्रीदामा, मेरे बन्धुओंमें उद्धव, पशुजीवोंमें गौ, वनोंमें चन्दन, पवित्रोंमें तीर्थ और निःशंकोंमें वैष्णव हूँ; वैष्णवसे बढ़कर दूसरा कोई प्राणी नहीं है। विशेषतः वह जो मेरे मन्त्रकी उपासना करता है, सर्वश्रेष्ठ है। मैं वृक्षोंमें अंकुर तथा सम्पूर्ण वस्तुओंमें उनका आकार हूँ। समस्त भूतोंमें मेरा निवास है, मुझमें सारा जगत् फैला हुआ है। जैसे वृक्षमें फल और फलोंमें वृक्षका अंकुर है, उसी प्रकार मैं सबका कारणरूप हूँ; मेरा कारण दूसरा नहीं है। मैं सबका ईश्वर हूँ; मेरा ईश्वर दूसरा कोई नहीं है। मैं कारणका भी कारण हूँ। मनीषी पुरुष मुझे ही सबके समस्त बीजोंका परम कारण बताते हैं। मेरी मायासे मोहित हुए पापीजन मुझे नहीं जान पाते हैं। मैं सब जन्तुओंका आत्मा हूँ; परंतु दुर्बुद्धि और दुर्भाग्यसे वञ्चित पापग्रस्त जीव मुझ अपने आत्माका भी आदर नहीं करते। जहाँ मैं हूँ, उसी शरीरमें सब शक्तियाँ और भूख-प्यास आदि हैं; मेरे निकलते ही सब उसी तरह निकल जाते हैं, जैसे राजाके पीछे-पीछे उसके सेवक। व्रजराज नन्दजी! मेरे बाबा! इस ज्ञानको हृदयमें धारण करके व्रजको जाओ और राधा तथा यशोदा मैयाको इसका उपदेश दो।

इस ज्ञानको भलीभाँति समझकर नन्दजी अपने अनुगामी व्रजवासियोंके साथ व्रजको लौट गये। वहाँ जाकर उन्होंने उन दोनों नारीशिरोमणियोंसे उस ज्ञानकी चर्चा की। नारद! वह महाज्ञान पाकर सब लोगोंने अपना शोक त्याग दिया। श्रीकृष्ण यद्यपि निर्लिप्त हैं, तथापि मायाके स्वामी हैं; इसलिये मायासे अनुरक्त जान पड़ते हैं। यशोदाजीने पुनः नन्दरायजीको माधवके पास भेजा। उनकी प्रेरणासे फिर आकर नन्दजीने ब्रह्माजीके द्वारा किये गये सामवेदोक्त स्तोत्रसे परमानन्दस्वरूप नन्दनन्दन माधवकी स्तुति की। तत्पश्चात् वे पुत्रके सामने खड़े हो बार-बार रोदन करने लगे। (अध्याय ७३)

श्रीकृष्णद्वारा नन्दजीको ज्ञानोपदेश, लोकनीति, लोकमर्यादा तथा लौकिक सदाचारसे सम्बन्ध रखनेवाले विविध विधि-निषेधोंका वर्णन, कुसङ्ग और कुलटाकी निन्दा, सती और भक्तकी प्रशंसा, शिवलिङ्ग-पूजन एवं शिवकी महत्ता

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! भगवान् श्रीकृष्ण परमानन्दमय परिपूर्णतम प्रभु हैं। भक्तोंपर अनुग्रहके लिये व्याकुल रहनेवाले परम परमात्मा हैं। पृथ्वीका भार उतारनेके लिये अवतीर्ण हुए वे भगवान् निर्गुण, प्रकृतिसे परे तथा परात्पर हैं। ब्रह्मा, शिव और शेष भी उनके चरणोंकी वन्दना करते हैं। नन्दजीकी स्तुति सुनकर वे जगदीश्वर बहुत संतुष्ट हुए। नन्द बाबा विरहज्वरसे कातर हो गोकुलसे उनके पास आये थे। श्रीभगवान्‌ने उनसे इस प्रकार कहा—'बाबा! शोक और भ्रमको छोड़ो तथा व्रजको लौट जाओ। वहाँ जाकर सबको आनन्दित करो। मैं जो परम सत्य ज्ञान बता रहा हूँ, इसे सुनो। यह ज्ञान शोकग्रन्थिका उच्छेद करनेवाला है।

यों कह पञ्चभूतोंका वर्णन करते हुए श्रीहरिने नन्द बाबाको उत्तम ज्ञानका उपदेश दिया और अन्तमें कहा—'तात! मेरे भक्तोंका कहीं अमङ्गल नहीं होता। मेरा सुदर्शनचक्र प्रतिदिन उनकी सब ओरसे रक्षा करता है। मेरी यह बात यशोदा मैयासे, गोपियोंसे और गोपगणोंसे कहो। उन सबके साथ शोकको त्याग दो। अच्छा अब घरको जाओ।' यों कहकर भगवान् श्रीकृष्ण यादवोंकी सभामें चुप हो गये। तब आनन्दमग्न नन्दने पुनः उनसे पूछा।

नन्द बोले—परमानन्दस्वरूप गोविन्द! मैं मूढ़ हूँ और तुम वेदोंके उत्पादक हो। मुझे ऐसा लौकिक ज्ञान बताओ, जिससे तुम्हारे चरणोंको प्राप्त कर सकूँ।

नन्दजीकी यह बात सुनकर सर्वज्ञ भगवान् श्रीकृष्णने उन्हें श्रुतिदुर्लभ आह्निक-कृत्यसम्बन्धी ज्ञान प्रदान किया।

श्रीभगवान् बोले—तात! मैं तुम्हें यह परम अद्भुत ज्ञान प्रदान करता हूँ, जो वेदोंमें अत्यन्त गोपनीय और पुराणोंमें अत्यन्त दुर्लभ है, कुलटा स्त्रियाँ मोक्ष-मार्गके द्वारको ढकनेके लिये अर्गलाएँ हैं, भ्रम और मायाकी सुन्दर भूमियाँ हैं; उनपर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। व्रजराज! असाध्वी स्त्रियाँ हरिभक्तिके विरुद्ध होती हैं। वे नाशकी बीजरूपा हैं। उनपर विश्वास करना कदापि उचित नहीं है। प्रतिदिन प्रातःकाल उठकर रातमें पहने हुए कपड़ोंको त्याग दे और हृदय-कमलमें इष्टदेवका तथा ब्रह्मरन्ध्रमें परम गुरुका चिन्तन करे। मन-ही-मन उनका चिन्तन करके प्रातःकालिक कृत्य पूर्ण करनेके पश्चात् बुद्धिमान् पुरुष निश्चय ही निर्मल जलमें स्नान करे। कर्मका उच्छेद करनेवाला भक्त कोई कामना या संकल्प नहीं करता। वह स्नान करके भगवान्‌का स्मरण करता और संध्या करके घरको लौट जाता है। दरवाजेपर दोनों पैर धोकर वह घरमें प्रवेश करे और धुले हुए दो वस्त्र (धोती-चादर) धारण करके मोक्षके कारणभूत मुझ परमात्माका ही पूजन करे। शालग्राम, मणि, यन्त्र, प्रतिमा, जल, ब्राह्मण, गौ तथा गुरुमें सामान्यरूपसे मेरी स्थिति मानकर इनमें कहीं भी मेरी पूजा करनी चाहिये। कलशमें, अष्टदल कमलमें तथा चन्दननिर्मित पात्रमें भी मेरी पूजा की जा सकती है। सर्वत्र पूजनके समय आवाहन करे; परंतु शालग्राम-शिलामें और जलमें पूजा करनी हो तो आवाहन न करे। मन्त्रके अनुरूप ध्यानका श्लोक पढ़कर मेरा ध्यान करनेके पश्चात् व्रती पुरुष षोडशोपचारकी

सामग्री क्रमशः अर्पित करे और भक्तिभावसे मूलमन्त्रद्वारा पूजा करे। मेरे साथ ही प्रथम आवरणमें श्रीदामा, सुदामा, वसुदामा, वीरभानु और शूरभानु—इन पाँच गोपोंका पूजन करे। तत्पश्चात् सुनन्द, नन्द, कुमुद और सुदर्शन—इन पार्षदोंका; लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, राधा, गङ्गा और पृथ्वी—इन देवियोंका; गुरु, तुलसी, शिव, कार्तिकेय और विनायकका तथा नवग्रहों और दस दिक्पालोंका सब दिशाओंमें विद्वान् पुरुष पूजन करे। सबसे पहले विघ्न-निवारणके लिये गणेश, सूर्य, अग्नि, विष्णु, शिव और पार्वती—इन छः देवताओंका पूजन करना चाहिये। ये वेदोक्त देवता कर्मबन्धनको काटनेवाले और मोक्ष प्रदान करनेवाले हैं। विघ्नोंके नाशके लिये गणेशका, रोगनिवारणके लिये सूर्यका, अभीष्टकी प्राप्ति तथा अन्तःकरणकी शुद्धिके लिये अग्निका, मोक्षके निमित्त विष्णुका, ज्ञानदानके लिये शिवका तथा बुद्धि और मुक्तिके लिये विद्वान् पुरुष पार्वतीका पूजन करे। तीन बार पुष्पाञ्जलि देकर उन-उन देवताओंके स्तोत्र और कवचका पाठ करे। गुरुका वन्दन और पूजन करनेके पश्चात् देवताको प्रणाम करे। नित्यकर्म करके देवपूजनके पश्चात् सुखपूर्वक यथाप्राप्त कार्य करनेका विधान है। यह नित्यकर्म वेदवर्णित है। इसका अनुष्ठान करनेवाले पुरुषकी आत्मशुद्धि होती है।

बुद्धिमान् पुरुष मल-मूत्र, गुप्ताङ्ग, स्त्रियोंके अङ्ग, कटाक्ष और हास्य आदि न देखे; क्योंकि ये सब विनाशके बीज हैं। उनका रूप सदा ही विपत्तिका कारण है। दिनमें अपनी स्त्रीके साथ भी समागम न करे; क्योंकि दिनमें स्त्री-सहवास करनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है; नेत्रों और कानोंमें पीड़ा होती है। जब आकाशमें एक ही तारा उगा हो, उस समय उधर नहीं देखना चाहिये; अन्यथा रोगोंका भय प्राप्त होता है। यदि उस एक तारेको देख ले तो देवताओंका दर्शन और भगवान्‌का स्मरण करके सात बार नारदजीका नाम जपे। अस्तके समय सूर्य और चन्द्रमाको न देखे; क्योंकि उस समय उन्हें देखनेसे रोगोंकी उत्पत्ति होती है। कृष्णपक्षमें खण्डित चन्द्रमाके उदयकालमें उसे न देखे; अन्यथा रोग होता है। जलमें सूर्य और चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब देखनेसे मनुष्यको शोककी प्राप्ति होती है। पराया मैथुन देखनेसे भाईका वियोग होता है; इसलिये उसे न देखे। पापीके साथ एक जगह सोना, बैठना, भोजन करना और घूमना-फिरना निषिद्ध है; क्योंकि यह सब नाशका लक्षण है। किसीके साथ बात करने, शरीरको छूने, सोने, बैठने और भोजन करनेसे उन दोनोंके पाप एक-दूसरेमें अवश्य संचरित होते हैं। ठीक उसी तरह, जैसे तेलका बिन्दु पानीमें पड़नेसे फैल जाता है। हिंसक जन्तुके समीप न जाय; क्योंकि उसके पास जाना दुःखका कारण होता है। दुष्टके साथ मेल-जोल न बढ़ावे; क्योंकि वह शोकप्रद होता है। ब्राह्मणों, गौओं तथा विशेषतः वैष्णवोंकी हिंसा न करे; उनकी हिंसा सर्वनाशका कारण बन जाती है। देवता, देवपूजक, ब्राह्मण और वैष्णवोंके धनका अपहरण न करे; क्योंकि वह धन सर्वनाशका कारण होता है। जो अपने या दूसरेके द्वारा दी हुई ब्राह्मणवृत्तिका अपहरण करता है; वह साठ हजार वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है। ब्राह्मणको देनेके लिये जो दक्षिणा संकल्प की जाती है, वह यदि तत्काल न दे दी जाय तो एक रात बीतनेपर दूनी, एक मास बीतनेपर सौगुनी और दो मास बीतनेपर वह सहस्रगुनी हो जाती है। एक वर्ष बीत जाय तो दाता नरकमें पड़ता है। यदि दाता न दे और मूर्ख गृहीता न माँगे तो दोनों नरकमें पड़ते हैं। दाता रोगी होता है। ब्राह्मणोंकी हिंसा करनेसे अवश्य ही वंशकी हानि होती है। हिंसक मनुष्य धन और लक्ष्मीको खोकर भिखमंगा हो जाता है। देवता और ब्राह्मणको देखकर जो

मस्तक नहीं झुकाता, वह शोकका भागी होता है। जो गुरुके प्रति भक्तिभाव नहीं रखता, उसे रौरव नरकका कष्ट भोगना पड़ता है।

जो दुराचारिणी मूढ़ा स्त्री साक्षात् श्रीहरिस्वरूप अपने पतिकी ओर नहीं देखती, उलटे उसे डाँट बताती है; वह निश्चय ही कुम्भीपाकमें जाती है। वाणीद्वारा डाँट बतानेके कारण वह कौएकी योनिमें जन्म लेती है। हिंसा करनेसे सूअर होती है। क्रोध करनेसे सर्पिणी और दर्प दिखानेसे गर्दभी होती है। कुवाक्य बोलनेसे कुक्कुरी और विष देनेसे अन्धी होती है। पतिव्रता स्त्री निश्चय ही पतिके साथ वैकुण्ठधाममें जाती है। जो मूढ़ शिव, पार्वती, गणेश, सूर्य, ब्राह्मण, वैष्णव तथा विष्णुकी निन्दा करता है; वह महारौरव नामक नरकमें गिरता है। पिता, माता, पुत्र, सती पत्नी, गुरु, अनाथा स्त्री, बहिन और पुत्रीकी निन्दा करके मनुष्य नरकगामी होता है। जो क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिभावसे रहित हैं और भगवद्भक्तिसे भी दूर हैं; वे निश्चय ही नरकमें पकाये जाते हैं। यही दशा पतिभक्तिसे शून्य नराधमा स्त्रियोंकी होती है।

जो ब्राह्मण शालग्रामका चरणामृत पीते और भगवान् विष्णुका प्रसाद खाते हैं वे तीर्थोंको भी पवित्र कर देते हैं। अपनी सौ पीढ़ियोंको तारते और पृथ्वीको भी उबारते हैं। जो भगवान् विष्णुका प्रसाद ग्रहण करता और मछली-मांस नहीं खाता है; वह निश्चय ही पग-पगपर अश्वमेध-यज्ञका फल पाता है। जो एकादशी और कृष्णजन्माष्टमीका व्रत करते हैं, वे सौ जन्मोंके किये हुए पापसे मुक्त हो जाते हैं; इसमें संशय नहीं है। बाल्यावस्था, कुमारावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्थामें भी जो-जो पाप बन गये हैं, वे सब भस्म हो जाते हैं। रोगी, अत्यन्त वृद्ध और बालकके लिये उपवासका नियम नहीं है। भक्त ब्राह्मणको द्विगुण भोजनका दान करके दाता शुद्ध हो जाता है। जो उपवासमें समर्थ होकर भी शिवरात्रि तथा श्रीरामनवमीके दिन भोजन करता है; वह महारौरव नरकमें पड़ता है। अमावास्या, पूर्णिमा, चतुर्दशी और अष्टमीको स्त्री, तैल तथा मांसका सेवन करनेसे मनुष्य चाण्डाल-योनिमें जन्म लेता है। रविवारको काँस्यपात्रमें भोजन न करे। उस दिन मसूरकी दाल, अदरख और लाल रंगका शाक भी न खाय। व्रजेश्वर! जो ब्राह्मण रजस्वला और वेश्याके हाथका तथा मदिरामिश्रित अन्न खा लेता है; वह निश्चय ही मलभोजी जन्तु होता है। वह उस दिन जो सत्कर्म करता है, उसका फल उसे नहीं मिलता। वह सदा अपवित्र रहता है। उसका अशौच उसके मरनेके बाद ही समाप्त होता है। जिस स्त्रीने अपने जीवनमें चार पुरुषोंके साथ समागम कर लिया; उसे वेश्या समझना चाहिये। वह देवताओं और पितरोंके लिये भोजन बनानेकी अधिकारिणी नहीं है।

जो प्रातःकाल और सायंकालकी संध्योपासना नहीं करता, उसका समस्त द्विजोचित कर्मोंसे शूद्रकी भाँति बहिष्कार कर देना चाहिये। संध्याहीन द्विज नित्य अपवित्र तथा समस्त कर्मोंके लिये अयोग्य होता है। वह दिनमें जो सत्कर्म करता है; उसका फल उसे नहीं मिलता। राममन्त्रसे हीन ब्राह्मण नरकमें पड़ता है। नदीके बीचमें, गड्ढेमें, वृक्षकी जड़में, पानीके निकट, देवताके समीप और खेतीसे भरी हुई भूमिपर समझदार मनुष्य मलत्याग न करे। बाँबीसे निकली हुई, चूहेकी खोदी हुई, पानीके भीतरसे निकाली हुई, शौचसे बची हुई और घरके लीपनेसे प्राप्त हुई मिट्टीको शौचके काममें न ले। जिस मिट्टीमें चींटी आदि प्राणी हों, उसे भी शौचके काममें न ले। व्रजेश्वर! हल चलानेसे उखड़ी हुई, पौधोंके थालेसे निकाली हुई, जिस खेतमें खेती लहलहा रही हो उसकी मिट्टी, वृक्षकी जड़से खोदकर ली हुई मिट्टी तथा नदीके पेटसे निकाली हुई मृत्तिका—इन सबको

शौचके काममें त्याग देना चाहिये। कुम्हड़ा काटने या फोड़नेवाली स्त्री और दीपक बुझानेवाले पुरुष कई जन्मोंतक रोगी होते हैं और जन्म-जन्ममें दरिद्र रहते हैं। दीपक, शिवलिङ्ग, शालग्राम, मणि, देवप्रतिमा, यज्ञोपवीत, सोना और शङ्ख—इन सबको भूमिपर न रखे। दिनमें और दोनों संध्याओंके समय जो नींद लेता या स्त्री-सहवास करता है, वह कई जन्मोंतक रोगी और दरिद्र होता है। मिट्टी, राख, गोबर—इसके पिण्डसे या बालूसे भी शिवलिङ्गका निर्माण करके एक बार उसकी पूजा कर लेनेवाला पुरुष सौ कल्पोंतक स्वर्गमें निवास करता है। सहस्र शिवलिङ्गोंके पूजनसे मनुष्यको मनोवाञ्छित फलकी प्राप्ति होती है और जिसने एक लाख शिवलिङ्गोंकी पूजा कर ली है, वह निश्चय ही शिवत्वको प्राप्त होता है। जो ब्राह्मण शिवलिङ्गकी पूजा करता है, वह जीवन्मुक्त होता है और जो शिवपूजासे रहित है, वह ब्राह्मण नरकगामी होता है। जो मनुष्य मेरेद्वारा पूजित प्रियतम शिवकी निन्दा करते हैं, वे सौ ब्रह्माओंकी आयुपर्यन्त नरककी यातना भोगते हैं। समस्त प्रियजनोंमें ब्राह्मण मुझे अधिक प्रिय हैं। ब्राह्मणसे अधिक शंकर प्रिय हैं। मेरे लिये शंकरसे बढ़कर दूसरा कोई प्रिय नहीं है। 'महादेव, महादेव, महादेव'—इस प्रकार बोलनेवाले पुरुषके पीछे-पीछे मैं नामश्रवणके लोभसे फिरता रहता हूँ। शिव नाम सुनकर मुझे बड़ी तृप्ति होती है। मेरा मन भक्तके पास रहता है। प्राण राधामय हैं, आत्मा शंकर हैं। शंकर मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं, जो सृष्टि, पालन और संहार करनेवाली आद्या नारायणी शक्ति है, जिसके द्वारा मैं सृष्टि करता हूँ, जिससे ब्रह्मा आदि देवता उत्पन्न होते हैं, जिसका आश्रय लेनेसे जगत् विजयी होता है, जिससे सृष्टि चलती है और जिसके बिना संसारका अस्तित्व ही नहीं रह सकता; वह शक्ति मैंने शिवको अर्पित की है।*

(अध्याय ७४-७५)

जिनके दर्शनसे पुण्यलाभ और जिनके अनुष्ठानसे पुनर्जन्मका निवारण होता है, उन वस्तुओं और सत्कर्मोंका वर्णन तथा विविध दानोंके पुण्यफलका कथन

श्रीनन्दने कहा—सर्वेश्वर! जिनके दर्शनसे पुण्य और जिन्हें देखनेसे पाप होता है, उन सबका परिचय दो। यह सुननेके लिये मेरे मनमें बड़ा कौतूहल है।

श्रीभगवान् बोले—तात! उत्तम ब्राह्मण, तीर्थ, वैष्णव, देवप्रतिमा, सूर्यदेव, सती स्त्री, संन्यासी, यति, ब्रह्मचारी, गौ, अग्नि, गुरु, गजराज, सिंह, श्वेत अश्व, शुक, कोकिल, खञ्जरीट, हंस, मोर, नीलकण्ठ, शङ्खपक्षी, बछड़ेसहित गाय, पीपलवृक्ष, पति-पुत्रवाली नारी, तीर्थयात्री मनुष्य, प्रदीप, सुवर्ण, मणि, मोती, हीरा, माणिक्य, तुलसी, श्वेत पुष्प, फल, श्वेत धान्य, घी, दही, मधु, भरा हुआ घड़ा, लावा, दर्पण, जल, श्वेत पुष्पोंकी माला, गोरोचन, कपूर, चाँदी, तालाब, फूलोंसे भरी हुई वाटिका, शुक्लपक्षके चन्द्रमा, अमृत, चन्दन, कस्तूरी, कुङ्कुम, पताका, अक्षयवट,

---

* महादेव महादेव महादेवेतिवादिनः। पश्चाद् यामि च संत्रस्तो नामश्रवणलोभतः॥
मनो मे भक्तमूलं च प्राणा राधात्मिका ध्रुवम्। आत्मा मे शंकरस्थाने शिवः प्राणाधिकश्च मे॥
आद्या नारायणी शक्तिः सृष्टिस्थित्यन्तकारिणी। करोमि च यया सृष्टिं यया ब्रह्मादिदेवताः॥
यया जयति विश्वं च यया सृष्टिः प्रजायते। यया विना जगन्नास्ति मया दत्ता शिवाय च॥
(७५। ८९—९२)

देववृक्ष, देवालय, देवसम्बन्धी जलाशय, देवताके आश्रित भक्त, देवघट, सुगन्धित वायु, शङ्ख, दुन्दुभि, सीपी, मूँगा, रजत, स्फटिक मणि, कुशकी जड़, गङ्गाजीकी मिट्टी, कुशा, ताँबा, पुराणकी पुस्तक, शुद्ध और बीजमन्त्रसहित विष्णुका यन्त्र, चिकनी दूब, अक्षत, रत्न, तपस्वी, सिद्धमन्त्र, समुद्र, कृष्णसार मृग, यज्ञ, महान् उत्सव, गोमूत्र, गोबर, गोदुग्ध, गोधूलि, गोशाला, गोखुर, पकी हुई खेतीसे भरा खेत, सुन्दर पद्मिनी, श्यामा, सुन्दर वेष, वस्त्र एवं दिव्य आभूषणोंसे विभूषित सौभाग्यवती स्त्री, क्षेमकरी, गन्ध, दूर्वा, अक्षत और तण्डुल, सिद्धान्न एवं उत्तम अन्न—इन सबके दर्शनसे पुण्यलाभ होता है।

कार्तिककी पूर्णिमाको राधिकाजीकी शुभ प्रतिमाका पूजन, दर्शन और वन्दन करके मनुष्य जन्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है। इसी प्रकार आश्विनमासके शुक्लपक्षकी अष्टमीको हिंगुलामें श्रीदुर्गाजीकी प्रतिमाका तथा शिवरात्रिको काशीमें विश्वनाथजीका दर्शन, उपवास और पूजन करनेसे पुनर्जन्मके कष्टका निवारण हो जाता है। यदि भक्त पुरुष जन्माष्टमीके दिन मुझ बिन्दुमाधवका दर्शन, वन्दन और पूजन कर ले; पौषमासके शुक्लपक्षकी रात्रिमें जहाँ कहीं भी पद्माकी प्रतिमाका दर्शन प्राप्त कर ले; काशीमें एकादशीको उपवास करके द्वादशीको प्रातःकाल स्नानकर अन्नपूर्णाजीका दर्शन कर ले; चैत्रमासकी चतुर्दशीको पुण्यदायक कामरूप देशमें भद्रकाली देवीका दर्शन और वन्दन कर ले; अयोध्यामें श्रीरामनवमीके दिन मुझ रामका पूजन, वन्दन और दर्शन कर ले तथा गयाके विष्णुपदतीर्थमें जो पिण्ड-दान एवं विष्णुका पूजन कर ले तो वह पुरुष अपने पुनर्जन्मके कष्टका निवारण कर लेता है। साथ ही गयातीर्थके श्राद्धसे वह पितरोंका भी उद्धार करता है। यदि प्रयागमें मुण्डन करके और नैमिषारण्यमें उपवास करके मनुष्य दान करे; पुष्कर अथवा बदरिकाश्रम-तीर्थमें उपवास, स्नान, पूजन एवं विग्रहका दर्शन कर ले; बदरिकाश्रममें सिद्धि प्राप्त करके बेरका फल खाय और मेरी प्रतिमाका दर्शन करे; पवित्र वृन्दावनमें झूलते हुए मुझ गोविन्दका दर्शन एवं पूजन करे; भाद्रपदमासमें मञ्चपर आसीन हुए मुझ मधुसूदनका जो भक्त दर्शन, पूजन एवं नमस्कार करे; कलियुगमें यदि मनुष्य रथयात्राके समय भक्तिभावसे रथारूढ़ जगन्नाथका दर्शन, पूजन एवं प्रणाम करे; उत्तरायणकी संक्रान्तिको प्रयागमें स्नान कर ले और वहाँ मुझ वेणीमाधवका पूजन एवं नमन करे; कार्तिककी पूर्णिमाको उपवासपूर्वक मेरी शुभ प्रतिमाका दर्शन एवं पूजन कर ले; चन्द्रभागाके निकट माघकी अमावास्या एवं पूर्णिमाको राधासहित मुझ श्रीकृष्णका दर्शन और वन्दन कर ले तथा सेतुबन्धतीर्थमें आषाढ़की पूर्णिमाके दिन यदि कोई उपवासपूर्वक रामेश्वरके दर्शन एवं पूजनका सौभाग्य प्राप्त कर ले तो वह अपने पुनर्जन्मका खण्डन कर लेता है। रामेश्वरमें रातके समय गन्धर्व और किन्नर मनोहर गान करते हैं। साक्षात् माधव रामेश्वरको प्रणाम करनेके लिये वहाँ आते हैं। वहाँ साक्षात् रूपसे निवास करनेवाले सर्वेश्वर चन्द्रशेखरका दर्शन करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और अन्तमें श्रीहरिके धामको जाता है। जो उत्तरायणमें कोणार्कतीर्थके भीतर दीननाथ भगवान् सूर्यका दर्शन एवं उपवासपूर्वक पूजन करता है; वह पुनर्जन्मके कष्टको नष्ट कर देता है। कृषिगोष्ठ, सुवसन, कलविङ्क, युगन्धर, विस्यन्दक, राजकोष्ठ, नन्दक तथा पुष्पभद्रकतीर्थमें पार्वतीकी प्रतिमा तथा कार्तिकेय, गणेश, नन्दी एवं शंकरका दर्शन करके मनुष्य अपने जन्मको सफल बना लेता है। वहाँ उपवासपूर्वक पार्वती और शिवका दर्शन, पूजन तथा स्तवन करके जो दही खाकर पारणा करता है; उसका जन्म सफल हो जाता है। त्रिकूटपर, मणिभद्रतीर्थमें तथा पश्चिम समुद्रके

समीप जो उपवासपूर्वक मेरा दर्शन करके दही खाता है; वह मोक्षका भागी होता है। जो मेरी तथा पार्वतीकी प्रतिमाओंमें जीव-चैतन्यका न्यास करके उनका पूजन करता है, जो शिव और दुर्गाके तथा विशेषत: मेरे लिये मन्दिरका निर्माण करता और उन मन्दिरोंमें शिव आदिकी प्रतिमाको स्थापित करता है; वह अपने जन्मको सफल बना लेता है। जो पुष्पोद्यान, संक्रु, सेतु, खात (कुआँ आदि) और सरोवरका निर्माण तथा ब्राह्मणको स्थान एवं वृत्ति देकर उसकी स्थापना करता है; उसका जन्म सफल हो जाता है।

पिताजी! ब्राह्मणकी स्थापना करनेसे जो फल होता है; उसे वेद, पुराण, संत, मुनि और देवता भी नहीं जानते। धरतीपर जो धूलिके कण हैं, वे गिने जा सकते हैं; वर्षाकी बूँदें भी गिनी जा सकती हैं; परंतु ब्राह्मणको वृत्ति और स्थान देकर बसा देनेमें जो पुण्यफल होता है; उसकी गणना विधाता भी नहीं कर सकते। ब्राह्मणको जीविका देकर मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है, सुस्थिर सम्पत्ति पाता है और परलोकमें चारों प्रकारकी मुक्तियोंका भागी होता है। वह मेरी दास्य-भक्तिको पा लेता और वैकुण्ठमें चिरकालतक आनन्द भोगता है। मुझ परमात्माकी तरह उसका भी कभी वहाँसे पतन नहीं होता। जो उत्तम, अनाथ, दरिद्र और पूर्णत: पण्डित ब्राह्मणको सुपात्र देख उसका विवाह कर देता है; उसे निश्चय ही मोक्षकी प्राप्ति होती है। छत्र, चरणपादुका, शालग्राम तथा कन्याके दानका फल पृथ्वीदानके समान माना गया है। हाथीका दान करनेपर उसके रोएँके बराबर वर्षोंतक स्वर्गकी प्राप्ति होती है; यह शास्त्रमें प्रसिद्ध है। गजराजके दानका फल इससे चौगुना माना गया है। श्वेत घोड़ेके दानका पुण्य गजदानसे आधा बताया गया है और अन्य घोड़ोंके दानका फल श्वेत घोड़ेके दानकी अपेक्षा आधा कहा गया है। काली गौके दानका फल गजदानके ही तुल्य है। धेनुदानका फल भी वैसा ही है। सामान्य गोदानका फल उससे आधा कहा गया है। बछड़ा ब्याई हुई गौके दानसे भूमिदानका फल प्राप्त होता है। ब्राह्मणको भोजन कराया जाय तो उससे सम्पूर्ण दानोंका फल प्राप्त हो जाता है। अन्नदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान न हुआ है और न होगा। उसमें पात्रकी परीक्षा आवश्यक नहीं है—अन्नदान पानेके सभी अधिकारी हैं। अन्नदानके लिये कहीं किसी कालका भी नियम नहीं है—भूखेको सदा ही अन्न दिया जा सकता है। अन्नदानसे दाताको सतत पुण्यफलकी प्राप्ति होती है और उसे लेनेवाले पात्र (व्यक्ति)-को भी प्रतिग्रहका दोष नहीं लगता। भूतलपर अन्नदान धन्य है, जो वैकुण्ठकी प्राप्तिका हेतु होता है*। जो दरिद्र एवं कुटुम्बी ब्राह्मणको वस्त्र देता है, उसे शुभ फलकी प्राप्ति होती है। लोहेके दीपमें सोनेकी बत्ती रखकर जो परमात्मा श्रीहरिके लिये घृतसहित उस दीपका दान करता है; वह मेरे धाममें जाता है। फूलकी माला, फल, शय्या, गृह और अन्नके दानसे शुभ फलकी प्राप्ति होती है। इन सभी दानोंसे दीर्घकालतकके लिये श्रेष्ठ लोक प्राप्त होते हैं। यदि इन दानोंका निष्काम भावसे अनुष्ठान हो तो इनसे भगवत्प्राप्ति भी हो सकती है। व्रजराज! तुम व्रजभूमिमें जाकर प्रत्येक व्रजमें ब्राह्मणोंको भोजन कराओ। यह मैंने तुम्हें पुण्यवर्धक दानका परिचय दिया है। नीच पुरुषोंके प्रति इसका वर्णन नहीं करना चाहिये। (अध्याय ७६)

---

*अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति। नात्र पात्रपरीक्षा स्यान्न कालनियमः क्वचित्॥
अन्नदाने शुभं पुण्यं दातुः पात्रं त्वपातकी। अन्नदानं च धन्यं स्याद्भुमौ वैकुण्ठहेतुकम्॥
(७६। ६४-६५)

सुस्वप्न-दर्शनके फलका विचार

नन्दजीने पूछा—प्रभो! किस स्वप्नसे कौन-सा पुण्य होता है और किससे मोक्ष एवं सुखकी सूचना मिलती है? कौन-कौन-सा स्वप्न शुभ बताया गया है?

श्रीभगवान् बोले—तात! वेदोंमें सामवेद समस्त कर्मोंके लिये श्रेष्ठ बताया गया है। इसी प्रकार कण्वशाखाके मनोहर पुण्यकाण्डमें भी इस विषयका वर्णन है। जो दुःस्वप्न है और जो सदा पुण्यफल देनेवाला सुस्वप्न है, वह सब जैसा पूर्वोक्त कण्वशाखामें बताया गया है; उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। यह स्वप्नाध्याय अधिक पुण्य-फल देनेवाला है। अतः इसका वर्णन करता हूँ। इसका श्रवण करनेसे मनुष्यको गङ्गास्नानके फलकी प्राप्ति होती है। रातके पहले पहरमें देखा गया स्वप्न एक वर्षमें फल देता है। दूसरे पहरका स्वप्न आठ महीनोंमें, तीसरे पहरका स्वप्न तीन महीनोंमें और चौथे पहरका स्वप्न एक पक्षमें अपना फल प्रकट करता है। अरुणोदयकी वेलामें देखा गया स्वप्न दस दिनमें फलद होता है। प्रातःकालका स्वप्न यदि तुरंत नींद टूट जाय तो तत्काल फल देनेवाला होता है। दिनको मनमें जो कुछ देखा और समझा गया है, वह सब अवश्य सपनेमें लक्षित होता है। तात! चिन्ता या रोगसे युक्त मनुष्य जो स्वप्न देखता है; वह सब निःसंदेह निष्फल होता है। जो जडतुल्य है, मल-मूत्रके वेगसे पीड़ित है, भयसे व्याकुल है, नग्न है और बाल खोले हुए है, उसे अपने देखे हुए स्वप्नका कोई फल नहीं मिलता। निद्रालु मनुष्य स्वप्न देखकर यदि पुनः नींद लेने लग जाता है अथवा मूढतावश रातमें ही किसी दूसरेसे कह देता है; तब उसे उस स्वप्नका फल नहीं मिलता। किसी नीच पुरुषसे, शत्रुसे, मूर्ख मनुष्यसे, स्त्रीसे अथवा रातमें ही किसी दूसरेसे स्वप्नकी बात कह देनेपर मनुष्यको विपत्ति, दुर्गति, रोग, भय, कलह, धनहानि एवं चोर-भयका सामना करना पड़ता है।

व्रजेश्वर! स्वप्नमें गौ, हाथी, अश्व, महल, पर्वत और वृक्षोंपर चढ़ना, भोजन करना तथा रोना धनप्रद कहा गया है। हाथमें वीणा लेकर गीत गाना खेतीसे भरी हुई भूमिकी प्राप्तिका सूचक होता है। यदि स्वप्नमें शरीर अस्त्र-शस्त्रसे विद्ध हो जाय, उसमें घाव हों, कीड़े हो जायँ, विष्ठा अथवा खूनसे शरीर लिप्त हो जाय तो यह धनकी प्राप्तिका सूचक है। स्वप्नमें अगम्या स्त्रीके साथ समागम भार्याप्राप्तिकी सूचना देनेवाला है। जो स्वप्नमें मूत्रसे भीग जाता, वीर्यपात करता, नरकमें प्रवेश करता, नगर या लाल समुद्रमें घुसता अथवा अमृत पान करता है; वह जागनेपर शुभ समाचार पाता है और उसे प्रचुर धनराशिका लाभ होता है। स्वप्नमें हाथी, राजा, सुवर्ण, वृषभ, धेनु, दीपक, अन्न, फल, पुष्प, कन्या, छत्र, ध्वज और रथका दर्शन करके मनुष्य कुटुम्ब, कीर्ति और विपुल सम्पत्तिका भागी होता है। भरे हुए घड़े, ब्राह्मण, अग्नि, फूल, पान, मन्दिर, श्वेत धान्य, नट एवं नर्तकीको स्वप्नमें देखनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। गोदुग्ध और घीके दर्शनका भी यही फल है। सपनेमें कमलके पत्तेपर खीर, दही, दूध, घी, मधु और स्वस्तिक नामक मिष्टान्न खानेवाला मनुष्य भविष्यमें अवश्य ही राजा होता है। छत्र, पादुका और निर्मल एवं तीखे खड्गकी प्राप्ति धान्य-लाभकी सूचना देती है। खेल-खेलमें ही पानीके ऊपर तैरनेवाला मनुष्य प्रधान होता है। फलवान् वृक्षका दर्शन और सर्पका दंशन धन-प्राप्तिका सूचक है। स्वप्नमें सूर्य और चन्द्रमाके दर्शनसे रोग दूर होता है। घोड़ी, मुर्गी और क्रौञ्चीको देखनेसे भार्याका लाभ होता है।

स्वप्नमें जिसके पैरोंमें बेड़ी पड़ गयी, उसे प्रतिष्ठा और पुत्रकी प्राप्ति होती है। जो सपनेमें नदीके किनारे नये अथवा फटे-पुराने कमलके पत्तेपर दही मिला हुआ अन्न और खीर खाता है; वह भविष्यमें राजा होता है। जलौका (जोंक), बिच्छू और साँप यदि स्वप्नमें दिखायी दें तो धन, पुत्र, विजय एवं प्रतिष्ठाकी प्राप्ति होती है। सींग और बड़ी-बड़ी दाढ़वाले पशुओं, सूअरों और वानरोंसे यदि स्वप्नमें पीड़ा प्राप्त हो तो मनुष्य निश्चय ही राजा होता और प्रचुर धन-राशि प्राप्त कर लेता है। जो स्वप्नमें मत्स्य, मांस, मोती, शङ्ख, चन्दन, हीरा, शराब, खून, सुवर्ण, विष्ठा तथा फले-फूले बेल और आमको देखता है; उसे धन मिलता है। प्रतिमा और शिवलिङ्गके दर्शनसे विजय और धनकी प्राप्ति होती है। प्रज्वलित अग्निको देखकर मनुष्य धन, बुद्धि और लक्ष्मी पाता है। आँवला और कमल धनप्राप्तिका सूचक है। देवता, द्विज, गौ, पितर और साम्प्रदायिक चिह्नधारी पुरुष स्वप्नमें परस्पर जिस वस्तुको देते हैं; उसका फल भी वैसा ही होता है। श्वेत वस्त्र धारण करके श्वेत पुष्पोंकी माला और श्वेत अनुलेपनसे सुसज्जित सुन्दरियाँ स्वप्नमें जिस पुरुषका आलिङ्गन करती हैं, उसे सुख और सम्पत्तिकी प्राप्ति होती है। जो पुरुष स्वप्नमें पीत वस्त्र, पीले पुष्पोंकी माला और पीले रंगका अनुलेपन धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करता है; उसे कल्याणकी प्राप्ति होती है। स्वप्नमें भस्म, रूई और हड्डीको छोड़कर शेष सभी श्वेत वस्तुएँ प्रशंसित हैं और कृष्ण गौ, हाथी, घोड़े, ब्राह्मण तथा देवताको छोड़कर शेष सभी काली वस्तुएँ अत्यन्त निन्दित हैं।

रत्नमय आभूषणोंसे विभूषित दिव्य ब्राह्मणजातीय स्त्री मुस्कराती हुई जिसके घरमें आती है; उसे निश्चय ही प्रिय पदार्थकी प्राप्ति होती है। स्वप्नमें ब्राह्मण देवताका स्वरूप है और ब्राह्मणी देवकन्याका। ब्राह्मण और ब्राह्मणी संतुष्ट हो मुस्कराते हुए स्वप्नमें जिसको कोई फल दें, उसे पुत्र होता है। पिताजी! ब्राह्मण स्वप्नमें जिसे शुभाशीर्वाद देते हैं, उसे अवश्य ऐश्वर्य प्राप्त होता है। सपनेमें संतुष्ट ब्राह्मण जिसके घर आ जाय; उसके यहाँ नारायण, शिव और ब्रह्माका प्रवेश होता है; उसे सम्पत्ति, महान् सुयश, पग-पगपर सुख, सम्मान और गौरवकी प्राप्ति होती है। यदि स्वप्नमें अकस्मात् गौ मिल जाय तो भूमि और पतिव्रता स्त्री प्राप्त होती है। स्वप्नमें जिस पुरुषको हाथी सूँड़से उठाकर अपने माथेपर बिठा ले; उसे निश्चय ही राज्य-लाभ होगा। स्वप्नमें संतुष्ट ब्राह्मण जिसे हृदयसे लगाये और फूल हाथमें दे; वह निश्चय ही सम्पत्तिशाली, विजयी, यशस्वी और सुखी होता है। साथ ही उसे तीर्थस्नानका पुण्य प्राप्त होता है।

स्वप्नमें तीर्थ, अट्टालिका और रत्नमय गृहका दर्शन हो तो उससे भी पूर्वोक्त फलकी ही प्राप्ति होती है। स्वप्नमें यदि कोई भरा हुआ कलश दे तो पुत्र और सम्पत्तिका लाभ होता है। हाथमें कुडव या आढक लेकर स्वप्नमें कोई वाराङ्गना जिसके घर आती है; उसे निश्चय ही लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जिसके घर पत्नीके साथ ब्राह्मण आता है; उसके यहाँ पार्वतीसहित शिव अथवा लक्ष्मीके साथ नारायणका शुभागमन होता है। ब्राह्मण और ब्राह्मणी स्वप्नमें जिसे धान्य, पुष्पाञ्जलि, मोतीका हार, पुष्पमाला और चन्दन देते हैं तथा जिसे स्वप्नमें गोरोचन, पताका, हल्दी, ईख और सिद्धान्नका लाभ होता है; उसे सब ओरसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मण और ब्राह्मणी स्वप्नावस्थामें जिसके मस्तकपर छत्र लगाते अथवा श्वेत धान्य बिखेरते हैं या अमृत, दही और उत्तम पात्र अर्पित करते हैं अथवा जो स्वप्नमें श्वेत माला और चन्दनसे अलंकृत हो रथपर बैठकर दही या खीर खाता है; वह निश्चय ही राजा होता है। स्वप्नमें रत्नमय

आभूषणोंसे विभूषित आठ वर्षकी कुमारी कन्या जिसपर संतुष्ट हो जाती है और जिस पुण्यात्माको पुस्तक देती है; वह विश्वविख्यात कवीश्वर एवं पण्डितराज होता है। जिसे स्वप्नमें माताकी भाँति वह पढ़ाती है; वह सरस्वती-पुत्र होता है और अपने समयका सबसे बड़ा पण्डित माना जाता है। यदि विद्वान् ब्राह्मण किसीको पिताकी भाँति यत्नपूर्वक पढ़ावे या प्रसन्नतापूर्वक पुस्तक दे तो वह भी उसीके समान विद्वान् होता है। जो स्वप्नमें मार्गपर या जहाँ कहीं भी पड़ी हुई पुस्तक पाता है; वह भूतलपर विख्यात एवं यशस्वी पण्डित होता है। जिसे ब्राह्मण-ब्राह्मणी स्वप्नमें महामन्त्र दें; वह पुरुष विद्वान्, धनवान् और गुणवान् होता है। ब्राह्मण स्वप्नमें जिसे मन्त्र अथवा शिलामयी प्रतिमा देता है; उसे मन्त्रसिद्धि प्राप्त होती है। यदि ब्राह्मण स्वप्नमें ब्राह्मणसमूहका दर्शन एवं वन्दन करके आशीर्वाद पाता है तो वह राजाधिराज अथवा महान् कवि एवं पण्डित होता है। स्वप्नमें ब्राह्मण जिसे संतुष्ट होकर श्वेत धान्ययुक्त भूमि देता है; वह राजा होता है। ब्राह्मण जिसे स्वप्नमें रथपर बिठाकर नाना प्रकारके स्वर्ग दिखाता है; वह चिरंजीवी होता है तथा उसकी आयु एवं सम्पत्तिकी निश्चय ही वृद्धि होती है। सपनेमें संतुष्ट ब्राह्मण जिस ब्राह्मणको अपनी कन्या देता है; वह सदा धनाढ्य राजा होता है। स्वप्नमें सरोवर, समुद्र, नदी, नद, श्वेत सर्प और श्वेत पर्वतका दर्शन करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है। जो स्वप्नमें अपनेको मरा हुआ देखता है, वह चिरंजीवी होता है। रोगी देखनेपर नीरोग होता है और सुखी देखनेपर निश्चय ही दुःखी होता है। दिव्य नारी जिससे स्वप्नमें कहती है कि आप मेरे स्वामी हैं और वह उस स्वप्नको देखकर तत्काल जाग उठता है तो अवश्य राजा होता है। स्वप्नमें कालिकाका दर्शन करके और स्फटिककी माला, इन्द्र-धनुष एवं वज्रको पाकर मनुष्य अवश्य ही प्रतिष्ठाका भागी होता है। स्वप्नमें ब्राह्मण जिससे कहे कि तुम मेरे दास हो जाओ, वह मेरी दास्यभक्ति पाकर वैष्णव हो जाता है। स्वप्नावस्थामें ब्राह्मण शिव और विष्णुका स्वरूप है। ब्राह्मणी लक्ष्मी एवं पार्वतीका प्रतीक है तथा श्वेतवर्णा स्त्री वेदमाता सावित्री, गङ्गा एवं सरस्वतीका रूप है। ग्वालिनका वेष धारण करनेवाली बालिका मेरी राधिका है और बालक बाल-गोपालका स्वरूप है। स्वप्नविज्ञानके जाननेवाले विद्वानोंने इस रहस्यको प्रकाशित किया है। पिताजी! यह मैंने पुण्यदायक उत्तम स्वप्नोंका वर्णन किया है। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं? (अध्याय ७७)

श्रीकृष्णके द्वारा नन्दको आध्यात्मिक ज्ञानका उपदेश, बाईस प्रकारकी सिद्धि, सिद्धमन्त्र तथा अदर्शनीय वस्तुओंका वर्णन

नन्दजी बोले—जगन्नाथ श्रीकृष्ण! मैंने अच्छे स्वप्नोंका वर्णन सुना। यह वेदोंका सारभाग तथा लौकिक-वैदिक नीतिका सारतत्त्व है। वत्स! अब मैं उन स्वप्नोंको सुनना चाहता हूँ, जिन्हें देखनेसे पाप होता है। अथवा जिस कर्मके करनेसे पाप होता है, उसका वर्णन करो। वेदका अनुसरण करनेवाले संतस मनुष्य तुम्हारे मुखसे वेद-शास्त्रोंकी बातें सुनना चाहते हैं; क्योंकि तुम वेदोंके जनक हो और वैदिक सत्पुरुषों, ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनियों तथा तीनों लोकोंके भी जन्मदाता हो। वत्स! अपने वियोगसे तुमने मेरे हृदयमें दाह उत्पन्न कर दिया है; किंतु इस समय तुम्हारे मुखारविन्दसे जो प्रमाणभूत वचनामृत सुननेको मिला है, उससे मेरा तन, मन अभिषिक्त

हो उठा है। तुम्हारा जो चरणकमल सम्पूर्ण मनोवाञ्छित फलोंको देनेवाला है तथा ब्रह्मा आदि देवता स्वप्नमें भी जिसका दर्शन नहीं कर पाते हैं; वही आज मेरी आँखोंके सामने है। आजके बाद मुझ पातकीको तुम्हारे चरणारविन्दोंका दर्शन कहाँ मिलेगा? मेरा यह मलमूत्रधारी शरीर अपने कर्मबन्धनसे बँधा हुआ है। बेटा! अब ऐसा दिन कब प्राप्त होगा, जब कि ब्रह्मा आदि देवताओंके भी स्वामी तुमसे बातचीत करनेका शुभ अवसर मुझ-जैसे पापीको सुलभ होगा? महेश्वर! कृपानाथ! मुझपर कृपा करो। मैंने अपना बेटा समझकर तुम्हारे साथ जो दुर्नीतिपूर्ण व्यवहार किया है; मेरे उस अपराधको क्षमा कर दो। ब्रह्मा, शिव, शेषनाग और मुनि भी तुम्हारे चरणारविन्दोंका चिन्तन करते हैं। सरस्वती और श्रुति भी तुम्हारी स्तुति करनेमें जडवत् हो जाती हैं; फिर मेरी क्या बिसात है?

यों कहकर नन्दजी दुःख और शोकसे व्याकुल हो गये। पुत्रवियोगसे विह्वल हो रोते-रोते उन्हें मूर्च्छा आ गयी। यह देख जगत्पति भगवान् श्रीकृष्ण संत्रस्त हो उन्हें यत्नपूर्वक समझाने-बुझाने लगे। उन्होंने नन्दको परम उत्तम आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया।

श्रीभगवान्‌ने कहा—पिताजी! लोकमें जितने जन्मदाता पिता हैं, उन सबमें तुम्हारा श्रेष्ठ स्थान है। सर्वश्रेष्ठ व्रजेश्वर! होशमें आओ और उत्तम कल्याणमय ज्ञान सुनो। यह श्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञान ज्ञानियोंके लिये भी परम दुर्लभ है। वेद-शास्त्रमें भी गोपनीय कहा गया है। केवल तुम्हींको इसका उपदेश दे रहा हूँ। तात! एकाग्रचित्त हो प्रसन्नतापूर्वक इस ज्ञानको सुनो और इसका मनन करो। इसके अभ्याससे जन्म, मृत्यु और जरारूपी रोगसे छुटकारा मिल जाता है। महाराज व्रजराज! सुस्थिर होओ और इस ज्ञानको पाकर शोक-मोहसे रहित एवं परमानन्दमें निमग्न हो अपने व्रजको पधारो। यह समस्त चराचर जगत् जलके बुलबुलेकी भाँति नश्वर है; प्रातःकालिक स्वप्नकी भाँति मिथ्या और मोहका ही कारण है। पाञ्चभौतिक शरीर एवं संसारके निर्माणका हेतु भी मिथ्या एवं अनित्य है। मायासे ही मनुष्य इसे सत्य मान रहा है। यह समस्त कर्मोंमें काम, क्रोध, लोभ और मोहसे वेष्टित है और मायासे सदा मोहित, ज्ञानहीन एवं दुर्बल है। निद्रा, तन्द्रा, क्षुधा, पिपासा, क्षमा, श्रद्धा, दया, लज्जा, शान्ति, धृति, पुष्टि और तुष्टि आदिसे भी वह आवृत है। जैसे वृक्ष काक आदि पक्षियोंका आश्रय है; उसी प्रकार मन, बुद्धि, चेतना, प्राण, ज्ञान और आत्मासहित सम्पूर्ण देवता शरीरका आश्रय लेकर रहते हैं। मैं सर्वेश्वर ही पूर्ण ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ। ब्रह्मा मन हैं, सनातनी प्रकृति बुद्धि हैं, प्राण विष्णु हैं तथा चेतना और उसकी अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी हैं। शरीरमें मेरे रहनेसे ही सबकी स्थिति है। मेरे चले जानेपर वे भी सब-के-सब चले जाते हैं। हम सबके त्याग देनेपर शरीर तत्काल गिर जाता है; इसमें संशय नहीं है। उसके पाँचों भूत उसी क्षण समष्टिगत पाँचों भूतोंमें विलीन हो जाते हैं। नाम केवल संकेतरूप है। वह निष्फल और मोहका कारण है। तात! अज्ञानियोंको ही शरीरके लिये शोक होता है; ज्ञानियोंको किञ्चिन्मात्र भी दुःख नहीं होता। निद्रा आदि जो शक्तियाँ हैं; वे सब प्रकृतिकी कलाएँ हैं। काम, क्रोध लोभ और मोहके साथ जो पाँचवाँ अहंकार है; वे सब अधर्मके अंश हैं। सत्त्व आदि तीन गुण क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्रके अंश हैं। ज्योतिर्मय शिव ज्ञानस्वरूप हैं और मैं निर्गुण आत्मा हूँ। जब प्रकृतिमें प्रवेश करता हूँ तो मैं सगुण कहा जाता हूँ। विष्णु, ब्रह्मा तथा रुद्र आदि सगुण विषय हैं। मेरे अंशभूत धर्म, शेषनाग, सूर्य और चन्द्रमा आदि विषयी कहे गये हैं। इसी प्रकार समस्त मुनि, मनु तथा देवता आदि मेरे कलांशरूप हैं।

मैं समस्त शरीरोंमें व्याप्त हूँ; तथापि उनके द्वारा सम्पादित होनेवाले सम्पूर्ण कर्मोंसे निर्लिप्त हूँ। मेरा भक्त जीवन्मुक्त होता है तथा वह जन्म, मृत्यु और जराका निवारण करनेवाला है। भक्त सम्पूर्ण सिद्धोंका स्वामी, श्रीमान्, कीर्तिमान्, विद्वान्, कवि, बाईस प्रकारका सिद्ध और समस्त कर्मोंका निराकरण करनेवाला है। उस सिद्ध भक्तको मैं स्वयं प्राप्त होता हूँ; क्योंकि वह मेरे सिवा दूसरी किसी वस्तुकी इच्छा ही नहीं करता।

तात! सिद्धियोंका साधन करनेवाला सिद्ध उन सिद्धियोंके ही भेदसे बाईस प्रकारका होता है। मेरे मुखसे उसका परिचय सुनो और सिद्धमन्त्र ग्रहण करो। अणिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, महिमा, ईशित्व, वशित्व, कामावसायिता, दूरश्रवण, परकायप्रवेश, मनोयायित्व, सर्वज्ञत्व, अभीष्टसिद्धि, अग्निस्तम्भ, जलस्तम्भ, चिरजीवित्व, वायुस्तम्भ, क्षुत्पिपासानिद्रास्तम्भन (भूख-प्यास तथा नींदका स्तम्भन), वाक्‌सिद्धि, इच्छानुसार मृत प्राणीको बुला लेना, सृष्टिकरण और प्राणोंका आकर्षण—ये बाईस प्रकारकी सिद्धियाँ हैं। सिद्धमन्त्र इस प्रकार है—'ॐ सर्वेश्वरेश्वराय सर्वविघ्नविनाशिने मधुसूदनाय स्वाहा'। यह मन्त्र अत्यन्त गूढ़ है और सबकी मनोवाञ्छा पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्षके समान है। सामवेदमें इसका वर्णन है। यह सिद्धोंकी सम्पूर्ण सिद्धियोंको देनेवाला है। इस मन्त्रके जपसे योगी, मुनीन्द्र और देवता सिद्ध होते हैं। सत्पुरुषोंको एक लाख जप करनेसे ही यह मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि नारायणक्षेत्रमें हविष्यान्नभोजी होकर इसका जप किया जाय तो शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। तात! तुम काशीके मणिकर्णिकातीर्थमें जाकर इसका जप करो। मैं तुम्हें नारायणक्षेत्र बतलाता हूँ, सुनो! गङ्गाके जलप्रवाहसे चार हाथतककी भूमिको 'नारायणक्षेत्र' कहा है। उसके नारायण ही स्वामी हैं; दूसरा कोई कदापि नहीं है। वहाँ मनुष्यकी मृत्यु होनेपर उसे ज्ञान एवं मुक्तिकी प्राप्ति होती है। वहाँ व्रतके बिना भी मन्त्र-जप करनेसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है; इसमें संशय नहीं है। व्रजनाथ! अबको जाओ और उसे पवित्र करो।

तात! जिनके दर्शनसे पाप होता है; उन्हें बताता हूँ, सुनो। दुःस्वप्न केवल पापका बीज और विघ्नका कारण होता है। गौ और ब्राह्मणकी हत्या करनेवाले कृतघ्न, कुटिल, देवमूर्तिनाशक, माता-पिताके हत्यारे, पापी, विश्वासघाती, झूठी गवाही देनेवाले, अतिथिके साथ छल करनेवाले, ग्राम-पुरोहित, देवता तथा ब्राह्मणके धनका अपहरण करनेवाले, पीपलका पेड़ काटनेवाले, दुष्ट, शिव और विष्णुकी निन्दा करनेवाले, दीक्षारहित, आचारहीन, संध्यारहित द्विज, देवताके चढ़ावेपर गुजारा करनेवाले और बैल जोतनेवाले ब्राह्मणको देखनेसे पाप लगता है। पति-पुत्रसे रहित, कटी नाकवाली, देवता और ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाली, पतिभक्तिहीना, विष्णुभक्तिशून्या तथा व्यभिचारिणी स्त्रीके दर्शनसे भी पाप होता है। सदा क्रोधी, जारज, चोर, मिथ्यावादी, शरणागतको यातना देनेवाले, मांस चुरानेवाले, शूद्रजातीय स्त्रीसे सम्बन्ध रखनेवाले ब्राह्मण, ब्राह्मणीगामी शूद्र, सूदखोर द्विज और अगम्या स्त्रीके साथ समागम करनेवाले दुष्ट नराधमको भी देखनेसे पाप लगता है। माता, सौतेली माँ, सास, बहिन, गुरुपत्नी, पुत्रवधू, भाईकी स्त्री, मौसी, बूआ, भांजेकी स्त्री, मामी, परायी नवोढा, चाची, रजस्वला, पितामही और नानी—ये सामवेदमें अगम्या बतायी गयी हैं। सत्पुरुषोंको इन सबकी रक्षा करनी चाहिये। कामभावसे इनका दर्शन और स्पर्श करनेपर मनुष्य ब्रह्महत्याका भागी होता है; अतः दैववश यदि इनकी ओर दृष्टि चली जाय तो सूर्यदेवको दर्शन करके श्रीहरिका स्मरण करे। जो कामनापूर्वक इनपर कुदृष्टि डालते हैं, वे निन्दनीय होते हैं। व्रजेश्वर! इसलिये शापसे डरे हुए साधु पुरुष

इनकी ओर कुदृष्टि नहीं डालते। विद्वान् पुरुष ग्रहणके समय सूर्य और चन्द्रमाको नहीं देखते। प्रथम, अष्टम, सप्तम, द्वादश, नवम और दशम स्थानमें सूर्य हों तो सूर्यका तथा जन्म-नक्षत्रमें और अष्टम एवं चतुर्थ स्थानमें चन्द्रमा हों तो चन्द्रमाका दर्शन नहीं करना चाहिये। भाद्रपदमासके शुक्ल और कृष्णपक्षकी चतुर्थीको उदित हुए चन्द्रमाको नष्टचन्द्र कहा गया है; अतः उसका दर्शन नहीं करना चाहिये। मनीषी पुरुषोंने ऐसे चन्द्रमाका परित्याग किया है। तात! यदि कोई उस दिन जान-बूझकर चन्द्रमाको देखता है तो वह उसे अत्यन्त दुष्कर कलङ्क देता है। यदि कोई मनुष्य अनिच्छासे उक्त चतुर्थीके चन्द्रमाको देख ले तो उसे मन्त्रसे पवित्र किया हुआ जल पीना चाहिये। ऐसा करनेसे वह तत्काल शुद्ध हो भूतलपर निष्कलङ्क बना रहता है। जलको पवित्र करनेका मन्त्र इस प्रकार है—

सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः।
सुकुमारक मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः॥

'सुन्दर सलोने कुमार! इस मणिके लिये सिंहने प्रसेनको मारा है और जाम्बवान्ने उस सिंहका संहार किया है; अतः तुम रोओ मत। अब इस स्यमन्तकमणिपर तुम्हारा ही अधिकार है।'

इस मन्त्रसे पवित्र किया हुआ उत्तम जल अवश्य पीना चाहिये। तात! ये सारी बातें तुम्हें बतायी गयीं। अब तुमसे और क्या कहूँ? (अध्याय ५८)

दुःस्वप्न, उनके फल तथा उनकी शान्तिके उपायका वर्णन

तदनन्तर सूर्यग्रहण-चन्द्रग्रहणादिके विषयमें कहकर नन्द बाबाके पूछनेपर भगवान् कहने लगे।

श्रीभगवान् बोले—नन्दजी! जो स्वप्नमें हर्षातिरेकसे अट्टहास करता है अथवा यदि विवाह और मनोऽनुकूल नाच-गान देखता है तो उसके लिये विपत्ति निश्चित है। स्वप्नमें जिसके दाँत तोड़े जाते हैं और वह उन्हें गिरते हुए देखता है तो उसके धनकी हानि होती है और उसे शारीरिक कष्ट भोगना पड़ता है। जो तेलसे स्नान करके गदहे, ऊँट और भैंसेपर सवार हो दक्षिण दिशाकी ओर जाता है; निःसंदेह उसकी मृत्यु हो जाती है। यदि स्वप्नमें कानमें लगे हुए अड़हुल, अशोक और करवीरके पुष्पको तथा तेल और नमकको देखता है तो उसे विपत्तिका सामना करना पड़ता है। नंगी, काली, नक-कटी, शूद्र-विधवा तथा जटा और ताड़के फलको देखकर मनुष्य शोकको प्राप्त होता है। स्वप्नमें कुपित हुए ब्राह्मण तथा क्रुद्ध हुई ब्राह्मणीको देखनेवाले मनुष्यपर निश्चय ही विपत्ति आती है और लक्ष्मी उसके घरसे चली जाती है। जंगली पुष्प, लाल फूल, भलीभाँति पुष्पोंसे लदा पलाश, कपास और सफेद वस्त्रको देखकर मनुष्य दुःखका भागी होता है। काला वस्त्र धारण करनेवाली काले रंगकी विधवा स्त्रीको हँसती और गाती हुई देखकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाता है। जिसे स्वप्नमें देवगण नाचते, गाते, हँसते, ताल ठोंकते और दौड़ते हुए दीख पड़ते हैं; उसका शरीर मृत्युका शिकार हो जायगा। जो स्वप्नमें काले पुष्पोंकी माला और कृष्णाङ्गरागसे सुशोभित एवं काला वस्त्र धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करता है; उसकी मृत्यु हो जायगी। जो स्वप्नमें मृगका मरा हुआ छौना, मनुष्यका मस्तक और हड्डियोंकी माला पाता है; उसके लिये विपत्ति निश्चित है। जो ऐसे रथपर, जिसमें गदहे और ऊँट जुते हुए हों, अकेले सवार होता है और उसपर बैठकर फिर जागता है तो निःसंदेह वह मौतका ग्रास बन जाता है। जो अपनेको हवि, दूध, मधु, मट्ठा और गुड़से सराबोर देखता है; वह निश्चय ही

पीड़ित होता है। जो स्वप्नमें लाल पुष्पोंकी माला एवं लाल अङ्गरागसे युक्त तथा लाल वस्त्र धारण करनेवाली स्त्रीका आलिङ्गन करता है; वह रोगग्रस्त हो जाता है, यह निश्चित है। गिरे हुए नख और केश, बुझा हुआ अंगार और भस्मपूर्ण चिताको देखकर मनुष्य अवश्य ही मृत्युका शिकार बन जाता है। श्मशान, काष्ठ, सूखा घास-फूस, लोहा, काली स्याही और कुछ-कुछ काले रंगवाले घोड़ेको देखनेसे अवश्यमेव दुःखकी प्राप्ति होती है। पादुका, ललाटकी हड्डी, लाल पुष्पोंकी भयावनी माला, उड़द, मसूर और मूँग देखनेसे तुरंत शरीरमें घाव या फोड़ा हो जाता है। स्वप्नमें सेना, गिरगिट, कौआ, भालू, वानर, नीलगाय, पीब और शरीरके मलका देखा जाना केवल व्याधिका कारण होता है। स्वप्नमें फूटा बर्तन, घाव, शूद्र, गलतकुष्ठी, रोगी, लाल वस्त्र, जटाधारी, सूअर, भैंसा, गदहा, महाघोर अन्धकार, मरा हुआ भयंकर जीव और योनि-चिह्न देखकर मनुष्य निश्चय ही विपत्तिमें फँस जाता है। कुवेषधारी म्लेच्छ और पाश ही जिसका शस्त्र है, ऐसे पाशधारी भयंकर यमदूतको देखकर मनुष्य मृत्युको प्राप्त हो जाता है। ब्राह्मण, ब्राह्मणी, छोटी कन्या और बालक-पुत्र क्रोधवश विलाप करते हों तो उन्हें देखकर दुःखकी प्राप्ति होती है। काला फूल, काले फूलोंकी माला, शस्त्रास्त्रधारी सेना और विकृत आकारवाली म्लेच्छवर्णकी स्त्रीको देखनेसे निस्संदेह मृत्यु गले लग जाती है। बाजा, नाच, गान, गवैया, लाल वस्त्र, बजाया जाता हुआ मृदङ्ग—इन्हें देखकर अवश्यमेव दुःख मिलता है। प्राणरहित (मुर्दे)-को देखकर निश्चय ही मृत्यु होती है और जो मत्स्य आदिको धारण करता है, उसके भाईका मरण ध्रुव है। घायल अथवा बिना सिरका धड़ अथवा पुष्पित सिरवाले एवं शीघ्रतापूर्वक नाचते हुए बेडौल प्राणीको देखकर मनुष्य मौतका भागी हो जाता है। मरा हुआ पुरुष अथवा मरी हुई काले रंगकी भयानक म्लेच्छनारी जिसका स्वप्नमें आलिङ्गन करती है; उसका मर जाना निश्चित है। स्वप्नमें जिनके दाँत टूट जायँ और बाल गिर रहे हों तो उसके धनकी हानि होती है अथवा वह शारीरिक पीड़ासे दुःखी होता है। स्वप्नमें जिसके ऊपर सींगधारी अथवा दंष्ट्रावाले जीव तथा बालक और मनुष्य टूटे पड़ते हों; उसे राजाकी ओरसे भय प्राप्त होता है। गिरता हुआ कटा वृक्ष, शिलावृष्टि, भूसी, चूरा, लाल अङ्गारा और राखकी वर्षा देखनेसे दुःखकी प्राप्ति होती है। गिरते हुए ग्रह अथवा पर्वत, भयानक धूमकेतु अथवा टूटे हुए कंधेवाले मनुष्यको देखकर स्वप्नद्रष्टा दुःखका भागी होता है। जो स्वप्नमें रथ, घर, पर्वत, वृक्ष, गौ, हाथी और घोड़ा आकाशसे भूतलपर गिरता देखता है; उसके लिये विपत्ति निश्चित है। जो भस्म और अङ्गारयुक्त गड्ढोंमें, क्षारकुण्डोंमें तथा धूलिकी राशिपर ऊँचाईसे गिरते हैं; निस्संदेह उनकी मृत्यु होती है। जिसके मस्तकपरसे कोई दुष्ट बलपूर्वक छत्र खींच लेता है; उसके पिता, गुरु अथवा राजाका नाश हो जाता है। जिसके घरसे भयभीत हुई गौ बछड़ेसहित चली जाती है; उस पापीकी लक्ष्मी और पृथ्वी भी नष्ट हो जाती है। म्लेच्छ यमदूत जिसे पाशसे बाँधकर ले जाते हैं; उसकी मृत्यु निश्चित है। जिसे ज्योतिषी ब्राह्मण, ब्राह्मणी तथा गुरु रुष्ट होकर शाप देते हैं; उसे निश्चय ही विपत्ति भोगनी पड़ती है। जिसके शरीरपर शत्रुदल, कौए, मुर्गे और रीछ आकर टूट पड़ते हैं; उसकी अवश्य मृत्यु हो जाती है और स्वप्नमें जिसके ऊपर भैंसे, भालू, ऊँट, सूअर और गदहे क्रुद्ध होकर धावा करते हैं; वह निश्चय ही रोगी हो जाता है।

जो लाल चन्दनकी लकड़ीको घीमें डुबोकर एक सहस्र गायत्री-मन्त्रद्वारा अग्निमें हवन करता है; उसका दुःस्वप्नजनित दोष शान्त हो जाता है। जो भक्तिपूर्वक इन मधुसूदनका एक हजार जप

करता है; वह निष्पाप हो जाता है और उसका दुःस्वप्न भी सुखदायक हो जाता है। जो विद्वान् पवित्र हो पूर्वकी ओर मुख करके अच्युत, केशव, विष्णु, हरि, सत्य, जनार्दन, हंस, नारायण—इन आठ शुभ नामोंका दस बार जप करता है, उसका पाप नष्ट हो जाता है तथा दुःस्वप्न भी शुभकारक हो जाता है। जो भक्त भक्तिपूर्वक विष्णु, नारायण, कृष्ण, माधव, मधुसूदन, हरि, नरहरि, राम, गोविन्द, दधिवामन—इन दस माङ्गलिक नामोंको जपता है; वह सौ बार जप करके नीरोग हो जाता है। जो एक लाख जप करता है; वह निश्चय ही बन्धनसे मुक्त हो जाता है। दस लाख जप करके महावन्ध्या पुत्रको जन्म देती है। शुद्ध एवं हविष्यका भोजन करके जपनेवाला दरिद्र इनके जपसे धनी हो जाता है। एक करोड़ जप करके मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है। नारायणक्षेत्रमें शुद्धतापूर्वक जप करनेवाले मनुष्यको सारी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं*। जो जलमें स्नान करके 'ॐ नमः' के साथ शिव, दुर्गा, गणपति, कार्तिकेय, दिनेश्वर, धर्म, गङ्गा, तुलसी, राधा, लक्ष्मी, सरस्वती—इन मङ्गल-नामोंका जप करता है; उसका मनोरथ सिद्ध हो जाता है और दुःस्वप्न भी शुभदायक हो जाता है। 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा'—यह सप्तदशाक्षर-मन्त्र लोगोंके लिये कल्पवृक्षके समान है। इसका पवित्रतापूर्वक दस बार जप करनेसे दुःस्वप्न सुखदायक हो जाता है†। एक करोड़ जप करनेसे मनुष्योंको मन्त्र सिद्ध हो जाता है और सिद्धमन्त्रवाला मनुष्य अपनी सारी अभीष्ट सिद्धियोंको पा लेता है। जो मनुष्य 'ॐ नमो मृत्युञ्जयाय स्वाहा'—इस मन्त्रका एक लाख जप करता है, वह स्वप्नमें मरणको देखकर भी सौ वर्षकी आयुवाला हो जाता है‡। पूर्वोत्तरमुख होकर किसी विद्वान्से ही अपने स्वप्नको कहना चाहिये; किंतु जो शराबी, दुर्गतिप्राप्त, नीच, देवता और ब्राह्मणकी निन्दा करनेवाला, मूर्ख और (स्वप्नके शुभाशुभ फलका) अनभिज्ञ हो; उसके सामने स्वप्नको नहीं प्रकट करना चाहिये। पीपलका वृक्ष, ज्योतिषी, ब्राह्मण, पितृस्थान, देवस्थान, आर्यपुरुष, वैष्णव और मित्रके सामने दिनमें देखा हुआ स्वप्न प्रकाशित करना चाहिये। इस प्रकार मैंने आपसे इस पवित्र प्रसङ्गका वर्णन कर दिया; यह पापनाशक, धनकी वृद्धि करनेवाला, यशोवर्धक और आयु बढ़ानेवाला है। अब और क्या सुनना चाहते हैं? (अध्याय ७९—८२)

---

* अच्युतं केशवं विष्णुं हरिं सत्यं जनार्दनम्। हंसं नारायणं चैव ह्येतन्नामाष्टकं शुभम्॥
शुचिः पूर्वमुखः प्राज्ञो दशकृत्वश्च यो जपेत्। निष्पापोऽपि भवेत् सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत्॥
विष्णुं नारायणं कृष्णं माधवं मधुसूदनम्। हरिं नरहरिं रामं गोविन्दं दधिवामनम्॥
भक्त्या चेमानि भद्राणि दश नामानि यो जपेत्। शतकृत्वो भक्तियुक्तो जप्त्वा नीरोगतां व्रजेत्॥
लक्षधा हि जपेद् यो हि बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्। जप्त्वा च दशलक्षं च महावन्ध्या प्रसूयते॥
हविष्याशी यतः शुद्धो दरिद्रो धनवान् भवेत्। शतलक्षं च जप्त्वा च जीवन्मुक्तो भवेन्नरः॥
शुद्धो नारायणक्षेत्रे सर्वसिद्धिं लभेन्नरः॥ (८२। ४४—४९)

† ॐ नमः शिवं दुर्गां गणपतिं कार्तिकेयं दिनेश्वरम्। धर्मं गङ्गां च तुलसीं राधां लक्ष्मीं सरस्वतीम्॥
नामान्येतानि भद्राणि जले स्नात्वा च यो जपेत्। वाञ्छितं च लभेत् सोऽपि दुःस्वप्नः शुभवान् भवेत्॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं पूर्वं दुर्गतिनाशिन्यै महामायायै स्वाहा। कल्पवृक्षो हि लोकानां मन्त्रः सप्तदशाक्षरः॥
शुचिश्च दशधा जप्त्वा दुःस्वप्नः सुखवान् भवेत्॥ (८२। ५०—५२)

‡ ॐ नमो मृत्युञ्जयायेति स्वाहान्तं लक्षधा जपेत्। दृष्ट्वा च मरणं स्वप्ने शतायुश्च भवेन्नरः॥
(८२। ५४)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संन्यासी तथा विधवा और पतिव्रता नारियोंके धर्मका वर्णन

नन्दजीने पूछा— बेटा! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम वेदों तथा ब्रह्मा आदिकी उत्पत्तिका सारा कारण वर्णन करो; क्योंकि तुम्हारे सिवा मैं और किससे पूछूँ? साथ ही ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रोंका कार्य करनेवालोंके जो धर्म हैं तथा संन्यासियों, यतियों, ब्रह्मचारियों, वैष्णव-ब्राह्मणों, सत्पुरुषों, विधवाओं एवं पतिव्रता नारियों, गृहस्थों, गृहस्थपत्नियों, विशेषतया शिष्यों और माता-पिताके प्रति पुत्रों एवं कन्याओंके जो धर्म हैं; उन सबको बतलानेकी कृपा करो। प्रभो! स्त्रियोंकी कितनी जातियाँ होती हैं? भक्तोंके कितने भेद हैं? ब्रह्माण्ड कितने प्रकारका है? वदन (बोली या मुख) किस प्रकारका होता है? नित्य क्या है और कृत्रिम क्या है? क्रमशः यह सब बतलाओ।

श्रीभगवान्‌ने कहा— नन्दजी! ब्राह्मण सदा संध्यावन्दनसे पवित्र होकर मेरी सेवा करता है और नित्य मेरे प्रसादको खाता है। वह मुझे निवेदन किये बिना कभी भी नहीं खाता; क्योंकि जो विष्णुको अर्पित नहीं किया गया है, वह अन्न विष्ठा और जल मूत्रके समान माना जाता है। अतः विष्णुके प्रसादको खानेवाला ब्राह्मण जीवन्मुक्त हो जाता है। नित्य तपस्यामें संलग्न रहनेवाला, पवित्र, शमपरायण, शास्त्रज्ञ, व्रतों और तीर्थोंका सेवी, नाना प्रकारके अध्यापन-कार्यसे संयुक्त धर्मात्मा ब्राह्मण विष्णु-मन्त्रसे दीक्षित होकर गुरुकी सेवा करता है; तत्पश्चात् उनकी आज्ञा लेकर संग्रहवान् (गृहस्थ) बनता है। उसे गुरुको नित्य-पूजनकी दक्षिणा देनी चाहिये तथा निःसंदेह नित्य गुरुजनोंका पालन-पोषण करना चाहिये; क्योंकि समस्त वन्दनीयोंमें पिता ही महान् गुरु माना जाता है, परंतु पितासे सौगुनी माता, मातासे सौगुना अभीष्टदेव और अभीष्टदेवसे चारगुना मन्त्रतन्त्र प्रदान करनेवाला गुरु श्रेष्ठ है। गुरु प्रत्यक्षरूपमें ऐश्वर्यशाली भगवान् नारायण हैं। गुरु ही ब्रह्मा, गुरु ही विष्णु और गुरु ही स्वयं शिव हैं। सभी देवता गुरुमें सदा हर्षपूर्वक निवास करते हैं। जिसके संतुष्ट होनेपर सभी देवता संतुष्ट हो जाते हैं, वे श्रीहरि भी गुरुके प्रसन्न होनेपर प्रसन्न हो जाते हैं। गुरु यदि शिष्योंपर पुत्रके समान स्नेह नहीं करते तो उन्हें ब्रह्महत्याका पाप लगता है और आशीर्वाद न देनेसे उन्हें भी वह फल भोगना पड़ता है।

जो विप्र सदा अपने धर्ममें तत्पर, ब्रह्मज्ञ तथा सदा विष्णुकी सेवा करनेवाला है; वही पवित्र है। उसके अतिरिक्त अन्य विप्र सदा अपवित्र रहता है। जो ब्राह्मण होकर बैलोंको जोतता है, शूद्रोंकी रसोई बनाता है, देवमूर्तियोंपर चढ़े हुए द्रव्यसे जीवन-निर्वाह करता है, संध्या नहीं करता, उत्साहहीन है, दिनमें नींद लेता है, शूद्रके श्राद्धान्नको खाता है, शूद्रोंके मुर्दोंका दाह करता है; ऐसे सभी ब्राह्मण शूद्रके समान माने जाते हैं। जो विधिपूर्वक शालग्राम महायन्त्रकी पूजा करके उनके अर्पित किये हुए नैवेद्यको खाता है तथा उनके चरणोदकको पीता है; वह सम्पूर्ण पापोंसे मुक्त हो जाता है। उसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है; क्योंकि श्रीहरिका चरणोदक पीकर मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। जो सालग्राम-शिलाके जलसे अपनेको अभिषिक्त करता है; उसने सम्पूर्ण तीर्थोंमें स्नान कर लिया और समस्त यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली। व्रजेश्वर! शालग्राम-शिलाका जल गङ्गाजलसे दसगुना बढ़कर है। जो ब्राह्मण उसे नित्य पान करता है; वह जीवन्मुक्त एवं देवताओंके समान हो जाता है। जो ब्राह्मणोंका नित्यकर्म, विष्णुके निवेदित नैवेद्यका भोजन, उनकी यत्नपूर्वक पूजा, उनके

चरणोदकका सेवन, नित्य त्रिकाल संध्या और भक्तिपूर्वक मेरा पूजन करता है, मेरे जन्मके दिन तथा एकादशीको भोजन नहीं करता; हे तात! जो व्रतपरायण होकर शिवरात्रि तथा श्रीरामनवमीके दिन आहार नहीं करता; वह ब्राह्मण जीवन्मुक्त है। भूतलपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी उस विप्रके चरणोंमें नतमस्तक होते हैं; अतः उस ब्राह्मणका चरणोदक पीकर मनुष्य तीर्थस्नायी हो जाता है। जबतक उस ब्राह्मणके चरणोदकसे पृथ्वी भीगी रहती है, तबतक उसके पितर कमलपत्रके पात्रमें जल पीते हैं। विष्णुके प्रसादको खानेवाला ब्राह्मण पृथ्वीको, तीर्थोंको और मनुष्योंको पवित्र कर देता है तथा स्वयं जीवन्मुक्त हो जाता है। जो ब्राह्मण विष्णुमन्त्रका उपासक है; वही वैष्णव है। उस वैष्णव ब्राह्मणकी बुद्धि उत्कृष्ट होती है; अतः उससे बढ़कर पुरुष दूसरा नहीं है। जो किसी क्षेत्रमें जाकर पुरश्चरणपूर्वक नारायणका जप करता है; वह अनायास ही अपने-आपका तथा अपनी एक हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जिसके संकल्प तो बाहर होते हैं, परंतु क्रियाएँ विष्णुपदमें होती हैं; वह एकनिष्ठ वैष्णव अपने एक लाख पूर्वपुरुषोंका उद्धार कर देता है।

(भगवान् कहते हैं—) ब्राह्मण और देवता मेरे प्राण हैं, परंतु भक्त प्राणोंसे भी बढ़कर प्रिय है। समस्त लोकोंमें जितने प्रिय पात्र हैं, उनमें भक्तसे अधिक प्यारा मेरे लिये दूसरा कोई नहीं है। इसलिये विष्णु-भक्तिसे रहित होकर विष्णु-मन्त्रकी दीक्षा नहीं ग्रहण करनी चाहिये। उत्तम बुद्धिसम्पन्न पुरुषको चाहिये कि वह उदासीन एवं दुराचारी गुरुसे मन्त्रकी दीक्षा न ग्रहण करे। यदि दैववश ग्रहण कर लेता है तो वह निश्चय ही धनहीन हो जाता है। ब्राह्मणोंका भोजन सदा मांसरहित हविष्यान्न है; क्योंकि मांसका परित्याग कर देनेसे ब्राह्मण तेजमें सूर्यके तुल्य हो जाता है। पूजक ब्राह्मण पहले स्नानको भलीभाँति संस्कृत करके तब भोजन तैयार करता है, फिर लिपे-पुते स्वच्छ स्थानपर भक्तिपूर्वक मुझे निवेदित करके तत्पश्चात् आदरपूर्वक ब्राह्मणको देकर तब स्वयं भोजन करता है। जो ब्राह्मणको अर्पण न करके स्वयं खा जाता है; वह शराबीके समान माना जाता है। चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय अथवा जननाशौच या मरणाशौचमें अपवित्र मनुष्यसे स्पर्श हो जानेपर भोजन-पात्र, भ्रष्ट-द्रव्य तथा अन्नका तुरंत परित्याग कर देना चाहिये। फिर धुली हुई धोती और गमछा धारण करके पैर धोकर शुद्ध स्थानपर भोजन करना चाहिये। द्विजातियोंको चाहिये कि सूर्यके रहते अर्थात् दिनमें दो बार भोजन न करें; क्योंकि वैसा करनेसे वह कर्म निष्फल हो जाता है और भोक्ता नरकगामी होता है। हविष्यान्नका भोजन करनेवाले संयमीको उचित है कि वह श्राद्धके दिन यात्रा, युद्ध, नदी-तट, दुबारा भोजन और मैथुनका परित्याग कर दे। जो विष्णुभक्त एवं बुद्धिमान् हो, उसी ब्राह्मणको पात्रका दान देना चाहिये; किंतु जो शूद्राका पति, शूद्रका पुरोहित, संध्याहीन, दुष्ट, बैलोंको जोतनेवाला, शुक्र बेचनेवाला और देव-प्रतिमापर चढ़े हुए द्रव्यसे जीविका चलानेवाला हो; उसे यत्न करके कभी भी नहीं देना चाहिये। इन लोगोंको पात्र प्रदान करनेसे ब्राह्मण नरकगामी होता है। उस दिन पात्रका उपभोग करके मैथुन करनेसे नरककी प्राप्ति होती है। तात! कन्या बेचनेवाला सबसे बढ़कर पापी होता है। जो मूल्य लेकर कन्यादान करता है, वह महारौरव नामक नरकमें जाता है, फिर कन्याके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक पितरोंसहित वह, उसका पुत्र और पुरोहित भी कुम्भीपाक नरकमें कष्ट भोगते हैं। इसलिये बुद्धिमान्‌को चाहिये कि योग्य वरको ही कन्या प्रदान करें। व्रजेश्वर! जो पुराणों तथा चारों वेदोंद्वारा वर्णित है, वह ब्राह्मणों तथा वैष्णवोंका धर्म मैंने कह दिया।

(अब क्षत्रियोंके धर्म बतलाता हूँ—) क्षत्रियोंको सदा यत्नपूर्वक ब्राह्मणोंका पूजन, नारायणकी अर्चा, राज्योंका पालन, युद्धमें निर्भीकता, ब्राह्मणोंको नित्य दान, शरणागतकी रक्षा, प्रजाओं और दुःखियोंका पुत्रवत् पालन, शस्त्रास्त्रकी निपुणता, रणमें पराक्रम, तपस्या और धर्मकार्य करना चाहिये। जो सदसद्विवेकशाली बुद्धिसे युक्त तथा नीति-शास्त्रका ज्ञाता हो, उसका सदा पालन करना चाहिये और सत्पुरुषोंसे भरी हुई सभामें उसे नित्य नियुक्त करना चाहिये। प्रतापी एवं यशस्वी क्षत्रिय हाथी, घोड़े, रथ और पैदल सैनिकोंसे युक्त चतुरङ्गिणी सेनाका नित्य यत्नपूर्वक पालन करता है। युद्धके लिये बुलाये जानेपर वह युद्ध-दानसे विमुख नहीं होता; क्योंकि जो क्षत्रिय युद्धमें प्राण-विसर्जन करता है, उसे यशस्कर स्वर्गकी प्राप्ति होती है*।

वैश्योंका धर्म व्यापार, खेती करना, ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन, दान, तपस्या और व्रतका पालन है। नित्य ब्राह्मणोंकी पूजा करना शूद्रका धर्म कहा गया है। ब्राह्मणको कष्ट देनेवाला तथा उसके धनपर अधिकार कर लेनेवाला शूद्र चाण्डालताको प्राप्त हो जाता है। विप्रके धनका अपहरण करनेवाला शूद्र असंख्य जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर और फिर सौ जन्मोंतक हिंसक पशुओंकी योनिमें जन्म लेता है। जो शूद्र ब्राह्मणी तथा अपनी माताके साथ व्यभिचार करता है; वह पापी जबतक सौ ब्रह्मा नहीं बीत जाते, तबतक कुम्भीपाकमें कष्ट भोगता है। वहाँ वह खौलते हुए तैलमें डुबाया जाता है, रात-दिन उसे साँप काटते रहते हैं; इस प्रकार यम-यातनासे दुःखी होकर वह चीत्कार करता रहता है। तत्पश्चात् वह पापी सात जन्मोंतक चाण्डाल-योनिमें, सात जन्मोंतक सर्प-योनिमें और सात जन्मोंतक जल-जन्तुओंकी योनिमें उत्पन्न होता है। फिर वह असंख्य जन्मोंतक विष्ठाका कीड़ा तथा सात जन्मोंतक कुलटा स्त्रियोंकी योनिका कीट होता है। पुनः वह पापी सात जन्मोंतक गौओंके घावका कीड़ा होता है। इस प्रकार उसे अनेक योनियोंमें भ्रमण करते ही बीतता है; परंतु मनुष्यकी योनि नहीं मिलती।

अब संन्यासियोंका जो धर्म है, वह मेरे मुखसे श्रवण करो। मनुष्य दण्ड-ग्रहणमात्रसे नारायणस्वरूप हो जाता है। जो संन्यासी मेरा ध्यान करता है; वह अपने पूर्वकर्मोंको जलाकर वर्तमान-जन्मके कर्मोंका उच्छेद कर डालता है और अन्तमें उसे मेरे लोककी प्राप्ति होती है। व्रजराज! जैसे वैष्णवके चरणस्पर्शसे तीर्थ तत्काल पवित्र हो जाते हैं; वैसे ही संन्यासीके पादस्पर्शसे पृथ्वी तुरंत पावन हो जाती है। मनुष्य संन्यासीका स्पर्श करनेसे पापरहित हो जाता है। संन्यासीको भोजन कराकर अश्वमेधयज्ञका फल तथा अकस्मात् संन्यासीको देखकर उसे नमस्कार करके राजसूय-यज्ञका फल पाता है। संन्यासी, यति और ब्रह्मचारी—इन सबके दर्शन-स्पर्शका फल एक-सा होता है।

संन्यासीको चाहिये कि वह भूखसे व्याकुल होनेपर सायंकाल गृहस्थोंके घर जाय और वहाँ गृहस्थ उसे सदन्न अथवा कदन्न जो कुछ भी दे; उसका परित्याग न करे। न तो मिष्टान्नकी याचना करे, न क्रोध करे और न धन ग्रहण करे। एक वस्त्र धारण करे, इच्छारहित हो जाय, जाड़ा-गरमीमें एक-सा रहे और लोभ-मोहका परित्याग कर दे। इस प्रकार वहाँ एक रात ठहरकर प्रातःकाल दूसरे स्थानको चला जाय।

* हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं च चतुष्टयम्। पालयेद् यत्नतो नित्यं यशस्वी च प्रतापवान्॥
रणे निमन्त्रितश्चैव दाने न विमुखो भवेत्। रणे यो वा त्यजेत् प्राणांस्तस्य स्वर्गो यशस्करः॥
(८३। ७१-७२)

जो संन्यासी सवारीपर चढ़ता है, गृहस्थका धन ग्रहण करता है और घर बनाकर स्वयं गृहस्थ हो जाता है; वह अपने रमणीय धर्मसे पतित हो जाता है। जो संन्यासी खेती और व्यापार करके कुकर्म करता है, उसका आचरण भ्रष्ट हो जाता है और वह अपने धर्मसे गिर जाता है। यदि वह स्वधर्मी अपना शुभ अथवा अशुभ कर्म करता है तो धर्म-बहिष्कृत अथवा उपहासका पात्र होता है।

जो ब्राह्मणी विधवा हो जाय—उसे सदा कामनारहित, दिनके अन्तमें एक बार भोजन करनेवाली और सदा हविष्यान्नपरायण होना चाहिये। उसे दिव्य माङ्गलिक वस्त्र नहीं धारण करना चाहिये; बल्कि सुगन्धित द्रव्य, सुवासित तेल, माला, चन्दन और चूड़ी-सिन्दूर-आभूषणका त्याग करके मलिन वस्त्र पहनना चाहिये। नित्य नारायणका स्मरण तथा नित्य नारायणकी सेवा करनी चाहिये। वह अनन्यभक्तिपूर्वक नारायणके नामोंका कीर्तन करती है और सदा धर्मानुसार पर-पुरुषको पुत्रके समान देखती है। व्रजेश्वर! वह न तो मिष्टान्नका भोजन करती है और न भोग-विलासकी वस्तुओंका संग्रह करती है। उसे पवित्र रहकर एकादशी, कृष्ण-जन्माष्टमी, श्रीरामनवमी, शिवरात्रि, भाद्रपद-मासके कृष्णपक्षकी चतुर्दशी, नरक-चतुर्दशी तथा चन्द्रमा और सूर्यके ग्रहणके समय भोजन नहीं करना चाहिये। वह भ्रष्ट पदार्थोंका परित्याग करके उसके अतिरिक्त उत्तम पदार्थोंको खाती है। श्रुतियोंमें सुना गया है कि विधवा स्त्री, यति, ब्रह्मचारी और संन्यासियोंके लिये पान मदिराके समान है। इन सभी लोगोंको रक्तवर्णका शाक, मसूर, जँभीरी नीबू, पान और गोल लौकीका परित्याग कर देना चाहिये। विधवा नारी पलङ्गपर सोनेसे पतिको (स्वर्गसे) नीचे गिरा देती है और सवारीपर चढ़कर वह स्वयं नरकगामिनी होती है। उसे बाल और शरीरका शृङ्गार नहीं करना चाहिये। जटारूपमें परिवर्तित हुई केश-वेणीको तीर्थमें गये बिना कटाना नहीं चाहिये और न शरीरमें तेल लगाना चाहिये। वह दर्पण, पर-पुरुषका मुख, यात्रा, नृत्य, महोत्सव, नाच-गान और सुन्दर वेषधारी रूपवान् पुरुषको नहीं देखती। उसे सामवेदमें निरूपण किये गये सत्पुरुषोंका धर्म श्रवण करना चाहिये।

अब मैं आपसे परमोत्कृष्ट परमार्थका वर्णन करता हूँ, सुनो। सदा अध्यापन, अध्ययन, शिष्योंका परिपालन, गुरुजनोंकी सेवा, नित्य देवता और ब्राह्मणका पूजन, सिद्धान्तशास्त्रमें निपुणताका उत्पादन, अपने-आपमें संतोष, सर्वथा शुद्ध व्याख्यान, निरन्तर ग्रन्थका अभ्यास, व्यवस्थाके सुधारके लिये वेदसम्मत विचार, स्वयं शास्त्रानुसार आचरण, देवकार्य और नित्यकर्मोंमें निपुणता, वेदानुसार अभीष्ट आचार-व्यवहार, वेदोक्त पदार्थोंका भोजन और पवित्र आचरण करना चाहिये।

व्रजेश्वर! अब पतिव्रताओंका जो धर्म है, उसे श्रवण करो। पतिव्रताको चाहिये कि नित्य पतिके प्रति उत्सुकता रखकर उनका चरणोदक पान करे; सदा भक्तिभावपूर्वक उनकी आज्ञा लेकर भोजन करे। प्रयत्नपूर्वक व्रत, तपस्या और देवार्चनका परित्याग करके चरण-सेवा, स्तुति और सब प्रकारसे पतिकी संतुष्टि करे। सतीको पतिकी आज्ञाके बिना वैरभावसे कोई कर्म नहीं करना चाहिये। सती अपने पतिको सदा नारायणसे बढ़कर समझती है। व्रजनाथ! उत्तम व्रतपरायणा सती पर-पुरुषके मुख, सुन्दर-वेषधारी सौन्दर्यशाली पुरुष, यात्रा, महोत्सव, नाच, नाचनेवाले, गवैया और पर-पुरुषकी क्रीड़ाकी ओर कभी दृष्टि नहीं डालती। जो आहार पतियोंको प्रिय होता है, वही सदा पतिव्रताओंको भी मान्य होता है। पतिव्रता क्षणभर भी पतिसे वियुक्त नहीं होती। वह पतिसे उत्तर-प्रत्युत्तर नहीं करती। ताड़ना मिलनेपर भी उसका स्वभाव शुद्ध ही बना रहता है; वह

क्रोधके वशीभूत नहीं होती। पतिव्रताको चाहिये कि पतिके भूखे होनेपर उसे भोजन कराये; भोजनके लिये उत्तम-उत्तम पदार्थ और पीनेके लिये शुद्ध जल दे; नींदसे माते हुए पतिको न जगावे और उसे काम करनेके लिये आज्ञा न दे। सतीको पतिके साथ पुत्रोंसे भी सौगुना अधिक प्रेम करना चाहिये; क्योंकि कुलाङ्गनाके लिये पति ही बन्धु, आश्रय, भरण-पोषण करनेवाला और देवता है। वह सुन्दरी अमृतके समान शुभकारक अपने पतिको देखकर बड़े यत्नसे भक्तिभावपूर्वक मुस्कराते हुए उसकी ओर निहारती है। सती नारी अपनी एक हजार पीढ़ियोंका उद्धार कर देती है। पतिव्रताओंके पति समस्त पापोंसे मुक्त हो जाते हैं; क्योंकि सतियोंके पातिव्रत्यके तेजसे उनका कर्मभोग समाप्त हो जाता है। इस प्रकार वे कर्मरहित होकर अपनी पतिव्रता पत्नीके साथ श्रीहरिके भवनमें आनन्द प्राप्त करते हैं।

व्रजेश! पृथ्वीपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सतीके चरणोंमें निवास करते हैं। सम्पूर्ण देवताओं और मुनियोंका तेज सतियोंमें वर्तमान रहता है। तपस्वियोंकी सारी तपस्या तथा व्रतोपवाससे व्रतियोंको एवं दान देनेसे दाताओंको जो फल प्राप्त होता है; वह सारा-का-सारा सदा पतिव्रताओंमें विद्यमान रहता है। स्वयं नारायण, शम्भु, लोकोंके विधाता ब्रह्मा, सारे देवता और मुनि भी सदा पतिव्रताओंसे डरते रहते हैं। सतियोंकी चरण-धूलिके स्पर्शसे पृथ्वी तत्काल ही पावन हो जाती है। पतिव्रताको नमस्कार करके मनुष्य पापसे छूट जाता है। पतिव्रता अपने तेजसे क्षणभरमें ही त्रिलोकीको भस्मसात् कर डालनेमें समर्थ है; क्योंकि वह सदा महान् पुण्यसे सम्पन्न रहती है। सतियोंके पति और पुत्र साधु एवं निःशङ्क हो जाते हैं; क्योंकि उन्हें देवताओं तथा यमराजसे भी कुछ भय नहीं रह जाता। सौ जन्मोंतक पुण्य संग्रह करनेवाले पुण्यवानोंके घरमें पतिव्रता जन्म लेती है। पतिव्रताके पैदा होनेसे उसकी माता पावन हो जाती है तथा पिता जीवन्मुक्त हो जाते हैं।

सती स्त्री प्रातःकाल उठकर रात्रिमें पहने हुए वस्त्रको छोड़कर पतिको नमस्कार करके हर्षपूर्वक स्तवन करती है। तत्पश्चात् गृहकार्य सम्पन्न करके नहाकर धुली हुई साड़ी और कंचुकी धारण करती है। फिर श्वेत पुष्प लेकर भक्तिपूर्वक पतिका पूजन करती है। पवित्र निर्मल जलसे स्नान कराकर उसे धौत-वस्त्र देकर वह हर्षपूर्वक पतिका पादप्रक्षालन करती है। फिर आसनपर बिठाकर, ललाटमें चन्दनका तिलक लगाकर, सर्वाङ्गमें (इत्र आदिका) अनुलेप करके गलेमें माला पहनाकर मन्त्रोच्चारणपूर्वक अमृतोपम भोग-पदार्थोंद्वारा भक्तिभावसहित भलीभाँति पूजन और स्तवन करके हर्षके साथ पतिके चरणोंमें नमस्कार करती है। 'ॐ नमः कान्ताय शान्ताय सर्वदेवाश्रयाय स्वाहा'—इसी मन्त्रसे पुष्प, चन्दन, पाद्य, अर्घ्य, धूप, दीप, वस्त्र, उत्तम नैवेद्य, शुद्ध सुगन्धित जल और सुवासित ताम्बूल समर्पित करके स्तोत्र-पाठ करना चाहिये। जो-जो कर्म किया जाय, सभीमें इस मन्त्रका उच्चारण करना चाहिये।

ॐ चन्द्रशेखरस्वरूप प्रियतम पतिको नमस्कार है। आप शान्त, उदार और सम्पूर्ण देवताओंके आश्रय हैं; आपको प्रणाम है। सतीके प्राणाधार एवं ब्रह्मस्वरूप आपको अभिवादन है। आप नमस्कारके योग्य, पूजनीय, हृदयके आधार, पञ्च प्राणोंके अधिदेवता, आँखकी पुतली, ज्ञानाधार और पत्नियोंके लिये परमानन्दस्वरूप हैं; आपको नमस्कार है। पति ही ब्रह्मा, पति ही विष्णु, पति ही महेश्वर और पति ही निर्गुणाधार ब्रह्मरूप हैं; आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। भगवन्! मुझसे जानमें अथवा अनजानमें जो कुछ दोष घटित हुआ है; उसे क्षमा कर दीजिये। पत्नीबन्धो! आप

तो दयाके सागर हैं; अतः मुझ दासीका अपराध क्षमा कर दें। व्रजेश्वर! पूर्वकालमें सृष्टिके प्रारम्भमें लक्ष्मी, सरस्वती, पृथ्वी और गङ्गाने इस महान् पुण्यमय स्तोत्रका पाठ किया था। पूर्वकालमें सावित्रीने भी नित्यशः इस स्तोत्रद्वारा ब्रह्माका स्तवन किया था। कैलासपर पार्वतीने भक्तिपूर्वक शंकरके लिये इस स्तोत्रका पाठ किया था। प्राचीनकालमें मुनिपत्नियों तथा देवाङ्गनाओंने भी इसके द्वारा स्तुति की थी। अतः सभी पतिव्रताओंके लिये यह स्तोत्र शुभदायक है। जो पतिव्रता अथवा अन्य पुरुष या नारी इस महान् पुण्यदायक स्तोत्रको सुनती है; उसके सभी मनोरथ पूर्ण हो जाते हैं। पुत्रहीनको पुत्र प्राप्त हो जाता है, निर्धनको धन मिल जाता है, रोगी रोगसे मुक्त हो जाता है और बँधा हुआ बन्धनसे छूट जाता है। व्रजेश्वर! पतिव्रता इसके द्वारा स्तवन करके तीर्थस्नानका फल तथा सम्पूर्ण तपस्याओं और व्रतोंका फल पाती है*। इस प्रकार स्तुति-नमस्कार करके पतिकी आज्ञासे वह भोजन करती है। व्रजराज! इस प्रकार मैंने पतिव्रताके धर्मका वर्णन कर दिया, अब गृहस्थोंका धर्म सुनिये। (अध्याय ८३)

गृहस्थ, गृहस्थ-पत्नी, पुत्र और शिष्यके धर्मका वर्णन, नारियों और भक्तोंके त्रिविध भेद, ब्रह्माण्ड-रचनाके वर्णन-प्रसङ्गमें राधाकी उत्पत्तिका कथन

श्रीभगवान् कहते हैं—नन्दजी! गृहस्थ पुरुष सदा ब्राह्मणों और देवताओंका पूजन करता है तथा चारों वर्णोंके धर्मानुसार अपने वर्ण-धर्मके पालनमें तत्पर रहता है। इसीलिये देवता आदि सभी प्राणी गृहस्थोंकी आशा करते हैं। गृहस्थ अतिथिका आदर-सत्कार करके सदा पवित्र बना रहता है। (पिण्डदान आदि) कर्मके अवसरपर पितर और अतिथि-पूजनके समय सारे देवता उसी प्रकार गृहस्थके पास आते हैं, जैसे गौएँ पानीसे भरे हुए हौजके पास जाती हैं। भूखा अतिथि सायंकाल प्रयत्नपूर्वक गृहस्थके घर आता है और वहाँ आदर-सत्कार पाकर उसे आशीर्वाद देनेके पश्चात् उस गृहस्थके घरसे विदा होता है। अतिथिका पूजन न करनेसे गृहस्थ पापका भागी होता है और उसे त्रिलोकीमें उत्पन्न सारे पाप भोगने पड़ते हैं; इसमें तनिक भी संशय नहीं है। अतिथि जिसके घरसे निराश होकर लौट जाता है, उसके घरका उसके पितर, देवता और अग्नियाँ भी परित्याग कर देती हैं तथा वह अतिथि उसे अपना पाप देकर और उसका पुण्य लेकर

---

* ॐ नमः कान्ताय भर्त्रे च शिरश्चन्द्रस्वरूपिणे। नमः शान्ताय दान्ताय सर्वदेवाश्रयाय च॥
नमो ब्रह्मस्वरूपाय सतीप्राणपराय च। नमस्याय च पूज्याय हृदाधाराय ते नमः॥
पञ्चप्राणाधिदेवाय चक्षुषस्तारकाय च। ज्ञानाधाराय पत्नीनां परमानन्दरूपिणे॥
पतिर्ब्रह्मा पतिर्विष्णुः पतिरेव महेश्वरः। पतिश्च निर्गुणाधारो ब्रह्मरूपो नमोऽस्तु ते॥
क्षमस्व भगवन् दोषं ज्ञानाज्ञानकृतं च यत्। पत्नीबन्धो दयासिन्धो दासीदोषं क्षमस्व मे॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं सृष्ट्यादौ पद्मया कृतम्। सरस्वत्या च धरया गङ्गया च पुरा व्रज॥
सावित्र्या च कृतं पूर्वं ब्रह्मणे चापि नित्यशः। पार्वत्या च कृतं भक्त्या कैलासे शंकराय च॥
मुनीनां च सुराणां च पत्नीभिश्च कृतं पुरा। पतिव्रतानां सर्वासां स्तोत्रमेतच्छुभावहम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं या शृणोति पतिव्रता। नरोऽन्यो वापि नारी वा लभते सर्ववाञ्छितम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रं निर्धनो लभते धनम्। रोगी च मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात्॥
पतिव्रता च स्तुत्वा च तीर्थस्नानफलं लभेत्। फलं च सर्वतपसां व्रतानां च व्रजेश्वर।
(८३। १३९—१४६)

चला जाता है। इसलिये उत्तम विचारसम्पन्न धर्मज्ञ गृहस्थ पहले देवता आदि सबकी सेवा करके फिर आश्रितवर्गका भरण-पोषण करनेके पश्चात् स्वयं भोजन करता है। जिसके घरमें माता नहीं है और पत्नी पुंश्चली है, उसे वनवासी हो जाना चाहिये; क्योंकि उसके लिये वह गृह वनसे भी बढ़कर दुःखदायक है। वह दुष्टा सदा पतिसे द्वेष करती है और उसे विष-तुल्य समझती है। वह उसे भोजन तो देती नहीं; उलटे सदा डाँट-फटकार सुनाती रहती है।

व्रजेश! अब गृहस्थ-पत्नियोंका जो सदाचार श्रुतिमें वर्णित है, उसे श्रवण करो। गृहिणी नारी पतिपरायणा तथा देव-ब्राह्मणकी पूजा करनेवाली होती है। उस शुद्धाचारिणीको चाहिये कि प्रातःकाल उठकर देवता और पतिको नमस्कार करके आँगनमें गोबर और जलसे लीपकर मङ्गल-कार्य सम्पन्न करे। फिर गृह-कार्य करके स्नान करे और घरमें आकर देवता, ब्राह्मण और पतिको नमस्कार करके गृहदेवताकी पूजा करे। इस प्रकार सती नारी घरके सारे कार्योंसे निवृत्त होकर पतिको भोजन कराती है और अतिथि-सेवा करनेके पश्चात् स्वयं सुखपूर्वक भोजन करती है।

पुत्रोंको चाहिये कि वे पिताको स्नान कराकर उनकी पूजा करें। यों ही शिष्योंको गुरुका पूजन करना चाहिये। पुत्र और शिष्यको सेवककी भाँति उनके आज्ञानुसार सारा कार्य करना उचित है। पिता और गुरुमें कभी मनुष्य-बुद्धि नहीं करनी चाहिये। पिता, माता, गुरु, भार्या, शिष्य, स्वयं अपना निर्वाह करनेमें असमर्थ पुत्र, अनाथ बहिन, कन्या और गुरु-पत्नीका नित्य भरण-पोषण करना कर्तव्य है। तात! इस प्रकार मैंने सबके उत्तम धर्मका वर्णन कर दिया।

व्रजेश! स्त्री-जाति तो वस्तुतः शुद्ध है। उसमें ये सारी पतिव्रताएँ और भी पावन मानी जाती हैं। सृष्टिके आदिमें ब्रह्माने एक ही प्रकारसे सारी जातियोंकी रचना की थी। वे सभी उत्तम बुद्धिवाली पवित्र नारियाँ प्रकृतिके अंशसे उत्पन्न हुई थीं। जब केदार-कन्याके* शापसे वह धर्म नष्ट हो गया, तब ब्रह्माने कुपित होकर पुनः स्त्री-जातिका निर्माण किया और उसे तीन भागोंमें विभक्त कर दिया। उनमें पहली उत्तमा, दूसरी मध्यमा और तीसरी अधमा कही जाती है। धर्मसम्पन्ना उत्तमा स्त्री पतिकी भक्त होती है। वह प्राणोंपर आ बीतनेपर भी अपकीर्ति पैदा करनेवाले जार पुरुषको नहीं स्वीकार करती। जो गुरुजनोंद्वारा यत्नपूर्वक रक्षित होनेके कारण भयवश जार पुरुषके पास नहीं जाती और अपने पतिको कुछ-कुछ मानती है, वह कृत्रिमा नारी मध्यमा कही जाती है। नन्दजी! ऐसी नारियोंका सतीत्व जहाँ स्थानाभाव है, समय नहीं मिलता है और प्रार्थना करनेवाला जार पुरुष नहीं है; वहीं स्थिर रह सकता है। अत्यन्त नीच कुलमें उत्पन्न हुई अधमा स्त्री परम दुष्टा, अधर्मपरायणा, दुष्ट स्वभाववाली, कटुवादिनी और झगड़ालू होती है। वह सदा उपपतिकी सेवा करती है और अपने पतिकी नित्य भर्त्सना करती रहती है, उसे दुःख देती है और विष-तुल्य समझती है। उसका पति भले ही भूतलपर रूपवान्, धर्मात्मा, प्रशंसनीय और महापुरुष हो; परंतु वह उपाय करके उपपतिद्वारा उसे मरवा डालती है। उसकी प्रीति बिजलीकी चमक और जलपर खिंची हुई रेखाके समान क्षणभङ्गुर होती है। वह सदा अधर्ममें तत्पर रहकर निश्चित रूपसे कपटपूर्ण वचन ही बोलती है। उसका मन न तो व्रत, तपस्या, धर्म और गृहकार्यमें ही लगता है और न गुरु तथा देवताओंकी ओर ही झुकता है।

* केदार-कन्याका उपाख्यान इसी खण्डमें अन्यत्र देखना चाहिये।

नन्दजी! इस प्रकार तीन भेदोंवाली स्त्रीजातिकी कथा मैंने कह दी, अब विभिन्न प्रकारके भक्तोंका लक्षण सुनिये।

तृणकी शय्याका प्रेमी भक्त सांसारिक सुखोंके कारणोंका त्याग करके अपने मनको मेरे नाम और गुणके कीर्तनमें लगाता है। वह मेरे चरणकमलका ध्यान करता है और भक्तिभावसहित उसका पूजन करता है। देवगण उस निष्काम भक्तकी अहैतुकी पूजाको ग्रहण करते हैं। ऐसे भक्त अणिमा आदि सारी अभीष्ट सिद्धियोंकी तथा सुखके कारणभूत ब्रह्मत्व, अमरत्व अथवा देवत्वकी कामना नहीं करते। उन्हें हरिकी दासताके बिना सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य और सायुज्य आदि चारों मुक्तियोंकी अभिलाषा नहीं रहती और न वे निर्वाण-मुक्ति तथा अभीप्सित अमृत-पानकी ही स्पृहा करते हैं। उन्हें मेरी अतुलनीय निश्चल भक्तिकी ही लालसा रहती है। व्रजेश्वर! उन श्रेष्ठ सिद्धेश्वरोंमें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं रहता और न समस्त जीवोंमें भिन्नता रहती है। वे दिगम्बर होकर भूख-प्यास आदि तथा निद्रा, लोभ, मोह आदि शत्रुओंका त्याग करके रात-दिन मेरे ध्यानमें निमग्न रहते हैं। नन्दजी! यह मेरे सर्वश्रेष्ठ भक्तके लक्षण हैं। अब मध्यम आदि भक्तोंका लक्षण श्रवण करो। पूर्वजन्मोंके शुभ कर्मके प्रभावसे पवित्र हुआ गृहस्थ कर्मोंमें आसक्त न होकर सदा पूर्वकर्मका उच्छेदक कर्म ही करता है; वह यत्नपूर्वक कोई दूसरा कर्म नहीं करता; क्योंकि उसे किसी कर्मकी कामना ही नहीं रहती। वह मन, वाणी और कर्मसे सदा ऐसा चिन्तन करता रहता है कि जो कुछ कर्म है, वह सब श्रीकृष्णका है, मैं कर्मका कर्ता नहीं हूँ। ऐसा भक्त मध्यम श्रेणीका होता है। जो उससे भी नीची कोटिका है; वह श्रुतिमें प्राकृतिक अर्थात् अधम कहा गया है। उत्तम कोटिका भक्त अपने हजारों पूर्वपुरुषोंका उद्धार कर देता है। उसे स्वप्नमें भी यमराज अथवा यमदूतका दर्शन नहीं होता। मध्यम कोटिका भक्त अपनी सौ पीढ़ियोंका तथा प्राकृत भक्त पचीस पीढ़ियोंका उद्धारक होता है। तात! इस प्रकार मैंने आपके आज्ञानुसार तीन प्रकारके भक्तोंका वर्णन कर दिया। अब सावधानतया ब्रह्माण्डकी रचनाका आख्यान श्रवण कीजिये।

नन्दजी! भक्तलोग यत्न करनेपर ब्रह्माण्ड-रचनाका प्रयोजन जान लेते हैं। मुनियों, देवताओं और संतोंको बड़े दुःखसे कुछ-कुछ ज्ञात होता है। पूर्णरूपसे विश्वका ज्ञान तो अनन्तस्वरूप मुझको, ब्रह्मा और महेश्वरको है। हमारे अतिरिक्त धर्म, सनत्कुमार, नर-नारायण ऋषि, कपिल, गणेश, दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती, वेद, वेदमाता सावित्री, स्वयं सर्वज्ञा राधिका—ये लोग भी विश्व-रचनाका अभिप्राय जानते हैं, इनके अतिरिक्त और किसीको पता नहीं है। उत्कृष्ट बुद्धिसम्पन्न सभी विद्वान् इसके वैषम्यार्थको पूर्णरूपसे जाननेमें असमर्थ हैं। जैसे आकाश और आत्मा नित्य हैं; उसी प्रकार दसों दिशाएँ नित्य हैं। जैसे प्रकृति नित्य है, वैसे ही विश्वगोलक नित्य है। जैसे गोलोक नित्य है, उसी तरह वैकुण्ठ भी नित्य है। एक समयकी बात है। जब मैं गोलोकमें रास-क्रीड़ा कर रहा था, उसी समय मेरे वामाङ्गसे एक षोडशवर्षीया नारी प्रकट हुई। वह अत्यन्त सुन्दरी बाला रमणियोंमें सर्वश्रेष्ठ थी। उसके शरीरका रंग श्वेत चम्पकके समान गौर था। उसकी कान्ति शरत्कालीन चन्द्रमाको लज्जित कर रही थी। वह रत्नाभरणोंसे भूषित थी और उसके अङ्गपर अग्निमें तपाकर शुद्ध की हुई साड़ी शोभा पा रही थी। उसके सभी अङ्ग मनोहर और कोमल थे तथा उसका प्रसन्नमुख मन्द-मन्द मुस्कानसे सुशोभित था। उसके चरणोंका अधोभाग सुन्दर महावरसे उद्भासित हो रहा था। वह सुन्दर नेत्रोंवाली सौन्दर्यशालिनी बाला गजेन्द्रकी-सी

चाल चल रही थी। उस कामिनीने रासक्रीड़ाके अवसरपर प्रकट होकर मुझे आगेसे पकड़ लिया। इसी कारण पुरातत्त्ववेत्ताओंने उसका 'राधा' नाम रखा और उसकी पूजा की। उसकी प्रकृति परम प्रसन्न थी; इसलिये वह ईश्वरी 'प्रकृति' कहलायी। समस्त कार्योंमें समर्थ होनेके कारण वह 'शक्ति' नामसे कही जाती है। वह सबकी आधारस्वरूपा, सर्वरूपा और सब तरहसे मङ्गलके योग्य है; सम्पूर्ण मङ्गलोंके दानमें दक्ष होनेके कारण वह 'सर्वमङ्गला' है। वह वैकुण्ठमें 'महालक्ष्मी' और मूर्तिभेदसे 'सरस्वती' है। वेदोंको उत्पन्न करनेके कारण वह 'वेदमाता' नामसे प्रसिद्ध है। वह 'सावित्री' और तीनों लोकोंका धारण-पोषण करनेवाली 'गायत्री' भी है। पूर्वकालमें उसने दुर्गका संहार किया था; इसी कारण वह 'दुर्गा' नामसे विख्यात है। यह सती प्राचीनकालमें समस्त देवताओंके तेजसे आविर्भूत हुई थी, इसीसे यह 'आद्याप्रकृति' कहलाती है। यह समस्त असुरोंका मर्दन करनेवाली, सम्पूर्ण आनन्दकी दाता, आनन्दस्वरूपा, दुःख और दरिद्रताका विनाश करनेवाली, शत्रुओंको भय प्रदान करनेवाली और भक्तोंके भयकी विनाशिका है। वही 'सती' रूपसे दक्षकी कन्या हुई और पुनः हिमालयसे उत्पन्न होकर 'पार्वती' कहलाती है। वह सबकी आधारस्वरूपा है। पृथ्वी उसकी एक कला है। तुलसी और गङ्गा उसीकी कलासे उत्पन्न हुई हैं। यहाँतक कि सम्पूर्ण स्त्रियोंका आविर्भाव उसकी कलासे ही हुआ है। तात! जिस शक्तिसे सम्पन्न होकर मैं बारंबार सृष्टि-रचना करता हूँ, उसे रासके मध्य स्थित देखकर मैंने उसके साथ क्रीड़ा की। उस समय रासमण्डलमें उन दोनोंके शरीरसे जो पसीनेकी बूँदें भूतलपर गिरीं, उनसे एक मनोहर सरोवर उत्पन्न हो गया, जो राधाके नामके सदृश था (अर्थात् उसका नाम राधासरोवर हुआ)। उस सरोवरसे जो पसीनेकी धारा वेगपूर्वक नीचे विश्व-गोलकमें गिरी, उससे सारा ब्रह्माण्डगोलक जलसे भर गया। व्रजेश्वर! पहले-पहल सब कुछ जलमग्न था; उस समय सृष्टि नहीं हुई थी। तब शृङ्गारके समाप्त होनेपर मैंने राधामें वीर्यका आधान किया। तत्पश्चात् श्रीराधिकाने गर्भ धारण करके दीर्घकालके बाद एक परम अद्भुत डिम्ब प्रसव किया। उसे देखकर देवीको क्रोध आ गया; तब उन्होंने उसे पैरसे नीचे विश्व-गोलकमें ढकेल दिया। तात! वह जलमें गिर पड़ा और सबका आधारस्वरूप 'महान् विराट्' हो गया। तब अपनी संतानको जलमें पड़ा हुआ देखकर मैंने राधाको शाप दे दिया। विभो! मेरे शापके कारण राधा संतानहीन हो गयी। व्रजेश्वर! इसलिये जिस डिम्बसे कलाका आश्रय लेकर वह महान् विराट् पैदा हुआ था, उसीसे दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्यान्य जो देवियाँ और स्त्रियाँ हैं; वे सभी क्रमशः कला, कलांश और कलांशके अंशसे उत्पन्न हुई हैं।

व्रजेश! उस महान् विराट्ने मेरे द्वारा दिये गये अंगुष्ठामृतका पान किया और फिर स्वकर्मानुसार स्थावर-रूप होकर वह जलमें शयन करने लगा। योगबलसे जल ही उसकी शय्या और उपाधान था तथा उसके रोमकूप सदा जलसे भरे रहते थे। पुनः उनमें 'क्षुद्र विराट्' शयन करने लगा। उस क्षुद्र विराट्की नाभिसे सहस्रदल कमल उत्पन्न हुआ। उस कमलपर सुरश्रेष्ठ ब्रह्माने जन्म लिया; इसी कारण वे कमलोद्भव कहे जाते हैं। वहाँ आविर्भूत होकर वे ब्रह्मा चिन्ताग्रस्त हो यों सोचने लगे—'यह देह किससे उत्पन्न हुई है तथा मेरे माता-पिता और भाई-बन्धु कहाँ हैं?' इसी चिन्तामें वे तीन लाख दिव्य वर्षोंतक उस कमलके भीतर चक्कर काटते रहे। तत्पश्चात् पाँच लाख दिव्य वर्षोंतक उन्होंने तपस्याद्वारा मेरा स्मरण किया, तब मैंने उन्हें मन्त्र प्रदान किया, जिसका वे पवित्रतापूर्वक इन्द्रियोंको काबूमें करके

नियतरूपसे सात लाख दिव्य वर्षोंतक उस कमलके अंदर जप करते रहे। इसके बाद मुझसे वर पाकर उन सृष्टिकर्ताने सृष्टिकी रचना की। मेरी मायाके बलसे ब्रह्माने प्रत्येक ब्रह्माण्डमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल, द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, नौ ग्रह, आठ वसु, तीन करोड़ देवता, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, यक्ष, गन्धर्व, किन्नर, भूत-प्रेत आदि राक्षस एवं चराचर जगत्‌की रचना की। उन्होंने प्रत्येक विश्वमें क्रमशः सात स्वर्ग, सात सागरोंसे संयुक्त स्वर्णभूमिवाली सप्तद्वीपवती पृथ्वी, अन्धकारमय स्थान, सात पाताल तथा इनसे युक्त ब्रह्माण्डका निर्माण किया। प्रत्येक विश्वमें चन्द्रमा, सूर्य, पुण्यक्षेत्र भारत और इन गङ्गा आदि तीर्थोंकी सृष्टि की। व्रजेश्वर! महाविष्णुके शरीरमें जितने रोमकूप हैं, क्रमशः उतने ही असंख्य विश्व हैं। उन विश्वोंके ऊर्ध्वभागमें वैकुण्ठ है, जो निराश्रय है तथा मेरी इच्छासे जिसका निर्माण हुआ है। वेद भी उसका वर्णन करके पार नहीं पा सकते। निश्चय ही कुयोगियों तथा भक्तिहीनोंके लिये उसका दर्शन दुर्लभ है। इससे ऊपर गोलोक है। वह परम विचित्र आश्रयस्थान वायुके आधारपर टिका हुआ है। मेरी इच्छासे उस अत्यन्त रमणीय अविनाशी लोकका निर्माण हुआ है। वह शतशृङ्ग पर्वत, पुण्यमय वृन्दावन, रमणीय रासमण्डल तथा विरजा नदीसे युक्त है। विरजा अमूल्य रत्नसमूहों, हीरा, माणिक्य तथा कौस्तुभ आदि असंख्यों मणियोंसे युक्त होनेके कारण बड़ी मनोहर है। उस गोलोकमें प्रत्येक महल अमूल्य रत्नोंके बने हुए हैं। उसमें ऐसा मनोहर परकोटा है, जिसे विश्वकर्माने भी नहीं देखा है। ये महल गोपियों, गोपगणों तथा कामधेनुओंसे परिवेष्टित हैं। वहाँ रास-मण्डल असंख्यों कल्पवृक्षों, पारिजातके तरुओं, सरोवरों तथा पुष्पोद्यानोंसे समावृत है। वह गोपों, मन्दिरों, रत्नप्रदीपों, पुष्प-शय्याओं, कस्तूरी-कुङ्कुमयुक्त सुगन्धित चन्दनके गन्धों, क्रीडोपयुक्त भोगपदार्थों, सुवासित जल और पान-बीड़ाओं, रमणीय सुगन्धियुक्त धूपों, पुष्पमालाओं और रत्नजटित दर्पणोंसे भरा-पूरा है। अमूल्य रत्नाभरणों तथा अग्नि-शुद्ध वस्त्रोंसे अलंकृत राधाकी दासियाँ सदा उसकी रक्षा करती रहती हैं। नवयौवनसम्पन्न तथा अनुपम सौन्दर्यशाली गजेन्द्रोंकी सेना क्रमशः उसे घेरे हुए है। व्रजराज! वह रमणीय तथा चन्द्रमण्डलके समान गोल है। उस विस्तृत मण्डलकी रचना बहुमूल्य रत्नोंद्वारा हुई है। वह कस्तूरी-कुङ्कुमयुक्त सुन्दर एवं सुगन्धित चन्दनसे समर्चित है। वह फल-पल्लवयुक्त मङ्गल-कलशों, दही और खीलों, पत्तों, कोमल दूर्वाङ्कुरों, फलों, असंख्यों केलेके मनोहर खम्भों तथा रेशमी सूतमें बँधे हुए कोमल चन्दन-पल्लवोंकी वन्दनवारोंसे आच्छादित है और चन्दनयुक्त पुष्पमालाओं एवं आभूषणोंसे विभूषित है। वहाँ बहुमूल्य रत्नोंका बना हुआ शतशृङ्ग पर्वत मनको खींचे लेता है। वह अत्यन्त सुन्दर है। वेद भी उसका वर्णन नहीं कर सकते। वह हीरेके हारसे युक्त होनेके कारण रमणीय है तथा मनोहर परकोटेकी तरह उस गोलोकको चारों ओरसे घेरे हुए है।

वहाँ चन्दनके वृक्षोंसे युक्त रमणीय वृन्दावन है, जो कल्पवृक्षों, सुन्दर मन्दार-पुष्पों, कामधेनुओं, शोभाशाली मनोहर पुष्पवाटिकाओं, रमणीय क्रीड़ा-सरोवरों और परम सुन्दर क्रीड़ाभवनोंसे सुशोभित है। उसके एकान्तमें रास-क्रीड़ाके योग्य अत्यन्त सुन्दर स्थान है, जो चारों ओरसे गोलाकार है। रक्षकरूपमें नियुक्त हुई असंख्यों सुन्दरी गोपिकाएँ उसकी रक्षा करती हैं। वहाँ कोकिल कूजते रहते हैं तथा भौंरोंका गुंजार होता रहता है। उसीके एकान्त स्थलमें एक रमणीय अक्षयवट है, जिसकी लंबाई-चौड़ाई विशाल है। सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाला वह अक्षयवट गोपियोंके लिये कल्पवृक्ष है। वहाँ राधाकी दासियाँ

क्रीड़ा करती रहती हैं। विरजाके तटप्रान्तके जलका स्पर्श करके बहती हुई शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु उसे पवित्र करती रहती है। उस अक्षयवटके नीचे वृन्दावनमें विनोद करनेवाली मेरे प्राणोंकी अधिदेवता वह राधा असंख्यों दासीगणोंके साथ क्रीड़ा करती है। वही राधा इस समय वृषभानुकी कन्या होकर प्रकट हुई है। व्रजेश! ब्रह्मादि देवता, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र और सिद्धगण गुण, बल, बुद्धि, ज्ञानयोग और विद्याद्वारा उसकी पूजा करते हैं। तात! यह मेरी प्रिया मेरे ही समान है; अतः सब तरहसे वन्दनीया है। नन्दजी! इस प्रकार मैंने यथोचित एवं परिमित रूपसे ब्रह्माण्डोंका वर्णन कर दिया। अब पुनः आपकी और क्या सुननेकी इच्छा है? (अध्याय ८४)

चारों वर्णोंके भक्ष्याभक्ष्यका निरूपण तथा कर्मविपाकका वर्णन

नन्दजीने कहा—महाभाग! अब चारों वर्णोंके भक्ष्याभक्ष्यका तथा समस्त प्राणियोंके कर्मविपाकका वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—तात! मैं चारों वर्णोंके वेदोक्त भक्ष्याभक्ष्यका यथोचितरूपसे वर्णन करता हूँ, उसे सावधान होकर श्रवण करो। मनुका कथन है कि लोहेके बर्तनमें जलपान, उसमें रखा हुआ गौका दूध-दही-घी, पकाया हुआ अन्न भ्रष्टादिक (भुना हुआ पदार्थ), मधु, गुड़, नारियलका जल, फल, मूल आदि सभी पदार्थ अभक्ष्य हो जाते हैं। जला हुआ अन्न तथा गरमाया हुआ बदरीफल या खट्टी काँजीको भी अभक्ष्य कहा गया है। काँसेके बर्तनमें नारियलका जल और ताम्रपात्रमें स्थित मधु तथा घृतके अतिरिक्त सभी गव्य पदार्थ (दूध-दही आदि) मदिरा-तुल्य हो जाते हैं। ताम्रपात्रमें दूध पीना, जूठा रखना, घीका भोजन करना और नमकसहित दूध खाना तुरंत ही अभक्ष्यके समान पापकारक हो जाता है। मधु मिला हुआ घी, तेल और गुड़ अभक्ष्य है तथा शास्त्रके मतानुसार गुड़मिश्रित अदरक भी अभक्ष्य है। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि पीनेसे अवशिष्ट जल, माघमासमें मूली और शय्यापर बैठकर जप आदिका सदा परित्याग कर दे। उत्तम बुद्धिसम्पन्न पुरुषको दिनमें दो बार तथा दोनों संध्याओंमें और रात्रिके पिछले पहरमें भोजन नहीं करना चाहिये। पीनेका जल, खीर, चूर्ण, घी, नमक, स्वस्तिकके आकारकी मिठाई, गुड़, दूध, मट्ठा तथा मधु—ये एक हाथसे दूसरे हाथपर ग्रहण करनेसे तत्काल ही अभक्ष्य हो जाते हैं। श्रुतिकी सम्मतिसे चाँदीके पात्रमें रखा हुआ कपूर अभक्ष्य हो जाता है। यदि परोसनेवाला व्यक्ति भोजन करनेवालेको छू दे तो वह अन्न अभक्ष्य हो जाता है—यह सभीको सम्मत है। ब्राह्मणोंको भैंसका दूध, दही, घी, स्वस्तिक और माखन नहीं खाना चाहिये। रविवारको अदरक सभीके लिये अभक्ष्य है। ब्राह्मणोंके लिये बासी अन्न, जल और दूध निषिद्ध है। असंस्कृत नमक और तेल अभक्ष्य है; परंतु अग्निद्वारा संस्कृत पवित्र व्यञ्जन सभीके खाने योग्य है। एक हाथसे धारण किया हुआ, गँदला, कृमियुक्त और अपवित्र जल अपेय होता है—यह सर्वसम्मत है। श्रीहरिको निवेदित किये बिना कोई भी पदार्थ ब्राह्मणों, यतियों, ब्रह्मचारियों, विशेष करके वैष्णवोंको नहीं खाना चाहिये। तात! जिस-किसी वस्तुमें अथवा मधु, दूध, दही, घी और गुड़में यदि चींटियाँ पड़ गयी हों तो उसे कभी नहीं खाना चाहिये। ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। पका हुआ शुद्ध फल, जिसे पक्षीने काट दिया हो अथवा उसमें कीड़े पड़ गये हों तथा कौवेद्वारा उच्छिष्ट किया हुआ पदार्थ सभीके लिये अभक्ष्य होता है। घी अथवा तेलमें पकाया हुआ

मिष्टान्न तथा पीठक, यदि उसे शूद्रने बनाकर तैयार किया हो तो वह शूद्रोंके ही खाने योग्य होता है, ब्राह्मणोंके लिये नहीं। जो अपवित्र हैं, उन सबके अन्न-जलका परित्याग कर देना चाहिये। अशौचान्तके दूसरे दिन सब शुद्ध हो जाता है, इसमें संशय नहीं है। व्रजेश्वर! इस प्रकार मैंने अपनी जानकारीके अनुसार भक्ष्याभक्ष्यका वर्णन कर दिया।

पिताजी! श्रुतिके मतानुसार कर्मोंका विपाक बड़ा दुष्कर होता है। इस विषयमें क्रमशः चारों वेदोंमें चार प्रकारके मत बतलाये गये हैं; उनका सारभूत रहस्य मैं कह रहा हूँ, सुनिये। चाहे अरबों कल्प बीत जायँ तो भी भोग किये बिना कर्मका क्षय नहीं होता; अतः अपने द्वारा किया हुआ शुभ-अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है*। तीर्थों और देवताओंके सहयोगसे मनुष्योंकी भी कुछ सहायता हो जाती है; परंतु तात! जो मुझसे विमुख है, उसे निश्चय ही उसके द्वारा किये गये प्रायश्चित्त उसी प्रकार पवित्र नहीं कर सकते, जैसे नदियाँ मदिराके घड़ेको पावन नहीं कर सकतीं। न तो उत्तम कर्मसे दुष्कर्मका नाश होता है और न दुष्कर्म करनेसे सुकर्म ही नष्ट होता है। यहाँतक कि यज्ञ, तप, व्रत, उपवास, तीर्थस्नान, दान, जप, नियम, पृथ्वीकी परिक्रमा, पुराण-श्रवण, पुण्योपदेश, गुरु और देवताकी पूजा, स्वधर्माचरण, अतिथि-सत्कार, ब्राह्मणोंका पूजन एवं विशेषतया उन्हें भोजन करानेसे भी दुष्कर्मका विनाश नहीं होता। ब्राह्मणको जो दिया जाता है, वह पूर्णरूपसे प्राप्त होता है; क्योंकि ब्राह्मण क्षेत्ररूप है और वह दान बीजके समान है। तात! मनुष्य एक कर्मद्वारा स्वर्गको प्राप्त कर लेता है; परंतु मोक्ष कर्मसे नहीं मिलता। वह तो मेरी सेवासे सुलभ होता है। पुण्यकर्म करनेसे स्वर्ग, दुष्कर्म करनेसे नरक तथा कुत्सित कर्म करनेसे व्याधि और नीच योनिमें जन्म प्राप्त होता है, तत्पश्चात् वह पवित्र होता है।

जो इच्छानुसार छोटे-बड़े पाप करनेवाला तथा गोहत्यारा है, वह गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षोंतक दन्दशूक नामक नरकमें निवास करता है। वहाँ वह सर्पके डसनेके कारण विषकी ज्वालासे तृषित एवं पीड़ित होता है तथा आहार न मिलनेसे उसका पेट सट जाता है। तत्पश्चात् उस कुण्डसे निकलकर गौके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं, उतने वर्षोंतक वह गौकी योनिमें उत्पन्न होता है। तदनन्तर एक लाख वर्षतक वह कोढ़ी और चाण्डाल होता है, इसके बाद मनुष्य होता है। उस समय वह कर्मानुसार कुष्ठरोगयुक्त ब्राह्मण होता है। तब एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वह नीरोग तथा पवित्र हो जाता है। गो-हत्या करनेवाला निश्चय ही उतने वर्षोंतक गौ होता है, जितने उस गौके शरीरमें रोएँ होते हैं। ब्रह्मघाती उनसे भी चौगुने वर्षोंतक विष्ठाका कीड़ा होता है, तदनन्तर उससे चौगुने वर्षोंतक म्लेच्छ होता है। तत्पश्चात् उनसे चौगुने वर्षोंतक अंधा होकर ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वहाँ चार लाख विप्रोंको भोजन करानेसे वह उस महान् पातकसे मुक्त होकर पवित्र नेत्रयुक्त और यशस्वी हो जाता है। चारों वर्णोंमें जो स्त्रीकी हत्या करनेवाला है, उसे वेदमें महापातकी कहा गया है। वह उस स्त्रीके शरीरमें जितने रोएँ होते हैं उतने वर्षोंतक कालसूत्र नरकमें वास करता है। वहाँ उसे कीड़े काटते रहते हैं, आहार नहीं मिलता और नरक-यातना भोगनी पड़ती है। तदनन्तर वह पापी उतने ही वर्षोंतक जगत्‌में जन्म लेता है। वहाँ वह कर्मानुसार पापपरायण तथा राजयक्ष्मासे ग्रस्त रहता है। फिर सौ वर्षोंतक

---

* नाभुक्तं क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि। अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्॥ (८५। ३६)

एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे शुद्ध होकर वह विद्वान् एवं तपःपरायण विप्र होता है। उस जन्ममें वह भी कुछ बचे-खुचे पापोंको भोगता है तथा सोना दान करनेसे शुद्ध हो जाता है। भ्रूणहत्या करनेवाला महापापी शुनीमुख नामक नरकमें जाता है। वहाँ वह सौ वर्षोंतक सूक्ष्म शस्त्रद्वारा पीड़ित किया जाता है। फिर उसे निश्चय ही सौ वर्षोंतक घोड़ेकी योनिमें जन्म लेना पड़ता है। इसके बाद वह पापी अपने कर्मके फलस्वरूप दादके रोगसे युक्त वैश्य होता है और पचास वर्षोंतक वह कष्ट भोगकर पुनः स्वर्णदानसे शुद्ध होता है। इसके बाद अपने कुलमें उत्पन्न होनेपर भी वह नीरोग होता है और फिर पवित्र ब्राह्मण होकर जन्म लेता है। युद्धके बिना क्षत्रियको मारनेवाला ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय तप्तशूल नरकमें जाता है। वहाँ उसे एक हजार वर्षतक तपाये हुए लोहेसे काठेकी भाँति पकाया जाता है और वह आर्तनाद करता है। तदनन्तर वह सौ वर्षोंतक मदमत्त गजराज होता है। इसके बाद सौ वर्षोंतक रक्तदोषयुक्त शूद्र होता है। वहाँ वह हाथी दान करनेसे रोगमुक्त होकर फिर ब्राह्मणके घरमें जन्म लेता है। वैश्य और शूद्रकी हत्या करनेवाला वैश्य तथा वैश्यको हिंसा करनेवाला शूद्र—ये निश्चय ही समान पापके भागी होते हैं। इन्हें सौ वर्षोंतक कृमिकुण्ड नामक नरकमें वास करना पड़ता है। वहाँ कीड़ोंके काटनेसे वह महान् दुःखी होता है। इसके बाद वह कृमिरोगसे युक्त होकर सौ वर्षोंतक किरात होता है। व्रजेश्वर! तदनन्तर वह पचास वर्षोंतक मन्दाग्नियुक्त, दुर्बल, कृशोदर, गरीब ब्राह्मण होता है। फिर तीर्थमें घोड़ेका दान करनेसे उसकी मुक्ति हो जाती है।

तात! चारों वर्णोंमें किसी भी वर्णका मनुष्य जो पीपलका वृक्ष काटता है, वह ब्रह्महत्याके चौथाई पापका भागी होता है और उसे निश्चय ही असिपत्र नामक नरकमें जाना पड़ता है। झूठी गवाही देनेवाले, कृतघ्न, अतिकृतघ्न, विश्वासघाती, मित्रघाती और ब्राह्मणोंका धन हरण करनेवाला—ये महापापी कहलाते हैं। इन्हें हजारों वर्षोंतक कुम्भीपाकमें रहना पड़ता है। वहाँ वे रात-दिन खौलते हुए तेलसे संतप्त किये जाते हैं, उन्हें व्याधियाँ घेरे रहती हैं और सर्पाकार जन्तु काटता रहता है। तदनन्तर वह पापी हजार करोड़ जन्मोंतक गीध, सौ जन्मोंतक सूअर और सौ जन्मोंतक हिंसक पशु होनेके बाद रोगग्रस्त शूद्र होता है। उस जन्ममें वह मन्दाग्नि तथा ज्वरसे पीड़ित रहता है तथा सौ पल सोना दान करके अवश्य ही शुद्ध हो जाता है। चारों वर्णोंमें जो मनुष्य वस्त्र चुरानेवाला, गव्य (दूध-दही-घी)-की चोरी करनेवाला, चाँदी और मुक्ताका अपहरण करनेवाला तथा शूद्रके धनको लूट लेनेवाला होता है; वह सौ वर्षोंतक मूत्रकुण्डका भोग करके पुनः हजार वर्षोंतक बगुलेकी योनिमें उत्पन्न होता है—यह ध्रुव है। व्रजराज! तदनन्तर वह सौ वर्षोंतक शूद्रजातिमें जन्म लेता है। वहाँ वह पापी कुष्ठरोगसे युक्त होता है और उसके घावसे मवाद निकलती रहती है। तत्पश्चात् थोड़ा-बहुत कोढ़से युक्त होकर ब्राह्मण होता है और छः पल सोना दान करनेसे पवित्र होकर रोगमुक्त हो जाता है। जो खजाना लूटनेवाला, फल चुरानेवाला तथा खेल-ही-खेलमें धनका अपहरण करनेवाला है, वह भूतलपर यक्ष होता है। फिर सौ वर्षोंतक नीलकण्ठ पक्षी होता है। तत्पश्चात् भारतभूमिपर काले रंगवाला शूद्र होता है। फिर जन्म-जन्मान्तरके बाद अधिक अङ्गोंवाला ब्राह्मण होता है। वहाँ ब्राह्मणोंको भोजन करानेसे पुनः ब्राह्मण होकर मुक्त हो जाता है। पके हुए पदार्थोंकी चोरी करनेवाला निश्चय ही पशुयोनिमें उत्पन्न होता है। वहाँ वह सात जन्मोंतक जिसका अण्डकोश गन्धयुक्त होता है तथा जिसे कस्तूरी नामसे पुकारा जाता है; वह कस्तूरी-मृग होकर पुनः एक

जन्मतक गन्धक होता है। फिर गलितकुष्ठवाला शूद्र होता है। तत्पश्चात् अवशिष्ट रोगसे युक्त दुर्बल ब्राह्मण होता है, वहाँ वह छः पल सोना दान करनेसे निःसंदेह मुक्त हो जाता है। धान्यकी चोरी करनेवाला सात जन्मोंतक दुःखी और कृपण होता है। वह सौ वर्षोंतक विष्ठाके कुण्डमें यातना भोगकर उस भयसे मुक्त होता है। स्वर्णका अपहरण करनेवाला मानव कोढ़ी और पतित होता है तथा स्वर्ण-दान ग्रहण करनेवाला विष्ठाके कुण्डमें जाता है। वहाँ सौ वर्षोंतक रात-दिन विष्ठा खानेके बाद व्याध होता है, फिर रक्तविकारयुक्त शूद्र होता है। उस जन्ममें पापका उपभोग करके वह पुनः अवशिष्ट रोगयुक्त ब्राह्मण होता है और स्वर्ण-दान करनेसे मुक्त हो जाता है।

अगम्या स्त्रीके साथ गमन करनेवाला पापी असंख्यों वर्षोंतक पूर्वोक्त रौरव तथा महाभयंकर कुम्भीपाकमें जाता है। इसके बाद हजार वर्षोंतक वह कुलटा स्त्रियोंकी योनिका कीड़ा और लाख वर्षोंतक विष्ठाका कीट होता है। उससे पशुयोनिमें और पशुयोनिसे क्षुद्र जन्तुओंमें जन्म लेता है। तत्पश्चात् म्लेच्छ और फिर नीच शूद्र होता है। इसके बाद वह व्याधिग्रस्त ब्राह्मण होता है और पुनः ब्राह्मण होकर क्रमशः तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे शुद्ध हो जाता है; परंतु पापके कारण उसका वंश नहीं चलता। फिर एक लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराकर वह पवित्र हो जाता है और पुत्र प्राप्त कर लेता है। क्रोधी मनुष्य सात जन्मोंतक गदहा होता है और जो मानव झगड़ालू होता है, उसे सात जन्मोंतक कौआ होना पड़ता है। लोहेकी चोरी करनेवाला संतानहीन, मणी चुरानेवाला कोकिल, अञ्जनका चोर शुक और मिठाई चुरानेवाला कोढ़ी होता है। तात! ब्राह्मण और गुरुसे द्वेष करनेवाला सिरका कीट—जूँ होता है। पुंश्चली स्त्रीका भोग करके पुरुष रौरव नरकमें जाता है और फिर सौ वर्षोंतक निरर्थक कीट होता है तथा वह कुलटा रौरवकी यातना भोगकर सात जन्मोंतक क्रमशः विधवा, वन्ध्या, अस्पृश्या, जातिहीना और नकटी होती है। लाल पदार्थकी चोरी करनेवाला रक्तदोषसे युक्त होता है। आचारहीन मनुष्य यवन, हिंसक, लँगड़ा, दीक्षाहीन मक्खर, कुदृष्टि डालनेवाला काना, अहंकारी कर्णहीन, वेदकी निन्दा करनेवाला बहरा, घास काटनेवाला गूँगा, हिंसक केशहीन, मिथ्यावादी दाढ़ीरहित, दुष्ट वचन बोलनेवाला दन्तहीन, सत्यको छिपानेवाला जिह्वाहीन, दुष्ट अंगुलिरहित तथा ग्रन्थकी चोरी करनेवाला मूर्ख एवं रोगी होता है। घोड़ेका दान लेनेवाला तथा घोड़ा चुरानेवाला लालामूत्र नामक नरकमें जाता है। वहाँ सौ वर्षोंतक रहकर फिर घोड़ेकी योनिमें उत्पन्न होता है। हाथीका दान लेनेवाला तथा हाथी-चोर एक हजार वर्षोंतक विष्ठाके कुण्डमें रहकर फिर हाथी होता है। तत्पश्चात् शूद्रके घर जन्म लेता है। छागका प्रतिग्रही और चोर मनुष्य सौ वर्षोंतक पूयकुण्डमें वास करके फिर चाण्डाल होता है। तत्पश्चात् एक वर्षतक छागकी योनिमें पैदा होता है। वहाँ शत्रुके शस्त्रद्वारा काटे जानेसे मुक्त होकर ब्राह्मण होता है। जो दान की हुई वस्तुका अपहरण करता है तथा वाग्दान करके पुनः उस बातको पलट देता है; वह म्लेच्छयोनिमें जन्म लेता है और वहाँ कष्ट भोगकर नरकमें जाता है।

व्रजेश! जो (दूसरेको न देकर) अकेले ही मिठाइयाँ गप कर जाता है, वह निश्चय ही कालसूत्र नरकमें जाता है। वहाँ सौ वर्षोंतक यातना भोगकर फिर हजार वर्षोंकी आयुवाला प्रेत होता है। इसके बाद वह एक जन्मतक मक्खी, एक जन्ममें चींटी, एक जन्ममें भ्रमर, एक जन्ममें मधुमक्खी, एक जन्ममें बर्रे, एक जन्ममें डाँस, एक जन्ममें मच्छर, एक जन्ममें दुर्गन्धयुक्त कीट और एक जन्ममें खटमल होनेके बाद दुर्बुद्धि एवं रोगग्रस्त शूद्र होता है। फिर

उससे मुक्त होकर ब्राह्मण हो जाता है। तेलकी चोरी करनेवाला तेली तीन जन्मोंतक सिरका कोट—जूँ होता है। जो दुष्ट क्षेत्रकी सीमा—मेड़को नष्ट करनेवाला, भूमिचोर, हिंसक तथा दान की हुई भूमिको वापस ले लेनेवाला है, वह अवश्यमेव कालसूत्र नरकमें जाता है। वहाँ भूख-प्याससे पीड़ित होकर साठ हजार वर्षोंतक कष्ट भोगता है। तत्पश्चात् विष्ठाका कीड़ा होकर उत्पन्न होता है। इसके बाद एक जन्ममें असत् शूद्र होता है और उसके बाद शुद्ध हो जाता है। इसलिये विद्वान्को चाहिये कि वह यह सब जानकर यत्नपूर्वक इनसे सावधान रहे। लाल वस्त्रको चुरानेवाला एक जन्ममें लाल रंगका कीड़ा होता है। फिर एक जन्ममें शूद्र होता है; इसके बाद शुद्ध होकर ब्राह्मण हो जाता है। जो ब्राह्मण तीनों कालकी संध्याओंसे हीन है तथा जो मनुष्य प्रातःकाल, संध्या-समय और दिनमें सोता है, यज्ञोपवीतकी चोरी करता है, अशुद्ध संध्या करता है और वेद-वेदाङ्गका निन्दक है; उसके लिये स्वर्गका मार्ग निरुद्ध हो जाता है अर्थात् वह नरकगामी होता है और तीन जन्मोंतक पतित होता है। जो शूद्र होकर ब्राह्मणीके साथ व्यभिचार करता है; वह निश्चय ही कुम्भीपाकमें जाता है। वहाँ कष्ट झेलता हुआ तीन लाख वर्षोंतक यातना भोगता है। वह रात-दिन भयंकर खौलते हुए तेलमें जलता रहता है। तत्पश्चात् वह पापी कुलटा नारियोंकी योनिका कीड़ा होता है। वहाँ साठ हजार वर्षोंतक उस योनिका मल ही उसका आहार होता है। फिर क्रमशः एक लाख जन्मोंतक वह चाण्डाल होता है। फिर एक जन्ममें घावयुक्त कोढ़वाला शूद्र होता है। इसके बाद शुद्ध होकर व्याधियुक्त ब्राह्मण होता है; फिर तीर्थोंमें भ्रमण करनेसे शुद्ध हो जाता है। जो मानव देवताकी उचित पूजा न करके उन्हें अपवित्र नैवेद्य समर्पित करता है, वह असत् शूद्र होता है।

व्रजेश्वर! जो मिट्टी, भस्म और गोबरके पिण्डोंसे अथवा बालुकासे शिवलिङ्गका निर्माण करके एक बार भी उसका पूजन करता है, वह कल्पपर्यन्त स्वर्गमें निवास करता है। तत्पश्चात् वह भूमिका स्वामी एवं महाविद्वान् ब्राह्मण होता है। सौ लिङ्गोंका पूजन करनेसे मनुष्य भारतवर्षमें राजा होता है। एक हजार लिङ्गपूजनसे उसे निश्चित फलकी प्राप्ति होती है। वह चिरकालतक स्वर्गमें निवास करके अन्तमें भारतभूमिपर राजेन्द्र होता है। दस हजार लिङ्ग-पूजनसे राजाधिराज और एक लाख लिङ्ग-पूजनसे चक्रवर्ती सम्राट् हो जाता है। अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजन करनेसे उसका अतिरिक्त फल मिलता है। तीर्थस्नान, दान, ब्रह्मभोज, नारायणार्चन आदि कर्मसे वह ब्राह्मणवंशमें पैदा होता है, फिर अतिरिक्त तपस्याके प्रभावसे वह ब्राह्मण विद्वान् तथा जितेन्द्रिय वैष्णव हो जाता है। फिर अनेक जन्मोंके पुण्यफलसे वह भारतभूमिपर जन्म लेता है। उसके चरण-स्पर्शसे ही वसुन्धरा तत्काल पवित्र हो जाती है। ऐसे जीवन्मुक्त वैष्णव तीर्थोंको तीर्थत्व प्रदान करते हैं और अपने हजारों पूर्वजोंको पावन बना देते हैं। ऐसा श्रुतिमें सुना गया है। जो अत्यन्त क्रूर, दुराचारी तथा देव-ब्राह्मणका द्वेषी होता है; वह हजार वर्षोंतक जहरीला साँप होता है। व्रजनाथ! जो नारी कुलटा स्त्रियोंके लम्पटोंकी दूती होती है; वह सौ वर्षोंतक कालसूत्र नरकमें रहकर फिर छिपकली होती है। एक जन्मतक छिपकली होनेके बाद तीन जन्मोंतक हरिण, एक जन्ममें भैंसा, एक जन्ममें भालू, एक जन्ममें गैंडा और तीन जन्मोंतक सियारकी योनिमें उत्पन्न होती है। जो दूसरेके तड़ागका तथा भलीभाँति बोयी हुई दूसरेकी खेतीका दान करता है, वह मगरकी जातिमें उत्पन्न होकर तीन जन्मोंतक कछुआ होता है। एकादशी-व्रतको न रखनेवाला ब्राह्मण पतित हो जाता है। फिर अपने आहारसे दूना भोजन

दान करके वह उस पापसे मुक्त होता है। जो अधम मानव मेरे जन्मदिन—भाद्रपदमासकी कृष्णाष्टमीको भोजन करता है, उसे निःसंदेह त्रिलोकीमें होनेवाले सभी पापोंको भोगना पड़ता है। इस प्रकार सभी नरकोंका भोग करनेके पश्चात् वह चाण्डाल होता है। इसी तरह शिवरात्रि और श्रीरामनवमीके दिन भी समझना चाहिये। जो शक्तिहीन होनेके कारण उपवास करनेमें असमर्थ हो, उसे हविष्यान्नका भोजन करना चाहिये और मेरा पुण्य महोत्सव सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको भी भोजन कराना चाहिये। इससे वह पापमुक्त होकर शुद्ध हो जाता है। इसके लिये यत्नपूर्वक मेरे नामोंका संकीर्तन करना चाहिये। जो देव-मूर्तियोंकी चोरी करता है, वह सात जन्मोंतक अंधा, दरिद्र, रोगग्रस्त, बहरा और कुबड़ा होता है। जो नराधम ब्राह्मण और देव-प्रतिमाको देखकर उन्हें नमस्कार नहीं करता; वह जबतक जीता है तबतक अपवित्र यवन होता है। जो ब्राह्मणको आया हुआ देखकर उठकर स्वागत नहीं करता; वह निश्चितरूपसे महापापी होता है। जो शिवका द्वेषी तथा देव-प्रतिमापर चढ़े हुए द्रव्यसे जीविका-निर्वाह करनेवाला है, वह सात जन्मतक मुर्गा होता है। जो अज्ञानी पितरों और देवताओंके वेदोक्त पूजनका विनाश करता है, वह पापी रौरव नरकमें जाता है। वहाँ एक हजार वर्षतक यातना भोगनेके पश्चात् तीन जन्मोंतक तीर्थकाक होता है। फिर तीन जन्मोंतक किसी तीर्थमें सियारकी योनिमें उत्पन्न होकर मुर्देकी लाश खाता है। व्रजेश्वर! वही पापी तीन जन्मोंतक तीर्थोंमें शवकी रक्षा तथा कर्मानुसार मुर्दोंकी कफनखसोटी करता है। जो मूर्ख नित्य दम्भपूर्वक देवताकी पूजा करके भक्तिपूर्वक गुरुका पूजन नहीं करता और न उन्हें अन्न प्रदान करता है; वह पापी देवताके शापसे दुःखी, देवल (देवप्रतिमापर चढ़े हुए द्रव्यसे जीविका चलानेवाला) और भयंकर देवद्रोही होता है; उसे पूजाका फल नहीं मिलता।

व्रजेश्वर! (हाथसे) दीपकको बुझानेवाला सात जन्मोंतक जुगनू होता है। जो इष्टदेवको निवेदन किये बिना ही खाता है तथा मछलीका अत्यन्त लोभी है; वह मछरंगा पक्षी होता है तथा सात जन्मोंतक बिलावकी योनिमें जन्म धारण करता है। चीरा चुरानेवाला कबूतर, माला हरण करनेवाला आकाशचारी पक्षी, धान्यकी चोरी करनेवाला गौरैया और मांसचोर हाथी होता है। विद्वानोंके कवित्वपर प्रहार करनेवाला सात जन्मतक मेढक होता है। जो झूठे ही अपनेको विद्वान् कहकर गाँवकी पुरोहिती करता है; वह सात जन्मोंतक नेवला, एक जन्ममें कोढ़ी और तीन जन्मोंतक गिरगिट होता है। फिर एक जन्ममें बर्रे होनेके बाद वृक्षकी चींटी होता है। तत्पश्चात् क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण होता है। चारों वर्णोंमें कन्या बेचनेवाला मानव तामिस्र नरकमें जाता है और वहाँ तबतक निवास करता है, जबतक सूर्य-चन्द्रमाकी स्थिति रहती है। इसके बाद वह मांस बेचनेवाला व्याध होता है। तत्पश्चात् पूर्वजन्ममें जो जैसा होता है, उसीके अनुसार उसे व्याधि आ घेरती है। मेरे नामको बेचनेवाले ब्राह्मणकी मुक्ति नहीं होती—यह ध्रुव है। मृत्युलोकमें जिसके स्मरणमें मेरा नाम आता ही नहीं; वह अज्ञानी एक जन्ममें गौकी योनिमें उत्पन्न होता है। इसके बाद बकरा, फिर मेढ़ा और सात जन्मोंतक भैंसा होता है। जो मानव महान् षड्यन्त्री, कुटिल और धर्महीन होता है; वह एक जन्ममें तेली होकर फिर कुम्हार होता है। जो झूठा कलंक लगानेवाला और देवता एवं ब्राह्मणका निन्दक होता है, वह एक जन्ममें सोनार होकर सात जन्मोंतक धोबी होता है। जो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र कुत्सित आचरणवाले तथा पवित्रतासे रहित होते हैं, उन्हें

दस हजार वर्षोंतक म्लेच्छयोनिमें जन्म लेना पड़ता है। जो पुरुष कामभावसे स्त्रियोंकी कटि, स्तन और मुखकी ओर निहारता है, वह दूसरे जन्ममें दृष्टिहीन और नपुंसक होता है। जो ब्राह्मण ज्ञानहीन होते हुए आभिचारिक कर्म करनेवाला तथा हिंसक होता है; वह इस प्रकार दस हजार वर्षोंतक अन्धतामिस्र नरकमें वास करता है। तत्पश्चात् कर्मके भोगके अनुसार वह ब्राह्मण शूद्र होता है। जो शास्त्रज्ञ ज्योतिषी लोभवश झूठ बोलता है; वह सात जन्मोंतक वानरोंका सरदार होता है—यह ध्रुव है। तत्पश्चात् वह धर्महीन पापी अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप भारतवर्षमें उत्तम बुद्धिसम्पन्न परम धर्मात्मा ब्राह्मण होता है। अपने धर्ममें तत्पर रहनेवाला ब्राह्मण अग्निसे भी बढ़कर पवित्र और अत्यन्त तेजस्वी होता है, उससे देवगण सदा डरते रहते हैं। जैसे नदियोंमें गङ्गा, तीर्थोंमें पुष्कर, पुरियोंमें काशी, ज्ञानियोंमें शंकर, शास्त्रोंमें वेद, वृक्षोंमें पीपल, तपस्याओंमें मेरी पूजा तथा व्रतोंमें उपवास सर्वश्रेष्ठ है; उसी तरह समस्त जातियोंमें ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है। समस्त पुण्य, तीर्थ और व्रत ब्राह्मणके चरणोंमें निवास करते हैं। ब्राह्मणकी चरणरज शुद्ध तथा पाप और रोगका विनाश करनेवाली होती है। उनका शुभाशीर्वाद सारे कल्याणोंका कारण होता है। तात! इस प्रकार मैंने अपनी जानकारी तथा शास्त्रज्ञानके अनुसार आपसे कर्मविपाकका वर्णन कर दिया। अब जो अवशिष्ट है, उसे श्रवण करो। इस कर्मविपाकको सुनकर उस वाचकको सोना, चाँदी, वस्त्र और धान देना चाहिये। मनुष्यको चाहिये कि मेरी प्रसन्नताके लिये उस ब्राह्मणको तुरंत सौ स्वर्णमुद्राएँ, बहुत-सी गायें, चाँदी, वस्त्र और ताम्बूल दक्षिणारूपमें समर्पित करे। (अध्याय ८५)

केदार-कन्याके वृत्तान्तका वर्णन

नन्दजीने पूछा—प्रभो! आपने स्त्रियोंके प्रसङ्गसे केदार-कन्याका प्रस्ताव करके कर्मविपाकका वर्णन किया। अब विस्तारपूर्वक केदार-कन्याका चरित्र बतलाइये। वह केदार-कन्या कौन थी? भूपाल केदार कौन थे? किसके वंशमें उनका जन्म हुआ था? यह विवरणसहित मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

श्रीभगवान्ने कहा—नन्दजी! सृष्टिके आदिमें ब्रह्माके पुत्र स्वायम्भुव मनु हुए। उनकी स्त्रीका नाम शतरूपा था, जो स्त्रियोंमें धन्या और माननीया थी। उन दोनोंके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामके दो पुत्र हुए। उत्तानपादके पुत्र महायशस्वी ध्रुव हुए। ध्रुवके पुत्र नन्दसावर्णि और नन्दसावर्णिके पुत्र केदार हुए। स्वयं श्रीमान् केदार विष्णु-भक्त तथा सातों द्वीपोंके अधिपति थे। उनकी रक्षाके लिये वे प्रतिदिन राजदरबारमें सुन्दर रूप-रंगवाली, सीधी, नौजवान गायें, जिनके सींगोंमें सोना मढ़ा गया था, ब्राह्मणोंको दान करते थे। प्रातःकालसे लेकर सायंकालतक ब्राह्मणोंको भोजन कराते थे; दुःखियों और भिक्षुकोंको यथोचित धन देते थे और स्वयं राजा विष्णु-भक्तिपरायण हो इन्द्रियोंको काबूमें करके फल-मूलका आहार करते हुए सब कुछ मुझे समर्पित करके रात-दिन मेरा जप करते थे। तदनन्तर लक्ष्मी अपनी कलासे कामिनियोंमें श्रेष्ठ कमलनयनी कन्याके रूपमें उनके यज्ञकुण्डसे प्रकट हुईं। उनके शरीरपर अग्निमें तपाकर शुद्ध किया हुआ वस्त्र था और वे रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित थीं। उन्होंने राजासे यों कहा—'महाराज! मैं आपकी कन्या हूँ।' तब राजाने भक्तिपूर्वक उसकी

भलीभाँति पूजा की और उसे अपनी पत्नीको समर्पित करके वे चुपचाप खड़े हो गये। तदनन्तर वह कन्या हर्षपूर्वक विनती करके और माता-पिताकी आज्ञा ले तपस्या करनेके लिये यमुना-तटपर स्थित रमणीय पुण्यवनको चली गयी। वह वृन्दाका तपोवन था; इसीलिये उसे 'वृन्दावन' कहते हैं। वहाँ तपस्या करके उसने वरोंमें श्रेष्ठ पुरुषको वररूपसे वरण किया। तब ब्रह्माने उसे वरदान दिया कि 'कुछ कालके पश्चात् तू कृष्णको प्राप्त करेगी'। फिर ब्रह्माजीने उसकी परीक्षाके लिये धर्मको एक परम सुन्दर तरुण ब्राह्मणके रूपमें उसके पास भेजा।

वहाँ जाकर धर्मने कहा—मनोहरे! तुम किसकी कन्या हो? तुम्हारा क्या नाम है? यहाँ एकान्तमें तुम क्या कर रही हो? यह मुझे बतलाओ। सुन्दरि! तुम क्या चाहती हो और किसलिये यह तपस्या कर रही हो? तुम्हारा कल्याण हो। तुम्हारे मनमें जो अभिलाषा हो, वह वरदान माँगो।

वृन्दा बोली—विप्रवर! मैं केदारराजकी कन्या हूँ, मेरा नाम वृन्दा है। मैं इस वृन्दावनमें वास करती हुई एकान्तमें तपस्या कर रही हूँ और श्रीहरिको अपना पति बनानेकी चिन्तामें हूँ। अतः ब्राह्मण! यदि तुम्हारेमें ऐसा वरदान देनेकी शक्ति हो तो मेरा अभीष्ट वर मुझे प्रदान करो; अन्यथा यदि तुम असमर्थ हो तो अपने रास्ते जाओ। तुम्हें यह सब पूछनेसे क्या लाभ?

धर्मने कहा—वृन्दे! जो इच्छारहित, तर्कणा करनेके अयोग्य, ऐश्वर्यशाली, निर्गुण, निराकार और भक्तानुग्रहमूर्ति हैं; उन परमात्माको पति बनानेके लिये लक्ष्मी और सरस्वतीके अतिरिक्त दूसरी कौन स्त्री समर्थ हो सकती है? वैकुण्ठशायी चतुर्भुज भगवान्‌की ये ही दो भार्याएँ हैं। गोलोकमें भी जो द्विभुज, वंशी बजानेवाले, किशोर गोप-वेषधारी, परिपूर्णतम श्रीकृष्ण हैं; उनकी पत्नी स्वयं परात्परा महालक्ष्मी राधा हैं। वे परमब्रह्म-स्वरूपिणी राधा उन श्यामसुन्दरकी, जो परम आत्मबलसे सम्पन्न, ऐश्वर्यशाली, शमपरायण और परम सौन्दर्यशाली हैं, जिनका सुन्दर शरीर करोड़ों कामदेवोंके सौन्दर्यकी निन्दा करनेवाला, अमूल्य रत्नाभरणोंसे विभूषित, सत्यस्वरूप और अविनाशी है तथा जो रमणीय पीताम्बर धारण करनेवाले और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता हैं; सदा सेवा करती रहती हैं। वे श्रीकृष्ण द्विभुज और चतुर्भुज-रूपसे दो रूपोंमें विभक्त हैं। वे स्वयं चतुर्भुज-रूपसे वैकुण्ठमें और द्विभुज-रूपसे गोलोकमें वास करते हैं। पचीस हजार युग बीतनेके बाद इन्द्रका पतन होता है, ऐसे चौदह इन्द्रोंका शासनकाल लोकोंके विधाता ब्रह्माका एक दिन होता है, उतनी ही बड़ी उनकी रात्रि होती है। ऐसे तीस दिनका एक मास और बारह मासका एक वर्ष होता है। ऐसे सौ वर्षतक ब्रह्माकी आयु समझनी चाहिये। उन ब्रह्माकी आयुसमाप्ति, जिनका एक निमेष होता है, सनक आदि महर्षि जिनकी जीवनपर्यन्त सेवा करते रहते हैं, परंतु करोड़ों-करोड़ों कल्पोंमें भी जो विभु साध्य नहीं होते। सहस्रमुखधारी शेषनाग अरबों-खरबों कल्पोंतक जिनकी भक्तिपूर्वक रात-दिन सेवा तथा नाम-जप करते रहते हैं; परंतु वे परात्पर, दुराराध्य, हितकारी भगवान् साध्य नहीं होते। जो ब्रह्मा वेदोंके उत्पादक, विधाता, फलदाता और सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता हैं; वे प्रत्येक जन्ममें उन ब्रह्मस्वरूप अविनाशी सनातनदेवका सदा अपने चारों मुखोंद्वारा स्तवन करते रहते हैं; परंतु वेदोंद्वारा अनिर्वचनीय, कालके काल तथा अन्तकके अन्तक उन भगवान्‌को सिद्ध नहीं कर पाते।

वृन्दे! जो अपनी कलासे रुद्ररूप धारण करके जगत्‌का संहार करते हैं, पाँचों मुखोंसे उनकी स्तुति करते हैं, जिनसे बढ़कर भगवान्‌को दूसरा कोई प्रिय नहीं है; उनके द्वारा जब भगवान्

साध्य नहीं होते, तब दूसरेकी क्या बात है? वृन्दे! जो सर्वशक्तिस्वरूपा, दुर्गतिनाशिनी, परब्रह्म-स्वरूपिणी, ईश्वरी, मूलप्रकृति, नारायणी, विष्णुमाया, वैष्णवी और सनातनी हैं, जिनकी मायासे भ्रमणशील जगत् सदा चक्कर काटता रहता है, वे दुर्गा भी जिन देवको भक्तिपूर्वक रात-दिन स्तुति करती रहती हैं। गजानन गणेश और छः मुखवाले स्वामीकार्तिक भी भक्तिसहित यथाशक्ति जिनका स्तवन करते हैं। जिनकी सर्वप्रथम पूजा होती है, जो सम्पूर्ण देवताओंके स्वामी और ज्ञानियोंके गुरुके गुरु हैं, जिन गणेशसे बढ़कर सिद्धेन्द्र, देवेन्द्र, योगीन्द्र और ज्ञानियोंके गुरुओंमें कोई विद्वान् नहीं है, जो गणोंके स्वामी और देवताओंके अधिपति हैं; वे भगवान् गणेश जिनका ध्यान करते हैं। परमेश्वरी सरस्वती जिनका स्तवन करनेमें असमर्थ हैं। लक्ष्मी रात-दिन जिनके चरणकमलकी सेवा करती हैं। जिनके कटाक्षसे सारा जगत् परिपूर्णतम एवं कल्याणमय है। जिनके भयसे वायु चलती है; जिनके भयसे सूर्य तपते हैं, इन्द्र वर्षा करते हैं, अग्नि जलाती है और मृत्यु प्राणियोंमें विचरण करती है। जिनकी सेवा करनेसे पृथ्वी सबकी आधार-स्वरूपा तथा धनकी भण्डार हो गयी है। सुन्दरि! जिनसे भयभीत होकर समुद्र और पर्वत निश्चलरूपसे अपनी-अपनी मर्यादामें स्थित रहते हैं। जिनके चरणकमलकी सेवासे गङ्गादेवी तीर्थोंकी साररूपा, पवित्र, मुक्तिदायिनी और लोकोंको पावन करनेवाली हो गयी हैं। जिनके स्मरण और सेवनसे तुलसीदेवी पवित्र हो गयी हैं तथा नवग्रह और दिक्पाल जिनके प्रतापसे डरते रहते हैं। सारे ब्रह्माण्डोंमें जो-जो ब्रह्मा, विष्णु, शिव तथा अन्यान्य सुरेश्वर, शेष आदि तथा मुनिगण हैं; उनमेंसे कुछ परमात्मा श्रीकृष्णके कलास्वरूप, कुछ अंशरूप और कुछ कलांशरूप हैं। कल्याणि! तुम उन्हीं परमेश्वरको, जो प्रकृतिसे परे हैं, अपना पति बनाना चाहती हो, परंतु वे गोलोकमें केवल राधिकाद्वारा साध्य हैं; दूसरा कोई कभी भी उन्हें सिद्ध नहीं कर सकता। इतना कहकर छद्मवेषधारी धर्मने उसकी परीक्षाके लिये प्रचुर भोगसुखका प्रलोभन दिया और अपनेको ही पतिरूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। फिर धर्म उसकी ओर बढ़े। व्रजेश! उनका विचार केवल उसके सतीत्वको जानना था। उनकी यह चेष्टा देखकर उस राजकन्याके मुख और नेत्र क्रोधसे चक्र हो गये। तब वह हितकारक, सत्य, योगयुक्त, यशस्कर एवं धर्मार्थ वचन बोली।

श्रीवृन्दाने कहा—महाभाग! धैर्य धारण कीजिये। आप तो जातियोंमें श्रेष्ठ ब्राह्मण हैं। ब्राह्मणोंका स्वभाव तपोमूलक, सत्यपरक, वेदव्रती और धैर्यशाली होता है। परायी स्त्रियोंके प्रति आकर्षित होना तो अधर्मियोंका स्वभाव है। विप्रवर! अधर्मसे ही दुष्टको अपकूलका दर्शन होता है। तत्पश्चात् वह शत्रुपर विजय-लाभ करता है और फिर समूल नष्ट हो जाता है। जो बलपूर्वक पतिव्रताओंके साथ व्यभिचार करता है, वह मातृगामी कहलाता है और उसे तुरंत ही सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है—यह निश्चित है। जबतक सूर्य-चन्द्रमाकी स्थिति है, तबतक वह कुम्भीपाकमें यातना भोगता है। यमदूत उसके मस्तकपर लोहेके डंडेसे प्रहार करते हैं; वह खौलते हुए तेलमें जलाया जाता है; परंतु उसको सूक्ष्मदेहसे प्राण विलग नहीं होते। यह क्षणिक सुख चिरकालिक दुःखका दाता और सर्वविनाशका कारण है। इसीलिये धर्मात्मा पुरुष अगम्याके गमनजन्य दुःखकी इच्छा नहीं करते; अतः ज्ञानदुर्बल ब्राह्मण! आपका कल्याण हो, मुझे क्षमा कीजिये और अपने रास्ते जाइये। जैसे दीपककी लौ देखकर पतिङ्गा निश्चय ही उसपर टूट पड़ता है; लोभी मीन और मृग काँटेके अग्रभागमें मिष्टान्नको देखकर उसे निगलना चाहता है; भूखा

मनुष्य विषमिश्रित भोजनको खा जाता है और दुष्ट मुखपर छलछलाते हुए दूधवाले दूषित विषकुम्भको ग्रहण कर लेता है; उसी तरह लम्पट पुरुष परायी स्त्रियोंके मनोहर मुखकमलको, जो विनाशका कारण है, देखकर मोहवश भ्रान्त हो जाता है। स्त्रियोंका सुन्दर मुख, दोनों नितम्ब तथा स्तन काम-वासनाके आधार, नाशके कारण और अधर्मके स्थान हैं। जो लार और मूत्रसे संयुक्त है, जिसमेंसे दुर्गन्ध निकलती है, जो पाप तथा यमदण्डका कारण है, स्त्रियोंका वह मूत्रस्थान (योनि) नरककुण्डके सदृश है। ब्राह्मण! एकान्त देखकर जो तुम मेरी धर्षणा करना चाहते हो तो यहीं समस्त देवता, लोकपाल, कर्मोंके शासक तथा साक्षी जाज्वल्यमान धर्म, स्वयं श्रीहरिद्वारा नियुक्त दण्डकर्ता यमराज, स्वयं धर्मात्मा श्रीकृष्ण, ज्ञानरूपी महेश्वर, दुर्गा, बुद्धि, मन, ब्रह्मा, इन्द्रियाँ तथा देवगण उपस्थित हैं। ये सम्पूर्ण प्राणियोंमें उनके कर्मोंके साक्षीरूपसे वर्तमान रहते हैं; अतः अज्ञानी ब्राह्मण! कौन-सा स्थान गुप्त है और कौन-सा रहस्यमय? विप्र! तुम्हारा कल्याण हो। मुझे क्षमा कर दो और जाओ। मैं तुम्हें भस्म कर डालनेमें समर्थ हूँ; परंतु ब्राह्मण अवध्य होते हैं। अतः वत्स! तुम सुखपूर्वक यहाँसे चले जाओ। द्विज! तपस्या करते हुए मुझे एक सौ आठ युग बीत गये। अब न तो मेरे पिताका गोत्र ही रह गया है और न मेरे माता-पिता ही हैं। सबके अन्तरात्मास्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण मेरी रक्षा करते हैं। श्रीकृष्णद्वारा स्थापित धर्म नित्य मेरी रक्षामें तत्पर है। सूर्य, चन्द्रमा, पवन, अग्नि, ब्रह्मा, शम्भु, भगवती दुर्गा—ये सभी सदा मेरी देख-भाल करते हैं। जिन्होंने हंसोंको श्वेत, शुकोंको हरा और मयूरोंको रंग-बिरंगा बनाया है; वे ही मेरी रक्षा करेंगे। सभी देवता अनाथों, बालकों तथा वृद्धोंकी सर्वदा रक्षा करते हैं, अतः नारी समझकर धर्म मेरा परित्याग करके नहीं जा सकते।

इसके बाद श्रीवृन्दाने पतिव्रत-धर्मकी महिमा और दुराचारकी निन्दा करके कोपप्रकाशपूर्वक शाप दे दिया—'दुराचार! तुम्हारा नाश हो जाय। पापिष्ठ! तुम नष्ट हो जाओ।' इतना कहकर जब पुनः शाप देनेको उद्यत हुई तब स्वयं सूर्यने उसे यत्न करके रोक दिया। इसी बीच वहाँ ब्रह्मा, शिव, सूर्य और इन्द्र आदि देवता आ पहुँचे। सबने उससे क्षमा माँगी और 'धर्म तुम्हारी परीक्षाके लिये आया था। उसमें तनिक भी पापबुद्धि नहीं थी। धर्मके नाससे जगत्‌के सनातनधर्म-रूप जीवनका नाश हो जायगा' यह कहकर धर्मको जीवनदान देनेकी प्रार्थना की।

तब वृन्दाने कहा—देव! मैं नहीं जानती थी कि ये ब्राह्मणवेषधारी धर्म हैं और मेरी परीक्षा करनेके लिये आये हैं। इसी कारण मैंने क्रोधवश इनका नाश किया है। अब आप लोगोंकी कृपासे मैं अवश्य धर्मको जीवन-दान दूँगी। व्रजेश्वर! यों कहकर वह वृन्दा पुनः बोली—'यदि मेरी तपस्या सत्य हो तथा मेरा विष्णुपूजन सत्य हो तो उस पुण्यके प्रभावसे ये विप्रवर यहाँ शीघ्र ही दुःखरहित हो जायँ। यदि मुझमें सत्य वर्तमान हो और मेरा व्रत सत्य तथा तप शुद्ध हो तो उस पुण्य तथा सत्यके प्रभावसे ये ब्राह्मण कष्टरहित हो जायँ। यदि नित्यमूर्ति सर्वात्मा नारायण तथा ज्ञानात्मक शिव सत्य हैं तो ये द्विजवर संतापरहित हो जायँ। यदि ब्रह्म सत्य हो, सभी देवता और परमा प्रकृति सत्य हों, यज्ञ सत्य हो और तप सत्य हो तो इन ब्राह्मणका कष्ट दूर हो जाय।'—इतना कहकर सती वृन्दाने धर्मको अपनी गोदमें कर लिया और उन कलारूपको देखकर वह कृपापरवश हो रुदन करने लगी। इसी बीच धर्मकी भार्या मूर्ति, जो शोकसे व्याकुल थी, सिरके बल विष्णुके चरणपर गिर पड़ी और यों बोली।

मूर्तिने कहा—हे नाथ! आप तो करुणासागर हैं। दीनबन्धो! मुझपर कृपा कीजिये। कृपामूर्ति जगन्नाथ! मेरे पतिदेवको शीघ्र जीवित कर दीजिये; क्योंकि जो नारी पतिसे हीन हो जाती है, वह इस भवसागरमें पापिनी समझी जाती है। उसकी दशा नेत्रहीन मुख और प्राणरहित शरीरके समान हो जाती है। माता-पिता, भाई-बन्धु और पुत्र तो परिमित सुख देनेवाले होते हैं, सर्वस्व प्रदान करनेवाला तो सामर्थ्यशाली पति ही होता है।—इतना कहकर मूर्ति देवी वहाँ खड़ी हो गयीं और विलाप करने लगीं। तब भगवान्, जो सर्वात्मा एवं प्रकृतिसे परे हैं; वृन्दासे बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—सुन्दरि! तुमने तपस्याद्वारा ब्रह्माकी आयुके समान आयु प्राप्त की है। यह अपनी आयु तुम धर्मको दे दो और स्वयं गोलोकको चली जाओ। वहाँ तुम तपस्याके प्रभावसे इसी शरीरद्वारा मुझे प्राप्त करोगी। सुमुखि! गोलोकमें आनेके पश्चात् वाराहकल्पमें तुम राधाकी छायाभूता वृषभानुकी कन्या होओगी। उस समय मेरे कलांशसे उत्पन्न हुए रायाण गोप तुम्हारा पाणिग्रहण करेंगे। फिर रासक्रीडाके अवसरपर तुम गोपियों तथा राधाके साथ मुझे प्राप्त करोगी। जब राधा श्रीदामाके शापसे वृषभानुकी कन्या होकर प्रकट होंगी, उस समय वे ही वास्तविक राधा रहेंगी। तुम तो उनकी छायास्वरूपा होओगी। विवाहके समय वास्तविक राधा तुम्हें प्रकट करके स्वयं अन्तर्धान हो जायँगी और रायाण गोप तुम छायाको ही ग्रहण करेंगे; परंतु गोकुलमें मोहाच्छन्न लोग तुम्हें 'यह राधा ही है'—ऐसा समझेंगे। उन गोपोंको तो स्वप्नमें भी वास्तविक राधाके चरणकमलका दर्शन नहीं होता; क्योंकि स्वयं राधा मेरी गोदमें रहती हैं और उनकी छाया रायाणको भार्या होती है।

इस प्रकार भगवान् विष्णुके वचनको सुनकर सुन्दरी वृन्दाने धर्मको अपनी आयु प्रदान कर दी। फिर तो धर्म पूर्णरूपसे उठकर खड़े हो गये। उनके शरीरकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति चमक रही थी और उनका सौन्दर्य पहलेकी अपेक्षा बढ़ गया था। तब उन श्रीमान्ने परात्पर परमेश्वरको प्रणाम किया।

पुनः वृन्दाने कहा—देवगण मेरे वचनको, जिसका उल्लङ्घन करना कठिन है, सावधानतया श्रवण करें। मेरा वाक्य मिथ्या नहीं हो सकता। मैंने क्रोधावेशमें जो तीन बार 'क्षयो भव', 'तुम्हारा नाश हो जाय'—ऐसा वचन कहा है और पुनः कहनेके लिये उद्यत होनेपर सूर्यने मना कर दिया था, उसका फल यों होगा—यह धर्म सत्ययुगमें जैसे पहले परिपूर्ण था, उसी तरह इस समय भी रहेगा; परंतु त्रेतामें इसके तीन पैर, द्वापरमें दो पैर और कलियुगके प्रथमांशमें एक पैर रह जायगा। कलियुगके शेष भागमें यह कलाका षोडशांशमात्र रह जायगा। सत्ययुग आनेपर यह पुनः परिपूर्ण हो जायगा। मेरे मुखसे तीन बार 'क्षय' शब्द निकला है; इसलिये उसी क्रमसे क्षय भी होगा। मनमें पुनः कहनेका विचार करनेपर

सूर्यने रोक दिया था; इसी कारण यह धर्म कलियुगकी समाप्तिमें कलामय ही रह जायगा।

नन्दजी! इसी बीच देवताओंने वेगपूर्वक गोलोकसे आये हुए एक अत्यन्त सुन्दर एवं शुभ रथको देखा। उस रथका निर्माण अमूल्य रत्नोंद्वारा हुआ था। उसमें हीरेके हार लटक रहे थे और वह मणि, माणिक्य, मुक्ता, वस्त्र, श्वेत चँवर, भूषण और सुन्दर रत्नजटित दर्पणोंसे विभूषित था। उस रथको देखकर वृन्दाने हरि, शंकर, ब्रह्मा तथा समस्त देवताओंको नमस्कार किया और फिर उसपर सवार हो वह गोलोकको चली गयी। तत्पश्चात् सभी देवता अपने-अपने स्थानको चले गये। अब तुम्हारी पुनः क्या सुननेकी इच्छा है? (अध्याय ८६)

सनत्कुमार आदिके साथ श्रीकृष्णका समागम, सनत्कुमारके द्वारा श्रीकृष्णके रहस्योद्घाटन करनेपर नन्दजीका पश्चात्तापपूर्ण कथन तथा मूर्च्छित होना

नन्दजीने कहा—प्रभो! आप स्वयं वेदोंके अधीश्वर हैं; अतः वेद, ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवता तथा मुनि और सिद्ध आदि आपको जाननेमें असमर्थ हैं। आप कौन हैं—यह जाननेके लिये मेरे मनमें प्रबल उत्कण्ठा है; अतः इस निर्जन स्थानमें आप अपना सारा वृत्तान्त यथार्थ रूपसे वर्णन कीजिये।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इसी बीच वहाँ श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये सहसा पुलह, पुलस्त्य, क्रतु, भृगु, अङ्गिरा, प्रचेतागण, वसिष्ठ, दुर्वासा, कण्व, कात्यायन, पाणिनि, कणाद, गौतम, सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, कपिल, आसुरि, वायु (वोढु), पञ्चशिख, विश्वामित्र, वाल्मीकि, कश्यप, पराशर, विभाण्डक, मरीचि, शुक्र, अत्रि, बृहस्पति, गार्ग्य, वात्स्य, व्यास, जैमिनि, परिमित वचन बोलनेवाले ऋष्यशृङ्ग, याज्ञवल्क्य, शुक, शुद्ध जयधारी सौभरि, भरद्वाज, सुभद्रक, मार्कण्डेय, लोमश, आसुरि, विटंकण, अष्टावक्र, शतानन्द, वामदेव, भागुरि, संवर्त, उतथ्य, नर, मैं (नारायण), नारद, जाबालि, परशुराम, अगस्त्य, पैल, युधामन्यु, गौरमुख, उपमन्यु, श्रुतश्रवा, मैत्रेय, च्यवन, करथ और कर मुनीश्वर आ पहुँचे। वत्स! वे सभी ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। उन्हें आया देखकर श्रीकृष्ण सहसा उठ खड़े हुए और हाथ जोड़कर नमस्कार करनेके पश्चात् उन्हें आदरसहित रमणीय सिंहासनोंपर बैठाये। फिर श्रीकृष्णने कुशल-प्रश्नपूर्वक परस्पर वार्तालाप करके उनकी विधिवत् पूजा की और स्वयं भी उन्हींके मध्यमें आसनासीन हुए। इसी समय श्रीकृष्णको आकाशमें एक समुज्ज्वल तेजोराशि दीख पड़ी। उसे मुनियोंने भी देखा। वत्स नारद! उस तेजके अंदर सुवर्णकी-सी कान्तिवाले, पञ्चवर्षीय नग्न-बालकके रूपमें सनत्कुमारजी थे। वे सहसा उस सभाके बीच प्रकट हो गये। उन्हें एकाएक सामने खड़े देखकर सभी मुनिवरोंने प्रणाम किया तथा श्रीकृष्णने भी मुस्कानयुक्त एवं स्निग्ध नेत्रोंवाले कुमारको भक्तिपूर्वक सादर सिर झुकाया। तब सनत्कुमारजी उन सबको आशीर्वाद देकर उस सभामें विराजमान हुए और उन ऋषियों तथा सनातन भगवान् श्रीकृष्णसे बोले।

सनत्कुमारने कहा—मुनिवरो! आप लोगोंका सदा कल्याण हो और तपस्याओंका अभीष्ट फल प्राप्त हो; किंतु कल्याणके कारणस्वरूप इन श्रीकृष्णका कुशल-प्रश्न निष्फल है। इस समय तो आप लोगोंका सर्वथा कुशल है; क्योंकि आप लोग उन परमात्माका दर्शन कर रहे हैं, जो प्रकृतिसे परे होनेपर भी भक्तोंके अनुरोधसे शरीर

धारण करते हैं; निर्गुण, इच्छारहित और समस्त तेजोंके कारण हैं तथा इस समय पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ही आविर्भूत हुए हैं।

श्रीकृष्णने पूछा—विप्रवर! जब सभी शरीरधारियोंके लिये कुशल-प्रश्न अभीष्ट होता है, तब भला मेरे विषयमें यह कुशल-प्रश्न क्यों नहीं है?

सनत्कुमारजी बोले—नाथ! प्राकृत शरीरके विषयमें कुशल-प्रश्न करना तो सर्वदा शुभदायक है; परंतु जो शरीर नित्य और मङ्गलका कारण है, उसके विषयमें कुशल-प्रश्न निरर्थक है।

श्रीभगवान्‌ने कहा—विप्रवर! जो-जो शरीरधारी है, वह-वह प्राकृतिक कहा जाता है; क्योंकि उस नित्या प्रकृतिके बिना शरीर बन ही नहीं सकता।

सनत्कुमारजी बोले—प्रभो! जो शरीर रज-वीर्यसे उत्पन्न होते हैं, वे ही प्राकृतिक कहे जाते हैं; किंतु जो प्रकृतिके स्वामी और कारण हैं उनका शरीर प्राकृत कैसे हो सकता है? आप तो समस्त कारणोंके आदिकारण, सभी अवतारोंके प्रधान बीज, अविनाशी स्वयं भगवान् हैं। वेद आपको सदा नित्य, सनातन, ज्योतिःस्वरूप, परमोत्कृष्ट, परमात्मा और ईश्वर कहते हैं। प्रभो! वेदाङ्ग तथा वेदज्ञ लोग भी आप मायापति निर्गुण परात्परको मायाद्वारा सगुण-रूप हुआ बतलाते हैं।

श्रीकृष्णने कहा—विप्रवर! इस समय मैं वसुदेवका पुत्र वासुदेव हूँ। मेरा शरीर रक्त-वीर्यके ही आश्रित है; फिर यह प्राकृत कैसे नहीं है और इसके लिये कुशल-प्रश्न अभीष्ट क्यों नहीं है?

सनत्कुमारजी बोले—जिसके रोमकूपोंमें सारे विश्व निवास करते हैं तथा जो सबका निवासस्थान है, उसे 'वासु' कहते हैं; उसका देवता परब्रह्म 'वासुदेव' ऐसा कहा जाता है। उनका 'वासुदेव' यह नाम चारों वेदों, पुराणों, इतिहासों और सभी प्रथाओंमें देखा जाता है। भला, वेदमें आपके रक्तवीर्याश्रित शरीरका कहाँ निरूपण हुआ है? इसके लिये ये मुनिगण तथा धर्म सर्वत्र साक्षी हैं। इस अवसरपर वेद और सूर्य-चन्द्रमा मेरे गवाह हैं।

भृगुने कहा—विप्रेन्द्र! आप ही वैष्णवोंमें अग्रगण्य हैं; आपका कहना बिलकुल सत्य है। आपका स्वागत है; सदा कुशल तो है न? किस निमित्तको लेकर आपका यहाँ आगमन हुआ है?

सनत्कुमारजी बोले—श्रीकृष्ण! इस समय मैं जिस निमित्तसे अत्यन्त शीघ्रतापूर्वक यहाँ आया हूँ उसका कारण श्रवण करो और ये सभी मुनि भी उसे सुन लें।

श्रीकृष्णने कहा—भगवन्! आप सम्पूर्ण धर्मोंके ज्ञाता हैं। सर्वज्ञ! आप तो सब कुछ जानते हैं; क्योंकि आप ही विद्वानोंमें सर्वश्रेष्ठ हैं; अतः बताइये, किस प्रयोजनसे आप यहाँ पधारे हैं?

सनत्कुमारजी बोले—भगवन्! आप धन्य हैं। लोकोंके लिये भी आप सदा मान्य हैं और समस्त ईश्वरोंके भी ईश्वर आप ही हैं। विश्वमें आपसे बढ़कर दूसरा कोई नहीं है।

तदनन्तर मुनियोंके पूछनेपर सनत्कुमारजीने बताया कि मैं परम धन्य, मान्य, विधाताके भी विधाता, सर्वादि, सर्वकारक, परमात्मा, परिपूर्णतम प्रभुके दर्शनार्थ मथुरामें आया हूँ। यह सुनकर सभी देवता और मुनि हँसने लगे तथा उन्हें महान् विस्मय हुआ। नन्दजी भी आश्चर्यचकित हो गये। उन्होंने श्रीकृष्णके प्रति पुत्रभावका त्याग कर दिया और शोकसे व्याकुल हो वे सभाके बीच लज्जा छोड़कर रोने लगे। तब पार्षदोंने 'मोहको त्याग दो'—यों कहकर उन्हें ढाढ़स बँधाया।

तब **श्रीनन्दजी बोले**—देवेश! जैसे कुजन्माके गृहमें स्थित अमूल्य रत्न और हीरेका मूल्य नहीं समझा जाता, उसी तरह प्रभो! मैं भी ठगा गया। भगवन्! आप प्रकृतिसे परे हैं; अतः मेरा अपराध

क्षमा कर दीजिये। अब मैं पुनः यमुना-तटपर स्थित गोकुलमें अपने घर नहीं जाऊँगा। भला, आप ही बताइये, वहाँ जाकर मैं यशोदा तथा तुम्हारी प्रेयसी राधिकाको भी क्या उत्तर दूँगा और तुम्हारे प्रेमपात्र गोपबालकोंसे क्या कहूँगा? नारद! इतना कहकर नन्दजी सभामें ही मूर्च्छित हो गये। तब जगदीश्वर श्रीकृष्ण उसी क्षण उन्हें गोदमें लेकर समझाने लगे। (अध्याय ८७)

श्रीकृष्णका नन्दको दुर्गा-स्तोत्र सुनाना तथा व्रज लौट जानेका आदेश देना, नन्दका श्रीकृष्णसे चारों युगोंके धर्मका वर्णन करनेके लिये प्रार्थना करना

श्रीकृष्णने कहा—हे तात! चेत करो। पिताजी! होशमें आ जाओ। अरे! चराचरसहित यह सारा संसार जलके बुलबुलेकी भाँति क्षणध्वंसी है; अतः महाभाग! मोह त्याग दो और उन महाभागा मायाकी—जो परात्परा, ब्रह्मस्वरूपा, परमोत्कृष्टा, सम्पूर्ण मोहका उच्छेद करनेवाली, भुक्ति-प्रदायिनी और सनातनी विष्णुमाया हैं—स्तुति करो। नन्दजी! त्रिपुर-वधके समय भयंकर महायुद्धमें भयभीत होनेपर शम्भुने जिस स्तोत्रद्वारा स्तवन करके महामायाके प्रभावसे त्रिपुरासुरका वध किया था, वह स्तोत्रराज, जो सारे अज्ञानका उच्छेदक और सम्पूर्ण मनोरथोंका पूरक है; मैं आपको इस सभामें प्रदान करूँगा, सुनिये।

श्रीनन्दजी बोले—जगदीश्वर! तुम वेदोंके उत्पादक, निर्गुण और परात्पर हो; अतः भक्तवत्सल! मनुष्योंके सम्पूर्ण विघ्नोंके विनाश, दुःखोंके प्रशमन, विभूति, यश और मनोरथ-सिद्धिके लिये दुर्गतिनाशिनी जगज्जननी महादेवीका यह परम दुर्लभ, गोपनीय, परमोत्तम एकमात्र स्तोत्र मुझ विनीत भक्तको अवश्य प्रदान करो।

श्रीभगवान्‌ने कहा—वैश्येन्द्र! पूर्वकालमें नारायणके उपदेश तथा ब्रह्माकी प्रेरणासे युद्धसे भयभीत हुए भगवान् शंकरने जिसके द्वारा स्तवन किया था और जो मोह-पाशको काटनेवाला है; उस परम अद्भुत स्तोत्रका वर्णन करता हूँ, सुनो। नारायणने शिवको शत्रुके चंगुलमें फँसा देखकर यह स्तोत्र ब्रह्माको बतलाया; तब ब्रह्माने रणक्षेत्रमें रथपर पड़े हुए शिवको बतलाते हुए कहा—'शंकर! शूरवीरोंद्वारा प्राप्त हुए संकटकी शान्तिके लिये तुम उन दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका—जो आद्या, मूलप्रकृति और ब्रह्मस्वरूपिणी हैं—स्तवन करो। सुरेश्वर! यह मैं तुमसे श्रीहरिकी प्रेरणासे कह रहा हूँ; क्योंकि शक्तिकी सहायताके बिना कौन किसको जीत सकता है?' ब्रह्माकी बात सुनकर शंकरने स्नान करके धुले हुए वस्त्र धारण किये, फिर चरणोंको धोकर हाथमें कुश ले आचमन किया। इस प्रकार पवित्र हो भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर और अञ्जलि बाँधकर वे विष्णुका ध्यान करते हुए दुर्गाका स्मरण करने लगे।

श्रीमहादेवजीने कहा—दुर्गतिका विनाश करनेवाली महादेवि दुर्गे! मैं शत्रुके चंगुलमें फँस गया हूँ; अतः कृपामयि! मुझ अनुरक्त भक्तकी रक्षा करो, रक्षा करो। महाभागे जगदम्बिके! विष्णुमाया, नारायणी, सनातनी, ब्रह्मस्वरूपा, परमा और नित्यानन्दस्वरूपिणी—ये तुम्हारे ही नाम हैं। तुम ब्रह्मा आदि देवताओंकी जननी हो। तुम्हीं सगुण-रूपसे साकार और निर्गुण-रूपसे निराकार हो। सनातनि! तुम्हीं मायाके वशीभूत हो पुरुष और मायासे स्वयं प्रकृति बन जाती हो तथा जो इन पुरुष-प्रकृतिसे परे हैं; उस परब्रह्मको तुम धारण करती हो। तुम वेदोंकी माता परात्पर सावित्री हो। वैकुण्ठमें समस्त सम्पत्तियोंकी स्वरूपभूता महालक्ष्मी, क्षीरसागरमें शेषशायी नारायणकी प्रियतमा मर्त्यलक्ष्मी, स्वर्गमें

स्वर्गलक्ष्मी और भूतलपर राजलक्ष्मी तुम्हीं हो। तुम पातालमें नागादिलक्ष्मी, घरोंमें गृहदेवता, सर्वसस्यस्वरूपा तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्योंका विधान करनेवाली हो। तुम्हीं ब्रह्माकी रागाधिष्ठात्री देवी सरस्वती हो और परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिदेवी भी तुम्हीं हो। तुम गोलोकमें श्रीकृष्णके वक्षःस्थलपर शोभा पानेवाली गोलोककी अधिष्ठात्री देवी स्वयं राधा, वृन्दावनमें होनेवाले रासमण्डलमें सौन्दर्यशालिनी वृन्दावनविनोदिनी तथा चित्रावली नामसे प्रसिद्ध शतशृङ्गपर्वतकी अधिदेवी हो। तुम किसी कल्पमें दक्षकी कन्या और किसी कल्पमें हिमालयकी पुत्री हो जाती हो। देवमाता अदिति और सबकी आधारस्वरूपा पृथ्वी तुम्हीं हो। तुम्हीं गङ्गा, तुलसी, स्वाहा, स्वधा और सती हो। समस्त देवाङ्गनाएँ तुम्हारे अंशांशकी अंशकलासे उत्पन्न हुई हैं। देवि! स्त्री, पुरुष और नपुंसक तुम्हारे ही रूप हैं। तुम वृक्षोंमें वृक्षरूपा हो और अंकुर-रूपसे तुम्हारा सृजन हुआ है। तुम अग्निमें दाहिका शक्ति, जलमें शीतलता, सूर्यमें सदा तेजःस्वरूप तथा कान्तिरूप, पृथ्वीमें गन्धरूप, आकाशमें शब्दरूप, चन्द्रमा और कमलसमूहमें सदा शोभारूप, सृष्टिमें सृष्टिस्वरूप, पालन-कार्यमें भलीभाँति पालन करनेवाली, संहारकालमें महामारी और जलमें जलरूपसे वर्तमान रहती हो। तुम्हीं क्षुधा, तुम्हीं दया, तुम्हीं निद्रा, तुम्हीं तृष्णा, तुम्हीं बुद्धिरूपिणी, तुम्हीं तुष्टि, तुम्हीं पुष्टि, तुम्हीं श्रद्धा और तुम्हीं स्वयं क्षमा हो। तुम स्वयं शान्ति, भ्रान्ति और कान्ति हो तथा कीर्ति भी तुम्हीं हो। तुम लज्जा तथा भोग-मोक्ष-स्वरूपिणी माया हो। तुम सर्वशक्तिस्वरूपा और सम्पूर्ण सम्पत्ति प्रदान करनेवाली हो। वेदमें भी तुम अनिर्वचनीय हो, अतः कोई भी तुम्हें यथार्थरूपसे नहीं जानता। सुरेश्वरि! न तो सहस्र मुखवाले शेष तुम्हारा स्तवन करनेमें समर्थ हैं, न वेदोंमें वर्णन करनेकी शक्ति है और न सरस्वती ही तुम्हारा बखान कर सकती हैं; फिर कोई विद्वान् कैसे कर सकता है? महेश्वरि! जिसका स्तवन स्वयं ब्रह्मा और सनातन भगवान् विष्णु नहीं कर सकते, उसकी स्तुति युद्धसे भयभीत हुआ मैं अपने पाँच मुखोंद्वारा कैसे कर सकता हूँ? अतः महामाये! तुम मुझपर कृपा करके मेरे शत्रुका विनाश कर दो। करुणासहित यों कहकर रणक्षेत्रमें शिवजीके रथपर गिर जानेपर करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमती दुर्गा प्रकट हो गयीं। उस समय परमात्मा नारायणने कृपापरवश हो उन्हें प्रेरित किया था। तब वे महादेवी शीघ्र ही शिवके समक्ष खड़ी हो उनके मङ्गल और विजयके लिये यों बोलीं— 'शिव! मायाशक्तिका आश्रय लेकर असुरका संहार करो*।'

---

* श्रीमहादेव उवाच—

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गविनाशिनि। मां भक्तमनुरक्तं च शत्रुग्रस्तं कृपामयि॥
विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि। ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि॥
त्वं च ब्रह्मादिदेवानामम्बिके जगदम्बिके। त्वं साकारे च गुणतो निराकारे च निर्गुणात्॥
मायया पुरुषस्त्वं च मायया प्रकृतिः स्वयम्। तयोः परं ब्रह्म परं त्वं बिभर्षि सनातनि॥
वेदानां जननी त्वं च सावित्री च परात्परा। वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी॥
मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः। स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले॥
नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता। सर्वसस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यविधायिनी॥
रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती। प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः॥
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि। गोलोकाधिष्ठिता देवी वृन्दावनवने वने॥
श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी। शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च॥
दक्षकन्या कुत्र कल्पे कुत्र कल्पे च शैलजा। देवमातादितिस्त्वं च सर्वाधारा वसुन्धरा॥
त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वं च स्वाहा स्वधा सती। त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोषितः॥

श्रीदुर्गाने कहा—शंकर! तुम्हारा कल्याण हो! तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वह वर माँग लो। चूँकि तुम समस्त देवताओंमें श्रेष्ठ हो; अत: मैं तुम्हें विजय प्रदान करूँगी।

श्रीमहादेवजी बोले—परमेश्वरि! तुम आद्या सनातनी शक्ति हो; अत: दुर्गे! 'दैत्यका विनाश हो जाय'—यह मेरा अभीष्ट वर मुझे प्रदान करो।

भगवतीने कहा—महाभाग! तुम तो स्वयं ही भगवान् विधाता और ज्योतिर्मय परमेश्वर हो; अत: जगद्गुरो! श्रीहरिका स्मरण करो और इस दैत्यको जीत लो।

इसी बीच सर्वव्यापी विष्णुने अपनी एक कलासे वृषका रूप धारण किया और शूलपाणि शंकरके उस उग्र रथको, जिसका पहिया ऊपर उठ गया था, प्रकृतिस्थ कर दिया। तत्पश्चात् उसे अपने सिरपर उठा लिया। उन्होंने शंकरको एक मन्त्रपूत शस्त्र भी प्रदान किया। तब शंकरने उस शस्त्रको लेकर और विष्णु तथा महेश्वरी दुर्गाका ध्यान करके शीघ्र ही त्रिपुरपर प्रहार किया। उसकी चोट खाकर वह दैत्य भूतलपर गिर पड़ा। उस समय देवताओंने शंकरका स्तवन किया और उनपर पुष्पोंकी वर्षा की। दुर्गाने उन्हें त्रिशूल, विष्णुने पिनाक और ब्रह्माने शुभाशीर्वाद दिया। मुनिगण हर्षमग्न हो गये। सभी देवता हर्षविभोर हो नाचने लगे और गन्धर्व-किंनर गान करने लगे। तात! इसी अवसरपर अनुपम स्तवराज भी प्रकट हुआ—जो विघ्नों, विघ्नकर्ताओं और शत्रुओंका संहारक, परमैश्वर्यका उत्पादक, सुखद, परम शुभ, निर्वाण—मोक्षका दाता, हरि-भक्तिप्रद, गोलोकका वास प्रदान करनेवाला, सर्वसिद्धिप्रद और श्रेष्ठ है। उस स्तवराजका पाठ करनेसे पार्वती सदा प्रसन्न रहती हैं। वह मनुष्योंके लोभ, मोह, काम, क्रोध और कर्मके मूलका उच्छेदक, बल-बुद्धिकारक, जन्म-मृत्युका विनाशक, धन, पुत्र, स्त्री, भूमि आदि समस्त सम्पत्तियोंका प्रदाता, शोक-दुःखका हरण करनेवाला, सम्पूर्ण सिद्धियोंका दाता तथा सर्वोत्तम है। इस स्तोत्रराजके पाठसे महावन्ध्या भी प्रसविनी हो जाती है, बँधा हुआ बन्धनमुक्त हो जाता है, दुःखी निश्चय ही भयसे छूट जाता है, रोगीका रोग नष्ट हो जाता है, दरिद्र धनी हो जाता है तथा महासागरमें नावके डूब जानेपर एवं दावाग्निके बीच घिर जानेपर भी उस मनुष्यकी मृत्यु नहीं होती। वैश्येन्द्र! इस स्तोत्रके प्रभावसे मनुष्य डाकुओं, शत्रुओं तथा हिंसक जन्तुओंसे घिर जानेपर भी कल्याणका भागी होता है। तात! यदि गोलोककी प्राप्तिके लिये आप नित्य इस स्तोत्रका पाठ करेंगे तो यहाँ ही आपको उन पार्वतीके साक्षात् दर्शन होंगे।

स्त्रीरूपं चातिपुरुषं देवि त्वं च नपुंसकम्। वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा चाङ्कुररूपिणी॥
वह्नौ च दाहिकाशक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी। सूर्ये तेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च संततम्॥
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी। शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसंघे च निश्चितम्॥
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका। महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी॥
क्षुत्त्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी। तुष्टिस्त्वं चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धा त्वं च क्षमा स्वयम्॥
शान्तिस्त्वं च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्तिरेव च। लज्जा त्वं च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी॥
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसम्पत्प्रदायिनी। वेदेऽनिर्वचनीया त्वं त्वां न जानाति कश्चन॥
सहस्रवक्त्रस्त्वां स्तोतुं न च शक्तः सुरेश्वरि। वेदा न शक्ताः को विद्वान् न च शक्ता सरस्वती॥
स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः। किं स्तौमि पञ्चवक्त्रेण रणत्रस्तो महेश्वरि॥
कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु। इत्युक्त्वा च सकरुणं रथस्थे पतिते रणे॥
आविर्बभूव सा दुर्गा सूर्यकोटिसमप्रभा। नारायणेन कृपया प्रेरिता परमात्मना॥
शिवस्य पुरतः शीघ्रं शिवाय च जयाय च। इत्युवाच महादेवी मायाशक्त्यसुरं जहि॥
(८८। ९५-३८)

विप्रेन्द्र! श्रीकृष्णका वचन सुनकर नन्दने इस स्तोत्रद्वारा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंको प्रदान करनेवाली पार्वतीका स्तवन किया। मुने! तब दुर्गाने उन्हें गोलोक-वासरूप अभीष्ट वर प्रदान किया। साथ ही जो वेदमें भी नहीं सुना गया है, वह परम दुर्लभ ज्ञान, गोकुलकी राजाधिराजता और परम दुर्लभ श्रीकृष्ण-भक्ति भी दी। इसके अतिरिक्त नन्दको श्रीकृष्णकी दासता, महत्ता और सिद्धता भी प्राप्त हुई। इस प्रकार वरदान देकर और शम्भुके साथ वार्तालाप करके दुर्गाजी अदृश्य हो गयीं। तब देवता और मुनिगण भी नन्दनन्दनकी स्तुति करके अपने-अपने स्थानको चले गये।

तत्पश्चात् श्रीकृष्णने नन्दसे कहा—'नन्दजी! अब आप दुर्लभ ज्ञानसे संयुक्त होनेके कारण मोहका त्याग करके प्रसन्नमनसे व्रजवासियोंसहित व्रजको लौट जाइये। व्रजराज! जाइये, जाइये, घर जाइये, व्रजको पधारिये। अब आपको सम्पूर्ण तत्त्वोंका ज्ञान हो गया। आपने मुनियों तथा देवताओंके दर्शन कर लिये और मेरेद्वारा अत्यन्त दुर्लभ नाना प्रकारके इतिहास, धनवर्धक आख्यान और जन्म एवं पापका विनाश करनेवाला दुर्गाका स्तोत्रराज भी सुन लिया। जो कुछ सामने उपस्थित था, उसका मैंने आपसे हर्ष और सुखपूर्वक वर्णन कर दिया। मैंने बाल-चपलतावश जो कुछ अपराध किया हो, उसे क्षमा कीजिये। तात! जो सुख मैंने माता-पिताके राजमहलमें नहीं किया, उससे बढ़कर तथा स्वर्गसे भी परम दुर्लभ सुख आपके यहाँ किया है। मेरे प्रिय वचन, नम्रता, विनय, भय, बहुसंख्यक परिहास, यशोदा, गोपिकागण, बालसमूह और विशेषतया राधा—ये सभी एकत्र स्थित हैं। उन बन्धुवर्गोंके साथ कर्मानुसार यहीं सुख भोगकर उत्तम गोलोकको जाओ। तात! यशोदा, रोहिणी, गोपिकागण, गोपबालक, वृषभानु, गोपसमूह, राधाकी माता कलावती और राधाके साथ आप पार्थिव देहको त्यागकर और दिव्य देह धारण करके गोलोक जायँगे। राधा और राधाकी माता कलावतीकी उत्पत्ति योनिसे नहीं हुई है; अतः वह निश्चय ही अपने उसी नित्यदेहसे गोलोकमें जायगी। कलावती पितरोंकी मानसी कन्या है; अतः धन्य और माननीय है। इसी प्रकार सीतामाता, दुर्गामाता, मेनका, दुर्गा, तारा और सुन्दरी सीता—ये सभी अयोनिजा तथा धन्य हैं। ये तथा मेना और कलावती योनिसे न उत्पन्न होनेके कारण धन्यवादकी पात्र हैं। तात! इस प्रकार मैंने परम दुर्लभ गोपनीय आख्यानका वर्णन कर दिया तथा मैंने और दुर्गाने आपको यह वरदान भी दे दिया।' श्रीकृष्णका वचन सुनकर श्रीकृष्णभक्त व्रजेश्वर उन भक्तवत्सल जगदीश्वरसे पुनः बोले।

नन्दने कहा—प्रभो! श्रीकृष्ण! चारों युगोंके जो-जो सनातन धर्म होते हैं, उनका तथा कलियुगकी समाप्तिमें कलिके जो-जो गुण-दोष होते हों और पृथ्वी, धर्म तथा प्राणियोंकी क्या गति होती है—इन सबका क्रमशः विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन कीजिये। नन्दकी बात सुनकर कमलनयन श्रीकृष्ण प्रसन्न हो गये, फिर उन्होंने मधुरताभरी विचित्र कथा कहना आरम्भ किया।

(अध्याय ८८-८९)

श्रीकृष्णद्वारा चारों युगोंके धर्मादिका कथन, श्रीकृष्णको गोकुल चलनेके लिये नन्दका आग्रह

श्रीकृष्णने कहा—नन्दजी! पुराणोंमें जैसी अत्यन्त मधुर रमणीय कथा कही गयी है, उसे कहता हूँ। आप प्रसन्नमन होकर उसे श्रवण करें। सत्ययुगमें धर्म, सत्य और दया—ये अपने सभी

अङ्गोंसे परिपूर्ण थे। प्रजा धार्मिक थी। चारों वेदों, वेदाङ्गों, विविध इतिहासों तथा संहिताओंका रूप अत्यन्त प्रकाशमान था। पाँचों रमणीय पञ्चरात्र तथा जितने पुराण और धर्मशास्त्र हैं, सभी रुचिर एवं मङ्गलकारक थे। सभी ब्राह्मण वेदवेत्ता, पुण्यवान् और तपस्वी थे, वे नारायणमें मनको तल्लीन करके उन्हींका ध्यान और जप करते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—चारों वर्ण विष्णुभक्त थे। शूद्र सत्यधर्ममें तत्पर तथा ब्राह्मणोंके सेवक थे। राजा लोग धार्मिक तथा प्रजाओंके पालनमें तत्पर रहते थे। वे प्रजाओंकी आयका केवल सोलहवाँ भाग कर-रूपमें ग्रहण करते थे। ब्राह्मणोंसे कर नहीं लिया जाता था, वे पूज्य और स्वच्छन्दगामी थे। पृथ्वी सदा सभी अन्नोंसे सम्पन्न तथा रत्नोंकी भण्डार थी। शिष्य गुरुभक्त, पुत्र पितृभक्त और नारियाँ पतिभक्ता तथा पतिव्रतपरायणा थीं। सभी लोग ऋतुकालमें अपनी पत्नीके साथ सम्भोग करते थे। वे न तो स्त्रीके लोभी थे और न लम्पट थे। सत्ययुगमें न तो परायी स्त्रीसे मैथुन करनेवाले पुरुष थे और न लुटेरों तथा चोरोंका भय था। वृक्षोंमें पूर्णरूपसे फल लगते थे। गायें पूरा दूध देती थीं। सभी मनुष्य बलवान्, दीर्घायु, (अथवा ऊँचे कदवाले) और सौन्दर्यशाली होते थे। किन्हीं-किन्हीं पुण्यवानोंकी नीरोगताके साथ-साथ लाखों वर्षोंकी आयु होती थी। जैसे ब्राह्मण विष्णुभक्त थे, उसी तरह क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—ये तीनों वर्ण भी विष्णुसेवी थे। नद तथा नदियाँ सदा जलसे भरी रहती थीं। कन्दराएँ तपस्वियोंसे परिपूर्ण थीं। चारों वर्णोंके लोग तीर्थयात्रा करके अपनेको पवित्र करते थे। द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) तपस्यासे पावन थे। सभीका मन पवित्र था। तीनों लोक दुष्टोंसे हीन, उत्तम कीर्तिसे परिपूर्ण, यशस्कर तथा मङ्गलसम्पन्न थे। घर-घरमें सभी अवसरोंपर पितरोंकी, निर्दिष्ट तिथियोंमें देवताओंकी और सभी समय अतिथियोंकी पूजा होती थी। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—तीनों वर्ण ब्राह्मणोंकी सेवा करते थे और सदा उन्हें भोजन कराते रहते थे; क्योंकि ब्राह्मणका मुख ऊसररहित एवं अकण्टक क्षेत्र है। सभी लोग उत्सवके अवसरपर हर्षके साथ नारायणके नामोंका कीर्तन करते थे। उस समय कोई भी देवताओं, ब्राह्मणों तथा विद्वानोंकी निन्दा नहीं करता था। कोई भी अपने मुँह अपनी प्रशंसा नहीं करता था। सभी दूसरेके गुणोंके लिये उत्सुक रहते थे। मनुष्योंके शत्रु नहीं होते थे, बल्कि सभी सबके हितैषी थे। पुरुष अथवा स्त्री कोई भी मूर्ख नहीं था; सभी पण्डित थे। सभी मनुष्य सुखी थे। सभीके रत्ननिर्मित महल थे; जो सदा मणि, माणिक्य, बहुत प्रकारके रत्न और स्वर्णसे भरे रहते थे। न कोई भिक्षुक था न रोगी; सभी शोकरहित और हर्षमग्न थे। पुरुष अथवा स्त्री—कोई भी आभूषणोंसे रहित नहीं था। न पापी थे न धूर्त; न क्षुधार्त न निन्दित। प्राणियोंकी वृद्धावस्था नहीं आती थी; वे निरन्तर नवयुवक बने रहते थे। सभी देहधारी मानसिक तथा शारीरिक व्याधिसे रहित और निर्विकार थे। इस प्रकार सत्ययुगमें जो सत्य, दया आदि धर्म बतलाया गया है; वह त्रेतायुगमें एक पादसे हीन और द्वापरमें सत्ययुगका आधा रह जाता है।

कलिके प्रारम्भमें वही धर्म निर्बल और कृश हो जाता है तथा उसका एक ही पाद अवशिष्ट रह जाता है। व्रजेश्वर! उस समय दुष्टों, लुटेरों और चोरोंका अङ्कुर उत्पन्न होने लगता है। लोग अधर्मपरायण हो जाते हैं। उनमें कुछ लोग भयवश अपने पापोंपर परदा डालते रहते हैं। धर्मात्माओंको सदा भय लगा रहता है और पापी भी काँपते रहते हैं। राजाओंमें धर्म नाममात्रका रह जाता है और ब्राह्मणोंकी वेदनिष्ठा कम हो जाती है। उनमें कोई-कोई ही व्रत और धर्ममें

तत्पर रहते हैं; प्राय: सभी मनमाना आचरण करने लगते हैं। जबतक तीर्थ वर्तमान हैं, जबतक सत्पुरुष स्थित हैं और जबतक ग्रामदेवता, शास्त्र तथा पूजा-पद्धति मौजूद है; तभीतक कुछ-कुछ तप, सत्य तथा स्वर्गदायक धर्मका अंश विद्यमान रहता है।

तात! दोषके भण्डाररूप इस कलियुगका एक महान् गुण भी है, इसमें मानसिक धर्म पुण्यकारक होता है, परंतु मानसिक पाप नहीं लगता*। पिताजी! कलियुगके अन्तमें अधर्म पूर्णरूपसे व्याप्त हो जायगा। उस समय चारों वर्ण मिलकर एक वर्ण हो जायँगे। न वेदमन्त्रोच्चारणसे पवित्र विवाह होगा और न सत्य तथा क्षमाका ही अस्तित्व रह जायगा। ग्राम्यधर्मकी प्रधानतासे विवाह सदा स्त्रीकी स्वीकृतिपर ही निर्भर करेगा। ब्राह्मण सदा यज्ञोपवीत और तिलक नहीं धारण करेंगे। वे संध्या-वन्दन और शास्त्रोंसे हीन हो जायँगे। उनका वंश सुननेमात्रको रह जायगा। सब लोग अनियमित रूपसे सबके साथ बैठकर भोजन करेंगे। चारों वर्णोंके लोग अभक्ष्यभक्षी और परस्त्रीगामी हो जायँगे। स्त्रियोंमें कोई पतिव्रता नहीं रह जायगी। घर-घरमें कुलटा ही दीख पड़ेंगी; वे अपने पतिको नौकरकी तरह डराती-धमकाती रहेंगी। पुत्र पिताकी और शिष्य गुरुकी भर्त्सना करेगा। प्रजाएँ राजाको और राजा प्रजाओंको पीड़ित करता रहेगा। दुष्ट, चोर और लुटेरे सत्पुरुषोंको खूब कष्ट देंगे। पृथ्वी अन्नसे हीन और गायें दूधरहित हो जायँगी। दूधके कम हो जानेपर घी और माखनका सर्वथा अभाव हो जायगा। सभी मनुष्य सत्यहीन हो जायँगे और वे सदा झूठ बोलेंगे। ब्राह्मण पवित्रता, संध्या-वन्दन और शास्त्रज्ञानसे हीन होकर बैलोंको जोतेंगे, रसोइयाका काम करेंगे और सदा शूद्रामें लवलीन रहेंगे। शूद्र ब्राह्मण-पत्नियोंसे प्रेम करेंगे। रसोइया तथा लम्पट शूद्र जिस ब्राह्मणका अन्न खायँगे, उसकी सुन्दरी पत्नीको हथिया लेंगे। नौकर राजाका वध करके स्वयं राजा बन बैठेंगे। सभी लोग स्वच्छन्दाचारी, शिश्नोदरपरायण, पेटू, रोगग्रस्त, मैले-कुचैले, खण्डित मन्त्रोंसे युक्त और मिथ्या मन्त्रोंके प्रचारक होंगे। जातिहीन, अवस्थाहीन और निन्दक गुरु होंगे। धर्मकी निन्दा करनेवाले यवन और म्लेच्छ राजा होंगे; वे हर्षपूर्वक सत्पुरुषोंकी उत्तम कीर्तिको भी समूल नष्ट कर देंगे। लोग पितरों, देवताओं, द्विजातियों, अतिथियों, गुरुजनों और माता-पिताकी पूजा नहीं करेंगे; वे सदा स्त्रीकी ही आवभगतमें लगे रहेंगे।

पिताजी! स्त्रियोंके भाई-बन्धुओं तथा स्त्रियोंका ही सदा गौरव होगा। उत्तम कुलमें उत्पन्न लोग चोर और ब्राह्मण तथा देवताके द्रव्यका हरण करनेवाले होंगे। कलियुगमें लोग कौतुकवश लोभयुक्त धर्मसे मानको धारण करेंगे। सारा जगत् देव-मन्दिरोंसे शून्य तथा भयाकुल हो जायगा। कलिके दोषसे सदा दुर्नीतिके कारण अराजकता फैली रहेगी। मनुष्य भूखे, मैले-कुचैले, दरिद्र और रोगग्रस्त हो जायँगे। जो पहले अशर्फियोंके घटके स्वामी थे, वे राजालोग कौड़ियोंके घड़ोंके मालिक हो जायँगे। गृहस्थोंके घरोंकी शोभा नष्ट हो जायगी; वे सभी जल रखनेके पात्र, अन्न और वस्त्रसे शून्य, दुर्गन्धसे व्याप्त, दीपकसे रहित तथा अन्धकारयुक्त हो जायँगे। सभी मनुष्य पापपरायण तथा हिंसक जन्तुओंसे

* कलेर्दोषनिधेस्तात गुण एको महानपि। मानसं च भवेत् पुण्यं सुकृतं न हि दुष्कृतम्॥

(९०। २९)

कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥

(रामचरितमानस ७। १०३। ८)

भयभीत रहेंगे। सभी फलके विशेष लोभी होंगे। कुलटाओंको कलह ही प्रिय लगेगा। न तो स्त्रियाँ ही यथार्थ सुन्दरी होंगी और न पुरुषोंमें ही सौन्दर्य रह जायगा। नदियों, नदों, कन्दराओं, तड़ागों और सरोवरोंमें जल तथा कमल नहीं रह जायगा एवं बादल जलशून्य हो जायँगे। नारियाँ संतानहीन, कामुकी और जार पुरुषसे सम्बन्ध रखनेवाली होंगी। सभी लोग पीपल काटनेवाले होंगे। पृथ्वी वृक्षहीन हो जायगी। वृक्ष शाखा और स्कन्धसे रहित हो जायँगे और उनमें फल नहीं लगेंगे। फल, अन्न और जलका स्वाद नष्ट हो जायगा। मनुष्य कटुवादी, निर्दयी और धर्महीन हो जायँगे। व्रजेश्वर! उसके बाद बारहों आदित्य प्रकट होकर ताप और बहुवृष्टिद्वारा मानवों तथा समस्त जन्तुओंका संहार कर डालेंगे। उस समय पृथ्वी और उसकी कथामात्र अवशिष्ट रह जायगी। जैसे वर्षाके बीत जानेपर क्षेत्र खाली हो जाता है, वैसे ही कलियुगके व्यतीत होनेपर पृथ्वी जीवोंसे रहित हो जायगी। तब पुनः क्रमशः सत्ययुगकी प्रवृत्ति होगी।

तात! इस प्रकार मैंने चारों युगोंका सारा धर्म बतला दिया; अब आप सुखपूर्वक व्रजको लौट जाइये। मैं आपका दुधमुँहा शिशु पुत्र हूँ; भला, मैं (धर्मके विषयमें) क्या कह सकता हूँ? मैंने आपके यहाँ माखन, घी, दूध, दही, सुन्दर रूपसे बनाया हुआ मट्ठा, स्वस्तिकके आकारका पकवान, शुभकर्मोंके योग्य अमृतोपम मिष्टान्न तथा पितरों और देवोंके निमित्त जो कुछ मिठाइयाँ बनती थीं, वह सब मैं रोकर जबर्दस्ती खा जाता था; बालकोंका रोना ही उनका बल है। अतः मेरे अपराधको क्षमा कीजिये; बालक तो पग-पगपर अपराध करता है। आप मेरे बाबा हैं और मैं आपका पुत्र हूँ; यशोदा मेरी मैया हैं। अब आप व्रजमें जाकर अपने इस बच्चेके मुखसे सुने हुए मेरे सारे परिहासको यशोदा और रोहिणीसे कहिये; फिर तो सारे गोकुलवासी उस सबका कीर्तन करेंगे। अहो! कहाँ तो गोकुलमें वैश्यकुलोत्पन्न वैश्यके अधिपति तथा गोकुलके राजा आप नन्द और कहाँ मथुरामें उत्पन्न हुआ मैं वसुदेवका पुत्र; किंतु कंससे डरे हुए मेरे पिता वसुदेवने मुझे आपके घर पहुँचाया; इसलिये आप मेरे पितासे बढ़कर पिता और यशोदा मेरी मातासे भी बढ़कर माता हैं। महाभाग व्रजेश्वर! आपको मैंने तथा पार्वतीने ज्ञान प्रदान किया है; अतः तात! उस ज्ञानके बलसे मोहका त्याग कर दीजिये और सुखपूर्वक घरको लौट जाइये।

नन्दजीने कहा—प्यारे कृष्ण! तुम रमणीय वृन्दावन, पुण्य महोत्सव, गोकुल, गो-समूह, परम सुन्दर यमुना-तट, गोपियोंके लिये परम सुन्दर तथा अपने प्रिय रासमण्डल, गोपाङ्गनाओं, गोप-बालकों, यशोदा, रोहिणी और अपनी प्रिया राधाका स्मरण तो करो। अरे बेटा! तुम्हें प्राणोंसे प्यारी राधिकाका स्मरण कैसे नहीं हो रहा है? वत्स! एक बार कुछ दिनोंके लिये तो गोकुल चले चलो। इतना कहकर नन्दने श्रीकृष्णको अपनी गोदमें बैठा लिया और शोकसे विह्वल होकर वे उन्हें नेत्रोंके मधुर आँसुओंसे पूरी तरह नहलाने लगे। फिर स्नेहवश उन्हें छातीसे लगाकर आनन्दपूर्वक उनके दोनों कपोलोंको चूमने लगे। तब परमानन्दस्वरूप भगवान् श्रीकृष्ण उनसे बोले।

(अध्याय ९०)

श्रीकृष्णका उद्धवको गोकुल भेजना, उद्धवका गोकुलमें सत्कार तथा उनका वृन्दावन आदि सभी वनोंकी शोभा देखते हुए राधिकाके पास पहुँचना और राधास्तोत्रद्वारा उनका स्तवन करना

श्रीभगवान्‌ने कहा—तात! कर्मफल-भोगके अनुसार संयोग और उसीसे वियोग भी होता है तथा उसीसे क्षणमात्रमें दर्शन भी प्राप्त हो जाता है। भला, उस कर्मभोगको कौन मिटा सकता है? पिताजी! उद्धव गमनागमनका प्रयोजन बतलायेंगे। मैं उन्हें शीघ्र ही भेजता हूँ। तत्पश्चात् आपको भी सब मालूम हो जायगा। वे गोकुलमें जाकर यशोदा, रोहिणी, गोपिकाओं, ग्वालबालों और उस प्राणप्यारी राधिकाको समझायेंगे—श्रीकृष्ण यों कह ही रहे थे कि वहाँ वसुदेव, देवकी, बलदेव, उद्धव तथा अक्रूर शीघ्र ही आ पहुँचे।

वसुदेवने कहा—नन्दजी! तुम तो बलवान्, ज्ञानी, मेरे सद्बन्धु और सखा हो; अतः मोहको त्याग दो और घरको प्रस्थान करो। यह श्रीकृष्ण जैसे मेरा बच्चा है, उसी तरह तुम्हारा भी है। मित्र! मथुरानगरी गोकुलसे दूर नहीं है; वह तो उसके दरवाजेके समान है। अतः नन्दजी! सदा आनन्द-महोत्सवके अवसरपर तुम्हें यह पुत्र देखनेको मिलेगा।

श्रीदेवकीने कहा—नन्दजी! यह श्रीकृष्ण जैसे हम दोनोंका पुत्र है; उसी तरह आपका भी है—यह निश्चित है; फिर किसलिये आपका शरीर शोकसे मुरझाया हुआ दीख रहा है? श्रीकृष्ण तो बलदेवके साथ आपके महलमें ग्यारह वर्षोंतक सुखपूर्वक रह चुका है, तब आप थोड़े दिनोंके वियोगसे ही शोकग्रस्त कैसे हो जायँगे? (यदि ऐसी बात है तो) कुछ दिनोंतक मथुरामें ही इस पुत्रके साथ आप रहिये और उसके पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान कान्तिमान् मुखका अवलोकन कीजिये तथा अपना जन्म सफल कीजिये।

तब **श्रीभगवान् बोले**—उद्धव! तुम सुख-पूर्वक गोकुल जाओ। भद्र! तुम्हारा कल्याण होगा। तुम हर्षपूर्वक गोकुलमें जाकर मेरेद्वारा दिये गये शोकका विनाश करनेवाले आध्यात्मिक ज्ञानसे माता यशोदा, रोहिणी, ग्वालबाल-समूह, मेरी राधिका और गोपिकाओंको सान्त्वना दो। शोकके कारण नन्दजी मेरी माताकी आज्ञासे अब यहीं रहें। तुम नन्दजीका ठहरना और मेरी विनय यशोदाको बतला देना।—यों कहकर श्रीकृष्ण पिता, माता, बलराम और अक्रूरके साथ तुरंत ही महलके भीतर चले गये। नारद! उद्धव मथुरामें रात बिताकर प्रातःकाल शीघ्र ही रमणीय वृन्दावन नामक वनके लिये प्रस्थित हुए।

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! श्रीकृष्णकी प्रेरणासे उद्धव हर्षपूर्वक गणेशजीको प्रणाम करके नारायण, शम्भु, दुर्गा, लक्ष्मी और सरस्वतीका स्मरण करते हुए मन-ही-मन गङ्गा और उस दिशाके स्वामी महेश्वरका ध्यान करके मङ्गल-सूचक शकुनोंको देखते हुए आगे बढ़े। उन्हें मार्गमें दुन्दुभि और घण्टाका शब्द, शङ्खध्वनि, हरिनाम-संकीर्तन और मङ्गल-ध्वनि सुनायी पड़ी। इस प्रकार वे मार्गमें पति-पुत्रवती साध्वी नारी, प्रज्वलित दीप, माला, दर्पण, जलसे परिपूर्ण घट, दही, लावा, फल, दूर्वाङ्कुर, सफेद धान, चाँदी, सोना, मधु, ब्राह्मणोंका समूह, कृष्णसार मृग, साँड़, घी, गजराज, नरेश्वर, श्वेत रंगका घोड़ा, पताका, नेवला, नीलकण्ठ, श्वेत पुष्प और चन्दन आदि कल्याणमय वस्तुओंको देखते हुए वृन्दावन नामक वनमें जा पहुँचे। वहाँ उन्हें सामने ही भाण्डीर-वट नामक वृक्ष दीख पड़ा; जिसका रंग लाल था तथा जो अविनाशी, कोमल, पुण्यदाता और अभीष्ट तीर्थ है। उसके बाद लाल रंगके गहनोंसे सजे हुए सुन्दर वेषधारी बालकोंको देखा।

वे बाल-कृष्णका नाम ले-लेकर शोकवश रो रहे थे। उन्हें आश्वासन देकर उद्धव आनन्दपूर्वक नगरमें प्रवेश करके कुछ दूर आगे गये। तब उन्हें वह नन्दभवन दिखायी दिया, जिसे विश्वकर्माने बनाया था। उसका निर्माण मणियों और रत्नोंसे हुआ था। उसमें मोती, माणिक्य और हीरे जड़े हुए थे। वह अमूल्य रत्नोंके बने हुए मनोरम कलशोंसे सुशोभित था। नाना प्रकारकी चित्रकारी दरवाजेकी शोभा बढ़ा रही थी। उसे देखकर उद्धव हर्षपूर्वक उसके भीतर प्रविष्ट हुए और उसके आँगनमें पहुँचकर तुरंत ही रथसे उतरकर भूतलपर खड़े हो गये। उन्हें देखकर यशोदा और रोहिणीने तुरंत ही उनका कुशल-समाचार पूछा और आनन्दमग्न हो उन्हें आसन, जल, गौ और मधुपर्क निवेदित किया। तदनन्तर वे पूछने लगीं—'उद्धव! नन्दजी कहाँ हैं? तथा बलराम और श्रीकृष्ण कहाँ हैं? वह सब वृत्तान्त ठीक-ठीक बतलाओ।' तब उद्धवने क्रमशः कहना आरम्भ किया—'यशोदे! सुनो, वे सब सर्वथा सकुशल हैं; नन्दजी आनन्दपूर्वक हैं। वे श्रीकृष्ण और बलरामके साथ कुछ विलम्बसे आयेंगे; क्योंकि वहाँ श्रीकृष्णके उपनयन-संस्कारतक ठहरेंगे। मैं विधिपूर्वक तुम लोगोंका कुशल-समाचार जानकर मथुरा लौट जाऊँगा।' इस मङ्गल-समाचारको सुनकर यशोदा और रोहिणी आनन्दविभोर हो गयीं; उन्होंने ब्राह्मणको बुलाकर रत्न, सुवर्ण और उत्तम वस्त्र प्रदान किया। तत्पश्चात् उद्धवको अमृतोपम मिष्टान्न भोजन कराया तथा उन्हें उत्तम मणि, रत्न और हीरे भेंटमें दिये। फिर नाना प्रकारके माङ्गलिक बाजे बजवाये, मङ्गल-कार्य कराया, ब्राह्मणोंको जिमाया और वेदपाठ करवाया। फिर परमानन्दपूर्वक नाना प्रकारके उपहार, नैवेद्य, पुष्प, धूप, दीप, चन्दन, वस्त्र, ताम्बूल, मधु, गो-दुग्ध, दधि और घृत आदि सामग्रियोंसे ब्राह्मणद्वारा सर्वव्यापी भगवान् शंकरका पूजन सम्पन्न किया। मुने! तदनन्तर षोडशोपचारकी सामग्रियों और अनेक प्रकारकी बलिसे श्रीवृन्दावनकी अधिष्ठात्री देवीकी पूजा की और श्रीकृष्णके कल्याणके लिये तुरंत ही ब्राह्मणोंको सौ सूखी भैंसें, एक हजार बकरियाँ, पंद्रह हजार शुद्ध भेंड़, सौ मोहरें तथा सौ गायें दक्षिणामें दीं। फिर बारंबार आदरसहित उद्धवका सेवा-सत्कार किया।

तत्पश्चात् उद्धव यशोदा, रोहिणी, ग्वालबालों, वृद्धों और सभी गोपियोंको भलीभाँति आश्वासन देकर रासमण्डल देखनेके लिये गये। वहाँ उन्होंने रमणीय रासमण्डलको देखा, जो चन्द्रमण्डलके समान गोलाकार और सैकड़ों केलेके खंभोंसे सुशोभित था। तदनन्तर रासमण्डलकी शोभा, असंख्य गोपी तथा श्रीकृष्ण ही आ गये—इस अनुमानसे असंख्य गोपोंको प्रतीक्षा करते देखा। फिर यमुनाकी प्रदक्षिणा करके उद्धवने चन्दन, चम्पक, यूथिका, केतकी, माधवी, मौलसिरी, अशोक, काञ्चन, कर्णिका आदि वनोंकी प्रदक्षिणा की। फिर आनन्दपूर्ण मनसे नागेश्वर, लवङ्ग, शाल, ताल, हिंताल, पनस, रसाल, मन्दार आदि काननोंको देखते हुए रमणीय कुञ्जवनके दर्शन करके अत्यन्त मधुर रमणीय मधुकाननमें प्रवेश किया। पुनः बदरीवनमें जानेके बाद कदलीवनमें जाकर अति निभृत स्थानमें श्रीराधिकाके आश्रमके दर्शन किये। वहाँकी दिव्य विलक्षण शोभाको देखनेके बाद वे अन्तिम द्वारपर पहुँचे। सखियोंने उनका स्वागत करके उन्हें राधाके पास पहुँचा दिया। उद्धवने आश्चर्यचकित कर देनेवाली राधाको सामने देखा। वे चन्द्रकलाके समान सुन्दरी थीं, उनके नेत्र पूर्णतया खिले हुए कमलके सदृश थे, उन्होंने भूषणोंका त्याग कर दिया था, केवल कानोंमें सुवर्णके रंग-बिरंगे कुण्डल झलमला रहे थे, अत्यन्त क्लेशके कारण उनका मुख लाल हो गया था, वे शोकसे मूर्च्छित हो

भूमिपर पड़ी हुई सो रही थीं, उनकी चेष्टाएँ शान्त थीं, उन्होंने आहारका त्याग कर दिया था, उनके अधर और कण्ठ सूख गये थे, केवल कुछ-कुछ साँस चल रही थी। उन्हें इस अवस्थामें देखकर भक्त उद्धवके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया। वे भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर उन्हें प्रणाम करते हुए बोले।

उद्धवने कहा—मैं श्रीराधाके उन चरणकमलोंकी वन्दना करता हूँ, जो ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित हैं तथा जिनकी कीर्तिके कीर्तनसे ही तीनों भुवन पवित्र हो जाते हैं। गोकुलमें वास करनेवाली राधिकाको बारंबार नमस्कार। शतशृङ्गपर निवास करनेवाली चन्द्रवतीको नमस्कार-नमस्कार। तुलसीवन तथा वृन्दावनमें बसनेवालीको नमस्कार-नमस्कार। रासमण्डलवासिनी रासेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। विरजाके तटपर वास करनेवाली वृन्दाको नमस्कार-नमस्कार। वृन्दावनविलासिनी कृष्णाको नमस्कार-नमस्कार। कृष्णप्रियाको नमस्कार। शान्ताको पुनः-पुनः नमस्कार। कृष्णके वक्षःस्थलपर स्थित रहनेवाली कृष्णप्रियाको नमस्कार-नमस्कार। वैकुण्ठवासिनीको नमस्कार। महालक्ष्मीको पुनः-पुनः नमस्कार। विद्याकी अधिष्ठात्री देवी सरस्वतीको नमस्कार-नमस्कार। सम्पूर्ण ऐश्वर्योंकी अधिदेवी कमलाको नमस्कार-नमस्कार। पद्मनाभकी प्रियतमा पद्माको बारंबार प्रणाम। जो महाविष्णुकी माता और पराद्या हैं; उन्हें पुनः-पुनः नमस्कार। सिन्धुसुताको नमस्कार। मर्त्यलक्ष्मीको नमस्कार-नमस्कार। नारायणकी प्रिया नारायणीको बारंबार नमस्कार। विष्णुमायाको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। वैष्णवीको नमस्कार-नमस्कार। महामायास्वरूपा सम्पदाको पुनः-पुनः-नमस्कार। कल्याणरूपिणीको नमस्कार। शुभाको बारंबार नमस्कार। चारों वेदोंकी माता और सावित्रीको पुनः-पुनः नमस्कार। दुर्गविनाशिनी दुर्गादेवीको बारंबार नमस्कार। पहले सत्ययुगमें जो सम्पूर्ण देवताओंके तेजोंमें अधिष्ठित थीं; उन देवीको तथा प्रकृतिको नमस्कार-नमस्कार। त्रिपुरहारिणीको नमस्कार। त्रिपुराको पुनः-पुनः नमस्कार। सुन्दरियोंमें परम सुन्दरी निर्गुणाको नमस्कार-नमस्कार। निद्रास्वरूपाको नमस्कार और निर्गुणाको बारंबार नमस्कार। दक्षसुताको नमस्कार और सत्याको पुनः-पुनः नमस्कार। शैलसुताको नमस्कार और पार्वतीको बार-बार नमस्कार। तपस्विनीको नमस्कार-नमस्कार और उमाको बारंबार नमस्कार। निराहारस्वरूपा अपर्णाको पुनः-पुनः नमस्कार। गौरीलोकमें विलास करनेवाली गौरीको बारंबार नमस्कार। कैलासवासिनीको नमस्कार और माहेश्वरीको नमस्कार-नमस्कार। निद्रा, दया और श्रद्धाको पुनः-पुनः नमस्कार। धृति, क्षमा और लज्जाको बारंबार नमस्कार। तृष्णा, क्षुत्स्वरूपा और स्थितिकर्त्रीको नमस्कार-नमस्कार। संहाररूपिणीको नमस्कार और महामारीको पुनः-पुनः नमस्कार। भया, अभया और मुक्तिदाको नमस्कार-नमस्कार। स्वधा, स्वाहा, शान्ति और कान्तिको बारंबार नमस्कार। तुष्टि, पुष्टि और दयाको पुनः-पुनः नमस्कार। निद्रास्वरूपाको नमस्कार-नमस्कार। क्षुत्पिपासास्वरूपा और लज्जाको बारंबार नमस्कार।

धृति, चेतना और क्षमाको बारंबार नमस्कार। जो सबकी माता तथा सर्वशक्तिस्वरूपा हैं; उन्हें नमस्कार-नमस्कार। अग्निमें दाहिका-शक्तिके रूपमें विद्यमान रहनेवाली देवी और भद्राको पुनः-पुनः नमस्कार। जो पूर्णिमाके चन्द्रमामें और शरत्कालीन कमलमें शोभारूपसे वर्तमान रहती हैं; उन शोभाको नमस्कार-नमस्कार। देवि! जैसे दूध और उसकी धवलतामें, गन्ध और भूमिमें, जल और शीतलतामें, शब्द और आकाशमें तथा सूर्य और प्रकाशमें कभी भेद नहीं है, वैसे ही लोक, वेद और पुराणमें—कहीं भी राधा और माधवमें भेद नहीं है; अतः कल्याणि! चेत करो। सखि! मुझे उत्तर दो। यों कहकर उद्धव वहाँ उनके चरणोंमें पुनः-पुनः प्रणिपात करने लगे। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इस उद्धवकृत स्तोत्रका पाठ करता है; वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें वैकुण्ठमें जाता है। उसे बन्धुवियोग तथा अत्यन्त भयंकर रोग और शोक नहीं होते। जिस स्त्रीका पति परदेश गया होता है, वह अपने पतिसे मिल जाती है और भार्यावियोगी अपनी पत्नीको पा जाता है। पुत्रहीनको पुत्र मिल जाते हैं, निर्धनको धन प्राप्त हो जाता है, भूमिहीनको भूमिकी प्राप्ति हो जाती है, प्रजाहीन प्रजाको पा लेता है, रोगी रोगसे विमुक्त हो जाता है, बँधा हुआ बन्धनसे छूट जाता है, भयभीत मनुष्य भयसे मुक्त हो जाता है, आपत्तिग्रस्त आपद्से छुटकारा पा जाता है और अस्पष्ट कीर्तिवाला उत्तम यशस्वी तथा मूर्ख पण्डित हो जाता है*। (अध्याय ९१-९२)

---

* उद्धव उवाच—

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम्। यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम्॥
नमो गोलोकवासिन्यै राधिकायै नमो नमः। शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रवत्यै नमो नमः॥
तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः। रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः॥
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः। वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः॥
नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः। कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः॥
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः। विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः॥
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः। पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः॥
महाविष्णोश्च मात्रे च पराद्यायै नमो नमः। नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः॥
नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः। नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः॥
महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः। नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः॥
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः। नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा। अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः॥
नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः। सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः॥
नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः। नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः॥
नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः। नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः। गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः॥
नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः। निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः॥
नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः। तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः॥
नमः संहाररूपिण्यै महामार्यै नमो नमः। भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः॥
नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः। नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः॥
नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः। क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः॥
नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः। सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः॥

राधा-उद्धव-संवाद

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! उद्धवद्वारा किये गये स्तवनको सुनकर राधिकाकी चेतना लौट आयी। तब वे विषादग्रस्त हो उद्धवको श्रीकृष्णके सदृश आकारवाला देखकर बोलीं।

श्रीराधिकाने कहा—वत्स! तुम्हारा क्या नाम है? किसने तुम्हें भेजा है? तुम कहाँसे आये हो? तुम्हारे यहाँ आनेका क्या कारण है? यह सब मुझे बतलाओ। तुम्हारा सर्वाङ्ग श्रीकृष्णकी आकृतिसे मिलता-जुलता है; अतः मैं समझती हूँ कि तुम श्रीकृष्णके पार्षद हो। अब तुम बलदेव और श्रीकृष्णका कुशल-समाचार वर्णन करो। साथ ही यह भी बतलाओ कि नन्दजी किस कारणसे वहीं ठहरे हुए हैं? क्या श्रीकृष्ण इस रमणीय वृन्दावनमें फिर आयेंगे? क्या मैं उनके पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान सुन्दर मुखका पुनः दर्शन करूँगी तथा रासमण्डलमें उनके साथ पुनः क्रीड़ा करूँगी? क्या सखियोंके साथ पुनः जल-विहार हो सकेगा? और क्या श्रीनन्दनन्दनके शरीरमें पुनः चन्दन लगा पाऊँगी?

उद्धव बोले—सुमुखि! मैं क्षत्रिय हूँ। मेरा नाम उद्धव है। तुम्हारा शुभ समाचार जाननेके लिये परमात्मा श्रीकृष्णने मुझे भेजा है; इसीलिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ। मैं श्रीहरिका पार्षद भी हूँ। इस समय श्रीकृष्ण, बलदेव और नन्दजी कुशलसे हैं।

श्रीराधिकाने कहा—उद्धव! इस समय भी यमुनातट वही है, सुगन्धित मलय-पवन भी वही है, उनके केलि-कदम्बोंका मूल भी वही है, उनका अभीष्ट पुष्पमय रमणीय वृन्दावन भी विद्यमान है। वही पुंस्कोकिलोंकी बोली, चन्दनचर्चित शय्या, चारों प्रकारके भोज्य पदार्थ, सुन्दर मधुपान तथा दुरन्त एवं दुःखद पापात्मा मन्मथ भी वहीं मौजूद है। रासमण्डलमें वे रत्नप्रदीप अभी भी जलते हैं, उत्तम मणियोंका बना हुआ रतिमन्दिर भी है ही, गोपाङ्गनाओंका समूह भी विद्यमान है, पूर्णिमाका चन्द्रमा भी सुशोभित हो रहा है और सुगन्धित पुष्पोंद्वारा रचित चन्दनचर्चित शय्या भी है। रति-भोगके योग्य कर्पूर आदिसे सुवासित पानका बीड़ा, सुगन्धित मालतीकी मालाएँ, श्वेत चँवर, दर्पण, जिसमें मोती और मणि जड़े हुए हैं ऐसे हीरेके मनोहर हार, अनेकों रमणीय उपकानन, सुन्दर क्रीड़ा-सरोवर, सुगन्धित पुष्पोंकी वाटिका, कमलोंकी मनोहर पंक्ति आदि सभी वैभव विद्यमान हैं (यह सब है); परंतु मेरे प्राणनाथ कहाँ हैं? हा कृष्ण! हा रमानाथ! हा मेरे प्राणवल्लभ! तुम कहाँ हो? मुझ दासीसे कौन-सा अपराध हो गया है? हुआ ही होगा; क्योंकि यह दासी तो पग-पगपर अपराध करनेवाली है।

इतना कहकर राधिका देवी पुनः मूर्च्छित हो गयीं। तब उद्धवने पुनः उन्हें चैतन्य कराया। उनकी उस दशाको देखकर क्षत्रियश्रेष्ठ उद्धवको परम आश्चर्य हुआ। उस समय सात सखियाँ

अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः। शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः॥
नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा। यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः॥
यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिःसूर्यकयोर्यथा। लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा॥
चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति। इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः॥
इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिपूर्वकम्। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्॥
न भवेद् बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः। प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो लभते धनम्। निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्॥
रोगाद् विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः॥ (९२। ६२—९३)

लगातार श्रीराधापर श्वेत चँवर डुला रही थीं और असंख्य गोपियाँ विविध भाँतिसे उनकी सेवामें व्यस्त थीं। उनको इस अवस्थामें पहुँची हुई देखकर उद्धव डरे हुएकी भाँति पुनः विनयपूर्वक कानोंको अमृतके समान लगनेवाले परम प्रिय वचन बोले।

उद्धवने कहा—देवि! मैं समझ गया। तुम देवाङ्गनाओंकी अधीश्वरी, परम कोमल, सिद्धयोगिनी, सर्वशक्तिस्वरूपा, मूलप्रकृति, ईश्वरी और गोलोककी सुन्दरी हो; श्रीदामके शापसे तुम भूतलपर अवतीर्ण हुई हो। देवि! तुम श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया तथा उनके वक्षःस्थलपर निवास करनेवाली हो। देवि! मैं हृदयको क्षिप्त करनेवाली अभीष्ट शुभवार्ताका वर्णन करता हूँ; तुम उसे सखियोंके साथ सुस्थिर चित्तसे श्रवण करो। यह वार्ता दुःखरूपी दावाग्निमें झुलसी हुईके लिये अमृतकी वर्षाके समान तथा विरहव्याधि-ग्रस्ताके लिये उत्तम रसायनके सदृश है। नन्दजी सदा प्रसन्न हैं। उन्हें वसुदेवने निमन्त्रित कर रखा है; अतः वे वहाँ आनन्दपूर्वक श्रीकृष्णके उपनयन-संस्कारतक ठहरेंगे। उस मङ्गल-कार्यके साङ्गोपाङ्ग सम्पन्न हो जानेपर परमानन्द-स्वरूप नन्दजी बलराम और श्रीकृष्णको साथ लेकर हर्षपूर्वक गोकुलको लौटेंगे। उस समय श्रीकृष्ण आकर प्रसन्नताके साथ पुनः माताको प्रणाम करेंगे और रातमें हर्षपूर्वक इस पुण्यमय वृन्दावनमें पधारेंगे। सती राधिके! तुम शीघ्र ही श्रीकृष्णके मुखकमलका दर्शन करोगी। उस समय तुम्हारा सारा विरह-दुःख दूर हो जायगा। अतः मातः! तुम अपने चित्तको स्थिर करो और इस अत्यन्त दारुण शोकको त्याग दो। पुनः प्रसन्नतापूर्वक अग्निमें तपाकर शुद्ध किये हुए रमणीय वस्त्र पहनकर अमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषणोंको धारण कर लो। कस्तूरी और कुंकुमसे युक्त चिकने चन्दनको शरीरपर लगा लो और मालतीकी मालाओंसे विभूषित करके केशोंका शृङ्गार करो। कल्याणि! इस प्रकार सुन्दर वेष बनाकर कपोलोंपर पत्र-भंगी (सौन्दर्यवर्धक विचित्र पत्रावली) कर लो। माँगमें कस्तूरी-चन्दनयुक्त सिन्दूर भर लो और बेंदी लगा लो। पैरोंमें मेंहदी लगाकर उसे महावरसे रँग लो। सति! शोकके साथ-साथ इस कीचड़युक्त कमल-पुष्पोंकी शय्याको त्याग दो और उठो। इस उत्तम रत्नसिंहासनपर बैठो। मन-ही-मन श्रीकृष्णके साथ विशुद्ध एवं मधुर मधुमय पदार्थ खाओ, संस्कारयुक्त स्वच्छ जल पीओ और सुवासित पानका बीड़ा चबाओ। देवेशि! तत्पश्चात् जिसपर अग्नि-शुद्ध वस्त्र बिछा है; जो मालतीकी मालाओंसे सुशोभित, कस्तूरी, जाती, चम्पा और चन्दनकी सुगन्धसे सुवासित, चारों ओरसे मालतीकी मालाओं और हीरोंके हारोंसे विभूषित एवं सुन्दर-सुन्दर मणियों, मोतियों और माणिक्योंसे परिष्कृत है; जिसके उपधान (तकिया)-में पुष्पोंकी मालाएँ लटक रही हैं और जो सब तरहसे मङ्गलके योग्य है; उस अमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित परम मनोहर पलंगपर सदा गोपियोंद्वारा सेवित होती हुई हर्षपूर्वक शयन करो। मनोहरे! तुम्हारी प्रिय सखी एवं भक्त गोपी निरन्तर तुमपर श्वेत चँवर डुलाती रहती है और तुम्हारे चरणकमलोंकी सेवा करती है।

मुने! इतना कहकर तथा ब्रह्मा आदि देवताओंद्वारा वन्दित उनके चरणकमलोंको प्रणाम करके उद्धव चुप हो गये। उद्धवके मधुर वचनोंको सुनते ही सती राधिकाके मुखपर मुस्कराहट छा गयी और उन्होंने उद्धवको अमूल्य दिव्य वस्त्राभूषण, रत्न, हार, भोजन, जल, ताम्बूल आदि देकर आशीर्वाद दिया। फिर, श्रीकृष्णवर्णित ज्ञानका उपदेश किया तथा लक्ष्मी, विद्या, कीर्ति, सिद्धिके साथ ही श्रीहरिके दास्य, श्रीहरिके चरणोंमें निश्चला भक्ति और श्रेष्ठतम पार्षद-पदकी प्राप्तिका वरदान दिया। इस प्रकार

उद्धवको वर-प्रसाद प्रदान करके राधिकाजीने उठकर अग्नि-शुद्ध साड़ी और कञ्चुकी धारण की तथा अमूल्य रत्नोंके आभूषण, हीरोंके हार, मनोहर रत्नमाला, सिन्दूर, कज्जल, पुष्पमाला और सुस्निग्ध चन्दनसे शरीरका शृङ्गार किया। उस समय उनके शरीरका रंग तपाये हुए सुवर्णके समान चमकीला था और कान्ति सैकड़ों चन्द्रमाओंके सदृश उद्दीप्त थी। असंख्य गोपियाँ उन्हें घेरे हुए थीं। तत्पश्चात् वे हर्षपूर्वक रत्नसिंहासनपर विराजमान हर्षमग्न उद्धवकी पूजा करके बोलीं।

श्रीराधिकाने पूछा—उद्धव! कपटरहित हो सच-सच बतलाओ, क्या सचमुच श्रीहरि आयेंगे? तुम भय छोड़कर ठीक-ठीक कहना और इस उत्तम सभामें सत्य ही बोलना। सौ कुएँसे एक बावली श्रेष्ठ है, सौ बावलियोंसे एक यज्ञ श्रेष्ठ है, सौ यज्ञोंसे एक पुत्र श्रेष्ठ है और सौ पुत्रोंसे बढ़कर सत्य है। सत्यसे बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है और झूठसे बढ़कर दूसरा पाप नहीं है*।

उद्धवने कहा—सुन्दरि! सचमुच ही श्रीहरि आयेंगे और तुम उनका दर्शन करोगी—यह भी सत्य है। उस समय श्रीहरिके चन्द्रमुखका अवलोकन करके निश्चय ही तुम्हारा संताप दूर हो जायगा। महाभागे! तुम्हारा विरह-ताप तो मेरे दर्शनसे ही नष्ट हो गया; अब तुम इस दुस्तर चिन्ताको छोड़ो और नाना प्रकारके भोगजनित सुखका उपभोग करो। मैं मथुरा जाकर श्रीहरिको समझा-बुझाकर यहाँ भेजूँगा। वे अन्य सभी कार्य पूर्ण करेंगे। मातः! अब मुझे विदा दो। मैं श्रीहरिके संनिकट जाऊँगा और यह सारा वृत्तान्त यथोचितरूपसे उन्हें सुनाऊँगा।

तब **श्रीराधिकाजी बोलीं**—वत्स! जब तुम परम मनोहर मथुरापुरीको जा रहे हो; तो कुछ समय और ठहरो और स्थिरतापूर्वक मेरे पास बैठो। जरा, मेरी कुछ दुःख-कहानी तो सुनते जाओ। बेटा! विरह-तापसे कातर हुई मुझको तुम भूल न जाना। तुम निश्चय ही मेरे प्रियतमको भेजोगे, इसीसे मैं तुमसे कुछ कह रही हूँ; अन्यथा स्त्रियोंके मनकी बात भला, कौन विद्वान् जानता है? विद्वान् तो शास्त्रानुसार कुछ-कुछ ही निरूपण कर सकता है। जब वेद उसका वर्णन करनेमें समर्थ नहीं है तब शास्त्र बेचारे क्या कह सकते हैं? परंतु पुत्र! तुम जाकर श्रीकृष्णसे मेरी बात कहोगे; मैं तुम्हें सब कुछ बतला रही हूँ। उद्धव! मुझे घर और वनमें कोई भेद नहीं प्रतीत होता। मेरे लिये जैसे पशु आदि हैं, वैसे ही मनुष्य भी हैं। क्या जल है और क्या स्थल है, मैं यह भी नहीं समझ पाती। मुझे रात-दिनका ज्ञान नहीं रहता और न मैं अपने-आपको तथा सूर्य-चन्द्रमाके उदयको ही जान पाती हूँ। इस समय श्रीहरिका समाचार पाकर क्षणभरके लिये मुझे चेतनता आ गयी है। अब मैं श्रीकृष्णके स्वरूपका दर्शन कर रही हूँ, मुरलीकी ध्वनि सुन रही हूँ तथा कुल, लज्जा और भयका त्याग करके श्रीहरिके चरणका ध्यान कर रही हूँ। जो समस्त लोकोंके ईश्वर तथा प्रकृतिसे परे हैं, उन श्रीहरिको पाकर भी मायाके वशीभूत होनेके कारण उनको गोपपति समझकर मैं उन्हें यथार्थरूपसे जान न सकी। वेद और ब्रह्मा आदि देवता जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं; उन्हींको मैंने क्रोधमें भरकर भर्त्सना कर दी थी—यह मेरा बर्ताव मेरे हृदयमें काँटेकी तरह चुभ रहा है। उद्धव! उनके चरणकमलोंकी सेवाओंमें, गुण-कीर्तनमें, उनकी भक्तिमें, ध्यान अथवा पूजामें जो क्षण व्यतीत होता है; उसीमें सारा मङ्गल, आनन्द और जीवन स्थित है। उसके विच्छेद हो जानेपर सदा हृदयमें संताप और विघ्न होता है। अब मेरी पुनः उस प्रकारकी अभीष्ट क्रीडा-प्रीति नहीं होगी, न वैसा प्रेम-सौभाग्य होगा और

---

*न हि सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्॥ (९३। ७९)

न निर्जन स्थानमें समागम ही होगा। उद्धव! अब मैं उनके साथ वृन्दावनमें नहीं जाऊँगी, नन्दनन्दनके वक्षःस्थलपर चन्दन नहीं लगाऊँगी, न उन्हें माला पहनाऊँगी, न उनके मुखकमलकी ओर निहारूँगी। न पुनः मालती, केतकी और चम्पकके काननोंमें तथा सुन्दर रासमण्डलमें ही जाऊँगी, न हरिके साथ रमणीय चन्दनकाननमें विचरूँगी। न पुनः मलयकी सुगन्धसे युक्त रत्नमन्दिरमें ही जाऊँगी और न हरिके साथ पुनः-पुनः रमणीय माधवीवन, रहस्यमय मधुकानन, मनोहर श्रीखण्डकानन, स्वच्छ चन्द्र-सरोवर, विस्मन्दक, देववन, नन्दनवन, पुष्पभद्रक और भद्रकवनको ही जाऊँगी। वसन्त-ऋतुमें खिली हुई वह सुन्दर माधवी लता कहाँ है? वह वसन्तकी रात्रि कहाँ चली गयी? वसन्त-ऋतु कहाँ चला गया? और हाय! वे माधव—श्रीकृष्ण भी कहाँ चले गये? इतना कहकर राधाजी श्रीकृष्णके चरणकमलोंका ध्यान करने लगीं। उनके शरीरमें रोमाञ्च हो आया और वे रोती हुई पुनः मूर्च्छित हो गयीं।

(अध्याय ९३)

सखियोंद्वारा श्रीकृष्णकी निन्दा एवं प्रशंसा और उद्धवका मूर्च्छित हुई राधाको सान्त्वना प्रदान करना

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! राधिकाको मूर्च्छित देखकर उद्धवको महान् विस्मय और भय प्राप्त हुआ। वे राधाकी सच्ची भक्ति और अपनेको कहनेमात्रका भक्त जानकर तथा भाग्यवती सती राधाकी ओर देखकर सारे जगत्‌को तुच्छ समझने लगे। तदनन्तर मृतक-तुल्य पड़ी हुई राधाको होशमें लाते हुए उनसे बोले।

उद्धवने कहा—कल्याणि! होशमें आ जाओ। जगन्मातः! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हीं पूर्वजन्मकृत समस्त कर्म हो। अब तुम्हें श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त होंगे। तुम्हारे दर्शनसे विश्व पवित्र हो गया और तुम्हारी चरणरजसे पृथ्वी पावन हो गयी। तुम्हारा मुख परम पवित्र है और (तुम्हारे स्पर्शसे) गोपिकाएँ पुण्यवती हो गयीं। लोग गीत तथा मङ्गल-स्तोत्रोंद्वारा तुम्हारा ही गान करते हैं। वेद तथा सनकादि महर्षि तुम्हारी उत्तम कीर्तिका—जो किये हुए पापोंको नष्ट करनेवाली, पुण्यमयी, तीर्थपूजास्वरूपा, निर्मल, हरिभक्तिप्रदायिनी, कल्याणकारिणी और सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाश करनेवाली है—सदा बखान करते हैं। तुम्हीं राधा हो; तुम्हीं श्रीकृष्ण हो। तुम्हीं पुरुष हो; तुम्हीं परा प्रकृति हो। पुराणों तथा श्रुतियोंमें कहीं भी राधा और माधवमें भिन्नता नहीं पायी जाती। तदनन्तर राधिकाको मूर्च्छित देखकर उन उद्धवको पीछे करके और स्वयं राधाके आगे खड़ी हो माधवी गोपी बोली।

माधवीने कहा—कल्याणि! श्रीकृष्ण तो चोर हैं, उनका कौन-सा उत्तम रूप और वेष है? उनके सुख और वैभव ही क्या हैं? कोई अनुपम गौरव भी तो नहीं है? उनका कौन-सा पराक्रम, ऐश्वर्य अथवा दुर्लङ्घ्य शौर्य है? उनमें कौन-सी सिद्धता एवं प्रसिद्धि है? तुम्हारे-सदृश उनमें कौन-सा उत्तम गुण है? वे यहाँ कहींसे आ गये और पुनः कहीं चले गये। वे गोपवेषधारी बालक ही तो हैं न? कोई राजपुत्र अथवा विशिष्ट पुरुष थोड़े ही हैं। फिर तुम व्यर्थ उन नन्दनन्दन गोपालकी चिन्तामें क्यों पड़ी हो? अरे! यत्नपूर्वक तुम अपने आत्माकी रक्षा करो; क्योंकि आत्मासे बढ़कर प्रिय दूसरा कुछ नहीं है।

तदनन्तर मालतीने श्रीकृष्णकी निन्दा करते हुए अन्तमें राधासे कहा—मूढ़े! तुम व्यर्थ किसकी चिन्तामें पड़ी हो? यह अत्यन्त दारुण

शोक छोड़ दो और यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करो; क्योंकि अपने आत्मासे बढ़कर प्रिय दूसरा कुछ भी नहीं है।

इसपर पद्मावतीने, फिर चन्द्रमुखीने श्रीराधाके कृष्णप्रेमकी प्रशंसा करते हुए कहा—देखो, मेरी सखीने आहारका त्याग कर दिया है; अतः केवल साँस चलनेसे ये जीवित प्रतीत होती हैं। इसलिये अब तुम अपने मुखसे श्रीकृष्णकी प्रशंसा करो; क्योंकि श्रीकृष्णके नाम-स्मरणसे, उनकी गुणगाथाके श्रवणसे और उनके शुभ समाचारके सुननेसे इनमें सहसा चेतना लौट आती है।

तदनन्तर शशिकलाने कहा—माधवि! ब्रह्मा आदि देवता तथा चारों वेद जिनके ध्यानमें मग्न रहते हैं, जिनके देवताओंद्वारा अभीप्सित चरणकमलका संतलोग सदा ध्यान करते हैं; पद्मा, सरस्वती, दुर्गा, अनन्त, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, मनुगण और महेश्वर भी जिन्हें नहीं जान पाते; उन परमात्मा श्रीकृष्णको तुम क्या जानती हो? जो सर्वात्मा हैं, उनका कैसा रूप? और जो निर्गुण हैं, उनके कैसे गुण? सत्यस्वरूप भगवान्‌के जिस सत्य स्वरूपका वर्णन किया गया है, जो सुखदायक, आह्लादजनक, रमणीय, भक्तानुग्रह-मूर्ति, लीलाधाम और भक्तोंका आश्रयस्थान है, जिसकी लावण्यता करोड़ों कामदेवोंसे बढ़कर है, जिस जनमनोहर रूपसे बढ़कर अनिर्वचनीय कोई भी रूप नहीं है; उसी मनोहर रूपको श्रीकृष्ण पृथ्वीका भार उतारनेके समय धारण करते हैं। मन्दाकिनीका मीठा जल जिनके मधुर पादपद्मोंका धोवन है, जिसे परात्पर सर्वेश्वर शंकर भक्तिपूर्वक अपने सिरपर धारण करते हैं, विरक्त होकर सदा उन तीर्थकीर्ति श्रीकृष्णका कीर्तन करते रहते हैं तथा आहार, भूषण और वस्त्रका परित्याग करके दिगम्बर हो भक्तिके आवेशमें क्षणभरमें नाचने लगते हैं और क्षणभरमें गाने लगते हैं। ब्रह्मा, शेष, सनत्कुमार और योगवेत्ता सिद्धोंके समुदाय उनके परम निर्मल शुभ ब्रह्मज्योतिःस्वरूपका ध्यान करके तपस्या एवं सेवाद्वारा जीवन-यापन करते हैं; उन श्रीकृष्णकी महिमा कौन जान सकता है?

फिर सुशीलाने श्रीकृष्णकी प्रशंसा करते हुए कहा— सखि! ब्रह्मा, जो वेदोंके उत्पादक एवं ईश्वर हैं; जिन श्रीकृष्णकी स्तोत्रद्वारा स्तुति करते हैं, यह माधवी उन्हीं सत्य नित्य परमेश्वरकी निन्दा कर रही है; अतः यह सभा अपावन हो गयी और गोपियोंका जीवन तो व्यर्थ ही हो गया। इन गोपियोंमें केवल राधा ही पुण्यवती हैं; क्योंकि ये रात-दिन उन श्रीकृष्णका ध्यान करती रहती हैं; जिनके नामस्मरणमात्रसे करोड़ों जन्मोंमें एकत्र किये हुए पापका भय और शोक पूर्णतया नष्ट हो जाता है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

तदनन्तर रत्नमाला और पारिजाता श्रीकृष्णकी महिमा बखानती हुई बोलीं—प्रिये! ब्रह्माने जिस विश्वब्रह्माण्डकी रचना की है, वह महाविष्णुके रोमकूपमें अणुके सदृश स्थित है; क्योंकि उन विष्णुके शरीरमें जितने रोएँ हैं, उतने ही विश्व उनमें वर्तमान हैं और वे महाविष्णु इन परमात्मा श्रीकृष्णके सोलहवें अंश हैं। तब भला, श्रीकृष्णके यश, शौर्य और अनुपम महिमाका क्या बखान किया जा सकता है? अथवा यह गोपकन्या माधवी उसे क्या जान सकती है?

इसपर माधवीने अपने कथनका तात्पर्य समझाया। उनके उस वचनको सुनकर उद्धवके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया। वे भक्तिविह्वल हो रुदन करते हुए मूर्च्छित होकर भूमिपर गिर पड़े। तत्पश्चात् परमेश्वर श्रीकृष्णका ध्यान करके वे अपनेको तुच्छ मानने लगे और भक्तिपूर्वक उस गोपीसे बोले।

उद्धवने कहा—सातों द्वीपोंमें मनोहर जम्बूद्वीप धन्य एवं प्रशंसनीय है। उसमें श्रेष्ठ भारतवर्ष—जो

पुण्य और मङ्गलोंका दाता है—गोपियोंके चरणकमलोंकी रजसे पावन और परम निर्मल होकर और भी धन्यवादका पात्र हो गया है। इस भारतवर्षमें नारियोंके मध्य गोपिकाएँ सबसे बढ़कर धन्या और मान्या हैं; क्योंकि वे उत्तम पुण्य प्रदान करनेवाले श्रीराधाके चरणकमलोंका नित्य दर्शन करती रहती हैं*। इन्हीं राधिकाके चरणकमलोंकी रजको प्राप्त करनेके लिये ब्रह्माने साठ हजार वर्षोंतक तप किया था। ये पराशक्ति राधा गोलोकमें निवास करनेवाली और श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया हैं। जो-जो श्रीकृष्णके भक्त हैं, वे राधाके भी भक्त हैं। ब्रह्मा आदि देवता गोपियोंकी सोलहवीं कलाकी भी समानता नहीं कर सकते। श्रीकृष्णकी भक्तिका मर्म पूर्णरूपसे तो योगिराज महेश्वर, राधा तथा गोलोकवासी गोप और गोपियाँ ही जानती हैं। ब्रह्मा और सनत्कुमारको कुछ-कुछ ज्ञात है। सिद्ध और भक्त भी स्वल्प ही जानते हैं। इस गोकुलमें आनेसे मैं धन्य हो गया। यहाँ गुरुस्वरूपा गोपिकाओंसे मुझे अचल हरिभक्ति प्राप्त हुई, जिससे मैं कृतार्थ हो गया। अब मैं मथुरा नहीं जाऊँगा और प्रत्येक जन्ममें यहीं गोपियोंका किंकर होकर तीर्थभ्रमा श्रीकृष्णका कीर्तन सुनता रहूँगा; क्योंकि गोपियोंसे बढ़कर परमात्मा श्रीहरिका कोई अन्य भक्त नहीं है। गोपियोंने जैसी भक्ति प्राप्त की है, वैसी भक्ति दूसरोंको नहीं नसीब हुई†।

तदनन्तर कलावती और तुलसीके द्वारा श्रीकृष्णकी महिमा कही जानेके बाद कालिकाने कहा—बुद्धिमान् उद्धव! बाल, युवा और वृद्ध—तीनों प्रकारके मनुष्य तथा जो देवता आदि और सिद्धगण हैं; वे सभी उन परमेश्वर श्रीकृष्णको जानते हैं। इस समय इन मूर्च्छित हुई राधाको जगाना ही युक्त है; अतः इसके लिये जो प्रधान युक्ति हो उसके द्वारा इन्हें चैतन्य करो।

तब उद्धव बोले—कल्याणि! चेत करो। जगन्मातः! मेरी ओर ध्यान दो। मैं कृष्णभक्तके किंकरका भी किंकर उद्धव हूँ। माँ! मुझपर कृपा करो। मैं पुनः मथुरा जाऊँगा; क्योंकि मैं स्वतन्त्र नहीं हूँ; बल्कि कठपुतलीकी भाँति पराधीन हूँ तथा जैसे बैल सदा हलवाहेके वशमें रहता है; उसी तरह मैं श्रीकृष्णके अधीन हूँ।

(अध्याय ९४)

उद्धवका कथन सुनकर राधाका चैतन्य होना और अपना दुःख सुनाते हुए उद्धवको उपदेश देकर मथुरा जानेकी आज्ञा देना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! उद्धवके वचन सुनकर राधिकाकी चेतना लौट आयी। वे उठकर उत्तम रत्नसिंहासनपर जा विराजीं। उस समय सात गोपियाँ भक्तिपूर्वक श्वेत चँवरोंद्वारा उनकी सेवा कर रही थीं। तब देवी राधिका दुःखित हृदयसे उद्धवसे मधुर वचन बोलीं।

श्रीराधिकाने कहा—वत्स! तुम मथुरा जाओ, परंतु वहाँ सुखमें पड़कर मुझे भूल मत जाना। (यदि भूल जाओगे तो) इस भवसागरमें तुम्हारे लिये इससे बढ़कर दूसरा अधर्म नहीं है। इस

* धन्यं भारतवर्षं च पुण्यदं शुभदं वरम्। गोपीपादाब्जरजसा पूतं परमनिर्मलम्॥
ततोऽपि गोपिका धन्या मान्या योषित्सु भारते। नित्यं पश्यन्ति राधायाः पादपद्मं सुपुण्यदम्॥
(९४। ७७-७८)

† न गोपीभ्यः परो भक्तो हरेश्च परमात्मनः। यादृशीं लेभिरे गोप्यो भक्तिं नान्ये च तादृशीम्॥
(९४। ८६)

समय तुम जाकर परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णसे मेरी सारी बात कह सुनाओ और शीघ्र ही मेरे स्वामीको यहाँ ले आओ। भला, जगत्की युवतियोंमें किसको ऐसा दुःख है? श्रीकृष्णके वियोगजन्य दुःखको मेरे अतिरिक्त और कौन जानती है? सीताको भी वियोग-दुःख कुछ-कुछ ज्ञात है। त्रिलोकीमें नारियोंमें मुझसे बढ़कर दुःखिया कोई नहीं है। बेटा उद्धव! किस युवतीको मेरे समान दुःख है? भला, कौन नारी मेरी मानसिक व्यथाको सुनकर विश्वास करेगी? स्त्रियोंमें राधाके समान दुःखिया, विरह-संतप्त और सुख-सौभाग्यसे हीन नारी न हुई है और न आगे होगी। वत्स! जिनके नाम-श्रवणमात्रसे पाँचों प्राण प्रहृष्ट हो जाते हैं तथा जिनके स्मरणमात्रसे वे प्रफुल्ल हो उठते हैं और आत्मा परम स्निग्ध हो जाता है; जिन्होंने मेरा स्पर्श किया, इतनेमात्रसे ही जिससे तीनों भुवनोंमें मुझे यशकी प्राप्ति हुई, उन परमेश्वरका किस समृद्धिको पाकर मैं विस्मरण कर सकती हूँ? तात! जो तीनों लोकोंपर विजय पानेवाला रूप और गुण धारण करते हैं; जिन्हें ब्रह्माने नहीं रचा है बल्कि जो स्वयं ही ब्रह्माके रचयिता हैं; जो कल्पवृक्षसे भी बढ़कर सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता, शान्त, लक्ष्मीपति, मनको हरण करनेवाले, सर्वेश्वर, सबके कारणस्वरूप, ऐश्वर्यशाली परमात्मा हैं; उन ब्रह्माके भी विधाता अपने स्वामी श्रीकृष्णको किस समृद्धिके प्रलोभनमें पड़कर मैं भूल सकती हूँ? तात! ब्रह्मा, शिव और शेष आदि जिनके चरणकमलका ध्यान करते रहते हैं; उन प्रभुको मैं किस सुखके लोभसे विस्मृत कर सकती हूँ। पुत्र! जिन्हें स्वप्नमें भी उनके अनुपम मनोहर रूपका दर्शन हो जाता है; वे सब कुछ त्यागकर रात-दिन उन्हींके ध्यानमें मग्न हो जाते हैं। जिनके गुणसे पर्वत पिघलकर पानी-पानी हो जाता है, शुष्क काष्ठ गीला हो जाता है, सूखे वृक्षमें नयी कोंपलें निकल आती हैं, वायुका वेग रुक जाता है तथा सूर्य और सागर स्थगित हो जाते हैं; उन प्रियतमको मैं किस समृद्धिकी प्राप्तिसे भुला सकती हूँ? भक्तवर! जो कालके काल हैं; प्रलयकालीन मेघ, संहारकर्ता शिव और सृष्टिकर्ता ब्रह्माके स्वामी हैं; जो स्वाधीन, स्वतन्त्र और स्वयं ही आत्मा नामवाले हैं; उन प्रभुको मैं कौन-सी सम्पत्ति पाकर भूल सकती हूँ? उन श्रीकृष्णसे वियुक्त होनेपर (उस वियोगजन्य दुःखकी शान्तिके लिये) कोई यथार्थ ज्ञान है ही नहीं; जिसके द्वारा कोई विद्वान् मुझे सान्त्वना दे सके। सावित्री और सरस्वती भी मुझे समझानेमें समर्थ नहीं हैं। वेद और वेदाङ्ग भी मुझे ढाढ़स नहीं बँधा सकते; फिर संतों और देवताओंकी तो बात ही क्या है? सहस्र मुखवाले शेषनाग, वेदोंके उत्पादक ब्रह्मा, योगीन्द्रोंके गुरुके गुरु शम्भु और गणेश भी मुझे प्रबुद्ध नहीं कर सकते; क्योंकि जिसकी स्थिति है उसीकी गतिका विचार किया जा सकता है। जिसका कोई मार्ग ही नहीं है, उसकी गति कहाँ? सुख-दुःख, शुभ-अशुभ सभी कालद्वारा साध्य हैं, यहाँतक कि जगत्में सभी पदार्थ कालके वशीभूत हैं और यह काल दुर्निवार है। वत्स! यदि तुम व्रजवासका परित्याग करके जानेके लिये उत्सुक ही हो तो उठो और सुखपूर्वक उस रमणीय मथुरापुरीको जाओ; क्योंकि चिरकालतक श्रीकृष्णसे विलग रहना दुःखका ही कारण होता है; उससे सुख नहीं मिलता। वहाँ जाकर तुम उनके जन्म, मृत्यु और बुढ़ापेका विनाश करनेवाले चन्द्रमुखके दर्शन करो। राधिकाके ऐसे वचन सुनकर तथा बन्धु-वियोगसे कातर हुई राधिकाको रोती देखकर उद्धव फूट-फूटकर रोने लगे।

तदनन्तर माधवीकी प्रेरणासे उद्धवके पूछनेपर श्रीराधाने उनको उपदेश दिया—'वत्स! जो लोकोंके स्वामी, कालके काल, जगद्गुरु, निर्गुण, इच्छारहित और ईश्वर हैं; उन परमात्माका पण्डितलोग भजन करते हैं। बेटा! सूर्य सभी प्राणियोंको

आयुको रात-दिनके व्याजसे क्षीण करते रहते हैं; परंतु जो श्रीहरिके शुद्ध भक्त हैं, उन पुण्यवान् संतोंपर उनका वश नहीं चलता। उदाहरणस्वरूप ब्रह्माके चारों मानस-पुत्र भगवद्भक्त सनकादिकोंपर दृष्टिपात करो। उनकी आयु सदा सुस्थिर रहती है। वे उपनयन-संस्काररहित पाँच वर्षके शिशुओंकी भाँति सदा बालरूप ही रहते हैं और उसी अवस्थासे वे एकादश रुद्रों, द्वादश आदित्यों और ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु हैं। उनके हृदय विशाल हैं, मुखोंपर प्रसन्नता छायी रहती है, वेष दिगम्बर है, शरीर श्रीकृष्णके ध्यानसे पवित्र हो गये हैं। वे विष्णुभक्तिपरायण और तीर्थोंको भी पावन करनेवाले हैं। उन्हें वेद-वेदाङ्ग और शास्त्रोंकी चिन्ता नहीं रहती, उनका मन प्रफुल्लित रहता है और वे रात-दिन लगातार भक्तिपूर्वक श्रीहरिके ध्यानमें तत्पर रहते हैं। उनके नाम सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन और चौथे सनत्कुमार हैं। जो लोग इनका सब तरहसे स्मरण करते हैं, उन्हें तीर्थस्नानजनित फलकी प्राप्ति होती है, वे किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाते हैं, उनके हृदयमें हरिभक्ति उत्पन्न हो जाती है और वे हरिकी दासताके भागी हो जाते हैं। इसके बाद मृकण्डुके पुत्र द्विजवर मार्कण्डेयको देखो, जो अपने कर्मवश लाखों वर्षोंतक ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित होते रहे; तत्पश्चात् श्रीहरिकी सेवासे उन्हें सात कल्पोंतककी आयु प्राप्त हुई। फिर वोढु, पञ्चशिख, लोमश और आसुरिको देखो। ये सम्पूर्ण कर्मोंका त्याग करके श्रीहरिकी सेवामें तत्पर और सदा श्रीहरिके चरणका ध्यान करते रहते हैं। इनकी आयु सौ कल्पोंकी है। पुनः जामदग्निनन्दन चिरजीवी परशुराम, हनुमान्, बलि, व्यास, अश्वत्थामा, विभीषण, विप्रवर कृपाचार्य और ऋक्षराज जाम्बवान्को देखो। ये सभी श्रीहरिका ध्यान करनेसे शुद्ध और चिरजीवी हैं। उद्धव! इनके अतिरिक्त सिद्धेन्द्रों, नरेन्द्रों तथा अन्य मनुष्योंमें जो श्रीहरिकी भावना करनेसे शुद्ध हो गये हैं; वे सभी चिरजीवी हैं। दैत्योंमें श्रीहरिसे द्वेष करनेवाले दुराचारी हिरण्यकशिपुके पुत्र प्रह्लादको देखो। वे श्रीहरिके ध्यानमें तल्लीन रहते हैं, जिससे चिरजीवी एवं कालजित् हो गये हैं। अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप भारतमें जन्म पाकर जो लोग उन श्रीहरिकी सेवा नहीं करते, वे मूर्ख और पापी हैं। जो मनुष्य वासुदेवका परित्याग करके विषयमें लवलीन रहता है, वह महान् मूर्ख है और स्वेच्छानुसार अमृतका त्याग करके विष-पान करता है। इस भूतलपर किसकी स्त्री, किसका पुत्र और किसके भाई-बन्धु हैं? अर्थात् कोई किसीका नहीं है; क्योंकि विपत्तिकालमें श्रीकृष्णके अतिरिक्त कोई किसीका बन्धु—सहायक नहीं होता*। इसीलिये संतलोग रात-दिन निरन्तर श्रीकृष्णका ही भजन करते हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण जन्म, मृत्यु, बुढ़ापा और रोगके विनाशक, सर्वदुःखहारी परमेश्वर हैं। उन आनन्दको भी आनन्दित करनेवाले परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णका भजन कालपर विजय पानेका उपाय है। इसके बाद श्रीराधाजीने मनुष्य, पितर, देवता, नाग, राक्षस और अन्यान्य लोकों तथा युगों आदिकी कालगतिका वर्णन करके फिर कहा—'वत्स! अब तुम श्रीहरिके नगरको जाओ।' (अध्याय ९५-९६)

---

*अनेकजन्मतपसा लब्ध्वा जन्म च भारते। ये हरिं तं न सेवन्ते ते मूढाः कृतपापिनः॥
वासुदेवं परित्यज्य विषये निरतो जनः। त्यक्त्वामृतं मूढबुद्धिर्विषं भुङ्क्ते निजेच्छया॥
कस्य स्त्री कस्य वा पुत्रः कस्य वा बान्धवस्तथा। कः कस्य बन्धुर्विपदि श्रीकृष्णेन विना भुवि॥
(९६। ३८—४०)

राधाका उद्धवको विदा करना, विदा होते समय उद्धवद्वारा राधा-महत्त्व-वर्णन तथा उद्धवके यशोदाके पास चले जानेपर राधाका मूर्च्छित होना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! उद्धवको जानेके लिये उद्यत देखकर श्रीहरिकी प्रिया महासती राधिका गोपियोंसहित तुरंत ही संत्रस्त एवं समुद्विग्न हो उठीं। उनका हृदय दुःखसे भर आया। तब उन्होंने शीघ्र ही आसनसे उठकर उद्धवके मस्तकपर हाथ रखा और उन्हें शुभाशीर्वाद दिया। फिर कोमल दूर्वाङ्कुर, अक्षत, श्वेत धान्य, पुष्प, मङ्गल-द्रव्य, लाजा, फल, पत्ता तथा दधि लानेकी आज्ञा दी। तत्पश्चात् गन्ध, सिन्दूर, कस्तूरी और चन्दनसे युक्त तथा फल-पल्लवसे सुशोभित जलपूर्ण कलश, दर्पण, पुष्पमाला, जलता हुआ दीपक, लाल चन्दन, पति-पुत्रवती साध्वी स्त्री, सुवर्ण और चाँदीके दर्शन कराये। तदनन्तर दुःखी हृदयवाली महासाध्वी राधिका नेत्रोंमें आँसू भरकर चरणोंमें पड़े हुए उद्धवसे हितकारक, सत्य, गोपनीय, मङ्गल-वचन बोलीं।

राधिकाने कहा—वत्स! तुम्हारा मार्ग मङ्गलमय हो; तुम्हें सदा कल्याणकी प्राप्ति होती रहे; तुम श्रीहरिसे ज्ञान-लाभ करो और श्रीकृष्णके परम प्रिय हो जाओ। श्रीकृष्णकी भक्ति और उनकी दासता सभी वरदानोंमें उत्तम वरदान है; क्योंकि हरिभक्ति (सालोक्य, सार्ष्टि, सामीप्य, सारूप्य और एकत्व—इन) पाँच प्रकारकी मुक्तियोंसे भी श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है तथा श्रीहरिकी दासता ब्रह्मत्व, देवत्व, इन्द्रत्व, अमरत्व, अमृत और सिद्धिलाभसे भी बढ़कर परम दुर्लभ है। अनेक जन्मोंकी तपस्याके फलस्वरूप भारतवर्षमें जन्म लेकर यदि हरिभक्तिको प्राप्ति हो जाय तो उसका वह जन्म परम दुर्लभ है। कर्मको क्षय करनेवाले उस व्यक्तिका तथा उसके सहस्रों पितरों, माता, मातामहों, सैकड़ों पूर्वजों, सहोदर भाई, बान्धव, पत्नी, गुरुजन, शिष्य और भृत्यका भी जीवन निश्चय ही सफल हो जाता है*। वत्स! जो कर्म श्रीकृष्णको समर्पण कर दिया जाय; वही उत्तम कर्म है। जिस कर्मसे श्रीकृष्णको संतुष्ट किया जा सके; वही कर्म शुद्ध एवं शोभन है। संकल्पको सिद्ध करनेवाला जो कर्म प्रीति एवं विधिपूर्वक किया जाता है; वही मङ्गलकारक, धन्य और परिणाममें सुखदायक होता है। श्रीकृष्णके उद्देश्यसे किया हुआ व्रत, उपवास, तपस्या, सत्यभाषण, भक्ति तथा पूजन, केवल उनकी दासता-प्राप्तिका कारण होता है। समस्त पृथ्वीका दान, भूमिकी प्रदक्षिणा, समस्त तीर्थोंमें स्नान, समस्त व्रत, तप, समस्त यज्ञोंका अनुष्ठान, सम्पूर्ण दानोंका फल, समस्त वेद-वेदाङ्गोंका पठन-पाठन, भयभीतका रक्षण, परम दुर्लभ ज्ञान-दान, अतिथियोंका पूजन, शरणागतकी रक्षा, सम्पूर्ण देवताओंका अर्चन-वन्दन, मनोजय, पुरश्चरणपूर्वक ब्राह्मणों और देवताओंको भोजन देना, गुरुकी शुश्रूषा करना, माता-पिताकी भक्ति और उनका पालन-पोषण—ये सभी श्रीकृष्णकी दासताकी सोलहवीं कलाकी भी समता नहीं कर सकते। इसलिये उद्धव! तुम यत्नपूर्वक उन परात्पर श्रीकृष्णका भजन करो। वे निर्गुण,

---

* कृष्णे भक्तिः कृष्णदास्यं वरेषु च वरं वरम्। श्रेष्ठा पञ्चविधा मुक्तेर्हरिभक्तिर्गरीयसी॥
ब्रह्मत्वादपि सेवत्वादिन्द्रत्वादमरादपि। अमृतात् सिद्धिलाभाच्च हरिदास्यं सुदुर्लभम्॥
अनेकजन्मतपसा सम्भूय भारते द्विज। हरिभक्तिं यदि लभेत् तस्य जन्म सुदुर्लभम्॥
सफलं जीवनं तस्य कुर्वतः कर्मणः क्षयम्। पितॄणां च सहस्राणां स्वस्य मातुश्च निश्चितम्॥
मातामहानां पुंसां च शतानां सोदरस्य च। बान्धवस्यापि पत्न्याश्च गुरूणां शिष्यभृत्ययोः॥
(९७। ८—१२)

इच्छारहित, परमात्मा, ईश्वर, अविनाशी, सत्य, परब्रह्म, प्रकृतिसे परे, परमेश्वर, परिपूर्णतम, शुद्ध, भक्तानुग्रहमूर्ति, कर्मियोंके कर्मोंके साक्षी, निर्लिप्त, ज्योतिःस्वरूप, कारणोंके भी परम कारण, सर्वस्वरूप, सर्वेश्वर, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता, शुभदायक, अपने भक्तोंको भक्ति, दास्य और अपनी सम्पत्ति प्रदान करनेवाले हैं; अतः अशुभकारक मात्सर्य तथा ज्ञाति-बुद्धिको छोड़कर आनन्दपूर्वक उन परमानन्दस्वरूप नन्दनन्दनका भजन करो। वेदकी कौथुमि-शाखामें उनका सहस्रनाम नन्दनन्दन नामसे वर्णित है।

नारद! यह सब सुनकर उद्धव परम विस्मित हुए और उस सम्पूर्ण ज्ञानको पाकर ज्ञानसे परिपूर्ण हो गये। तत्पश्चात् उन्होंने अपने वस्त्रको गलेमें लपेट लिया और दण्डकी भाँति भूतलपर लेटकर मस्तकके बालोंसे राधिकाके चरणका स्पर्श करते हुए वे बारंबार उन्हें प्रणाम करने लगे। उस समय भक्तिके कारण उनके सारे शरीरमें रोमाञ्च हो आया था और नेत्रोंमें आँसू छलक आये थे। वे प्रेमवश तथा राधाके वियोगजन्य शोकसे व्यथित होकर उच्चस्वरसे रुदन करने लगे। तब उद्धवके प्रति प्रेम होनेके कारण राधा और गोपियाँ भी रोने लगीं। फिर उन्होंने उद्धवका गला पकड़कर बैठाया; परंतु उद्धवकी चेतना लुप्त हो गयी थी; अतः वे जँभाई लेते हुए मूर्च्छित हो गये। उनकी यह दशा देखकर राधिकाने शीघ्र ही उन कृष्णगतप्राण उद्धवको उठाकर बैठाया और उनके मुखकमलपर जलके छींटे देकर उन्हें चैतन्य कराया। नारद! तत्पश्चात् उन्होंने 'वत्स! चिरञ्जीव'—यों शुभाशीर्वाद दिया। तब उद्धव होशमें आकर उस उत्तम सभाके मध्य रोती हुई गोपियोंके सामने राधासे परमार्थप्रद वचन बोले।

उद्धवने कहा—परम दुर्लभ जम्बूद्वीप सभी द्वीपोंमें धन्य और प्रशंसनीय है; क्योंकि उसमें श्रेष्ठ भारतवर्ष है, जिसकी सभी लोग कामना करते हैं। अहो! उस भारतवर्षमें वृन्दावन नामक पुण्यवन है; जो श्रीराधाके चरणकमलसे स्पर्शसे गिरी हुई रजसे पावन है और जिसके लिये देवगण भी लालायित रहते हैं। तीर्थपावनी राधाके चरणकमलकी रजसे पावन हुई वहाँकी भूमि तीनों लोकोंमें धन्य, मान्य, श्रेष्ठ और पूजनीय मानी जाती है। पूर्वकालमें ब्रह्माने गोलोकमें राधिका और श्रीकृष्णके दर्शनकी लालसासे पुष्करक्षेत्रमें वेदोक्त विधिके अनुसार भक्तिपूर्वक साठ हजार दिव्य वर्षोंतक तप किया; परंतु उस समय स्वप्नमें भी उन्हें गोलोकमें राधिका और श्रीकृष्णके दर्शन नहीं प्राप्त हुए। तदनन्तर उन्हें लीलापूर्वक सत्यरूपा आकाशवाणी सुनायी पड़ी, जो इस प्रकार थी—'ब्रह्मन्! वाराहकल्पके आनेपर भारतवर्षमें पुण्य वृन्दावनके मध्य जब परम रमणीय रासोत्सव प्रारम्भ होगा, तब वहाँ रासमण्डलमें देवताओंके बीच बैठे हुए तुम्हें राधिका और श्रीकृष्णके दर्शन होंगे; इसमें संदेह नहीं है।' उस आकाशवाणीको सुनकर ब्रह्मा तपस्यासे विरत हो अपने लोकको लौट गये। समय आनेपर उन्हें श्रीकृष्णके दर्शन प्राप्त हुए, जिससे उनका हृदय प्रसन्न और चिरकालीन मनोरथ परिपूर्ण हो गया। अतः इन गोपों और गोपिकाओंका जन्म एवं जीवन सफल हो गया; क्योंकि ये नित्य श्रीराधाके चरणकमलको—जो ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये दुर्लभ है—देखती रहती हैं। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र तथा वैष्णव संत सती राधिकाकी—जो मानिनी, पुण्यमयी, तीर्थोंको पावन बनानेवाली स्वतः शुद्ध और अत्यन्त दुर्लभ हैं—नित्य निरन्तर सेवा करते रहते हैं। जिससे उनको राधाका वह चरणकमल सुलभ हो जाता है, जिसका मिलना ब्रह्मा आदि देवताओंके लिये भी अत्यन्त कठिन है। सर्वेश्वरेश्वर परमात्मा श्रीकृष्णने जिनके चरणकमलोंके नखोंको महावरसे सुशोभित किया था; गोलोकमें स्थित शतशृङ्ग पर्वतपर रासमण्डलमें

स्वयं श्रीकृष्णने सुदुर्लभ स्तोत्रराजद्वारा जिनकी पूजा की थी तथा जिनके चरणकमलोंमें कोमल दूर्वाङ्कुर, अक्षत, गन्ध और चन्दन निवेदित करके पारिजात-पुष्पोंकी पुष्पाञ्जलि समर्पित की थी; जो छत्तीस सखियोंकी स्वामिनी और तीस हजार करोड़ गोपियोंकी अधीश्वरी हैं; जिनका राधिका नाम है, जो श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया और देवताओंकी भी पूजनीया हैं; उन सर्वश्रेष्ठ राधिकासे जो पापी द्वेष करते हैं अथवा उनकी निन्दा और हँसी उड़ाते हैं, उन्हें सौ ब्रह्महत्याका पाप लगता है; इसमें तनिक भी संशय नहीं है। उस पापके फलस्वरूप वे तप्त तैल, महाभयंकर अन्धकार, कीट और पीड़ा-यन्त्रोंसे युक्त कुम्भीपाक और रौरवनरकमें अपनी सात पीढ़ियोंके साथ चौदह इन्द्रोंकी आयुपर्यन्त यातना भोगते हैं। तत्पश्चात् लोकजन्मानुसार वे एक जन्ममें उस पापके कारण एक सहस्र दिव्य वर्षोंतक विष्ठाके कीट होकर उत्पन्न होते हैं। इसके बाद उतने ही वर्षोंतक कुलटाओंकी योनिके रक्त और मलको खानेवाले योनि-कीट तथा मवाद चाटनेवाले मलकीट होते हैं। यों कहकर जब उद्धव रोने लगे और जानेके लिये उद्यत हुए, तब उनसे श्रीकृष्णके वियोगसे कातर हुई राधिका आँसू बहाती हुई पुनः बोलीं।

श्रीराधिकाजीने कहा—वत्स! अब तुम मथुरापुरीको जाओ और यह सब माधवको बतलाओ। बेटा! मैं जिस प्रकार गोविन्दके शीघ्र दर्शन कर सकूँ, तुम्हें प्रयत्नपूर्वक वैसा ही करना चाहिये। अच्छा अब जाओ, मेरा जन्म तो मिथ्या दुराशासे निष्फल ही बीत गया; क्योंकि आशा ही परम दुःख है और निराशा परम सुख है। तत्पश्चात् गोविन्दका ध्यान करके राधिका जीवन्मुक्त हो गयीं। तदनन्तर राधिका पुनः वहाँ डाह मारकर रोने लगीं। तब रोती हुई राधाको प्रणाम करके उद्धव यशोदाके भवनकी ओर चले गये।

नारद! उद्धवके चले जानेपर राधा मूर्च्छित हो गयीं। उनकी चेतना लुप्त हो गयी और वे निरन्तर ध्यानमें तत्पर हो गयीं। मुने! तब श्रेष्ठ गोपियोंने कमल-सदृश नेत्रोंमें आँसू भरकर राधिकाको गीली भूमिपर बिछे हुए जलयुक्त कमलदलकी शय्यापर लिटाया; परंतु राधाके गात्रस्पर्शमात्रसे ही वह शय्या भस्म हो गयी। तब सखियोंने विरह-तापसे संतप्त हुई राधाको पुनः एक ऐसे कोमल स्थानपर सुलाया, जिसपर मुलायम चद्दर बिछी हुई थी और चन्दनमिश्रित जलका छिड़काव किया गया था; परंतु वह सुगन्धित चन्दनयुक्त जल भी सहसा सूख गया। उस समय उद्धवके बिना राधाको एक निमेष सौ युगके समान प्रतीत होने लगा। वे कहने लगीं—'हा उद्धव! हा उद्धव! तुम जल्दी जाकर श्रीहरिको मेरी दशा बतलाओ और जो मेरे प्राणेश्वर हैं उन श्रीहरिको शीघ्र यहाँ ले आओ।' तब संतापके कारण जिनकी चेतना नष्ट हो गयी थी; उन राधाको ऐसे दीन वचन कहते देखकर सभी गोपियाँ उन्हें अपनी छातीसे लगाकर रुदन करने लगीं; फिर राधाको होशमें लाकर उन्हें ढाढ़स बँधाने लगीं।

(अध्याय ९७)

श्रीकृष्णद्वारा गोकुलका वृत्तान्त पूछे जानेपर उद्धवका उसे कहते हुए राधाकी दशाका विशेषरूपसे वर्णन करना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर उद्धव यशोदाको प्रणामकर उतावलीके साथ हर्षपूर्वक खर्जूर-काननको बाँयें करके यमुना-तटपर गये। वहीं स्नान-भोजन करके वे पुनः मथुराको चल पड़े। वहाँ पहुँचकर एकान्तमें वटकी छायामें बैठे हुए गोविन्दको देखा। उस

समय उद्धव शोकसे दग्ध होनेके कारण दुःखी हो रो रहे थे, उनके नेत्रोंसे आँसू झर रहे थे। उद्धवको आया देखकर श्रीकृष्णका मन प्रफुल्लित हो गया। तब वे उद्धवसे मुस्कराते हुए बोले।

श्रीभगवान्‌ने पूछा—उद्धव! आओ। कल्याण तो है न? राधा जीवित है न? विरह-तापसे संतप्त हुई कल्याणमयी गोपियोंका जीवन चल रहा है न? ग्वालबालों तथा गोवत्सोंका मङ्गल है न? पुत्र-विरहसे दुःखी हुई मेरी माता यशोदाका क्या हाल है? बन्धो! यह ठीक-ठीक बतलाओ कि तुम्हें देखकर मेरी माताने क्या कहा? तुमने उसे क्या उत्तर दिया तथा उसने मेरे लिये क्या कहा है? क्या तुमने वह यमुना-तट, वृन्दावन नामक पुष्पवन, जनशून्य एवं शीतल-मन्द-सुगन्ध पवनसे व्याप्त परम रमणीय रासमण्डल, कुञ्ज-कुटीरोंसे घिरा हुआ रमणीय क्रीड़ासरोवर और जिनपर भँवरे मँडरा रहे थे, उन खिले हुए फूलोंसे परिपूर्ण पुष्पवाटिका देखी? क्या भाण्डीरवनमें अत्यन्त सघन छायावाला एवं बालकोंसे संयुक्त वट-वृक्ष तुम्हें दृष्टिगोचर हुआ? क्या गौओंके गोष्ठ, गोकुल और गो-समुदाय देखनेको मिला? यदि राधा जीवित है तो तुम्हारे द्वारा देखे जानेपर उसने मेरे लिये क्या संदेशा दिया है? बन्धो! यह सारा समाचार मुझे बताओ; क्योंकि मेरा मन स्थिर नहीं है। सभी गोपिकाओंने क्या कहा है? ग्वालबालोंने कौन-सी बात कही है? मेरे पिताकी-सी अवस्थावाले वृद्ध गोपोंने क्या संदेशा दिया है? तात! बलदेवकी माता सती रोहिणीने क्या कहा है तथा दूसरी प्रिय बन्धुओंकी पत्नियोंने कौन-सी बात कही है? तुम्हें भोजन क्या मिला था? माता यशोदा तथा राधाने कौन-सी अपूर्व वस्तु उपहारमें दी है? उन्होंने किस ढंगसे बातचीत की है और उनके वचन कैसे मधुर थे? उद्धव! गोपों, गोपियों, शिशुओं, राधा और मेरी माताका मेरे प्रति कैसा प्रेम है? क्या मेरी माता मुझे स्मरण करती है? क्या रोहिणी मुझे याद करती है? क्या मेरे प्रेमविरहसे व्याकुल हुई मेरी राधाको मेरा स्मरण रहता है? क्या गोपियों, गोपों और ग्वालबालोंको मेरी याद आती है? क्या मेरे न रहनेपर भी ग्वालबाल भाण्डीरवनमें वटवृक्षके नीचे क्रीड़ा करते हैं? जहाँ ब्राह्मणपत्नियोंद्वारा दिये गये अमृतोपम अन्नका मैंने नारियों और बालकोंके साथ भोग लगाया था, उस अभीष्ट स्थानको तुमने देखा है? इन्द्रयागस्थल, श्रेष्ठ गोवर्धन तथा जहाँ ब्रह्माने गौओंका अपहरण किया था, उस उत्तम स्थानको देखा है न? श्रीकृष्णके ये प्रश्न सुनकर उद्धव सनातन भगवान् श्रीकृष्णसे यह शोकयुक्त तथा मधुरताभरी वाणी बोले।

उद्धवने कहा—नाथ! आपने जिस-जिसका नाम लिया है, वह सब मैंने इच्छानुसार देख लिया और इस भारतवर्षमें अपने जीवन और जन्मको सफल बना लिया। मैंने उस पुण्यमय वृन्दावनको भी देख लिया, जो भारतवर्षका साररूप है। व्रजभूमिमें उस वृन्दावनका साररूप परम रमणीय रासमण्डल है। उसकी सारभूता गोलोकवासिनी श्रेष्ठ गोपिकाएँ हैं। उनकी सारभूता जो परात्परा

रासेश्वरी राधा हैं; उनके भी मैंने दर्शन किये हैं। वे कदलीवनके मध्य एकान्तमें चन्दनचर्चित एवं जलयुक्त पङ्किल भूमिपर बिछे हुए कमलदलकी शय्यापर अत्यन्त खिन्न होकर पड़ी थीं। उन्होंने रत्नाभरणोंको उतार फेंका है। उनका शरीर श्वेत वस्त्रसे आच्छादित है। वे अत्यन्त मलिन एवं दुर्बल हो गयी हैं। आहार छोड़ देनेके कारण उनका उदर शीर्ण हो गया है। वे क्षण-क्षणपर साँस लेती हैं। वहाँ सखियाँ निरन्तर श्वेत चँवरसे उनकी सेवा कर रही हैं। हरे! यों विरह-तापसे पीड़िता श्रीराधा क्या क्षणभर जीवित रह सकती हैं? अरे! उन्हें तो इसका भी भान नहीं रह गया है कि क्या जल है और क्या स्थल है, क्या रात है और क्या दिन है, कौन मनुष्य है और कौन पशु है तथा कौन अपना है और कौन पराया है? वे बाह्यज्ञानशून्य होकर तुम्हारे चरणके ध्यानमें मग्न हैं। वे त्रिलोकीमें अपने उज्ज्वल यशसे प्रकाशित हो रही हैं। उनकी मृत्यु भी कीर्तिदायिनी है। परंतु जगन्नाथ! अज्ञानी चोर-डाकू भी इस प्रकार स्त्री-हत्या करना नहीं चाहते; अतः तुम शीघ्र ही अभीष्ट कदलीवनको जाओ; क्योंकि राधासे बढ़कर भक्त न कोई हुआ है और न होगा। वे सब तरहसे पीड़ित होकर अनाथ हो गयी हैं। वसन्त-ऋतु, किरणधारी चन्द्रमा और सुगन्धित वायु उनके लिये दाहकारक हो गये हैं। तपाये हुए सुवर्णके समान उनकी चमकीली कान्ति इस समय कज्जलकी तरह श्याम हो गयी है और उनके केश सुवर्णके-से भूरे हो गये हैं। उन्होंने उत्तम वस्त्र और शृङ्गारका त्याग कर दिया है। श्रीकृष्ण! स्वयं भगवान् ब्रह्मा—जो देवताओंमें सर्वश्रेष्ठ हैं—तुम्हारे भक्त हैं। योगीन्द्रोंके गुरुके गुरु भगवान् शंकर तुम्हारे भक्त हैं। ज्ञानियोंमें श्रेष्ठ गणेश और सनत्कुमार भी तुम्हारा भजन करते हैं। भूतलपर कितने मुनीन्द्र तुम्हारे भजनमें लगे रहते हैं; परंतु राधा तुम्हारी जैसी भक्ति करती हैं, वैसा भक्त कोई भी कहीं भी दूसरा नहीं है। राधा जिस प्रकार तुम्हारे ध्यानमें तल्लीन रहती हैं वैसा तो स्वयं लक्ष्मी भी नहीं कर सकतीं। महाभाग! मैंने राधाके सामने 'श्रीहरि आयेंगे' यों स्वीकार कर लिया है; अतः तुम शीघ्र ही वहाँ जाओ और मेरा वचन सार्थक करो। उद्धवकी बात सुनकर माधव ठठाकर हँस पड़े और वेदोक्त हितकारक एवं उत्तम सत्यव्रतका वर्णन करते हुए बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—उद्धव! मैं तुम्हारे द्वारा अङ्गीकार किये गये वचनको अवश्य सफल करूँगा। मैं स्वप्नमें माता यशोदाके तथा गोपियोंके निकट जाऊँगा। यह सुनकर महायशस्वी उद्धव अपने घर चले गये और श्रीकृष्ण स्वप्नमें विरहाकुल गोकुलमें जा पहुँचे। वहाँ उन्होंने स्वप्नमें राधाको भलीभाँति आश्वासन देकर परम दुर्लभ ज्ञान प्रदान किया। क्रीड़ा करके उन गोपिकाओंको यथोचितरूपसे संतुष्ट किया; नींदमें पड़ी हुई माता यशोदाका स्तन-पान करके उन्हें ढाढ़स बँधाया तथा गोपों और ग्वालबालोंको समझा-बुझाकर वे पुनः वहाँसे चल दिये।

(अध्याय ९८)

गर्गजीका आगमन और वसुदेवजीसे पुत्रोंके उपनयनके लिये कहना, उसी प्रसङ्गमें मुनियों और देवताओंका आना, वसुदेवजीद्वारा उनका सत्कार और गणेशका अग्र-पूजन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इसी समय तपस्वी गर्गजी, जो सदा संयममें तत्पर रहनेवाले और यदुवंशियोंके कुल-पुरोहित थे, वसुदेवजीके आश्रमपर पधारे। उनके सिरपर जटा थी तथा

हाथमें दण्ड और छत्र सुशोभित थे। वे शुक्ल यज्ञोपवीत धारण किये हुए थे। उनके दाँत और वस्त्र श्वेत थे तथा वे ब्रह्मतेजसे उद्दीप्त हो रहे थे। उन्हें आया देख वसुदेव और देवकीने सहसा उठकर भक्तिपूर्वक प्रणाम किया और बैठनेके लिये रत्नसिंहासन दिया। फिर मधुपर्क, कामधेनु और अग्निशुद्ध वस्त्र प्रदान करके चन्दन और पुष्पमालाद्वारा उनकी भक्तिभावसहित पूजा की। इसके बाद यत्नपूर्वक उन्हें मिष्टान्न, उत्तम अन्न और मधुर पिष्टकका भोजन कराया और सुवासित पानका बीड़ा दिया। तदनन्तर गर्गजीने बलदेवसहित श्रीकृष्णको देखकर उन्हें मन-ही-मन प्रणाम किया और पतिव्रता देवकी तथा वसुदेवजीसे कहा।

गर्गजी बोले—वसुदेव! जरा, बलरामसहित अपने शुभाचारी एवं श्रेष्ठ पुत्र श्रीकृष्णकी ओर तो देखो। अब इनकी अवस्था उपनयन-संस्कारके योग्य हो गयी है; अतः मेरी इस बातपर ध्यान दो।

वसुदेवजीने कहा—गुरो! आप यदुवंशियोंके पूज्य देव हैं, अतः उपनयनके योग्य ऐसा शुद्ध एवं शुभ मुहूर्त नियत कीजिये, जो सत्पुरुषोंके लिये भी प्रशंसनीय हो।

गर्गजी बोले—वसु-तुल्य वसुदेव! परसों वह शुभ मुहूर्त है; उस दिन चन्द्रमा और तारा अनुकूल हैं। वह दिन सत्पुरुषोंको भी मान्य है; अतः उसी मुहूर्तमें तुम उपनयन-संस्कार कर सकते हो। इसके लिये यत्नपूर्वक सभी सामग्री एकत्रित करो और सभी भाई-बन्धुओंको निमन्त्रण-पत्र भी भेज दो।

गर्गजीके वचन सुनकर वसूपम वसुदेवजीने सभी जाति-बन्धुओंके पास मङ्गल-पत्रिका भेज दी। फिर दूध, दही, घी, मधु और गुड़की छोटी-छोटी मनोहर नदियाँ तैयार करायीं और नाना प्रकारके उपहारोंकी राशि तथा मणि, रत्न, सुवर्ण, मुक्ता, माणिक्य, हीरे, अनेक तरहके आभूषण और वस्त्रोंकी ढेरियाँ लगवा दीं। इधर भक्तवत्सल श्रीकृष्णने भी भक्तिपूर्वक देवगणों, मुनीन्द्रों, श्रेष्ठ सिद्धों और भक्तोंका मन-ही-मन स्मरण किया। तदनन्तर उस शुभ दिनके प्राप्त होनेपर वे सभी उपस्थित हुए। मुनिश्रेष्ठ, बान्धव, बहुत-से नरेश, देवकन्याएँ, नागकन्याएँ, राजकुमारियाँ, विद्याधरियाँ और बाजा बजानेवाले गन्धर्व भी आये। ब्राह्मण, भिक्षुक, भट्ट, यति, ब्रह्मचारी, संन्यासी, अवधूत और योगीलोग भी पधारे। उस शुभ कर्ममें स्त्रियोंके भाई-बन्धु, अपने बन्धुओंका समुदाय, नानाका तथा उनके बन्धुओंका कुटुम्ब—ये सभी सम्मिलित हुए। फिर भीष्म, द्रोण, कर्ण, अश्वत्थामा, द्विजवर कृपाचार्य, पत्नी और पुत्रोंसहित धृतराष्ट्र, हर्ष और शोकमें भरी हुई पुत्रोंसहित विधवा कुन्ती तथा विभिन्न देशोंमें उत्पन्न हुए योग्य राजा और राजकुमार भी आये। नारद! अत्रि, वसिष्ठ, च्यवन, महातपस्वी भरद्वाज, याज्ञवल्क्य, भीम, गार्ग्य, महातपस्वी गर्ग, वत्स, पुत्रसहित धर्म, जैगीषव्य, पराशर, पुलह, पुलस्त्य, अगस्त्य, सौभरि, सनक, सनन्दन, तीसरे सनातन, भगवान् सनत्कुमार, वोढु, पञ्चशिख, दुर्वासा, अङ्गिरा, व्यास, व्यासनन्दन शुकदेव, कुशिक, कौशिक, परशुराम, ऋष्यशृङ्ग, विभाण्डक, शृङ्गी, वामदेव, गुणके सागर गौतम, क्रतु, यति, आरुणि, शुक्राचार्य, बृहस्पति, अष्टावक्र, वामन, पारिभद्र, वाल्मीकि, पैल, वैशम्पायन, प्रचेता, पुरुजित, भृगु, मरीचि, मधुजित, प्रजापति कश्यप, देवमाता अदिति, दैत्यजननी दिति, सुमन्तु, सुभानु, एक, कात्यायन, मार्कण्डेय, लोमश, कपिल, पराशर, पाणिनि, पारियात्र, मुनिवर पारिजात, संवर्त, उतथ्य, नर, मैं (नारायण), विश्वामित्र, शतानन्द, जाबालि, तैत्तिर, योगियों और ज्ञानियोंके गुरु ब्रह्मांशभूत सान्दीपनि, उपमन्यु, गौरमुख, मैत्रेय, श्रुतश्रवा, कठ, कच, कश्यप, धर्मज्ञ भरद्वाज—ये सभी मुनि शिष्योंसहित वसुदेवजीके आश्रमपर

पधारे। उन्हें आया देखकर वसुदेवजीने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर सबकी चरण-वन्दना की।

इसी समय अपने वाहन हंसपर सवार हो प्रसन्नमुखवाले ब्रह्मा, रत्ननिर्मित विमानपर आरूढ़ हो पार्वतीसहित शंकर, स्वयं नन्दी, महाकाल, वीरभद्र, सुभद्रक, मणिभद्र, पारिभद्र, कार्तिकेय, गणेश्वर, गजराज ऐरावतपर बैठे हुए महेन्द्र, धर्म, चन्द्रमा, सूर्य, कुबेर, वरुण, पवन, अग्नि, संयमनीपुरीके स्वामी यम, जयन्त, नलकूबर, सभी ग्रह, आठों वसु, गणोंसहित ग्यारहों रुद्र, बारहों आदित्य, शेषनाग तथा अनेकानेक देवगण भी आये। वसुदेवजीने भक्तिपूर्वक भूमिपर सिर रखकर उन सबकी वन्दना की और भक्तिवश मस्तक झुकाकर परम भक्तिके साथ उन ऋषिगणों, देवेन्द्रों तथा देवगणोंका स्तवन आरम्भ किया। उस समय उनका शरीर हर्षसे पुलकायमान हो रहा था।

वसुदेवजी बोले—जो परब्रह्म, परम धाम, परमेश्वर, परात्पर, लोकोंके प्रतिपालक, वेदोंके उत्पादक, सृष्टिकर्ता, सृष्टिके कारण और सनातन देव हैं; वे स्वयं ब्रह्मा, जो देवताओं, मुनीन्द्रों और सिद्धेन्द्रोंके गुरुके गुरु हैं, स्वप्नमें भी जिनके चरणकमलका क्षणमात्रके लिये दर्शन मिलना परम दुर्लभ है, जिनके स्मरणमात्रसे सभी अनिष्ट दूर भाग जाते हैं, वे भगवान् शिव; जिनके स्मरणसे मनुष्य सम्पूर्ण संकटोंसे पार होकर कल्याणका भागी हो जाता है, सर्वप्रथम जिनकी पूजा होती है, जो देवताओंके अगुआ और श्रेष्ठ हैं, कलशोंपर भक्तिपूर्वक मन्त्रोंद्वारा जिनका आवाहन करनेसे मङ्गल होता है, जो विघ्नोंके विनाशक हैं, वे स्वयं साक्षात् भगवान् गणेश, देवताओंके पूज्य भगवान् कार्तिकेय—ये सब मेरे घर आये हैं। देवताओंकी पूजनीया परात्परा सर्वश्रेष्ठा महालक्ष्मीने भी मेरे गृहमें पदार्पण किया है। जो लोकोंकी आदिरूपिणी, सर्वशक्तिस्वरूपा, मूलप्रकृति, ईश्वरी, परात्परोंमें भी परमश्रेष्ठ और परब्रह्मस्वरूपिणी हैं; शरत्कालमें भक्तिपूर्वक जिनके चरणोंकी समाराधना करके मनुष्य अपना अभीष्ट सिद्ध कर लेता है; जो परमाद्या, कृपामयी और कृपापरवश हो भारत-भूमिपर आविर्भूत हुई हैं; उन भक्तवत्सला साक्षात् माता पार्वतीका सम्पूर्ण देवताओं और गणोंके साथ मेरे मन्दिरमें शुभागमन हुआ है। दुर्गे! चूँकि आप मेरे घर पधारी हैं, अतः मैं धन्य और कृतार्थ हो गया। मेरा जीवन सफल हो गया।

इस प्रकार वसुदेवजीने गलेमें वस्त्र बाँधकर हर्षपूर्वक क्रमशः परस्पर सभी देवों, मुनिवरों और विप्रोंकी स्तुति की और उन्हें पृथक्-पृथक् श्रेष्ठ रत्नसिंहासनोंपर बैठाया। फिर क्रमशः अलग-अलग उनकी विधिवत् पूजा की। तत्पश्चात् भक्तिभावित हृदयसे रत्न, मूँगा, मणि, मोती, माणिक्य, हीरा, भूषण, वस्त्र, सुगन्धित चन्दन और पुष्पमालाओंद्वारा ब्रह्मा आदि देवताओं, मुनिसमूहों, ब्राह्मणों और पुरोहित गर्गजीका एक-एक करके वरण किया। तदनन्तर उस शुभ कर्मके अवसरपर सभीके मध्यभागमें स्थित एक रमणीय रत्नसिंहासनपर गणेशजीका पूजाके लिये वरण किया और जिसमें सात तीर्थोंका जल, पुष्प-चन्दनयुक्त शीतल, सुवासित स्वर्गगङ्गाका जल, पुष्करका पुण्यमय जल और समुद्रका जल भरा था, उस सुवर्णकलशसे तथा शुद्ध पञ्चामृत और पञ्चगव्यसे भक्तिभावसहित मन्त्रोच्चारणपूर्वक गणेशको स्नान कराया। फिर अग्निशुद्ध वस्त्र, रत्नोंके आभूषण, पारिजातपुष्पोंकी माला, गन्ध, चन्दन, पुष्प, रत्नोंकी माला और अंगूठी निवेदित की। नारद! तत्पश्चात् जो समस्त देवताओंके अधिपति, शुभकारक, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, ऐश्वर्यशाली और सनातन हैं; उन पार्वतीनन्दन गणेशकी वसुदेवजीने स्तुति की। (अध्याय ९९)

अदिति आदि देवियोंद्वारा पार्वतीका स्वागत-सत्कार, वसुदेवजीका देव-पूजन आदि माङ्गलिक कार्य करके बलराम और श्रीकृष्णका उपनयन करना, तत्पश्चात् नन्द आदि समागत अभ्यागतोंकी विदाई और वसुदेव-देवकीका अनेकविध वस्तुओंका दान करना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर अदिति, दिति, देवकी, रोहिणी, रति, सरस्वती, पतिव्रता यशोदा, लोपामुद्रा, अरुन्धती, अहल्या तथा तारका—ये सभी महिलाएँ पार्वतीको देखकर तुरंत ही मन्दिरसे बाहर निकलीं और बारंबार आलिङ्गन करके उन्हें नमस्कार करने लगीं। तत्पश्चात् परस्पर वार्तालाप करके उन्हें एक रत्ननिर्मित महलमें प्रवेश कराया। वहाँ उन परमेश्वरीको रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठाया गया और वस्त्र, रत्नोंके आभूषणों तथा पुष्पमालाओंसे उनकी पूजा की गयी। तत्पश्चात् देवकीने भक्तिपूर्वक उनके चरणकमलोंमें इन्द्रद्वारा लाया गया पारिजातका मनोहर पुष्प निवेदन किया। फिर माँगमें सिन्दूरकी बेंदी और ललाटपर चन्दनका बिन्दु लगाकर उन दोनों बिन्दुओंके चारों ओर कस्तूरी और कुङ्कुम आदिका लेप किया। तत्पश्चात् मिष्टान्न भोजन कराया, सुवासित शीतल जल पीनेको दिया और कपूर आदिसे सुवासित सुन्दर एवं श्रेष्ठ पानका बीड़ा समर्पित किया। उनके दोनों चरणकमलोंके नखोंपर अलक्तक लगाकर पैरोंको कुङ्कुमसे रँग दिया और श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा की। उत्तम व्रतका पालन करनेवाले नारद! इस प्रकार पार्वतीदेवीका भलीभाँति पूजन करके वसुदेवजीकी प्रियतमा देवकीने क्रमशः मुनिपत्नियों, पति-पुत्रवती सतियों, राजकन्याओं, देवकन्याओं, सौन्दर्यशालिनी नाग-कन्याओं, मुनिकन्याओं और भाई-बन्धुओंकी कन्याओंका भी विधिवत् पूजन किया। कौतुकवश नाना प्रकारके सुन्दर बाजे बजवाये; माङ्गलिक कार्य कराया; ब्राह्मणोंको जिमाया; मथुराकी ग्रामदेवता भैरवी और मङ्गलचण्डिका षष्ठीकी षोडशोपचारद्वारा पूजा की। पुण्यकारक एवं मङ्गलमय शुद्ध स्वस्त्ययन तथा वेदोंका पाठ कराया। तदनन्तर पुत्रवत्सला देवकीने स्वर्गगङ्गाके उत्तम जलसे परिपूर्ण सुवर्णकलशसे बलरामसहित श्रीकृष्णको नहलाया और वस्त्र, चन्दन, माला तथा बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए मनोहर आभूषणोंसे उन दोनों बालकोंका शृङ्गार किया। नारद! यों माताद्वारा दिये गये आभूषणोंसे विभूषित हो बलराम और श्रीकृष्ण देवताओं और मुनिवरोंकी उस सभामें आये। उन जगदीश्वरको आये हुए देखकर स्वयं ब्रह्मा, शम्भु, शेषनाग, धर्म और सूर्य आदि सभी सभासद् बड़ी उतावलीके साथ अपने-अपने आसनोंसे उठकर खड़े हो गये। फिर

देवगण, मुनिगण, कार्तिकेय, गणेश, भगवान् ब्रह्मा, शिव और अनन्त आदिने पृथक्-पृथक्

परमेश्वर श्रीकृष्णकी स्तुति की।

मुने! इस प्रकार जब देवताओं और मुनियोंने मन-ही-मन श्रीकृष्णकी स्तुति करके विराम लिया, तब आँगनमें पीले वस्त्रसे सुशोभित श्रीकृष्णको देखा। उस समय उनकी वैसी ही शोभा हो रही थी, जैसी मालतीकी मालासे सुशोभित बकपङ्क्ति तथा बिजलीसे युक्त नूतन मेघकी होती है। उनके ललाटपर कस्तूरीयुक्त चन्दनका मण्डलाकार तिलक बादलमें छिपे हुए कलङ्कयुक्त चन्द्रमाके समान सुशोभित हो रहा था। उनके दो भुजाएँ थीं। उन राधाकान्तका शरीर श्याम, कमनीय और मनोहर था। उनके प्रसन्नमुखपर मन्द मुस्कानकी छटा थी। वे भक्तानुग्रह-मूर्ति तथा रत्नोंके बाजूबंद, कङ्कण और करधनीसे सुशोभित थे और बलरामसहित पिताकी गोदमें विराज रहे थे। तदनन्तर मनोरम शुभलग्नके आनेपर जब कि लग्नेश उच्च स्थानमें स्थित था, उसपर सौम्य ग्रहोंकी दृष्टि पड़ रही थी, केवल सद्ग्रह ही उसे देख रहे थे तथा वह असद्ग्रहोंकी दृष्टिसे परे था। ऐसे मङ्गल-कालमें देवताओं और ब्राह्मणोंकी आज्ञासे वसुदेवजीने स्वस्तिवाचनपूर्वक शुभकर्म आरम्भ किया। उस समय उन्होंने ब्राह्मणको आदरसहित सौ मोहरें दान देकर देवगण, मुनिगण, पुरोहित गर्गजी, गणेश, सूर्य, अग्नि, शंकर और पार्वतीको नमस्कार किया। फिर उस देवसमाजमें छः प्रधान देवताओंकी भक्तिपूर्वक अक्षतसहित षोडशोपचारद्वारा पूजा करके वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक पुत्रका अधिवासन (सुगन्धित पदार्थका अनुलेप अर्थात् हरिद्राकर्म) किया। फिर अनेकानेक देवताओं, दिक्पालों और नवग्रहोंका भलीभाँति पूजन करके षोडश मातृकाओंको भक्तिपूर्वक पञ्चोपचार समर्पित किया। घीसे सात बार वसुधारा दिया। पुनः चेदिराज वसुका पूजन-नमस्कार करके वे आगे बढ़े और वृद्धिश्राद्धको समाप्त करके जो कुछ अन्य देवसम्बन्धी कार्य था; उसे सम्पन्न किया। इसके बाद वेदोक्त यज्ञ करके हर्षपूर्वक अग्रज बलदेव और परमात्मा श्रीकृष्णको यज्ञसूत्र (जनेऊ) पहनाया। मुनिवर सांदीपनिने उन दोनोंको गायत्री-मन्त्र प्रदान किया। पहले-पहल पार्वतीने बड़े आदरके साथ बहुमूल्य रत्नद्वारा निर्मित पात्रमें रखे हुए मोती, माणिक्य और हीरोंको भिक्षारूपमें समर्पित किया। पिता वसुदेवजीने हीरेका बना हुआ हार देकर श्वेत पुष्प और दूर्वाङ्कुरद्वारा शुभाशीर्वाद प्रदान किया। तत्पश्चात् अदिति, दिति, मुनिपत्नियाँ, देवकी, यशोदा, रोहिणी, सावित्री और सरस्वती—इन सभीने हर्षपूर्वक अलग-अलग मणि और सुवर्णसे भूषित भिक्षा प्रदान की। इसके बाद जिनके नेत्र स्निग्ध थे और मुखपर मुस्कानकी छटा छा रही थी; वे देवकन्याएँ, नागकन्याएँ, राजकन्याएँ, पतिव्रताएँ, भाई-बन्धुओंकी स्त्रियाँ, इन्द्राणी, वरुणानी, पवन-पत्नी, रोहिणी, कुबेर-पत्नी, स्वाहा और कामदेवकी प्रियतमा रति—इन लोगोंने पृथक्-पृथक् रत्नाभरणोंसे विभूषित भिक्षा दी। तब बलरामसहित भगवान् श्रीकृष्णने भक्तिपूर्वक भिक्षा ग्रहण करके उसका कुछ भाग पुरोहित गर्गजीको तथा कुछ भाग अपने गुरु सांदीपनि मुनिको दे दिया। फिर वैदिक कर्म समाप्त करके गर्गजीको दक्षिणा दी गयी। आदरपूर्वक देवताओं और ब्राह्मणोंको भी भोजन कराया गया। तदनन्तर उस यज्ञमें जो-जो लोग आये थे, वे सभी बलदेव और श्रीकृष्णको शुभाशीर्वाद देकर प्रसन्नमनसे अपने-अपने गृहको लौट गये। तब पत्नीसहित नन्द पुत्रके उस शुभकर्मको समाप्त करके बलराम और श्रीकृष्णको गोदमें लेकर उन दोनोंका मुख चूमने लगे। उस समय नन्द और पतिव्रता यशोदा उच्चस्वरसे रो पड़ीं, तब श्रीकृष्णने बड़े यत्नसे उन्हें आश्वासन देकर समझाते हुए कहा।

श्रीकृष्ण बोले—तात! तुम मेरे परमार्थतः पिता हो और हे माता यशोदा! तुम्हीं मेरी पालन-

पोषण करनेवाली माता हो। अब तुम लोग आनन्दपूर्वक शीघ्र ही व्रजको लौट जाओ। पिताजी! इस समय मैं बलरामजीके साथ वेदाध्ययन करनेके लिये मुनिवर सांदीपनिके निवासस्थान अवन्तिनगरको जाऊँगा। चिरकालके बाद वहाँसे लौटनेपर पुन: आपके दर्शन होंगे। माताजी! काल ही ग्रहण करता है और वही भेद उत्पन्न करता है। यहाँतक कि मनुष्योंके जो वियोग, मिलन, सुख, दु:ख, शोक और मङ्गल आदि हैं; उन सबका कर्ता काल ही है। मैंने जो तत्त्व पिताजीको बतलाया है, वह योगियोंके लिये भी दुर्लभ है। वे आनन्दपूर्वक वह सारा रहस्य तुम्हें बतलायेंगे। इतना कहकर जगदीश्वर श्रीकृष्ण वसुदेवजीकी सभामें चले गये और क्षणभर वहाँ ठहरकर पिताकी आज्ञासे महर्षि सांदीपनिके आश्रमको प्रस्थित हुए।

तदनन्तर यशोदासहित नन्दजी विनयपूर्वक वसुदेव-देवकीसे वार्तालाप करके दु:खी हृदयसे जानेको उद्यत हुए। उस समय देवकीने नन्दजीको मुक्तामणि, सुवर्ण, माणिक्य, हीरा, रत्न और अग्निशुद्ध वस्त्र भेंट किये। वसुदेवजी और श्रीकृष्णने उन्हें आदरपूर्वक श्वेत अश्व, गजराज, सुवर्ण और उत्तम रथ प्रदान किये। फिर नन्द-यशोदाके चलनेपर बहुत-से ब्राह्मण, देवकी आदि प्रमुख महिलाएँ, वसुदेव, अक्रूर और उद्धव भी हर्षपूर्वक उनके पीछे-पीछे चले। यमुनाके निकट पहुँचकर वे सभी शोकके कारण रोने लगे। फिर परस्पर वार्तालाप करके वे सब-के-सब अपने-अपने घरको चले गये। मुने! तदनन्तर विधवा कुन्ती तरह-तरहके रत्नों और मणियोंको भेंट पाकर वसुदेवजीकी आज्ञासे पुत्रोंसहित आनन्दपूर्वक अपने गृहको प्रस्थित हुईं। इधर वसुदेव और देवकीने पुत्रके कल्याणके लिये अनेक प्रकारके रत्न, मणि, वस्त्र, सोना, चाँदी, मोतियों और हीरोंके हार और अमृत-तुल्य मिष्टान्न भट्ट ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक हर्षपूर्ण मनसे समर्पित किये। फिर यत्नपूर्वक महोत्सव मनाया गया; जिसमें वेद-पाठ, हरिनाम-संकीर्तन और ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। इसके बाद जाति-भाइयोंको यथोचित रूपसे मनोहर मणि, माणिक्य, मोती और वस्त्र पुरस्काररूपमें दिये।

(अध्याय १००-१०१)

बलरामसहित श्रीकृष्णका विद्या पढ़नेके लिये महर्षि सांदीपनिके निकट जाना, गुरु और गुरुपत्नीद्वारा उनका स्वागत और विद्याध्ययनके पश्चात् गुरुदक्षिणारूपमें गुरुके मृतक पुत्रको उन्हें वापस देकर घर लौटना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! श्रीकृष्णने बलरामके साथ हर्षपूर्वक सांदीपनिके गृह जाकर अपने उन गुरुदेव तथा पतिव्रता गुरुपत्नीको नमस्कार किया और उन्हें भेंटरूपमें रत्न एवं मणि समर्पित की। तत्पश्चात् उनसे शुभाशीर्वाद लेकर वे श्रीहरि उन गुरुदेवसे यथोचित वचन बोले।

श्रीकृष्णने कहा—विप्रवर! आपसे अपनी अभीष्ट विद्या प्राप्त करूँगा—ऐसी मेरी लालसा है; अत: शुभ मुहूर्त निश्चय करके मुझे यथोचितरूपसे विद्याध्ययन कराइये। तब 'ॐ—बहुत अच्छा'—यों कहकर मुनिवर सांदीपनिने हर्षपूर्वक मधुपर्कप्राशन, गौ, वस्त्र और चन्दनद्वारा उनका आदर-सत्कार किया, मिष्टान्न भोजन कराया, सुवासित पानका बीड़ा दिया, मधुर वार्तालाप किया और उन परमेश्वरका स्तवन करते हुए कहा।

सांदीपनि बोले—भक्तोंके प्राणवल्लभ! तुम परब्रह्म, परमधाम, परमेश्वर, परात्पर, स्वेच्छामय, स्वयंज्योति, निर्लिप्त, अद्वितीय, निरङ्कुश, भक्तोंके

एकमात्र स्वामी, भक्तोंके इष्टदेव, भक्तानुग्रहमूर्ति और भक्तोंका मनोरथ पूर्ण करनेके लिये कल्पवृक्ष हो। ब्रह्मा, शिव और शेष तुम्हारी वन्दना करते हैं। तुम पृथ्वीका भार हरण करनेके लिये इस भूतलपर मायावश बालरूपमें अवतीर्ण हुए हो और मायासे ही भूपाल बने हो। योगीलोग जिसे सनातन ब्रह्मज्योति जानते हैं, भक्तगण अपने हृदयमें जिस ज्योतिका हर्षपूर्वक ध्यान करते हैं, जिनके दो भुजाएँ हैं, हाथमें मुरली सुशोभित है, सर्वाङ्गमें चन्दनका अनुलेप लगा हुआ है, जिनका सुन्दर श्याम रूप है, जो मन्द मुस्कानयुक्त, भक्तवत्सल, पीताम्बरधारी, वनमाला-विभूषित और लीला-कटाक्षोंसे कामदेवको उपहासास्पद एवं मूर्च्छित कर देनेवाले हैं, जिनका चरणकमल अलक्तकके उत्पत्तिस्थानकी भाँति अत्यन्त शोभायमान है और शरीर कौस्तुभमणिसे उद्भासित हो रहा है, जिनकी मनोहर दिव्य मूर्ति है, जो हर्षवश मन्द-मन्द मुस्करा रहे हैं, जिनका सुन्दर वेश है, देवगण जिनकी स्तुति करते हैं, जो देवोंके देव, जगदीश्वर, त्रिलोकीको मोहित करनेवाले, सर्वश्रेष्ठ, करोड़ों कामदेवोंकी-सी कान्तिवाले, कमनीय, ईश्वररहित (स्वयं ईश्वर), अमूल्य रत्नोंके बने हुए भूषणोंसे विभूषित, श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, वरदाता, वरदाताओंके इष्टदेव और चारों वेदों तथा कारणोंके भी कारण हैं; वही तुम लीलावश पढ़नेके लिये मेरे प्रिय स्थानपर आये हो। तुम तो स्वात्मामें रमण करनेवाले, सर्वव्यापी एवं परिपूर्णतम हो; अतः तुम्हारे विद्याध्ययन, रमण, गमन और युद्ध आदि सभी कार्य लोक-शिक्षाके लिये हैं।

तत्पश्चात् गुरुपत्नी बोलीं—प्रभो! आज मेरा जन्म, जीवन, पातिव्रत्य तथा तपोवनका वास सफल हो गया। मैंने जिस हाथसे तुम्हें ईप्सित अन्न प्रदान किया है, वह मेरा दाहिना हाथ सफल हो गया। जो आश्रम तीर्थपाद भगवान्‌के चरणसे चिह्नित है; वह तीर्थसे भी बढ़कर है। उनकी चरणरजसे गृह पावन और आँगन उत्तम हो जाते हैं। तुम्हारा चरणकमल हम दोनोंके जन्म-मरणका निवारक है; क्योंकि दुःख, शोक, भोग, रोग, जन्म, कर्म, भूख-प्यास आदि तभीतक कष्टप्रद होते हैं, जबतक तुम्हारे चरण-कमलका दर्शन और भजन नहीं होता*। हे भगवन्! तुम कालके भी काल, सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और संहारकारक शिवके भी ईश्वर तथा माया-मोहके विनाशक हो। कृपानाथ! मुझपर कृपा करो। इतना कहते-कहते गुरुपत्नीके नेत्रोंमें आँसू छलक आये। वे पुनः श्रीकृष्णको अपनी गोदमें लेकर प्रेमपूर्वक देवकीकी तरह अपना स्तन पिलाने लगीं।

तब श्रीकृष्णने कहा—माता! तुम मुझ बालककी स्तुति कैसे कर रही हो; क्योंकि मैं तो तुम्हारा दुधमुँहा बच्चा हूँ। अच्छा, अब तुम इस प्राकृतिक मिथ्या नश्वर शरीरको त्यागकर और जन्म, मृत्यु एवं बुढ़ापेका हरण करनेवाले निर्मल देहको धारण करके अपने पतिदेवके साथ अभीष्ट गोलोकको जाओ।

यों कहकर श्रीकृष्णने एक ही महीनेमें परम भक्तिके साथ मुनिवर सांदीपनिसे चारों वेदोंका अध्ययन करके पूर्वकालमें मरे हुए उनके पुत्रको वापस लाकर उन्हें समर्पित कर दिया। फिर लाखों-लाखों मणि, रत्न, हीरे, मोती, माणिक्य, त्रैलोक्यदुर्लभ वस्त्र, हार, अँगूठियाँ और सोनेकी मुहरें दक्षिणामें दीं। तत्पश्चात् स्त्रीके सर्वाङ्गमें पहननेयोग्य अमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषण और अग्निशुद्ध श्रेष्ठ वस्त्र गुरुपत्नीको प्रदान किये।

* तावद् दुःखं च शोकश्च तावद् भोगश्च रोगकः। तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च॥
यावत्त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम्॥ (१२०। १९-२०)

तदनन्तर मुनि वह सब सामान अपने पुत्रको देकर

स्वयं पत्नीके साथ अमूल्य रत्न-निर्मित रथपर सवार हो उत्तम गोलोकको चले गये। उस अद्भुत दृश्यको देखकर श्रीकृष्ण हर्षपूर्वक अपने गृहको लौट गये। नारद! इस प्रकार ब्रह्मण्यदेव भगवान् श्रीकृष्णके चरित्रको श्रवण करो। यह स्तोत्र महान् पुण्यदायक है। जो मनुष्य भक्तिपूर्वक इसका पाठ करता है, उसको निःसंदेह श्रीकृष्णमें निश्चल भक्ति हो जाती है। इसके प्रभावसे कीर्तिहीन परम यशस्वी और मूर्ख पण्डित हो जाता है। वह इस लोकमें सुख भोगकर अन्तमें श्रीहरिके पदको प्राप्त होता है। वहाँ उसे नित्य श्रीहरिकी दासता सुलभ रहती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है।

(अध्याय १०२)

द्वारकापुरीका निर्माण, उसे देखनेके लिये देवताओं और मुनियोंका आना और उग्रसेनका राज्याभिषेक

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर सर्वव्यापी श्रीहरिने बलरामके साथ मथुरापुरीमें आकर पिताको प्रणाम किया और वटवृक्षके नीचे बैठकर आदरसहित गरुड, क्षीरसागर और विश्वकर्माका स्मरण किया। वहाँ उन्होंने गोपवेषका परित्याग करके राजसी वेष धारण कर लिया। इसी बीच करोड़ों सूर्योंके समान प्रकाशमान श्रेष्ठ सुदर्शनचक्र स्वयं ही श्रीकृष्णके पास आया। वह उत्तम अस्त्र श्रीहरिके सदृश तेजस्वी, शत्रुनाशक, अमोघ, अस्त्रोंमें श्रेष्ठ और परमोत्कृष्ट था। इसके बाद रत्ननिर्मित विमानको आगे करके गरुड, शिष्यसहित विश्वकर्मा तथा काँपता हुआ समुद्र श्रीहरिके संनिकट आये। उन सब लोगोंने भक्तिपूर्वक सिर झुकाकर श्रीहरिको प्रणाम किया। तब सर्वव्यापी भगवान् क्रमशः उससे आदरसहित मुस्कराते हुए बोले।

श्रीकृष्णने कहा—हे महाभाग समुद्र! मैं नगर-निर्माण करना चाहता हूँ; अतः उसके लिये तुम मुझे सौ योजन विस्तृत भूमि दो। पीछे वह भूमि मैं तुम्हें अवश्य ही लौटा दूँगा। हे विश्वकर्मा! उस स्थानपर तुम एक ऐसा नगर-निर्माण करो; जो तीनों लोकोंमें दुर्लभ हो, सबके लिये रमणीय हो, स्त्रियोंके मनको हरण करनेवाला हो, भक्तोंके लिये वाञ्छनीय हो, वैकुण्ठके समान परमोत्कृष्ट हो, समस्त स्वर्गोंसे परे और सबके लिये अभीष्ट हो। आकाशचारियोंमें श्रेष्ठ महाभाग गरुड! जबतक विश्वकर्मा द्वारकापुरीका निर्माण करते हैं, तबतक तुम रात-दिन इनके पास स्थित रहो। चक्रश्रेष्ठ सुदर्शन! तुम दिन-रात मेरे पार्श्वमें वर्तमान रहो। मुने! तब चक्रके अतिरिक्त और सभी लोग 'ॐ—बहुत अच्छा' यों कहकर चले गये। महाभाग! इधर श्रीकृष्णने नगरमें आकर कंसके पिता महाबली एवं सर्वोत्तम उग्रसेनको क्षत्रियों तथा सत्पुरुषोंका भी राजा बना दिया। फिर युक्तिपूर्वक जरासंधको जीतकर कालयवनको

मरवा डाला। इसके बाद नगर-निर्माणका क्रम चालू किया।

श्रीभगवान्ने कहा—विश्वकर्मन्! तुम पद्मराग, मरकत, सर्वश्रेष्ठ इन्द्रनील, मनोहर पारिभद्र, पलंक, स्यमन्तक, गन्धक, गालिम, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिककी रची हुई पुत्तलियों, पीली-श्याम-श्वेत और नीली मणियों, दाड़िमी-बीजके सदृश पीली गोरोचना, पद्म-बीजके सदृश, नीले कमलके-से रंगवाली, कज्जलके-से आकारवाली, उज्ज्वल, परिष्कृत, श्वेत चम्पकके सदृश कान्तिमती, तपाये हुए स्वर्णकी-सी चमकीली, स्वर्णके मूल्यसे सौगुनी अधिक मूल्यवाली, थोड़ी-थोड़ी लाल, परम सुन्दर, वजनदार, सर्वोत्तम और पूजनीय उत्तम मणियोंद्वारा वास्तु-शास्त्रके विधानानुसार यथायोग्य घटा-बढ़ाकर एक ऐसे मनोवाञ्छित परम मनोहर नगरकी रचना करो, जो सौ योजनके विस्तारवाला हो। जबतक तुम नगरका निर्माण करोगे, तबतक यक्षगण हिमालयसे रात-दिन मणियोंको लाते रहेंगे। कुबेरकी प्रेरणासे आये हुए सात लाख यक्ष, शंकरद्वारा भेजे हुए एक लाख बेताल और एक लाख कूष्माण्ड तथा गिरिराजनन्दिनीद्वारा नियुक्त किये हुए दानव और ब्रह्मराक्षस तुम्हारे सहायक बने रहेंगे। मेरी सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियोंके लिये ऐसे दिव्य शिविर तैयार करो, जो खाइयोंसे युक्त तथा ऊँची-ऊँची चहारदीवारियोंसे परिवेष्टित हों। जिनमें प्रत्येकमें बारह कमरे और सिंहद्वार लगे हों, जो चित्र-विचित्र कृत्रिम किवाड़ोंसे युक्त हों; निषिद्ध वृक्षोंसे रहित और प्रसिद्ध वृक्षोंसे सम्पन्न हों और जिनके आँगन शुभ लक्षणयुक्त और चन्द्रवेध हों। इसी प्रकार यदुवंशियों और नौकरोंके लिये भी दिव्य आश्रम बनाओ। भूपाल उग्रसेनका भवन सर्वप्रसिद्ध तथा मेरे पिता वसुदेवजीका आश्रम सर्वतोभद्र होना चाहिये।

तब विश्वकर्मा बोले—जगद्गुरो! वे प्रशस्त वृक्ष कौन-कौन हैं और कौन निषिद्ध हैं तथा शुभ-अशुभ प्रदान करनेवाले कौन हैं? उन सबका परिचय दीजिये। प्रभो! साथ ही यह भी बतलाइये कि किनकी अस्थि पड़नेसे शिविर शुभ और किनकी अस्थिसे अशुभ होता है? शिविरकी किस दिशामें जल मङ्गलकारक और किस दिशामें अमाङ्गलिक होता है? और कौन वृक्ष किस दिशामें कल्याणप्रद होता है? सुरेश्वर! गृहों तथा आँगनोंका विस्तार कितना होना चाहिये? किस दिशामें पुष्पोद्यान मङ्गलप्रद होता है? सुरेश्वर! परकोटों, खाइयों, दरवाजों, गृहों और चहारदीवारियोंका क्या प्रमाण है? प्रभो! शिविर-निर्माणमें किस-किस वृक्षकी लकड़ी प्रशस्त मानी गयी है और किन वृक्षोंके काष्ठ अमङ्गलजनक होते हैं? यह सब मुझे बतलानेकी कृपा कीजिये।

श्रीभगवान्ने कहा—देवशिल्पिन्! गृहस्थोंके आश्रममें नारियलका वृक्ष धन प्रदान करनेवाला होता है। वही वृक्ष यदि शिविरके ईशानकोण अथवा पूर्व दिशामें हो तो पुत्रप्रद होता है। वह मनोहर वृक्षराज सर्वत्र मङ्गलका दाता होता है। यदि पूर्व दिशामें आमका वृक्ष हो तो वह मनुष्योंको सम्पत्ति प्रदान करता है और सर्वत्र शुभदायक होता है। बेल, कटहल, जम्बीरी नीबू तथा बेरके वृक्ष पूर्व दिशामें संतानदायक, दक्षिणमें धनदाता तथा सर्वत्र सम्पत्तिप्रद होते हैं। इनसे गृहस्थकी उन्नति होती है। जामुन, अनार, केला तथा आमलाके वृक्ष पूर्वमें बन्धुप्रद तथा दक्षिणमें मित्रकी वृद्धि करनेवाले होते हैं और सर्वत्र शुभदायक होते हैं। सुवाक दक्षिणमें धन-पुत्र-शुभप्रद, पश्चिममें हर्षदायक और ईशानकोणमें तथा सर्वत्र सुखद होता है। भूतलपर चम्पाका वृक्ष शुद्ध तथा सर्वत्र मङ्गलकारक होता है। लौकी, कुम्हड़ा, आयाम्बु, पलाश, खजूर और कर्कटीके वृक्ष शिविरमें मङ्गलप्रद होते हैं। विश्वकर्मन्! बेल और बैंगनके पौधे भी शुभदायक

होते हैं। सारी फलवती लताएँ निश्चय ही सर्वत्र शुभदायिनी होती हैं। शिल्पिन्! इस प्रकार प्रशस्त वृक्षोंका वर्णन कर दिया गया; अब निषिद्धका वर्णन सुनो।

नगर अथवा शिविरमें वन्यवृक्षका रहना निषिद्ध है। शिविरमें वटवृक्षका रहना ठीक नहीं है; क्योंकि उससे सदा चोरका भय लगा रहता है, किंतु नगरोंमें उसका रहना उत्तम है; क्योंकि उसके दर्शनसे पुण्य होता है। नगर, गाँव और शिविरमें सेमलके वृक्षका रहना सर्वथा निषिद्ध है। वह सदा राजाओंको दुःख देता रहता है। हे देवशिल्पी! इमलीका वृक्ष नगरों और गाँवोंमें तो प्रशस्त है; परंतु शिविरमें उसका रहना ठीक नहीं है। वह विद्या-बुद्धिका विनाशक तथा सदा दुःखदायक होता है। उससे निश्चय ही प्रजा और धनकी हानि होती है; अतः विद्वान्‌को उचित है कि यत्नपूर्वक उसका परित्याग कर दे। खजूर और काँटेदार वृक्ष भी शिविरमें नहीं रहने चाहिये; क्योंकि ये विद्या और बुद्धिको नष्ट कर देनेवाले होते हैं; अतः उनसे दूर रहना ही ठीक है। गाँवों और नगरोंमें चना आदि अन्नोंके पेड़ मङ्गलप्रद होते हैं। गाँव, नगर तथा शिविरमें गन्नेका वृक्ष सदा शुभदायक होता है। अशोक, सिरिस और कदम्ब शुभप्रद होते हैं। हल्दी, अदरक, हरीतकी और आमलकी—ये गाँवों तथा नगरोंमें सदा शुभदायिनी तथा कल्याणकारिणी होती हैं।

वास्तुभूमिमें स्थापन करनेवालोंके लिये गजकी अस्थि शुभदायिनी और उच्चैःश्रवाके वंशज घोड़ोंकी हड्डी कल्याणकारिणी होती है। इनके अतिरिक्त अन्य पशुओंकी अस्थि शुभकारक नहीं होती; वह विनाशका कारण होती है। वानरों, मनुष्यों, गदहों, गौओं, कुत्तों, सियारों और बिलावोंकी हड्डी अमङ्गलकारिणी होती है। शिविरके पूर्व, पश्चिम, उत्तर और ईशानकोणमें जलका रहना उत्तम है। इनके अतिरिक्त अन्य दिशाओंमें अशुभ होता है। शिल्पिन्! बुद्धिमान् पुरुषको चाहिये कि जिसकी लंबाई-चौड़ाई समान हो, ऐसा घर न बनावे; क्योंकि चौकोर गृहमें वास करना गृहस्थोंके धनका नाशक होता है। घरकी परिमित लंबाई-चौड़ाईमें पृथक्-पृथक् दोका भाग देनेसे यदि शेष शून्यरहित हो तो शुभ अन्यथा शून्य शेष आनेपर वह घर मनुष्योंके लिये शून्यप्रद होता है। गृहोंकी चौड़ाईमें पश्चिमसे दो हाथ पूर्व और लंबाईमें दक्षिणसे तीन हाथ हटकर घरका तथा परकोटेका द्वार रखना शुभदायक होता है। मध्यभागमें दरवाजा नहीं बनाना चाहिये; क्योंकि वह कुछ कम-बेशमें ही रखनेपर शुभकारक होता है। चौकोर घर चन्द्रवेध होनेपर मङ्गलप्रद होता है; परंतु मङ्गलप्रद गृह भी सूर्यवेध होनेपर अमङ्गलकारक हो जाता है। उसी प्रकार सूर्यवेध आँगन भी अमङ्गलदायक होता है। घरके भीतर लगायी हुई तुलसी मनुष्योंके लिये कल्याणकारिणी, धन-पुत्र प्रदान करनेवाली, पुण्यदायिनी तथा हरिभक्ति देनेवाली होती है। प्रातःकाल तुलसीका दर्शन करनेसे सुवर्ण-दानका फल प्राप्त होता है। मकानके पूर्व और दक्षिणभागमें मालती, जूही, कुन्द, माधवी, केतकी, नागेश्वर, मल्लिका (मोतिया), काञ्चन (श्याम धतूर), मौलसिरी और शुभदायिनी अपराजिता (विष्णुकान्ता)—इन पुष्पोंका उद्यान शुभद होता है; इसमें तनिक भी संशय नहीं है। गृहस्थको सोलह हाथसे ऊँचा गृह नहीं बनवाना चाहिये। इसी तरह बीस हाथसे ऊँचा परकोटा भी शुभप्रद नहीं होता। बुद्धिमान् पुरुषको घरके समीप तथा गाँवके बीचमें बढ़ई, तेली और सोनारको नहीं बसाना चाहिये; किंतु मकानके पास-पड़ोसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, सत्शूद्र, ज्योतिषी, भाट, वैद्य और पुष्पकार (माली)-को अवश्य रहने देना चाहिये। शिविरके चारों ओर

सौ हाथ लंबी और दस हाथ गहरी खाई प्रशस्त मानी जाती है। उस खाईका दरवाजा भी ऐसा संकेतयुक्त होना चाहिये, जो शत्रुके लिये अगम्य हो; परंतु मित्र सुखपूर्वक आ-जा सकें। भवन-निर्माणमें सेमल, इमली, हिंताल (एक प्रकारका जंगली खजूर), नीम, सिन्धुवार (निर्गुण्डी), गूलर, धतूरा, बरगद और रेंड—इनके अतिरिक्त अन्य वृक्षोंकी ही लकड़ी काममें लानी चाहिये। वस्तुतस्तु बुद्धिमान्‌को लकड़ी, वज्रहस्त तथा शिला आदिका उपयोग न करना ही उचित है; क्योंकि ये स्त्री, पुत्र और धनके नाशक होते हैं—ऐसा कमलजन्मा ब्रह्माका कथन है। वत्स! यह सब मैंने लोक-शिक्षाके लिये कहा है। अब तुम सुखपूर्वक जाओ और बिना काष्ठके ही पुरीका निर्माण करो; क्योंकि उसके लिये यही शुभ मुहूर्त है।

तब विश्वकर्मा गरुड़के साथ श्रीहरिको नमस्कार करके वहाँसे चल दिये और समुद्र-तटपर मनोहर वटवृक्षके नीचे आकर उन्होंने गरुड़के साथ वहाँ रात्रिमें शयन किया। मुने! स्वप्नमें गरुड़को वह रमणीय द्वारकापुरी दिखायी पड़ी। परमात्मा श्रीकृष्णने विश्वकर्मासे जो कुछ कहा था, वे सारे-के-सारे लक्षण उन्हें उस नगरमें दृष्टिगोचर हुए। स्वप्नमें वे सभी कारीगर विश्वकर्माकी और दूसरे बलवान् गरुड़ पक्षी गरुड़की हँसी उड़ा रहे थे। जागनेपर उस पुरीको देखकर गरुड़ और विश्वकर्मा लज्जित हो गये। वह द्वारकापुरी अत्यन्त रमणीय थी और सौ योजनमें उसका विस्तार था। वह ब्रह्मा आदि देवताओंकी पुरियोंको पराभूत करके सुशोभित हो रही थी; उसमें रत्नोंकी कारीगरी की गयी थी, जिसके कारण उसके तेजसे सूर्य ढक गये थे।

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! इसी समय ब्रह्मा, हर, पार्वती, अनन्त, धर्म, सूर्य, अग्नि, कुबेर, वरुण, वायु, यम, महेन्द्र, चन्द्र, रुद्र, आदित्य, वसु, दैत्य, गन्धर्व, किंनर आदि सब द्वारकापुरी देखने आये। आकाश दर्शनार्थियोंके विमानोंसे छा गया। सबने मनोहर रत्नमयी शोभायुक्त दिव्य द्वारकाको देखा। वहाँ भगवान्‌के स्मरण करते ही वसुदेव, देवकी, उग्रसेन, पाण्डवगण, नन्द, यशोदा, गोप-गोपी, विभिन्न देशोंके राजा, संन्यासी, यति, अवधूत और ब्रह्मचारी आ गये। पञ्चवर्षीय दिगम्बर चारों सनकादि मुनि, दुर्वासा, कश्यप, वाल्मीकि, गौतम, बृहस्पति, शुक्र, भरद्वाज, अङ्गिरा, प्रचेता, पुलस्त्य, अगस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, मरीचि, शतानन्द, ऋष्यशृंग, विभाण्डक, पाणिनि, कात्यायन, याज्ञवल्क्य, शुक, पराशर, च्यवन, गर्ग, सौभरि, गालव, लोमश, मार्कण्डेय, वामदेव, जैगीषव्य, सांदीपनि, वोढु, पञ्चशिख, मैं (नारायण), नर, विश्वामित्र, जरत्कारु, आस्तीक, परशुराम, वात्स्य, संवर्त, उतथ्य, जैमिनि, पैल, सुमन्त, व्यास, कपिल, शृंगी, उपमन्यु, गौरमुख, कण्व, द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि अपने असंख्य शिष्योंसहित पधारे; तथा भीष्म, कर्ण, शकुनि, भ्राताओंसहित दुर्योधन आदि सब आये। उग्रसेन आदिने उन सबका स्वागत-सत्कार किया।

देवताओं और मुनियोंका स्वागत-सत्कार करनेपर उन लोगोंने उग्रसेन आदिको विविध उपहार दिये। तदनन्तर ब्राह्मणोंको मणि, रत्न और वस्त्र आदि दान किये गये। उग्रसेनका राज्याभिषेक हुआ और सब लोग परमानन्दित होकर अपने-अपने घर लौटे। (अध्याय १०३-१०४)

भीष्मकद्वारा रुक्मिणीके विवाहका प्रस्ताव, शतानन्दका उन्हें श्रीकृष्णके साथ विवाह करनेकी सम्मति देना, रुक्मीद्वारा उसका विरोध और शिशुपालके साथ विवाह करनेका अनुरोध, भीष्मकका श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य राजाओंको निमन्त्रित करना

श्रीनारायणजी कहते हैं—नारद! विदर्भ देशमें भीष्मक नामके एक राजा राज्य करते थे, जो नारायणके अंशसे उत्पन्न हुए थे। वे विदर्भदेशीय नरेशोंके सम्राट्, महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न, पुण्यात्मा, सत्यवादी, समस्त सम्पत्तियोंके दाता, धर्मिष्ठ, अत्यन्त महिमाशाली, सर्वश्रेष्ठ और समादृत थे। उनके एक कन्या थी, जिसका नाम रुक्मिणी था। वह महालक्ष्मीके अंशसे उत्पन्न थी तथा नारियोंमें श्रेष्ठ, अत्यन्त सौन्दर्यशालिनी, मनोहारिणी और सुन्दरी स्त्रियोंमें पूजनीया थी। उसमें नयी जवानीका उमंग था। वह रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित थी। उसके शरीरकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णकी भाँति उद्दीप्त थी। वह अपने तेजसे प्रकाशित हो रही थी तथा शुद्धसत्त्वस्वरूपा, सत्यशीला, पतिव्रता, शान्त, दमपरायणा और अनन्त गुणोंकी भण्डार थी। वह शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाके सदृश शोभाशालिनी थी। उसके नेत्र शरत्कालीन कमलके-से थे और उसका मुख लज्जासे अवनत रहता था। अपनी उस सुन्दरी युवती कन्याको सहसा विवाहके योग्य देखकर उत्तम व्रतका पालन करनेवाले, धर्मस्वरूप एवं धर्मात्मा राजा भीष्मक चिन्तित हो उठे। तब वे अपने पुत्रों, ब्राह्मणों तथा पुरोहितोंसे विचार-विमर्श करने लगे।

भीष्मक बोले—सभासदो! मेरी यह सुन्दरी कन्या बढ़कर विवाहके योग्य हो गयी है; अतः मैं इसके लिये मुनिपुत्र, देवपुत्र अथवा राजपुत्र—इनमेंसे किसी अभीष्ट उत्तम वरका वरण करना चाहता हूँ। अतः आप लोग किसी ऐसे योग्य वरकी तलाश करो, जो नवयुवक, धर्मात्मा, सत्यसंध, नारायणपरायण, वेद-वेदाङ्गका विशेषज्ञ, पण्डित, सुन्दर, शुभाचारी, शान्त, जितेन्द्रिय, क्षमाशील, गुणी, दीर्घायु, महान् कुलमें उत्पन्न और सर्वत्र प्रतिष्ठित हो।

राजाधिराज भीष्मककी बात सुनकर महर्षि गौतमके पुत्र शतानन्द, जो वेद-वेदाङ्गके पारगामी विद्वान्, यथार्थज्ञानी, प्रवचनकुशल, विद्वान्, धर्मात्मा, कुलपुरोहित, भूतलपर सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता और समस्त कर्मोंमें निष्णात थे, राजासे बोले।

शतानन्दने कहा—राजेन्द्र! तुम तो स्वयं ही धर्मके ज्ञाता तथा धर्मशास्त्रमें निपुण हो; तथापि मैं वेदोक्त प्राचीन इतिहासका वर्णन करता हूँ, सुनो। जो परिपूर्णतम परमेश्वर ब्रह्माके भी विधाता हैं; ब्रह्मा, शिव और शेषद्वारा वन्दित, परमज्योतिःस्वरूप, भक्तानुग्रहमूर्ति, समस्त प्राणियोंके परमात्मा, प्रकृतिसे परे, निर्लिप्त, इच्छारहित और

सबके कर्मोंके साक्षी हैं; वे स्वयं श्रीमान् नारायण पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भूतलपर वसुदेवनन्दनके रूपमें अवतीर्ण हुए हैं। राजेन्द्र! उन परिपूर्णतमको कन्या-दान करके तुम अपनी सौ पीढ़ियोंके साथ गोलोकमें जाओगे। अतः उन्हें कन्या देकर परलोकमें सारूप्य-मुक्ति प्राप्त कर लो और इस लोकमें सर्वपूज्य तथा विश्वके गुरुके गुरु हो जाओ। विभो! सर्वस्व दक्षिणामें देकर महालक्ष्मी-स्वरूपा रुक्मिणीको उन्हें समर्पित कर दो और अपने जन्म-मरणके चक्करको नष्ट कर डालो। राजन्! ब्रह्माने यही सम्बन्ध लिख रखा है और यह सर्वसम्मत भी है; अतः शीघ्र ही द्वारकापुरीमें श्रीकृष्णके पास ब्राह्मण भेजो और जल्दी-से-जल्दी जो सभीको सम्मत हो, ऐसा शुभ मुहूर्त निश्चित करके परमात्मा श्रीकृष्णको—जो भक्तानुग्रह-मूर्ति, ध्यानानुरोधके कारण, नित्यविग्रहधारी और सर्वोत्तम हैं—यहाँ बुलाओ। नरेश! इस प्रकार उनके दर्शन करके अपना आवागमन मिटा डालो। महाराज! जिन्हें चारों वेद, संत, देवगण, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र तथा ब्रह्मा आदि देवता नहीं जान पाते; ध्यानपूत योगीलोग जिनका ध्यान करते हैं; परंतु साक्षात्कार नहीं कर पाते; चारों वेद, छहों शास्त्र और सरस्वती जिनका गुणगान करनेमें जड हो जाती हैं; हजार मुखवाले शेषनाग, पाँच मुखधारी महेश्वर, चार मुखवाले जगत्स्रष्टा ब्रह्मा, कुमार कार्तिकेय, ऋषि, मुनि तथा परम वैष्णव भक्तगण जिनका स्तवन करके पार नहीं पाते; जो योगियोंके लिये ध्यानद्वारा साध्य हैं; उन श्रीकृष्णका गुण मैं बालक होकर किस प्रकार वर्णन कर सकता हूँ?

शतानन्दजीका वचन सुनकर राजाका मुख प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने वेगपूर्वक उठकर शतानन्दजीका आलिङ्गन किया। उस समय राजाके मुखपर प्रसन्नता खेल रही थी; उन्होंने शतानन्दजीको नाना प्रकारके रत्न, सुवर्ण, वस्त्र, रत्ननिर्मित आभूषण, गजराज, श्रेष्ठ अश्व, मणिनिर्मित रथ, रमणीय रत्नसिंहासन, बहुत-सा धन, सम्पूर्ण अन्नोंसे भरी हुई ऐसी उत्तम भूमि, जो बिना जोते अन्न उपजानेवाली तथा सदा वृष्टि करनेवाली थी और सबके द्वारा प्रशंसित गाँव दिये। इसी बीच राजकुमार रुक्मि—जो चञ्चल स्वभाववाला तथा अधर्मी था—कुपित हो उठा। क्रोधावेशमें उसके मुख और नेत्र लाल हो गये तथा उसका शरीर काँपने लगा। वह सभामें उठकर सभी सभासदोंके समक्ष खड़ा हो गया और पिता भीष्मक तथा विप्रवर शतानन्दजीसे बोला।

रुक्मिने कहा—राजेन्द्र! इन भिक्षुकों, लोभियों और क्रोधियोंकी बात छोड़िये तथा मेरा हितकारक, तथ्य एवं प्रशंसनीय वचन सुनिये। महाबाहो! कृष्णने भयवश युक्तिका आश्रय लेकर राजेन्द्र मुचुकुन्दके सामने कालयवनका वध करके उसका सारा धन हड़प लिया है। उसी कालयवनका धन पाकर ही कृष्ण द्वारकामें धनी हो गये हैं। उन्होंने एक जरासंधके भयसे डरकर समुद्रके भीतर घर बनाया है। परंतु ऐसे सैकड़ों जरासंधोंको मैं अकेले ही क्षणभरमें खेल-ही-खेलमें मार सकता हूँ; फिर किसी अन्य राजाकी तो बात ही क्या है? भीष्मक! मैं दुर्वासाका शिष्य हूँ और रणशास्त्रमें निपुण हूँ। अपने उसी ज्ञानके बलसे मैं निश्चय ही विश्वका संहार करनेमें समर्थ हूँ। मेरे समान बलवान् या तो परशुरामजी हैं या शिशुपाल ही मेरी समता कर सकता है। वह शिशुपाल मेरा सखा, बलवान्, शूरवीर और स्वर्गको भी जीत लेनेकी शक्ति रखता है। मैं भी क्षणभरमें गणसहित महेन्द्रको जीतनेमें समर्थ हूँ। नरेश्वर! दुर्बल एवं योगी जरासंधको युद्धमें जीतकर श्रीकृष्णको अहंकार हो गया है। वे अपने मन अपनेको वीर मानने लगे हैं; परंतु यदि वे विवाह करनेकी इच्छासे मेरे नगरमें आयेंगे तो मैं क्षणभरमें निश्चय ही उन्हें यमलोक पहुँचा दूँगा।

जो वैश्यजातीय नन्दका पुत्र, गौओंका चरवाहा, गोपाङ्गनाओंका लम्पट और ग्वालोंकी जूँठन खानेवाला है, उसे आप कन्या देना स्वीकार करते हैं। यह महान् आश्चर्यकी बात है! राजेन्द्र! इस बकवादीके वचनसे आपकी बुद्धि मारी गयी है; इसी कारण इस भिक्षुक ब्राह्मणके कहनेसे आप देवयोग्या रुक्मिणीको श्रीकृष्णके हाथों सौंपना चाहते हैं। अरे! यह तो न राजपुत्र है, न शूरवीर है, न कुलीन है, न पवित्र आचरणवाला है, न दाता है, न धनी है, न योग्य है और न जितेन्द्रिय ही है। इसलिये भूपाल! आप शिशुपालको कन्या दीजिये; क्योंकि यह सुपूत एवं राजाधिराजका पुत्र है तथा अपने बलसे रुद्रको भी संतुष्ट कर चुका है। राजन्! अब शीघ्र ही पत्र भेजकर विभिन्न देशोंमें उत्पन्न हुए नरेशों, भाई-बन्धुओं तथा मुनिवरोंको निमन्त्रित कीजिये।

तदनन्तर रुक्मिकी बात सुनकर पुरोहितसहित राजेन्द्र भीष्मकने एकान्त स्थानमें मन्त्रीके साथ पूर्णरूपसे सलाह की। तत्पश्चात् जो सबको अभीष्ट था, ऐसा शुभ लग्न निश्चित करके एक योग्य एवं अन्तरङ्ग ब्राह्मणको द्वारका भेजनेकी व्यवस्था की। इधर राजा तुरंत ही हर्षपूर्वक सामग्री जुटानेमें लग गये और पुत्रके कहनेसे उन्होंने चारों ओर निमन्त्रण-पत्र भेज दिये। उधर उस ब्राह्मणने सुधर्मा-सभामें, जो राजाओं तथा देवताओंसे परिवेष्टित थी; पहुँचकर राजा उग्रसेनको वह मङ्गल-पत्रिका दी। उस परम माङ्गलिक पत्रको सुनकर राजा उग्रसेनका मुख प्रफुल्लित हो उठा। उन्होंने हर्षमें भरकर ब्राह्मणोंको हजारों स्वर्णमुद्राएँ दान कीं और द्वारकामें चारों ओर दुन्दुभिका शब्द कराकर घोषणा करा दी। श्रीकृष्णकी उस बारातमें बड़े-बड़े देवता, मुनि, राजागण, यादवगण, कौरव, पाण्डव, विद्वान् ब्राह्मण, माली, शिल्पी, गायक, गन्धर्व आदि सम्मिलित हुए। उस समय उपबर्हण नामक गन्धर्वके रूपमें तुम नारद भी बारातके साथ थे। (अध्याय १०५)

रेवती और बलरामके विवाहका वर्णन तथा रुक्मी, शाल्व, शिशुपाल और दन्तवक्त्रका श्रीकृष्णको कटुवचन कहना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इसी समय महाबली राजा ककुद्मी अपनी कन्याके लिये वरकी तलाशमें ब्रह्मलोकसे भूतलपर आये। उनकी कन्याका नाम रेवती था। वह निरन्तर स्थिर यौवनवाली, अमूल्य रत्नोंसे विभूषित और तीनों लोकोंमें दुर्लभ थी। उसकी आयुके सत्ताईस युग बीत चुके थे। राजाने कौतुकवश अपनी उस कन्याको महाबली बलदेवको ब्याह दिया। इस प्रकार मुनियों तथा देवेन्द्रोंकी सभामें विधानपूर्वक कन्यादान करके राजाने लाखों-लाखों हाथी, घोड़े, रथ, रत्नाभूषण, मणि-रत्न, करोड़ों स्वर्णमुद्राएँ जामाताको दहेजमें दीं तथा सुन्दर दिव्य वस्त्रादि दिये। यों बलशाली बलदेवको कन्या देकर राजेन्द्र ककुद्मी अमूल्य रत्नोंके सारसे निर्मित रथद्वारा कुण्डिन-नगरको गये। तदनन्तर उस वैवाहिक मङ्गल-कार्यके समाप्त होनेपर देवकी, रोहिणी, नन्दपत्नी यशोदा, अदिति, दिति और शान्तिने जय-जयकार करके रेवतीको, जो नारियोंमें श्रेष्ठ तथा लक्ष्मीकी कलास्वरूपा थीं, महलमें प्रवेश कराया। तत्पश्चात् वसुदेवजीकी प्रियतमा पत्नी देवकीने हर्षपूर्वक सारा मङ्गल-कार्य सम्पन्न कराया और ब्राह्मणोंको भोजन कराकर उन्हें धन दान दिया।

तदनन्तर देवताओं और मुनियोंका समुदाय तथा देश-देशान्तरके नरेश आनन्दमग्न हो अपनी-अपनी सेनाओंके साथ सहसा कुण्डिन-नगरमें आ

पहुँचे। उन सब लोगोंने उस परम मनोहर नगरका अवलोकन किया। बारातियोंने उस नगरके बाहरी दरवाजेको देखा; चार महारथी सैनिकोंके साथ उसकी रक्षा कर रहे थे। उनके नाम थे—रुक्मी, शिशुपाल, महाबली दन्तवक्त्र और मायावियोंमें श्रेष्ठ एवं युद्ध-शास्त्रमें निपुण शाल्व। उस समय राजकुमार रुक्मि, जो युद्धके लिये उद्यत हो नाना शस्त्रास्त्रोंसे सुसज्जित रथपर सवार था, श्रीकृष्णकी सेनाका अवलोकन करके कुपित हो उठा और

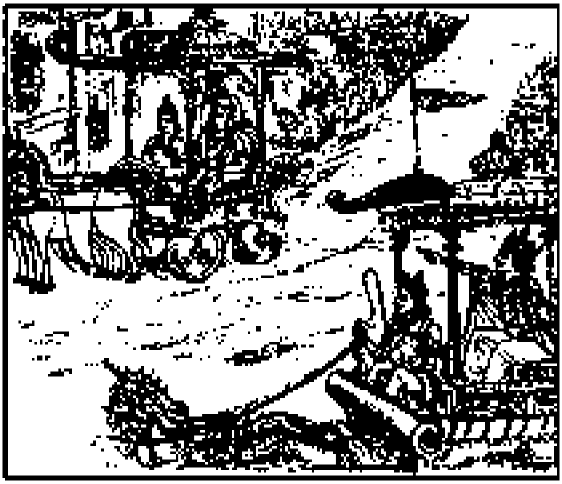

ऐसे निष्ठुर वचन कहने लगा जो कर्णकटु, अत्यन्त दुष्कर तथा मुनीन्द्रों, देवगणों और मुनिवरोंके लिये उपहासास्पद थे।

रुक्मिने कहा—अहो! कालकृत कर्म और दैवको कौन हटा सकता है? भला, मैं देवेन्द्रोंकी सभामें क्या कहूँगा; क्योंकि जो नन्दके पशुओंका रखवाला, गोपियोंका साक्षात् लम्पट और ग्वालोंकी जूँठन खानेवाला है तथा जिसकी जाति, खान-पान और उत्पत्तिका कोई निर्णय ही नहीं है; यह भी पता नहीं कि क्या यह राजकुमार है अथवा किसी मुनिका पुत्र है; जिसके पिता वसुदेव क्षत्रिय हैं, परंतु जिसका भरण-पोषण वैश्यके घर हुआ है; जिस दुष्टने अभी हालमें ही मथुरामें धर्मात्मा राजा कंसको मार डाला है, अतः उस राजेन्द्रके वधसे जिसे निश्चय ही ब्रह्महत्या लगी है; वह कृष्ण देवताओं और मुनियोंके साथ देवयोग्य मनोहारिणी कन्या रुक्मिणीको ग्रहण करनेके लिये आ रहा है। फिर शाल्व, शिशुपाल और दन्तवक्त्रने भी कुवाक्य कहे। इन सबके दुर्वचनोंको सुनकर बारातमें आये हुए देवता, मुनि, राजागण और बलदेवजीसहित यादवोंको क्रोध आ गया।

(अध्याय १०६)

रुक्मी आदिका यादवोंके साथ युद्ध, शाल्वका वध, रुक्मीकी सेनाका पलायन, बारातका पुरीमें प्रवेश और स्वागत-सत्कार, शुभलग्नमें श्रीकृष्णका बारातियों तथा देवोंके साथ राजाके आँगनमें जाना, भीष्मकद्वारा सबका सत्कार करके श्रीकृष्णका पूजन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर बलदेवजीने हलके द्वारा रुक्मिका रथ भङ्ग कर दिया। फिर तो घोर युद्ध आरम्भ हो गया। शाल्व मारा गया। बलदेवजी शिशुपालको मार रहे थे; परंतु उसे श्रीकृष्णके द्वारा मारे जानेवाला समझकर शिवजीने बलदेवजीको रोक दिया। बलदेवजीके विक्रमको देखकर सब इधर-उधर भाग गये।

तब महामुनि शतानन्दजीने आकर अभ्यर्थना की। बारातने पुरीमें प्रवेश किया। बड़ा भारी स्वागत-सत्कार किया गया। उस समयकी वर-रूपमें सुसज्जित श्रीकृष्णकी शोभा अवर्णनीय थी। उनके शरीरकी कान्ति नूतन जलधरके समान

श्याम थी, वे पीताम्बरसे सुशोभित थे, उनके सर्वाङ्गमें चन्दनका अनुलेप किया गया था, वे वनमालासे विभूषित तथा रत्नोंके बाजूबंद, कङ्कण और हिलते हुए हारसे प्रकाशित हो रहे थे, उनके कपोल रत्ननिर्मित दोनों कुण्डलोंसे उद्भासित हो रहे थे, कटिभागमें अमूल्य रत्नोंके सारभागसे बनी हुई करधनीकी मधुर झंकार हो रही थी, जिससे उनकी शोभा और बढ़ गयी थी, उनके एक हाथमें मुरली सुशोभित थी, वे मुस्कराते हुए रत्नजटित दर्पणकी ओर देख रहे थे, सात गोप-पार्षद श्वेत चँवरोंद्वारा उनकी सेवा कर रहे थे, उनका शरीर नवयौवनके उमंगसे सम्पन्न था, नेत्र शरत्कालीन कमलके-से सुन्दर थे, मुख शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी निन्दा कर रहा था, वे भक्तोंपर अनुग्रह करनेके लिये कातर हो रहे थे और उनका सौन्दर्य करोड़ों कामदेवोंका मान हर रहा था। वे सत्य, नित्य, सनातन, तीर्थोंको पावन करनेवाले, पवित्रकीर्ति तथा ब्रह्मा, शिव और शेषनागद्वारा वन्दित हैं। उनका रूप परम आह्लादजनक था तथा उनकी प्रभा करोड़ों चन्द्रमाओंके सदृश थी। वे ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य, परमोत्कृष्ट तथा प्रकृतिसे परे हैं। वे दूर्वासहित रेशमी सूत्र, अमूल्य रत्नजटित दर्पण और कंघी करके ठीक की हुई कदलीकी खिली हुई मञ्जरी धारण किये हुए थे। उनकी शिखा मालतीकी मालाओंसे विभूषित त्रिविक्रमके-से आकारवाली थी। उनका मस्तक नारियोंद्वारा दिये गये पुष्पमय मुकुटसे उद्दीप्त हो रहा था। ऐसे ऐश्वर्यशाली वरको देखकर युवतियाँ प्रेमवश मूर्च्छित हो गयीं और कहने लगीं कि 'रुक्मिणीका जीवन धन्य एवं परम श्लाघनीय है।' जब महारानी भीष्मक-पत्नीकी दृष्टि अपने जामातापर पड़ी तब वे परम प्रसन्न हुईं। उनके मुख और नेत्र प्रसन्नतासे खिल उठे। वे निर्निमेष दृष्टिसे उनकी ओर निहारने लगीं। राजा भीष्मक भी अपने पुरोहित तथा मन्त्रियोंसहित परम हर्षित हुए। उन्होंने वहाँ आकर देवताओं, ब्राह्मणों तथा समस्त प्राणियोंको प्रणाम किया और उन सबको अमृतोपम भक्ष्यसामग्रियोंसे परिपूर्ण यथायोग्य वासस्थान दिया। वहाँ रात-दिन 'दीयताम्, दीयताम्—देते रहो, देते जाओ'—यही शब्द गूँज रहे थे।

उधर वसुदेवजीने देवताओं तथा भाई-बन्धुओंके साथ सुखपूर्वक वह रात व्यतीत की। प्रातःकाल उठकर उन्होंने शौच आदि प्रातःकृत्य समाप्त किया। फिर स्नान करके शुद्ध धुली हुई धोती और चद्दर धारण करके संध्या-वन्दन आदि नित्यकर्म सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वेदमन्त्रद्वारा श्रीहरिका शुभ अधिवासन (मूर्ति-प्रतिष्ठा) किया। फिर साक्षात् सम्पूर्ण देवताओं तथा सारी मातृकाओंका भलीभाँति पूजन और वसुधारा प्रदान करके वृद्धिश्राद्ध आदि मङ्गलकृत्य किये और देवताओं, ब्राह्मणों तथा जाति-भाइयोंको भोजन कराया, बाजा बजवाया, मङ्गल-कार्य कराये और अप्रतिम सौन्दर्यशाली वरका उत्तम शृङ्गार करवाया। फिर वरकी सवारीको अत्यन्त सुन्दर ढंगसे सजवाया।

इसी प्रकार राजा भीष्मकने भी पुरोहितोंके साथ वेद-मन्त्रोच्चारणपूर्वक सारे वैवाहिक मङ्गल-कार्य सम्पन्न किये। हर्षमग्न हो भट्टों, ब्राह्मणों और भिक्षुकोंको भी मणि, रत्न, धन, मोती, माणिक्य, हीरे, भोजन-सामग्री, वस्त्र और अनुपम उपहार दिये, बाजा बजवाया, मङ्गल-कार्य कराया और रानियों तथा मुनि-पत्नियोंद्वारा यथोचित विधि-विधानके साथ रुक्मिणीको मनोहर सुन्दर साज-सज्जासे विभूषित कराया। तदनन्तर जब परमोदय माहेन्द्र नामक शुभ मुहूर्त, जो लग्नाधिपतिसे संयुक्त, शुद्ध शुभ ग्रहोंसे दृष्ट तथा असद् ग्रहोंकी दृष्टिसे रहित था। ऐसा विवाहोचित लग्न आया जिसमें नक्षत्र और क्षण शुभ थे, चन्द्र-बल और तारा-बल विशुद्ध था तथा शलाका आदि वेधदोष नहीं था। ऐसे परिणाममें सुखदायक

तथा वर-वधूके लिये कल्याणकारी समयके आनेपर श्रीहरि महाराज भीष्मकके प्राङ्गणमें पधारे। उस समय उनके साथ देवता, मुनि, ब्राह्मण, पुरोहित, जाति-भाई, बन्धु-बान्धव, पिता, माता, नरेशगण, ग्वाले, मनोहर वेश-भूषासे सुसज्जित समवयस्क पार्षद, भट्ट और ज्योतिः-शास्त्रविशारद गणक भी थे। उस स्थानकी मङ्गलमयता, माङ्गलिक वस्तुओंसे सुशोभित मनोहर विचित्र शिल्पकलाके द्वारा निर्मित सभाको देखकर सब मुग्ध हो गये। तब ब्रह्मा आदि देवता, राजेन्द्र, दानवेन्द्र, सनकादि मुनि और श्रेष्ठ पार्षदोंके साथ भगवान् श्रीकृष्ण हर्षपूर्वक शीघ्र ही रथसे उतरकर आँगनमें खड़े हो गये। उन देवों, मुनीन्द्रों तथा नरेशोंको आये हुए देखकर राजा भीष्मक उतावलीके साथ सहसा उठ खड़े हुए और सिर झुकाकर उन सबकी वन्दना की; फिर उन्होंने आदरपूर्वक क्रमशः पृथक्-पृथक् सबका भलीभाँति पूजन करके उन्हें परम रमणीय रत्नसिंहासनोंपर बैठाया। उस समय राजाके नेत्रोंमें प्रेमके आँसू छलक आये थे। वे अञ्जलि बाँधकर भक्तिपूर्वक उन सबकी तथा वसुदेव और वसुदेवनन्दन श्रीकृष्णकी स्तुति करते हुए बोले।

भीष्मकने कहा—प्रभो! आज मेरा जन्म सफल, जीवन सुजीवन और करोड़ों जन्मोंके कर्मोंका मूलोच्छेद हो गया; क्योंकि जो लोकोंके विधाता, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके प्रदाता और तपस्याओंके फलदाता हैं; स्वप्नमें भी जिनके चरणकमलका दर्शन होना दुर्लभ है; वे सृष्टिकर्ता स्वयं ब्रह्मा मेरे आँगनमें विराजमान हैं। योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र, सुरेन्द्र और मुनीन्द्र ध्यानमें भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, वे देवाधिदेव शंकर मेरे आँगनमें पधारे हैं, जो कालके काल, मृत्युकी मृत्यु, मृत्युञ्जय और सर्वेश्वर हैं; वे भगवान् विष्णु मनुष्योंके दृष्टिगोचर हुए हैं। जिनके हजारों फणोंके मध्य एक फणपर सारा चराचर विश्व स्थित है और सम्पूर्ण वेदोंमें जिनकी महिमाका अन्त नहीं है; वे ये भगवान् अनन्त मेरे आँगनमें वर्तमान हैं। जो सम्पूर्ण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, सर्वप्रथम जिनकी पूजा होती है और जो देवगणोंमें श्रेष्ठ हैं; वे गणेश मेरे आँगनमें उपस्थित हैं। जो मुनियों और वैष्णवोंमें सर्वश्रेष्ठ तथा ज्ञानियोंके गुरु हैं; वे भगवान् सनत्कुमार प्रत्यक्ष-रूपसे मेरे आँगनमें विद्यमान हैं। ब्रह्माके जितने पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र और वंशज हैं; वे सभी ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित होते हुए आज मेरे घर अतिथि हुए हैं। अहो! मेरा यह वासस्थान कल्पान्तपर्यन्त तीर्थतुल्य हो गया। जिनके चरणोदकसे तीर्थ पावन हो जाते हैं, उन्हीं चरणोंके स्पर्शसे आज मेरा गृह विशुद्ध हो गया है, क्योंकि भूतलपर जितने तीर्थ हैं, वे सभी सागरमें हैं और जितने सागरमें तीर्थ हैं, वे सभी ब्राह्मणके चरणोंमें वास करते हैं। जो प्रभु प्रकृतिसे परे हैं; ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि देवोंके लिये ध्यानद्वारा असाध्य हैं; योगियोंके लिये भी दुराराध्य, निर्गुण, निराकार तथा भक्तानुग्रहमूर्ति हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवगण जिनके चरणकमलका ध्यान करते हैं; जो कुबेर, गणेश और सूर्यके लिये भी दुर्लभ हैं; वे ही भगवान् साक्षात्-रूपसे मेरे घर पधारकर मनुष्योंके नयन-गोचर हुए हैं। यों कहकर भीष्मक स्वयं श्रीकृष्णको सामने लाकर सामवेदोक्त स्तोत्रद्वारा उन परमेश्वरकी स्तुति करने लगे।

भीष्मक बोले—भगवन्! आप समस्त प्राणियोंके अन्तरात्मा, सबके साक्षी, निर्लिप्त, कर्मियोंके कर्मों तथा कारणोंके कारण हैं। कोई-कोई आपका एकमात्र सनातन ज्योतिरूप बतलाते हैं। कोई, जीव जिनका प्रतिबिम्ब है, उन परमात्माका स्वरूप कहते हैं। कुछ भ्रान्तबुद्धि पुरुष आपको प्राकृतिक सगुण जीव उद्घोषित करते हैं। कुछ सूक्ष्मबुद्धिवाले ज्ञानी आपको नित्य

शरीरधारी बतलाते हैं। आप ज्योतिके मध्य सनातन अविनाशी देहरूप हैं; क्योंकि साकार ईश्वरके बिना भला यह तेज कहाँसे उत्पन्न हो सकता है?

नारद! यों स्तुति करके राजा भीष्मकने विष्णुका स्मरण करते हुए हर्षपूर्वक श्रीकृष्णके पद्मद्वारा समर्चित चरणकमलमें पाद्य निवेदित किया। फिर दूर्वा और जलसमन्वित अर्घ्य प्रदान करके मधुपर्क और गौ समर्पित की तथा उनके सारे शरीरमें सुगन्धित चन्दन लगाया। उस शुभ कर्ममें महेन्द्रने जो पारिजात-पुष्पोंकी माला दहेजरूपमें प्रदान की थी, उसे राजाने अपने जामाताके गलेमें डाल दिया। कुबेरने जो अमूल्य रत्नाभरण दिया था, उसके द्वारा राजाने भक्तिपूर्वक श्रीकृष्णका वरण किया। पूर्वकालमें अग्निद्वारा जो अग्निशुद्ध युग्म वस्त्र दिये गये थे, उनको भीष्मकने परिपूर्णतम श्रीकृष्णको समर्पित कर दिया। विश्वकर्माने जो चमकीला रत्नमुकुट दिया था, उसे राजाने परमात्मा श्रीकृष्णके मस्तकपर रख दिया। इसके बाद रत्ननिर्मित सिंहासन, नाना प्रकारके पुष्प, धूप, रत्नप्रदीप तथा अत्यन्त मनोहर नैवेद्य प्रदान किये। पुनः सात तीर्थोंके जलसे आचमन कराया। फिर कर्पूर आदिसे सुवासित उत्तम रमणीय पानबीड़ा, मनोहर रतिकरी शय्या और पीनेके लिये सुवासित जल दिया। इस प्रकार वरण करके राजाने उस पूजनको सम्पन्न किया और अञ्जलिको सम्पुटित करके श्रीकृष्णको पुष्पाञ्जलि समर्पित की। (अध्याय १०७)

रुक्मिणी और श्रीकृष्णका विवाह, बारातकी विदाई, भीष्मकद्वारा दहेज-दान और द्वारकामें मङ्गलोत्सव

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इसी समय महालक्ष्मी-स्वरूपा रुक्मिणीदेवी मुनियों और देवताओंके साथ सभामें आयीं और रत्नसिंहासनपर विराजमान हुईं। वे रत्नाभरणोंसे विभूषित थीं और उनके शरीरपर अग्निशुद्ध साड़ी शोभा पा रही थी। उनकी वेणी सुन्दररूपसे गूँथी गयी थी। वे मुस्कराती हुई अमूल्य रत्नजटित दर्पणमें अपना मुख निहार रही थीं, कस्तूरीके बिन्दुओंसे युक्त एवं सुकोमल चन्दनसे चर्चित थीं तथा उनके ललाटका मध्य भाग सिन्दूरकी बेंदीसे उद्भासित हो रहा था। उनकी कान्ति तपाये हुए सुवर्णकी-सी और प्रभा सैकड़ों चन्द्रमाओंके समान थी, उनके सर्वाङ्गमें चन्दनका अनुलेप हुआ था, मालतीकी माला उनकी शोभा बढ़ा रही थी और सात बालक राजकुमारोंद्वारा वे वहाँ लायी गयी थीं। ऐसी महालक्ष्मीस्वरूपा पतिव्रता रुक्मिणीदेवीको देवेन्द्रों, मुनीन्द्रों, सिद्धेन्द्रों तथा नृपश्रेष्ठोंने देखा।

तदनन्तर सती रुक्मिणीने अपने पति श्रीकृष्णकी सात प्रदक्षिणा करके उन्हें नमस्कार किया और चन्दनके सुकोमल पल्लवोंद्वारा शीतल जलसे सींचा। तत्पश्चात् जगत्पति श्रीकृष्णने शान्तरूपिणी एवं मन्द मुस्कानयुक्त अपनी प्रियतमा रुक्मिणीपर जल छिड़का। फिर शुभ मुहूर्तमें पतिने पत्नीका और पत्नीने पतिका अवलोकन किया। इसके बाद सुमुखी रुक्मिणीदेवी पिताकी गोदमें जा बैठीं; उस समय वे अपने तेजसे उद्दीप्त हो रही थीं और उनका मुख लज्जावश झुक गया था। नारद! तब राजा भीष्मकने वेदमन्त्रोच्चारणपूर्वक दानकी विधिसे देवेश्वरी रुक्मिणीको परिपूर्णतम श्रीकृष्णके हाथों सौंप दिया। उस समय हर्षपूर्वक बैठे हुए श्रीकृष्णने वसुदेवजीकी आज्ञासे 'स्वस्ति' ऐसा कहकर रुक्मिणीदेवीको उसी प्रकार ग्रहण कर

लिया, जैसे भगवान् शंकरने भवानीको ग्रहण

किया था। इसके बाद राजाने परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णको पाँच लाख अशर्फियाँ दक्षिणामें दीं। इस प्रकार मुनियों और देवेन्द्रोंकी सभामें उस शुभ कर्मके समाप्त होनेपर राजा मोहवश कन्याको हृदयसे चिपटाकर रोने लगे और अपने दोनों नेत्रोंके जलसे उन्होंने उस श्रेष्ठ कन्याको भिगो दिया। फिर वचनद्वारा उसका परिहार करके उन्होंने उसे श्रीकृष्णको समर्पित कर दिया।

इसी समय रुक्मिणीकी माता महारानी सुन्दरी सुभद्रा आनन्दमग्न हो पति-पुत्रवती साध्वी महिलाओंके साथ वहाँ आयीं और निर्मन्थन आदि मङ्गल-कार्य करके दम्पतिको एक ऐसे रत्ननिर्मित महलमें लिवा ले गयीं, जो नाना प्रकारकी विचित्र चित्रकारीसे सुशोभित, हीरेके हारसे विभूषित तथा मोती, माणिक्य, रत्न और दर्पणसे उद्दीप्त था। वहाँ श्रीकृष्णने दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, सरस्वती, सावित्री, रति, सती, रोहिणी, पतिव्रता देवपत्नी, राजपत्नी और मुनिपत्नियोंको देखा, जो रत्नाभरणोंसे विभूषित हो रत्ननिर्मित सिंहासनोंपर आसीन थीं। वे सभी जगदीश्वर श्रीकृष्णको निकट आया देखकर अपने-अपने आसनोंसे उठ पड़ीं और प्रसन्नतापूर्वक उन्हें एक रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठाया। फिर समागत देवाङ्गनाओं तथा मुनिपत्नियोंने अञ्जलि बाँधकर क्रमशः पृथक्-पृथक् उन माधवकी स्तुति की। महारानी सुभद्राने वरसहित कन्याको भोजन कराया और सुवासित जल तथा कर्पूरयुक्त उत्तम पान प्रदान किया। तदनन्तर वहाँ दुर्गादेवीने सभी महिलाओंकी आज्ञासे श्रीकृष्णके हाथमें मङ्गलपत्रिका दी और उनसे उसे पढ़नेके लिये कहा। तब देवियोंके उस समाजमें श्रीकृष्ण मुस्कराते हुए उस पत्रिकाको पढ़ने लगे। (उसमें लिखा था—) लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, सावित्री, सती, राधिका, तुलसी, पृथ्वी, गङ्गा, अरुन्धती, यमुना, अदिति, शतरूपा, सीता, देवहूति, मेनका—ये सभी देवियाँ दम्पतिका परम मङ्गल करें।* जब श्रीकृष्णने इस प्रकार पढ़ा, तब वे उसे सुनकर विनोद करने लगीं।

तदनन्तर राजा भीष्मकने भी देवगणों, मुनिवरों तथा भूपालोंका विधिपूर्वक पूजन किया और उन्हें आदरसहित भोजन कराया। उस समय कुण्डिननगरमें माङ्गलिक वाद्य और संगीतके साथ-साथ 'लोगो! खाओ-खाओ, देते जाओ-देते जाओ' ऐसे शब्द गूँज रहे थे। प्रातःकाल होनेपर ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवता तथा भूपालगण उतावलीपूर्वक अपने-अपने वाहनोंपर सवार हुए। इधर महाराज उग्रसेन और वसुदेवजीने भी शीघ्रतापूर्वक श्रीकृष्ण और सती रुक्मिणीकी यात्रा करायी। उस समय रुक्मिणीकी

---

* लक्ष्मीः सरस्वती दुर्गा सावित्री राधिका सती। तुलसी पृथिवी गङ्गारुन्धती यमुनादितिः॥
शतरूपा च सीता च देवहूतिश्च मेनका। देव्यश्चैता दम्पतीनां कुर्वन्तु मङ्गलं परम्॥
(१०९। १०-११)

माता सुभद्रा कन्याको अपनी छातीसे लगाकर उसकी सखियों तथा बान्धवोंके साथ उच्च स्वरसे रोने लगीं और इस प्रकार बोलीं।

सुभद्राने कहा—वत्से! तू मुझ अपनी माताका परित्याग करके कहाँ जा रही है? भला, मैं तुझे छोड़कर कैसे जी सकूँगी? और तू भी मेरे बिना कैसे जीवन धारण करेगी? रानी बेटी! तू महालक्ष्मी है, तूने मायासे ही कन्याका रूप धारण कर रखा है। अब तू वसुदेव-नन्दनकी प्रिया होकर मेरे घरसे वसुदेवजीके भवनको जा रही है। यों कहकर रानीने शोकवश नेत्रोंके जलसे अपनी कन्याको भिगो दिया। भीष्मकने भी आँखोंमें आँसू भरकर अपनी कन्या श्रीकृष्णको समर्पित कर दी। इस प्रकार उसका परिहार करके वे फूट-फूटकर रोने लगे। तब रुक्मिणीदेवी तथा श्रीकृष्ण भी लीलासे आँसू टपकाने लगे। तत्पश्चात् वसुदेवजीने पुत्र और पुत्रवधूको रथपर चढ़ाया। इस अवसरपर राजा भीष्मक अपने जामाताको दहेज देने लगे। उन्होंने हर्षपूर्ण हृदयसे एक हजार गजराज, छः हजार घोड़े, एक सहस्र दासियाँ, सैकड़ों नौकर, अमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषण, एक हजार रत्न, पाँच लाख शुद्ध सुवर्णकी मोहरें, विश्वकर्माद्वारा निर्मित सोनेके सुन्दर-सुन्दर जलपात्र तथा भोजनपात्र, बहुत-सी गायें, एक हजार दूधवाली सवत्सा धेनुएँ और बहुत-से बहुमूल्य रमणीय अग्निशुद्ध वस्त्र प्रदान किये। तब वसुदेव और उग्रसेन देवताओं और मुनियोंके साथ प्रसन्नतापूर्वक शीघ्र ही द्वारकाको ओर चले। वहाँ अपनी रमणीय पुरीमें प्रवेश करके उन्होंने मङ्गल-कृत्य कराये, सुन्दर एवं अत्यन्त मनोहर बाजे बजवाये। तदनन्तर देवकी, सुन्दरी रोहिणी, नन्दपत्नी यशोदा, अदिति, दिति तथा अन्यान्य सौभाग्यवती नारियाँ श्रीकृष्ण और सुन्दरी रुक्मिणीकी ओर बारंबार निहारकर उन्हें घरके भीतर लिवा ले गयीं और उन्होंने उनसे मङ्गल-कृत्य करवाये। फिर देवताओं, मुनिवरों, नरेशों और भाई-बन्धुओंको चतुर्विध (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) भोजन कराकर उन्हें विदा किया। पुनः हर्षमग्न हो भट्ट ब्राह्मणोंको इतने रत्न आदि दान किये, जिससे वे प्रसन्न और संतुष्ट हो गये। उन्हें भोजन भी कराया। इस प्रकार भोजन करके और धन लेकर वे सभी खुशी-खुशी अपने घरोंको गये। यों वसुदेव-पत्नीने सारा मङ्गल-कार्य सम्पन्न कराया। (अध्याय १०८-१०९)

श्रीकृष्णके कहनेसे नन्द-यशोदाका ज्ञानप्राप्तिके लिये कदलीवनमें राधिकाके पास जाना, वहाँ अचेतनावस्थामें पड़ी हुई राधाको श्रीकृष्णके संदेशद्वारा चैतन्य करना और राधाका उपदेश देनेके लिये उद्यत होना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार उस साङ्गोपाङ्ग मङ्गल-कार्यके अवसरपर पधारे हुए लोगोंके चले जानेपर नन्दजी यशोदाके साथ अपने प्रिय पुत्र (श्रीकृष्ण)-के निकट गये।

वहाँ जाकर यशोदाने कहा—माधव! तुमने अपने पिता नन्दजीको तो ज्ञान प्रदान कर ही दिया, परंतु बेटा! मैं तुम्हारी माता हूँ; अतः कृपानिधे! मुझपर भी कृपा करो। महाभाग! तुम पृथ्वीका उद्धार करनेवाले और भक्तोंको उबारनेवाले हो। मैं भयभीत हो इस भयंकर भवसागरमें पड़ी हुई हूँ। मायामयी प्रकृति ही इस भवसागरसे तरनेके लिये नौका है और तुम्हीं उसके कर्णधार हो; अतः कृपामय! मेरा उद्धार करो। यशोदाकी बात सुनकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण जो ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु हैं, हँस पड़े और भक्तिपूर्वक मातासे बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—माँ! जो भक्त्यात्मक ज्ञान है, वह तुम्हें राधा बतलायेगी। यदि तुम राधाके प्रति मानवभावका त्याग करके उसकी आज्ञाका पालन करोगी तो जो ज्ञान मैंने नन्दजीको दिया है; वही ज्ञान वह तुम्हें प्रदान करेगी। अतः अब नन्दजीके साथ आदरपूर्वक नन्द-व्रजको लौट जाओ। इतना कहकर और विनय प्रदर्शित करके श्रीहरि महलके भीतर चले गये।

तब नन्दजी यशोदाके साथ कदलीवनको गये। वहाँ उन्होंने राधाको देखा, जो पङ्कस्थ चन्दनचर्चित जलयुक्त कमल-दलकी शय्यापर अचेत हो शयन कर रही थीं। राधाने अपने अङ्गोंसे भूषणोंको उतार फेंका था, उनके शरीरपर श्वेत वस्त्र शोभा पा रहा था, आहारका त्याग कर देनेसे उनका उदर कृश हो गया था, मूर्च्छितावस्थामें उनके ओष्ठ सूख गये थे और नेत्रोंमें आँसू भरे हुए थे। वे परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका ध्यान कर रही थीं, उनका चित्त एकमात्र उन्हींमें निविष्ट था और बाह्यज्ञान लुप्त हो गया था। वे बीच-बीचमें मुखकमलको ऊपर उठाकर मन्द मुस्कानयुक्त प्रियतम श्रीकृष्णका मार्ग जोहती रहती थीं। स्वप्नमें प्रियतमके समीप पहुँचकर कभी हँसती और कभी रोती थीं। सखियाँ चारों ओरसे श्वेत चँवरद्वारा निरन्तर उनकी सेवा कर रही थीं। राधाकी यह दशा देखकर भार्यासहित नन्दको महान् विस्मय हुआ। उन्होंने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर परम भक्तिके साथ राधाको नमस्कार किया। उसी समय ईश्वरेच्छासे सहसा राधाकी नींद उचट गयी। वे जाग पड़ीं और क्षणभरमें ही उन्हें विषयज्ञानरहित चेतना प्राप्त हो गयी। तब वे उस सखी-समाजमें सामने पति-पत्नी नन्द-यशोदाको देखकर उनसे आदरपूर्वक पूछती हुए मधुर वचन बोलीं।

राधिकाने पूछा—बतलाओ, तुम कौन हो और यहाँ किस प्रयोजनसे आये हो? सुनो; मुझे विषयज्ञान नहीं है। मैं यह भी नहीं जान पाती कि कौन मनुष्य है कौन पशु; कौन जल है कौन स्थल; और कौन रात है कौन दिन? यहाँतक कि मुझे स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसकका भी भेद नहीं ज्ञात होता।

राधिकाकी बात सुनकर नन्दको महान् विस्मय हुआ। तब गोपी यशोदा सम्भाषण करनेके लिये डरते-डरते राधाके निकट गयीं और उनके पास ही बैठकर प्रिय वचन बोलीं। नन्द भी वहीं यशोदाद्वारा दिये गये आसनपर बैठ गये।

तब यशोदाने कहा—राधे! चेत करो; तुम यत्नपूर्वक अपनी रक्षा करो; क्योंकि मङ्गल दिन आनेपर तुम अपने प्राणनाथके दर्शन करोगी। सुरेश्वरि! तुमने अपने कुल तथा विश्वको पवित्र कर दिया है। तुम्हारे चरणकमलकी सेवासे ये गोपियाँ पुण्यवती हो गयी हैं। जनसमूह, संतगण, चारों वेद और पुरातन पुराण तुम्हारी तीर्थोंको पावन बनानेवाली सुमङ्गल कीर्तिका गान करेंगे। बुद्धिरूपे! मैं यशोदा हूँ, ये नन्द हैं और तुम वृषभानुनन्दिनी राधा हो। सुव्रते! मेरी बात सुनो। भद्रे! मैं द्वारका नगरसे श्रीकृष्णके पाससे तुम्हारे

निकट आयी हूँ। सति! श्रीहरिने ही मुझे तुम्हारे पास भेजा है। अब तुम उन गदाधरका मङ्गल-समाचार एवं मङ्गल-संदेश सुनो। तुम्हें शीघ्र ही उन श्रीकृष्णके दर्शन होंगे। हे देवि! होशमें आ जाओ और इस समय मुझे भक्त्यात्मक ज्ञानका उपदेश दो। हम दोनों तुम्हारे पतिके उपदेशसे तुम्हारे पास आये हैं। वरानने! इसके बाद श्रीहरि तुम्हारे पास आयेंगे और तुम शीघ्र ही श्रीदामाके शापसे मुक्त हो जाओगी। इस प्रकार यशोदाके वचन सुनकर और गदाधरका समाचार पाकर श्रीकृष्णके नामस्मरणसे राधाका अमङ्गल दूर हो गया। वे भीतर-ही-भीतर श्रीकृष्णकी सम्भावना करके चेतनामें आ गयीं और शान्त होकर मधुर वाणीसे परमोत्तम लौकिकी भक्तिका वर्णन करने लगीं।

(अध्याय ११०)

राधिकाद्वारा 'राम' आदि भगवन्नामोंकी व्युत्पत्ति और उनकी प्रशंसा तथा यशोदाके पूछनेपर अपने 'राधा' नामकी व्याख्या करना

राधिकाने कहा—यशोदे! स्त्रीजाति तो वस्तुतः यों ही अबला, मूढ़ और अज्ञानमें तत्पर रहनेवाली होती है; तिसपर भी श्रीकृष्णके विरहसे मेरी चेतना निरन्तर नष्ट हुई रहती है। ऐसी दशामें पाँच प्रकारके ज्ञानोंमें, जो सर्वोत्तम भक्त्यात्मक ज्ञान है, उसके विषयमें मैं क्या कह सकती हूँ? तथापि जो कुछ तुमसे कहती हूँ, उसे सुनो। यशोदे! तुम इन सारे नश्वर पदार्थोंका परित्याग करके पुण्यक्षेत्र भारतमें स्थित रमणीय वृन्दावनमें जाओ। वहाँ निर्मल यमुनाजलमें त्रिकाल स्नान करके सुकोमल चन्दनसे अष्टदल कमल बनाकर शुद्ध मनसे गर्ग-प्रदत्त ध्यानद्वारा परमानन्दस्वरूप श्रीकृष्णका भलीभाँति पूजन करो और आनन्दपूर्वक उनके परमपदमें लीन हो जाओ। सति! सौ पूर्व पुरुषोंके साथ अपने कर्मका उच्छेद करके सदा वैष्णवोंके ही साथ वार्तालाप करो। भक्त अग्निकी ज्वाला, पिंजरेमें बंद होना, काँटोंमें रहना और विष खाना स्वीकार करता है, परंतु हरिभक्तिरहित लोगोंका सङ्ग ठीक नहीं समझता; क्योंकि वह नाशका कारण होता है। भक्तिहीन पुरुष स्वयं तो नष्ट होता ही है, साथ ही दूसरेकी बुद्धिमें भेद उत्पन्न कर देता है। भक्तके सङ्गसे तथा हरिकथालापरूपी अमृतके सिञ्चनसे भक्तिरूपी वृक्षका अङ्कुर बढ़ता है; किंतु भक्तिहीनोंके साथ वार्तालापरूपी प्रदीप्ताग्निकी ज्वालाकी एक कलाके स्पर्शसे भी वह अङ्कुर सूख जाता है; फिर सींचनेसे ही उसकी वृद्धि होती है। इसलिये सावधान होकर भक्तिहीनोंके सङ्गका उसी प्रकार परित्याग कर देना चाहिये, जैसे मनुष्य कालसर्पको देखकर डरके मारे दूर भाग जाते हैं। यशोदे! अपने ऐश्वर्यशाली पुत्रका, जो साक्षात् परमात्मा और ईश्वर हैं, उत्तम भक्तिके साथ भजन करो। उनके राम, नारायण, अनन्त, मुकुन्द, मधुसूदन, कृष्ण, केशव, कंसारि, हरे, वैकुण्ठ, वामन—इन ग्यारह नामोंको जो पढ़ता अथवा कहलाता है, वह सहस्रों कोटि जन्मोंके पापोंसे मुक्त हो जाता है*।

'रा' शब्द विश्ववाची और 'म' ईश्वरवाचक है, इसलिये जो लोकोंका ईश्वर है उसी कारण वह 'राम' कहा जाता है। वह रमाके साथ रमण

* वरं हुतवहज्वाला भक्तो वाञ्छति पिञ्जरम्। वरं च कण्टके वासं वरं च विषभक्षणम्॥
हरिभक्तिविहीनानां न सङ्गं नाशकारणम्। स्वयं नष्टो भक्तिहीनो बुद्धिभेदं करोति च॥

करता है इसी कारण विद्वान् लोग उसे 'राम' कहते हैं। रमाका रमणस्थान होनेके कारण राम-तत्त्ववेत्ता 'राम' बतलाते हैं। 'रा' लक्ष्मीवाची और 'म' ईश्वरवाचक है; इसलिये मनीषीगण लक्ष्मीपतिको 'राम' कहते हैं। सहस्रों दिव्य नामोंके स्मरणसे जो फल प्राप्त होता है, वह फल निश्चय ही 'राम' शब्दके उच्चारणमात्रसे मिल जाता है*।

विद्वानोंका कथन है कि 'नार' शब्दका अर्थ सारूप्य-मुक्ति है; उसका जो देवता 'अयन' है, उसे 'नारायण' कहते हैं। किये हुए पापको 'नार' और गमनको 'अयन' कहते हैं। उन पापोंका जिससे गमन होता है, वही ये 'नारायण' कहे जाते हैं। एक बार भी 'नारायण' शब्दके उच्चारणसे मनुष्य तीन सौ कल्पोंतक गङ्गा आदि समस्त तीर्थोंमें स्नानके फलका भागी होता है। 'नार' को पुण्य मोक्ष और 'अयन' को अभीष्ट ज्ञान कहते हैं। उन दोनोंका ज्ञान जिससे हो, वे ही ये प्रभु 'नारायण' हैं†।

जिसका चारों वेदों, पुराणों, शास्त्रों तथा अन्यान्य योगग्रन्थोंमें अन्त नहीं मिलता; इसी कारण विद्वान् लोग उसका नाम 'अनन्त' बतलाते हैं। 'मुकु' अभ्ययमान, निर्माण और मोक्षवाचक है; उसे जो देवता देता है, उसी कारण वह 'मुकुन्द' कहा जाता है। 'मुकु' वेदसम्मत भक्तिरसपूर्ण प्रेमयुक्त वचनको कहते हैं; उसे जो भक्तोंको देता है वह 'मुकुन्द' कहलाता है। चूँकि वे मधु दैत्यका हनन करनेवाले हैं, इसलिये उनका एक नाम 'मधुसूदन' है। यों संतलोग वेदमें विभिन्न अर्थका प्रतिपादन करते हैं। 'मधु' नपुंसकलिङ्ग तथा किये हुए शुभाशुभ कर्म और माध्वीक (महुएकी शराब)-का वाचक है; अतः उसके तथा भक्तोंके कर्मोंके सूदन करनेवालेको 'मधुसूदन' कहते हैं। जो कर्म परिणाममें अशुभ और भ्रान्तोंके लिये मधुर है उसे 'मधु' कहते हैं, उसका जो 'सूदन' करता है; वही 'मधुसूदन' है।

'कृषि' उत्कृष्टवाची, 'ण' सद्भक्तिवाचक और 'अ' दातृवाचक है; इसीसे विद्वान्लोग उन्हें 'कृष्ण' कहते हैं। परमानन्दके अर्थमें 'कृषि' और

अङ्कुरो भक्तिवृक्षस्य भक्तसङ्गेन वर्धते। परं हरिकथालापपीयूषासेचनेन च॥
अभक्तालापदीप्ताग्निज्वालया: फलयपि च। अङ्कुरं शुष्कतां याति पुनः सेकेन वर्धते॥
तस्मादभक्तसङ्गं च सावधानं परित्यज। यथा दृष्ट्वा कालसर्पं नरो भीतः पलायते॥
यशोदे च प्रयत्नेन स्वात्मनः पुत्रमीश्वरम्। भजस्व परया भक्त्या परमात्मानमीश्वरम्॥
राम नारायणानन्त मुकुन्द मधुसूदन। कृष्ण केशव कंसारे हरे वैकुण्ठ वामन॥
इत्येकादश नामानि पठेद् वा पाठयेदिति। जन्मकोटिसहस्राणां पातकादेव मुच्यते॥

(१११। १३—२०)

* राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः। विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः॥
रमते रमया सार्धं तेन रामं विदुर्बुधाः। रमाया रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः॥
राश्चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः। लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥
नाम्नां सहस्रं दिव्यानां स्मरणे यत्फलं भवेत्। तत्फलं लभते नूनं रामोच्चारणमात्रतः॥

(१११। १८—२१)

† सारूप्यमुक्तिवचनो नारेति च विदुर्बुधाः। यो देवोऽप्ययनं तस्य स च नारायणः स्मृतः॥
नाराश्च कृतपापाश्चाप्ययनं गमनं स्मृतम्। यतो हि गमनं तेषां सोऽयं नारायणः स्मृतः॥
सकृन्नारायणेत्युक्त्वा पुमान् कल्पशतत्रयम्। गङ्गादिसर्वतीर्थेषु स्नातो भवति निश्चितम्॥
नारं च मोक्षणं पुण्यमयनं ज्ञानमीप्सितम्। तयोर्ज्ञानं भवेद् यस्मात् सोऽयं नारायणः प्रभुः॥

(१११। २२—२५)

उनके दास्य कर्ममें 'ण' का प्रयोग होता है। उन दोनोंके दाता जो देवता हैं, उन्हें 'कृष्ण' कहा जाता है। भक्तोंके कोटिजन्मार्जित पापों और क्लेशोंमें 'कृषि' का तथा उनके नाशमें 'ण' का व्यवहार होता है; इसी कारण वे 'कृष्ण' कहे जाते हैं। सहस्र दिव्य नामोंकी तीन आवृत्ति करनेसे जो फल प्राप्त होता है; वह फल 'कृष्ण' नामकी एक आवृत्तिसे ही मनुष्यको सुलभ हो जाता है। वैदिकोंका कथन है कि 'कृष्ण' नामसे बढ़कर दूसरा नाम न हुआ है, न होगा। 'कृष्ण' नाम सभी नामोंसे परे है। हे गोपी! जो मनुष्य 'कृष्ण-कृष्ण' यों कहते हुए नित्य उनका स्मरण करता है; उसका उसी प्रकार नरकसे उद्धार हो जाता है, जैसे कमल जलका भेदन करके ऊपर निकल आता है। 'कृष्ण' ऐसा मङ्गल नाम जिसकी वाणीमें वर्तमान रहता है, उसके करोड़ों महापातक तुरंत ही भस्म हो जाते हैं। 'कृष्ण' नाम-जपका फल सहस्रों अश्वमेध-यज्ञोंके फलसे भी श्रेष्ठ है; क्योंकि उनसे पुनर्जन्मकी प्राप्ति होती है; परंतु नाम-जपसे भक्त आवागमनसे मुक्त हो जाता है। समस्त यज्ञ, लाखों व्रत, तीर्थस्नान, सभी प्रकारके तप, उपवास, सहस्रों वेदपाठ, सैकड़ों बार पृथ्वीकी प्रदक्षिणा—ये सभी इस 'कृष्णनाम'-जपकी सोलहवीं कलाकी समानता नहीं कर सकते*। उन उपर्युक्त कर्मोंके लोभसे मनुष्योंको चिरकालके लिये स्वर्गरूप फलकी प्राप्ति होती है और उस स्वर्गसे पतन होना निश्चित है; परंतु जपकर्ता पुरुष श्रीहरिके परम पदको प्राप्त कर लेता है।

'क' जलको कहते हैं; उस जलमें तथा समस्त शरीरोंमें भी जो आत्मा शयन करता है; उस देवको सभी वैदिक लोग 'केशव' कहते हैं। 'कंस' शब्दका प्रयोग पातक, विघ्न, रोग, शोक और दानवके अर्थमें होता है, उनका जो 'अरि' अर्थात् हनन करनेवाला है; वह 'कंसारि' कहा जाता है। जो रुद्ररूपसे नित्य विश्वोंका तथा भक्तोंके पातकोंका संहार करते रहते हैं, इसी कारण वे 'हरि' कहलाते हैं। जो ब्रह्मस्वरूपा 'मा' मूलप्रकृति, ईश्वरी, नारायणी, सनातनी विष्णुमाया, महालक्ष्मीस्वरूपा, वेदमाता सरस्वती, राधा, वसुन्धरा, और गङ्गा नामसे विख्यात हैं, उनके स्वामी (धव) को 'माधव' कहते हैं।

यशोदे! ब्रह्मा, विष्णु, महेश और शेष आदि जिनकी वन्दना करते हैं; सनकादि मुनि ध्यानद्वारा जिनका कुछ भी रहस्य नहीं जान पाते और वेद-पुराण जिनका निरूपण करनेमें असमर्थ हैं; उन माखनचोरका भक्तिपूर्वक भजन करो। दूध, दही, घी, नया मथकर तैयार किया हुआ मट्ठा—ये सब कहाँ हैं, उनका चुरानेवाला कहाँ है, तुम कहाँ हो और तुम्हारा भवबन्धन कहाँ है? योगी,

---

* कृषिरुत्कृष्टवचनो णश्च सद्भक्तिवाचकः। अश्चापि दातृवचनः कृष्णं तेन विदुर्बुधाः॥
कृषिश्च परमानन्दे णश्च तद्दास्यकर्मणि। तयोर्दाता च यो देवस्तेन कृष्णः प्रकीर्तितः॥
कोटिजन्मार्जिते पापे कृषिः क्लेशे च वर्तते। भक्तानां णश्च निर्वाणे तेन कृष्णः प्रकीर्तितः॥
सहस्रनाम्नां दिव्यानां त्रिरावृत्त्या च यत्फलम्। एकावृत्त्या तु कृष्णस्य तत्फलं लभते नरः॥
कृष्णनाम्नः परं नाम न भूतं न भविष्यति। सर्वेभ्यश्च परं नाम कृष्णेति वैदिका विदुः॥
कृष्ण कृष्णेति हे गोपि यस्तं स्मरति नित्यशः। जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम्॥
कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्तते। भस्मीभवन्ति सद्यस्तन्महापातककोटयः॥
अश्वमेधसहस्रेभ्यः फलं कृष्णजपस्य च। वरं तेभ्यः पुनर्जन्म नातो भक्तपुनर्भवः॥
सर्वेषामपि यज्ञानां लक्षाणि च व्रतानि च। तीर्थस्नानानि सर्वाणि तपांस्यनशनानि च॥
वेदपाठसहस्राणि प्रादक्षिण्यं भुवः शतम्। कृष्णनामजपस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
(१११। ३२—४१)

सिद्धगण, मुनीन्द्र, भक्तसमुदाय, ब्रह्मा, शिव और शेष योगद्वारा जिन्हें बाँध नहीं सके; वह तुम्हारे ओखली-मूलसे कैसे बँध गया? अतः सति! भारतवर्षमें शीघ्र ही हृत्कमलके मध्यमें स्थित परमेश्वररूप अपने पुत्रका प्रेम, भक्ति, स्तवन, पूजन और यत्नपूर्वक ध्यान करते हुए भजन करो। गोपी! तुम्हारा कल्याण हो। अब तुम्हारे मनमें जो इच्छा हो, वह वरदान माँग लो। इस समय जगत्में जो देवताओंके लिये भी दुर्लभ होगा, वह सब कुछ मैं तुम्हें प्रदान करूँगी।

यशोदाने कहा—राधे! श्रीहरिके चरणोंमें निश्चल भक्ति तथा उनकी दासता—यही मेरा अभीष्ट वर है। साथ ही तुम्हारे नामकी क्या व्युत्पत्ति है—यह भी मुझे बतलानेकी कृपा करो।

श्रीराधिका बोलीं—यशोदे! मेरे वरदानसे तुम्हारी श्रीहरिके चरणोंमें निश्चल भक्ति हो और तुम्हें श्रीहरिकी दुर्लभ दासता प्राप्त हो। अब उत्तम निर्णयका वर्णन करती हूँ, सुनो। पूर्वकालमें नन्दने मुझे भाण्डीर-वटके नीचे देखा था, उस समय मैंने व्रजेश्वर नन्दको यह रहस्य बतलाया था और उसे प्रकट करनेको मना कर दिया था। मैं ही स्वयं राधा हूँ और रायाण गोपकी भार्या मेरी छायामात्र है। रायाण श्रीहरिके अंश, श्रेष्ठ पार्षद और महान् हैं।

जिनके रोमकूपोंमें अनेकों विश्व वर्तमान हैं, वे महाविष्णु ही 'रा' शब्द हैं और 'धा' विश्वके प्राणियों तथा लोकोंमें मातृवाचक धाय है; अतः मैं इनकी दूध पिलानेवाली माता, मूलप्रकृति और ईश्वरी हूँ। इसी कारण पूर्वकालमें श्रीहरि तथा विद्वानोंने मेरा नाम 'राधा' रखा है*। इस समय मैं सुदामाके शापसे वृषभानुकी कन्या होकर प्रकट हुई हूँ। अब सौ वर्ष पूरे होनेतक मेरा श्रीहरिके साथ वियोग बना रहेगा। मेरे पिता वृषभानु श्रीकृष्णके श्रेष्ठ पार्षद और महान् हैं तथा मेरी माता कलावती पितरोंकी मानसी कन्या हैं। इस भारतवर्षमें मेरी माता तथा मैं—दोनों अयोनिजा हैं। पुनः तुम लोगोंके साथ श्रीहरिके परमपदको प्राप्त होंगी। व्रजेश्वरि! इस प्रकार मैंने तुम्हें सारा भक्त्यात्मक ज्ञान बतला दिया। सति! अब तुम अपने ज्ञानी स्वामी व्रजेश्वरके साथ व्रजको लौट जाओ; क्योंकि इस समय तुम्हीं मेरे ध्यानमें रुकावट डालनेवाली हो। सुन्दरि! ध्यानभङ्ग हो जानेपर मनुष्योंको महान् दोषका भागी होना पड़ता है।

(अध्याय १११)

प्रद्युम्नाख्यान-वर्णन, श्रीकृष्णका सोलह हजार आठ रानियोंके साथ विवाह और उनसे संतानोत्पत्तिका कथन, दुर्वासाका द्वारकामें आगमन और वसुदेव-कन्या एकानंशाके साथ विवाह, श्रीकृष्णके अद्भुत चरित्रको देखकर दुर्वासाका भयभीत होना, श्रीकृष्णका उन्हें समझाना और दुर्वासाका पत्नीको छोड़कर तपके लिये जाना

श्रीनारायण कहते हैं—मुने! द्वारकामें पहुँचकर वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण वसुदेवजीकी आज्ञासे रुक्मिणीके रत्ननिर्मित श्रेष्ठ भवनमें गये। वह भवन शुद्ध स्फटिकके समान उज्ज्वल, बहुमूल्य रत्नोंद्वारा रचित, सामने तथा चारों ओरसे रमणीय और नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित था।

---

* राशब्दश्च महाविष्णुर्विश्वानि यस्य लोमसु। विश्वप्राणिषु विश्वेषु धा धात्री मातृवाचकः॥
धात्री माताहमेतेषां मूलप्रकृतिरीश्वरी। तेन राधा समाख्याता हरिणा च पुरा बुधैः॥
(१११। ५७-५८)

उसपर अमूल्य रत्नोंके कलश चमक रहे थे और वह श्वेत चँवरों, दर्पणों तथा अग्निशुद्ध पवित्र वस्त्रोंद्वारा सब ओरसे सुशोभित था। तदनन्तर रुक्मिणीदेवीसे पूर्वकालमें शिवके द्वारा भस्मीभूत कामदेव प्रकट हुए। उन्होंने शम्बरासुरका वध करके अपनी पतिव्रता पत्नी रतिको प्राप्त किया। उस समय रति देवताके संकेतसे 'मायावती' नाम धारण करके शम्बरासुरके महलमें उसकी गृहिणी बनकर रहती थी; परंतु उसकी शय्यापर स्वयं न जाकर अपनी छायाको भेजती थी।

नारदने पूछा—महाभाग! कामदेव (प्रद्युम्न)-ने किस प्रकार दैत्यराज शम्बरका वध किया था? वह शुभ कथा विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

श्रीनारायणने कहा—नारद! एक सप्ताहके व्यतीत होनेपर दैत्यराज शम्बर रुक्मिणीके सूतिकागृहसे बालकको लेकर वेगपूर्वक अपने वासस्थानको चला गया। वह दैत्यराज पुत्रहीन था; अतः उस पुत्रको पाकर उसे महान् हर्ष हुआ। फिर उसने प्रसन्नमनसे वह बालक मायावतीको दे दिया। उसे पाकर सती मायावतीको भी बड़ी प्रसन्नता हुई। तदनन्तर सरस्वतीदेवीने आकर मायावती

(रति)-को और श्रीकृष्ण-पुत्र (कामदेव)-को समझाया कि तुम दोनों पत्नी-पति हो। शिवके कोपसे भस्म हुए कामदेवने ही श्रीकृष्णके पुत्ररूपसे जन्म लिया है; अतएव तुम दोनों पति-पत्नीकी भाँति रहो।

तब वे पति-पत्नीकी भाँति रहने लगे। इस बातका शम्बरासुरको पता लग गया। तब वह दोनोंकी भर्त्सना करके उन्हें मारने दौड़ा। उसने शिवजीका दिया हुआ शूल चलाया। इसी बीच पवनदेवने चुपके-से दुर्गाका स्मरण करनेको कहा। दुर्गाका स्मरण करते ही शिव-शूल रमणीय और मनोहर मालाके रूपमें परिणत हो गया। तदनन्तर कामदेवने हर्षपूर्वक ब्रह्मास्त्रद्वारा उस दैत्यको मार डाला और रतिको लेकर वे विमानद्वारा द्वारकापुरीको चले गये। उनके पीछे समस्त देवगण स्वयं पार्वतीकी स्तुति करके चले।

रुक्मिणीने मङ्गल-कार्य सम्पन्न करके रतिको और अपने पुत्रको ग्रहण किया। श्रीहरिने स्वस्त्ययनपूर्वक परम उत्सव कराया, ब्राह्मणोंको जिमाया और पार्वतीकी पूजा की।

तदनन्तर श्रीकृष्णने वेदोक्त शुभ दिन आनेपर

क्रमशः सात रमणियोंका पाणिग्रहण किया। उनके नाम हैं—कालिन्दी, सत्यभामा, सत्या, सती, नाग्नजिती, जाम्बवती और लक्ष्मणा। उन्होंने क्रमशः इनके साथ विवाह किये और पुत्र उत्पन्न किये। उनमें एक-एकसे क्रमशः दस-दस पुत्र

और एक-एक कन्या उत्पन्न हुई। तत्पश्चात् श्रीकृष्णने राजाधिराज नरकासुरको पुत्रसहित मारकर रणके मुहानेपर महाबली मुर दैत्यको भी यमलोकका पथिक बना दिया। वहाँ उसके महलमें श्रीकृष्णको सोलह हजार कन्याएँ दीख पड़ीं, जिनकी अवस्था सौ वर्षसे ऊपर हो चुकी थी; परंतु उनका यौवन सदा स्थिर रहनेवाला था। वे सब-की-सब रत्नाभूषणोंसे विभूषित थीं तथा उनके मुख प्रफुल्लित थे। माधवने शुभ मुहूर्तमें उन सबका पाणिग्रहण किया और शुभकालमें क्रमशः उन सबके साथ रमण किया। उनमें भी प्रत्येकसे क्रमशः दस-दस पुत्र और एक-एक कन्याका जन्म हुआ। इस प्रकार श्रीहरिके पृथक्-पृथक् इतनी संतानें उत्पन्न हुईं।

नारद! एक समयकी बात है। मुनिवर दुर्वासा अनायास घूमते-घूमते रमणीय द्वारकापुरीमें आये। उस समय उनके साथ तीन करोड़ शिष्य भी थे। उन्हें आया देखकर पुत्र और पुरोहितके साथ महाराज उग्रसेन, वसुदेव, श्रीकृष्ण, अक्रूर तथा उद्धवने षोडशोपचारद्वारा मुनिवरकी पूजा करके उन्हें प्रणाम किया। ब्रह्मन्! तब मुनिवरने उन्हें पृथक्-पृथक् शुभाशीर्वाद दिये। तदनन्तर वसुदेवजीने अपनी कन्या एकानंशाको शुभ मुहूर्तमें महर्षि दुर्वासाको दान कर दिया और बहुत-से मोती, माणिक्य, हीरे तथा रत्न दहेजमें दिये। उन्होंने दुर्वासाको बहुमूल्य रत्नोंद्वारा निर्मित एक सुन्दर आश्रम भी दिया।

एक बार मुनिश्रेष्ठ दुर्वासाने अपने मनमें विचारकर देखा कि कहीं तो श्रीकृष्ण रत्ननिर्मित मनोहर पलंगपर शयन कर रहे हैं, कहीं वे सर्वव्यापी प्रभु श्रद्धापूर्वक पुराणकी कथा सुन रहे हैं, कहीं सुन्दर आँगनमें महोत्सव मनानेमें संलग्न हैं, कहीं सत्याद्वारा भक्तिपूर्वक दिया गया ताम्बूल चबा रहे हैं, कहीं शय्यापर पौढ़े हैं और रुक्मिणी श्वेत चँवरोंद्वारा उनकी सेवा कर रही हैं, कहीं आनन्दपूर्वक शयन कर रहे हैं और कालिन्दी उनके चरण दबा रही है; फिर सुधर्मा-सभामें सुन्दर रूप धारण करके सत्समाजके मध्य विराज रहे हैं। ऐश्वर्यशाली मुनिने सर्वत्र उनके साथ समान रूपसे सम्भाषण किया। इस परम अद्भुत दृश्यको देखकर विप्रवर दुर्वासाको महान् विस्मय हुआ। तब वे पुनः रुक्मिणीके महलमें उन जगदीश्वरकी स्तुति करने लगे।

दुर्वासा बोले—जगदीश्वर! आप सबपर विजय पानेवाले, जनार्दन, सबके आत्मस्वरूप, सर्वेश्वर, सबके कारण, पुरातन, गुणरहित, इच्छासे परे, निर्लिप्त, निष्कलङ्क, निराकार, भक्तानुग्रह-मूर्ति, सत्यस्वरूप, सनातन, रूपरहित, नित्य नूतन और ब्रह्मा, शिव, शेष तथा कुबेरद्वारा वन्दित हैं। लक्ष्मी आपके चरणकमलोंकी सेवा करती रहती हैं, आप ब्रह्मज्योति और अनिर्वचनीय हैं,

वेद भी आपके रूप और गुणका थाह नहीं लगा पाते और आप महाकाशके समान सम्माननीय हैं; आपकी जय हो, जय हो। परमात्मन्! आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। श्रीहरिकी अनुमतिसे मन-ही-मन यों कहकर प्रियवर दुर्वासा श्रीकृष्णको प्रणाम करके वहीं उनके सामने खड़े हो गये। तब जगन्नाथ श्रीकृष्णने उन्हें वह ज्ञान बतलाना आरम्भ किया; जो हितकारक, सत्य, पुरातन, वेदविहित और सभी सत्पुरुषोंद्वारा मान्य था।

श्रीभगवान्ने कहा—विप्र! तुम तो शिवके अंश हो; अतः डरो मत। क्या ज्ञानद्वारा तुम्हें यह नहीं ज्ञात है कि मैं सबका उत्पत्तिस्थान हूँ और सभी मुझसे उत्पन्न होते हैं? मुने! मैं ही सबका आत्मा हूँ। मेरे बिना सभी शवतुल्य हो जाते हैं। प्राणियोंके शरीरसे मेरे निकल जानेपर सभी शक्तियाँ नष्ट हो जाती हैं। अकेला मैं ही उत्पन्न होकर पृथक्-पृथक्-रूपसे व्यक्त होता हूँ। जो भोजन करता है, उसीकी तृप्ति होती है; दूसरे कभी भी तृप्त नहीं होते। जीवादि समस्त प्राणियोंकी प्रतिमाएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। गोलोक-स्थित रासमण्डलमें परिपूर्णतम मैं ही हूँ। राधा श्रीदामाके शापसे इस समय मेरा दर्शन नहीं कर सकती। सभी राधाके अंश-कलांशरूपसे उत्पन्न हुए हैं। रुक्मिणीके भवनमें राधाका अंश है और अन्य सभी रानियोंके महलोंमें कलाएँ हैं। मेरा भी शरीरधारियोंकी प्रतिमाओंमें कहीं अंश, कहीं कलाकी कला और कहीं कलाका कलांश वर्तमान है। इतना कहकर जगदीश्वर महलके भीतर चले गये और दुर्वासाजी अपनी प्रिया एकानंशाको त्यागकर श्रीहरिके लिये तप करने चले गये।

(अध्याय ११२)

पार्वतीद्वारा दुर्वासाके प्रति अकारण पत्नी-त्यागके दोषका वर्णन, दुर्वासाका पुनः लौटकर द्वारका जाना, श्रीकृष्णका युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें पधारना, शिशुपालका वध, उसके आत्माद्वारा श्रीकृष्णका स्तवन, श्रीकृष्ण-चरित्रका निरूपण

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! महर्षि दुर्वासा शिष्योंसहित द्वारकापुरीसे निकलकर भक्तिपूर्वक भगवान् शंकरका दर्शन करनेके लिये कैलासको चले। कैलासपर पहुँचकर मुनिने शिव और शिवाको नमस्कार किया तथा शिष्योंसहित पवित्रभावसे प्रणत होकर परम भक्तिके साथ उनकी स्तुति की। फिर श्रीहरिका वह सारा वृत्तान्त, अपनी तपस्याका तत्त्व तथा अपने मनके वैराग्यका वर्णन किया। मुनिकी बात सुनकर सती पार्वती हँस पड़ीं और साक्षात् शंकरजीके संनिकट मुनिसे हितकारक एवं सत्य वचन बोलीं।

पार्वतीने कहा—मुने! तुम्हें धर्मका तत्त्व तो ज्ञात है नहीं, किंतु अपनेको धर्मिष्ठ मानते हो। भला, तुम अपनी संतानहीना पत्नीका परित्याग करके कहाँ तपस्याके लिये जा रहे हो? जो अपनी कुलीना पतिव्रता युवती पत्नीको संतानहीन अवस्थामें त्यागकर संन्यासी, ब्रह्मचारी अथवा यति हो जाता है; व्यापार अथवा नौकरी आदिके निमित्त चिरकालके लिये दूर चला जाता है, मोक्षके हेतु अथवा आवागमनका विनाश करनेके लिये तीर्थवासी अथवा तपस्वी हो जाता है, उसे पत्नीके शापसे मोक्ष तो मिलता नहीं; उलटे धर्मका नाश हो जाता है। परलोकमें उसे निश्चय ही नरककी प्राप्ति होती है और इस लोकमें उसकी कीर्ति नष्ट हो जाती है—ऐसा कमलजन्मा ब्रह्माने कहा है। इसलिये हे विप्र! इस समय

तुम द्वारकाको लौट जाओ, अपने धर्मकी रक्षा करो और मेरी अंशभूता एकानंशाका धर्मपूर्वक पालन करो। वत्स! कल्पवृक्षस्वरूप परमात्मा श्रीकृष्णके चरणकमलका—जो पद्माद्वारा अर्चित और सबके लिये परम दुर्लभ है तथा शम्भु और सनकादि मुनीश्वर जिसका निरन्तर गुणगान करते रहते हैं—परित्याग करके कहाँ तपस्याके लिये जा रहे हो? तुम्हारा यह कार्य तो मनोहर सुधाके त्यागके समान है। मुने! जो स्वप्नमें भी श्रीकृष्णके चरणकमलका जप करता है, वह सौ जन्मोंमें किये हुए पापोंसे मुक्त हो जाता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। उसके द्वारा बचपन, कौमार, जवानी और वृद्धावस्थामें जानमें अथवा अनजानमें जो कुछ पाप किया होता है; वह सारा-का-सारा भस्म हो जाता है। इस भारतवर्षमें जो श्रीकृष्णके चरणकमलका साक्षात् दर्शन करता है; वह तुरंत ही पूजनीय और जीवन्मुक्त हो जाता है—यह ध्रुव है। वह करोड़ों जन्मोंके किये हुए संचित पापसे छूट जाता है और उससे सभी तीर्थ सदा पावन होते रहते हैं। जो श्रीकृष्णसे सम्बन्ध रखनेवाला है—वही व्रत, तप, सत्य, पुण्य और पूजन सफल है; क्योंकि उससे अपने जन्मचक्रका विनाश हो जाता है। वेदोंका पारगामी ब्राह्मण भी यदि श्रीकृष्णकी भक्तिसे विहीन है तो उसके सङ्गसे तथा उसके साथ वार्तालाप करनेसे भक्तोंकी भक्ति नष्ट हो जाती है। ब्राह्मण स्वयं श्रीकृष्णका स्वरूप होता है। जो श्रीकृष्णका प्रसाद खानेवाला है; उसके स्पर्शसे अग्निसे लेकर पवनतक पवित्र हो जाते हैं और वह सारे जगत्को पावन बनानेमें समर्थ हो जाता है। द्विजवर! श्रीकृष्णको छोड़कर कहाँ तपस्या करने जा रहे हो? अरे! सारी तपस्याओंका फल तो श्रीकृष्णके स्मरणसे ही प्राप्त हो जाता है। जिसके उपदेशसे परमात्मा श्रीकृष्णमें भक्ति न उत्पन्न हो, वह गुरु परम वैरी तथा जन्मको निष्फल करनेवाला है*।

पार्वतीके वचन सुनकर शंकर प्रेमविह्वल हो गये। उनके सर्वाङ्गमें रोमाञ्च हो आया और वे परमेश्वरी पार्वतीकी प्रशंसा करने लगे। उधर दुर्वासा शिव और दुर्गाके चरणकमलोंमें प्रणाम करके बारंबार श्रीकृष्णके चरणका स्मरण करते हुए पुनः द्वारकाको लौट गये। वहाँ जाकर उन्होंने श्रीहरिके दर्शन किये और उन परमेश्वरकी स्तुति की। फिर एकानंशाके महलमें जाकर उसके साथ निवास करने लगे। इधर युधिष्ठिरके ध्यान करनेसे श्रीकृष्ण हस्तिनापुरको प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने परमानन्दपूर्वक कुन्ती, राजा युधिष्ठिर तथा भाइयोंसे बातचीत की। फिर युक्तिपूर्वक जरासंध आदिका वध करके मुनिवरों तथा श्रेष्ठ नरेशोंके साथ मनोवाञ्छित राजसूययज्ञ कराया, जिसमें विधिपूर्वक दक्षिणा नियत थी। उस यज्ञके अवसरपर उन्होंने शिशुपाल और दन्तवक्त्रको भी यमलोकका पथिक बना दिया। जिस समय शिशुपाल उस देवताओं और भूपालोंकी सभामें श्रीकृष्णकी अतिशय निन्दा कर रहा था, उसी समय उसका शरीर धराशायी हो गया और जीव श्रीहरिके परम पदकी ओर चला गया; परंतु वहाँ उन सर्वेश्वरको न देखकर वह लौट आया और माधवकी स्तुति करने लगा।

शिशुपाल बोला—माधव! तुम वेदों, वेदाङ्गों, देवताओं, असुरों और प्राकृत देहधारियोंके जनक हो। तुम सूक्ष्म सृष्टिका विधान करके उसमें कल्पभेद करते हो। तुम्हीं मायासे स्वयं ब्रह्मा, शंकर और शेष बने हुए हो। मनु, मुनि, वेद और सृष्टिपालकोंके समुदाय तुम्हारे कलांशसे तथा दिक्पाल और ग्रह आदि कलासे उत्पन्न हुए हैं। तुम स्वयं ही पुरुष, स्वयं स्त्री, स्वयं नपुंसक, स्वयं

---

* तपसां फलमाप्नोति श्रीकृष्णस्मरणेन च॥
यतो भक्तिश्च न भवेत् श्रीकृष्णे परमात्मनि। स गुरुः परमो वैरी करोति जन्म निष्फलम्॥
(११३। २८-२९)

कार्य और कारण तथा स्वयं जन्म लेनेवाले और जनक हो*। यन्त्रके गुण-दोष यन्त्रीपर ही आरोपित होते हैं—ऐसा श्रुतिमें सुना गया है; अतः ये सभी प्राणी यन्त्र हैं और तुम यन्त्री हो। सब कुछ तुममें ही प्रतिष्ठित है। जगद्गुरो! मैं तुम्हारा दुर्बुद्धि एवं मूढ़ द्वारपाल हूँ; अतः मेरा अपराध क्षमा करो और ब्रह्मशापसे मेरी रक्षा करो, रक्षा करो।

यों कहकर जय और विजय (शिशुपाल और दन्तवक्त्र) चल पड़े और शीघ्र ही आनन्दपूर्वक वे दोनों वैकुण्ठके अभीष्ट द्वारपर जा पहुँचे। शिशुपालके इस स्तवनसे वहाँ उपस्थित सभी लोग आश्चर्यचकित हो गये। उन लोगोंने श्रीकृष्णको परिपूर्णतम परमेश्वर माना। तत्पश्चात् राजसूययज्ञ पूर्ण कराकर ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त किया। कौरवों और पाण्डवोंमें भेद उत्पन्न करके युद्ध कराया। इस प्रकार कृपालु भगवान्‌ने पृथ्वीका भार हल्का किया। पुनः द्वारकामें जाकर चिरकालतक निवास किया और राजा उग्रसेनकी आज्ञासे मृतवत्सा ब्राह्मणीके पुत्रोंको जीवन-दान दिया। उन्होंने उन पुत्रोंको मृतक-स्थानसे लाकर उनकी माताको समर्पित कर दिया। यह देखकर देवकीको परम संतोष हुआ; उन्होंने भी अपने मरे हुए पुत्रोंको लानेकी याचना की। तब श्रीकृष्णने अपने सहोदर भाइयोंको मृतक-स्थानसे लाकर माताको सौंप दिया।

तदनन्तर जो अपने घरसे शरणार्थी होकर द्वारकामें आये थे; उन सुदामा ब्राह्मणकी दरिद्रताको तत्काल ही दूर कर दिया। भक्तवत्सल भगवान्‌ने भक्तके चिउड़ोंकी कनीका स्वयं भोग लगाकर उन्हें सात पीढ़ीतक स्थिर रहनेवाली राजलक्ष्मी प्रदान की। जैसे इन्द्र अमरावतीमें राज्य करते हैं, उसी प्रकार उनका भूतलपर राज्य हो गया। वे ऐसे धनाढ्य हो गये, मानो धनके स्वामी कुबेर ही हों। तत्पश्चात् उन्होंने सुदामाको निश्चल हरिभक्ति, अपनी परम दुर्लभ दासता और अविनाशी गोलोकमें यथेष्ट उत्तम पद प्रदान किया।

मुने! फिर पारिजात-हरणके साथ-साथ उन्होंने इन्द्रके गर्वको दूर किया, सत्यभामासे मनोवाञ्छित पुण्यक-व्रतका अनुष्ठान कराया और सर्वत्र नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी उन्नति की। उस व्रतमें अपने-आपको महर्षि सनत्कुमारके प्रति दक्षिणारूपमें समर्पित कर दिया। ब्राह्मणोंको भोजनसे तृप्त करके उन्हें हर्षपूर्वक रत्नोंकी दक्षिणा दी। इस प्रकार सत्यभामाके उत्कृष्ट मानका सब ओर विस्तार किया। मुने! रुक्मिणी तथा अन्यान्य रानियोंके नये-नये सौभाग्यको, वैष्णवों, देवताओं और ब्राह्मणोंके पूजनको तथा नित्य-नैमित्तिक कर्मोंको सर्वत्र बढ़ाया। उन प्रभुने उद्धवको परम आध्यात्मिक ज्ञान प्रदान किया। रणके अवसरपर अर्जुनको गीता सुनायी। कृपालु प्रभुने कृपापरवश हो पृथ्वीको निष्कण्टक करके युधिष्ठिरको राजलक्ष्मी प्रदान की। दुर्गाको वैष्णवी ग्रामदेवताके स्थानपर नियुक्त किया। रमणीय रैवतक पर्वतपर अमूल्य रत्ननिर्मित मन्दिरमें पार्वतीकी प्रसन्नताके लिये नाना प्रकारके नैवेद्यों और मनोहर धूप-दीपोंद्वारा करोड़ों हवनोंसे संयुक्त शुभ यज्ञ कराया। उसमें बहुत-से ब्राह्मणोंको भोजन कराया गया। परमेश्वर गणेशका पूजन किया; उस समय उन्हें नैवेद्यरूपमें अत्यन्त स्वादिष्ट, परम तुष्टिकारक तिलोंके पाँच लाख लड्डू, स्वस्तिकाकार अमृतोपम सात लाख मोदक, शक्करकी सैकड़ों राशियाँ, पके हुए केलेके फल, दस लाख पूए, मिष्टान्न, मनोहर स्वादिष्ट खीर, पूरी-कचौड़ी, घी, माखन, दही और अमृत-तुल्य दूध निवेदित किया। फिर धूप, दीप, पारिजात-पुष्पोंकी माला, सुगन्धित चन्दन, गन्ध और अग्निशुद्ध वस्त्र प्रदान किया। करोड़ों

* स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः। कारणं च स्वयं कार्यं जन्यश्च जनकः स्वयम्॥ (११२। ३१)

हवनोंसे युक्त शुभ यज्ञ कराया, ब्राह्मणोंको जिमाया और गणेश्वरका स्तवन किया। उस समय दस प्रकारके बाजे बजवाये। साम्बने कुष्ठ-रोगके विनाशके लिये पूरे वर्षभरतक अनुपम उपहारोंद्वारा सूर्यका पूजन किया, उस समय मातासहित साम्बको हविष्यान्नका भोजन कराया गया। तब स्वयं सूर्यदेवने प्रकट होकर साम्बको वरदान दिया और अपना स्तोत्र प्रदान किया। (अध्याय ११३)

अनिरुद्ध और उषाका पृथक्-पृथक् स्वप्नमें दर्शन, चित्रलेखाद्वारा अनिरुद्धका अपहरण, अन्तःपुरमें अनिरुद्ध और उषाका गान्धर्व-विवाह

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! प्रद्युम्न श्रीकृष्णके पुत्र थे, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न थे। उनके पुत्र अनिरुद्ध थे, जो विधाताके अंशसे उत्पन्न हुए थे। अनिरुद्ध एक दिन निर्जन स्थानमें पुष्प और चन्दनचर्चित पलंगपर सोये हुए थे। उन्होंने स्वप्नमें खिले हुए पुष्पोंके उद्यानमें सुगन्धिकुसुम-शय्यापर सोयी हुई एक अनन्य सुन्दरी नवयुवती रमणीको मधुर-मधुर मुस्कराते देखा। तब अनिरुद्धने 'मैं त्रिलोकीनाथ श्रीकृष्णका पौत्र तथा कन्दर्पका पुत्र हूँ'—यों अपना परिचय देते हुए उस तरुणीसे पतिरूपमें स्वीकार करनेका अनुरोध किया। इसपर उस तरुणीने यथाविधि विवाहिता यज्ञपत्नी अर्थात् अग्निकी साक्षीमें जिससे विधिवत् विवाह किया जाता है और कामवृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये स्वीकृत नैमित्तिक पत्नीका शुभाशुभ भेद बतलाते हुए कहा—

'मैं बाणासुरकी कन्या हूँ, मेरा नाम उषा है। त्रैलोक्यविजयी बाण शंकरजीके किंकर हैं और शंकर लोकोंके स्वामी हैं। नारी तीनों कालोंमें पराधीन रहती है, वह कभी स्वतन्त्र नहीं होती। जो नारी स्वतन्त्र होती है, वह नीच कुलमें उत्पन्न हुई पुंश्चली होती है। पिता ही कन्याको योग्य वरके हाथ सौंपता है। कन्या वरकी याचना नहीं करती—यही सनातन धर्म है। प्रभो! तुम मेरे योग्य हो और मैं तुम्हारे योग्य हूँ; अतः यदि तुम मुझे पाना चाहते हो तो बाणासुर, शम्भु अथवा सती पार्वतीसे मेरे लिये प्रार्थना करो।' यों कहकर वह सती-साध्वी सुन्दरी अन्तर्धान हो गयी। मुने! तब कामके वशीभूत हुए कामात्मज अनिरुद्धकी नींद सहसा टूट गयी। जागनेपर उन्हें स्वप्नका ज्ञान हुआ। उस समय उनका अन्तःकरण कामसे व्यथित था और वे अपनी उस प्राणवल्लभाको न देखकर व्याकुल और अशान्त हो रहे थे। इस प्रकार पुत्रको उद्विग्न तथा विकल देखकर सती देवकी, रुक्मिणी तथा अन्यान्य सभी महिलाओंने भगवान् श्रीकृष्णको सूचित किया। मधुसूदन श्रीकृष्ण तो परिपूर्णतम तथा सम्पूर्ण तत्त्वोंके ज्ञाता ही ठहरे, वे उनकी बात सुनकर ठठाकर हँस पड़े और बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—महिलाओ! भगवती दुर्गाने बाणासुरकी कन्याका शीघ्र विवाह हो, इसके लिये अनिरुद्धको स्वप्नमें उसे दिखाया है। अब मैं बाणकन्या उषाको स्वप्नमें अनिरुद्धके दर्शन कराता हूँ। तुम लोग अनिरुद्धके लिये कोई चिन्ता न करो। तदनन्तर श्रीकृष्णने स्वप्नमें उषाको सर्वांगसुन्दर कोटि-कोटि-कन्दर्प-दर्पहारी अनिरुद्धके दर्शन कराये। स्वप्न टूटते ही उषा अत्यन्त व्याकुल हो गयी। उसकी अन्यमनस्कता और विषण्णता देखकर सखी चित्रलेखाने कहा—

'कल्याणि! चेत करो। तुम्हारा यह नगर दुर्लङ्घ्य है। इसमें साक्षात् शम्भु और शिवा वास करते हैं; तब भला, तुम्हें यह भयंकर भय कहाँसे उत्पन्न हो गया? सखी! शिव ही मङ्गलोंके वासस्थान हैं; अतः उनका स्मरणमात्र कर लेनेसे सभी अरिष्ट दूर भाग जाते हैं और सर्वत्र मङ्गल ही होता है। दुर्गतिनाशिनी दुर्गाका ध्यान करनेसे

सभी क्लेश नष्ट हो जाते हैं। ये सर्वमङ्गलमङ्गला हैं; अतः ध्यानकर्ताको मङ्गल प्रदान करती हैं।' चित्रलेखाका कथन सुनकर सती उषा फूट-फूटकर रोने लगी और बाण शंकरके निकट ही विषाद करते हुए मूर्च्छित हो गये। यह देखकर शंकर, दुर्गा, कार्तिकेय और गणेश हँसने लगे।

तब गणेश्वर बोले—स्वयं देवी पार्वतीने जाकर स्वप्नमें कामदेव-नन्दन अनिरुद्धको काममत्त बनाया है और इस समय ये शम्भुके वामपार्श्वमें मूक बनी बैठी हैं। भगवान् श्रीहरि तो सर्वज्ञ ही हैं; उन ईश्वरने सारा रहस्य जानकर बाणकन्या उषाको स्वप्नमें सुन्दर-वेषधारी पुरुषका दर्शन कराया है। अतः अब सुयोगिनी चित्रलेखा खेल-ही-खेलमें प्रमत्त अनिरुद्धको लानेके लिये शीघ्र ही द्वारकापुरीको प्रस्थान करे।

ऐसा सुनकर महादेवजीने गणेशसे कहा—बेटा! जिस प्रकार यह शुभ कार्य बाणके

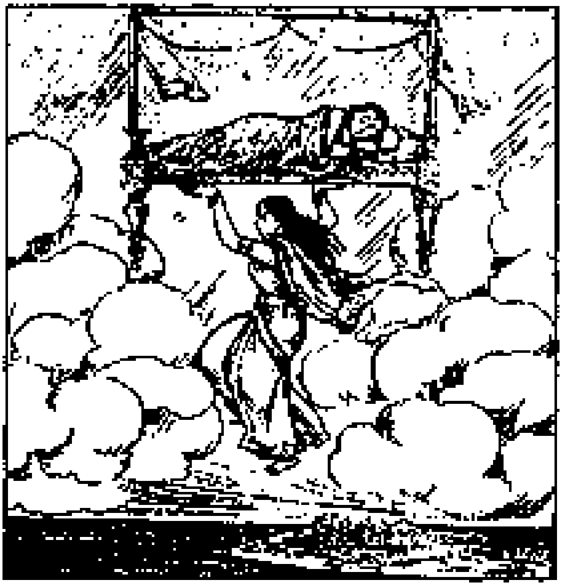

श्रवणगोचर न हो, वैसा ही प्रयत्न तुम्हें करना चाहिये।' इधर चित्रलेखा तुरंत ही द्वारकाको चल पड़ी। श्रीहरिका वह भवन यद्यपि सबके लिये दुर्लक्ष्य था, तथापि वह अनायास ही उसमें प्रवेश कर गयी। वहाँ अनिरुद्ध नींदमें सो रहे थे। उसने योगबलसे हर्षपूर्वक उस नींदमें मते हुए बालकको उठाकर रथपर बैठा लिया। मुने! भद्रा चित्रलेखा मनके समान वेगशालिनी थी। वह उस बालकको लेकर शङ्खध्वनि करके दो ही घड़ीमें शोणितपुर आ पहुँची। तदनन्तर अनिरुद्धको न देखकर श्रीकृष्णके महलोंमें उदासी छा गयी। तब सर्वतत्त्ववेत्ता सर्वज्ञ श्रीकृष्णने सबको आश्वासन देकर शोणितपुरको सेनासहित प्रयाण किया।

इधर महर्षि दुर्वासाकी शिष्या योगिनी चित्रलेखाने—जो नारियोंमें धन्या, पुण्या, मान्या, शान्ता तथा योगसिद्ध होनेके कारण सिद्धिदायिनी थी, माताका स्मरण करके रोते हुए उस बालकको समझाया। फिर स्नान कराकर उसे पुष्पमाला और चन्दनसे विभूषित किया। इस प्रकार उस बालकका सुन्दर वेष बनाकर वह कन्याके अन्तःपुरमें—जो रक्षकोंद्वारा सुरक्षित था—योगबलसे प्रविष्ट हुई। वहाँ आहारका परित्याग कर देनेसे जिसका उदर सट गया था और जिसे सखियाँ चारों ओरसे घेरे हुए थीं; उस उषाको सुरक्षित देखकर शीघ्र ही उसे जगाया। उस समय उषाको भलीभाँति स्नान कराया गया और वस्त्र, माला, चन्दन तथा माङ्गलिक सिन्दूर-पत्रकोंद्वारा उसका शृङ्गार किया गया। फिर माहेन्द्र नामक शुभ मुहूर्त आनेपर उसने सखियोंकी गोष्ठीमें उन दोनोंका परस्पर वार्तालाप कराया। पतिको देखकर पतिव्रता उषाका कष्ट दूर हो गया और वह उनके साथ विहार करने लगी। तब प्रद्युम्ननन्दन अनिरुद्धने गान्धर्वविवाहकी विधिसे उसका पाणिग्रहण कर लिया। विप्रवर! इस प्रकार जब बहुत दिन बीत गये; तब रक्षकद्वारा राजा बाणासुरको यह समाचार सुननेको मिला।

(अध्याय ११४)

कन्याकी दुःशीलताका समाचार पाकर बाणका युद्धके लिये उद्यत होना; शिव, पार्वती, गणेश, स्कन्द और कोटरीका उसे रोकना; परंतु बाणका स्कन्दको सेनापति बनाकर युद्धके लिये नगरके बाहर निकलना, उषाप्रदत्त रथपर सवार होकर अनिरुद्धका भी युद्धोद्योग करना, बाण और अनिरुद्धका परस्पर वार्तालाप

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर अन्तःपुरके रक्षकोंने भयभीत हो स्कन्द, गणेश और पार्वतीको दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर प्रणाम किया और अपने स्वामी बाणसे सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुनकर बाणको बड़ी लज्जा हुई और वह क्रुद्ध हो उठा। उस समय शम्भु, गणेश, स्कन्द, पार्वती, भैरवी, भद्रकाली, योगिनियाँ, आठों भैरव, एकादश रुद्र, भूत, प्रेत, कूष्माण्ड, बेताल, ब्रह्मराक्षस, योगीन्द्र, सिद्धेन्द्र, रुद्र, चण्ड आदि तथा माताकी भाँति हितैषिणी करोड़ों ग्रामदेवियाँ—ये सभी उसके हितके लिये बराबर मना कर रहे थे; फिर भी उसने युद्ध करनेका ही विचार निश्चित किया। तब शंकरजी अपनेको पण्डित माननेवाले मूर्ख बाणसे हितकारक, सत्य, नीतिशास्त्रसम्मत और परिणाममें सुखदायक वचन बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—बाण! मैं इस पुरातनी कथाका वर्णन करता हूँ, सुनो। स्वयं परमेश्वर पृथ्वीका भार उतारनेके लिये भारतवर्षमें सभी नरेशोंका संहार करके द्वारकामें विराजमान हैं। जिनके रोमोंमें सारे विश्व वर्तमान हैं, उन वासुके भी वे ईश्वर हैं; इसीलिये विद्वान् लोग उन्हें 'वासुदेव' ऐसा कहते हैं। स्वयं भगवान् चक्रपाणि भूतलपर ब्रह्माके भी विधाता हैं। वे ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदिके स्वामी हैं; प्रकृतिसे परे, निर्गुण, इच्छारहित, भक्तानुग्रहमूर्ति, परब्रह्म, परम धाम और देहधारियोंके परमात्मा हैं। जिनके शरीरसे निकल जानेपर जीव शवतुल्य हो जाता है; उनके साथ तुम्हारा संग्राम कैसे सम्भव हो सकता है? अनिरुद्ध उन्हींके पुत्र (पौत्र) हैं। वे महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं और क्षणभरमें अकेले ही तीनों लोकोंका संहार करनेमें समर्थ हैं। जितने महारथी बलवान् देवता और दैत्य हैं, वे सभी अनिरुद्धकी सोलहवीं कलाके भी बराबर नहीं हैं। जिन दो व्यक्तियोंमें समान धन हो और जिनमें बलकी भी समानता हो; उन्हीं दोनोंमें विवाह और मैत्री शोभा देती है। बलवान् और निर्बलका सम्बन्ध उचित नहीं होता। तुम्हारे पिता महारथी बलि दैत्योंके सारभूत और श्रीहरिकी कला थे। उन्हें भी जिसने क्षणभरमें ही सुतल-लोकको भेज दिया; उन्हीं वृन्दावनेश्वर परम पुरुष परिपूर्णतम परमात्मा श्रीकृष्णके सभी जीव अंश-कलाएँ हैं।

पार्वतीजी बोलीं—बाण! ब्रह्मा, महेश, शेष और ध्याननिष्ठ भक्त रात-दिन अपने हृदयकमलमें उन सनातन भगवान्‌का ध्यान करते रहते हैं। सूर्य, गणेश और योगीन्द्रोंके गुरु-के-गुरु शिव उन ऐश्वर्यशाली सनातन परमात्माके ध्यानमें तल्लीन रहते हैं। सनत्कुमार, कपिल, नर तथा नारायण अपने हृदय-कमलमें उन सनातन भगवान्‌का ध्यान लगाते हैं। मनु, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र और योगीन्द्र ध्यानद्वारा अप्राप्य उन सनातन भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न रहते हैं। जो सबके आदि, सबके कारण, सर्वेश्वर और परात्पर हैं; उन सनातन भगवान्‌का सभी ज्ञानी ध्यान करते हैं।

तदनन्तर गणेश और स्कन्दने भी बाणको श्रीकृष्णकी महिमा भलीभाँति समझाकर युद्ध न करके अनिरुद्धके साथ उषाका विवाह कर देनेके लिये अनुरोध किया। अन्तमें कोटरी बोली—'वत्स! धर्मानुसार मैं भी तुम्हारी माता हूँ; अतः जो कुछ

कहती हूँ, उसे श्रवण करो। दुष्ट पुत्रसे भी माता-पिताको पद-पदपर दुःख ही होता है। दूसरेके द्वारा ग्रहण की गयी यह कन्या उषा अब दूसरेको देनेके योग्य नहीं ही है; अतः जो श्रीकृष्णके पौत्र और प्रद्युम्नके पुत्र हैं, उन महान् बलशाली अनिरुद्धको स्वेच्छानुसार अपनी कन्या दान कर दो। इससे तुम भारतवर्षमें अपनी सात पीढ़ियोंके साथ पावन हो जाओगे। फिर भूतलपर महान् यशकी प्राप्तिके लिये अपना सर्वस्व दहेजमें समर्पित कर दो। अन्यथा माधव युद्धस्थलमें सुदर्शन-चक्रद्वारा तुम्हारा वध कर डालेंगे। उस समय कौन तुम्हारी रक्षा कर सकेगा?'

मुने! कोटरीकी बात सुनकर अभिमानी दैत्यश्रेष्ठ बाण कुपित हो उठा। वह रथपर आरूढ़ हो उस स्थानके लिये प्रस्थित हुआ जहाँ श्रीहरिके पौत्र अनिरुद्ध वर्तमान थे। उस समय भक्तवत्सल शंकरकी आज्ञासे स्कन्द सेनापति होकर उसके साथ चले। स्वयं शिव और गणेशने बाणके लिये स्वस्तिवाचन किया। पार्वती तथा कोटरीने उसे शुभाशीर्वाद दिया। आठों भैरव और एकादश रुद्र—ये सभी हाथोंमें शस्त्र धारण करके युद्धके लिये तैयार हुए। इसी बीच एक दूतने, जिसे पार्वती देवी तथा बाणपत्नीने भेजा था, तुरंत ही जाकर अनिरुद्धको भी यह समाचार सूचित कर दिया।

दूत बोला—अनिरुद्ध! उठो और पार्वतीका यह मङ्गल-वचन श्रवण करो। (उन्होंने कहा है—) 'वत्स! कवच धारण कर लो और बाहर निकलकर युद्ध करो।' यह सुनकर उषा भयभीत हो गयी; वह डरके मारे रोती हुई सती पार्वतीका ध्यान करके बोली—'महामाये! मेरे मनोनीत प्राणेश्वरकी रक्षा करो, रक्षा करो। यद्यपि ये निर्भय हैं; तथापि इस महाभयंकर संग्राममें इन्हें अभयदान दो। तुम्हीं जगत्‌की माता हो; अतः तुम्हारा सबपर समान स्नेह है।'

तत्पश्चात् ऐश्वर्यशाली अनिरुद्धने कवच पहनकर हाथमें शस्त्र धारण किये और उषाद्वारा दिये गये रथको पाकर वे उसपर हर्षपूर्वक आरूढ़ हुए। शिविरसे बाहर निकलकर उन्होंने बाणको देखा, जो कवच पहनकर हाथोंमें शस्त्र धारण किये हुए था। उसके नेत्र क्रोधसे लाल हो रहे थे। अनिरुद्धको देखकर बाण क्रोधसे भर गया। वह उस घोर संग्रामके मध्य प्रज्वलित होता हुआ सिंहोक्तियाँ उगलने लगा। उसने भाँति-भाँतिसे श्रीकृष्णके चरित्रपर दोषारोपण करके उनकी निन्दा की और अनिरुद्धने उसका विवेकपूर्ण खण्डन करके श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन किया।

(अध्याय ११५)

बाण और अनिरुद्धके संवाद-प्रसङ्गमें अनिरुद्धद्वारा द्रौपदीके पाँच पति होनेका वर्णन, बाणसेनापति सुभद्रका अनिरुद्धके साथ युद्ध और अनिरुद्धद्वारा उसका वध

बाणने कहा—अनिरुद्ध! तुम बड़े बुद्धिमान् हो। तुम्हारा कथन सत्य ही है। शम्भुने भी ऐसा ही बतलाया था। अब तुमने जो यह कहा है कि महाभागा द्रौपदी शंकरजीके वरदानसे पाँच पतियोंकी प्रिया थीं, वह वृत्तान्त विस्तारपूर्वक मुझसे वर्णन करो। साथ ही यह भी बतलाओ कि पहले शम्बरने तुम्हारी माता रतिका किस प्रकार अपहरण किया था? उसने देवताओंको पराजित कैसे किया था? और देवगणोंने किस तरह रतिको उसे प्रदान किया था?

अनिरुद्ध बोले—बाण! एक समयकी बात है। पञ्चवटीमें श्रीरघुनाथजी सीता और लक्ष्मणके साथ सरोवरमें स्नान करके उसके रमणीय तटपर बैठे हुए थे। उस समय हेमन्तका समय था;

अत: उन्होंने सीतासे कहा—'प्रिये! इस समय अत्यन्त स्वादिष्ट निर्मल जल, अन्न, मनोहर व्यञ्जन तथा सारी वस्तुएँ अत्यन्त शीतल हैं।' यों कहकर उन्होंने फल-संग्रह किया और हर्षपूर्वक उन्हें सीताको प्रदान किया। तत्पश्चात् लक्ष्मणको देकर पीछे स्वयं प्रभुने भोग लगाया। लक्ष्मणने वह फल और जल ले तो लिया, परंतु खाया नहीं; क्योंकि वे सीताका उद्धार करनेके लिये मेघनादका वध करना चाहते थे। (उनको यह पता था कि) जो चौदह वर्षतक न तो नींद लेगा और न भोजन करेगा; वही योगी पुरुष उस रावणकुमार मेघनादको मार सकेगा। इसी बीच कमललोचन रामका दर्शन करनेके लिये कृपानिधि अग्नि ब्राह्मणका वेष धारण करके वहाँ आये और कर्णकटु भविष्य-वचन कहने लगे।

अग्निदेव बोले—महाभाग राम! मेरी बात सुनो और सीताकी भलीभाँति रक्षा करो; क्योंकि प्राक्तन कर्मवश दुर्निवार्य एवं दुष्ट राक्षस रावण सात दिनके भीतर ही जानकीको हर ले जायगा। भला, विधाताने जिस प्राक्तन कर्मको लिख दिया है; उसे कौन मिटा सकता है? चारों देवताओंने भी यही कहा है कि दैवसे बढ़कर श्रेष्ठ दूसरा कोई नहीं है।

तब श्रीरामजीने कहा—अग्निदेव! तब तो सीताको आप अपने साथ लेते जाइये और उसकी छाया यहीं रहेगी; क्योंकि पत्नीके बिना किया हुआ कर्म सभीके लिये निन्दित होता है। तब अग्निदेव रोती हुई सीताको साथ लेकर चले गये और सीताके सदृश जो छाया थी; वह रामके संनिकट रहने लगी। पूर्वकालमें रावणने खेल-ही-खेलमें उसी छायाका हरण किया था और श्रीरामने भाई-बन्धुओंसहित उस रावणका वध करके उस छायाका ही उद्धार किया था। अग्नि-परीक्षाके अवसरपर जो छाया अग्निमें प्रविष्ट हुई थी; उस छायाको अपने संरक्षणमें रखकर अग्निने रामको असली जानकी लौटा दी। तब श्रीराम जानकीको लेकर हर्षपूर्वक अपने आश्रमको चले गये और छाया दु:खित हृदयसे अग्निके पास रहने लगी। वही छाया नारायण-सरोवरमें जाकर तप करने लगी। उसने सौ दिव्य वर्षोंतक शंकरजीके लिये घोर तपस्या की; तब शंकरजी प्रकट होकर उससे बोले—'भद्रे! वर माँगो।' वह पतिके दु:खसे दु:खी थी; अत: व्यग्रतापूर्वक शिवजीसे बोली। उसने उस व्यग्रतामें ही त्रिनेत्रधारी शिवजीसे 'पतिं देहि'—पति दीजिये यों पाँच बार वर माँगा। तब सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके प्रदाता शिव प्रसन्न होकर उसे वर देते हुए बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—साध्वि! तुमने व्याकुल होकर 'पतिं देहि'—पति दीजिये यों पाँच बार कहा है; अत: श्रीहरिके अंशभूत पाँच इन्द्र तुम्हारे पति होंगे। वे ही सभी पाँचों इन्द्र इस समय पाँच पाण्डव हुए हैं और वह छाया द्रौपदी-रूपमें यज्ञकुण्डसे उत्पन्न हुई है। वही छाया कृतयुगमें वेदवती, त्रेतामें जनकनन्दिनी और द्वापरमें द्रौपदी हुई है; इसी कारण वह त्रिहायणी कृष्णा कहलाती है। वह वैष्णवी तथा श्रीकृष्णकी भक्त है; इसलिये भी कृष्णा कही जाती है। वही पीछे चलकर महेन्द्रोंकी स्वर्गलक्ष्मी होगी। राजा द्रुपदने कन्याके स्वयंवरमें उसे अर्जुनको दिया। वीरवर अर्जुनने मातासे पूछा—'माँ! इस समय मुझे एक वस्तु मिली है।' तब माताने अर्जुनसे कहा—'उसे सभी भाइयोंके साथ बाँटकर ग्रहण करो।' इस प्रकार पहले शम्भुका वरदान था ही, पीछे माता कुन्तीकी भी आज्ञा हो गयी—इसी कारण पाँचों पाण्डव द्रौपदीके पति हुए। ये पाँचों पाण्डव चौदह इन्द्रोंमेंसे पाँच इन्द्र हैं।

माताद्वारा भर्त्सना किये जानेपर शंकरजीने मेरी माता रतिको शाप देते हुए कहा—'रति! तुम्हारा पति शंकरकी क्रोधाग्निसे जलकर भस्म हो जायगा। इस समय तुम शापित होकर दैत्यके

अधीन होओगी। शम्बरासुर इन्द्रसहित देवताओंको जीतकर तुम्हें हर ले जायगा।' यों कहकर उन्होंने पुनः वरदान भी दिया—'तुम्हारा सतीत्व नष्ट नहीं होगा। जबतक तुम्हारा पति जीवित नहीं हो जाता, तबतक तुम शम्बरासुरको अपनी छाया देकर उसके घरमें वास करो।' दैत्येन्द्र! इस प्रकार मैंने तुमसे वह सारा पुरातन इतिहास कह सुनाया; अब देवोंके गुप्त चरित्रको श्रवण करो।

इसी समय बाणका प्रधान सेनापति महाबली सुभद्रने, जो कुम्भाण्डका भाई, बलसम्पन्न और महारथी था, शस्त्रोंसे लैस होकर समरभूमिमें बाणकी निर्भर्त्सना करके श्रीकृष्णपौत्र अनिरुद्धपर प्रलयाग्निकी भाँति चमकीला त्रिशूल चलाया; परंतु प्रद्युम्नकुमारने एक अर्धचन्द्रद्वारा उस शूलके टुकड़े-टुकड़े कर दिये। तब सुभद्रने सैकड़ों सूर्योंके समान प्रभाशाली शक्ति फेंकी। अनिरुद्धने वैष्णवास्त्रद्वारा उस शक्तिको भी काट गिराया। फिर तो घोर संग्राम आरम्भ हो गया। अनिरुद्धने सुभद्रको मार गिराया। तदनन्तर बाणके साथ भयंकर युद्ध हुआ। जब अनिरुद्ध बाणासुरका वध करनेको उद्यत हुए, तब कार्तिकेयने उसे बचा लिया। फिर कार्तिकेयके साथ उनका महान् संग्राम हुआ।

(अध्याय ११६)

गणेश-शिव-संवाद

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इसी समय गणेशने शिवजीके स्थानपर जाकर उन महेश्वरको नमस्कार किया और बाण-अनिरुद्धका युद्ध, सुभद्रका वध, स्कन्द और अनिरुद्धका युद्ध तथा अनिरुद्धका प्रबल पराक्रम—यह सारा वृत्तान्त क्रमशः पृथक्-पृथक् कह सुनाया। गणेशका कथन सुनकर भगवान् शंकर हँस पड़े और कोमल वाणीद्वारा परम गुप्त एवं वेदसम्मत वचन बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—महाभाग गणेश्वर! मेरा वचन, जो हितकारक, तथ्य, नीतिका साररूप तथा परिणाममें सुखदायक है, उसे श्रवण करो। असंख्य विश्वोंका समुदाय, कृष्णकुमार प्रद्युम्न, अनिरुद्ध तथा जो कार्य और कारणोंका कारण है, यह सब कुछ श्रीकृष्णको ही जानो। गणेश्वर! ब्रह्मासे लेकर तृणपर्यन्त सारा जगत् सनातन भगवान् श्रीकृष्णका स्वरूप है—इसे सत्य समझो। जो गोलोकमें दो भुजाधारी, शान्त, राधाके प्रियतम, मनोहर रूपवाले, शिशुरूप, गोप-वेषधारी, परिपूर्णतम प्रभु हैं; गोपियों, गोपसमुदायों तथा कामधेनुओंसे घिरे रहते हैं; पवित्र रमणीय वृन्दावनके रासमण्डलमें जो हाथमें मुरली लिये विचरते रहते हैं; ब्रह्मा, शिव, शेष जिनकी वन्दना करते हैं; जो शैलराज शतशृङ्गपर वटकी शान्त छायामें तथा भाण्डीरके निकट विरजा नदीके निर्मल तटपर स्थित गोष्ठमें विहार करते हैं; जिनके शरीरका वर्ण नूतन जलधरके समान श्याम है, पीताम्बरद्वारा जिनकी उसी प्रकार शोभा होती है, जैसे मेघोंकी नयी घटा बिजलीसे सुशोभित होती है। उन सबका गोलोकस्थित रासमण्डलमें आविर्भाव होता है। रमणीय गोकुल तथा पुण्य वृन्दावनमें जितने जीव हैं, वे सभी उस परम पुरुषकी अंशकलाएँ हैं; किंतु श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं। परिपूर्णतम काम ब्रह्मशापके कारण अपनेको भूल गया है। अनिरुद्ध उसी कामके पुत्र हैं, जो महान् बल-पराक्रमसे सम्पन्न हैं। इस अत्यन्त भयंकर महायुद्धमें मैंने ही स्कन्दको भेजा है। इस संग्राममें बाण मर चुका था; परंतु उस स्कन्दने ही उसे बचा लिया है। गणेश्वर! युद्धमें स्कन्द और अनिरुद्धकी समानता तो है,

किंतु आठों भैरव, एकादश रुद्र, आठ वसु, इन्द्र आदि ये देवगण, द्वादश आदित्य, सभी दैत्यराज, देवताओंके अग्रणी स्कन्द तथा गणसहित बाण—ये सभी संग्राममें अनिरुद्धको पराजित नहीं कर सकते। अनिरुद्ध स्वयं ब्रह्मा, प्रद्युम्न कामदेव, बलदेव स्वयं शेषनाग और श्रीकृष्ण प्रकृतिसे परे हैं। गणेश्वर! इस प्रकार यह सारा रहस्य मैंने तुम्हें बता दिया। तुम तो स्वयं ही शुभस्वरूप और विघ्नोंका विनाश करनेवाले हो; अतः बाणकी रक्षा करो। श्रीहरि अस्त्रश्रेष्ठ सुदर्शनको, जो अमोघ और करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् है, लेकर शीघ्र ही आयेंगे। (अध्याय ११७)

मणिभद्रका शिवजीको सेनासहित श्रीकृष्णके पधारनेकी सूचना देना, शिवजीका बाणकी रक्षाके लिये दुर्गासे कहना, दुर्गाका बाणको युद्धसे विरत होनेकी सलाह देना

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार गणेशको समझाकर शिवजी महलके भीतर गये। वहाँ दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, भैरवी, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरी रमणीय सिंहासनोंपर विराजमान थीं। उन सबने सहसा उठकर जगदीश्वर शिवको नमस्कार किया। तत्पश्चात् गणेश, पराक्रमी कार्तिकेय, बाण, वीरभद्र, स्वयं नन्दी, सुनन्दक, महामन्त्री महाकाल, आठों भैरव, सिद्धेन्द्र, योगीन्द्र और एकादश रुद्र—ये सभी वहाँ आ गये। इसी बीच सिंहद्वारपर पहरा देनेवाला स्वयं मणिभद्र वहाँ आया और उन परमेश्वर शिवसे बोला।

मणिभद्रने कहा—महेश्वर! बलदेव, प्रद्युम्न, साम्ब, सात्यकि, महाराज उग्रसेन, स्वयं भीम, अर्जुन, अक्रूर, उद्धव और शक्रनन्दन जयन्त तथा जो विधिके भी विधाता हैं, जिनकी कान्ति करोड़ों कामदेवोंकी शोभाको छीने लेती है, वनमाला जिनकी शोभा बढ़ा रही है, सात गोप-पार्षद श्वेत चँवरोंद्वारा जिनकी सेवा कर रहे हैं, जो करोड़ों सूर्योंके समान कान्तिमान् अनुपम चक्र धारण करते हैं; वे परमेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण बहुमूल्य रत्नोंके सारभागसे निर्मित परम रमणीय उत्तम रथमें कौमोदकी गदा, अमोघ शूल और विश्वसंहारकारी महाशङ्ख पाञ्चजन्य रखकर यादवोंकी असंख्य सेनाओंके साथ पधार गये हैं। प्रभो! बलदेवने हलके द्वारा लाखों मल्लोंका कचूमर निकाल दिया है और उद्यानोंकी चहारदीवारीको तोड़-फोड़ डाला है। ये द्वारपालोंका वध करके महाद्वारमें घुस आये हैं। ऐसा सुनकर महादेवजी उस सुर-समाजमें पार्वती, भद्रकाली, स्कन्द, गणपति, आठों भैरवों, एकादश रुद्रों, वीरभद्र, महाकाल, नन्दी तथा सभी नवों सेनापतियोंसे बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—सेनाध्यक्षो! गोलोक-नाथ भगवान् चक्रपाणि आ गये हैं। वे क्षणभरमें विश्व-समूहका विनाश कर सकते हैं; फिर इस नगरकी तो बात ही क्या है। अतः तुम सब लोग सभी उपायोंद्वारा यत्नपूर्वक बाणकी रक्षा करो। अब बाण लम्बोदर गणेशका स्मरण करके संग्रामभूमिको जाय। उसके दक्षिणभागमें स्कन्द, आगे-आगे गणेश्वर और वामभागमें आठों भैरव, एकादश रुद्र, स्वयं महारथी नन्दी, महाकाल, वीरभद्र तथा अन्यान्य सैनिक उसकी रक्षा करें। ऊर्ध्वभागमें दुर्गा, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरीको रहना चाहिये। दुर्गतिनाशिनी दुर्गे! बाणकी रक्षा करो। महाभागे! तुम्हीं श्रीकृष्णकी शक्ति हो; इसीलिये 'नारायणी' कही जाती हो। विष्णुमाये! तुम जगज्जननी तथा सम्पूर्ण मङ्गलोंकी भी मङ्गलस्वरूपा हो; अतः चक्रोंके साररूप

अमोघ सुदर्शनचक्रसे बाणको बचाओ; क्योंकि बाण मुझे गणेश, कार्तिकेय आदि सभीसे भी बढ़कर प्रिय है। अतः बाणके मस्तकपर तुम अपने चरणकमलकी रजके साथ-साथ अपना वरद हस्त स्थापित करो। शिवजीका कथन सुनकर दुर्गतिनाशिनी दुर्गा मुस्करायीं और समयोचित यथार्थ मधुर वचन बोलीं।

पार्वतीजीने कहा—बाण! तुम्हारे पास जो-जो उत्तम मणि, रत्न, मोती, माणिक्य और हीरे आदि हैं, उस सारे धनको तथा रत्नाभरणोंसे विभूषित अपनी कन्या उषाको रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित परम श्रेष्ठ अनिरुद्धको आगे करके परमात्मा श्रीकृष्णको सौंप दो और इस प्रकार अपने राज्यको निष्कण्टक बना लो। भला, जिसके निकल जानेपर इन्द्रियोंसहित सभी प्राण विलीन हो जाते हैं, उस जीवका आत्माके साथ युद्ध कैसा? मैं ही शक्ति हूँ, ब्रह्मा मन हैं और स्वयं शिव ज्ञानस्वरूप हैं। शिवका त्याग करके देह तुरंत ही गिर जाता है और शवरूप हो जाता है। शिवजी! भला, संग्राममें सुदर्शनचक्रके तेजके सामने कौन ठहर सकता है? श्रीकृष्ण सबके परमात्मा, भक्तानुग्रहमूर्ति, नित्य, सत्य, परिपूर्णतम प्रभु हैं। गणेश और कार्तिकेय तथा इन दोनोंसे भी परे आप मेरे लिये प्रिय हैं और किंकरोंमें बाण प्रिय है; किंतु श्रीकृष्णसे बढ़कर प्यारा दूसरा कोई नहीं है। मैं ही वैकुण्ठमें महालक्ष्मी, गोलोकमें स्वयं राधिका, शिवलोकमें शिवा और ब्रह्मलोकमें सरस्वती हूँ। पूर्वकालमें मैं ही दैत्योंका संहार करके दक्षकन्या सती हुई, फिर वही मैं आपकी निन्दाके कारण शरीरका त्याग करके शैलकन्या पार्वती बनी। रक्तबीजके युद्धमें मैंने ही मूर्तिभेदसे कालीका रूप धारण किया था। मैं ही वेदमाता सावित्री, जनकनन्दिनी सीता और भारतभूमिपर द्वारकामें भीष्मक-पुत्री रुक्मिणी हूँ। इस समय दैववश सुदामाके शापसे मैं वृषभानुकी कन्या होकर प्रकट हुई हूँ और पुण्यमय वृन्दावनमें श्रीकृष्णकी धर्मपत्नी हूँ। आप तो स्वयं सर्वज्ञ सनातन भगवान् शिव हैं। भला, मैं आपको क्या समयोचित कर्तव्य बतला सकती हूँ।

(अध्याय ११८)

शिवजीका कन्या देनेके लिये बाणको समझाना, बाणका उसे अस्वीकार करना, बलिका आगमन और सत्कार, बलिका महादेवजीका चरणवन्दन करके श्रीभगवान्‌का स्तवन करना, श्रीभगवान्‌द्वारा बलिको बाणके न मारनेका आश्वासन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! पार्वतीकी बात सुनकर गणेश, कार्तिकेय, काली तथा स्वयं शिव उनकी प्रशंसा करने लगे। तदनन्तर जो परात्परा, ज्योतिःस्वरूपा, परमा, मूलप्रकृति और ईश्वरी हैं; उन जगज्जननी पार्वतीसे भगवान् शम्भु बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवेशि! तुमने जो यह कहा है कि परमात्माके साथ युद्ध करना अयुक्त तथा उपहासास्पद है; अतः बाण अपनी कन्या उषाको स्वर्णनिर्मित आभूषणोंसे विभूषित करके श्रीकृष्णको दे दे। यही समस्त कर्मोंमें सामञ्जस्य, यशस्कर और शुभदायक है। तुम्हारा यह सारा कथन वेदसम्मत है; परंतु बाण हिरण्यकशिपुका वंशज है; अतः यदि वह कन्या दे देता है और भयभीत होकर युद्धसे पराङ्मुख हो जाता है तो यह तुम्हारे लिये ही अकीर्तिकर है। इसलिये शिवे! रणशास्त्रविशारद बाण कवच धारण करके आगे चले; तत्पश्चात् हम लोग भी कवचसे सुसज्जित हो उसका अनुगमन करेंगे। पार्वतीसे यों कहकर शंकरजीने बाणसे कन्या

देनेके लिये कहा; किंतु उसने स्वीकार नहीं किया। तब दुर्गा उसे समझाने लगीं; परंतु उनकी उत्तम बात उसकी समझमें न आयी। इसी समय महाबली बलि—जो महान् धर्मात्मा, वैष्णवोंमें अग्रगण्य और परमार्थके ज्ञाता हैं—रत्ननिर्मित रथपर आरूढ़ हो उस मनोरमा सभामें आये। उस समय सात प्रयत्नशील दैत्य श्वेत चँवरोंद्वारा उनकी सेवा कर रहे थे और सात लाख दैत्येन्द्र उन्हें घेरे हुए थे। वे तुरंत ही रथसे उतरकर शिव, पार्वती, गणेश और कार्तिकेयको प्रणाम करके उस सभामें अवस्थित हुए। उन्हें निकट आया देखकर शंकरजीके अतिरिक्त अन्य सभी सभासद् उठ खड़े हुए। तब महादेवजी कुशल-प्रश्नके बाद उनसे मधुर वचन बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—भगवन्! तुम बड़े चतुर तथा सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके प्रदाता हो। ऐसे वैष्णवोंके साथ समागम होना ही परम लाभ है; क्योंकि वैष्णवके स्पर्शमात्रसे तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं। पवित्र ब्राह्मण सभी आश्रमोंके लिये पूजनीय होता है। उसमें भी यदि ब्राह्मण वैष्णव हो तो उससे भी अधिक पूज्य माना जाता है। मैं वैष्णव ब्राह्मणसे बढ़कर पवित्र किसीको नहीं देखता। वह पवन, अग्नि और समस्त तीर्थोंसे भी अधिक पावन है। उससे देवता भी डरते हैं। उसके शरीरमें पाप उसी प्रकार नहीं ठहरते; जैसे अग्निमें पड़ा हुआ सूखा घास-फूस।

तब बलि बोले—जगन्नाथ! आप मेरी प्रशंसा क्यों कर रहे हैं? महेश्वर! मैं तो आपका भृत्य हूँ न? नाथ! आपने ही तो मुझे अत्यन्त दुर्लभ परम ऐश्वर्य प्रदान किया है। सुरेश्वर! आप सर्वरूप तथा सर्वत्र वर्तमान हैं। इस समय दैववश आपने वामन-रूप धारण करके मुझ भक्तसे ऐश्वर्य छीनकर इन्द्रको दे दिया है और मुझे सृष्टिके अधोभागमें स्थित सुतल-लोकमें स्थापित कर रखा है। अब मेरे औरस पुत्र बाणको, जिस प्रकार उसका कल्याण हो, शिक्षा दीजिये; क्योंकि आत्माके साथ युद्ध करना देवताओंमें भी निन्दित है। यों कहकर उन्होंने शिवजीको नमस्कार करके उनके चरणोंमें सिर रख दिया। उस समय उनका सारा शरीर पुलकित हो उठा। नेत्रोंमें आँसू छलक आये और वे अत्यन्त व्याकुल हो गये। तदनन्तर शुक्रद्वारा दिये गये एकादशाक्षर-मन्त्रका जप करके वे सामवेदोक्त स्तोत्रद्वारा परमेश्वरकी स्तुति करने लगे।

बलिने कहा—प्रभो! पूर्वकालमें माता अदितिदेवीकी प्रार्थना तथा व्रतके फलस्वरूप आपने वामन-रूप धारण करके मेरी वञ्चना की थी और सम्पत्तिरूपिणी महालक्ष्मीको मुझसे छीनकर मेरे पुण्यवान् भाई इन्द्रको, जो आपके भक्त हैं, दिया था। इस समय मेरा यह पुत्र बाण, जो शंकरजीका किङ्कर है; जिसकी भक्तोंके बन्धु उन शंकरजीने अपने पास रखकर रक्षा की है; माता पार्वतीने जिसका उसी भाँति पालन-पोषण किया है, जैसे माता अपने पुत्रका पालन करती है; उसी बाणकी सती-साध्वी युवती कन्याको (अनिरुद्धने) बलपूर्वक ग्रहण कर लिया

है और वे बाणको भी मारनेके लिये उद्यत थे; परंतु कार्तिकेयने उसे बचा लिया है। फिर आप भी अपने पौत्रका दमन करनेमें समर्थ बाणको मारनेके लिये पधारे हैं। जगदीश्वर! श्रुतिमें तो ऐसा सुना गया है कि आप सर्वात्माका सर्वत्र समभाव रहता है; फिर ऐसा व्यतिक्रम आप क्यों कर रहे हैं? भला, जिसका वध आप करना चाहते हैं, उसकी इस भूतलपर कौन रक्षा कर सकता है? सुदर्शनका तेज करोड़ों सूर्योंके समान परमोत्कृष्ट है। भला, किन देवताओंके अस्त्रसे उसका निवारण हो सकता है? जैसे सुदर्शन अस्त्रोंमें सर्वश्रेष्ठ है; उसी प्रकार आप भी समस्त देवताओंके परमेश्वर हैं। जैसे आप हैं; उसी तरह श्रीकृष्ण भी ब्रह्माके विधाता हैं। विष्णु सत्त्वगुणके आधार, शिव सत्त्वके आश्रयस्थान और स्वयं सृष्टिकर्ता पितामह रजोगुणके विधाता हैं। जो तमोगुणके आश्रय, एकादश रुद्रोंमें सर्वश्रेष्ठ, विश्वके संहार-कर्ता एवं महान् हैं; वे भगवान् कालाग्निरुद्र शंकरके अंश हैं। इनके अतिरिक्त अन्य रुद्रगण शंकरजीकी कलाएँ हैं। उन सबमें आप गुणरहित तथा प्रकृतिसे परे हैं। आप सबके परमात्मा हैं। सभी प्राणधारियोंके प्राण विष्णुके स्वरूप हैं; स्वयं ब्रह्मा मनरूप हैं और स्वयं शिव ज्ञानात्मक हैं। समस्त शक्तियोंमें श्रेष्ठ ईश्वरी प्रकृति बुद्धि है। समस्त देहधारियोंमें जो जीव है, वह आपके ही आत्माका प्रतिबिम्ब है। जीव अपने कर्मोंका भोक्ता है और स्वयं आप उसके साक्षी हैं। आपके चले जानेपर सभी उसी प्रकार आपका अनुगमन करते हैं जैसे राजाके चलनेपर उसके अनुगामी। आपके निकल जानेपर शरीर तुरंत धराशायी हो जाता है और शवरूप होकर अस्पृश्य बन जाता है; परंतु आपकी मायासे वञ्चित होनेके कारण बुद्धिमान् संतलोग इसे नहीं जान पाते। जो संत आपका भजन करते हैं; वे ही इस मायासे तर पाते हैं। त्रिगुणा प्रकृति, दुर्गा, वैष्णवी, सनातनी, परा नारायणी और ईशानी—ये सब आपकी मायाके स्वरूप हैं। इनसे पार पाना अत्यन्त कठिन है। प्रत्येक विश्वमें होनेवाले ब्रह्मा, विष्णु और शिव आपके ही अंश हैं। जैसे विश्वेश्वर श्रीकृष्ण गोकुलमें वास करते हैं; उसी तरह जो समस्त लोकोंके आश्रय हैं, वे महान् विराट् योगबलसे जलमें शयन करते हैं। वे ही भगवान् वासु हैं, जिनके परम देवता आप हैं; इसीसे 'वासुदेव' नामसे विख्यात हैं—ऐसा पुरातत्त्ववेत्ता कहते हैं। आप ही अपनी कलासे सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, पवन, वरुण, कुबेर, यम, महेन्द्र, धर्म, शेष, ईशान तथा निर्ऋतिके रूपमें विराजमान हैं। मुनिसमुदाय, मनुगण, फलदायक ग्रह और समस्त चराचर जीव आपकी कलाके कलांशसे उत्पन्न हुए हैं। आप ही परम ज्योतिः-स्वरूप ब्रह्म हैं। योगीलोग आपका ही ध्यान करते हैं। आपके भक्तगण अपने अन्तःकरणमें आपका ही आदर करते तथा ध्यान लगाते हैं। (ध्यानका प्रकार यों है—)

जिनके शरीरका वर्ण नूतन जलधरके समान श्याम है, पीताम्बर ही जिनका परिधान है, जिनके प्रसन्नमुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी हुई है, जो भक्तोंके स्वामी तथा भक्तवत्सल हैं, जिनका सर्वाङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त है, जिनके दो भुजाएँ हैं, जो मुरली धारण किये हुए हैं, जिनकी चूड़ामें मयूरपिच्छ शोभा दे रहा है; जो मालतीकी माला, अमूल्य रत्ननिर्मित बाजूबंद और कंकणसे विभूषित हैं, मणियोंके बने हुए दोनों कुण्डलोंसे जिनका गण्डस्थल उद्भासित हो रहा है, जो रत्नोंके सारभागसे बनी हुई अँगूठी और बजती हुई करधनीसे सुसज्जित हैं, जिनकी आभा करोड़ों कामदेवोंका उपहास कर रही है, जिनके नेत्र शारदीय कमलकी शोभाको पराजित कर रहे हैं, जिनकी मुख-छबि शरत्पूर्णिमाके चन्द्रमाकी निन्दा कर रही है और प्रभा करोड़ों चन्द्रमाओंके समान

समुज्ज्वल है; करोड़ों-करोड़ों गोपियाँ मुस्कराती हुई जिनकी ओर निहार रही हैं, समवयस्क गोप-पार्षद श्वेत चँवर डुलाकर जिनकी सेवा कर रहे हैं, जिनका वेष गोपबालकके सदृश है; जो राधाके वक्षःस्थलपर स्थित एवं ध्यानद्वारा असाध्य और दुराराध्य हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष जिनकी वन्दना करते हैं और सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र तथा योगीन्द्र प्रणत होकर जिनका स्तवन करते हैं; जो वेदोंद्वारा अनिर्वचनीय, परमेच्छामय और सर्वव्यापक हैं एवं जिनका स्वरूप स्थूलसे स्थूलतम और सूक्ष्मसे सूक्ष्मतम है; जो सत्य, नित्य, प्रशस्त, प्रकृतिसे परे, ईश्वर, निर्लिप्त और निरीह हैं; उन सनातन भगवान्‌का इस प्रकार ध्यान करके वे पवित्र हो जाते हैं और भक्तद्वारा समर्पित चरणकमलोंमें कोमल दूर्वाङ्कुर, अक्षत तथा जल निवेदित करनेके लिये उत्सुक हो उठते हैं। भगवन्! वेद, सरस्वती, शेषनाग, ब्रह्मा, शम्भु, गणेश, सूर्य, चन्द्रमा, महेन्द्र और कुबेर—ये सभी आप परमेश्वरका स्तवन करनेमें समर्थ नहीं हैं; फिर अन्य जडबुद्धि जीवोंकी तो गणना ही क्या है। ऐसी दशामें मैं आप गुणातीत, निरीह, निर्गुण परमेश्वरकी क्या स्तुति कर सकता हूँ? नाथ! यह एक मूर्ख असुर है, सुर नहीं है; अतः आप इसे क्षमा करें। बलिका कथन सुनकर जगदीश्वर परिपूर्णतम भक्तवत्सल भगवान् श्रीहरि अपने उस भक्तसे बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—वत्स! डरो मत। तुम मेरे द्वारा सुरक्षित अपने गृह सुतल-लोकको जाओ। मेरे वर-प्रसादसे तुम्हारा यह पुत्र भी अजर-अमर होगा। मैं इस मूर्ख अभिमानीके दर्पका ही विनाश करूँगा; क्योंकि मैंने प्रसन्नचित्तसे अपने तपस्वी भक्त प्रह्लादको ऐसा वर दे रखा है कि 'तुम्हारा वंश मेरेद्वारा अवध्य होगा।' मैं तुम्हारे पुत्रको मृत्युञ्जय नामक परम ज्ञान प्रदान करूँगा। तुमने जिस सामवेदोक्त अभीष्ट स्तोत्रद्वारा मेरा स्तवन किया है; इसे पूर्वकालमें ब्रह्माने सूर्य-ग्रहणके अवसरपर प्रशस्त पुण्यतम सिद्धाश्रममें सनत्कुमारको प्रदान किया था। गौरीने मन्दाकिनीके तटपर इसे गौतमको बतलाया था। दयालु शंकरने अपने भक्त शिष्य ब्रह्माको इसका उपदेश किया था। विरजाके तटपर मैंने इसे शिवको प्रदान किया था। पूर्वकालमें बुद्धिमान् सनत्कुमारने इसे महर्षि भृगुको बतलाया था। इस समय तुम इसे बाणको दोगे और बाण इसके द्वारा मेरा स्तवन करेगा। यह स्तोत्र महान् पुण्यदायक है। जो मनुष्य भलीभाँति स्नानसे शुद्ध हो वस्त्र, भूषण और चन्दन आदिसे गुरुका वरण और पूजन करके उनके मुखसे इस स्तोत्रका उपदेश ग्रहणकर नित्य पूजाके समय भक्तिपूर्वक इसका पाठ करेगा, वह अपने करोड़ों जन्मोंके संचित पापसे मुक्त हो जायगा—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह स्तोत्र विपत्तियोंका विनाशक, समस्त सम्पत्तियोंका कारण, दुःख-शोकका निवारक, भयंकर भवसागरसे उद्धार करनेवाला, गर्भवासका उच्छेदक, जरा-मृत्युका हरण करनेवाला, बन्धनों और रोगोंका खण्डन करनेवाला तथा भक्तोंके लिये शृङ्गार-स्वरूप है। जो इस स्तोत्रका पाठ करता है, उसने मानो समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया, सभी यज्ञोंमें दीक्षा ग्रहण कर ली, सभी व्रतोंका अनुष्ठान कर लिया और सभी तपस्याएँ पूर्ण कर लीं। उसे निश्चय ही सम्पूर्ण दानोंका सत्य फल प्राप्त हो जाता है। इस स्तोत्रका एक लाख पाठ करनेसे मनुष्योंको स्तोत्रसिद्धि मिल जाती है। यदि मनुष्य स्तोत्रसिद्ध हो जाय तो उसे सारी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। वह इस लोकमें देवतुल्य होकर अन्तमें श्रीहरिके पदको प्राप्त हो जाता है।

(अध्याय ११९)

बाणका यादवी सेनाके साथ युद्ध, बाणका धराशायी होना, शंकरजीका बाणको उठाकर श्रीकृष्णके चरणोंमें डाल देना, श्रीकृष्णद्वारा बाणको जीवन-दान, बाणका श्रीकृष्णको बहुत-से दहेजके साथ अपनी कन्या समर्पित करना, श्रीकृष्णका पौत्र और पौत्रवधूके साथ द्वारकाको लौट जाना और द्वारकामें महोत्सव

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! तदनन्तर भगवान् श्रीकृष्णने उद्धव और बलदेवके साथ शुभ मन्त्रणा करके बाणके पास दूत भेजा। तब उस दूतने—जहाँ शिव, गणपति, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, कार्तिकेय, भद्रकाली, उग्रचण्डा और कोटरी—ये सब विद्यमान थे, वहाँ आकर शिव, शिवा, गणेश और पूजनीय मानवोंको नमस्कार किया और यथोचित वचन कहा।

दूत बोला—महेश्वर! भगवान् श्रीकृष्ण बाणको युद्धके लिये ललकार रहे हैं; अतः वह या तो युद्ध करे अथवा अनिरुद्ध और उषाको लेकर उनके शरणापन्न हो जाय; क्योंकि रणके लिये बुलाये जानेपर जो पुरुष भयभीत होकर सम्मुख युद्धार्थ नहीं जाता है, वह परलोकमें अपने सात पूर्वजोंके साथ नरकगामी होता है। दूतकी बात सुनकर स्वयं पार्वतीदेवी सभाके मध्यमें शंकरजीके संनिकट ही यथोचित वचन बोलीं।

पार्वतीने कहा—महाभाग बाण! तुम अपनी कन्याको लेकर उनके पास जाओ और प्रार्थना करो। फिर अपना सर्वस्व दहेजमें देकर श्रीकृष्णकी शरण ग्रहण करो; क्योंकि वे सबके ईश्वर तथा कारण, समस्त सम्पत्तियोंके दाता, श्रेष्ठ, वरेण्य, आश्रयस्थान, कृपालु और भक्तवत्सल हैं। पार्वतीका वचन सुनकर सभामें उपस्थित सभी सुरेश्वरोंने धन्य-धन्य कहते हुए उनकी प्रशंसा की और बाणसे वैसा करनेके लिये कहा; परंतु बाण क्रोधसे आगबबूला हो उठा, उसका शरीर काँपने लगा और नेत्र लाल हो गये। फिर तो वह असुर सहसा उठ खड़ा हुआ और सबके मना करनेपर भी कवचसे सुसज्जित हो हाथमें धनुष ले शंकरजीको प्रणाम करके करोड़ों कवचधारी महाबली दैत्योंके साथ चल पड़ा। तब कुम्भाण्ड, कूपकर्ण, निकुम्भ और कुम्भ—इन प्रधान सेनापतियोंने भी कवच धारण करके उसका अनुगमन किया। फिर उन्मत्तभैरव, संहारभैरव, असिताङ्गभैरव, रुरुभैरव, महाभैरव, कालभैरव, प्रचण्डभैरव और क्रोधभैरव—ये सभी भी कवच धारण करके शक्तियोंके साथ गये। कवचधारी भगवान् कालाग्निरुद्रने भी रुद्रोंके साथ गमन किया। उग्रचण्डा, प्रचण्डा, चण्डिका, चण्डनायिका, चण्डेश्वरी, चामुण्डा, चण्डी और चण्डक पालिका—ये सभी आठों नायिकाएँ हाथमें खप्पर ले उसके पीछे-पीछे चलीं। शोणितपुरकी ग्रामदेवता कोटरीने भी रत्ननिर्मित रथपर सवार हो प्रस्थान किया। उस समय उसका मुख प्रफुल्लित था और वह खड्ग तथा खप्पर लिये हुए थी। चन्द्राणी, शान्तस्वरूपा वैष्णवी, ब्रह्मवादिनी ब्रह्माणी, कौमारी, नारसिंही, विकट आकारवाली वाराही, महामाया माहेश्वरी और भीमरूपिणी भैरवी—ये सभी आठों शक्तियाँ हर्षपूर्वक रथपर सवार हो नगरसे बाहर निकलीं। जो रक्तवर्णवाली और त्रिनेत्रधारिणी हैं तथा जीभ लपलपानेके कारण जो भयंकर प्रतीत होती हैं, वे भद्रकालिका हाथोंमें शूल, शक्ति, गदा, खड्ग और खप्पर धारण करके बहुमूल्य रत्नोंके सारभागसे बने हुए रथपर सवार होकर चलीं। फिर महेश्वर हाथमें त्रिशूल ले नन्दीश्वरपर चढ़कर तथा धनुर्धर स्कन्द हाथमें शस्त्र ले अपने वाहन मयूरपर सवार होकर चले। इस प्रकार गणेश और पार्वतीको छोड़कर शेष

सभी लोगोंने बाणका अनुगमन किया। इन सबसे युक्त महादेव और भद्रकालिकाको देखकर चक्रपाणि श्रीकृष्णने यथोचितरूपसे सम्भाषण किया। तदनन्तर बाणने शङ्खध्वनि करके पार्वतीश्वर शिवको प्रणाम किया और धनुषकी प्रत्यञ्चा चढ़ाकर उसपर दिव्यास्त्रका संधान किया।

इस प्रकार बाणको युद्धके लिये उद्यत देखकर शत्रु-वीरोंका संहार करनेवाले सात्यकि उपस्थित सभी लोगोंके द्वारा मना किये जानेपर भी कवच धारण करके हर्षपूर्वक आगे बढ़े। नारद! तब बाणने उनपर पञ्चक नामक दिव्यास्त्रका प्रयोग किया। वह अस्त्र अमोघ, ग्रीष्म-ऋतुके मध्याह्नकालिक सूर्यके समान प्रकाशमान तथा अत्यन्त तीखा था। फिर तो घोर युद्ध होने लगा। परस्पर बड़े-बड़े घोर दिव्यास्त्रोंका प्रयोग किया गया। भयानक समर होते-होते जब भगवान् कालाग्नि नामक रुद्रने महाबली हलधर बलदेवजीको बाणासुरका वध करनेके लिये तैयार देखा, तब उन्होंने उनको रोक दिया। इसपर बलदेवजीने क्रुद्ध होकर कालाग्निरुद्रके रथ, घोड़े और सारथिका नाश कर दिया। तब कालाग्निरुद्रने कोपमें भरकर भयंकर ज्वर छोड़ा। इससे श्रीहरिके अतिरिक्त अन्य सभी यादव ज्वरसे आक्रान्त हो गये। उस ज्वरको देखकर भगवान् श्रीकृष्णने वैष्णव-ज्वरकी सृष्टि की और उस रणके मुहानेपर माहेश्वर-ज्वरका विनाश करनेके लिये उसे चला दिया। फिर तो दो घड़ीतक उन दोनों ज्वरोंमें बड़ा भयंकर युद्ध हुआ। अन्तमें उस रणाङ्गणमें वैष्णव-ज्वरसे आक्रान्त होकर माहेश्वर-ज्वर धराशायी हो गया, उसकी सारी चेष्टाएँ शान्त हो गयीं। पुनः चेतनामें आकर वह माधवकी स्तुति करने लगा।

ज्वर बोला—भक्तानुग्रहमूर्तिधारी भगवन्! आप सबके आत्मा और पूर्णपुरुष हैं; सबपर आपका समान प्रेम है, अतः जगन्नाथ! मेरे प्राणोंकी रक्षा कीजिये।

उस ज्वरके विनीत वचनको सुनकर श्रीकृष्णने अपने वैष्णव-ज्वरको लौटा लिया। तब माहेश्वर-ज्वर भयभीत होकर रणभूमिसे भाग खड़ा हुआ।

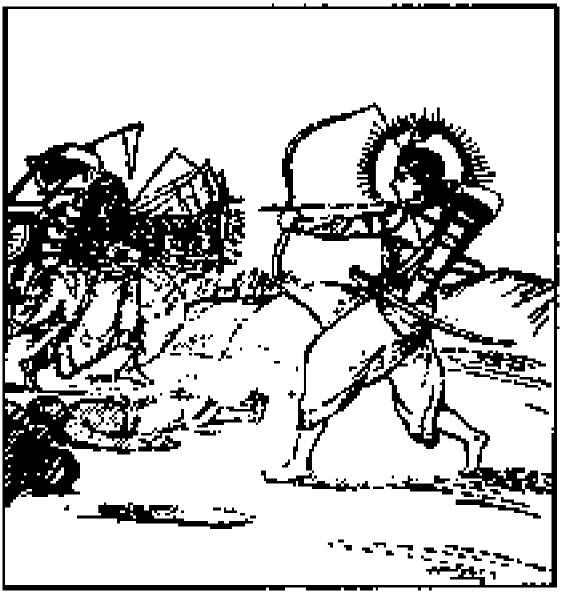

तत्पश्चात् बाणने पुनः आकर ऐसे हजारों बाण चलाये, जो प्रलयकालीन अग्निकी ज्वालाके समान प्रकाशमान तथा मन्त्रोंद्वारा पावन किये गये थे; परंतु अर्जुनने खेल-ही-खेलमें अपने बाणसमूहोंद्वारा उन्हें रोक दिया। तब बाणने

ग्रीष्मकालीन सूर्यके समान चमकीली शक्ति चलायी, किंतु महाबली अर्जुनने उसे भी अनायास ही काट गिराया। यह देखकर बाणने पाशुपतास्त्रको, जिसकी प्रभा सैकड़ों सूर्योंके समान थी और जो अत्यन्त भयंकर, अमोघ तथा विश्वका संहार करनेवाला था, हाथमें लिया। उसे देखकर चक्रपाणिने अपने भयंकर सुदर्शनचक्रको चला दिया। उस चक्रने रणभूमिमें बाणके हजारों हाथोंको काट डाला और वह भयंकर पाशुपतास्त्र पहाड़ी सिंहकी तरह भूमिपर गिर पड़ा। तदनन्तर जो प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान प्रकाशमान, लोकमें दारुण तथा अमोघ है; वह पाशुपतास्त्र पशुपति शिवके हाथमें लौट गया। बाणके शरीर-रक्तसे वहाँ भयंकर नदी बह चली और बाण चेष्टारहित होकर भूमिपर गिर पड़ा। उस समय व्यथाके कारण उसकी चेतना नष्ट हो गयी थी। तब जगद्गुरु भगवान् महादेव वहाँ आये और बाणको उठाकर उन्होंने अपनी छातीसे लगा लिया। फिर बाणको लेकर वे वहाँ चले, जहाँ भगवान् जनार्दन विराजमान थे। वहाँ पहुँचकर

उन्होंने पद्मद्वारा समर्चित श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें बाणको समर्पित कर दिया। तत्पश्चात् बलिने जिस वेदोक्त स्तोत्रद्वारा उनकी स्तुति की थी, उसी स्तोत्रद्वारा चन्द्रशेखरने शक्तियोंके स्वामी जगदीश्वर श्रीकृष्णका स्तवन किया। तब श्रीहरिने बुद्धिमान् बाणको 'मृत्युञ्जय' नामक ज्ञान प्रदान किया और उसके शरीरपर अपना कर-कमल फिराकर उसे अजर-अमर बना दिया।

तदनन्तर बाणने बलिकृत स्तोत्रद्वारा भक्तिपूर्वक श्रीहरिका स्तवन किया और उसी देवसमाजमें रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित अपनी श्रेष्ठ कन्या उषाको लाकर भक्तिसहित श्रीकृष्णको प्रदान कर दिया। फिर उसने भक्तिपूर्वक कंधे झुकाकर पाँच लाख गजराज, बीस लाख घोड़े, रत्नाभरणोंसे विभूषित एक हजार दासियाँ, सब कुछ प्रदान करनेवाली बछड़ोंसहित एक सहस्र गौएँ, करोड़ों-करोड़ों मनोहर माणिक्य, मोती, रत्न, श्रेष्ठ मणियाँ और हीरे तथा हजारों सुवर्णनिर्मित जलपात्र एवं भोजनपात्र श्रीकृष्णको दहेजमें दिये। नारद! फिर बाणने शंकरजीकी आज्ञासे सभी तरहके अग्निशुद्ध श्रेष्ठ महीन वस्त्र तथा ताम्बूल और उसकी सामग्रियोंके विविध प्रकारके हजारों श्रेष्ठ पूर्णपात्र भक्तिपूर्ण हृदयसे दहेजमें दिये। तत्पश्चात् कन्याको भी श्रीहरिके चरणकमलोंमें समर्पित करके वह ढाह मारकर रो पड़ा। इस प्रकार उसने वह कार्य सम्पन्न किया। तब श्रीकृष्ण बाणको वेदोक्त मधुर वचनोंद्वारा वरदान देकर शंकरजीकी अनुमतिसे द्वारकापुरीको प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर स्वयं श्रीहरिने महात्मा बाणकी उस कन्याको नवोढ़ा (नवविवाहिता वधू) समझकर शीघ्र ही देवकी और रुक्मिणीके हाथों सौंप दिया; फिर यत्नपूर्वक मङ्गल-महोत्सव कराया, ब्राह्मणोंको भोजन कराया और उन्हें बहुत-सा धन-दान किया।

(अध्याय १२०)

शृगालोपाख्यान

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! एक समयकी बात है। श्रीकृष्ण अपने गणोंके साथ सुधर्मा-सभामें विराजमान थे। उसी समय वहाँ एक ब्राह्मणदेवता आये, जो ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। वहाँ आकर उन्होंने पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका दर्शन किया और भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति की। फिर वे शान्त एवं भयभीत हो विनयपूर्वक मधुर वचन बोले।

ब्राह्मणने कहा—प्रभो! वासुदेव शृगाल नामका एक मण्डलेश्वर राजाधिराज है; वह आपकी अत्यन्त निन्दा करता है और कहता है कि 'वैकुण्ठमें चतुर्भुज देवाधिदेव लक्ष्मीपति वासुदेव मैं ही हूँ। मैं ही लोकोंका विधाता और ब्रह्माका पालक हूँ। पृथ्वीका भार उतारनेके लिये ब्रह्माने मेरी प्रार्थना की थी; इसी कारण भारतवर्षमें मेरा आगमन हुआ है। मैंने महाबली दैत्यराज हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष, मधु और कैटभको मारकर सृष्टिकी रक्षा की है। मैं ही स्वयं ब्रह्मा, मैं ही स्वयं शिव तथा मैं ही लोकोंका पालक एवं दुष्टोंका संहारक विष्णु हूँ। सभी मनुगण तथा मुनिसमुदाय मेरे अंशकलासे उत्पन्न हुए हैं। मैं स्वयं प्रकृतिसे परे निर्गुण नारायण हूँ। भद्र! अबतक मैंने तुम्हें लज्जा तथा कृपाके कारण मित्र-बुद्धिसे क्षमा कर दिया था; किंतु जो बीत गया, सो बीत गया; अब तुम मेरे साथ युद्ध करो। मैंने दूतके मुखसे सुना है कि तुम्हारा अहंकार बहुत बढ़ गया है; अतः उसका दमन करना उचित है। ऊँचे सिर उठानेवालोंको कुचल डालना राजाका परम धर्म है और इस समय मैं ही पृथ्वीका शासक हूँ। मैं स्वयं चतुर्भुजरूप धारण करके शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लेकर सेनासहित युद्धके लिये उस द्वारकाको आऊँगा। यदि तुम्हारी इच्छा हो तो युद्ध करो; अन्यथा मेरी शरण ग्रहण करो। यदि तुम शरणागत होकर मेरी शरणमें नहीं आ जाओगे तो मैं क्षणभरमें ही द्वारकाको भस्म कर डालूँगा। मैं अकेला ही लीलापूर्वक क्षणभरमें सेना, पुत्र, गण और बन्धु-बान्धवोंसहित तुम्हें जला डालनेमें समर्थ हूँ।'

मुने! यों कहकर वह ब्राह्मण मौन हो गया। उसे सुनकर सदस्योंसहित श्रीकृष्ण ठठाकर हँस पड़े। फिर उन्होंने ब्राह्मणका भलीभाँति आदर-सत्कार करके उन्हें चारों प्रकारके पदार्थ (भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, चोष्य) भोजन कराये। शृगालके वाग्बाण उनके मनमें कसक पैदा कर रहे थे; इसलिये बड़े क्षोभसे उन्होंने वह रात बितायी। प्रातःकाल होते ही वे बड़ी उतावलीके साथ हर्षपूर्वक गणोंसहित रथपर सवार हो सहसा वहाँ जा पहुँचे, जहाँ राजा शृगाल था। उनके आनेका समाचार सुनकर राजा शृगाल कृत्रिम-रूपसे चार भुजा धारण करके गणोंसहित युद्धके लिये श्रीहरिके स्थानपर आया। श्रीकृष्णने मित्र-बुद्धिसे उसकी ओर स्नेहभरी दृष्टिसे देखकर मुस्कराते हुए मधुर वचनोंद्वारा लौकिक रीतिसे उससे वार्तालाप किया। राजा शृगालने श्रीकृष्णको निमन्त्रित किया; परंतु उन्होंने उसे स्वीकार नहीं किया। तब वह श्रीकृष्णसे भयभीत हो उनके दर्शनसे दम्भको त्यागकर यों कहने लगा।

शृगाल बोला—प्रभो! आप चक्रद्वारा मेरा शिरश्छेदन करके शीघ्र ही द्वारकाको लौट जाइये, जिससे मेरा यह अनित्य एवं नश्वर पापी शरीर समाप्त हो जाय। भगवन्! जय-विजयकी तरह मैं भी आपका द्वारपाल हूँ। मेरा नाम सुभद्र है। लक्ष्मीके शापसे मैं भ्रष्ट हो गया था; अब मेरा वह समय पूरा हो गया है। सौ वर्षके बाद शापके समाप्त हो जानेपर मैं पुनः आपके भवनको आऊँगा। सर्वज्ञ! आप तो सब कुछ जानते ही

हैं; अतः विलम्ब मत कीजिये।

श्रीकृष्णने कहा—मित्र! पहले तुम मुझपर प्रहार करो; तत्पश्चात् मैं युद्ध करूँगा। वत्स! मैं सारा रहस्य जानता हूँ; अतः अब तुम सुखपूर्वक वैकुण्ठको जाओ। तब शृगालने माधवपर दस बाणोंसे वार किया; किंतु वे कालरूपी बाण शीघ्र ही श्रीकृष्णको प्रणाम करके आकाशमें विलीन हो गये। फिर राजा शृगालने प्रलयकालीन अग्निकी शिखाके समान चमकीली गदा फेंकी, परंतु वह तत्काल ही श्रीकृष्णके अङ्गस्पर्शमात्रसे टूक-टूक हो गयी। तत्पश्चात् उसने परम दारुण कालरूपी खड्ग और धनुष चलाया, किंतु वह उसी क्षण श्रीकृष्णके अङ्गोंका स्पर्श होते ही छिन्न-भिन्न हो गया। इस प्रकार राजाको अस्त्रहीन देखकर कृपालु श्रीकृष्णने कहा—'मित्र! घर जाकर खूब तीखा अस्त्र ले आओ।'

तब शृगाल बोला—प्रभो! आत्मारूपी आकाश अस्त्रद्वारा बेधा नहीं जा सकता। भला, आत्माके साथ युद्ध कैसा? पृथ्वीका उद्धार करनेमें कारणस्वरूप भगवन्! इस भवसागरसे मेरा उद्धार कीजिये। नाथ! भवसागर बड़ा भयंकर है और विषय-विषसे भी अधिक दारुण हैं; अतः मेरी स्वकर्मजनित माया-मोहरूपी साँकलको छिन्न-भिन्न कर दीजिये। आप कर्मोंके ईश्वर, ब्रह्माके भी विधाता, शुभ फलोंके दाता, समस्त सम्पत्तियोंके प्रदाता, प्राक्तन कर्मोंके कारण और उनके खण्डनमें समर्थ हैं। मैं अपने इस पाञ्चभौतिक प्राकृत नश्वर देहका त्याग करके आपके ही वैकुण्ठके सातवें द्वारपर जाऊँगा; क्योंकि वही मेरा घर है।

इस प्रकारका मित्रका स्तवन और अमृतोपम वचन सुनकर कृपानिधि श्रीकृष्ण कृपापरवश हो वहीं समरभूमिमें स्नेहवश रोने लगे। श्रीकृष्णके नेत्रोंसे गिरे हुए अश्रुबिन्दुओंसे वहाँ सहसा 'बिन्दुसर' नामक एक दिव्य सरोवर प्रकट हो गया; जो तीर्थोंमें परम श्रेष्ठ है। उसके जलके स्पर्शमात्रसे मनुष्य जीवन्मुक्त हो जाता है और अपने सात जन्मोंके संचित पापोंसे छूट जाता है; इसमें जरा भी संदेह नहीं है।

इसके बाद श्रीभगवान्‌ने पूछा—मित्र! यदि तुम्हारा मन इतना निर्मल है तो फिर तुम्हारी ऐसी युद्ध-बुद्धि कैसे हुई और क्यों तुमने दूतके द्वारा ऐसा दारुण निष्ठुर संदेश कहलवाया?

इसपर शृगालने कहा—नाथ! मैंने तुम्हारे प्रति ऐसे निठुर वाक्योंका प्रयोग किया, तभी तो तुम क्रोधपूर्वक यहाँ आये। नहीं तो, स्वप्नमें भी तुम्हारे दर्शन दुर्लभ हैं। यों कहते-कहते उसने योगावलम्बन करके प्राकृत पाञ्चभौतिक शरीरका त्याग कर दिया और वह श्रीकृष्णके देखते-देखते ही विमानपर सवार होकर दिव्य धामको चला गया। उस समय शृगालके शरीरसे सात ताड़-जितनी लंबी एक महान् ज्योति निकली और वह ब्रह्माजी तथा लक्ष्मीजीके द्वारा पूजित श्रीकृष्णके चरणकमलोंमें प्रणाम करके चली गयी।

तब अपने साथियोंके सहित श्रीमान् कृष्ण इस अद्भुत चरित्रको देखकर प्रफुल्लमुख हो द्वारकाकी ओर चल दिये। द्वारका पहुँचकर उन्होंने पहले माता-पिताको प्रणाम किया। तदनन्तर रुक्मिणीके महलमें जाकर पुष्पशय्यापर शयन किया।

(अध्याय १२१)

गणेशके अग्रपूज्यत्व-वर्णनके प्रसङ्गमें राधाद्वारा गणेशकी अग्रपूजाका कथन

नारदजीने पूछा—मुने! पुराणोंमें जो गणेश-पूजनका दुर्लभ आख्यान वर्णित है, उसे मैंने सामान्यतया ब्रह्माके मुखसे संक्षेपमें सुना है। अब आपसे समस्त पूजनीयोंमें प्रधान गणपतिकी महिमा विस्तारपूर्वक सुननेकी मेरी अभिलाषा है; क्योंकि आप योगीन्द्रोंके गुरुके भी गुरु हैं। पूर्वकालमें स्वर्गवासियोंने सिद्धाश्रममें राधा-माधवकी महापूजा की थी; उसी राधाने सौ वर्षके बीतनेपर जब श्रीदामाका शाप निवृत्त हुआ; तब ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि सुरेन्द्रों, नागराज शेष और अन्यान्य बड़े-बड़े नागों, भूतलपर बहुत-से बलशाली नरेशों और असुरों, अन्यान्य महाबली गन्धर्वों तथा राक्षसोंके रहते हुए सर्वप्रथम गणेशकी पूजा कैसे की? महाभाग! यह वृत्तान्त मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन करनेकी कृपा करें।

श्रीनारायण बोले—नारद! तीनों लोकोंमें पुण्यवती होनेके कारण पृथ्वी धन्य एवं मान्य है। उस पृथ्वीपर भारतवर्ष कर्मोंका शुभ फल देनेवाला है। उस पुण्यक्षेत्र भारतमें सिद्धाश्रम नामक एक महान् पुण्यमय शुभ क्षेत्र है; जो धन्य, यशस्य, पूज्य और मोक्ष-प्रदाता है। भगवान् सनत्कुमार वहीं सिद्ध हुए थे। स्वयं ब्रह्माने भी वहीं तपस्या करके सिद्धि प्राप्त की थी। योगीन्द्र, मुनीन्द्र, कपिल आदि सिद्धेन्द्र और शतक्रतु महेन्द्र वहीं तप करके सिद्धिके भागी हुए हैं। इसी कारण उसे सिद्धाश्रम कहते हैं। वह सभीके लिये दुर्लभ है। मुने! वहाँ गणेश नित्य निवास करते हैं। वहाँ गणेशकी अमूल्य रत्नोंकी बनी हुई एक सुन्दर प्रतिमा है; जिसकी वैशाखी पूर्णिमाके दिन सभी देवता, नाग, मनुष्य, दैत्य, गन्धर्व, राक्षस, सिद्धेन्द्र, मुनीन्द्र, योगीन्द्र और सनकादि महर्षि पूजा करते हैं। उस अवसरपर वहाँ पार्वतीके साथ कल्याणकारी शम्भु, गणोंसहित कार्तिकेय और स्वयं प्रजापति ब्रह्मा पधारे। प्रधान-प्रधान नागोंके साथ शेषनाग भी तुरंत ही वहाँ आ पहुँचे। फिर सभी देवता, मनु और मुनिगण भी वहाँ आये। सभी नरेश प्रसन्नमनसे गणेशकी पूजा करनेके लिये वहाँ उपस्थित हुए। द्वारकावासियोंके साथ भगवान् श्रीकृष्णका भी वहाँ शुभागमन हुआ तथा गोकुलवासियोंके साथ नन्द भी पधारे। तदनन्तर सुरसिका, रासेश्वरी और श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिदेवता सुन्दरी राधा भी सौ वर्ष व्यतीत हो जानेपर गोलोकवासिनी गोपी-सखियोंके साथ पधारीं। वहाँ सुन्दर दाँतोंवाली राधाने भलीभाँति स्नान करके शुद्ध हो धुली हुई साड़ी और कंचुकी धारण की। फिर भुवनपावनी कान्ता राधाने अपने चरणकमलोंका अच्छी तरह प्रक्षालन किया। तत्पश्चात् वे निराहार रहकर इन्द्रियोंको काबूमें करके मणिमण्डपमें गयीं। वहाँ उन्होंने श्रीकृष्ण-प्राप्तिकी कामनासे उत्तम संकल्पका विधान करके भक्तिपूर्वक गङ्गाजलसे गणेशको स्नान कराया। इसके बाद जो चारों वेदों, वसु और लोकोंकी माता, ज्ञानियोंकी परा जननी एवं बुद्धिरूपा हैं; वे भगवती राधा श्वेत पुष्प लेकर सामवेदोक्त प्रकारसे अपने पुत्रभूत गणेशका यों ध्यान करने लगीं।

'जो खर्व (छोटे कदवाले), लम्बोदर (तोंदवाले), स्थूलकाय, ब्रह्मतेजसे उद्भासित, हाथीके-से मुखवाले, अग्निसरीखे कान्तिमान्, एकदन्त और असीम हैं; जो सिद्धों, योगियों और ज्ञानियोंके गुरु-के-गुरु हैं; ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवेन्द्र, मुनीन्द्र, सिद्धेन्द्र, मुनिगण तथा संतलोग जिनका ध्यान करते हैं; जो ऐश्वर्यशाली, सनातन, ब्रह्मस्वरूप, परम मङ्गल, मङ्गलके स्थान, सम्पूर्ण विघ्नोंको हरनेवाले, शान्त, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंके दाता, कर्मयोगियोंके लिये भवसागरमें मायारूपी जहाजके कर्णधारस्वरूप, शरणागत-दीन-दुःखीकी रक्षामें तत्पर, ध्यानरूप, साधना

करनेयोग्य, भक्तोंके स्वामी और भक्तवत्सल हैं; उन गणेशका ध्यान करना चाहिये।'

इस प्रकार ध्यान करके सती राधाने उस पुष्पको अपने मस्तकपर रखकर पुनः सर्वाङ्गोंको शुद्ध करनेवाला वेदोक्त न्यास किया। तत्पश्चात् उसी शुभदायक ध्यानद्वारा पुनः ध्यान करके राधाने उन लम्बोदरके चरणकमलमें पुष्पाञ्जलि समर्पित की। फिर गोलोकवासिनी स्वयं श्रीराधिकाजीने सुगन्धित सुशीतल तीर्थजल, दूर्वा, चावल, श्वेत पुष्प, सुगन्धित चन्दनयुक्त अर्घ्य, पारिजात-पुष्पोंकी माला, कस्तूरी-केसरयुक्त चन्दन, सुगन्धित शुक्ल पुष्प, सुगन्धयुक्त उत्तम धूप, घृत-दीपक, सुस्वादु रमणीय नैवेद्य, चतुर्विध अन्न, सुपक्व फल, भाँति-भाँतिके लड्डू, रमणीय सुस्वादु पिष्टक, विविध प्रकारके व्यञ्जन, अमूल्य रत्ननिर्मित सिंहासन, सुन्दर दो वस्त्र, मधुपर्क, सुवासित सुशीतल पवित्र तीर्थजल, ताम्बूल, अमूल्य श्वेत चँवर, मणि-मुक्ता-हीरासे सुसज्जित सुन्दर सूक्ष्मवस्त्रद्वारा सुशोभित शय्या, सवत्सा कामधेनु गौ और पुष्पाञ्जलि अर्पण करके अत्यन्त श्रद्धाके साथ षोडशोपचार समर्पित किया। फिर कालिन्दीकूलवासिनी राधाने 'ॐ गं गौं गणपतये विघ्नविनाशिने स्वाहा' गणेशके इस षोडशाक्षर-मन्त्रका, जो श्रेष्ठ कल्पतरुके समान है, एक हजार जप किया। इसके बाद वे भक्तिवश कंधा नीचा करके नेत्रोंमें आँसू भरकर पुलकित शरीरसे परम भक्तिके साथ इस स्तोत्रद्वारा स्तवन करने लगीं।

श्रीराधिकाने कहा—जो परम धाम, परब्रह्म, परेश, परमेश्वर, विघ्नोंके विनाशक, शान्त, पुष्ट, मनोहर और अनन्त हैं; प्रधान-प्रधान सुर और असुर जिनका स्तवन करते हैं; जो देवरूपी कमलके लिये सूर्य और मङ्गलोंके आश्रय-स्थान हैं; उन परात्पर गणेशको मैं स्तुति करती हूँ। यह

उत्तम स्तोत्र महान् पुण्यमय तथा विघ्न और शोकको हरनेवाला है। जो प्रातःकाल उठकर इसका पाठ करता है, वह सम्पूर्ण विघ्नोंसे विमुक्त हो जाता है।

(अध्याय १२२)

गणेशकृत राधा-प्रशंसा, पार्वती-राधा-सम्भाषण, पार्वतीके आदेशसे सखियोंद्वारा राधाका शृङ्गार और उनकी विचित्र झाँकी; ब्रह्मा, शिव, अनन्त आदिके द्वारा राधाकी स्तुति

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! सती राधाने गणेशकी विधिपूर्वक भलीभाँति पूजा करके स्तुति की और सर्वाङ्गोंमें पहनने योग्य बहुमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषण प्रदान किये। राधाद्वारा किये गये पूजन और पूजा-सामग्रीको देखकर तथा स्तवन सुनकर शान्तस्वरूप गणेश शान्तस्वभाववाली त्रिलोकजननी राधासे मधुर वचन बोले।

श्रीगणेशने कहा—जगन्मातः! तुम्हारी यह

पूजा लोगोंको शिक्षा देनेके लिये है। शुभे! तुम तो स्वयं ब्रह्मस्वरूपा और श्रीकृष्णके वक्षः-स्थलपर वास करनेवाली हो। ब्रह्मा, शिव और शेष आदि देवगण, सनकादि मुनिवर, जीवन्मुक्त भक्त और कपिल आदि सिद्धशिरोमणि, जिनके अनुपम एवं परम दुर्लभ चरणकमलका निरन्तर ध्यान करते हैं, उन श्रीकृष्णके प्राणोंकी तुम अधिदेवी तथा उनके लिये प्राणोंसे भी बढ़कर परम प्रियतमा हो। श्रीकृष्णके दक्षिणाङ्गसे माधव हैं और वामाङ्गसे राधा प्रादुर्भूत हुई हैं। जगज्जननी महालक्ष्मी तुम्हारे वामाङ्गसे प्रकट हुई हैं। तुम सबके निवासभूत वसुको जन्म देनेवाली, परमेश्वरी, वेदों और लोकोंकी ईश्वरी मूलप्रकृति हो। मातः! इस सृष्टिमें जितनी प्राकृतिक नारियाँ हैं; वे सभी तुम्हारी विभूतियाँ हैं। सारे विश्व कार्यरूप हैं और तुम उनकी कारणरूपा हो। प्रलयकालमें जब ब्रह्माका तिरोभाव हो जाता है; वह श्रीहरिका एक निमेष कहलाता है। उस समय जो बुद्धिमान् योगी पहले राधा, फिर परात्पर कृष्ण अर्थात् राधा-कृष्णका सम्यक् उच्चारण करता है; वह अनायास ही गोलोकमें चला जाता है। इससे व्यतिक्रम करनेपर वह महापापी निश्चय ही ब्रह्महत्याके पापका भागी होता है। तुम लोकोंकी माता और परमात्मा श्रीहरि पिता हैं; परंतु माता पितासे भी बढ़कर श्रेष्ठ, पूज्य, वन्दनीय और परात्पर होती है। इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें यदि कोई मन्दमति पुरुष सबके कारणस्वरूप श्रीकृष्ण अथवा किसी अन्य देवताका भजन करता है और राधिकाकी निन्दा करता है तो वह इस लोकमें दुःख-शोकका भागी होता है और उसका वंशच्छेद हो जाता है तथा परलोकमें सूर्य और चन्द्रमाकी स्थितिपर्यन्त वह घोर नरकमें पचता रहता है। ज्ञानका उद्गीरण करने अर्थात् उगलनेके कारण गुरु कहा जाता है; वह ज्ञान मन्त्र-तन्त्रसे प्राप्त होता है; वह मन्त्र और वह तन्त्र तुम दोनोंकी भक्ति है। जब जीव प्रत्येक जन्ममें देवोंके मन्त्रका सेवन करता है तो उसे दुर्गाके परम दुर्लभ चरणकमलमें भक्ति प्राप्त हो जाती है। जब वह लोकोंके कारणस्वरूप शम्भुके मन्त्रका आश्रय ग्रहण करता है, तब तुम दोनों (राधा-कृष्ण)-के अत्यन्त दुर्लभ चरणकमलको प्राप्त कर लेता है। जिस पुण्यवान् पुरुषको तुम दोनोंके दुष्प्राप्य चरणकमलकी प्राप्ति हो जाती है, वह दैववश क्षणार्ध अथवा उसके षोडशांश कालके लिये भी उसका त्याग नहीं करता। जो मानव इस पुण्यक्षेत्र भारतमें किसी वैष्णवसे तुम दोनोंके मन्त्र, स्तोत्र अथवा कर्ममूलका उच्छेद करनेवाले कवचको ग्रहण करके परमभक्तिके साथ उसका जप करता है; वह अपने साथ-साथ अपनी सहस्रों पीढ़ियोंका उद्धार कर देता है। जो मनुष्य विधिपूर्वक वस्त्र, अलंकार और चन्दनद्वारा गुरुका भलीभाँति पूजन करके तुम्हारे कवचको धारण करता है, वह निश्चय ही विष्णु-तुल्य हो जाता है। मातः! तुमने जो कुछ वस्तु मुझे समर्पित की है, उस सबको सार्थक कर डालो अर्थात् अब मेरी प्रसन्नताके लिये उसे ब्राह्मणको दे दो। तब मैं उसका भोग लगाऊँगा; क्योंकि देवताको देने योग्य जो दान अथवा दक्षिणा होती है, वह सब यदि ब्राह्मणको दे दी जाय तो वह अनन्त हो जाती है। राधे! ब्राह्मणोंका मुख ही देवताओंका प्रधान मुख है; क्योंकि ब्राह्मण जिस पदार्थको खाते हैं, वही देवताओंको मिलता है*। मुने! तब सती राधिकाने वह सारा पदार्थ ब्राह्मणोंको खिला दिया; इससे गणेश तत्काल ही प्रसन्न हो गये।

* ब्राह्मणानां मुखं राधे देवानां मुखमुख्यकम्। विप्रभुक्तं च यद् द्रव्यं प्राप्नुवन्त्येव देवताः॥ (१२३। २७)

इसी समय ब्रह्मा, शिव और शेषनाग आदि देवता देवश्रेष्ठ गणेशका पूजन करनेके लिये उस वट-वृक्षके नीचे आये। तब एक शिव-दूत वहाँ आकर उन देवताओं तथा देवियोंसे यों कहने लगा।

रक्षक (शिवदूत)-ने कहा—देवगण! वृषभानुसुता राधाने मुझे हटाकर शुभ मुहूर्तमें स्वस्तिवाचन करके सर्वप्रथम गणेशकी पूजा की है। पूजनमें ऐसा कहा जाता है कि जो सर्वप्रथम पूजन करता है, वह अनन्त फलका भागी होता है और मध्यमें पूजा करनेवालेको मध्यम तथा अन्तमें पूजनेवालेको स्वल्प पुण्य प्राप्त होता है। ऐसी दशामें बहुत-से देवशिरोमणियों, मुनिवरों और देवाङ्गनाओंके रहते हुए उस राधाने गोपियोंके साथ देवश्रेष्ठ गणेशकी पूजा की है।

दूतकी बात सुनकर सभी देवताओं, मुनियों, मनुओं और राजाओंका समुदाय तथा देवाङ्गनाएँ हँसने लगीं। वहाँ जो रुक्मिणी आदि महिलाएँ तथा देवियाँ थीं, उन्हें महान् विस्मय हुआ। तत्पश्चात् सावित्री, सरस्वती, परमेश्वरी पार्वती, रोहिणी, सती-संज्ञक स्वाहा आदि देवाङ्गनाएँ तथा सभी पतिव्रता मुनिपत्नियाँ वहाँ आयीं। फिर सभी देवताओं, मुनियों, मनुओं और मनुष्योंका दल, गणसहित श्रीकृष्ण तथा अन्यान्य जो वहाँ उपस्थित थे, उन सभी लोगोंने हर्षपूर्वक पदार्पण किया। तत्पश्चात् उन सबने शुभ मुहूर्तमें बलवान् और दुर्बलके क्रमसे पृथक्-पृथक् विविध द्रव्योंद्वारा गणेशकी पूजा की। इस प्रकार पूजन करके वे सभी सुखासनपर विराजमान हुए। इसी समय पार्वती परम हर्षके साथ राधाके स्थानपर गयीं। पार्वतीको आयी हुई देखकर राधा उतावलीके साथ अपने आसनसे उठ खड़ी हुई और हर्षमग्न हो उनसे सादर यथायोग्य कुशल-समाचार पूछने लगीं। तत्पश्चात् परस्पर आलिङ्गन और स्नेह-प्रदर्शन किया गया। तब दुर्गा राधाको अपनी छातीसे लगाकर मधुर वचन बोलीं।

पार्वतीने कहा—राधे! मैं तुमसे क्या कुशल-प्रश्न करूँ; क्योंकि तुम तो स्वयं ही मङ्गलोंकी आश्रय-स्थान हो। श्रीदामाके शापसे मुक्त हो जानेपर अब तुम्हारी विरहज्वाला भी शान्त ही हो गयी। जैसे मेरे मन-प्राण तुममें वास करते हैं; वैसे ही तुम्हारे मुझमें लगे रहते हैं। इस प्रकार शक्ति और पुरुषकी भाँति हम दोनोंमें कोई भेद नहीं है। जो मेरे भक्त होकर तुम्हारी और तुम्हारे भक्त होकर मेरी निन्दा करते हैं; वे चन्द्रमा और सूर्यके स्थितिकालपर्यन्त कुम्भीपाकमें पचते रहते हैं। जो नराधम राधा और माधवमें भेद-भाव करते हैं, उनका वंश नष्ट हो जाता है और वे चिरकालतक नरकमें यातना भोगते हैं*। इसके बाद साठ हजार वर्षोंतक वे विष्ठाके कीड़े होते हैं, फिर अपनी सौ पीढ़ियोंसहित सूकरकी योनिमें उत्पन्न होते हैं। सर्वपूज्य पुत्र गणेश्वरकी तुमने ही सर्वप्रथम पूजा की है; मैं वैसा नहीं कर पायी हूँ। यह गणेश जैसे तुम्हारा है, वैसे ही मेरा भी है। देवि! दुग्ध और उसकी धवलताके समान राधा और माधवमें जीवनपर्यन्त कभी विच्छेद नहीं होगा। पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें स्थित इस महातीर्थ सिद्धाश्रममें विघ्नविनाशक गणेशकी भलीभाँति पूजा करके तुम बिना किसी विघ्न-बाधाके गोविन्दको प्राप्त करो। तुम रसिका-रासेश्वरी हो और श्रीकृष्ण रसिकशिरोमणि हैं; अतः तुम नायिकाका रसिक नायकके साथ समागम गुणकारी होगा। सती राधे! सौ वर्षके बाद तुम श्रीदामाके शापसे मुक्त

---

* ये त्वां निन्दन्ति मद्भक्तास्त्वद्भक्ताश्चापि मामपि। कुम्भीपाके च पच्यन्ते यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
राधामाधवयोर्भेदं ये कुर्वन्ति नराधमाः। वंशहानिर्भवेत्तेषां पच्यन्ते नरके चिरम्॥
(१२३। ४४-४५)

हुई हो; अत: आज मेरे वरदानसे तुम श्रीकृष्णके साथ मिलो। सुन्दरि! मेरी दुर्लभ आज्ञा मानकर तुम अपना उत्तम शृङ्गार करो।

तब पार्वतीकी आज्ञासे प्यारी सखियाँ राधाका शृङ्गार करनेमें जुट गयीं। उन्होंने ईश्वरी राधाको रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठाया। फिर तो सखी रत्नमालाने सामनेसे आकर राधाके गलेमें रत्नोंकी माला पहना दी और उनके दाहिने हाथमें मनोहर क्रीड़ा-कमल रख दिया। पद्ममुखीने उनके दोनों चरणकमलोंको महावरसे सुशोभित किया। सुन्दरी गोपीने चन्दनयुक्त सिन्दूरकी परम रुचिर बेंदीसे सीमन्तके अधोभाग—ललाटको सुशोभित किया। सती मालतीने मालतीकी मालाओंसे विभूषित करके ऐसी मनभावनी रमणीय कबरी गूँथकर तैयार की जो मुनियोंके भी मनको मोह लेती थी। फिर कपोलोंपर कस्तूरी और कुंकुममिश्रित चन्दनसे सुन्दर पत्रभङ्गीकी रचना की। मालावतीने राधाको सुन्दर चम्पाके पुष्पोंकी मनोहर गन्धवाली माला और खिली हुई नवमल्लिका प्रदान की। रति-कार्योंमें रसका ज्ञान रखनेवाली गोपीने परम श्रेष्ठ नायिका राधाको रत्नाभरणोंसे विभूषित करके रति-रसके लिये उत्सुक बनाया। सती ललिताने उनके शरत्कालीन कमल-दलके समान विशाल नेत्रोंको काजलसे आँजकर सुहावनी साड़ी पहननेको दी और महेन्द्रद्वारा दिये गये पारिजातके सुगन्धित पुष्पको उनके हाथमें दिया। सती गोपिका सुशीलाने पतिके पास जाकर किस प्रकार सुशील एवं मधुर यथोचित वचन कहना चाहिये—ऐसी नीतियुक्त शिक्षा दी। राधाकी माता कलावतीने विपत्तिकालमें विस्मृत हुई स्त्रियोंकी षोडश कलाओंका स्मरण कराया। बहिन सुधामुखीने शृङ्गार-विषयसम्बन्धी अमृतोपम वचनकी ओर ध्यान आकर्षित किया। कमलाने शीघ्र ही कमल और चम्पाके चन्दनचर्चित पत्तेपर कोमल रति-शय्या सजायी। स्वयं सती चम्पावतीने चम्पाके सुन्दर पुष्पको चन्दनसे अनुलिप्त करके श्रीकृष्णके लिये दोनेमें सजाकर रखा। फिर उसने श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये केलि-कदम्बोंका पुष्प, मनोहर स्तबक (गुलदस्ता) और कदम्ब-पुष्पोंकी माला तैयार की। कृष्णप्रियाने श्रीकृष्णके लिये कपूर आदिसे सुवासित श्रेष्ठ एवं रुचिर पान तथा सुगन्धित जल उपस्थित किया। इसी समय देवताओं तथा मुनियोंने देखा कि जल-स्थलसहित सारा आश्रम गोरोचनके समान उद्भासित हो रहा है। उस समय तीनों लोकोंमें वास करनेवाले सभी लोगोंने राधिकाके दर्शन किये।

जिनके शरीरकी कान्ति श्वेत चम्पकके समान परम मनोहर एवं अनुपम है; जो ऊर्ध्वरेता मुनियोंके भी मनोंको मोहमें डाल देती हैं; जो सुन्दर केशोंवाली, सुन्दरी, षोडशवर्षीया और वटवृक्षके नीचे मण्डलमें वास करनेवाली हैं; जिनका मुख करोड़ों चन्द्रमाओंकी छबिको छीने लेता है; जो सदा मुस्कराती रहती हैं, जिनके दाँत बड़े सुन्दर हैं; जिनके शरत्कालीन कमलके समान विशाल नेत्र कज्जलसे सुशोभित रहते हैं; जो महालक्ष्मी, बीजरूपा, परमाद्या, सनातनी और परमात्मस्वरूप श्रीकृष्णके प्राणोंकी अधिष्ठातृदेवता हैं; परमात्माकी प्राप्तिके लिये जिनकी स्तुति-पूजा की जाती है; जो परा, ब्रह्मस्वरूपा, निर्लिप्ता, नित्यरूपा, निर्गुणा, विश्वके अनुरोधसे प्रकृति, भक्तानुग्रहमूर्ति, सत्यस्वरूपा, शुद्ध, पवित्र, पतित-पावनी, उत्तम तीर्थोंको पावन करनेवाली, सत्कीर्तिसम्पन्ना, ब्रह्माकी भी विधात्री, महाप्रिया, महती, महाविष्णुकी माता, रासेश्वरकी स्वामिनी, सुन्दरी नायिका, रसिकेश्वरी, अग्निशुद्ध वस्त्र धारण करनेवाली, स्वेच्छारूपा और मङ्गलकी आलय हैं; सात गोपियाँ श्वेत चँवर डुलाकर जिनकी निरन्तर सेवा करती रहती हैं, चार प्यारी सखियाँ जिनके चरणकमलकी सेवामें तत्पर रहती हैं, अमूल्य रत्नोंके बने हुए आभूषण जिनकी

शोभा बढ़ा रहे हैं, दोनों मनोहर कुण्डलोंसे जिनके कर्ण और कपोल उद्भासित हो रहे हैं और जिनकी सुन्दर नासिकामें गजमुक्ता लटक रही है, जो गरुड़की चोंचका उपहास करनेवाली है; जिनका शरीर कुंकुम-कस्तूरीमिश्रित सुस्निग्ध चन्दनसे चर्चित है, जिनके कपोल सुन्दर और अङ्ग कोमल हैं; जो कामुकी, गजराजकी-सी चालवाली, कमनीया एवं सुन्दरी नायिका, कामदेवके अस्त्रकी विजयस्वरूपा, कामकी कामनाका लय करनेवाली तथा श्रेष्ठ हैं; जिनके हाथमें प्रफुल्ल क्रीड़ा-कमल, पारिजातका पुष्प और अमूल्य रत्नजटित स्वच्छ दर्पण शोभा पाते हैं; जो नाना प्रकारके रत्नोंकी विचित्रतासे युक्त रत्नसिंहासनपर विराजमान होती हैं, जो परमात्मा श्रीकृष्णके पद्मद्वारा समर्चित मङ्गलरूप चरणकमलका अपने हृदयकमलमें ध्यान करती रहती हैं तथा मन-वचन-कर्मसे स्वप्न अथवा जाग्रत् कालमें श्रीकृष्णकी प्रीति और प्रेम-सौभाग्यका नित्य नूतन रूपमें स्मरण करती रहती हैं; जो प्रगाढ़भावानुरक्त, शुद्धभक्त, पतिव्रता, धन्या, मान्या, गौरवर्णा, निरन्तर श्रीकृष्णके वक्षः-स्थलपर वास करनेवाली, प्रियाओं तथा प्रिय भक्तोंमें परम प्रिय, प्रियवादिनी, श्रीकृष्णके वामाङ्गसे आविर्भूत, गुण और रूपमें अभिन्न, गोलोकमें वास करनेवाली, देवाधिदेवी, सबके ऊपर विराजमान, गोपीश्वरी, गुप्तिरूपा, सिद्धिदा, सिद्धिरूपिणी, ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य, सन्तोंद्वारा वन्दित और पुण्यक्षेत्र भारतमें वृषभानु-नन्दिनीके रूपमें प्रकट हुई हैं; उन राधाकी मैं वन्दना करता हूँ। जो ध्यानपरायण मानव समाधि-अवस्थामें ध्याननिष्ठ हो राधाका ध्यान करते हैं; वे इस लोकमें तो जीवन्मुक्त हैं ही, परलोकमें श्रीकृष्णके पार्षद होते हैं। तदनन्तर लोकोंके विधाता स्वयं ब्रह्माने ब्रह्माओंकी जननी परमेश्वरी राधाको देखकर सर्वप्रथम स्तुति करना आरम्भ किया।

ब्रह्मा बोले—परमेश्वरि! मेरा चित्त तुम्हारे पादपद्मके मधुर मधुमें लुब्ध हो गया था; अतः उस मधुव्रतके लोभसे प्रेरित होकर मैंने पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें स्थित पुष्करतीर्थमें जाकर साठ हजार दिव्य वर्षोंतक तपस्या की; तथापि तुम्हारा अभीष्ट चरणकमल मुझे प्राप्त नहीं हुआ। यहाँतक कि मुझे स्वप्नमें भी उसका दर्शन नहीं हुआ। तब उस समय यों आकाशवाणी हुई—'ब्रह्मन्! वाराहकल्पमें भारतवर्षमें वृन्दावन नामक पुण्यवनमें स्थित 'सिद्धाश्रम' में तुम्हें गणेशके चरणकमलका दर्शन होगा। तुम तो विषयी हो, अतः तुम्हें राधा-माधवकी दासता कहाँसे प्राप्त होगी? इसलिये महाभाग! तुम इससे निवृत्त हो जाओ; क्योंकि वह परम दुर्लभ है।' यों सुनकर मेरा मन टूट गया और मैं उस तपस्यासे विरत हो गया। पर उस तपस्याके फलस्वरूप मेरा वह मनोरथ आज परिपूर्ण हो गया।

श्रीमहादेवजीने कहा—देवि! ब्रह्मा आदि देवता, मुनिगण, मनु, सिद्ध, संत और योगीलोग ध्याननिष्ठ हो जिनके चरणकमलका, जो पद्मद्वारा कमल-पुष्पोंसे समर्चित एवं अत्यन्त दुर्लभ है, निरन्तर ध्यान करते रहते हैं; परंतु स्वप्नमें भी उसका दर्शन नहीं कर पाते, तुम उन्हींके वक्षः-स्थलपर वास करनेवाली हो।

अनन्त बोले—सुव्रते! वेद, वेदमाता, पुराण, मैं (शेषनाग), सरस्वती और संतगण तुम्हारी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं।

नारद! इस प्रकार वहाँ जितने देव, देवी तथा अन्यान्य मुनि, मनु आदि आये थे, उन सबने विनम्रभावसे राधाका स्तवन किया। यह देखकर रुक्मिणी आदि महिलाओंका मुख लज्जासे झुक गया। उन्होंने अपने शोकोच्छ्वाससे रत्नदर्पणको मलिन कर दिया। निराहारा कृशोदरी सत्यभामा तो मृतक-तुल्य हो गयी, उसके मनका सारा गर्व गल गया। (अध्याय १२३)

वसुदेवजीका शंकरजीसे भव-तरणका उपाय पूछना, शंकरजीका उन्हें ज्ञानोपदेश देकर राजसूय-यज्ञ करनेका आदेश देना, वसुदेवजीद्वारा राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान और यज्ञान्तमें सर्वस्व दक्षिणामें देकर उनका द्वारकाको लौटना

नारदजीने पूछा—विभो! गणेशपूजन और राधास्तोत्रसे बढ़कर वहाँ कौन-सी रहस्यमयी घटना घटित हुई; उसका मुझसे विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये।

श्रीभगवान् बोले—नारद! गणेशपूजन-तीर्थमें जितने देवता, मुनि और योगीन्द्र पधारे हुए थे; वे सभी वटवृक्षके नीचे समासीन थे। उनमेंसे शम्भु, ब्रह्मा, शेषनाग और श्रेष्ठ मुनियोंसे वसुदेव और देवकीने परमादरपूर्वक यों प्रश्न किया—'हे महाभाग! आप लोग दीनोंके बन्धु हैं; अतः शीघ्र ही बताइये कि हम दीनोंके लिये इस भवसागरसे पार करनेवाला कौन-सा उत्तम साधन है? आप लोग भवसागरसे पार करनेवाली नौकाके नाविक हैं; क्योंकि न तो तीर्थ ही केवल जलमय हैं और न देवगण ही केवल मिट्टी और पत्थरकी मूर्तिमात्र होते हैं। जितने यज्ञ, पुण्य, व्रत-उपवास, तप, अनेकविध दान, विप्रों और देवताओंकी अर्चनाएँ हैं; ये सभी चिरकालमें कर्ताको पावन बनाती हैं; परंतु वैष्णवजन दर्शनसे ही पवित्र कर देते हैं। विष्णुभक्त संतोंके पावन चरणकमलोंकी रजके स्पर्शमात्रसे वसुन्धरा तत्काल ही पावन हो जाती है और तीर्थ, समुद्र तथा पर्वत भी पवित्र हो जाते हैं। देवगण भी उन वैष्णवोंके पातकरूपी ईंधनका विनाश कर देनेवाले दर्शनकी अभिलाषा करते हैं। जैसे दूध, दही और रस परम स्वादिष्ट होते हैं; उसी प्रकार ज्ञान परमानन्ददायक होता है। उस ज्ञानको जो ज्ञानीके साहचर्यसे नहीं समझ पाता, वह अज्ञानी है। ज्ञानियोंके गुरुके भी गुरु भगवन्! जैसे मैं श्रीकृष्णका पिता और चिरकालका सङ्गी हूँ; उसी तरह देवकी भी उनकी माता है।' वसुदेवजीकी बात सुनकर स्वयं भगवान् शंकर, जो चारों वेदोंके भी जनक एवं गुरु हैं, हँस पड़े और इस प्रकार बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—अहो! ज्ञानियोंके संनिकट रहना भी उनके अनादरका ही कारण होता है; जैसे गङ्गाके जलसे पवित्र हुए लोग भी (गङ्गाका अनादर करके) सिद्धिके लिये अन्य तीर्थोंमें जाते हैं। वासुदेवके पिता ये वसुदेव स्वयं पण्डित हैं और अपने पिता वसुस्वरूप ज्ञानी कश्यपके अंशसे उत्पन्न हुए हैं। इनकी श्रीकृष्णमें पुत्र-बुद्धि है; इसीलिये ये श्रीकृष्णके अङ्गभूत हम लोगोंसे ज्ञान पूछ रहे हैं।

तदनन्तर श्रीमहादेवजीने सर्वकारणकारण भगवान् श्रीकृष्णकी महिमाका वर्णन करके कहा—'यदुवंशी वसुदेव! सर्वेश्वर श्रीकृष्ण ही सबके मूलरूप हैं; अतः राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान करके उसमें अपने पुत्र श्रीकृष्णकी, जो यज्ञके कारण एवं यज्ञेश हैं, समर्चना करो; फिर विधिपूर्वक दक्षिणा देकर भवसागरसे पार हो जाओ।'

मुने! शिवजीका कथन सुनकर जितेन्द्रिय वसुदेवजीने सामग्री जुटाकर शुभ मुहूर्तमें राजसूय-यज्ञका अनुष्ठान किया। उस यज्ञमें साक्षात् यज्ञेश और दक्षिणासहित ये यज्ञ वर्तमान थे; अतः देवताओंने साक्षात् प्रकट होकर वसुदेवजीके हव्यको ग्रहण किया। तदनन्तर जब वसुदेवजी पूर्णाहुति दे चुके; तब श्रीकृष्णकी आज्ञासे भगवान् सनत्कुमारने उनसे सर्वस्व दक्षिणामें देनेके लिये कहा। तब जिनके नेत्र और मुख प्रफुल्लित थे; उन वसुदेवजीने श्रीसनत्कुमारजीके आदेशानुसार ब्राह्मणोंको सर्वस्व दक्षिणारूपमें प्रदान कर दिया और ब्राह्मणोंके शुभ मुखोंद्वारा देवताओंको तृप्त

किया। तत्पश्चात् देवगण और मुनिसमुदाय उस रातमें अपनी पत्नियोंके साथ वहीं सुखपूर्वक रहे और प्रात:काल होनेपर वे सभी श्रीकृष्णकी अनुमतिसे अपने-अपने स्थानको चले गये। तब सभी यदुवंशी भी रुक्मिणीकी दृष्टि पड़नेसे अमूल्य रत्नोंसे परिपूर्ण एवं श्रीकृष्णद्वारा सुरक्षित द्वारकाको प्रस्थान कर गये।

(अध्याय १२४)

राधा और श्रीकृष्णका पुन: मिलाप, राधाके पूछनेपर श्रीकृष्णद्वारा अपना तथा राधाका रहस्योद्घाटन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! इस प्रकार माधवने यादवों, देवों, मुनियों तथा अन्यान्य व्यक्तियों और देवियोंके साथ गणेश-पूजनका कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् वे अपने एक अंशसे रुक्मिणी आदि देवियोंके साथ रमणीय द्वारकापुरीको चले गये; किंतु स्वयं साक्षात्‌रूपसे सिद्धाश्रममें ही ठहर गये। वहाँ वे गोलोकवासी गोप-सखाओं, नन्द तथा माता यशोदा-गोपीके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप करके पुन: माता, पिता, गोकुलवासी गोपों तथा बन्धुवर्गोंसे नीतियुक्त यथोचित वचन बोले।

श्रीभगवान्‌ने कहा—पिताजी! अब अपने व्रजको लौट जाओ। परम श्रेष्ठ यशस्विनी माता यशोदे! तुम भी उत्तम गोकुलको जाओ और वहाँ आयुके शेष कालपर्यन्त भोगोंका उपभोग करो। इतना कहकर भगवान् श्रीकृष्ण माता-पिताकी आज्ञा ले राधिकाके स्थानको चले गये तथा नन्दजी गोकुलको प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर श्रीकृष्णने मुस्कराती हुई सुन्दरी राधाको देखा। उनकी तरुणता नित्य स्थिर रहनेवाली थी, जिससे उनकी अवस्था द्वादश वर्षकी थी। मोतियोंका हार उनकी शोभा बढ़ा रहा था; वे रत्ननिर्मित ऊँचे आसनपर विराजमान थीं। उस समय मुस्कराती हुई असंख्य गोपियाँ हाथोंमें बेंत लिये उन्हें घेरे हुए थीं।

इधर प्राणवल्लभा राधाने भी दूरसे ही श्रीकृष्णको आते देखा। उनका परम सौन्दर्यशाली सुन्दर बालक-वेष था। वे मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे। उनके शरीरकी कान्ति नवीन मेघके समान श्याम थी; वे रेशमी पीताम्बर धारण किये हुए थे; उनका सर्वाङ्ग चन्दनसे अनुलिप्त था; रत्नोंके आभूषण उन्हें सुशोभित कर रहे थे; उनकी शिखामें मयूर-पिच्छ शोभा दे रहा था; वे मालतीकी मालासे विभूषित थे; उनका प्रसन्नमुख मन्द हास्यकी छटा बिखेर रहा था; वे साक्षात् भक्तानुग्रहमूर्ति थे तथा मनोहर प्रफुल्ल क्रीडाकमल लिये हुए थे; उनके एक हाथमें मुरली और दूसरे हाथमें सुप्रशस्त दर्पण शोभा पा रहा था। उन्हें देखकर राधा तुरंत ही गोपियोंके साथ उठ खड़ी हुई और परम भक्तिपूर्वक उन परमेश्वरको सादर प्रणाम करके उनकी स्तुति करने लगीं।

राधिका बोलीं—नाथ! तुम्हारे मुखचन्द्रको देखकर आज मेरा जन्म लेना सार्थक और जीवन धन्य हो गया तथा मेरे नेत्र और मन परम प्रसन्न हो गये। पाँचों प्राण स्नेहार्द्र और आत्मा हर्षविभोर हो गया; दुर्लभ बन्धुदर्शन दोनों (द्रष्टा और दृश्य)-के हर्षका कारण होता है। विरहाग्निसे जली हुई मैं शोकसागरमें डूब रही थी। तुमने अपनी पीयूषवर्षिणी दृष्टिसे मेरी ओर निहारकर मुझे भलीभाँति अभिषिक्त कर दिया; जिससे मेरा ताप जाता रहा। तुम्हारे साथ रहनेपर मैं शिवा, शिवप्रदा, शिवबीजा और

शिवस्वरूपा हूँ; किंतु तुमसे वियुक्त हो जानेपर मैं अदृष्ट हो जाती हूँ और मेरी सारी चेष्टाएँ नष्ट हो जाती हैं। तुम्हारे समीप स्थित रहनेपर देह शोभासम्पन्न, पवित्र और सर्वशक्तिस्वरूप दीखता है; परंतु तुम्हारे चले जानेपर वह शवरूप हो जाता है। नाथ! स्त्री-पुरुषका सामान्य वियोग भी अत्यन्त दारुण होता है। यहाँ तो परमात्माके वियोगसे पाँचों प्राण शक्तियोंके सहित ही निकल जाते हैं।

यों कहकर देवी राधिकाने परमात्मा श्रीकृष्णको अपने आसनपर बैठाया और हर्षपूर्वक उनके चरणोंकी पूजा की। तत्पश्चात् शोभाशाली श्रीकृष्ण राधाके साथ रत्नसिंहासनपर विराजमान हुए। उस समय गोपियाँ निरन्तर श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा कर रही थीं। चन्दनाने श्रीहरिके शरीरमें सुगन्धित चन्दनका अनुलेप किया। मुस्कराती हुई रत्नमालाने श्रीहरिके गलेमें रत्नमाला पहनायी। सती पद्मावतीने पद्मद्वारा कमल-पुष्पोंसे समर्चित चरणकमलमें जल, दूब, पुष्प और चन्दनयुक्त अर्घ्य प्रदान किया। मालतीने श्रीहरिकी चूड़ाको मालतीकी मालासे सुशोभित किया। सती पार्वतीने चम्पाके पुष्पका पुटक समर्पित किया। पारिजाताने हर्षमग्न हो श्रीहरिको पारिजात-पुष्प, कपूरयुक्त ताम्बूल और सुवासित शीतल जल निवेदित किया। कदम्बमालाने कदम्ब-पुष्पोंकी शुभ माला, प्रफुल्लित क्रीड़ा-कमल और अमूल्य रत्नदर्पण समर्पित किया। सुकोमला कमलाने पूर्वकालमें वरुणद्वारा दिये हुए दोनों सुन्दर वस्त्रोंको श्रीहरिके हाथमें ही रख दिया। सुन्दरी वधूने साक्षात् श्रीहरिको गोरोचनकी-सी आभावाले एवं मधुर मधुसे परिपूर्ण मधुपात्र दिया। सुधामुखीने भक्तिपूर्वक अमृतसे लबालब भरा हुआ अमृतपात्र प्रदान किया। किसी दूसरी गोपीने प्रफुल्लित मालती-पुष्पोंके मालाजालसे विभूषित एवं चन्दनचर्चित पुष्पशय्या तैयार की। वह शय्या एक ऐसे परम मनोहर भवनमें सजायी गयी थी, जिसका निर्माण बहुमूल्य रत्नोंके सारभागसे हुआ था; श्रेष्ठ मणि, मोती, माणिक्य और हीरोंके हार जिसकी विशेष शोभा बढ़ा रहे थे; कस्तूरी और कुंकुमयुक्त वायु जिसे सुगन्धित बना रही थी; जलते हुए सैकड़ों रत्नदीपोंसे जो उद्दीप्त हो रहा था और नाना प्रकारकी वस्तुओंसे समन्वित धूपोंद्वारा जो निरन्तर धूपित रहता था। वहाँ रतिकरी शय्याका निर्माण करके गोपियाँ हँसती हुई चली गयीं। तब एकान्तमें मनको आकर्षित करनेवाली उस परम रमणीय शय्याको देखकर राधा-माधव उसपर विराजमान हुए। उस समय सती राधाने माधवके गलेमें माला पहनायी, मुखमें सुवासित ताम्बूलका बीड़ा दिया; फिर श्यामसुन्दरके वक्षःस्थलपर कस्तूरी-कुंकुमयुक्त चन्दनका अनुलेप किया, उनकी शिखामें चम्पाका सुन्दर पुष्प लगाया, हाथमें सहस्रदलयुक्त क्रीड़ा-कमल दिया और उनके हाथसे मुरली छीनकर उसमें रत्नदर्पण पकड़ा दिया तथा उनके आगे पारिजातका खिला हुआ रुचिर पुष्प रख दिया। तत्पश्चात् जो शान्तमूर्ति, कमनीय और नाधिकाके मनको हर लेनेवाले हैं तथा मन्द-मन्द मुस्करा रहे थे; उन प्रियतम श्रीकृष्णसे राधा एकान्तमें मुस्कराती हुई मधुर वचन बोलीं।

श्रीराधिकाने कहा—नाथ! जो स्वयं मङ्गलोंका भण्डार, सम्पूर्ण मङ्गलोंका कारण, मङ्गलरूप तथा मङ्गलोंका प्रदाता है, उसके विषयमें कुशल-मङ्गलका प्रश्न करना तो निष्फल ही है; तथापि इस समय कुशल पूछना समयानुसार उचित है; क्योंकि लौकिक व्यवहार वेदोंसे भी बली माना जाता है। इसलिये रुक्मिणीकान्त! सत्यभामाके प्राणपति! इस समय

कुशल तो है न? तदनन्तर श्रीराधाने भगवान् श्रीकृष्णसे उनके स्वरूप तथा अवतार-लीलाके सम्बन्धमें प्रश्न किया।

तब श्रीकृष्ण बोले—राधे! जिसे सुनकर मूर्ख हलवाहा भी तत्काल ही पण्डित हो जाता है, उस सर्वश्रेष्ठ आध्यात्मिक ज्ञानका मैं वर्णन करता हूँ, सुनो। राधे! मैं स्वभावसे ही सब लोकोंका स्वामी हूँ, फिर रुक्मिणी आदि महिलाओंकी तो बात ही क्या है। मैं कार्य-कारणरूपसे पृथक्-पृथक् व्यक्त होता हूँ। मैं स्वयं ज्योतिर्मय हूँ, समस्त विश्वोंका एकमात्र आत्मा हूँ और तृणसे लेकर ब्रह्मापर्यन्त सम्पूर्ण प्राणियोंमें व्याप्त हूँ। गोलोकमें मैं स्वयं परिपूर्णतम श्रीकृष्णरूपसे वर्तमान रहता हूँ और रमणीय क्षेत्र गोकुलके 'वृन्दावन' नामक वनमें मैं ही राधापति हूँ। उस समय मैं द्विभुज होकर गोपवेषमें शिशुरूपसे क्रीडा करता हूँ; ग्वाले, गोपियाँ और गौएँ ही मेरी सहायक होती हैं। वैकुण्ठमें मैं चतुर्भुजरूपसे रहता हूँ; वहाँ मैं ही लक्ष्मी और सरस्वतीका प्रियतम हूँ और सदा शान्तरूपसे वास करता हूँ। इस प्रकार मैं सनातन परमेश्वर ही दो रूपोंमें विभक्त हूँ। भूतलपर, श्वेतद्वीप और क्षीरसागरमें मानसी, सिन्धुकन्या और मर्त्यलक्ष्मीके जो पति हैं, वह भी मैं ही हूँ और वहाँ भी मैं चतुर्भुजरूपसे ही रहता हूँ। मैं स्वयं नारायण ऋषि हूँ और धर्मवक्ता, धर्मिष्ठ तथा धर्म-मार्गके प्रवर्तक सनातन धर्म नर हैं। धर्मिष्ठा तथा पतिव्रता शान्ति लक्ष्मीस्वरूपा है और इस पुण्यक्षेत्र भारतवर्षमें मैं उसका पति हूँ। मैं ही सिद्धेश्वर, सिद्धियोंके दाता और साक्षात् कपिल हूँ। सुन्दरि! इस प्रकार व्यक्तिभेदसे मैं नाना रूप धारण करता हूँ। चतुर्भुजरूपधारी मैं ही सदा द्वारकामें रुक्मिणीका स्वामी होता हूँ, क्षीरसागरमें शयन करनेवाला मैं ही सत्यभामाके शुभ भवनमें वास करता हूँ तथा अन्यान्य रानियोंके महलोंमें मैं ही पृथक्-पृथक् शरीर धारण करके क्रीडा करता हूँ। मैं नारायण ऋषि ही इस अर्जुनका सारथि हूँ। अर्जुन नर-ऋषि हैं, धर्मका पुत्र हैं, बलवान् हैं और मेरे अंशसे भूतलपर उत्पन्न हुआ है। उसने पुष्करक्षेत्रमें सारथि-कार्यके लिये तपस्याद्वारा मेरी आराधना की है।

राधे! जैसे तुम गोलोकमें राधिकादेवी हो, उसी तरह गोकुलमें भी हो। तुम्हीं वैकुण्ठमें महालक्ष्मी और सरस्वती हो। क्षीरोदशायीकी प्रियतमा मर्त्यलक्ष्मी तुम्हीं हो। धर्मकी पुत्रवधू लक्ष्मीस्वरूपिणी शान्तिके रूपमें तुम्हीं वर्तमान हो। भारतवर्षमें कपिलकी प्यारी पत्नी सती भारती तुम्हारा ही नाम है। तुम्हीं मिथिलामें सीता नामसे विख्यात हो। सती द्रौपदी तुम्हारी ही छाया है। द्वारकामें महालक्ष्मीके अंशसे प्रकट हुई सती रुक्मिणीके रूपमें तुम्हीं वास करती हो। पाँचों पाण्डवोंकी पत्नी द्रौपदी तुम्हारी कला है। तुम्हीं रामकी पत्नी सीता हो; रावणने तुम्हारा ही अपहरण किया था। सखि! जैसे तुम अपनी छाया और कलासे नाना रूपोंमें प्रकट हो, वैसे ही मैं भी अपने अंश और कलासे अनेक रूपोंमें व्यक्त हूँ। मैं ही परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा हूँ। सती राधे! इस प्रकार मैंने तुम्हें यह सारा आध्यात्मिक ज्ञान बता दिया। परमेश्वरि! अब तुम मेरे सारे अपराधोंको क्षमा कर दो। श्रीकृष्णका कथन सुनकर राधिका तथा सभी गोपिकाओंको महान् हर्ष हुआ। वे सभी परमेश्वर श्रीकृष्णको प्रणाम करने लगीं। (अध्याय १२५)

श्रीकृष्णका राधाके साथ विभिन्न स्थलोंमें विहार करके पुनः गोकुलमें जाना, वहाँ उनका स्वागत-सत्कार, यशोदाका राधासहित श्रीकृष्णको महलमें ले जाना और मङ्गल-महोत्सव करना

तदनन्तर राधिकाने कहा—महाभाग! अब पुण्यमय वृन्दावनमें स्थित रासमण्डलको चलिये; वहाँ मैं आपके साथ जलमें तथा स्थलपर क्रीड़ा करूँगी। पुनः मलयपर्वत और सुन्दर मणिमन्दिरको चलूँगी। इनके अतिरिक्त जो दूसरे रहस्यमय स्थान हैं, जिन्हें मैंने जन्मसे लेकर आजतक सुना ही नहीं है; उन-उन स्थानोंमें भी आपके साथ चलूँगी—ऐसी मेरी उत्कृष्ट लालसा है।

यों परस्पर वार्तालाप करते ही वह मङ्गलमयी रात्रि व्यतीत हो गयी। अरुणोदय बेला आ पहुँची तथापि सती राधाने माधवको छोड़ना नहीं चाहा। तब श्रीकृष्णने युक्तिपूर्वक प्रेमभरे वचनोंसे राधाको समझाया। तदनन्तर शरत्कालीन कमलके-से विशाल नेत्रोंवाले श्रीहरि प्रातःकृत्य समाप्त करके राधा तथा गोपियोंके साथ एक ऐसे रथपर सवार हुए, जो गोलोकसे आया था। वह मनोहर तथा मनके समान वेगशाली रथ एक योजन लंबा-चौड़ा था, उसमें सहस्रों पहिये लगे थे, बहुमूल्य मणियोंके बने हुए तीन सौ करोड़ चमकीले गृहोंसे वह सुशोभित था, तीन करोड़ मणिस्तम्भों और रत्नोंकी झालरोंसे उसकी विशेष शोभा हो रही थी; मुक्ता, माणिक्य और उत्तम हीरेके हारोंसे वह परम सुहावना लग रहा था; वह नाना प्रकारकी विचित्र चित्रकारियों, श्वेत चँवर और दर्पणों, अग्निशुद्ध चमकीले वस्त्रों और मालासमूहोंसे विभूषित था; उसमें रत्नोंकी बनी हुई पुष्पचन्दनचर्चित अनेकों शय्याएँ शोभा दे रही थीं, समान रूप और वेषवाली लाखों गोपियोंसे वह समावृत था और उसे एक हजार घोड़े खींच रहे थे। उस रथसे भगवान् पुनः वृन्दावनमें गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने रात्रिके समय जलस्थलपर विहार किया और राधिकाको वहाँके सभी पदार्थोंको इस रूपमें दिखलाया, मानो सभी नवीन प्रकट हुए हों।

पुनः सुन्दर शृङ्गार करके वनों और उपवनोंमें, विस्यन्दक, सुरसन, माहेन्द्र और नन्दनवनमें, सुमेरुकी चोटी तथा रमणीय गन्धमादन पर्वतपर, सुन्दर-सुन्दर पर्वत, कन्दरा और वनमें, अत्यन्त गुप्त पुष्पोद्यानोंमें, प्रत्येक नदियों और नदोंके जलमें, समुद्रके तटपर, पारिजात-वृक्षोंके मनोहर वनमें सुभद्र, पुष्पभद्र और नारायण सरोवरपर, पवनके आवासस्थान तथा देवताओंकी निवासभूमि मलय पर्वतपर, त्रिकूट, भद्रकूट, पञ्चकूट और सुकूटपर, देवोंकी स्वर्णमयी कमनीय भूमिपर, प्रत्येक समुद्रपर तथा मनोहर द्वीपमें, श्रेष्ठ स्वर्गलोकमें, पुण्यमय रुचिर चन्द्रसरोवरपर और मुनियोंके आश्रमोंके आस-पास उन्होंने राधाके साथ विहार किया। पुनः शीघ्र ही पुण्यप्रद जम्बूद्वीपमें आकर द्वारका तथा रैवतक पर्वतको दिखलाया। फिर गोप और गो-समूहसे व्याप्त गोकुलमें आये। वहाँ भाण्डीरवटको देखकर वे पुण्यमय वृन्दावनमें गये।

श्रीकृष्णका आगमन सुनकर नन्द, यशोदा और बूढ़े गोप तथा गोपियोंकी आकुलता जाती रही और उनके नेत्रोंमें हर्षके आँसू छलक आये। फिर तो उन्होंने गजराज, नटी, नट, नर्तक, पति-पुत्रवती साध्वी ब्राह्मणी और ब्राह्मणोंको आगे करके उनका उसी प्रकार स्वागत किया, जैसे देवगण अग्निका करते हैं। तब माधव नन्द तथा माता यशोदाको देखकर राधाके साथ बालकृष्ण-रूपमें उनके निकट आये। फिर मधुसूदन हँसकर माताकी गोदमें जा बैठे। तब यशोदासहित नन्द उनका मुख-कमल चूमने लगे और स्नेहवश छातीसे लगाकर नेत्रोंके अश्रुजलसे उन्हें सींचने

लगे। उधर स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण यशोदाका स्तनपान करनेमें जुट गये। उस समय सभी लोगोंने श्रीकृष्णको उसी रूपमें देखा, जिस रूपमें वे मथुरा गये थे। उनके हाथमें मुरली शोभा पा रही थी, वे रत्नोंके आभूषणोंसे विभूषित थे, उनकी ग्यारह वर्षकी किशोर अवस्था थी, पीताम्बर उनकी शोभा बढ़ा रहा था, शिखामें मयूरपिच्छकी निराली छटा थी और वे मालतीकी मालाओंसे सुसज्जित थे। तत्पश्चात् यशोदा राधासहित माधवको महलके भीतर लिवा ले गयीं। वहाँ उन्होंने माङ्गलिक कार्य सम्पन्न करके ब्राह्मणोंको भोजन कराया और गोपियोंका उसी प्रकार पूजन किया जैसे लोग मुनियोंका करते हैं। फिर आनन्दमग्न हो ब्राह्मणोंको मणि, रत्न, मूँगा, उत्तम सुवर्ण, मोती, माणिक्य, हीरा, गजरत्न, गोरत्न, मनोहर अश्वरत्न, धान्य, फसल लगी हुई खेती और वस्त्र दान किये। राधाके साथ माधवको अपूर्व वस्तुका दर्शन कराया। नारद! फिर गोपियोंको भी आदरपूर्वक मिष्टान्नका भोजन कराया, दुन्दुभियाँ बजवायीं, मङ्गल कराया और देवगणोंको आनन्दपूर्वक मनोहर पदार्थोंका भोग समर्पित किया।

(अध्याय १२६)

श्रीकृष्णद्वारा नन्दको ज्ञानोपदेश और राधा-कलावती आदि गोपियोंका गोलोक-गमन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! जहाँ पहले ब्राह्मणपत्नियोंने श्रीकृष्णको अन्न दिया था; उस भाण्डीर-वटकी छायामें श्रीकृष्ण स्वयं विराजमान हुए और वहीं समस्त गोपोंको बुलवा भेजा। श्रीहरिके वामभागमें राधिकादेवी, दक्षिणभागमें यशोदासहित नन्द, नन्दके दाहिने वृषभानु और वृषभानुके बायें कलावती तथा अन्यान्य गोप, गोपी, भाई-बन्धु तथा मित्रोंने आसन ग्रहण किया। तब गोविन्दने उन सबसे समयोचित यथार्थ वचन कहा।

श्रीभगवान् बोले—नन्द! इस समय जो समयोचित, सत्य, परमार्थ और परलोकमें सुखदायक है; उसका वर्णन करता हूँ, सुनो। ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त सभी पदार्थ बिजलीकी चमक, जलके ऊपर की हुई रेखा और पानीके बुलबुलेके समान भ्रमरूप ही हैं—ऐसा जानो। मैंने मथुरामें तुम्हें सब कुछ बतला दिया था, कुछ भी उठा नहीं रखा था। उसी प्रकार कदलीवनमें राधिकाने यशोदाको समझाया था। वही परम सत्य भ्रमरूपी अन्धकारका विनाश करनेके लिये दीपक है; इसलिये तुम मिथ्या मायाको छोड़कर उसी परम पदका स्मरण करो। वह पद जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधिका विनाशक, महान् हर्षदायक, शोक-संतापका निवारक और कर्ममूलका उच्छेदक है। मुझ परम ब्रह्म सनातन भगवान्‌का बारंबार ध्यान करके तुम उस परम पदको प्राप्त करो। अब कर्मकी जड़ काट देनेवाले कलियुगका आगमन संनिकट है; अतः तुम शीघ्र ही गोकुलवासियोंके साथ गोलोकको चले जाओ। तदनन्तर भगवान्‌ने कलियुगके धर्म तथा लक्षणोंका वर्णन किया।

विप्रवर! इसी बीच वहाँ व्रजमें लोगोंने सहसा गोलोकसे आये हुए एक मनोहर रथको देखा। वह रथ चार योजन विस्तृत और पाँच योजन ऊँचा था; बहुमूल्य रत्नोंके सारभागसे उसका निर्माण हुआ था। वह शुद्ध स्फटिकके समान उद्भासित हो रहा था; विकसित पारिजात-पुष्पोंकी मालाओंसे उसकी विशेष शोभा हो रही थी; वह कौस्तुभमणियोंके आभूषणोंसे विभूषित था; उसके ऊपर अमूल्य रत्नकलश चमक रहा था; उसमें हीरेके हार लटक रहे थे; वह सहस्रों

करोड़ मनोहर मन्दिरोंसे व्याप्त था; उसमें दो हजार पहिये लगे थे और दो हजार घोड़े उसका भार वहन कर रहे थे तथा उसपर सूक्ष्म वस्त्रका आवरण पड़ा हुआ था एवं वह करोड़ों गोपियोंसे समावृत था। नारद! राधा और धन्यवादकी पात्र कलावती देवीका जन्म किसीके गर्भसे नहीं हुआ था। यहाँतक कि गोलोकसे जितनी गोपियाँ आयी थीं; वे सभी अयोनिजा थीं। उनके रूपमें श्रुतिपत्नियाँ ही अपने शरीरसे प्रकट हुई थीं। वे सभी श्रीकृष्णकी आज्ञासे अपने नश्वर शरीरका त्याग करके उस रथपर सवार हो उत्तम गोलोकको चली गयीं। साथ ही राधा भी गोकुलवासियोंके साथ गोलोकको प्रस्थित हुईं।

ब्रह्मन्! मार्गमें उन्हें विरजा नदीका मनोहर तट दीख पड़ा, जो नाना प्रकारके रत्नोंसे विभूषित था। उसे पार करके वे शतशृङ्ग पर्वतपर गयीं। वहाँ उन्होंने अनेक प्रकारके मणिसमूहोंसे व्याप्त सुसज्जित रासमण्डलको देखा। उससे कुछ दूर आगे जानेपर पुण्यमय वृन्दावन मिला। आगे बढ़नेपर अक्षयवट दिखायी दिया, उसकी करोड़ों शाखाएँ चारों ओर फैली हुई थीं। वह सौ योजन विस्तारवाला और तीन सौ योजन ऊँचा था और लाल रंगके बड़े-बड़े फलसमूह उसकी शोभा बढ़ा रहे थे। उसके नीचे मनोहर वृन्दा हजारों-करोड़ों गोपियोंके साथ विराजमान थीं। उसे देखकर राधा तुरंत ही रथसे उतरकर आदरसहित मुस्कराती हुई उसके निकट गयीं। वृन्दाने राधाको नमस्कार किया। तत्पश्चात् रासेश्वरी राधासे वार्तालाप करके वह उन्हें अपने महलके भीतर लिवा ले गयी। वहाँ वृन्दाने राधाको हीरेके हारोंसे समन्वित एक रमणीय रत्नसिंहासनपर बैठाया और स्वयं उनकी चरणसेवामें जुट गयी। सात सखियाँ श्वेत चँवर डुलाकर उनकी सेवा करने लगीं। इतनेमें परमेश्वरी राधाको देखनेके लिये सभी गोपियाँ वहाँ आ पहुँचीं। तब राधाने नन्द आदिके लिये पृथक्-पृथक् आवासस्थानकी व्यवस्था की। तदनन्तर परमानन्दरूपा गोपिका राधा परमानन्दपूर्वक सबके साथ अपने परम रुचिर भवनको प्रस्थित हुईं। (अध्याय १२७)

श्रीकृष्णके गोलोकगमनका वर्णन

श्रीनारायण कहते हैं—नारद! परिपूर्णतम प्रभु भगवान् श्रीकृष्ण वहाँ तत्काल ही गोकुलवासियोंके सालोक्य मोक्षको देखकर भाण्डीरवनमें वटवृक्षके नीचे पाँच गोपोंके साथ ठहर गये। वहाँ उन्होंने देखा कि सारा गोकुल तथा गो-समुदाय व्याकुल है। रक्षकोंके न रहनेसे वृन्दावन शून्य तथा अस्त-व्यस्त हो गया है। तब उन कृपासागरको दया आ गयी। फिर तो, उन्होंने योगधारणाद्वारा अमृतकी वर्षा करके वृन्दावनको मनोहर, सुरम्य और गोपों तथा गोपियोंसे परिपूर्ण कर दिया। साथ ही गोकुलवासी गोपोंको ढाढ़स भी बँधाया। तत्पश्चात् वे हितकर नीतियुक्त दुर्लभ मधुर वचन बोले।

श्रीभगवान्ने कहा—हे गोपगण! हे बन्धो! तुम लोग सुखका उपभोग करते हुए शान्तिपूर्वक यहाँ वास करो; क्योंकि प्रियाके साथ विहार, सुरम्य रासमण्डल और वृन्दावन नामक पुण्यवनमें श्रीकृष्णका निरन्तर निवास तबतक रहेगा, जबतक सूर्य और चन्द्रमाकी स्थिति रहेगी। तत्पश्चात् लोकोंके विधाता ब्रह्मा भी भाण्डीरवनमें आये। उनके पीछे स्वयं शेष, धर्म, भवानीके साथ स्वयं शंकर, सूर्य, महेन्द्र, चन्द्र, अग्नि, कुबेर, वरुण, पवन, यम, ईशान आदि देव, आठों वसु, सभी ग्रह, रुद्र, मुनि तथा मनु—ये सभी शीघ्रतापूर्वक वहाँ आ पहुँचे, जहाँ सामर्थ्यशाली भगवान् श्रीकृष्ण

विराजमान थे। तब स्वयं ब्रह्माने दण्डकी भाँति भूमिपर लेटकर उन्हें प्रणाम किया और यों कहा।

ब्रह्मा बोले—भगवन्! आप परिपूर्णतम ब्रह्मस्वरूप, नित्य विग्रहधारी, ज्योतिःस्वरूप, परमब्रह्म और प्रकृतिसे परे हैं, आपको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। परमात्मन्! आप परम निर्लिप्त, निराकार, ध्यानके लिये साकार, स्वेच्छामय और परमधाम हैं; आपको प्रणाम है। सर्वेश! आप सम्पूर्ण कार्यस्वरूपोंके स्वामी, कारणोंके कारण और ब्रह्मा, शिव, शेष आदि देवोंके अधिपति हैं, आपको बारंबार अभिवादन है। परात्पर! आप सरस्वती, पद्मा, पार्वती, सावित्री और राधाके स्वामी हैं; रासेश्वर! आपको मेरा प्रणाम स्वीकार हो। सृष्टिरूप! आप सबके आदिभूत, सर्वरूप, सर्वेश्वर, सबके पालक और संहारक हैं; आपको नमस्कार प्राप्त हो। हे नाथ! आपके चरणकमलकी रजसे वसुन्धरा पावन तथा धन्य हुई है; आपके परमपद चले जानेपर यह शून्य हो जायगी। इसपर क्रीड़ा करते आपके एक सौ पचीस वर्ष बीत गये। अब आप इस विरहातुरा रोती हुई पृथ्वीको छोड़कर अपने धामको पधार रहे हैं।

श्रीमहादेवजीने कहा—विभो! आप ब्रह्माकी प्रार्थनासे भूतलपर अवतीर्ण हो पृथ्वीका भार हरण करके अपने पदको जा रहे हैं। आपके चरणोंसे अङ्कित हुई भूमि तुरंत ही पावन और तीनों लोकोंमें धन्य हो गयी। आपके चरणकमलका साक्षात् दर्शन करके हम लोग और मुनिगण धन्य हो गये। जो ऊर्ध्वरेता मुनियोंके लिये ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य और निष्पाप हैं; वे ही परमेश्वर इस समय भूतलपर हम लोगोंके दृष्टिगोचर हुए हैं। जिनके रोमकूपोंमें विश्वोंका निवास है, उन सर्वनिवास प्रभुको वासु कहते हैं। उन वासु-स्वरूप महाविष्णुके जो देव हैं, वे भूतलपर 'वासुदेव' नामसे विख्यात हैं। जिनके अनुपम एवं परम दुर्लभ पादपद्म सिद्धेन्द्रोंके चिरकालतक तपस्या करनेपर उपलब्ध होते हैं; वे ही आज सब लोगोंके नेत्रोंके विषय हुए हैं।

अनन्त बोले—नाथ! ऐश्वर्यशाली अनन्त तो आप ही हैं, मैं नहीं हूँ। मैं तो आपका कलांश हूँ। विश्वके एकमात्र आधार उस क्षुद्र कूर्मकी पीठपर मैं उसी तरह दिखायी देता हूँ, जैसे हाथीके ऊपर मच्छर! ब्रह्मा, विष्णु और शिवात्मक असंख्यों शेष और कूर्म हैं तथा विश्व भी असंख्य हैं। उन सबके स्वामी स्वयं आप हैं। नाथ! हम लोगोंका ऐसा सुदिन कहाँ होगा कि स्वप्नमें भी जिनका दर्शन दुर्लभ है, वे ही ईश्वर समस्त जीवोंके दृष्टिगोचर हो रहे हैं। नाथ! आपने ही वसुन्धराको पावन बनाया है। अब शोकसागरमें डूबती एवं रोती हुई उस पृथ्वीको अनाथ करके आप गोलोक पधार रहे हैं।

देवताओंने कहा—भगवन्! देवगण तथा ब्रह्मा और ईशान आदि देवता जिनकी स्तुति करनेमें समर्थ नहीं हैं; उनका स्तवन भला, हम लोग क्या कर सकते हैं; अतः आपको नमस्कार है।

मुने! इतना कहकर वे सभी देवता हर्षमग्न हो द्वारकावासी भगवान्का दर्शन करनेके लिये शीघ्र ही द्वारकापुरीको प्रयाण कर गये। उनमें जितने ग्वाले थे, वे सभी उत्तम गोलोकको चले गये। पृथ्वी भयभीत हो काँपने लगी। सातों समुद्र मर्यादारहित हो गये। ब्रह्मशापसे द्वारकाकी शोभा नष्ट हो गयी। तब राधिकापति श्रीकृष्ण उसे त्यागकर कदम्बमूलस्थित मूर्तिमें समा गये। उन सभी यदुवंशियोंका एरकायुद्धमें विनाश हो गया तथा उनकी पत्नियाँ चितामें जलकर अपने-अपने पतियोंकी अनुगामिनी बन गयीं। अर्जुनने हस्तिनापुर जाकर यह समाचार युधिष्ठिरसे कह सुनाया। तब राजा युधिष्ठिर भी पत्नी तथा भाइयोंके साथ स्वर्गको चले गये।

तदनन्तर जो परम आत्मबलसे सम्पन्न, देवाधिदेव, नारायण, प्रभु, श्यामसुन्दर, किशोर

अवस्थावाले और रत्ननिर्मित आभूषणोंसे सुशोभित थे; अग्निशुद्ध वस्त्र जिनका परिधान था; वनमाला जिनकी शोभा बढ़ा रही थी; जो अत्यन्त सुन्दर, शान्त और मनोहर थे; जिनके पद्म आदिद्वारा वन्दित चरणकमलमें व्याधद्वारा छोड़ा हुआ अस्त्र चुभा हुआ था; उन लक्ष्मीकान्त परमेश्वरको कदम्बके नीचे स्थित देखकर ब्रह्मा आदि सभी देवताओंने भक्तिपूर्वक उन्हें प्रणाम किया और फिर उनकी स्तुति की। तब श्रीकृष्णने उन ब्रह्मा आदि देवोंकी ओर मुस्कराते हुए देखकर उन्हें अभयदान दिया। पृथ्वी प्रेमविह्वल हो रो रही थी; उसे पूर्णरूपसे आश्वासन दिया और व्याधको अपने उत्तम परम पदको भेज दिया। तत्पश्चात् बलदेवजीका परम अद्भुत तेज शेषनागमें, प्रद्युम्नका कामदेवमें और अनिरुद्धका ब्रह्मामें प्रविष्ट हो गया। नारद! देवी रुक्मिणी, जो अयोनिजा तथा साक्षात् महालक्ष्मी थीं; अपने उसी शरीरसे वैकुण्ठको चली गयीं। कमलालया सत्यभामा पृथ्वीमें तथा स्वयं जाम्बवतीदेवी जगज्जननी पार्वतीमें प्रवेश कर गयीं। इस प्रकार भूतलपर जो-जो देवियाँ जिन-जिनके अंशसे प्रकट हुई थीं; वे सभी पृथक्-पृथक् अपने अंशोंमें विलीन हो गयीं। साम्बका अत्यन्त निराला तेज स्कन्दमें, वसुदेव कश्यपमें और देवकी अदितिमें समा गयीं। विकसित मुख और नेत्रोंवाले समुद्रने रुक्मिणीके महलको छोड़कर शेष सारी द्वारकापुरीको अपने अंदर समेट लिया। इसके बाद क्षीरसागरने आकर पुरुषोत्तम श्रीकृष्णका स्तवन किया। उस समय उनके वियोगके कारण उसके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गये और वह व्याकुल होकर रोने लगा। मुने! तत्पश्चात् गङ्गा, सरस्वती, पद्मावती, यमुना, गोदावरी, स्वर्णरेखा, कावेरी, नर्मदा, शरावती, बाहुदा और पुण्यदायिनी कृतमाला—ये सभी सरिताएँ भी वहाँ आ पहुँचीं और सभीने परमेश्वर श्रीकृष्णको नमस्कार किया। उनमें जह्नुतनया गङ्गादेवी विरह-वेदनासे कातर तथा अत्यन्त दीन हो रही थीं। उनके नेत्रोंमें आँसू उमड़ आये थे। वे रोती हुई परमेश्वर श्रीकृष्णसे बोलीं।

भागीरथीने कहा—नाथ! रमणश्रेष्ठ! आप तो उत्तम गोलोकको पधार रहे हैं; किंतु इस कलियुगमें हम लोगोंकी क्या गति होगी?

तब श्रीभगवान् बोले—जाह्नवि! पापी लोग तुम्हारे जलमें स्नान करनेसे तुम्हें जिन पापोंको देंगे; वे सभी मेरे मन्त्रकी उपासना करनेवाले वैष्णवके स्पर्श, दर्शन और स्नानसे तत्काल ही भस्म हो जायँगे। जहाँ हरि-नामसंकीर्तन और पुराणोंकी कथा होगी; वहाँ तुम इन सरिताओंके साथ जाकर सावधानतया श्रवण करोगी। उस पुराण-श्रवण तथा हरि-नाम-संकीर्तनसे ब्रह्महत्या आदि महापातक जलकर राख हो जाते हैं। वे ही पाप वैष्णवके आलिङ्गनसे भी दग्ध हो जाते हैं। जैसे अग्नि सूखी लकड़ी और घास-फूसको जला डालती है; उसी प्रकार जगत्में वैष्णवलोग पापियोंके पापोंको भी नष्ट कर देते हैं। गङ्गे! भूतलपर जितने पुण्यमय तीर्थ हैं; वे सभी मेरे भक्तोंके पावन शरीरोंमें सदा निवास करते हैं। मेरे भक्तोंकी चरण-रजसे वसुन्धरा तत्काल पावन हो जाती है, तीर्थ पवित्र हो जाते हैं तथा जगत् शुद्ध हो जाता है। जो ब्राह्मण मेरे मन्त्रके उपासक हैं, मुझे अर्पित करनेके बाद मेरा प्रसाद भोजन करते हैं और नित्य मेरे ही ध्यानमें तल्लीन रहते हैं; वे मुझे प्राणोंसे भी अधिक प्रिय हैं। उनके स्पर्शमात्रसे वायु और अग्नि पवित्र हो जाते हैं। मेरे भक्तोंके चले जानेपर सभी वर्ण एक हो जायँगे और मेरे भक्तोंसे शून्य हुई पृथ्वीपर कलियुगका पूरा साम्राज्य हो जायगा।

इसी अवसरपर वहाँ श्रीकृष्णके शरीरसे एक चार-भुजाधारी पुरुष प्रकट हुआ। उसकी प्रभा सैकड़ों चन्द्रमाओंको लज्जित कर रही थी। वह श्रीवत्स-चिह्नसे विभूषित था और उसके हाथोंमें

शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म शोभा पा रहे थे। वह एक सुन्दर रथपर सवार होकर क्षीरसागरको चला गया। तब स्वयं मूर्तिमती सिन्धुकन्या भी उनके पीछे चली गयीं। जगत्‌के पालनकर्ता विष्णुके श्वेतद्वीप चले जानेपर श्रीकृष्णके मनसे उत्पन्न हुई मनोहरा मर्त्यलक्ष्मीने भी उनका अनुगमन किया। इस प्रकार उस शुद्ध सत्त्वस्वरूपके दो रूप हो गये। उनमें दक्षिणाङ्ग दो भुजाधारी गोप-बालकके रूपमें प्रकट हुआ। वह नूतन जलधरके समान श्याम और पीताम्बरसे शोभित था; उसके मुखसे सुन्दर वंशी लगी हुई थी; नेत्र कमलके समान विशाल थे; वह शोभासम्पन्न तथा मन्द मुस्कानसे युक्त था। वह सौ करोड़ चन्द्रमाओंके समान सौन्दर्यशाली, सौ करोड़ कामदेवोंकी-सी प्रभावाला, परमानन्दस्वरूप, परिपूर्णतम, प्रभु, परमधाम, परब्रह्मस्वरूप, निर्गुण, सबका परमात्मा, भक्तानुग्रहमूर्ति, अविनाशी शरीरवाला, प्रकृतिसे पर और ऐश्वर्यशाली ईश्वर था। योगीलोग जिसे सनातन ज्योतिरूप जानते हैं और उस ज्योतिके भीतर जिसके नित्य रूपको भक्तिके सहारे समझ पाते हैं। विचक्षण वेद जिसे सत्य, नित्य और आद्य बतलाते हैं, सभी देवता जिसे स्वेच्छामय परम प्रभु कहते हैं, सारे सिद्धशिरोमणि तथा मुनिवर जिसे सर्वरूप कहकर पुकारते हैं, योगिराज शंकर जिसका नाम अनिर्वचनीय रखते हैं, स्वयं ब्रह्मा जिसे कारणके कारणरूपसे प्रख्यात करते हैं और शेषनाग जिस नौ प्रकारके रूप धारण करनेवाले ईश्वरको अनन्त कहते हैं; छः प्रकारके धर्म ही उनके छः रूप हैं, फिर एक रूप वैष्णवोंका, एक रूप वेदोंका और एक रूप पुराणोंका है; इसीलिये वे नौ प्रकारके कहे जाते हैं। जो मत शंकरका है, उसी मतका आश्रय ले न्यायशास्त्र जिसे अनिर्वचनीय रूपसे निरूपण करता है, दीर्घदर्शी वैशेषिक जिसे नित्य बतलाते हैं; सांख्य उन देवको सनातन ज्योतिरूप, मेरा अंशभूत वेदान्त सर्वरूप और सर्वकारण, पतञ्जलिमतानुयायी अनन्त, वेदगण सत्यस्वरूप, पुराण स्वेच्छामय और भक्तगण नित्यविग्रह कहते हैं; वे ही ये गोलोकनाथ श्रीकृष्ण गोकुलमें वृन्दावन नामक पुण्यवनमें गोपवेष धारण करके नन्दके पुत्ररूपसे अवतीर्ण हुए हैं। ये राधाके प्राणपति हैं। ये ही वैकुण्ठमें चार-भुजाधारी महालक्ष्मीपति स्वयं भगवान् नारायण हैं; जिनका नाम मुक्ति-प्राप्तिका कारण है।

नारद! जो मनुष्य एक बार भी 'नारायण' नामका उच्चारण कर लेता है; वह तीन सौ कल्पोंतक गङ्गा आदि सभी तीर्थोंमें स्नान करनेका फल पा लेता है। तदनन्तर जो शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म धारण करते हैं; जिनके वक्षःस्थलमें श्रीवत्सका चिह्न शोभा देता है; मणिश्रेष्ठ कौस्तुभ और वनमालासे जो सुशोभित होते हैं; वेद जिनकी स्तुति करते हैं; वे भगवान् नारायण सुनन्द, नन्द और कुमुद आदि पार्षदोंके साथ विमानद्वारा अपने स्थान वैकुण्ठको चले गये। उन वैकुण्ठनाथके चले जानेपर राधाके स्वामी स्वयं श्रीकृष्णने अपनी वंशी बजायी, जिसका सुरीला शब्द त्रिलोकीको मोहमें डालनेवाला था। नारद! उस शब्दको सुनते ही पार्वतीके अतिरिक्त सभी देवतागण और मुनिगण मूर्च्छित हो गये और उनकी चेतना लुप्त हो गयी। तब जो भगवती विष्णुमाया, सर्वरूपा, सनातनी, परब्रह्मस्वरूपा, परमात्मस्वरूपिणी सगुणा, निर्गुणा, परा और स्वेच्छामयी हैं; वे सती-साध्वी देवी पार्वती सनातन भगवान् श्रीकृष्णसे बोलीं।

पार्वतीने कहा—प्रभो! गोलोकस्थित रासमण्डलमें मैं ही अपने एक राधिकारूपसे रहती हूँ। इस समय गोलोक रासशून्य हो गया है; अतः आप मुक्ता और माणिक्यसे विभूषित रथपर आरूढ़ हो वहाँ जाइये और उसे परिपूर्ण कीजिये। आपके वक्षःस्थलपर वास करनेवाली परिपूर्णतमा देवी मैं ही हूँ। आपकी आज्ञासे वैकुण्ठमें वास

करनेवाली महालक्ष्मी मैं ही हूँ। वहीं श्रीहरिके वामभागमें स्थित रहनेवाली सरस्वती भी मैं ही हूँ। मैं आपकी आज्ञासे आपके मनसे उत्पन्न हुई सिन्धुकन्या हूँ। ब्रह्माके संनिकट रहनेवाली अपनी कलासे प्रकट हुई वेदमाता सावित्री मेरा ही नाम है। पहले सत्ययुगमें आपकी आज्ञासे मैंने समस्त देवताओंके तेजोंमें अपना वासस्थान बनाया और उससे प्रकट होकर देवीका शरीर धारण किया। उसी शरीरसे मेरेद्वारा लीलापूर्वक शुम्भ आदि दैत्य मारे गये। मैं ही दुर्गासुरका वध करके 'दुर्गा', त्रिपुरका संहार करनेपर 'त्रिपुरा' और रक्तबीजको मारकर 'रक्तबीजविनाशिनी' कहलाती हूँ। आपकी आज्ञासे मैं सत्यस्वरूपिणी दक्षकन्या 'सती' हुई। वहाँ योगधारणद्वारा शरीरका त्याग करके आपके ही आदेशसे पुनः गिरिराजनन्दिनी 'पार्वती' हुई; जिसे आपने गोलोकस्थित रासमण्डलमें शंकरको दे दिया था। मैं सदा विष्णुभक्तिमें रत रहती हूँ; इसी कारण मुझे वैष्णवी और विष्णुमाया कहा जाता है। नारायणकी माया होनेके कारण मुझे लोग नारायणी कहते हैं। मैं श्रीकृष्णकी प्राणप्रिया, उनके प्राणोंकी अधिष्ठात्री देवी और वासुस्वरूप महाविष्णुकी जननी स्वयं राधिका हूँ। आपके आदेशसे मैंने अपनेको पाँच रूपोंमें विभक्त कर दिया; जिससे पाँचों प्रकृति मेरा ही रूप हैं। मैं ही घर-घरमें कला और कलांशसे प्रकट हुई देवपत्नियोंके रूपमें वर्तमान हूँ। महाभाग! वहाँ गोलोकमें मैं विरहसे आतुर हो गोपियोंके साथ सदा अपने आवासस्थानमें चारों ओर चक्कर काटती रहती हूँ; अतः आप शीघ्र ही वहाँ पधारिये।

नारद! पार्वतीके वचन सुनकर रसिकेश्वर श्रीकृष्ण हँसे और रत्ननिर्मित विमानपर सवार हो उत्तम गोलोकको चले गये। तब सनातनी विष्णुमाया स्वयं पार्वतीने मायारूपिणी वंशीके नादसे आच्छन्न हुए देवगणको जगाया। वे सभी हरिनामोच्चारण करके विस्मयाविष्ट हो अपने-अपने स्थानको चले गये। श्रीदुर्गा भी हर्षमग्न हो शिवके साथ अपने नगरको चली गयीं।

तदनन्तर सर्वज्ञा राधा हर्षविभोर हो आते हुए प्राणवल्लभ श्रीकृष्णके स्वागतार्थ गोपियोंके साथ आगे आयीं। श्रीकृष्णको समीप आते देखकर सती राधिका रथसे उतर पड़ीं और सखियोंके साथ आगे बढ़कर उन्होंने उन जगदीश्वरके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। ग्वालों और गोपियोंके मनमें सदा श्रीकृष्णके आगमनकी लालसा बनी रहती थी; अतः उन्हें आया देखकर वे आनन्दमग्न हो गये। उनके नेत्र और मुख हर्षसे खिल उठे। फिर तो वे दुन्दुभियाँ बजाने लगे।

उधर विरजा नदीको पार करके जगत्पति श्रीकृष्णकी दृष्टि ज्यों ही राधापर पड़ी, त्यों ही वे रथसे उतर पड़े और राधिकाके हाथको अपने हाथमें लेकर शतशृङ्ग पर्वतपर घूमने चले गये। वहाँ सुरम्य रासमण्डल, अक्षयवट और पुण्यमय वृन्दावनको देखते हुए तुलसी-काननमें जा पहुँचे। वहाँसे मालतीवनको चले गये। फिर श्रीकृष्णने कुन्दवन तथा माधवी-काननको बायें करके मनोरम चम्पकारण्यको दाहिने छोड़ा। पुनः सुरुचिर चन्दनकाननको पीछे करके आगे बढ़े तो सामने राधिकाका परम रमणीय भवन दीख पड़ा। वहाँ जाकर वे राधाके साथ श्रेष्ठ रत्नसिंहासनपर विराजमान हुए। फिर उन्होंने सुवासित जल पिया तथा कपूरयुक्त पानका बीड़ा ग्रहण किया। तत्पश्चात् वे सुगन्धित चन्दनसे चर्चित पुष्पशय्यापर सोये और रस-सागरमें निमग्न हो सुन्दरी राधाके साथ विहार करने लगे।

नारद! इस प्रकार मैंने रमणीय गोलोकारोहणके विषयमें अपने पिता धर्मके मुखसे जो कुछ सुना था, वह सब तुम्हें बता दिया। अब पुनः और क्या सुनना चाहते हो? (अध्याय १२८)

नारायणके आदेशसे नारदका विवाहके लिये उद्यत हो ब्रह्मलोकमें जाना, ब्रह्माका दल-बलके साथ राजा सृंजयके पास आना, सृंजय-कन्या और नारदका विवाह, सनत्कुमारद्वारा नारदको श्रीकृष्ण-मन्त्रोपदेश, महादेवजीका उन्हें श्रीकृष्णका ध्यान और जप-विधि बतलाना, तपके अन्तमें नारदका शरीर त्यागकर श्रीहरिके पादपद्मों लीन होना

नारदने कहा—महाभाग! मेरी जो कुछ सुननेकी लालसा थी; वह सब कुछ सुन लिया। अब कुछ भी अवशिष्ट नहीं है। कामनाकी पूर्ति करनेवाला यह ब्रह्मवैवर्तपुराण कैसा अद्भुत है! जगद्गुरो! मैं तप करनेके लिये हिमालयपर जाना चाहता हूँ, इसके लिये मुझे आज्ञा दीजिये। अथवा अब मैं क्या करूँ, वह मुझे बतलानेकी कृपा करें।

श्रीनारायण बोले—नारद! इस समय तो तुम ब्रह्माके पुत्र हो; परंतु पूर्वजन्ममें तुम उपबर्हण नामक गन्धर्व थे। तुम्हारे पचास पत्नियाँ थीं। उनमेंसे एक सती-साध्वी सुन्दरी कामिनीने तपस्याद्वारा भगवान् शंकरकी आराधना की और वररूपमें नारदको अपना मनोनीत पति प्राप्त किया। वही राजा सृंजयकी कन्या होकर पैदा हुई है। उसका नाम स्वर्णवी (स्वर्णष्ठीवी) है। वह इच्छाकी सहोदरा बहिन है। वह सुन्दरियोंमें परम सुन्दरी, कोमलाङ्गी, लक्ष्मीकी कला, पतिव्रता, महाभागा, मनोहरा, अत्यन्त प्रिय बोलनेवाली, कामुकी, कमनीया और सदा सुस्थिर यौवनवाली है। तुम उसके साथ विवाह कर लो; क्योंकि शंकरकी आज्ञा व्यर्थ कैसे हो सकती है? ब्रह्माने जो प्राक्तन कर्म लिख दिया है; उसे कौन मिटा सकता है? अपना किया हुआ शुभ अथवा अशुभ कर्म अवश्य ही भोगना पड़ता है; चाहे सौ करोड़ कल्प बीत जायँ तो भी बिना भोग किये कर्मका नाश नहीं होता।

सूतजी कहते हैं—शौनक! नारायणका कथन सुनकर नारदका मन खिन्न हो गया। वे नारायणको प्रणाम करके शीघ्र ही राजा सृंजयकी राजधानीकी ओर चल दिये।

शौनकने कहा—महाभाग सूतजी! अहो, यह कैसा परम अद्भुत, पुरातन, सरस, अपूर्व रहस्य है! इसे तो मैंने सुन लिया। अब मैं नारदका विवाह-वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ; क्योंकि नारदमुनि तो अतीन्द्रिय और ब्रह्माके पुत्र थे।

सूतजी कहते हैं—शौनक! नारदपर मोहने अपना अधिकार जमा लिया था; अतः वे विष्णु-व्रतपरायणा महाभागा तपस्विनी सृंजय-कन्याको देखकर ब्रह्माजीकी रमणीय सभामें गये। वह सभा सभी देवताओंसे खचाखच भरी थी। वहाँ उन्होंने पिता ब्रह्माको प्रणाम करके उनसे सारा रहस्य कह सुनाया। उस शुभ समाचारको सुनकर ब्रह्माका मुख प्रसन्नतासे खिल उठा। फिर तो जगत्पति ब्रह्मा अपने तपस्वी पुत्र नारदसे बातचीत करके शुभ मुहूर्तमें देवताओंके साथ पुत्रको आगे करके रत्ननिर्मित विमानद्वारा सृंजयके महलको चल पड़े। उस समाचारको सुनकर राजा सृंजयने अपनी रत्ननिर्मित आभूषणोंसे विभूषित सुन्दरी कन्याको लेकर हर्षपूर्वक नारदको सौंप दिया। साथ ही अपना सारा मणिमुक्ता आदि दहेजमें दिया। फिर हाथ जोड़कर उन्होंने यह सारा कार्य सम्पन्न किया। तत्पश्चात् योगिश्रेष्ठ राजा सृंजय अपनी कन्या ब्रह्माको समर्पित करके 'वत्से! वत्से!' यों कहकर फूट-फूटकर रोते हुए कहने लगे—'कमललोचने! तुम मेरे घरको सूना करके कहाँ जा रही हो। बेटी! तुम्हें त्यागकर तो मैं जीते-जी मृतक-तुल्य हो गया हूँ; अतः मैं घोर

वनमें चला जाऊँगा।' तब वह कन्या रोते हुए पिता और रोती हुई माताको प्रणाम करके स्वयं भी रोती हुई ब्रह्माके रथपर सवार हुई। ब्रह्मा हर्षमग्न हो भार्यासहित पुत्रको लेकर देवेन्द्रों और मुनियोंके साथ ब्रह्मलोकको प्रस्थित हुए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने दुन्दुभिका घोष कराया और ब्राह्मणों, देवताओं तथा सिद्धोंको भोजनसे तृप्त किया। मुनिश्रेष्ठ नारद तो अपने पूर्वकर्मसे बाधित थे; क्योंकि विप्रवर! जिसका जो प्राक्तन कर्म होता है; उसका उल्लङ्घन करना दुष्कर है। उसे भला कौन हटा सकता है?

इस प्रकार विवाह करके उससे विरत हो मुनिश्रेष्ठ नारद ब्रह्मलोकमें मनोहर वटवृक्षके नीचे बैठे हुए थे। उसी समय वहाँ साक्षात् भगवान् सनत्कुमार आ पहुँचे। बालककी तरह उनका नग्न-वेष था। वे ब्रह्मतेजसे प्रज्वलित हो रहे थे। सृष्टिके पूर्वमें उनकी जो आयु थी, वही पाँच वर्षकी अवस्था अब भी थी। उनका चूडाकर्म और उपनयन-संस्कार नहीं हुआ था तथा वे वेदाध्ययन और संध्यासे रहित थे। उनके नारायण गुरु हैं। वे अनन्त कल्पोंसे तीनों भाइयोंके साथ कृष्ण-मन्त्रका जप कर रहे थे। वे वैष्णवोंके अग्रणी, ईश्वर और ज्ञानियोंके गुरु थे। सत्पुरुषोंमें श्रेष्ठ अपने भाई सनत्कुमारको सहसा निकट आया देखकर नारद दण्डकी भाँति भूमिपर लेट गये और चरणोंमें सिर रखकर उन्हें प्रणाम किया। तब बालकरूप सनत्कुमारजी हँसकर नारदसे पारमार्थिक वचन बोले।

सनत्कुमारजीने कहा—अरे भाई! क्या कर रहे हो? युवतीपते! कुशल तो है न? स्त्री-पुरुषका प्रेम सदा बढ़ता रहता है और वह नित्य नूतन ही होता है। वह ज्ञानमार्गकी साँकल, भक्तिद्वारका किवाड़, मोक्षमार्गका व्यवधान और चिरकालिक बन्धनका कारण है; फिर भी पापी नराधम अमृत-बुद्धिसे उस विषको पीते हैं। जिसका मन परम पुरुष नारायणको छोड़कर विषयमें रचा-पचा रहता है, उसे मानो मायाने ठग लिया है; जिससे वह अमृतका त्याग करके विषका सेवन करता है। अतः भाई! इस मायामयी प्रियतमा पत्नीको छोड़ो और तपके लिये निकल जाओ। परम पुण्यमय भारतवर्षमें जाकर तपस्याद्वारा माधवका भजन करो। अपना पद प्रदान करनेवाले अपने स्वामी परम पुरुष नारायणके स्थित रहते जो विषयी पुरुष विषयोंमें मत्त रहता है; उसे निश्चय ही मायाने ठग लिया है। अब तुम मेरे 'कृष्ण' इस दो अक्षरवाले मन्त्रको ग्रहण करो। यह मन्त्र सभी मन्त्रोंका सार तथा परात्पर है। सभी पुराणों, चारों वेदों, धर्मशास्त्रों और तन्त्रोंमें इससे उत्तम दूसरा मन्त्र नहीं है। इसे नारायणने मुझे सूर्यग्रहणके अवसरपर पुष्करक्षेत्रमें प्रदान किया था। असंख्यों कल्पोंसे इसका जप करके मैं सर्वपूजित हो भ्रमण करता रहता हूँ। यों कहकर उन्होंने नारदको स्नान कराया और फिर उन्हें उस परमोत्कृष्ट मन्त्रका उपदेश दिया, जिसे वे मणियोंकी पावन मालापर रात-दिन जपते रहते हैं।

इस प्रकार वैष्णवोंके अग्रणी सनत्कुमारजी नारदको वह मन्त्र और शुभाशीर्वाद देकर सनातन भगवान् श्रीकृष्णका दर्शन करनेके लिये गोलोकको चले गये। इधर जब नारदको वह सर्वसिद्धिप्रद श्रीकृष्णमें निश्चल भक्ति प्रदान करनेवाला तथा कर्मोंका उच्छेदक श्रेष्ठ मन्त्र प्राप्त हो गया; तब वे अपनी मायामयी भार्याका त्याग करके तपस्या करनेके लिये भारतवर्षमें आये। वहाँ उन्हें कृतमाला नदीके तटपर भगवान् शंकरके दर्शन हुए। सहसा उन्हें देखकर नारदमुनिने शिवजीके चरणोंमें सिर झुकाकर प्रणाम किया। तब भक्तवत्सल जगदीश्वर शिव अपने भक्त नारदसे बोले।

श्रीमहादेवजीने कहा—अहो नारद! अपने तेजसे उद्भासित होते हुए तुम्हें देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई है; क्योंकि जिस दिन भक्तोंका दर्शन

प्राप्त हो जाय, वह शरीरधारियोंके लिये उत्तम दिन माना जाता है। भक्तोंके साथ समागम होना प्राणियोंके लिये परम लाभ है। जिसे वैष्णवका दर्शन प्राप्त हो गया, उसने मानो समस्त तीर्थोंमें स्नान कर लिया। जो समस्त तन्त्रोंमें परम दुर्लभ है, वह 'कृष्ण' रूप महामन्त्र क्या तुम्हें प्राप्त हो गया? इस मन्त्रको मैंने अपने पुत्र गणेश और स्कन्दको दिया था। श्रीकृष्णने इसे गोलोकस्थित रासमण्डलमें मुझे, ब्रह्मा और धर्मको बतलाया था। धर्मने नारायणको तथा ब्रह्माने सनत्कुमारको इसका उपदेश दिया था। वही मन्त्र सनत्कुमारने तुम्हें प्रदान किया है। इस मन्त्रके ग्रहणमात्रसे ही मनुष्य नारायणस्वरूप हो जाता है। इसके जपके लिये शुभ-अशुभ समय-असमयका कोई विचार नहीं है। पाँच लाख जपसे ही इसका पुरश्चरण पूर्ण हो जाता है। इसका ध्यान पापनाशक तथा कर्ममूलका उच्छेदक है। शास्त्रमें उसका वर्णन किया गया है, उसी ढंगसे वैष्णवको श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिये। (वह ध्यान यों है—)

'नूतन जलधरके समान जिनका श्यामवर्ण है, जिनकी किशोर-अवस्था है, जो पीताम्बरसे सुशोभित हैं, सौ करोड़ चन्द्रमाओंके समान परम अनुपम सौन्दर्य धारण किये हुए हैं, अमूल्य रत्नोंके बने हुए भूषणसमूह जिनकी शोभा बढ़ा रहे हैं, जिनके सर्वाङ्गमें चन्दनका अनुलेप हुआ है, कौस्तुभमणिद्वारा जिनकी विशेष शोभा हो रही है, जिनकी मालतीकी मालाओंसे मण्डित शिखामें लगे हुए मयूरपिच्छकी निराली छवि हो रही है, जिनके प्रसन्नमुखपर मन्द मुस्कानकी छटा छायी हुई है, शिव आदि देवगण जिनकी नित्य उपासना करते रहते हैं तथा जो ध्यानद्वारा असाध्य, दुराराध्य, निर्गुण, प्रकृतिसे पर, सबके परमात्मा, भक्तानुग्रहमूर्ति, वेदोंद्वारा अनिर्वचनीय और सर्वेश्वर हैं; उन श्रेष्ठ श्रीकृष्णका मैं भजन करता हूँ।'

नारद! जो परमानन्द, सत्य, नित्य और परात्पर हैं, उन सनातन भगवान् श्रीकृष्णका इस ध्यान-विधिसे ध्यान करके भजन करो। इतना कहकर परमेश्वर शम्भु अपने स्थानको चले गये। तब नारदने उन जगन्नाथको प्रणाम करके तपस्यामें मन लगाया। तत्पश्चात् नारद श्रीहरिका स्मरण करके योगधारणाद्वारा शरीरको त्यागकर पद्माद्वारा समर्चित श्रीहरिके चरणकमलमें विलीन हो गये। (अध्याय १२९)

पुराणोंके लक्षण और उनकी श्लोक-संख्याका निरूपण, ब्रह्मवैवर्तपुराणके पठन-श्रवणके माहात्म्यका वर्णन करके सूतजीका सिद्धाश्रमको प्रयाण

तदनन्तर अग्नि तथा स्वर्णकी उत्पत्तिका प्रसङ्ग सुनाकर शौनकजीके पूछनेपर सूतजीने ब्रह्मवैवर्तपुराणके समस्त विषयोंकी अनुक्रमणिका सुनायी।

फिर शौनकजीने कहा—वत्स! ब्रह्मवैवर्त-पुराणमें जिस फलका निरूपण हुआ है, वह निर्विघ्नतापूर्वक मोक्षका कारण है। उसे सुनकर आज मेरा जन्म लेना सफल हो गया और जीवन सुजीवन बन गया। तात! अभी मुझे कुछ और निवेदन करना है; यदि मुझे अभयदान दो तो मैं उसे प्रकट करूँ।

तब सूतजी बोले—महाभाग शौनकजी! भय छोड़ दीजिये और आपकी जो इच्छा हो, उसे पूछिये। मैं जो-जो भी मनोहर गोपनीय विषय होगा, सब आपसे वर्णन करूँगा।

शौनकने कहा—पुत्रक! अब मेरी पुराणोंके लक्षण, उनकी श्लोक-संख्या और उनके श्रवणका फल सुननेकी अभिलाषा है।

सूतजी कहते हैं—शौनकजी! मैं अपनी बुद्धिके अनुसार विस्तृत पुराणों, इतिहासों, संहिताओं और पञ्चरात्रोंका वर्णन करता हूँ, सुनिये। विप्रवर! सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वन्तर और वंशानुचरित—इन पाँचों लक्षणोंसे जो युक्त हो, उसे पुराण कहते हैं। विद्वान् लोग उपपुराणोंका भी यही लक्षण बतलाते हैं। अब प्रधान पुराणोंका लक्षण आपको बतलाता हूँ—सृष्टि, विसृष्टि, स्थिति, उनका पालन, कर्मोंकी वासना-वार्ता, मनुओंका क्रम, प्रलयोंका वर्णन, मोक्षका निरूपण, श्रीहरिका गुण-गान तथा देवताओंका पृथक्-पृथक् वर्णन—प्रधान पुराणोंके ये दस लक्षण और बतलाये जाते हैं। अब इन पुराणोंकी श्लोक-संख्याका वर्णन करता हूँ, सुनिये।

शौनकजी! परमोत्कृष्ट ब्रह्मपुराणकी श्लोक-संख्या दस हजार और पद्मपुराणकी पचपन हजार कही गयी है। विद्वान् लोग विष्णुपुराणको तेईस हजार श्लोकोंवाला बतलाते हैं। शिवपुराणमें चौबीस हजार श्लोक बतलाये जाते हैं। श्रीमद्भागवतपुराण अठारह हजार श्लोकोंमें ग्रथित है। नारदपुराणकी श्लोक-संख्या पचीस हजार बतलायी गयी है। पण्डितलोग मार्कण्डेयपुराणमें नौ हजार श्लोक बतलाते हैं। परम रुचिर अग्निपुराण पंद्रह हजार चार सौ श्लोकोंवाला कहा गया है। पुराणप्रवर भविष्यमें चौदह सहस्र पाँच सौ श्लोक बतलाये जाते हैं। ब्रह्मवैवर्तपुराणमें अठारह हजार श्लोक हैं। विद्वज्जन इसे सभी पुराणोंका सार बतलाते हैं। श्रेष्ठ लिङ्गपुराण ग्यारह हजार श्लोकोंका है। वाराहपुराणकी श्लोक-संख्या चौबीस हजार कही गयी है। सज्जनोंने उत्तम स्कन्दपुराणको ग्यारह हजार एक सौ अथवा इक्यासी हजार एक सौ श्लोकोंवाला निरूपित किया है। पण्डितोंने वामनपुराणको दस हजार, कूर्मपुराणको सतरह हजार और मत्स्यपुराणकी चौदह हजार श्लोक-संख्या बतलायी है। गरुडपुराण उन्नीस हजार और उत्तम ब्रह्माण्डपुराण बारह हजार श्लोकोंवाला कहा गया है। इस प्रकार सभी पुराणोंकी श्लोक-संख्या चार लाख बतलायी जाती है। इस प्रकार पुराणवेत्ता लोग अठारह पुराण ही बतलाते हैं। इसी तरह उपपुराणोंकी भी संख्या अठारह ही कही गयी है।

महाभारतको इतिहास कहते हैं। वाल्मीकीय रामायण काव्य है और श्रीकृष्णके माहात्म्यसे परिपूर्ण पञ्चरात्रोंकी संख्या पाँच है। वासिष्ठ, नारदीय, कापिल, गौतमीय और सनत्कुमारीय—ये ही पाँचों श्रेष्ठ पञ्चरात्र हैं। संहिताएँ भी पाँच बतलायी जाती हैं; जो सभी श्रीकृष्णकी भक्तिसे ओतप्रोत हैं। इनके नाम हैं—ब्रह्मसंहिता, शिवसंहिता, प्रह्लादसंहिता, गौतमसंहिता और कुमारसंहिता। शौनकजी! इस प्रकार शास्त्रका भण्डार तो बहुत बड़ा है, तथापि मैंने अपनी जानकारीके अनुसार आपको क्रमशः पृथक्-पृथक् सब बतला दिया है।

मुने! साक्षात् भगवान् श्रीविष्णुने गोलोकस्थित रासमण्डलमें अपने भक्त ब्रह्माको यह पुराण बतलाया था। फिर ब्रह्माने धर्मात्मा धर्मको, धर्मने नारायणमुनिको, नारायणने नारदको और नारदने मुझ भक्तको इसका उपदेश किया। मुनिवर! वही श्रेष्ठ पुराण इस समय मैं आपसे वर्णन कर रहा हूँ। यह अभीप्सित ब्रह्मवैवर्तपुराण परम दुर्लभ है। जो विश्वसमूहका वरण करता है, जीवधारियोंका परमात्मस्वरूप है; वही ब्रह्म कर्मनिष्ठोंके कर्मोंका साक्षीरूप है। उस ब्रह्मका तथा उसकी अनुपम विभूतिका जिसमें विवरण किया गया है; इसी कारण विद्वान् लोग इसे 'ब्रह्मवैवर्त' कहते हैं। यह पुराण पुण्यप्रद, मङ्गलस्वरूप और मङ्गलोंका दाता है। इसमें नये-नये अत्यन्त गोपनीय रमणीय रहस्य भरे पड़े हैं। यह हरिभक्तिप्रद, दुर्लभ हरिदास्यका दाता, सुखद, ब्रह्मकी प्राप्ति करनेवाला, साररूप और शोक-संतापका नाशक है।

जैसे सरिताओंमें शुभकारिणी गङ्गा तत्क्षण ही मुक्ति प्रदान करनेवाली हैं, तीर्थोंमें पुष्कर और पुरियोंमें काशी जैसे शुद्ध है, सभी वर्षोंमें जैसे भारतवर्ष शुभ और तत्काल मुक्तिप्रद है, जैसे पर्वतोंमें सुमेरु, पुष्पोंमें पारिजात-पुष्प, पत्रोंमें तुलसी-पत्र, व्रतोंमें एकादशीव्रत, वृक्षोंमें कल्पवृक्ष, देवताओंमें श्रीकृष्ण, ज्ञानिशिरोमणियोंमें महादेव, योगीन्द्रोंमें गणेश्वर, सिद्धेन्द्रोंमें एकमात्र कपिल, तेजस्वियोंमें सूर्य, वैष्णवोंमें अग्रगण्य भगवान् सनत्कुमार, राजाओंमें श्रीराम, धनुर्धारियोंमें लक्ष्मण, देवियोंमें महापुण्यवती सती दुर्गा, श्रीकृष्णकी प्रेयसियोंमें प्राणाधिका राधा, ईश्वरियोंमें लक्ष्मी तथा पण्डितोंमें सरस्वती सर्वश्रेष्ठ हैं; उसी प्रकार सभी पुराणोंमें ब्रह्मवैवर्त श्रेष्ठ है। इससे विशिष्ट, सुखद, मधुर, उत्तम पुण्यका दाता और संदेहनाशक दूसरा कोई पुराण नहीं है। यह इस लोकमें सुखद, सम्पूर्ण सम्पत्तियोंका उत्तम दाता, शुभद, पुण्यद, विघ्नविनाशक और उत्तम हरि-दास्य प्रदान करनेवाला है तथा परलोकमें प्रभूत आनन्द देनेवाला है।

पुत्रक! सम्पूर्ण यज्ञों, तीर्थों, व्रतों और तपस्याओंका तथा समूची पृथ्वीकी प्रदक्षिणाका भी फल इसके फलकी समतामें नगण्य है। चारों वेदोंके पाठसे भी इसका फल श्रेष्ठ है। जो संयत-चित्त होकर इस पुराणको श्रवण करता है; उसे गुणवान् विद्वान् वैष्णव पुत्र प्राप्त होता है। यदि कोई दुर्भगा नारी इसे सुनती है तो उसे पतिके सौभाग्यकी प्राप्ति होती है। इस पुराणके श्रवणसे मृतवत्सा, काकवन्ध्या आदि पापिनी स्त्रियोंको भी चिरजीवी पुत्र सुलभ हो जाता है। अपुत्रको पुत्र, भार्यारहितको पत्नी और कीर्तिहीनको उत्तम यश मिल जाता है। मूर्ख पण्डित हो जाता है। रोगी रोगसे, बँधा हुआ बन्धनसे, भयभीत भयसे और आपत्तिग्रस्त आपत्तिसे मुक्त हो जाता है। अरण्यमें, निर्जन मार्गमें अथवा दावाग्निमें फँसकर भयभीत हुआ मनुष्य इसके श्रवणसे निश्चय ही उस भयसे छूट जाता है। इसके श्रवणसे पुण्यवान् पुरुषपर कुष्ठरोग, दरिद्रता, व्याधि और दारुण शोकका प्रभाव नहीं पड़ता। ये सभी पुण्यहीनोंपर ही प्रभाव डालते हैं। जो मनुष्य अत्यन्त दत्तचित्त हो इसका आधा श्लोक अथवा चौथाई श्लोक सुनता है, उसे बहुसंख्यक गोदानका पुण्य प्राप्त होता है—इसमें संशय नहीं है। जो मनुष्य शुद्ध समयमें जितेन्द्रिय होकर संकल्पपूर्वक वक्ताको दक्षिणा देकर भक्ति-भावसहित इस चार खण्डोंवाले पुराणको सुनता है, वह अपने असंख्य जन्मोंके बचपन, कौमार, युवा और वृद्धावस्थाके संचित पापसे निःसंदेह मुक्त हो जाता है तथा श्रीकृष्णका रूप धारण करके रत्ननिर्मित विमानद्वारा अविनाशी गोलोकमें जा पहुँचता है। वहाँ उसे श्रीकृष्णकी दासता प्राप्त हो जाती है, यह ध्रुव है। असंख्य ब्रह्माओंका विनाश होनेपर भी उसका पतन नहीं होता। वह श्रीकृष्णके समीप पार्षद होकर चिरकालतक उनकी सेवा करता है।

मुने! भलीभाँति स्नान करके शुद्ध हो तथा इन्द्रियोंको वशमें करके 'ब्रह्मखण्ड' की कथा सुननेके पश्चात् श्रोताको चाहिये कि वह वाचकको खीर-पूड़ी और फलका भोजन कराये, पानका बीड़ा समर्पित करे और सुवर्णकी दक्षिणा दे। फिर चन्दन, श्वेत पुष्पोंकी माला और मनोहर महीन वस्त्र श्रीकृष्णको निवेदित करके वाचकको प्रदान करे। अमृतोपम सुन्दर कथाओंसे युक्त 'प्रकृतिखण्ड' को सुनकर वक्ताको दधियुक्त अन्न खिलाकर स्वर्णकी दक्षिणा देनी चाहिये और फिर भक्तिपूर्वक सुन्दर सवत्सा गौका दान देना चाहिये। विघ्न-नाशके लिये 'गणपतिखण्ड' को सुनकर जितेन्द्रिय श्रोताको उचित है कि वह वाचकको सोनेका यज्ञोपवीत, श्वेत अश्व, छाता, पुष्पमाला, स्वस्तिकके आकारकी मिठाई, तिलके लड्डू और काल-देशानुसार उपलब्ध होनेवाले

पके फल प्रदान करे। भक्तिपूर्वक 'श्रीकृष्ण-जन्मखण्ड' को श्रवण करके भक्तको चाहिये कि वाचकको रत्नकी सुन्दर अँगूठी दान करे और फिर महीन वस्त्र, हार, उत्तम स्वर्णकुण्डल, माला, सुन्दर पालकी, पके हुए फल, दूध और अपना सर्वस्व दक्षिणामें देकर उनकी स्तुति करे। इसके बाद सौ ब्राह्मणोंको परम आदरके साथ भोजन कराना चाहिये। जो विष्णुभक्त, शास्त्रपटु, पण्डित और शुद्धाचारी हो, ऐसे ही श्रेष्ठ ब्राह्मणको वाचक बनाना चाहिये। जो श्रीकृष्णसे विमुख, दुराचारी और उपदेश देनेमें अकुशल हो, ऐसे ब्राह्मणसे कथा नहीं सुननी चाहिये। नहीं तो, पुराण-श्रवण निष्फल हो जाता है। जो श्रीकृष्णकी भक्तिसे युक्त हो इस पुराणको सुनता है, वह श्रीहरिकी भक्ति और पुण्यका भागी होता है तथा उसके पूर्वजन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं।

विप्रवर! इस प्रकार मैंने अपने गुरुजीके श्रीमुखसे जो कुछ सुना था, वह सब आपसे वर्णन कर दिया। अब मुझे जानेकी आज्ञा दीजिये; मैं नारायणाश्रमको जाना चाहता हूँ। यहाँ इस विप्र-समाजको देखकर नमस्कार करनेके लिये आ गया था; फिर आप लोगोंकी आज्ञा होनेसे उत्तम ब्रह्मवैवर्तपुराण भी सुना दिया। आप ब्राह्मणोंको मेरा नमस्कार प्राप्त हो। परमात्मा श्रीकृष्ण, शिव, ब्रह्मा और गणेशको नित्यशः बारंबार नमस्कार है। शौनकजी! जो सत्यस्वरूप, राधाके प्राणेश और तीनों गुणोंसे परे हैं; उन परब्रह्म श्रीकृष्णका आप मन-वचन-शरीरसे परमभक्तिपूर्वक रात-दिन भजन कीजिये। सरस्वती-देवीको नमस्कार है। पुराणगुरु व्यासजीको अभिवादन है। सम्पूर्ण विघ्नोंका विनाश करनेवाली दुर्गादेवीको अनेकशः प्रणाम है। शौनकजी! आप लोगोंके पुण्यमय चरणकमलोंका दर्शन करके आज मैं उस सिद्धाश्रमको जाना चाहता हूँ, जहाँ भगवान् गणेश विराजमान हैं।

(अध्याय १३०-१३१)

॥ श्रीकृष्णजन्मखण्ड सम्पूर्ण ॥

॥ ब्रह्मवैवर्तपुराण समाप्त ॥

श्रीब्रह्मवैवर्तपुराणोक्त

स्तोत्र-कवच-संग्रह

कुछ प्रेमी तथा श्रद्धालु सज्जनोंका अनुरोध है कि ब्रह्मवैवर्तपुराणमें आये हुए महत्त्वपूर्ण स्तोत्रों तथा कवचोंका संग्रह पाठ करनेवालोंकी सुविधाके लिये एक स्थानपर अवश्य छाप दिया जाय। उसीके अनुसार यह छापा जा रहा है। श्रद्धा रखनेवालोंके लिये ये स्तोत्र-कवचादि वस्तुतः बड़े ही महत्त्वपूर्ण और लाभप्रद हैं।

—सम्पादक

गणेशस्तोत्राणि

श्रीविष्णुकृतं गणेशस्तोत्रम्

नारायण उवाच

अथ विष्णुः सभामध्ये सम्पूज्य तं गणेश्वरम्। तुष्टाव परया भक्त्या सर्वविघ्नविनाशकम्॥

श्रीविष्णुरुवाच

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमनीहकम्॥
प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम्। सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम्॥
अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम्। वायुतुल्यातिनिर्लिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम्॥
संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे। कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम्॥
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम्। सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम्॥
ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम्। धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्माधर्मफलप्रदम्॥
बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुरं च तदाश्रयम्। स्त्रीपुन्नपुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम्॥
सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम्। स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं चापि स्वेच्छया॥
स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्। त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च॥
न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः। सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ।
न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः॥

इत्येवं स्तवनं कृत्वा सुरेशं सुरसंसदि । सुरेशश्च सुरैः सार्द्धं विरराम रमापतिः ॥
इदं विष्णुकृतं स्तोत्रं गणेशस्य च यः पठेत् । सायंप्रातश्च मध्याह्ने भक्तियुक्तः समाहितः ॥
तद्विघ्ननिघ्नं कुरुते विघ्नेशः सततं मुने । वर्धते सर्वकल्याणं कल्याणजनकः सदा ॥
यात्राकाले पठित्वा तु यो याति भक्तिपूर्वकम् । तस्य सर्वाभीष्टसिद्धिर्भवत्येव न संशयः ॥
तेन दृष्टं च दुःस्वप्नं सुस्वप्नमुपजायते । कदापि न भवेत्तस्य ग्रहपीडा च दारुणा ॥
भवेद् विनाशः शत्रूणां बन्धूनां च विवर्धनम् । शश्वद्विघ्नविनाशश्च शश्वत् सम्पद्विवर्धनम् ॥
स्थिरा भवेद् गृहे लक्ष्मीः पुत्रपौत्रविवर्धिनी । सर्वैश्वर्यमिह प्राप्य ह्यन्ते विष्णुपदं लभेत् ॥
फलं चापि च तीर्थानां यज्ञानां यद् भवेद् ध्रुवम् । महतां सर्वदानानां श्रीगणेशप्रसादतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीविष्णुकृतं गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(गणपतिखण्ड १३। ४०—५८)

विष्णूपदिष्टं गणेशनामाष्टकं स्तोत्रम्

विष्णुरुवाच

गणेशमेकदन्तं च हेरम्बं विघ्ननायकम् । लम्बोदरं शूर्पकर्णं गजवक्त्रं गुहाग्रजम् ॥
नामाष्टार्थं च पुत्रस्य शृणु मातर्हरप्रिये । स्तोत्राणां सारभूतं च सर्वविघ्नहरं परम् ॥
ज्ञानार्थवाचको गश्च णश्च निर्वाणवाचकः । तयोरीशं परं ब्रह्म गणेशं प्रणमाम्यहम् ॥
एकशब्दः प्रधानार्थो दन्तश्च बलवाचकः । बलं प्रधानं सर्वस्मादेकदन्तं नमाम्यहम् ॥
दीनार्थवाचको हेश्च रम्बः पालकवाचकः । दीनानां परिपालकं हेरम्बं प्रणमाम्यहम् ॥
विपत्तिवाचको विघ्नो नायकः खण्डनार्थकः । विपत्खण्डनकारकं नमामि विघ्ननायकम् ॥
विष्णुदत्तैश्च नैवेद्यैर्यस्य लम्बोदरं पुरा । पित्रा दत्तैश्च विविधैर्वन्दे लम्बोदरं च तम् ॥
शूर्पाकारौ च यत्कर्णौ विघ्नवारणकारणौ । सम्पदौ ज्ञानरूपौ च शूर्पकर्णं नमाम्यहम् ॥
विष्णुप्रसादपुष्पं च यन्मूर्ध्नि मुनिदत्तकम् । तद्गजेन्द्रवक्त्रयुक्तं गजवक्त्रं नमाम्यहम् ॥
गुहस्याग्रे च जातोऽयमाविर्भूतो हरालये । वन्दे गुहाग्रजं देवं सर्वदेवाग्रपूजितम् ॥
एतन्नामाष्टकं दुर्गे नामभिः संयुतं परम् । पुत्रस्य पश्य वेदे च तदा कोपं तथा कुरु ॥
एतन्नामाष्टकं स्तोत्रं नानार्थसंयुतं शुभम् । त्रिसंध्यं यः पठेन्नित्यं स सुखी सर्वतो जयी ॥
ततो विघ्नाः पलायन्ते वैनतेयाद् यथोरगाः । गणेश्वरप्रसादेन महाज्ञानी भवेद् ध्रुवम् ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी विपुलां स्त्रियम् । महाजडः कवीन्द्रश्च विद्यावांश्च भवेद् ध्रुवम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते विष्णूपदिष्टं गणेशनामाष्टकं स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(गणपतिखण्ड ४४। ८५—९८)

श्रीराधाकृतं गणेशस्तोत्रम्

श्रीराधिकोवाच

परं धाम परं ब्रह्म परेशं परमीश्वरम्। विघ्ननिघ्नकरं शान्तं पुष्टं कान्तमनन्तकम्॥
सुरासुरेन्द्रैः सिद्धेन्द्रैः स्तुतं स्तौमि परात्परम्। सुरपद्मदिनेशं च गणेशं मङ्गलायनम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं विघ्नशोकहरं परम्। यः पठेत् प्रातरुत्थाय सर्वविघ्नात् प्रमुच्यते॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीराधाकृतं गणेशस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२१। १०३—१०५)

शनैश्चरं प्रति विष्णुनोपदिष्टं संसारमोहनं गणेशकवचम्

विष्णुरुवाच

संसारमोहनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवो लम्बोदरः स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। सर्वेषां कवचानां च सारभूतमिदं मुने॥
ॐ गं हुं श्रीगणेशाय स्वाहा मे पातु मस्तकम्। द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो ललाटं मे सदावतु॥
ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं गमिति च संततं पातु लोचनम्। तालुकं पातु विघ्नेशः संततं धरणीतले॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति च संततं पातु नासिकाम्। ॐ गौं गं शूर्पकर्णाय स्वाहा पात्वधरं मम॥
दन्तानि तालुकां जिह्वां पातु मे षोडशाक्षरः॥
ॐ लं श्रीं लम्बोदरायेति स्वाहा गण्डं सदावतु। ॐ क्लीं ह्रीं विघ्ननाशाय स्वाहा कर्णं सदावतु॥
ॐ श्रीं गं गजाननायेति स्वाहा स्कन्धं सदावतु। ॐ ह्रीं विनायकायेति स्वाहा पृष्ठं सदावतु॥
ॐ क्लीं ह्रीमिति कङ्कालं पातु वक्षःस्थलं च गम्। करौ पादौ सदा पातु सर्वाङ्गं विघ्ननिघ्नकृत्॥
प्राच्यां लम्बोदरः पातु आग्नेय्यां विघ्ननायकः। दक्षिणे पातु विघ्नेशो नैर्ऋत्यां तु गजाननः॥
पश्चिमे पार्वतीपुत्रो वायव्यां शंकरात्मजः। कृष्णस्यांशश्चोत्तरे च परिपूर्णतमस्य च॥
ऐशान्यामेकदन्तश्च हेरम्बः पातु चोर्ध्वतः। अधो गणाधिपः पातु सर्वपूज्यश्च सर्वतः॥
स्वप्ने जागरणे चैव पातु मां योगिनां गुरुः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम्। संसारमोहनं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
श्रीकृष्णेन पुरा दत्तं गोलोके रासमण्डले। वृन्दावने विनीताय मह्यं दिनकरात्मज॥
मया दत्तं च तुभ्यं च यस्मै कस्मै न दास्यसि। परं वरं सर्वपूज्यं सर्वसङ्कटतारणम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च। ग्रहेन्द्रकवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
इदं कवचमज्ञात्वा यो भजेच्छंकरात्मजम्। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते शनैश्चरं प्रति विष्णुनोपदिष्टं संसारमोहनं गणेशकवचं सम्पूर्णम्।

(गणपतिखण्ड १३। ७८—९६)

शिवस्तोत्राणि

बाणासुरकृतं शिवस्तोत्रम्

सौतिरुवाच

इदं च कवचं प्रोक्तं स्तोत्रं च शृणु शौनक । मन्त्रराजः कल्पतरुर्वसिष्ठो दत्तवान् पुरा॥

ॐ नमः शिवाय।

बाणासुर उवाच

वन्दे सुराणां सारं च सुरेशं नीललोहितम् । योगीश्वरं योगबीजं योगिनां च गुरोर्गुरुम्॥
ज्ञानानन्दं ज्ञानरूपं ज्ञानबीजं सनातनम् । तपसां फलदातारं दातारं सर्वसम्पदाम्॥
तपोरूपं तपोबीजं तपोधनधनं वरम् । वरं वरेण्यं वरदमीड्यं सिद्धगणैर्वरैः॥
कारणं भक्तिमुक्तीनां नरकार्णवतारणम् । आशुतोषं प्रसन्नास्यं करुणामयसागरम्॥
हिमचन्दनकुन्देन्दुकुमुदाम्भोजसंनिभम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्॥
विषयाणां विभेदेन बिभ्रन्तं बहुरूपकम् । जलरूपमग्निरूपमाकाशरूपमीश्वरम्॥
वायुरूपं चन्द्ररूपं सूर्यरूपं महत्प्रभुम् । आत्मनः स्वपदं दातुं समर्थमवलीलया॥
भक्तजीवनमीशं च भक्तानुग्रहकातरम् । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं किमहं स्तौमि तं प्रभुम्॥
अपरिच्छिन्नमीशानमहो वाङ्मनसोः परम् । व्याघ्रचर्माम्बरधरं वृषभस्थं दिगम्बरम्॥
त्रिशूलपट्टिशधरं सस्मितं चन्द्रशेखरम् । इत्युक्त्वा स्तवराजेन नित्यं बाणः सुसंयतः॥
प्रणमच्छंकरं भक्त्या दुर्वासाश्च मुनीश्वरः । इदं दत्तं वसिष्ठेन गन्धर्वाय पुरा मुने॥
कथितं च महास्तोत्रं शूलिनः परमाद्भुतम् । इदं स्तोत्रं महापुण्यं पठेद् भक्त्या च यो नरः॥
स्नानस्य सर्वतीर्थानां फलमाप्नोति निश्चितम् । अपुत्रो लभते पुत्रं वर्षमेकं शृणोति यः॥
संयतश्च हविष्याशी प्रणम्य शंकरं गुरुम्॥
गलत्कुष्ठी महाशूली वर्षमेकं शृणोति यः । अवश्यं मुच्यते रोगाद् व्यासवाक्यमिति श्रुतम्॥
कारागारेऽपि बद्धो यो नैव प्राप्नोति निर्वृतिम् । स्तोत्रं श्रुत्वा मासमेकं मुच्यते बन्धनाद् ध्रुवम्॥
भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं भक्त्या मासं शृणोति यः । मासं श्रुत्वा संयतश्च लभेद् भ्रष्टधनो धनम्॥
यक्ष्मग्रस्तो वर्षमेकमास्तिको यः शृणोति चेत् । निश्चितं मुच्यते रोगाच्छंकरस्य प्रसादतः॥
यः शृणोति सदा भक्त्या स्तवराजमिमं द्विज । तस्यासाध्यं त्रिभुवने नास्ति किंचिच्च शौनक॥
कदाचिद् बन्धुविच्छेदो न भवेत् तस्य भारते । अचलं परमैश्वर्यं लभते नात्र संशयः॥
सुसंयतोऽतिभक्त्या च मासमेकं शृणोति यः । अभार्यो लभते भार्यां सुविनीतां सतीं वराम्॥
महामूर्खश्च दुर्मेधो मासमेकं शृणोति यः । बुद्धिं विद्यां च लभते गुरूपदेशमात्रतः॥
कर्मदुःखी दरिद्रश्च मासं भक्त्या शृणोति यः । ध्रुवं वित्तं भवेत् तस्य शंकरस्य प्रसादतः॥
इहलोके सुखं भुक्त्वा कृत्वा कीर्तिं सुदुर्लभाम् । नानाप्रकारधर्मं च यात्यन्ते शंकरालयम्॥
पार्षदप्रवरो भूत्वा सेवते तत्र शंकरम् । यः शृणोति त्रिसंध्यं च नित्यं स्तोत्रमनुत्तमम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते बाणासुरकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड १९। ५५—८०)

असितकृतं शिवस्तोत्रम्

असित उवाच

जगद्गुरो नमस्तुभ्यं शिवाय शिवदाय च। योगीन्द्राणां च योगीन्द्र गुरूणां गुरवे नमः॥
मृत्योर्मृत्युस्वरूपेण मृत्युसंसारखण्डन। मृत्योरीश मृत्युबीज मृत्युञ्जय नमोऽस्तु ते॥
कालरूपं कलयतां कालकालेश कारण। कालादतीत कालस्य कालकाल नमोऽस्तु ते॥
गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक। गुणीश गुणिनां बीज गुणिनां गुरवे नमः॥
ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मभावनतत्पर। ब्रह्मबीजस्वरूपेण ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते॥
इति स्तुत्वा शिवं नत्वा पुरस्तस्थौ मुनीश्वरः। दीनवत् साश्रुनेत्रश्च पुलकाञ्चितविग्रहः॥
असितेन कृतं स्तोत्रं भक्तियुक्तश्च यः पठेत्। वर्षमेकं हविष्याशी शंकरस्य महात्मनः॥
स लभेद् वैष्णवं पुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम्। भवेद्धनाढ्यो दुःखी च मूको भवति पण्डितः॥
अभार्यो लभते भार्यां सुशीलां च पतिव्रताम्। इहलोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते शिवसंनिधिम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते असितकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ३०। ४३—५१)

हिमालयकृतं शिवस्तोत्रम् (१)

हिमालय उवाच

त्वं ब्रह्मा सृष्टिकर्ता च त्वं विष्णुः परिपालकः। त्वं शिवः शिवदोऽनन्तः सर्वसंहारकारकः॥
त्वमीश्वरो गुणातीतो ज्योतीरूपः सनातनः। प्रकृतिः प्रकृतीशश्च प्राकृतः प्रकृतेः परः॥
नानारूपविधाता त्वं भक्तानां ध्यानहेतवे। येषु रूपेषु यत्प्रीतिस्तत्तद्रूपं बिभर्षि च॥
सूर्यस्त्वं सृष्टिजनक आधारः सर्वतेजसाम्। सोमस्त्वं शस्यपाता च सततं शीतरश्मिना॥
वायुस्त्वं वरुणस्त्वं च त्वमग्निः सर्वदाहकः। इन्द्रस्त्वं देवराजश्च कालो मृत्युर्यमस्तथा॥
मृत्युञ्जयो मृत्युमृत्युः कालकालो यमान्तकः। वेदस्त्वं वेदकर्ता च वेदवेदाङ्गपारगः॥
विदुषां जनकस्त्वं च विद्वांश्च विदुषां गुरुः। मन्त्रस्त्वं हि जपस्त्वं हि तपस्त्वं तत्फलप्रदः॥
वाक् त्वं वागधिदेवी त्वं तत्कर्ता तद्गुरुः स्वयम्। अहो सरस्वतीबीजं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रस्तस्थौ धृत्वा पदाम्बुजम्। तत्रोवास तमाबोध्य चावरुह्य वृषाच्छिवः॥
स्तोत्रमेतन्महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। मुच्यते सर्वपापेभ्यो भयेभ्यश्च भवार्णवे॥
अपुत्रो लभते पुत्रं मासमेकं पठेद् यदि। भार्याहीनो लभेद् भार्यां सुशीलां सुमनोहराम्॥
चिरकालगतं वस्तु लभते सहसा ध्रुवम्। राज्यभ्रष्टो लभेद् राज्यं शंकरस्य प्रसादतः॥
कारागारे श्मशाने च शत्रुग्रस्तेऽतिसङ्कटे। गभीरेऽतिजलाकीर्णे भग्नपोते विषादने॥
रणमध्ये महाभीते हिंस्रजन्तुसमन्विते। सर्वतो मुच्यते स्तुत्वा शंकरस्य प्रसादतः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते हिमालयकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ३८। ६५—७८)

हिमालयकृतं शिवस्तोत्रम् (२)

हिमालय उवाच

प्रसीद दक्षयज्ञघ्न नरकार्णवतारक । सर्वात्मरूप सर्वेश परमानन्दविग्रह ॥
गुणार्णव गुणातीत गुणयुक्त गुणेश्वर । गुणबीज महाभाग प्रसीद गुणिनां वर ॥
योगाधार योगरूप योगज्ञ योगकारण । योगीश योगिनां बीज प्रसीद योगिनां गुरो ॥
प्रलय प्रलयाधीक भवप्रलयकारण । प्रलयान्ते सृष्टिबीज प्रसीद परिपालक ॥
संहारकाले घोरे च सृष्टिसंहारकारण । दुर्निवार्य दुराराध्य चाशुतोष प्रसीद मे ॥
कालस्वरूप कालेश काले च फलदायक । कालबीजैक कालघ्न प्रसीद कालपालक ॥
शिवस्वरूप शिवद शिवबीज शिवाश्रय । शिवभूत शिवप्राण प्रसीद परमाश्रय ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा विरराम हिमालयः । प्रशशंसुः सुराः सर्वे मुनयश्च गिरीश्वरम् ॥
हिमालयकृतं स्तोत्रं संयतो यः पठेन्नरः । प्रददाति शिवस्तस्मै वाञ्छितं राधिके ध्रुवम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते हिमालयकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४४ । ६३—७१)

शुक्रकृतं शिवस्तोत्रम्

शुक्र उवाच

सुराणामसुराणां च सर्वेषां जगतामपि । त्वमेव शास्ता भगवान् को वा शास्ति सुरेऽसुरे ॥
कृत्वा सुराणां साहाय्यं कथं दैत्यान् हनिष्यसि । संहर्तुः सर्वजगतां दैत्यौघे किं च पौरुषम् ॥
त्वं ज्योतिः परमं ब्रह्म सगुणो निर्गुणः स्वयम् । गुणभेदान्मूर्तिभेदो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः ॥
बलिद्वारे गदापाणिः स्वयमेव भवान् प्रभो । स्वर्गं प्रदत्त्वा शक्राय तस्मै श्रीरपि लीलया ॥
क्षमस्व भगवञ्छम्भो हर क्रोधं च संहर । किं पौरुषं च भवतो ब्राह्मणस्यापि हिंसया ॥
अहं जीवच्छरीरेण न दास्यामि निशाकरम् । शरणागतदीनार्तं लज्जितं पापसंयुतम् ॥
अहं च त्वत्पदाम्भोजे शरणं यामि शंकर । यथोचितं कुरु विभो जगत् सर्वं तथैव च ॥
शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा प्रसन्नो भगवाञ्छिवः । इत्युक्त्वा च निशानाथं समानय शुभं भवेत् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते शुक्रकृतं शिवस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८१ । ३५—४२)

मन्त्रसहितं संसारपावनं शिवकवचम्

सौतिरुवाच

शिवस्य कवचं स्तोत्रं श्रूयतामिति शौनक । वसिष्ठेन च यद्दत्तं गन्धर्वाय च यो मनुः ॥
ॐ नमो भगवते शिवाय स्वाहेति च मनुः । दत्तो वसिष्ठेन पुरा पुष्करे कृपया विभो ॥
अयं मन्त्रो रावणाय प्रदत्तो ब्रह्मणा पुरा । स्वयं शम्भुश्च बाणाय तथा दुर्वाससे पुरा ॥
मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम् । ध्यायेन्नित्यादिकं ध्यानं वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥
ॐ नमो महादेवाय

बाणासुर उवाच

महेश्वर महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम् । संसारपावनं नाम कृपया कथय प्रभो ॥

महेश्वर उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं परमाद्भुतम् । अहं तुभ्यं प्रदास्यामि गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥
पुरा दुर्वाससे दत्तं त्रैलोक्यविजयाय च । ममैवेदं च कवचं भक्त्या यो धारयेत् सुधीः ॥
जेतुं शक्नोति त्रैलोक्यं भगवानिव लीलया । संसारपावनस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः ॥
ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं च महेश्वरः । धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः ॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धिदं कवचं भवेत् ।
यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेद् भुवि । तेजसा सिद्धियोगेन तपसा विक्रमेण च ॥
शम्भुर्मे मस्तकं पातु मुखं पातु महेश्वरः । दन्तपङ्क्तिं नीलकण्ठोऽप्यधरोष्ठं हरः स्वयम् ॥
कण्ठं पातु चन्द्रचूडः स्कन्धौ वृषभवाहनः । वक्षःस्थलं नीलकण्ठः पातु पृष्ठं दिगम्बरः ॥
सर्वाङ्गं पातु विश्वेशः सर्वदिक्षु च सर्वदा । स्वप्ने जागरणे चैव स्थाणुर्मे पातु संततम् ॥
इति ते कथितं बाण कवचं परमाद्भुतम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नतः ॥
यत् फलं सर्वतीर्थानां स्नानेन लभते नरः । तत् फलं लभते नूनं कवचस्यैव धारणात् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेन्मां यः सुमन्दधीः । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मन्त्रसहितं संसारपावनं शिवकवचं सम्पूर्णम् ।

(ब्रह्मखण्ड १९ । ३९—५४)

श्रीदुर्गास्तोत्राणि

मन्त्रध्यानसहितं मङ्गलचण्डिकास्तोत्रम्

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सर्वपूज्ये देवि मङ्गलचण्डिके। ऐं क्रूं फट् स्वाहेत्येवं चाप्येकविंशाक्षरो मनुः॥
पूज्यः कल्पतरुश्चैव भक्तानां सर्वकामदः। दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥
मन्त्रसिद्धिर्भवेद् यस्य स विष्णुः सर्वकामदः। ध्यानं च श्रूयतां ब्रह्मन् वेदोक्तं सर्वसम्मतम्॥
देवीं षोडशवर्षीयां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम्। सर्वरूपगुणाढ्यां च कोमलाङ्गीं मनोहराम्॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्। वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम्॥
बिभ्रतीं कबरीभारं मल्लिकामाल्यभूषितम्। बिम्बोष्ठीं सुदतीं शुद्धां शरत्पद्मनिभाननाम्॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां सुनीलोत्पललोचनाम्। जगद्धात्रीं च दात्रीं च सर्वेभ्यः सर्वसम्पदाम्॥
संसारसागरे घोरे पोतरूपां वरां भजे॥
देव्याश्च ध्यानमित्येवं स्तवनं श्रूयतां मुने। प्रयतः संकटग्रस्तो येन तुष्टाव शंकरः॥

शंकर उवाच

रक्ष रक्ष जगन्मातर्देवि मङ्गलचण्डिके। हारिके विपदां राशेर्हर्षमङ्गलकारिके॥
हर्षमङ्गलदक्षे च हर्षमङ्गलचण्डिके। शुभे मङ्गलदक्षे च शुभमङ्गलचण्डिके॥
मङ्गले मङ्गलार्हे च सर्वमङ्गलमङ्गले। सतां मङ्गलदे देवि सर्वेषां मङ्गलालये॥
पूज्या मङ्गलवारे च मङ्गलाभीष्टदैवते। पूज्ये मङ्गलभूपस्य मनुवंशस्य संततम्॥
मङ्गलाधिष्ठातृदेवि मङ्गलानां च मङ्गले। संसारमङ्गलाधारे मोक्षमङ्गलदायिनि॥
सारे च मङ्गलाधारे पारे च सर्वकर्मणाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूज्ये च मङ्गलप्रदे॥
स्तोत्रेणानेन शम्भुश्च स्तुत्वा मङ्गलचण्डिकाम्। प्रतिमङ्गलवारे च पूजां कृत्वा गतः शिवः॥
देव्याश्च मङ्गलस्तोत्रं यः शृणोति समाहितः। तन्मङ्गलं भवेच्छश्वन्न भवेत् तदमङ्गलम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मन्त्रध्यानसहितं मङ्गलचण्डिकास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(प्रकृतिखण्ड ४४। २०—३६)

श्रीकृष्णकृतं दुर्गास्तोत्रम्

श्रीकृष्ण उवाच

त्वमेव सर्वजननी मूलप्रकृतिरीश्वरी। त्वमेवाद्या सृष्टिविधौ स्वेच्छया त्रिगुणात्मिका॥
कार्यार्थे सगुणा त्वं च वस्तुतो निर्गुणा स्वयम्। परब्रह्मस्वरूपा त्वं सत्या नित्या सनातनी॥
तेजःस्वरूपा परमा भक्तानुग्रहविग्रहा। सर्वस्वरूपा सर्वेशा सर्वाधारा परात्परा॥
सर्वबीजस्वरूपा च सर्वपूज्या निराश्रया। सर्वज्ञा सर्वतोभद्रा सर्वमङ्गलमङ्गला॥
सर्वबुद्धिस्वरूपा च सर्वशक्तिस्वरूपिणी। सर्वज्ञानप्रदा देवी सर्वज्ञा सर्वभाविनी॥
त्वं स्वाहा देवदाने च पितृदाने स्वधा स्वयम्। दक्षिणा सर्वदाने च सर्वशक्तिस्वरूपिणी॥
निद्रा त्वं च दया त्वं च तृष्णा त्वं चात्मनः प्रिया। क्षुत्क्षान्तिः शान्तिरीशा च कान्तिः सृष्टिश्च शाश्वती॥

श्रद्धा पुष्टिश्च तन्द्रा च लज्जा शोभा दया तथा। सतां सम्पत्स्वरूपा श्रीर्विपत्तिरसतामिह॥
प्रीतिरूपा पुण्यवतां पापिनां कलहाङ्कुरा। शश्वत्कर्ममयी शक्तिः सर्वदा सर्वजीविनाम्॥
देवेभ्यः स्वपदो दात्री धातुर्धात्री कृपामयी। हिताय सर्वदेवानां सर्वासुरविनाशिनी॥
योगनिद्रा योगरूपा योगदात्री च योगिनाम्। सिद्धिस्वरूपा सिद्धानां सिद्धिदा सिद्धयोगिनी॥
माहेश्वरी च ब्रह्माणी विष्णुमाया च वैष्णवी। भद्रदा भद्रकाली च सर्वलोकभयंकरी॥
ग्रामे ग्रामे ग्रामदेवी गृहदेवी गृहे गृहे। सतां कीर्तिः प्रतिष्ठा च निन्दा त्वमसतां सदा॥
महायुद्धे महामारी दुष्टसंहाररूपिणी। रक्षास्वरूपा शिष्टानां मातेव हितकारिणी॥
वन्द्या पूज्या स्तुता त्वं च ब्रह्मादीनां च सर्वदा। ब्राह्मण्यरूपा विप्राणां तपस्या च तपस्विनाम्॥
विद्या विद्यावतां त्वं च बुद्धिर्बुद्धिमतां सताम्। मेधास्मृतिस्वरूपा च प्रतिभा प्रतिभावताम्॥
राज्ञां प्रतापरूपा च विशां वाणिज्यरूपिणी। सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा त्वं रक्षारूपा च पालने॥
तथान्ते त्वं महामारी विश्वस्य विश्वपूजिते। कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च मोहिनी॥
दुरत्यया मे माया त्वं यया सम्मोहितं जगत्। यया मुग्धो हि विद्वांश्च मोक्षमार्गं न पश्यति॥
इत्यात्मना कृतं स्तोत्रं दुर्गाया दुर्गनाशनम्। पूजाकाले पठेद् यो हि सिद्धिर्भवति वाञ्छिता॥
वन्ध्या च काकवन्ध्या च मृतवत्सा च दुर्भगा। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सुपुत्रं लभते ध्रुवम्॥
कारागारे महाघोरे यो बद्धो दृढबन्धने। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम्॥
यक्ष्मग्रस्तो गलत्कुष्ठी महाशूली महाज्वरी। श्रुत्वा स्तोत्रं वर्षमेकं सद्यो रोगात् प्रमुच्यते॥
पुत्रभेदे प्रजाभेदे पत्नीभेदे च दुर्गतः। श्रुत्वा स्तोत्रं मासमेकं लभते नात्र संशयः॥
राजद्वारे श्मशाने च महारण्ये रणस्थले। हिंस्रजन्तुसमीपे च श्रुत्वा स्तोत्रं प्रमुच्यते॥
गृहदाहे च दावाग्नौ दस्युसैन्यसमन्विते। स्तोत्रश्रवणमात्रेण लभते नात्र संशयः॥
महादरिद्रो मूर्खश्च वर्षं स्तोत्रं पठेत्तु यः। विद्यावान् धनवांश्चैव स भवेन्नात्र संशयः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णकृतं दुर्गास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(प्रकृतिखण्ड ६६। ७—३२)

परशुरामकृतं दुर्गास्तोत्रम्

परशुराम उवाच

श्रीकृष्णस्य च गोलोके परिपूर्णतमस्य च। आविर्भूता विग्रहतः पुरा सृष्ट्युन्मुखस्य च॥
सूर्यकोटिप्रभायुक्ता वस्त्रालंकारभूषिता। वह्निशुद्धांशुकाधाना सुस्मिता सुमनोहरा॥
नवयौवनसम्पन्ना सिन्दूरबिन्दुशोभिता। ललितं कबरीभारं मालतीमाल्यमण्डितम्॥
अहोऽनिर्वचनीया त्वं चारुमूर्तिं च बिभ्रती। मोक्षप्रदा मुमुक्षूणां महाविष्णोर्विधिः स्वयम्॥
मुमोह क्षणमात्रेण दृष्ट्वा त्वां सर्वमोहिनीम्। बालैः सम्भूय सहसा सस्मिता धाविता पुरा॥
सद्भिः ख्याता तेन राधा मूलप्रकृतिरीश्वरी। कृष्णस्त्वां सहसाहूय वीर्याधानं चकार ह॥
ततो डिम्भं महज्जज्ञे ततो जातो महाविराट्। यस्यैव लोमकूपेषु ब्रह्माण्डान्यखिलानि च॥
तच्छृङ्गारक्रमेणैव त्वन्निःश्वासो बभूव ह। स निःश्वासो महावायुः स विराड् विश्वधारकः॥
तव घर्मजलेनैव पुप्लुवे विश्वगोलकम्। स विराड् विश्वनिलयो जलराशिर्बभूव ह॥
ततस्त्वं पञ्चधाभूय पञ्चमूर्तीश्च बिभ्रती। प्राणाधिष्ठातृमूर्तिर्या कृष्णस्य परमात्मनः॥
कृष्णप्राणाधिकां राधां तां वदन्ति पुराविदः॥
वेदाधिष्ठातृमूर्तिर्या वेदशास्त्रप्रसूरपि। तां सावित्रीं शुद्धरूपां प्रवदन्ति मनीषिणः॥

ऐश्वर्याधिष्ठातृमूर्तिः शान्तिश्च शान्तरूपिणी । लक्ष्मीं वदन्ति संतस्तां शुद्धां सत्त्वस्वरूपिणीम् ॥
रागाधिष्ठातृदेवी या शुक्लमूर्तिः सतां प्रसूः । सरस्वतीं तां शास्त्रज्ञां शास्त्रज्ञाः प्रवदन्त्यहो ॥
बुद्धिर्विद्या सर्वशक्तेर्या मूर्तिरधिदेवता । सर्वमङ्गलमङ्गल्या सर्वमङ्गलरूपिणी ॥
सर्वमङ्गलबीजस्य शिवस्य निलयेऽधुना ॥

शिवे शिवास्वरूपा त्वं लक्ष्मीर्नारायणान्तिके । सरस्वती च सावित्री वेदसूर्ब्रह्मणः प्रिया ॥
राधा रासेश्वरस्यैव परिपूर्णतमस्य च । परमानन्दरूपस्य परमानन्दरूपिणी ॥
त्वत्कलांशांशकलया देवानामपि योषितः ॥

त्वं विद्या योषितः सर्वास्त्वं सर्वबीजरूपिणी । छाया सूर्यस्य चन्द्रस्य रोहिणी सर्वमोहिनी ॥
शची शक्रस्य कामस्य कामिनी रतिरीश्वरी । वरुणानी जलेशस्य वायोः स्त्री प्राणवल्लभा ॥
वह्नेः प्रिया हि स्वाहा च कुबेरस्य च सुन्दरी । यमस्य तु सुशीला च नैर्ऋतस्य च कैटभी ॥
ईशानस्य शशिकला शतरूपा मनोः प्रिया । देवहूतिः कर्दमस्य वसिष्ठस्याप्यरुन्धती ॥
लोपामुद्राप्यगस्त्यस्य देवमातादितिस्तथा । अहल्या गौतमस्यापि सर्वाधारा वसुन्धरा ॥
गङ्गा च तुलसी चापि पृथिव्यां याः सरिद्वराः । एताः सर्वाश्च या ह्यन्याः सर्वास्त्वत्कलयाम्बिके ॥
गृहलक्ष्मीर्गृहे नृणां राजलक्ष्मीश्च राजसु । तपस्विनां तपस्या त्वं गायत्री ब्राह्मणस्य च ॥
सतां सत्त्वस्वरूपा त्वमसतां कलहाङ्कुरा । ज्योतीरूपा निर्गुणस्य शक्तिस्त्वं सगुणस्य च ॥
सूर्ये प्रभास्वरूपा त्वं दाहिका च हुताशने । जले शैत्यस्वरूपा च शोभारूपा निशाकरे ॥
त्वं भूमौ गन्धरूपा च आकाशे शब्दरूपिणी । क्षुत्पिपासादयस्त्वं च जीविनां सर्वशक्तयः ॥
सर्वबीजस्वरूपा त्वं संसारे साररूपिणी । स्मृतिर्मेधा च बुद्धिर्वा ज्ञानशक्तिर्विपश्चिताम् ॥
कृष्णेन विद्या या दत्ता सर्वज्ञानप्रसूः शुभा । शूलिने कृपया सा त्वं यतो मृत्युञ्जयः शिवः ॥
सृष्टिपालनसंहारशक्तयस्त्रिविधाश्च याः । ब्रह्मविष्णुमहेशानां सा त्वमेव नमोऽस्तु ते ॥
मधुकैटभभीत्या च त्रस्तो धाता प्रकम्पितः । स्तुत्वा मुमोच यां देवीं तां मूर्ध्ना प्रणमाम्यहम् ॥
मधुकैटभयोर्युद्धे त्रातासौ विष्णुरीश्वरीम् । बभूव शक्तिमान् स्तुत्वा तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥
त्रिपुरस्य महायुद्धे सरथे पतिते शिवे । यां तुष्टुवुः सुराः सर्वे तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥
विष्णुना वृषरूपेण स्वयं शम्भुः समुत्थितः । जघान त्रिपुरं स्तुत्वा तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥
यदाज्ञया वाति वातः सूर्यस्तपति संततम् । वर्षतीन्द्रो दहत्यग्निस्तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥
यदाज्ञया हि कालश्च शश्वद् भ्रमति वेगतः । मृत्युश्चरति जन्त्वोघे तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥
स्रष्टा सृजति सृष्टिं च पाता पाति यदाज्ञया । संहर्ता संहरेत् काले तां दुर्गां प्रणमाम्यहम् ॥
ज्योतिःस्वरूपो भगवाञ्छ्रीकृष्णो निर्गुणः स्वयम् । यया विना न शक्तश्च सृष्टिं कर्तुं नमामि ताम् ॥
रक्ष रक्ष जगन्मातरपराधं क्षमस्व ते । शिशूनामपराधेन कुतो माता हि कुप्यति ॥
इत्युक्त्वा पर्शुरामश्च प्रणम्य तां रुरोद ह । तुष्टा दुर्गा सम्भ्रमेण चाभयं च वरं ददौ ॥
अमरो भव हे पुत्र वत्स सुस्थिरतां व्रज । शर्वप्रसादात् सर्वत्र जयोऽस्तु तव संततम् ॥
सर्वान्तरात्मा भगवांस्तुष्टोऽस्तु संततं हरिः । भक्तिर्भवतु ते कृष्णे शिवदे च शिवे गुरौ ॥
इष्टदेवे गुरौ यस्य भक्तिर्भवति शाश्वती । तं हन्तुं न हि शक्ताश्च रुष्टाश्च सर्वदेवताः ॥
श्रीकृष्णस्य च भक्तस्त्वं शिष्यो हि शंकरस्य च । गुरुपत्नीं स्तौषि यस्मात् कस्त्वां हन्तुमिहेश्वरः ॥
अहो न कृष्णभक्तानामशुभं विद्यते क्वचित् । अन्यदेवेषु ये भक्ता न भक्ता वा निरङ्कुशाः ॥

चन्द्रमा बलवांस्तुष्टो येषां भाग्यवतां भृगो । तेषां तारागणा रुष्टाः किं कुर्वन्ति च दुर्बलाः ॥
यस्य तुष्टः सभायां चेन्नरदेवो महान् सुखी । तस्य किं वा करिष्यन्ति रुष्टा भृत्याश्च दुर्बलाः ॥
इत्युक्त्वा पार्वती तुष्टा दत्त्वा रामं शुभाशिषम् । जगामान्तःपुरं तूर्णं हरिशब्दो बभूव ह ॥
स्तोत्रं वै काण्वशाखोक्तं पूजाकाले च यः पठेत् । यात्राकाले च प्रातर्वा वाञ्छितार्थं लभेद् ध्रुवम् ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं कन्यार्थी कन्यकां लभेत् । विद्यार्थी लभते विद्यां प्रजार्थी चाप्नुयात् प्रजाम् ॥
भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं नष्टवित्तो धनं लभेत् ॥
यस्य रुष्टो गुरुर्देवो राजा वा बान्धवोऽथवा । तस्य तुष्टश्च वरदः स्तोत्रराजप्रसादतः ॥
दस्युग्रस्तोऽहिग्रस्तश्च शत्रुग्रस्तो भयानकः । व्याधिग्रस्तो भवेन्मुक्तः स्तोत्रस्मरणमात्रतः ॥
राजद्वारे श्मशाने च कारागारे च बन्धने । जलराशौ निमग्नश्च मुक्तस्तत्स्मृतिमात्रतः ॥
स्वामिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च दारुणे । स्तोत्रस्मरणमात्रेण वाञ्छितार्थं लभेद् ध्रुवम् ॥
कृत्वा हविष्यं वर्षं च स्तोत्रराजं शृणोति या । भक्त्या दुर्गां च सम्पूज्य महावन्ध्या प्रसूयते ॥
लभते सा दिव्यपुत्रं ज्ञानिनं चिरजीविनम् । असौभाग्या च सौभाग्यं षण्मासश्रवणाल्लभेत् ॥
नवमासं काकवन्ध्या मृतवत्सा च भक्तितः । स्तोत्रराजं या शृणोति सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥
कन्यामाता पुत्रहीना पञ्चमासं शृणोति या । घटे सम्पूज्य दुर्गां च सा पुत्रं लभते ध्रुवम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते परशुरामकृतं दुर्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड ४५ । १८—७८)

श्रीमहादेवकृतं पार्वत्याः स्तवनम्

श्रीमहादेव उवाच

महालक्ष्मीस्वरूपासि किमसाध्यं तवेश्वरि ॥
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वमनन्तशक्तिरूपिणी । त्वं च यस्य गृहे देवि स चैश्वर्यस्य भाजनम् ॥
न लक्ष्मीर्यद्गृहे तस्य जीवनान्मरणं वरम् । अहं ब्रह्मा च विष्णुश्च त्वयि भक्त्या शुभप्रदे ॥
संहारसृष्टिपाल्ये च त्वत्प्रसादाद् वयं क्षमाः । को वा हिमालयः कोऽहं कौ कार्तिकगणेश्वरौ ॥
त्वद्विहीना अशक्ताश्च त्वया च वयमीश्वराः ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीमहादेवकृतं पार्वत्याः स्तवनं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १६ । १२९—१३२ $\frac{१}{२}$)

ब्रह्मकृतं जयदुर्गास्तोत्रम् (एतदेव गोपीकृतं सर्वमङ्गलस्तोत्रम्)

ॐ नमो जयदुर्गायै

ब्रह्मोवाच

दुर्गे शिवेऽभये माये नारायणि सनातनि । जये मे मङ्गलं देहि नमस्ते सर्वमङ्गले ॥
दैत्यनाशार्थवचनो दकारः परिकीर्तितः । उकारो विघ्ननाशार्थवाचको वेदसम्मतः ॥
रेफो रोगघ्नवचनो गश्च पापघ्नवाचकः । भयशत्रुघ्नवचनश्चाकारः परिकीर्तितः ॥
स्मृत्युक्तिस्मरणाद् यस्या एते नश्यन्ति निश्चितम् । अतो दुर्गा हरेः शक्तिर्हरिणा परिकीर्तिता ॥

विपत्तिवाचको दुर्गश्चाकारो नाशवाचकः । दुर्गं नश्यति या नित्यं सा दुर्गा परिकीर्तिता ॥

दुर्गो दैत्येन्द्रवचनोऽप्याकारो नाशवाचकः । तं ननाश पुरा तेन बुधैर्दुर्गा प्रकीर्तिता ॥

शश्च कल्याणवचन इकारोत्कृष्टवाचकः । समूहवाचकश्चैव वाकारो दातृवाचकः ॥

श्रेयःसंघोत्कृष्टदात्री शिवा तेन प्रकीर्तिता । शिवराशिर्मूर्तिमती शिवा तेन प्रकीर्तिता ॥

शिवो हि मोक्षवचनश्चाकारो दातृवाचकः । स्वयं निर्वाणदात्री या सा शिवा परिकीर्तिता ॥

अभयो भयनाशोक्तश्चाकारो दातृवाचकः । प्रददात्यभयं सद्यः साभया परिकीर्तिता ॥

राजश्रीवचनो माश्च याश्च प्रापणवाचकः । तां प्रापयति या सद्यः सा माया परिकीर्तिता ॥

माश्च मोक्षार्थवचनो याश्च प्रापणवाचकः । तं प्रापयति या नित्यं सा माया परिकीर्तिता ॥

नारायणार्धाङ्गभूता तेन तुल्या च तेजसा । तदा तस्य शरीरस्था तेन नारायणी स्मृता ॥

निर्गुणस्य च नित्यस्य वाचकश्च सनातनः । सदा नित्या निर्गुणा या कीर्तिता सा सनातनी ॥

जयः कल्याणवचनो ह्याकारो दातृवाचकः । जयं ददाति या नित्यं सा जया परिकीर्तिता ॥

सर्वमङ्गलशब्दश्च सम्पूर्णैश्वर्यवाचकः । आकारो दातृवचनस्तद्दात्री सर्वमङ्गला ॥

नामाष्टकमिदं सारं नामार्थसहसंयुतम् । नारायणेन यद् दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे ॥

तस्मै दत्त्वा निद्रितश्च बभूव जगतां पतिः । मधुकैटभौ दुर्गान्तौ ब्रह्माणं हन्तुमुद्यतौ ॥

स्तोत्रेणानेन स ब्रह्मा स्तुतिं नत्वा चकार ह ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मकृतं जयदुर्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २७ । १७—३४ $\frac{1}{2}$)

जानकीकृतं पार्वतीस्तोत्रम् (एतदेव राधाकृतं पार्वतीस्तोत्रम्)

जानक्युवाच

शक्तिस्वरूपे सर्वेषां सर्वाधारे गुणाश्रये । सदा शंकरयुक्ते च पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥

सृष्टिस्थित्यन्तरूपेण सृष्टिस्थित्यन्तरूपिणि । सृष्टिस्थित्यन्तबीजानां बीजरूपे नमोऽस्तु ते ॥

हे गौरि पतिमर्मज्ञे पतिव्रतपरायणे । पतिव्रते पतिरते पतिं देहि नमोऽस्तु ते ॥

सर्वमङ्गलमङ्गल्ये सर्वमङ्गलसंयुते । सर्वमङ्गलबीजे च नमस्ते सर्वमङ्गले ॥

सर्वप्रिये सर्वबीजे सर्वाशुभविनाशिनि । सर्वेशे सर्वजनके नमस्ते शंकरप्रिये ॥

परमात्मस्वरूपे च नित्यरूपे सनातनि । साकारे च निराकारे सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥

क्षुत्तृष्णेच्छा दया श्रद्धा निद्रा तन्द्रा स्मृतिः क्षमा । एतास्तव कलाः सर्वा नारायणि नमोऽस्तु ते ॥

लज्जामेधातुष्टिपुष्टिशान्तिसम्पत्तिवृद्धयः । एतास्तव कलाः सर्वाः सर्वरूपे नमोऽस्तु ते ॥

दृष्टादृष्टस्वरूपे च तयोर्बीजफलप्रदे । सर्वानिर्वचनीये च महामाये नमोऽस्तु ते ॥

शिवे शंकरसौभाग्ययुक्ते सौभाग्यदायिनि । हरिं कान्तं च सौभाग्यं देहि देवि नमोऽस्तु ते ॥

स्तोत्रेणानेन याः स्तुत्वा समाप्तिदिवसे शिवाम् । नमन्ति परया भक्त्या ता लभन्ति हरिं पतिम् ॥

इह कान्तसुखं भुक्त्वा पतिं प्राप्य परात्परम् । दिव्यं स्यन्दनमारुह्य यान्त्यन्ते कृष्णसंनिधिम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते जानकीकृतं पार्वतीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २७ । १७३—१८४)

शिवेन कृतं प्रकृत्याः स्तोत्रम्

महेश्वर उवाच

ॐ नमः प्रकृत्यै (मन्त्रः)।

त्राहि ब्रह्मस्वरूपे त्वं मां प्रसीद सनातनि । परमात्मस्वरूपे च परमानन्दरूपिणि ॥
भद्रे भद्रप्रदे दुर्गे दुर्गघ्ने दुर्गनाशिनि । पोतस्वरूपेऽजीर्णे त्वं मां प्रसीद भवार्णवे ॥
सर्वस्वरूपे सर्वेशि सर्वबीजस्वरूपिणि । सर्वाधारे सर्वविद्ये मां प्रसीद जयप्रदे ॥
सर्वमङ्गलरूपे च सर्वमङ्गलदायिनि । समस्तमङ्गलाधारे प्रसीद सर्वमङ्गले ॥
निद्रे तन्द्रे क्षमे श्रद्धे तुष्टिपुष्टिस्वरूपिणि । लज्जे मेधे बुद्धिरूपे प्रसीद भक्तवत्सले ॥
वेदस्वरूपे वेदानां कारणे वेददायिनि । सर्ववेदाङ्गरूपे च वेदमातः प्रसीद मे ॥
दये जये महामाये प्रसीद जगदम्बिके । क्षान्ते शान्ते च सर्वान्ते क्षुत्पिपासास्वरूपिणि ॥
लक्ष्मीर्नारायणक्रोडे स्रष्टुर्वक्षसि भारति । मम क्रोडे महामाये विष्णुमाये प्रसीद मे ॥
कलाकाष्ठास्वरूपे च दिवारात्रिस्वरूपिणि । परिणामप्रदे देवि प्रसीद दीनवत्सले ॥
कारणे सर्वशक्तीनां कृष्णस्योरसि राधिके । कृष्णप्राणाधिके भद्रे प्रसीद कृष्णपूजिते ॥
यशःस्वरूपे यशसां कारणे च यशःप्रदे । सर्वदेवीस्वरूपे च नारीरूपविधायिनि ॥
समस्तकामिनीरूपे कलांशेन प्रसीद मे । सर्वसम्पत्स्वरूपे च सर्वसम्पत्प्रदे शुभे ॥
प्रसीद परमानन्दे कारणे सर्वसम्पदाम् । यशस्विनां पूजिते च प्रसीद यशसां निधे ॥
आधारे सर्वजगतां रत्नाधारे वसुन्धरे । चराचरस्वरूपे च प्रसीद मम मा चिरम् ॥
योगस्वरूपे योगीशे योगदे योगकारणे । योगाधिष्ठात्रि देवीशे प्रसीद सिद्धयोगिनि ॥
सर्वसिद्धिस्वरूपे च सर्वसिद्धिप्रदायिनि । कारणे सर्वसिद्धीनां सिद्धेश्वरि प्रसीद मे ॥
व्याख्यानं सर्वशास्त्राणां मतभेदे महेश्वरि । ज्ञाने यदुक्तं तत्सर्वं क्षमस्व परमेश्वरि ॥
केचिद् वदन्ति प्रकृतेः प्राधान्यं पुरुषस्य च । केचित्तत्र मतद्वैधे व्याख्याभेदं विदुर्बुधाः ॥
महाविष्णोर्नाभिदेशे स्थितं तं कमलोद्भवम् । मधुकैटभौ महादैत्यौ लीलया हन्तुमुद्यतौ ॥
दृष्ट्वा स्तुतिं प्रकुर्वन्तं ब्रह्माणं रक्षितुं पुरा । बोधयामास गोविन्दं विनाशहेतवे तयोः ॥
नारायणस्त्वया शक्त्या जघान तौ महासुरौ । सर्वेश्वरस्त्वया सार्धमनीशोऽयं त्वया विना ॥
पुरा त्रिपुरसंग्रामे गगनात् पतिते मयि । त्वया च विष्णुना सार्धं रक्षितोऽहं सुरेश्वरि ॥
अधुना रक्ष मामीशे प्रदग्धं विरहाग्निना । स्वात्मदर्शनपुण्येन क्रीणीहि परमेश्वरि ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते शिवेन कृतं प्रकृत्याः स्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४३। ७४—९६)

शिवकृतं दुर्गास्तोत्रम्

श्रीमहादेव उवाच

रक्ष रक्ष महादेवि दुर्गे दुर्गतिनाशिनि । मां भक्तमनुरक्तं च शत्रुग्रस्तं कृपामयि ॥
विष्णुमाये महाभागे नारायणि सनातनि । ब्रह्मस्वरूपे परमे नित्यानन्दस्वरूपिणि ॥

त्वं च ब्रह्मादिदेवानामम्बिके जगदम्बिके । त्वं साकारे च गुणतो निराकारे च निर्गुणात् ॥
मायया पुरुषस्त्वं च मायया प्रकृतिः स्वयम् । तयोः परं ब्रह्म परं त्वं बिभर्षि सनातनि ॥
वेदानां जननी त्वं च सावित्री च परात्परा । वैकुण्ठे च महालक्ष्मीः सर्वसम्पत्स्वरूपिणी ॥
मर्त्यलक्ष्मीश्च क्षीरोदे कामिनी शेषशायिनः । स्वर्गेषु स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं राजलक्ष्मीश्च भूतले ॥
नागादिलक्ष्मीः पाताले गृहेषु गृहदेवता । सर्वशस्यस्वरूपा त्वं सर्वैश्वर्यविधायिनी ॥
रागाधिष्ठातृदेवी त्वं ब्रह्मणश्च सरस्वती । प्राणानामधिदेवी त्वं कृष्णस्य परमात्मनः ॥
गोलोके च स्वयं राधा श्रीकृष्णस्यैव वक्षसि । गोलोकाधिष्ठिता देवी वृन्दावनवने वने ॥
श्रीरासमण्डले रम्या वृन्दावनविनोदिनी । शतशृङ्गाधिदेवी त्वं नाम्ना चित्रावलीति च ॥
दक्षकन्या कुत्र कल्पे कुत्र कल्पे च शैलजा । देवमातादितिस्त्वं च सर्वाधारा वसुन्धरा ॥
त्वमेव गङ्गा तुलसी त्वं च स्वाहा स्वधा सती । त्वदंशांशांशकलया सर्वदेवादियोषितः ॥
स्त्रीरूपं चापिपुरुषं देवि त्वं च नपुंसकम् । वृक्षाणां वृक्षरूपा त्वं सृष्टा चाङ्कुररूपिणी ॥
वह्नौ च दाहिकाशक्तिर्जले शैत्यस्वरूपिणी । सूर्ये तेजःस्वरूपा च प्रभारूपा च संततम् ॥
गन्धरूपा च भूमौ च आकाशे शब्दरूपिणी । शोभास्वरूपा चन्द्रे च पद्मसङ्घे च निश्चितम् ॥
सृष्टौ सृष्टिस्वरूपा च पालने परिपालिका । महामारी च संहारे जले च जलरूपिणी ॥
क्षुत्त्वं दया त्वं निद्रा त्वं तृष्णा त्वं बुद्धिरूपिणी । तुष्टिस्त्वं चापि पुष्टिस्त्वं श्रद्धा त्वं च क्षमा स्वयम् ॥
शान्तिस्त्वं च स्वयं भ्रान्तिः कान्तिस्त्वं कीर्तिरेव च । लज्जा त्वं च तथा माया भुक्तिमुक्तिस्वरूपिणी ॥
सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं सर्वसम्पत्प्रदायिनी । वेदेऽनिर्वचनीया त्वं त्वां न जानाति कश्चन ॥
सहस्रवक्त्रस्त्वां स्तोतुं न च शक्तः सुरेश्वरि । वेदा न शक्ताः को विद्वान् न च शक्ता सरस्वती ॥
स्वयं विधाता शक्तो न न च विष्णुः सनातनः । किं स्तौमि पञ्चवक्त्रेण रणत्रस्तो महेश्वरि ॥

कृपां कुरु महामाये मम शत्रुक्षयं कुरु ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते शिवकृतं दुर्गास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ८८ । १५—३५ $\frac{१}{२}$)

प्रकृतेर्ब्रह्माण्डमोहनकवचम्

नारद उवाच

भगवन् सर्वधर्मज्ञ सर्वज्ञानविशारद । ब्रह्माण्डमोहनं नाम प्रकृतेः कवचं वद ॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि हे वत्स कवचं च सुदुर्लभम् । श्रीकृष्णेनैव कथितं कृपया ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मणा कथितं सर्वं धर्माय जाह्नवीतटे । धर्मेण दत्तं मह्यं च कृपया पुष्करे प्रभुः ॥
त्रिपुरारिश्च यद् धृत्वा जघान त्रिपुरं पुरा । मुमोच ब्रह्मा यद् धृत्वा मधुकैटभयोर्भयम् ॥
संजहार रक्तबीजं यद् धृत्वा भद्रकालिका ॥
यद् धृत्वा तु महेन्द्रश्च सम्प्राप कमलालयाम् । यद् धृत्वा च महाकालश्चिरजीवी च धार्मिकः ॥
यद् धृत्वा च महाज्ञानी नन्दी सानन्दपूर्वकम् । यद् धृत्वा च महायोद्धा रामः शत्रुभयंकरः ॥
यद् धृत्वा शिवतुल्यश्च दुर्वासा ज्ञानिनां वरः । ॐ दुर्गेति चतुर्थ्यन्तं स्वाहान्तो मे शिरोऽवतु ॥

मन्त्रः षडक्षरोऽयं च भक्तानां कल्पपादपः । विचारो नास्ति वेदेषु ग्रहणेऽस्य मनोर्मुने ॥
मन्त्रग्रहणमात्रेण विष्णुतुल्यो भवेन्नरः । मम वक्त्रं सदा पातु ॐ दुर्गायै नमोऽन्ततः ॥
ॐ दुर्गे रक्ष इति च कण्ठं पातु सदा मम । ॐ ह्रीं श्रीमिति मन्त्रोऽयं स्कन्धं पातु निरन्तरम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीमिति पृष्ठं च पातु मे सर्वतः सदा । ह्रीं मे वक्षःस्थलं पातु हस्तं श्रीमिति संततम् ॥
ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं पातु सर्वाङ्गं स्वप्ने जागरणे तथा । प्राच्यां मां पातु प्रकृतिः पातु वह्नौ च चण्डिका ॥
दक्षिणे भद्रकाली च नैर्ऋते च महेश्वरी । वारुण्यां पातु वाराही वायव्यां सर्वमङ्गला ॥
उत्तरे वैष्णवी पातु तथैशान्यां शिवप्रिया । जले स्थले चान्तरिक्षे पातु मां जगदम्बिका ॥
इति ते कथितं वत्स कवचं च सुदुर्लभम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः । कवचं धारयेद् यस्तु सोऽपि विष्णुर्न संशयः ॥
भ्रमणे सर्वतीर्थानां पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे । यत् फलं लभते लोकस्तदेतद्धारणे मुने ॥
पञ्चलक्षजपेनैव सिद्धमेतद् भवेद् ध्रुवम् । लोके च सिद्धकवचं नास्त्रं विध्यति सङ्कटे ॥
न तस्य मृत्युर्भवति जले वह्नौ विषे ध्रुवम् । जीवन्मुक्तो भवेत् सोऽपि सर्वसिद्धेश्वरः स्वयम् ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम् ।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते प्रकृतेर्ब्रह्माण्डमोहनकवचं सम्पूर्णम् ।

(प्रकृतिखण्ड ६७ । १—१९½)

मन्त्रसहितं कालीकवचम्

नारद उवाच

कवचं श्रोतुमिच्छामि तां च विद्यां दशाक्षरीम् । नाथ त्वत्तो हि सर्वज्ञ भद्रकाल्याश्च साम्प्रतम् ॥

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि महाविद्यां दशाक्षरीम् । गोपनीयं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहेति च दशाक्षरीम् । दुर्वासा हि ददौ राज्ञे पुष्करे सूर्यपर्वणि ॥
दशलक्षजपेनैव मन्त्रसिद्धिः कृता पुरा । पञ्चलक्षजपेनैव पठन् कवचमुत्तमम् ॥
बभूव सिद्धकवचोऽप्ययोध्यामाजगाम सः । कृत्स्नां हि पृथिवीं जिग्ये कवचस्य प्रसादतः ॥

नारद उवाच

श्रुता दशाक्षरी विद्या त्रिषु लोकेषु दुर्लभा । अधुना श्रोतुमिच्छामि कवचं ब्रूहि मे प्रभो ॥

नारायण उवाच

शृणु वक्ष्यामि विप्रेन्द्र कवचं परमाद्भुतम् । नारायणेन यद् दत्तं कृपया शूलिने पुरा ॥
त्रिपुरस्य वधे घोरे शिवस्य विजयाय च । तदेव शूलिना दत्तं पुरा दुर्वाससे मुने ॥
दुर्वाससा च यद् दत्तं सुचन्द्राय महात्मने । अतिगुह्यतरं तत्त्वं सर्वमन्त्रौघविग्रहम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा मे पातु मस्तकम् । क्लीं कपालं सदा पातु ह्रीं ह्रीं ह्रीमिति लोचने ॥
ॐ ह्रीं त्रिलोचने स्वाहा नासिकां मे सदावतु । क्लीं कालिके रक्ष रक्ष स्वाहा दन्तं सदावतु ॥
ह्रीं भद्रकालिके स्वाहा पातु मेऽधरयुग्मकम् । ॐ ह्रीं ह्रीं क्लीं कालिकायै स्वाहा कण्ठं सदावतु ॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा कर्णयुग्मं सदावतु । ॐ क्रीं क्रीं क्लीं काल्यै स्वाहा स्कन्धं पातु सदा मम ॥

ॐ क्रीं भद्रकाल्यै स्वाहा मम वक्षः सदावतु । ॐ क्रीं कालिकायै स्वाहा मम नाभिं सदावतु ॥
ॐ ह्रीं कालिकायै स्वाहा मम पृष्ठं सदावतु । रक्तबीजविनाशिन्यै स्वाहा हस्तौ सदावतु ॥
ॐ ह्रीं क्लीं मुण्डमालिन्यै स्वाहा पादौ सदावतु । ॐ ह्रीं चामुण्डायै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥
प्राच्यां पातु महाकाली आग्नेय्यां रक्तदन्तिका । दक्षिणे पातु चामुण्डा नैर्ऋत्यां पातु कालिका ॥
श्यामा च वारुणे पातु वायव्यां पातु चण्डिका । उत्तरे विकटास्या च ऐशान्यां साट्टहासिनी ॥
ऊर्ध्वं पातु लोलजिह्वा मायाद्या पात्वधः सदा । जले स्थले चान्तरिक्षे पातु विश्वप्रसूः सदा ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । सर्वेषां कवचानां च सारभूतं परात्परम् ॥
सप्तद्वीपेश्वरो राजा सुचन्द्रोऽस्य प्रसादतः । कवचस्य प्रसादेन मान्धाता पृथिवीपतिः ॥
प्रचेता लोमशश्चैव यतः सिद्धो बभूव ह । यतो हि योगिनां श्रेष्ठः सौभरिः पिप्पलायनः ॥
यदि स्यात् सिद्धकवचः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् । महादानानि सर्वाणि तपांसि च व्रतानि च ।
निश्चितं कवचस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कालीं जगत्प्रसूम् । शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मन्त्रसहितं कालीकवचं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड ३७ । १—२४)

ब्रह्माण्डविजयं नाम दुर्गाकवचम्

नारायण उवाच

शृणु नारद वक्ष्यामि दुर्गायाः कवचं शुभम् । श्रीकृष्णेनैव यद् दत्तं गोलोके ब्रह्मणे पुरा ॥
ब्रह्मा त्रिपुरसंग्रामे शंकराय ददौ पुरा । जघान त्रिपुरं रुद्रो यद् धृत्वा भक्तिपूर्वकम् ॥
हरो ददौ गौतमाय पद्माक्षाय च गौतमः । यतो बभूव पद्माक्षः सप्तद्वीपेश्वरो जयी ॥
यद् धृत्वा पठनाद् ब्रह्मा ज्ञानवाञ्छक्तिमान् भुवि । शिवो बभूव सर्वज्ञो योगिनां च गुरुर्यतः ।
शिवतुल्यो गौतमश्च बभूव मुनिसत्तमः ॥
ब्रह्माण्डविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवी दुर्गतिनाशिनी ॥
ब्रह्माण्डविजये चैव विनियोगः प्रकीर्तितः । पुण्यतीर्थं च महतां कवचं परमाद्भुतम् ॥
ॐ ह्रीं दुर्गतिनाशिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम् । ॐ ह्रीं मे पातु कपालं च ॐ ह्रीं श्रीमिति लोचने ॥
पातु मे कर्णयुग्मं च ॐ दुर्गायै नमः सदा । ॐ ह्रीं श्रीमिति नासां मे सदा पातु च सर्वतः ॥
ह्रीं श्रीं ह्रूमिति दन्तानि पातु क्लीमोष्ठयुग्मकम् । क्रीं क्रीं क्रीं पातु कण्ठं च दुर्गे रक्षतु गण्डकम् ॥
स्कन्धं दुर्गविनाशिन्यै स्वाहा पातु निरन्तरम् । वक्षो विपद्विनाशिन्यै स्वाहा मे पातु सर्वतः ॥
दुर्गे दुर्गे रक्षिणीति स्वाहा नाभिं सदावतु । दुर्गे दुर्गे रक्ष रक्ष पृष्ठं मे पातु सर्वतः ॥
ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च हस्तौ पादौ सदावतु । ॐ ह्रीं दुर्गायै स्वाहा च सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥
प्राच्यां पातु महामाया आग्नेय्यां पातु कालिका । दक्षिणे दक्षकन्या च नैर्ऋत्यां शिवसुन्दरी ॥
पश्चिमे पार्वती पातु वाराही वारुणे सदा । कुबेरमाता कौबेर्यामैशान्यामीश्वरी सदा ॥
ऊर्ध्वं नारायणी पातु अम्बिकाधः सदावतु । ज्ञाने ज्ञानप्रदा पातु स्वप्ने निद्रा सदावतु ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । ब्रह्माण्डविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥

सुस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु यत् फलम् । सर्वव्रतोपवासे च तत् फलं लभते नरः ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ कवचं धारयेत्तु यः ॥
स च त्रैलोक्यविजयी सर्वशत्रुप्रमर्दकः । इदं कवचमज्ञात्वा भजेद् दुर्गतिनाशिनीम् ॥
शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥
कवचं काण्वशाखोक्तमुक्तं नारद सुन्दरम् । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं सुदुर्लभम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्माण्डविजयं नाम दुर्गाकवचं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड ३९ । ३—२३)

ब्रह्मादिकृतं श्रीनारायणस्तोत्रम्

ते मनोयायिनः सर्वे सम्प्रापुस्तं मनोहरम् । हरेरन्तःपुरं गत्वा ददृशुः श्रीहरिं पुरः ॥
रत्नसिंहासनस्थं च रत्नालंकारभूषितम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरशोभितम् ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । पीतवस्त्रपरीधानं वनमालाविभूषितम् ॥
शान्तं सरस्वतीकान्तं लक्ष्मीधृतपदाम्बुजम् । कोटिकन्दर्पलीलाभं स्मितवक्त्रं चतुर्भुजम् ॥
सुनन्दनन्दकुमुदैः पार्षदैरुपसेवितम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सरत्नमुकुटोज्ज्वलम् ॥
परमानन्दरूपं च भक्तानुग्रहकातरम् । तं प्रणेमुः सुरेन्द्राश्च भक्त्या ब्रह्मादयो मुने ॥
तुष्टुवुः परया भक्त्या भक्तिनम्रात्मकन्धराः । परमानन्दभारार्ताः पुलकाङ्कितविग्रहाः ॥

ब्रह्मोवाच

नमामि कमलाकान्तं शान्तं सर्वेशमच्युतम् । वयं यस्य कलाभेदाः कलांशकलया सुराः ॥
मनवश्च मुनीन्द्राश्च मानवाश्च चराचराः । कलाकलांशकलया भूतास्त्वत्तो निरञ्जन ॥

शंकर उवाच

त्वामक्षयमक्षरं वा राममव्यक्तमीश्वरम् । अनादिमादिमानन्दरूपिणं सर्वरूपिणम् ॥
अणिमादिकसिद्धीनां कारणं सर्वकारणम् । सिद्धिज्ञं सिद्धिदं सिद्धिरूपं कः स्तोतुमीश्वरः ॥

धर्म उवाच

वेदे निरूपितं वस्तु वर्णनीयं विचक्षणैः । वेदेऽनिर्वचनीयं यत्तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः ॥
यस्य सम्भावनीयं यद् गुणरूपं निरञ्जनम् । तदतिरिक्तं स्तवनं किमहं स्तौमि निर्गुणम् ॥
ब्रह्मादीनामिदं स्तोत्रं षट्श्लोकोक्तं महामुने । पठित्वा मुच्यते दुर्गाद् वाञ्छितं च लभेन्नरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मादिकृतं श्रीनारायणस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ४ । ५५—६८)

दुर्वाससा कृतं कमलाकान्तस्तोत्रम्

दुर्वासा उवाच

त्राहि मां कमलाकान्त त्राहि मां करुणानिधे । दीनबन्धोऽतिदीनेश करुणासागर प्रभो ॥
वेदवेदाङ्गसंस्रष्टुर्विधातुश्च स्वयं विधे । मृत्योर्मृत्यो कालकाल त्राहि मां संकटार्णवे ॥
संहारकर्तुः संहार सर्वेश सर्वकारण । महाविष्णुतरोर्बीज रक्ष मां भवसागरे ॥
शरणागतशोकार्तभयत्राणपरायण । भगवन्नव मां भीतं नारायण नमोऽस्तु ते ॥
वेदेष्वाद्यं च यद् वस्तु वेदाः स्तोतुं न च क्षमाः । सरस्वती जडीभूता किं स्तुवन्ति विपश्चितः ॥
शेषः सहस्रवक्त्रेण यं स्तोतुं जडतां व्रजेत् । पञ्चवक्त्रो जडीभूतो जडीभूतश्चतुर्मुखः ॥
श्रुतयः स्मृतिकर्तारो वाणी चेत् स्तोतुमक्षमा । कोऽहं विप्रश्च वेदज्ञः शिष्यः किं स्तौमि मानद ॥
मनूनां च महेन्द्राणामष्टाविंशतिमे गते । दिवानिशं यस्य विधेरष्टोत्तरशतायुषः ॥
तस्य पातो भवेद् यस्य चक्षुरुन्मीलनेन च । तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि पाहि मां प्रभो ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा पपात चरणाम्बुजे । नयनाम्बुजनीरेण सिषेच भयविह्वलः ॥
दुर्वाससा कृतं स्तोत्रं हरेश्च परमात्मनः । पुण्यदं सामवेदोक्तं जगन्मङ्गलनामकम् ॥
यः पठेत् संकटग्रस्तो भक्तियुक्तश्च संयुतः । नारायणस्तं कृपया शीघ्रमागत्य रक्षति ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते दुर्वाससा कृतं कमलाकान्तस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २५। ९०—१०१)

श्रीलक्ष्म्याः स्तोत्राणि

लक्ष्म्या ध्यानम्

सहस्रदलपद्मस्य कर्णिकावासिनीं पराम् । शरत्पार्वणकोटीन्दुप्रभाजुष्टकराम्बराम् ॥
स्वतेजसा प्रज्वलन्तीं सुखदृश्यां मनोहराम् । प्रतप्तकाञ्चननिभां शोभां मूर्तिमतीं सतीम् ॥
रत्नभूषणभूषाढ्यां शोभितां पीतवाससा । ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां शश्वत्सुस्थिरयौवनाम् ॥
सर्वसम्पत्प्रदात्रीं च महालक्ष्मीं भजे शुभाम्।

(प्रकृतिखण्ड ३९। १०—१२½)

लक्ष्म्या मन्त्रः

लक्ष्मीर्माया कामवाणी ततः कमलवासिनी । स्वाहान्तो वैदिको मन्त्रराजोऽयं द्वादशाक्षरः ॥
कुबेरोऽनेन मन्त्रेण सर्वैश्वर्यमवाप्तवान् । राजराजेश्वरो दक्षः सावर्णिर्मनुरेव च ॥
मङ्गलोऽनेन मन्त्रेण सप्तद्वीपवतीपतिः । प्रियव्रतोत्तानपादौ केदारो नृप एव च ॥
एते च सिद्धा राजेन्द्रा मन्त्रेणानेन नारद।

(प्रकृतिखण्ड ३९। ४३—४५½)

इन्द्रकृतं लक्ष्मीस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच

ॐ नमो महालक्ष्म्यै।

ॐ नमः कमलवासिन्यै नारायण्यै नमो नमः। कृष्णप्रियायै सारायै पद्मायै च नमो नमः॥
पद्मपत्रेक्षणायै च पद्मास्यायै नमो नमः। पद्मासनायै पद्मिन्यै वैष्णव्यै च नमो नमः॥
सर्वसम्पत्स्वरूपायै सर्वदात्र्यै नमो नमः। सुखदायै मोक्षदायै सिद्धिदायै नमो नमः॥
हरिभक्तिप्रदात्र्यै च हर्षदात्र्यै नमो नमः। कृष्णवक्षःस्थितायै च कृष्णेशायै नमो नमः॥
कृष्णशोभास्वरूपायै रत्नपद्मे च शोभने। सम्पत्त्यधिष्ठातृदेव्यै महादेव्यै नमो नमः॥
शस्याधिष्ठातृदेव्यै च शस्यायै च नमो नमः। नमो बुद्धिस्वरूपायै बुद्धिदायै नमो नमः॥
वैकुण्ठे या महालक्ष्मीर्लक्ष्मीः क्षीरोदसागरे। स्वर्गलक्ष्मीरिन्द्रगेहे राजलक्ष्मीर्नृपालये॥
गृहलक्ष्मीश्च गृहिणां गेहे च गृहदेवता। सुरभी सा गवां माता दक्षिणा यज्ञकामिनी॥
अदितिर्देवमाता त्वं कमला कमलालये। स्वाहा त्वं च हविर्दाने कव्यदाने स्वधा स्मृता॥
त्वं हि विष्णुस्वरूपा च सर्वाधारा वसुन्धरा। शुद्धसत्त्वस्वरूपा त्वं नारायणपरायणा॥
क्रोधहिंसावर्जिता च वरदा च शुभानना। परमार्थप्रदा त्वं च हरिदास्यप्रदा परा॥
यया विना जगत् सर्वं भस्मीभूतमसारकम्। जीवन्मृतं च विश्वं च शवतुल्यं यया विना॥
सर्वेषां च परा त्वं हि सर्वबान्धवरूपिणी। यया विना न सम्भाष्यो बान्धवैर्बान्धवः सदा॥
त्वया हीनो बन्धुहीनस्त्वया युक्तः सबान्धवः। धर्मार्थकाममोक्षाणां त्वं च कारणरूपिणी॥
यथा माता स्तनन्धानां शिशूनां शैशवे सदा। तथा त्वं सर्वदा माता सर्वेषां सर्वरूपतः॥
मातृहीनः स्तनत्यक्तः स चेज्जीवति दैवतः। त्वया हीनो जनः कोऽपि न जीवत्येव निश्चितम्॥
सुप्रसन्नस्वरूपा त्वं मां प्रसन्ना भवाम्बिके। वैरिग्रस्तं च विषयं देहि मह्यं सनातनि॥
वयं यावत् त्वया हीना बन्धुहीनाश्च भिक्षुकाः। सर्वसम्पद्विहीनाश्च तावदेव हरिप्रिये॥
राज्यं देहि श्रियं देहि बलं देहि सुरेश्वरि। कीर्तिं देहि धनं देहि यशो मह्यं च देहि वै॥
कामं देहि मतिं देहि भोगान् देहि हरिप्रिये। ज्ञानं देहि च धर्मं च सर्वसौभाग्यमीप्सितम्॥
प्रभावं च प्रतापं च सर्वाधिकारमेव च। जयं पराक्रमं युद्धे परमैश्वर्यमेव च॥
इत्युक्त्वा च महेन्द्रश्च सर्वैः सुरगणैः सह। प्रणनाम साश्रुनेत्रो मूर्ध्ना चैव पुनः पुनः॥
ब्रह्मा च शंकरश्चैव शेषो धर्मश्च केशवः। सर्वे चक्रुः परीहारं सुरार्थे च पुनः पुनः॥
देवेभ्यश्च वरं दत्त्वा पुष्पमालां मनोहराम्। केशवाय ददौ लक्ष्मीः संतुष्टा सुरसंसदि॥
ययुर्देवाश्च संतुष्टाः स्वं स्वं स्थानं च नारद। देवी ययौ हरेः क्रोडं हृष्टा क्षीरोदशायिनः॥
ययतुश्चैव स्वगृहं ब्रह्मेशानौ च नारद। दत्त्वा शुभाशिषं तौ च देवेभ्यः प्रीतिपूर्वकम्॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। कुबेरतुल्यः स भवेद् राजराजेश्वरो महान्॥
सिद्धस्तोत्रं यदि पठेत् सोऽपि कल्पतरुर्नरः। पञ्चलक्षजपेनैव स्तोत्रसिद्धिर्भवेन्नृणाम्॥
सिद्धिस्तोत्रं यदि पठेन्मासमेकं च संयतः। महासुखी च राजेन्द्रो भविष्यति न संशयः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ध्यानमन्त्रसहितमिन्द्रकृतं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(प्रकृतिखण्ड ३९।५१—७१)

लक्ष्म्या मन्त्रो ध्यानं च

नारायण उवाच

दत्त्वा तस्मै च कवचं मन्त्रं वै षोडशाक्षरम् । संतुष्टश्च जगन्नाथो जगतां हितकारणम् ॥
ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं नमो महालक्ष्म्यै हरिप्रियायै स्वाहा । ददौ तस्मै च कृपया इन्द्राय च महामुने ॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं गोपनीयं सुदुर्लभम् । सिद्धैर्मुनीन्द्रैर्दुष्प्राप्यं ध्रुवं सिद्धिप्रदं शुभम् ॥
श्वेतचम्पकवर्णाभां शतचन्द्रसमप्रभाम् । वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां भक्तानुग्रहकारकाम् । सहस्रदलपद्मस्थां स्वस्थां च सुमनोहराम् ॥
शान्तां च श्रीहरेः कान्तां तां भजेज्जगतां प्रसूम् ॥
ध्यानेनानेन देवेन्द्र ध्यात्वा लक्ष्मीं मनोहराम् । भक्त्या दास्यसि तस्यै च चोपचाराणि षोडश ॥
स्तुत्वानेन स्तवेनैव वक्ष्यमाणेन वासव । नत्वा वरं गृहीत्वा च लभिष्यसि च निर्वृतिम् ॥
स्तवनं शृणु देवेन्द्र महालक्ष्म्याः सुखप्रदम् । कथयामि सुगोप्यं च त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मन्त्रध्यानसहितं लक्ष्म्या ध्यानं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड २२ । १८—२६)

लक्ष्म्याः स्तोत्रम्

नारायण उवाच

देवि त्वां स्तोतुमिच्छामि न क्षमाः स्तोतुमीश्वराः । बुद्धेरगोचरां सूक्ष्मां तेजोरूपां सनातनीम् ॥
अत्यनिर्वचनीयां च को वा निर्वक्तुमीश्वरः ॥
स्वेच्छामयीं निराकारां भक्तानुग्रहविग्रहाम् । स्तौमि वाङ्मनसोः पारां किं वाहं जगदम्बिके ॥
परां चतुर्णां वेदानां पारबीजं भवार्णवे । सर्वसस्याधिदेवीं च सर्वासामपि सम्पदाम् ॥
योगिनां चैव योगानां ज्ञानानां ज्ञानिनां तथा । वेदानां च वेदविदां जननीं वर्णयामि किम् ॥
यया विना जगत् सर्वमवस्तु निष्फलं ध्रुवम् । यथा स्तनान्धबालानां विना मात्रा सुखं भवेत् ॥
प्रसीद जगतां माता रक्षास्मानतिकातरान् । वयं त्वच्चरणाम्भोजे प्रपन्नाः शरणं गताः ॥
नमः शक्तिस्वरूपायै जगन्मात्रे नमो नमः । ज्ञानदायै बुद्धिदायै सर्वदायै नमो नमः ॥
हरिभक्तिप्रदायिन्यै मुक्तिदायै नमो नमः । सर्वज्ञायै सर्वदायै महालक्ष्म्यै नमो नमः ॥
कुपुत्राः कुत्रचित् सन्ति न कुत्रचित् कुमातरः । कुत्र माता पुत्रदोषं तं विहाय च गच्छति ॥
हे मातर्दर्शनं देहि स्तनान्धान् बालकानिव । कृपां कुरु कृपासिन्धुप्रियेऽस्मान् भक्तवत्सले ॥
इत्येवं कथितं वत्स पद्मायाश्च शुभावहम् । सुखदं मोक्षदं सारं शुभदं सम्पदः पदम् ॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं पूजाकाले च यः पठेत् । महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन ॥
इत्युक्त्वा श्रीहरिस्तं च तत्रैवान्तरधीयत । देवो जगाम क्षीरोदं सुरैः सार्धं तदाज्ञया ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मन्त्रध्यानसहितं लक्ष्म्याः स्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड २२ । २७—३९)

महालक्ष्म्या मन्त्रो ध्यानं च

महालक्ष्म्याश्च मन्त्रं च शृणु त्वं कथयामि ते । ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहेति परमाद्भुतम् ॥
ध्यानं च सामवेदोक्तं शृणु पूजाविधिं मुने । दत्तं तस्मै कुमारेण पुष्कराक्षाय धीमते ॥
सहस्रदलपद्मस्थां पद्मनाभप्रियां सतीम् । पद्मालयां पद्मवक्त्रां पद्मपत्राभलोचनाम् ॥
पद्मपुष्पप्रियां पद्मपुष्पतल्पविशायिनीम् । पद्मिनीं पद्महस्तां च पद्ममालाविभूषिताम् ॥
पद्मभूषणभूषाढ्यां पद्मशोभाविवर्धिनीम् । पद्मकाननं पश्यन्तीं सस्मितां तां भजे मुदा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मन्त्रसहितं महालक्ष्म्या ध्यानं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड ३८ । ४५—४९)

देवकृतं लक्ष्मीस्तोत्रम्

देवा ऊचुः

क्षमस्व भगवत्यम्ब क्षमाशीले परात्परे । शुद्धसत्त्वस्वरूपे च कोपादिपरिवर्जिते ॥
उपमे सर्वसाध्वीनां देवीनां देवपूजिते । त्वया विना जगत्सर्वं मृततुल्यं च निष्फलम् ॥
सर्वसम्पत्स्वरूपा त्वं सर्वेषां सर्वरूपिणी । रासेश्वर्यधिदेवी त्वं त्वत्कलाः सर्वयोषितः ॥
कैलासे पार्वती त्वं च क्षीरोदे सिन्धुकन्यका । स्वर्गे च स्वर्गलक्ष्मीस्त्वं मर्त्यलक्ष्मीश्च भूतले ॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्देवदेवी सरस्वती । गङ्गा च तुलसी त्वं च सावित्री ब्रह्मलोकतः ॥
कृष्णप्राणाधिदेवी त्वं गोलोके राधिका स्वयम् । रासे रासेश्वरी त्वं च वृन्दा वृन्दावने वने ॥
कृष्णप्रिया त्वं भाण्डीरे चन्द्रा चन्दनकानने । विरजा चम्पकवने शतशृङ्गे च सुन्दरी ॥
पद्मावती पद्मवने मालती मालतीवने । कुन्ददन्ती कुन्दवने सुशीला केतकीवने ॥
कदम्बमाला त्वं देवि कदम्बकाननेऽपि च । राजलक्ष्मी राजगेहे गृहलक्ष्मीर्गृहे गृहे ॥
इत्युक्त्वा देवताः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । रुरुदुर्नम्रवदनाः शुष्ककण्ठोष्ठतालुकाः ॥
इति लक्ष्मीस्तवं पुण्यं सर्वदेवैः कृतं शुभम् । यः पठेत् प्रातरुत्थाय स वै सर्वं लभेद् ध्रुवम् ॥
अभार्यो लभते भार्यां विनीतां च सुतां सतीम् । सुशीलां सुन्दरीं रम्यामतिसुप्रियवादिनीम् ॥
पुत्रपौत्रवतीं शुद्धां कुलजां कोमलां वराम् । अपुत्रो लभते पुत्रं वैष्णवं चिरजीविनम् ॥
परमैश्वर्ययुक्तं च विद्यावन्तं यशस्विनम् । भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं भ्रष्टश्रीर्लभते श्रियम् ॥
हतबन्धुर्लभेद् बन्धुं धनभ्रष्टो धनं लभेत् । कीर्तिहीनो लभेत् कीर्तिं प्रतिष्ठां च लभेद् ध्रुवम् ॥
सर्वमङ्गलदं स्तोत्रं शोकसंतापनाशनम् । हर्षानन्दकरं शश्वद्धर्ममोक्षसुहृत्प्रदम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते देवकृतं लक्ष्मीस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ५६ । ७५—९०)

इन्द्रं प्रति हरिणोपदिष्टं लक्ष्मीकवचम्

नारद उवाच

आविर्भूय हरिस्तस्मै किं स्तोत्रं कवचं ददौ। महालक्ष्म्याश्च लक्ष्मीशस्तन्मे ब्रूहि तपोधन॥

नारायण उवाच

पुष्करे च तपस्तप्त्वा विरराम सुरेश्वरः। आविर्बभूव तत्रैव क्लिष्टं दृष्ट्वा हरिः स्वयम्॥
तमुवाच हृषीकेशो वरं वृणु यथेप्सितम्। स च वव्रे वरं लक्ष्मीमीशस्तस्मै ददौ मुदा॥
वरं दत्त्वा हृषीकेशः प्रवक्तुमुपचक्रमे। हितं सत्यं च सारं च परिणामसुखावहम्॥

श्रीमधुसूदन उवाच

गृहाण कवचं शक्र सर्वदुःखविनाशनम्। परमैश्वर्यजनकं सर्वशत्रुविमर्दनम्॥
ब्रह्मणे च पुरा दत्तं संसारे च जलप्लुते। यद् धृत्वा जगतां श्रेष्ठः सर्वैश्वर्ययुतो विधिः॥
बभूवुर्मनवः सर्वे सर्वैश्वर्ययुता यतः। सर्वैश्वर्यप्रदस्यास्य कवचस्य ऋषिर्विधिः॥
पङ्क्तिश्छन्दश्च सा देवी स्वयं पद्मालया सुर। सिद्ध्यैश्वर्यजपेष्वेव विनियोगः प्रकीर्तितः॥
यद् धृत्वा कवचं लोकः सर्वत्र विजयी भवेत्॥
मस्तकं पातु मे पद्मा कण्ठं पातु हरिप्रिया। नासिकां पातु मे लक्ष्मीः कमला पातु लोचनम्॥
केशान् केशवकान्ता च कपालं कमलालया। जगत्प्रसूर्गण्डयुग्मं स्कन्धं सम्पत्प्रदा सदा॥
ॐ श्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदावतु। ॐ श्रीं पद्मालयायै स्वाहा वक्षः सदावतु॥
पातु श्रीर्मम कङ्कालं बाहुयुग्मं च ते नमः॥
ॐ ह्रीं श्रीं लक्ष्म्यै नमः पादौ पातु मे संततं चिरम्। ॐ ह्रीं श्रीं नमः पद्मायै स्वाहा पातु नितम्बकम्॥
ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै स्वाहा सर्वाङ्गं पातु मे सदा। ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मां पातु सर्वतः॥
इति ते कथितं वत्स सर्वसम्पत्करं परम्। सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स सर्वविजयी भवेत्॥
महालक्ष्मीर्गृहं तस्य न जहाति कदाचन। तस्य छायेव सततं सा च जन्मनि जन्मनि॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेल्लक्ष्मीं सुमन्दधीः। शतलक्षप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते इन्द्रं प्रति हरिणोपदिष्टं लक्ष्मीकवचं सम्पूर्णम्।

(गणपतिखण्ड २२।१—१७)

महालक्ष्मीकवचम्

नारायण उवाच

सर्वसम्पत्प्रदस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः। ऋषिश्छन्दश्च बृहती देवी पद्मालया स्वयम्॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। पुण्यबीजं च महतां कवचं परमाद्भुतम्॥
ॐ ह्रीं कमलवासिन्यै स्वाहा मे पातु मस्तकम्। श्रीं मे पातु कपालं च लोचने श्रीं श्रियै नमः॥
ॐ श्रीं श्रियै स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु। ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं महालक्ष्म्यै स्वाहा मे पातु नासिकाम्॥
ॐ श्रीं पद्मालयायै च स्वाहा दन्तं सदावतु। ॐ श्रीं कृष्णप्रियायै च दन्तरन्ध्रं सदावतु॥

ॐ श्रीं नारायणेशायै मम कण्ठं सदावतु । ॐ श्रीं केशवकान्तायै मम स्कन्धं सदावतु ॥
ॐ श्रीं पद्मनिवासिन्यै स्वाहा नाभिं सदावतु । ॐ ह्रीं श्रीं संसारमात्रे मम वक्षः सदावतु ॥
ॐ श्रीं श्रीं कृष्णकान्तायै स्वाहा पृष्ठं सदावतु । ॐ ह्रीं श्रीं श्रियै स्वाहा मम हस्तौ सदावतु ॥
ॐ श्रीं निवासकान्तायै मम पादौ सदावतु । ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं श्रियै स्वाहा सर्वाङ्गं मे सदावतु ॥
प्राच्यां पातु महालक्ष्मीराग्नेय्यां कमलालया । पद्मा मां दक्षिणे पातु नैर्ऋत्यां श्रीहरिप्रिया ॥
पद्मालया पश्चिमे मां वायव्यां पातु श्रीः स्वयम् । उत्तरे कमला पातु ऐशान्यां सिन्धुकन्यका ॥
नारायणेशी पातूर्ध्वमधो विष्णुप्रियावतु । संततं सर्वतः पातु विष्णुप्राणाधिका मम ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । सर्वैश्वर्यप्रदं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
सुवर्णपर्वतं दत्त्वा मेरुतुल्यं द्विजातये । यत् फलं लभते धर्मी कवचेन ततोऽधिकम् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत् तु यः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ स श्रीमान् प्रतिजन्मनि ॥
अस्ति लक्ष्मीगृहे तस्य निश्चला शतपूरुषम् । देवेन्द्रैश्चासुरेन्द्रैश्च सोऽवध्यो निश्चितं भवेत् ॥
स सर्वपुण्यवान् धीमान् सर्वयज्ञेषु दीक्षितः । स स्नातः सर्वतीर्थेषु यस्येदं कवचं गले ॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं लोभमोहभयैरपि । गुरुभक्ताय शिष्याय शरणाय प्रकाशयेत् ॥
इदं कवचमज्ञात्वा जपेल्लक्ष्मीं जगत्प्रसूम् । कोटिसंख्यं प्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महालक्ष्मीकवचं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड ३८ । ६४—८२)

श्रीकृष्णस्तोत्राणि

नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

नारायण उवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम् । कारणं कारणानां च कर्म तत्कर्मकारणम् ॥
तपस्तत्फलदं शश्वत्तपस्विनां च तापसम् । वन्दे नवघनश्यामं स्वात्मारामं मनोहरम् ॥
निष्कामं कामरूपं च कामघ्नं कामकारणम् । सर्वं सर्वेश्वरं सर्वबीजरूपमनुत्तमम् ॥
वेदरूपं वेदबीजं वेदोक्तफलदं फलम् । वेदज्ञं तद्विधानं च सर्ववेदविदां वरम् ॥
इत्युक्त्वा भक्तियुक्तश्च स उवास तदाज्ञया । रत्नसिंहासने रम्ये पुरतः परमात्मनः ॥
नारायणकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । त्रिसंध्यं च पठेन्नित्यं पापं तस्य न विद्यते ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रं भार्यार्थी लभते प्रियाम् । भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं धनं भ्रष्टधनो लभेत् ॥
कारागारे विपद्ग्रस्तः स्तोत्रेण मुच्यते ध्रुवम् । रोगात् प्रमुच्यते रोगी वर्षं श्रुत्वा तु संयतः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते नारायणकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(ब्रह्मखण्ड ३ । १०—१७)

शिवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

महादेव उवाच

जयस्वरूपं जयदं जयेशं जयकारणम्। प्रवरं जयदानां च वन्दे तमपराजितम्॥
विश्वं विश्वेश्वरेशं च विश्वेशं विश्वकारणम्। विश्वाधारं च विश्वस्तं विश्वकारणकारणम्॥
विश्वरक्षाकारणं च विश्वघ्नं विश्वजं परम्। फलबीजं फलाधारं फलं च तत्फलप्रदम्॥
तेजःस्वरूपं तेजोदं सर्वतेजस्विनां वरम्। इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे॥
नारायणं च सम्भाष्य स उवास तदाज्ञया॥
इति शम्भुकृतं स्तोत्रं यो जनः संयतः पठेत्। सर्वसिद्धिर्भवेत्तस्य विजयश्च पदे पदे॥
संततं वर्धते मित्रं धनमैश्वर्यमेव च। शत्रुसैन्यं क्षयं याति दुःखानि दुरितानि च॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते शिवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ३। २४—२९)

ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

कृष्णं वन्दे गुणातीतं गोविन्दमेकमक्षरम्। अव्यक्तमव्ययं व्यक्तं गोपवेषविधायिनम्॥
किशोरवयसं शान्तं गोपीकान्तं मनोहरम्। नवीननीरदश्यामं कोटिकन्दर्पसुन्दरम्॥
वृन्दावनवनाभ्यर्णे रासमण्डलसंस्थितम्। रासेश्वरं रासवासं रासोल्लाससमुत्सुकम्॥
इत्येवमुक्त्वा तं नत्वा रत्नसिंहासने वरे। नारायणेशौ सम्भाष्य स उवास तदाज्ञया॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। पापानि तस्य नश्यन्ति दुःस्वप्नः सुस्वप्नो भवेत्॥
भक्तिर्भवति गोविन्दे पुत्रपौत्रविवर्धिनी। अकीर्तिः क्षयमाप्नोति सत्कीर्तिर्वर्धते चिरम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ३। ३५—४०)

धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

धर्म उवाच

कृष्णं विष्णुं वासुदेवं परमात्मानमीश्वरम्। गोविन्दं परमानन्दमेकमक्षरमच्युतम्॥
गोपेश्वरं च गोपीशं गोपं गोरक्षकं विभुम्। गवामीशं च गोष्ठस्थं गोवत्सपुच्छधारिणम्॥
गोगोपगोपीमध्यस्थं प्रधानं पुरुषोत्तमम्। वन्दे नवघनश्यामं रासवासं मनोहरम्॥
इत्युच्चार्य समुत्तिष्ठन् रत्नसिंहासने वरे। ब्रह्मविष्णुमहेशांस्तान् सम्भाष्य स उवास ह॥
चतुर्विंशतिनामानि धर्मवक्त्रोद्गतानि च। यः पठेत् प्रातरुत्थाय स सुखी सर्वतो जयी॥
मृत्युकाले हरेर्नाम तस्य साध्यं भवेद् ध्रुवम्। स यात्यन्ते हरेः स्थानं हरिदास्यं लभेद् ध्रुवम्॥
नित्यं धर्मस्तं घटते नाधर्मे तद्रतिर्भवेत्। चतुर्वर्गफलं तस्य शश्वत् करगतं भवेत्॥
तं दृष्ट्वा सर्वपापानि पलायन्ते भयेन च। भयानि चैव दुःखानि वैनतेयमिवोरगाः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते धर्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ३। ४५—५२)

सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

सरस्वत्युवाच

रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्। रत्नसिंहासनस्थं च रत्नभूषणभूषितम्॥
रासेश्वरं रासकरं वरं रासेश्वरीश्वरम्। रासाधिष्ठातृदेवं च वन्दे रासविनोदिनम्॥
रासायासपरिश्रान्तं रासरासविहारिणम्। रासोत्सुकानां गोपीनां कान्तं शान्तं मनोहरम्॥
प्रणम्य तमित्युक्त्वा प्रहृष्टवदना सती। उवास सा सकामा च रत्नसिंहासने वरे॥
इति वाणीकृतं स्तोत्रं प्रातरुत्थाय यः पठेत्। बुद्धिमान् धनवान् सोऽपि विद्यावान् पुत्रवान् सदा॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते सरस्वतीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ३।५०—५४)

महालक्ष्मीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

महालक्ष्मीरुवाच

सत्यस्वरूपं सत्येशं सत्यबीजं सनातनम्। सत्याधारं च सत्यज्ञं सत्यमूलं नमाम्यहम्॥ १॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते महालक्ष्मीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ३।५८)

दुर्गाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

प्रकृतिरुवाच

अहं प्रकृतिरीशानी सर्वेशा सर्वरूपिणी। सर्वशक्तिस्वरूपा च मया च शक्तिमज्जगत्॥
त्वया सृष्टा न स्वतन्त्रा त्वमेव जगतां पतिः। गतिश्च पाता स्रष्टा च संहर्ता च पुनर्विधिः॥
परमानन्दरूपं त्वां वन्दे चानन्दपूर्वकम्। चक्षुर्निमेषकाले च ब्रह्मणः पतनं भवेत्॥
तस्य प्रभावमतुलं वर्णितुं कः क्षमो विभो। भ्रूभङ्गलीलामात्रेण विष्णुकोटिं सृजेत्तु यः॥
चराचरांश्च विश्वेषु देवान् ब्रह्मपुरोगमान्। मद्विधाः कति वा देवीः स्रष्टुं शक्तश्च लीलया॥
परिपूर्णतमं स्वीड्यं वन्दे चानन्दपूर्वकम्। महान् विराड् यत्कलांशो विश्वासंख्याश्रयो विभो॥
वन्दे चानन्दपूर्वं तं परमात्मानमीश्वरम्॥
यं च स्तोतुमशक्ताश्च ब्रह्मविष्णुशिवादयः। वेदा अहं च वाणी च वन्दे तं प्रकृतेः परम्॥
वेदाश्च विदुषां श्रेष्ठाः स्तोतुं शक्ता न लक्षतः। निर्लक्ष्यं कः क्षमः स्तोतुं तं निरीहं नमाम्यहम्॥
इत्येवमुक्त्वा सा दुर्गा रत्नसिंहासने वरे। उवास नत्वा श्रीकृष्णं तुष्टुवुस्तां सुरेश्वराः॥
इति दुर्गाकृतं स्तोत्रं कृष्णस्य परमात्मनः। यः पठेदर्चनाकाले स जयी सर्वतः सुखी॥
दुर्गा तस्य गृहं त्यक्त्वा नैव याति कदाचन। भवाब्धौ यशसा भाति यात्यन्ते श्रीहरेः पुरम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते दुर्गाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ३।७७—८७)

सावित्रीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

सावित्र्युवाच

नमामि सर्वबीजं त्वां ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । परात्परतरं श्यामं निर्विकारं निरञ्जनम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते सावित्रीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड ४।४)

मालावतीकृतं महापुरुषस्तोत्रम्

मालावत्युवाच

वन्दे तं परमात्मानं सर्वकारणकारणम् । विना येन शवाः सर्वे प्राणिनो जगतीतले॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च सर्वेषां सर्वकर्मसु । विद्यमानं न दृष्टं च सर्वैः सर्वत्र सर्वदा॥
येन सृष्टा च प्रकृतिः सर्वाधारा परात्परा । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां प्रसूर्या त्रिगुणात्मिका॥
जगत्स्रष्टा स्वयं ब्रह्मा नियतो यस्य सेवया । पाता विष्णुश्च जगतां संहर्ता शंकरः स्वयम्॥
ध्यायन्ते यं सुराः सर्वे मुनयो मनवस्तथा । सिद्धाश्च योगिनः सन्तः संततं प्रकृतेः परम्॥
साकारं च निराकारं परं स्वेच्छामयं विभुम् । वरं वरेण्यं वरदं वरार्हं वरकारणम्॥
तपःफलं तपोबीजं तपसां च फलप्रदम् । स्वयं तपःस्वरूपं च सर्वरूपं च सर्वतः॥
सर्वाधारं सर्वबीजं कर्म तत्कर्मणां फलम् । तेषां च फलदातारं तद्बीजं क्षयकारणम्॥
स्वयं तेजःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । सेवाध्यानं न घटते भक्तानां विग्रहं विना॥
तत्तेजो मण्डलाकारं सूर्यकोटिसमप्रभम् । अतीवकमनीयं च रूपं तत्र मनोहरम्॥
नवीननीरदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यमीषद्धास्यसमन्वितम् ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं रत्नभूषणभूषितम्॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं पीतकौशेयवाससम् । किशोरवयसं शान्तं राधाकान्तमनन्तकम्॥
गोपाङ्गनापरिवृतं कुत्रचिन्निर्जने वने । कुत्रचिद् रासमध्यस्थं राधया परिसेवितम्॥
कुत्रचिद् गोपवेषं च वेष्टितं गोपबालकैः । शतशृङ्गाचलोत्कृष्टे रम्ये वृन्दावने वने॥
निकरं कामधेनूनां रक्षन्तं शिशुरूपिणम् । गोलोके विरजातीरे पारिजातवने वने॥
वेणुं क्वणन्तं मधुरं गोपीसम्मोहकारणम् । निरामये च वैकुण्ठे कुत्रचिच्च चतुर्भुजम्॥
लक्ष्मीकान्तं पार्षदैश्च सेवितं च चतुर्भुजैः । कुत्रचित् स्वांशरूपेण जगतां पालनाय च॥
श्वेतद्वीपे विष्णुरूपं पद्मया परिसेवितम् । कुत्रचित् स्वांशकलया ब्रह्माण्डे ब्रह्मरूपिणम्॥
शिवस्वरूपं शिवदं स्वांशेन शिवरूपिणम् । स्वात्मनः षोडशांशेन सर्वाधारं परात्परम्॥
स्वयं महद्विराड्रूपं विश्वौघं यस्य लोमसु । लीलया स्वांशकलया जगतां पालनाय च॥
नानावतारं बिभ्रन्तं बीजं तेषां सनातनम् । वसन्तं कुत्रचित् सन्तं योगिनां हृदये सताम्॥
प्राणरूपं प्राणिनां च परमात्मानमीश्वरम् । तं च स्तोतुमशक्ताहमबला निर्गुणं विभुम्॥
निर्लक्ष्यं च निरीहं च सारं वाङ्मनसोः परम् । यं स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च॥
पञ्चवक्त्रश्चतुर्वक्त्रो गजवक्त्रः षडाननः । यं स्तोतुं न क्षमा माया मोहिता यस्य मायया॥
यं स्तोतुं न क्षमा श्रीश्च जडीभूता सरस्वती । वेदा न शक्ता यं स्तोतुं को वा विद्वांश्च वेदवित्॥

किं स्तौमि तमनीहं च शोकार्ता स्त्री परात्परम् । इत्युक्त्वा सा च गान्धर्वी विरराम रुरोद च ॥
कृपानिधिं प्रणनाम भयार्ता च पुनः पुनः । कृष्णश्च शक्तिभिः सार्धमधिष्ठानं चकार ह ॥
भर्तुरभ्यन्तरे तस्थः परमात्मा निराकृतिः । उत्थाय शीघ्रं वीणां च धृत्वा स्नात्वा च वाससी ॥
प्रणनाम देवसङ्घं ब्राह्मणं पुरतः स्थितम् । नेदुर्दुन्दुभयो देवाः पुष्पवृष्टिं च चक्रिरे ॥
दृष्ट्वा चोपरि दम्पत्योः प्रददुः परमाशिषम् । गन्धर्वो देवपुरतो ननर्त च जगौ क्षणम् ॥
जीवितं पुरतः प्राप देवानां च वरेण च । जगाम पत्न्या सार्धं च पिता माता च हर्षितः ॥
उपबर्हणगन्धर्वो गन्धर्वनगरं पुनः । मालावती रत्नकोटिं धनानि विविधानि च ॥
प्रददौ ब्राह्मणेभ्यश्च भोजयामास तान् सती । वेदांश्च पाठयामास कारयामास मङ्गलम् ॥
महोत्सवं च विविधं हरेर्नामैकमङ्गलम् । जग्मुर्देवाश्च स्वस्थानं विप्ररूपी हरिः स्वयम् ॥
एतत् ते कथितं सर्वं स्तवराजं च शौनक । इदं स्तोत्रं पुण्यरूपं पूजाकाले तु यः पठेत् ॥
हरिभक्तिं हरेर्दास्यं लभते वैष्णवो जनः । वरार्थी यः पठेद् भक्त्या चास्तिकः परमास्थया ॥
धर्मार्थकाममोक्षाणां निश्चितं लभते फलम् । विद्यार्थी लभते विद्यां धनार्थी लभते धनम् ॥
भार्यार्थी लभते भार्यां पुत्रार्थी लभते सुतम् । धर्मार्थी लभते धर्मं यशोऽर्थी लभते यशः ॥
भ्रष्टराज्यो लभेद् राज्यं प्रजाभ्रष्टः प्रजां लभेत् । रोगार्तो मुच्यते रोगाद् बद्धो मुच्येत बन्धनात् ॥
भयान्मुच्येत भीतस्तु धनं नष्टधनो लभेत् । दस्युग्रस्तो महारण्ये हिंस्रजन्तुसमन्वितः ॥
दावाग्निदग्धो मुच्येत निमग्नश्च जलार्णवे ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते मालावतीकृतं महापुरुषस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

(ब्रह्मखण्ड १८ । ९—४९)

श्रीकृष्णस्य द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो ध्यानं च

शौनक उवाच

कं मन्त्रं बालकः प्राप कुमारेण च धीमता । दत्तं परं श्रीहरेश्च तद्भवान् वक्तुमर्हति ॥

सौतिरुवाच

कृष्णेन दत्तो गोलोके कृपया ब्रह्मणे पुरा । द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो वेदेषु च सुदुर्लभः ॥
तं च ब्रह्मा ददौ भक्त्या कुमाराय च धीमते । कुमारेण स दत्तश्च मन्त्रश्च शिशवे द्विज ॥
ॐ श्रीं नमो भगवते रासमण्डलेश्वराय । श्रीकृष्णाय स्वाहेति च मन्त्रोऽयं कल्पपादपः ॥
महापुरुषस्तोत्रं च पूर्वोक्तं कवचं च यत् । अस्यौपयोगिकं ध्यानं सामवेदोक्तमेव च ॥
तेजोमण्डलरूपे च सूर्यकोटिसमप्रभे । योगिभिर्वाञ्छितं ध्याने योगैः सिद्धगणैः सुरैः ॥
ध्यायन्ते वैष्णवा रूपं तदभ्यन्तरसंनिधौ । अतीवकमनीयमनिर्वचनीयं मनोहरम् ॥
नवीनजलदश्यामं शरत्पङ्कजलोचनम् । शरत्पार्वणचन्द्रास्यं पक्वबिम्बाधिकाधरम् ॥
मुक्तापङ्क्तिविनिन्द्यैकदन्तपङ्क्तिमनोहरम् । सस्मितं मुरलीन्यस्तहस्तावलम्बनेन च ॥
कोटिकन्दर्पलावण्यलीलाधाम मनोहरम् । चन्द्रलक्षप्रभाजुष्टं पुष्टश्रीयुक्तविग्रहम् ॥
त्रिभङ्गभङ्गिमायुक्तं द्विभुजं पीतवाससम् । रत्नकेयूरवलयरत्ननूपुरभूषितम् ॥
रत्नकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम् । मयूरपिच्छचूडं च रत्नमालाविभूषितम् ॥
शोभितं चानुपर्यन्तं मालतीवनमालया । चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं भक्तानुग्रहकारकम् ॥
मणिना कौस्तुभेन्द्रेण वक्षःस्थलसमुज्ज्वलम् । वीक्षितं गोपिकाभिश्च शश्वद्वङ्किमलोचनैः ॥

स्थिरयौवनयुक्ताभिर्वेष्टिताभिश्च संततम्। भूषणैर्भूषिताभिश्च राधावक्षःस्थलस्थितम्॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैश्च पूजितं वन्दितं स्तुतम्। किशोरं राधिकाकान्तं शान्तरूपं परात्परम्॥
निर्लिप्तं साक्षिरूपं च निर्गुणं प्रकृतेः परम्। ध्यायेत् सर्वेश्वरं तं च परमात्मानमीश्वरम्॥
इदं ते कथितं ध्यानं स्तोत्रं च कवचं मुने। मन्त्रोपयोगिकं सत्यं मन्त्रश्च कल्पपादपः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णस्य द्वाविंशत्यक्षरो मन्त्रो ध्यानं च सम्पूर्णम्।

(ब्रह्मखण्ड २१। २७—४४)

श्रीनारायणर्षिकृतो भगवत्स्तवः

श्रीनारायण उवाच

लम्बोदरो हरिरुमापतिरीशशेषा ब्रह्मादयः सुरगणा मनवो मुनीन्द्राः।
वाणी शिवा त्रिपथगा कमलादिका या संचिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्॥
संसारसागरमतीवगभीरघोरं दावाग्निसर्पपरिवेष्टितवेष्टिताङ्गम्।
संलङ्घ्य गन्तुमभिवाञ्छति यो हि दास्यं संचिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्॥
गोवर्धनोद्धरणकीर्तिरतीवखिन्ना भूर्धारिता च दशनाग्रकरेण खिन्ना।
विश्वानि लोमविवरेषु बिभर्तुरादेः संचिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्॥
गोपाङ्गनावदनपङ्कजषट्पदस्य रासेश्वरस्य रसिकारमणस्य पुंसः।
वृन्दावने विहरतो व्रजवेषविष्णोः संचिन्तयेद् भगवतश्चरणारविन्दम्॥
चक्षुर्निमेषपतितो जगतां विधाता तत्कर्म वत्स कथितुं भुवि कः समर्थः।
त्वं चापि नारदमुने परमादरेण संचिन्तितं कुरु हरेश्चरणारविन्दम्॥
यूयं वयं तस्य कलाकलांशाः कलाकलांशा मनवो मुनीन्द्राः।
कलाविशेषा भवपारमुख्या महान् विराड् यस्य कलाविशेषः॥
सहस्रशीर्षा शिरसः प्रदेशे बिभर्ति सिद्धार्थसमं च विश्वम्।
कूर्मे च शेषो मशको गजे यथा कूर्मश्च कृष्णस्य कलाकलांशः॥
गोलोकनाथस्य विभोर्यशोऽमलं श्रुतौ पुराणे न हि किंचन स्फुटम्।
न वाग्मिमुख्याः कथितुं समर्थाः सर्वेश्वरं तं भज वाग्मिमुख्यम्॥
विश्वेषु सर्वेषु च विश्वपाः सन्त्येव शश्वद्विधिविष्णुरुद्राः।
तेषां च संख्याः श्रुतयश्च देवाः परं न जानन्ति तमीश्वरं भज॥
करोति सृष्टिं स विधेर्विधाता विधाय नित्यां प्रकृतिं जगत्प्रसूम्।
ब्रह्मादयः प्राकृतिकाश्च सर्वे भक्तिप्रदां श्रीं प्रकृतिं भजन्ति॥
ब्रह्मस्वरूपा प्रकृतिर्न भिन्ना यया च सृष्टिं कुरुते सनातनः।
स्त्रियश्च सर्वाः कलया जगत्सु माया च सर्वे च तया विमोहिताः॥
नारायणी सा परमा सनातनी शक्तिश्च पुंसः परमात्मनश्च।
आत्मेश्वरश्चापि यया च शक्तिमांस्तया विना स्रष्टुमशक्त एव॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीनारायणर्षिकृतो भगवत्स्तवः सम्पूर्णः।

(ब्रह्मखण्ड ३०। १—१२)

देवैः पार्वत्या च कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

एतस्मिन्नन्तरे देवाः पार्वतीसहितास्तदा । सद्यो ददृशुराकाशे तेजसां निकरं परम् ॥
कोटिसूर्यप्रभोर्ध्वं च प्रज्वलन्तं दिशो दश । कैलासशैलं पुरतः सर्वदेवादिभिर्युतम् ॥
सर्वान् कुर्वन्तं प्रच्छन्नं विस्तीर्णमण्डलाकृतिम् । दृष्ट्वा तं च भगवन्तस्तुष्टुवुस्ते क्रमेण च ॥

विष्णुरुवाच

ब्रह्माण्डानि च सर्वाणि यल्लोमविवरेषु च । सोऽयं ते षोडशांशश्च के वयं ते महाविराट् ॥

ब्रह्मोवाच

वेदोपयुक्तं दृश्यं यत् प्रत्यक्षं प्रभुमीश्वर । स्तोतुं तद् वर्णितुमहं शक्तः किं स्तौमि तत्परम् ॥

श्रीमहादेव उवाच

ज्ञानाधिष्ठातृदेवोऽहं स्तौमि ज्ञानपरं च किम् । सर्वानिर्वचनीयं यं तं त्वां स्वेच्छामयं विभुम् ॥

धर्म उवाच

अदृश्यमवतारेषु यद् दृश्यं सर्वजन्तुभिः । किं स्तौमि तेजोरूपं तद् भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥

देवा ऊचुः

के वयं त्वत्कलांशाश्च किं वा त्वां स्तोतुमीश्वराः । स्तोतुं न शक्ता वेदा यं न च शक्ता सरस्वती ॥

मुनय ऊचुः

वेदान् पठित्वा विद्वांसो वयं किं वेदकारणम् । स्तोतुमीशा न वाणी च त्वां च वाङ्मनसोः परम् ॥

सरस्वत्युवाच

वागधिष्ठातृदेवीं मां वदन्ति वेदवादिनः । किञ्चिन्न शक्ता त्वां स्तोतुमहो वाङ्मनसोः परम् ॥

सावित्र्युवाच

वेदप्रसूरहं नाथ सृष्टा त्वत्कलया पुरा । किं स्तौमि स्त्रीस्वभावेन सर्वकारणकारणम् ॥

लक्ष्मीरुवाच

त्वदंशविष्णुकान्ताहं जगत्पोषणकारिणी । किं स्तौमि त्वत्कलासृष्टा जगतां बीजकारणम् ॥

हिमालय उवाच

हसन्ति सन्तो मां नाथ कर्मणा स्थावरं परम् । स्तोतुं समुद्यतं क्षुद्रः किं स्तौमि स्तोतुमक्षमः ॥
क्रमेण सर्वे तं स्तुत्वा देवाश्च विररमुर्मुने । देव्यश्च मुनयः सर्वे पार्वती स्तोतुमुद्यता ॥
धौतवस्त्रा जटाभारं बिभ्रती सुव्रता सती । प्रेरिता परमात्मानं व्रताराध्यं शिवेन च ॥
ज्वलदग्निशिखारूपा तेजोमूर्तिमती सती । तपसां फलदा माता जगतां सर्वकर्मणाम् ॥

पार्वत्युवाच

कृष्ण जानासि मां भद्र नाहं त्वां ज्ञातुमीश्वरी । के वा जानन्ति वेदज्ञा वेदा वा वेदकारकाः ॥
त्वदंशास्त्वां न जानन्ति कथं ज्ञास्यन्ति त्वत्कलाः । त्वं चापि तत्त्वं जानासि किमन्ये ज्ञातुमीश्वराः ॥
सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमोऽव्यक्तः स्थूलात् स्थूलतमो महान् । विश्वस्त्वं विश्वरूपश्च विश्वबीजं सनातनः ॥
कार्यं त्वं कारणं त्वं च कारणानां च कारणम् । तेजःस्वरूपो भगवान् निराकारो निराश्रयः ॥
निर्लिप्तो निर्गुणः साक्षी स्वात्मारामः परात्परः । प्रकृतीशो विराड्बीजं विराड्रूपस्त्वमेव च ।
सगुणस्त्वं प्राकृतिकः कलया सृष्टिहेतवे ॥

प्रकृतिस्त्वं पुमांस्त्वं च वेदान्यो न कश्चिद् भवेत् । जीवस्त्वं साक्षिणो भोगी स्वात्मनः प्रतिबिम्बकः ॥
कर्म त्वं कर्मबीजं त्वं कर्मणां फलदायकः । ध्यायन्ति योगिनस्तेजस्त्वदीयमशरीरिणम् ।
केचिच्चतुर्भुजं शान्तं लक्ष्मीकान्तं मनोहरम् ॥
वैष्णवाश्चैव साकारं कमनीयं मनोहरम् । शङ्खचक्रगदापद्मधरं पीताम्बरं परम् ॥
द्विभुजं कमनीयं च किशोरं श्यामसुन्दरम् । शान्तं गोपाङ्गनाकान्तं रत्नभूषणभूषितम् ॥
एवं तेजस्विनं भक्ताः सेवन्ते संततं मुदा । ध्यायन्ति योगिनो यत्तत्कुतस्तेजस्विनं विना ॥
तत्तेजो बिभ्रती देव देवानां तेजसा पुरा । आविर्भूतासुराणां च वधाय ब्रह्मणा स्तुता ॥
नित्या तेजःस्वरूपाहं विधृत्य विग्रहं विभो । स्त्रीरूपं कमनीयं च विधाय समुपस्थिता ॥
मायया तव मायाहं मोहयित्वासुरान् पुरा । निहत्य सर्वान् शैलेन्द्रमगमं तं हिमाचलम् ॥
ततोऽहं संस्तुता देवैस्तारकाक्षेण पीडितैः । अभवं दक्षजायायां शिवस्त्री भवजन्मनि ॥
त्यक्त्वा देहं दक्षयज्ञे शिवाहं शिवनिन्दया । अभवं शैलजायायां शैलाधीशस्य कर्मणा ॥
अनेकतपसा प्राप्तः शिवश्चात्रापि जन्मनि । पाणिं जग्राह मे योगी प्रार्थितो ब्रह्मणा विभुः ॥
शृङ्गारजं च तत्तेजो नालभं देवमायया । स्तौमि त्वामेव तेनेश पुत्रदुःखेन दुःखिता ॥
व्रते भवद्विधं पुत्रं लब्धुमिच्छामि साम्प्रतम् । देवेन विहिता वेदे साङ्गे स्वस्वामिदक्षिणा ॥
श्रुत्वा सर्वं कृपासिन्धो कृपां मां कर्तुमर्हसि । इत्युक्त्वा पार्वती तत्र विरराम च नारद ॥
भारते पार्वतीस्तोत्रं यः शृणोति सुसंयतः । सत्पुत्रं लभते नूनं विष्णुतुल्यपराक्रमम् ॥
संवत्सरं हविष्याशी हरिमभ्यर्च्य भक्तितः । सुपुण्यकव्रतफलं लभते नात्र संशयः ॥
विष्णुस्तोत्रमिदं ब्रह्मन् सर्वसम्पत्तिवर्धनम् । सुखदं मोक्षदं सारं स्वामिसौभाग्यवर्धनम् ॥
सर्वसौन्दर्यबीजं च यशोराशिविवर्धनम् । हरिभक्तिप्रदं तत्त्वज्ञानबुद्धिविवर्धनम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते देव्याः पार्वत्या च कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(गणपतिखण्ड ७। ९३—१३१)

श्रीकृष्णस्य सप्तदशाक्षरो मन्त्रः

महादेव उवाच

ॐ श्रीं नमः श्रीकृष्णाय परिपूर्णतमाय च । मन्त्रेषु मन्त्रराजोऽयं महान् सप्तदशाक्षरः ॥
सिद्धोऽयं पञ्चलक्षेण जपेन मुनिपुङ्गव । तद्दशांशं च हवनं तद्दशांशाभिषेचनम् ॥
तर्पणं तद्दशांशं च तद्दशांशं च मार्जनम् । सुवर्णानां च शतकं पुरश्चरणदक्षिणा ॥
मन्त्रसिद्धस्य पुंसश्च विश्वं करतलं मुने । शक्तः पातुं समुद्रांश्च विश्वं संहर्तुमीश्वरः ॥
पाञ्चभौतिकदेहेन वैकुण्ठं गन्तुमीश्वरः ॥
तस्य संस्पर्शमात्रेण पादपद्मरजोरेणुना । पूतानि सर्वतीर्थानि सद्यः पूता वसुन्धरा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णस्य सप्तदशाक्षरो मन्त्रः सम्पूर्णः ।

(गणपतिखण्ड ३२। ३—७)

परशुरामं प्रति शिवेनोपदिष्टं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

महादेव उवाच—

परं ब्रह्म परं धाम परं ज्योतिः सनातनम् । निर्लिप्तं परमात्मानं नमामि सर्वकारणम् ॥
स्थूलात् स्थूलतमं देवं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम् । सर्वदृश्यमदृश्यं च स्वेच्छाचारं नमाम्यहम् ॥
साकारं च निराकारं सगुणं निर्गुणं प्रभुम् । सर्वाधारं च सर्वं च स्वेच्छारूपं नमाम्यहम् ॥
अतीवकमनीयं च रूपं निरुपमं विभुम् । करालरूपमत्यन्तं बिभ्रतं प्रणमाम्यहम् ॥
कर्मणः कर्मरूपं तं साक्षिणं सर्वकर्मणः । फलं च फलदातारं सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥
स्रष्टा पाता च संहर्ता कलया मूर्तिभेदतः । नानामूर्तिः कलांशेन यः पुमांस्तं नमाम्यहम् ॥
स्वयं प्रकृतिरूपश्च मायया च स्वयं पुमान् । तयोः परं स्वयं शश्वत् तं नमामि परात्परम् ॥
स्त्रीपुन्नपुंसकं रूपं यो बिभर्ति स्वमायया । स्वयं माया स्वयं मायी यो देवस्तं नमाम्यहम् ॥
तारणं सर्वदुःखानां सर्वकारणकारणम् । धारणं सर्वविश्वानां सर्वबीजं नमाम्यहम् ॥
तेजस्विनां रविर्यो हि सर्वजातिषु ब्राह्मणः । नक्षत्राणां च चन्द्रस्तं नमामि जगत्प्रभुम् ॥
रुद्राणां वैष्णवानां च ज्ञानिनां यो हि शंकरः । नागानां यो हि शेषश्च तं नमामि जगत्पतिम् ॥
प्रजापतीनां यो ब्रह्मा सिद्धानां कपिलः स्वयम् । सनत्कुमारो मुनिषु तं नमामि जगद्गुरुम् ॥
देवानां यो हि विष्णुश्च देवीनां प्रकृतिः स्वयम् । स्वायम्भुवो मनूनां यो मानवेषु च वैष्णवः ।
नारीणां शतरूपा च बहुरूपं नमाम्यहम् ॥
ऋतूनां यो वसन्तश्च मासानां मार्गशीर्षकः । एकादशी तिथीनां च नमामि सर्वरूपिणम् ॥
सागरः सरितां यश्च पर्वतानां हिमालयः । वसुन्धरा सहिष्णूनां तं सर्वं प्रणमाम्यहम् ॥
पत्राणां तुलसीपत्रं दारुरूपेषु चन्दनम् । वृक्षाणां कल्पवृक्षो यस्तं नमामि जगत्पतिम् ॥
पुष्पाणां पारिजातश्च शस्यानां धान्यमेव च । अमृतं भक्ष्यवस्तूनां नानारूपं नमाम्यहम् ॥
ऐरावतो गजेन्द्राणां वैनतेयश्च पक्षिणाम् । कामधेनुश्च धेनूनां सर्वरूपं नमाम्यहम् ॥
तैजसानां सुवर्णं च धान्यानां यव एव च । यः केसरी पशूनां च वररूपं नमाम्यहम् ॥
यक्षाणां च कुबेरो यो ग्रहाणां च बृहस्पतिः । दिक्पालानां महेन्द्रश्च तं नमामि परं वरम् ॥
वेदसङ्घश्च शास्त्राणां पण्डितानां सरस्वती । अक्षराणामकारो यस्तं प्रधानं नमाम्यहम् ॥
मन्त्राणां विष्णुमन्त्रश्च तीर्थानां जाह्नवी स्वयम् । इन्द्रियाणां मनो यो हि सर्वश्रेष्ठं नमाम्यहम् ॥
सुदर्शनं च शस्त्राणां व्याधीनां वैष्णवो ज्वरः । तेजसां ब्रह्मतेजश्च वरेण्यं तं नमाम्यहम् ॥
बलं यो वै बलवतां मनो वै शीघ्रगामिनाम् । कालः कलयतां यो हि तं नमामि विलक्षणम् ॥
ज्ञानदाता गुरूणां च मातृरूपश्च बन्धुषु । मित्रेषु जन्मदाता यस्तं सारं प्रणमाम्यहम् ॥
शिल्पिनां विश्वकर्मा यः कामदेवश्च रूपिणाम् । पतिव्रता च पत्नीनां नमस्यं तं नमाम्यहम् ॥
प्रियेषु पुत्ररूपो यो नृपरूपो नरेषु च । शालग्रामश्च यन्त्राणां तं विशिष्टं नमाम्यहम् ॥
धर्मः कल्याणबीजानां वेदानां सामवेदकः । धर्माणां सत्यरूपो यो विशिष्टं तं नमाम्यहम् ॥
जले शैत्यस्वरूपो यो गन्धरूपश्च भूमिषु । शब्दरूपश्च गगने तं प्रणम्यं नमाम्यहम् ॥
क्रतूनां राजसूयो यो गायत्री छन्दसां च यः । गन्धर्वाणां चित्ररथस्तं गरिष्ठं नमाम्यहम् ॥
क्षीरस्वरूपो गव्यानां पवित्राणां च पावकः । पुण्यदानां च यः स्तोत्रं तं नमामि शुभप्रदम् ॥

तृणानां कुशरूपो यो व्याधिरूपश्च वैरिणाम्। गुणानां शान्तरूपो यश्चित्ररूपं नमाम्यहम्॥
तेजोरूपो ज्ञानरूपः सर्वरूपश्च यो महान्। सर्वानिर्वचनीयं च तं नमामि स्वयं विभुम्॥
सर्वाधारेषु यो वायुर्यश्चात्मा नित्यरूपिणाम्। आकाशो व्यापकानां यो व्यापकं तं नमाम्यहम्॥
वेदानिर्वचनीयं यन्न स्तोतुं पण्डितः क्षमः। यदनिर्वचनीयं च को वा तत् स्तोतुमीश्वरः॥
वेदा न शक्ता यं स्तोतुं जडीभूता सरस्वती। तं च वाङ्मनसोः पारं को विद्वान् स्तोतुमीश्वरः॥
शुद्धतेजःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम्। अतीवकमनीयं च श्यामरूपं नमाम्यहम्॥
द्विभुजं मुरलीवक्त्रं किशोरं सस्मितं मुदा। शश्वद्गोपाङ्गनाभिश्च वीक्ष्यमाणं नमाम्यहम्॥
राधया दत्तताम्बूलं भुक्तवन्तं मनोहरम्। रत्नसिंहासनस्थं च तमीशं प्रणमाम्यहम्॥
रत्नभूषणभूषाढ्यं सेवितं श्वेतचामरैः। पार्षदप्रवरैर्गोपकुमारैस्तं नमाम्यहम्॥
वृन्दावनान्तरे रम्ये रासोल्लाससमुत्सुकम्। रासमण्डलमध्यस्थं नमामि रसिकेश्वरम्॥
शतशृङ्गे महाशैले गोलोके रत्नपर्वते। विरजापुलिने रम्ये प्रणमामि विहारिणम्॥
परिपूर्णतमं शान्तं राधाकान्तं मनोहरम्। सत्यं ब्रह्मस्वरूपं च नित्यं कृष्णं नमाम्यहम्॥
श्रीकृष्णस्य स्तोत्रमिदं त्रिसन्ध्यं यः पठेन्नरः। धर्मार्थकाममोक्षाणां स दाता भारते भवेत्॥
हरिदास्यं हरौ भक्तिं लभेत् स्तोत्रप्रसादतः। इह लोके जगत्पूज्यो विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्॥
सर्वसिद्धेश्वरः शान्तोऽप्यन्ते याति हरेः पदम्। तेजसा यशसा भाति यथा सूर्यो महीतले॥
जीवन्मुक्तः कृष्णभक्तः स भवेन्नात्र संशयः। अरोगी गुणवान् विद्वान् पुत्रवान् धनवान् सदा॥
षडभिज्ञो दशबलो मनोयायी भवेद् ध्रुवम्। सर्वज्ञः सर्वदश्चैव स दाता सर्वसम्पदाम्॥
कल्पवृक्षसमः शश्वद् भवेत् कृष्णप्रसादतः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते परशुरामं प्रति शिवेनोपदिष्टं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(गणपतिखण्ड ३२। २७—५४)

ब्रह्मादिकृतः श्रीकृष्णस्तवराजः

नत्वा तेजःस्वरूपं च तमीशं त्रिदशेश्वराः। तत्रोत्थाय ध्यानयुक्ताः प्रतस्थुस्तेजसः पुरः॥
ध्यात्वैवं जगतां धाता बभूव सम्पुटाञ्जलिः। दक्षिणे शंकरं कृत्वा वामे धर्मं च नारद॥
भक्त्युद्रेकात् प्रतुष्टाव ध्यानैकतानमानसः। परात्परं गुणातीतं परमात्मानमीश्वरम्॥

ब्रह्मोवाच

वरं वरेण्यं वरदं वरदानां च कारणम्। कारणं सर्वभूतानां तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
मङ्गल्यं मङ्गलार्हं च मङ्गलं मङ्गलप्रदम्। समस्तमङ्गलाधारं तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
स्थितं सर्वत्र निर्लिप्तमात्मरूपं परात्परम्। निरीहमवितर्क्यं च तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। साकारं च निराकारं तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
तमनिर्वचनीयं च व्यक्तमव्यक्तमेककम्। स्वेच्छामयं सर्वरूपं तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
गुणत्रयविभागाय रूपत्रयधरं परम्। कलया ते सुराः सर्वे किं जानन्ति श्रुतेः परम्॥
सर्वाधारं सर्वरूपं सर्वबीजमबीजकम्। सर्वान्तकमनन्तं च तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
लक्ष्यं यद् गुणरूपं च वर्णनीयं विचक्षणैः। किं वर्णयाम्यलक्ष्यं ते तेजोरूपं नमाम्यहम्॥
अशरीरं विग्रहवदिन्द्रियवदतीन्द्रियम्। यदसाक्षि सर्वसाक्षि तेजोरूपं नमाम्यहम्॥

गमनार्हमपादं यदचक्षुः सर्वदर्शनम् । हस्तास्यहीनं यद् भोक्तृ तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
वेदे निरूपितं वस्तु सन्तः शक्ताश्च वर्णितुम् । वेदेऽनिरूपितं यत्तत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
सर्वेशं यदनीशं यत् सर्वादि यदनादि यत् । सर्वात्मकमनात्मं यत्तेजोरूपं नमाम्यहम् ॥
अहं विधाता जगतां वेदानां जनकः स्वयम् । पाता धर्मो हरो हर्ता स्तोतुं शक्ता न कोऽपि यत् ॥
सेवया तव धर्मोऽयं रक्षितारं च रक्षति । तवाज्ञया च संहर्ता त्वया काले निरूपिते ॥
निषेकलिपिकर्ताहं त्वत्पादाम्भोजसेवया । कर्मिणां फलदाता च त्वं भक्तानां च नः प्रभुः ॥
ब्रह्माण्डे बिम्बसदृशा भूत्वा विषयिणो वयम् । एवं कतिविधाः सन्ति तेष्वनन्तेषु सेवकाः ॥
यथा न संख्या रेणूनां तथा तेषामणीयसाम् । सर्वेषां जनकश्चेशो यस्तं स्तोतुं च कः क्षमः ॥
एकैकलोमविवरे ब्रह्माण्डमेकमेककम् । यस्यैव महतो विष्णोः षोडशांशस्तवैव सः ॥
ध्यायन्ति योगिनः सर्वे तवैतद्रूपमीप्सितम् । त्वद्भक्ता दास्यनिरताः सेवन्ते चरणाम्बुजम् ॥
किशोरं सुन्दरतरं यद्रूपं कमनीयकम् । भक्तध्यानानुरूपं च दर्शयास्माकमीश्वर ॥
नवीनजलदश्यामं पीताम्बरधरं परम् । द्विभुजं मुरलीहस्तं सस्मितं सुमनोहरम् ॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमालमण्डितम् । चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम् ॥
अमूल्यरत्नसाराणां भूषणैश्च विभूषितम् । अमूल्यरत्नरचितकिरीटमुकुटोज्ज्वलम् ॥
शरत्प्रफुल्लकमलप्रभामोच्यास्यचन्द्रकम् । पक्वबिम्बसमानेन ह्यधरौष्ठेन राजितम् ॥
पक्वदाडिमबीजाभदन्तपङ्क्तिमनोरमम् । केलीकदम्बमूले च स्थितं रासरसोत्सुकम् ॥
गोपीवक्त्राणि पश्यन्तं राधावक्षःस्थलस्थितम् । एवं वाञ्छास्ति रूपं ते द्रष्टुं केलिरसोत्सुकम् ॥
इत्येवमुक्त्वा विश्वसृट् प्रणनाम पुनः पुनः । एवं स्तोत्रेण तुष्टाव धर्मोऽपि शंकरः स्वयम् ।
ननाम भूयो भूयश्च साश्रुपूर्णविलोचनः ॥
तिष्ठन्तोऽपि पुनः स्तोत्रं प्रचक्रुस्त्रिदशेश्वराः । ध्यानासक्तास्तथामराः सर्वे श्रीकृष्णतेजसा मुने ॥
स्तवराजमिमं नित्यं धर्मेशब्रह्मभिः कृतम् । पूजाकाले हरेरेव भक्तियुक्तश्च यः पठेत् ॥
सुदुर्लभां दृढां भक्तिं निश्चलां लभते हरेः ॥
सुरासुरमुनीन्द्राणां दुर्लभं दास्यमेव च । अणिमादिकसिद्धिं च सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥
इहैव विष्णुतुल्यश्च विख्यातः पूजितो भुवम् । वाक्सिद्धिर्मन्त्रसिद्धिश्च भवेत्तस्य विनिश्चितम् ॥
सर्वसौभाग्यमारोग्यं यशसा पूरितं जगत् । पुत्रश्च विद्या कविता निश्चला कमला तथा ॥
पत्नी पतिव्रता साध्वी सुशीला सुस्थिराः प्रजाः । कीर्तिश्च चिरकालीनाप्यन्ते कृष्णान्तिके स्थितिः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मादिकृतः श्रीकृष्णस्तवराजः सम्पूर्णः ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ५ । ९१—१२६)

देवैः कृतं गर्भस्थपरमेश्वरस्य श्रीकृष्णस्य स्तवनम्

देवा ऊचुः

जगद्योनिरयोनिस्त्वमनन्तोऽव्यय एव च । ज्योतिःस्वरूपो ह्यनघः सगुणो निर्गुणो महान् ॥
भक्तानुरोधात् साकारो निराकारो निरङ्कुशः । स्वेच्छामयश्च सर्वेशः सर्वः सर्वगुणाश्रयः ॥
सुखदो दुःखदो दुर्गो दुर्जनान्तक एव च । निर्व्यूहो निखिलाधारो निःशङ्को निरुपद्रवः ॥
निरुपाधिश्च निर्लिप्तो निरीहो निधनान्तकः । स्वात्मारामः पूर्णकामो निर्दोषो नित्य एव च ॥

सुभगोऽदुर्भगो वाग्मी दुराराध्यो दुरत्ययः। वेदहेतुश्च वेदाश्च वेदाङ्गो वेदविद् विभुः॥
इत्येवमुक्त्वा देवाश्च प्रणेमुश्च मुहुर्मुहुः। हर्षाश्रुलोचनाः सर्वे ववृषुः कुसुमानि च॥
द्विचत्वारिंशन्नामानि प्रातरुत्थाय यः पठेत्। दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं लभते वाञ्छितं फलम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते देवैः कृतं परमेश्वरस्य श्रीकृष्णस्य स्तवनं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७।५३—५९)

आविर्भावकाले श्रीकृष्णस्वरूपम्

तत्रैव भगवान् कृष्णो दिव्यरूपं विधाय च। हृत्पद्मकोषाद् देवक्या हरिराविर्बभूव ह॥
अतीवकमनीयं च शरीरं सुमनोहरम्। द्विभुजं मुरलीहस्तं स्फुरन्मकरकुण्डलम्॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तानुग्रहकातरम्। मणिरत्नेन्द्रसाराणां भूषणैश्च विभूषितम्॥
नवीननीरदश्यामं शोभितं पीतवाससा। चन्दनागुरुकस्तूरीकुङ्कुमद्रवचर्चितम्॥
शरत्पार्वणचन्द्रास्यं बिम्बाधरमनोहरम्। मयूरपिच्छचूडं च सद्रत्नमुकुटोज्ज्वलम्॥
त्रिभङ्गवक्रमध्यं च वनमालाविभूषितम्। श्रीवत्सवक्षसं चारुकौस्तुभेन विराजितम्।
किशोरवयसं शान्तं कान्तं ब्रह्मेशयोः परम्॥
ददर्श वसुदेवश्च देवकी पुरतो मुने। तुष्टाव परया भक्त्या विस्मयं परमं ययौ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते आविर्भावकालिकश्रीकृष्णस्वरूपवर्णनं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७।७२—७८)

देवक्या सह वसुदेवेन कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

वसुदेव उवाच

श्रीमन्तमिन्द्रियातीतमक्षरं निर्गुणं विभुम्। ध्यानासाध्यं च सर्वेषां परमात्मानमीश्वरम्॥
स्वेच्छामयं सर्वरूपं स्वेच्छारूपधरं परम्। निर्लिप्तं परमं ब्रह्म बीजरूपं सनातनम्॥
स्थूलात् स्थूलतरं व्याप्तमतिसूक्ष्ममदर्शनम्। स्थितं सर्वशरीरेषु साक्षिरूपमदृश्यकम्॥
शरीरवन्तं सगुणमशरीरं गुणोत्करम्। प्रकृतिं प्रकृतीशं च प्राकृतं प्रकृतेः परम्॥
सर्वेशं सर्वरूपं च सर्वान्तकरमव्ययम्। सर्वाधारं निराधारं निर्व्यूहं स्तौमि किं विभो॥
अनन्तः स्तवनेऽशक्तोऽशक्ता देवी सरस्वती। यं स्तोतुमसमर्थश्च पञ्चवक्त्रः षडाननः॥
चतुर्मुखो वेदकर्ता यं स्तोतुमक्षमः सदा। गणेशो न समर्थश्च योगीन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥
ऋषयो देवताश्चैव मुनीन्द्रमनुमानवाः। स्वप्ने तेषामदृश्यं च त्वामेवं किं स्तुवन्ति ते॥
श्रुतयः स्तवनेऽशक्ताः किं स्तुवन्ति विपश्चितः। विहायैवं शरीरं च बालो भवितुमर्हसि॥
वसुदेवकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः। भक्तिदास्यमवाप्नोति श्रीकृष्णचरणाम्बुजे॥
विशिष्टपुत्रं लभते हरिदासं गुणान्वितम्। संकटं निस्तरेत् तूर्णं शत्रुभीत्याः प्रमुच्यते॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते वसुदेवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७।८०—९०)

गर्गकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

गर्ग उवाच

हे कृष्ण जगतां नाथ भक्तानां भयभञ्जन । प्रसन्नो भव मामीश देहि दास्यं पदाम्बुजे ॥
त्वत्पित्रा मे धनं दत्तं तेन मे किं प्रयोजनम् । देहि मे निश्चलां भक्तिं भक्तानामभयप्रद ॥
अणिमादिकसिद्धिषु योगेषु मुक्तिषु प्रभो । ज्ञानतत्त्वेऽमरत्वे वा किंचिन्नास्ति स्पृहा मम ॥
इन्द्रत्वे वा मनुत्वे वा स्वर्गलोकफले चिरम् । नास्ति मे मनसो वाञ्छा त्वत्पादसेवनं विना ॥
सालोक्यं सार्ष्टिसारूप्ये सामीप्यैकत्वमीप्सितम् । नाहं गृह्णामि ते ब्रह्मंस्त्वत्पादसेवनं विना ॥
गोलोके वापि पाताले वासे नास्ति मनोरथः । किं तु ते चरणाम्भोजे संततं स्मृतिरस्तु मे ॥
त्वन्मन्त्रं शंकरात् प्राप्य कतिजन्मफलोदयात् । सर्वज्ञोऽहं सर्वदर्शी सर्वत्र गतिरस्तु मे ॥
कृपां कुरु कृपासिन्धो दीनबन्धो पदाम्बुजे । रक्ष मामभयं दत्त्वा मृत्युर्मे किं करिष्यति ॥
सर्वेषामीश्वरः शर्वस्त्वत्पादाम्भोजसेवया । मृत्युञ्जयोऽन्तकारश्च बभूव योगिनां गुरुः ॥
ब्रह्मा विधाता जगतां त्वत्पादाम्भोजसेवया । यस्यैकदिवसे ब्रह्मन् पतन्तीन्द्राश्चतुर्दश ॥
त्वत्पादसेवया धर्मः साक्षी च सर्वकर्मणाम् । पाता च फलदाता च जित्वा कालं सुदुर्जयम् ॥
सहस्रवदनः शेषो यत्पादाम्बुजसेवया । धत्ते सिद्धार्थवद् विश्वं शिवः कण्ठे विषं यथा ॥
सर्वसम्पद्विधात्री या देवीनां च परात्परा । करोति सततं लक्ष्मीः केशैस्त्वत्पादमार्जनम् ॥
प्रकृतिर्बीजरूपा सा सर्वेषां शक्तिरूपिणी । स्मारं स्मारं त्वत्पदाब्जं बभूव तत्परा वरा ॥
पार्वती सर्वरूपा सा सर्वेषां बुद्धिरूपिणी । त्वत्पादसेवया कान्तं ललाभ शिवमीश्वरम् ॥
विद्याधिष्ठात्री देवी या ज्ञानमाता सरस्वती । पूज्या बभूव सर्वेषां सम्पूज्य त्वत्पदाम्बुजम् ॥
सावित्री वेदजननी पुनाति भुवनत्रयम् । ब्रह्मणो ब्राह्मणानां च मतिस्त्वत्पादसेवया ॥
क्षमा जगद् बिभर्तुं च रत्नगर्भा वसुन्धरा । प्रसूतिः सर्वशस्यानां त्वत्पादपद्मसेवया ॥
राधा समांशसम्भूता तव तुल्या च तेजसा । स्थित्वा वक्षसि ते पादं सेवतेऽन्यस्य का कथा ॥
यथा शर्वादयो देवा देव्यः पद्मादयो यथा । सनाथं कुरु मामीश ईश्वरस्य समा कृपा ॥
न यास्यामि गृहं नाथ न गृह्णामि धनं तव । कृत्वा मां रक्ष पादाब्जसेवायां सेवकं रतम् ॥
इति स्तुत्वा साश्रुनेत्रः पपात चरणे हरेः । रुरोद च भृशं भक्त्या पुलकाञ्चितविग्रहः ॥
गर्गस्य वचनं श्रुत्वा जहास भक्तवत्सलः । उवाच तं स्वयं कृष्णो मयि ते भक्तिरस्त्विति ॥
इदं गर्गकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । दृढां भक्तिं हरेर्दास्यं स्मृतिं च लभते ध्रुवम् ॥
जन्ममृत्युजरारोगशोकमोहादिसंकटात् । तीर्णो भवति श्रीकृष्णदाससेवनतत्परः ॥
कृष्णस्य सह कालं च कृष्णसार्धं च मोदते । कदाचिन्न भवेत् तस्य विच्छेदो हरिणा सह ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते गर्गकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १३ । १९३—२१८)

विप्रपत्नीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

विप्रपत्न्य ऊचुः

त्वं ब्रह्म परमं धाम निरीहो निरहंकृतिः। निर्गुणश्च निराकारः साकारः सगुणः स्वयम्॥
साक्षिरूपश्च निर्लिप्तः परमात्मा निराकृतिः। प्रकृतिः पुरुषस्त्वं च कारणं च तयोः परम्॥
सृष्टिस्थित्यन्तविषये ये च देवास्त्रयः स्मृताः। ते त्वदंशाः सर्वबीजा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः॥
यस्य लोम्नां च विवरे चाखिलं विश्वमीश्वर। महाविराड् महाविष्णुस्त्वं तस्य जनको विभो॥
तेजस्त्वं चापि तेजस्वी ज्ञानं ज्ञानी च तत्परः। वेदेऽनिर्वचनीयस्त्वं कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥
महदादिसृष्टिसूत्रं पञ्चतन्मात्रमेव च। बीजं त्वं सर्वशक्तीनां सर्वशक्तिस्वरूपकः॥
सर्वशक्तीश्वरः सर्वः सर्वशक्त्याश्रयः सदा। त्वमनीहः स्वयंज्योतिः सर्वानन्दः सनातनः॥
अहोऽप्याकारहीनस्त्वं सर्वविग्रहवानपि। सर्वेन्द्रियाणां विषयं जानासि नेन्द्रियी भवान्॥
सरस्वती जडीभूता यत्स्तोत्रे यन्निरूपणे। जडीभूतो महेशश्च शेषो धर्मो विधिः स्वयम्॥
पार्वती कमला राधा सावित्री वेदसूरपि। वेदश्च जडतां याति के वा शक्ता विपश्चितः॥
वयं किं स्तवनं कुर्मः स्त्रियः प्राणेश्वरेश्वर। प्रसन्नो भव नो देव दीनबन्धो कृपां कुरु॥
इति पेतुश्च ता विप्रपत्न्यस्तच्चरणाम्बुजे। अभयं प्रददौ ताभ्यः प्रसन्नवदनेक्षणः॥
विप्रपत्नीकृतं स्तोत्रं पूजाकाले च यः पठेत्। स गतिं विप्रपत्नीनां लभते नात्र संशयः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते विप्रपत्नीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १८। ३६—४८)

नागपत्नीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

सुरसोवाच

हे जगत्कान्त कान्तं मे देहि मानं च मानद। पतिः प्राणाधिकः स्त्रीणां नास्ति बन्धुश्च तत्परः॥
अयि सुरवरनाथ प्राणनाथं मदीयं न कुरु वधमनन्तप्रेमसिन्धो सुबन्धो।
अखिलभुवनबन्धो राधिकाप्रेमसिन्धो पतिमिह कुरु दानं मे विधातुर्विधातः॥
त्रिनयनविधिशेषाः षण्मुखश्चास्यसङ्घैः स्तवनविषयजाड्याः स्तोतुमीशा न वाणी।
न खलु निखिलवेदाः स्तोतुमन्येऽपि देवाः स्तवनविषयशक्ताः सन्ति सन्तस्तथैव॥
कुमतिरहमविज्ञा योषितामधमा वा क्व भुवनगतिरीशश्चाप्यहोऽगोचरोऽपि।
विधिहरिहरशेषैः स्तूयमानश्च यस्त्वमतनुमनुजमीशं स्तोतुमिच्छामि तं त्वाम्॥
स्तवनविषयभीता पार्वती यस्य पद्मा श्रुतिगणजनयित्री स्तोतुमीशा न यं त्वाम्।
कलिकलुषनिमग्ना वेदवेदाङ्गशास्त्रश्रवणविषयमूढा स्तोतुमिच्छामि किं त्वाम्॥
शयानो रत्नपर्यङ्के रत्नभूषणभूषितः। रत्नभूषणभूषाङ्गो राधावक्षसि संस्थितः॥
चन्दनोक्षितसर्वाङ्गः स्मेराननसरोरुहः। प्रोद्यत्प्रेमरसाम्भोधौ निमग्नः सततं सुखात्॥
मल्लिकामालतीमालाजालैः शोभितशेखरः। पारिजातप्रसूनानां गन्धामोदितमानसः॥
पुंस्कोकिलकलध्वानैर्भ्रमरध्वनिसंयुतैः। कुसुमेषु विकारेण पुलकाङ्कितविग्रहः॥
प्रियाप्रदत्तताम्बूलं भुक्तवान् यः सदा मुदा। वेदा अशक्ता यं स्तोतुं जडीभूता विचक्षणाः॥
तमनिर्वचनीयं च किं स्तौमि नागवल्लभा। वन्देऽहं त्वत्पदाम्भोजं ब्रह्मेशशेषसेवितम्॥

लक्ष्मीसरस्वतीदुर्गाजाह्नवीवेदमातृभिः । सेवितं सिद्धसङ्घैश्च मुनीन्द्रैर्मनुभिः सदा ॥
निष्कारणायाखिलकारणाय सर्वेश्वरायापि परात्पराय ।
स्वयम्प्रकाशाय परावराय परावराणामधिपाय ते नमः ॥
हे कृष्ण हे कृष्ण सुरासुरेश ब्रह्मेश शेषेश प्रजापतीश ।
मुनीश मन्वीश चराचरेश सिद्धीश सिद्धेश गुणेश पाहि ॥
धर्मेश धर्मीश शुभाशुभेश वेदेश वेदेष्वनिरूपितश्च ।
सर्वेश सर्वात्मक सर्वबन्धो जीवीश जीवेश्वर पाहि मत्प्रभुम् ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरा । विधृत्य चरणाम्भोजं तस्थौ नागेशवल्लभा ॥
नागपत्नीकृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । सर्वपापात् प्रमुक्तस्तु यात्यन्ते श्रीहरेः पदम् ॥
इहलोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम् । लभते पार्षदो भूत्वा सालोक्यादिचतुष्टयम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते नागपत्नीकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १९ । १७—३४)

कालियकृतं श्रीकृष्णस्तवनम्

कालिय उवाच

वरेऽन्यस्मिन् मम विभो वाञ्छा नास्ति वरप्रद ॥
भक्तिं स्मृतिं त्वत्पदाब्जे देहि जन्मनि जन्मनि । जन्म ब्रह्मकुले वापि तिर्यग्योनिषु वा समम् ॥
तद् भवेत् सफलं यत्र स्मृतिस्त्वच्चरणाम्बुजे । स निष्फलः स्वर्गवासो नास्ति चेत् त्वत्पदस्मृतिः ॥
त्वत्पादध्यानयुक्तस्य यत्तत् स्थानं च तत्परम् । क्षणं वा कोटिकल्पं वा पुरुषायुः क्षयोऽस्तु वा ॥
यदि त्वत्सेवया याति सफलो निष्फलोऽन्यथा । तेषां चायुर्व्ययो नास्ति ये त्वत्पादाब्जसेवकाः ॥
न सन्ति जन्ममरणरोगशोकार्तिभीतयः । इन्द्रत्वे वामरत्वे वा ब्रह्मत्वे चातिदुर्लभे ॥
वाञ्छा नास्त्येव भक्तानां त्वत्पादसेवनं विना । सुजीर्णपटखण्डस्य समं नूतनमेव च ॥
पश्यन्ति भक्ताः किं चान्यत् सालोक्यादिचतुष्टयम् । सम्प्राप्तस्त्वन्मनुर्ब्रह्मन्नन्ताद् वायुदेव हि ॥
तावत् त्वद्भावनेनैव त्वद्गुणोऽहमनुग्रहात् । मां च भक्षपपक्षं मा विज्ञाय गरुडः स्वयम् ॥
देशाद् दूरं च न्यक्कारं चकार दृढभक्तिमान् । भवता च दृढा भक्तिर्दत्ता मे परमेश्वर ॥
स च भक्तश्च भक्तोऽहं न मां त्यक्तुं क्षमोऽधुना । त्वत्पादपद्मचिह्नाङ्कं दृष्ट्वा श्रीमस्तके मम ॥
सदोषं गुणयुक्तं मां सोऽधुना त्यक्तुमक्षमः । ममाराध्यश्च नागेन्द्र न तद्वध्योऽहमीश्वर ॥
भयं न केभ्यः सर्वत्र तमनन्तं गुरुं विना । यं देवेन्द्राश्च देवाश्च मुनयो मनवो नराः ॥
स्वप्ने ध्यानेन पश्यन्ति चक्षुषो गोचरः स मे । भक्तानुरोधात् साकारः कुतस्ते विग्रहो विभो ॥
सगुणस्त्वं च साकारो निराकारश्च निर्गुणः । स्वेच्छामयः सर्वधाम सर्वबीजं सनातनम् ॥
सर्वेषामीश्वरः साक्षी सर्वात्मा सर्वरूपधृक् । ब्रह्मेशशेषधर्मेन्द्रा वेदवेदाङ्गपारगाः ॥
स्तोतुं यमीशा नो जाड्यात् सर्पस्तोष्यति तं कथम् । हे नाथ करुणासिन्धो दीनबन्धो क्षमाधमम् ॥
खलस्वभावादज्ञानात् कृष्ण त्वं चर्वितो मया । नास्वलक्ष्यो यथाकाशो न दृश्यान्तो न लङ्घ्यकः ॥
न स्पृश्यो हि न चावर्यस्तथा तेजस्त्वमेव च । इत्येवमुक्त्वा नागेन्द्रः पपात चरणाम्बुजे ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते कालियकृतं श्रीकृष्णस्तवनं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १९ । ७३—९१)

ब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

सर्वस्वरूपं सर्वेशं सर्वकारणकारणम्। सर्वानिर्वचनीयं तं नमामि शिवरूपिणम्॥
नवीनजलदाकारं श्यामसुन्दरविग्रहम्। स्थितं जन्तुषु सर्वेषु निर्लिप्तं साक्षिरूपिणम्॥
स्वात्मारामं पूर्णकामं जगद्व्यापि जगत्परम्। सर्वस्वरूपं सर्वेषां बीजरूपं सनातनम्॥
सर्वाधारं सर्वधरं सर्वशक्तिसमन्वितम्। सर्वाराध्यं सर्वगुरुं सर्वमङ्गलकारणम्॥
सर्वमन्त्रस्वरूपं च सर्वसम्पत्करं वरम्। शक्तियुक्तमयुक्तं च स्तौमि स्वेच्छामयं विभुम्॥
शक्तीशं शक्तिबीजं च शक्तिरूपधरं वरम्। संसारसागरे घोरे शक्तिनौकासमन्वितम्॥
कृपालुं कर्णधारं च नमामि भक्तवत्सलम्। आत्मस्वरूपमेकान्तं लिप्तं निर्लिप्तमेव च॥
सगुणं निर्गुणं ब्रह्म स्तौमि स्वेच्छास्वरूपिणम्। सर्वेन्द्रियाधिदेवं त्वामिन्द्रियालयमेव च॥
सर्वेन्द्रियस्वरूपं च विराड्रूपं नमाम्यहम्। वेदं च वेदजनकं सर्ववेदाङ्गरूपिणम्॥
सर्वमन्त्रस्वरूपं च नमामि परमेश्वरम्। सारात् सारतरं द्रव्यमपूर्वमनिरूपणम्॥
स्वतन्त्रमस्वतन्त्रं च यशोदानन्दनं भजे। शान्तं सर्वशरीरेषु तमदृष्टमनूहकम्॥
ध्यानासाध्यं विद्यमानं योगीन्द्राणां गुरुं भजे। रासमण्डलमध्यस्थं रासोल्लाससमुत्सुकम्॥
गोपीभिः सेव्यमानं च तं राधेशं नमाम्यहम्। सत्यं सदैव सत्यं तमसत्यमसतामपि॥
योगीशं योगसाध्यं च नमामि शिवसेवितम्। मन्त्रबीजं मन्त्रराजं मन्त्रदं फलदं फलम्॥
मन्त्रसिद्धिस्वरूपं तं नमामि च परात्परम्। सुखं दुःखं च सुखदं दुःखदं पुण्यमेव च॥
पुण्यप्रदं च शुभदं शुभबीजं नमाम्यहम्। इत्येवं स्तवनं कृत्वा दत्त्वा गाश्च सबालकान्॥
निपत्य दण्डवद् भूमौ रुरोद प्रणनाम च। ददर्श चक्षुरुन्मील्य विधाता जगतां मुने॥
ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते श्रीहरेः पदम्॥
लभते दास्यमतुलं स्थानमीश्वरसंनिधौ। लब्ध्वा च कृष्णसांनिध्यं पार्षदप्रवरो भवेत्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मणा कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २० । ३७--५५)

इन्द्रकृतं परमेश्वरश्रीकृष्णस्तोत्रम्

इन्द्र उवाच

अक्षरं परमं ब्रह्म ज्योतीरूपं सनातनम्। गुणातीतं निराकारं स्वेच्छामयमनन्तकम्॥
भक्तध्यानाय सेवायै नानारूपधरं वरम्। शुक्लरक्तपीतश्यामं युगानुक्रमणेन च॥
शुक्लतेजःस्वरूपं च सत्ये सत्यस्वरूपिणम्। त्रेतायां कुङ्कुमाकारं ज्वलन्तं ब्रह्मतेजसा॥
द्वापरे पीतवर्णं च शोभितं पीतवाससा। कृष्णवर्णं कलौ कृष्णं परिपूर्णतमं प्रभुम्॥
नवधाराधरोत्कृष्टश्यामसुन्दरविग्रहम्। नन्दैकनन्दनं वन्दे यशोदानन्दनं प्रभुम्॥
गोपिकाचेतनहरं राधाप्राणाधिकं परम्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कौतुकेन च॥
रूपेणाप्रतिमेनैव रत्नभूषणभूषितम्। कंदर्पकोटिसौन्दर्यं बिभ्रतं शान्तमीश्वरम्॥

क्रीडन्तं राधया सार्धं वृन्दारण्ये च कुत्रचित्। कुत्रचिन्निर्जनेऽरण्ये राधावक्षःस्थलस्थितम्॥
जलक्रीडां प्रकुर्वन्तं राधया सह कुत्रचित्। राधिकाकबरीभारं कुर्वन्तं कुत्रचिद् वने॥
कुत्रचिद् राधिकापादे दत्तवन्तमलक्तकम्। राधाचर्वितताम्बूलं गृह्णन्तं कुत्रचिन्मुदा॥
पश्यन्तं कुत्रचिद् राधां पश्यन्तीं वक्रचक्षुषा। दत्तवन्तं च राधायै कृत्वा मालां च कुत्रचित्॥
कुत्रचिद् राधया सार्धं गच्छन्तं रासमण्डलम्। राधादत्तां गले मालां धृतवन्तं च कुत्रचित्॥
सार्धं गोपालिकाभिश्च विहरन्तं च कुत्रचित्। राधां गृहीत्वा गच्छन्तं विहाय तां च कुत्रचित्॥
विप्रपत्नीदत्तमन्नं भुक्तवन्तं च कुत्रचित्। भुक्तवन्तं तालफलं बालकैः सह कुत्रचित्॥
वस्त्रं गोपालिकानां च हरन्तं कुत्रचिन्मुदा। गवां गणं व्याहरन्तं कुत्रचिद् बालकैः सह॥
कालीयमूर्ध्नि पादाब्जं दत्तवन्तं च कुत्रचित्। विनोदमुरलीशब्दं कुर्वन्तं कुत्रचिन्मुदा॥
गायन्तं रम्यसंगीतं कुत्रचिद् बालकैः सह। स्तुत्वा शक्रः स्तवेन्द्रेण प्रणनाम हरिं भिया॥
पुरा दत्तेन गुरुणा रणे वृत्रासुरेण च। कृष्णेन दत्तं कृपया ब्रह्मणे च तपस्यते॥
एकादशाक्षरो मन्त्रः कवचं सर्वलक्षणम्। दत्तमेतत् कुमाराय पुष्करे ब्रह्मणा पुरा॥
कुमारोऽङ्गिरसे दत्तो गुरवेऽङ्गिरसा मुने। इदमिन्द्रकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत्॥
इह प्राप्य दृढां भक्तिमन्ते दास्यं लभेद् ध्रुवम्। जन्ममृत्युजराव्याधिशोकेभ्यो मुच्यते नरः।
न हि पश्यति स्वप्नेऽपि यमदूतं यमालयम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते इन्द्रकृतं परमेश्वरश्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २१। १७६—१९६)

नन्दकृतं श्रीकृष्णस्तवनम्

नन्द उवाच

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मणहिताय च।
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः। नमो ब्रह्मण्यदेवाय ब्रह्मणे परमात्मने॥
अनन्तकोटिब्रह्माण्डधामधाम्ने नमोऽस्तु ते। नमो मत्स्यादिरूपाणां बीजरूपाय साक्षिणे।
निर्लिप्ताय निर्गुणाय निराकाराय ते नमः॥
अतिसूक्ष्मस्वरूपाय स्थूलात् स्थूलतमाय च। सर्वेश्वराय सर्वाय तेजोरूपाय ते नमः॥
अतिसूक्ष्मस्वरूपाय ध्यानासाध्याय योगिनाम्। ब्रह्मविष्णुमहेशानां वन्द्याय नित्यरूपिणे॥
धाम्ने चतुर्णां वर्णानां युगेष्वेव चतुर्षु च। शुक्लरक्तपीतश्यामाभिधानगुणशालिने॥
योगिने योगरूपाय गुरवे योगिनामपि। सिद्धेश्वराय सिद्धाय सिद्धानां गुरवे नमः॥
यं स्तोतुमक्षमो ब्रह्मा विष्णुर्यं स्तोतुमक्षमः। यं स्तोतुमक्षमो रुद्रः शेषो यं स्तोतुमक्षमः॥
यं स्तोतुमक्षमो धर्मो यं स्तोतुमक्षमो रविः। यं स्तोतुमक्षमो लम्बोदरश्चापि षडाननः॥
यं स्तोतुमक्षमाः सर्वे मुनयः सनकादयः। कपिलो न क्षमः स्तोतुं सिद्धेन्द्राणां गुरोर्गुरुः॥
न शक्तौ स्तवनं कर्तुं नरनारायणावृषी। अन्ये जडधियः के वा स्तोतुं शक्ताः परात्परम्॥
वेदा न शक्ता नो वाणी न च लक्ष्मीः सरस्वती। न राधा स्तवने शक्ता किं स्तुवन्ति विपश्चितः॥
क्षमस्व निखिलं ब्रह्मन्नपराधं क्षणे क्षणे। रक्ष मां करुणासिन्धो दीनबन्धो भवार्णवे॥
पुरा तीर्थे तपस्तप्त्वा पुत्रः प्राप्तः सनातनः। स्वकीयचरणाम्भोजे भक्तिं दास्यं च देहि मे॥

ब्रह्मत्वममरत्वं वा सालोक्यादिकमेव वा । त्वत्पदाम्भोजदास्यस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥
इन्द्रत्वं वा सुरत्वं वा सम्प्राप्तिं सिद्धिस्वर्गयोः । राजत्वं चिरजीवित्वं सुधियो गणयन्ति किम् ॥
एतद् यत् कथितं सर्वं ब्रह्मत्वादिकमीश्वर । भक्तसङ्गक्षणार्धस्य नोपमा ते किमर्हति ॥
त्वद्भक्तो यस्त्वत्सदृशः कस्त्वां तर्कितुमीश्वरः । क्षणार्धालापमात्रेण पारं कर्तुं स चेश्वरः ॥
भक्तसङ्गाद् भवत्येव भक्त्यङ्कुरमनेकधा । स्वस्वभक्तजलदालापजलसेकेन वर्धते ॥
अभक्तालापतप्तात्तु शुष्कतां याति तत्क्षणम् । सद्गुणस्मृतिसेकाच्च वर्धते तत्क्षणे स्फुटम् ॥
त्वद्भक्त्यङ्कुरमुद्भूतं स्फीतं मानसकं परम् । न नश्यं वर्धनीयं च नित्यं नित्यं क्षणे क्षणे ॥
ततः सम्प्राप्य ब्रह्मत्वं भक्तस्य जीवनाय च । ददात्येव फलं तस्मै हरिदास्यमनुत्तमम् ॥
संप्राप्य दुर्लभं दास्यं यदि दासो बभूव ह । सुनिश्चयेन तेनैव जितं सर्वं भयादिकम् ॥
इत्येवमुक्त्वा भक्त्या च नन्दस्तस्थौ हरेः पुरः । प्रसन्नवदनः कृष्णो ददौ तस्मै तदीप्सितम् ॥
एवं नन्दकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । सुदृढां भक्तिमाप्नोति सद्यो दास्यं लभेद्धरेः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते नन्दकृतं श्रीकृष्णस्तवनं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २१ । २००—२२३)

धेनुकभीतैर्गोपबालकैः कृतं श्रीकृष्णस्तवनम्

तं दृष्ट्वा रुरुदुः सर्वे फलानि तत्यजुर्भिया । कृष्ण कृष्णेति शब्दं च प्रचक्रुर्बहुधा भृशम् ॥
अस्मान् रक्ष समागच्छ हे कृष्ण करुणानिधे । हे संकर्षण नो रक्ष प्राणा नो यान्ति दानवात् ॥
हे कृष्ण हे कृष्ण हरे मुरारे गोविन्द दामोदर दीनबन्धो ।
गोपीश गोपेश भवार्णवेऽस्माननन्त नारायण रक्ष रक्ष ॥
भयेऽभये वाद्य शुभेऽशुभे वा सुखेषु दुःखेषु च दीननाथ ।
त्वया विनान्यं शरणं भवार्णवे न नोऽस्ति हे माधव रक्ष रक्ष ॥
जय जय गुणसिन्धो कृष्ण भक्तैकबन्धो बहुतरभययुक्तान् बालकान् रक्ष रक्ष ।
जहि दनुजकुलानामीशमस्माकमन्तं सुरकुलबलदर्पं सर्पयेमं निहत्य ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते गोपबालकैः कृतं श्रीकृष्णस्तवनं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २२ । २०—२४)

दानवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

कृष्णदर्शनमात्रेण बभूवास्य पुरा स्मृतिः । आत्मानं बुबुधे कृष्णं जगतां कारणं परम् ॥
तेजःस्वरूपमीशं तं दृष्ट्वा तुष्टाव दानवः । यथागमं यथाजन्म गुणातीतं श्रुतेः परम् ॥

दानव उवाच

वामनोऽसि त्वमंशेन मत्पितुर्यज्ञभिक्षुकः । राज्यहर्ता च श्रीहर्ता सुतलस्थलदायकः ॥
बलिभक्तिवशो वीरः सर्वेशो भक्तवत्सलः । शीघ्रं त्वं हिंस मां पापं शापाद् गर्दभरूपिणम् ॥
मुनेर्दुर्वाससः शापादीदृशं जन्म कुत्सितम् । मृत्युरुक्तश्च मुनिना त्वत्तो मम जगत्पते ॥

षोडशारेण चक्रेण सुतीक्ष्णेनातितेजसा । जहि मां भगवन् नाथ सद्भक्तिं कुरु मोक्षद ॥
त्वमंशेन वराहश्च समुद्धर्तुं वसुन्धराम् । वेदानां रक्षिता नाथ हिरण्याक्षनिषूदनः ॥
त्वं नृसिंहः स्वयं पूर्णो हिरण्यकशिपोर्वधे । प्रह्लादानुग्रहार्थाय देवानां रक्षणाय च ॥
त्वं च वेदोद्धारकर्ता मीनांशेन दयानिधे । नृपस्य ज्ञानदानाय रक्षार्थं सुरविप्रयोः ॥
शेषाधारश्च कूर्मस्त्वमंशेन सृष्टिहेतवे । विश्वाधारश्च शेषस्त्वमंशेनापि सहस्रधृक् ॥
रामो दाशरथिस्त्वं च जानक्युद्धारहेतवे । दशकन्धरहन्ता च सिन्धौ सेतुविधायकः ॥
कलया परशुरामश्च जमदग्निसुतो महान् । त्रिःसप्तकृत्वो भूपानां निहन्ता जगतीपते ॥
अंशेन कपिलस्त्वं च सिद्धानां च गुरोर्गुरुः । मातृज्ञानप्रदाता च योगशास्त्रविधायकः ॥
अंशेन ज्ञानिनां श्रेष्ठौ नरनारायणावृषी । त्वं च धर्मसुतो भूत्वा लोकविस्तारकारकः ॥
अधुना कृष्णरूपस्त्वं परिपूर्णतमः स्वयम् । सर्वेषामवताराणां बीजरूपः सनातनः ॥
यशोदाजीवनो नित्यो नन्दैकानन्दवर्धनः । प्राणाधिदेवो गोपीनां राधाप्राणाधिकः प्रियः ॥
वसुदेवसुतः शान्तो देवकीदुःखभञ्जनः । अयोनिसम्भवः श्रीमान् पृथिवीभारहारकः ॥
पूतनायै मातृगतिप्रदाता च कृपानिधिः । बककेशिप्रलम्बानां ममापि मोक्षकारकः ॥
स्वेच्छामय गुणातीत भक्तानां भयभञ्जन । प्रसीद राधिकानाथ प्रसीद कुरु मोक्षणम् ॥
हे नाथ गार्दभीयोनेः समुद्धर भवार्णवात् । मूर्खस्त्वद्भक्तपुत्रोऽहं मामुद्धर्तुं त्वमर्हसि ॥
वेदा ब्रह्मादयो यं च मुनीन्द्राः स्तोतुमक्षमाः । किं स्तौमि तं गुणातीतं पुरा दैत्योऽधुना खरः ॥
एवं कुरु कृपासिन्धो येन मे न भवेत्तनुः । दृष्ट्वा पादारविन्दं ते कः पुनर्भवनं व्रजेत् ॥
ब्रह्मा स्तोता खरः स्तोता नोपहासितुमर्हसि । सदीश्वरस्य विज्ञस्य योग्यायोग्ये समा कृपा ॥
इत्येवमुक्त्वा दैत्येन्द्रस्तस्थौ च पुरतो हरेः । प्रसन्नवदनः श्रीमानतितुष्टो बभूव ह ॥
इदं दैत्यकृतं स्तोत्रं नित्यं भक्त्या च यः पठेत् । सालोक्यसार्ष्टिसामीप्यं लीलया लभते हरेः ॥
इह लोके हरेर्भक्तिमन्ते दास्यं सुदुर्लभम् । विद्यां श्रियं सुकवितां पुत्रपौत्रान् यशो लभेत् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते दानवकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २२ । ३५—६०)

राधाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

राधिकोवाच

गोलोकनाथ गोपीश मदीश प्राणवल्लभ । हे दीनबन्धो दीनेश सर्वेश्वर नमोऽस्तु ते ॥
गोपेश गोसमूहेश यशोदानन्दवर्धन । नन्दात्मज सदानन्द नित्यानन्द नमोऽस्तु ते ॥
शतमन्योर्मन्युभग्न ब्रह्मदर्पविनाशक । कालीयदमन प्राणनाथ कृष्ण नमोऽस्तु ते ॥
शिवानन्तेश ब्रह्मेश ब्राह्मणेश परात्पर । ब्रह्मस्वरूप ब्रह्मज्ञ ब्रह्मबीज नमोऽस्तु ते ॥
चराचरतरोर्बीज गुणातीत गुणात्मक । गुणबीज गुणाधार गुणेश्वर नमोऽस्तु ते ॥
अणिमादिकसिद्धीश सिद्धेः सिद्धिस्वरूपक । तपस्तपस्विंस्तपसां बीजरूप नमोऽस्तु ते ॥
यदनिर्वचनीयं च वस्तु निर्वचनीयकम् । तत्स्वरूप तयोर्बीज सर्वबीज नमोऽस्तु ते ॥
अहं सरस्वती लक्ष्मीर्दुर्गा गङ्गा श्रुतिप्रसूः । यस्य पादार्चनान्नित्यं पूज्या तस्मै नमो नमः ॥
स्पर्शने यस्य भृत्यानां ध्याने चापि दिवानिशम् । पवित्राणि च तीर्थानि तस्मै भगवते नमः ॥

इत्येवमुक्त्वा सा देवी जले संन्यस्य विग्रहम् । मनःप्राणांश्च श्रीकृष्णे तस्थौ स्थाणुसमा सती ॥ १० ॥
राधाकृतं हरेः स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । हरिभक्तिं च दास्यं च लभेद् राधागतिं ध्रुवम् ॥ ११ ॥
विपत्तौ यः पठेद् भक्त्या सद्यः सम्पत्तिमाप्नुयात् । चिरकालगतं द्रव्यं हृतं नष्टं च लभ्यते ॥ १२ ॥
बन्धुवृद्धिर्भवेत्तस्य प्रसन्नं मानसं परम् । चिन्ताग्रस्तः पठेद् भक्त्या परां निर्वृतिमाप्नुयात् ॥ १३ ॥
पतिभेदे पुत्रभेदे मित्रभेदे च संकटे । मासं भक्त्या यदि पठेत्सद्यः संदर्शनं लभेत् ॥ १४ ॥
भक्त्या कुमारी स्तोत्रं च शृणुयाद् वत्सरं यदि । श्रीकृष्णसदृशं कान्तं गुणवन्तं लभेद् ध्रुवम् ॥ १५ ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते राधाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २७ । १००—११४)

अष्टावक्रकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

अष्टावक्र उवाच

गुणातीत गुणाधार गुणबीज गुणात्मक । गुणीश गुणिनां बीज गुणायन नमोऽस्तु ते ॥
सिद्धिस्वरूप सिद्ध्यंश सिद्धिबीज परात्पर । सिद्धिसिद्धगणाधीश सिद्धानां गुरवे नमः ॥
हे वेदबीज वेदज्ञ वेदिन् वेदविदां वर । वेदाज्ञातोऽसि रूपेश वेदज्ञेश नमोऽस्तु ते ॥
ब्रह्मानन्तेश शेषेन्द्र धर्मादीनामधीश्वर । सर्व सर्वेश शर्वेश बीजरूप नमोऽस्तु ते ॥
प्रकृते प्राकृत प्राज्ञ प्रकृतीश परात्पर । संसारवृक्ष तद्बीज फलरूप नमोऽस्तु ते ॥
सृष्टिस्थित्यन्तबीजेश सृष्टिस्थित्यन्तकारण । महाविराट् तरोर्बीज राधिकेश नमोऽस्तु ते ॥
अहो यस्य त्रयः स्कन्धा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः । शाखा प्रशाखा वेदाश्चास्तपांसि कुसुमानि च ॥
संसारविफला एव प्रकृत्यङ्कुरमेव च । तदाधार निराधार सर्वाधार नमोऽस्तु ते ॥
तेजोरूप निराकार प्रत्यक्षानूहमेव च । सर्वाकारातिप्रत्यक्ष स्वेच्छामय नमोऽस्तु ते ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते अष्टावक्रकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड २१ । ४०—४८)

श्रीकृष्णं द्रष्टुमुत्सुकेनाक्रूरेण तदीयमहिम्नो गानम्

अक्रूर उवाच

सुप्रभाताद्य रजनी बभूव मे शुभं दिनम् । तुष्टाश्च गुरवो विप्रा देवा मयीति निश्चितम् ॥
कोटिजन्मार्जितं पुण्यं मम स्वयमुपस्थितम् । बभूव मे समुत्पन्नं यद् यत्कर्म शुभाशुभम् ॥
चिच्छेद बन्धनिगडं मम बद्धस्य कर्मणा । कारागाराच्च संसारान्मुक्तो यामि हरेः पदम् ॥
सुहृदर्थी कृतोऽहं च कंसेन विदुषा मया । वरेण तुल्यो देवस्य क्रोधो मम बभूव ह ॥
व्रजराजं समाहर्तुं व्रजं यास्यामि साम्प्रतम् । द्रक्ष्यामि परमं पूज्यं भुक्तिमुक्तिप्रदायिनम् ॥

नवीनजलदश्यामं नीलेन्दीवरलोचनम् । पीतवस्त्रसमायुक्तकटिदेशविराजितम् ॥
धूलिधूसरिताङ्गं च किं वा चन्दनचर्चितम् । अथवा नवनीताक्तमङ्गं द्रक्ष्यामि सस्मितम् ॥
किं वा विनोदमुरलीं वादयन्तं मनोहरम् । किं वा गवां समूहं च चारयन्तमितस्ततः ॥
किं वा वसन्तं गच्छन्तं शयानं वा सुनिश्चितम् । निदेशं कीदृशं चाद्य सुस्पष्टं च शुभे क्षणे ॥
यत्पादपद्मं ध्यायन्ते ब्रह्मविष्णुशिवादयः । न हि जानाति यस्यान्तमनन्तोऽनन्तविग्रहः ॥
यत्प्रभावं न जानन्ति देवाः सन्तश्च संततम् । यस्य स्तोत्रे जडीभूता भीता देवी सरस्वती ॥
दासी नियुक्ता यत्सेवे महालक्ष्मीश्च लक्षिता । गङ्गा यस्य पदाम्भोजनिःसृता सत्त्वरूपिणी ॥
जन्ममृत्युजराव्याधिहरा त्रिभुवनात् परा । दर्शनस्पर्शनाभ्यां च नृणां पातकनाशिनी ॥
ध्यायते यत्पदाम्भोजं दुर्गा दुर्गतिनाशिनी । त्रैलोक्यजननी देवी मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
लोम्नां कूपेषु विश्वानि महाविष्णोश्च यस्य च । असंख्यानि विचित्राणि स्थूलात् स्थूलतरस्य च ॥
स च यद् षोडशांशश्च यस्य सर्वेश्वरस्य च । तं द्रष्टुं यामि हे बन्धो मायामानुषरूपिणम् ॥
सर्वं सर्वान्तरात्मानं सर्वज्ञं प्रकृतेः परम् । ब्रह्मज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् ॥
निर्गुणं च निरीहं च निरानन्दं निराश्रयम् । परमं परमानन्दं सानन्दं नन्दनन्दनम् ॥
स्वेच्छामयं सर्वपरं सर्वबीजं सनातनम् । वदन्ति योगिनः शश्वद् ध्यायन्तेऽहर्निशं शिशुम् ॥
मन्वन्तरसहस्रं च निराहारः कृशोदरः । पद्मे पद्मजस्तपस्तेपे पुरा माघे तु यत्कृते ॥
पुनः कुरु तपस्यां च तदा द्रक्ष्यसि मामिति । सकृच्छब्दं च शुश्राव न ददर्श तथापि तम् ॥
तावत्कालं पुनस्तप्त्वा वरं प्राप ददर्श तम् । ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य समुद्भव ॥
पुरा शम्भुस्तपस्तेपे यावद्वै ब्रह्मणो वयः । ज्योतिर्मण्डलमध्ये च गोलोके तं ददर्श सः ॥
सर्वतत्त्वं सर्वसिद्धं मम तत्त्वं परं वरम् । सम्प्राप तत्पदाम्भोजे भक्तिं च निर्मलां पराम् ॥
चकारात्मसमं तं च यो भक्तो भक्तवत्सलः । ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्भव ॥
सहस्रशक्रपातान्तं निराहारः कृशोदरः । यस्यानन्तस्तपस्तेपे भक्त्या च परमात्मनः ॥
तदा चात्मसमं ज्ञानं ददौ तस्मै च ईश्वरः । ईदृशं परमेशं च द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्भव ॥
सहस्रशक्रपातान्तं धर्मस्तेपे च यत्तपः । तदा बभूव साक्षी स धर्मिणां सर्वकर्मिणाम् ॥
शास्ता च फलदाता च यत्प्रसादान्नृणामिह । सर्वेशमीदृशमहो द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्भव ॥
अष्टाविंशतिरिन्द्राणां पतने यद्दिवानिशम् । एवं क्रमेण मासाब्दैः शताब्दं ब्रह्मणो वयः ॥
अहो यस्य निमेषेण ब्रह्मणः पतनं भवेत् । ईदृशं परमात्मानं द्रक्ष्याम्यद्य तमुद्भव ॥
नास्ति भूरजसां संख्या यथैव ब्रह्मणां तथा । तथैव चान्ये विश्वानां तदाधारो महाविराट् ॥
विश्वे विश्वे च प्रत्येकं ब्रह्मविष्णुशिवादयः । मुनयो मनवः सिद्धा मानवाश्च चराचराः ॥
यत्षोडशांशः स विराट् सृष्टो नष्टश्च लीलया । ईदृशं सर्वशास्तारं द्रक्ष्याम्यद्य समुद्भव ॥
इत्येवमुक्त्वाक्रूरश्च पुलकाञ्चितविग्रहः । मूर्च्छां प्राप साश्रुनेत्रो दध्यौ तच्चरणाम्बुजम् ॥
बभूव भक्तिपूर्णश्च स्मारं स्मारं पदाम्बुजम् । कृत्वा प्रदक्षिणं चापि कृष्णस्य परमात्मनः ॥
उद्धवश्च तमाश्लिष्य प्रशशंस पुनः पुनः । स च शीघ्रं ययौ गेहमक्रूरोऽपि स्वमन्दिरे ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते अक्रूरेण श्रीकृष्णमहिम्नो गानं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६५ । १—३७)

राधाकृतं श्रीकृष्णस्तवनम्

राधिकोवाच

प्रफुल्लाहं त्वया नाथ मृता म्लाना च त्वां विना । यथा महौषधिगणः प्रभाते भाति भास्करे ॥
मत्ता दीपशिखेवाहं त्वया सार्धं त्वया विना । दिने दिने यथा क्षीणा कृष्णपक्षे विधोः कला ॥
तव वक्षसि मे दीप्तिः पूर्णचन्द्रप्रभासमा । सद्यो मृता त्वया त्यक्ता कुह्वां चन्द्रकला यथा ॥
ज्वलदग्निशिखेवाहं घृताहुत्या त्वया सह । त्वया विनाहं निर्वाणा शिशिरे पद्मिनी यथा ॥
चिन्ताज्वरजराग्रस्ता गतस्त्वयि गतेऽप्यहम् । अस्तं गते रवौ चन्द्रे ध्वान्तग्रस्ता धरा यथा ॥
भ्रष्टो वेषस्त्वां विना मे रूपं यौवनवेषणम् । तारावली परिभ्रष्टा सूर्यसूतोदये यथा ॥
त्वमेवात्मा च सर्वेषां मम नाथो विशेषतः । तनुर्यथाऽऽत्मना त्यक्ता तथाहं च त्वया विना ॥
पञ्चप्राणात्मकस्त्वं मे मृताहं च त्वया विना । दृष्टेश्च गोलकौ यद्वद् दृष्टिपुत्तलिकां विना ॥
स्थलं यथा चित्रयुक्तं त्वया सार्धमहं तथा । असंस्कृता त्वया हीना तृणच्छन्ना यथा मही ॥
त्वया सार्धमहं कृष्ण चित्रयुक्तेव मृण्मयी । त्वां विना जलधौताहं विरूपा मृण्मयीव च ॥
गोपाङ्गनानां शोभा च त्वया रासेश्वरेण च । हारे स्वर्णविकारे च श्वेतेन मणिना सह ॥
व्रजराज्यं त्वया सार्धं राजन्ते राजराजयः । यथा चन्द्रेण नभसि ताराराजिर्विराजते ॥
त्वया शोभा यशोदाया नन्दस्य नन्दनन्दन । यथा शाखाफलस्कन्धैस्तरुराजिर्विराजते ॥
त्वया सार्धं गोकुलेश शोभा गोकुलवासिनाम् । यथा सर्वा लोकराजी राजेन्द्रेण विराजते ॥
रासस्यापि च रासेश त्वया शोभा मनोहरा । राजते देवराजेन यथा स्वर्गेऽमरावती ॥
वृन्दावनस्य वृक्षाणां त्वं च शोभा पतिर्गतिः । अन्येषां च वनानां च बलवान् केसरी यथा ॥
त्वया विना यशोदा च निमग्ना शोकसागरे । अप्राप्य वत्सं सुरभिः क्रोशन्ती व्याकुला यथा ॥
आन्दोलयन्ति नन्दस्य प्राणा दग्धं च मानसम् । त्वया विना तप्तपात्रे यथा धान्यसमूहकः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते राधाकृतं श्रीकृष्णस्तवनं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ९७ । ७—२४)

ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

जय जय जगदीश वन्दितचरण निर्गुण निराकार स्वेच्छामय भक्तानुग्रहनित्यविग्रह गोपवेष मायया मायेश सुवेष सुशील शान्त सर्वकान्त दान्त नितान्तज्ञानानन्द परात्परतर प्रकृतेः पर सर्वान्तरात्मरूप निर्लिप्त साक्षिस्वरूप व्यक्ताव्यक्त निरञ्जन भारावतारण करुणार्णव शोकसंतापप्रसन जरामृत्युभयादिहरण शरणपञ्जर भक्तानुग्रहकातर भक्तवत्सल भक्तसंचितधन ॐ नमोऽस्तु ते ॥

सर्वाधिष्ठातृदेवायेत्युक्त्वा वै प्रणनाम च । पुनः पुनरुवाचेदं मूर्च्छितश्च बभूव ह ॥
इति ब्रह्मकृतं स्तोत्रं यः शृणोति समाहितः । तत्सर्वाभीष्टसिद्धिश्च भवत्येव न संशयः ॥
अपुत्रो लभते पुत्रं प्रियाहीनो लभेत् प्रियाम् । निर्धनो लभते सत्यं परिपूर्णतमं धनम् ॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा चान्ते दास्यं लभेद्धरेः । अचलां भक्तिमाप्नोति मुक्तेरपि सुदुर्लभाम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६९ । २३—२७)

अक्रूरकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

अक्रूर उवाच

नमः कारणरूपाय परमात्मस्वरूपिणे । सर्वेषामपि विश्वानामीश्वराय नमो नमः ॥
पराय प्रकृतेरीश परात्परतराय च । निर्गुणाय निरीहाय नीरूपाय स्वरूपिणे ॥
सर्वदेवस्वरूपाय सर्वदेवेश्वराय च । सर्वदेवाधिदेवाय विश्वादिभूतरूपिणे ॥
असंख्येषु च विश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः । स्वरूपायादिबीजाय सदीशविश्वरूपिणे ॥
नमो गोपाङ्गनेशाय गणेशेश्वररूपिणे । नमः सुरगणेशाय राधेशाय नमो नमः ॥
राधारमणरूपाय राधारूपधराय च । राधाराध्याय राधायाः प्राणाधिकतराय च ॥
राधासाध्याय राधाधिदेवप्रियतमाय च । राधाप्राणाधिदेवाय विश्वरूपाय ते नमः ॥
वेदस्तुतात्मवेदज्ञरूपिणे वेदिने नमः । वेदाधिष्ठातृदेवाय वेदबीजाय ते नमः ॥
यस्य लोमसु विश्वानि चासंख्यानि च नित्यशः । महद्विष्णोरीश्वराय विश्वेशाय नमो नमः ॥
स्वयं प्रकृतिरूपाय प्रकृताय नमो नमः । प्रकृतीश्वररूपाय प्रधानपुरुषाय च ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा मूर्च्छामाप सभातले । पपात सहसा भूमौ पुनरीशं ददर्श सः ॥
बहिःस्थं हृदयस्थं च परमात्मानमीश्वरम् । परितः श्यामरूपं च विश्वस्थं विश्वमेव च ॥
अक्रूरं मूर्च्छितं दृष्ट्वा नन्दः सादरपूर्वकम् । रत्नसिंहासने रम्ये वासयामास नारद ॥
पप्रच्छ सर्ववृत्तान्तं किंचिद् दृष्टमिति त्वया । मिष्टान्नं भोजयामास कुशलं च पुनः पुनः ॥
अक्रूरः कथयामास कंसवृत्तान्तमीप्सितम् । स्वपित्रोर्मोक्षणार्थं च गमनं रामकृष्णयोः ॥
इत्यक्रूरकृतं स्तोत्रं यः पठेत् सुसमाहितः । अपुत्रो लभते पुत्रमभार्यो लभते प्रियाम् ॥
अधनो धनमाप्नोति निर्भूमिरुर्वरां महीम् । हतप्रजः प्रजां लेभे प्रतिष्ठां चाप्रतिष्ठितः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते अक्रूरकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७० । ५६—७२)

कंसबान्धवजनकृता श्रीकृष्णस्तुतिः

ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तमसंख्यं विश्वमेव च । सर्वं चराचराधारं यः सृजत्येव लीलया ॥
ब्रह्मेशशेषधर्माश्च दिनेशश्च गणेश्वरः । मुनीन्द्रवर्गो देवेन्द्रो ध्यायते यमहर्निशम् ॥
वेदाः स्तुवन्ति यं कृष्णं स्तौति भीता सरस्वती । स्तौति यं प्रकृतिर्ब्रह्म प्राकृतं प्रकृतेः परम् ॥
स्वेच्छामयं निरीहं च निर्गुणं च निरञ्जनम् । परात्परतरं ब्रह्म परमात्मानमीश्वरम् ॥
नित्यं ज्योतिःस्वरूपं च भक्तानुग्रहविग्रहम् । नित्यानन्दं च नित्यं च नित्यमक्षरविग्रहम् ॥
सोऽवतीर्णो हि भगवान् भारावतरणाय च । गोपालबालवेषश्च मायेशो मायया प्रभुः ॥
स यं हन्ति च सर्वेशो रक्षिता तस्य कः पुमान् । स यं रक्षति सर्वात्मा तस्य हन्ता न कोऽपि च ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते कंसबान्धवजनकृता श्रीकृष्णस्तुतिः सम्पूर्णा ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ७२ । ९९—१०५)

ब्रह्मादिदेवगणैः कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

नाथानिर्वचनीयोऽसि भक्तानुग्रहविग्रह। वेदानिर्वचनीयं च कस्त्वां स्तोतुमिहेश्वरः॥

श्रीमहादेव उवाच

देहेषु देहिनं शश्वत् स्थितं निर्लिप्तमेव च। कर्मिणां कर्मणां शुद्धं साक्षिणं साक्षतं विभुम्।
किं स्तौमि रूपशून्यं च गुणशून्यं च निर्गुणम्॥

अनन्त उवाच

किं वा जानाम्यहं नाथ त्वामज्ञोऽनन्तमीश्वरम्। अनन्तकोटिब्रह्माण्डकारणं दुःखतारणम्॥
महाविष्णोश्च लोम्नां च विवरेषु जलेषु च। सन्ति विश्वान्यसंख्यानि चित्राणि कृत्रिमाणि च॥
सन्ति सन्तश्च देवाश्च ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः। त्वदंशाः प्रतिबिम्बेषु तीर्थानि भारते तथा॥
ब्रह्माण्डैकस्थितोऽहं च सूक्ष्मनागस्वरूपकः। स्थापितश्च त्वया कूर्मे गजेन्द्रे मशको यथा॥
परमाणुपरं सूक्ष्मं विश्वेषु नास्ति कुत्रचित्। महाविष्णोः परं स्थूलं समो नास्ति च कुत्रचित्॥
महाविष्णोः परस्त्वं च तत्परो नास्ति कश्चन। स्थूलात् स्थूलतरो देवः सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमो महान्॥
आधारश्च महाविष्णोर्जलरूपो भवान् स्वयम्। जलाधारो हि गोलोकस्त्वं च स्थावररूपधृक्॥
सर्वाधारो महान् वायुः श्वासनिःश्वासरूपकः। भक्तानुग्रहदेहस्य नित्यस्य भवतो विभोः॥
सर्वैर्वक्तुमशक्योऽथ त्वया दत्तैः मुखैश्च च। स्तोतुमिच्छामि त्वद्योगं न दत्तं ज्ञानमीश्वरम्॥

देवा ऊचुः

त्वामनन्तं यदि स्तोतुं देवोऽनन्तो न हीश्वरः। न हि स्वयं विधाता च न हि ज्ञानात्मकः शिवः।
सरस्वती जडीभूता किं कुर्मः स्तवनं वयम्॥

मुनीन्द्रा ऊचुः

वेदा न शक्ताः स्तोतुं चेत्त्वां चैव ज्ञातुमीश्वरम्। वयं वेदविदः सन्तः किं कुर्मः स्तवनं तव॥
इदं स्तोत्रं महापुण्यं देवैश्च मुनिभिः कृतम्। यः पठेत्संयतः शुद्धः पूजाकाले च भक्तितः॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा लब्ध्वा ज्ञानं निरञ्जनम्। रत्नयानं समारुह्य गोलोकं स च गच्छति॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मादिदेवगणैः कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०० । १९—३३)

सान्दीपनिना सपत्न्या च कृता श्रीकृष्णस्तुतिः

सान्दीपनिरुवाच

परं ब्रह्म परं धाम परमीश परात्पर। स्वेच्छामयं स्वयं ज्योतिर्निर्लिप्तैको निरङ्कुशः॥
भक्तैकनाथ भक्तेष्ट भक्तानुग्रहविग्रह। भक्तवाञ्छाकल्पतरो भक्तानां प्राणवल्लभ॥
मायया बालरूपोऽसि ब्रह्मेशशेषवन्दितः। मायया भुवि भूपालो भुवो भारक्षयाय च॥
योगिनो यं चिदन्त्येवं ब्रह्मज्योतिः सनातनम्। ध्यायन्ते भक्तनिवहा ज्योतिरभ्यन्तरे मुदा॥
द्विभुजं मुरलीहस्तं सुन्दरं श्यामरूपकम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं सस्मितं भक्तवत्सलम्॥
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम्। लीलापाङ्गतरङ्गैश्च निन्दितानङ्गमूर्च्छितम्॥
अलक्तभवनं तद्वत्पादपद्मं सुशोभनम्। कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च दिव्यमूर्तिं मनोहरम्॥

ईषद्धास्यप्रसन्नं च सुवेषं संस्तुतं सुरैः । देवदेवं जगन्नाथं त्रैलोक्यमोहनं परम् ॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं कमनीयमनीश्वरम् । अमूल्यरत्ननिर्माणभूषणौघेन भूषितम् ।
वरं वरेण्यं वरदं वरदानामभीप्सितम् ॥
चतुर्णामपि वेदानां कारणानां च कारणम् । पाठार्थं मन्दिरमस्माकमागतोऽसि च मायया ॥
पाठं ते लोकशिक्षार्थं रमणं गमनं रणम् । स्वात्मारामस्य च विभोः परिपूर्णतमस्य च ॥

गुरुपत्न्युवाच

अद्य मे सफलं जन्म सफलं जीवनं मम । पातिव्रत्यं च सफलं सफलं च तपोधनम् ॥
मद्गृहस्थः सफलो दत्तं येनाभ्रमीप्सितम् । मदाश्रमस्तीर्थपरस्तीर्थपादपदाङ्कितः ।
तत्पादरजसा पूता गृहाः श्रीकृष्णमुत्तमम् ॥
यस्य त्वत्पादपद्मं चैवावयोर्जन्मखण्डनम् । तावद् दुःखं च शोकश्च तावद् भोगश्च रोगकः ॥
तावज्जन्मानि कर्माणि क्षुत्पिपासादिकानि च । यावत् त्वत्पादपद्मस्य भजनं नास्ति दर्शनम् ॥
हे कालकाल भगवन् स्रष्टुः संहर्तुरीश्वर । कृपां कुरु कृपानाथ मायामोहनिकृन्तन ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते सान्दीपनिना तत्पत्न्या च कृता श्रीकृष्णस्तुतिः सम्पूर्णा ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०२ । ६—२१)

भीष्मककृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

भीष्मक उवाच

सर्वान्तरात्मा सर्वेषां साक्षी निर्लिप्त एव च । कर्मिणां कर्मणामेव कारणानां च कारणम् ॥
केचिद् वदन्ति त्वामेकं ज्योतीरूपं सनातनम् । केचिच्च परमात्मानं जीवो यत्प्रतिबिम्बकः ॥
केचित् प्राकृतिकं जीवं सगुणं भ्रान्तबुद्धयः । केचिन्नित्यशरीरं च बुद्धाश्च सूक्ष्मबुद्धयः ॥
ज्योतिरभ्यन्तरे नित्यं देहरूपं सनातनम् । कस्मात्तेजः प्रभवति साकारमीश्वरं विना ॥
एवं स्तुत्वा स वाचान्तः स्मरन् विष्णुं च नारद । पाद्यं पद्मार्चिते पादपद्मे चार्घ्यं ददौ मुदा ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते भीष्मककृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १०७ । ८८—९२)

दुर्वासःकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

दुर्वासा उवाच

जय जय जगतां नाथ जितसर्व जनार्दन सर्वात्मक सर्वेश सर्वबीज पुरातन निर्गुण निरीह निर्लिप्त निरञ्जन निराकार भक्तानुग्रहविग्रह सत्यस्वरूप सनातन निःस्वरूप नित्यनूतन ब्रह्मेशशेषधर्मेशवन्दित पद्मया सेवितपादपद्म ब्रह्मज्योतिरनिर्वचनीय वेदाविदितगुणरूप महाकाशसम्माननीय परमात्मन्नमोऽस्तु ते ॥
इत्येवमुक्त्वा मनसा हरेरनुमतेन च । प्रणम्य तस्थौ विप्रेन्द्रस्तत्रैव पुरतो हरेः ॥
तमुवाच जगन्नाथो हितं सत्यं पुरातनम् । ज्ञानं च वेदविहितं सर्वेषां च सतां मतम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते दुर्वासःकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ११२ । ५१—५३)

शिशुपालस्य जीवात्मना कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

शिशुपाल उवाच

वेदानां जनकोऽसि त्वं वेदाङ्गानां च माधव । सुराणामसुराणां च प्राकृतानां च देहिनाम् ॥
सूक्ष्मां विधाय सृष्टिञ्च कल्पभेदं करोषि च । मायया च स्वयं ब्रह्मा शंकरः शेष एव च ॥
मनवो मुनयश्चैव वेदाश्च सृष्टिपालकाः । कलांशेनापि कलया दिक्पालाश्च ग्रहादयः ॥
स्वयं पुमान् स्वयं स्त्री च स्वयमेव नपुंसकः । कारणं च स्वयं कार्यं जन्यश्च जनकः स्वयम् ॥
यन्त्रस्य च गुणो दोषो यन्त्रिणश्च श्रुतौ श्रुतम् । सर्वे यन्त्रा भवान् यन्त्री त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
मम क्षमस्वापराधं मूढस्य द्वारिणस्तव । ब्रह्मशापात् कुबुद्धेश्च रक्ष रक्ष जगद्गुरो ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते शिशुपालस्य जीवात्मना कृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ११३ । २८—३३)

बलिकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

बलिरुवाच

अदित्याः प्रार्थनेनैव मातुर्देव्या व्रतेन च । पुरा वामनरूपेण त्वयाहं वञ्चितः प्रभो ॥
सम्पद्रूपा महालक्ष्मीर्दत्ता भक्ताय भक्तितः । शक्राय मत्तो भक्ताय भ्रात्रे पुण्यवते ध्रुवम् ॥
अधुना मम पुत्रोऽयं बाणः शंकरकिङ्करः । आराध्य रक्षितः सोऽपि तेनैव भक्तबन्धुना ॥
परिपुष्टश्च पार्वत्या यथा मात्रा सुतस्तथा । गृहीतवांश्च तत्कन्यां बलेन युवतीं सतीम् ॥
समुद्यतश्च तं हन्तुं कार्तिकेनापि वारितः । आगतोऽसि पुनर्हन्तुं पौत्रस्य दमने क्षमम् ॥
सर्वात्मनश्च सर्वत्र समभावः श्रुतौ श्रुतः । करोषि जगतां नाथ कथमेवं व्यतिक्रमम् ॥
त्वया स निहतो यो हि तस्य को रक्षिता भुवि । सुदर्शनस्य तेजो हि सूर्यकोटिनिभं परम् ॥
केषां सुराणामस्त्रेण तदेवमनिवारितम् । यथा सुदर्शनं चैवमस्त्राणां प्रवरं वरम् ॥
तथा भवांश्च देवानां सर्वेषामीश्वरः परः । यथा भवांस्तथा कृष्णो विधाता वेधसामपि ॥
विष्णुः सत्त्वगुणाधारः शिवः सत्त्वाश्रयस्तथा । स्वयं विधाता रजसः सृष्टिकर्ता पितामहः ॥
कालाग्निरुद्रो भगवान् विश्वसंहारकारकः । तमसश्चाश्रयः सोऽपि रुद्राणां प्रवरो महान् ॥
स एव शंकरांशश्चाप्यन्ये रुद्राश्च तत्कलाः । भवांश्च निर्गुणस्तेषां प्रकृतेश्च परस्तथा ॥
सर्वेषां परमात्मा वै प्राणा विष्णुस्वरूपिणः । मानसं च स्वयं ब्रह्मा स्वयं ज्ञानात्मकः शिवः ॥
प्रवरः सर्वशक्तीनां बुद्धिः प्रकृतिरीश्वरी । स्वात्मनः प्रतिबिम्बस्ते जीवः सर्वेषु देहिषु ॥
जीवः स्वकर्मणां भोगी स्वयं साक्षी भवांस्तथा । सर्वे यान्ति त्वयि गते नरदेवे यथानुगाः ॥
सद्यः पतति देहश्च शवोऽस्पृश्यस्त्वया विना । मूढाः सन्तो न जानन्ति वञ्चितास्तव मायया ॥
त्वां भजन्त्येव ये सन्तो मायामेतां तरन्ति ते । त्रिगुणा प्रकृतिर्दुर्गा वैष्णवी च सनातनी ॥
परा नारायणीशानी तव माया दुरत्यया । त्वदंशाः प्रतिविश्वेषु ब्रह्मविष्णुशिवात्मकाः ॥
सर्वेषामपि विश्वेषामाश्रयो यो महान् विराट् । स शेते च जले योगाद् विश्वेशो गोकुले यथा ॥
स एव वासुर्भगवान् तस्य देवो भवान् परः । वासुदेव इति ख्यातः पुराविद्भिः प्रकीर्तितः ॥

त्वमेव कलया सूर्यस्त्वमेव कलया शशी। कलया च हुताशश्च कलया पवनः स्वयम्॥
कलया वरुणश्चैव कुबेरश्च यमस्तथा। कलया त्वं महेन्द्रश्च कलया धर्म एव च॥
त्वमेव कलया शेष ईशानो निर्ऋतिस्तथा। मुनयो मनवश्चैव ग्रहाश्च फलदायकाः॥
कलाकलांशांशेन सर्वे जीवाश्चराचराः। त्वं ब्रह्म परमं ज्योतिर्ध्यायन्ते योगिनस्तथा॥
ताश्चाप्रियन्तो भक्तास्ते ध्यायन्ते च तदन्तरे। नवीननीरदश्यामं पीतकौशेयवाससम्॥
ईषद्धास्यप्रसन्नास्यं भक्तेशं भक्तवत्सलम्। चन्दनोक्षितसर्वाङ्गं द्विभुजं मुरलीधरम्॥
मयूरपिच्छचूडं च मालतीमाल्यभूषितम्। अमूल्यरत्ननिर्माणकेयूरवलयान्वितम्॥
मणिकुण्डलयुग्मेन गण्डस्थलविराजितम्। रत्नसाराङ्गुलीयं च क्वणन्मञ्जीररञ्जितम्॥
कोटिकन्दर्पलीलाभं शरत्कमललोचनम्। शरत्पूर्णेन्दुनिन्द्यास्यं चन्द्रकोटिसमप्रभम्॥
वीक्षितं सस्मितरभिश्च गोपीनां कोटिकोटिभिः। वयस्यैः पार्षदैर्गोपैः सेवितं श्वेतचामरैः॥
गोपबालकवेषं च राधावक्षःस्थलस्थितम्। ध्यानासाध्यं दुराराध्यं ब्रह्मेशशेषवन्दितम्॥
सिद्धेन्द्रैश्च मुनीन्द्रैश्च योगीन्द्रैः प्रणतं स्तुतम्। वेदानिर्वचनीयं च परं स्वेच्छामयं विभुम्॥
स्थूलात् स्थूलतमं रूपं सूक्ष्मात् सूक्ष्मतमं परम्। सत्यं नित्यं प्रशस्तं च प्रकृतेः परमीश्वरम्॥
निर्लिप्तं च निरीहं च भगवन्तं सनातनम्। एवं ध्यात्वा च ते पूजाः स्निग्धदूर्वाक्षताञ्जलम्॥
पद्यापद्यार्चिते पादपद्मे च दातुमुत्सुकाः। वेदाः स्तोतुमशक्ताश्चाप्यशक्ता सा सरस्वती॥
शेषः स्तोतुमशक्तश्च स्वयम्भूः शम्भुरीश्वरम्। गणेशश्च दिनेशश्च महेन्द्रश्चन्द्र एव च॥
स्तोतुं नालं धनेशश्च किमन्ये जडबुद्धयः। गुणातीतमनीहं च किं स्तौमि निर्गुणं परम्॥
अपण्डितोऽहमसुरो न सुरः क्षन्तुमर्हसि।

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते बलिकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १११। २३—५१ $\frac{1}{2}$)

राधाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रम्

राधिकोवाच

अद्य मे सफलं जन्म जीवितं च सुजीवितम्। यद् दृष्टा मुखचन्द्रं ते सुस्निग्धं लोचनं मनः॥
पञ्च प्राणाश्च त्वाधाश्च परमात्मा च सुप्रियः। उभयोर्ईशबीजं च दुर्लभं बन्धुदर्शनम्॥
शोकार्णवे निमग्नाहं प्रदग्धा विरहानलैः। त्वद्दृष्ट्यामृतवृष्ट्या च सुषिक्ताद्य सुशीतला॥
शिवा शिवप्रदाहं च शिवबीजा त्वया सह। शिवस्वरूपा निश्चेष्टाप्यदृष्टा च त्वया विना॥
त्वयि तिष्ठति देहे च देही श्रीमाञ्छुचिः स्वयम्। सर्वशक्तिस्वरूपश्च शवरूपो गते त्वयि॥
स्त्रीपुंसोर्विरहो नाथ सामान्यश्च सुदारुणः। सान्येव शक्तिभिः प्राणा विच्छेद्याद् परमात्मनः॥
इत्युक्त्वा राधिका देवी परमात्मानमीश्वरम्। स्वासने वासयामास कृत्वा पादार्चनं मुदा॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते राधाकृतं श्रीकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२५। १५—२१)

ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचम्

शौनक उवाच

किं स्तोत्रं कवचं विष्णोर्मन्त्रपूजाविधिः पुरा। दत्तो वसिष्ठसूताभ्यां च तं भवान् वक्तुमर्हति॥
द्वादशाक्षरमन्त्रं च शूलिनः कवचादिकम्। दत्तं गन्धर्वराजाय वसिष्ठेन च किं पुरा॥
तदपि ब्रूहि हे सौते श्रोतुं कौतूहलं मम। शंकरस्तोत्रकवचं मन्त्रं दुर्गतिनाशनम्॥

सौतिरुवाच

तुष्टाव येन स्तोत्रेण मालती परमेश्वरम्। तदेव स्तोत्रं दत्तं च मन्त्रं च कवचं शृणु॥
ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा। इमं मन्त्रं कल्पतरुं प्रददौ षोडशाक्षरम्॥
पुरा दत्तं कुमाराय ब्रह्मणा पुष्करे हरेः। पुरा दत्तं च कृष्णेन गोलोके शंकराय च॥
ध्यानं च विष्णोर्वेदोक्तं शाश्वतं सर्वदुर्लभम्। मूलेन सर्वं देयं च नैवेद्यादिकमुत्तमम्॥
अतीवगुह्यं कवचं पितुर्वक्त्रान्मया श्रुतम्। पित्रे दत्तं पुरा विप्र गङ्गायां शूलिना धुवम्॥
शूलिने ब्रह्मणे दत्तं गोलोके रासमण्डले। धर्माय गोपीकान्तेन कृपया परमाद्भुतम्॥

ब्रह्मोवाच

राधाकान्त महाभाग कवचं यत् प्रकाशितम्। ब्रह्माण्डपावनं नाम कृपया कथय प्रभो॥
मां महेशं च धर्मं च भक्तं च भक्तवत्सल। त्वत्प्रसादेन पुत्रेभ्यो दास्यामि भक्तिसंयुतः॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु वक्ष्यामि ब्रह्मेश धर्मेदं कवचं परम्। अहं दास्यामि युष्मभ्यं गोपनीयं सुदुर्लभम्॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं प्राणतुल्यं ममैव हि। यत्तेजो मम देहेऽस्ति तत्तेजः कवचेऽपि च॥
कुरु सृष्टिमिदं धृत्वा धाता त्रिजगतां भव। संहर्ता भव हे शम्भो मम तुल्यो भवे भव॥
हे धर्म त्वमिदं धृत्वा भव साक्षी च कर्मणाम्। तपसां फलदाता च यूयं भवत मद्वरात्॥
ब्रह्माण्डपावनस्यास्य कवचस्य हरिः स्वयम्। ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवोऽहं जगदीश्वरः॥
धर्मार्थकाममोक्षेषु विनियोगः प्रकीर्तितः। त्रिलक्षवारपठनात् सिद्धिदं कवचं विधे॥
यो भवेत् सिद्धकवचो मम तुल्यो भवेत्तु सः। तेजसा सिद्धियोगेन ज्ञानेन विक्रमेण च॥
प्रणवो मे शिरः पातु नमो रासेश्वराय च। भालं पायान्नेत्रयुग्मं नमो राधेश्वराय च॥
कृष्णः पायाच्छ्रोत्रयुग्मं हे हरे घ्राणमेव च। जिह्विकां वह्निजाया तु कृष्णायेति च सर्वतः॥
श्रीकृष्णाय स्वाहेति च कण्ठं पातु षडक्षरः। ह्रीं कृष्णाय नमो वक्त्रं क्लीं पूर्वश्च भुजद्वयम्॥
नमो गोपाङ्गनेशाय स्कन्धावष्टाक्षरोऽवतु। दन्तपङ्क्तिमोष्ठयुग्मं नमो गोपीश्वराय च॥
ॐ नमो भगवते रासमण्डलेशाय स्वाहा। स्वयं वक्षःस्थलं पातु मन्त्रोऽयं षोडशाक्षरः॥
ऐं कृष्णाय स्वाहेति च कर्णयुग्मं सदावतु। ॐ विष्णवे स्वाहेति च कपोलं सर्वतोऽवतु॥
ॐ हरये नम इति पृष्ठं पादं सदावतु। ॐ गोवर्धनधारिणे स्वाहा सर्वशरीरकम्॥
प्राच्यां मां पातु श्रीकृष्ण आग्नेय्यां पातु माधवः। दक्षिणे पातु गोपीशो नैर्ऋत्यां नन्दनन्दनः॥
वारुण्यां पातु गोविन्दो वायव्यां राधिकेश्वरः। उत्तरे पातु रासेश ऐशान्यामच्युतः स्वयम्॥

संततं सर्वतः पातु परो नारायणः स्वयम् । इति ते कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम् ॥
मम जीवनतुल्यं च युष्मभ्यं दत्तमेव च । अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च।
कलां नार्हन्ति तान्येव कवचस्यैव धारणात् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः । स्नात्वा तं च नमस्कृत्य कवचं धारयेत् सुधीः ॥
कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः । यदि स्यात् सिद्धकवचो विष्णुरेव भवेद् द्विज ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्माण्डपावनं श्रीकृष्णकवचं सम्पूर्णम् ।

(ब्रह्मखण्ड १९ । ८—३८)

त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णकवचम्

महादेव उवाच

त्रैलोक्यविजयस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः । ऋषिश्छन्दश्च गायत्री देवो राधेश्वरः स्वयम् ॥
त्रैलोक्यविजयप्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः । परात्परं च कवचं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ॥
प्रणवो मे शिरः पातु श्रीकृष्णाय नमः सदा । पायात् कपालं कृष्णाय स्वाहा पञ्चाक्षरः स्मृतः ॥
कृष्णेति पातु नेत्रे च कृष्णस्वाहेति तारकम् । हरये नम इत्येवं भ्रूलतां पातु मे सदा ॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति नासिकां पातु संततम् । गोपालाय नमो गण्डौ पातु मे सर्वतः सदा ॥
ॐ नमो गोपाङ्गनेशाय कर्णौ पातु सदा मम । ॐ कृष्णाय नमः शश्वत् पातु मेऽधरयुग्मकम् ॥
ॐ गोविन्दाय स्वाहेति दन्तालीं मे सदावतु । ॐ कृष्णाय दन्तरन्ध्रं दन्तोर्ध्वं क्लीं सदावतु ॥
ॐ श्रीकृष्णाय स्वाहेति जिह्विकां पातु मे सदा । राधेश्वराय स्वाहेति तालुकं पातु मे सदा ॥
राधिकेशाय स्वाहेति कण्ठं पातु सदा मम । नमो गोपाङ्गनेशाय वक्षः पातु सदा मम ॥
ॐ गोपेशाय स्वाहेति स्कन्धं पातु सदा मम । नमः किशोरवेषाय स्वाहा पृष्ठं सदावतु ॥
उदरं पातु मे नित्यं मुकुन्दाय नमः सदा । ॐ ह्रीं क्लीं कृष्णाय स्वाहेति करौ पातु सदा मम ॥
ॐ विष्णवे नमो बाहुयुग्मं पातु सदा मम । ॐ ह्रीं भगवते स्वाहा नखरं पातु मे सदा ॥
ॐ नमो नारायणायेति नखरन्ध्रं सदावतु । ॐ ह्रीं ह्रीं पद्मनाभाय नाभिं पातु सदा मम ॥
ॐ सर्वेशाय स्वाहेति कङ्कालं पातु मे सदा । ॐ गोपीरमणाय स्वाहा नितम्बं पातु मे सदा ॥
ॐ गोपीरमणनाथाय पादौ पातु सदा मम । ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदावतु ॥
ॐ केशवाय स्वाहेति मम केशान् सदावतु । नमः कृष्णाय स्वाहेति ब्रह्मरन्ध्रं सदावतु ॥
ॐ माधवाय स्वाहेति लोमानि मे सदावतु । ॐ ह्रीं श्रीं रसिकेशाय स्वाहा सर्वं सदावतु ॥
परिपूर्णतमः कृष्णः प्राच्यां मां सर्वदावतु । स्वयं गोलोकनाथो मामाग्नेय्यां दिशि रक्षतु ॥
पूर्णब्रह्मस्वरूपश्च दक्षिणे मां सदावतु । नैर्ऋत्यां पातु मां कृष्णः पश्चिमे पातु मां हरिः ॥
गोविन्दः पातु मां शश्वद् वायव्यां दिशि नित्यशः । उत्तरे मां सदा पातु रसिकानां शिरोमणिः ॥
ऐशान्यां मां सदा पातु वृन्दावनविहारकृत् । वृन्दावनीप्राणनाथः पातु मामूर्ध्वदेशतः ॥
सदैव माधवः पातु बलिहारी महाबलः । जले स्थले चान्तरिक्षे नृसिंहः पातु मां सदा ॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् पातु मां माधवः सदा । सर्वान्तरात्मा निर्लिप्तः पातु मां सर्वतो विभुः ॥
इति ते कथितं वत्स सर्वमन्त्रौघविग्रहम् । त्रैलोक्यविजयं नाम कवचं परमाद्भुतम् ॥
मया श्रुतं कृष्णवक्त्रात् प्रवक्तव्यं न कस्यचित् । गुरुमभ्यर्च्य विधिवत् कवचं धारयेत्तु यः ॥
कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ सोऽपि विष्णुर्न संशयः । स च भक्तो वसेद् यत्र लक्ष्मीर्वाणी वसेत्ततः ॥

यदि स्यात् सिद्धकवचो जीवन्मुक्तो भवेत्तु सः। निश्चितं कोटिवर्षाणां पूजायाः फलमाप्नुयात्॥
राजसूयसहस्राणि वाजपेयशतानि च। अश्वमेधायुतान्येव नरमेधायुतानि च॥
महादानानि यान्येव प्रादक्षिण्यं भुवस्तथा। त्रैलोक्यविजयस्यास्य कलां नार्हन्ति षोडशीम्॥
व्रतोपवासनियमाः स्वाध्यायोऽध्ययनं तपः। स्नानं च सर्वतीर्थेषु नास्यार्हन्ति कलामपि॥
सिद्धत्वममरत्वं च दासत्वं श्रीहरेरपि। यदि स्यात् सिद्धकवचः सर्वं प्राप्नोति निश्चितम्॥
स भवेत् सिद्धकवचो दशलक्षं जपेत्तु यः। यो भवेत् सिद्धकवचः सर्वज्ञः स भवेद् ध्रुवम्॥
इदं कवचमज्ञात्वा भजेत् कृष्णं सुमन्दधीः। कोटिकल्पप्रजप्तोऽपि न मन्त्रः सिद्धिदायकः॥
गृहीत्वा कवचं वत्स महीं निःक्षत्रियां कुरु। त्रिःसप्तकृत्वो निःशङ्कः सदानन्दोऽवलीलया॥
राज्यं देयं शिरो देयं प्राणा देयाश्च पुत्रक। एवं भूतं च कवचं न देयं प्राणसङ्कटे॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते त्रैलोक्यविजयं नाम श्रीकृष्णकवचं सम्पूर्णम्।

(गणपतिखण्ड ३१। २३—५७)

ब्रह्माणं प्रति योगनिद्रयोपदिष्टं श्रीकृष्णकवचम्

योगनिद्रोवाच

दूरीभूतं कुरु भयं भयं किं ते हरौ स्थिते। स्थितायां मयि च ब्रह्मन् सुखं तिष्ठ जगत्पते॥
श्रीहरिः पातु ते वक्त्रं मस्तकं मधुसूदनः। श्रीकृष्णश्चक्षुषी पातु नासिकां राधिकापतिः॥
कर्णयुग्मं च कण्ठं च कपालं पातु माधवः। कपोलं पातु गोविन्दः केशांश्च केशवः स्वयम्॥
अधरोष्ठं हृषीकेशो दन्तपङ्क्तिं गदाग्रजः। रासेश्वरश्च रसनां तालुकं वामनो विभुः॥
वक्षः पातु मुकुन्दस्ते जठरं पातु दैत्यहा। जनार्दनः पातु नाभिं पातु विष्णुश्च ते हनुम्॥
नितम्बयुग्मं गुह्यं च पातु ते पुरुषोत्तमः। जानुयुग्मं जानकीशः पातु ते सर्वदा विभुः॥
हस्तयुग्मं नृसिंहश्च पातु सर्वत्र सङ्कटे। पादयुग्मं वराहश्च पातु ते कमलोद्भव॥
ऊर्ध्वं नारायणः पातु ह्यधस्तात् कमलापतिः। पूर्वस्यां पातु गोपालः पातु वह्नौ दशास्यहा॥
वनमाली पातु याम्यां वैकुण्ठः पातु नैर्ऋतौ। वारुण्यां वासुदेवश्च सतो रक्षाकरः स्वयम्॥
पातु ते संततमजो वायव्यां विष्टरश्रवाः। उत्तरे च सदा पातु तेजसा जलजासनः॥
ऐशान्यामीश्वरः पातु सर्वत्र पातु शत्रुजित्। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां पातु राघवः॥
इत्येवं कथितं ब्रह्मन् कवचं परमाद्भुतम्। कृष्णेन कृपया दत्तं स्मृतेनैव पुरा मया॥
शुम्भेन सह संग्रामे निर्लक्ष्ये घोरदारुणे। गगने स्थितया सद्यः प्राप्तिमात्रेण सो जितः॥
कवचस्य प्रभावेण धरण्यां पतितो मृतः। पूर्वं वर्षशतं खे च कृत्वा युद्धं भयावहम्॥
मृते शुम्भे च गोविन्दः कृपालुर्गगनस्थितः। माल्यं च कवचं दत्त्वा गोलोकं स जगाम ह॥
कल्पान्तरस्य वृत्तान्तं कृपया कथितं मुने। अभ्यन्तरभयं नास्ति कवचस्य प्रभावतः॥
कोटिशः कोटिशो नष्टा मया दृष्टाश्च वेधसः। अहं च हरिणा सार्धं कल्पे कल्पे स्थिता सदा॥
इत्युक्त्वा कवचं दत्त्वा सान्तर्धानं चकार ह। निःशङ्को नाभिकमले तस्थौ स कमलोद्भवः॥
सुवर्णगुटिकायां तु कृत्वेदं कवचं परम्। कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ बध्नीयाद् यः सुधीः सदा॥
विषाग्निसर्पशत्रुभ्यो भयं तस्य न विद्यते। जले स्थले चान्तरिक्षे निद्रायां रक्षतीश्वरः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्माणं प्रति योगनिद्रयोपदिष्टं श्रीकृष्णकवचं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२। १७—३६)

श्रीराधायाः परीहारस्तोत्रम्

त्वं देवी जगतां माता विष्णुमाया सनातनी । कृष्णप्राणाधिदेवी च कृष्णप्राणाधिका शुभा ॥
कृष्णप्रेममयी शक्तिः कृष्णसौभाग्यरूपिणी । कृष्णभक्तिप्रदे राधे नमस्ते मङ्गलप्रदे ॥
अद्य मे सफलं जन्म जीवनं सार्थकं मम । पूजितासि मया सा च या श्रीकृष्णेन पूजिता ॥
कृष्णवक्षसि या राधा सर्वसौभाग्यसंयुता । रासे रासेश्वरीरूपा वृन्दा वृन्दावने वने ॥
कृष्णप्रिया च गोलोके तुलसी कानने तु या । चम्पावती कृष्णसंगे क्रीडा चम्पककानने ॥
चन्द्रावली चन्द्रवने शतशृङ्गे सतीति च । विरजादर्पहन्त्री च विरजातटकानने ॥
पद्मावती पद्मवने कृष्णा कृष्णसरोवरे । भद्रा कुञ्जकुटीरे च काम्या च काम्यके वने ॥
वैकुण्ठे च महालक्ष्मीर्वाणी नारायणोरसि । क्षीरोदे सिन्धुकन्या च मर्त्ये लक्ष्मीर्हरिप्रिया ॥
सर्वस्वर्गे स्वर्गलक्ष्मीर्देवदुःखविनाशिनी । सनातनी विष्णुमाया दुर्गा शंकरवक्षसि ॥
सावित्री वेदमाता च कलया ब्रह्मवक्षसि । कलया धर्मपत्नी त्वं नरनारायणप्रसूः ॥
कलया तुलसी त्वं च गङ्गा भुवनपावनी । लोमकूपोद्भवा गोप्यः कलांशा रोहिणी रतिः ॥
कलाकलांशरूपा च शतरूपा शची दितिः । अदितिर्देवमाता च त्वत्कलांशा हरिप्रिया ॥
देव्यश्च मुनिपत्न्यश्च त्वत्कलाकलया शुभे । कृष्णभक्तिं कृष्णदास्यं देहि मे कृष्णपूजिते ॥
एवं कृत्वा परीहारं स्तुत्वा च कवचं पठेत् । पुरा कृतं स्तोत्रमेतद् भक्तिदास्यप्रदं शुभम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीराधायाः परीहारस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(प्रकृतिखण्ड ५५ । ४४—५७)

श्रीकृष्णकृतं श्रीराधास्तोत्रम्

श्रीकृष्ण उवाच

एवमेव प्रियोऽहं ते प्रमोदश्चैव ते मयि । सुव्यक्तमद्य कापट्यवचनं ते वरानने ॥
हे कृष्ण त्वं मम प्राणा जीवात्मेति च संततम् । ब्रूषे नित्यं तु यत् प्रेम्णा साम्प्रतं तद् गतं ध्रुवम् ॥
अस्माकं वचनं सत्यं यद् ब्रवीमीति तद् ध्रुवम् । पञ्चप्राणाधिदेवी त्वं राधा प्राणाधिकेति मे ॥
शक्तो न रक्षितुं त्वां च यान्ति प्राणास्त्वया विना । विनाधिष्ठातृदेवीं च को वा कुत्र च जीवति ॥
महाविष्णोश्च माता त्वं मूलप्रकृतिरीश्वरी । सगुणा त्वं च कलया निर्गुणा स्वयमेव तु ॥
ज्योतीरूपा निराकारा भक्तानुग्रहविग्रहा । भक्तानां रुचिवैचित्र्यान्नानामूर्तीश्च बिभ्रती ॥
महालक्ष्मीश्च वैकुण्ठे भारती च सतां प्रसूः । पुण्यक्षेत्रे भारते च सती त्वं पार्वती तथा ॥
तुलसी पुण्यरूपा च गङ्गा भुवनपावनी । ब्रह्मलोके च सावित्री कलया त्वं वसुन्धरा ॥
गोलोके राधिका त्वं च सर्वगोपालकेश्वरी । त्वया विनाहं निर्जीवो ह्यशक्तः सर्वकर्मसु ॥
शिवः शक्तस्त्वया शक्त्या शवाकारस्त्वया विना । वेदकर्ता स्वयं ब्रह्मा वेदमात्रा त्वया सह ॥
नारायणस्त्वया लक्ष्म्या जगत्पाता जगत्पतिः । फलं ददाति यज्ञश्च त्वया दक्षिणया सह ॥
बिभर्ति सृष्टिं शेषश्च त्वां कृत्वा मस्तके भुवम् । बिभर्ति गङ्गारूपां त्वां मूर्ध्नि गङ्गाधरः शिवः ॥
शक्तिमच्च जगत् सर्वं शवरूपं त्वया विना । वक्ता सर्वस्त्वया वाण्या मूको मूकस्त्वया विना ॥

यथा मृदा घटं कर्तुं कुलालः शक्तिमान् सदा । सृष्टिं स्रष्टुं तथाहं च प्रकृत्या च त्वया सह ॥
त्वया विना जडश्चाहं सर्वत्र च न शक्तिमान् । सर्वशक्तिस्वरूपा त्वं समागच्छ ममान्तिकम् ॥
वह्नौ त्वं दाहिका शक्तिर्नाग्निः शक्तस्त्वया विना । शोभास्वरूपा चन्द्रे त्वं त्वां विना न स सुन्दरः ॥
प्रभारूपा हि सूर्ये त्वं त्वां विना न स भानुमान् । न कामः कामिनीबन्धुस्त्वया रत्या विना प्रिये ॥
इत्येवं स्तवनं कृत्वा तां सम्प्राप जगत्प्रभुः । देवा बभूवुः सश्रीकाः सभार्याः शक्तिसंयुताः ॥
सस्त्रीकं च जगत् सर्वं बभूव शैलकन्यके । गोपीपूर्णश्च गोलोको बभूव तत्प्रसादतः ॥
राजा जगाम गोलोकमिति स्तुत्वा हरिप्रियाम् । श्रीकृष्णेन कृतं स्तोत्रं राधाया यः पठेन्नरः ॥
कृष्णाधिकं च तद्दास्यं स प्राप्नोति न संशयः । स्त्रीविच्छेदे यः शृणोति मासमेकमिदं शुचिः ॥
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । भार्याहीनो भाग्यहीनो वर्षमेकं शृणोति यः ॥
अचिराल्लभते भार्यां सुशीलां सुन्दरीं सतीम् । पुरा मया च त्वं प्राप्ता स्तोत्रेणानेन पार्वति ॥
मृतायां दक्षकन्यायामाज्ञया परमात्मनः । स्तोत्रेणानेन सम्प्राप्ता सावित्री ब्रह्मणा पुरा ॥
पुरा दुर्वाससः शापान्निःश्रीके देवतागणे । स्तोत्रेणानेन देवैस्तैः सम्प्राप्ता श्रीः सुदुर्लभा ॥
शृणोति वर्षमेकं च पुत्रार्थी लभते सुतम् । महाव्याधी रोगमुक्तो भवेत् स्तोत्रप्रसादतः ॥
कार्तिकीपूर्णिमायां तु तां सम्पूज्य पठेत्तु यः । अचलां श्रियमाप्नोति राजसूयफलं लभेत् ॥
नारी शृणोति चेत् स्तोत्रं स्वामिसौभाग्यसंयुता । भक्त्या शृणोति यः स्तोत्रं बन्धनान्मुच्यते ध्रुवम् ॥
नित्यं पठति यो भक्त्या राधां सम्पूज्य भक्तितः । स प्रयाति च गोलोकं निर्मुक्तो भवबन्धनात् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीकृष्णकृतं श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम् ।

(प्रकृतिखण्ड ५५ । ७३—१०१)

ब्रह्मणा कृतं श्रीराधास्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

हे मातस्त्वत्पदाम्भोजं दृष्टं कृष्णप्रसादतः ॥

सुदुर्लभं च सर्वेषां भारते च विशेषतः । षष्टिवर्षसहस्राणि तपस्तप्तं पुरा मया ॥
भास्करे पुष्करे तीर्थे कृष्णस्य परमात्मनः । आजगाम वरं दातुं वरदाता हरिः स्वयम् ॥
वरं वृणीष्वेत्युक्ते च स्वाभीष्टं च वृतं मुदा । राधिकाचरणाम्भोजं सर्वेषामपि दुर्लभम् ॥
हे गुणातीत मे शीघ्रमधुनैव प्रदर्शय । मयेत्युक्तो हरिरयमुवाच मां तपस्विनम् ॥
दर्शयिष्यामि काले च वत्सेदानीं क्षमेति च । न हीश्वराज्ञा विफला तेन दृष्टं पदाम्बुजम् ॥
सर्वेषां वाञ्छितं मातर्गोलोके भारतेऽधुना । सर्वा देव्यः प्रकृत्यंशा जन्याः प्राकृतिका ध्रुवम् ॥
त्वं कृष्णाङ्गार्धसम्भूता तुल्या कृष्णेन सर्वतः । श्रीकृष्णस्त्वमयं राधा त्वं राधा वा हरिः स्वयम् ॥
न हि वेदेषु मे दृष्ट इति केन निरूपितम् । ब्रह्माण्डाद् बहिरूर्ध्वं च गोलोकोऽस्ति यथाम्बिके ॥
वैकुण्ठश्चाप्यजन्यश्च त्वमजन्या तथाम्बिके । यथा समस्तब्रह्माण्डे श्रीकृष्णांशांशजीविनः ॥
तथा शक्तिस्वरूपा त्वं तेषु सर्वेषु संस्थिता । पुरुषाश्च हरेरंशास्त्वदंशा निखिलाः स्त्रियः ॥
आत्मनो देहरूपा त्वमस्याधारस्त्वमेव हि । अस्या तु प्राणैस्त्वं मातस्त्वत्प्राणैरयमीश्वरः ॥
किमहो निर्मितः केन हेतुना शिल्पकारिणा । नित्योऽयं च यथा कृष्णस्त्वं च नित्या तथाम्बिके ॥
अस्यांशा त्वं त्वदंशो वाप्ययं केन निरूपितः । अहं विधाता जगतां वेदानां जनकः स्वयम् ॥
तं पठित्वा गुरुमुखाद् भवन्त्येव बुधा जनाः । गुणानां वा स्तवानां ते शतांशं वक्तुमक्षमः ॥

वेदो वा पण्डितो वान्यः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः। स्तवानां जनकं ज्ञानं बुद्धिर्ज्ञानाम्बिका सदा॥
त्वं बुद्धेर्जननी मातः को वा त्वां स्तोतुमीश्वरः। यद्वस्तु दृष्टं सर्वेषां तद्विवक्तुं बुधः क्षमः॥
यददृष्टाश्रुतं वस्तु तन्निर्वक्तुं च कः क्षमः। अहं महेशोऽनन्तश्च स्तोतुं त्वां कोऽपि न क्षमः॥
सरस्वती च वेदाश्च क्षमः कः स्तोतुमीश्वरि। यथागमं यथोक्तं च न मां निन्दितुमर्हसि॥
ईश्वराणामीश्वरस्य योग्यायोग्ये समा कृपा। जनस्य प्रतिपाल्यस्य क्षणे दोषः क्षणे गुणः॥
जननी जनको यो वा सर्वं क्षमति स्नेहतः। इत्युक्त्वा जगतां धाता तस्थौ च पुरतस्तयोः॥
प्रणम्य चरणाम्भोजं सर्वेषां वन्द्यमीप्सितम्। ब्रह्मणा च कृतं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः।
राधामाधवयोः पादे भक्तिं दास्यं लभेद् ध्रुवम्॥
कर्मनिर्मूलनं कृत्वा मृत्युं जित्वा सुदुर्जयम्। विलङ्घ्य सर्वलोकांश्च याति गोलोकमुत्तमम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मणा कृतं श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १५। ९४—११६)

श्रीनारायणकृतं राधाषोडशनामवर्णनम्

श्रीनारायण उवाच

राधा रासेश्वरी रासवासिनी रसिकेश्वरी। कृष्णप्राणाधिका कृष्णप्रिया कृष्णस्वरूपिणी॥
कृष्णवामाङ्गसम्भूता परमानन्दरूपिणी। कृष्णा वृन्दावनी वृन्दा वृन्दावनविनोदिनी॥
चन्द्रावली चन्द्रकान्ता शतचन्द्रप्रभानना। नामान्येतानि साराणि तेषामभ्यन्तराणि च॥
राधेत्येवं च संसिद्धौ राकारो दानवाचकः। स्वयं निर्वाणदात्री या सा राधा परिकीर्तिता॥
रासेश्वरस्य पत्नीयं तेन रासेश्वरी स्मृता। रासे च वासो यस्याश्च तेन सा रासवासिनी॥
सर्वासां रसिकानां च देवीनामीश्वरी परा। प्रवदन्ति पुरा सन्तस्तेन तां रसिकेश्वरीम्॥
प्राणाधिका प्रेयसी सा कृष्णस्य परमात्मनः। कृष्णप्राणाधिका सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥
कृष्णस्यातिप्रिया कान्ता कृष्णो वास्याः प्रियः सदा। सर्वैर्देवगणैरुक्ता तेन कृष्णप्रिया स्मृता॥
कृष्णरूपं संनिधातुं या शक्ता चावलीलया। सर्वांशैः कृष्णसदृशी तेन कृष्णस्वरूपिणी॥
वामाङ्गार्धेन कृष्णस्य या सम्भूता परा सती। कृष्णवामाङ्गसम्भूता तेन कृष्णेन कीर्तिता॥
परमानन्दराशिश्च स्वयं मूर्तिमती सती। श्रुतिभिः कीर्तिता तेन परमानन्दरूपिणी॥
कृषिर्मोक्षार्थवचनो न एवोत्कृष्टवाचकः। आकारो दातृवचनस्तेन कृष्णा प्रकीर्तिता॥
अस्ति वृन्दावनं यस्यास्तेन वृन्दावनी स्मृता। वृन्दावनस्याधिदेवी तेन वाथ प्रकीर्तिता॥
सङ्घः सखीनां वृन्दः स्यादकारोऽप्यस्तिवाचकः। सखिवृन्दोऽस्ति यस्याश्च सा वृन्दा परिकीर्तिता॥
वृन्दावने विनोदश्च सोऽस्या ह्यस्ति च तत्र वै। वेदा वदन्ति तां तेन वृन्दावनविनोदिनीम्॥
नखचन्द्रावली वक्त्रचन्द्रोऽस्ति यत्र संततम्। तेन चन्द्रावली सा च कृष्णेन परिकीर्तिता॥
कान्तिरस्ति चन्द्रतुल्या सदा यस्या दिवानिशम्। सा चन्द्रकान्ता हर्षेण हरिणा परिकीर्तिता॥
शरच्चन्द्रप्रभा यस्याश्चाननेऽस्ति दिवानिशम्। मुनिना कीर्तिता तेन शरच्चन्द्रप्रभानना॥
इदं षोडशनामोक्तमर्थव्याख्यानसंयुतम्। नारायणेन यद्दत्तं ब्रह्मणे नाभिपङ्कजे॥
ब्रह्मणा च पुरा दत्तं धर्माय जनकाय मे॥
धर्मेण कृपया दत्तं मह्यमादित्यपर्वणि। पुष्करे च महातीर्थे पुण्याहे देवसंसदि॥
राधाप्रभावप्रस्तावे सुप्रसन्नेन चेतसा॥

इदं स्तोत्रं महापुण्यं तुभ्यं दत्तं मया मुने । निन्दकायावैष्णवाय न दातव्यं महामुने ॥
यावज्जीवमिदं स्तोत्रं त्रिसंध्यं यः पठेन्नरः । राधामाधवयोः पादपद्मे भक्तिर्भवेदिह ॥
अन्ते लभेत्तयोर्दास्यं शश्वत्सहचरो भवेत् । अणिमादिकसिद्धिं च सम्प्राप्य नित्यविग्रहम् ॥
व्रतदानोपवासैश्च सर्वैर्नियमपूर्वकैः । चतुर्णां चैव वेदानां पाठैः सर्वार्थसंयुतैः ॥
सर्वेषां यज्ञतीर्थानां करणैर्विधिबोधितैः । प्रदक्षिणेन भूमेश्च कृत्स्नाया एव सप्तधा ॥
शरणागतरक्षायामज्ञानां ज्ञानदानतः । देवानां वैष्णवानां च दर्शनेनापि यत् फलम् ॥
तदेव स्तोत्रपाठस्य कलां नार्हति षोडशीम् । स्तोत्रस्यास्य प्रभावेण जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीनारायणकृतं राधाषोडशनामवर्णनम् ।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १७ । २२०—२४६)

उद्धवकृतं श्रीराधास्तोत्रम्

उद्धव उवाच

वन्दे राधापदाम्भोजं ब्रह्मादिसुरवन्दितम् । यत्कीर्तिकीर्तनेनैव पुनाति भुवनत्रयम् ॥
नमो गोकुलवासिन्यै राधिकायै नमो नमः । शतशृङ्गनिवासिन्यै चन्द्रावत्यै नमो नमः ॥
तुलसीवनवासिन्यै वृन्दारण्यै नमो नमः । रासमण्डलवासिन्यै रासेश्वर्यै नमो नमः ॥
विरजातीरवासिन्यै वृन्दायै च नमो नमः । वृन्दावनविलासिन्यै कृष्णायै च नमो नमः ॥
नमः कृष्णप्रियायै च शान्तायै च नमो नमः । कृष्णवक्षःस्थितायै च तत्प्रियायै नमो नमः ॥
नमो वैकुण्ठवासिन्यै महालक्ष्म्यै नमो नमः । विद्याधिष्ठातृदेव्यै च सरस्वत्यै नमो नमः ॥
सर्वैश्वर्याधिदेव्यै च कमलायै नमो नमः । पद्मनाभप्रियायै च पद्मायै च नमो नमः ॥
महाविष्णोश्च मात्रे च परायै नमो नमः । नमः सिन्धुसुतायै च मर्त्यलक्ष्म्यै नमो नमः ॥
नारायणप्रियायै च नारायण्यै नमो नमः । नमोऽस्तु विष्णुमायायै वैष्णव्यै च नमो नमः ॥
महामायास्वरूपायै सम्पदायै नमो नमः । नमः कल्याणरूपिण्यै शुभायै च नमो नमः ॥
मात्रे चतुर्णां वेदानां सावित्र्यै च नमो नमः । नमो दुर्गविनाशिन्यै दुर्गादेव्यै नमो नमः ॥
तेजःसु सर्वदेवानां पुरा कृतयुगे मुदा । अधिष्ठानकृतायै च प्रकृत्यै च नमो नमः ॥
नमस्त्रिपुरहारिण्यै त्रिपुरायै नमो नमः । सुन्दरीषु च रम्यायै निर्गुणायै नमो नमः ॥
नमो निद्रास्वरूपायै निर्गुणायै नमो नमः । नमो दक्षसुतायै च नमः सत्यै नमो नमः ॥
नमः शैलसुतायै च पार्वत्यै च नमो नमः । नमो नमस्तपस्विन्यै ह्युमायै च नमो नमः ॥
निराहारस्वरूपायै ह्यपर्णायै नमो नमः । गौरीलोकविलासिन्यै नमो गौर्यै नमो नमः ॥
नमः कैलासवासिन्यै माहेश्वर्यै नमो नमः । निद्रायै च दयायै च श्रद्धायै च नमो नमः ॥
नमो धृत्यै क्षमायै च लज्जायै च नमो नमः । तृष्णायै क्षुत्स्वरूपायै स्थितिकर्त्र्यै नमो नमः ॥
नमः संहाररूपिण्यै महामार्यै नमो नमः । भयायै चाभयायै च मुक्तिदायै नमो नमः ॥
नमः स्वधायै स्वाहायै शान्त्यै कान्त्यै नमो नमः । नमस्तुष्ट्यै च पुष्ट्यै च दयायै च नमो नमः ॥
नमो निद्रास्वरूपायै श्रद्धायै च नमो नमः । क्षुत्पिपासास्वरूपायै लज्जायै च नमो नमः ॥
नमो धृत्यै क्षमायै च चेतनायै नमो नमः । सर्वशक्तिस्वरूपिण्यै सर्वमात्रे नमो नमः ॥
अग्नौ दाहस्वरूपायै भद्रायै च नमो नमः । शोभायै पूर्णचन्द्रे च शरत्पद्मे नमो नमः ॥
नास्ति भेदो यथा देवि दुग्धधावल्ययोः सदा । यथैव गन्धभूम्योश्च यथैव जलशैत्ययोः ॥
यथैव शब्दनभसोर्ज्योतिःसूर्यकयोर्यथा । लोके वेदे पुराणे च राधामाधवयोस्तथा ॥

चेतनं कुरु कल्याणि देहि मामुत्तरं सति। इत्युक्त्वा चोद्धवस्तत्र प्रणनाम पुनः पुनः॥
इत्युद्धवकृतं स्तोत्रं यः पठेद् भक्तिपूर्वकम्। इह लोके सुखं भुक्त्वा यात्यन्ते हरिमन्दिरम्॥
न भवेद् बन्धुविच्छेदो रोगः शोकः सुदारुणः। प्रोषिता स्त्री लभेत् कान्तं भार्याभेदी लभेत् प्रियाम्॥
अपुत्रो लभते पुत्रान् निर्धनो लभते धनम्। निर्भूमिर्लभते भूमिं प्रजाहीनो लभेत् प्रजाम्॥
रोगाद् विमुच्यते रोगी बद्धो मुच्येत बन्धनात्। भयान्मुच्येत भीतस्तु मुच्येतापन्न आपदः॥
अस्पष्टकीर्तिः सुयशा मूर्खो भवति पण्डितः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते उद्धवकृतं श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ९२। ६३—९३)

उद्धवकृता श्रीराधाप्रार्थना

उद्धव उवाच

चेतनं कुरु कल्याणि जगन्मातर्नमोऽस्तु ते। त्वमेव प्राक्तनं सर्वं कृष्णं द्रक्ष्यसि साम्प्रतम्॥
त्वत्तो विश्वं पवित्रं च त्वत्पादरजसा मही। सुपवित्रं त्वदुदरं पुण्यवत्यश्च गोपिकाः॥
लोकास्त्वामेव गायन्ति गीतैर्मङ्गलसंस्तवैः। त्वत्सुकीर्तिं च वेदाश्च सनकाद्याश्च संततम्॥
कृतपापहरां पुण्यां तीर्थपूतां च निर्मलाम्। हरिभक्तिप्रदां भद्रां सर्वविघ्नविनाशिनीम्॥
त्वमेव राधा त्वं कृष्णस्त्वं पुमान् प्रकृतिःपरा। राधामाधवयोर्भेदो न पुराणे श्रुतौ तथा॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते उद्धवकृता श्रीराधाप्रार्थना सम्पूर्णा।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ९४। ३—७)

गणेशकृतं श्रीराधास्तवनम्

श्रीगणेश उवाच

तव पूजा जगन्मातर्लोकशिक्षाकरी शुभे। ब्रह्मस्वरूपा भवती कृष्णवक्षःस्थलस्थिता॥
यत्पादपद्ममतुलं ध्यायन्ते ते सुदुर्लभम्। सुरा ब्रह्मेशशेषाद्या मुनीन्द्राः सनकादयः॥
जीवन्मुक्ताश्च भक्ताश्च सिद्धेन्द्राः कपिलादयः। तस्य प्राणाधिदेवी त्वं प्रिया प्राणाधिका परा॥
वामाङ्गनिर्मिता राधा दक्षिणाङ्गश्च माधवः। महालक्ष्मीर्जगन्माता तव वामाङ्गनिर्मिता॥
वससि सर्वनिवासस्य प्रसूस्त्वं परमेश्वरी। वेदानां जगतामेव मूलप्रकृतिरीश्वरी॥
सर्वाः प्राकृतिका मातः सृष्टौ च त्वद्विभूतयः। विश्वानि कार्यरूपाणि त्वं च कारणरूपिणी॥
प्रलये ब्रह्मणः पाते तन्निमेषो हरेरपि। आदौ राधां समुच्चार्य पश्चात् कृष्णं परात्परम्॥
स एव पण्डितो योगी गोलोकं याति लीलया। व्यतिक्रमे महापापी ब्रह्महत्यां लभेद् ध्रुवम्॥
जगतां भवती माता परमात्मा पिता हरिः। पितुरेव गुरुर्माता पूज्या वन्द्या परात्परा॥
भजते देवमन्यं वा कृष्णं वा सर्वकारणम्। पुण्यक्षेत्रे महामूढो यदि निन्दति राधिकाम्॥
वंशहानिर्भवेत्तस्य दुःखशोकमिहैव च। पच्यते निरये घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ॥
गुरुश्च ज्ञानोद्गिरणाज्ज्ञानं स्यान्मन्त्रतन्त्रयोः। स च मन्त्रश्च तत्तन्त्रं भक्तिः स्याद् युवयोर्यतः॥
निषेव्य मन्त्रं देवानां जीवा जन्मनि जन्मनि। भक्ता भवन्ति दुर्गायाः पादपद्मे सुदुर्लभे॥
निषेव्य मन्त्रं शम्भोश्च जगतां कारणस्य च। तदा प्राप्नोति युवयोः पादपद्मं सुदुर्लभम्॥

युवयोः पादपद्मं च दुर्लभं प्राप्य पुण्यवान्। क्षणार्धं षोडशांशं च न हि मुञ्चति दैवतः॥
भक्त्या च युवयोर्मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवादपि। स्तवं वा कवचं वापि कर्ममूलनिकृन्तनम्॥
यो जपेत् परया भक्त्या पुण्यक्षेत्रे च भारते। पुरुषाणां सहस्रं च स्वात्मना सार्धमुद्धरेत्॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः। कवचं धारयेद् यो हि विष्णुतुल्यो भवेद् ध्रुवम्॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते गणेशकृतं श्रीराधास्तवनं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२२। ३—२०)

ब्रह्मेशशेषादिकृतं श्रीराधास्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

षष्टिवर्षसहस्राणि दिव्यानि परमेश्वरि। पुष्करे च तपस्तप्तं पुण्यक्षेत्रे च भारते॥
त्वत्पादपद्ममधुरमधुलुब्धेन चेतसा। मधुव्रतेन लोभेन प्रेरितेन मया सति॥
तथापि न मया लब्धं त्वत्पादपद्ममीप्सितम्। न दृष्टमपि स्वप्नेऽपि जाता वागशरीरिणी॥
वाराहे भारते वर्षे पुण्ये वृन्दावने वने। सिद्धाश्रमे गणेशस्य पादपद्मं च द्रक्ष्यसि॥
राधामाधवयोर्दास्यं कुतो विषयिणस्तव। निवर्तस्व महाभाग परमेतत् सुदुर्लभम्॥
इति श्रुत्वा निवृत्तोऽहं तपसे भग्नमानसः। परिपूर्णं तदधुना वाञ्छितं तपसः फलम्॥

श्रीमहादेव उवाच

पद्मैः पद्मार्चितं पादपद्मं यस्य सुदुर्लभम्। ध्यायन्ते ध्याननिष्ठाश्च शश्वद् ब्रह्मादयः सुराः॥
मुनयो मनवश्चैव सिद्धाः सन्तश्च योगिनः। द्रष्टुं नैव क्षमाः स्वप्ने भवती तस्य वक्षसि॥

अनन्त उवाच

वेदाश्च वेदमाता च पुराणानि च सुव्रते। अहं सरस्वती सन्तः स्तोतुं नालं च संततम्॥
अस्माकं स्तवने यस्य भ्रूभङ्गश्च सुदुर्लभः। तवैव भर्त्सने भीतश्चावयोरन्तरं हरिः॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मेशशेषादिकृतं श्रीराधास्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड १२२। ९८—१०७)

श्रीराधिकाकवचम्

महेश्वर उवाच

श्रीजगन्मङ्गलस्यास्य कवचस्य प्रजापतिः॥
ऋषिश्छन्दोऽस्य गायत्री देवी रासेश्वरी स्वयम्। श्रीकृष्णभक्तिसम्प्राप्तौ विनियोगः प्रकीर्तितः॥
शिष्याय कृष्णभक्ताय ब्राह्मणाय प्रकाशयेत्। शठाय परशिष्याय दत्त्वा मृत्युमवाप्नुयात्॥
राज्यं देयं शिरो देयं न देयं कवचं प्रिये। कण्ठे धृतमिदं भक्त्या कृष्णेन परमात्मना॥
मया दृष्टं च गोलोके ब्रह्मणा विष्णुना पुरा। ॐ राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥
कृष्णेनोपासितो मन्त्रः कल्पवृक्षः शिरोऽवतु। ॐ ह्रीं श्रीं राधिकाङेन्तं वह्निजायान्तमेव च॥
कपालं नेत्रयुग्मं च श्रोत्रयुग्मं सदावतु। ॐ रां ह्रीं श्रीं राधिकेति ङेन्तं वह्निजायान्तमेव च॥
मस्तकं केशसंघांश्च मन्त्रराजः सदावतु। ॐ रां राधेति चतुर्थ्यन्तं वह्निजायान्तमेव च॥
सर्वसिद्धिप्रदः पातु कपोलं नासिकां मुखम्। क्लीं श्रीं कृष्णप्रियाङेन्तं कण्ठं पातु नमोऽन्तकम्॥

ॐ रां रासेश्वरीऽन्तं स्कन्धं पातु नमोऽन्तकम् । ॐ रां रासविलासिन्यै स्वाहा पृष्ठं सदावतु ॥
वृन्दावनविलासिन्यै स्वाहा वक्षः सदावतु । तुलसीवनवासिन्यै स्वाहा पातु नितम्बकम् ॥
कृष्णप्राणाधिकाऽन्तं स्वाहान्तं प्रणवादिकम् । पादयुग्मं च सर्वाङ्गं संततं पातु सर्वतः ॥
राधा रक्षतु प्राच्यां च वह्नौ कृष्णप्रियावतु । दक्षे रासेश्वरी पातु गोपीशा नैर्ऋतेऽवतु ॥
पश्चिमे निर्गुणा पातु वायव्ये कृष्णपूजिता । उत्तरे संततं पातु मूलप्रकृतिरीश्वरी ॥
सर्वेश्वरी सदैशान्यां पातु मां सर्वपूजिता । जले स्थले चान्तरिक्षे स्वप्ने जागरणे तथा ॥
महाविष्णोश्च जननी सर्वतः पातु संततम् । कवचं कथितं दुर्गे श्रीजगन्मङ्गलं परम् ॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं गूढाद् गूढतरं परम् । तव स्नेहान्मयाख्यातं प्रवक्तव्यं न कस्यचित् ॥
गुरुमभ्यर्च्य विधिवद् वस्त्रालंकारचन्दनैः । कण्ठे वा दक्षिणे बाहौ धृत्वा विष्णुसमो भवेत् ॥
शतलक्षजपेनैव सिद्धं च कवचं भवेत् । यदि स्यात् सिद्धकवचो न दग्धो वह्निना भवेत् ॥
एतस्मात् कवचाद् दुर्गे राजा दुर्योधनः पुरा । विशारदो जलस्तम्भे वह्निस्तम्भे च निश्चितम् ॥
मया सनत्कुमाराय पुरा दत्तं च पुष्करे । सूर्यपर्वणि मेरौ च स सान्दीपनये ददौ ॥
बलाय तेन दत्तं च ददौ दुर्योधनाय सः । कवचस्य प्रसादेन जीवन्मुक्तो भवेन्नरः ॥
नित्यं पठति भक्त्येदं तन्मन्त्रोपासकश्च यः । विष्णुतुल्यो भवेन्नित्यं राजसूयफलं लभेत् ॥
स्नानेन सर्वतीर्थानां सर्वदानेन यत्फलम् । सर्वव्रतोपवासे च पृथिव्याश्च प्रदक्षिणे ॥
सर्वयज्ञेषु दीक्षायां नित्यं च सत्यरक्षणे । नित्यं श्रीकृष्णसेवायां कृष्णनैवेद्यभक्षणे ॥
पाठे चतुर्णां वेदानां यत्फलं च लभेन्नरः । तत्फलं लभते नूनं पठनात् कवचस्य च ॥
राजद्वारे श्मशाने च सिंहव्याघ्रान्विते वने । दावाग्नौ संकटे चैव दस्युचौरान्विते भये ॥
कारागारे विपद्ग्रस्ते घोरे च दृढबन्धने । व्याधियुक्तो भवेन्मुक्तो धारणात् कवचस्य च ॥
इत्येतत्कथितं दुर्गे तवैवेदं महेश्वरि । त्वमेव सर्वरूपा मां माया पृच्छसि मायया ॥

श्रीनारायण उवाच

इत्युक्त्वा राधिकाख्यानं स्मारं स्मारं च माधवम् । पुलकाङ्कितसर्वाङ्गः साश्रुनेत्रो बभूव सः ॥
न कृष्णसदृशो देवो न गङ्गासदृशी सरित् । न पुष्करसमं तीर्थं न वर्णो ब्राह्मणात् परः ॥
परमाणुपरं सूक्ष्मं महाविष्णोः परो महान् । नभःपरं च विस्तीर्णं यथा नास्त्येव नारद ॥
तथा न वैष्णवाज्ज्ञानी योगीन्द्रः शंकरात् परः । कामक्रोधलोभमोहा जितास्तेनैव नारद ॥
स्वप्ने जागरणे शश्वत् कृष्णध्यानरतः शिवः । यथा कृष्णस्तथा शम्भुर्न भेदो माधवेशयोः ॥
यथा शम्भुर्वैष्णवेषु यथा देवेषु माधवः । तथेदं कवचं वत्स कवचेषु प्रशस्तकम् ॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते श्रीराधिकाकवचं सम्पूर्णम् ।

(प्रकृतिखण्ड ५६ । २८—६२)

ब्रह्मादिकृतं श्रीराधाकृष्णस्तोत्रम्

ब्रह्मोवाच

तव चरणसरोजे मन्मनश्चञ्चरीको भ्रमतु सततमीश प्रेमभक्त्या सरोजे ।
जननमरणरोगात् पाहि शान्त्यौषधेन सुदृढसुपरिपक्वां देहि भक्तिं च दास्यम् ॥

शंकर उवाच

भवजलनिधिमग्नश्चित्तमीनो मदीयो भ्रमति सततमस्मिन् घोरसंसारकूपे ।

विषयमतिविभिन्नं सृष्टिसंहाररूपमपनय तव भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

धर्म उवाच

तव निजजनसार्धं संगमो मे सदैव भवतु विषयबन्धच्छेदने तीक्ष्णखड्गः।
तव चरणसरोजस्थानदानैकहेतुर्जनुषि जनुषि भक्तिं देहि पादारविन्दे॥

इति श्रीब्रह्मवैवर्ते ब्रह्मादिकृतं श्रीराधाकृष्णस्तोत्रं सम्पूर्णम्।

(श्रीकृष्णजन्मखण्ड ६। २१—२३)

सरस्वतीध्यानम्

यद् दृष्टं च श्रुतौ ध्यानं प्रशस्यं श्रुतिसुन्दरम्। तन्निबोध महाभाग भ्रमभञ्जनकारणम्॥
सरस्वतीं शुक्लवर्णां सस्मितां सुमनोहराम्। कोटिचन्द्रप्रभाजुष्टपुष्टश्रीयुक्तविग्रहाम्॥
वह्निशुद्धांशुकाधानां वीणापुस्तकधारिणीम्। रत्नसारेन्द्रनिर्माणवरभूषणभूषिताम्॥
सुपूजितां सुरगणैर्ब्रह्मविष्णुशिवादिभिः। वन्दे भक्त्या वन्दितां तां मुनीन्द्रमनुमानवैः॥

(प्रकृतिखण्ड ४। ४५—४८)

सरस्वतीमन्त्रः

सर्वोपयुक्तो मूलश्च वैदिकाष्टाक्षरः परः। येषां येनोपदेशो वा तेषां स मूल एव च।
सरस्वतीचतुर्थ्यन्तो वह्निजायान्त एव च॥
श्रीं ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा। लक्ष्मीमायादिकश्चैव मन्त्रोऽयं कल्पपादपः॥

(प्रकृतिखण्ड ४। ५१-५२)

सरस्वतीकवचम्

कवचस्यास्य विप्रेन्द्र ऋषिरेष प्रजापतिः। स्वयं च बृहतीच्छन्दो देवता शारदाम्बिका॥
सर्वतत्त्वपरिज्ञाने सर्वार्थसाधनेषु च। कवितासु च सर्वासु विनियोगः प्रकीर्तितः॥
ॐ ह्रीं सरस्वत्यै स्वाहा शिरो मे पातु सर्वतः। श्रीं वाग्देवतायै स्वाहा भालं मे सर्वदावतु॥
ॐ सरस्वत्यै स्वाहेति श्रोत्रं पातु निरन्तरम्। ॐ श्रीं ह्रीं भारत्यै स्वाहा नेत्रयुग्मं सदावतु॥
ऐं ह्रीं वाग्वादिन्यै स्वाहा नासां मे सर्वतोऽवतु। ह्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा ओष्ठं सदावतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं ब्राह्म्यै स्वाहेति दन्तपङ्क्तीः सदावतु। ऐमित्येकाक्षरो मन्त्रो मम कण्ठं सदावतु॥
ॐ श्रीं ह्रीं पातु मे ग्रीवां स्कन्धं मे श्रीं सदावतु। श्रीं विद्याधिष्ठातृदेव्यै स्वाहा वक्षः सदावतु॥
ॐ ह्रीं विद्यास्वरूपायै स्वाहा मे पातु नाभिकाम्। ॐ ह्रीं ह्रीं वाण्यै स्वाहेति मम पृष्ठं सदावतु॥
ॐ सर्ववर्णात्मिकायै पादयुग्मं सदावतु। ॐ रागाधिष्ठातृदेव्यै सर्वाङ्गं मे सदावतु॥
ॐ सर्वकण्ठवासिन्यै स्वाहा प्राच्यां सदावतु। ॐ ह्रीं जिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहाग्निदिशि रक्षतु॥
ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सरस्वत्यै बुधजनन्यै स्वाहा। सततं मन्त्रराजोऽयं दक्षिणे मां सदावतु॥
ॐ ह्रीं श्रीं त्र्यक्षरो मन्त्रो नैर्ऋत्यां मे सदावतु। कविजिह्वाग्रवासिन्यै स्वाहा मां वारुणेऽवतु॥